भारतीय इतिहास कोश

सच्चिदानन्द भट्टाचार्य



भारतीय इतिहास कोश



"कीरति भनिति भूति भलि सोइ।
सुरसरि सम सब कहँ हित होइ॥"

हिन्दी समिति ग्रन्थमाला-२३३

भारतीय इतिहास कोश

('ए डिक्शनरी आफ इण्डियन हिस्ट्री' का हिन्दी रूपान्तर)

•

मूल लेखक
सच्चिदानन्द भट्टाचार्य
भू० पू० प्राध्यापक, इतिहास, प्रेसीडेंसी कालेज, कलकत्ता
अवै० प्रवक्ता, स्नातकोत्तर विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय
रीडर, इतिहास विभाग, गौहाटी एवं जादवपुर

"कीरति भनिति भूति भलि सोई ।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई ॥"

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
(हिन्दी समिति प्रभाग)
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन
महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ, २२६००१

प्रकाशक :
निदेशक
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
लखनऊ

प्रथम संस्करण : १९७६
द्वितीय संस्करण : १९८९
तृतीय संस्करण : २००१

मूल्य : रुपये १३१.००

प्रतियाँ : २१००

मुद्रक :
अवध पब्लिशिंग हाउस,
नव ज्योति प्रेस,
९, पानदरीबा, लखनऊ
फोन : ४५०७६८

समर्पण

पूर्व और पश्चिमके उन सभी प्राच्यविदोंको जिन्होंने
अपने विद्वतापूर्ण अध्यवसायसे हमारे इस
प्राचीन देशके ज्ञानके विकासमें
योगदान किया है।

अनुकथन

'भारतीय इतिहास कोश' पुस्तक कलकत्ता विश्वविद्यालय के सुविख्यात प्रोफेसर श्री सच्चिदानन्द भट्टाचार्य द्वारा प्रणीत ग्रन्थ 'ए डिक्शनरी ऑफ इण्डियन हिस्ट्री' का हिन्दी अनुवाद है। इस कोश ग्रन्थ की हिन्दी में उपादेयता इस बात से स्वत: स्पष्ट है कि इसकी निरन्तर माँग बनी रहती है और यह ग्रन्थ अनेक शोधार्थियों एवं विद्वानों के निजी पुस्तकालय की शोभा है।

'भारतीय इतिहास कोश' ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करने में ज्ञानचन्द्र जैन, चन्द्रोदय दीक्षित, कमलेश बिहारी माथुर, डॉ० रामाश्रंय अवस्थी, डॉ० राजेन्द्र पाण्डेय ने विशेष रुचि, परिश्रम और अध्येता का परिचय दिया है। श्री ज्ञानचन्द्र जैन एवं श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट के कुशल सम्पादकत्व में यह ग्रन्थ अपनी आभा प्राप्त कर सका है। विषयवस्तु, सम्पादन, साज-सज्जा, मुद्रण आदि की दृष्टि से भी 'भारतीय इतिहास कोश' ग्रन्थ उत्कृष्ट बन पड़ा है।

'भारतीय इतिहास कोश' ग्रन्थ का तृतीय संस्करण बिना किसी संशोधन/परिवर्द्धन के प्रकाशित किया जा रहा है। इस ग्रन्थ का अगला संस्करण और अधिक परिष्कृत और परिमार्जित हो इस निमित्त सुधी पाठकों और अधिकारी विद्वानों का सहयोग अपेक्षित है। इस ग्रन्थ की कमियों और त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करने में आप सब अपना सहयोग प्रदान करें, साथ ही बहुमूल्य सुझावों से भी हमें लाभान्वित करने की अनुकम्पा करें।

विश्वास है कि 'भारतीय इतिहास कोश' के तृतीय संस्करण का यथेष्ट समादर होगा और यह ग्रन्थ विद्वानों, पत्रकारों, इतिहास के अध्यापकों और छात्रों के लिए उपयोगी और आवश्यक सिद्ध होगा।

केशरी नाथ त्रिपाठी
कार्यकारी अध्यक्ष
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान,
लखनऊ

प्रकाशकीय

'भारतीय इतिहास कोश' पुस्तक के तृतीय संस्करण का प्रकाशन करते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस ग्रन्थ के पिछले संस्करणों का विद्वतजनों द्वारा यथोचित समादर हुआ है। यह सन्दर्भ ग्रन्थ भारतीय इतिहास, संस्कृति और हिन्दू धर्म की परिकल्पना को समझने के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। आशा है पूर्व की भाँति 'भारतीय इतिहास कोश' ग्रन्थ का तृतीय संस्करण अध्येताओं के मध्य अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सकेगा।

राजेश कुमार पाण्डेय
निदेशक
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

आमुख

प्रस्तुत ग्रन्थ हमारे देशके इतिहासके एक लब्धप्रतिष्ठ प्राध्यापकके सम्पूर्ण जीवनका श्रम-फल है, जिसमें छात्रों तथा सामान्य पाठकोंके ज्ञानार्जनके लिए, भारतके इतिहासके आदिकालसे अर्थात् ईसा पूर्वके दस हजार वर्ष पहलेसे लेकर अब तकके प्रमुख व्यक्तियों और स्थानोंकी चर्चा है। प्रोफेसर सच्चिदानन्द भट्टाचार्यने मेरे विचारसे अपने ध्येयमें सफलता प्राप्त की है। उन्होंने अधिक विस्तारमें न जाकर, और रूक्षतासे बचते हुए वर्णानुक्रमसे, भारतीय इतिहासमें आदरास्पद विशिष्ट महानुभावोंके जीवनके प्रमुख तथ्य अंकित करनेकी चेष्टा की है और साथ ही सभी महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों, संस्थानों तथा प्रमुख स्थानोंका उल्लेख किया है।

इस प्रकारके ग्रन्थकी आवश्यकता थी और जहाँ तक मेरी जानकारी है इस स्तरका दूसरा ग्रन्थ नहीं है, जो भारतीय इतिहासमें रुचि रखनेवाले अध्येताओं तथा सुसंस्कृत व्यक्तियोंकी जिज्ञासा-पूर्तिमें सहायक हो सके। प्रोफेसर भट्टाचार्यने प्रस्तुत सामग्रीको वर्णानुक्रमसे संजोया है। उनके इस ग्रन्थकी तुलना बहुत पहले डाउसनकी 'ट्रबनर्स ओरिएण्टल सीरीज'के अन्तर्गत प्रकाशित 'हिन्दू माइथालोजी' नामक कृतिसे की जा सकती है। प्रोफेसर भट्टाचार्यने अपने विद्वतापूर्ण प्रयाससे भारतके युवकों और युवतियोंको अपने देशके इतिहासके सम्यक् परिज्ञानार्जनकी ओर प्रेरित किया है। अपना समस्त जीवन उन्होंने इस कार्यको समर्पित कर हमें एक ऐसा प्रामाणिक इतिहास दिया है जिसके तथ्य-कथ्यपर हम विश्वास कर सकते हैं। उन्होंने बड़ी सावधानीसे विवादास्पद विषयोंसे अपनेको बचाया है, किन्तु साथ ही जहाँ आवश्यकता रही है उन्होंने विभिन्न मत-मतान्तरोंका भी उल्लेख किया है।

ग्रन्थ रोचक है, यह कहनेमें मुझे संकोच नहीं। यद्यपि मैं इतिहासका विद्यार्थी नहीं रहा हूँ, तथापि समाज-विज्ञानके अन्तर्गत भाषा-विज्ञानसे भी इतिहासका निकट सम्बन्ध है; अतः इतिहासमें भी मेरी स्वाभाविक रुचि रही है। मुझे विश्वास है, इस ग्रन्थके अध्ययनसे पर्याप्त नयी जानकारी मिलेगी और ऐसे तथ्योंका भी परिज्ञान होगा जिसके सम्बन्धमें हम ठीक-ठीक नहीं जानते। इस ग्रन्थमें कुल मिलाकर लगभग ३००० प्रविष्टियाँ हैं। अतः सामान्य ज्ञानार्जनकी दृष्टिसे यह पुस्तक लोकप्रिय होगी। प्रोफेसर भट्टाचार्यकी यह कृति अपनेमें संक्षिप्त किन्तु विशद है। यह विद्यार्थियों तथा सामान्य पाठकों, दोनोंके लिए ही उपयोगी है, ऐसी मेरी संस्तुति है।

सुनीतिकुमार चटर्जी
अवकाश-प्राप्त प्रोफेसर तुलनात्मक भाषा-विज्ञान
कलकत्ता विश्वविद्यालय
भूतपूर्व अध्यक्ष, विधान परिषद् पश्चिम बंगाल
भारतीय राष्ट्रीय प्रोफेसर—मानवशास्त्र

कलकत्ता
७–२–१९६७

प्रस्तावना

भारतीय इतिहास, यूरोपीय अध्ययनकी भाँति परिपक्व और उच्च स्तर तक नहीं पहुँच पाया है, लेकिन यह वास्तविक तथ्योंपर आधारित है। श्री सच्चिदानन्द भट्टाचार्यके मस्तिष्कमें भारतीय इतिहासका एक कोश तैयार करनेका विचार स्वभावतः उठा था; बहुतसे व्यक्तियोंने उनसे कहा था कि किसी अकेले विद्वानके लिए यह काम बहुत कठिन है, तथा भारतके युगों पूर्वके इतिहासका अंकन बिना किसीकी सहायताके अकेले व्यक्तिके लिए साहसिक कार्य है। धनाभावकी भी कठिनाई थी। लेकिन श्री भट्टाचार्यने अपनी योजनाके कार्यान्वयनका विचार नहीं छोड़ा और वह अपने काममें लगनके साथ जुट गये। बातचीतके दौरान एक बार उन्होंने इस सुनियोजित भारतीय इतिहास कोशके प्रकाशनके लिए धनाभावकी कठिनाईकी भी मुझसे चर्चा की। मैंने उनका कार्य देखा, और यह परिज्ञात हुआ कि यदि यह कार्य पूर्ण हो गया तो यह कोश वस्तुतः उपयोगी होगा। कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोगसे सम्पर्क स्थापित किया गया। इन संस्थाओंने इस योजनाको सम्बल देनेकी इच्छा और प्रकाशनमें योगदान करनेकी सहमति दी। शीघ्र ही श्री भट्टाचार्यकी समस्त सामग्रीका संयोजन किया गया। उनके इस कोशमें भारतके प्राचीन, मध्यकालीन तथा अर्वाचीन इतिहाससे सम्बद्ध व्यक्तियों, स्थानों, घटनाओं, साहित्यिक और ऐतिहासिक सभी विषयोंको मिलाकर लगभग २७८५ प्रविष्टियोंपर प्रकाश डाला गया है।

श्री भट्टाचार्य सत्तर वर्षकी आयु पार कर चुके हैं। जब हम उनका कठिन परिश्रम देखते हैं जो उन्होंने इस जटिल कामको पूरा करनेमें किया है, तो हमें अनुभव होता है कि कुछ पानेकी लालसा, प्रतिदिन कुछ कर लेनेकी कामना, कुछ प्राप्त करने की भावना ही सम्भवतः उनको सम्बल प्रदान करती रही। पारम्परिक इतिहासका पाण्डित्य—विशद अध्ययन, अगाध ज्ञान और सामान्य ज्ञानकी सहज धारणा ही उनके कार्यान्वयनके लिए साधन थे। प्रस्तुत कार्य प्रामाणिक और उपयोगी है। कुछ गलतियाँ और अपवाद हो सकते हैं। भारतीय इतिहास-कोशके रचनाकारके रूपमें लेखक यों भी सर्वज्ञ होनेका दावा नहीं करता।

—एन० के० सिनहा
आशुतोष प्रोफेसर—मध्यकालीन तथा
आधुनिक भारतीय इतिहास
कलकत्ता विश्वविद्यालय

कलकत्ता
५–२–१९६७

निवेदन

'भारतीय इतिहास कोश' विद्यार्थी, अध्यापक, पत्रकार और सामान्य पाठक तथा उन सबके लिए जो भारतीय इतिहासके अध्ययनमें रुचि रखते हों, एक उपयोगी सन्दर्भ ग्रन्थके रूपमें प्रस्तुत है। इस ग्रन्थमें भारतीय इतिहासके सभी युगों प्राचीन, मध्य तथा आधुनिकका स्पर्श किया गया है।

भारतीय इतिहासके आरम्भ और विकाससे सम्बद्ध व्यक्तियों, स्थानों, कार्यों तथा संस्थाओंके सम्बन्धमें २७८५ प्रविष्टियाँ इस ग्रन्थमें वर्णानुक्रमसे संजोयी गयी हैं। परिशिष्टमें कालक्रमानुसार महत्त्वपूर्ण तिथियोंका उल्लेख किया गया है। इसमें विस्तृत विवेचनका दावा तो मैं नहीं करता, लेकिन इनकी उपयोगितामें सन्देह नहीं है।

व्यक्ति-नामोंकी वर्तनीमें ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेसके प्रकाशनोंकी परम्पराका ही प्रायः अनुसरण किया गया है, लेकिन प्रभेदक-चिह्नोंको छोड़ दिया गया है।

तिलिंघारट द्वारा लिखे गये प्लोएट्जके 'मैनुअल ऑफ यूनीवर्सल हिस्ट्री' तथा हार्वर्ड विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित डब्ल्यू० एल० लैंगरके एनसाइक्लोपीडिया, वर्ल्ड हिस्ट्री इत्यादिसे मुझे अपने देशके मुख्य ऐतिहासिक व्यक्तियों तथा घटनाओंका एक कोश तैयार करनेकी प्रेरणा मिली। यह बात और है कि मेरा काम करनेका ढंग तथा कोशकी व्यवस्था पूर्णतः भिन्न है। उपरोक्त दोनों ग्रन्थोंमें कालक्रमानुगत पद्धतियाँ अपनायी गयी हैं, लेकिन मैंने यहाँ प्रासंगिक पद्धतिसे कार्य किया है। वास्तविकता यह है कि उपरोक्त ग्रन्थों—मेनुअल तथा एनसाइक्लोपीडिया—दोनोंमें ही भारतको बहुत कम महत्त्व दिया गया है; जबकि मेरा यह कार्य पूर्णतः भारतीय इतिहासको ही समर्पित है और भारतीय इतिहासमें भी इस प्रकारके कार्यका अभाव रहा है। इस रूपमें यह कार्य भारतीय इतिहासमें पुरावृत-रचनाके एक बहुत बड़े अभावकी पूर्ति करनेका प्रयास है।

सन् १९६१ में बड़े मनोयोगसे मैंने यह कार्य आरम्भ किया था। लेकिन विश्वविद्यालयमें अध्यापन कार्यसे अवकाश ग्रहण करनेके कुछ ही दिन पूर्व मेरे इस उद्देश्यकी ओर डाक्टर एन० के० सिनहा (आशुतोष प्रोफेसर तथा अध्यक्ष भारतीय इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय) का ध्यान आकृष्ट हुआ। वह इस बातसे प्रसन्न हुए कि कलकत्ता विश्वविद्यालय इस ग्रन्थके प्रकाशनमें रुचि ले रहा है। इस कार्यका प्रवर्तन कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' द्वारा किया गया है। प्रस्तुत दोनों संस्थाओंको जिन्होंने ग्रन्थके प्रकाशनका समस्त भार वहन किया तथा डॉ० एन० के० सिनहाको, जिन्होंने प्रसन्नतापूर्वक इस ग्रन्थकी प्रस्तावना लिखी, मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

मानव-शास्त्र विषयोंमें भारतके राष्ट्रीय प्रोफेसर डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याने पुस्तकका आमुख लिखकर मुझपर महती कृपा की है। मैं उनके प्रति श्रद्धावनत हूँ।

डॉ० सुकुमार भट्टाचार्य (विश्व भारतीमें इतिहासके प्रोफेसर) के प्रति जिन्होंने समय-समयपर अपने मूल्यवान् सुझाव दिये तथा अपने शिष्य नदिया (पश्चिमी बंगाल) के महाराजकुमार सौरीषचन्द्र रायका जिन्होंने बड़ी उदारतासे नदिया राजके पुस्तकालयसे महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध करायी, मैं कृतज्ञ हूँ। कलकत्ताके राष्ट्रीय पुस्तकालय (नेशनल लाइब्रेरी) तथा कलकत्ता विश्वविद्यालयकी सेण्ट्रल लाइब्रेरीके अधिकारियोंको धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने समय-समयपर आवश्यक सामग्री-संकलन तथा पुस्तकोंकी सुविधा प्रदान की। ईस्टेण्ड प्रिण्टर्स (कलकत्ता) के श्री पी० के० घोषके प्रति मैं विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने रचनात्मक सुझाव प्रदान किये।

इस ग्रन्थके लेखनमें भारतीय इतिहासपर उपलब्ध प्रामाणिक ग्रन्थोंसे सहायता ली गयी है। कोई विशेष ग्रन्थ-सूची यहाँ नहीं दी जा रही है। विवादास्पद विषयोंको स्पष्ट करनेके लिए मैंने प्रामाणिक लेखकोंका सन्दर्भ दिया है। जिन पुस्तकोंके शीर्षक बड़े हैं, परिशिष्टमें उनके संकेत दिये हैं। ग्रन्थमें सर्वत्र उन्हीं संकेतोंका प्रयोग किया गया है।

मेरी वयके व्यक्तिके लिए, बिना किसी सहायकके यह कार्य अत्यधिक श्रमसाध्य रहा। इसके अतिरिक्त यह कार्य किसी भी तरह एक निश्चित अवधिमें सम्पन्न किया गया है। सम्भव है, कुछ भूलें रह गयी हों। पुस्तकमें संशोधनके लिए पाठकोंके कुछ सुझाव हों तो उनका स्वागत है तथा पुस्तकका द्वितीय संस्करण सम्भव हुआ तो उसमें उनका उपयोग भी किया जा सकेगा।

यह ग्रन्थ साधारणतया वस्तुपरक शैलीमें लिखा गया है। अतः व्यक्तिपरक सारे तथ्योंको एकत्र करना सम्भव न होगा। इस प्रकारके अत्यल्प अवसरोंपर प्रकट किये गये विचार मेरे अपने हैं। मुझे विश्वास है, मेरे ये विचार इतिहासके स्थापित तथ्योंपर आधारित पाये जायेंगे।

कालेज तथा विश्वविद्यालय जीवनके अध्यापनके पचास वर्षोंके परिश्रमका ही यह फल है, जो मैं 'भारतीय इतिहास कोश'के रूपमें प्रस्तुत कर रहा हूँ। भारतीय इतिहासमें रुचि रखनेवाले व्यक्तियोंके लिए यदि यह ग्रन्थ उपयोगी होगा तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगा।*

—सच्चिदानन्द भट्टाचार्य

६२, बालीगंज प्लेस
कलकत्ता (भारत)
१५ फरवरी, १९६७

* अंग्रेजीमें प्रस्तुत 'ए डिक्शनरी आफ इण्डियन हिस्ट्री' ग्रन्थकी भूमिकासे।

भारतीय इतिहास कोश

•



"कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥"

भारतीय इतिहास कोश

अ

अंकोरवट–कम्बोडिया, जिसे पुराने लेखोंमें कम्बुज कहा गया है और भारतके प्राचीन सम्बन्धोंका शानदार स्मारक। यह मंदिर अंकोरथोम नामक नगरमें स्थित है जिसे प्राचीन कालमें यशोधरपुर कहा जाता था और जो जयवर्मा द्वितीयके शासनकाल (११८१–१२०५ ई०) में कम्बोडियाकी राजधानी था। यह अपने समयमें संसारके महान् नगरोंमें गिना जाता था और इसका विशाल भव्य मंदिर अंकोरवटके नामसे आज भी विख्यात है। इसका निर्माण कम्बुजके राजा सूर्यवर्मा द्वितीय (१०४६–६६ ई०) ने कराया था और यह विष्णुको समर्पित है। यह मंदिर एक ऊँचे चबूतरेपर स्थित है। इसमें तीन खंड हैं जिनमेंसे प्रत्येकमें सुन्दर मूर्तियाँ हैं और प्रत्येक खंडसे ऊपरके खंडतक पहुँचनेके लिए सीढ़ियाँ हैं। प्रत्येक खंड पटी हुई दीर्घिकाके रूपमें है। मंदिरके चार कोणोंमें आठ गुम्बजें हैं जिनमेंसे प्रत्येक १८० फुट ऊँची है। मुख्य मंदिर तीसरे खंडकी चौड़ी छतपर है। उसका शिखर २१३ फुट ऊँचा है और पूरे क्षेत्रको गरिमा-मंडित किये हुए है। मंदिरके चारों ओर पत्थरकी दीवारका घेरा है जो पूर्वसे पश्चिमकी ओर दो-तिहाई मील और उत्तरसे दक्षिणकी ओर आधे मील लम्बा है। इस दीवारके बाद ७०० फुट चौड़ी खाई है जिसपर एक स्थानपर ३६ फुट चौड़ा पुल है। इस पुलसे पक्की सड़क मंदिरके पहले खंडके द्वारतक चली गयी है। इस प्रकारकी भव्य इमारत संसारके किसी अन्य स्थानपर नहीं मिलती है। भारतसे सम्पर्कके बाद दक्षिण-पूर्वी एशियामें कला, वास्तुकला तथा स्थापत्यकलाका जो विकास हुआ, उसका यह मंदिर चरमोत्कृष्ट उदाहरण है। **(आर० सी० मजूमदार–कम्बुज देश, पृष्ठ १३५–३७)**

अंग–पूर्वी बिहारका प्राचीन नाम। इसकी राजधानी गंगाके किनारे आधुनिक भागलपुर नगरके निकट चम्पा थी। ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दीमें यह मगध राज्यमें शामिल कर लिया गया, जिसमें उस समयतक पटना, गया और दक्षिणी बिहारके क्षेत्र शामिल थे। बादमें यह क्षेत्र निरन्तर मगधका भाग बना रहा और इसीका नाम बादमें बिहार पड़ा।

अंगद–सिखोंके दूसरे गुरु। इनको गुरु नानक (दे०) ने ही इस पदके लिए मनोनीत किया था। नानक इनको अपने शिष्योंमें सबसे अधिक मानते थे और अपने दोनों पुत्रोंको छोड़कर उन्होंने अंगदको ही अपना उत्तराधिकारी चुना। गुरु अंगद श्रेष्ठ चरित्रवान् व्यक्ति और सिखोंके उच्चकोटिके नेता थे जिन्होंने अनुयायियोंका १४ वर्ष (१५३८–५२ ई०) तक नेतृत्व किया।

अंतिकिनि–एक यवन राजा, जिसका उल्लेख अशोकके शिलालेख (संख्या तेरह) में किया गया है। उसकी पहचान मैसिडोनियाके राजा एंटिगोनस गोंटस (ई० पू० २७७–ई० पू० २३९) से की जाती है।

अंसारी, डाक्टर (१८८०–१९३६ ई०)–एक प्रमुख मुसलमान राष्ट्रीयतावादी नेता। उनका जन्म बिहारमें हुआ, एडिनबरा (ब्रिटेन) से उन्होंने डाक्टरीकी पदवी प्राप्त की और दिल्लीमें रहकर वे डाक्टरी करने लगे। १९१२–१३ ई० में उन्होंने भारतमें एक चिकित्सक दल संगठित करके उसे तुर्कीके युद्धमें सहायता कार्यके लिए भेजा। उन्होंने मुस्लिम लीगका संगठन करनेमें प्रमुख भाग लिया और १९२०ई० के उसके अधिवेशनकी अध्यक्षता की। वे साम्प्रदायिक विचारधाराके पोषक नहीं थे और १९२७ ई० में उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके मद्रास अधिवेशनकी अध्यक्षता की। उन्होंने महात्मा गांधी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलनमें भाग लिया तथा १९३० ई० और १९३२ ई० में ब्रिटिश शासन कालमें जेल यात्राएँ कीं।

अकबर–मुगलवंशका तीसरा बादशाह, भारतमें मुगल साम्राज्य और राजवंशका वास्तविक संस्थापक। अपने पिता हुमायूंकी मृत्युके बाद वह १५५६ ई० में सिंहासन पर बैठा। उस समय उसके अधीन कोई खास इलाका नहीं था। उसी वर्ष पानीपतकी दूसरी लड़ाईमें उसने हेमूपर विजय पायी जो अफगानोंके सूर राजवंशका समर्थक था। अब वह पंजाब, दिल्ली, आगरा और पास-पड़ोसके क्षेत्रका स्वामी बन गया। अगले पाँच वर्षोंमें अकबरने इस क्षेत्रमें अपने राज्यको मजबूत बनाया और पूर्वमें गंगा-यमुनाके संगम–इलाहाबादतक और

मध्य भारतमें ग्वालियर और राजस्थानमें अजमेरतक अपना राज्य फैलाया। अगले २० वर्षोंमें अकबरने कश्मीर, सिंध और उड़ीसाको छोड़कर पूरे उत्तर भारतको जीत लिया। १५९२ ई० तक उसने इन तीनों राज्योंको भी अपने राज्यमें मिला लिया। इसके पहले १५८१ ई० में उसने अपने छोटे भाई हकीमकी बगावतका दमन किया जिसने अपनेको काबुलका स्वतंत्र सुल्तान घोषित कर दिया था और १५८५ में उसकी मृत्यु होनेपर काबुलको अपने राज्यमें मिला लिया। दस वर्ष बाद उसने कंधार जीत लिया और बलूचिस्तानपर कब्जा कर लिया। उत्तर भारतको जीतनेके बाद उसने दक्षिण भारतको जीतनेकी कोशिश की। १६०० ई० में उसने अहमदनगर-पर हमला किया और १६०१ ई० में खान देशके असीरगढ़-को जीता। यह उसके जीवनकी अन्तिम विजय थी। चार वर्ष बाद जब उसकी मृत्यु हुई उस समय उसका साम्राज्य पश्चिममें काबुलसे पूर्वमें बंगालतक और उत्तरमें हिमालयकी तराईसे दक्षिणमें नर्मदा नदीके किनारेतक फैला था।

अकबरने अपने साम्राज्यको १५ सूबोंमें बाँटा था: (१) काबुल, (२) लाहौर (पंजाब) जिसमें कश्मीर भी शामिल था, (३) मुल्तान–सिंध, (४) दिल्ली, (५) आगरा, (६) अवध, (७) इलाहाबाद, (८) अजमेर, (९) अहमदाबाद, (१०) मालवा, (११) बिहार, (१२) बंगाल-उड़ीसा, (१३) खानदेश, (१४) बरार और (१५) अहमदनगर।

अकबर केवल महान् विजेता ही नहीं था वरन् कुशल प्रशासक और साम्राज्यका संस्थापक भी था। उसने ऐसी प्रशासन व्यवस्था की जो उसके पहलेके राज्यों-की व्यवस्थासे उच्चकोटिकी थी। उसका राजतंत्र उसके व्यक्तिगत स्वेच्छाचारी शासन और नौकरशाही-पर आश्रित था। उसका उद्देश्य बादशाहके व्यक्तिगत अधिकार और राजकोषको बढ़ाना था। बादशाहके हुक्मको उसके मनसबदार पूरा करते थे। मनसबदारोंकी ३–३ श्रेणियाँ थी, जिनके मनसब १० से लेकर पाँच हजार तकके होते थे। इन मनसबदारोंको वेतन नकद दिया जाता था। उनके ऊपर अंकुश रखनेके लिए अनेक नियम बनाये गये थे, विशेष रूपसे सवारोंकी फर्जी सूची रखने-पर। हर एक सूबे में एक सूबेदार रहता था जिसको नवाब नाजिम भी कहा जाता था। उसे काफी अख्तियार रहते थे। वह भी अपना छोटा दरबार करता था जैसा कि तुर्क व अफगान सुल्तानोंके राजमें होता था। लेकिन अकबरने सूबेदारोंपर अंकुश लगाया और सूबेके वित्तीय मामलोंकी देखभाल करनेके लिए 'दीवान' नामक नया अधिकारी नियुक्त किया।

राजस्व बढ़ानेके लिए राजा टोडरमलकी सहायतासे अकबरने भूमिकी नाप जोख और पैमाइश कराकर माल-गुजारीकी नयी व्यवस्था की। रैयत और काश्तकारोंसे लगानकी वसूलीकी सीधी व्यवस्था चलायी गयी। उपजका तिहाई हिस्सा लगानके रूपमें नकद अथवा अनाज-के रूपमें लिया जाता था और उसकी वसूली सरकारी अफसर करते थे।

भारतके मुसलमान शासकोंमे अकबरका स्थान सबसे ऊपर रखा जाता है। उसके पहलेके शासकों-ने यहाँकी हिन्दू प्रजाका ख्याल नहीं रखा और उनमें और बहुसंख्यक हिन्दू प्रजामें लगातार संघर्ष और शत्रुताका व्यवहार चलता रहता था। अकबर-ने अपने शासनके आरम्भिक वर्षोंमें यह अनुभव किया कि हिन्दुस्तानका बादशाह केवल मुसलमानोंका ही शासक नहीं होना चाहिये। यहाँके सम्राटको यदि अपने राज्यको मजबूत बनाना है तो उसे हिंदुओंकी राजभक्ति भी प्राप्त करनी चाहिये। उसे हिन्दू-मुसलमान, यह भेदभाव नहीं करना चाहिये। इसलिए उसने उदार नीति अपनायी। उसने पराजित राजाओंके परिवारोंको गुलाम बनानेकी प्रथा छोड़ दी, उनकी स्त्रियोंकी इज्जत नहीं ली और उनको अपने यहाँ सम्मानपूर्ण पद दिये। उसने तीर्थ-यात्रियोंके ऊपर लगनेवाले जजिया नामक करको समाप्त कर दिया जो केवल हिन्दुओंपर लगाया जाता था। उसने हिन्दुओंको भी उनकी प्रतिभाके अनुसार ऊँचे पदों-पर नियुक्त किया। उसने हिन्दू राजाओंसे विवाह सम्बन्ध स्थापित किया और उनको धर्म बदलनेको बाध्य नहीं किया। उसकी इस उदार नीतिके कारण उसे राजपूतोंका समर्थन मिला और उनकी वीरताके आधार-पर अकबरने अपना साम्राज्य काबुलसे बंगाल तक फैलाया। अकबरने हिन्दू और मुसलमानोंके आपसी संघर्षको खत्म कर एक भारतीय राष्ट्र बनानेका स्वप्न देखा। उसने हिन्दू और इस्लाम दोनों धर्मोंकी अच्छी बातोंको लेकर नया मत चलानेका प्रयत्न किया। इसी उद्देश्यसे उसने १५८१ ई० में 'दीन इलाही'का प्रचलन किया। उसमें कुरान, हिन्दू धर्मशास्त्रों और बाइबिलके सिद्धान्तोंका समन्वय किया गया था। अकबर सभी धर्मोंके प्रति सहिष्णुताके सिद्धान्तको मानता था। उसने अपने नये धर्म-को दूसरोंपर लादनेका प्रयास नहीं किया। बहुत थोड़े

लोगोंने 'दीन इलाही' को कबूल किया और उसका उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। परन्तु, अपने इस प्रयासके कारण, "सभी धर्मोंके प्रति सहिष्णुता तथा उदारता दिखानेके कारण मानव-जातिके सच्चे उपकारकोंमें उसने अपना प्रमुख स्थान बना लिया है।" (वी० ए० स्मिथ—अकबर दि ग्रेट मुगल; वान नोएर—इम्परर अकबर)

अकबर द्वितीय—मुगल वंशका १८वां बादशाह। वह शाह आलम द्वितीयका पुत्र था और उसने १८०६–३७ ई० तक राज किया। उसके समयतक, भारतका अधिकांश राज अंग्रेजोंके हाथमें चला गया था और १८०३ ई० में दिल्ली-पर भी उनका कब्जा हो गया था। बादशाह शाह आलम द्वितीय (१७६६–१८०६ ई०) अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी पेंशनपर जीवन यापन करता था। उसका पुत्र बादशाह अकबर द्वितीय ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी कृपाके सहारे नाम मात्रका बादशाह था। उससे गवर्नर जनरल लार्ड हेस्टिंग्स (१८१३–२३) की ओरसे कहा गया कि वह कम्पनीके क्षेत्रपर अपनी बादशाहतका दावा छोड़ दे। लार्ड हेस्टिंग्सने ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी ओरसे मुगल बादशाहको दी जाने वाली नजर बन्द कर दी। उसका लड़का और उत्तरा-धिकारी बादशाह बहादुरशाह द्वितीय (१८३७–५८ ई०) भारतका अन्तिम मुगल बादशाह था।

अकबर खां—अफगानिस्तानके अमीर दोस्त मुहम्मदका पुत्र। उसने प्रथम आंग्ल-अफगान युद्ध (१८४१–४३ ई०) के दौरान अफगानोंको संगठित कर अंग्रेजोंके हमलेका मुकाबला करनेमें खास हिस्सा लिया था।

अकबर नामा—बादशाह अकबरके शासनकालका इतिहास, जिसे अकबरके दोस्त और दरबारी अबुल फ़ज़लने लिखा था। यह अकबरके शासनकालमें लिखा गया प्रामाणिक इतिहास है, क्योंकि लेखकको इसकी बहुत सी बातोंकी निजी जानकारी थी, और सरकारी कागजोंतक उसकी पहुँच थी। यद्यपि इसमें अकबरके साथ कुछ पक्षपात किया गया है तथापि तिथियों और भौगोलिक जानकारीके लिए यह विश्वसनीय है।

अकबर, शाहजादा—औरंगजेब और उसकी दिलरस बानो बेगमका पुत्र। वह बादशाह औरंगजेबका तीसरा और प्यारा बेटा था और १६७९ ई० में उसने राजपूतोंके विरुद्ध लड़ाईमें मुगल सेनाका नेतृत्व किया था। जब उसकी सेना चित्तौड़में थी, तो राजपूतोंने उसपर अचानक हमला बोलकर उसे हरा दिया। उसके बाद औरंगजेबने उसका तबादला मारवाड़ कर दिया। शाहजादा अकबरने इसे अपनी बेइज्जती समझा और सोचा कि मैं स्वयं भी राजपूतोंकी सहायतासे अपने बापकी जगह बादशाह बन सकता हूँ, जैसा कि औरंगजेबने किया था। राजपूत सरदारोंने भी उसका हौसला बढ़ाया और उसे समझाया कि राजपूतोंकी मददसे वह हिन्दुस्तानका सच्चा बादशाह बन सकता है। शाहजादा अकबरने अपने पिताको एक कड़ा पत्र लिखा जिसमें उसने असहिष्णुताकी नीतिको छोड़ने तथा शासनकी दुर्व्यवस्थाकी ओर उसका ध्यान आकर्षित किया।

अन्त में ७० हजार सैनिकोंके साथ, जिनमें बहुतसे राजपूत भी थे, शाहजादा अकबर अजमेरके निकट १५ जनवरी १६८१ ई० को पहुँच गया। उस समय औरंगजेबकी सेना चित्तौड़ और दूसरे स्थानोंमें बिखरी हुई थी। अकबरने उस समय हमला कर दिया होता तो बादशाह मुश्किलमें पड़ जाता, लेकिन शाहजादेने ऐयाशी और नाचरंगमें समय गवाँ दिया। इस बीच औरंगजेबको अकबर और उसके राजपूत साथियोंमें फूट पैदा करनेका मौका मिल गया। राजपूतोंने उसका साथ छोड़ दिया। शाहजादा अकबर राजपूतानेसे दक्षिणकी ओर भागा जहाँ उसने शिवाजीके पुत्र शम्भा जीके यहाँ शरण ली। इससे शाहजादा और मराठोंके संयुक्त मोर्चे-का खतरा पैदा हो गया। औरंगजेब खुद दक्षिण गया। लेकिन इस बीच शाहजादा अकबरने अपने पिताको हराने-की आशा छोड़ दी और वह हिन्दुस्तान छोड़कर फारस चला गया। १६९५ ई० में अकबरने फारसकी सहायता-से हिन्दुस्तानपर हमला करनेकी कोशिश की। पर मुल्तानके पास उसके सबसे बड़े भाई शाहजादा मुअज्जमके नेतृत्वमें मुगल सेनाने उसे पराजित कर दिया। इस पराजयके बाद निराश शहजादा अकबर फिर फारस लौट गया, जहाँ १७०४ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

अकबर हैदरी, सर—(१८६९–१९४१ ई०), भारत सरकार-के वित्त विभागमें एक छोटे अफसरके रूपमें नियुक्त और बादमें भारतका सर्वप्रथम कन्ट्रोलर आफ ट्रेजरी। १९३७ में वह निज़ामका प्रधान सचिव बनाया गया, जहाँ कुछ शासन सुधार किये गये। बादमें वह वाइसराय-की एक्जीक्वीटिव कौंसिलका सदस्य बनाया गया।

अकमल खां—अफरीदी कबाइली सरदार जिसने १६७२ ई० में मुगल बादशाह औरंगजेबके विरुद्ध विद्रोहका नेतृत्व किया और अपनेको सुल्तान घोषित किया। उसने अली मस्जिदकी लड़ाईमें मुगल सेनाको हरा दिया और कुछ समय तक पठानोंके पूरे क्षेत्रपर अटकसे कंधार-

तक अपना राज्य स्थापित कर लिया था। १६७४ई० में औरंगजेब खुद पेशावर गया तथा कूटनीति और शस्त्र-बल-से उसने अकमल खाँ तथा पठानोंको हरा दिया।

अकाल—भारतके आर्थिक जीवनकी एक दुःखद विशेषता। मेगस्थनीज (दे०) ने लिखा है कि भारतमें अकाल नहीं पड़ता, लेकिन यह कथन बादके इतिहासमें सही नहीं सिद्ध होता। सच तो यह है कि भारत जैसे देशमें मुख्यतः खेती ही जीवन-यापनका साधन है और वह मुख्यतः अनिश्चित मानसूनी वर्षापर निर्भर रहती है। अतः यहाँ अकाल प्रायः पड़ता रहता है। ब्रिटिश राज्यकालके पहलेके अकालोंका विश्वस्त विवरण नहीं प्राप्त होता। लेकिन १७५७ ई० की पलासीकी लड़ाई और १६४७ ई० में भारतकी स्वाधीनता मिलनेके समयके बीच, अर्थात् १६० वर्षकी छोटी अवधिके दौरान देशमें बड़े-बड़े नौ अकाल पड़े। यथा,

(१) १७६६-७० ई०, जिसमें बंगाल, बिहार और उड़ीसाकी एक तिहाई आबादी नष्ट हो गयी। (२) १८३७-३८ ई० में समस्त उत्तरी भारत अकालग्रस्त हुआ, जिसमें ८ लाख व्यक्ति मौतके शिकार हुए। (३) १८६१ ई० में पुनः भारी अकाल पड़ा, जिसमें उत्तर भारतमें असंख्य व्यक्ति मरे। (४) १८६६ ई० में उड़ीसामें अकाल पड़ा, जिसमें १० लाख लोगोंकी जानें गयीं। (५) १८६८-६९ ई० में राजपूताना और बुंदेलखंड अकालके शिकार हुए। इसमें कम आदमी मरे, फिर भी यह संख्या एक लाखसे कम नहीं थी। (६) १८७३-७४ ई० में बंगाल और बिहार-में पुनः अकाल पड़ा, जिसमें लोग भारी संख्यामें मरे। (७) १८७६-७८ ई० का अकाल तो समस्त भारतमें पड़ा, जिसके फलस्वरूप अकेले ब्रिटिश भारतमें ५० लाख व्यक्ति मरे। (८) १८९६-१९०० ई० में दक्षिणी, मध्य और उत्तरी भारतमें अकाल पड़ा जिसमें साढ़े सात लाख व्यक्ति मरे। (९) १९४३ ई० में ब्रिटिश सरकारकी 'सर्वक्षार' नीति, व्यापारियोंकी धनलिप्सात्मक जमाखोरी तथा प्रशासनिक भ्रष्टाचारके कारण बंगालमें अकाल पड़ा, जिसमें लगभग १५ लाख व्यक्ति मरे।

अकाल आयोग—१८८० ई० में वाइसराय लार्ड लिटन द्वारा सर रिचर्ड स्ट्रैचीकी अध्यक्षतामें स्थापित। इसी आयोग-की सिफारिशपर 'अकाल संहिता'की रचना की गयी थी। १८९७ ई० में वाइसराय लार्ड एलगिनने सर जेम्स लायल-की अध्यक्षतामें पुनः एक अकाल आयोगकी स्थापना की। द्वितीय आयोगने प्रथम आयोग द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों-का समर्थन किया और अकाल सहायता योजनाके विस्तृत कार्यान्वियनमें परिवर्तन कर दिया। १९०० ई० में वाइस-राय लार्ड कर्जनने सर ऐण्टोनी मैकडानलका अध्यक्षतामें तृतीय अकाल आयोगकी स्थापना की। इसने भी प्रथम आयोगके सिद्धान्तोंका समर्थन किया और यह सिफारिश की कि सहायता कार्यवाले क्षेत्रके लिए सहायता-आयुक्त नियुक्त किया जाय तथा दूरस्थ क्षेत्रोंमें केन्द्रकी ओरसे कामकी व्यवस्था करनेकी अपेक्षा सार्वजनिक हितके स्थानीय कार्योंमें अकालपीड़ितोंको लगाकर वस्तु-वितरण किया जाय। यह भी सिफारिश की गयी कि अकाल सहायता कार्यमें गैर-सरकारी संस्थाओंका अधिकाधिक सहयोग लिया जाय, कृषि बैंक खोले जायँ, खेतीके विक-सित तरीके अपनाये जायँ और सिंचाई सुविधाओंका विस्तार किया जाय। इन सिफारिशोंको स्वीकार किया गया और सरकारने उनपर अमल किया।

अकाल प्रतिवेदन (१८८०ई०)—सर रिचर्ड स्ट्रैचीकी अध्य-क्षतामें नियुक्त अकाल आयोगद्वारा प्रस्तुत। प्रतिवेदनमें सर्वप्रथम यह मौलिक सिद्धान्त निर्धारित किया गया कि अकालके समय पीड़ितोंको सहायता देना सरकारका कर्तव्य है। इस सिद्धान्तके अनुसार काम करने योग्य व्यक्तियोंको काम देकर सहायता पहुँचाना तथा कमजोर और बूढ़े लोगोंको अन्न एवं धनसे सहायता देना उचित बताया गया। यह भी कहा गया कि सहायताके रूपमें जो काम कराया जाय, वह स्थायी हो और इतना बड़ा हो कि उक्त क्षेत्रके सभी जरूरतमंद लोगोंकी आवश्यकताकी पूर्ति हो सके। बड़ी योजनाओंपर काम करने हेतु दूर भेजनेके लिए जो लोग योग्य न हों, उन्हें तालाबोंकी खुदाई अथवा पुलिया आदि बनानेके स्थानीय काममें लगाया जाय। सहायताके रूपमें दिया जानेवाला काम तत्काल आयोजित किया जाय और भुखमरीसे शक्ति घटने-के पहले ही अकालपीड़ितोंको काम और अन्न प्राप्त हो जाय। लगान स्थगित अथवा माफ करके बीज एवं कृषि-यन्त्र खरीदनेके लिए अग्रिम धन देकर अकालपीड़ितोंकी अतिरिक्त एवं सामान्य सहायता की जाय। सहायता-वस्तुकी छीजन तथा फिजूल-खर्ची रोकनेके लिए सहायता-व्ययका मुख्य भार अकाल पीड़ित क्षेत्रकी स्थानीय सरकार-को उठाना चाहिए और केन्द्रीय सरकार केवल स्थानीय स्रोतोंमें योगदान देनेका काम करे। सहायताका वितरण गैर-सरकारी प्रतिनिधि संस्थाओंके माध्यमसे हो। प्रति-वेदनमें यह भी सिफारिश की गयी कि अकाल सहायता एवं बीमाकोषकी स्थापनाके लिए प्रतिवर्ष डेढ़ करोड़ रुपया अलग कर दिया जाया करे जिससे अकालके समय आवश्यकता पड़नेपर धन लिया जा सके।

अकाल संहिता—अकाल आयोग (१८८० ई०)की सिफारिशोंके आधारपर १८८३ ई० में तैयार की गयी। इस संहितामें खाद्याभावका पता लगानेके लिए प्रक्रिया निर्धारित की गयी थी, जिसके द्वारा पहले अभावकी स्थिति और बादमें अकालकी स्थिति घोषित की जा सके। सिद्धान्त यह माना गया कि जैसे ही अभावकी स्थिति घोषित हो, वैसे ही रेलवे और जहाजोंद्वारा तत्काल अधिक अन्नवाले क्षेत्रोंसे अकालग्रस्त क्षेत्रोंको अनाज भेजा जाय, जिससे अकालपीड़ित लोगोंको अविराम खाद्यान्न मिलता रहे। साथ ही काम करने लायक लोगोंको काम दिया जाय। ऐसा कहा गया है कि अकाल संहिता भी अकालको रोकनेमें विफल सिद्ध हुई। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि विज्ञानके नये स्रोतों और आयोजनाओंसे अकालकी विभीषिकाको कम करनेमें सहायता मिली।

अकाल सहायता और बीमा कोष—१८८० ई० के अकाल आयोगकी सिफारिशोंके अनुसार स्थापित।

अकविवा, फादर रिदांल्फो—गोआमें धर्मप्रचार करनेवाला जेसुइट सम्प्रदायका पादरी। सितम्बर १५७९ ई० में बादशाह अकबरकी प्रार्थनापर उसको और पादरी मोंसेरेतको गोआकी पुर्तगाली सरकारने अकबरके दरबार-में फतेहपुर सीकरी भेजा था। ये दोनों पादरी फरवरी १५८० ई० में फतेहपुर सीकरी पहुँचे जहाँ बादशाहने उनका सम्मानपूर्वक स्वागत किया। अकविवा बड़ा विद्वान् था और बादशाह अकबर उसका बड़ा सम्मान करता था। वह अकबरके दरबारमें काफी समयतक रहा।

अगलस्सोई—सिकंदरके आक्रमणके समय सिन्ध नदीकी घाटीके निचले भागमें शिविगणके पड़ोसमें रहनेवाला एक गण। सिकंदर जब सिन्धु नदीके मार्गसे भारतसे वापस लौट रहा था तो इस गणके लोगोंसे उसका मुकाबला हुआ। अगलस्सोई गणकी सेनामें ४० हजार पैदल और तीन हजार घुड़सवार सैनिक थे। उन्होंने सिकंदरके छक्के छुड़ा दिये लेकिन अन्तमें वे पराजित हो गये। यूनानी इतिहासकारोंके अनुसार अगलस्सोई गणके २० हजार आबादीवाले एक नगरके लोगोंने स्वयं अपने नगरमें आग लगा दी और अपनी स्त्रियों और बच्चोंके साथ जलकर मर गये, ताकि उन्हें यूनानियोंकी दासता न भोगनी पड़े। **(अगलस्सोईकी पहचान पाणिनिके व्याकरणमें उल्लिखित अग्रश्रेणयःसे की जाती है।—सं०)**

अगाथोक्लिस—भारतका एक यवन राजा जो तक्षशिलाके क्षेत्रमें (१९०–१८० ई० पू०) राज्य करता था। उस क्षेत्रमें उसके कुछ सिक्के भी पाये गये हैं जिनमें उसका नाम यूनानी और प्राकृत दोनों भाषाओंमें अंकित है।

अगेसिलोस्—एक यवन अधिकारी, जो कुषाण राजा कनिष्क-के निर्माण कार्योंका निरीक्षक अभियंता था। पेशावरमें कनिष्कके आदेशसे निर्मित स्तूपके ध्वंसावशेषोंमें प्राप्त धातु पात्रसे उसके नामका पता चलता है। **(जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, १९०८, पृ० ११०९)**

अग्निकुल—राजपूतोंकी चार जातियों, पवार (परमार), परिहार (प्रतिहार), चौहान (चाहमान) और सोलंकी अथवा चालुक्यकी गणना अग्निकुलके क्षत्रियोंमें होती हैं। चंदबरदाईके रासोके अनुसार अग्निकुलके इन चार राजपूतोंके पूर्व पुरुष दक्षिणी राजपूतानेके आबू पहाड़में यज्ञके अग्निकुंडसे प्रकट हुए थे। इससे इनके दक्षिण राजस्थानसे सम्बन्धित होनेका पता चलता है। कुछ लोगोंका मत है कि यह यज्ञ विदेशी जातियोंको वर्णाश्रम व्यवस्थामें लेनेके लिए किया गया था और इस प्रकार इन जातियोंको उच्च क्षत्रिय वर्णमें स्थान दिया गया था। **(जर्नल आफ दि रायल एन्थ्रोपालिजिकल इंस्टीटच्यूट, पृ० ४२)**

अग्निपुराण—१८ पुराणोंमेंसे एक। उसमें भारतीय ऐति-हासिक जनुश्रुतियोंका सबसे क्रमबद्ध उल्लेख है।

अग्निमित्र—शुंगवंश (दे०) के संस्थापक पुष्यमित्रका पुत्र और उत्तराधिकारी। अपने पिताके राज्यकालमें वह नर्मदा प्रदेशका उपराजा था और उसने अपनी राजधानी विदिशामें रखी थी। विदिशा को आजकल भिलसा कहा जाता है। उसने अपने दक्षिणी पड़ोसी विदर्भ (बरार) के राजाको पराजित किया और शुंग राज्यको वर्धानदीके तटतक फैला दिया। १४९ ई० पू० में वह अपने पिताका उत्तराधिकारी बना और पुराणोंके अनुसार उसने आठ वर्ष राज्य किया। कालिदासके प्रसिद्ध नाटक 'मालविकाग्निमित्र'में इसी अग्निमित्रकी प्रेम कथाका वर्णन है। इसके नामके अनेक सिक्के भी मिले हैं। **(पर्जीटर-डायनेस्टीज आफ दि कलि एज, पृष्ठ सं० ३०-७०)**

अग्रमस—कर्टियस आदि यूनानी इतिहासकारोंने सिकंदरके आक्रमणके समय मगधके राजाका नाम अग्रमस अथवा क्सैन्द्रमस लिखा है। सिकंदरको उसके राज्यपर आक्रमण करनेका साहस नहीं हुआ। वह एक नाईका पुत्र था। उसके पिताने मगधके सिंहासनपर बलात् अधिकार करके अपनेको 'प्रेस्मिप्राई' (प्राच्य देश) का राजा घोषित कर दिया था। अग्रमस नाम संस्कृत औग्रसैन्यका यूनानी अपभ्रंश मालूम होता है। औग्रसैन्यका अर्थ है उग्रसेनका

पुत्र। 'महाबोधिवंश'के अनुसार उग्रसेन नन्दवंशका संस्थापक था। (पी० एच० ए० आई०, पृष्ठ २३२, मैक् क्रिंडिल—दि इन्वेजन आफ इण्डिया बाइ एलेक्जेंडर, पृष्ठ २२२)

अग्रमहिषी—शक राजाओंके समयमें पट रानीको अग्रमहिषी-की उपाधिसे विभूषित किया जाता था, उदाहरणके लिए 'नागनिको'। (पी० एच० ए० आई०, पृष्ठ ५१७)

अग्रोनोमोइ—यूनानी लेखक स्त्राबोके अनुसार, चन्द्रगुप्त मौर्यके समयमें अग्रोनोमोइ नामक अधिकारी नदियोंकी देखभाल, भूमिकी नापजोख, जलाशयोंका निरीक्षण और नहरोंकी देखभाल करते थे, ताकि सभी लोगोंको पानी ठीकसे मिल सके। यह अधिकारी शिकारियोंपर भी नियंत्रण रखता था और उसको लोगोंको पुरस्कृत और दंड देनेका अधिकार था। वह कर वसूलता था और भूमिके स्वामित्व सम्बन्धी मामलोंका भी निरीक्षण करता था। सार्वजनिक सड़कोंका निर्माण और दस-दस स्टैडियाकी दूरीपर स्तंभ लगानेके कामका निरीक्षण भी यही अधिकारी करता था। वह ग्रामोंका शासन भी करता था। इसकी पहचान कौटिल्य अर्थशास्त्रमें वर्णित 'अध्यक्ष' और अशोकके शिलालेखोंमें वर्णित 'राजुक'से की जाती है। (स्त्राबो, खंड ३, पृष्ठ १०३ और पी० एच० ए० आई०, पृष्ठ संख्या २८४ और ३१८)

अच्युत—आर्यावर्तके राजाओंमें से एक। प्रयाग-स्तम्भ लेख के अनुसार समुद्रगुप्त (३३०—३७५ ई०) ने उसको पराजित कर उसका राज्य छीन लिया। अच्युत सम्भवतः अहिच्छत्रा (उत्तर प्रदेशके बरेली जिलेमें आधुनिक रामनगर) का राजा था।

अच्युतराय—१५२९ से १५४२ ई० तक विजय नगरका शासक। वह कृष्णदेवराय (१५०९ से १५२९ ई० तक) का भाई और उत्तराधिकारी था। वह बलहीन और अत्याचारी स्वभावका था। उसमें शौर्यका अभाव था। बीजापुरके सुल्तान इस्माइल आदिल शाहने उसे हराकर मुदगल और रायचुर दुर्गपर कब्जा कर लिया था।

अजन्ता गुफाएँ और भित्ति चित्र—भारतमें भित्तिचित्रकला-के चरम विकासके उदाहरण। बम्बई (महाराष्ट्र) राज्यकी अजन्ता घाटीमें अनेक गुफाएँ हैं जिनमें मानव जीवन, पशु-पक्षी जगत् और प्रकृतिका बहुरंगी चित्रण मिलता है। इन चित्रोंकी रचना पाँचवीं शताब्दी ई० में शुरू हुई और सातवीं शताब्दी ई० तक होती रही। इन चित्रोंकी रेखाएँ बड़ी जीवंत हैं और इनमें रंगोंके सम्मिश्रणमें ऊँचे दर्जेका कौशल प्रदर्शित किया गया है। इन चित्रोंमें मुख्यतः अलंकरण कलाका प्रदर्शन किया गया है और उसका स्तर समकालीन इतालवी और दक्षिण यूरोपीय कलासे उच्चकोटिका है। अजन्ताके भित्तिचित्रोंमें जो मानवीय आकृतियाँ और प्राकृतिक दृश्य अंकित हैं वे दाक्षिणात्य शैलीके हैं। वहांकी वास्तुकला भी दक्षिणकी है और उसका सम्बन्ध उत्तर भारतकी वास्तुकला और भित्तिचित्र-कलासे नगण्य है। (फर्गूसन एंड बर्जेस—'दि केव टेम्पिल आफ इंडिया; हरवेल'—इंडियन स्कल्पचर एंड पेंटिंग; स्मिथ—हिस्ट्री आफ फाईन आर्ट्स इन इंडिया एंड सीलोन; अजन्ता फ्रेस्कोस)

अजमेर—नगरकी स्थापना ११०० ई० में चौहान राजा अजयदेवने की। ११९२ ई० में तरावड़ीकी दूसरी लड़ाई-में शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीके द्वारा पृथ्वीराजके पराजित होनेपर इस नगरपर मुसलमानोंका अधिकार हो गया और तबसे यह बराबर मुसलमानी शासनमें रहा। अकबर-ने इसे अपने राज्यका एक सूबा बना दिया।

अजयदेव—गुजरातका शासक (११७४—७६ ई०)। उसने जैन मतावलम्बियोंपर क्रूर अत्याचार किये और उनके नेताको मरवा डाला।

अजयदेव—एक चौहान राजा, जिसने ११०० ई० में अजमेर नगरकी स्थापना की। उसने और उसकी रानी सोमलादेवी-ने अपने सिक्के चलाये, जिनमें से कुछ पाये गये हैं।

अजातशत्रु—(जिसे कूणिक भी कहते हैं) मगधके राजा बिम्बिसारका पुत्र और उत्तराधिकारी। वह गौतम बुद्ध-का समकालीन था। जनश्रुतियोंके अनुसार अजातशत्रु अपने पिताकी हत्या करके राजगद्दीपर बैठा था। वह शक्तिशाली राजा था और उसने वैशालीपर विजय प्राप्त करके तथा कोसलके राजा प्रसेनजितको पराजित करके काशी प्रदेश अपने राज्यमें मिला लिया और कोसल-की एक राजकन्यासे विवाह करके मगध राज्यका विस्तार किया। उसने गंगा और सोनके संगमपर पाटलि ग्राममें किला बनवाया और पाटलीपुत्र नगरकी नींव डाली। उसके राज्यकालमें ही जैन तीर्थंकर महावीर और बौद्ध धर्मके प्रवर्तक भगवान गौतम बुद्धका निर्वाण हुआ। अजातशत्रु जैन और बौद्ध दोनोंका आदर करता था। भगवान बुद्धके भिक्षुसंघमें फूट डालनेवाले उनके चचेरे भाई देवदत्तको भी उसका संरक्षण प्राप्त था। जन-श्रुतियोंके अनुसार गौतम बुद्धके निर्वाणके बाद ही, राज-गृहमें उसके राज्यकालमें बौद्धोंकी प्रथम संगीति हुई थी। उसका राज्यकाल ई० पू० ५१६ से ई० पू० ४८९ के आस-पास माना जाता है।

अज़ारी, शेख–एक शायर, जो खुरासानसे नवें बहमनी सुल्तान अहमद (१४२२–३३ ई०) के दरबारमें आया और जिसे सुल्तानने अपनी नयी राजधानी बीदरके महलकी तारीफमें दो कसीदे लिखनेके लिए बहुत-सा धन दिया।

अज़ीज़उद्दीन–१६वें मुगल बादशाह आलमगीर द्वितीय (१७५४–५६ ई०) (दे०) का मूल नाम।

अजीत सिंह–मारवाड़के राजा जसवन्त सिंहका पुत्र। उसका जन्म १६७६ ई० में लाहौरमें पिताकी मृत्युके बाद हुआ। अजीत सिंहको दिल्ली लाया गया जहाँ औरंगजेब उसे मुसलमान बना लेना चाहता था। राठौर सरदार दुर्गादास बड़े साहसके साथ अजीत सिंहको दिल्लीसे निकाल कर मारवाड़ ले गया। अजीतसिंहके मामलेको लेकर मारवाड़के राठौर सरदारों और मेवाड़के राणा तथा औरंगजेबमें लम्बा युद्ध छिड़ गया जो १७०६ ई० तक चला, जब औरंगजेबकी मृत्युके बाद उसके लड़के और उत्तराधिकारी बादशाह बहादुर शाह प्रथमने राजपूतोंसे सुलह कर ली। अजीतसिंहने अपनी कन्याका विवाह बादशाह फर्रुखसियरसे किया और उससे सुलह कर ली, जिससे मुगल दरबारमें उसका प्रभाव बढ़ गया। सैयद बन्धुओंने उसकी सहायता माँगी और उसको अजमेर-गुजरातका सूबेदार नियुक्त कर दिया। इस प्रकार अजमेरसे पश्चिमी समुद्र तटतकका प्रदेश उसके अधीन हो गया। उसे हिन्दुओंको संगठित करके मुगल सल्तनतका तख्ता पलट देनेका एक अच्छा अवसर मिला था, किन्तु उसने कोई लाभ नहीं उठाया। उसके लड़के भक्तसिंहने रहस्यमय रीतिसे उसकी हत्या कर दी।

अजीमुद्दौला–१८०१ ई० में गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली (१७६८–१८०५ ई०) द्वारा कर्नाटकका नाम मात्रके लिए नवाब बनाया गया और उसे पेंशन दी। कर्नाटकका पूरा नागरिक और सैनिक प्रशासन ईस्ट इंडिया कम्पनीने अपने हाथमें ले लिया था और बादमें पूरे क्षेत्रको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया।

अजीम-उल्लाह खां–पेशवा बाजीराव द्वितीय (१७६६-१८१८) के पुत्र नाना साहब (दे०) का वेतन-भोगी कर्मचारी। उसने १८५७ ई० का सिपाही विद्रोह करानेमें गुप्तरूपसे भाग लिया। उसने भारतीयोंमें अंग्रेज-विरोधी भावनाएँ उभाड़ीं। ऐसा समझा जाता है कि जब यूरोपमें क्रीमियाकी लड़ाई चल रही थी तो वह यूरोप गया और उसने नाना साहब और रूसियोंमें सन्धि करानेका प्रयास किया। वह इस प्रयासमें सफल नहीं हुआ, लेकिन उसने वापस लौटकर अनेक ऐसे वृत्तान्त प्रचारित किये, जिनसे भारतीयोंके मनमें बैठी अंग्रेजोंके अजेय होनेकी भावना नष्ट हो गयी। अजीम-उल्लाहके विवरणसे भारतीय सिपाहियोंके मनमें भी कुछ सीमातक अंग्रेजोंके विरुद्ध सफलता प्राप्त करनेका उत्साह जाग्रत हुआ।

अजीमुश्शान, शाहजादा–सातवें मुगल बादशाह बहादुरशाह प्रथम (१७०७–१७१२ ई०) का दूसरा पुत्र, जो अपने पिताकी मृत्युके बाद १७१२ ई० में उत्तराधिकारके युद्धमें मारा गया। एक वर्ष बाद उसका पुत्र फर्रुखसियर (१७१३–१७१९ ई०) बादशाह बना।

अटाला मसजिद–जौनपुरमें शर्की राजवंशके इब्राहीमशाह (१४०२–३८ ई०) ने १४०८ ई० में बनवायी। यह इमारत जौनपुर वास्तुकलाका उत्तम नमूना है। इसमें मीनारें नहीं हैं जो सामान्य रूप से मसजिदों में होती हैं। **(ए० फुहरर–शर्की आर्कीटेक्चर आफ जौनपुर)**

अतिशा–प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु और धर्म-प्रचारक। उसका जन्म ९८१ ई० में पूर्वी भारतके एक सम्पन्न जमींदार परिवारमें साहोर अथवा जाहोर नामक स्थानपर हुआ जिसे कुछ लोग बंगालमें बताते हैं। उसके पिताका नाम कल्याण श्री और माताका नाम पद्मप्रभा था। माता पिताने उसका नाम चन्द्रगर्भ रखा था। प्रारम्भिक जीवनमें वह साधारण गृहस्थ और तारादेवीका उपासक था। युवा होनेके बाद उसने बौद्ध सिद्धान्तोंका अध्ययन किया और शीघ्र ही बौद्ध धर्मका प्रचुर ज्ञान अर्जित कर लिया। उड्यन्तपुर-बिहारके आचार्य शीलभद्रने जहाँ अतिशा अध्ययन कर रहा था, उसे 'दीपंकर श्रीज्ञान' उपाधिसे विभूषित किया। बादमें तिब्बती लोगोंने उसे अतिशा नामसे पुकारना शुरू कर दिया। शीघ्र ही लोग उसके असली नाम चन्द्रगर्भ को भूल गये और वह अतिशा दीपंकर श्रीज्ञानके नामसे अमर हो गया। वह ३१ वर्षकी आयुमें भिक्षु हो गया और अगले १२ वर्ष उसने भारत और भारतके बाहर अध्ययन और योगाभ्यासमें बिताये। वह पेगू (बरमा) और श्रीलंका गया। विदेशोंमें अध्ययन करनेके बाद जब वह लौटा तो पालवंशके राजा न्यायपालने उसे विक्रमशिला बिहारका कुलपति बना दिया। उसकी विद्वत्ता और धर्म्मशीलताकी ख्याति देश-देशान्तरमें फैली और तिब्बतके राजाने तिब्बत आकर वहाँ फिरसे बौद्ध धर्मका प्रचार करनेके लिए उसे निमंत्रित किया। उस समय अतिशाकी अवस्था ६० वर्षकी थी, लेकिन तिब्बतके राजाका अनवरत आग्रह वह अस्वीकार नहीं कर सका। दो तिब्बती भिक्षुओंके साथ अतिशाने विक्रम-शिलासे तिब्बतकी कठिन यात्रा नेपाल होकर पूरी की।

तिब्बतमें उसका राजकीय स्वागत किया गया। थालोंगका मठ उसको सौंप दिया गया, जहाँ भारी संख्यामें तिब्बती भिक्षु जमा हुए। अतिशाने १२ वर्ष तक तिब्बतमें रहकर धर्मका प्रचार किया। उसने स्वयं तिब्बती भाषा सीखी और तिब्बती और संस्कृतमें एक सौसे अधिक ग्रन्थ लिखे। उसकी शिक्षाओंसे तिब्बतमें बौद्ध धर्ममें प्रविष्ट अनेक बुराइयाँ दूर हो गयीं। उसके प्रभावसे तिब्बतमें अनेक बौद्ध भिक्षु हुए जिन्होंने उसके बाद भी बहुत वर्षोंतक धर्मका प्रचार किया। अतिशाने तिब्बतके अनेक भागोंकी यात्राएँ कीं और १०५४ ई० में उसने ७३ वर्षकी आयुमें शरीर त्याग दिया। तिब्बती लोगोंने उसकी समाधि ने-थांग मठमें राजकीय सम्मानके साथ बनायी। तिब्बती लोग अब भी अतिशाका स्मरण बड़े सम्मानके साथ करते हैं और उसकी मूर्तिकी पूजा बोधिसत्त्वकी मूर्तिकी भाँति करते हैं। **(एस० सी० दास—इंडियन पंडित्स इन दि लैण्ड आफ स्नो; सुम्पा खान-पाग—साम्नजोन जेंक पृष्ठ १८५-८७; जी० एम० रोरिक—दि ब्लू एनल्स, पृष्ठ २४०-२६०; निहाररंजन राय-बंगलार इतिहास, पृष्ठ ७१६-७१७)**।

अदली—शेरशाह का भतीजा, जो शेरशाह के पुत्र और उत्तराधिकारी इस्लामशाहके बाद १५५४ ई० में गद्दीपर बैठा। उसने अपना नाम मुहम्मद आदिल शाह रखा। १५५७ ई० में पानीपतकी दूसरी लड़ाईके बाद वह पूर्वांचलमें चला गया, जहाँ बंगालके राजासे उसकी लड़ाई हुई जिसमें वह मारा गया।

अदहम खां—बादशाह अकबरकी दूधमां माहम अनगाका लड़का था। उसने अकबरको बैरम खाँके विरुद्ध करनेके षड्यंत्रमें भाग लिया और अकबरने १५६० ई० में बैरम खाँको बर्खास्त कर दिया। इसके बाद दो वर्षतक अकबरपर अदहम खाँका भारी प्रभाव रहा। अकबरने मालवा जीतनेके लिए जो सेना भेजी, उसका प्रधान सेनापति अदहम खाँको बनाया। १५६२ ई० में उसने शम्शुद्दीन अतगा खाँको, जिसे अकबरने अपना मंत्री बनाया था, महलके अंदर कत्ल कर दिया। इससे बादशाह इतना नाराज हुआ कि उसने उसे किलेकी दीवालसे नीचे फेंककर मार डालनेका हुक्म दिया।

अधिराजेन्द्र—चोलवंशका अन्तिम राजा। वह परांतक (दे०) का वंशधर था। उसने केवल तीन वर्ष (१०७२-७४ ई०) तक राज्य किया और उसकी हत्या कर दी गयी। वह शैव धर्मावलम्बी था और प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य रामानुजसे इतना द्वेष करता था कि उन्हें उसके राज्यकालमें श्रीरंगम् छोड़कर अन्यत्र चला जाना पड़ा।

अधिसीम कृष्ण—पौराणिक कालमें हस्तिनापुरका राजा। इसका उल्लेख वायु और मत्स्यपुराणमें आया है। वह कुरुवंशी राजा परीक्षितकी चौथी पीढ़ीमें था। परीक्षित महाभारत युद्धके बाद सिंहासनपर बैठा था।

अध्यक्ष—कौटिल्यके अर्थशास्त्रके अनुसार विभागोंके अधिकारीका पदनाम। जैसे नगराध्यक्ष (नगर-अधिकारी) और बलाध्यक्ष (सेनाका अधिकारी)।

अनंगपाल—तोमर राजवंशका एक राजा, जो ११वीं शताब्दी ई० के मध्य हुआ। उसने दिल्लीमें उस स्थानपर किला बनवाया जहाँ इस समय कुतुबमीनार है। उसने दिल्ली नगरको राजधानीके रूपमें स्थायित्व प्रदान किया।

अनन्तवर्मा चोडगंग—पूर्वी गंग-वंशका प्रमुख राजा, जिसने कलिंगपर ७१ वर्ष (१०७६—११४७ ई०) राज्य किया। एक समयमें उसका राज्य उत्तरमें गंगासे लेकर दक्षिणमें गोदावरीतक फैला हुआ था। उसने पुरीके जगन्नाथ मंदिर और पुरी जिलेमें कोणार्कके सूर्य-मंदिरका निर्माण कराया। वह हिन्दू धर्म और संस्कृत तथा तेलुगु साहित्यका महान् संरक्षक था।

अनन्द विक्रम संवत्—भारतमें प्रचलित अनेक संवतोंमेंसे एक। इसका प्रयोग पृथ्वीराज रासोके कवि चंदबरदाईने, जो मुसलमानोंके आक्रमण (११९२ ई०) के समय दिल्ली नरेश पृथ्वीराजका राज-कवि था, किया है। अनन्दका अर्थ है नौ (नौ नन्दों) रहित १०० मेंसे ९ घटाने पर ९१ बचते हैं। अर्थात् ईसवी पूर्व ५८—५७ में आरम्भ होनेवाले सानन्द विक्रम संवत् के ९० या ९१ वर्ष बाद। अतएव अनन्द विक्रम संवत्का आरम्भ ईसवी सन् ३३ मानना चाहिए। **(ज० रा० १९०६, पृ० ५००)**

अनवरुद्दीन (१७४३—४९ ई०)—आरम्भमें निजामुलमुल्क आसफजाहका कर्मचारी। निजामने प्रसन्न होकर उसको १७४३ ई० में कर्नाटकका नवाब नियुक्त कर दिया। उसकी राजधानी अर्काट थी। निजामने पहले नवाब दोस्तअलीके लड़कों और रिश्तेदारों को नवाब नहीं बनाया। उस समय कर्नाटकमें अशांति फैली हुई थी। मराठे लगातार हमले कर रहे थे और पुराने नवाब मरहूम दोस्तअलीके रिश्तेदार नये नवाबके लिए मुश्किलें पैदा कर रहे थे। उस समय अशांति और बढ़ी जब आस्ट्रियाके उत्तराधिकारका युद्ध (१७४०—४८ ई०) शुरू हो गया और कर्नाटकके क्षेत्रमें पांडिचेरी और मद्रासमें स्थित फ्रांसीसी और अंग्रेज व्यापारी भी आपसमें लड़ने लगे।

अनवरुद्दीन कर्नाटकके नवाबके रूपमें फ्रांसीसी और अंग्रेज दोनोंका संरक्षक था, इसलिए आशा की जाती थी

कि वह अपने राज्यमें उन दोनोंको लड़नेसे रोकेगा। अंग्रेज और फ्रांसीसी दोनों संकटकालमें उसको अपना संरक्षक स्वीकार कर लेते थे। इस तरह युद्धके आरम्भमें जब अधिक नौसैनिक शक्तिके बलपर अंग्रेजोंने फ्रांसीसी जहाजोंको लूटना शुरू किया तो पांडिचेरीके फ्रांसीसी गवर्नर डूप्लेने नवाबसे फ्रांसीसी जहाजोंकी रक्षा करनेकी प्रार्थना की। लेकिन नवाबके पास जहाज नहीं थे, इसलिए अंग्रेजोंने उसके विरोधकी धृष्टतापूर्वक उपेक्षा कर दी और अपनी लड़ाई जारी रखी। लेकिन जब १७४६ ई० में फ्रांसीसियोंने मद्रासपर घेरा डाला तो अंग्रेजोंने भी जो अबतक नवाबके अधिकारकी उपेक्षा कर रहे थे, नवाब अनवरुद्दीनसे सुरक्षाकी प्रार्थना की। अनवरुद्दीनने संरक्षककी हैसियतसे डूप्लेसे मद्रासका घेरा उठा लेने और शान्ति कायम रखनेके लिए कहा, लेकिन फ्रांसीसियोंने उसकी एक न सुनी। चूंकि अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंकी लड़ाई यहाँ जमीनपर चल रही थी और अनवरुद्दीनके पास बड़ी फौज थी, इसीलिए उसने फ्रांसीसियोंद्वारा डाले गये मद्रासके घेरेको तोड़नेके लिए अपनी सेना भेजी। लेकिन नवाबकी सेनाके पहुँचनेके पहले ही फ्रांसीसियोंने मद्रासपर कब्जा कर लिया। नवाबकी सेनाने फ्रांसीसियोंको मद्रासमें घेर लिया। इसपर छोटी-सी फ्रांसीसी सेनाने, जो मद्रासके किलेमें सुरक्षित थी, टिड्डी दल जैसी नवाबकी बड़ी सेनापर छापा मारा और उसे बिखरा दिया। नवाबकी सेना पीछे हटकर सेंट टाम नामक स्थानपर चली आयी, जहाँ एक छोटी-सी फ्रांसीसी कुमुकने, जो मद्रासमें घिरी फ्रांसीसी सेनाकी सहायताके लिए जा रही थी, उसे पुनः हरा दिया। इन पराजयोंके परिणामस्वरूप नवाब अनवरुद्दीनकी हालत अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंके बीच चलनेवाले युद्धके दौरान असहाय दर्शककी बनी रही। इन पराजयोंका दूरगामी परिणाम भी निकला। डूप्लेको यह विश्वास हो गया कि छोटी-सी सुशिक्षित फ्रांसीसी सेना अपनेसे बहुत बड़ी भारतीय सेनाको आसानीसे पराजित कर सकती है। डूप्लेने निश्चय कर लिया कि उसकी श्रेष्ठ सैनिक-शक्ति भारतके देशी राजाओंके आंतरिक मामलोंमें निर्भय होकर हस्तक्षेप कर सकती है। इसलिए जब अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंका युद्ध समाप्त हो गया तो डूप्लेने कर्नाटकके पुराने नवाबके दामाद चन्दा साहबसे गुप्त सन्धि कर ली जिसमें उसको कर्नाटकका नवाब बनवानेका वादा किया गया था। इस सन्धिके आधारपर चन्दा साहब और फ्रांसीसी सेनाओंने अनवरुद्दीनको बेलोरके दक्षिण-पश्चिममें स्थित आम्बूरकी लड़ाईमें अगस्त १७४९ ई० में पराजित कर दिया और वह मारा गया।

अनारकली—शाहजादा सलीमकी, जो बादमें बादशाह जहाँगीर (१६०५–२७ ई०) बना, प्रेयसी। बादशाहने १६१५ ई०में लाहौरमें उसकी कब्रपर संगमरमरका मकबरा तैयार कराया और उसपर एक शेर नक्स कराया जिससे अनारकलीके प्रति उसका गहनप्रेम प्रकट होता है।

अनुरुद्ध—सिंहली ऐतिहासिक अनुश्रुतियोंके अनुसार उदायीके तत्काल बाद, राजा अजातशत्रु (५५४–५२७ ई० पू०)का पुत्र, जो मगधकी गद्दीपर बैठा। पुराणोंमें उसका उल्लेख नहीं मिलता है। सिंहली इतिहासमें भी उसका अधिक विवरण नहीं मिलता है, सिवा इसके कि वह पितृघातक था।

अन्हिलवाड़—आठवीं शताब्दीसे १५वीं ईसवी शताब्दीतक गुजरातका प्रमुख नगर (अब यहाँपर पाटन नामक नगर है)। अन्हिलवाड़के राजा मूलराजने ११७८ ई०में शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीका आक्रमण विफल कर दिया। मूलराजकी इस विजयसे गुजरात मुसलमानी आधिपत्यसे एक शताब्दीतक बचा रहा।

अपराजित पल्लव—कांचीका अन्तिम पल्लव राजा। उसने नवीं शताब्दी ई०के उत्तरार्धमें राज्य किया। ८६२-६३ ई०में उसने पांड्य राजा वरगुण वर्माको श्री पुरम्बियाके युद्धमें पराजित किया था, लेकिन बादमें नवीं शताब्दीके अन्तिम वर्षोंमें वह स्वयं चोल राजा आदित्य प्रथम (८८०–९०७ ई०)से पराजित हुआ और मारा गया। अपराजितकी मृत्युके बाद पल्लव राजवंशका अन्त हो गया।

अपोलोडोटस—युक्रेटी दसका पुत्र और भारतका एक यवन राजा (१७५–१५६ ई० पू०)। उसने अपने पिताकी हत्या करके उसके रक्तपर अपना रथ चलाया और उसके शवका अंतिम संस्कार भी नहीं करने दिया। उसने अपने नामके सिक्के चलाये। कुछ लोगोंका कहना है कि अपोलोडोटस युक्रेटी दसका पुत्र नहीं वरन् उसका प्रतिद्वन्द्वी था। **(पी० एच० ए० आई०, पृष्ठ ३८६)**

अप्पा साहब—भोंसला राजा रघुजी द्वितीय (१७८८–१८१६ ई०)के छोटे भाई व्यांकोजीका पुत्र। रघुजी द्वितीयकी १८१६ ई०में मृत्यु होनेपर उसका नाबालिग लड़का परसोजी, जो भोंदू किस्मका था, गद्दीपर बैठा। अप्पा साहब उसका संरक्षक नियुक्त किया गया। अप्पासाहबने अपनी शक्ति दृढ़ करनेके लिए मई १८१६ ई०में अंग्रेजोंसे आश्रित सन्धि कर ली। इस प्रकार नागपुर

राज्य, जिसने रघुजी भोंसला द्वितीयके राज्यकालमें अंग्रेजोंसे इस प्रकारकी सन्धि करनेसे इन्कार कर दिया था, उसकी स्वतंत्रता अप्पासाहबके शासनकालमें समाप्त हो गयी। लेकिन जब पेशवा बाजीराव द्वितीयने १८१७ ई०-में अंग्रेजोंके विरुद्ध शस्त्र उठाया तो अप्पासाहबने भी उसका साथ दिया। अंग्रेजोंने नवम्बर १८१७ ई०में उसकी सेनाको सीताबल्डीकी लड़ाईमें पराजित कर दिया। अप्पा साहब पहले पंजाब भाग गया और बादमें जोधपुर चला गया जहाँ १८४० ई०में उसकी मृत्यु हो गयी।

अफगान–उन पर्वतीय जन-जातियोंके लिए प्रचलित शब्द जो न केवल अफगानिस्तानमें बसती हैं, बल्कि पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्तमें भी रहती हैं। इतिहासके आरम्भ काल-से भारतके साथ इस दुर्धर्ष जातिके सम्बन्ध मित्रताके भी रहे, और शत्रुताके भी। भारतकी सम्पदापर लुब्ध होकर ये लोग व्यापारियों और लुटेरों दोनों रूपोंमें भारत आते रहे। सुल्तान महमूद (गजनवी) पहला अफगान सुल्तान था, जिसने भारतपर आक्रमण किया। शहा-बुद्दीन मुहम्मद गोरी पहला अफगान सुल्तान था जिसने भारतमें मुसलमानी शासनकी नींव डाली। दिल्लीके जिन सुल्तानोंने १२००से १५२६ ई०तक यहाँ राज्य किया वे सभी अफगान अथवा पठान पुकारे जाते थे। लेकिन उनमेंसे अधिकांश तुर्क थे। केवल लोदी राजवंश-के सुल्तान (१४५०–१५२६ ई०) ही असल पठान थे। प्रथम मुगल बादशाह बाबरने पानीपतकी पहली लड़ाईमें भारतमें पठान शासनका अन्त कर दिया। शेरशाहने दुबारा पठान राज्य (१५३९–४२ ई०) स्थापित किया और पानीपतकी दूसरी लड़ाई (१५५६ ई०)को जीतकर अकबरने उसे समाप्त कर दिया।

अफगानिस्तान–पाकिस्तानकी पश्चिमोत्तर सीमापर स्थित देश। पेशावरके आगे डूरंड रेखासे इसकी सीमा शुरू होकर हिन्दूकुशतक जाती है। अफगानिस्तानका सदियोंसे भारतसे सम्बन्ध रहा है। महाभारतके अनुसार कुरु नरेश धृतराष्ट्रने गंधारकी राजकुमारीसे विवाह किया था। गंधारको आजकल कंधार कहते हैं। सिकंदर-के हमलेके पहले यह क्षेत्र तीन प्रान्तोंमें विभाजित था—परोपनिसदै, प्रादिया और आर्कोसिया जो आजके काबुल, हिरात और कंधार प्रान्त हैं। सिकंदरने इस प्रदेशको जीता था। उसकी मृत्युके बाद यह प्रदेश उसके सेनापति सेल्युकस निकेटरको मिला और सेल्यूकस निकेटरको यह प्रदेश चन्द्रगुप्त मौर्यको समर्पण कर देना पड़ा। इस प्रकार अफगानिस्तान भारतका अभिन्न अंग बन गया। अभी हालमें जलालाबाद और कंधारके पास जो अशोक स्तम्भ मिले हैं उनसे प्रकट होता है कि अफगानिस्तानमें भारतीय संस्कृतिका कितना प्रभाव था। यह एशिया जानेवाले बौद्धधर्म-प्रचारकोंके मार्गपर पड़ता था और बौद्धधर्मका केन्द्र था। यह प्रदेश कुषाण साम्राज्यका अंग था। कुषाणोंके पतनके बाद ईसाकी तीसरी शताब्दी-में यहाँ पारसियोंका शासन हो गया। गुप्त शासन कालमें इसको गुप्त साम्राज्यमें नहीं मिलाया जा सका और ईसाकी आठवीं शताब्दीमें पड़ोसी पश्चिमी और उत्तरी राज्योंकी भाँति अफगानिस्तानमें मुसलमानी शासन स्थापित हो गया। इस्लामने इस देशके लड़ाकू पर्वतीय लोगोंमें धर्मोन्माद पैदा कर दिया और भारतकी सम्पदा-ने उनके मनमें लोभ भर दिया। इसके फलस्वरूप गजनी और गोरके मुसलमान शासकोंने भारतपर बार-बार आक्रमण किये। अन्तमें शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी-ने ११९३ ई०में दिल्ली को जीत लिया और भारतमें मुसलमानी शासनकी नींव डाली।

दिल्लीके सुल्तानोंको 'पठान' कहा जाता है, यद्यपि वे ज्यादातर तुर्क थे। ये लोग अफगानिस्तानपर अधिक समयतक अपना अधिकार नहीं रख सके। अफगानिस्तान-पर क्रूर और दुर्धर्ष मंगोलोंका अधिकार हो गया और वहाँसे उन्होंने भारतपर आक्रमण किये। १५०४ ई० में बाबरने इस देशपर अधिकार कर लिया और काबुल-को अपनी राजधानी बनाया। काबुलसे उसने भारतपर आक्रमण किया और १५२६ ई०में पानीपतकी पहली लड़ाई जीतकर भारतमें मुगल-साम्राज्यकी स्थापना की। १५९५ ई०में अकबरने कंधारको जीता और अफगानिस्तान-को फिरसे मुगल-साम्राज्यका हिस्सा बना लिया। १६२२ ई०में कंधार जहाँगीरके हाथसे निकल गया। १६३८ ई०में शाहजहाँने उसपर पुनः अधिकार कर लिया, लेकिन १६४८ ई०में वह पुनः उसके हाथसे निकल गया। इसके बाद कंधारपर फिरसे अधिकार करनेके प्रयास विफल रहे, लेकिन काबुल १७३९ ई०तक मुगल साम्राज्यका हिस्सा बना रहा। उस वर्ष नादिरशाहने, जो १७३६ ई०में फारसका शाह बना था, काबुलको जीत लिया और दिल्लीको लूटा। इस प्रकार अफगानि-स्तान भारतीय शासकोंके हाथसे निकल गया लेकिन संबंध बिल्कुल टूट नहीं गये। १७४७ ई०में नादिरशाह-की हत्याके बाद अफगान सरदार अहमद शाह अब्दाली या दुर्रानी,ने अफगानिस्तानमें अपना राज्य स्थापित किया। अहमद शाह दिल्लीके मुगल बादशाहोंके लिए सिरदर्द

बन गया। उसने पंजाबपर आक्रमण करके उसे अपने राज्यमें मिला लिया। १७६१ ई० में पानीपतकी तीसरी लड़ाईको जीतकर उसने मुगल-साम्राज्यकी जड़ खोद डाली। अहमदशाहका, दिल्लीका बादशाह बननेका सपना पूरा नहीं हुआ और उसके बाद अफगानिस्तान कभी भारतीय राज्यका भाग नहीं बना। वहाँ अफगान बादशाहोंका राज्य रहा और भारतको उस तरफसे खतरा बना रहा। जमानशाह (१७९३–१८०० ई०) ने १७९८ ई० में लाहौरपर कब्जा कर लिया और भारतपर आक्रमण करनेका इरादा किया। लेकिन १८०० ई० में वह अपदस्थ कर दिया गया। इसके बाद अफगानिस्तानमें अराजकताका दौर शुरू हो गया जो दोस्त मोहम्मद (१८२६–६३ ई०) के शासक बननेपर खत्म हुआ। उसने अफगानिस्तानमें शान्ति-व्यवस्था स्थापित की। लेकिन उसी समयसे अफगानिस्तान मध्य एशियामें बढ़ते हुए रूस और भारतके ब्रिटिश साम्राज्यके बीच प्रतिद्वन्द्विताका मोहरा बन गया। दोनों शक्तियाँ अफगानिस्तानमें अपना प्रभुत्व जमाना चाहती थीं। अफगानिस्तान इस प्रभुत्वसे बचनेके लिए दोनोंको एक दूसरेसे लड़ाता रहता था। इस प्रतिद्वन्द्विताके कारण १९वीं शताब्दीमें अफगानिस्तान और भारतकी ब्रिटिश सरकारमें दो युद्ध हुए (युद्धोंका विवरण, 'आंग्ल–अफगान युद्ध' शीर्षकमें देखें)। दूसरे अफगान युद्धके परिणामस्वरूप अफगानिस्तान अपने वैदेशिक मामलोंमें एक प्रकारसे भारतकी ब्रिटिश सरकारके अधीन हो गया। १८९३ ई० में अफगानिस्तान और ब्रिटिश भारतकी जो सीमा निश्चितकी गयी उसे 'डूरंड रेखा' कहा जाता है। १९०४ ई० में अमीर हबीबुल्लाहको अंग्रेजोंने 'हिज़ मैजेस्टी' का खिताब दिया और उसको स्वतंत्र शासकके रूपमें मान्यता दी। पहले महायुद्धमें अफगानिस्तानने तटस्थताकी नीति बरती जो ब्रिटिश शासकोंके अनुकूल थी। हबीबुल्लाहके उत्तराधिकारी अमीर अमानुल्लाहसे तीसरा आंग्ल-अफगान युद्ध (अप्रैल–मई १९१९ ई०) में हुआ जिसमें अफगानिस्तान हार गया। अफगानिस्तानको भारतके मार्गसे विदेशी शस्त्रास्त्रोंको आयात करनेका अधिकार नहीं रहा और भारतकी ब्रिटिश सरकारने उसे सहायता देना भी बन्द कर दिया लेकिन उसको अपने वैदेशिक सम्बन्धोंमें आजादी मिल गयी और दोनों सरकारोंने एक दूसरेकी स्वतंत्रताका सम्मान करनेका वचन दिया। अमानुल्लाहने उसके बाद यूरोपकी यात्रा की और वहाँसे लौटकर उसने अफगानिस्तानमें सामाजिक, शैक्षणिक और वैधानिक सुधारोंकी नीति अपनायी। इन सुधारोंका कट्टरपंथी अफगानोंने विरोध किया और मई १९२९ में वहाँ गृहयुद्ध शुरू हो गया। अमानुल्लाहको गद्दी छोड़नी पड़ी। कुछ समयके लिए अफगानिस्तानपर बच्चा-सक्काका अधिकार हो गया। अंग्रेजोंने वहाँ हस्तक्षेप नहीं किया। अन्तमें बच्चा-सक्का पराजित हुआ और मुहम्मद नादिरशाहने जो पुराने राजपरिवारका था और अमानुल्लाहका एक योग्य सरदार था, उसका वध कर दिया। वह नादिरशाहके नामसे अफगानिस्तानका शासक बना और १९३३ ई० तक योग्यताके साथ राज्य किया। उस वर्ष उसकी हत्या कर दी गयी। उसका पुत्र महमूद जहीरशाह उसका उत्तराधिकारी बना। नादिरशाह और ज़हीरशाहके शासनमें अफगानिस्तान और भारतके सम्बन्ध संतोषजनक रहे। पाकिस्तानके बननेके बाद भारतसे अफगानिस्तानका भौगोलिक सम्बन्ध कट गया, किन्तु दोनोंके बीच मित्रताके सम्बन्ध बने रहे।

अफजल खां—बीजापुरके सुल्तानका सेनापति, जिसे १०,००० सैनिकोंके साथ शिवाजीका दमन करनेके लिए भेजा गया था जो उस समय विद्रोही शक्तिके रूपमें उभर रहे थे। प्रारम्भमें अफजल खाँ सफलता प्राप्त करता हुआ १५ दिनोंके भीतर सतारासे २० मील दूर वाई नामक स्थानतक पहुँच गया। लेकिन शिवाजी प्रतापगढ़ किलेमें सुरक्षित थे। जब अफजल खाँ शिवाजीको उस किलेसे बाहर निकालनेमें सफल नहीं हुआ तो उसने सुलहकी बात चलायी और दोनोंके एक खेमेमें मिलनेकी बात तय हुई। शिवाजीको अफजल खांकी ओरसे धोखेबाजीका संदेह था, इसलिए उन्होंने कपड़ोंके नीचे बख्तर पहन लिया और अपने हाथमें बघनखा लगा लिया था ताकि अफजल खांकी ओरसे घात होनेपर उसका प्रतिकार कर सकें। जब शिवाजी अफजल खाँसे मिले तो उसने शिवाजीको अपनी बाहोंमें भर लिया और इतना कसकर दबाया जिससे शिवाजीका दम घुट जाय। शिवाजीने अपने पंजेमें लगे बघनखसे अफजल खाँका पेट फाड़ दिया और उसे मार डाला। उसके बाद मराठोंने खुले युद्धमें बीजापुरकी फौजको पराजित कर दिया।

अफ्रीदी—सीमा प्रांतका एक लड़ाकू कबीला, जो खैबर क्षेत्रमें निवास करता है। ये लोग भारतीय प्रशासनके लिए बराबर सिरदर्द बने रहते थे। १६६७ ई० में इन लोगोंने औरंगजेबके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और लम्बे संघर्षके

बाद उनका दमन किया जा सका। १८९३ ई० के बाद जब अफगानिस्तान और भारतकी सीमा डूरंड रेखा तय की गयी तो अफ्रीदी क्षेत्र भारतकी ब्रिटिश सरकारके अधीन आ गया। ब्रिटिश शासकोंको इस क्षेत्रपर नियंत्रण करनेके लिए अनेक फौजी अभियान चलाने पड़े और अफ्रीदी सरदारोंको अपनी ओर मिलानेके लिए उन्हें आर्थिक सहायता भी देनी पड़ी।

अबुल फ़ज़ल—शेख मुबारकका पुत्र। वह बहुत पढ़ा-लिखा और विद्वान् था और उसकी विद्वत्ताका लोग आदर करते थे। वह बहुत वर्षों तक अकबरका विश्वास-पात्र वजीर और सलाहकार रहा। वह केवल दरबारी और आला अफसर ही नहीं था, वरन् बड़ा विद्वान् था और उसने अनेक पुस्तकें लिखी थीं। उसकी 'आईन-ए-अकबरी' में अकबरके साम्राज्यका विवरण मिलता है और 'अकबर-नामा' में उसने अकबरके समयका इतिहास लिखा है। उसका भाई फैजी भी अकबरका दरबारी शायर था। १६०२ ई० में बुंदेला राजा वीर सिंहने शाहजादा सलीमके उकसानेसे अबुल फजलकी हत्या कर डाली।

अबुल हसन—गोलकुंडा राज्यके कुतुबशाही सुल्तानोंमें अन्तिम सुल्तान। मुगल सम्राट् औरंगजेब उससे नाराज हो गया और १६८७ ई० में उसने उसे पराजित कर दिया और गद्दीसे हटा कर दौलताबादके किलेमें कैद रखा जहाँ कुछ वर्षोंके बाद उसकी मौत हो गयी।

अब्दाली, अहमद शाह—दुर्रानी कबीलेका एक अफगान सरदार, जिसने १७४७ ई० में नादिरशाह (दे०) की हत्याके बाद अफगान सिंहासनपर अपना अधिकार जमा लिया। उसने १७४७ से १७७३ ई० तक शासन किया। अपने शासन कालमें उसने आठ बार भारतपर हमले किये। उसने पंजाबपर अधिकार कर लिया और १७६१ ई० में पानीपतके तीसरे युद्धमें मराठोंको पराजित किया। अफगान सैनिकोंने उस युद्धके बाद मथुराकी ओर बढ़नेसे इन्कार कर दिया क्योंकि चार साल पहले वहाँपर अफगान सैनिकोंमें हैजा फैल गया था जिसमें बहुतोंकी मृत्यु हो गयी थी। इससे मजबूर होकर अब्दाली अफगानिस्तान लौट गया और पानीपतमें मिली विजयके बाद पूरे हिन्दुस्तानमें अपना साम्राज्य स्थापित करनेका उसका स्वप्न टूट गया। अब्दालीके आक्रमणका संकट १७६७ ई० तक बना रहा और उसका प्रभाव भारतमें अंग्रेजोंकी नीतिपर कई वर्षोंतक पड़ा। अहमद शाह अब्दालीका देहान्त १७७३ ई० में हुआ। (**यदुनाथ सरकार—फाल आफ मुगल इम्पायर, भाग दो, पृ० ३७६**)

अब्दुर्रज्ज़ाक लारी—गोलकुंडाके आखिरी सुल्तानका दरबारी और सिपहसालार। १६८७ ई० में जब औरंगजेबने गोलकुंडापर अन्तिम आक्रमण किया तो उसने अब्दुर्रज्ज़ाकको अनेक लालच दिये, पर वह न डिगा और बहादुरीसे गोलकुंडाकी रक्षा करते हुए उसके ७० घाव लगे। बादमें औरंगजेबने उसका इलाज कराया और उसे मुगल दरबारमें ऊँचा पद प्रदान किया।

अब्दुर्रज्ज़ाक, हेरात—१४४८ ई० में फारसके सुलतान शाह रुखका राजदूत होकर भारत आया। पहले वह कालीकट पहुँचा और वहाँसे विजय नगर गया जहाँका दिलचस्प वर्णन उसने किया है।

अब्दुर्रहमान, अमीर—१८८० ई० में दूसरे अफगान युद्धके बाद अंग्रेजोंकी मददसे अफगानिस्तानके सिंहासनपर बैठाया गया। वह चतुर राजनीतिज्ञ था, और उसने १९०१ ई० में अपनी मृत्यु पर्यन्त राज्य किया। उसने इंग्लैण्ड और रूस दोनोंसे मित्रता रखी। उसने अफगानिस्तानका आन्तरिक शासन बड़ी कुशलतासे चलाया और उसकी अखंडता कायम रखी। उसके शासन कालमें भारत-अफगानिस्तान सीमा निर्धारण डूरंड रेखाके आधारपर १८९३ ई० में किया गया।

अब्दुर्रहीम, खानखाना—बैरम खाँका लड़का। १५६१ ई० में पिताकी मृत्युके समय अब्दुर्रहीम नाबालिग था। अकबरके शासनमें उसने तरक्की की और 'खानखाना' की उपाधिसे सम्मानित किया गया। अनेक युद्धोंमें उसने भाग लिया। वह प्रसिद्ध कवि भी था। उसके दोहे हिंदीमें प्रसिद्ध हैं। उसने बाबरकी आत्मकथाका तुर्कीसे फारसीमें अनुवाद किया। उसके आश्रित अब्दुल बाकीने मआसिर-ए-रहीमी नामक पुस्तकमें उसकी प्रशंसा की है। वह लम्बी अवस्थातक जीवित रहा और जहाँगीरके शासन कालमें उसकी मृत्यु हुई।

अब्दुल गफ्फार खां—बादशाह खान और सीमांत गांधी के नामसे भी प्रसिद्ध पठानोंके नेता। वे पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तके राष्ट्रीयतावादी मुस्लिम नेताओंमें मुख्य रहे हैं। उन्होंने अपने प्रान्तमें पहले 'खुदाई खिदमतगार' संगठन बनाया और बादमें गांधीजीके अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलनमें शामिल हो गये। १९३७ ई० के आमचुनावमें उनके नेतृत्वमें कांग्रेस को बड़ी सफलता मिली और पश्चिमोत्तर प्रान्तमें कांग्रेस मंत्रिमंडल बनाया गया जिसके मुख्य-मंत्री अब्दुल गफ्फार खांके छोटे भाई, डाक्टर खान साहब हुए। स्वतंत्रताके समय भारतके विभाजनके बाद पश्चिमोत्तर प्रान्त पाकिस्तानका एक

हिस्सा बन गया। अब्दुल गफ्फार खाँने वहाँ पख्तून आन्दोलन चलाया जिससे पाकिस्तान सरकारने उन्हें लम्बे समय तक जेलमें रखा। जेलसे रिहा होनेपर वे चिकित्साके लिए काबुलमें रहने लगे। १९७० ई० में दिसम्बरके चुनावमें नेशनल आवामी पार्टीको पश्चिमोत्तर प्रान्तमें सफलता मिली। १९७१ ई० के अन्तमें पाकिस्तानके राष्ट्रपति श्री जुल्फिकार अली भुट्टो बने। उन्होंने १९७२ ई० में अब्दुल गफ्फार खाँको पाकिस्तान लौटनेकी अनुमति दे दी।

अब्दुल हमीद लाहौरी–शाहजहाँ (दे०) का सरकारी इतिहासकार। उसकी रचनाका नाम 'पादशाह नामा' है जो शाहजहाँके शासनका प्रामाणिक इतिहास माना जाता है।

अब्दुल्ला, बड़ा सैयद–सैयद बंधुओं (दे०) में बड़ा भाई। सैयद अब्दुल्ला और उसके छोटे भाई हुसैनने १७१३ से १७१९ ई० तक मुगल सल्तनतका संचालन किया। इन लोगोंने फर्रुख़सियर को १७१३ ई० में सिंहासनपर बैठाया। १७१९ ई० में उसे गद्दीसे हटा दिया और उसकी हत्या करवा दी। उसी एक वर्षके भीतर उन्होंने चार मगल बादशाहोंको गद्दी पर बैठाया और हटाया। जब उन लोगोंने पाँचवें बादशाह मुहम्मद शाह को १७१९ ई० में गद्दी पर बैठाया तो उसने हुसैनका कत्ल करवा दिया और अब्दुल्ला को कैद करा दिया, जहाँ उसे जहर देकर १७२२ ई० में मार डाला गया।

अब्दुस्समद–अकबरका चित्रकलाका उस्ताद, जिसे बादमें अकबरने टकसालका अधिकारी बनाया। वह अपने समयका नामी कलाकार माना जाता था।

अभिषेक–का अर्थ है जल छिड़कना। राजपदपर निर्वाचित होनेपर राजाका अभिषेक आवश्यक माना जाता था। इस अवसरपर ब्राह्मण पुरोहित, निर्वाचित राजाका कोई निकट सम्बन्धी या भाई, एक मित्र नरेश और एक वैश्य उसपर १७ तीर्थोंका पवित्र जल छिड़कते थे।

अभिसार–एक जन-जाति, जो सिकंदरके आक्रमणके समय कश्मीरके पुंछ तथा पड़ोसके कुछ जिलोंमें तथा उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांतके हजारा जिलेमें निवास करती थी।

अभिसारेश–सिकंदरके आक्रमणके समय अभिसार जनपदका राजा। वह बड़ा चतुर राजनीतिज्ञ था। जब सिकंदर तक्षशिला पहुँचा तो उसने कहलाया कि मैं यवन आक्रमणकारियोंके सामने आत्मसमर्पण करने को तैयार हूँ। इसके साथ ही वह पोरससे मिलकर सिकंदरसे लड़नेके लिए भी संधि-वार्ता चलाता रहा। यह वार्ता सफल नहीं हो सकी और अंतमें अभिसार जनपदके राजाको सिकंदरके सामने आत्मसमर्पण करनेके लिए बाध्य होना पड़ा।

अमरकोट–सिन्धका एक नगर और राज्य, जहाँ २३ नवम्बर १५४२ ई० को अकबरका जन्म हिन्दू राजा राणा प्रसादकी शरणमें हुआ। मार्च १८४३ ई० में सर चार्ल्सने पियरके नेतृत्वमें भारतकी अंग्रेजी सेनाने उसपर कब्जा कर लिया और उसके साथ ही पूरे सिन्धपर अंग्रेजोंका अधिकार हो गया। अब यह पाकिस्तानी क्षेत्रमें है।

अमरदास–सिखों के तीसरे गुरु (१५५२–७४ ई०)। वे चरित्रवान् और सदाचारी थे। उन्होंने सिख धर्मका काफी प्रचार किया।

अमर सिंह–मेवाड़का राणा (१५९६–१६२० ई०)। वह प्रसिद्ध राणाप्रताप सिंहका पुत्र और उत्तराधिकारी था। उसने अपनी स्वतंत्रताके लिए बादशाह अकबरसे बहादुरीसे युद्ध किया, लेकिन १५९९ ई० में वह पराजित हो गया। वह अकबरकी परतंत्रतासे अपनी मातृभूमिको बचानेमें तो सफल नहीं हुआ, लेकिन उसने १६१४ ई० तक मुगलोंके विरुद्ध अपनी लड़ाई जारी रखी। लगातार विफलता और मुगल साम्राज्यके बढ़ते हुए दबावके कारण, उसने बादशाह जहाँगीरसे सम्मानपूर्वक सन्धि कर ली। जहाँगीरने मेवाड़के राणा को मुगल दरबारमें हाजिर होने और किसी राजकुमारी को मुगल हरममें भेजनेकी अपमानजनक शर्त नहीं रखी। मेवाड़ और मुगलोंके बीच मित्रताके जो सम्बन्ध स्थापित हो गये थे वे औरंगजेबके समयमें उसकी धार्मिक असहिष्णुताकी नीतिके कारण समाप्त हो गये।

अमरसिंह थापा–सन् १८१४–१६ ई० के आंग्ल-नेपाल युद्धके समय नेपाली सेनाका सेनापति, जिसने बड़ी वीरतासे जनरल आक्टरलोनीके नेतृत्वमें लड़नेवाली अंग्रेज सेनासे मालौनके किलेकी रक्षा १५ मई १८१५ ई० तक की, जब उसे बाध्य होकर किला छोड़ना पड़ा। इसके कुछ महीने बाद १८१५ ई० की सुगौलीकी सन्धिके द्वारा यह युद्ध समाप्त हो गया।

अमात्य–गुप्त-शासन काल में उच्च प्रशासकीय अधिकारी का पद, जो मंत्री के समकक्ष माना जाता था। मराठा छत्रपति शिवाजी ने भी इस पदको प्रचलित किया था। शिवाजीके समयमें अमात्यका अर्थ वित्तमंत्री था जिसको सरकारी हिसाब-किताबकी जाँच करके उसपर हस्ताक्षर करने पड़ते थे।

अमानुल्लाह–अफगानिस्तानका बादशाह (१९१९–१९२९ ई०)। वह अपने पिता अमीर हबीबुल्ला (१९०१-१९ई०)

के उत्तराधिकारीके रूपमें गद्दीपर बैठा था। गद्दीपर बैठनेके कुछ समय बाद ही उसने भारतके ब्रिटिश शासकोंसे लड़ाई छेड़ दी जो तीसरे आंग्ल-अफगान युद्धके नामसे प्रसिद्ध है। अंग्रेजोंकी भारतीय सेना अफगान सेनाके मुकाबलेमें कहीं श्रेष्ठ थी। उसके पास विमान, बेतारसे खबर भेजनेकी व्यवस्था और शक्तिशाली विस्फोटक पदार्थ थे। अंग्रेजोंने अमानुल्लाहकी सेना को आसानीसे पराजित कर दिया। अमानुल्लाहने अगस्त १९१९ ई० में सन्धिका प्रस्ताव किया जिसकी पुष्टि १९२१ ई० में हुई। इस सन्धिके बाद अमानुल्लाहको अंग्रेजोंसे आर्थिक सहायता मिलनी बन्द हो गयी लेकिन उसे अपनी वैदेशिक नीतिमें आजादी मिल गयी। अफगानिस्तान और इंग्लैंडमें राजनयिक सम्बन्ध स्थापित हो गये और एक दूसरेकी राजधानियोंमें राजदूत भेजे गये। इसके बाद अंग्रेजों और अफगानोंके सम्बन्धोंमें सुधार हो गया। अमानुल्लाह शाहने उसके बाद यूरोपकी यात्रा की और वहाँसे लौटनेपर अपने देशमें यूरोपीय ढंगके सुधार किये। इन सुधारोंसे पुरातन-पंथी अफगान नाराज हो गये और अफगानिस्तानमें गृह-युद्ध छिड़ गया जिससे मजबूर होकर अमानुल्लाहने १९२९ में गद्दी छोड़ दी। उसके बाद वह अपनी मलका सुरैयाके साथ यूरोप चला गया जहाँ वह मृत्युपर्यंत प्रवासमें रहा।

अमरावती—आन्ध्र प्रदेशके गुंटूर जिलेका एक नगर, जो सातवाहन राजाओंके शासन कालमें हिन्दू संस्कृतिका केन्द्र था। अशोककी मृत्युके बाद करीब चार शताब्दीतक दक्षिण भारतमें सातवाहन शासन रहा। अमरावतीमें कला, वास्तुकला और मूर्तिकलाकी स्थानीय मौलिक शैली विकसित हुई थी। अमरावतीमें मिली मूर्तियोंकी कोमलता और भाव-भंगिमा दर्शनीय हैं। प्रत्येक मूर्तिका अपना आकर्षण है और पेड़-पौधों, फूलों, विशेषरूपसे कमलके फूलों को बड़े सुन्दर ढंगसे बनाया गया है। बुद्ध मूर्तियोंको मानव आकृतिके बजाय प्रतीकोंके द्वारा गढ़ा गया है जिससे पता चलता है कि अमरावती-शैली मथुरा और गांधार शैलियोंसे पहलेकी है। वह यूनानी प्रभावसे सर्वथा मुक्त है।

अमित्रघात—का शाब्दिक अर्थ शत्रु-हन्ता है। यूनानी इतिहासकारोंने इस शब्दका अमित्रकाट्स रूप लिखा है और चन्द्रगुप्त मौर्यके पुत्र बिन्दुसार को इस नामसे सम्बोधित किया है।

अमीचन्द—एक धनी किन्तु धूर्त सेठ, जो १८वीं शताब्दीके मध्यमें कलकत्तेमें रहता था। उसने नवाब सिराजुद्दौला को अपदस्थ कर मीर जाफ़र को बंगालका नवाब बनानेके लिए कलकत्तेमें अंग्रेजों और मुर्शिदाबादमें नवाबके विरोधियोंके बीच गुप्त वार्ताएँ चलायीं। जब यह गुप्त-वार्ता काफी आगे बढ़ चुकी और नवाब सिराजुद्दौलाके विरुद्ध षड्यंत्रमें अंग्रेजोंकी पूर्ण भागीदारी स्पष्ट हो चुकी, अमीचन्दने मुर्शिदाबादमें नवाबके खजानेकी लूटसे प्राप्त होनेवाले धनमेंसे लम्बे कमीशनकी माँग की तथा यह धमकी दी कि यदि उसे वांछित धनराशि न दी गयी तो वह नवाबको सारे षड्यंत्रकी सूचना दे देगा। राबर्ट क्लाइवके सुझावपर मीर जाफ़रके साथ होनेवाली संधिके दो प्रारूप तैयार किये गये। एकमें उक्त कमीशन दिये जानेकी बात थी और दूसरेमें नहीं। जाली संधि-पत्रपर क्लाइवके तथा एडमिरल वाटसनको छोड़कर कलकत्ता कौंसिलके अन्य सभी सदस्योंके हस्ताक्षर थे। क्लाइवने उस जाली संधि-पत्रपर वाट्सनके भी जाली हस्ताक्षर कर लिये। किन्तु अमीचन्दको इस जाल बट्टेकी जानकारी पलासीके युद्धके उपरांत हुई और कहा जाता है कि अंततः वह निराश और पागल होकर मर गया।

अमीन खां—१६७२ ई० में अफगानिस्तानका मुगल सूबेदार। औरंगजेबके समयमें जब अफरीदियोंने बादशाहके विरुद्ध विद्रोह किया उस समय अली मस्जिदकी लड़ाईमें अमीन खाँ बुरी तरह हारा।

अमीन खां—मुगल बादशाह मुहम्मद शाहके शासन-काल (१७१९–१७४८ ई०) में जब सैयद बंधुओंका पतन हो गया उस समय अमीन खाँको दिल्लीका वजीर बनाया गया। उसकी मृत्यु १७२१ ई० में हुई।

अमीर अली, सैयद—(१८४९–१९२९ ई०) पहला भारतीय जिसको प्रिवी कौंसिलमें न्यायाधीश नियुक्त किया गया। उसने अपना जीवन ऐडवोकेटके रूपमें शुरू किया और १८९० ई०में कलकत्ता हाई कोर्टका जज बनाया गया। इस पदपर वह १९०४ ई० तक रहा। १९०९ ई० में उसको इंग्लैण्डमें प्रिवी कौंसिलकी जुडीशियल कमेटीमें नियुक्त किया गया। उसकी मृत्यु इंग्लैण्डमें हुई। उसने 'हिस्ट्री आफ सराकेन्स' और कई कानून-सम्बन्धी पुस्तकें लिखी हैं।

अमीर उमर—सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीका भांजा, जिसने बदायूँमें सुल्तानके विरुद्ध विद्रोह किया, जिसका आसानीसे दमन कर दिया गया और अमीर उमरको मौतके घाट उतार दिया गया।

अमीर खां—बादशाह औरंगजेबका एक सेनापति, जो २१ वर्ष (१६७७–९८ ई०) काबुलमें मुगल सूबेदार रहा और उसने बड़ी योग्यतासे प्रशासन चलाया।

अमीर खां—पिंडारियोंका सरदार और भाड़ेपर लड़नेवाले पठानों और लुटेरोंका नेता। १६वीं शताब्दीके आरम्भ-में मध्य-भारतमें जब तीसरा आंग्ल-मराठा युद्ध हुआ तो अमीर खां पहले होल्करके संरक्षण में रहकर लड़ा। लेकिन बादमें अंग्रेजोंने उसे अपने पक्षमें मिला लिया और उसे टोंक रियासतका नवाब मान लिया जहाँ उसके परिवारके लोग १६४८ ई० तक नवाब रहे। १६४८ ई० में टोंक रियासतका भारतमें विलयन हो गया।

अमीर खुसरो—'तोतए-हिन्द' उपनामसे प्रसिद्ध एक विद्वान् कवि और लेखक, जिसने फारसी, उर्दू और हिन्दीमें अपनी रचनाएँ कीं। उसने प्रचुर मात्रामें पद्य और गद्य दोनों लिखा है और संगीतकी भी रचना की है। उसने लम्बी उम्र पायी और उसे दिल्लीके कई सुल्तानों—बलबनसे गयासुद्दीन तुगलक तकका संरक्षण मिला। उसकी मृत्यु १३२४–२५ ई० में हुई। उसकी कृतियोंमें बहुत-सी कविताएँ, ऐतिहासिक मसनवी, 'तुगलक नामा' और 'तारीख-ए-अलाइ' नामक दो इतिहास ग्रंथ हैं।

अमृतराव—रघुनाथ राव (राघोबा) का दत्तक पुत्र, जो पेशवा बाजीराव प्रथमका दूसरा पुत्र था। उसने पेशवाके रूपमें केवल एक वर्ष (१७७३ ई०) राज्य किया। पूनाकी लड़ाईके बाद जब पेशवा बाजीराव द्वितीय (१७६६–१८१८) अक्तूबर १८०२ ई० में वसई भाग गया था तब अमृतरावको पेशवा बनाया गया। अमृत-रावने पेशवा बाजीराव द्वितीयको १८०३ ई० के आरम्भमें अंग्रेजों द्वारा दुबारा पेशवा बनानेका विरोध नहीं किया और वह पेंशन पाकर बनारसमें रहने लगा।

अमृतसर—पंजाबमें सिखोंका तीर्थस्थान। सिखोंके चौथे गुरु रामदासको १५७७ ई० में बादशाह अकबर (१५५६–१६०५ ई०) ने यह स्थान दिया था। बादमें इस नगरका विकास हुआ और सिखोंके दानसे स्वर्ण मंदिरका निर्माण किया गया।

अमृतसरकी सन्धि—२५ अप्रैल, १८०६ ई० को रणजीत सिंह और ईस्ट इंडिया कम्पनीके बीच हुई। उस समय लार्ड मिन्टो (१८०७–१३ ई०) भारतके गवर्नर-जनरल थे। इस सन्धिके द्वारा सतलज पारकी पंजाबकी रियासतें अंग्रेजोंके संरक्षणमें आ गयीं और सतलजके पश्चिममें पंजाब राज्यका शासक रणजीत सिंहको मान लिया गया।

अमृतसरकी सन्धि—१६ मार्च १८४६ ई० को प्रथम आंग्ल-सिख युद्ध (१८४५–४६ ई०) के समाप्त होनेपर अमृतसर-में की गयी। इस सन्धिके द्वारा कश्मीर जो रणजीत सिंह-के राज्यका हिस्सा था उसे राजा दलीप सिंहसे ले लिया गया और अंग्रेजोंने उसे गुलाब सिंहको दे दिया। गुलाब सिंह लाहौर दरबारका एक सरदार था। इसके बदलेमें उसने अंग्रेजोंको दस लाख रुपये दिये।

अमोघ वर्ष—दक्षिणके राष्ट्रकूट राजवंशमें इस नामके तीन राजा हुए। अमोघ वर्ष प्रथमने सबसे लम्बे समय तक (८१४–८७७ ई०) राज्य किया। उसे अपने पूर्वी पड़ोसी वेंगिके चालुक्य राजाओंसे अनेक युद्ध करने पड़े। वह अपनी राजधानी नासिकसे हटाकर मान्यखेट (आधुनिक मालखेड़) ले गया। अरब सौदागर सुलेमानने ८५१ ई० में उसका उल्लेख 'बलहरा' के नामसे किया है और उसे संसारका चौथा सबसे बड़ा राजा बतलाया है। वृद्ध होनेपर अमोघ वर्ष प्रथमने राज-पाट छोड़कर संन्यास ले लिया और अपने पुत्र कृष्ण द्वितीयको राजा बनाया। वह जैन धर्मका संरक्षक था।

अमोघवर्ष द्वितीय—अमोघवर्ष प्रथमका पौत्र। उसने केवल एक वर्ष (९१७–९१८ ई०) राज्य किया। उसके भाई गोविन्द चतुर्थने उसे गद्दीसे हटा दिया और स्वयं राजा बन गया। गोविन्द चतुर्थने ९१८ से ९३४ ई० तक राज्य किया।

अमोघवर्ष तृतीय अथवा बड्डिग—अमोघवर्ष द्वितीयके पौत्र-का दूसरा पुत्र। वह गोविन्द चतुर्थके बाद ९३४ ई० में राजा बना और पाँच वर्ष (९३४–९३९ ई०) राज्य किया। उसके शासन कालमें दक्षिणके राष्ट्रकूटों और सुदूर दक्षिणके चोल राजाओंके मध्य शत्रुता आरम्भ हो गयी।

अम्बर, मलिक—एक हब्शी गुलाम, जो अहमद नगरमें बस गया था। चाँद सुल्ताना (दे०) की मृत्युके बाद वह तरक्की करके वजीरके पदपर पहुँच गया। उसने अहमदनगर-को बादशाह जहाँगीरके पंजेसे बचानेका जी-तोड़ प्रयास किया। उसमें नेतृत्वके सहज गुण थे और मध्ययुगीन भारतके सबसे बड़े राजनीतिज्ञोंमें उसकी गणना की जाती है। उसने अहमदनगर राज्यकी राजस्व व्यवस्था सुधारी और सेनाको छापा-मार युद्धकी शिक्षा दी। इस प्रकार अहमद नगरको मुगलोंके आक्रमणसे बचाया। लेकिन १६१६ ई०में जब बहुत बड़ी मुगल सेनाने अहमद नगरपर चढ़ाई कर दी तो मलिक अम्बरको आत्मसमर्पण करना पड़ा। उस समय शाहजादा खुर्रम मुगल सेनाका नेतृत्व कर रहा था। मलिक अम्बरने बड़े सम्मानके साथ जीवन बिताया और १६२६ ई०में बहुत वृद्ध हो जानेपर उसकी मृत्यु हुई।

अम्बष्ठ—गणके लोग सिकन्दरके आक्रमणके समय भारतके पश्चिमोत्तर क्षेत्रमें चनाब और सिन्धुके संगम स्थलके

उत्तरी हिस्सेमें रहते थे। यूनानी इतिहासकारों ने इनका उल्लेख 'अम्बष्टनोई' नामसे किया है, जो संस्कृत भाषाके अम्बष्ठ शब्दका रूपान्तर है। ऐतरेय ब्राह्मण, महाभारत और बार्हस्पत्य अर्थशास्त्रमें अम्बष्ठ गणका उल्लेख मिलता है। यह प्रारम्भमें एक युद्धोपजीवी गण था, लेकिन बादमें इस गणके लोग पुरोहित, कृषक और वैद्य भी होने लगे थे।

अम्बाजी–एक मराठा सरदार, जो राजपूतानातक धावे मारता था। आठ वर्षों (१८०६–१८१७ ई०) में उसने अकेले मेवाड़से करीब दो करोड़ रुपये वसूले।

अम्बेडकर, डा० भीमराव रामजी–भारतकी परिगणित जातियोंके प्रमुख नेता। उनकी शिक्षा अमेरिका और इंग्लैण्डमें हुई थी। उन्होंने अपना जीवन सरकारी कार्यालयमें एक लिपिकके रूपमें शुरू किया, लेकिन शीघ्र ही सवर्ण हिन्दुओंके विरोधके कारण उन्हें नौकरी छोड़नी पड़ी। सवर्णोंके व्यवहारसे रुष्ट होकर उन्होंने अछूतोंको संगठित किया और उनका राजनीतिक दल बनाया। संविधान निर्मात्री सभाके सदस्य होनेके साथ ही वे भारतके कानून-मंत्री भी बनाये गये और उन्होंने भारतीय संविधानका प्रारूप तैयार करके उसे संविधान निर्मात्री सभासे पास कराया। इस संविधानके द्वारा भारतको सार्वभौमसत्ता-सम्पन्न गणतंत्र घोषित किया गया है। डाक्टर अम्बेडकरने भारतीय संसदमें हिन्दू कोड बिल भी पेश किया और उसे पास कराया।

अम्बोयना का कत्लेआम–१६२३ ई०में डच लोगोंने किया। जब डचोंने देखा कि अंग्रेजोंकी ईस्ट इंडिया कम्पनी शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वी संस्था बनती जा रही है तो उन्होंने अम्बोयनामें अंग्रेजोंकी छोटी-सी बस्तीपर अचानक हमला बोल दिया और वहाँके सभी अंग्रेज प्रवासियोंको भयंकर यातनाएँ देकर मार डाला। इस कत्लेआमके बाद अंग्रेज जावा तथा मसाले वाले द्वीपोंमें जानेसे डरने लगे और उन्होंने अपना ध्यान भारतमें ही अपने पैर जमानेकी ओर केन्द्रित किया, जहाँसे उन्होंने डच लोगोंको उखाड़ फेंका।

अयूब खां–अफगानिस्तानके अमीर शेर अली (दे०)का पुत्र। दूसरे आंग्ल-अफगान युद्धके दौरान अयूब खाँने जुलाई १८८० ई०में भाई बंदकी लड़ाईमें एक बड़ी अंग्रेजी सेनाको हरा दिया। लेकिन बादमें कन्दहारके निकट उसे लार्ड राबर्ट्सने पराजित कर दिया। उसने कुछ समयके लिए कन्दहारपर फिर कब्जा कर लिया। लेकिन अन्तमें नये अमीर अब्दुर्रहमानने उसे हरा दिया और कन्दहार तथा अफगानिस्तानके बाहर खदेड़ दिया।

अयूब खां–पाकिस्तानी सेनामें एक जनरल, जिसने अक्तूबर १९५८ ई०में पाकिस्तान सरकारका तख्ता पलट कर स्वयं सत्ता हथिया ली और वहाँ फौजी तानाशाहीकी स्थापना कर दी। जून १९६२में उसने पाकिस्तानमें नया संविधान लागू किया और जनवरी १९६५ ई०में वह पाँच वर्षकी अवधिके लिए पाकिस्तानका दुबारा राष्ट्रपति चुन गया। उसी वर्ष उसने भारतसे युद्ध छेड़ दिया जो संयुक्त राष्ट्र-संघके युद्ध-विराम प्रस्तावके आधारपर रुका और ताशकंदमें दोनों देशोंमें सन्धि हुई। मार्च १९७० ई०में पाकिस्तानमें उसके स्थानपर जनरल मोहम्मद यहिया खाँ सत्तासीन हो गया।

अयोध्या—भारतकी एक प्राचीन नगरी, जो सरयू नदीके किनारे, आधुनिक नगर फैजाबादके निकट स्थित है। अयोध्या कोसल (अवध) राज्यकी राजधानी थी। रामायणके अनुसार वह श्रीरामचन्द्रके पिता राजा दशरथकी राजधानी थी। वह देशकी सात पवित्र नगरियोंमें एक मानी जाती है। ऐतिहासिक युगमें गुप्त सम्राटोंकी वह सम्भवतः दूसरी राजधानी सम्राट् समुद्रगुप्तके समयसे पुरुगुप्तके समय तक (३३०–४७२ ई०) थी।

अरब–इस्लामका उदय होनेके बाद संगठित और शक्तिशाली हो गये। वे लोग दूर-दूरतक समुद्र यात्राएँ और व्यापार करते थे। पश्चिमी भारतके समृद्ध बन्दरगाहों तथा पश्चिमोत्तर सीमावर्ती क्षेत्रकी ओर उनकी आरम्भसे निगाह थी। सबसे पहले ६३७ ई०में अरबोंने बम्बईके निकट थानापर हमला किया, जिसको विफल कर दिया गया। लेकिन उसके बाद भड़ौंच, सिन्धमें देबलकी खाड़ी और कलातपर उनके हमले हुए। सातवीं शताब्दीके अन्तमें अरबोंने बलूचिस्तानके मकरान क्षेत्रको जीत लिया जिससे सिन्धको जीतनेके लिए रास्ता साफ हो गया। सिन्धके समुद्र तटपर कुछ समुद्री लुटेरोंने अरब सौदागरोंके जहाज लूट लिये। लुटेरोंने सिन्धके देबलमें शरण ली। पीड़ित अरब सौदागरोंने अरब सूबेदार अल-हज्जामसे इसकी शिकायत की, जिसने सिन्धपर कई बार हमले किये। उस समय सिन्धमें राजा दाहिर (दे०)का राज्य था। प्रारम्भमें कुछ हमलोंको विफल कर दिया गया, लेकिन ७११ ई०में अल-हज्जाजके दामाद मुहम्मद-इब्न-कासिमके नेतृत्वमें हमला हुआ। मुहम्मद-इब्न-कासिमने ७१२ ई०में राओरके युद्धमें राजा दाहिरको पराजित किया, जिसमें वह मारा गया। उसकी राजधानी आलोरपर अरबोंका कब्जा हो गया। इसके

बाद अरबोंने मुल्तान जीत लिया और सिन्धमें अरब राज्य स्थापित हो गया। अरबोंने भारतमें अपने राज्य का प्रसार करनेके लिए बहुत कोशिशें कीं। उन्होंने कच्छ, सौराष्ट्र अथवा काठियावाड़ और पश्चिमी गुजरातपर हमले किये। लेकिन उनका प्रसार सिन्धके आगे नहीं हो सका। दक्षिणमें चालुक्यों और पूर्वमें प्रतिहारों और उत्तरमें कर्कोटक राजाओंने उनके बढ़ावको रोका। इस प्रकार भारतमें अरब राज्य सिन्धतक ही सीमित रहा जिसे शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने ११७५ ई०में सिन्धपर कब्जा करके खत्म कर दिया और सिन्ध दिल्लीकी सल्तनतके अधीन हो गया। सिन्धमें अरबोंकी विजय को 'निष्फल विजय'की संज्ञा दी जाती है क्योंकि उसके बाद भारतपर इन लोगोंकी सत्ता स्थापित नहीं हुई।

अरविन्द घोष (१८७२-१९५०)—एक महान् देशभक्त और क्रान्तिकारी जो बादमें उच्च ज्ञानी या योगी हो गये। उनकी शिक्षा इंग्लैंडमें हुई। वे इंडियन सिविल सर्विसकी परीक्षामें बैठे लेकिन घुड़सवारीकी परीक्षामें अनुत्तीर्ण हो जानेसे आई० सी० एस० न हो सके। बादमें वे बड़ौदा कालेजके उपप्रधानाचार्य नियुक्त हुए। शीघ्र ही उन्होंने भारतीय राजनीतिमें रुचि लेना प्रारंभ कर दिया और 'इन्दुप्रकाश' पत्रिकामें उनके अनेक लेख प्रकाशित हुए। ७ अगस्त १८९३ ई०को प्रकाशित उनके प्रथम लेखसे प्रकट होता है कि वे राजनीतिके प्रति भारतीयोंके रुखमें आमूल परिवर्तनके पक्षपाती थे। इन लेखोंमें उन्होंने प्रतिपादित किया कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अपनी नरम नीतियोंके कारण देशको उपयुक्त नेतृत्व प्रदान करनेमें असफल रही है। उन्होंने जोर दिया कि राष्ट्रमें देशभक्ति और बलिदानकी उत्कट भावना भरकर कांग्रेसको वास्तविक जनवादी संस्था बनानेकी आवश्यकता है। उनके विचारोंको पंजाबके लाला लाजपतराय तथा महाराष्ट्रके लोकमान्य तिलकने बहुत पसंद किया। फलतः कांग्रेसके अंदर एक गरम दल बन गया जो अपने राजनीतिक उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए सशस्त्र मार्ग ग्रहण करनेको बुरा नहीं मानता था। १९०२ ई० में अरविन्दने बड़ौदासे अपना एक आदमी बंगालमें गुप्त क्रांतिकारी संगठन बनानेके उद्देश्यसे भेजा। इसके बाद वे स्वयं बंगाल चले आये और नेशनल कालेजके प्रिंसिपल बनकर 'वंदेमातरम्' तथा 'कर्मयोगी'के माध्यमसे अपने विचारोंका प्रचार करने लगे। इन पत्रोंका संपादन वे स्वयं बड़ी योग्यताके साथ करते थे। इस प्रचारका फल यह हुआ कि बंगालमें अनेक आतंकवादी घटनाएँ घटीं और अलीपुर बम-कांडमें तो स्वयं अरविन्दपर अनेक बंगालियोंके साथ मुकदमा चला। एक लम्बे मुकदमेके बाद श्री अरविन्द बरी हो गये, लेकिन ब्रिटिश सरकार उन्हें भारतमें ब्रिटिश शासनका परम विरोधी मानकर पुनः नजरबंद कर देनेका विचार कर रही थी। इस बीच श्री अरविन्दके विचारोंमें बहुत परिवर्तन हो गया था। उन्होंने सक्रिय राजनीतिको त्याग देनेका निश्चय किया और १९०९ ई० में पांडिचेरी चले गये जो उन दिनों फ्रांसके अधिकारमें था। वहाँ उन्होंने एक आश्रमकी स्थापना की जिसका उद्देश्य लोगोंको उच्च आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करनेके लिए प्रेरित करना था। उन्होंने अपने विचार अपनी 'डिवाइन लाइफ' नामक पुस्तकमें व्यक्त किये हैं। उनका देहान्त १९५० ई० में हुआ। उन्हें देशभक्तिका कवि, राष्ट्रवादका देवदूत तथा मानवताका प्रेमी कहा गया है। श्रद्धासे लोग उन्हें 'श्री अरविन्द' कहते हैं। **(पुराणी लिखित 'लाइफ आफ श्री अरविन्द')**

अराकान—की पट्टी बंगालकी खाड़ीके पूर्वी तटपर स्थित है। यहाँ १७८४ ई० तक एक स्वतंत्र राज्य रहा जिसे बर्मी लोगोंने जीत लिया। बर्माकी सीमाके विस्तारसे भारतकी ब्रिटिश सरकारने बंगालके लिए खतरा महसूस किया। प्रथम बर्मा युद्ध (१८२४-२६) का एक कारण यह भी था। युद्धके बाद अराकानका क्षेत्र यन्दबू (दे०)की सन्धिके अनुसार भारतकी अंग्रेजी सरकारको मिल गया।

अराविडु (कर्णाट) राजवंश—की स्थापना विजय नगर (दे०) के विनाशके बाद तिरुमलने की। वह रामे राजाका भाई था जिसके नेतृत्वमें तालीकोटके युद्ध (१५६५ ई०) में विजय नगरकी सेना पराजित हुई थी और विजयनगर नष्ट कर दिया गया था। तिरुमलने अपनी राजधानी पेनुकोंडामें स्थापित की और एक सीमातक पुराने विजयनगरके हिन्दू राज्यका दबदबा फिरसे स्थापित कर दिया। उसके द्वारा स्थापित राजवंशने १६८४ ई०तक दक्षिणमें राज्य किया। इस वंशके अनेक राजा हुए जिनमें वेंकट द्वितीय उल्लेखनीय था। वह अपनी राजधानी चन्द्रगिरि ले गया और उसने तेलुगु कवियों और वैष्णव आचार्योंको संरक्षण प्रदान किया। बादमें वेंकट नामका एक अन्य राजा हुआ, उसने १६३९-४० ई० में मद्रासका क्षेत्र ईस्ट इंडिया कम्पनीके मिस्टर डेको दे दिया। इस भूमिदानकी पुष्टि राजा रंग तृतीयने की जो अराविडु राजवंशका एक प्रकारसे अन्तिम राजा था।

अर्काट—कर्नाटकका एक नगर, जिसे कर्नाटकके नवाब अनवरुद्दीन (दे०) (१७४३-४९ ई०) ने अपनी राजधानी बनाया। दूसरे कर्नाटक युद्ध (१७५१-५४ ई०) में इस

नगरका महत्त्वपूर्ण स्थान था। यहाँ एक मजबूत किला था जो ग्राम्बूरकी १७४९ ई० की लड़ाईमें अनवरुद्दीनकी हार और मौतके बाद चन्दा साहबके नियंत्रणमें चला गया। चन्दा साहबने फ्रांसीसियोंकी मददसे त्रिचिनापल्लीका घेरा डाला, जहाँ अनवरुद्दीनके पुत्र 'मुहम्मदअलीने शरण ली थी। त्रिचिनापल्लीको राहत देनेके लिए राबर्ट क्लाइबने दो सौ अंग्रेज और तीन सौ देशी सिपाहियोंकी मददसे अर्काटपर अचानक कब्जा कर लिया। इसके बाद चन्दा साहबने बहुत बड़ी सेनाके साथ अर्काटका घेरा डाला और क्लाइवकी सेना ५६ दिन (२३ सितम्बरसे १४ नवम्बर तक) किलेमें घिरी रही। अन्तमें क्लाइवने चन्दा साहबकी सेनाका घेरा तोड़कर उसे पीछे ढकेल दिया। अर्काटके घेरेको तोड़नेमें सफल होनेके बाद राबर्ट क्लाइबकी प्रतिष्ठा एक अच्छे सेनापतिके रूपमें हो गयी और कर्नाटक अंग्रेजोंके कब्जेमें आ गया।

अर्जुन—सिखोंके पाँचवें गुरु (१५८१—१६०६)। वे चौथे गुरु रामदासके पुत्र और उत्तराधिकारी थे। उन्होंने 'आदि ग्रंथ'का संकलन किया जिसमें पहलेके चार गुरुओं और बहुतसे हिन्दू और मुसलमान सन्तोंकी वाणियोंका संग्रह है। उन्होंने सिखोंको एक प्रकारका आध्यात्मिक-कर अर्थात् धार्मिक-कर देनेका आदेश दिया जिससे सिख गुरुओं-के धर्मकोषकी स्थापना हुई। अर्जुन देवने शाहजादा खुसरोपर दया करके उसकी सहायता की, जिसने अपने पिता जहाँगीरके विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। इसके कारण जहाँगीरने उन्हें राजद्रोहके अपराधमें मौतकी सजा दी।

अर्थशास्त्र—देखो 'कौटिल्य'।

अर्हत्—उन बौद्ध और जैन श्रमणोंकी पदवी, जिन्होंने आध्यात्मिक दृष्टिसे बहुत उच्च स्तर प्राप्त कर लिया था। जो बौद्ध या जैन भिक्षु अपने जीवन-कालमें निर्वाण प्राप्त कर लेता था उसे अर्हत् कहा जाता था।

अल-जुर्ज—भिन्नमाल अथवा भड़ौचके चारों ओरके गुर्जर क्षेत्रका पुराना अरबी नाम।

अलबुकर्क, अलफोसो द—पुर्तगाली अधिकारमें आये भारतीय क्षेत्रका दूसरा गवर्नर (१५०९—१५१५ ई०)। उसने पूर्वमें पुर्तगाली साम्राज्यकी स्थापनाके उद्देश्यसे कई महत्त्वपूर्ण ठिकानोंमें पुर्तगाली शासन और व्यापारी कोठियाँ स्थापित कीं, और कुछ स्थानोंमें पुर्तगाली बस्तियाँ बसायीं, भारतीयों और पुर्तगालियोंमें विवाह सम्बन्धोंको प्रोत्साहित किया। उसने ऐसे स्थानोंमें किले बनवाये जहाँ न तो पुर्तगाली बस्तियाँ बसायी जा सकती थीं और जो न तो जीते जा सकते थे। जहाँ यह भी संभव न था उसने स्थानीय राजाओंको पुर्तगालके राजाकी प्रभुता स्वीकार करने और उसे भेंट देनेको प्रेरित किया। उसने बीजापुरके सुल्तानसे १५१० ई० में गोआ छीन लिया, १५११ ई० में मलक्कापर और १५१५ ई० में ओर्मुजपर अधिकार कर लिया। अलबुकर्क अपने उद्देश्य-को पूरा करनेमें गलत-सही तरीकोंका ख्याल नहीं रखता था। उसने कालीकटके जमोरिनकी हत्या जहर देकर करवा दी, जिसने पुर्तगालियोंके आगमनपर उनसे मित्रताका व्यवहार किया था। पुर्तगालियोंके हिन्दुस्तानी औरतोंसे शादी कर यहाँ बसानेकी नीति भी सफल नहीं हुई और इसके परिणाम-स्वरूप पुर्तगाली-भारतीयोंकी मिश्रित जाति बन गयी जिससे पूर्वमें पुर्तगाली साम्राज्यकी स्थापनामें कोई खास मदद नहीं मिली। उसने मुसलमानोंके नर-संहारकी नीति अपनायी जिससे पुर्तगालियोंके साथ हिन्दुस्तानियोंकी हमदर्दी खत्म हो गयी और अलबुकर्कने जिस पुर्तगाली साम्राज्यकी स्थापनाका स्वप्न देखा था वह उसकी मृत्युके बाद बिखर गया।

अल्प खाँ—को अलाउद्दीन खिलजीने १२९७ ई० में गुजरात जीतनेके बाद वहाँका सूबेदार बनाया। १३०७ ई० में अल्प खाँने मलिक काफूर और ख्वाजा हाजीके नेतृत्वमें मुसलमानी सेनाके साथ देवगिरि राज्यके विरुद्ध दूसरे अभियानमें हिस्सा लिया, जिसमें गुजरातकी राजकुमारी देवल देवी पकड़ी गयी। राजकुमारी देवल देवीने गुजरात विजयके बाद अपने पिता कर्णदेवके साथ देव-गिरिके राजा रामचन्द्र देवके दरबारमें जाकर शरण ली थी। अल्प खाँने देवल देवीको अलाउद्दीनके दरबारमें भेजा, जहाँ उसकी शादी सुल्तानके बड़े बेटे खिजिर खाँ-के साथ कर दी गयी।

अल्प खाँ—मालवाके सुल्तान दिलावर खाँ गोरीका बेटा और उत्तराधिकारी। दिलावर खाँने १४०१ ई० में मालवामें अपना राज्य स्थापित किया था। गद्दीपर बैठनेके बाद अल्प खाँने हुशंगशाहकी उपाधि धारण की और १४३५ ई० में अपनी मृत्युतक मालवामें राज्य किया। उसे जोखिम उठाने और युद्ध करनेमें आनन्द मिलता था। उसने दिल्ली, जौनपुर, गुजरातके सुल्तानों और बहमनी सुल्तान अहमद शाहसे युद्ध किये, लेकिन अधिकांश युद्धोंमें उसे विफलता ही मिली।

अलप्तगीन—मध्य एशियाके सामानी शासकोंका भूतपूर्व गुलाम, जो ९६२ ई० में गजनीका शासक बन बैठा। उसने काबुलके राज्यका कुछ भाग जीतकर भारतकी उत्तर पश्चिमी सीमापर मुसलमानी राज्य कायम किया। उसकी मौत ९६२ ई० में हुई।

अलप्तगीन–सुल्तान बलबन (१२६६–८६ ई०) का एक सेनापति। उसको अमीर खाँका खिताब दिया गया था। सुल्तान बलबनने उसे बंगालमें तोगरल खाँके विद्रोहका दमन करनेके लिए भेजा था। अलप्तगीनको तोगरलखाँने पराजित कर दिया और उसके बहुत-से सैनिकों और सामानको अपने कब्जेमें कर लिया। अपने सेनापतिकी पराजयसे बलबनको इतना क्रोध आया कि उसने अलप्तगीनको दिल्लीके फाटकपर फांसीपर लटकवा दिया। अलप्तगीन योग्य सेनापति और अमीरोंमें लोकप्रिय था। उसको फांसी दिये जानेसे अमीरोंमें काफी रोष पैदा हो गया था।

अलबेरूनी–(६७३–१०४८ ई०) रबीवाका रहनेवाला। सुल्तान महमूदके समय (६६७–१०३० ई०) में उसे कैदी अथवा बन्धकके रूपमें गजनी लाया गया था। वह सुल्तान महमूदकी सेनाके साथ भारत आया और कई वर्षोंतक पंजाबमें रहा। उसका असली नाम अबु-रैहान मुहम्मद था, लेकिन वह 'अलबेरूनी'के नामसे ही प्रसिद्ध है जिसका अर्थ 'उस्ताद' होता है। वह बड़ा विद्वान था। भारतमें रह कर उसने संस्कृत पढ़ी और हिन्दू दर्शन और दूसरे शास्त्रोंका अध्ययन किया। इसी अध्ययनके आधारपर उसने 'तहकीक-ए-हिन्द' (भारतकी खोज) नामक पुस्तक रची इसमें हिन्दुओं के इतिहास, चरित्र, आचार-व्यवहार, परम्पराओं और वैज्ञानिक ज्ञानका विशद वर्णन किया गया है। इसमें मुसलमानोंके आक्रमणके पहलेके भारतीय इतिहास और संस्कृतिका प्रामाणिक और अमूल्य विवरण मिलता है। उसकी अनेक पुस्तकें अप्राप्य हैं, लेकिन जो मिलता है उसमें सचाऊ द्वारा अंग्रेजी भाषामें अनूदित 'दि क्रानोलाजी आफ एंसेण्ट नेशन्स' (पुरानी कौमोंका इतिहास) उसकी विद्वत्ताको सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त है।

अलमसूदी–एक अरब यात्री, जिसने ६१५ई० में प्रतिहार राजा महिपाल प्रथमके राज्यकालमें उसके राज्यकी यात्रा की। अलमसूदीने उसके घोड़ों और ऊँटोंका विवरण दिया है।

अलहज्जाज–खलीफा वालिदके समय ईराकका मुसलमान सूबेदार। उस समय सिन्धमें राजा दाहिरका शासन था। सिन्धके कुछ लुटेरोंकी लूटमारसे क्रुद्ध होकर अलहज्जाजने उन्हें दंडित करनेके लिए कई बार चढ़ाई की किन्तु, राजा दाहिरने उसकी फौजोंको पराजित कर दिया। बादमें अलहज्जाजने अपने भतीजे और दामाद मुहम्मद इब्नकासिदके साथ बड़ी फौज भेजी, जिसने राउरकी लड़ाई (७१२ ई०) में राजा दाहिरको पराजित कर उसको कत्ल कर दिया और सिन्धमें मुसलमानी राज्यकी स्थापना की।

अलाउद्दीन प्रथम–दक्षिणके बहमनी वंशका पहला सुल्तान। उसका पूरा खिताब था–सुल्तान अलाउद्दीन हसन शाह अल-वली-अलबहमनी। इसके पहले वह हसनके नामसे विख्यात था। वह दिल्लीके सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लकके दरबारमें एक अफगान अथवा तुर्क सरदार था। उसे जफर खाँका खिताब मिला था। सुल्तान मुहम्मद-बिन तुग़लककी सनकोंसे तंग आकर दक्षिणके मुसलमान अमीरोंने विद्रोह करके दौलताबादके किलेपर अधिकार कर लिया और हसन उर्फ जफरखाँको अपना सुल्तान बनाया। उसने सुल्तान अलाउद्दीन बहमन शाहकी उपाधि धारण की और १३४७ ई० में कुलवर्ग (गुलबर्ग) को अपनी राजधानी बना कर नये राजवंशकी नींव डाली। इतिहासकार फरिश्ताने हसनके सम्बन्धमें लिखा है कि वह दिल्लीके ब्राह्मण ज्योतिषी गंगूके यहाँ नौकर था, जिसे मुहम्मद बिन तुगलक बहुत मानता था। अपने ब्राह्मण मालिकका कृपापात्र होनेके कारण वह तुगलककी नजरमें चढ़ा। इसीलिए अपने संरक्षक गंगू ब्राह्मणके प्रति आदर भावसे उसने बहमनी उपाधि धारण की। फरिश्ताकी यह कहानी सही नहीं है, क्योंकि इसका समर्थन सिक्कों अथवा अन्य लेखोंसे नहीं होता है। उसके पहलेकी मुसलमानी तवारीख 'बुरहान-ए-मासिर'के अनुसार हसन बहमन वंशका था इसीलिए, उसका वंश बहमनी कहलाया। वास्तवमें हसन अपनेको फारसके प्रसिद्ध वीर योद्धा बहमनका बंशज मानता था। हसन भी एक सफल योद्धा था। उसने अपनी मृत्यु (फरवरी १३५८ ई०) से पूर्व अपना राज्य उत्तरमें बैन-गंगासे लेकर दक्षिणमें कृष्णा नदीतक फैला लिया था। उसने अपने राज्यको चार सूबों—कुलबर्ग, दौलताबाद, बराड़ और बिदरमें बाँट दिया था और शासनका उत्तम प्रबन्ध किया था। 'बुरहान-ए-मासिर' के अनुसार वह इंसाफ-पसंद सुल्तान था जिसने इस्लामके प्रचारके लिए बहुत कार्य किया।

अलाउद्दीन द्वितीय–दक्षिणके बहमनी वंशका दसवाँ सुल्तान। उसने १४३५ से १४५७ ई० तक राज्य किया और अपने पड़ोसी विजयनगर राज्यके राजा देवराय द्वितीयसे युद्ध ठानकर उसे सन्धि करनेको बाध्य किया। अलाउद्दीन द्वितीय इस्लामका उत्साही प्रचारक था और अपने सहधर्मी मुसलमानोंके प्रति कृपालु था। उसने बहुतसे मदरसे, मस्जिदें और वक्फ कायम किये। उसने अपनी राजधानी बीदरमें एक अच्छा शफाखाना बनवाया।

उसके शासनकालमें दक्खिनी मुसलमानों, जिन्हें हब्शियोंका समर्थन प्राप्त था, और जो ज्यादातर सुन्नी थे, और विलायती मुसलमानोंमें, जो शिया थे, भयंकर प्रतिद्वन्द्विता पैदा हो गयी, जिसके कारण सुल्तानके समर्थनसे बहुतसे विलायती मुसलमानों—सैयदों और मुगलोंको पूनाके निकट चकनके किलेमें मौतके घाट उतार दिया गया।

अलाउद्दीन ख़िलजी–दिल्लीका सुल्तान (१२९६ से १३१६ ई० तक)। वह ख़िलजी वंशके संस्थापक जलालुद्दीन ख़िलजीका भतीजा और दामाद था। सुल्तान बननेके पहले उसे इलाहाबादके निकट कड़ाकी जागीर दी गयी थी। तभी उसने बिना सुल्तानको बताये १२९५ ई० में दक्षिणपर पहला मुसलमानी हमला किया। उसने देवगिरिके यादववंशी राजा रामचन्द्रदेवपर चढ़ाई बोल दी। रामचन्द्रदेवने दक्षिणके अन्य हिन्दू राजाओंसे सहायता मांगी जो उसे नहीं मिली। अन्तमें उसने सोना, चाँदी और जवाहरात देकर अलाउद्दीनके सामने आत्मसमर्पण कर दिया। बहुत-सा धन लेकर वह १२९६ ई० में दिल्ली लौटा जहाँ उसने सुल्तान जलालुद्दीन खिलजीकी हत्या कर दी और खुद सुल्तान बन बैठा। उसने सुल्तान जलालुद्दीनके बेटोंको भी मौतके घाट उतार दिया और उसके समर्थक अमीरोंको घूस देकर चुप कर दिया। इसके बावजूद अलाउद्दीनको बहुत कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। मंगोलोंने उसके राज्यपर बार-बार हमले किये और १२९९ ई० में तो वे दिल्लीके नज़दीकतक पहुँच गये। अलाउद्दीनने उनको हर बार खदेड़ दिया और १३०८ ई० में उनको ऐसा हराया कि उसके बाद उन्होंने हमला करना बन्द कर दिया।

जलालुद्दीन खिलजीके समयमें जिन मुगलोंने हमला किया था उनमेंसे जो मुसलमान बन गये थे उनको दिल्लीके पासके इलाकोंमें बस जाने दिया गया। उनको नौमुस्लिम कहा जाता था, किन्तु उन्होंने सुल्तानके खिलाफ षड्यंत्र रचा जिसकी जानकारी मिलनेपर सुल्तानने एक दिनमें उनका कत्लेआम करा दिया। इसके बाद सुल्तानके कुछ रिश्तेदारोंने विद्रोह करनेकी कोशिश की। उनका भी निर्दयतासे दमन करके मौतके घाट उतार दिया गया।

यह माना जाता है कि अलाउद्दीन खिलजीके गद्दीपर बैठनेके बाद दिल्लीकी सल्तनतका प्रसार आरम्भ हुआ। उसके गद्दीपर बैठनेके साल भर बाद उसके भाई उलूगखाँ और वजीर नसरतखाँके नेतृत्वमें उसकी सेनाने गुजरातके हिन्दू राजा कर्णदेवपर हमला किया। कर्णदेवने अपनी लड़की देवलदेवीके साथ भागकर देवगिरिके यादव राजा रामचन्द्रदेवके दरबारमें शरण ली। मुसलमानी सेना गुजरातसे बेशुमार दौलत लूटकर लायी। साथमें दो कैदियोंको भी लायी। उनमेंसे एक रानी कमलादेवी थी, जिससे अलाउद्दीनने विवाह करके उसे अपनी मलका बनाया और दूसरा काफूर नामक गुलाम था जो शीघ्र सुल्तानकी निगाहमें चढ़ गया। उसको मलिक नायबका पद दिया गया। इसके बाद अलाउद्दीनने अनेक राज्योंको जीता। रणथम्भौर १३०३ ई० में, मालवा १३०५ ई० में और उसके बाद क्रमिक रीतिसे उज्जैन, धार, मांडू और चन्देरीको जीत लिया गया। मलिक काफूर और ख्वाजा हाजीके नेतृत्वमें मुसलमानी सेनाने पुनः दक्षिणकी ओर अभियान किया। १३०७ ई० में देवगिरिको दुबारा जीता गया और १३१० ई० में ओरंगलके काकतीय राज्यको ध्वस्त कर दिया गया। इसके बाद द्वार समुद्रके होयशल राज्यको भी नष्ट कर दिया गया और मुसलमानी राज्य कन्याकुमारीतक दोनों ओरके समुद्र तटोंपर पहुँच गया। मुसलमानी सेना १३११ ई० में बहुत-सी लूटकी दौलतके साथ दिल्ली लौटी। उस समय उसके पास ६१२ हाथी, २०,००० घोड़े और ९६,००० मन सोना और जवाहरातकी अनेक पेटियाँ थीं। इसके पहले दिल्लीका कोई सुल्तान इतना अमीर और शक्तिशाली नहीं हुआ। इन विजयोंके बाद अलाउद्दीन हिमालयसे कन्याकुमारीतक पूरे हिन्दुस्तानका शासक बन गया।

अलाउद्दीन केवल सैनिक ही नहीं था। वह सम्भवतः पढ़ा-लिखा न था लेकिन उसकी बुद्धि पैनी थी। वह जानता था कि उसका लक्ष्य क्या है और उसे कैसे पा सकता है। मुसलमान इतिहासकार बरनीके अनुसार सुल्तानने अनुभव किया कि उसके शासनके आरम्भमें कई विद्रोह हुए जिनसे उसके राज्यकी शान्ति भंग हो गयी। उसने इन विद्रोहोंके चार कारण ढूंढ़ निकाले: (१) सुल्तानका राजकाजमें दिलचस्पी न लेना, (२) शराबखोरी, (३) अमीरोंके आपसी गठबंधन जिसके कारण वे षड्यंत्र करने लगते थे और (४) बेशुमार धन दौलत जिसके कारण लोगोंमें घमंड और राजद्रोह पैदा होता था। उसने गुप्तचर संगठन बनाया और सुल्तानकी इजाजत बगैर अमीरोंमें परस्पर शादी-विवाहकी मुमानियत कर दी। शराब पीना, बेचना और बनाना बन्द कर दिया गया। अन्तमें उसने सभी निजी सम्पत्तिको अपने अधिकारमें कर लिया। दान और वक्फ, सभी

संपत्तिपर राज्यका अधिकार हो गया। लोगोंपर भारी कर लगाये गये और करोंको इतनी सख्तीसे वसूल किया जाने लगा कि कर वसूलनेवाले अधिकारियोंसे लोग घृणा करने लगे और उनके साथ कोई अपनी बेटी व्याहना पसंद नहीं करता था। लेकिन अलाउद्दीनका लक्ष्य पूरा हो गया। षड्यंत्र और विद्रोह दबा दिये गये। अलाउद्दीनने तलवारके बलपर अपना राज्य चलाया। उसने मुसलमानों अथवा मुल्लाओंको प्रशासनमें हस्तक्षेप करनेसे रोक दिया और उसे अपने इच्छानुसार चलाया। उसके पास एक भारी बड़ी सेना थी जिसकी तनख्वाह सरकारी खजानेसे दी जाती थी। उसकी सेनाके पैदल सिपाहीको २३४ रुपये वार्षिक तनख्वाह मिलती थी। अपने दो घोड़े रखनेपर उसे ७८ रुपये वार्षिक और दिये जाते थे। सिपाही अपनी छोटी तनख्वाहपर गुजर बसर कर सकें, इसलिए उसने अनाज जैसी आवश्यक वस्तुओंसे लेकर ऐशके साधनों—गुलामों और रखैल औरतोंके निर्ख भी निश्चित कर दिये। सरकारकी ओरसे निश्चित मूल्यों-पर सामान बिकवानेका इन्तजाम किया जाता था और किसीकी हिम्मत सरकारी हुक्मको तोड़नेकी नहीं पड़ती थी।

अलाउद्दीनने कवियोंको आश्रय दिया। अमीर खुसरू और हसनको उसका संरक्षण प्राप्त था। वह इमारतें बनवानेका भी शौकीन था। उसने अनेक किले और मस्जिदें बनवायीं।

उसका बुढ़ापा दुःखमें बीता। १३१२ ई० के बाद उसे कोई सफलता नहीं मिली। उसकी तन्दुरुस्ती खराब हो गयी और उसे जलोदर हो गया। उसकी बुद्धि और निर्णय लेनेकी क्षमता नष्ट हो गयी। उसे अपनी बीवियों और लड़कोंपर भरोसा नहीं रह गया था। मलिक काफूर, जिसे उसने गुलामसे सेनापति बनाया, सुल्तानके नाम-पर शासन चलाता था। २ जनवरी १३१६ ई० को अला-उद्दीनकी मृत्युके साथ उसका शासन समाप्त हो गया।

अलाउद्दीन मसूद—गुलाम वंशका सातवाँ सुल्तान (१२४२–४६ ई०)। वह सुल्तान रुकनुद्दीनका बेटा था, जो सुल्तान इल्तुतमिश (१२११–१२३६ ई०) का दूसरा बेटा और उत्तराधिकारी था। वह सुल्ताना रजिया (१२३६–१२४० ई०) के गद्दीसे हटाये जानेके बाद सुल्तान बना। अलाउद्दीन मसूद अयोग्य शासक था जिसे १२४६ ई० में अमीरोंने तख्तसे उतार दिया और नासिरुद्दीनको सुल्तान बनाया।

अलाउद्दीन हुसेनशाह—१४९३ ई० से १५१८ ई० तक बंगालका सुल्तान। उसने बंगालमें हुसेनशाही वंशकी नींव डाली। वह अरबके सैयद वंशका था। बंगालमें वह सफल और लोकप्रिय शासक सिद्ध हुआ। उसने अपने राज्यमें आन्तरिक शांति स्थापित की, राजमहलके रक्षक सैनिकोंकी शक्ति घटायी, हब्शी सैनिकोंको निकाल बाहर किया और अपने राज्यकी सीमाएँ उड़ीसातक बढ़ायीं। उसने बिहारको जौनपुरके शासकोंसे छीन लिया और कूचबिहारके कामतापुरपर भी कब्जा कर लिया। उसने अपने राज्यमें, विशेष रूपसे गौड़में बहुत-सी मस्जिदें और खैरातखाने बनवाये। उसने धार्मिक सहिष्णुताका परिचय दिया और अपने राज्यमें बहुतसे हिन्दुओंको जैसे पुरन्दर खाँ, रूप और सनातनको उच्च पदोंपर नियुक्त किया। उसके २४ वर्षके शासनमें कहीं विप्लव अथवा विद्रोह नहीं हुआ। उसकी मृत्यु गौड़में हुई। उसकी प्रजा और उसके पड़ोसी राजा उसका सम्मान करते थे। उसकी मृत्युके बाद उसका बेटा नसरतशाह गद्दीपर बैठा।

अलार, जनरल—एक फ्रांसीसी, जो नेपोलियनके नेतृत्वमें लड़ चुका था। बादमें उसे महाराज रणजीतसिंह (१७९८–१८३९ ई०) ने अपनी सिख सेनाको संगठित तथा प्रशिक्षित करनेके लिए रख लिया।

अली आदिलशाह प्रथम—बीजापुरके आदिलशाही वंशका पाँचवां सुल्तान (१५५७–१५८० ई०)। उसने शिया मजहब स्वीकार कर लिया था और सुन्नियोंके प्रति असहिष्णु हो गया था। १५५८ ई० में उसने विजय नगरके हिन्दू-राज्यसे समझौता करके अहमदनगरपर चढ़ाई की। इन दोनों राज्योंकी सम्मिलित सेनाने अहमदनगरको तबाह कर दिया। अहमदनगरके मुसलमानों-पर हिन्दुओंने जो ज्यादतियाँ कीं उनके कारण शीघ्र ही सुल्तान अली आदिलशाह प्रथम और विजयनगरके राम राजाके सम्बन्ध बिगड़ गये। अंतमें बीजापुर, अहमद-नगर, बीदर और गोलकुंडाके चारों मुसलमान सुल्तानोंने मिलकर विजयनगरको तालीकोटके युद्ध (१५६५ ई०) में हरा दिया। विजेता अली आदिल शाह विजय नगर-को लूटने और सदाके लिए नष्ट करनेमें शामिल हो गया। इसके बाद सुल्तान अली आदिलशाह प्रथमने १५७० ई० में अहमदनगरसे समझौता करके भारतके पश्चिमी समुद्र-तटसे पुर्तगालियोंको निकाल बाहर करनेके प्रयासमें एक बड़ी सेना लेकर गोआको घेर लिया, लेकिन पुर्तगालियोंने हमला विफल कर दिया। अली आदिलशाहकी शादी अहमदनगरकी शाहजादी प्रसिद्ध चाँदबीबीसे हुई थी जिसने अकबरके आक्रमणके समय अहमदनगरकी रक्षा करनेमें

बड़ी वीरता दिखायी। वह अपने पतिकी मृत्युके बाद अहमदनगरमें आकर रहने लगी थी।

अली आदिलशाह द्वितीय–बीजापुरके आदिलशाही वंशका आठवाँ सुल्तान (१६५६–७३ ई०)। जब वह तख्तपर बैठा उसकी उम्र केवल १८ वर्षकी थी। उसकी छोटी उम्र देखकर मुगल बादशाह शाहजहाँने दक्षिणके सूबेदार अपने पुत्र औरंगजेबको उसपर आक्रमण करनेका आदेश दिया। मुगलोंने बीजापुरपर हल्ला बोल दिया और युवा सुल्तानकी फौजोंको कई जगह पराजित कर उसे १६५७ ई० में राज्यके बीदर, कल्याणी और परेन्दा आदि क्षेत्रोंको सौंप सुलह कर लेनेके लिए मजबूर किया।

मुगलोंसे सन्धि करनेके बाद सुल्तान अली आदिलशाह द्वितीयने मराठा नेता शिवाजीका दमन करनेका निश्चय किया, जिसने उसके कई किलोंपर अधिकार कर लिया था। १६५९ ई० में उसने अफजलखाँके नेतृत्वमें एक बड़ी फौज शिवाजीके खिलाफ भेजी। शिवाजीने अफजलखाँको मार डाला और बीजापुरकी सेनाको पराजित कर दिया। इस प्रकार अली आदिलशाह द्वितीयको शिवाजीका दमन करने अथवा उसकी बढ़ती हुई शक्तिको रोकनेमें सफलता नहीं मिली और वह मुगल और मराठा शक्तियोंके बीचमें चक्कीके दो पाटोंकी भाँति दब गया। वह किसी प्रकार १६७३ ई० में अपनी मृत्युतक अपनी गद्दी बचाये रहा।

अलीगढ़–उत्तर प्रदेशका एक शहर जिसका आधुनिक भारतीय इतिहासमें महत्त्वपूर्ण योग है। अलीगढ़में एक मजबूत किला था जिसे दूसरे आंग्ल-मराठा युद्धमें अंग्रेजोंने १८०३ ई० में मराठोंसे छीन लिया और इससे दिल्लीको जीतनेमें उन्हें बड़ी मदद मिली। सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोहका यह मुख्य केन्द्र रहा। नगरमें मुसलमानोंकी आबादी अधिक है। १८५७ ई० से यह नगर भारतीय मुसलमानोंका सांस्कृतिक केन्द्र बन गया है जब सर सैयद अहमद खाँके प्रयाससे यहाँ एंग्लो-ओरिएंटल कालेजकी स्थापना की गयी। शीघ्र ही यह कालेज भारतीय मुसलमानोंको अंग्रेजी शिक्षा देनेवाला प्रमुख केन्द्र बन गया। १९२० ई० में अलीगढ़ कालेजको विश्वविद्यालय बना दिया गया। अलीगढ़ आन्दोलन, जिसका उद्देश्य इस्लामकी उन्नति करना, भारतीय मुसलमानोंको पश्चिमी शिक्षा देना, सामाजिक कुरीतियाँ दूर करना और उन्हें १८८५ ई० से आरम्भ होनेवाली भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके प्रभावसे दूर रखना था, उसका केन्द्रबिन्दु अलीगढ़ ही था। अलीगढ़ कालेजके संस्थापकों और वहाँसे निकले छात्रोंके राष्ट्रीयता-विरोधी रवैयेसे अलीगढ़ प्रतिक्रियावादियोंका गढ़ समझा जाने लगा। १९०६ ई० में अलीगढ़के कुछ स्नातकोंने मुसलमानोंकी आकांक्षाओंको व्यक्त करनेके लिए मुस्लिम लीगकी स्थापना की। कुछ वर्षोंतक मुस्लिम लीगने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके साथ मिलकर भारतके लिए शासन-सुधारकी माँग की, लेकिन अन्तमें, वह घोर साम्प्रदायिक संस्था बन गयी और उसने पाकिस्तानकी माँग की। १९४७ में उसी माँगके आधार पर भारतका विभाजन हो गया।

अली गौहर, शाहजादा–देखो 'आलम शाह द्वितीय'।

अली नकी–गुजरातका दीवान, जबकि बादशाह शाहजहाँका चौथा बेटा शाहजादा मुराद वहाँका सूबेदार था। अली नकीकी हत्याके झूठे अभियोगमें मुरादको १६६१ ई० में मौतकी सजा दी गयी।

अलीनगरकी सन्धि–९ फरवरी १७५७ ई० को बंगालके नवाब सिराजुद्दौला और ईस्ट इंडिया कम्पनीके बीच हुई, जिसमें अंग्रेजोंका प्रतिनिधित्व क्लाइव और वाटसनने किया था। अंग्रेजों द्वारा कलकत्तेपर दुबारा अधिकार कर लेनेके बाद यह सन्धि की गयी। इस सन्धिके द्वारा नवाब और ईस्ट इंडिया कम्पनीमें निम्नलिखित शर्तोंपर फिरसे सुलह हो गयी :—ईस्ट इंडिया कम्पनीको मुगल बादशाहके फरमानके आधारपर व्यापारकी समस्त सुविधाएँ फिरसे दे दी गयीं; कलकत्तेके किलेकी मरम्मतकी इजाजत भी दे दी गयी; कलकत्तेमें सिक्के ढालनेका अधिकार भी उन्हें दे दिया गया तथा नवाब द्वारा कलकत्तेपर अधिकार करनेसे अंग्रेजोंको जो क्षति हुई थी उसका हरजाना देना स्वीकार किया गया और दोनों पक्षोंने शान्ति बनाये रखनेका वादा किया। इस सन्धिपर हस्ताक्षर करनेके एक महीने बाद अंग्रेजोंने उसका उल्लंघन कर, कलकत्तासे कुछ मील दूर गंगाके किनारेकी फ्रांसीसी बस्ती चन्द्रनगरपर आक्रमण करके उसपर अधिकार कर लिया। उसके दूसरे महीने जूनमें अंग्रेजोंने मीरजाफर और नवाबके अन्य विरोधी अफसरोंसे मिलकर सिराजुद्दौलाके विरुद्ध षड्यंत्र रचा। इस षड्यंत्रके परिणामस्वरूप २३ जून १७५७ ई० को पलासीकी लड़ाई हुई जिसमें सिराजुद्दौला हारा और मारा गया।

अली बरीद–बहमनी राज्यकी एक शाखा बिदरके बरीदशाही वंशका तीसरा सुल्तान। वह कासिम बरीदका पौत्र था, जिसने १४९२ ई० में बरीदशाही राजवंशकी स्थापना की। उसका पिता सुल्तान अमीर बरीद अपने राजवंशका दूसरा सुल्तान था। अली बरीद १५३९ ई० में गद्दीपर बैठा। बरीदशाही वंशका वह पहला शासक था जिसने अपनेको सुल्तान घोषित किया।

अली मर्दान खिलजी—को सुल्तान कुतुबुद्दीन (दे०) ने १२०६ ई० में बंगालका सूबेदार बनाकर भेजा। १२१० ई० में कुतुबुद्दीनकी मृत्युके बाद उसने अपनेको बंगालका स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया और अलाउद्दीनका खिताब रखा। सुल्तान इल्तुतमिश (दे०) ने १२३० ई० में उसको पराजित कर दिया।

अली मुहम्मद रुहेला—ने अवधके पश्चिमोत्तर भाग, हिमालयके तराई क्षेत्रमें स्थित रुहेलखंडमें रुहेलोंकी सत्ता स्थापित की। १७७४ ई० में रुहेलायुद्ध समाप्त होनेपर और उनके नेता हाफिज रहमत खाँके मरनेपर ईस्ट-इंडिया कम्पनीने उसके लड़के फैजुल्ला खांको रुहेल खंडके एक हिस्सेका, जिसमें रामपुर भी शामिल था, शासक बना दिया। इस प्रकार रामपुरके नवाबोंके परिवारकी शुरुआत हुई।

अली वर्दी खां—का मूल नाम मिर्जा मुहम्मद खाँ। उसको बंगालके नवाब शुजाउद्दीन (१७२५-३९ ई०) ने मिट्टीसे उठाकर आदमी बना दिया और वह अलीवर्दी या अलहवर्दी खाँके नामसे मशहूर हुआ। नवाब शुजाउद्दौलाकी मृत्युके समय अलीवर्दी खाँ बिहारमें नायब नाजिम (वित्त विभागका मुख्य अधिकारी) था, जो उस समय बंगालका हिस्सा था। शुजाउद्दीनके बाद उसका बेटा सरफराज खाँ बंगालका नवाब बना। इससे कुछ ही पहले नादिरशाह (दे०) की चढ़ाई हुई थी और उसने दिल्लीको लूटा था जिसके कारण पूरा मुगल प्रशासन हिल गया था। इस गड़बड़ीसे लाभ उठाकर अली वर्दी खाँने घूस देकर दिल्लीसे एक फरमान प्राप्त कर लिया जिसके द्वारा सरफराज खांको हटाकर उसकी जगह अलीवर्दी खाँको बंगालका नवाब बनाया गया था। अपने भाई हाजी अहमद और जगत सेठकी सहायतासे अलीवर्दी खाँने नवाब सरफराज खाँके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और १७४० ई० में राजमहलके निकट गिरियाकी लड़ाईमें उसे हराकर मार डाला और बंगालके नवाबकी मसनद (गद्दी) पर काबिज हो गया। बादशाहको नजरानेमें कीमती चीजें भेजकर उसने दिल्ली दरबारसे नवाब बंगालके रूपमें फिरसे सनद प्राप्त कर ली। इसके बाद उसने बंगालपर १६ वर्ष (१७४०–५६ ई०) तक लगभग एक स्वतंत्र शासकके रूपमें राज्य किया और कभी दिल्लीको मालगुजारी नहीं भेजी। यद्यपि उसने नवाबी बेईमानीसे प्राप्त की थी तथापि उसमें कुछ अच्छे गुण भी थे। अपने प्रारम्भिक जीवनमें वह योग्य प्रशासक और वीर योद्धा था। बंगालमें जो यूरोपीय कम्पनियाँ व्यापार करती थीं उनके साथ उसका व्यवहार पक्षपातहीन था। उसने उनको आपसमें लड़कर राज्यकी शान्ति भंग करनेकी इजाजत नहीं दी। लेकिन मराठे उसे बराबर परेशान करते रहे। वे प्रायः प्रतिवर्ष बंगालपर आक्रमण करते थे। वह मराठा आक्रमण रोकनेमें असमर्थ रहा, हालांकि उसने मराठा सरदार भास्कर पंडितकी दगाबाजीसे हत्या कर दी। अंतमें अलीवर्दी खाँने मराठोंसे १७५१ ई० में सुलह करके उन्हें उड़ीसाके राजस्वका एक हिस्सा और १२ लाख रुपया सालाना चौथ देना मंजूर कर लिया। उसके बाद उसने ६ वर्ष शान्तिसे राज्य किया और १७५६ ई० में ८० वर्षकी आयुमें उसकी मृत्यु हुई। उसकी मृत्युके बाद उसका नाती सिराजुद्दौला नवाब बना।

अलीवालकी लड़ाई—२८ जनवरी १८४८ ई० को प्रथम आंग्ल-सिख युद्धमें हुई। इस लड़ाईमें सिखोंकी हार हुई और उन्हें अपनी तोपोंको छोड़कर सतलज नदीके उस पार भाग जाना पड़ा।

अली शाह—कश्मीरका सातवाँ सुल्तान (१४१६–२० ई०)। उसके बाद उसका भाई सुल्तान जैनुल आब्दीन (१४२०–७० ई०) गद्दीपर बैठा जो कश्मीरका अकबर माना जाता है।

अलीबंधु—देखो मुहम्मद अली तथा शौकत अली।

अलेक्जेंड्रिया—नामकी दो बस्तियाँ सिकंदरने भारतपर अपने हमलेके दौरान स्थापित कीं, जिनमें एक अफगानिस्तानमें काबुलके निकट थी और दूसरी सिन्धमें चनाब और सिन्धुके संगमके निकट। बादमें दोनों बस्तियाँ समाप्त हो गयीं।

अलेक्जेंडर, ए० वी० (बादमें वाइकाउंट)—अप्रैल १९४६ ई० में लार्ड पैथिक लारेंसके नेतृत्वमें भारत आनेवाले ब्रिटिश मंत्रिमंडलके प्रतिनिधि दलका सदस्य।

अलेक्जेंडर (एपिरसका)—(२७२–२५५ ई० पू०) सम्भवतः अशोकके शिलालेख-संख्या १३ में अलिक सुन्दर नामसे इसीका उल्लेख किया गया है। यह भी सम्भव है कि शिलालेखमें वर्णित अलिक सुन्दर कोरिंथका अलेक्जेंडर (२५२–२४४ ई० पू०) हो। जो भी हो, इससे अशोकके समयको निश्चित करनेमें मदद मिलती है।

अलेक्जेंडर महान—देखो, सिकंदर महान्।

अलोर—सिन्धके अन्तिम हिन्दू राजा दाहिरके समय सिन्धकी राजधानी। अरबोंने मुहम्मद बिन कासिमके नेतृत्वमें उसे ७१२ ई० में जीतकर अपने कब्जेमें कर लिया। इसके बाद सिन्धपर मुसलमानोंका अधिकार हो गया।

अल्मीदा, डॉन फ्रांसिसको द—पूर्वमें पुर्तगाली उपनिवेशोंका पहला वायसराय (१५०५–०९ ई०)। उसका विश्वास

था कि पूर्वमें पुर्तगालियोंकी सफलता उनकी नौसेनाकी शक्तिपर निर्भर है और पूर्वमें पुर्तगाली साम्राज्यकी स्थापनाको वह कल्पना मात्र मानता था।

अल्लामी सादुल्ला खां–बादशाह शाहजहाँका खास वजीर। वह कुशल प्रशासक और योग्य सेनापति था जिसने अनेक अवसरोंपर मुगल सेनाका नेतृत्व किया था। वह अपने पदपर काम करते हुए १६५६ ई० में मरा।

अवध–प्राचीन कोसल (दे०) राज्यका आधुनिक नाम। यह इलाहाबादके उत्तर-पश्चिममें है। इस राज्यसे होकर सरयू नदी बहती है जो गंगामें मिल जाती है। रामायणके अनुसार रामचंद्रजीके पिता राजा दशरथ कोसलके राजा थे और अयोध्या उनकी राजधानी थी। ऐतिहासिक कालमें कोसल उत्तरी भारतके सोलह महाजनपदों (राज्यों) में से था और उसकी राजधानी श्रावस्ती थी। छठी शताब्दी ई० पू० में उसका राजा प्रसेनजित मगधराजा बिम्बिसार तथा अजातशत्रुका सम-सामयिक और प्रतिद्वन्द्वी था। कोसलको बादमें मगधने जीत लिया और नंदों तथा मौर्योंके मगध साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया। यह निश्चित रूपसे ज्ञात नहीं है कि कब सारा कोसल राज्य अयोध्याके नामसे विख्यात हो गया। उसका आधुनिक अवध नाम अयोध्या-का ही विकृत रूप है।

लगभग १५६ ई० पू० में अवध तथा उसकी राजधानी साकेत पर एक 'दुरात्मा वीर' यवनने आक्रमण किया। इस यवनकी पहचान मेनान्डर (दे०) तथा उसकी यवन (यूनानी) सेनाओंसे की जाती है। ईसवी सन्‌की चौथी शताब्दीमें अवध गुप्त साम्राज्यका एक भाग था और अयोध्या संभवतः पाँचवी शताब्दीमें गुप्त राजाओंकी दूसरी राजधानी थी। सातवीं शताब्दीमें यह हर्षवर्धन (दे०) के साम्राज्यमें सम्मिलित था और नौवीं शताब्दी-से यह गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्यका भाग रहा।

तरावड़ी (दे०) (११९२ ई०) की दूसरी लड़ाईके बाद ही शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी (दे०) के एक सहायक मलिक हिसमुद्दीन आगुल बकने अवधको जीत लिया। इसकी उर्वरा भूमि तथा स्वास्थ्यप्रद जलवायुसे आकर्षित होकर बहुत-से मुसलमान अमीर क्रमिक रीतिसे अवध चले आये और वहीं बस गये। विशेष रूपसे सुल्तान मुहम्मद तुगलकके राज्यकालमें बहुत-से मुसलमान अमीर यहाँ आकर बस गये। १३४० ई० में ऐनुल-मुल्कने, जो अवधका हाकिम था, और बड़ी योग्यताके साथ सूबेका शासन कर रहा था, सुल्तान मुहम्मद तुगलकके खिलाफ बगावत कर दी। उसकी बगावत कुचल दी गयी तथा उसे कैदखानेमें डाल दिया गया। इसके बाद अवध दिल्लीकी सल्तनतका एक भाग बना रहा, हालांकि उसका एक बड़ा हिस्सा जौनपुर राज्य (१३९९–१४७६ ई०) में मिला लिया गया था।

जौनपुर राज्यके पतनपर अवध फिर पूरी तौरसे दिल्लीकी सल्तनतका एक भाग बन गया। १५२६ ई० में इब्राहीम लोदीपर बाबरकी विजयके बाद अवधपर मुगलोंका शासन स्थापित हो गया। अकबरने अपने साम्राज्यको जिन १५ सूबोंमें बाँटा था, उनमें अवध भी था। १७२४ ई० तक अवध मुगल साम्राज्यका एक महत्त्वपूर्ण सूबा रहा।

१७२४ ई० में अवधके मुगल सूबेदार सआदत खाँने अपनेको लगभग स्वतंत्र कर लिया और अवधके नवाब वंशकी स्थापना की। वह अपनेको नवाब वजीर अर्थात् मुगल साम्राज्यका बड़ा वजीर कहता था। इन नवाब वजीरोंकी तीन पीढ़ियोंने अवधपर स्वतंत्र रीतिसे शासन किया। इनके नाम थे : (१) सआदत खाँ (१७२४–३९ ई०), (२) सफदरजंग (१७३९–५४ ई०) तथा शुजाउद्दौला (१७५४–७५ ई०)।

तीसरा नवाब वजीर शुजाउद्दौला (दे०) १७६४ ई० में बक्सरकी लड़ाईमें अंग्रेजोंसे हार गया। इसके बाद अवधकी शक्तिका ह्रास होने लगा। फिर भी १७७४ ई० में अवधने अंग्रेजोंकी सहायतासे रुहेलखंडको जीत लिया और इसके बाद उस क्षेत्रमें भी कुशासन फैल गया। शुजाउद्दौलाके बेटे तथा उत्तराधिकारी आसफुद्दौला (१७७५–९७ ई०) के राज्यकालमें अवधको भारतमें ब्रिटिश साम्राज्य तथा मराठा साम्राज्यके बीचका मध्य-वर्ती राज्य माना जाने लगा। १७९७ ई० में आसफुद्दौला-की मृत्युके बाद उसकी गद्दीपर कुछ समयके लिए उसका जारज बेटा वजीर अली (१७९७–९८ ई०) बैठा। इसके बाद अंग्रेजोंने उसे हटा दिया और अवधकी गद्दी-पर आसफुद्दौलाके भाई सआदत खाँको बैठाया। नये नवाबने १७९८ से १८१४ ई० तक शासन किया और कम्पनीसे एक संधि कर ली। इस संधिके द्वारा कम्पनीने अवधकी रक्षाका भार अपने ऊपर ले लिया। इसके बदलेमें नवाबने इलाहाबादका किला कम्पनीको सौंप दिया और ७६ लाख रुपये वार्षिक खिराज देनेका वादा किया। इस प्रकार अवध एक प्रकारसे कम्पनीका रक्षित अधीनस्थ राज्य बन गया। यह बात १८०१ ई० की संधिसे और अच्छी तरह स्पष्ट हो गयी, जब अवधका नवाब

रुहेलखंड तथा गंगा और यमुनाका सारा इलाका अर्थात् अपना लगभग आधा इलाका कम्पनीको सौंप देनेके लिए विवश हुआ। शेष आधा इलाका नवाबके शासनमें रहा।

सआदत खाँके बेटे तथा उत्तराधिकारी गाजीउद्दीन हैदर (१८१४–२७ ई०) को गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्स (दे०) ने १८१९ ई० में शाहकी उपाधि प्रदान की। किंतु शाह गाजीउद्दीन हैदर तथा उसके उत्तराधिकारियों—नसीरुद्दीन हैदर (१८२७–३७ ई०), मुहम्मद अलीशाह (१८३७–४२ ई०), अमजद अली शाह (१८४२-४७ ई०) तथा वाजिदअली शाह (१८४७–५६ ई०) के शासन कालमें अवधका कुशासन कायम रहा। १८५६ ई० में कुशासनके अभियोगमें वाजिद अली शाहको गद्दीसे उतार दिया गया और अवध ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया।

अवधके नवाबोंने राजधानी लखनऊमें कई खूबसूरत मसजिदें और इमारतें बनवायीं। उन्होंने लखनऊको मुसलिम संस्कृति, संगीत और बिलासिताका केन्द्र बना दिया। अवधके अंग्रेजोंके भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया जानेपर नवाबकी फौजें बर्खास्त कर दी गयीं। इसके फलस्वरूप नवाबोंके आश्रित हजारों व्यक्ति बेकार हो गये और उनमें असंतोष फैल गया। गदर (दे०) के अनेक कारणोंमें एक कारण यह भी था।

अवध काश्तकारी कानून—अधिकांशतः गवर्नर-जनरल सर जान लारेंसके समर्थनसे १८६८ ई० में पास हुआ। अवधमें नवाबोंके शासनकालमें बहुतसे प्रभावशाली ताल्लुकेदार नियुक्त हो गय थे जिनमें अधिकांशतः राजपूत थे। वे काश्तकारोंका बुरी तरह शोषण करते थे। अधिकांश काश्तकार शिकमी थे जिन्हें जब चाहे तब बेदखल किया जा सकता था। अवध काश्तकारी कानूनके द्वारा अवधके काश्तकारोंकी अवस्था, कुछ हदतक सुधारनेकी कोशिशकी गयी। उन्हें कुछ विशेष शर्तोंपर जमीनपर दखल रखनेके अधिकार दे दिये गये। यह व्यवस्था की गयी कि लगान बढ़ानेपर किसानोंने भूमिमें जो स्थायी सुधार किये होंगे उनके लिए उन्हें मुआवजा दिया जायगा और न्यायालयमें दर्खास्त देनेके बाद ही न्यायोचित आधारपर लगान बढ़ाया जा सकेगा। यह उपयोगी और किसानोंके लिए हितकारी कानून था।

अवमुक्त—नामक राज्यका उल्लेख समुद्रगुप्तके प्रयाग-स्तम्भ लेखमें आया है। उसका राजा नीलराज बताया गया है जिसे समुद्रगुप्तने पराजित किया था, परन्तु बादमें उसे उसका राज्य लौटा दिया था। अवमुक्त दक्षिणमें था लेकिन उसकी ठीक स्थितिका पता नहीं चलता है।

अवन्ती—प्राचीन भारतका महत्त्वपूर्ण राज्य। उसकी राजधानी उज्जयिनी आधुनिक मालवामें थी। उसकी गणना १६ राज्यों (षोडस जनपदों) में की जाती थी। प्राचीन बौद्ध ग्रंथोंके अनुसार ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दीमें बौद्ध धर्मके उदयसे कुछ पहले भारत १६ जनपदोंमें विभाजित था। इनमें अवन्ती भी था। बादमें अवन्तीने पड़ोसके छोटे राज्योंको आत्मसात् कर लिया और उसकी गणना भारतके चार बड़े राज्योंमें की जाने लगी। तीन अन्य वत्स (इलाहाबाद क्षेत्र), कोशल (अवध) और मगध (दक्षिणी बिहार) के राज्य थे। अवन्तीका राजा प्रद्योत मगधके बिंबसार और अजातशत्रुका समसामयिक था। चन्द्रगुप्त मौर्यने चौथी शताब्दी ईसा पूर्वमें अवन्ती-को जीतकर अपने साम्राज्यमें मिला लिया।

अवन्ति वर्मा—कन्नौजके मौखरि वंशका राजा, जो स्थानेश्वरके पुष्यभूति वंशके राजा प्रभाकरवर्धनका समसामयिक था। उसके पुत्र गृहवर्माने प्रभाकरवर्द्धनकी पुत्री राज्यश्रीसे विवाह किया था।

अवन्ती वर्मा (कश्मीरका)—ने ८५५ ई० में कश्मीरमें उत्पल राजवंशकी स्थापना की और कर्कोटक राजवंशको उखाड़ फेंका। उसके आदेशसे कश्मीरमें सिंचाईके लिए नहरोंका निर्माण किया गया, जिससे उसे बहुत कीर्ति मिली।

अवतार—सर्वशक्तिमान् परमात्माके पृथ्वीपर जीवधारी बनकर आनेपर उन्हें 'अवतार' कहा जाता है। सनातनी हिन्दुओंका विश्वास है कि जब धर्म क्षीण हो जाता है और अधर्म बढ़ता है तो सर्वशक्तिमान् परमात्मा पृथ्वीपर जीवधारीके रूपमें प्रकट होकर धर्मकी रक्षा करता है और अधर्मका नाश कर धर्मकी पुनस्स्थापना करता है। सर्वशक्तिमान् परमात्माके इन जीवधारी रूपोंको सनातनी हिन्दू 'अवतार' मानते हैं। इनके अनुसार अबतक ऐसे नौ अवतार हो चुके हैं और दसवाँ कल्कि-अवतार होना बाकी है। पिछले नौ अवतारोंमें मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीरामचन्द्र, बलराम और बुद्ध हैं। **(भागवत—४, ७-८)**

अविता बिले, जनरल—नेपोलियनकी सेनाका एक अफसर, जो अपना भाग्य आजमानेके लिए भारत आया। उसे पंजाबके राजा रणजीत सिंहने सिख सेनाको यूरोपीय ढंगसे संगठित करनेके लिए नौकर रख लिया।

अव्यवस्थित प्रान्त—अंग्रेजोंके भारतीय साम्राज्यके अंतर्गत उन प्रान्तोंको कहा जाता था, जिनमें मई १७९३ ई० में जारी लार्ड कार्नवालिसका विधि-विधान व्यवहृत नहीं होता था। ऐसे प्रान्त दिल्ली, असम, अराकान और तेना-

सेरीम, सागर और नर्मदा क्षेत्र, तथा पंजाब थे, जो क्रमशः १८०३ ई०, १८२४ ई०, १८१८ ई० और १८१६ ई० में हस्तगत किये गये थे। इन प्रान्तोंका मुख्य अधिकारी चीफ़ कमिश्नर कहलाता था और जिलोंके अधिकारी डिप्टी कमिश्नर। इन प्रांतोंमें सैनिक पदाधिकारी भी नागरिक सेवाओं हेतु नियुक्त किये जा सकते थे।

अशोक—(लगभग २७३–२३२ ई० पू०) मौर्य राजवंशका तीसरा सम्राट्, जिसकी स्थापना उसके पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य (लगभग ३२२–२९८ ई० पू०) ने की थी। चंद्रगुप्त मौर्यके बाद उसका पिता बिन्दुसार (लगभग २९८–२७३ ई० पू०) गद्दीपर बैठा था। सिंहली इतिहासमें सुरक्षित जनश्रुतियोंके अनुसार अशोक अपने पिता बिन्दुसारके अनेक पुत्रोंमेंसे एक था और जिस समय बिन्दुसारकी मृत्यु हुई उस समय अशोक मालवामें उज्जैनमें राजप्रतिनिधि था। राजपदके उत्तराधिकारके लिए भयंकर भ्रातृयुद्ध हुआ जिसमें उसके ९९ भाई मारे गये और अशोक गद्दीपर बैठा। अशोकके शिलालेखोंमें इस भ्रातृयुद्धका कोई संकेत नहीं मिलता है। इसके विपरीत शिलालेख सं० ५ से प्रकट होता है कि अशोक अपने भाई-बहिनोंके परिवारोंका शुभचिंतक था। इसलिए गद्दीपर बैठनेके पहले अशोक द्वारा भ्रातृयुद्धमें भाग लेनेकी बातको कुछ इतिहासकार सच नहीं मानते हैं। गद्दीपर बैठनेके चार वर्ष बादतक उसका राज्याभिषेक अवश्य नहीं हुआ। इसे इस बातका प्रमाण माना जाता है कि उसको राजा बनानेके प्रश्नपर कुछ विरोध हुआ।

अशोक सीरियाके राजा एण्टियोकस द्वितीय (२६१–२४६ ई० पू०) और कुछ अन्य यवन (यूनानी) राजाओंका समसामयिक था जिनका उल्लेख शिलालेख सं० ८ में है। इससे विदित होता है कि अशोकने ईसा पूर्व तीसरी शताब्दीके उत्तरार्धमें राज्य किया, किंतु उसके राज्याभिषेककी सही तारीखका पता नहीं चलता है। उसने ४० वर्ष राज्य किया। इसलिए राज्याभिषेकके समय वह युवक ही रहा होगा।

अशोक का पूरा नाम अशोकवर्द्धन था। उसके लेखोंमें उसे सदैव 'देवानामपिय' (देवताओंका प्रिय) और 'पियदर्शिन्' (प्रियदर्शी) सम्बोधित किया गया है। केवल यास्कीके लघु शिलालेखमें उसको 'देवानाम्-पिय अशोक' लिखा गया है।

अशोकके राज्यकालके प्रारम्भिक १२ वर्षोंका कोई सुनिश्चित विवरण उपलब्ध नहीं है। इस कालमें अपने पूर्ववर्ती राजाओंकी भांति वह भी समाज (मेलों), मृगया (शिकार), मांस भोजन और आनन्द यात्राओंमें प्रवृत्त रहता था। किन्तु उसके राज्यकालके १३वें वर्षमें उसके जीवनमें आमूल परिवर्तन हो गया। इस वर्ष राज्याभिषेकके आठ वर्ष बाद, उसने बंगालकी खाड़ीके तटवर्ती राज्य कलिंगपर आक्रमण किया। कलिंग राज्य उस समय महानदी और गोदावरीके बीचके क्षेत्रमें विस्तृत था। इस युद्धके कारणका पता नहीं चलता है, लेकिन उसने कलिंगको विजय करके उसे अपने राज्यमें मिला लिया। इस युद्धमें भयंकर रक्तपात हुआ। एक लाख व्यक्ति मारे गये और डेढ़ लाख बन्दी बना लिये गये तथा कई लाख व्यक्ति युद्धके बाद आनेवाली अकाल, महामारी आदि विभीषिकाओंसे नष्ट हो गये। अशोकको लाखों मनुष्योंके इस विनाश और उत्पीडनसे बहुत पश्चात्ताप हुआ और वह युद्धसे घृणा करने लगा। इसके बाद ही अशोक अपने शिलालेखोंके अनुसार 'धम्म' (धर्म) में प्रवृत्त हुआ। यहाँ धम्मका आशय बौद्ध धर्म लिया जाता है और वह शीघ्र ही बौद्ध धर्मका अनुयायी बन गया। बौद्ध मतावलम्बी होनेके बाद अशोकका व्यक्तित्व एक दम बदल गया। आठवें शिलालेखमें, जो सम्भवतः कलिंग-विजयके चार वर्ष बाद तैयार किया गया था, अशोकने घोषणा की—"कलिंग देशमें जितने आदमी मारे गये, मरे या कैद हुए उसके सौवें या हजारवें हिस्सेका नाश भी अब देवताओंके प्रियको बड़े दुःखका, कारण होगा।" उसने यह भी घोषणा की कि "(आप) विश्वास रखें कि जहाँतक क्षमाका व्यवहार हो सकता है, वहाँतक राजा हम लोगोंके साथ क्षमाका बर्ताव करेगा।" उसने आगे युद्ध न करनेका निश्चय किया और बादके ३१ वर्षके अपने शासन-कालमें उसने मृत्युपर्यंत फिर कोई लड़ाई नहीं ठानी। उसने अपने उत्तराधिकारियोंको भी परामर्श दिया कि वे शस्त्रों द्वारा विजय प्राप्त करनेका मार्ग छोड़ दें और धर्म द्वारा विजयको वास्तविक विजय समझें। अशोकने अब समाजों और मृगयामें भाग लेना और मांसाहार करना छोड़ दिया। इसके बदलेमें उसने धर्मयात्राएँ आरम्भ कर दीं। उसने अपने शासनके १४वें वर्षमें बोधगया और २४वें वर्षमें बुद्धके जन्मस्थान लुम्बिनीकी यात्राएँ कीं। इन यात्राओंमें वह साधारण लोगोंसे मिलता था और उन्हें धर्मका उपदेश देता था। धर्मविजयके लिए उसने अपने शासन कालके १६वें वर्ष से ३२वें वर्ष तक शिला और स्तम्भ-लेख अंकित कराये। उसने जनतामें धर्मके प्रचारके लिए अपने अधिकारियोंको आदेश दिया कि वे केवल प्रशासनका काम काज न देखें वरन् धर्मका भी प्रचार करें। उसने अपने

शासनके १७वें वर्षमें 'धम्म महामात्र' नामक अधिकारियोंको धर्मके प्रचारके लिए नियुक्त किया, जिनका मुख्य कार्य सारे राज्यमें धर्मकी वृद्धि करना था। उसने अपने सभी अधिकारियोंको बताया कि उसकी प्रजा उसकी सन्तानके समान (सर्वे मुनिषा प्रजा मम) है, अतः उसके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाना चाहिए जैसा कि राज परिवारके सदस्योंके साथ किया जाता है। उसने अपने अधिकारियोंको निष्पक्ष रूपसे करुणा-मिश्रित न्याय करनेका आदेश दिया। उसने अपनी प्रजाको विचारों और व्यवहारमें एक दूसरेके प्रति सहिष्णुता प्रदर्शित करनेकी सलाह दी। उसने ऐसी गोष्ठियोंको प्रोत्साहन दिया जिसमें सभी धर्मोंकी अच्छाइयोंपर विचार किया जाय ताकि लोगोंका दृष्टिकोण उदार बने। उसने न केवल अपने विशाल साम्राज्यके विभिन्न भागोंमें धर्म-प्रचारक भेजे, वरन् विदेशों और दक्षिण भारतके सीमावर्ती राज्योंमें भी धर्म-प्रचारक भेजे। उसके धर्मप्रचारक सीरिया, मिस्र, साइरिनि, मैसीडोनिया और एपीरसके यवन राज्यों तथा लंका और संभवतः बर्मामें भी गये। उसके धर्म-प्रचारक एशिया, अफ्रीका और यूरोप तीनों महादेशोंमें गये। अशोकने बौद्ध धर्मका चारों दिशाओंमें प्रचार किया जिससे उसने एक विश्वधर्मका रूप ले लिया। उसने मनुष्यों और पशुओं--सभीके कल्याणके लिए राजमार्गोंके किनारे पेड़ लगवाये, कुएं खुदवाये। उसने मनुष्य और पशुओंकी चिकित्साके लिए औषधालय केवल अपने राज्यमें ही नहीं वरन् पड़ोसी यवन राज्योंमें भी खुलवाये। उसने उन राज्योंमें औषधियाँ और ओषधि-वनस्पतियोंके पौधे भी लगवाये। अशोकने जाति, भाषा अथवा धर्मका भेदभाव किये बिना सभी मनुष्योंके कल्याणके लिए कार्य किया। अशोकने मनुष्य मात्रके कल्याणके लिए जितना कार्य किया उसके आधारपर उसने इतिहास में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है और वह मैसीडोनियाके सिकंदर, रोमके जूलियस सीज़र और फ्रांसके नेपोलियनकी तुलनामें महान् कहलानेका कहीं अधिक अधिकारी है।

अशोकका साम्राज्य उत्तर-पश्चिममें हिन्दूकुशसे पूर्वमें बंगालतक और उत्तरमें हिमालयकी तराईसे दक्षिणमें पेन्नार नदीतक फैला था। उसके शिलालेख उसके विशाल साम्राज्यके सभी भागोंमें मिले हैं। अफगानिस्तानके कंधार और जलालाबाद, मैसूरमें मास्की, काठियावाड़में गिरनार और उड़ीसाके तोसली नामक स्थानोंमें उसके शिलालेख मिले हैं। ये शिलालेख सामान्य नागरिकोंके उद्‌बोधनके उद्देश्यसे उत्कीर्ण कराये गये थे, अतः उनको उन्हीं लिपियोंमें लिखवाया गया जो जनतामें प्रचलित थीं। इसलिए कंधार और जलालाबादके शिलालेखोंमें यूनानी और अरमइक लिपियोंका, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तके शाहबाजादी और मानसेरामें खरोष्ठी लिपिका और भारतके शेष भागके शिलालेखोंमें ब्राह्मी लिपिका प्रयोग किया गया। इनकी भाषा अर्ध-मागधी थी जो पालीसे बहुत मिलती-जुलती है और जिसे भारतीय लोग शायद आसानीसे पढ़ और समझ लेते थे।

अशोकके लेख शिलाओं, प्रस्तर-स्तम्भों और गुफाओंमें पाये जाते हैं। उसके लेखोंको तीन श्रेणियोंमें बाँटा जा सकता है—शिलालेख, स्तम्भलेख और गुफालेख। शिलालेखों और स्तम्भलेखोंको दो उपश्रेणियोंमें रखा जाता है। १४ शिलालेख सिलसिलेवार हैं जिनको चतुर्दश शिलालेख कहा जाता है। ये शिलालेख शाहबाजगढ़ी, मानसेरा, कालसी, गिरनार, सोपारा, धौली और जौगढ़में मिले हैं। कुछ फुटकर शिलालेख असम्बद्ध रूपमें हैं और संक्षिप्त हैं, शायद इसीलिए उन्हें लघु शिलालेख कहा जाता है। इस प्रकारके लघु शिलालेख रूपनाथ, सासाराम, बैराट, मास्की, सिद्धपुर, जतिंगरामेश्वर और ब्रह्मगिरिमें पाये गये हैं। दूसरी श्रेणीके लघु शिलालेख वैराट (जिसे भाब्रू भी कहते हैं), येरागुडी और कोपबालमें मिले हैं। दो अन्य लघु शिलालेख अभी हालमें अफगानिस्तानमें—एक जलालाबादमें और दूसरा कंधारके निकट मिले हैं। इनके अलावा सात लेख स्तम्भोंपर उत्कीर्ण हैं जिसके कारण वे स्तम्भ-लेखके नामसे प्रसिद्ध हैं। ये स्तम्भलेख दिल्ली, इलाहाबाद, लौरिया-अरराज, लौरिया नन्दनगढ़ और रामपुरवामें मिले हैं। कुछ स्तम्भोंपर केवल एक-एक लेख है, अतः उन्हें सात स्तम्भलेखोंके क्रमसे अलग रखा गया है और वे लघुस्तम्भ लेख कहे जाते हैं। इस प्रकारके लघु स्तम्भलेख सारनाथ, साँची, रुम्मिनदेह और निग्लीवमें मिले हैं। अन्तिम तीन लेख बराबर पहाड़ियोंकी गुफाओंमें मिले हैं और उनको गुफालेखके नामसे पुकारा जाता है।

कहा जाता है कि अशोकने एक हजार स्तूपोंका निर्माण कराया था जिनमेंसे भिलसाके एक स्तूपको छोड़कर शेष सभी नष्ट हो गये। उसका राजप्रासाद, जिसे फाहियेन (दे०) ने चौथी शताब्दीमें देखा था, सातवीं शताब्दीमें ह्यु एन-त्सांगकी यात्राके समयतक नष्ट हो गया था। अशोकका राजप्रासाद इतना भव्य था कि उसे देखकर यह समझा था कि उसको अशोकके लिए देवोंने तैयार किया होगा। उसके कुछ प्रस्तर-स्तम्भोंपर इतनी

सुंदर पालिश है कि शताब्दियों बीत जानेपर भी खराब नहीं हुई है और ललित-कला और स्थापत्य-कलाके पारखी उनकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। दूर-दूरतक फैले हुए ये प्रस्तर-स्तम्भ एक ही चट्टानसे काटकर बनाये गये थे और भारतीय शिल्पके अनुपम उदाहरण हैं। "उनको देखनेसे मालूम होता है कि उस समय पत्थरपर पालिश करनेकी कला अत्यन्त उन्नत थी और आधुनिक युगमें यह कला विलुप्त हो गयी है।" बड़ी चट्टानोंको काटने और उन्हें उनकी खदानोंसे सैकड़ों मील दूर ले जाने और कभी-कभी तो पहाड़ी चोटियोंतक पहुँचानेकी इंजीनियरिंगकी कलाने भी उस युगमें बहुत उन्नति कर ली थी। प्रत्येक प्रस्तर-स्तम्भके शीर्षभागपर एक अथवा अनेक पशुओंकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण मिलती हैं। इन मूर्तियोंके आसनको उलटे हुए कमलकी आकृति प्रदान की गयी है। कला-पारखियोंने इन प्रस्तर-स्तम्भों, विशेष रूपसे सारनाथ स्तम्भके कलात्मक शीर्षभागकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की है और सर जान मार्शलके अनुसार "प्राचीन कालमें इसके जोड़की कोई कलाकृति अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।"

अशोकके पारिवारिक जीवनके बारेमें हमें बहुत कम जानकारी है। बादके साहित्यमें सुरक्षित जनश्रुतियोंके अनुसार उसके कई रानियाँ थीं। उसके शिलालेखोंमें केवल दो रानियोंका उल्लेख मिलता है जिनमेंसे दूसरी रानीका नाम कारुवाकी अथवा चारुवाकी था जो तीवरकी माता थी। इसी प्रकार अशोकके पुत्रोंके सम्बन्धमें हमें बहुत कम जानकारी मिलती है। तीवर उसका एक पुत्र था, लेकिन और दूसरे कान और कितने पुत्र थे, यह सब अज्ञात है। सिंहली इतिहास-ग्रंथोंके अनुसार महेन्द्र, जिसने श्रीलंकामें बुद्धधर्मका प्रचार किया अशोकक पुत्र था जिसे उसने धर्मप्रचारके लिए वहाँ भेजा था। यदि ऐसा था तो महेन्द्रकी बहिन और सहायिका संघमित्रा अशोककी पुत्री थी, लेकिन शिलालेखोंमें इसका कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता है। साहित्यिक अनुश्रुतियोंमें अशोकके दो पुत्रोंका नाम मिलता है, वे कुणाल और जालौक थे। लेकिन अशोकके उत्तराधिकारीके रूपमें उसका कोई लड़का सिंहासनपर नहीं बैठा। उसका राज्य उसके दो पौत्रों दशरथ और सम्प्रतिको मिला जिन्होंने उसे आपसमें बाँट लिया।

इस बातका भी विवरण नहीं मिलता है कि अशोकके कर्मठ जीवनका अन्त कब, कैसे और कहाँ हुआ। तिब्बती परम्पराके अनुसार उसका देहावसान तक्षशिलामें हुआ। उसके एक शिलालेखके अनुसार अशोकका अन्तिम कार्य भिक्षुसंघमें फूट डालनेकी निन्दा करना था। सम्भवतः यह घटना बौद्धोंकी तीसरी संगीतिके बाद-की है। सिंहली इतिहास-ग्रंथोंके अनुसार तीसरी संगीति अशोकके राज्यकालमें पाटलीपुत्रमें हुई थी।

कलिंग-विजयके बाद अशोक व्यक्तिगत रूपसे बौद्ध मतावलम्बी हो गया था। यह बात इससे सिद्ध होती है कि उसने अपनेको यास्कीके लघु शिलालेख संख्या १ में बौद्ध-शाक्य बतलाया है और भाब्रूके शिलालेखमें भी तीन रत्नों (बुद्ध, धर्म और संघ) में अपनी आस्था व्यक्त की है। सारनाथके शिलालेखसे स्पष्ट है कि उसने केवल बौद्ध तीर्थस्थलोंकी यात्राएँ कीं और बौद्ध भिक्षु संघकी एकता बनाये रखनेका प्रयत्न किया। इससे भी यही प्रकट होता है कि वह बौद्ध मतावलम्बी था।

लेकिन उसके किसी भी शिलालेखमें बौद्धधर्मके मूलभूत सिद्धान्तों—चार आर्य सत्य, अष्टांगिक-मार्ग तथा निर्वाणका उल्लेख नहीं है। इसके विपरीत उसके शिलालेखोंमें बौद्धधर्मकी शिक्षाओंके विरुद्ध लिखा है कि धर्मके मंगलाचारसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। इन बातोंसे कुछ विद्वानोंने यह निष्कर्ष निकाला है कि अशोकने जिस 'धम्म'का उपदेश दिया वह बौद्धधर्म नहीं, विश्वधर्म था। यह निष्कर्ष सही नहीं मालूम होता है। अशोकके शिला-लेखोंमें 'धम्म' शब्दका प्रयोग उसी धर्मके लिए किया गया है जिसे वह व्यक्तिगत रूपसे मानता था और जिसका उसने अपनी प्रजामें प्रचार किया। इसलिए यदि वह व्यक्तिगत रूपसे बौद्ध मतावलम्बी था तो उसके द्वारा प्रचारित धर्म भी बौद्धधर्म था। उसके शिला-लेखोंमें बार-बार यही दोहराया गया है कि पशुओंपर दया करनी चाहिये, माता-पिता और गुरुजनकी आज्ञा माननी चाहिये, सच बोलना चाहिये तथा सभीके साथ नम्रताका व्यवहार करना चाहिये। ये शिक्षाएँ निस्संदेह सभी धर्मोंमें पायी जाती हैं, लेकिन किसी भी धर्ममें उनपर इतना जोर नहीं दिया गया जितना बौद्ध धर्ममें। बौद्धधर्मकी पुस्तकोंमें निर्देश है कि बौद्ध मतावलम्बी गृहस्थोंको इनका पालन करना चाहिये। अशोकने अपने शिलालेखोंमें जिस धर्मका प्रचार किया वह साधारण गृहस्थोंके लिए था अतः उसे बौद्ध धर्म मानना ही सही है। (**हलजव, सी० आई० आई०, १, भंडारकर—अशोक, मुखर्जी—अशोक, स्मिथ, ई० एच० आई०, वेल्स—हिस्ट्री आफ दि वर्ल्ड, भट्टाचार्य—सेलेक्ट अशोकन एपीग्राफ्स**)।

अश्वघोष—बौद्धभिक्षु और आचार्य जो ईसाकी दूसरी शताब्दी-में हुआ। उसका जन्म मगधमें हुआ था, लेकिन बादमें

वह उत्तरी भारतके महान कुषाण राजा कनिष्कका सभा-पंडित हो गया और पेशावरमें रहने लगा। वह कवि, संगीतज्ञ, विद्वान्, दार्शनिक, नाट्यकार एवं धार्मिक शास्त्रार्थमें कुशल बौद्धाचार्य था। धर्म एवं आचारनिष्ठ बौद्धभिक्षुओंमें उसका बड़ा आदर था। उसके नाटकोंमें 'राष्ट्रपाल' और 'सारिपुत्र प्रकरण' विख्यात हैं। उसने 'सूत्र-अलंकार' नामक काव्य भी लिखा था। उसका 'बुद्ध चरित' रामायणकी भाँति एक धार्मिक महाकाव्य है जिसमें गौतमबुद्धके जीवन और शिक्षाओंका वर्णन है। उसने कनिष्क द्वारा पेशावरमें आयोजित चौथी 'बौद्ध संगीति' में प्रमुख भाग लिया। उसने अपने 'महायान श्रद्धोत्पाद संग्रह' नामक ग्रंथमें शून्यवादका प्रतिपादन किया है और त्रिकायवाद (धर्मकाय, संभोगकाय, निर्माणकाय) के सिद्धांतका विकास किया है। उसके मतानुसार बुद्धत्वकी प्राप्तिके हेतु एक बौद्धके लिए बुद्धके इस त्रिविध रूपमेंसे किसी एक रूपमें भक्ति रखना आवश्यक है। महायानी सम्प्रदायके विकासमें उसके विचारोंका काफी योगदान है। (इन०)

अश्वमेध–का विधान ऋग्वेदमें मिलता है। जब कोई विजयी राजा अपनेको सार्वभौम राजा घोषित करना चाहता था तो वह अश्वमेध करता था। इस यज्ञमें एक घोड़ा छोड़ा जाता था जो साल भर इच्छानुसार विचरण करता था। उस घोड़ेके पीछे-पीछे सेना चलती थी जिसका नायकत्व अश्वमेध करनेवाला राजा अथवा उसकी ओरसे नियुक्त कोई राजकुमार करता था। जब अश्वमेधका घोड़ा किसी दूसरे राजाके राज्यमें प्रवेश करता था तो वह या तो युद्ध करता था या बिना लड़े अधीनता स्वीकार कर लेता था। यदि अश्वमेध करनेवाला राजा उन सभी राजाओंको, जिनके राज्यसे होकर घोड़ा गुजरता था, परास्त करने अथवा अपने अधीन बनानेमें सफल हो जाता था तो वह सर्वविजयी बनकर अधीनस्थ राजाओं-के साथ अपनी राजधानी लौटकर एक महोत्सव करता था, जिसमें उस घोड़ेकी बलि दी जाती थी। इस यज्ञमें ऋत्विक् (यज्ञ करानेवाला पुरोहित) पारिप्लव नामक आख्यान तथा प्राचीन राजाओंके आख्यानोंको सुनाता था और एक वीणावादक क्षत्रिय वीणापर यज्ञकर्ता राजाकी विजययात्राओंपर स्वरचित प्रशस्तिका गायन करता था। बुद्धने युद्धकथा, भयकथा आदि निरर्थक कथाएँ कहनेकी प्रथाके साथ-साथ अश्वमेधकी भी तीव्र भर्त्सना की और कुछ समय तक इसकी परिपाटी बंद रही। परंतु पुष्यमित्र शुंग (लगभग १८५ ई० पू०–१५० ई० पू०) ने यह परिपाटी फिरसे चला दी। कालिदासके मालविकाग्निमित्र नाटकके अनुसार उसने यवनोंपर विजय प्राप्त करनेके उपलक्ष्यमें, जो सिंधु नदीके तटतक आ गये थे, अश्वमेध किया। चौथी शताब्दी ईसवीमें द्वितीय गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त (दे०) ने भी अपनी विजययात्राओंके उपलक्ष्यमें अश्वमेध किया। पाँचवीं शताब्दीमें कामरूपके पुष्य-वर्मा वंशके छठे राजा महेन्द्रवर्माने भी अश्वमेध किया। सातवीं शताब्दीमें बादके गुप्त राजा आदित्यसेनने भी अश्वमेधका अनुष्ठान किया। दक्षिण भारतमें कई चालुक्य राजाओंने भी इस यज्ञका अनुष्ठान किया।

अष्टप्रधान–मराठा राज्यके संस्थापक शिवाजीके आठ मंत्रियोंकी परिषद थी जो प्रशासनको चलानेमें उनकी सहायता करती थी। परिषदका कार्य केवल सलाह देना था और उसे उत्तरदायी मंत्रिपरिषद नहीं कहा जा सकता। अष्टप्रधानमें निम्नलिखितकी गणना की जाती थी: (१) पेशवा अथवा प्रधानमंत्री, जो सामान्य रीतिसे राज्यके हितोंपर दृष्टि रखता था; (२) अमात्य, वित्त-विभागका प्रधान होता था; (३) मंत्री, राजाके सैनिक कार्यों और दरबारकी काररवाइयोंका लेखा रखता था; (४) सचिव, राजकीय पत्र-व्यवहारका अधीक्षक था; (५) सामन्त, वैदेशिक मामलोंकी देखरेख करता था; (६) सेनापति; (७) पंडितराव और दानाध्यक्ष राजाका पुरोहित होता था जो दानकी व्यवस्था करता था; (८) न्यायाधीश अथवा शास्त्री जो हिन्दू न्यायकी व्याख्या करता था। पंडितराव और शास्त्रीको छोड़कर अष्ट-प्रधानमें शामिल सभी मंत्री भी होते थे और उनके विभागों-से सम्बन्धित मुल्की प्रशासनका कार्य राजधानीमें रहने-वाले उनके सहायक करते थे।

असंग–प्रसिद्ध बौद्ध पंडित भिक्षु और आचार्य जो गुप्त काल-में ईसाकी चौथी शताब्दीमें हुआ। वह प्रसिद्ध आचार्य वसुबन्धुका भाई था जो दूसरे गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त (लगभग ३३०–३६० ई०) का अमात्य था। उसने योगा-चार्य भूमिशास्त्रकी रचना की जो महायान सम्प्रदायका आधारभूत ग्रंथ माना जाता है।

असद खाँ–बीजापुरके सुल्तान इब्राहीम आदिलशाह प्रथम (१५३५–५७ ई०) का वजीर था। वह योग्य प्रशासक और कूटनीतिज्ञ था। उसने १५४३ ई० में अपने कूट-नीतिक चातुर्यका अच्छा परिचय दिया। उस वर्ष अहमद-नगर और गोलकुंडाके सुल्तानोंने संयुक्त रूपसे बीजापुर-पर हमला करनेके लिए विजयनगरके हिन्दू राज्यसे सुलह कर ली। असद खाँ ने अहमदनगर और विजयनगर-

से अलग अलग संधियाँ करके उस संयुक्त मोर्चेको तोड़ दिया और इस प्रकार बीजापुरकी रक्षा हो गयी ।

असद खाँ—बादशाह औरंगजेब (१६५६–१७०७ ई०) के शासनकालके उत्तरार्द्धमें वजीर आजम था । उसका बेटा जुल्फखार खाँ औरंगजेबका सबसे अच्छा सेनापति था ।

असवाल—अहमदाबादकी स्थापनाके पूर्व पुराने नगरका नाम था । इसी नगरको केन्द्र बनाकर १५वीं शताब्दीमें गुजरात (दे०) में मुसलमानी सल्तनतका विकास हुआ ।

असहयोग आन्दोलन—महात्मा गांधी (दे०) ने १९१९–२० ई० में आरम्भ किया था । इसका उद्देश्य ब्रिटिश सरकारको उन संवैधानिक सुधारोंको स्वीकार करनेपर विवश करना था, जिनकी माँग भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कर रही थी । उन दिनों कांग्रेसका ध्येय भारतको औपनिवेशिक स्वराज्य दिलाना मात्र था । प्रथम महायुद्धके उपरांत यूरोपमें तुर्की साम्राज्य छिन्न-भिन्न कर दिये जानेके कारण भारतीय मुसलमानोंमें असंतोष व्याप्त था । अतः इस असहयोग आन्दोलनको केवल हिन्दुओंका ही नहीं बल्कि भारतीय मुसलमानोंका भी समर्थन प्राप्त हुआ । इस आन्दोलनका ध्येय अंग्रेज सरकारको किसी भी प्रकारका सहयोग न देना था । प्रारम्भमें इसे अत्यधिक समर्थन मिला और सैकड़ों तथा हजारोंकी संख्यामें लोगोंने सरकारसे असहयोग आरम्भ कर दिया । लोगोंने सरकारी सेवाओंसे त्यागपत्र दे दिया; न्यायालयोंका बहिष्कार कर दिया; विद्यार्थियोंने विद्यालयोंमें जाना बंद कर दिया और १९१९ के गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्टके अंतर्गत होनेवाले चुनावोंका बहिष्कार किया । महात्मा गांधी इस आंदोलनको पूर्ण रूपसे अहिंसात्मक रखना चाहते थे, परन्तु सरकारके विरुद्ध ऐसे देशव्यापी आंदोलनमें एकाध हिंसात्मक घटनाका घट जाना स्वाभाविक था । सरकारने इसे बलपूर्वक दबानेका प्रयत्न किया और कानूनके अंतर्गत दण्ड देना प्रारम्भ कर दिया । सहस्त्रोंकी संख्यामें लोगोंने जेलोंको भर दिया और इससे सरकारके लिए एक गंभीर समस्या उत्पन्न हो गयी । यह असहयोग आंदोलन १९२४ ई० तक तेजीसे चला, परन्तु धीरे-धीरे भारतीय मुसलमानोंके उदासीन हो जाने तथा कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंमें मतभेद उत्पन्न हो जानेके कारण, यह समाप्तप्राय हो गया । कुछ कांग्रेसी लोगोंने पंडित मोतीलाल नेहरू (दे०) तथा देशबंधु चितरंजन दास (दे०) के नेतृत्वमें अलग स्वराज्य पार्टी बना ली । इसके नेता चुनावमें भाग लेकर १९१९ ई० के गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्टके अंतर्गत बनायी गयी केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान सभाओंमें इस अभिप्रायसे जाना चाहते थे कि वे कौंसिलोंमें लड़ सकें और उनमें या तो सुधार करायें या उन्हें समाप्त करवा दें ।

असहयोग आन्दोलन व्यर्थ नहीं गया । समाजके सभी वर्गोंके सहस्रों भारतीयोंके सामूहिक जेलयात्राके फलस्वरूप लोगोंके हृदयसे जेलका भय निकल गया । साथ ही लाखों भारतीयोंके हृदयसे अंग्रेजी सरकारका भय भी समाप्त हो गया । एक जन-आन्दोलनके लिए यह छोटी उपलब्धि नहीं थी ।

असाईकी लड़ाई—दूसरे आंग्ल-मराठा युद्ध (१८०३–०५ ई०) के दौरान हुई । इस लड़ाईमें अंग्रेजी सेनाने सर आर्थर वेल्जलीके नेतृत्वमें शिन्दे और भोंसलेकी विशाल सेनाको २३ सितम्बर १८०३ ई० को पराजित कर दिया शिन्देकी जिस सेनाने लड़ाईमें भाग लिया उसको यूरोपीय अफसरोंसे यूरोपीय ढंगसे ट्रेनिंग दिलायी गयी थी लेकिन वह छोटी-सी अंग्रेजी सेनासे बुरी तरह पराजित हो गयी ।

असिक्नी—नामक पंजाबकी नदी, जिसका उल्लेख ऋग्वेदके नदी-सूक्तमें है । यूनानी इतिहासकारोंने उसे 'अकेसिनीज' लिखा है । इसका आधुनिक नाम चिनाब है । पोरस, जिसने सिकंदरका रास्ता रोका था, चिनाब और झेलम नदियोंके बीचके क्षेत्रमें राज्य करता था ।

असीरगढ़—खानदेशमें ताप्ती नदीके तटपर स्थित एक दुर्जेय गढ़ समझा जाता है जो अनेक राजाओंके अधिकारमें रह चुका है । प्रारम्भमें वह मालवाके हिन्दू राजाओंके अधीन था उसके बाद उसपर दिल्लीके मुसलमान सुल्तानोंका अधिकार हो गया । मुहम्मद तुगलककी मृत्युके बाद इस किलेपर खानदेशके फारुखी राजवंशका अधिकार हो गया जिनसे १६०१ ई० में अकबरने छीन लिया । मराठा शक्तिका उदय होनेपर यह मराठोंके अधिकारमें आ गया और उसपर शिन्देका कब्जा रहा । अन्तमें १८०३ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेनाने शिन्दे और भोंसलेकी संयुक्त सेनाओंको असाईकी लड़ाईमें पराजित करके इस किलेपर कब्जा कर लिया । उसके बाद वह भारतके अंग्रेजी राज्यका हिस्सा हो गया । आधुनिक समयमें इस किलेका सामरिक महत्त्व समाप्त हो गया है ।

अस्करी—प्रथम मुगल सम्राट् बाबर (१५२६–३० ई०) का चौथा और सबसे छोटा बेटा था । अस्करीको उसके सबसे बड़े भाई हुमायूं (दे०) (१५३०–५६ ई०) ने सम्भलकी जागीर दी थी । बादमें अस्करी १५३४ ई० में हुमायूंके गुजरात अभियानमें उसके साथ रहा जहाँ आसानीसे विजय मिलनेके बाद वह ऐश-आराममें पड़

गया। वह हुमायूंके साथ दिल्ली लौट आया। जब हुमायूं १५३९ ई० में बंगालके अभियानपर गया तो अस्करी उसके साथ नहीं गया और इस प्रकार बक्सरकी लड़ाईमें हुमायूंकी पराजयमें वह हिस्सेदार नहीं बना। जब हुमायूं बंगाल गया था तो दिल्लीमें उसकी अनुपस्थितिमें अस्करीने गद्दीपर कब्जा करनेकी कोशिश की लेकिन पराजित हुमायूंके दिल्ली लौटनेसे उसकी योजना विफल हो गयी। १५४०–५४ ई० के बीच जब हुमायूंको कन्नौजकी लड़ाईमें पराजित होनेके बाद दर-दर भटकना पड़ा और भारत छोड़कर भागना पड़ा तो अस्करीने उसकी कोई मदद नहीं की। अस्करीने शेरशाहके सामने आत्मसमर्पण करके अपने प्राण बचाये। हुमायूंने जब दिल्लीपर फिरसे कब्जा किया तो उसने अस्करीको क्षमा कर दिया लेकिन उसे मक्का चला जाना पड़ा जहाँ वह मर गया।

अस्सकेनोई गण—भारतपर सिकंदर महान्के आक्रमणके समय मलकंद दर्रेके निकट स्वातघाटीके एक हिस्सेमें रहता था। उनके पास एक बड़ी सेना थी और मस्सग दुर्ग उनकी राजधानी थी। यह दुर्ग प्राकृतिक दृष्टिसे दुर्भेद्य था और उसकी रक्षाके लिए एक ऊँची प्राचीर और गहरी परिखाका निर्माण किया गया था। अस्सकेनोई लोगोंने सिकंदरसे जमकर लोहा लिया और उनके एक तीरसे सिकंदर घायल भी हो गया। लेकिन अन्तमें सिकंदरकी विजय हुई। उसने मस्सग दुर्गपर अधिकार कर लिया और भयंकर नरसंहारके बाद अस्सकेनोई लोगोंका दमन कर दिया। (संस्कृतमें इस गणका नाम आश्वकायन अथवा अश्वक है। होगा। —संपादक)

अस्सपेसिओई गण—भारतपर सिकंदर महान्के आक्रमणके समय पश्चिमोत्तर सीमापर कुनड़ अथवा चित्राल नदीकी घाटीमें रहता था। इस गणने यवन आक्रमणकारियोंसे डट कर मोर्चा लिया था। सिकंदरको इन लोगोंसे दो लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं और उसके बाद ही वह इनका दमन कर सका।

अहमदनगर—निजामशाही सुल्तानोंकी राजधानी थी जिन्होंने १४९० ई० में दक्खिन में बहमनी सल्तनतकी एक नयी शाखाकी स्थापना की। अहमदनगर की स्थापना इस वंशके पहले सुल्तान अहमद निजामशाहने की। अकबरने जब इसपर हमला किया तो चाँदबीबीने उसकी सेनाओंका डट कर मुकाबिला किया, परन्तु अंतमें अकबरकी विजय हुई। १६३७ ई० में बादशाह शाहजहाँने अहमदनगरको मुगल साम्राज्यमें मिला लिया और उसके बाद इस नगरका महत्त्व घट गया। यह अब भी एक बड़ा नगर है और इसी नामके जिलेका मुख्यालय है।

अहमद निजामशाह—का असली नाम मलिक अहमद था। वह बिदरके दक्खिनी मुसलमानोंके दलके नेता निजामुल मुल्क बहरीका बेटा था जिसने बहमनी सुल्तानके वजीरमुहम्मद गवांको १८४१ ई० में कत्ल करवा दिया। अपने पिताकी मृत्युके बाद मलिक अहमदने बहमनी राज्यके आखिरी सुल्तान महमूद (१४८२–१५१८ ई०) को हराकर अपने स्वतंत्र राज्यकी स्थापना की और अपनी राजधानीका नाम अहमदनगर रखा। उसने अपना नाम अहमद निजामशाह और अपने राजवंशका नाम निजामशाही रखा। १४९९ ई० में उसने देवगिरि अथवा दौलताबाद किले को जीतकर उसपर अपना अधिकार कर लिया और इस प्रकार अपने राज्यको मजबूत बनाया। उसने १५०६ ई० तक राज्य किया।

अहमदशाह बहमनी—बहमनी सल्तनतका नवाँ सुल्तान था जो १४२२ ई० में अपने भाई, आठवें सुल्तान फीरोज की हत्या करके तख्तपर बैठा था। उसने १४३५ ई० तक राज्य किया। उसने विजयनगर राज्यसे लम्बी लड़ाई लड़ी; उस राज्यको बुरी तरह नष्ट किया और हजारों स्त्री-पुरुषों और बच्चोंका कत्ल कर दिया। उसने वारंगलके हिन्दू राज्यको भी जीत लिया और मालवा तथा गुजरातके सुल्तानों तथा कोंकणके हिन्दू राजाओंसे युद्ध किये। वह अपनी राजधानी गुलबर्गसे बिदर ले गया।

अहमदशाह, बादशाह—दिल्लीका १५वाँ मुगल बादशाह (१७४८–५४ ई०) था। अपने पिता बादशाह मुहम्मदशाहके समयमें जब वह शाहजादा था तो उसने अहमदशाह अब्दालीके पहले हमलेको विफल कर दिया था। इसके महीने भर बाद ही मुहम्मदशाहकी मृत्यु होनेपर वह तख्तपर बैठा। अब्दालीने १७५० ई० और उसके बाद १७५१ ई० में पुनः हमला किया और अहमदशाहको बाध्य होकर पंजाब उसे सौंप देना पड़ा। अहमदशाहका राज्यकाल गौरवपूर्ण नहीं कहा जा सकता। १७५४ ई० में उसके वजीर गाजीउद्दीनने उसे अंधा करके गद्दीसे उतार दिया।

अहमदशाह दुर्रानी—देखो अहमदशाह अब्दाली।

अहमदशाह, सुल्तान—गुजरातका तीसरा सुल्तान (१४११–४१ ई०) था। उसके बाप और बाबाका राज्य तो अहमदाबादके आसपास ही सीमित था, सुल्तान अहमदशाहने उसका प्रसार पूरे गुजरातमें किया और गुजरातकी सल्तनतकी नींव डाली। उसने मालवाके सुल्तानों और राजपूतानाके

राजाओंसे अनेक युद्ध किये और किसी भी युद्धमें उसकी हार नहीं हुई। उसने पुराने हिन्दू नगर असवालके निकट अहमदावादका निर्माण कराया और उसे एक सुन्दर भव्य नगरका रूप दिया।

अहमदाबाद–नामके दो नगर हैं, एक गुजरातमें और दूसरा दक्षिणमें। दोनोंकी स्थापना अहमद नामक सुल्तानोंने की थी। दक्षिणके अहमदाबादकी स्थापना नवें बहमनी सुल्तान अहमदशाह (दे०) (१४२२–३५ ई०) ने की जो अपनी राजधानी गुलवर्गासे हटाकर बिदर ले आया और अपने नामपर उसका नामकरण अहमदनगर किया। गुजरातके अहमदाबादकी स्थापना पुराने हिन्दू नगर असवालके निकट गुजरातके सुल्तान अहमदशाह (दे०) (१४११–४१ ई०) ने की। १५वीं शताब्दीमें अपनी स्थापनाके बादसे अहमदाबाद लगातार गुजरात राज्यकी राजधानी तबतक बना रहा जबतक वह बम्बई प्रदेशमें शामिल नहीं कर दिया गया। सुल्तानोंके बाद वह मुगलोंके अधिकारमें चला गया, अकबरने १५७२ ई० में गुजरातको जीता और अपने राज्यमें मिला लिया। १७५८ ई० में गुजरात और अहमदाबादपर मराठोंका अधिकार हो गया और अन्तमें वह भारतके ब्रिटिश साम्राज्यका हिस्सा बना लिया गया। अहमदाबाद अपनी भव्य इमारतोंके लिए प्रसिद्ध है और एक समय इसकी गणना संसारके मुख्य नगरोंमें होती थी। इसकी आबादी ६ लाख थी। यहाँ बहुतसे करोड़पती रहते हैं। इस नगरकी समृद्धि रेशम, सुनहरे तार और सूतके कारण है। इस समय यह नगर गुजरात राज्यकी राजधानी है और सूती वस्त्र उद्योगका यह मुख्य केन्द्र है।

अहल्याबाई, रानी–इन्दौरके महाराजा मल्हार राव होलकर (१७२८–१७६४ ई०) की विधवा पुत्रवधू थीं। मल्हार रावके जीवन कालमें ही उसके पुत्र खंडेरावका निधन १७५४ ई० में हो गया था। अतः मल्हार रावके निधनके बाद रानी अहिल्याबाईने राज्यका शासन-भार सम्हाला। रानी अहल्याबाईने १७९५ ई० में अपनी मृत्यु पर्यन्त बड़ी कुशलतासे राज्यका शासन चलाया। उनकी गणना आदर्श शासकोंमें की जाती है। वे अपनी उदारता और प्रजावत्सलताके लिए प्रसिद्ध हैं। उन्होंने भारतके भिन्न-भिन्न भागोंमें अनेक मंदिरों, धर्मशालाओं, और अन्नसत्रोंका निर्माण कराया। कलकत्तासे बनारस तककी सड़क, बनारसमें अन्नपूर्णाका मंदिर, गयामें विष्णु मंदिर उनके बनवाये हुए हैं। उन्होंने अपने समयकी हलचलमें प्रमुख भाग लिया। उनके एक ही पुत्र मल्लेराव था जो १७६६ ई० में दिवंगत हो गया। १७६७ ई० में अहिल्याबाईने तुकोजी होलकरको सेनापति नियुक्त किया। अहिल्याबाईके निधनके बाद तुकोजी इन्दौरकी गद्दीपर बैठा।

अहसानशाह, जलालुद्दीन–मअबरका सूबेदार था, जिसने १३३५ ई० में सुल्तान मुहम्मद तुगलक (दे०) के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और अपनेको सुल्तान घोषित कर दिया। उसने मदुरामें अपना स्वतंत्र मुसलमानी राज्य स्थापित किया जिसको बादमें विजयनगरके हिन्दू राजा (१३७७–७८ ई०) ने जीत लिया।

अहसानाबाद–देखो गुलबर्ग अथवा, कुलबर्ग।

अहिच्छत्र–एक प्राचीन नगर था जहाँ अब रामनगर (जिला बरेली) स्थित है। महाभारतके अनुसार यह नगर उत्तर पंचाल राज्यकी राजधानी था, जिसको द्रोणाचार्यने जीत लिया था। ईसाकी सातवीं शताब्दीमें जब ह्युएन-त्सांग भारत आया तो यह नगर काफी विस्तृत क्षेत्रमें फैला था।

अहोम–उत्तरी बर्मामें रहनेवाली शान जातिके थे। सुकफके नेतृत्वमें उन लोगोंने आसामके पूर्वोत्तर क्षेत्रपर १२२८ ई० में आक्रमण किया और इसपर अधिकार कर लिया। यह वही समय था जब आसामपर मुसलमानी आक्रमण पश्चिमोत्तर दिशासे हो रहे थे। धीरे-धीरे अहोम लोगोंने आसामके लखीमपुर, शिवसागर, दारांग, नवगाँव और कामरूप जिलोंमें अपना राज्य स्थापित कर लिया। ग्वालपाड़ा जिला जो आसामका हिस्सा है अथवा कन्धार और सिलहटके जिले कभी अहोम राज्यमें शामिल नहीं थे। ब्रिटिश शासकोंने १८२४ ई० में इस क्षेत्रको जीतनेके बाद इसे आसाममें शामिल कर दिया। अहोम लोगोंकी यह विशेषता थी कि उन्होंने भारतके पूर्वोत्तर भागमें पठान या मुगल आक्रमणकारियोंको घुसने नहीं दिया, हालांकि मुगलोंने पूरे भारतपर अपना अधिकार जमा लिया था। आसाममें अहोम राज्य छह शताब्दी (१२२८–१८३५ ई०) तक कायम रहा। इस अवधिमें ३९ राजा गद्दीपर बैठे। यहाँके राजाओंकी उपाधि 'स्वर्ग देव' थी। अहोम लोगोंका १७वां राजा प्रतापसिंह (१६०३–४१) और २९वाँ राजा गदाधर सिंह (१६८१–८६ ई०) बड़ा प्रतापी था। प्रताप सिंहसे पहलेके अहोम राजा अपना नामकरण अहोम भाषामें करते थे लेकिन प्रताप सिंहने संस्कृत नाम अपनाया और उसके बादके राजा लोग दो नाम रखने लगे–एक अहोम और दूसरा संस्कृत भाषामें। अहोम लोगोंका पहले अपना अलग

जातीय धर्म था, लेकिन बादमें उन्होंने हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया। वे अपने साथ अपनी भाषा और लिपि भी लाये थे, लेकिन बादमें धीरे-धीरे उन्होंने असमिया भाषा और लिपि स्वीकार कर ली जो संस्कृत-बंगला लिपिसे मिलती जुलती है। अहोम राजाओंने आसाममें अच्छा शासन-प्रबंध किया। उनका शासन-प्रबंध सामतवादी ढंगका था और उसमें सामंतवादकी सभी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ थीं। अहोम राजा अपने शासनका पूरा लेखा रखते थे जिन्हें 'बुरंजी' कहा जाता था। इसके फलस्वरूप अहोम और असमिया दोनों भाषाओंमें काफी ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है। अहोम राजाओंकी राजधानी शिवसागर जिलेमें वर्तमान जोरहाटके निकट गढ़गाँवमें थी। अन्तिम अहोम राजा जोगेश्वरसिंह अपने वंशके ३९वें शासक थे जिसका आरम्भ सुकफने १२२८ ई० में किया था। जोगेश्वरने केवल एक वर्ष (१८१९ ई०) राज्य किया। बर्मी लोगोंने उसकी गद्दी छीन ली, लेकिन आसाममें बर्मी शासन केवल पाँच वर्ष (१८१९–१८२४ ई०) रहा और प्रथम आंग्ल-बर्मी युद्धके बाद यन्दबकी सन्धिके अन्तर्गत आसाम भारतके ब्रिटिश साम्राज्यमें मिला लिया गया। १८३२ ई० में ब्रिटिश शासकोंने अपने संरक्षणमें पुराने अहोम राजवंशके राजकुमार पुरन्दरसिंहको उत्तरी आसामका राजा बनाया लेकिन १८३८ ई० में कुशासनके आधारपर उसे गद्दीसे हटा दिया। इसके बाद आसाममें अहोम राज्य पूरी तरह समाप्त हो गया। अहोम लोग अब आसामके अन्य निवासियोंमें घुल मिल गये हैं और उनकी संख्या बहुत कम रह गयी है। (देखो, आसाम)

आ

आंगियर, जेराल्ड—बम्बईका गवर्नर (१६६९–१७०७ ई०)। वह सही अर्थोंमें बम्बई नगरका संस्थापक था जिसने बम्बईके महानगरी बननेकी कल्पना कर ली थी। उसे भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यके प्रारम्भिक संस्थापकोंमें गिना जा सकता है। उसकी गुमनाम कब्र सूरतमें है। **(मालबारी : बम्बे इन दि मेकिंग)**

आंग्ल-अफगान युद्ध—तीन हुए। **पहला आंग्ल-अफगान युद्ध** (१८३८–४२ ई०)—ईस्ट इंडिया कम्पनीके शासन-कालमें गवर्नर-जनरल लार्ड आकलैण्डके समयमें शुरू हुआ और उसके उत्तराधिकारी लार्ड एलिनबरोके समय तक चलता रहा। १८३८ ई० में अफगानिस्तानका भूतपूर्व अमीर शाह शुजा अंग्रेजोंका पेंशनयाफ्ता होकर पंजाबके लुधियाना नगरमें रहता था। उस समय रूसके गुप्त समर्थनसे फारसकी सेनाने अफगानिस्तानके सीमावर्ती नगर हेरातको घेर लिया। हेरात बहुत सामरिक महत्त्वका नगर माना जाता था और उसे भारतका द्वार समझा जाता था। जब उसपर रूसकी सहायतासे फारसने कब्जा कर लिया तो इंग्लैण्डकी सरकारने उसे भारतके ब्रिटिश साम्राज्यके लिए खतरा माना, हालाँकि उस समय फारस और भारतके ब्रिटिश साम्राज्यके बीचमें पंजाबमें रणजीत सिंह और अफगानिस्तानमें अमीर दोस्त मुहम्मदका स्वतंत्र राज्य था। अमीर दोस्त मुहम्मद भी हेरातपर फारसके हमलेसे रूसी आक्रमणका खतरा महसूस कर रहा था। वह अपनी सुरक्षाके लिए भारतकी ब्रिटिश सरकारसे समझौता करना चाहता था। किन्तु वह अपने पूरबके पड़ोसी महाराजा रणजीत सिंहसे भी अपनी सुरक्षाकी गारंटी चाहता था जिसने हालमें पेशावरपर कब्जा कर लिया था। अतएव उसने इस शर्तपर आंग्ल-अफगान गठबंधनका प्रस्ताव रखा कि अंग्रेज उसे रणजीत सिंहसे पेशावर वापस दिलानेमें मदद देंगे और इसके बदलेमें अमीर अपने दरबार तथा देशको रूसियोंके प्रभावसे मुक्त रखेगा। लार्ड आकलैण्डकी सरकार महाराजा रणजीत सिंहकी शक्तिसे भय खाती थी और उसने उसपर किसी प्रकारका दबाव डालनेसे इन्कार कर दिया। बर्न्स, जिसे आकलैण्डने अमीरसे बातचीतके लिए काबुल भेजा था, अप्रैल १८३८ ई० में काबुलसे खाली हाथ लौट आया। उसके लौटनेके बाद अमीरने एक रूसी एजेण्टकी आवभगत की, जो कुछ समयसे उसके दरबारमें रहता था और अबतक उपेक्षाका पात्र बना हुआ था। इस बातको आकलैण्डकी सरकारने अमीरका शत्रुतापूर्ण कार्य समझा और जुलाई १८३८ ई० में उसने पंजाबके महाराजा रणजीत सिंह और निष्कासित अमीर शाह शुजासे जो लुधियानामें रहता था, एक त्रिपक्षीय सन्धि कर ली जिसका उद्देश्य शाह शुजाको फिरसे अफगानिस्तानकी गद्दीपर बिठाना था। यह अनुमान था कि शाहशुजा काबुलमें अमीर बननेके बाद अपने विदेशी सम्बन्धोंमें, खासतौरसे रूसके सम्बन्धमें भारतकी ब्रिटिश सरकारसे नियंत्रित होगा। इस आक्रामक और अन्यायपूर्ण त्रिपक्षीय सन्धिके बाद आंग्ल-अफगान युद्ध अनिवार्य हो गया। इस त्रिपक्षीय सन्धिका यदि जुलाई १८३८ में कुछ औचित्य भी था तो वह सितम्बरमें फारसकी सेना द्वारा हेरातका घेरा उठा लिये जाने और अफगान क्षेत्रसे हट आनेके बाद समाप्त हो गया। लेकिन लार्ड आकलैण्डको

इससे सन्तोष नहीं हुआ और अक्तूबरमें उसने अफ-गानिस्तानपर चढ़ाई कर दी। इस आक्रमणका कोई औचित्य नहीं था और इसके द्वारा १८३२ ई० में सिन्धके अमीरोंसे की गयी सन्धिका भी उल्लंघन होता था, क्योंकि अंग्रेजी सेना उनके क्षेत्रसे होकर अफगानिस्तान गयी थी। इस युद्धका संचालन भी बहुत गलत ढंगसे किया गया। आरम्भमें अंग्रेजी सेनाको कुछ सफलता मिली। अप्रैल १८३९ ई० में कंधारपर कब्जा कर लिया गया। जुलाईमें अंग्रेजी सेनाने गजनी ले लिया और अगस्तमें काबुल। दोस्त मोहम्मदने काबुल खाली कर दिया और अंतमें अंग्रेजी सेनाके आगे आत्म-समर्पण कर दिया। उसको बंदी बनाकर कलकत्ता भेज दिया गया और शाहशुजाको फिरसे अफगानिस्तानका अमीर बना दिया गया। किन्तु इसके बाद ही स्थिति और विषम हो गयी।-शाहशुजाको अमीर बनानेके बाद अंग्रेजी सेना वहाँसे वापस बुला लेनी चाहिए थी लेकिन ऐसा नहीं किया गया। शाहशुजा केवल कठ-पुतली शासक था और देशका प्रशासन वास्तवमें सर विलियम मैकनाटनके हाथमें था जिसको लार्ड आक्लैण्डने राजनीतिक अधिकारीके रूपमें वहाँ भेजा था। अफगान लोग शाहशुजाको पहले भी पसंद नहीं करते थे और इस बातसे बहुत नाराज थे कि अंग्रेजी सेनाकी बन्दूकोंके जोरसे उसे पुनः अमीर बना दिया गया है। इसीलिए काबुलमें अंग्रेजी आधिपत्य सेनाको रखना जरूरी हो गया था। युद्धके कारण चीजोंके दाम बेतहाशा बढ़ गये थे जिससे जनताका हर वर्ग पीड़ित था। अंग्रेजी सेनाकी कुछ हरकतोंसे भी जनरोष प्रबल हो गया था। इस मौके-का दोस्त मुहम्मदके लड़के अकबर खाँने चालाकीसे फायदा उठाया और १८४१ ई० में पूरे देशमें शाहशुजा और उसकी संरक्षक अंग्रेजी सेनाके विरुद्ध बड़े पैमानेपर बलवे शुरू हो गये। सर विलियम मैकनाटनके खास सलाहकार एलेक्जेण्डर बर्न्सकी अनीतिसे अफगान लोग चिढ़े हुए थे। नवम्बर १८४१ में एक क्रुद्ध अफगान भीड़ बर्न्स और उसके भाईको घरसे घसीट कर ले गयी और दोनों-को मार डाला। मैकनाटन और काबुल स्थित अंग्रेजी सेनाके कमांडर-जनरल एलफिंस्टनने उस समय ढुलमुलपन और कमजोरीका प्रदर्शन किया और दिसम्बरमें अकबर खाँसे सन्धि कर ली जिसके द्वारा अफगानिस्तानसे अंग्रेजी सेनाको वापस बुला लेने और दोस्त मुहम्मदको दुबारा अमीर बना देनेका आश्वासन दिया गया। शीघ्र ही यह बात साफ हो गयी कि इस संधिके पीछे मैकनाटनकी नीयत साफ नहीं है। इसपर अकबर खाँके आदेशसे मैकनाटन और उसके तीन साथियोंको मौतके घाट उतार दिया गया। काबुलपर अधिकार करनेवाली अंग्रेजी सेनाके १६,५०० सैनिक ६ जनवरी १८४१ ई० को काबुलसे जलालाबादकी ओर रवाना हुए, जहाँ जनरल सेलके नेतृत्वमें एक दूसरी अंग्रेजी सेना डटी हुई थी। अंग्रेजी सेनाकी वापसी विनाश-कारी सिद्ध हुई। अफगानोंने सभी ओरसे उसपर आक्रमण कर दिया और पूरी सेना नष्ट कर दी। केवल एक व्यक्ति, डाक्टर ब्राइडन गम्भीर रूपसे जख्मी और थका माँदा १३ जनवरीको जलालाबाद पहुँचा। इस दुर्घटनासे गवर्नर-जनरल आक्लैण्ड और इंग्लैण्डकी सरकारको गहरा धक्का लगा। आक्लैण्डको इंगलैण्ड वापस बुला लिया गया और लार्ड एलिनबरोको उसके स्थानपर गवर्नर-जनरल (१८४२-१८४४ ई०) बनाया गया। एलिनबरोके कार्यकालमें जनरल पोलकने अप्रैल १८४२ ई० में जलालाबादपर फिरसे नियंत्रण कर लिया और मईमें जनरल नॉटने कंधारको फिरसे अंग्रेजोंके आधि-पत्यमें ले लिया। इसके बाद दोनों अंग्रेजी सेनाएँ रास्तेमें सभी विरोधियोंको कुचलती हुई आगे बढ़ीं और सितम्बर १८४२ ई० में काबुलपर अधिकार कर लिया। इन सेनाओंने बचे हुए बंदी अंग्रेज सिपाहियोंको छुड़ाया और अंग्रेजोंकी विजयके उपलक्ष्यमें काबुलके बाजारको बारूदसे उड़ा दिया। अंग्रेजोंने काबुल शहरको निर्दयताके साथ ध्वस्त कर डाला, बड़े पैमानेपर लूटमार की और हजारों बेगुनाह अफगानोंको मौतके घाट उतार दिया। इन बर्बरतापूर्ण कृत्योंके साथ इस अन्यायपूर्ण और अलाभप्रद युद्धका अन्त हुआ। शीघ्र ही अफगानिस्तानसे अंग्रेजी सेनाको वापस बुला लिया गया और दोस्त मुहम्मद, जिसे कलकत्तेमें नजरबन्दीसे रिहा कर दिया गया था, अफगानिस्तान वापस लौट गया व १८४२ ई० में दुबारा गद्दीपर बैठा जिससे उसे अनावश्यक और अनुचित तरीकेसे हटा दिया गया था। वह १८६३ ई० तक अफगानिस्तानका शासक रहा। उस वर्ष ८० सालकी उम्रमें उसका देहांत हुआ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पहला अफगान युद्ध भारतकी ब्रिटिश सरकारकी ओरसे नितांत अनुचित रीतिसे अकारण ही छेड़ दिया गया था और लार्ड आक्लैण्डकी सरकारने उसका संचालन बड़ी अयोग्यताके साथ किया। इस युद्धसे कोई लाभ नहीं हुआ और उसमें २०,००० भारतीय तथा अंग्रेज सैनिक मारे गये और डेढ़ करोड़ रुपया बर्बाद हुआ जिसको भारतकी गरीब जनतासे वसूला गया।

दूसरा आंग्ल-अफगान युद्ध (१८७८-८० ई०)-वाइसराय लार्ड लिटन प्रथम (१८७६-१८८० ई०) के शासन-

कालमें आरम्भ हुआ और उसके उत्तराधिकारी लार्ड रिपन (१८८०–८४ ई०) के शासनकालमें समाप्त हुआ। अमीर दोस्त मुहम्मदकी मृत्यु १८६३ ई० में हो गयी और उसके बेटोंमें उत्तराधिकारके लिए युद्ध शुरू हो गया। उत्तराधिकारका यह युद्ध (१८६३–६८ ई०) पाँच वर्ष चला। इस बीच भारत सरकारने पूर्ण निष्क्रियताकी नीतिका पालन किया और काबुलकी गद्दीके प्रतिद्वन्द्वियोंमें किसीका पक्ष नहीं लिया। अन्तमें १८६८ ई० में जब दोस्त मुहम्मदके तीसरे बेटे शेर अलीने काबुलकी गद्दी प्राप्त कर ली तो भारत सरकारने उसको अफगानिस्तानका अमीर मान लिया और उसे शस्त्रास्त्र तथा धनकी सहायता देना स्वीकार कर लिया। लेकिन इसी बीच मध्य एशियामें रूसका प्रभाव बहुत बढ़ गया। रूसने बुखारापर १८६६ में, ताशकंदपर १८६७ में और समरकंदपर १८६८ ई० में कब्जा कर लिया। मध्य एशियामें रूसके प्रभावके बढ़नेसे अफगानिस्तान और भारतकी अंग्रेज सरकारको चिन्ता हो गयी। अमीर शेरअली मध्य एशियामें रूसके प्रभावको रोकना चाहता था और भारतकी अंग्रेज सरकार अफगानिस्तानको रूसी प्रभावसे मुक्त रखना चाहती थी। इन परिस्थितियोंमें १८६९ ई० में पंजाबके अम्बाला नगरमें अमीर शेरअली और भारतके वायसराय लार्ड मेयो (१८६९–७२ ई०) की भेंट हुई। उस समय अमीर अंग्रेजोंकी यह माँग मान लेनेके लिए तैयार हो सकता था कि वह अपने वैदेशिक सम्बन्धमें अंग्रेजोंका नियंत्रण स्वीकार कर ले और अंग्रेज रूसके विरुद्ध उसकी सुरक्षाकी जिम्मेदारी ले लें और सहायता करें और उसको अथवा उसके नामजद व्यक्तियोंको ही अफगानिस्तानका अमीर मानें। इंग्लैण्डके निर्देशपर ब्रिटिश सरकारने सुरक्षाकी जिम्मेदारी लेनेकी बात नहीं मानी, यद्यपि शस्त्रास्त्र और धनकी सहायता देनेका वचन दिया। स्वाभाविक रूपसे अमीर शेरअलीको भारत सरकारसे समझौतेकी शर्तें संतोषजनक नहीं लगीं। लेकिन १८७३ ई० में रूसियोंने खीवापर अधिकार कर लिया और इस प्रकार उनका बढ़ाव अफगानिस्तानकी ओर होने लगा। इस हालतसे चिन्तित होकर अमीर शेरअलीने १८७३ में वाइसराय लार्ड नार्थब्रुक (१८७२–७६ ई०) के सामने आंग्ल-अफगानिस्तान सन्धिका प्रस्ताव रखा जिसमें अफगानिस्तानको यह आश्वासन देना था कि यदि रूस अथवा उसके संरक्षणमें कोई राज्य अफगानिस्तानपर आक्रमण करे तो ब्रिटिश सरकार अफगानिस्तानकी सहायता केवल शस्त्रास्त्र और धन देकर ही नहीं करेगी वरन् अपनी सेना भी वहाँ भेजेगी। उस समय इंग्लैण्डमें ग्लैडस्टोनका मंत्रिमंडल था। उसकी सलाहके अनुसार लार्ड नार्थब्रुक इस प्रस्तावपर राजी नहीं हुआ। नार्थब्रुक इस बातके लिए भी राजी नहीं हुआ कि वह अमीर शेरअलीके पुत्र अब्दुल्ला जानको उसका वारिस मानकर उसे भावी अमीर मान ले। इन बातोंसे शेरअली अंग्रेजोंसे नाराज हो गया और उसने रूससे अपने सम्बन्ध सुधारनेके लिए लिखा पढ़ी शुरू कर दी। रूसी एजेण्ट जल्दी-जल्दी काबुल आने लगे। १८७४ ई० में डिज़रेली ब्रिटेनका प्रधान मंत्री बना और १८७७ ई० में रूस-तुर्की युद्ध शुरू हो गया जिससे इंग्लैण्ड और रूसके सम्बन्धोंमें कटुता उत्पन्न हो गयी और दोनोंमें किसी समय भी युद्ध छिड़नेकी आशंका उत्पन्न हो गयी। इस हालतमें अंग्रेजोंने अफगानिस्तानपर अपना मजबूत नियंत्रण रखनेका निश्चय किया जिससे अफगानिस्तानसे होकर भारतमें अंग्रेजी राज्यके लिए कोई खतरा न उत्पन्न हो। इस नीतिके परिणामस्वरूप अंग्रेजोंने क्वेटापर १८७७ ई० में अधिकार कर लिया क्योंकि कंधारके रास्तेकी सुरक्षाके लिए उसपर नियंत्रण रखना जरूरी था। लार्ड नार्थब्रुकके उत्तराधिकारी लार्ड लिटन प्रथम (१८७६–८० ई०) ने डिज़रेली मंत्रिमंडलकी सलाहसे काबुल दरबारमें एक ब्रिटिश प्रतिनिधिमंडल भेजनेका निश्चय किया जिसे १८७३ ई० में अफगानिस्तानके अमीर द्वारा प्रस्तावित शर्तोंके आधारपर सन्धिकी बातचीत शुरू करनी थी। उन शर्तोंके अलावा यह शर्त भी रखी गयी कि हेरातमें भी ब्रिटिश रेजीडेण्ट रखा जाय। लेकिन अमीरने ब्रिटिश प्रतिनिधिमंडल काबुल भेजनेका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। उसकी ओरसे कहा गया कि यदि अफगानिस्तानमें ब्रिटिश प्रतिनिधिमंडल आयेगा तो रूसके प्रतिनिधिमंडलको भी आनेकी इजाजत देनी पड़ेगी। इस प्रकार इस मामलेमें एक गतिरोध-सा उत्पन्न हो गया लेकिन अमीरके प्रतिबन्धके बावजूद एक रूसी प्रतिनिधिमंडल जनरल स्टोलीटाफके नेतृत्वमें १८७८ ई० में अफगानिस्तान पहुँचा और उसने अमीर शेरअलीसे २२ जुलाई १८७८ को सन्धिकी बातचीत शुरू कर दी। उसने अफगानिस्तानपर विदेशी हमला होनेपर रूसकी ओरसे सुरक्षाकी गारण्टी देनेका प्रस्ताव रखा। रूसी प्रतिनिधिमण्डलके काबुलमें हुए स्वागतसे लार्ड लिटन (प्रथम) भयंकर रूपसे क्रुद्ध हो गया और उसने इंग्लैण्डकी ब्रिटिश सरकारके परामर्शसे अफगानिस्तानके अमीरपर इस बातका दबाव डाला कि वह काबुलमें ब्रिटिश प्रतिनिधिमण्डलका

भी स्वागत एक निश्चित तारीख २० नवम्बर १८७८ को करे। अमीरने तब नयी सन्धिके अंतर्गत रूससे मदद माँगी लेकिन इस बीच रूस-तुर्की युद्ध समाप्त हो गया था और यूरोपमें शान्ति स्थापित हो गयी थी और इंग्लैण्ड और रूसके बीच १८७८ की बर्लिनकी सन्धि हो गयी थी। रूस अब इंग्लैण्डसे युद्ध नहीं करना चाहता था। इसलिए उसने शेर अलीको अंग्रेजोंसे सुलह करनेकी सलाह दी, लेकिन शेरअलीने अब सुलहमें काफी देरी कर दी थी, क्योंकि अंग्रेज सेनाने २० नवम्बरको अफगानिस्तानपर हमला बोल दिया था और इस प्रकार दूसरा आंग्ल-अफगान युद्ध शुरू हो गया था।

जिस प्रकार पहले आंग्ल-अफगान युद्ध (१८३८-४२ ई०) में ब्रिटिश भारतीय सेनाको आरम्भमें सफलताएँ मिलीं थीं, उसी प्रकार इस बार भी मिलीं। रूसके साथ न देनेके कारण शेरअली अंग्रेजी आक्रमणका अधिक प्रतिरोध नहीं कर सका। तीन अंग्रेजी सेनाओंने तीन ओरसे काबुलपर चढ़ाई कर दी—जनरल ब्राउनके नेतृत्वमें एक सेना खैबरके दर्रेसे, दूसरी सेना जनरल (बादमें लार्ड) राबर्ट्सके नेतृत्वमें कुर्रमकी घाटीसे और तीसरी सेना जनरल बीडल्फके नेतृत्वमें क्वेटासे आगे बढ़ी। चौथी ब्रिटिश सेनाने जेनरल स्टुअर्टके नेतृत्वमें कंधारपर कब्जा कर लिया। शेरअलीकी हालत एक महीनेमें ही इतनी पतली हो गयी कि वह अफगानिस्तान छोड़कर तुर्किस्तान भाग गया जहाँ शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गयी। शेरअलीकी मृत्युके बाद उसके बेटे याकूबखाँने अंग्रेजोंसे सुलहकी बातचीत चलायी और मई १८७९ ई० में गन्दमककी सन्धि कर ली। इस सन्धिमें अंग्रेजोंकी सभी शर्तें मंजूर कर ली गयीं। इसके अलावा काबुलमें ब्रिटिश राजदूतोंको रखना तय हुआ और अफगानिस्तानकी वैदेशिक नीति भारतके वाइसरायकी रायसे तय करनेकी बात भी मान ली गयी। कुर्रम, पिशीन और सिबीके जिले भी अंग्रेजोंको सौंप दिये गये। इस सन्धिके अनुसार प्रथम ब्रिटिश राजदूत कैवगनरी जुलाई १८७९ ई० में काबुल पहुँच गया। उस समय ऐसा मालूम होता था कि इस युद्धमें अंग्रेजोंको पूरी सफलता मिली है। लेकिन ३ सितम्बरको काबुलकी अफगान सेनामें सैनिक विद्रोह हो गया, कैवगनरीकी हत्या कर दी गयी और फिरसे लड़ाई शुरू हो गयी। अंग्रेजोंने इस बार तत्काल प्रभावशाली ढंगसे कारवाई की। राबर्ट्सने अक्तूबर १८७९ ई० में काबुलपर अधिकार कर लिया और अमीर याकूबखाँकी हालत कैदी जैसी हो गयी। उसके भाई अयूबखाँने अपनेको अमीर घोषित कर दिया और उसने जुलाई १८८० ई० में ब्रिटिश सेनाको कंधारके निकट माईवन्दके युद्धमें पराजित कर दिया। लेकिन राबर्ट्स एक बड़ी सेनाके साथ काबुलसे कंधार पहुँचा, शेरअलीके भतीजे अब्दुर्रहमानने भी अंग्रेजोंकी काफी मदद की और ब्रिटिश सेनाने अयूबखाँको पूरी तौरसे हरा दिया। इसी बीच इंग्लैण्डमें डिजरेलीके स्थानपर ग्लैडस्टोन प्रधान मंत्री बन गया, जिसने भारतके वाइसराय लार्ड लिटनको वापस बुलाकर लार्ड रिपनको भारतका वाइसराय (१८८०–८४) बनाया। नये वाइसरायने अब्दुर्रहमानके साथ सन्धि करके दूसरा आंग्ल-अफगान युद्ध समाप्त कर दिया। इस सन्धिमें अब्दुर्रहमानखाँको अफगानिस्तानका अमीर मान लिया गया। अमीरने अंग्रेजोंसे वार्षिक सहायता पानेके बदलेमें अपनी वैदेशिक नीतिपर भारत सरकारका नियंत्रण स्वीकार कर लिया। गन्दमककी सन्धिमें जो जिले अंग्रेजोंको मिले थे वे उनके पास ही बने रहे।

दूसरा अफगान युद्ध दो नीतियोंकी पारस्परिक प्रतिक्रियाका परिणाम था। एक नीति जिसे अग्रसर नीति (फारवर्ड पालिसी) कहा जाता था, उसके अनुसार भारतकी, पश्चिमोत्तरमें, प्राकृतिक सीमा हिन्दूकुश होनी चाहिए। इस नीतिके अनुसार भारतके ब्रिटिश साम्राज्यमें कंधार और काबुलको जो भारतके दो फाटक माने जाते थे, सम्मिलित करना आवश्यक समझा जाता था। दूसरी नीतिके अनुसार रूस और इंग्लैण्ड, जो पूर्वमें अपने साम्राज्यका विस्तार करनेके कारण एक दूसरेके प्रतिद्वंद्वी थे, दोनों अफगानिस्तानको अपने प्रभावके अंतर्गत रखना चाहते थे। इंग्लैण्डमें विशेष रूपसे कंजरवेटिव पार्टीको अफगानिस्तान होकर भारतकी ओर रूसी प्रसारका तीव्र भय था। यद्यपि यह भय कभी साकार नहीं हुआ तथापि इसने अफगानिस्तानके प्रति ब्रिटिश नीतिको समूची १९वीं शताब्दी भर प्रभावित किया।

तीसरा आंग्ल-अफगान युद्ध (अप्रैल-मई १९१९)—बहुत थोड़े दिन चला। अमीर अब्दुर्रहमानने जिसे लार्ड रिपनने अफगानिस्तानका अमीर मान लिया था, उसने १९०१ ई० में मृत्युपर्यन्त शासन किया। उसके उत्तराधिकारी अमीर हबीबुल्लाह (१९०१–१९ ई०) ने अपनेको अफगानिस्तानका शाह घोषित किया और उसने भारतकी अंग्रेजी सरकारसे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखा। लेकिन उसके बेटे और उत्तराधिकारी शाह अमानुल्लाह (१९१९–२९ ई०) ने आंतरिक झगड़ों और अफगानिस्तानमें व्याप्त अंग्रेज-विरोधी भावनाओंके कारण, गद्दीपर बैठनेके बाद

ही भारतकी ब्रिटिश सरकारके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। इस तरह तीसरा आंग्ल-अफगान युद्ध शुरू हो गया। यह युद्ध केवल दो महीने (अप्रैल-मई १९१९ ई०) चला। भारतकी ब्रिटिश सेनाने बमों, विमानों, बेतारके तारकी संचार व्यवस्था और आधुनिक शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग करके अफगानोंको हरा दिया। अफगानोंके पास आधुनिक शस्त्रास्त्र नहीं थे। उन्हें मजबूर होकर शान्ति-सन्धिके लिए झुकना पड़ा। परिणामस्वरूप रावलपिंडीकी सन्धि (अगस्त १९१९) हुई। इस सन्धिके द्वारा तय हुआ कि अफगानिस्तान भारतके मार्गसे शस्त्रास्त्रोंका आयात नहीं करेगा। अफगानिस्तानके शाहको भारतसे दी जानेवाली आर्थिक सहायता भी बंद कर दी गयी और अफगानिस्तानको अपने वैदेशिक संबंधोंकी पूरी आजादी दे दी गयी। भारत और अफगानिस्तान, दोनोंने एक दूसरेकी स्वतंत्रताका सम्मान करनेका निश्चय किया। अन्तमें यह भी तय हुआ कि अफगानिस्तान अपना राजदूत लंदनमें रखेगा और इंग्लैण्डका राजदूत काबुलमें रखा जायगा। इसके बादसे आंग्ल-अफगान सम्बन्ध प्रायः मैत्रीपूर्ण रहा।

आंग्ल-फ्रांसीसी युद्ध—देखो कर्नाटक युद्ध।

आईन-ए-अकबरी—फारसीका एक प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ जिसे अकबर बादशाहके विश्वासपात्र और मीरमुन्शी (प्रधान सचिव) अबुलफजलने लिखा था। इसमें अकबरकी सल्तनत, उसके सैनिक प्रबन्ध तथा शासन-प्रबंधके बारेमें सूचनाएँ मिलती हैं। फारसीके अन्य इतिहास ग्रन्थोंसे इसकी एक विशेषता यह है कि इसमें मुगल सल्तनतके हर-एक सूबे, जिले, और परगनोंके आंकड़े दिये गये हैं। इस ग्रन्थमें हमें मुगलोंके कालकी आर्थिक स्थिति तथा मुगल शासन-व्यवस्थाके सम्बन्धमें विस्तृत जानकारी मिलती है। इस ग्रन्थका अंग्रेजीमें टिप्पणी सहित अनुवाद ब्लाकमैन और जैरटने १८७३ ई० में किया था। इस ग्रन्थमें अकबरकालीन भारतके बारेमें सबसे प्रामाणिक जानकारी मिलती है।

आउटरम, सर जेम्स (१८०३-६३ ई०)—गदरके समय अंग्रेजोंका एक वीर नायक था। वह १८१९ ई० में एक कैडेट (शिक्षार्थी सैनिक अधिकारी) के रूपमें भारत आया। अगले साल अपनी चुस्तीके कारण वह पूनामें एडजुटेंट बना दिया गया। १८२५ ई० में उसे खानदेश भेजा गया। वहांके भील उससे बहुत प्रभावित हुए। उसने भीलोंको पैदल फौजमें भरती किया। उनको दलके हथियार दिये गये। यह पलटन स्थानीय चोरोंकी लूटमार रोकनेमें बहुत सफल हुई। १८३५ से १८३८ ई० तक वह गुजरातमें पोलिटिकल एजेंट रहा। १८३८ ई० में उसने अफगान युद्धमें भाग लिया। उसने गजनीके किलेके सामने शत्रुओंके झंडे छीन लेनेमें व्यक्तिगत रीतिसे बड़ी वीरता प्रदर्शित की, जिसके कारण उसका बहुत नाम हुआ। १८३९ ई० में वह सिंधमें पोलिटिकल एजेंट नियुक्त हुआ। उसने अपने उच्च अधिकारी सर चार्ल्स नेपियरकी नीतिका विरोध करके, जिसके फलस्वरूप सिंधके अमीरोंसे युद्ध हुआ, अपने सबल व्यक्तित्व तथा अपनी न्यायप्रियताका परिचय दिया। परन्तु जब युद्ध छिड़ गया तो उसने ८०० बलूचियोंके हमलेसे हैदराबाद रेजिडेंसीकी वीरतापूर्वक रक्षा की। इसके फलस्वरूप सर चार्ल्स नेपियरने उसकी तुलना प्रसिद्ध फ्रांसीसी वीर बेयार्डसे की।

१८५४ ई० में वह लखनऊमें रेजिडेंट नियुक्त हुआ। १८५६ ई० में उसने अवधका राज्य नवाबोंसे ले लिया और उसके अंग्रेजी साम्राज्यमें मिला लिये जानेके बाद प्रांतका पहला चीफ कमिश्नर नियुक्त हुआ। जिस समय गदर हुआ वह फारसमें था। उसे शीघ्रतासे फारससे बुला लिया गया और कलकत्तासे कानपुरतककी रक्षा करनेवाली बंगाल आर्मीका कमांडर नियुक्त किया गया। उसने लखनऊ रेजिडेंसीका मोहासरा उठानेमें हैवलाककी भारी मदद की और विद्रोहियोंको चकमा देकर रेजिडेंसीमें फँसी फौजको निकाल ले आया। इसके बाद उसने लखनऊपर पुनः अधिकार करनेमें सर कालिन कैम्पबेलको मदद दी। गदरके समय उसने लोमड़ी जैसी चालाकी तथा सिंह जैसे पराक्रमका परिचय दिया। ब्रिटिश पार्लियामेण्टने इसके उपलक्ष्यमें उसे 'बैरन' की पदवी प्रदान की और उसकी आजीवन पेंशन नियत कर दी। कलकत्तामें स्थापित उसकी घोड़ेपर सवार मूर्ति मूर्तिकलाका उत्तम उदाहरण थी। उसने १८६० ई० में अवकाश ग्रहण किया और १८६३ ई० में इंग्लैण्डमें उसकी मृत्यु हुई।

आकमटी, सर सैम्युअल—को लार्ड मिंटो प्रथम (१८०७-१७) ने मद्रासमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके सैनिक अधिकारियोंके विद्रोह कर देनेपर मद्रासकी सेनाका सेनापति नियुक्त किया था। आकमटीने शीघ्र ही विद्रोह शांत कर दिया। इसके पुरस्कारस्वरूप जावापर आक्रमण करनेके लिए (१८१०-११ ई०) जो ब्रिटिश सैन्यदल भेजा गया उसका नेतृत्व उसे सौंपा गया। परिणामस्वरूप १८११ ई० में जावापर अधिकार कर लिया गया।

आक्लैण्ड, लार्ड—१८३६ से ४२ ई० तक ६ वर्ष भारतका गवर्नर-जनरल रहा। उसके प्रशासनमें कोई उल्लेखनीय

कार्य नहीं हुआ। यह सही है कि उसने भारतीयोंके लिए शिक्षाप्रसार और भारतमें पश्चिमी चिकित्सा-पद्धतिकी शिक्षाको प्रोत्साहन दिया। उसने कम्पनीके डायरेक्टरोंके उस आदेशको कार्यरूपमें परिणत किया जिसके अधीन तीर्थयात्रियों और धार्मिक संस्थाओंसे कर लेना बन्द कर दिया गया। लेकिन १८३७–३८ ई० में उत्तर भारतमें पड़े विकराल अकालके समय लोगोंके कष्टोंको दूर करनेके लिए पर्याप्त कदम उठानेमें वह विफल रहा। उसने १८३७ ई० में पादशाह बेगमके विद्रोहका दमन किया और अवधके नये नवाब (बादशाह) नसीरुद्दीन हैदरको बाध्य करके नयी सन्धिके लिए राजी किया जिसके द्वारा उससे अधिक वार्षिक धनराशि वसूल की जाने लगी। उस सन्धिको कम्पनीके डायरेक्टरोंने नामंजूर कर दिया, लेकिन आक्लैण्डने इस बातकी सूचना अवधके बादशाहको नहीं दी। उसने सताराके राजाको गद्दीसे उतार दिया क्योंकि उसने पुर्तगालियोंसे मिलकर राजद्रोहका प्रयत्न किया था। अपदस्थ राजाके भाईको उसने गद्दीपर बैठाया। उसने करनूलके नवाबको भी कम्पनीके विरुद्ध युद्ध करनेका प्रयास करनेके आरोपमें गद्दीसे हटा दिया और उसके राज्यको अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया। लार्ड आक्लैण्डका सबसे बदनामीवाला काम उसका प्रथम आंग्ल-अफगान युद्ध (१८३८–४२) शुरू करना था जिसका लक्ष्य दोस्त मुहम्मदको अफगानिस्तानकी गद्दीसे हटाना था क्योंकि वह रूसका समर्थक था और उसके स्थानपर शाहशुजाको वहाँका अमीर बनाना था जिसे अंग्रेजोंका समर्थक समझा जाता था। यह युद्ध अनुचित था और इसके द्वारा सिन्धके अमीरोंसे की गयी सन्धिको उसे तोड़ना पड़ा था। इस युद्धका संचालन इतने गलत ढंगसे हुआ कि वह एक दुखान्त घटना बन गयी और लार्ड आक्लैण्डको इंग्लैण्ड वापस बुला लिया गया और उनके स्थानपर लार्ड एलेनबरोको भारतका गवर्नर-जनरल बनाकर भेजा गया।

ऑक्टरलोनी, सर डेविड (१७५८–१८२५ ई०)–ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें एक सुविख्यात सेनानायक। उसने १८०४ ई० में होल्करके आक्रमणके समय दिल्लीकी अत्यंत कुशलतासे रक्षा की थी। उपरांत १८१४–१५ ई० के गोरखा युद्ध (दे०) में, वह उन तीन आंग्ल भारतीय सेनाओंमेंसे एकका कमांडर था, जिसने नेपालपर आक्रमण किया था। अन्य दो सेनाओंके कमांडर तो भाग आये, किन्तु आक्टरलोनी पश्चिमकी ओरसे नेपालपर आक्रमण करके मोर्चेपर डटा रहा। इस सफलताके पुरस्कारस्वरूप उसकी पदोन्नति की गयी और उसे उन समस्त अंग्रेज और भारतीय सेनाओंका सर्वोच्च कमांडर नियुक्त कर दिया गया जिन्होंने नेपालपर आक्रमण किया था। उसने अपनी पदोन्नतिको सार्थक सिद्ध कर दिया तथा कठिन युद्धके उपरांत नेपालमें दूरतक घुसता चला गया, यहाँतक कि उसकी राजधानी काठमांडू केवल ५० मील दूर रह गयी। परिणामस्वरूप १८१६ ई० में नेपालको संगौलीकी संधि (दे०) करनी पड़ी। १८१७–१८ ई० के पेंढारी युद्ध (१८१७–१८ ई०) में वह राजपूतानेकी पलटनका कमांडर था और उसने अमीरखाँको पेंढारियोंसे फोड़कर अंग्रेजोंको शीघ्र विजय दिलानेमें मदद दी। १८२४–२६ ई० में प्रथम बर्मा युद्ध छिड़नेपर उसने भरतपुर (दे०) पर चढ़ाई बोली, जहाँ दुर्जन सालने अल्पवयस्क राजा बलवन्तसिंहके विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। किन्तु गवर्नर-जनरलने उसे तत्क्षण वापस बुला लिया। इसके थोड़े ही समय बाद उसकी मृत्यु हो गयी। चौरंगीके समीप कलकत्ताके मैदानमें ऑक्टरलोनीका एक स्मारक आज दिन भी वर्तमान है और उसे साधारणतः मनियारमठ कहा जाता है।

आक्सेनडेन, सर जार्ज–सूरतमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी फैक्टरीका अध्यक्ष था और १६६२ से १६६९ ई० तक बम्बईका गवर्नर रहा। उसने १६६४ ई० में शिवाजीके हमलेके विरुद्ध सूरतकी वीरतापूर्वक रक्षा की और बादशाह औरंगजेबने भी उसकी प्रशंसा की।

आगा खाँ–भारतीय मुसलमानोंके बोहरा इस्माइली समुदायके धार्मिक नेताकी उपाधि। वर्तमान आगा खाँ अली खाँ हैं जो इस पदके चौथे उत्तराधिकारी हैं। प्रथम आगा खाँ हसन अली खाँ थे, जो अपनेको हजरत मुहम्मदकी पुत्री के वंशज बताते थे। उनके बेटे आगा अलीशाह तीन वर्ष (१८८१–१८८४ ई०) इस पद पर रहे और उनके पुत्र सुल्तान मुहम्मद आगा खाँ तृतीयको 'हिज हाईनेस'की उपाधि ब्रिटिश शासकोंने प्रदान की। (**नौरोजी दुभलिया–दि आगा खाँ एण्ड हिज एन्सेस्टर्स**)

आजम, शाहजादा–छठे मुगल बादशाह औरंगजेब (१६५८–१७०७ ई०) का तीसरा बेटा था जिसने अपने बापके मरनेके बाद तख्तके लिए अपने बड़े भाई शाहजादा मुअज्जमसे युद्ध किया और आगराके निकट जाजऊकी लड़ाईमें १० जून १७०७ ई० को हारा और मारा गया।

आजीवक–सम्प्रदायकी स्थापना गोशालाने की थी जो गौतम बुद्धका समकालीन था। उनके विचार 'सामञ्ञ-

फल सुत्त' तथा 'भगवतीसूत्र'में मिलते हैं। आजीवक पुरुषार्थमें विश्वास नहीं करते थे। वे नियतिको मनुष्यकी सभी अवस्थाओंके लिए उत्तरदायी ठहराते थे। उनके नियतिवादमें पुरुषके बल या वीर्य (पराक्रम) का कोई स्थान नहीं था। वे पाप या पुण्यका कोई हेतु या कारण नहीं मानते थे। आजीवकोंका सम्प्रदाय कभी इतना विशाल नहीं हुआ कि राजनीतिपर उसका कोई प्रभाव पड़ता, हालाँकि अशोकके कालमें उनका समुदाय महत्त्वपूर्ण माना जाता था। अशोकके पोतेने गयाके निकट बराबर पहाड़ियोंमें निर्मित तीन गुफा-मंदिर आजीवकोंको दान कर दिये थे।

आदम, जान–गवर्नर-जनरलकी कौंसिलका वरिष्ठ सदस्य था। १८२३ ई० में जनवरीसे जुलाईतक उसने स्थानापन्न गवर्नर-जनरलके रूपमें कार्य किया। उसके अल्प शासनमें 'कलकत्ता जर्नल'के सम्पादक जान सिल्क बकिंघमको सार्वजनिक मामलोंकी आलोचना करनेके कारण देशसे निकाल दिया गया। इस घटनाके बाद भारतके सार्वजनिक जीवनमें समाचारपत्रोंने भी अपना स्थान बना लिया।

आदि ग्रंथ–सिखोंका धर्मग्रंथ। उसका संकलन पाँचवें गुरु अर्जुन (१५८१–१६०६ ई०) ने १६०४ ई० में किया था। उसमें गुरु नानक, उनके तीन उत्तराधिकारियों तथा अन्य संतोंकी वाणियाँ संकलित हैं।

आदित्य (८८०–६०७ ई०)–चोलवंशके प्रारम्भिक राजाओंमें था। उसने पल्लव राजा अपराजितको हराकर पल्लवोंकी राज्यशक्ति समाप्त कर दी और इस प्रकार अपने पुत्र तथा उत्तराधिकारीके राज्यकालमें चोल राज्यके उत्कर्षका पथ प्रशस्त कर दिया।

आदित्यवंश–कम्बुज (कम्बोडिया) की जनश्रुतियोंके अनुसार इन्द्रप्रस्थका एक राजा था जिसके पुत्र कौण्डिन्यने कम्बुजके राजवंशकी स्थापना की। इस सम्बन्धमें भारतमें कोई ऐतिहासिक सामग्री नहीं मिलती है।

आदित्यसेन–माधवगुप्त का पुत्र था और ६७२ ई०में मध्यदेशमें राज्य करता था। उसने अश्वमेध यज्ञ किया और अपनी पुत्रीका विवाह मौखरि भोगवर्द्धनसे किया। उसकी दौहित्रीका विवाह नेपाल-नरेश शिवदेवसे हुआ था और उनके पुत्र जयदेवका विवाह कामरूप-नरेश हर्षदेवकी पुत्री राज्यमतीसे हुआ था।

आदिलशाही राजवंश–की स्थापना बीजापुरमें १४८६ ई० में यूसुफ आदिल खाँने की थी। वह जार्जिया-निवासी गुलाम था जो अपनी योग्यताके कारण बहमनी सुल्तान महमूद (१४८२–१५१८ ई०) के यहाँ ऊँचे पदपर पहुँचा था और उसको बीजापुरका सूबेदार बनाया गया था। बादमें उसने बीजापुरको राजधानी बनाकर स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। उसके राजवंशने बीजापुरमें १४८६ से १६८५ ई० तक राज्य किया। अन्तिम आदिल शाही सुल्तान सिकंदरको औरंगजेबने पराजित करके गिरफ्तार कर लिया। इस राजवंशमें–यूसुफ, इस्माइल, मल्लू, इब्राहीम प्रथम, अली इब्राहीम द्वितीय, मुहम्मद अली द्वितीय और सिकंदर नामक सुल्तान हुए। इस वंशके सुल्तानोंने दक्षिणमें अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं। १५८५ ई० में जब मुसलमानोंने संयुक्त रूपसे विजयनगरपर हमला किया और तालीकोटका युद्ध जीत कर विजयनगर राज्यको नष्ट कर दिया तो उसमें आदिलशाही सुल्तान भी शामिल थे। आदिलशाही सुल्तानोंको इमारतें बनवानेका शौक था। बीजापुर शहरके चारों ओर शहरपनाह, बीजापुरकी खास मस्जिद, गगन महल, इब्राहीम द्वितीय (१५८०–१६२६ ई०) का मकबरा और उसके उत्तराधिकारी मुहम्मद (१६२६–५६ ई०) का मकबरा भव्य इमारतें हैं जिन्हें कुशल कारीगरोंसे बनवाया गया था। कुछ सुल्तान, खासतौरसे छठा सुल्तान इब्राहीम द्वितीय योग्य और उदार शासक था। वह साहित्यप्रेमी था। प्रसिद्ध इतिहासकार मुहम्मद कासिम उर्फ फरिश्ताने आदिलशाही संरक्षणमें रहकर अपना प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ 'तारीख-ए-फरिश्ता' लिखा था।

आदिवराह–कन्नौजके गुर्जर-प्रतिहार राजा मिहिर भोज (८४०–६० ई०) की उपाधि थी। उसके चाँदीके सिक्कोंमें यह नाम अंकित मिलता है जो उत्तरी भारतमें बहुतायतसे मिले हैं।

आदिसूर–बंगालकी साहित्यिक अनुश्रुतियोंके अनुसार गौड़ अथवा लक्षणावतीका राजा था। उसने बंगालमें ब्राह्मण धर्मको पुनरुज्जीवित करनेका प्रयास किया, जहाँपर बौद्ध धर्म छाया हुआ था। उसने कान्यकुब्जसे पाँच श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको अपने राज्यमें बुलाकर बसाया जिन्होंने सनातन हिन्दू धर्मकी प्रतिष्ठा की। ये ब्राह्मण ही बंगालके राढ़ी और वारेन्द्र ब्राह्मणोंके पूर्वज थे। आदिसूरका समय ७०० ईसवीके बादका माना जाता है। लेकिन समकालीन प्रमाणोंके अभावमें आदिसूरकी ऐतिहासिकतामें संदेह किया जाता है।

आनन्द अथवा अनन्त देवी–कुमारगुप्त प्रथम (दे०) (४१५–५५ ई०) की रानी थी और पुरुगुप्त (दे०) की माता थी।

आनन्दपाल–सिन्धु नदीके तटपर स्थित उद्भांडपुर अथवा ओहिन्दके हिन्दू शाही राजवंशके राजा जयपालका पुत्र

और उत्तराधिकारी था। वह १००२ ई० के करीब गद्दीपर बैठा। सुल्तान महमूद गजनवीने उसके पिता जयपालको १००१ ई० में परास्त किया था। इसलिए गद्दीपर बैठनेके बाद आनन्दपालका पहला कर्तव्य यही था कि वह सुल्तान महमूदसे इस हारका बदला लेता। सुल्तान महमूदने १००६ ई० में उसके प्रतिरोधके बावजूद मुल्तानपर कब्जा कर लिया और १००८ ई० में आनन्दपालके राज्यपर फिरसे हमला किया। आनन्दपालने उज्जैन, ग्वालियर, कन्नौज, दिल्ली और अजमेरके हिन्दू राजाओंका संघ बनाकर सुल्तानकी सेनाका पेशावरके मैदानमें सामना किया। दोनों ओरकी सेनाएँ ४० दिन तक एक दूसरेके सामने डटी रहीं। अंतमें भारतीय सेनाने सुल्तानकी सेनापर हमला बोल दिया और जिस समय हिन्दुओंकी विजय निकट मालूम होती थी उसी समय एक दुर्घटना घट गयी। जिस हाथीपर आनन्दपाल अथवा उसका पुत्र ब्राह्मणपाल बैठा था वह पीछे मुड़कर भागने लगा। यह देखते ही भारतीय सेना छिन्न-भिन्न होकर भागने लगी। इस युद्धमें युवराज ब्राह्मणपाल मारा गया। सुल्तानकी विजयी सेना आनन्दपालके राज्यमें घुस गयी और कांगड़ा और भीमनगरके किलों और मंदिरोंपर हमला करके उन्हें लूटा। आनन्दपालने इसपर भी पराजय स्वीकार नहीं की और नमककी पहाड़ियोंसे मुसलमानोंका लगातार प्रतिरोध करता रहा। कुछ वर्ष बाद उसकी मृत्यु हो गयी।

आनन्द रंग पिल्लई–डूप्लेका दुभाषिया था। उसने पांडेचेरीकी घटनाओंका विवरण लिखा है और साथ ही उन घटनाओंका भी उल्लेख किया है जिनकी प्रतिक्रिया फ्रांसीसी राजधानीमें हुई। उसकी तमिलभाषामें लिखी दैनिन्दिनीके बारह खंडोंका अनुवाद अंग्रेजीमें हुआ है। उसने कभी-कभी तो बाजारू अफवाहों और मामूली घटनाओंको भी बहुत बढ़ा चढ़ा कर लिखा है।

आन्ध्र–भारतके पूर्वी समुद्रतटपर गोदावरीके मुहानेसे लेकर कृष्णाके मुहानेतक विस्तृत प्रदेशको कहते हैं। यहाँके निवासी ज्यादातर तेलुगु भाषी हैं और इस क्षेत्रमें प्राचीनकालसे बसे हुए हैं। ब्रिटिश शासन-कालमें इस क्षेत्रको तमिल-भाषी क्षेत्रसे मिलाकर मद्रास प्रेसीडेन्सी बना दिया गया था। स्वतंत्रता-प्राप्तिके बाद यहाँके निवासियोंने भाषायी आधारपर उनका क्षेत्र मद्राससे अलग करके पृथक् राज्य बनानेकी माँग की। हिंसा और उपद्रवकी अनेक घटनाएँ घटनेके बाद यह माँग स्वीकार कर ली गयी और हैदराबादको राजधानी बनाकर पृथक् आन्ध्र राज्यकी स्थापना कर दी गयी। आन्ध्र राज्य भारतमें भाषायी राज्यकी स्थापनाका पहला उदाहरण है और उसके बाद अन्य राज्योंको भी भाषायी आधारपर तोड़नेके आन्दोलन चल पड़े।

आन्ध्र राजवंश–देखो सातवाहन राजवंश।

आभीर–गणका प्रथम उल्लेख पतंजलिके महाभाष्यमें मिलता है। वे सिन्धु नदीके निचले कांठे और पश्चिमी राजस्थानमें रहते थे। 'पेरिप्लस' नामक ग्रंथ तथा टालेमीके भूगोलमें भी उनका उल्लेख है। ईसाकी दूसरी शताब्दीके उत्तरार्द्धमें आभीर राजा पश्चिमी भारतके शक् शासकोंके अधीन थे। ईश्वरदत्त नामक आभीर राजा महाक्षत्रप बन गया था। ईसवी तीसरी शताब्दीमें आभीर राजाओंने सातवाहन राजवंशके पराभवमें महत्त्वपूर्ण योग दिया था। समुद्रगुप्तके इलाहाबादके स्तम्भ-लेखमें आभीरोंका उल्लेख उन गणोंके साथ किया गया है जिन्होंने गुप्त सम्राट्की अधीनता स्वीकार कर ली थी। (पोलि०, पृ० ५४५)

आम्बूर की लड़ाई–फ्रांसीसियोंका समर्थन प्राप्त कर लेने वाले चन्दा साहब और कर्नाटकके नवाब अनवरुद्दीनके बीच १७४९ ई० में हुई, जिसमें नवाब पराजित हुआ और मारा गया।

आम्भि–ई० पू० ३२७–२६ में भारतपर सिकंदर महान्के आक्रमणके समय तक्षशिलाका राजा था। उसका राज्य सिन्धु और जेहलम नदियोंके बीचमें विस्तृत था। वह पुरु अथवा पोरसका प्रतिद्वन्द्वी राजा था जिसका राज्य जेहलमके पूर्व में था। कुछ तो पोरससे ईर्ष्याके कारण और कुछ अपनी कायरताके कारण उसने स्वेच्छासे सिकंदरकी अधीनता स्वीकार कर ली और पोरसके विरुद्ध युद्धमें उसने सिकंदरका साथ दिया। सिकंदरने उसको पुरस्कारस्वरूप पहले तो तक्षशिलाके राजाके रूपमें मान्यता प्रदान कर दी और बादमें सिन्धु और चनाब के संगम क्षेत्रतकका शासन उसे सौंप दिया। संभवतः चन्द्रगुप्त मौर्यने उससे सारा प्रदेश छीन लिया और पूरे पंजाबसे यवनों (यूनानियों) को निकाल बाहर किया। जब सिकंदरके सेनापति एवं उसके पूर्वी साम्राज्यके उत्तराधिकारी सेल्यूकसने भारतपर आक्रमण किया तो उस समय भी पंजाब चन्द्रगुप्त मौर्यके अधिकारमें था। आम्भिका अन्त कैसे हुआ, इसकी जानकारी नहीं मिलती है।

आम्रकार्द्दव–तीसरे गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय (३८१–४१३ ई०) का एक सेनापति था। अनेक युद्धोंमें विजय प्राप्त करनेके कारण उसका यश चारों ओर फैला था। चन्द्रगुप्त द्वितीयने जब पूर्वी मालवापर हमला किया तो सेनापति आम्रकार्द्दव भी उसके साथ

था। उसने सनकानीक महाराजको गुप्तोंका सामंत बनाने तथा पश्चिमी मालवा व काठियावाड़के शकोंका उन्मूलन करनेमें अपने सम्राट्की सहायता की। वह बौद्ध मतावलम्वी था अथवा बौद्ध धर्ममें श्रद्धा रखता था। उसने एक बौद्ध विहार को दान दिया था।

आयर, मेजर विन्सेण्ट (१८११–८१ ई०)–बंगाल तोपखाने-का अफसर होकर १८२८ ई० में भारत आया। १८३९–४२ ई० में काबुलपर अंग्रेजोंके आक्रमणमें भाग लिया। बादमें उसका स्थानान्तरण बर्माके लिए हो गया। जब भारतमें १८५७ ई० में प्रथम स्वाधीनता संग्राम छिड़ा, तो उसे भारत वापस बुला लिया गया। जब वह लौट रहा था, तो उसने सुना कि जगदीशपुरके कुवँर सिंहने आराको घेर रखा है। उसने अपनी जिम्मेदारीपर सेना एकत्र कर कुँवरसिंहको पराजित किया। इसके बाद वह लखनऊ गया जहाँ उसने १८५८ ई० में अंग्रेजोंको विजयी बनानेमें सहायता दी। वह १८६३ ई० में अवकाशपर चला गया।

आयर, सर चार्ल्स–फोर्ट विलियम (कलकत्ता) का प्रथम अध्यक्ष था। इस फोर्ट विलियमसे ही सन् १७०० ई० के बाद बंगालकी सभी अंग्रेजी फैक्ट्रियोंका नियन्त्रण होता था। सर चार्ल्सके प्रशासनमें कोई उल्लेखनीय घटना नहीं घटी।

आरगांवकी लड़ाई–२९ नवम्बर १८०३ ई० में आर्थर वेलेस्लीके नेतृत्वमें अंग्रेजों और नागपुरके भौंसला शासकके नेतृत्वमें मराठा दलके बीच हुई। यह लड़ाई द्वितीय मराठा युद्धके सिलसिलेमें हुई थी। इसमें भोंसलाकी सेना निर्णायक ढंगसे परास्त हुई और अंग्रेजी सेनाका गवीलगढ़के किलेपर अधिकार हो गया। भोंसला राजाने दिसंबर१८०३ ई० में देवगढ़की सन्धि करके अंग्रेजोंका आश्रित होना स्वीकार कर लिया।

आरजूमंद बानो बेगम–देखो मुमताज महल।

आरामशाह–दिल्लीका सुल्तान (१२०६–१२११ ई०)। वह दिल्लीके प्रथम सुल्तान कुतुबुद्दीनका उत्तराधिकारी था। सुल्तान आरामशाहमें कुतुबुद्दीनके गुण नहीं थे। उससे उसका सम्बन्ध भी अज्ञात है। कुछ इतिहासकारोंके अनुसार वह कुतुबुद्दीनका बेटा था। अबुल फजलके अनुसार वह कुतुबुद्दीनका भाई था। कुछ अन्य इतिहासकारोंके अनुसार उसका प्रथम सुल्तानसे कोई सम्बन्ध नहीं था। उसको कुछ अज्ञात कारणोंसे ही सुल्तान बनाया गया जिसे कुतुबुद्दीनके दामाद ईल्तुतमिशने गद्दीसे उतार दिया।

आरिया–यूनानी इतिहासकारोंके अनुसार हेरातका नाम।

आरियाना–अफगानिस्तानका यूनानी नाम।

आर्कोशिया–नामका प्रयोग यूनानी इतिहासकारोंने कन्दहार क्षेत्रके लिए किया है।

आर्यदेव–एक प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य जो ईसाकी दूसरी शताब्दीमें हुआ। उसकी गणना बौद्ध धर्मकी महायान शाखाके प्रवर्तकोंमें होती है।

आर्यभट–भारतका प्रमुख गणितज्ञ और ज्योतिषी। जन्म ४७६ ई० में हुआ। २३ वर्षकी अवस्थामें, जब वह कुसुमपुर अथवा पटना में रहता था, 'आर्यभट्ट तंत्र' नामक ग्रंथ संस्कृतमें लिखा। उसने पता लगाया कि पृथ्वी प्रति दिन अपनी धुरीपर घूमती है जिससे दिन और रात होते हैं। कोपरनिकससे बहुत पहले उसने यह ढूंढ निकाला कि पृथ्वी सूर्यके चारों ओर परिक्रमा करती है। उसे सूर्य और चन्द्रग्रहणका असली कारण मालूम था। उसे यह भी पता था कि चन्द्रमा और दूसरे ग्रह स्वयं प्रकाशमान नहीं हैं वरन् सूर्यकी किरणें उससे प्रतिबिम्बित होती हैं तथा पृथ्वी एवं दूसरे ग्रह सूर्यके चारों ओर वृत्ताकार घूमते हैं। **(बी० बी० दत्त–हिन्दू कंट्रीब्यूशन टू मैथमेटिक्स तथा एल० रोडे–ले कांस डि कल्कुल आर्यभट्ट)**

आर्यसमाज–एक सामाजिक सुधारका संगठन जिसकी स्थापना स्वामी दयानन्द सरस्वती (दे०) ने १८७५ ई० में की। पश्चिमी शिक्षा और विज्ञानके प्रभावसे बहुतसे शिक्षित भारतीय ईसाई धर्मकी ओर झुक जाते थे। ब्रह्मसमाज और प्रार्थनासमाजकी भाँति आर्यसमाज भी इस प्रवृत्तिको रोकनेके लिए स्थापित किया गया और उसे इसमें काफी सफलता मिली। आर्यसमाजका लक्ष्य था 'वेदोंकी ओर पुनः लौटो'। वह समाजको वैदिक व्यवस्थाके आधारपर संगठित करना चाहता था और बादके पुराण पंथको छोड़नेपर जोर देता था। आर्यसमाजने एकेश्वरवादकी स्थापना की और बहुईश्वरवाद और मूर्तिपूजाकी निन्दा की। आर्यसमाजने जाति-पाँतिके प्रतिबन्धों, और बाल-विवाहका विरोध किया और समुद्र यात्रा, स्त्री-शिक्षा और विधवा-विवाहका समर्थन किया। आर्यसमाजका लक्ष्य भारतकी पददलित अथवा पिछड़ी जातियोंका उत्थान करना भी था। उसने शुद्धि आन्दोलन चलाकर बहुतसे गैर-हिन्दुओंको हिन्दू बनाया और इस प्रकार हिन्दू धर्मको फिरसे शक्तिशाली बनानेका प्रयास किया। आर्यसमाजने सामाजिक सुधार और शिक्षाके क्षेत्रमें बहुत काम किया, विशेष रूपसे पंजाबमें। प्रारम्भ में आर्यसमाजने केवल संस्कृत-शिक्षापर जोर दिया, लेकिन बादमें लाला हंसराजके नेतृत्वमें उसकी एक शाखाने पश्चिमी-शिक्षा ग्रहण करनेका समर्थन किया और लाहौरमें

दयानन्द एंग्लो-वैदिक कालेजकी स्थापना की। लेकिन कट्टर आर्यसमाजी वैदिक आदर्शोंके अनुसार आधुनिक जीवनको ढालनेपर जोर देते रहे और १९०२ ई० में उन्होंने हरद्वारमें गुरुकुल कांगड़ीकी स्थापना की। उत्तरी भारतमें आज भी आर्य समाजके अनुयायी बहुत बड़ी संख्यामें हैं।

आर्यावर्त–का अर्थ है आर्योंका वासस्थान। मनुसंहिता (२०० ई०) में आर्यावर्तका प्रयोग हिमालयसे विन्ध्य तक समस्त उत्तरी भारतके लिए किया गया है। आर्य लोग कब इस क्षेत्रमें आये, इसका सही पता नहीं लगाया जा सका है। ऋग्वेद (२००० ई० पू०) की रचनाके कालमें आर्य लोग अफगानिस्तान और पंजाबतक सीमित थे। पंजाबमें बस जानेके बाद आर्योंको पूर्वकी ओर बढ़ने तथा समस्त आर्यावर्तमें फैलनेमें कई शताब्दियाँ लग गयी होंगी।

आलम खां–सुल्तान बहलोल लोदी (१४५१–८९ ई०) का तीसरा बेटा था और दिल्लीके अंतिम सुल्तान इब्राहीम लोदी (१५१७–२६ ई०) का चाचा था। आलम खाँ अपने भतीजेकी अपेक्षा अपनेको दिल्लीकी सल्तनतका असली हकदार समझता था। जब वह अपने बलपर इब्राहीम लोदीको गद्दीसे नहीं हटा सका तो उसने लाहौरके हाकिम दौलत खाँ लोदीसे मिलकर बाबरको हिन्दुस्तानपर हमला करनेके लिए निमंत्रण दिया। इसके फलस्वरूप बाबरने भारतपर हमला किया और पानीपतकी पहली लड़ाई (१५२६ ई०) में इब्राहीम लोदीको हरानेके बाद मौतके घाट उतार दिया। तदुपरांत बाबर स्वयं दिल्लीके तख्तपर बैठ गया और आलम खाँकी सारी उम्मीदोंपर पानी फिर गया। कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो गयी।

आलमगीर–देखो, औरंगजेब।

आलमगीर द्वितीय–१६वाँ मुगल बादशाह (१७५४–५९) था। वह आठवें मुगल बादशाह जहाँदार शाह (१७१२–१३) का बेटा था। वजीर गाजीउद्दीनने १५वें मुगल बादशाह अहमद शाहको अन्धा करके गद्दीसे उतार दिया और १७५४ ई० में आलमगीर द्वितीयको बादशाह बनाया। वह चाहता था कि बादशाह उसके हाथकी कठपुतली बना रहे। वह समय बड़ी उथल-पुथलका था। १७५६ ई० में अहमदशाह अब्दालीने चौथी बार हिन्दुस्तानपर हमला किया और दिल्लीको लूटा। उसने सिन्धपर कब्जा कर लिया और अपने बेटे तैमूरको वहाँका शासन करनेके लिए छोड़ दिया। इसके बाद ही मराठोंने १७५८ ई० में दिल्लीपर चढ़ाई की और पंजाबको जीत कर तैमूरको वहाँसे निकाल दिया। बादशाह आलमगीर इन सब घटनाओंका असहाय दर्शक बना रहा। जब उसने वजीर गाजीउद्दीनके नियंत्रणसे अपनेको मुक्त करनेका प्रयास किया तो १७५९ ई० में वजीरने उसकी भी हत्या करवा दी। इससे पहले पलासीकी लड़ाई १७५७ ई० में हो चुकी थी और उसमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी जीत हो चुकी थी। बादशाह आलमगीर द्वितीय बंगालको मुगलोंके कब्जेमें बनाये रखने और इस प्रकार भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यकी नींव न पड़ने देनेके लिए कुछ न कर सका।

आलमशाह प्रथम–देखो 'बहादुर शाह प्रथम'।

आलमशाह द्वितीय या शाहआलम द्वितीय–१७वाँ मुगल बादशाह (१७५९–१८०६ ई०) था। जब वह अपने पिता बादशाह आलमगीर द्वितीयके उत्तराधिकारीके रूपमें १७५९ ई० में गद्दीपर बैठा, तो उसका नाम शाहजादा अली गौहर था। बादशाह होनेपर उसने आलम-शाह द्वितीयका खिताब धारण किया। इतिहासमें वह शाह आलम द्वितीयके नामसे प्रसिद्ध है। उसका राज्य-काल भारतीय इतिहासका एक संकटग्रस्त काल कहा जा सकता है। उसके पिता आलमगीर द्वितीयको उसके सत्तालोलुप और कुचक्री वजीर गाजीउद्दीनने तख्तसे उतार दिया था और वह नये बादशाहको भी अपनी मुट्ठीमें रखना चाहता था। आलमशाह द्वितीयके गद्दीपर बैठनेके दो साल पहले पलासीकी लड़ाईमें ईस्ट इंडिया कम्पनी विजयी हो चुकी थी, जिसके फलस्वरूप बंगाल, बिहार और उड़ीसापर उसका शासन हो गया था। उत्तर-पश्चिममें अहमदशाह अब्दालीने अपने हमले शुरू कर दिये थे। १७५६ ई० में उसने दिल्लीको लूटा और १७५९ ई० में मराठोंको जिन्होंने १७५८ ई० में पंजाबपर अधिकार कर लिया था, वहाँसे निकाल बाहर किया। दक्षिणमें पेशवा बालाजी बाजीरावके नेतृत्वमें मराठे मुगलोंके स्थानपर अपना साम्राज्य स्थापित करनेका प्रयास कर रहे थे। इस प्रकार जिस समय शाह आलम द्वितीय गद्दीपर बैठा, उस समय उसका अपना वजीर उसके खिलाफ गद्दारी कर रहा था, पूर्वमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी ताकत बढ़ रही थी तथा पंजाबमें अहमदशाह अब्दाली ताक लगाये बैठा था। शाह आलम द्वितीयने अपने तख्तके लिए अब्दालीको सबसे ज्यादा खतरनाक समझा। इसलिए उसने अब्दालीके पंजेसे बचनेके लिए मराठोंको अपना संरक्षक बना लिया। लेकिन १७६१ ई० में पानीपतकी तीसरी लड़ाईमें अब्दाली-ने मराठोंको हरा दिया। उसने शाहआलम द्वितीयको

दिल्लीके तख्तपर बना रहने दिया। यद्यपि बादमें उसकी इच्छा हुई कि वह उसे हटाकर स्वयं दिल्लीका तख्त हस्तगत कर ले, तथापि उसकी यह योजना पूरी नहीं हुई। किन्तु, अब्दालीकी इस विफलतासे बादशाह शाह आलम द्वितीयको कोई लाभ नहीं पहुँचा। १७६४ ई० में उसने अपनी शक्ति बढ़ानेका दूसरा प्रयास किया और बंगालसे अंग्रेजोंको निकाल बाहर करनेके लिए अवधके नवाब शुजाउद्दौला और बंगालके भगोड़े नवाब मीर कासिमसे संधि कर ली परन्तु अंग्रेजोंने बक्सरकी लड़ाइ (१७६४ ई०) में शाही सेनाको हरा दिया और बादशाह शाह आलम द्वितीयने ईस्ट इंडिया कम्पनीसे इलाहाबादकी सन्धि कर ली। इस संधिके द्वारा बादशाहको कोड़ा और इलाहाबादके जिले अवधसे मिल गये और बादशाहने बंगाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानी (राजस्व वसूलनेका अधिकार) कम्पनीको इस शर्तपर सौंप दी कि वह उसे २६ लाख रुपये सालाना खिराज देगी। लेकिन शाह आलमको यह लाभ थोड़े समय ही मिला। पानीपतकी तीसरी लड़ाईमें मराठोंकी शक्तिको क्षति अवश्य पहुँची थी किन्तु शीघ्र ही उन्होंने फिरसे शक्ति अर्जित कर ली। बादशाह शाह आलम द्वितीय अपने वजीर नजीबुद्दौला (गाजीउद्दीन) की साजिशोंसे दिल्ली नहीं लौट पा रहा था। उसने मराठोंकी मदद लेनेके लिए कोड़ा और इलाहाबादके जिले मराठा सरदार महादजी शिन्देको सौंप दिये। इस प्रकार मराठोंकी सहायतासे १७७१ ई० में शाह आलम द्वितीय पुनः दिल्ली लौटा, लेकिन अब उसकी हैसियत मराठोंके हाथकी कठपुतलीके समान थी। अतएव ईस्ट इंडिया कम्पनीने इलाहाबादकी सन्धि तोड़ दी और शाह आलम द्वितीयसे कोड़ा और इलाहाबादके जिले वापस ले लिये और उसे वार्षिक २६ लाख रुपया देना भी बन्द कर दिया, जिसे अंग्रेजोंने १७६४ में बंगालकी दीवानीके बदलेमें देनेका वायदा किया था। इससे बादशाह शाह आलम द्वितीयकी हालत पतली हो गयी और वह दूसरे आंग्ल–मराठा युद्ध (१८०३–१८०५ ई०) तक मराठोंकी शरणमें रहा। दूसरे मराठा युद्धमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी फौजोंने जनरल लेकके नेतृत्वमें शिन्देकी सेनाको दिल्लीके निकट पराजित कर दिया। इसके बाद शाह आलम द्वितीय और उसकी राजधानी दिल्ली दोनोंपर ईस्ट इंडिया कम्पनीका नियंत्रण स्थापित हो गया। बादशाह अब बूढ़ा हो चला था और अंधा भी हो गया था। वह पूर्णतया निस्सहाय था। वह ईस्ट इंडिया कम्पनीकी पेंशनपर जीवन-यापन करता रहा। अंतमें १८०६ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

आलवार—वैष्णव सम्प्रदायके संत थे जिन्होंने ईसाकी सातवीं आठवीं शताब्दीमें दक्षिण भारतमें भक्तिमार्गका प्रचार किया। इन संतोंमें नाथमुनि, यामुनाचार्य और रामानुजाचार्य प्रमुख थे। रामानुजने विशिष्टाद्वैत सिद्धांतका प्रतिपादन किया, जो शंकराचार्यके अद्वैतवादका संशोधित रूप था।

आलिया बेगम—देखो, 'मुमताज महल'।

आश्वालयन—प्राचीनकालके एक प्रसिद्ध सूत्रकार ऋषि जिनके विरचित गृह्यसूत्रमें वैदिककालके विविध धार्मिक तथा सामाजिक अनुष्ठानोंका विस्तृत विवरण मिलता है। गृह्यसूत्रमें महाभारतका प्राचीनतम उल्लेख मिलता है। इसके रचनाकालके बारेमें निश्चय नहीं हो सका है।

आष्टीकी लड़ाई—२० फरवरी १८१८ ई० को ईस्ट इंडिया कम्पनी और पेशवा बाजीराव द्वितीयके बीच तृतीय आंग्ल-मराठा युद्ध (१८१७–१८) के दौरान हुई। इस लड़ाईमें पेशवाकी सेना हार गयी और उसका योग्य सेनापति गोखले मारा गया। इस पराजयके फलस्वरूप पेशवाने जून १८१८ ई० में आत्म-समर्पण कर दिया।

आसफउद्दौला (१७७५–९७ ई०)—अवधके नवाब शुजाउद्दौलाका बेटा और उत्तराधिकारी था। वह एक अयोग्य शासक था जिसने ईस्ट इंडिया कम्पनीसे फैजाबादकी सन्धि करके कम्पनीको ७४ लाख रूपये वार्षिक इस शर्तपर देना स्वीकार कर लिया कि कम्पनी अपनी दो रेजीमेण्ट फौज अवधमें उसके राज्यकी सुरक्षाके लिए रखेगी। नवाबका वित्तीय प्रबन्ध बहुत दोषपूर्ण था और शीघ्र ही उसपर बकायाकी रकम बहुत बढ़ गयी। १७८१ ई० में जब ईस्ट इंडिया कम्पनी और मराठोंके बीच लड़ाई चल रही थी उस समय कम्पनीके गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सने नवाबसे बकाया रकमकी माँग की। नवाबने बकाया रकम बेबाक करनेमें तबतक अपनी असमर्थता प्रकट की जबतक उसे अपने बाप मरहूम नवाब शुजाउद्दौला द्वारा छोड़ी गयी दौलत न दिला दी जाय जो उसकी माँ और दादीके कब्जेमें थी। वारेन हेस्टिंग्सने अवधकी बेगमों (दे०) को आदेश दिया कि वे फैजाबादमें अपने महलसे बाहर न निकलें। उसने उनके महलके ख्वाजा सरा आदिको इतनी यातनाएँ दीं कि बेगमोंने अंतमें उसकी बात मानकर रुपया दे दिया। इस कांडको 'अवधकी बेगमोंकी लूट'की संज्ञा दी जाती है। नवाब आसफउद्दौलाने इस प्रकार कम्पनीके पदाधिकारियोंसे मिलकर अपनी माँ और दादीको जिस प्रकार अपमानित कराया उससे उसकी बहुत बदनामी हुई। अवधका १९ सालतक कुशासन

करनेके बाद १७९७ ई० में आसफउद्दौलाकी मृत्यु हो गयी।

आसफ खां—बादशाह अकबर (१५५६–१६०५ ई०) के शासनकालके प्रारम्भमें कड़ाका सूबेदार था। १५६४ ई० में उसने अकबरके आदेशसे गोंडवानाका राज्य जीता जो आधुनिक मध्य प्रदेशके उत्तरी भागमें था। उसने गोंडवानाकी शासिका रानी दुर्गावती और उसके नाबालिग पुत्र राजा वीर नारायणको हराया। कुछ समयतक आसफ खाँने नये विजित क्षेत्रका प्रशासन चलाया लेकिन बादमें वहाँसे उसका तबादला कर दिया गया। १५७६ ई० में उसे राजा मानसिंहके साथ उस मुगल सेनाका सेनापति बनाकर भेजा गया जिसने राणाप्रतापको हल्दीघाटीके युद्धमें अप्रैल १५७६ में पराजित किया।

आसफ खां—बादशाह अकबरके शासनकालमें फारससे भारत आनेवाले मिर्जा ग्यासबेगका पुत्र और मेहरुन्निसा-का भाई था जो बादशाह जहांगीर (१६०५–२७ ई०) की मलका नूरजहाँके नामसे अधिक प्रख्यात है। आसफ खाँ शाही मुलाजमतमें था और मुगल दरबारका एक प्रमुख ओहदेदार बन गया था। आसफ खाँकी बेटी मुमताज-महल बादशाह जहाँगीरके तीसरे बेटे शाहजादा खुर्रमको ब्याही थी जो शाहजहाँके नामसे प्रख्यात है। १६२७ ई० में जहाँगीरकी मौतके बाद आसफ खाँने नूरजहाँके उस षड्यंत्रको विफल कर दिया जिसके द्वारा वह जहाँगीरके सबसे छोटे बेटे शहरयारको बादशाह बनाना चाहती थी। शहरयारको नूरजहाँकी बेटी ब्याही थी। आसफ खाँने शाहजहाँको बादशाह बनानेमें सफलता प्राप्त की। बादशाह शाहजहाँने तख्तपर बैठनेके बाद अपने ससुर आसफ खाँको सल्तनतका वजीर बना दिया जिस पदपर वह मृत्युपर्यंत बना रहा।

आसफजाह (चिन किलिच खां)—मुगल अमीरोंमें तूरानी पार्टीका सरदार था। तूरानी मध्य एशियाके निवासी थे और मुगल बादशाहोंके दरबारमें उच्च पदोंपर नियुक्त थे। आसफजाहका पूरा नाम मीर कमरुद्दीन चिन किलिच खाँ था। उसका बाप गाजीउद्दीन फीरोज खाँ जंग औरंगजेबके शासनकालमें भारत आया था और शाही मुलाजमतमें उच्च पदोंपर नियुक्त किया गया था। मीर कमरुद्दीन जब १३ वर्षका था तभी शाही मुलाजमतमें दाखिल हुआ। जल्दी ही उसने तरक्की की और उसे चिन किलिच खाँकी उपाधि मिली। औरंगजेबकी मृत्युके समय वह बीजापुरमें शाही सेनाका सेनापति था। औरंगजेबके बेटोंमें उत्तराधिकारके लिए जो युद्ध हुए, वह उनसे दूर रहा। जब औरंगजेबका बेटा और उत्तराधिकारी बादशाह बहादुरशाह (१७०७–१२ ई०) गद्दीपर बैठा तो उसने चिन किलिच खाँको अवधका सूबेदार बनाया और उसको भी उसके बापका गाजीउद्दीन फीरोज जंग खिताब दिया। बादमें १७१३ ई० में बादशाह फर्रुखसियर (१७१३–१९ ई०) ने उसे दक्खिनका सूबेदार बनाया और निजामुल्मुल्कका खिताब दिया। दक्षिणमें बादशाहके प्रतिनिधिके रूपमें उसने मराठोंकी बढ़ती हुई ताकतको रोकनेकी कोशिश की, लेकिन शीघ्र ही दिल्ली दरबारके प्रभावशाली सैयद बंधुओं (दे०) से, जिनके हाथमें बादशाहकी नकेल थी, उसकी अनबन हो गयी। सैयद बंधुओंने निजामुलमुल्कका तबादला पहले मुरादाबाद और फिर मालवा कर दिया जहाँ उसने सैनिक शक्ति बटोरना शुरू कर दिया। इससे सैयद बंधुओंसे शत्रुता और बढ़ गयी। अन्ततः निजामुलमुल्कने सैयद बंधुओंको पराजित कर दिया और उन्हें मरवा डाला। निजामुल्मुल्कको १७२० ई० में फिरसे दक्खिनमें बादशाहका प्रतिनिधि बना दिया गया। १७२१ ई० में बादशाह मुहम्मदशाह (१७१९–४८ ई०) ने उसे अपना वजीर बनाया लेकिन उसने १७२३ ई० में यह पद छोड़ दिया और १७२४ ई० में पुनः बादशाहके प्रतिनिधिके रूपमें दक्खिन लौट गया। बादशाह मुहम्मद शाहने उसे इस पदसे जबरन हटानेकी कोशिश की, लेकिन उसमें बादशाहको सफलता नहीं मिली। तब उसने निजामुल्मुल्कको दक्षिणमें अपना प्रतिनिधि मान लिया और उसे आसफजाहका खिताब दिया। अब वह दक्षिणका लगभग स्वतंत्र शासक हो गया और उसने हैदराबादके निजाम वंशकी स्थापना की। आसफजाहने अपने राज्यमें अच्छा शासन प्रबंध किया। पेशवा बाजीराव प्रथम (१७२०–४० ई०) दक्षिणमें उसका शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी था। अतः उसने बाजीराव प्रथमके विरोधी मराठा सेनापति त्र्यम्बकराव दाभाड़ेका समर्थन किया, लेकिन १७३१ ई० में दाभाड़ेकी पराजय और मृत्युके बाद आसफजाहने बाजीराव प्रथमसे सुलह कर ली और उसे उत्तरकी ओर बढ़नेकी खुली छूट दे दी। किन्तु निजामने १७३७ ई० में इस सन्धिको तोड़ दिया और बादशाह मुहम्मदशाहके बुलावेपर वह उत्तरमें पेशवा बाजीराव प्रथमके प्रसारको रोकनेके लिए दिल्ली पहुँचा। लेकिन पेशवा बाजीराव प्रथमने निजामुल्मुल्कको भोपालके निकट लड़ाईमें पराजित कर दिया और इस शर्तपर सन्धि कर ली कि मालवा और नर्मदासे चम्बलतकके क्षेत्रपर उसका प्रभुत्व स्वीकार कर लिया जाय। १७३९ ई० में जब नादिर-

शाहने दिल्लीपर हमला किया तो दिल्लीसे दूर होनेके कारण आसफजाह विनाशसे बच गया और उस वजहसे उसने दक्षिणमें अपनी स्थिति और मजबूत कर ली। १७४८ ई० में ६१ वर्षकी उम्रमें उसकी मृत्यु हुई।

आसाम—भारतका पूर्वोत्तर राज्य जिसका विस्तार पश्चिममें संकोष नदीसे पूर्वमें सदियातक है। यह राज्य ब्रह्मपुत्र नदकी देन है। ब्रह्मपुत्र नदने उत्तरमें हिमालय और दक्षिणमें आसामकी पहाड़ियोंके बीचमें बहते हुए एक उपजाऊ घाटी बना दी है जो आजकल आसाम कहलाती है। उसे महाभारतमें प्रागज्योतिष और पुराणोंमें कामरूप कहा गया है। मुसलमान इतिहासकारोंने उसे कामरूप लिखा है। जबसे इस क्षेत्रको अहोम (दे०) लोगोंने जीतकर अपने अधिकारमें कर लिया तबसे यह क्षेत्र आसामके नामसे पुकारा जाने लगा है। इस क्षेत्रमें चारों ओरसे लोग आसानीसे प्रवेश कर सकते हैं इसीलिए सभी पड़ोसी क्षेत्रोंके बुभुक्षित और साहसी लोग सभी युगोंमें यहाँ आकर बसते रहे। इसी कारण यहाँकी आबादीमें बहुत अधिक रक्तका मिश्रण हुआ। यहाँ आस्ट्रिक, मंगोल और द्राविड़ जातियोंके लोग भी मिलते हैं और आर्य जातिके लोग भी। आसामकी आधुनिक आबादी बहुत मिलीजुली है और वहाँ अनेक भाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं जिनमें असमी और बंगला भाषाकी अपनी लिपियाँ हैं। दूसरी बोलियाँ और भाषाएं रोमन लिपिमें लिखी जाती हैं और उनका अपना कोई साहित्य नहीं है। आसामका इतिहास मोटे तौरसे चार कालोंमें विभाजित किया जा सकता है—पौराणिक काल, प्रारम्भिक काल, अहोम काल और आधुनिक काल। पौराणिक कालमें आसाममें अनार्य लोगोंका राज्य था जिन्हें दानव और असुर कहा जाता था। इसी कालमें आर्य लोग उत्तर पश्चिमके स्थल मार्गसे यहाँ आये। प्रारम्भिक काल ईसाकी चौथी शताब्दीसे आरम्भ होता है और आसामका उल्लेख कामरूपके नामसे द्वितीय गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त (३३०–८० ई०) के इलाहाबादके स्तम्भ-लेखमें आया है। यह काल १३वीं शताब्दीतक जारी रहा जब आसामपर पूर्वकी ओरसे अहोम जातिका और पश्चिमकी ओरसे मुसलमानोंका हमला हुआ। मुसलमानोंके आक्रमणोंको विफल कर दिया गया जिसके फलस्वरूप आसामके इतिहासमें मुसलमानी शासन-काल नहीं मिलता। अहोम लोगोंने इस क्षेत्रको जीत लिया और यहाँ करीब ६०० वर्षतक राज्य किया। उनके बाद बर्मी लोगोंने आसामको जीत लिया और यहाँ थोड़े समय तक राज्य किया। १८२६ ई० में आसामको भारतके ब्रिटिश राज्यका हिस्सा बना लिया गया। उसके बाद आसामके इतिहासका आधुनिक काल आरम्भ हुआ और वह राजनीतिक और प्रशासनिक दृष्टिसे भारतका आंतरिक भाग बन गया, हालाँकि सांस्कृतिक दृष्टिसे वह सदैव भारतका एक अंग रहा। पौराणिक कालका सबसे अधिक विख्यात राजा नरकासुर था जिसके सम्बन्धमें कहा जाता है कि वह बिहारके मिथिला नगरसे प्रागज्योतिषमें राज्य करने आया था। इसलिए यह माना जा सकता है कि उसके राज्य-कालसे आसामकी गणना आर्य-क्षेत्रमें होने लगी। नरकका नाम आसामके प्राचीन इतिहाससे, विशेषरूपसे कामाख्या देवीकी पूजा और गौहाटीके निकट नीलांचलपर उसके मंदिरके निर्माणसे जुड़ा हुआ है। नरकासुरका पुत्र भागदत्त महाभारतमें महान योद्धा बताया गया है जिसने कुरुक्षेत्र युद्धमें कौरवोंकी ओरसे भाग लिया और मारा गया। उसका उत्तराधिकारी बज्रदत्त था और कहा जाता है कि बज्रदत्तके उत्तराधिकारियोंने कामरूपपर तीन हजार वर्षतक राज्य किया जो अतिशयोक्ति मालूम पड़ती है। ईसाकी चौथी शताब्दीमें कामरूपमें पुष्यवर्मा राज्य करता था। पुष्यवर्मा एक ऐतिहासिक व्यक्ति है जिसका उल्लेख भास्कर वर्मा (दे०) (६०४–६४६ ई०) के निधानपुर दानपत्रमें १३ राजाओंके एक राजवंशके संस्थापकके रूपमें हुआ है। इन १३ राजाओंमें समुद्रवर्मा, बालवर्मा, कल्याणवर्मा, गणपतिवर्मा, महेन्द्रवर्मा, नारायणवर्मा, महभूतिवर्मा, अथवा भूतिवर्मा, चन्द्रमुखवर्मा, स्थितवर्मा, सुस्थितवर्मा, सुप्रतिष्ठितवर्मा, और भास्करवर्मा शामिल हैं। पुष्यवर्मा कामरूपका उस समय राजा था जब द्वितीय गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त (३३०–३८० ई०) ने वहाँ आक्रमण किया और इलाहाबादके स्तम्भ-लेखके अनुसार पुष्यवर्माने समुद्रगुप्तके सामने आत्म-समर्पण कर दिया। भास्कर वर्मा सम्राट हर्षवर्द्धनका सम-सामयिक था। इस बातका उल्लेख बाणके हर्ष-चरित्रमें आया है और ह्युएन-त्सांगके यात्रा-वर्णनसे भी उसका पता चलता है। भास्कर वर्माका देहान्त ६४६ ई० में हर्षकी मृत्युके कुछ वर्षों बाद हुआ। उसके बाद कामरूप राज्य सातवीं शताब्दीके मध्यकालमें म्लेच्छ राजा सालस्तम्भके द्वारा स्थापित राजवंशके हाथमें चला गया। वह अपनी राजधानी प्रागज्योतिषपुर (गौहाटी) से हटाकर ब्रह्मपुत्रके किनारे हरूपेश्वर नामक स्थानपर ले गया। यह स्थान आधुनिक तेजपूरके निकट था। इस राजवंशके १३ राजा हुए

जिनमें विजय, पालक, कुमार, वज्रदत्त, हर्ष, बाल वर्मा, चक्र, प्रालम्म, हर्जर, वनमाल, जयमाल, बालवर्मा और त्याग सिंह शामिल हैं। इस राजवंशने सातवीं शताब्दीके मध्यसे १०वीं शताब्दीके मध्यतक राज्य किया। त्याग सिंह निःसन्तान मर गया। ब्रह्मपाल नामक एक व्यक्ति था जो अपनेको नरकासुरका वंशज मानता था। उसे दसवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें कामरूपका राजा चुन लिया गया। ब्रह्मपालने कामरूपमें तीसरे हिन्दू राजवंशकी स्थापना की। यह पाल राजवंश बंगालके राजवंशसे भिन्न था और इसने यहाँ दसवीं शताब्दीके उत्तरार्धसे १२वीं शताब्दीके आरम्भतक राज्य किया। इस राजवंशके रत्नपाल, इन्द्रपाल, गोपाल, हर्षपाल, धर्मपाल और जयपाल ६ राजा हुए। अन्तिम राजा जयपालको बंगालके राजा रामपालने गद्दीसे हटा दिया और कामरूपमें तिग्य देवको अपना सामंत राजा नियुक्त किया जिसने शीघ्र ही रामपालके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। अतएव बंगालके राजा कुमारपालका सेनापति वैद्यदेव वहाँका राजा बनाया गया। लेकिन वैद्यदेवने भी शीघ्र ही बंगालके राजाके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और उसके बाद करीब एक शताब्दीसे अधिक समय तक कामरूपमें अराजकता रही। इस कालमें बंगालका कोई सेनवंशी राजा जब-तब कामरूपपर चढ़ाई करके वहाँके राजाओंको जीत लेता था। इसी बीच इख्तियारुद्दीनने जो बख्तियार खिलजीके नामसे प्रसिद्ध है, बंगालके सेनवंशका तख्ता उलट दिया। बख्तियार खिलजीके नेतृत्वमें ११९८ ई० में बंगालपर मुसलमानोंका पहला आक्रमण हुआ। उसने बंगालकी विजयके बाद १२०५ ई० में आसामपर भी चढ़ाई की। गौहाटीके निकट ब्रह्मपुत्र नदीके उसपार स्थित कनाड-बारसी बेर नामक गाँवमें एक चट्टानपर संस्कृतमें दो पंक्तियोंका एक लेख अंकित है जिसमें कहा गया है कि शक संवत ११२७ (१२०५ ई०) के चैत्र मासकी त्रयोदशीको जिन तुर्कोंने कामरूपपर आक्रमण किया था उनको नष्ट कर दिया गया। इस शिलालेखमें कामरूपके उस वीर योद्धाका नाम नहीं दिया है जिसने मुसलमानोंके आक्रमणको विफल कर दिया। इसके बाद हमें कामरूपके इतिहासकी विशेष जानकारी नहीं मिलती है और १३वीं शताब्दीसे वहाँका इतिहास अंधकारमें है। यदि मुसलमानोंने १२०५ ई० में आसामपर पश्चिमकी ओरसे एक विफल आक्रमण किया तो १२२८ ई० में पूर्वी दिशासे अहोम लोगोंने उसपर हमला किया और उन्हें उसपर अपना अधिकार जमानेमें सफलता मिल गयी। दोनों ओरसे आक्रमण होनेपर कामरूपका राज्य खण्डित होकर अनेक छोटे-छोटे राज्योंमें बँट गया। एकदम पश्चिममें कामतापुर राज्य करतोयासे संकोष नदीतक विस्तृत था और उसके पूर्वमें कामरूप राज्य ब्रह्मपुत्रके उत्तरी तटपर बर नदीसे सुवर्ण श्रीतक विस्तृत था जिसपर बारह भुइयाँ (भूमिपति) राज्य करते थे। सुवर्णश्रीके पूर्वमें ब्रह्मपुत्रके उत्तरी तटवर्ती क्षेत्रमें चुटिया राज्य था और उसके दक्षिण तटवर्ती क्षेत्रमें काचारी राज्य था। उसके दक्षिण-पश्चिममें खासी लोगोंका जयन्तिया राज्य था। कामरूपका इस प्रकार छोटे-छोटे राज्योंमें बँटा होनेके कारण मुसलमानों और अहोम आक्रमण-कारियोंको उसपर अधिकार-कर लेनेमें आसानी रही। उन लोगोंने करीब-करीब एक साथ पश्चिम तथा पूर्व दिशासे उसपर आक्रमण किया। पश्चिममें कामतापुर और कामरूपके राजाओंने मुसलमानी आक्रमणोंको १४९८ ई० तक रोका। उस वर्ष बंगालके हुसेनशाहने कामतापुर और कामरूप राज्योंको बर नदीतक जीत लिया और अपने लड़केको विजित क्षेत्रका सूबेदार बनाकर हाजोमें रख दिया। लेकिन १६वीं शताब्दीके आरम्भमें कोच जातिके विश्व सिंह नामक एक सरदारने आधुनिक आसामके पश्चिमी भागमें एक हिन्दू राज्यकी स्थापना कर ली। उसने बारह भुइयोंको परास्तकर अपनी राजधानी कूच विहारमें स्थापित की। उसने मुसलमानोंको करतोया नदीके उसपार भगा दिया और आधुनिक आसामके पश्चिमी भागमें जिनमें ग्वालपाडा, कामरूप और दारांग जिले आते हैं, हिन्दू राज्यकी फिरसे स्थापना की। कोच राजाओंने बंगालसे आनेवाले मुसलमान आक्रमणकारियोंसे दीर्घ कालतक युद्ध किया। अंतमें १५९६ ई० में उन्हें मुगल बादशाह अकबरका संरक्षण स्वीकार कर लेना पड़ा। इस प्रकार केवल ग्वालपाडा जिला ही नहीं वरन् कामरूप जिलेका बहुत बड़ा भाग मुसलमानोंके नियंत्रणमें आ गया। लेकिन अहोम राजाओंने, जिन्होंने आसामके पूर्वी क्षेत्रमें अपना राज्य स्थापित कर लिया था, मुसलमानोंसे कामरूप जिला फिरसे छीन लिया। प्रथम अहोम राजा सुकफ था जिसने १२२८ ई०में आसामपर आक्रमण किया और शिवसागरपर अधिकार करके वहाँ अपना राजवंश स्थापित किया। इस राजवंशने ब्रह्मपुत्र घाटीमें कामरूप जिलेतक करीब छह शताब्दी (१२२८ ई०से १८२४ ई०) तक राज्य किया। इस राजबंशके ३९ अहोम राजा हुए जिनमेंसे १७वें राजा सुसेंगफने अपना नाम संस्कृतमें

प्रतापसिंह रखा। उसके उत्तराधिकारियोंने भी संस्कृत नाम अपनाये और उनमें प्रमुख जयध्वज सिंह, चक्रध्वज सिंह, उदयादित्य सिंह, रामध्वज सिंह, गदाधर सिंह, रुद्रसिंह, शिव सिंह, प्रमत्त सिंह, राजेश्वर सिंह, लक्ष्मी सिंह, गौरीनाथ सिंह, कमलेश्वर सिंह, चन्द्रकान्त सिंह, पुरन्दर सिंह और जोगेश्वर सिंह थे। अहोम राजाओंकी आपसी फूट, विशेष रूपसे बड़ागुहाई (प्रधान मंत्री) पूर्णानन्द और गौहाटीके बड़ फूकन (गवर्नर) बदनचंद्रकी आपसी फूटके कारण, बदनचन्द्रने बर्मी सरकारको आसाम-विजयके लिए अपनी सेना भेजनेका निमंत्रण दिया। १८१६ ई०में बर्मी सेना आसाममें घुस आयी, किन्तु वह १८१९ ई० तक उसपर पूरी तरह कब्जा नहीं कर पायी और उसके बाद १८२४ ई० तक आसाममें बर्मी शासन रहा। बर्मी शासकोंने बड़ी सख्ती बरती और अत्याचार किये जिससे अहोम सरदारोंमें असंतोष फैल गया। भारतके अंग्रेज शासकोंको भी यह पसन्द नहीं था कि उनके राज्य-की सीमाओंपर बर्मी राज्यका विस्तार हो। उस समयके अहोम राजा चन्द्रकांतने कई बार बर्मी आक्रमणकारियोंको आसामसे खदेड़ देनेका प्रयास किया लेकिन उसे सफलता नहीं मिली और अन्तमें वह बर्मी सेना द्वारा कैद कर लिया गया। इसके बाद ही बर्मी लोगों और भारतकी अंग्रेजी सरकारके बीच युद्ध छिड़ गया। यह युद्ध केवल आसाममें ही नहीं वरन् बर्मामें भी हुआ, जिसमें अन्तमें बर्मी लोगोंकी पराजय हुई। उन्हें अंग्रेजोंसे चन्दवकी सन्धि (दे०) (१८२६ ई०) करनी पड़ी जिसके द्वारा बर्मी लोगोंने आसाम और पड़ोसके कछार और मणिपुर जिलोंसे अपना शासन हटा लिया। दक्षिणी आसामके कामरूप, दारांग और नवगांव जिलोंको भी अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया गया। इन क्षेत्रोंको बंगालमें मिला लिया गया और उनका प्रशासन डेविड स्काटको सौंप दिया गया जो उस समय बंगालके ग्वालपाड़ा और गारो पहाड़ी जिलेका अधिकारी था। इस प्रकार बंगालके दो जिले आसामके साथ जुड़ गये। उत्तरी आसाम जिसमें आधुनिक शिव-सागर जिला और सदिया और मटकको छोड़कर लखीमपुर जिला सम्मिलित था, पुराने अहोम राजवंशके वंशज पुरन्दर सिंहको सौंप दिया गया। लेकिन पुरन्दर सिंह शासकके रूपमें विफल रहा, इसलिए उसके राज्यको अर्थात् शिवसागर और लखीमपुर जिलोंको दक्षिणी आसाम-के साथ जोड़कर १८३९ ई०से अंग्रेजी शासनके अधीन कर दिया गया। सदिया और मटकको भी, जो पहले दो अहोम सरदारोंको सौंप दिये गये थे, १८४३ ई०में अंग्रेजी शासनमें ले लिया गया और उनको आसामके लखीम-पुर जिलेमें मिला दिया गया। १८७४ ई० तक आसामका प्रशासन बंगाल प्रान्तके अधीन रहा। उस वर्ष आसामके प्रशासनको सुधारनेके उद्देश्यसे उसे बंगाल प्रान्तसे हटाकर चीफ कमिश्नरके अधीन अलग प्रान्त बना दिया गया। उसी समय सिलहट, कछार, ग्वालपाड़ा जिले और गारो पहाड़ियोंका उत्तरी क्षेत्र आसाम राज्यमें मिला दिया गया और काफी बड़ी संख्यामें बंगाली-भाषी लोगोंको आसामका नागरिक बना दिया गया। तब (१८७४ ई०)से आसाम नाम, जो पहले अहोम लोगों द्वारा शासित पांच जिलों—कामरूप, दारांग, नवगरेव, शिव सागर और लखीमपुरके लिए प्रयुक्त होता था, सदियासे ग्वालपाड़ातक सारे क्षेत्रके लिए प्रयुक्त होने लगा जिसमें खासी और जयन्तिया पहाड़ी क्षेत्र, सूरमा घाटीके सिलहट और कछार जिलोंके अतिरिक्त बंगालके गारो पहाड़ियां तथा ग्वालपाड़ा जिलेमें सम्मिलित थे। इस प्रकार आसामकी मिली-जुली आबादी और अधिक मिश्रित हो गयी और उस क्षेत्रके अंतर्गत तुलनात्मक दृष्टिसे अधिक पिछड़े पहाड़ी लोगोंके साथ अधिक उन्नत बंगाली-भाषी लोगोंको भी कर दिया गया। आसाममें हालमें भाषा-सम्बन्धी जो उपद्रव हुए उस विवादकी नींव उसी समय पड़ी थी। १९०५ ई०में बंगविभाजनके समय बंगालकी ढाका, चटगांव और राजशाही कमिश्नरियोंको आसामसे मिलाकर पूर्वी बंगाल तथा आसाम नामसे एक नया प्रान्त बना दिया गया और उसका प्रशासन एक अलग लेफ्टिनेन्ट-गवर्नरके अधीन कर दिया गया। छह वर्ष बाद बंग-भंग रद्द कर दिया गया। पूर्वी बंगाल फिरसे पश्चिमी बंगालसे जोड़ दिया गया और आसामको फिरसे चीफ कमिश्नरके अधीन अलग प्रान्त बना दिया गया और उसमें केवल खासी और जयन्तिया पहाड़ी जिलोंको ही नहीं वरन् बंगालके सिलहट, कछार, गारो पहाड़ी और ग्वालपाड़ा जिलोंको शामिल रखा गया। १९१२ ई०में आसामको गवर्नरके अधीन प्रान्त बना दिया गया जिसकी सहायताके लिए कार्यकारिणी परिषद और विधानसभाका भी गठन किया गया। स्वतंत्रता-प्राप्तिके पश्चात् आसाम-के गवर्नरके अधीन प्रान्तको अब राज्य कहा जाता है, किंतु देशके विभाजनके परिणाम-स्वरूप करीमगंज तहसील-को छोड़कर बाकी सिलहट जिला आसामसे निकालकर पूर्वी पाकिस्तानमें मिला दिया गया। इस प्रकार आसाम-के वर्तमान भाषाई विवादकी शुरुआत बहुत कुछ इस प्रान्तको बनानेमें अंग्रेजों द्वारा की गयी गड़बड़ीसे हुई है। अंग्रेजोंने प्रशासनकी सुविधा अथवा तात्कालिक आवश्यकताओंको

ध्यानमें रखकर इस प्रांतका निर्माण किया जिसमें अब परिवर्तन करना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया है। (राज्योंके पुनर्गठनके फलस्वरूप आसामकी सीमाओंमें काफी उलटफेर हो गया है। नागा पहाड़ी जिलेको, जो पहले आसाम प्रांतका भाग था, अब नागालैंड नामके अलग राज्यमें शामिल कर दिया गया है। खासी तथा जयंतिया पहाड़ी तथा गारो पहाड़ी जिलोंको अब आसामसे अलग करके मेघालय नामसे अलग राज्य बना दिया गया है। भूतपूर्व मिजो पहाड़ी जिलेको भी अब मिजोराम नामसे अलग राज्य बना दिया गया है।

अब भारतके पूर्वांचलमें निम्न राज्य हैं—आसाम, नागालैंड, मेघालय, मणिपुर तथा त्रिपुरा तथा मिजोराम एवं अरुणाचल प्रदेश (भूतपूर्व उत्तर-पूर्व सीमा एजेंसी) केन्द्र शासित क्षेत्र। –संपादक)

(कल्किपुराण, योगिनी तंत्र, काकटी–मदर गाडेस कामाख्या एंड असामीज; इट्स फार्मेशन एंड डेवलपमेन्ट; के० एल० बरुआ–हिस्ट्री आफ कामरूप; पी० भट्टाचार्य–कामरूप शासनावाली; बी० के० बरुआ–कल्चरलर हिस्ट्री आफ आसाम; एस० भट्टाचार्य–डेट आफ दि निधानपुर कापर प्लेट, जनरल आफ इंडियन हिट्री खंड ३१, अगस्त १९५३ पृष्ठ १११–१७; सर एडवर्ड गेट–हिस्ट्री आफ असाम; गोलपचन्द्र बरुआ–अहोम–बुरंजी; एस० के० भुइयां–बुरंजीज एंड एंग्लो-असामी रिलेशंस।)

आस्टेंड कम्पनी–भारतसे व्यापार करनेके लिए बेलजियन लोगों द्वारा स्थापित। इसकी स्थापना अंतरराष्ट्रीय पूंजीसे हुई थी और आस्ट्रियाके सम्राट् चार्ल्स छठेने १७२२ ई० में कम्पनीको आज्ञापत्र प्रदान किया था। डच, अंग्रेजी तथा फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनियोंने तथा उनकी सरकारोंने इस कम्पनीका तीव्र विरोध किया था। इस तीव्र विरोधके कारण सम्राट् चार्ल्स छठेने १७३१ ई० में कम्पनी बंद करवा दी थी। परन्तु कानूनी तौरसे आस्टेंड कम्पनी १७९३ ई० तक वर्तमान रही।

आस्ट्रियाके उत्तराधिकारका युद्ध–यूरोपमें १७४० ई० में शुरू हुआ और १७४८ ई० तक चला। उस वर्ष एक्स-ला-चेपेलकी सन्धिसे वह खत्म हो गया। इस युद्धमें इंग्लैण्ड और फ्रांसने दो विरोधी पक्षोंका समर्थन किया और भारतमें अंग्रेजोंकी ईस्ट इंडिया कम्पनी और फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनीने कर्नाटकमें एक दूसरेके विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। पांडिचेरीके फ्रांसीसी गवर्नर डूप्लेने फ्रांसीसी हितोंकी रक्षाके निमित्त मद्रासकी अंग्रेजोंकी बस्तीपर अधिकार कर लिया। मद्रास और पांडिचेरी दोनों कर्नाटकके नवाब अनवरुद्दीन (द्र०) के क्षेत्रमें स्थित थे। नवाबकी सेनाने अंग्रेजोंकी रक्षाके लिए जब मद्रासका घेरा डाला तो फ्रांसीसी सेनाने उसे पीछे खदेड़ दिया। सेंट थोम को लड़ाईमें नवाबकी सेना पुनः पराजित हुई। यूरोपमें एक्स-ला-चेपेलकी सन्धिके बाद शान्ति स्थापित हो गयी और उसके बाद इंग्लैण्ड और फ्रांसने एक दूसरेके विजित क्षेत्रोंको लौटा दिया। इसी आधारपर मद्रास अंग्रेजोंको वापस मिल गया। लेकिन आस्ट्रियाके उत्तराधिकारके युद्धके परिणामस्वरूप पहले आंग्ल-फ्रांसीसी युद्धका (जिसे कर्नाटक युद्ध भी कहते हैं) इतिहासपर भारी प्रभाव पड़ा। इस युद्धका पहला परिणाम यह हुआ कि कर्नाटकके नवाब और उसके स्वामी हैदराबादके निजामकी कमजोरी प्रकट हो गयी जो अपने राज्यमें बसे विदेशियोंको अपनी सार्वभौम सत्ताका सम्मान करने तथा शान्ति बनाये रखनेके लिए मजबूर नहीं कर सके। दूसरे, कर्नाटकके नवाबकी अपेक्षाकृत बड़ी सेनाको छोटी-सी फ्रांसीसी सेनाने दो बार पराजित कर दिया। फ्रांसीसी सेनामें फ्रांसीसी सैनिकोंके साथ भारतीय सैनिक भी थे। इन पराजयोंसे प्रकट हो गया कि यूरोपीय ढंगसे संगठित, प्रशिक्षित तथा शस्त्रास्त्रोंसे सज्जित सेना भारतीय सेनासे श्रेष्ठ होती है। तीसरे, इस लड़ाईमें फ्रांसीसी और अंग्रेज दोनों सेनाओंमें भारतीय सिपाहियोंको भर्ती किया गया था और फ्रांसीसियोंने तो भारतीय सिपाहियोंका प्रयोग देशी रजवाड़ोंकी सेनाओंसे लड़ने तकमें किया था। इस सबकको अंग्रेजोंने भली भाँति सीख लिया और बादमें भारतीय सिपाहियोंकी सहायतासे ही भारतको विजय किया।

आहवमल्ल–का विरुद कल्याणीके चालुक्यवंशी राजा सोमेश्वर प्रथम (१०५३–६८ ई०) ने धारण किया था। उसने चोल राजा राजाधिराजको कोप्पमके युद्धमें पराजित करके, चालुक्योंकी शक्तिका पुनरुद्धार किया। उसने मालवाकी धारा नगरी और सुदूर दक्षिणकी कांची नगरीपर भी कब्जा कर लिया। अन्तमें एक असाध्य ज्वरसे पीड़ित होनेपर उसने शिवमंत्रका जाप करते हुए तुंगभद्रा नदीमें छलांग लगाकर अपना प्राणोत्सर्ग कर दिया।

इ

इंग्लिश कम्पनी ट्रेडिंग टु दि ईस्ट इण्डीज–१६६८ ई० में स्थापित। यह ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी प्रतिद्वन्द्वी कम्पनी थी। दोनोंमें जबर्दस्त व्यापारिक प्रतियोगिता रहती थी। फलतः ईस्ट इण्डिया कम्पनी लगभग बर्बाद हो गयी। अन्तमें १७०२ ई० में दोनों कम्पनियोंके बीच समझौता हो गया और दोनोंने आपसमें एकीकरण कर लिया। इसके अनुसार नयी कम्पनीका नाम पूर्वमें व्यापार करनेवाली "यूनाइटेड कम्पनी आफ मर्चेण्ट्स आफ इंग्लैण्ड" पड़ा, लेकिन सामान्य जनोंमें वह ईस्ट इंडिया कम्पनीके नामसे ही विख्यात हुई।

इंडियन एसोसिएशन–स्थापना जुलाई १८७६ ई०में कलकत्तामें। इसका उद्देश्य भारतमें शक्तिशाली जनमतका निर्माण करना तथा समान राजनीतिक हितों और महत्त्वाकांक्षाओंके आधारपर विविध भारतीय जातियों तथा वर्गोंका एकीकरण था। अपने जन्मकालसे इस एसोसिएशनने देशके सामने उपस्थित राजनीतिक प्रश्नोंपर भारतीय जनमत संगठित तथा अभिव्यक्त करनेका प्रयास किया। इस एसोसिएशनकी स्थापना सुरेन्द्रनाथ बनर्जी **(दे०)** ने की थी, जो उस समय उग्रवादी समझे जाते थे। परंतु यह एसोसिएशन वास्तवमें नरम दल वालोंका संगठन बना रहा और आज भी इसका यही रूप है।

इंडियन एसोसिएशन फार दि कल्टीवेशन आफ साइन्स–प्रसिद्ध होम्योपैथ डा० महेन्द्रलाल सरकारके दानसे १८७६ ई० में कलकत्तामें स्थापना। भारतीयोंको वैज्ञानिक-शोधकी सुविधाएँ प्रदान करनेवाला यह पहला संस्थान था। सर सी० बी० रमनने अपना प्रसिद्ध किरण-सम्बन्धी अधिकांश शोध कार्य इसी संस्थानमें किया।

इंडियन कौंसिल ऐक्ट–पहली बार १८६१ ई० में पारित। दूसरा ऐक्ट १८९२ ई० में और तीसरा १९०९ में पारित हुआ। ये ऐक्ट (कानून) भारतकी प्रशासनिक व्यवस्थाका क्रमिक विकास सूचित करते हैं, जिनके द्वारा प्रशासनमें भारतीय जनताको भी कुछ राय देनेकी सुविधा प्रदान की गयी। १८६१ ई० के इंडियन कौंसिल ऐक्टके द्वारा गवर्नर-जनरलकी एक्जीक्यूटिव कौंसिलमें पाँचवें सदस्यकी नियुक्ति की गयी और कौंसिलके प्रत्येक सदस्यको विभिन्न विभागोंकी जिम्मेदारी सौंप देनेकी प्रथा आरम्भ हुई। ऐक्टके द्वारा लेजिस्लेटिव कौंसिलका पुनर्गठन किया गया और अतिरिक्त सदस्योंकी संख्या छहसे बढ़ाकर बारह कर दी गयी। इन बारह सदस्योंमेंसे आधे गैर-सरकारी होते थे।

१८९२ ई० के इंडियन कौंसिल ऐक्टके द्वारा इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलके सदस्योंकी संख्या बारहसे बढ़ाकर सोलह कर दी गयी और उनके मनोनयनकी प्रथा इस प्रकार बना दी गयी कि वे विविध वर्गों तथा हितोंका प्रतिनिधित्व कर सकें। यद्यपि विधान-मंडलोंमें सरकारी सदस्योंका बहुमत कायम रखा गया, तथापि सदस्योंकी नियुक्तिमें यदि निर्वाचन प्रणालीका नहीं, तो प्रतिनिधित्व प्रणालीका श्रीगणेश अवश्य कर दिया गया। विधान मंडलोंको वार्षिक बजटपर बहस करने तथा प्रश्न पूछनेके व्यापक अधिकार प्रदान किये गये। १९०९ ई० का इंडियन कौंसिल ऐक्ट मार्ले-मिण्टो सुधारों **(दे०)** पर आधृत था। इस ऐक्टके द्वारा इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल तथा प्रांतीय विधान-मंडलोंके सदस्योंकी संख्या और बढ़ा दी गयी। ऐक्टके अनुसार विधानमंडलोंके गैरसरकारी सदस्योंकी संख्या भी बढ़ गयी और उनमेंसे कुछ सदस्योंके अप्रत्यक्ष रीतिसे निर्वाचित किये जानेकी व्यवस्था हुई। ऐक्टके द्वारा मुसलमानोंके लिए पृथक् साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी प्रथा शुरूकी गयी और इस प्रकार भारतके विभाजनका बीज-वपन कर दिया गया।

इंडियन नेशनल कान्फ्रेंस–२८, २९ तथा ३० दिसम्बर १८८३ ई० को कलकत्ताके इंडियन एसोसिएशनके तत्त्वावधानमें आयोजित। यह पहला सम्मेलन था, जिसमें सारे भारतके गैरसरकारी प्रतिनिधियोंने भाग लिया और सार्वजनिक प्रश्नोंपर विचार-विमर्श किया। इसीके नमूनेपर दो साल बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका गठन किया गया। इस सम्मेलनमें औद्योगिक तथा तकनीकी शिक्षा, इंडियन सिविल सर्विसमें भारतीयोंको अधिक स्थान देने, न्यायपालिका और कार्यपालिकाके कार्योंको पृथक् करने, प्रतिनिधित्वपूर्ण सरकारकी स्थापना करने तथा शस्त्र कानूनके सम्बन्धमें विचार किया गया। इंडियन नेशनल कान्फ्रेंसका द्वितीय अधिवेशन भी कलकत्तामें १८८५ ई० में हुआ। यह पहले अधिवेशनसे अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण था। इसमें सामयिक राजनीतिक प्रश्नोंपर विचार किया गया। १८८५ ई० के बाद इंडियन नेशनल कान्फ्रेंसका विलयन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसमें कर दिया गया, जिसका पहला अधिवेशन १८८५ ई० में हुआ।

इंदौर–अट्ठारहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें मल्हारराव होल्कर **(दे०)** द्वारा स्थापित राज्यकी राजधानी।

इंसाफकी जंजीर–मुगल सम्राट जहाँगीर द्वारा १६०५ ई० में सिंहासनारूढ़ होनेके तत्काल बाद लटकवायी गयी। इसमें ६० घण्टियाँ थीं। यह आगराके किलेमें शाहबुरजी

और यमुनातटपर स्थित एक पाषाणस्तम्भके बीच स्थित थी। इस जंजीरको खींचनेसे सभी घण्टियाँ बज उठती थीं। इसके द्वारा जहाँगीर की प्रजाका छोटेसे छोटा प्राणी भी अपनी शिकायत सीधे सम्राट् तक पहुँचा सकता था। इससे प्रजाके प्रति जहाँगीरके प्रेम और उसकी न्यायप्रियताका संकेत मिलता है।

इकबाल, सर मुहम्मद–(१८७६–१९३८ ई०)–आधुनिक भारतीय प्रसिद्ध मुसलमान कवि। इनकी रचनाएँ मुख्य रूपसे फारसीमें हैं और अंग्रेजीमें केवल एक पुस्तक है, जिसका शीर्षक है 'सिक्स लेक्चर्स आन दि रिकन्सट्रक्शन आफ रिलीजस थाट' (धार्मिक चिंतनकी नवव्याख्याके सम्बन्धमें छह व्याख्यान)। उनका मत था कि इसलाम रूहानी आजादीकी जद्दोजहदके जज्बेका अलमबरदार है और सभी प्रकारके धार्मिक अनुभवोंका निचोड़ है। वह कर्मवीरताका एक जीवंत सिद्धांत है जो जीवनको सोद्देश्य बनाता है। यूरोप धन और सत्ताके लिए पागल है। इसलाम ही एकमात्र धर्म है जो सच्चे जीवन-मूल्योंका निर्माण कर सकता है और अनवरत संघर्षके द्वारा प्रकृतिके ऊपर मनुष्यको विजयी बना सकता है। उनकी रचनाओंने भारतके मुसलमान युवकोंमें यह भावना भर दी कि उनकी एक पृथक् भूमिका है। इकबालने ही सबसे पहले १९३० ई० में भारत सिंधके भीतर उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांत, बलूचिस्तान, सिंध तथा कश्मीरको मिलाकर एक नया मुसलिम राज्य बनानेका विचार रखा, जिसने पाकिस्तानको जन्म दिया। पाकिस्तान शब्द इकबालका गढ़ा हुआ नहीं है। इसे १९३३ ई० में चौधरी रहमत अलीने गढ़ा था। इकबालकी काव्य-प्रतिभासे प्रभावित होकर ब्रिटिश सरकारने उन्हें 'सर' की उपाधि प्रदान की।

इक्ष्वाकु–एक प्रसिद्ध पौराणिक राजा। रामायणके नायक रामचन्द्रजीके पिता तथा कोशलके राजा दशरथ उन्हींके वंशज थे।

इख्तियारुद्दीन अल्तूनिया–रजिया बेगम (१२३६–४० ई०) (दे०) के शासन कालके प्रारम्भमें भटिंडाका हाकिम। उसने १२४० ई० में रजियाके खिलाफ बगावत कर दी, उसे परास्त कर दिया और बंदी बना लिया। परंतु उसे बहरामसे, जो नया सुल्तान बना था, यथेष्ट पुरस्कार नहीं मिला। इसलिए उसने रजियाको जेलखानेसे रिहा कर दिया, उससे शादी कर ली और रजियाको फिरसे गद्दीपर बिठानेके लिए एक बड़ी सेनाके साथ दिल्लीपर चढ़ाई कर दी। परंतु वह कैथलकी लड़ाईमें पराजित हुआ और दूसरे दिन उसे और रजियाको मार डाला गया।

इख्तियारुद्दीन मुहम्मद–बख्तियार खिलजीका लड़का तथा बंगालका पहला मुसलमान विजेता। वह सामान्य रूपसे बख्तियार खिलजीके नामसे विख्यात है। उसका व्यक्तित्व बाहरसे देखनेमें अधिक प्रभावशाली नहीं था, परन्तु वह बड़ा साहसी और महत्त्वाकांक्षी था। उसने बिहारपर हमला करके उसकी राजधानी उड्यन्तपुरपर अधिकार कर लिया और वहाँके महाविहारमें रहनेवाले सभी बौद्ध भिक्षुओंका वध कर डाला। उसने ११९२ ई० में बिहार जीत लिया। इसके बाद ही, संभवतः ११९३ ई० में, किंवा निश्चित रूपसे १२०२ ई० से पहले, उसने अचानक नदियापर हमला बोल दिया, जो उस समय अंतिम सेन राजा, लक्ष्मण सेनकी राजधानी था। लक्ष्मण सेन पूर्वी बंगाल भाग गया। बख्तियार खिलजी शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीकी ओरसे बंगालका सूबेदार बन कर गौड़ (दे०) में रहने लगा।

इस सफलतासे बख्तियार खिलजीकी महत्त्वाकांक्षा और बढ़ गयी और उसने एक बड़ी मुसलमानी फौज लेकर कामरूप (आसाम) होकर तिब्बतकी ओर कूच किया। बंगालसे निकलकर उसकी फौज किस दिशामें आगे बढ़ी अथवा उसका निश्चित लक्ष्य क्या था, यह संदिग्ध है। पन्द्रह दिन कूच करनेके बाद उसने जिस राज्यपर हमला किया था, उसकी सेनासे मुकाबला हुआ। युद्धमें उसकी हार हुई और उसे भारी क्षति उठानी पड़ी। वापस लौटते समय उसकी फौज नष्ट हो गयी। इख्तियारुद्दीन अपने साथ दस हजार घुड़सवार ले गया था। जब वह वापस लौटा तो उनमें सौ घुड़सवार जिन्दा बचे थे। इस हारने उसका साहस भंग कर दिया और वह शोक तथा लांछनासे पीड़ित होकर १२०६ ई० में मर गया।

इजिदबख्श–शाहजहाँके चौथे पुत्र, शाहजादा मुरादका लड़का। औरंगजेबने उसकी जान बख्श दी और बादमें अपनी पाँचवीं लड़कीकी शादी उससे कर दी।

इत्मादुद्दौला–बादशाह जहाँगीर द्वारा गद्दीपर बैठनेके बाद ही मिर्जा गयास बेगको प्रदत्त उपाधि। गयासबेग ईरानसे आया था और अकबरका दरबारी था। वह प्रसिद्ध नूरजहाँका पिता था, जिससे बादशाह जहाँगीरने १६११ ई० में विवाह कर लिया। उसे तथा उसके बेटे आसफखाँको जहाँगीरने ऊँचे पद प्रदान किये। उसकी मृत्यु १६२२ ई० में हुई और उसकी प्यारी बेटी, मलका नूरजहाँने उसकी कब्रपर सफेद संगमरमरका सुन्दर मकबरा बनवाया।

उसका नाम इतमादुद्दौला है। "मुगल इमारतोंमें उसके जोड़की और कोई दूसरी इमारत नहीं है। अपनी नफासत और महीन पच्चीकारीमें यह इमारत अपने आपमें एक नमूना है।" (फर्गुसन)

इत्सिंग—एक चीनी भिक्षु और यात्री, जो ६७५ ई० में सुमात्रा होकर समुद्र मार्गसे भारत आया। वह दस वर्षों तक नालन्दा विश्वविद्यालयमें रहा और उसने वहाँके प्रसिद्ध आचार्योंसे संस्कृत तथा बौद्ध धर्मके ग्रंथोंको पढ़ा। उसने ६९१ ई० में अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'भारत तथा मलय द्वीप-पुंजमें प्रचलित बौद्ध धर्मका विवरण' लिखा। इस ग्रंथसे हमें उस कालके भारतके राजनीतिक इतिहासके बारेमें तो अधिक जानकारी नहीं मिलती, परंतु यह ग्रंथ बौद्ध धर्म और संस्कृत साहित्यके इतिहासका अमूल्य स्रोत माना जाता है।

इन्द्र—एक वैदिक देवता, जिसका प्रधान अस्त्र वज्र था। वैदिक देवताओंमें इसका स्थान बहुत ऊँचा था।

इन्द्र—राष्ट्रकूट वंश (दे०) में इस नामके चार राजा हुए। इन्द्र प्रथम तथा इन्द्र द्वितीयके बारेमें उनके नामोंको छोड़कर और कुछ ज्ञात नहीं है। इन्द्र तृतीय (९१५–१७ ई०) ने बहुत थोड़े समय तक राज्य किया। इतनेही समयमें उसने कन्नौजपर आक्रमण कर अधिकार कर लिया। उसकी मृत्युके बाद ही कन्नौज छिन गया। इन्द्र चतुर्थ, जिसकी मृत्यु ९८२ ई० में हुई, राष्ट्रकूट वंशका अंतिम राजा था।

इन्द्रप्रस्थ—पांडवोंकी राजधानी। कौरवोंके साथ उनकी लड़ाई महाभारतकी मुख्य कथावस्तु है। इस नगर की पहचान दिल्लीके निकट इन्दरपत गाँवसे की जाती है।

इबादतखाना (प्रार्थनागृह)—बादशाह अकबरने फतहपुर सीकरीमें १५७५ ई०में बनवाया। इसमें विभिन्न धर्मोंके विद्वान् एकत्र होकर धार्मिक विषयोंपर विचार करते थे। शुरूमें १५७५–७८ ई० तक इसमें केवल मुसलमान धर्मवेत्ता बुलाये जाते थे, परंतु बादमें १५७९–१५८२ ई०के बीच सभी धर्मोंके विद्वानोंको आमंत्रित किया जाने लगा। अकबर द्वारा 'दीन इलाही' (दे०) की घोषणा कर दिये जानेके बाद इबादतखानेकी मजलिसें समाप्त हो गयीं।

इब्न बतूता—एक विद्वान् अफ्रीकी यात्री, जो १३३३ ई० में सुल्तान मुहम्मद तुगलकके राज्यकालमें भारत आया। सुल्तानने उसका स्वागत किया और उसे दिल्लीका प्रधान काजी नियुक्त कर दिया। १३४२ ई० में सुल्तानके राजदूतके रूपमें चीन जानेतक वह इस पदपर बना रहा। उसने अपनी भारत-यात्रा का बहुमूल्य वर्णन लिखा है, जिससे सुल्तान मुहम्मद तुगलकके जीवन और कालके बारेमें महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। उसका वर्णन अतिशयोक्तियोंसे भरा होनेपर भी सामान्य रीतिसे विश्वसनीय है। उसने, सुल्तान द्वारा जिन कारणोंसे राजधानीको दिल्लीसे हटाकर दौलताबाद ले जाने का आदेश दिया गया और जिस रीतिसे दिल्लीको पूरी तरहसे खाली कराया गया, उसका जो वर्णन किया है, उसे उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है।

इब्राहीम—गोलकुंडाके कुतुबशाही वंशका तीसरा शासक, जिसने १५५० से १५८० ई० तक शासन किया। उसने विजयनगर साम्राज्यके विरुद्ध बीजापुर, बराड़ तथा अहमदनगरके सुल्तानोंसे समझौता कर लिया और तालीकोट की लड़ाई (१५५६ ई०)में उसे हरा देने तथा विजयनगर-को उजाड़ देनेके बाद लूट-खसोटमें हिस्सा बँटाया। इब्राहीम अपनी प्रजाके साथ उदारतापूर्ण व्यवहार करता था और अपने राज्यमें उसने हिन्दुओंको भी ऊँचे पद दे रखे थे।

इब्राहीम—सैयद बंधुओंने १७१९ ई०में जिन चार नाममात्रके मुगल बादशाहोंको दिल्लीकी गद्दीपर बिठाया था, उनमें अंतिम। वह बहादुरशाह प्रथम (१७०७–१२ ई०)के तीसरे पुत्र रफी-उस-शानका लड़का था। सैयद बंधुओंने कुछ समय बाद उसे गद्दीसे उतार दिया और मार डाला। उस समय दिल्लीके बादशाहोंको बनाना और बिगाड़ना सैयद बंधुओंके हाथमें था।

इब्राहीम आदिल शाह प्रथम—बीजापुरके आदिलशाही वंश-का चौथा सुल्तान (१५३४–५७ ई०)। इस वंशके प्रथम सुल्तानने शिया धर्म अंगीकार कर लिया था किन्तु इसने शिया धर्म अस्वीकार कर दिया। वह फारससे आये अमीरोंके स्थानपर दक्खिनी अमीरोंको पसंद करता था। इसका वजीर असद खां अत्यंत योग्य था। उसने विजयनगरकी एक सप्ताहकी राजकीय यात्रा की और बहुतसे उपहारोंके साथ वापस लौटा। उसने अपने राज्य-पर बिदर, अहमदनगर तथा गोलकुंडाके सुल्तानोंके संयुक्त हमलेको विफल कर दिया। उसके शासन कालमें अनेका-नेक षड्यंत्र रचे गये। बुढ़ापेमें वह बहुत अधिक शराब पीने लगा और उसीसे उसकी मृत्यु हो गयी।

इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय—बीजापुरके आदिलशाही वंशका छठा सुल्तान। उसने १५८० ई०से १६२६ ई० तक शासन किया। उसकी माँ अहमदनगरकी प्रसिद्ध शाहजादी, चाँद बीबी थीं। इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय

जिस समय गद्दीपर बैठा, नाबालिग था और राज्यका प्रबंध १५८४ ई० तक उसकी माँ देखती रही। १५८४ ई०में चाँद बीबी अहमदनगर वापस लौट गयी। १५९५ ई०में इब्राहीम आदिलशाह द्वितीयने अहमदनगरके सुल्तान-को पराजित कर मार डाला। परंतु शीघ्र ही दोनों राज्योंको मुगल साम्राज्य द्वारा आत्मसात् कर लिये जाने-की योजनाका सामना करना पड़ा।

इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय बहुत ही उदार शासक था। उसने अपने राज्यमें हिन्दू और ईसाई प्रजाको पूरी धार्मिक स्वतंत्रता दे रखी थी। उसने प्रशासनमें कई सुधार किये; भूमिका बन्दोबस्त ठीक किया, गोआके पुर्तगालियोंसे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये, अपने राज्यका विस्तार मैसूरकी सीमातक किया, बीजापुरमें कई सुंदर इमारतें बनवायीं और प्रसिद्ध इतिहासकार मुहम्मद कासिमको–जो फरिश्ताके उपनामसे प्रसिद्ध है—आश्रय दिया।

इब्राहीम खाँ–१६८९–९७ ई०के मध्य बंगालका मुगल सूबेदार। वह शांत स्वभावका बूढ़ा आदमी था और अंग्रेजोंके प्रति मित्रताका भाव रखता था। उसके पहलेके सूबेदार शाइस्ता खाँ (दे०) ने अंग्रेजोंको बंगालसे निकाल दिया था। इब्राहीम खां ने उन्हें वापस बुला लिया और जाब चारनाक (दे०)को उस स्थानपर बसनेकी इजाजत दे दी जहाँ बादमें कलकत्ता नगर विकसित हुआ। इब्राहीम खाँ प्रशासनके कार्योंकी बहुत उपेक्षा करता था, इसीलिए मिदनापुर जिलेके जमींदार शोभासिंहको बगावत करनेका मौका मिल गया। उसने इस बगावतको तत्काल नहीं दबाया। अंग्रेजों, फ्रांसीसियों और डच लोगोंको बंगालमें अपनी बस्तियोंकी किलेबंदी करनेकी इजाजत देकर, ताकि वे शोभासिंहका मुकाबला कर सकें, उसने स्थितिको और शोचनीय बना दिया। इब्राहीम खाँकी इन गलतियोंसे बादशाह औरंगजेब नाखुश हो गया और उसने १६९७ ई० में उसे बंगालकी सूबेदारीसे हटा दिया।

इब्राहीम खाँ गार्दी–एक भाड़ेका सैनिक, जिसे बुसी (दे०)ने स्वयं प्रशिक्षित किया और जो उसके तोपखानेका प्रधान हो गया। १७५७ ई०में उसने निजामकी नौकरी कर ली, परंतु अगले साल वह पेशवाकी सेवामें चला गया। उसने १७६० ई०में उदगिर (दे०)की लड़ाईमें निजाम-की फौजोंके खिलाफ मराठोंको विजयी बनानेमें भारी योगदान दिया। वह पानीपत (दे०)की तीसरी लड़ाईमें ९००० सिपाहियों तथा ४० तोपोंके साथ मराठोंकी ओरसे लड़ा। यद्यपि शुरूमें उसने शत्रुकी फौजोंको पछाड़ दिया, तथापि अंतमें इस युद्धमें मराठोंकी पराजय हुई और विजयी अफगानोंने उसे बंदी बना लिया तथा मार डाला।

इब्राहीम लोदी–दिल्लीके लोदी वंश (दे०)का तीसरा सुल्तान (१५१७–२६ ई०)। अपने शासन कालके शुरूमें उसने राजपूतोंसे ग्वालियर छीन लिया। परंतु उसने अफगान सरदारोंको कड़े नियंत्रणमें रखनेकी जो नीति अपनायी तथा उनके साथ जिस प्रकारका कठोर व्यवहार किया उससे वे उसके विरोधी बन गये। एक असंतुष्ट सरदार, पंजाबके हाकिम दौलत खाँ लोदीने बाबरको, जो अफ-गानिस्तानका बादशाह बन बैठा था, आमंत्रित किया, कि वह आकर इब्राहीमकी गद्दी छीन ले। बाबरने २१ अप्रैल १५२६ ई०को यह निमंत्रण स्वीकार कर लिया। उसने पानीपत (दे०)की पहली लड़ाईमें इब्राहीम लोदीको हरा दिया और मार डाला। इब्राहीम लोदी दिल्लीका अंतिम सुल्तान था।

इब्राहीम शाह शर्की–जौनपुरका सुल्तान (१४०२–३६ ई०) और शर्की वंशका सबसे योग्य शासक। हिन्दू धर्मके प्रति वह अत्यंत असहनशील था। वह एक सुसंस्कृत व्यक्ति था और कला और साहित्यका संरक्षक था। उसने जौनपुरको मुसलिम विद्याका महत्त्वपूर्ण केन्द्र बना दिया और बहुत-सी भव्य इमारतें बनवा कर शहरको सुंदर बनाया। उसने जो इमारतें बनवायीं, उनमें अटाला मसजिद सबसे मुख्य है जो १४०८ ई०में पूरी हुई।

इब्राहीम सूर–सूर वंश (दे०)का चौथा बादशाह, जिसने १५५५ई०में बहुत थोड़े समयके लिए शासन किया। हुमायूं द्वारा दिल्लीपर फिरसे मुगल शासन स्थापित किये जानेपर इब्राहीम सूर उड़ीसा भाग गया। वहाँ वह १५६७ ई०के आसपास मार डाला गया।

इमादशाही वंश–स्थापना लगभग १४९० ई०में बराडके फतहुल्ला (दे०) द्वारा जिसको इमादुलमुल्क कहते थे। बहमनी राज्य (दे०) से अपनेको अलग कर वह स्वतंत्र शासक बन बैठा। इस वंशने चार पीढ़ियों, १४९० ई०से १५७४ ई० तक राज्य किया। १५७४ ई०में बराड़पर अहमदनगरने कब्जा कर लिया।

इमादुल-मुल्क–मुगल शासनकालकी एक ऊंची पदवी। यह पदवी निजामुल्-मुल्कके सबसे बड़े बेटे फीरोज जंग गाजीउद्दीनको मिली थी और उसकी मृत्युपर उसके बेटे तथा उत्तराधिकारी शहाबुद्दीनको, जिसे गाजीउद्दीन (दे०) भी कहते थे, १७५३ ई०में मुगल बादशाहका वजीर नियुक्त होनेपर मिली थी।

इम्पीरियल कान्फ्रेंस–लंदनमें १९२१, १९२३ तथा १९२६ में हुई, जिसमें भारतके प्रतिनिधियोंने भी भाग लिया।

इम्पीरियल कैडेट कार्प्स—स्थापना वायसराय लार्ड कर्जन द्वारा १९०१ ई०में। इसमें रजवाड़ों और ऊंचे खानदान-के नवयुवकोंको भर्ती किया जाता था और उन्हें प्राथमिक फौजी प्रशिक्षण दिया जाता था।

इम्पीरियल लायब्रेरी (अब **राष्ट्रीय पुस्तकालय** कहलाता है)—स्थापना वायसराय लार्ड कर्जन द्वारा अपने शासनकाल (१८९९–१९०५ ई०) में। यह कलकत्तामें संप्रति बेलवेडियरमें विद्यमान है जो पहले लेफ्टिनेंट-गवर्नरका निवासस्थान था। यह सार्वजनिक पुस्तकालय है जिसमें पुस्तकोंका विशाल संग्रह है।

इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल—संघटन १८६१ ई०के इंडियन कौंसिल्स ऐक्टके द्वारा। यह उस समय वायसराय-की एक्जीक्यूटिव कौंसिल (कार्यकारिणी समिति) ही थी, जिसका विस्तार करके छहसे बारह मनोनीत सदस्य नियुक्त कर दिये गये थे। इनमें कमसे कम आधे गैरसरकारी सदस्य होते थे। इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलके पहले तीन गैरसरकारी भारतीय सदस्य महाराज पटियाला, महाराज बनारस और ग्वालियरके सर दिनकर राव थे। उसके कानून बनानेके अधिकार अत्यंत सीमित थे। १८९२ ई०के इंडियन कौंसिल्स ऐक्टके द्वारा इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलके सदस्योंकी संख्या बढ़ा दी गयी। इसके अतिरिक्त सदस्योंकी संख्या बारहसे बढ़ाकर सोलह कर दी गयी। इनमें अधिकसे अधिक छह मनोनीत सरकारी सदस्य होते थे। दस गैरसरकारी सदस्योंमें चार प्रांतीय लेजिस्लेटिव कौंसिलों द्वारा चुने जाते थे, एक कलकत्ताके चैम्बर आफ कामर्स (वाणिज्य संघ) द्वारा चुना जाता था और बाकी पाँच गवर्नर-जनरल द्वारा मनोनीत किये जाते थे। इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल-के कार्योंका भी विस्तार किया गया। उसे बजटपर बहस करने और प्रश्न करनेका अधिकार दे दिया गया।

१९०९ ई० के गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्ट द्वारा इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलमें और परिवर्तन किया गया। उसके सदस्योंकी संख्या बढ़ाकर साठ कर दी गयी, जिनमें अट्ठाईस मनोनीत सरकारी सदस्य होते थे, पाँच मनोनीत गैरसरकारी सदस्य होते थे और सत्ताईस गैर-सरकारी सदस्य प्रांतीय लेजिस्लेटिव कौंसिलों, मुसलमानों तथा वाणिज्य संघोंके द्वारा चुने जाते थे। इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलके कार्योंका भी विस्तार किया गया। उसे बजट तथा कुछ सार्वजनिक महत्त्वके प्रश्नोंपर प्रस्ताव पेश करनेका अधिकार दे दिया गया। प्रस्ताव सिफारिशके रूपमें होते थे और सरकार उन्हें स्वीकार करनेके लिए बाध्य नहीं थी। गवर्नर-जनरल अपने इच्छानुसार कौंसिलके अध्यक्षके रूपमें कार्य कर सकता था और किसी भी प्रस्तावको पेश होनेसे रोक सकता था।

१९१९ के गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्ट द्वारा और परिवर्तन किया गया। यह ऐक्ट मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट (दे०) पर आधृत था। ऐक्टके अन्तर्गत केन्द्रमें दो सदनोंवाले विधान मंडलकी स्थापना की गयी। इम्पी-रियल लेजिस्लेटिव कौंसिलको अब इंडियन लेजिस्लेटिव असेम्बलीमें विलीन कर दिया गया और उसके सदस्योंकी संख्या बढ़ाकर १४५ कर दी गयी। इनमेंसे १०५ सदस्य निर्वाचित होते थे। केन्द्रीय असेम्बलीके कानून बनानेके अधिकारोंका विस्तार कर दिया गया तथा प्रशा-सनपर उसका नियंत्रण बढ़ा दिया गया। **(दे०, ब्रिटिश प्रशासनके अंतर्गत)**

इम्पीरियल सर्विस कार्प्स—स्थापना लार्ड डफरिन (१८८४–८८ ई०) के प्रशासन कालमें। इस योजनाके अंतर्गत देशी रजवाड़ोंमें सैन्य-संग्रह किया जाता था। इन सेनाओंके अफसर भारतीय होते थे। आवश्यकता पड़नेपर साम्राज्य-की सेवाके लिए इनको उपलब्ध किया जाता था। इन सेनाओंने दोनों विश्वयुद्धोंमें भाग लिया और महत्त्व-पूर्ण सेवाएँ कीं।

इम्पी, सर एलिजा (१७३२–१८०९ ई०)—वेस्टमिनि-स्टरमें शिक्षा तथा गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्स **(दे०)** का सहपाठी। १७७३ ई० के रेग्युलेटिंग ऐक्ट द्वारा कलकत्ताके सुप्रीम कोर्टका मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया और १७७४ ई० में कलकत्ता पहुँचा। १७७५ ई० में उसकी अध्यक्षतामें नंदकुमार (दे०) के मुकदमेकी सुनवाई हुई। उसने जालसाजीके अभियोगमें उसे फाँसीकी सजा दी। बहुत-से लोगोंका विचार है कि इस मुकदमेमें वारेन हेस्टिंग्सकी मित्रताने इम्पीको प्रभावित किया। १७७७ ई० में वारेन हेस्टिंग्सके कथित इस्तीफेपर भी उसने उसके पक्षमें निर्णय दिया। उसने वारेन हेस्टिंग्सके विरोधी, फिलिप फ्रांसिसको ग्रांड कांडमें ५०,००० रु० हर्जाना देनेका आदेश दिया। उसके नेतृत्वमें १७७९ ई० में सुप्रीम कोर्टने अपने अधिकार-क्षेत्रके प्रश्नपर कौंसिलसे झगड़ा शुरू कर दिया, जो उसकी प्रतिष्ठाको गिराने-वाला था। वारेन हेस्टिंग्सने जैसे ही उसे मुख्य न्यायाधीशके रूपमें मिलनेवाले ८००० पौंड वार्षिक वेतनके अतिरिक्त ६००० पौंड वार्षिक वेतनपर सदर दीवानी अदालतका अध्यक्ष नियुक्तकर दिया, यह झगड़ा समाप्त हो गया। पार्लियामेण्टने इस सारी कार्यवाहीको अत्यन्त अनियमित

ठहराया और १७८२ ई० में इम्पीको वापस बुला लिया। उसके विरुद्ध महाभियोग चलानेकी कोशिशकी गयी। उसने पार्लियामेण्टके समक्ष अपनी सफाई पेश की और महाभियोगकी कार्यवाही समाप्त करा दी। वह १७९० ई० में पार्लियामेण्टका सदस्य चुना गया और १७९६ ई० तक सदस्य रहा।

इम्मादि नरसिंह—विजयनगर (दे०) के सालुव वंश (१४८६–१५०३ ई०) का दूसरा और अंतिम राजा। उसने १४९२ ई० से १५०३ ई० के आसपास वीर नरसिंह द्वारा हत्या कर दिये जानेतक राज्य किया। उसकी गतिविधियोंके बारेमें कुछ पता नहीं है।

इर्विन, लार्ड, एडवर्ड फ्रेडरिक लिन्डले वुड—द्वितीय वाइकाउण्ट हैलिफैक्सका पुत्र। १८८१ई०में जन्म। उसने ईटनमें शिक्षा प्राप्त की और १९१० से १९२५ ई० तक ब्रिटिश पार्लियामेण्टका सदस्य रहा। इस दौरान ब्रिटिश मंत्रिमंडलके विविध पदोंपर वह रहा। १९२५ ई० से १९३१ ई० तक वह भारतका वायसराय तथा गवर्नर-जनरल रहा। भारतके वायसरायके रूपमें उसका कार्यकाल अत्यन्त तूफानी कहा गया। १९२० ई० में आरम्भ किया गया असहयोग आंदोलन (दे०) उस समय भी जारी था। १९१९ के गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्टकी कार्यविधिका मूल्यांकन करनेके लिए जो साइमन कमीशन (दे०) नियुक्त किया गया था, उसके सभी सदस्य अंग्रेज थे। उसमें कोई भी भारतीय सदस्य न नियुक्त किये जानेसे सारे देशमें गहरी राजनीतिक अशांति फैल गयी। लार्ड इर्विनने भारतीय जनमतको शांत करनेके उद्देश्यसे ३१ अक्तूबर १९२९ को ब्रिटिश सरकारसे परामर्श करके घोषणा की कि औपनिवेशिक स्वराज्यकी स्थापना भारतकी संवैधानिक प्रगतिका स्वाभाविक लक्ष्य है और साइमन कमीशनकी रिपोर्ट मिलनेके बाद पार्लियामेण्टमें नया भारतीय संवैधानिक बिल पेश किये जानेसे पूर्व लंदनमें सभी भारतीय राजनीतिक पार्टियोंका एक गोलमेज सम्मेलन बुलाया जायगा।

परंतु इसके बाद ही ब्रिटिश अधिकारियोंने औपनिवेशिक स्वराज्यकी व्याख्या करते हुए स्पष्ट कर दिया कि उसका आशय कनाडा जैसे औपनिवेशिक स्वराज्य-प्राप्त देशका दर्जा प्रदान करना नहीं है, बल्कि भारतको एक अधीनस्थ देश बनाये रखकर उसे स्वायत्तशासी सरकार प्रदान करना है। इस स्पष्टीकरणके फलस्वरूप लार्ड इर्विनकी घोषणा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसको संतोष नहीं प्रदान कर सकी और १९२९ ई० में लाहौर अधिवेशनमें घोषणा कर दी गयी कि कांग्रेसका ध्येय पूर्ण स्वाधीनता है। कांग्रेसने अप्रैल १९३० में महात्मा गाँधीके नेतृत्वमें सत्याग्रह आंदोलन आरम्भ कर दिया। गाँधीजीने अपने कुछ अनुयायियोंके साथ दांडीकी ओर कूच किया और जान-बूझकर सरकारका 'नमक कानून' तोड़ा। यह 'नमक सत्याग्रह आंदोलन' शीघ्र ही सारे देशमें फैल गया, जिससे भारी हलचल मच गयी। लार्ड इर्विनने युक्तिपूर्वक स्थितिको सँभालनेका प्रयास किया। एक ओर तो उसने कानून और व्यवस्था को बनाये रखनेके लिए राज्यकी सारी शक्ति लगा दी तथा कांग्रेस वर्किंग कमेटीके सभी सदस्योंको गिरफ्तार कर लिया; दूसरी ओर वह महात्मा गाँधीसे समझौता-वार्ता चलाता रहा। वह गाँधीजीसे कई बार मिला और अंतमें गाँधी-इर्विन समझौता हो गया।

इस समझौतेके अनुसार कांग्रेसने सत्याग्रह आंदोलन स्थगित कर दिया और वह गोलमेज-सम्मेलनके दूसरे अधिवेशनमें गाँधीजीको अपना एकमात्र प्रतिनिधि बनाकर भेजनेको तैयार हो गयी। कांग्रेसने इस सम्मेलनके पहले अधिवेशनका बहिष्कार किया था। उधर सरकारने भी सभी राजनीतिक बंदियोंको रिहा कर दिया। सिर्फ उन बंदियोंको नहीं छोड़ा गया जिनपर हिंसात्मक उपद्रवोंमें भाग लेनेके आरोप थे। गाँधी-इर्विन समझौतेके एक महीने बाद लार्ड इर्विनने भारतके वायसरायके पदसे अवकाश ग्रहण कर लिया और अपने उत्तराधिकारी लार्ड विलिंगडनपर यह भार छोड़ दिया कि वह चाहे तो उसकी नीतिको आगे बढ़ाये और न चाहे तो समाप्त कर दे। भारतसे अवकाश ग्रहण करनेके बाद लार्ड इर्विन १९४० से १९४६ ई० तक अमेरिकामें ब्रिटिश राजदूत रहा। १९४४ ई० में उसे अर्ल आफ हैलिफैक्सकी पदवी प्रदान की गयी।

इलाहाबाद—गंगा और यमुनाके संगमपर स्थित। यह स्थान सामरिक दृष्टिसे बड़ा महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन नाम प्रयाग है और यह तीर्थराज कहा जाता है। ईसाकी चौथी और पाँचवीं शताब्दीमें गुप्त वंशके राज्यमें वह उनकी एक राजधानी भी रहा है। सातवीं शताब्दीमें सम्राट् हर्षवर्धन, वहाँ पाँच-पाँच वर्षके अनन्तर, सत्रका आयोजन किया करता था। ऐसे एक सत्रमें चीनी यात्री ह्युएनत्सांगने ६४३ ई० में भाग लिया था। इलाहाबादमें सबसे प्राचीन ऐतिहासिक स्मारक अशोक (२७३–२३२ ई०पू०)के ६ स्तम्भ-लेखोंमेंसे एक है। इसपर गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त (३३०–३८० ई०) की कवि हरि-

षेण रचित प्रसिद्ध प्रशस्ति है। इसमें उसके दिग्विजयका वर्णन है। इस स्थानके सामरिक महत्त्वको देखकर अकबरने १५८३ ई०में यहाँ गंगा-यमुनाके संगमपर किला बनवाया और प्रयागके स्थानपर इसका नाम इलाहाबाद रखा। यह नगर इलाहाबाद सूबेकी राजधानी बनाया गया। यह नगर बादमें उत्तर प्रदेश (संयुक्त प्रांत आगरा अवध)की राजधानी रहा। यहाँ प्रसिद्ध विश्वविद्यालय भी है।

इलाहाबादकी सन्धि—१७६५ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनीकी ओरसे क्लाइव और बादशाह शाह आलम द्वितीयके मध्य हुई। इस सन्धिके द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनीने कोड़ा और इलाहाबादके जिलोंको शाह आलम द्वितीयको लौटाना और उसे २६ लाख रुपये वार्षिक खिराज देना स्वीकार किया था और इसके बदलेमें बादशाहने ईस्ट इंडिया कम्पनीको बंगाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानी (राजस्व वसूलनेका अधिकार) सौंप दी थी।

इलाही सन्—बादशाह अकबरने १५८४ ई०में चलाया। यह सौर वर्षपर आधृत था और अकबरके गद्दीपर बैठनेके बाद पहले नौरोज अर्थात् ११ मार्च १५५६ ई० से प्रचलित किया गया। शाहजहाँने सिक्कोंपर इस सन्‌को लिखनेकी प्रथाको निरुत्साहित किया और समाप्त कर दिया। औरंगजेबने १६५८ ई०में गद्दीपर बैठनेके बाद ही इस सन्‌का प्रयोग पूरी तरहसे बन्द कर दिया।

इलियास शाह (हाजी या मलिक इलियास भी कहलाता था)—पश्चिमी बंगालके स्वतंत्र बादशाह अलाउद्दीन अली शाह (१३३९–४५ ई०)का सौतेला भाई। उसके बाद १३४५ ई० के आसपास गद्दीपर बैठा और शमसुद्दीन इलियास शाहकी पदवी धारण की। उसने १३५७ ई० तक शासन किया और १३५२ ई०में पूर्व बंगालको जीता तथा उड़ीसा और तिरहुतसे खिराज वसूल किया। उसने बनारसपर भी चढ़ाई करनेकी धमकी दी। इससे दिल्लीका सुल्तान फीरोज शाह तुगलक (१३५१–८८ ई०) भड़क उठा और उसने बंगालपर हमला कर दिया। इलियास अपनी राजधानी पंडुआसे हटकर पूर्वी बंगालके इकडला नामक स्थानपर चला गया। उसने सुल्तानकी फौजको पीछे ढकेल दिया। उसका शासनकाल अत्यंत सफल रहा। उसने नया सिक्का चलाया और अपनी राजधानीमें कई मसजिदें और इमारतें बनवायीं। उसकी मृत्यु राजधानी पंडुआमें १३५७ ई०में हुई। उसके बाद उसके उत्तराधिकारियोंकी एक लम्बी शृंखला १४९० ई० तक बंगालका शासन करती रही। इन सबकी गणना बंगालके इलियास शाही वंशमें की जाती है।

इलोरा—महाराष्ट्रमें पर्वतीय गुफाओंके लिए प्रसिद्ध। ये गुफाएँ तीन वर्गोंमें विभाजित की गयी हैं और अलग-अलग तीन धर्मोंसे सम्बन्धित हैं। दाहिनी ओर बौद्धोंके चैत्य-सभाकक्ष हैं और सुदूर बायीं ओर जैनियोंकी गुफाएँ हैं। इन दोनोंके मध्यमें हिन्दू मंदिर हैं। इनमें सबसे बड़ा कैलास-मन्दिर (दे०) है जो राष्ट्रकूट राजा कृष्ण (लगभग ७६०–७५ ई०) के आदेशपर बनाया गया था। केवल एक पहाड़ी चट्टानको काटकर बनाया गया यह अद्भुत मंदिर है। यह न केवल अपने आकारकी गुरुताके लिए, वरन् अलंकरणके लिए भी प्रसिद्ध है। (केव०)

इल्तुतमिश—दिल्लीका सुल्तान (१२११–३६ ई०)। आरम्भमें वह दिल्लीके पहले सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबकका गुलाम था। योग्यताके कारण वह मालिकका प्यारा बन गया। उसने उसे गुलामीसे मुक्त कर दिया और अपनी लड़कीकी शादी करके उसे बदायूंका हाकिम बना दिया। कुतुबुद्दीनकी मृत्युके एक साल बाद वह उसके उत्तराधिकारी आरामको हरानेके बाद दिल्लीकी गद्दीपर बैठा। इल्तुतमिश बहुत योग्य शासक सिद्ध हुआ। उसने असंतुष्ट मुसलमान सरदारोंकी बगावत कुचल दी। उसने अपने तीन शक्तिशाली प्रतिद्वन्दियों—पंजाबके एलदोज, सिंधके कुबाचा तथा बंगालके अली मर्दान खाँको भी पराजित किया। उसने रणथम्भोर और ग्वालियरको हिन्दुओंसे फिर छीन लिया। सुल्तान आराम (दे०) के निर्बल शासनकालमें हिन्दुओंने इन दोनों स्थानोंको फिरसे जीत लिया था। उसने भिलसा और उज्जैन सहित मालवाको भी जीत लिया। उसके शासन कालमें मंगोलोंका खूंखार नेता चंगेज खाँ खीवाके शाह जलालुद्दीनका पीछा करता हुआ भारतकी सीमाओंतक आ पहुँचा और उसने भारतपर हमला करनेकी धमकी दी। इल्तुतमिशने विनम्र रीतिसे भगोड़े शाह जलालुद्दीनको शरण देनेसे इन्कार करके इस आफतसे पीछा छुड़ाया। इल्तुतमिशको बगदादके खलीफासे खिलअत प्राप्त हुई थी इससे दिल्लीकी सल्तनतपर उसके अधिकारकी धार्मिक पुष्टि हो गयी। उसने चाँदीके सिक्के ढालनेकी अच्छी व्यवस्था की जो बादके सुल्तानोंके लिए आदर्श सिद्ध हुई। उसने १२३२ ई० में मुसलिम संत ख्वाजा कुतुबुद्दीनके सम्मानमें प्रसिद्ध कुतुब-मीनारका निर्माण कराया। एक साहसी, योद्धा और योग्य प्रशासकके रूपमें इल्तुतमिशको दिल्लीके प्रारम्भिक सुल्तानोंमें सबसे महान् कहा जा सकता है।

इल्बर्ट बिल—वायसरायके कानून सदस्य, सर सी० पी० इल्बर्टने १८८३ ई० में पेश किया। इसका उद्देश्य सरकारी

अधिकारियों और भारतीय प्रजाके बीच जातीय भेदभाव दूर करना था। बिलमें भारतीय जजों और मजिस्ट्रेटों-को भी अंग्रेज अभियुक्तोंके मामलोंपर विचार करनेके अधिकारका प्रस्ताव किया गया था। १८७३ ई०के जाब्ता फौजदारीके अंतर्गत अंग्रेज अभियुक्तोंके मामलों-में केवल अंग्रेज मजिस्ट्रेट और जज ही विचार कर सकते थे। सिर्फ कलकत्ता, मद्रास और बम्बईके नगरोंमें भारतीय जज और मजिस्ट्रेट उनके मामलोंपर विचार कर सकते थे। यद्यपि कलकत्ता, मद्रास और बम्बईके नगरोंमें अंग्रेज अभियुक्तोंके भारतीय मजिस्ट्रेटों तथा जजोंके सामने उप-स्थित किये जानेसे उनका कोई अहित नहीं हुआ था, तथापि भारतमें रहनेवाले अंग्रेजोंने इल्बर्ट बिलके विरुद्ध एक तीव्र आंदोलन छेड़ दिया। उन्होंने वायसराय लार्ड रिपन तकको अपमानित करनेका प्रयास किया और उनका बहिष्कार शुरू कर दिया। दूसरी ओर भारतीय जनमत-ने इल्बर्ट बिलका जोरदार समर्थन किया। परंतु, गोरों द्वारा आरम्भ किये गये इल्बर्ट बिल-विरोधी आंदोलनसे इतना तहलका मच गया कि सरकारको झुकना पड़ा और उसने इल्बर्ट बिलमें परिवर्तन करके यह व्यवस्था कर दी कि किसी अंग्रेज अभियुक्तके भारतीय मजिस्ट्रेट अथवा सेशन जजके सामने उपस्थित किये जानेपर वह माँग कर सकता है कि उसका मुकदमा जूरीके द्वारा सुना जाय और जूरियोंमें कमसे कम आधे अंग्रेज होंगे। इस प्रकार सरकार जिस जातीय भेदभावको दूर करना चाहती थी वह न केवल कायम रहा, बल्कि उसका विस्तार कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बईके नगरोंमें भी कर दिया गया। गोरों-ने इसे अपनी बहुत बड़ी विजय मानी।

इस आंदोलनके बहुत महत्त्वपूर्ण परिणाम हुए। इससे भारतीयोंके निकट स्पष्ट हो गया कि संगठन तथा सार्वजनिक आंदोलन कितना फलदायी होता है। भारतीयोंमें सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (दे०) सरीखे लोगोंने इस आंदोलनसे काफी सबक सीखा। एक सालके अन्दर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी-के नेतृत्वमें राष्ट्रीय कोषकी स्थापना की गयी तथा १८८३ ई० में कलकत्तामें इंडियन नेशनल कान्फ्रेंस हुई, जिसमें भारतके सभी भागोंसे आये हुए प्रतिनिधियों ने भाग लिया। दो साल बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका जन्म हुआ। यह जातीय द्वेष भावसे प्रेरित गोरोंके उन्मत्तता-पूर्ण आंदोलनका भारतीय प्रत्युत्तर था।

इल्बर्ट, सर कोर्टनी पर्सीग्राहम—आक्सफोर्डका स्नातक और बैरिस्टर। १८८२ ई० में वायसरायकी एक्जीक्यूटिव कौंसिलका कानून सदस्य होकर वह भारत आया और १८८६ ई० तक यहाँ रहा। कानून सदस्यकी हैसियतसे उसने इल्बर्ट बिल (दे०) पेश किया और उसमें आधारभूत परिवर्तन करके उसे लेजिस्लेटिव कौंसिलसे पास कराया। वह १८८५ से १८८७ ई० तक कलकत्ता विश्वविद्यालयका उपकुलपति रहा। उसने १८९८ ई० में अपनी 'गवर्नमेण्ट आफ इंडिया' नामक पुस्तक प्रकाशित करायी जो अपने विषयकी प्रामाणिक कृति है।

इसमाइल मुख—सुल्तान मुहम्मद तुगलककी सेनाका एक अफगान अमीर, जो दक्खिनमें ऊँचे पदपर नियुक्त था। लगभग १३४५ ई० में वहाँके बागी अफगान अमीरोंने उसे दक्खिनका स्वतंत्र शासक बना दिया। उसने अपना नाम नासिरुद्दीन शाह रखा। परन्तु, एक नये राज्यके शासक-की जिम्मेदारियोंको सँभालनेमें अपनेको असमर्थ पाकर उसने १३४७ ई० में हसनके पक्षमें गद्दी त्याग दी। हसनने प्रसिद्ध बहमनी राज्य तथा वंश (दे०) की स्थापना की।

इसमाइल शाह—बीजापुरके आदिलशाही (दे०) वंशका दूसरा सुल्तान। उसने १५१० ई० से १५३४ ई० तक शासन किया। जब वह गद्दीपर बैठा तो नाबालिग था बालिग होनेपर उसने कई लड़ाइयाँ जीतीं और विजयनगरसे कृष्णा और तुंगभद्राके बीच रायचूरका दोआब छीन लिया। फारसके शाहने उसके दरबारमें अपना दूत भेजा था। इससे वह इतना खुश हुआ कि उसका झुकाव शिया मतकी ओर हो गया। फारसका शाह भी शिया था।

इसलाम—देखो 'मुसलमान धर्म।'

इसलाम खाँ—बादशाह जहाँगीर द्वारा नियुक्त बंगालका मुगल सूबेदार। उसने बागी अफगान सरदार उसमान खाँको परास्त किया। युद्धमें लगे घावसे इसलाम खाँकी मृत्यु हो गयी और इस प्रकार बंगालपर अफगानोंका आधिपत्य समाप्त हो गया।

इसलाम खाँ लोदी—मुख्य नाम सुलतान शाह लोदी, सरहिन्दका हाकिम। उसकी प्रसिद्धि इस कारण है कि वह दिल्लीके सुल्तानोंमें लोदी वंशके संस्थापक बहलोल लोदी (दे०) का चाचा था।

इसलाम शाह सूर—दिल्लीके बादशाह शेरशाह सूर (१५४०–१५४५ ई०) का पुत्र और उत्तराधिकारी। इसलाम शाहने (जिसका मूल नाम जलाल खाँ था और जो सलीम शाहके नामसे भी विख्यात था) १५४५ से १५५४ ई० तक शासन किया। उसने बागी सरदारोंका दमन किया, धक्करोंको कुचला तथा मानकोटका निर्माण पूरा करके कश्मीरपर अपने आधिपत्यको मजबूत बनाया। उसने सेनाकी दक्षता बनाये रखी और पिताके द्वारा किये गये

बहुत-से शासन सुधारोंको जारी रखा। परंतु भरी जवानीमें उसकी मृत्यु हो गयी और उसके बाद हुमायूं (दे०) ने सूरवंशसे दिल्लीकी सल्तनत छीन ली।

इसलिंगटन कमीशन—नियुक्ति १९१२ ई० में। इसका उद्देश्य उच्च पदोंपर विशेष रूपसे इंडियन सिविल सर्विसमें भारतीयोंकी भर्तीकी समस्यापर विचार करना था। लार्ड इसलिंगटन कमीशनके चेयरमैन थे और भारतीय तथा ब्रिटिश सार्वजनिक नेता उसके सदस्य थे। कमीशनने सिफारिश की कि जो भारतीय लंदनमें होनेवाली प्रतियोगिता परीक्षामें सफलता प्राप्त कर इंडियन सिविल सर्विसमें प्रवेश करते हैं, उनके अतिरिक्त इंडियन सिविल सर्विसके २५ प्रतिशत पद भारतीयोंकी सीधी भर्ती तथा प्रांतीय सिविल सर्विससे पदोन्नति करके भरे जायें। उसने इंडियन सिविल सर्विसमें भारतीयोंकी भर्तीके लिए भारतमें परीक्षा लेनेकी सिफारिश की। यह रिपोर्ट १९१७ ई० में प्रकाशित हुई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस यह माँग पिछले ३० वर्षोंके भी पूर्वसे कर रही थी। रिपोर्ट में उसकी यह माँग स्वीकार कर ली गयी। परन्तु कमेटीने आई० सी० एस० अफसरोंके वेतनोंमें जो भारी वृद्धिकी सिफारिशें की, उसपर भारतीयों द्वारा तीव्र आक्रोश व्यक्त किया गया।

ई

ईशान वर्मा—कन्नौजके मौखरि राजवंशका चौथा राजा। वह ५५४ ई० के आसपास राज्य करता था। उसने आंध्र और गौड़ राजाओंपर विजय प्राप्त की। महाराजाधिराजकी पदवी धारण करनेवाला वह पहला मौखरि राजा था।

ईश्वर—प्रारम्भिक मागध कालके हिन्दुओंमें इस सृष्टिके रचयिता और पालनकर्त्ताके रूपमें परम तत्त्वके जो अनेक नाम प्रचलित थे, उनमेंसे एक। यह विश्वास किया जाता है कि भक्ति करनेसे उसका अनुग्रह प्राप्त होता है जिससे कर्मोंके बन्धनसे छुटकारा मिल जाता है।

ईश्वरदेव—ह्यु एनत्सांग द्वारा शिवकी मूर्त्तिके लिए प्रयुक्त नाम, जिसकी स्थापना महाराजाधिराज हर्ष द्वारा प्रयागमें हर पाँचवें वर्ष आयोजित किये जानेवाले महोत्सवमें की जाती थी। इस महोत्सवमें बुद्ध और आदित्यदेवकी मूर्त्तियाँ भी स्थापित की जाती थीं और हर्ष बारी-बारीसे उनकी अर्चना करता था। ह्युएनत्सांगने ६४३ ई० में होनेवाले महोत्सवमें भाग लिया था।

ईश्वर वर्मा—कन्नौजके मौखरि वंशका तीसरा राजा, जो छठी शताब्दी ई० के द्वितीय चतुर्थांशमें राज्य करता था। उसे महाराजकी पदवी प्राप्त थी। उसने संभवतः गुप्त राजकुमारी उपगुप्तासे विवाह किया था। उसका पुत्र और उत्तराधिकारी प्रसिद्ध ईशानवर्मा (दे०) था।

ईश्वरसेन—एक अमीर राजा, जिसने दूसरी शताब्दी ई० के अंतमें उत्तर-पश्चिमी महाराष्ट्रमें सातवाहन वंशका शासन समाप्त कर दिया। कहा जाता है कि २४८ ई० में प्रचलित त्रैकूटक संवत्सर उसीके द्वारा स्थापित राजवंशने चलाया था।

ईसाई मिशनरी (धर्म प्रचारक)—आधुनिक भारतपर इनका गहरा प्रभाव पड़ा है। भारतके सुदूर दक्षिणी भागोंमें बहुत पहलेसे सीरियाई ईसाइयोंकी भारी संख्यामें उपस्थिति इस बातकी द्योतिका है कि इस देशमें सबसे पहले आनेवाले ईसाई मिशनरी यूरोपके नहीं, सीरियाके थे। जो भी हो, राजा गोंडोफारस (दे०) (लगभग २८ से ४८ ई०) से संत टामसका सम्बन्ध यह संकेत करता है कि ईसाई धर्मप्रचारकोंका एक मिशन सम्भवतः प्रथम ईसवीके दौरान भारत आया था। इतना तो निश्चित रूपसे ज्ञात है कि ईसाई मिशनरियोंने धर्मप्रचारका अपना काम भारतमें सोलहवीं शताब्दीके दौरान संत फ्रांसिस जैवियरके जमानेसे शुरू किया। संत जैवियरका नाम आज भी भारतके अनेक स्कूल-कालेजोंसे सम्बद्ध है। पुर्तगालियोंके भारत आने और गोआमें जम जानेके बाद ईसाई पादरियोंने भारतीयोंका बलात् धर्म-परिवर्तन शुरू किया। आरम्भिक ईसाई मिशन रोमन कैथोलिक चर्च द्वारा प्रवर्तित थे और वे छिटपुट रूपसे भारत आये। लेकिन उन्नीसवीं शताब्दीमें एंग्लिकन प्रोटेस्टेंट चर्चके द्वारा ईसाई धर्मप्रचारका कार्य सुव्यवस्थित ढंगसे आरम्भ हुआ। इस कालमें ईस्ट इंडिया कम्पनीने ईसाई मिशनरियोंको अपने राज्यके भीतर रहनेकी इजाजत नहीं दी, क्योंकि उसे भय था कि कहीं भारतीयोंमें उनके विरुद्ध उत्तेजना न उत्पन्न हो जाय। फलस्वरूप विलियम कैरी सरीखे प्रथम ब्रिटिश प्रोटेस्टेंट मिशनरियोंको कम्पनीके क्षेत्राधिकारके बाहर श्रीरामपुरमें रहना पड़ा, अथवा कुछ मिशनरियोंको कम्पनीसे सम्बद्ध पादरियोंके रूपमें सेवा करनी पड़ी, जैसा कि डेविड ब्राउन और हेनरी मार्टिनने किया। सन् १८१३ ई० में ईसाई पादरियोंपरसे रोक हटा ली गयी और कुछ ही वर्षोंके अन्दर इंगलैण्ड, जर्मनी और अमेरिकासे आनेवाले

विभिन्न ईसाई मिशन भारतमें स्थापित हो गये और उन्होंने भारतीयोंमें ईसाई धर्मका प्रचार शुरू कर दिया। ये ईसाई मिशन अपनेको बहुत अरसेतक विशुद्ध धर्मप्रचार तक ही सीमित न रख सके। उन्होंने शैक्षणिक और लोकोपकारी कार्योंमें भी दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी और भारतके बड़े-बड़े नगरोंमें कालेजोंकी स्थापना की और उनका संचालन किया। इस मामलेमें एक स्काटिश प्रेसबिटेरियन मिशनरी अलेक्जेंडर डफ अग्रणी था। उसने १८३० ई० में कलकत्तामें जनरल असेम्बलीज इंस्टीट्यूशनकी स्थापना की और उसके बाद कलकत्तासे लेकर बंगालके बाहरतक कई और मिशनरी स्कूल-कालेज खोले। अंग्रेजी सीखनेके उद्देश्य से भारतीय युवक इन कालेजोंकी ओर भारी संख्यामें आकर्षित हुए। ऐसे युवक बादमें पश्चिमी ज्ञान और मान्यताओंको कट्टर हिन्दू और मुस्लिम समाजतक पहुँचानेका महत्त्वपूर्ण माध्यम बने। ईसाई मिशन और मिशनरियोंने बौद्धिक स्तरपर तो भारतीयोंके मस्तिष्कको प्रभावित किया ही, साथ ही अपने लोकोपकारी कार्यों (विशेषतया चिकित्सा सम्बन्धी) से भी यूरोपीय व ईसाई सिद्धान्तों और आदर्शोंका प्रचार-प्रसार किया। इस प्रकार ईसाई मिशनरियोंने आधुनिक भारतके विकासपर गहरा प्रभाव डाला। मिशनरियोंने प्रायः बिना पर्याप्त जानकारीके भारतीय धर्मकी अनुचित आलोचना की, जिससे कुछ कटुता उत्पन्न हो गयी, लेकिन उन्होंने भारतके सामाजिक उत्थानमें भी निःसंदिग्ध रूपसे महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उन्होंने भारतीय नारीकी दयनीय, असम्मानजनक स्थिति, सती-प्रथा, बाल-हत्या, बाल-विवाह, बहुविवाह और जातिवाद जैसी कुरीतियोंकी ओर लोगोंका ध्यान आकृष्ट किया। इन सामाजिक व्याधियोंको समाप्त करनेमें ईसाई मिशनरियोंका बहुत बड़ा योगदान है।

ईसा खाँ–उन बारह भूमिपतियों (जमींदारों) मेंसे एक, जो सोलहवीं शताब्दीके अंतिम चौथाई भागमें पूर्वी बंगालका नियंत्रण करते थे। पूर्वी तथा मध्यवर्ती ढाका जिला तथा मैमनसिंह जिलेका अधिकांश भाग ईसा खाँके कब्जेमें था। उसने अपने पड़ोसी हिन्दू भूमिपति, विक्रमपुरके केदार रायके सहयोगसे कुछ समयतक बादशाह अकबरकी फौजोंको रोक रखा। अंतमें दोनोंमें मनमुटाव हो गया और ईसा खाँको मुगल बादशाहने अपदस्थ कर दिया।

ईस्ट इंडिया कम्पनी–स्थापना, १६०० ई० के अन्तिम दिन महारानी एलिजाबेथ प्रथमके एक घोषणापत्र द्वारा। यह लंदनके व्यापारियोंकी कम्पनी थी जिसे पूर्वमें व्यापार करनेका एकाधिकार प्रदान किया गया। कम्पनीने सबसे पहले व्यापारकी शुरुआत मसालेवाले द्वीपोंमें की। १६०८ ई० में उसका पहला व्यापारिक पोत सूरत पहुँचा, परन्तु पुर्तगालियोंके प्रतिरोध और शत्रुतापूर्ण रवैयेने कम्पनीको भारतके साथ सहज ही व्यापार शुरू करने नहीं दिया। पुर्तगालियोंसे निपटनेके लिए अंग्रेजोंको डच ईस्ट इंडिया कम्पनीसे सहायता और समर्थन मिला और दोनों कम्पनियोंने एक साथ पुर्तगालियोंसे अरसेतक जमकर तगड़ा मोर्चा लिया। १६१२ ई०में कैप्टन बेस्टके नेतृत्वमें अंग्रेजोंके एक जहाजी बेड़ेने पुर्तगाली हमलेको कुचल दिया और अंग्रेजोंकी ईस्ट इंडिया कम्पनीने सूरतमें व्यापार शुरू कर किया। १६१३ ई० में कम्पनीको एक शाही फरमान मिला और सूरतमें व्यापार करनेका उसका अधिकार सुरक्षित हो गया। १६२२ ई० में अंग्रेजोंने ओर्मुजपर अधिकार कर लिया जिसके फलस्वरूप वे पुर्तगालियोंके प्रतिशोध या आक्रमणसे पूर्णतया सुरक्षित हो गये। १६१५–१८ ई० में सम्राट् जहाँगीरके समय ब्रिटिशनरेश जेम्स प्रथमके राजदूत सर टामस रो ने ईस्ट इंडिया कम्पनीके लिए कुछ विशेषाधिकार प्राप्त कर लिये। इसके शीघ्र बाद कम्पनीने मसुलीपट्टम और बंगालकी खाड़ीपर स्थित अरमा गाँव नामक स्थानोंपर कारखाने स्थापित किये, किंतु कम्पनीको पहली महत्त्वपूर्ण सफलता मार्च १६४० ई० में मिली जब उसने विजयनगर शासकोंके प्रतिनिधि चंद्रगिरिके राजासे आधुनिक मद्रास नगरका स्थान प्राप्त कर लिया। यहाँपर उन्होंने शीघ्र ही सेंट जार्ज किलेका निर्माण किया। १६६१ ई० में ब्रिटेनके राजा चार्ल्स द्वितीयको पुर्तगाली राजकुमारीसे विवाहके दहेजमें बम्बई टापू मिल गया। चार्ल्सने १६६८ ई० में इसको केवल १० पाउण्ड सालाना किरायेपर ईस्ट इंडिया कम्पनीके सुपुर्द कर दिया। इसके बाद १६६९ और १६७७ ई० के बीच कम्पनीके गवर्नर जेराल्ड आंगियरने आधुनिक बम्बई नगरकी नींव डाली। १६८७ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनीका पश्चिमी भारत स्थित मुख्यालय सूरतसे बम्बई लाया गया। अंतमें १६९० ई० में कम्पनीके 'एक वफादार सेवक' जाब चारनाकने बंगालके नवाब इब्राहीम खाँके निमंत्रणपर भागीरथीकी दलदली भूमिपर स्थित सूतानटी गाँवमें कलकत्ता नगरीकी स्थापना की। बाद को १६९८ ई० में सूतानटीसे लगे हुए दो गाँवों कालिकाता और गोविन्दपुरको उसमें और जोड़ दिया गया। इस प्रकार पुर्तगालियोंके जबर्दस्त प्रतिरोधपर विजय प्राप्त करनेके बाद ईस्ट इंडिया कम्पनीने ९० वर्षोंके

अंदर तीन अति उत्तम बंदरगाहों—बम्बई, मद्रास और कलकत्तापर अपना अधिकार कर लिया। इन तीनों बंदरगाहोंपर किले भी थे। ये तीनों बंदरगाह प्रेसीडेंसी कहलाये और इनमेंसे प्रत्येकका प्रशासन ईस्ट इंडिया कम्पनीके कोर्ट आफ डायरेक्टर्स (दे०) और कोर्ट आफ प्रोपराइटर्स द्वारा नियुक्त एक गवर्नरके सुपुर्द किया गया। ईस्ट इंडिया कम्पनीका संचालन लंदनमें लीडन हाल स्ट्रीट स्थित कार्यालयसे होता था।

१६६१ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनीको बंगालके नवाब इब्राहीम खाँ (दे०) से एक फरमान प्राप्त हुआ, जिसमें कम्पनीको बंगालमें सिर्फ ३००० रु० की राशि सालाना देनेपर सीमाशुल्कके भुगतानसे मुक्त कर दिया गया था। अन्य यूरोपीय कंपनियोंको तीन प्रतिशत शुल्क अदा करना पड़ता था। ईस्ट इंडिया कंपनीके सर्जन डा० हैमिल्टनकी चिकित्सा सेवाओंसे खुश होकर सम्राट् फर्रुखसियरने १७१५ ई० में नया फरमान जारी करते हुए कम्पनीको सीमा शुल्कसे मुक्त करनेवाले पहलेके फरमानकी पुष्टि कर दी। (डा० हेमिल्टन कम्पनी द्वारा भेजे गये दूतमंडलके साथ मुगल दरबारमें गया था।) व्यापारमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके इस एकाधिकारका कई अंग्रेज व्यापारियोंने विरोध किया और सत्रहवीं शताब्दीके अंतमें "दि इंगलिश कम्पनी ट्रेडिंग टु दि ईस्ट इंडीज़' नामक एक प्रतिद्वन्द्वी संस्थाकी स्थापना की। नयी और पुरानी दोनों कम्पनियोंमें कड़ी प्रतिद्वंदिता चल पड़ी जिससे पुरानीके पैर उखड़ने लगे, किन्तु भारत और इंग्लैंड दोनों ही जगह अत्यन्त कटु और अप्रतिष्ठाजनक प्रतिद्वंद्विताके बाद १७०८ ई० में समझौता हुआ जिसके अंतर्गत दोनोंको मिलाकर एक कम्पनी बना दी गयी और उसका नाम रखा गया "दि यूनाइटेड कम्पनी आफ दि मर्चेण्ट्स आफ इग्लैंड ट्रेडिंग टू दि ईस्ट इंडीज़'। यह संयुक्त कम्पनी बादमें भी ईस्ट इंडिया कम्पनीके नामसे ही विख्यात रही और डेढ़ सौ वर्षोंमें वह मात्र एक व्यापारिक निगम न रहकर ऐसी राजनीतिक एवं सैनिक संस्था बन गयी जिसने संपूर्ण भारतपर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित कर ली।

भारतपर इस कम्पनीकी प्रभुसत्ता सहसा नहीं स्थापित हो गयी। इसमें उसे सोसे भी अधिक वर्षोंका समय लगा और इस अवधिमें उसे फ्रांस और डच कम्पनियों तथा भारतीयोंसे अनेक युद्ध करने पड़े। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके सौभाग्यसे भारतपर प्रभुसत्ताका दावा करनेवाली केन्द्रीय मुगल सरकार धीरे-धीरे कमजोर होती गयी और देश अठारहवीं शताब्दीके दौरान छोटे-छोटे अनेक मुस्लिम और हिन्दू राज्योंमें बँट गया। इन राज्योंमें परस्पर कोई एकता न रही। मुस्लिम राज्य न केवल हिन्दू राज्यों के खिलाफ थे वरन् उनमें आपसमें भी एकता न थी और न ही उनके मनमें दिल्लीमें शासन करनेवाले मुगल सम्राट्के प्रति कोई निष्ठा थी। यह फूट ईस्ट इण्डिया कम्पनीके लिए वरदान सिद्ध हुई। इस कम्पनीने १७६१ ई० में वाँडीवाशका युद्ध जीत कर फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनीका भारतसे सफाया कर दिया। सन् १७५७ में पलासीका युद्ध (दे०) जीतनेके बाद बंगाल, बिहार और उड़ीसापर उसका प्रभुत्व वस्तुतः पहले ही स्थापित हो चुका था।

मुगल सम्राट् शाह आलम द्वितीय असहाय-सा कम्पनीकी फौजोंका बढ़ाव और विजयें देखता रहा। उसके देखते-देखते कम्पनीने मैसूरके मुस्लिम राज्यको हड़प लिया और हैदराबादके निजामने कम्पनीके आगे आत्म-समर्पण कर दिया। पर वह कर कुछ भी न सका। हाँ, उसे इस बातसे अलबत्ता कुछ संतोष मिला कि कम्पनीने मराठोंकी शक्तिको भी काफी क्षीण कर दिया था। राजपूत वीर थे, किन्तु शुरूसे उनमें आपसमें फूट थी। उन्होंने आत्मरक्षार्थ कोई वार किये बिना ही कम्पनीके आगे घुटने टेक दिये। लार्ड हेस्टिंग्स (१८१३–२३) (दे०) के प्रशासन कालमें मराठों द्वारा आत्म-समर्पण कर दिये जानेके बाद तो मुगल सम्राट् वस्तुतः कम्पनीका पेंशनयाफ्ता बन गया। १८२६ ई० में आसाम, १८४३ ई० में सिन्ध, १८४९ ई० में पंजाब और १८५२ ई० में दक्षिणी बर्मा भी कम्पनीके शासनमें आ गया। वास्तवमें अब बर्मासे पेशावरतक कम्पनीका पूर्ण आधिपत्य था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनीसे व्यापारिक अधिकार और एकाधिपत्य पहले ही हस्तान्तरित किया जा चुका था और इस प्रकार वह ग्रेट ब्रिटेनके सम्राट्के प्रशासनिक अभिकरणके रूपमें कार्य कर रही थी। चारों तरफ शांति नजर आ रही थी कि अचानक १८५७ ई० में भारतीय सिपाहियोंने विद्रोह कर दिया। कम्पनीने कुछ "गद्दार" भारतीयोंकी मददसे इस विद्रोहको दबा तो दिया, लेकिन भारतीयोंके कुछ वर्गोंमें विरोध और बगावतकी आग भड़कती रही। यह बगावत ईस्ट इण्डिया कम्पनीके लिए घातक सिद्ध हुई। १८५८ ई० में कम्पनीको समाप्त कर दिया गया और भारतकी प्रभुसत्ता ग्रेट ब्रिटेनके सम्राट्ने स्वयं ग्रहण कर ली।

ईस्ट इण्डिया कालेज, हैलीबरी—१८०५ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा स्थापित। कम्पनीकी भारतीय सिविल

सर्विसमें नौकरीके लिए मनोनीत युवकोंको प्रशिक्षित करनेकी व्यवस्था इस कालेजमें की गयी थी। प्रत्येक प्रशिक्षार्थीको इसमें दो वर्ष व्यतीत करने पड़ते थे जहाँ उसे सामान्य शिक्षा, भारतीय भाषाओं, कानून तथा इतिहास-का ज्ञान कराया जाता था। शिक्षा की समाप्तिके पश्चात् उसे भारतीय सिविल सर्विसमें नौकरीपर भेज दिया जाता था। इस कालेजमें केवल मनोनीत युवक ही भर्ती किये जाते थे, अतएव उसमें उत्तीर्ण अथवा अनुत्तीर्ण होने-का प्रश्न नहीं था, बल्कि इस कालेजका उद्देश्य यही था कि प्रशिक्षार्थियोंका उतना ज्ञान-वर्धन किया जाय जितनी उनमें क्षमता हो। इस कालेजमें बौद्धिक विकासकी ओर कम तथा सहयोगकी भावना विकसित करनेकी ओर अधिक ध्यान दिया जाता था। यह कालेज ५० वर्षतक चला। इसके पश्चात् १८५५ ई० में भारतीय सिविल सर्विसमें प्रतियोगिता परीक्षा आरम्भ हो जानेपर उक्त कालेज समाप्त कर दिया गया। **(एन० सी० रायकृत सिविल सर्विस)**

उ

उज्जयिनी–(जिसको **अवन्तिका** भी कहते हैं)–मालवामें स्थित भारतके प्राचीन नगरोंमेंसे एक। इसकी गणना हिन्दुओंकी सात पवित्र नगरियोंमें की जाती है। ईसासे पूर्व सातवीं शताब्दीमें यह अवन्ति राज्यकी राजधानी थी जो बादमें मालवाके नामसे प्रसिद्ध हुई। ईसवी सन्‌की प्रारम्भिक शताब्दियोंमें यह शक क्षत्रपों (दे०) के अधिकार-में आ गयी परन्तु चन्द्रगुप्त द्वितीय ने, जो तीसरा गुप्त सम्राट् था, पाँचवीं शताब्दीमें इसे पुनः प्राप्त कर अपनी राजधानी बनाया। इस नगरका वर्णन प्रमुख रूपसे कालिदासके साहित्यिक ग्रन्थोंमें हुआ है, जिन्होंने अपने मेघदूत (दे०) में इस नगरका चित्ताकर्षक वर्णन किया है। यह सिप्रा नदीके तटपर स्थित है और विभिन्न मन्दिरों, विशेष रूपसे महाकालके शिव मन्दिरसे शोभायमान है।

उड़ीसा–भारतीय गणतंत्रका एक राज्य। यह भारतके पूर्वी समुद्रतटपर उत्तरमें बंगाल और दक्षिणमें आंध्र-तक फैला हुआ है। प्राचीन कालमें इसका नाम कलिंग (दे०) था और यह नंदवंशके शासक महापद्मनंद (दे०) के साम्राज्यका एक भाग था। नंदवंशके पतनके उपरांत कलिंग, मगध साम्राज्यसे अलग हो गया, परन्तु सम्राट् अशोकने उसे पुनः जीतकर मौर्य साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया। इस युद्धकी भीषण नर-हत्या और लोगोंके कष्टका सम्राट् अशोकके हृदयपर इतना गंभीर प्रभाव पड़ा कि उसने बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया। मौर्यवंशके पतनके उपरांत कलिंग (उड़ीसा) चेरवंशीय (दे०) राजाओंके कालमें पुनः स्वतंत्र हो गया और खारवेल (दे०) के शासनकालमें इसकी शक्तिमें विशेष उत्कर्ष हुआ। चौथी शताब्दी ई० में यह प्रदेश गुप्त साम्राज्यका एक भाग था और सातवीं शताब्दीमें यह सम्राट् हर्ष-वर्द्धनके साम्राज्यके अन्तर्गत था। इसकी पुष्टि इस बात-से होती है कि हर्षका अंतिम सैनिक अभियान ६४२ ई० में गंजामके विरुद्ध हुआ था, जो इसकी दक्षिणी सीमापर स्थित है। उपरांत उड़ीसाके इतिहासमें एक अंधकार युग आता है। किंतु नवीं शताब्दीमें भंजवंशकी स्थापना-के उपरांत यह प्रदेश पुनः प्रकाशमें आया। इस वंशका सबसे प्रतापी शासक रणभंज था, जिसने लगभग ५० वर्षों-तक राज्य किया। १२वीं शताब्दीके मध्यमें पूर्वी गंग राजवंशने उड़ीसापर अपना अधिकार जमाया और इस वंशके शासके १४३४ ई० तक शासन करते रहे। इसी समय कपिलेन्द्रने इस वंशके शासकको हरा कर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। पूर्वी गंग वंशका सबसे प्रसिद्ध शासक अनन्त वर्मा चोल गंग था, जिसने १०७६ से ११४८ ई० तक राज्य किया और पुरीके प्रसिद्ध जगन्नाथ मंदिरका निर्माण कराया। पूर्वी गंगवंशके शासकोंने उत्तरी भारतके मुसलमानों और दक्षिणके बहमनी सुलतानोंके आक्रमणोंसे उड़ीसाकी रक्षा करके उसकी स्वतंत्रता नष्ट न होने दी। अलाउद्दीन खिलजीके शासनकालमें कुछ समयके लिए उड़ीसाने दिल्ली सल्तनतकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। १३५६ ई० में सुल्तान फीरोज तुगलकने भी उड़ीसापर आक्रमण किया, पर एक बड़ी संख्यामें हाथियोंके उपहारसे संतुष्ट होकर वह वापस लौट आया। मुसलमान इतिहासकारोंने उड़ीसाका उल्लेख जाजनगर के नाम से किया है, किन्तु १५६८ ई० में बंगालके सुल्तान सुलेमान करारानीने उड़ीसापर अधि-कार कर लिया था। १५७२ ई० में बादशाह अकबरने इसे मुगल साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया और उड़ीसा बंगाल प्रान्तका एक भाग बन गया। १७५१ ई० में बंगालके नवाब अलीवर्दी खाँने इसका कुछ भाग रघुजी भोंसलाके अधीन मराठोंको दे दिया। १८०३ ई० तक यह मराठा राज्यका एक भाग बना रहा और उसी वर्ष नागपुरके भोंसला राजाने देवगाँवकी संधिके फलस्वरूप

इसे ईस्ट इण्डिया कम्पनीको दे दिया । १७६५ ई० में ही उड़ीसाका वह भाग जो बंगालके नवाबके अधीन शेष रह गया था, कम्पनीके अधिकारमें चला गया था, क्योंकि उसी वर्ष नवाबने दीवानीके अधिकार कम्पनीको दे दिये थे । इस प्रकार उड़ीसा बंगाल प्रान्तके साथ जुड़ गया और १८५४ ई० तक वह सीधे गवर्नर जनरल द्वारा शासित प्रान्त रहा । १८५४ ई० में बंगाल और बिहारके साथ इसका शासन भी एक लफ्टीनेंट गवर्नरके हाथों सौंप दिया गया । १८६६–६७ ई० में यहाँ भीषण दुर्भिक्ष पड़ा । १९१२ ई० में इसे बंगालसे अलग कर दिया गया, किन्तु बिहारके साथ अलग प्रान्तके रूपमें यह जुड़ा रहा । अंततोगत्वा १९३५ ई० में उड़ीसा एक पृथक् प्रान्त बन गया और आज भी यह भारतीय गणतंत्रका पृथक् प्रदेश बना हुआ है ।

उत्तरकुरु—भारतीय आर्योंका एक भाग, जिसका उल्लेख 'ऐतरेय ब्राह्मण' में मिलता है । वे हिमालयके उस पार रहते थे ।

उत्तर पश्चिमी सीमा प्रदेश—का निर्माण १९०१ ई० में हुआ, जब लार्ड कर्जन भारतका वायसराय था । सर्वप्रथम लार्ड लिटन (१८७६ से १८८० ई०) ने सीमान्त प्रान्तकी रचनाका सुझाव दिया था और इस प्रान्तमें सिन्ध तथा पंजाबके कुछ भागोंको भी सम्मिलित करनेका प्रस्ताव रखा था, किन्तु उस समय उसका सुझाव न माना गया । लार्ड कर्जनने सिंध और पंजाबके प्रान्तोंको नवनिर्मित सीमान्त प्रदेशसे अलग रखा और डूरण्ड रेखाके पूर्वके समस्त पख्तून भू-भागों तथा हजारा, पेशावर, कोहाट, बन्नू और डेरास्माइल खाँके व्यवस्थित जिलोंको मिला कर इस प्रान्तको एक अलग राजनीतिक इकाई का रूप दिया । इस प्रदेशका शासन चीफ़ कमिश्नरके हाथों सौंपा गया, जो सीधे वायसरायके नियंत्रणमें कार्य करता था । वायसरायकी सहायता राजनीतिक विभागके सदस्य अपने परामर्शोंसे करते थे । उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्तकी रचनाके फलस्वरूप तत्कालीन पश्चिमोत्तर प्रांतका नाम बदलकर आगरा और अवधका संयुक्त प्रान्त रख दिया गया, जिसे साधारणतया यू० पी० (वर्तमान उत्तर प्रदेश) कहा जाने लगा । १९३२ ई० में उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रदेश गवर्नर द्वारा शासित होने लगा और वहाँ विधान सभा भी बन गयी । स्वतंत्रताके उपरांत भारतके विभाजनके फलस्वरूप यह पाकिस्तानका एक भाग बन गया ।

उत्तर-मद्र—भारतीय आर्योंका एक गण, जो उत्तरकुरुकी भाँति हिमालयके उस पार रहता था ।

उत्पल वंश—कश्मीरमें अवन्तिवर्मा (८५५–८३) द्वारा ८५५ ई० के लगभग प्रतिस्थापित । अवन्तिवर्माके शासनकालमें कश्मीरमें सिंचाईकी व्यवस्था अच्छी थी । उसके पुत्र और उत्तराधिकारी शंकरवर्मा (८८३–९०२ ई०) ने सर्वप्रथम अपने राज्यकी सीमाका विस्तार किया, परन्तु अन्ततः अपनी ही प्रजाके हाथों जिसको उसने अत्यधिक कर-भार और मंदिरोंकी लूटसे पीड़ित कर रखा था, मार डाला गया । इसके बाद कुछ काल तक अराजकताका युग रहा जिससे कश्मीरको भारी क्षति उठानी पड़ी । तत्पश्चात् दो राजा—पार्थ और उसका पुत्र उन्मत्तावन्ती——रक्त-पिपासु क्रूर शासक हुए । यह वंश उन्मत्तावन्तीकी मृत्युके साथ ही ९३९ ई० में समाप्त हो गया ।

उदगिरिका युद्ध—फरवरी १७६० ई० में निजाम और मराठोंके बीच हुआ । तत्कालीन पेशवा बालाजी बाजीराव (दे०) के चचेरे भाई सदाशिव राव भाऊके नेतृत्वमें मराठों और हैदराबादके निजामकी मुठभेड़ हुई । निजाम निर्णयात्मक रूपसे पराजित हुआ और मराठोंकी महत्त्वाकांक्षा बलवती हो उठी ।

उदय (या उदायी)—ई० पू० ४४३ के लगभग मगधका एक शासक । यह अजातशत्रु (दे०) का पौत्र एवं दर्शक (दे०) का पुत्र था । इसने सोन नदीके तटपर स्थित पाटिलपुत्रसे कुछ मील दूर गंगाके किनारे कुसुमपुर नगरकी स्थापना की । बादमें कुसुमपुर बृहत्तर पाटिलपुत्र (दे०) का भाग बन गया ।

उदयपुरकी संधि—१८१८ ई० में उदयपुरके राणा और अंग्रेजी सरकारके बीच संपन्न । इसके अनुसार अंग्रेज प्रतिनिधि सर चार्ल्स मेटकाफके प्रयाससे मेवाड़ (उदयपुर) के राणा अंग्रेजोंके आश्रित हो गये ।

उदय सिंह—मेवाड़का राणा । वह १५२७ ई० में बाबरके साथ युद्ध करनेवाले राणा संग्राम सिंहका पुत्र और उत्तराधिकारी था । उदयसिंहमें न तो अपने पिता जैसा साहस था और न मातृभूमि-प्रेम । दुर्भाग्यसे उसको मुगल सम्राट् अकबरका मुकाबला करना पड़ा, जिसने १५६७ ई० में मेवाड़पर चढ़ाई करके चित्तौड़को घेर लिया । उदयसिंहने चित्तौड़की सुरक्षामें व्यक्तिगत रूपसे कोई भाग नहीं लिया । चार महीनेके घेरेके बाद चितौड़ अकबरके अधिकारमें आ गया । उदयसिंहने चित्तौड़की पुनःप्राप्तिके लिए कोई प्रयास नहीं किया वरन् अपनी नयी राजधानी में, जिसे उसने उदयपुरमें स्थापित किया था, भोगविलासमें लीन हो गया । उसने

१५७२ ई० में अपनी मृत्युतक उदयपुरपर, अपयशका भागी बनकर, राज्य किया। उसका यशस्वी पुत्र राणा प्रताप सिंह (दे०) उत्तराधिकारी बना।

उपगुप्त—एक प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु, जो वाराणसीके गुप्त नामक गंधीका पुत्र था। वह अशोकका गुरु था। इससे प्रभावित होकर उसने बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया। कहा जाता है कि वह अपने इस शिष्यके साथ पवित्र बौद्ध-स्थानोंकी यात्रा करने गया था और उसने गौतमबुद्धके जन्म-स्थानका दर्शन भी किया था। अशोकके रुम्मिनदेई स्तम्भ-लेखसे यह प्रकट होता है। (एस० भट्टाचार्य—सेलेक्ट अशोक एपीग्रैफ्स, पृ० ५९)।

उपटन, कर्नल—ईस्ट इण्डिया कम्पनीका एक सैनिक अधिकारी, जिसने मराठोंके साथ १७७६ ई० में पुरन्दर (दे०) की संधिकी थी। इसके द्वारा पहलेकी सूरत संधि (दे०) निरस्त कर दी गयी। पुरन्दरकी संधि कभी कार्यान्वित नहीं की जा सकी।

उपनिषद्—आर्योंके दार्शनिक विचारोंकी सूचना देनेवाले ग्रन्थ जो वैदिक संहिताओंके अंतिम भागके रूपमें मिलते हैं। इनमें कर्मकांड अर्थात् यज्ञक्रियाओंकी नहीं वरन् आध्यात्मिक चर्चा है। इनका प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म और आत्मा है, जिनका ज्ञान मोक्ष-प्राप्तिके लिए आवश्यक समझा जाता था। उपनिषद् सामान्यतः गद्यमें है—लेकिन कुछ पद्यमें भी हैं। इनमेंसे कुछ आरण्यकोंके भाग हैं और कुछ स्वतंत्र रूपमें भी मिलते हैं। वर्तमान समयमें सौ से भी अधिक ग्रन्थ उपनिषद्के नामसे प्रचलित हैं, लेकिन इनमेंसे केवल बारहपर ही शंकराचार्य जी (दे०) ने अपना भाष्य लिखा है और उनको ही मूल उपनिषद् ग्रन्थ माना जाता है। बारह उपनिषदोंमें ऐतरेय और कौषीतकि ऋग्वेद (दे०) से सम्बन्धित हैं। छांदोग्य और केन सामवेद (दे०) से। तैत्तिरीय, कठ और श्वेताश्वतर, बृहदारण्यक, ईश, प्रश्न, मुण्डक और माण्डूक्य कृष्ण और शुक्ल यजुर्वेदके अंग हैं। निर्माणकालकी दृष्टिसे ये उपनिषदें बुद्धसे पूर्वकी मानी जाती हैं, यद्यपि उनमेंसे कुछ निश्चित रूपसे बादमें संकलित हुई हैं।

उपवेद—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद (संगीतशास्त्र) और शिल्पशास्त्र आदि विधाएँ जिन्हें वेदोंसे निकली हुई समझा जाता था।

उमदुतुल उमरा—कर्नाटकका नवाब, जिसकी मृत्युके पश्चात् १८०१ ई० में लार्ड वेलेजलीने कर्नाटकका शासन-प्रबन्ध इस आधारपर अपने हाथमें ले लिया कि नवाब बगावतकी नीयतसे मैसूरके टीपू सुलतान (दे०) के साथ पत्राचार कर रहा था।

उर्दू—तुर्की और फारसी बोलनेवाले विजेता मुसलमानों और हिन्दी बोलनेवाले विजित भारतीयोंके बीच संसर्गकी आवश्यकताके परिणाम-स्वरूप उत्पन्न। 'उर्दू' तुर्की शब्द है जिसका अर्थ छावनी है। उर्दू मूलरूपमें फौजी लश्करकी भाषा थी, जिसमें फारसी, तुर्की और हिन्दीसे शब्द लिये गये थे। इसकी लिपि अरबी है, जो दाहिनी ओरसे बायीं ओर लिखी जाती है और इसका व्याकरण तथा वाक्य-रचनाका ढंग मुख्यरूपसे हिन्दीका है। उर्दू यद्यपि उत्तरी भारतमें मुख्यरूपसे मुसलमानों द्वारा बोली जाती है, तथापि अनेक हिन्दू भी इसे बोलते हैं। इसमें धीरे-धीरे साहित्यका भी विकास हुआ। प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरोने, जो अलाउद्दीन खिलजीके आश्रयमें था और जिसकी मृत्यु १३२५ ई० में हुई, उर्दू तथा फारसीमें रचना की थी। आधुनिक युगमें सर मुहम्मद इकबाल उर्दूके महान् कवियोंमेंसे थे।

उलमा (आलिमका बहुवचन)—इस्लाम धर्मके मीमांसाकारके रूपमें कट्टरपन तथा दीनी (मजहबी) हुकूमतके समर्थक थे। उन्होंने अलाउद्दीन खिलजी (दे०) मुहम्मद तुगलक (दे०) और अकबर (दे०) जैसे शक्तिशाली मुसलमान शासकोंका विरोध किया। अशिक्षित तथा अज्ञानी मुसलमान जनतापर उनका भारी प्रभाव था जो आज भी बना हुआ है।

उलुग खाँ—सुलतान गयासुद्दीन बलबन (दे०) का सेनानायक। उलुग खाँने ओरंगलके काकतीय राजा प्रतापरुद्र को १३२३ ई० में हराकर उसका राज्य छीन लिया।

उलुग खाँ बलबन, सुलतान—दे० गयासुद्दीन बलबन।

उस्ताद ईसा—संभवतः 'ताज' का वास्तु-कलाविद था।

उस्ताद मंसूर—सम्राट् जहाँगीरका आश्रित एक प्रसिद्ध चित्रकार। इसके कुछ चित्र अब भी मिलते हैं जो उसके समकालीनों द्वारा की गयी उसकी चित्रकलाकी प्रशंसाके औचित्यको सिद्ध करते हैं।

उस्मान खाँ—अफगानोंका सरदार, जिसने बंगालमें सूबेदारोंके निरन्तरके परिवर्तनोंसे उत्पन्न असंतोषका लाभ उठाया और बंगालके पठानोंको उत्तेजित करके मुगल सम्राट् जहाँगीरके विरुद्ध १६१२ ई० में विद्रोह खड़ा कर दिया। लेकिन मार्च १६१२ ई० में वह मुगल फौजों द्वारा परास्त हुआ और युद्धमें सिरपर लगे एक गम्भीर घावके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गयी।

ऋ

ऋग्वेद–चार वेदोंमें सबसे प्राचीन। कट्टर हिन्दू वेदोंको अपौरुषेय मानते हैं और उनके अनुसार वैदिक ऋचाओंके साथ जिन ऋषियोंके नाम मिलते हैं वे उनका दर्शन करनेवाले (द्रष्टा) थे। ऋग्वेद शब्द ऋक् (ऋचा अथवा मंत्र) तथा वेद (विद् अर्थात् ज्ञान) के संयोगसे बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है ज्ञानके सूक्त। ऋग्वेद भी अन्य तीन वेदोंकी भाँति चार भागोंमें विभाजित है: संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्। ऋग्वेद संहितामें १०१७ सूक्त हैं जो १० मंडलोंके अंतर्गत मिलते हैं। ऋग्वेदके अनेक मंत्र यज्ञपरक हैं, किन्तु उसमें कुछ ऐसे मंत्र भी मिलते हैं जिन्हें आदिकालीन धार्मिक कविताका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है। ऐतरेय एवं कौशीतक ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रंथ ऋग्वेदसे सम्बन्धित हैं। ऋग्वेदका रचनाकाल अभी सुनिश्चित नहीं हो सका है। सम्भवतः उसकी रचना ई० पू० २५०० से लेकर ई० पू० १५०० तक होती रही। उसका रचनाकाल चाहे जो भी निर्धारित हो, इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ऋग्वेदमें भारतीय आर्योंके प्राचीनतम युगका इतिहास और उस युगकी धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक अवस्थाका ज्ञान प्राप्त होता है। **(देखो, वेद) (कैम्ब्रिज, भाग १, खंड ४, ए० सी० दास––रिगवेदिक इंडिया तथा ए० केगी–रिगवेद)**।

ऋषि–वेद मंत्रोंके द्रष्टा माने गये हैं। इन्हीं ऋषियोंकी परंपरामें व्यास हुए जिन्होंने वेदोंका संग्रह व सम्पादन किया तथा पुराण, महाभारत, भागवत आदि हिन्दू धर्म-ग्रंथोंकी रचना की। इसी परंपरामें अगस्त्य जैसे ऋषि हुए जिन्होंने भारतके विभिन्न भागोंमें आर्य सभ्यताका प्रसार किया। जनश्रुतियोंके अनुसार दक्षिण भारतमें आर्य सभ्यताका प्रसार करनेवाले अगस्त्य ऋषि थे।

ए

एंटिआल्किडस–भारतका एक यवन राजा था जो तक्षशिलामें राज्य करता था। आधुनिक भिलसीके निकट वेसनगर (विदिशा) में प्राप्त स्तम्भ-लेखसे पता चलता है कि एंटिआल्किडसने विदिशाके राजाके दरबारमें हेलियोडोरसको अपना राजदूत बना कर भेजा था। स्तम्भलेख ई० पू० १४० और ई० पू० १३० के बीचका माना जाता है।

एंटिगोनस गोंटस–का उल्लेख अशोकके शिलालेख (संख्या तेरह) में अन्तिकिनिके रूपमें किया गया है। उसके साथ अशोकके मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे। वह मैसिडोनियाका राजा (ई० पू० २७७ से ई० पू० २३९ तक) था।

एंटियोकस प्रथम सोटर–सेल्यूकस निकेटरका पुत्र और सीरियाका राजा। भारतमें जब द्वितीय मौर्य सम्राट् बिंदुसार राज्य करता था, उसके समयमें एंटियोकस सीरियामें राज्य करता था। स्ट्राटो नामक इतिहासकारके अनुसार एंटियोकस प्रथमने डायमेचस नामक एक यवनको राजा बिन्दुसारके दरबारमें अपना राजदूत बनाकर भेजा था। एंटियोकस और बिन्दुसारके बीचमें मैत्री सम्बन्ध थे। बिन्दुसारने एंटियोकस प्रथमको अपने लिए मीठी शराब (मधु), सूखे अंजीर और एक यवन दार्शनिक खरीद कर भेजनेके लिए लिखा। एंटियोकसने जवाबमें लिखा कि मीठी शराब और सूखे अंजीर तो भेज दूँगा, लेकिन यवन दार्शनिक नहीं भेज सकता क्योंकि यूनानके कानूनके अनुसार दार्शनिकको बेचा नहीं जा सकता।

एंटियोकस द्वितीय थिओस–सीरिया और पश्चिमी एशियाका राजा (२६१–२४६ ई० पू०) था। उसका उल्लेख अशोकके शिलालेख संख्या तेरहमें अंतियोक नामक यौन (यवन) राजाके रूपमें हुआ है जिसका राज्य अशोकके साम्राज्यकी पश्चिमी सीमापर बताया गया है। अशोकने उसके साथ मित्रताके सम्बन्ध बना रखे थे और उसके राज्यमें धर्मका प्रचार किया था; मनुष्यों और पशुओंके लिए चिकित्सालय खुलवाये थे और औषध-वनस्पतिके पौधे लगवाये थे। **(द्वितीय शिलालेख)**

एंटियोकस तृतीय महान्–यवन राजा जो ईसा पूर्व तीसरी शताब्दीके अंतमें सीरिया और पश्चिमी एशियामें राज्य करता था। उसके समयमें युथिडिमासके नेतृत्वमें बैक्ट्रिया स्वाधीन हो गया। इसके बाद ही एंटियोकस तृतीयने हिन्दू-कुश पार करके सुभागसेन नामक भारतीय राजापर आक्रमण किया जिसका राज्य काबुलकी घाटीमें था। एंटियोकस तृतीयने सुभागसेनको पराजित कर उससे क्षतिपूर्तिके रूपमें बहुत-सा धन और हाथी लिये और अपने देशको वापस चला गया। इस आक्रमणका कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा।

एंडरसन–बम्बईकी यूरोपीय रेजीमेण्टका लेफ्टिनेण्ट था जिसको मार्च १८४८ ई० में लाहौर दरबारमें एक अन्य अधिकारी वान्स एग्न्यू और सरदार खानसिंहके साथ भेजा गया था। सरदार खानसिंहको दीवान मूलराजके स्थानपर मुलतानका सूबेदार बनाया गया था। मुल्तान पहुँचनेके

बाद लेफ्टिनेण्ट एंडरसन और उसके साथी वान्स एग्न्यूकी २० अप्रैल १८४८ ई० को हत्या कर दी गयी। अनुमान है कि दीवान मूलराज जिसे सूबेदारी से हटाया गया था उसने ही इन दोनोंकी हत्या करवा दी थी। इस घटनाके बाद मुलतानमें भीषण उपद्रव हुए, जिनके परिणामस्वरूप द्वितीय आंग्ल-सिख युद्ध (१८४८—४९ ई०) हुआ।

एकनाथ—१६वीं शताब्दी ई० के उत्तरार्द्धमें उत्पन्न महाराष्ट्रके एक प्रसिद्ध सन्त और धर्मसुधारक। वे पैठनमें पैदा हुए और ब्राह्मण होते हुए भी उन्होंने जातिभेदकी तीव्र निंदाकी तथा भगवद्भक्तिके प्रचारमें वे लगे रहे। उन्होंने 'महार' नामक निम्न जातिके एक व्यक्तिके साथ भोजन करनेमें भी संकोच नहीं किया। वे १६०८ ई० में स्वर्गवासी हुए। उन्होंने अपनी कविताओं तथा अपने उपदेशों द्वारा शिवाजीके नेतृत्वमें मराठा शक्तिके अभ्युदयमें भारी योगदान दिया।

एक्स ला चैपेलकी सन्धि—१७४८ ई० में सम्पन्न। इस संधिके द्वारा आस्ट्रियाके उत्तराधिकारका युद्ध समाप्त हो गया और तदनुसार भारतमें भी प्रथम आंग्ल-फ्रांसीसी युद्ध समाप्त कर दिया गया और विजित क्षेत्र एक दूसरेको लौटा दिये गये। मद्रास, जिसपर इस युद्धके दौरान फ्रांसीसियोंने कब्जा कर लिया था, फिर अंग्रेजोंको वापस कर दिया गया।

एजस प्रथम—भारतका एक पार्थियन राजा था जो पंजाबमें राज्य करता था। पहले वह आर्कोशिया (कन्धार) और सीस्तानका उपराजा था। बादमें ई० पू० ५८ में मौअसके स्थानपर उसका स्थानान्तरण तक्षशिला कर दिया गया। उसने पहले पार्थियन राजा मिथ्रिदातसके अधीन रहकर उस प्रदेशमें राज्य किया। वह एक शक्तिशाली राजा था जिसने करीब ४० वर्ष राज्य किया। इस बातकी सम्भावना है कि अपने लम्बे राज्य कालके अन्तमें उसने अपनेको पार्थियासे स्वतंत्र कर लिया था। उसके नामके सिक्के पंजाबमें मिले हैं। कुछ विद्वानोंका मत है कि विक्रम संवत् जो ईसवी पूर्व ५८—५७ में प्रचलित हुआ, उसने शुरू किया था।

एजस द्वितीय—एजस प्रथमका पौत्र था जो अपने पितामहकी गद्दीपर अपने पिता एजीलिसेस (दे०) के बाद गद्दीपर बैठा और २० ई० तक राज्य किया। एजेस द्वितीयके नामका पता भी उसके सिक्कोंसे चला है। सिक्कोंमें उसका नाम अश्पवर्मन्‌के नामके साथ आया है जिससे प्रकट होता है कि भारतीयों और पार्थियन राजाओंमें निकट सहयोग था।

एजीलिसेस—एजस प्रथमका पुत्र और उत्तराधिकारी था। उसके सिक्के भारतके पार्थियन राजाओंके सबसे अच्छे सिक्के माने जाते हैं, जिनकी नकल बादमें भारतीय राजाओंने की।

एटली, क्लीमेन्ट रिचर्ड (१८८३—१९६७ ई०)—१९४५—५० और १९५०—५५ ई० में ब्रिटेनके प्रधान मंत्री। उनकी शिक्षा आक्सफोर्डमें हुई और इनर टेम्पिलके वे सदस्य थे। १९०७ ई० में वे समाजवादी विचारधाराके हो गये। प्रथम महायुद्धमें उन्होंने सैनिकके रूपमें भाग लिया और मेजरका पद प्राप्त किया। १९२२ में एटली ब्रिटिश कामन्स सभाके सदस्य चुने गये और १९५५ तक बने रहे जब उनको लार्ड बना दिया गया। १९३१ ई० में वे ब्रिटेनकी लेबर पार्टीके नेता चुने गये। द्वितीय महायुद्धके दौरान वे विंस्टन चर्चिलके युद्ध मंत्रिमंडलमें मंत्री बनाये गये। १९४५ के आम चुनावमें लेबर पार्टीने कंजरवेटिव पार्टीको पराजित कर दिया और विंस्टन चर्चिलके स्थानपर एटली प्रधान मंत्री बने। उनके प्रधान-मंत्रित्व कालमें ब्रिटिश पार्लियामेण्टने एक कानून बनाकर अगस्त १९४७ ई० में भारतका विभाजन करके उसे स्वतंत्रता प्रदान कर दी। १९५५ के आम चुनावमें कंजरवेटिव पार्टीने लेबर पार्टीको हरा दिया। उसके बाद एटलीको लार्ड सभाका सदस्य बना दिया गया। उनकी मृत्यु १९६७ ई० में हुई।

एडवर्ड, प्रिन्स आफ वेल्स—बादमें इंग्लैण्डके राजा एडवर्ड अष्टम। वे १९२१ ई० में भारतमें यात्रा करने आये थे। उस समय देशमें १९१९ के गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया एक्टके विरोधमें महात्मा गाँधीके नेतृत्वमें असहयोग आंदोलन जोर-शोरसे चल रहा था। अतएव जब वे नवंबर महीनेमें बंबई उतरे और बादमें कलकत्ता गये, तो नगरोंकी सड़कें उन्हें सूनी दिखाई दीं। भारतीय जनताने उनका कोई स्वागत नहीं किया। उनकी यात्राके समय समस्त भारतमें जबरदस्त हड़तालें हुईं और उनके स्वागत समारोहोंका पूर्ण बहिष्कार किया गया। जब १९३६ ई० में वे सम्राट् बने तो वे बहुत थोड़े दिन सिंहासनपर रहे, जिसका भारतीय शासनपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। बादमें एक तलाकशुदा सामान्य महिलासे विवाह कर लेनेपर उन्हें राजगद्दी छोड़नी पड़ी। इस घटनाकी चर्चा भारतमें भी खूब हुई।

एडवर्ड्स, विलियम—इंग्लैण्डके राजा जेम्स प्रथमका राजदूत, जो सम्राट जहाँगीरके दरबारमें १६१५ ई० में भारत आया था। जहाँगीरने उसकी बड़ी आवभगत की, लेकिन उसे सम्राटसे कोई रियायत न प्राप्त हो सकी।

एडवर्ड सप्तम–१९०३ से १९११ ई० तक इंग्लैण्डके राजा तथा भारतके सम्राट्। उनकें राज्याभिषेकके उपलक्ष्यमें लार्ड कर्जनने दिल्लीमें एक दरबार किया। इंग्लैण्डका संवैधानिक राजा होनेके कारण, उन्हें भारतके मामलेमें ब्रिटिश सरकारके भारत-मंत्रीकी सलाहसे कार्य करना पड़ता था। १९०८ ई० में, जब ब्रिटिश सम्राट् द्वारा भारतीय शासनको अपने हाथमें लिये ५० वर्ष पूरे हो चुके थे, उन्होंने भारतीय प्रजा तथा देशी राजाओंके नाम एक घोषणा प्रकाशित की, जिसमें विगत ५० वर्षोंके दौरान ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतमें की गयी सेवाओंका गर्वपूर्वक उल्लेख किया गया था। घोषणाके अंतमें यह वादा किया गया था कि भारतमें प्रतिनिधित्वपूर्ण शासन-संस्थाओंका विस्तार किया जायगा। इस शाही घोषणाका कार्यान्वयन १९०९ ई० में इण्डियन कौंसिल ऐक्टके रूपमें किया गया। इसमें उन संवैधानिक सुधारोंकी व्यवस्था की गयी थी जिनकी सिफारिश ब्रिटिश सरकारके भारत-मंत्री लार्ड मार्ले तथा भारतके गवर्नर-जनरल लार्ड मिण्टो द्वितीयने की थी। निजी तौरपर सम्राट् एडवर्ड सप्तम इन 'सुधारों'के विरुद्ध थे, लेकिन एक संवैधानिक शासकके नाते उन्होंने अपनी उत्तरदायी सरकारकी नीति और कार्यों-पर अपनी स्वीकृति देकर विवेकपूर्ण कार्य किया।

एडवर्ड्स, सर हर्बर्ट (१८१९–६८ ई०)–ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी सेवामें १८४१ ई० में भारत आया और पंजाबमें नियुक्त हुआ। उसने प्रथम सिख युद्ध (१८४५–४६ ई०) के दौरान एक सिविलियन अधिकारीकी हैसियत-से मुदकी तथा सुबराहानकी लड़ाइयाँ देखीं। १८४८ ई० में जब वह मुल्तानमें था तो वहाँके सिख दीवान मूलराजने विद्रोह कर दिया और ऐग्न्यू तथा ऐण्डरसन नामक दो अंग्रेज अफसर मार डाले गये। उसने एक फौज इकट्ठी करके मूलराजको दो लड़ाइयोंमें पराजित कर दिया और कई महीनेतक मुल्तानपर अधिकार बनाये रखा। अंतमें ब्रिटिश सेना उसकी मददके लिए पहुँच गयी। उसकी सेवाओंकी ब्रिटिश संसदमें भी प्रशंसा हुई। पेशावरके कमिश्नरकी हैसियतसे उसने १८५५ तथा १८५७ ई० में अफगानिस्तानके अमीर दोस्त मुहम्मद खाँसे संधि करनेमें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की, जिसका फल यह हुआ कि १८५७ ई०के प्रथम स्वाधीनता-संग्राम (कथित सिपाही-विद्रोह) के दौरान अमीर तटस्थ रहा। स्वास्थ्य खराब हो जानेके कारण उसने १८६५ ई० में अवकाश ले लिया और स्वदेश वापस चला गया। उसे साहित्यसे भी अनुराग था। उसने अपने कार्यकालके आरम्भमें "ब्राह्मणी-बुल्स लेटर्स इन इण्डिया टु हिज कजिन जान-बुल इन इंग्लैण्ड" नामक पुस्तक लिखी। बादमें १८४८–४९ ई० में "ए इयर ऑन द पंजाब फ्राण्टियर" नामक एक और पुस्तक लिखी।

एनफील्ड रायफिल–एक नये प्रकारकी रायफिल, जो १८५६ ई० में ब्रिटिश भारतीय सेनाके सैनिकोंको प्रयोगके लिए दी गयी। इन रायफिलोंमें ग्रीज लगे हुए कारतूस प्रयुक्त होते थे, जिन्हें प्रयोगके पहले मुंहसे काटना पड़ता था। सिपाहियोंका विश्वास था कि इन कारतूसोंमें गाय अथवा सुअरकी चर्बीका प्रयोग किया गया है, अतएव इसे दाँतसे काटनेपर हिन्दू और मुसलमान सिपा-हियोंका धर्म नष्ट होता है। इसके कारण भारतीय सेनामें विद्रोहकी भावना उत्पन्न हुई। प्रथम भारतीय स्वाधीनता-संग्राम (१८५७ ई०) के मूलमें यह भी एक कारण था।

एम्प्टहिल, लार्ड–मद्रासका गवर्नर, जिसने १९०४ ई० में लार्ड कर्जनके अवकाशपर जानेपर ६ महीने भारतके वाइसरायके रूपमें काम किया था।

एलगिन, लार्ड–मार्च १८६२ ई० में लार्ड केनिंगके स्थानपर भारतका गवर्नर-जनरल तथा वाइसराय बनाया गया। लेकिन इस पदपर कुछ ही समय रहनेके पश्चात् नवंबर १८६३ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी कब्र धर्मशाला (पंजाब) में बनी हुई है। लार्ड एलगिनके जमानेकी मुख्य घटना यह है कि उसने पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्तमें कबायलियोंके विद्रोहको दबानेके लिए 'अम्बेला अभियान' चलाया था।

एलगिन, लार्ड, द्वितीय–१८९४ से १८९९ ई० तक भारतका गवर्नर-जनरल तथा वाइसराय। अपने पिताकी भाँति वह इसके पूर्व किसी महत्त्वपूर्ण पदपर नहीं रहा और न उसमें कोई विशेष व्यक्तिगत योग्यता थी। इसके अलावा उसका भाग्य भी खराब था। उसीके कार्यकालमें १८९६ ई० में बंबईमें प्लेगकी महामारी फैली और १८९६–९७ ई० में देशव्यापी अकाल पड़ा। इन दोनों विपत्तियोंको रोकनेमें अथवा जनताको राहत पहुँचानेमें उसका प्रशासन सफल नहीं हुआ। नतीजा यह हुआ कि प्लेग और अकालके कारण अकेले ब्रिटिश भारतमें १० लाख व्यक्ति कालके गालमें समा गये। इसके अलावा बम्बईमें प्लेग फैलनेसे अंग्रेजोंके हाथ-पैर इतने फूल गये कि उन्होंने सेनाकी सहायतासे उसे रोकनेके लिए अत्यन्त कठोर कदम उठाये। अंग्रेज अधिकारी लोगोंको घरोंसे निकालनेके लिए जनान-खानेतकमें घुस जाते थे। इससे भारतीय जनतामें बड़ी

कटुता उत्पन्न हुई। फल यह हुआ कि पूनामें दो अंग्रेज, जिनमें एक सिविलियन तथा दूसरा सैनिक अधिकारी था, मार डाले गये। इस घटनाने राजनीतिक रूप ग्रहण कर लिया।

लार्ड एलगिन द्वितीयके जमानेमें ही यह तथ्य भी नग्न रूपमें सामने आया कि भारत सरकारकी वित्तीय नीति किस प्रकार अंग्रेज उद्योगपतियोंके लाभके लिए चलायी जाती है। १८९५ ई० में बजटमें संभाव्य घाटेको रोकनेके लिए सभी प्रकारके आयातपर ५ प्रतिशत शुल्क लगाया गया। केवल लंकाशायरसे भारत आनेवाले कपड़ेपर यह शुल्क नहीं लगाया गया। इस पक्षपातपूर्ण नीतिका भारतीयों द्वारा घोर विरोध किया गया। फल यह हुआ कि अगले बजटमें लंकाशायरसे आयातित कपड़ेपर भी शुल्क लगानेका निश्चय किया गया, लेकिन उसके साथ भारतमें बने कपड़ेपर भी उत्पादन-शुल्क लगा दिया गया। इससे यह स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश सरकार भारतके कपड़ा-उद्योगके विकासको पसन्द नहीं करती। लार्ड एलगिन द्वितीयने १८९५ ई० में गिलगिटके पश्चिम और हिन्दूकुश पर्वतके दक्षिणमें स्थित चित्राल रियासतमें उत्तराधिकारके प्रश्नपर अनावश्यक रीतिसे हस्तक्षेप किया जिसके फलस्वरूप उसे पश्चिमोत्तर प्रदेशमें लम्बा और खर्चीला युद्ध चलाना पड़ा। इस युद्धमें ब्रिटिश भारतीय सेनाकी विजय अवश्य हुई और भारत-अफगान सीमासे लेकर चित्रालतक सैनिक यातायातके लिए सड़कका निर्माण कर दिया गया, लेकिन चित्रालके आन्तरिक मामलेमें अंग्रेज सरकारके हस्तक्षेपसे आसपासके मोहमन्द और अफरीदी कबीलोंमें रोष फैल गया और उन्होंने १८९७ ई० में अंग्रेजोंके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। लार्ड एलगिन द्वितीयको उस विद्रोहका दमन करनेके लिए कठिन संघर्ष करना पड़ा और अन्तमें ३५ हजार फौज लगा देनी पड़ी, तब कहीं वे काबूमें आये। १८५७ ई० के भारतीय स्वाधीनता-संग्रामके पश्चात् अंग्रेजोंके लिए यह सबसे कठिन संघर्ष सिद्ध हुआ। लार्ड एलगिन द्वितीयके कार्यकालमें एक महत्त्वपूर्ण सैनिक सुधार हुआ। समस्त भारतीय सेनाके लिए एक प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया और उसके अधीन बंगाल, मद्रास, बम्बई तथा पंजाब एवं पश्चिमोत्तर प्रान्तमें तैनात पलटनोंको सँभालनेके लिए चार लेफ्टिनेण्ट-जनरल नियुक्त किये गये। लार्ड एलगिन द्वितीयके कार्यकालमें केवल यही एक महत्त्वका सुधार हुआ।

एलफिन्स्टन, जनरल विलियम जार्ज कीथ–(१७८२–१८७२ ई०)–ब्रिटिश सेनामें १८०४ ई० में प्रविष्ट। उसने वाटरलूके युद्धमें तथा अन्य अनेक लड़ाइयोंमें भाग लिया। पहले अफगान-युद्धके समय १८३९ ई० में वह ब्रिटिश भारतीय सेनाके बनारस डिवीजनका कमाण्डर था। उसे भी अफगानिस्तान भेजा गया। १८४१ ई० के अन्तमें वह काबुलपर चढ़ाई करनेवाली ब्रिटिश-भारतीय सेनाका प्रधान सेनापति बनाया गया। जब अफगानोंने २३ दिसंबर १८४१ ई० में सर डब्लू० मैकनाटनकी हत्या कर दी, तो एलफिन्स्टन अपने बुढ़ापे और खराब स्वास्थ्यके कारण अपनी सेनाकी सुरक्षाका उपाय न कर सका। जब ब्रिटिश सेना काबुलसे वापस लौटनेके लिए बाध्य हो गयी तो उसने अन्य अंग्रेज अफसरोंके साथ अपनेको बंधकके रूपमें अकबर खाँके हवाले कर दिया। इससे अंग्रेजोंकी प्रतिष्ठाकी भारी हानि हुई। अप्रैल १८४२ ई० में जब वह भारत वापस लौट रहा था, तो रास्तेमें ही नजीरामें उसकी मृत्यु हो गयी।

एलफिन्स्टन, जान बैरन–(१८०७–६०)–आरम्भमें १८३७ से १८४२ ई० तक मद्रासका गवर्नर। इस दौरान कोई विशेष घटना नहीं घटी। लेकिन जब वह १८५३ से १८६० ई० तक बम्बईका गवर्नर रहा, तब भारतमें प्रथम स्वाधीनता-संग्राम छिड़ा। उसने बड़ी चतुराईसे बम्बई प्रांतमें विद्रोहाग्नि नहीं फैलने दी और मध्य भारतके कुछ भागोंमें विद्रोहको दबानेमें सहायता दी।

एलफिन्स्टन, माउण्ट स्टुअर्ट–(१७७९–१८५९)–विख्यात इतिहासकार और प्रशासक। वह ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी सेवामें १७९५ ई० में लिपिककी हैसियतसे भारत आया। बहुत शीघ्र वह पेशवा बाजीराव द्वितीयके दरबारमें सहायक ब्रिटिश रेजीडेण्ट हो गया। उसने असई तथा आरगाँवके युद्धोंमें भारी वीरता दिखायी। १८०४ से १८०८ ई० तक नागपुरमें रेजीडेण्ट रहा। बादमें १८११ ई० में पूनाका रेजीडेण्ट बनाया गया, जहाँ उसने भारी कूटनीतिक चातुर्यका परिचय दिया। तीसरे मराठा-युद्ध (दे०) (१८१७–१९ ई०) में उसने भारी संगठन-शक्ति और साहसका परिचय दिया। इस युद्धमें उसके घरपर आक्रमण हुआ, उसके पुस्तकालयको नष्ट कर दिया गया, लेकिन उसने हिम्मत नहीं हारी और अन्तमें खड़कीकी लड़ाई (१८१७ ई०) में बाजीराव द्वितीयको पराजित कर दिया। युद्ध समाप्त होनेपर उसे बम्बईका गवर्नर बना दिया गया। इस पदपर वह अवकाश ग्रहण करनेके समय (१८२७ ई०) तक बना रहा। गवर्नरकी हैसियतसे उसने बम्बई प्रान्तमें अनेक सुधार लागू किये

और प्रान्तमें शिक्षाका प्रसार किया। बम्बईका एलफिन्स्टन कालेज उसके ही सम्मानमें स्थापित किया गया था। उसने १८४१ ई० में अंग्रेजीमें 'भारतका इतिहास' नामक अपनी विख्यात पुस्तक लिखी।

एलारा–दक्षिणमें प्राचीन चोल वंशका एक राजा, जो ईसवीसे पूर्व दूसरी शताब्दीमें हुआ। कहा जाता है कि उसने श्रीलंकापर विजय प्राप्त की थी। वह अत्यधिक न्याय-प्रिय था।

एलिनबरो, लार्ड–१८४२ ई० से १८४४ ई० तक भारतका गवर्नर-जनरल। इसके पूर्व वह बोर्ड आफ कण्ट्रोलका अध्यक्ष रह चुका था। वह भारतमें लार्ड आकलैण्ड (दे०) के बाद गवर्नर-जनरल हुआ। उस समय भारतकी अंग्रेज सरकार पहले अफगान-युद्ध (दे०) (१८४२–४४ ई०) में संलग्न थी। लार्ड एलिनबरोने अफगानिस्तान-से ब्रिटिश भारतीय सेनाको वापस बुलाते हुए किसीको यह आभास नहीं होने दिया कि ब्रिटिश सेना हार कर वापस आयी है। इसके बाद ही एलिनबरोने अन्याय-पूर्ण ढंगसे सिंधपर चढ़ाई बोल दी। सर चार्ल्स नैपियर (दे०) के नेतृत्वमें अंग्रेजी सेनाने सिंधके अमीरोंको पराजित कर दिया और १८४३ ई० में सिंधको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया।

लार्ड एलिनबरोने इसके बाद शिन्देके राज्यमें भी हस्तक्षेप किया और १८०४ ई० की विस्मृत एवं निरस्त संधिका आधार लेकर ग्वालियरके राज्यपर चढ़ाई करनेके लिए अंग्रेजी सेना भेज दी। शिन्देकी फौजें महाराजपुर और पनियारके युद्धोंमें पराजित हुईं। लार्ड एलिनबरोने यद्यपि ग्वालियरके राज्यको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें नहीं मिलाया, तथापि उसे अंग्रेजोंका आश्रित राज्य अवश्य बना लिया। उस समय ग्वालियरकी गद्दीपर एक नाबालिग शासक था, अतएव यह व्यवस्था की गयी कि राज्यका प्रशासन एक रीजेन्सी कौंसिलके हाथमें होगा जिसके सभी सदस्य भारतीय होंगे और वे ग्वालियर स्थित ब्रिटिश रेजीडेण्टकी सलाहपर शासन चलायेंगे। ग्वालियर राज्यकी फौजकी संख्या घटाकर ९ हजार कर दी गयी, तथा १० हजार अंग्रेजी सेना वहाँ तैनात कर दी गयी। इस प्रकार ग्वालियर राज्य व्यवहारतः अंग्रेज सरकारके अधीन हो गया।

लार्ड एलिनबरोकी इन कारवाइयोंको ब्रिटेन स्थित कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सने पसंद नहीं किया और कम्पनीके इतिहासमें पहली बार गवर्नर-जनरलको वापस बुला लिया गया। लार्ड एलिनबरोको स्वदेश वापस लौट जाना पड़ा। ब्रिटेन वापस जाकर भी लार्ड एलिनबरो भारतीय मामलोंमें दिलचस्पी लेता रहा। १८५३ ई० में जब इण्डियन सिविल सर्विसमें भर्तीके लिए प्रतियोगिता परीक्षा आरम्भ की गयी तो उसने उसका तीव्र विरोध किया, लेकिन इस विरोधका कोई फल नहीं निकला।

एलिफैण्टाकी गुफाएँ–बम्बईके निकट, पौराणिक देवताओंकी अत्यन्त भव्य मूर्तियोंके लिए विख्यात हैं। इन मूर्तियोंमें त्रिमूर्ति सर्वश्रेष्ठ है।

एलिस, विलियम–१७६२ ई० में उस समय पटना स्थित अंग्रेजी फैक्टरीका मुखिया, जब बंगालके नवाब मीर कासिम (दे०) ने बंगाल, बिहार और उड़ीसामें समस्त व्यापारियोंपरसे चुंगी हटा ली। इसका नतीजा यह हुआ कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी और उसके कर्मचारियोंके गैरकानूनी व्यापारसे जो लाभ होता था, वह समाप्त हो गया। कम्पनीके जिन कर्मचारियोंको इस अवैध व्यापारसे भारी लाभ होता था, उन्होंने नवाबकी आज्ञाका तीव्र विरोध किया। विलियम एलिस इस गैरकानूनी व्यापार-का सबसे उग्र पक्षधर था। उसने नवाबकी आज्ञाके विरोधमें पटना नगरपर कब्जा करनेका प्रयास किया। नवाबके सैनिकोंने उसका प्रतिरोध किया। फलतः एलिस अपनी छोटी-सी सेनाके साथ परास्त हो गया और वह स्वयं मारा गया। इन्हीं घटनाओंके फलस्वरूप १७६३ ई० में नवाब मीर कासिम तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनीके बीच युद्ध छिड़ गया।

एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल–स्थापना, प्राच्य विद्या-ध्ययनमें अभिरुचि रखनेवाले विद्वानोंकी संस्थाके रूपमें १७८४ ई०में कलकत्तेमें सर विलियम जोन्स द्वारा। गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सने इसमें पूरी सहायता की। इस संस्थाकी ओरसे केवल भारत ही नहीं बल्कि एशियासे सम्बन्धित विभिन्न अनुसंधान-कार्योंको प्रोत्साहित किया गया। इस संस्थाके पास अच्छा पुस्तकालय है जिसमें प्रकाशित पुस्तकोंके अतिरिक्त हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ संगृहीत हैं। इस संस्थाकी ओरसे एक पत्र भी प्रकाशित किया जाता है और सैकड़ों बहुमूल्य पुस्तकोंको पुनः प्रका-शित करके उनको लुप्त होनेसे बचाया गया है। इस संस्था-की ओरसे संस्कृत और फारसीकी पाण्डुलिपियोंका अंग्रेजी-में अनुवाद भी प्रकाशित कराया गया है। सिपाही-विद्रोहके बाद जब सत्ता ईस्ट इण्डिया कम्पनीसे इंग्लैण्डके राजाके पास चली गयी, उस समयसे इस संस्थाका नाम रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल' हो गया, लेकिन

१९४७ ई० में स्वतंत्रता-प्राप्तिके बाद इसका नाम फिरसे 'एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल' हो गया है।

ऐम्हर्स्ट, लार्ड—भारतका गवर्नर-जनरल (१८२३-२८ ई०)। उसके शासन-कालमें प्रथम बर्मा-युद्ध (१८२४-२८ ई०) हुआ जिसके परिणाम-स्वरूप आसाम, अराकान और तेनासरीम ब्रिटिश साम्राज्यमें मिला लिये गये। लार्ड ऐम्हर्स्ट युद्धका संचालन सही ढंगसे नहीं कर सका, जिससे भारतीय एवं अंग्रेजी सेनाको बहुत नुकसान उठाना पड़ा और लड़ाई लम्बी चली। इस लड़ाईके दौरान दो घटनाएं घटीं। पहले ४७वीं पलटनके देशी तोपखानेके सिपाहियोंने विद्रोह कर दिया क्योंकि उनको जबर्दस्ती समुद्र-पार भेजा जा रहा था। उनकी कुछ दूसरी शिकायतें भी थीं। उनका विद्रोह अंग्रेज-तोपखाने और दो अंग्रेज पलटनोंकी मददसे निर्दयतापूर्वक कुचल दिया गया। दूसरी घटना यह घटी कि भरतपुरकी गद्दीके एक दावेदार दुर्जनसिंहने १८२४ ई० में विद्रोह कर दिया और अपनेको 'राजा' घोषित कर दिया। अंग्रेजोंने १८२५ ई० के शुरूमें भरतपुर किलेपर चढ़ाई करके उसे अपने कब्जेमें ले लिया। लार्ड ऐम्हर्स्टके समयमें १८२४ ई० में कलकत्तेमें गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेजकी स्थापना की गयी। बादमें एम्हर्स्टने पारिवारिक कारणोंसे गवर्नर-जनरलके पदसे इस्तीफा दे दिया।

ओदन्तपुरी—उड्यंतपुर भी कहते हैं, यह बिहारमें स्थित है। आठवीं शताब्दीके मध्यमें बंगाल और बिहारमें पालवंशके संस्थापक गोपालने यहां एक महाविहारकी स्थापना की थी। यह एक महत्त्वपूर्ण विद्या-केन्द्र बन गया। तेरहवीं शताब्दीके आरम्भमें बख्तियार (दे०) के पुत्र मुहम्मदके नेतृत्वमें मुसलमान आक्रमणकारियोंने इसे नष्ट कर दिया।

ओनेसि क्राइटोस—एक प्रसिद्ध ग्रीक इतिहासकार, जिसने भारतपर सिकन्दरके आक्रमणका वृत्तान्त लिखा है। वह सिकन्दरके साथ ३२६ ई० पू० में तक्षशिला तक आया था। यद्यपि उसके द्वारा लिखित इतिहास अब उपलब्ध नहीं है, तथापि उसके कुछ उद्धरण अन्य यूनानी इतिहासकारोंकी रचनाओंमें उपलब्ध हैं।

ओर्मे राबर्ट (१७२८-१८०१ ई०)—भारतका एक अंग्रेज सैनिक इतिहासकार। उसका जन्म दक्षिण भारतमें हुआ, पिता भारतमें ईस्ट इंडिया कम्पनीमें सर्जन था। वह १७४३ ई० में बंगालमें लिपिक नियुक्त हुआ। छुट्टीपर जहाजमें इंग्लैण्ड जाते समय राबर्ट क्लाइव (दे०) से इसकी घनिष्ठ मैत्री हो गयी। यह मैत्री दीर्घ कालतक चली। वह १७५४ से १७५८ ई० तक मद्रास कौंसिलका सदस्य रहा और कलकत्तापर फिरसे अधिकार करनेके लिए क्लाइवके नेतृत्वमें, फौज भेजनेका जो निर्णय किया गया, उसमें मुख्य रूपसे उसीका हाथ था। उसका अंग्रेजीमें लिखित 'हिन्दुस्तान में ब्रिटिश राष्ट्रकी सन् १७४५ से फौजी काररवाइयोंका इतिहास' शीर्षकसे विशाल ग्रंथ तीन खंडोंमें १७६३-७८ ई० में प्रकाशित हुआ। इसके पूर्वका वृत्तान्त 'ऐतिहासिक प्रकरण' शीर्षकसे १७८१ ई० में प्रकाशित हुआ। उसने अपने ग्रंथोंमें अत्यन्त ब्यौरेवार विवरण दिया है और उसके 'इतिहास'में उस कालका सबसे प्रामाणिक विवरण है। मेकालेने अपना ग्रंथ लिखनेमें उससे बहुत सहायता ली है। उसने हस्तलिखित ग्रंथोंका बहुमूल्य संग्रह किया था, जो अब इंडिया लाइब्रेरीमें सुरक्षित है।

औपनिवेशिक स्वराज्य (डोमिनियन स्टेटस)—की मांग भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने पहली बार १९०८ ई० में की थी। उस समय इसका अर्थ केवल इतना ही था कि आन्तरिक मामलोंमें भारतीयोंको स्वशासनका अधिकार दिया जाय, जैसा कि ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत कनाडाको प्राप्त था किन्तु ब्रिटिश भारतीय सरकारने इस मांगको स्वीकार नहीं किया। २१ वर्ष बाद ३१ अक्तूबर १९२९ ई० को वाइसराय लार्ड इर्विनने घोषणा की कि भारतमें संवैधानिक प्रगतिका लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्यकी प्राप्ति है। किन्तु 'औपनिवेशिक स्वराज्य' के स्वरूपकी स्पष्ट परिभाषा नहीं की गयी। फलतः भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने इस प्रकारकी, अस्पष्ट और विलम्बित घोषणापर सन्तोष प्रकट करनेसे इनकार कर दिया। कांग्रेसने वर्षके अन्तमें अपने लाहौर अधिवेशनमें भारतका लक्ष्य 'पूर्ण स्वाधीनता' घोषित किया। इस प्रकार भारत और ब्रिटेनके बीचकी खाई बढ़ती ही रही। औपनिवेशिक स्वराज्यकी घोषणा यदि २० वर्ष पहले की गयी होती, तो कदाचित् वह भारतीय आकांक्षाओंकी पूर्ति कर देती। लेकिन द्वितीय विश्वयुद्धके पूर्व बदलती हुई अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियोंके साथ बढ़ते हुए राष्ट्रवादको औपनिवेशिक स्वराज्यकी घोषणा सन्तुष्ट न कर सकी। इसके बाद भी ६ वर्ष तक ब्रिटिश सरकारने उस घोषणाको लागू करनेके लिए कुछ नहीं किया। अंतमें जब १९३५ का 'गवर्नमेन्ट आफ इंडिया एक्ट' सामने आया तो वह कई दृष्टियोंसे औपनिवेशिक स्वराज्यके वादेकी पूर्ति नहीं करता था।

नये शासन-विधानके अनुसार केन्द्रमें द्वैध शासनकी व्यवस्था की गयी थी जिसके अन्तर्गत विदेश विभाग और प्रतिरक्षा विभाग आदिपर निर्वाचित विधान-मंडलका

कोई नियंत्रण नहीं रखा गया। दूसरी बात, इस शासन-विधानमें वाइसरायको अनेक निरंकुश अधिकार प्रदान किये गये थे। तीसरी बात, भारतीय विधान-मंडल द्वारा पारित अधिनियमोंपर ब्रिटिश सम्राट्की स्वीकृति आवश्यक थी। ब्रिटिश सरकार उक्त अधिनियमोंपर स्वीकृति देनेसे इनकार भी कर सकती थी। इस प्रकारके प्रतिबन्धोंसे स्पष्ट था कि भारतीय शासन-विधान (१९३५) में औपनिवेशिक स्वराज्यकी जो कथित व्यवस्था थी, वह १९३१ ई० के स्टेट्यूट आफ वेस्टमिंस्टरके अन्तर्गत औपनिवेशिक स्वराज्यकी परिभाषासे बहुत निचले दर्जेकी थी। इस स्टेट्यूटके अन्तर्गत आन्तरिक मामलोंमें उपनिवेशकी प्रभुसत्ताको स्वीकार किया गया था और वैदेशिक मामलोंमें भी पूर्ण स्वशासन दिया गया था जिसके अनुसार उपनिवेशको विदेशोंसे संधि करनेका अबाध अधिकार प्राप्त था। साथ ही युद्धादिमें तटस्थ रहने और ब्रिटिश साम्राज्यसे अलग होनेका अधिकार भी उपनिवेशको दिया गया था। औपनिवेशिक स्वराज्यमें निहित उपर्युक्त समस्त अधिकार १९३५ के गवर्नमेन्ट आफ इंडिया एक्टमें नहीं प्रदान किये गये थे, अतएव वह भारतीय जनमतको संतुष्ट करनेमें पूर्णतया विफल हो गया। इसके अलावा शासन-विधानमें साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वके सिद्धान्तको इस प्रकार विकसित किया गया था कि उससे भारतके भावी विभाजनकी स्पष्ट आधारशिला तैयार कर दी गयी। ऐसी अवस्थामें सर स्टैफर्ड क्रिप्सने जब ११ मार्च १९४२ ई० को औपनिवेशिक स्वराज्यके लक्ष्यकी पुनः घोषणा की, तो भारतीय राष्ट्रवादियोंमें उससे कोई उत्साह नहीं उत्पन्न हुआ।

द्वितीय विश्व-युद्धमें जब ब्रिटेनको धन-जनकी घोर हानि पहुँची और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन तीव्रसे तीव्रतर होता गया, तो उसे १९३१ ई० के स्टेट्यूट आफ वेस्टमिंस्टरके अंतर्गत भारत और पाकिस्तानको पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य देनेकी घोषणा करनी पड़ी। १५ अगस्त १९४७ ई०को भारतने ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलके अन्तर्गत पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त कर ली। यह स्थिति १९४९ ई० में और अधिक स्पष्ट हो गयी, जब भारतको सार्वभौम प्रभुसत्ता-सम्पन्न स्वाधीन गणराज्यके रूपमें मान्यता प्रदान कर दी गयी। भारतने स्वेच्छासे राष्ट्रमण्डलमें बने रहनेका निर्णय किया। उसने घोषणा की कि वह शांति, स्वतंत्रता तथा प्रगतिकी नीतिसे अपनेको आबद्ध रखेगा और ब्रिटिश सम्राट्को राष्ट्रमण्डलका प्रतीक-अध्यक्ष स्वीकार करेगा और जब भी वह अपने हितमें राष्ट्रमण्डलसे अलग होना आवश्यक समझेगा, उसे अलग होनेका पूरा अधिकार होगा। **(जी० एन० जोशी लिखित 'भारतीय संविधान'-१९५६ ई०)**

औरंगजेब—भारतका छठा मुगल बादशाह (१६५९-१७०७ ई०)। वह शाहजहाँ (दे०) (१६२७-१६५८ ई०) का तीसरा पुत्र था। जब वह शाहजादा था तभीसे महत्त्वपूर्ण प्रशासकीय और सैनिक पदोंपर था। दक्षिणमें दो बार और अफगानिस्तानमें एक बार वह बादशाहका प्रतिनिधि रह चुका था। इन पदोंपर काम करते हुए उसने बड़ी योग्यता, साहस और परिश्रमका परिचय दिया। उसमें ये गुण बहुतायतसे थे जिनका परिचय उसने बादशाह होनेपर भी दिया। १६५७ ई० में जब उसका पिता शाहजहाँ बीमार पड़ा, उस समय वह दक्षिणमें बादशाहका प्रतिनिधि था। उसके बड़े भाई दाराशिकोहको शाहजहाँ दिल्लीके तख्तपर बैठाना चाहता था, वह उसके पास था। शाहजहाँका दूसरा पुत्र शुजा बंगालमें शासक था और चौथा तथा सबसे छोटा पुत्र मुराद गुजरातमें बादशाहका प्रतिनिधि था। जैसे ही शाहजहाँकी बीमारीकी खबर मिली, शुजाने बंगालमें अपनेको बादशाह घोषित कर दिया और गुजरातमें मुरादने भी वैसा ही किया। इन परिस्थितियोंमें औरंगजेबने भी तख्त पानेकी कोशिश करनेका निश्चय किया। उसने मुरादसे सुलह करके यह तय किया कि दोनों मिलकर कोशिश करें और विजयी होनेपर सल्तनतको आपसमें बाँट लें। इस तरह उत्तराधिकारके लिए शाहजहाँके चारों पुत्रोंमें भ्रातृयुद्ध शुरू हो गया। औरंगजेब और मुरादकी संयुक्त सेनाने उज्जैनके निकट अप्रैल १६५८ ई० में धर्मर और मई १६५८ ई० में सामूगढ़की लड़ाइयोंमें शाही सेनाको पराजित कर दिया। सामूगढ़की लड़ाईमें शाहजादा दारा खुद मौजूद था और हारके बाद वह भाग कर आगरा चला गया। विजयी भाइयोंकी संयुक्त सेना दाराशिकोहका पीछा करती हुई आगरा पहुँची और ८ जून १६५८ ई० को आगरा किले तथा उसके खजानेका समर्पण हो गया। बूढ़ा बादशाह शाहजहाँ जीवन पर्यंत बंदी बना रहा। औरंगजेबने १६५७ ई० में गुजरातके दीवानकी हत्याके अभियोगमें मुरादको फांसी दिलवा दी। इसी बीचमें शुजाको दाराके लड़के सुलेमानने फरवरी १६५८ ई० में बनारसके पास बहादुरपुरकी लड़ाईमें पराजित कर दिया। बादमें उसने फिरसे कुछ फौज इकट्ठी कर ली। औरंगजेबने खुद सेनाका संचालन कर शुजाके विरुद्ध बंगालपर चढ़ाई की और उसे खजवाकी लड़ाईमें

पराजित किया। औरंगजेबके सेनापति मीर जुमलाने शुजाका पीछा किया और उसे पहले दक्षिणकी ओर और बादमें अराकानकी ओर (मई १६६० ई०) भागनेपर मजबूर किया, जहाँ उसका पूरा परिवार नष्ट हो गया। आगरापर औरंगजेबका अधिकार हो जानेके बाद दाराशिकोह वहाँसे भागा। औरंगजेबकी सेनाने उसे अप्रैल १६५६ ई० में दौराईकी लड़ाईमें पराजित किया और जूनके महीनेमें दाराशिकोह धोखा देकर पकड़ लिया गया। औरंगजेबने उसको जलील किया और उसके विरुद्ध धर्मद्रोही होनेका अभियोग लगाकर ३० अगस्त १६५६ ई० को उसे भी फांसीपर चढ़ा दिया। इस प्रकार अपने सभी भाइयोंमें औरंगजेब अकेला बच गया। उसने अनौपचारिक रूपसे २१ जुलाई १६५८ को बादशाह शाहजहाँको आजीवन कैदमें डाल कर गद्दी प्राप्त कर ली थी। जून १६५६ में वह औपचारिक रूपसे तख्तनशीन हुआ और 'आलमगीर' (विश्व-विजेता) का खिताब धारण किया।

औरंगजेबकी बड़ी बेगम दिलरास बानोके पाँच लड़के थे। उनमेंसे मुहम्मदको १६७६ ई० में गुप्त रीतिसे फांसीपर चढ़ा दिया गया। मुअज्जम उसका उत्तराधिकारी बना। आजम औरंगजेबकी मृत्युके बाद होनेवाले उत्तराधिकार युद्धमें मारा गया। अकबरने अपने पिताके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और उसे देश छोड़कर फारस भागना पड़ा, जहाँ १७०४ ई० में वह मर गया और कामबख्श १७०६ ई० में उत्तराधिकार-युद्धके दौरान मारा गया।

अपने पूर्वाधिकारियोंकी भाँति औरंगजेबने मुगल साम्राज्यको बढ़ानेके लिए अथक् प्रयास किया। १६६१ ई० में उसने पालामऊको जीतकर अपने साम्राज्यमें मिला लिया। अगले वर्ष सेनापति मीर जुमलाके नेतृत्व-में मुगल सेनाने आसाममें गढ़गाँवपर चढ़ाई बोल दी जो उस समय अहोम राजाओंकी राजधानी थी। अहोम राजाको मुगलोंसे सन्धि करनी पड़ी और वर्तमान दरंग जिलेका काफी बड़ा हिस्सा मुगलोंको देना पड़ा। हर्जानेकी बड़ी रकमके अलावा सालाना नजराना देनेकी शर्त भी उसे माननी पड़ी। १६६६ ई० में मुगलोंने बंगालकी खाड़ीके संद्वीप और चटगाँवको जीत लिया। १६६७ ई० में पश्चिमोत्तर सीमापर अफगानोंने विद्रोह कर दिया, उसे १६७५ ई० तक दबा दिया गया। औरंगजेबके दरबारमें मक्काके शरीफ और फारसके शाह, बलख, बुखारा, कासगर, खीवा और अबीसीनिया जैसे दूरवर्ती मुस्लिम देशोंके राजदूत उपस्थित रहते थे।

१६७६ ई० में मुगलों और राजपूतोंमें लड़ाई शुरू हो गयी जिसमें मेवाड़के राणाने मारवाड़के राजाका साथ दिया। इस लड़ाईका अन्त १६८१ ई० में दिल्ली और मेवाड़की सन्धिसे हुआ। १६८६ ई० में बीजापुर और १६८६ ई० में गोलकुंडा जीतकर मुगल साम्राज्यमें मिला लिया गया। १६८६ ई० में शिवाजीके पुत्र और उत्तराधिकारी सम्भाजीको मुगलोंने पकड़ कर मार डाला और उसकी राजधानी रायगढ़पर अधिकार कर लिया। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी युवक शाहूको मुगल दरबारमें बंदी बनाकर रखा गया। १६६१ ई० में विजयी औरंगजेबने तंजौर और त्रिचिनापल्लीके हिन्दू राजाओं-को खिराज देनेके लिए बाध्य किया। इस प्रकार मुगल साम्राज्य दक्षिणतक फैल गया।

इन विजयोंके बावजूद सम्राट् औरंगजेब मुगलोंका अन्तिम बड़ा बादशाह हुआ और दक्षिणके बुरहानपुरमें १७०७ ई० में अपनी मृत्युके पहले औरंगजेबके सामनेही मुगल साम्राज्यका विघटन शुरू हो गया। औरंगजेबने बहुतसे क्षेत्रोंको अपने साम्राज्यमें मिला लिया था जिससे वह इतना विशाल हो गया था कि उसको एक व्यक्ति द्वारा एक केन्द्रसे शासित करना दुःसाध्य था। जैसा सर यदुनाथ सरकारने लिखा है, "एक अजगरकी भाँति मुगल साम्राज्यने इतना अधिक क्षेत्र लील लिया कि उसको वह हजम नहीं कर सका।" औरंगजेबकी- मृत्युके पहले १६६७–७५ ई० के बीच अफगानोंसे युद्धके परिणाम-स्वरूप सल्तनतकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी। राजनीतिक दृष्टिसे भी अफगानोंसे युद्ध बड़ा मंहगा पड़ा। इसके बाद ही बादशाहको राजपूतोंसे युद्ध करना पड़ा और वह उनके विरुद्ध पठान सैनिकोंका इस्तेमाल नहीं कर सका। इसके परिणामस्वरूप शिवाजी (१६२७–८० ई०) के विरुद्ध मुगल साम्राज्यके पूरे साधनोंका इस्तेमाल नहीं हो सका जो दक्षिणमें स्वतंत्र मराठा राज्यकी स्थापना कर रहा था। मथुरा और उसके पड़ोसके क्षेत्रोंमें १६६६ ई० में जाटोंने विद्रोहका झंडा फहरा दिया। इसके बाद १६७१ ई० में बुंदेल खंड और मालवामें विद्रोह हुए। पटियाला रियासतके नारनौल-में सतनामियोंने और अलवरके क्षेत्रमें मेवातियोंने १६७२ ई० में विद्रोह कर दिए। इन सभी विद्रोहोंका सख्तीसे दमन किया गया, लेकिन इनसे यह तो प्रकट ही हो गया कि मुगल साम्राज्यके विरुद्ध जनतामें व्यापक रूपसे रोष फैल रहा था। पंजाबमें सिख शक्तिशाली होते जा रहे थे। औरंगजबके आदेशसे सिखोंके गुरू

तेगबहादुरको इस्लाम धर्म स्वीकार न करनेपर फाँसी दे दी गयी। इस नृशंस कार्यसे सिखोंमें बदला लेनेकी भावना भड़क उठी और वे मुगल साम्राज्यके शत्रु बन गये। आसाममें अहोमोंपर १६६३ ई० में जो सन्धि थोपी गयी थी, उसको तोड़कर उन्होंने १६७१ ई० में अपने उन सब इलाकोंको वापस ले लिया जिन्हें उनसे छीन लिया गया था। सम्भाजीको फांसी देने और शाहूको बंदी बना लेनेसे मराठोंकी राष्ट्रीय आकांक्षाओंको नष्ट नहीं किया जा सका और उन्होंने पहले सम्भाजीके भाई राजाराम और उसकी मृत्युके बाद उसकी विधवा ताराबाईके नेतृत्वमें मुगलोंके विरुद्ध अपना संघर्ष जारी रखा और अपनी खोयी हुई अधिकांश भूमिको औरंगजेबके जीवन-कालमें ही वापस ले लिया। उन्होंने यह दिखा दिया कि औरंगजेब मराठोंका दमन नहीं कर सकता है। १६८१ से १७०७ ई० तक औरंगजेबने दक्षिणमें जो सैनिक अभियान चलाया, उससे उसको उतनी ी आर्थिक क्षति उठानी पड़ी, ।जतनी नैपोलियनको स्पेनके अभियानमें उठानी पड़ी थी। इसी प्रकार १६७६—८० ई० के राजपूत-युद्धमें यद्यपि औरंगजेबकी विजय हुई तथापि उससे यह तो प्रकट ही हो गया कि औरंगजेबने राजपूतोंका वह समर्थन खो दिया है जिसे अकबरने अपने विवेकसे प्राप्त किया था और जिनकी शक्तिके आधारपर मुगल साम्राज्यकी शक्ति बढ़ी थी। औरंगजेबने अपने प्रपितामहकी नीति पूरे तौरसे त्याग दी। अकबरकी नीतिके प्रतिकूल उसने मजहबको सल्तनतके ऊपर कर दिया और अपनी शाही ताकतका प्रयोग न तो अपने व्यक्तिगत लाभके लिए, न अपने खानदानके लाभके लिए और न अपनी रियायाके लाभके लिए वरन् इस्लामके प्रसारके लिए किया। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था और उसने कुरानकी शिक्षाओंके अनुसार अपने जीवनको ढालने तथा हुकूमत चलानेका प्रयास किया। वह ईमानका इतना पक्का था कि उसने मजहबके मामलेमें अपनेको, अथवा अपने खानदानको कभी नहीं बख्शा। उसने खान-पान और पोशाकके मामलेमें कुरानकी शिक्षाओंका पालन किया और एक पक्के मुसलमानकी तरह जीवन बिताया। उसने विरासत-में मिली अपनी सल्तनतको 'दारुल इस्लाम' (इस्लामी राज्य) बनानेका प्रयास किया। इस नीतिके परिणाम-स्वरूप ही उसने हिन्दुओंके प्रति असहिष्णुताकी नीति अपनायी और उनका दमन किया। हिन्दुओंपर उसने १६७६ ई० में फिरसे 'जजिया' लगा दिया, जिसे अकबरने १५६४ ई० में उठा लिया था। उसने सल्तनतके ऊँचे पदोंपर हिन्दुओंको नियुक्त करना बन्द कर दिया और उनके ऊपर करोंका बोझ बढ़ा दिया। उसने हिन्दुओंको नये मंदिर बनानेसे रोक दिया और बहुतसे पुराने मंदिरों-को तोड़ डाला, जिनमें मथुराका केशवदेवका मंदिर और बनारसका विश्वनाथका मंदिर भी था। उसने मारवाड़के राजा जसवन्त सिंहके नाबालिग लड़केको जबरन अपने कब्जेमें करके उसे मुसलमान बनानेकी कोशिश की। उसने हिन्दुओंके लिए अपमानजनक कानून कायदे बनाये और हिन्दू देवी-देवताओंकी मूर्तियोंको मसजिदोंकी सीढ़ियोंके नीचे रखवाया ताकि उनपर मुसलमानोंके पैर पड़ें।

औरंगजेबने यद्यपि लगभग आधी शताब्दी (१६५८—१७०७ ई०) तक शासन किया, तथापि वह इस खतरेको नहीं देख सका कि फिरंगियोंकी ताकत बढ़ती जा रही है। फिरंगियोंने उसके शासनकालमें भारतके विभिन्न भागोंमें अपनी बस्तियाँ स्थापित कर ली थीं। औरंगजेब इस बातको समझ नहीं सका कि इन फिरंगियोंकी ताकत बढ़नेसे सल्तनतको खतरा पहुँचेगा। उसने समुद्री मार्गोंसे फिरंगियोंको आनेसे रोकनेके लिए एक शक्तिशाली जंगी बेड़ा बनानेकी आवश्यकता नहीं महसूस की। अत-एव इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं कि उसकी मृत्युके आधी शताब्दीके बाद ही फिरंगियोंकी ही एक कौमने बड़ी चालाकी और मक्कारीके साथ हिन्दुओंके असंतोष, मुगलोंके अधीनस्थ मुसलमान सूबेदारोंकी स्वतंत्र शासक बन जानेकी महत्त्वाकांक्षा तथा हिन्दुस्तानियोंकी आपसी फूटसे लाभ उठाकर मुगल वंशको समाप्त कर दिया और उसके स्थानपर भारतमें अंग्रेजी राज्यकी स्थापना कर दी। मुगलोंमें जो बड़े-बड़े बादशाह हुए, उनमें औरंगजेब अंतिम था। **(जे० एन० सरकार—हिस्ट्री आफ औरंगजेब, खंड १-४; एडवर्ड्स एण्ड गैरेट—मुगल रूल इन इंडिया; ईलियट एण्ड डासन, खंड ७, पृ० २११—५३३ पर काफी खां लिखित मुंतखाब-उल-लुबाब)**

क

कंदर्पनारायण—बंगाल प्रांतपर सोलहवीं शताब्दीमें शासन करनेवाले बारह भूमियाँ लोगोंमेंसे एक। उसका इलाका चंद्रद्वीप कहलाता था जो आधुनिक बाकरगंज जिलेके समतुल्य था। बाकरगंज अब बंगला देशमें है। दीर्घ-

कालीन प्रतिरोधके बाद उसे बादशाह अकबरकी अधीनता स्वीकार कर लेनी पड़ी।

कंदहार (अथवा कंधार)–अफगानिस्तानका दूसरा बड़ा नगर। सामरिक दृष्टिसे यह महत्त्वपूर्ण है क्योंकि भारतसे अफगानिस्तान जानेवाली रेलवे लाइन यहींपर समाप्त होती है। यह नगर महत्त्वपूर्ण मंडी भी है। पूर्वसे पश्चिम-को स्थलमार्गसे होनेवाला अधिकांश व्यापार यहींसे होता है। कंदहारमें सोतोंके पानीसे सिंचाईकी अनोखी व्यवस्था है। जगह-जगह कुएं खोदकर उनको सुरंगसे मिला दिया गया है।

कंदहारका इतिहास उथल-पुथलसे भरा हुआ है। पाँचवीं शताब्दी ई० पू० में यह फारसके साम्राज्यका भाग था। लगभग ३२६ ई० पू० में मकदूनियाके राजा सिकंदरने भारतपर आक्रमण करते समय इसे जीता और उसके मरनेपर यह उसके सेनापति सेल्यूकसके अधिकारमें आया। कुछ वर्ष बाद सेल्यूकसने इसे चंद्रगुप्त मौर्य (दे०) को सौंप दिया। यह अशोकके साम्राज्यका एक भाग था। उसका एक शिलालेख हालमें इस नगरके निकट मिला है। मौर्यवंशके पतनपर यह बैक्ट्रिया, पार्थिया, कुषाण तथा शक राजाओंके अंतर्गत रहा।

दसवीं शताब्दीमें यह अफगानोंके कब्जेमें आ गया और मुसलिम राज्य बन गया। ग्यारहवीं शताब्दीमें सुल्तान महमूद, तेरहवीं शताब्दीमें चंगेज खां तथा चौदहवीं शताब्दीमें तैमूरने इसपर अधिकार कर लिया। १५०७ ई० में इसे बाबरने जीत लिया और १६२५ ई० तक दिल्लीके मुगल बादशाहोंके कब्जेमें रहा। १६२५ ई० में फारसके शाह अब्बासने इसपर दखल कर लिया। शाहजहाँ और औरंगजेब द्वारा इसपर दुबारा अधिकार करनेके सारे प्रयत्न विफल हुए। कंदहार थोड़े समय (१७०८–३७ ई०) को छोड़कर १७४७ ई० में नादिरशाह-की मृत्युके समय तक फारसके कब्जेमें रहा। १७४७ ई० में अहमदशाह अब्दाली (दे०) ने अफगानिस्तानके साथ-साथ इसपर भी अधिकार कर लिया। किन्तु, उसके पौत्र जमानशाह (दे०) की मृत्युके बाद कुछ समयके लिए कंदहार काबुलसे अलग हो गया। १८३९ ई० में ब्रिटिश भारतीय सरकारने शाहशुजा (दे०) की ओर-से युद्ध करते हुए इसपर दखल कर लिया और १८४२ ई० तक अपने कब्जेमें रखा। ब्रिटिश सेनाने १८७९ ई० में इसपर फिर दखल कर लिया, किन्तु १८८१ ई० में खाली कर देना पड़ा। तबसे यह अफगानिस्तानके राज्यका एक भाग है।

कम्पनी-राजकी सिविल सर्विस (बादको 'इंडियन सिविल सर्विस')–वह प्रशासकीय सेवा, जिसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी-ने भारतमें अपना प्रशासन चलानेके लिए चालू किया था। इसका आरम्भ अत्यन्त छोटे रूपमें हुआ। व्यापारियोंकी संस्थाके रूपमें कम्पनीने अपनी सेवामें अंग्रेज युवकोंको लिपिकके पदपर नियुक्त किया। ये ब्रिटिश युवक आम तौरसे डायरेक्टरों द्वारा मनोनीत होते और कम्पनीके शेयरहोल्डरोंसे रिश्तेदारीके आधारपर चुने जाते थे। उनकी उम्र २० वर्षसे कम होती। उन्हें स्कूली शिक्षा या तो बिल्कुल मिली ही न होती या बहुत कम मिली होती। उनका वेतन भी बहुत कम होता था। १७५७ ई० में पलासी युद्धके बाद जब कम्पनीके आधिपत्यमें भारतका काफी बड़ा क्षेत्र आ गया तो उसने नवविजित क्षेत्रोंका प्रशासन अपने इन लिपिकोंके सुपुर्द कर दिया। इन नव-नियुक्त अफसरोंने जबरदस्त भ्रष्टाचार और बेईमानी शुरू कर दी, अतः कम्पनीने उनसे एक करार (कावेनेंट) पर हस्ताक्षर करनेको कहा, जिसमें कम्पनीकी सेवा ईमान-दारी और सचाईके साथ करनेका वचन मांगा गया था। इसी आधारपर अंग्रेजीमें इस करारशुदा सेवाको 'कावेनेंटेड सिविल सर्विस' कहा जाने लगा। बंगालमें लार्ड क्लाइवके दूसरी बारके प्रशासनकालमें कम्पनीने पहली बार अपने अफसरोंको उक्त करार करनेको बाध्य किया। अफसरों-ने शुरूमें तो इस नयी व्यवस्थाका विरोध किया किन्तु अंततः उन्हें झुकना पड़ा। लार्ड कार्नवालिसके प्रशासन-कालमें यह कावेनेंटेड सिविल सर्विस (करारवाली सिविल सेवा) भारतमें कम्पनीके प्रशासन तंत्रका एक नियमित अंग बन गयी।

लार्ड कार्नवालिसने इस सेवामें सिर्फ अंग्रेजोंको ही भर्ती किया और उनके वेतन भी काफी बढ़ा दिये। कम्पनीके अंतर्गत सभी महत्त्वपूर्ण सिविल पदोंपर अंग्रेजोंकी नियुक्ति होती और जिला कलेक्टरों, मजिस्ट्रेटों, जजोंके पदोंपर तो जैसे उनका एकाधिकार हो गया। बादको जब विभागीय सचिवों और राजनयिक एजेंटोंके पद चालू किये गये तो उनपर भी अंग्रेजोंकी ही नियुक्ति की गयी। लार्ड वेलेस्लीने कावेनेंटेड सिविल सर्विसके सदस्योंका बौद्धिक स्तर ऊँचा उठानेके लिए एक निश्चित अवधि तक उनके प्रशिक्षणकी व्यवस्था की। इसके लिए उसने कलकत्तामें फोर्ट विलियम कालेजकी स्थापना की। किन्तु १८०५ ई० में यह कालेज बंद करना पड़ा, क्योंकि इसपर होनेवाले खर्चपर कम्पनीने ऐतराज किया। इसके बादके पचास वर्षोंमें कावेनेंटेड सिविल सर्विसके रंगरूटोंको

लंदनके हेलेबरी कालेजमें प्रशिक्षण दिया जाता रहा। इनमेंसे कुछ रंगरूट तो वास्तवमें अत्यन्त योग्य और सफल प्रशासक सिद्ध हुए, किन्तु सामान्य तौरसे औसत सदस्योंमें बहुत कमियाँ पायी जाती थीं, क्योंकि कावेनेंटेड सिविल सर्विसमें कम्पनीके डायरेक्टरों द्वारा नामजद लोगोंकी भर्ती होती थी, जिन्हें योग्य प्रशासक बननेके लिए अपेक्षित शिक्षा बिल्कुल नहीं प्राप्त थी। फलतः स्वयं इंग्लैण्डमें ही यह मांग उठी कि सर्वोत्तम और सर्वाधिक मेधावी ब्रिटिश युवकोंको ही प्रशासक बनाकर भारत भेजा जाना चाहिए।

अतः १८५३ ई० में कावेनेंटेड सिविल सर्विसमें, जो अब 'इंडियन सिविल सर्विस'के नामसे पुकारी जाने लगी, प्रवेश सार्वजनिक प्रतियोगिताके माध्यमसे सबके लिए खोल दिया गया। १८५५ ई० में लंदनमें बोर्ड आफ कंट्रोलकी देख-रेखमें पहली सार्वजनिक प्रतियोगिता हुई। सन् १८५८ से यह प्रतियोगिता सिविल सर्विस कमिश्नरोंकी देखरेखमें होने लगी। इस प्रकार इंडियन सिविल सर्विसमें सभी मेधावी ब्रिटिश युवकोंके लिए प्रवेशका द्वार खुल गया, लेकिन चार्टर एक्ट, १८३२ ई० (दे०) और १८५८ ई० में महारानीके घोषणापत्र (दे०) के बावजूद भारतीय अब भी प्रवेशसे वंचित रहे। १८६४ ई० में पहली बार एक भारतीय (महाकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुरके बड़े भाई सत्येन्द्र नाथ ठाकुर) लंदनमें हुई इण्डियन सिविल सर्विसकी प्रतियोगितामें सफल हुआ और उसने इंडियन सिविल सर्विसमें स्थान प्राप्त किया। किन्तु इंडियन सिविल सर्विसमें भारतीयोंका प्रवेश अत्यल्प रहा और १८७६में अधिकतम उम्र २३ वर्षसे घटा कर १९ वर्ष कर देनेसे यह प्रवेश असंभव, नहीं तो और अधिक कठिन अवश्य बना दिया गया।

बहरहाल, इस समय तक भारतमें पाश्चात्य शिक्षाका प्रसार हो गया था, इसलिए भारतीय विश्वविद्यालयोंके नये स्नातकों द्वारा इंडियन सिविल सर्विसमें प्रवेशकी अधिक सुविधाएं माँगना स्वाभाविक था। भारतीयोंने यह माँग करना शुरू किया कि इंडियन सिविल सर्विसमें प्रवेशके लिए लंदनके साथ ही साथ भारतमें भी एक प्रतियोगिता परीक्षा होनी चाहिए और प्रवेशकी अधिकतम उम्र पहलेकी तरह २३ वर्ष कर दी जाये। बादमें इस मांगपर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने भी जोर दिया और शुरूके प्रायः सभी अधिवेशनोंमें इस माँगको दोहराया। लेकिन इसे बराबर नजरंदाज किया जाता रहा।

१८७८ ई० में भारतीय मांगको टालनेके लिए एक नयी सेवा आरम्भ की गयी जिसे 'स्टेट्यूटरी सिविल सर्विस'का नाम दिया गया और इसमें भारतीयोंकी भर्ती की गयी। इस सेवाके लोग कम महत्त्ववाले कुछ ऊंचे पदोंपर विशेष रूपसे न्यायिक पदोंपर, नियुक्त किये गये और उन्हें एकसे पदोंपर कार्य करनेके बावजूद इंडियन सिविल सर्विसके सदस्योंके मुकाबले दो-तिहाई वेतन दिया जाता रहा। इसलिए इस सेवासे भी भारतीय माँग संतुष्ट नहीं हुई और १८८५ ई० में इस सेवाको समाप्त कर दिया गया। उम्रकी सीमा १८८९ ई० में बढ़ाकर २३ वर्ष कर दी गयी किन्तु इंडियन सिविल सर्विसमें प्रवेशके लिए भारतमें भी प्रतियोगिता परीक्षा करानेकी माँग १९२२ ई० तक नहीं मानी गयी। ब्रिटेन और भारत दोनों ही सरकारोंका भरसक प्रयास अब भी यही रहा कि इंडियन सिविल सर्विस सेवामें बाहुल्य अंग्रेजोंका ही बना रहे।

प्रधान मंत्री लायड जार्जने अगस्त १९२२ में कामन सभा (हाउस आफ कामन्स) में किये गये एक भाषणमें इंडियन सिविल सर्विसके अंग्रेज नौकरशाहोंको भारतीय संवैधानिक ढाँचेका 'इस्पाती चौखटा' कहा और भविष्य-वाणी की कि "अगर आप इस इस्पाती चौखटेको हटा लें तो पूरा ढांचा ही ढह जायेगा।" किन्तु पचीस वर्षों बाद इस इस्पाती चौखटेके बने रहनेपर भी ढांचा ढह पड़ा।

असलियत यह थी कि इंडियन सिविल सर्विसके ब्रिटिश सदस्योंने भारतके विकास और यहाँ तक कि उसके राज-नीतिक भविष्यके विकासमें भी निस्संदेह महत्त्वपूर्ण योग दिया, किन्तु वे अपनेको भारतका अंग कभी न बना पाये। वे भारतके लिए बहुत मंहगे थे। उन्होंने आम तौरसे भारतीयोंको अपनेसे नीचा समझा। अपने अस्तित्वको बचानेके लिए उनका अंतिम प्रयास अत्यन्त घृणित था। उन्होंने भारतमें साम्प्रदायिक तनाव इस हद तक बढ़ा दिया कि अगस्त १९४७ में आखिरकार जब उन्हें परिस्थितियोंने भारत छोड़नेको विवश कर दिया तो वे उसे दो टुकड़ोंमें बँटा हुआ और लहू-लुहान छोड़कर गये।
(एन० सी० राय कृत दि सिविल सर्विस इन इंडिया)

कठिओई—(कठ) एक गण जो पंजाबमें चिनाव और रावी नदियोंके बीचमें रहता था। उसकी राजधानी सांगल थी, जो सम्भवतः आधुनिक गुरुदासपुर जिलेमें स्थित थी। मकदूनियाके राजा सिकंदरने ३२६ ई० पू० में अपने आक्रमणके समय इस गणराज्यको भी हराया था।

कड़ा—इलाहाबाद जिलेका एक नगर। यहाँ सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी (दे०) १२९६ ई० में अपने भतीजे

एवं दामाद अलाउद्दीन खिलजी (दे०) के हाथों मारा गया।

कण्व (अथवा काण्वायन) वंश–लगभग ७३ ई० पू० शुंग-वंशके बाद मगधका शासनकर्ता। इसका संस्थापक वासुदेव शुंग-वंशके अंतिम राजा देवभूतिका ब्राह्मण अमात्य था। कण्व-वंशमें उसके संस्थापक सहित चार राजा हुए जिन्होंने पैंतालीस वर्ष तक राज्य किया। उसके अंतिम राजा सुशर्माको लगभग २८ ई० पू० में आंध्र वंशके संस्थापक सिमुकने मार डाला।

कथावत्थु–पालि भाषाका एक प्रसिद्ध बौद्ध टीका ग्रन्थ। प्रो० र्हाइस डेविसने इसका रचनाकाल अशोकका राज्य-काल (लगभग २७३–२३२ ई० पू०) माना है।

कथासरित्सागर–सोमदेव कविकी १०६३ और १०८१ ई० के बीचकी रचना। इसमें भारतीय वणिक-पुत्रों द्वारा दक्षिण-पूर्व एशियाके समुद्रोंमें साहसिक यात्राएँ करनेके अनेक वर्णन मिलते हैं।

कदफिसस प्रथम–पूरा नाम कुजल-कर-कदफिसस, कुषाण वंशका पहला राजा। वह सम्भवत: ४० ई० में गद्दीपर बैठा तथा लगभग ३७ वर्ष तक राज्य किया। उसने अपने राज्यका विस्तार बैक्ट्रियासे आगे अफगानिस्तानमें तथा भारतके उत्तर-पश्चिमी सीमा क्षेत्रमें सिंधु नदीके उस पार तक किया।

कदफिसस द्वितीय–कदफिसस प्रथम (दे०) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। उसने कुषाण साम्राज्यका विस्तार सारे उत्तरी भारतमें किया। बहुतसे लोगोंका विचार है कि उसीने ७८ ई० में अपने राज्यारोहणके उपलक्ष्यमें शक संवत् (दे०) प्रचलित किया। उसका साम्राज्य पूर्वमें बनारस तथा दक्षिणमें नर्मदा तक फैला हुआ था। उसमें मालवा तथा पश्चिमी भारत भी सम्मिलित था, जहाँ-के शक क्षत्रप (दे०) उसे अपना स्वामी मानते थे। ८७ ई० में उसने चीनी सम्राट्से बराबरीका दावा किया और अपने साथ एक चीनी राजकुमारीका विवाह-सम्बन्ध कर देनेकी माँग की। जब उसकी यह माँग स्वीकार नहीं की गयी तो उसने पामीरके मार्गसे चीनपर हमला करनेके लिए एक बड़ी सेना भेजी। परन्तु उसकी सेना हार गयी और कदफिसस द्वितीयको चीनसे संधि कर लेनी पड़ी। इस संधिके द्वारा उसने चीनको वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया। कदफिसस द्वितीयके विभिन्न प्रकारके सिक्के बहुत अधिक संख्यामें मिलते हैं। इससे सूचित होता है कि उसने दीर्घकाल तक राज्य किया। उसका राज्यकाल सम्भवत: ११७ ई० के आसपास समाप्त हुआ।

कनकमुनिका स्तूप–उत्तर प्रदेशमें बस्ती जिलेमें निग्लीव गाँवके पास स्थित। सम्राट अशोक दोबार इस स्तूपका दर्शन करने गया था—पहली बार अपने राज्याभिषेक-के चौदहवें वर्षमें और दूसरी बार बीसवें वर्षमें। पहली बार जब वह स्तूपका दर्शन करने गया तो उसने उसका विस्तार कराकर आकार पहलेसे दूना करवा दिया। दूसरी बार जब वह उसके दर्शन करने गया तो उसने वहाँ एक प्रस्तर-स्तम्भ स्थापित कराया।

कनारा–पश्चिमी मैसूरमें एक पतली पट्टी, जो उसे समुद्रतट-से अलग करती है। १७९९ ई० में इसे ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया।

कनिंघम, जनरल जोसेफ डेवी (१८१२–१८५१)–१८३४ ई० में बंगाल इंजीनियर्समें एक अधिकारी बनकर आया। वह सर अलेक्जैण्डर कनिंघम (दे०) का बड़ा भाई था। उसने पंजाबमें विभिन्न स्थानों और पदोंपर कार्य किया तथा रणजीतसिंह और अमीर दोस्त मोहम्मदके साथ हुए वार्ता-प्रसंगके समय भी मौजूद था। उसने १८४६ ई० के प्रथम सिखयुद्ध (दे०) में भाग लिया और अलीवाल तथा सुबराहानकी लड़ाइयाँ भी देखीं। इस प्रकार उसे पंजाब और पंजाबियोंको जाननेका पर्याप्त अवसर मिला। वह एक उदारमना व्यक्ति और उच्चकोटिका इतिहासकार भी था। उसके द्वारा लिखा गया सिखोंका इतिहास अपने विषयका आधिकारिक और प्रामाणिक ग्रन्थ है, लेकिन इस प्रकाशनने उसे संकटमें डाल दिया। इस विषयपर उसके सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण और इस स्पष्टवादिताने कि प्रथम सिखयुद्धमें अंग्रेजोंने दो सिख जनरलोंको फोड़ लिया था, उसके अफसरोंको नाराज कर दिया और विशेष महत्त्वके राजनीतिक पदोंसे हटाकर उसको साधारण काम सौंप दिया गया। १८५१ ई० में अम्बालामें उसकी मृत्यु हो गयी।

कनिंघम, सर अलेक्जेण्डर (१८१४–९३ ई०)–प्रसिद्ध पुरातत्त्वान्वेषक, जो १८३३ ई० में एक सैन्य शिक्षार्थीकी हैसियतसे भारत आया। वह १८३६ ई० में गवर्नर-जनरल लार्ड आकलैण्डका अंगरक्षक हो गया। १८३६ ई० में ही वह सेनाकी इंजीनियरिंग शाखामें चला गया और १८४६ ई० के प्रथम सिखयुद्ध (दे०) में फील्ड इंजीनियर हो गया। उसने दूसरे सिखयुद्ध (दे०) (१८४८–४९ ई०) में और चिल्लियाँवालाकी लड़ाईमें भी भाग लिया। वह १८५६ से ५८ ई० तक बर्मामें मुख्य अभियंता (चीफ इंजीनियर) रहा और इसके बाद इसी पदपर पश्चिमोत्तर प्रांतमें भी नियुक्त हुआ। १८६१ ई० में रिटायर होनेके

बाद फौरन ही वह भारत सरकारका पुरातत्त्व-सर्वेक्षक बना दिया गया। १८७० ई० में वह विभागका निदेशक हो गया और १८८५ ई० में भारतसे वापस जानेतक इसी पदपर बना रहा। अवकाश-ग्रहणके बाद उसने प्राचीन मुद्रा-शास्त्रपर विशेष ध्यान दिया और वह इस विषयका अधिकारी विद्वान् माना जाता था। उसकी मृत्यु १८९३ ई० में हुई। उसके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंमें 'भिलसा टोप्स', 'दि एंशियेण्ट ज्यागरफी आफ इंडिया', 'कार्पस् इंस्क्रिप्शनम इंडिकेरम' (खण्ड प्रथम), 'दि स्तूप आफ भरहुत' और 'दि बुक आफ इंडियन एराज' विशेष उल्लेखनीय हैं। भारतीय पुरातत्त्व-शास्त्रमें उसके योगदानसे हमें प्राचीन भारतीय इतिहासकी बहुत अधिक जानकारी मिली है। प्राचीन भारतीय इतिहासके छात्रोंके लिए सर अलैक्जैण्डर कनिघम-की पुस्तकें आज भी अत्यधिक महत्त्व रखती हैं।

कनिष्क—कदफिसस प्रथम (दे०) द्वारा स्थापित कुषाण राजवंशका सबसे प्रसिद्ध राजा। कनिष्कका काल अत्यंत विवादास्पद रहा है। कुछ विद्वानोंके मतानुसार उसका शासनकाल ७८ ई० में आरम्भ हुआ, जिस कालमें शक संवत् प्रचलित हुआ। अन्य मतके अनुसार वह दूसरे कुषाण राजा कदफिसस द्वितीयकी मृत्युके दस वर्ष बाद लगभग १२० ई० में सिंहासनपर बैठा। कदफिसस द्वितीयके साथ उसका सम्बन्ध ज्ञात नहीं है। उसके पिताका नाम वाझेष्क था, परन्तु वह गद्दीपर नहीं बैठा। कनिष्ककी राजधानी पुरुषपुर अथवा पेशावर थी। वहाँ उसने बहुत-सी इमारतें बनवाकर नगरको सुन्दर बनाया। उसके साम्राज्यमें गंधार (पूर्वी अफगानिस्तान), कश्मीर तथा सिंधु और गंगाका मैदान सम्मिलित थे। उसने एक सेना भेजकर पामीरके उस पार चीनी तुर्किस्तानपर चढ़ाई की और खोतन, यारकंद तथा काशगरके सरदारोंको हराया। ये सरदार अभी तक चीनी सम्राट्के अधीन थे। कनिष्कने इनमेंसे कुछको विवश किया कि वे उसके दरबारमें अपने पुत्रोंको बंधकके रूपमें भेजें। उसने लम्बे समयतक, सम्भवत: २४ वर्ष, १२० ई० से १४४ ई० तक शासन किया। उसका नाम कई शिलालेखोंपर अंकित है। उसके विविध प्रकारके सिक्के मिलते हैं, जिनपर जरथुस्त्री, यूनानी, मिहिर तथा शिव, बुद्ध आदि भारतीय देवताओंके चित्र अंकित हैं। इससे संकेत मिलता है कि कनिष्क सभी धर्मोंके प्रति आदरभाव रखता था। बौद्ध अनुश्रुतियोंके अनुसार वह बौद्ध धर्मका पक्का अनुयायी था और उसने बौद्धोंकी चौथी संगीति आयोजित की थी, जिसमें बौद्ध त्रिपिटकका प्रामाणिक भाष्य तैयार किया गया। यह भाष्य ताम्रपत्रोंपर उत्कीर्ण कराया गया और उनको कश्मीरके कुंडलवन बिहारमें, जहाँ चौथी संगीति हुई, एक स्तूप बनवाकर उसमें सुरक्षित रख दिया गया। इस संगीतिमें मुख्य रूपसे हीनयान सम्प्रदायके अनुयायियोंने भाग लिया, परन्तु महायान निकाय भी उस समयतक काफी प्रबल हो चुका था और अश्वघोष, नागार्जुन, वसुमित्र आदि प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य, जिनको कनिष्कका संरक्षण प्राप्त था, इसी सम्प्रदायके अनुयायी थे। कनिष्क विद्वानोंका आश्रयदाता था। प्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्य चरक उसका राजवैद्य था। कनिष्क विशाल भवनोंका महान निर्माता और मूर्ति एवं वास्तुकलाका प्रेमी था। उसने पेशावरमें बुद्धके अवशेषोंपर ४०० फुट ऊँचा स्तूप बनवाया। उसने तक्षशिला नगरका एक नया भाग बन-वाया जो सिरसुख कहलाता था। उसने कश्मीरमें अपने नामपर नया नगर बसाया, मथुरामें वास्तुकलाकी कई सुन्दर कृतियोंका निर्माण कराया। सम्भवत: गांधार कला (दे०) का विकास उसीके राज्यकालमें हुआ। उसने गंधारके बाहरके शिल्पियोंको भी अपना संरक्षण प्रदान किया। उसके साम्राज्यके अंतर्गत सारनाथ तथा मथुरामें तथा दक्षिणमें कृष्णा नदीके तटपर स्थित अमरावतीमें वास्तुकलाकी नयी शैलियाँ विकसित हुईं। वास्तवमें भारतीय कला, संस्कृति तथा सभ्यताके विकासमें कनिष्कने विदेशी होते हुए भी इतना अधिक योगदान किया कि उसे प्राचीन भारतके सबसे महान् राजाओंमें माना जाता है।

कन्नौज—उत्तरी भारतका अत्यंत प्राचीन और प्रसिद्ध नगर। इसका मूल नाम कान्यकुब्ज था, जो ब्राह्मणोंका भी केन्द्रस्थल बन गया था। अब यह एक छोटा-सा नगर है और इसमें अधिकांश मुसलमान रहते हैं। महाभारतमें इसका बार-बार उल्लेख किया गया है। पतंजलिने भी, जो दूसरी शताब्दी ई० पू० में हुए, इसका संकेत किया है। जब चीनी यात्री फाहियेन लगभग ४०५ ई० में इस नगरमें आया तो यहाँ उसे केवल दो बौद्ध विहार मिले। यह उस समय उतना बड़ा नगर नहीं रह गया था जितना ह्यूएन-त्सांगके समय था। वह ६३६ ई० में इस नगरमें आया था और यहाँ सात वर्ष ठहरा। उस समय यह जन-संकुल नगर था, यहाँ सैकड़ों हिन्दू तथा बौद्ध मंदिर थे और गंगाके पूर्वी तटपर लगभग चार मीलतक विहार-ही-विहार थे। नगरमें अनेक मनोरम उद्यान तथा सुन्दर तड़ाग थे और नगर-दुर्गकी रक्षाकी शक्तिशाली व्यवस्था थी। नगरमें इस परिवर्तनका सारा श्रेय महाराजाधिराज

हर्षवर्धन (६०६—६४७ ई०) को प्राप्त था, जिन्होंने इसे राजधानी बनाया। यह नगर अपने ऐश्वर्य और समृद्धिके कारण 'महोदय श्री' कहा जाने लगा था। हर्षवर्धनकी मृत्युके बाद जितने भी हिन्दू राजवंश हुए, उनकी अभिलाषा कन्नौजपर अधिकार करनेकी रहती थी। प्रतिहार राजाओं (८१६—१०९० ई०) ने इसे अपनी राजधानी बनाया और कन्नौज फिर उत्तर भारतका प्रधान नगर बन गया। बंगालके राजा धर्मपाल (दे०) ने इस नगरपर आक्रमण किया और कुछ समयतक बड़े गर्वके साथ इसे अपने अधिकारमें रखा।

इस नगरपर विपत्तियाँ उस समयसे पड़नी शुरू हुई जब १०१८ ई० में सुल्तान महमूदने इसपर चढ़ाई की। उस समयका प्रतिहार राजा अपनी राजधानी कन्नौजसे हटाकर गंगाके दूसरे तटपर स्थित बारी भाग गया। इसका अंतिम प्रतिहार राजा राज्यपाल (दे०) था, जिसे चंदेल राजा गंडने अपदस्थ कर दिया। इसके बाद बारहवीं शताब्दीमें कन्नौज गाहड्वाल राजपूतोंके अधिकारमें आ गया, जो राठौरके नामसे प्रसिद्ध हैं। कन्नौजका अंतिम राठौर राजा जयचंद ११९४ ई० में शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीसे पराजित हुआ और मारा गया। इसके बाद कन्नौजका महत्त्व समाप्त हो गया। शेरशाह सूरी (दे०) ने मुगल बादशाहसे अपनी निर्णयात्मक लड़ाई इस शहरके पास ही १५४० ई० में लड़ी और इसके बाद इस शहरको नष्ट कर दिया। इस शहरमें अब पुरानी इमारतोंके सिर्फ खंडहर बच गये हैं।

कपय नायक—तेलंगानाके हिन्दुओंका नेता। १३३६ ई० में उसने दक्षिण भारतके पूर्वी तटपर एक राज्यकी स्थापना की। बादमें उसने मुसलमानोंका जुआ उतार फेंकने और हिन्दू साम्राज्यकी स्थापना करनेमें विजयनगर राज्यके संस्थापक दो भाइयों हरिहर तथा बुक्क (दे०) के साथ सहयोग किया।

कपिलवस्तु—उत्तर प्रदेशके बस्ती जिलेके उत्तरमें नेपालकी तराईमें स्थित। इसका शाब्दिक अर्थ है 'कपिलका स्थान'। परन्तु, यह पता नहीं है कि इस स्थानका क्या सांख्य दर्शन (दे०) के प्रवर्तक कपिलसे कोई सम्बन्ध था? ऐतिहासिक रूपसे कपिलवस्तु बौद्ध धर्मके संस्थापक गौतम बुद्ध (दे०) के जन्मस्थानके रूपमें प्रसिद्ध है। **(नवीन खुदाईसे प्रमाणित हो गया है कि बस्ती जिलेका पियरहवा नामक स्थान ही प्राचीन कपिलवस्तु था। —संपादक)**

कपिलेन्द्र (अथवा कपिलेश्वर)—एक राजा, जिसने लगभग १४५३ ई० में उड़ीसाके गंग-वंश (दे०) का उच्छेद कर अपना राज्य स्थापित किया। उसने १४७० ई० तक राज्य किया। बहुत ही योग्य और पुरुषार्थी व्यक्ति था। उसने न केवल अपने राज्यके अंदर विद्रोहोंका दमन किया, बल्कि राज्यकी सीमा गंगासे कावेरीतक विस्तृत कर ली। उसने उड़ीसामें एक नये राजवंशकी स्थापना की, जिसमें सबसे प्रसिद्ध राजा पुरुषोत्तम (दे०) (१४७०—९७ ई०) तथा उसका पुत्र प्रतापरुद्र (दे०) (१४९७—१५४० ई०) था। लगभग १५४१ ई० में कपिलेन्द्रके राजवंशको भोई राजवंश (दे०) ने अपदस्थ कर दिया।

कपूर सिंह—पंजाबके फैजुल्लापुरका एक सिख नेता, जो अठारहवीं शताब्दीमें हुआ। बन्दाको फांसी दे दिये जानेके बाद उसने सिखोंका संगठन किया, जो बादमें सिखोंके धर्मराज्य, दल या खालसाके रूपमें विकसित हुआ। पंजाबमें सिखोंका अस्तित्व एक अलग सम्प्रदायके रूपमें बनाये रखनेमें खालसाने बहुत मदद की।

कबाचा, नासिरुद्दीन—एक गुलाम जो शहाबुद्दीन महम्मद गोरीका कृपापात्र बन गया। शहाबुद्दीनने उसे सिंधका सूबेदार नियुक्त कर दिया। वह इतना शक्तिशाली था कि दिल्लीके पहले सुल्तान कुतुबुद्दीन (दे०) ने इसीमें बुद्धिमानी समझी कि उससे अपनी बहिनका ब्याह करके मित्रता स्थापित कर ली। सुल्तान कुतुबुद्दीनकी मृत्युपर कबाचा दिल्लीके तख्तका दावेदार बन गया और इस प्रकार वह कुतुबुद्दीनके दामाद एवं उत्तराधिकारी सुल्तान इल्तुतमिश (दे०) का प्रबल प्रतिद्वन्द्वी सिद्ध हुआ। अंतमें लम्बी लड़ाईके बाद कबाचाने इल्तुतमिशकी अधीनता स्वीकार कर ली।

कबीर—प्रसिद्ध संत, जिन्होंने मनुष्य-मनुष्य तथा हिन्दूधर्म एवं मुसलमान धर्मके बीच एकता स्थापित करनेका उपदेश दिया। उनका जन्मकाल और मृत्युकाल अनिश्चित है, परन्तु सम्भवतः उनका जीवनकाल चौदहवीं शताब्दीका अंतिम भाग तथा पन्द्रहवीं शताब्दीका प्रारम्भिक भाग है। विश्वास किया जाता है कि वे प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य रामानन्दके शिष्य थे, यद्यपि उनका लालन-पालन मुसलमान जुलाहा परिवारमें हुआ था। कबीरने अपने अधिकांश विचार हिन्दू धर्मसे लिये। मुसलमान सूफी संतों तथा कवियोंका भी उनपर भारी प्रभाव था। कबीरने प्रेमके पंथका उपदेश दिया जिसमें विभिन्न जातियों और धर्मोंमें कोई भेदभाव नहीं किया जाता। उनके लिए हिन्दू और तुरुक एक ही मिट्टीके पुतले थे और अल्लाह और राम एक ही ईश्वरके दो नाम। कबीर हिन्दू और इसलाम धर्मके कर्मकांड अथवा बाह्याडम्बरोंमें विश्वास नहीं

करते थे। उनका मत था कि जो हरिको भजता है वह उसीका हो जाता है। उनका मत था कि ईश्वर-प्राप्तिका मार्ग हिन्दुओं और मुसलमानोंके लिए एक है और वह है ईश्वरकी भक्ति करना तथा छल-कपट, झूठ तथा पाखंड-से दूर रहना।

कमरुद्दीन—बादशाह मुहम्मद शाह (१७१९–४८ ई०) (दे०) का वजीर और एक योग्य अधिकारी। अहमद शाह अब्दालीने १७४८ ई० में जब भारतपर पहला आक्रमण किया तो कमरुद्दीनने शाहजादा अहमदको उस आक्रमणको विफल करनेमें सहायता दी। परन्तु पंजाबमें सतलजके तटपर सरहिन्दमें जो लड़ाई हुई तथा जिसमें अब्दाली हारा, उसमें कमरुद्दीन मारा गया।

कमला देवी—गुजरातके राजा कर्णदेव द्वितीय (दे०) की रानी। १२९७ ई० में उसका पति अलाउद्दीन खिलजीकी सेनासे हार गया। फलस्वरूप वह अपनी पुत्री देवलदेवीको लेकर भागी; परन्तु मुसलमानोंने उसको पकड़ लिया और दिल्ली ले गये, जहाँ वह सुल्तानकी चहेती बेगम बन गयी।

कमिश्नर (आयुक्त)—वह सरकारी अधिकारी, जिसके अधीन कई जिलोंको मिलाकर बनाये गये एक मंडल (डिवीजन) का प्रशासन होता है। यह पद १८२९ ई० में प्रचलित हुआ। मूलरूपमें कमिश्नरका काम जिलेके कलक्टरों, मजिस्ट्रेटों और जजोंके कार्यका निरीक्षण करनेके अलावा पुलिस और न्याय विभागका दायित्व संभालना था। किन्तु इतना अधिक काम एक व्यक्तिके लिए बहुत भारी पड़ता था, अतः कमिश्नरको न्याय एवं पुलिस विभागके दायित्वसे मुक्त कर अधीनस्थ जिला कलक्टरोंके कार्यका निरीक्षक मात्र रहने दिया गया। राजस्व सम्बन्धी मामलोंके मुकदमोंका फैसला करना भी उसीकी जिम्मेदारी थी।

कम्बुज देश—आधुनिक कम्बोडियामें भारतीयों द्वारा स्थापित प्राचीन हिन्दू राज्य। जनश्रुतियोंके अनुसार इस राज्य-की स्थापना कौण्डिन्य नामक एक भारतीय ब्राह्मणने की थी। उसने वहाँके स्थानीय नागराजकी पुत्री सोभासे विवाह कर लिया और दूसरी शताब्दी ईसवीमें कम्बुजमें एक राजवंशकी स्थापना की। चीनी लोग इस राज्यको फूनान कहते थे। कहा जाता है कि भारतसे सैकड़ों ब्राह्मण फूनान जाकर बस गये और वहाँके मूल निवासियोंकी कन्याओंसे उन्होंने विवाह कर लिया। फूनान राज्यने भारत तथा चीनमें अपने दूत भेजे। छठीं शताब्दीमें यह देश फूनानके बजाय 'कम्बुज देश' कहलाने लगा। इसका आधुनिक नाम 'कम्बोडिया' इसीके आधारपर पड़ा है। कम्बुज देशके राजाओंके शरीरमें भारतीय रक्त था। वे लगभग नौ शताब्दियों तक इस देशपर बड़े पराक्रमके साथ शासन करते रहे। पन्द्रहवीं शताब्दीमें कम्बुज देशके हिन्दू राज्यको अन्नाम तथा स्यामके लोगोंने नष्ट कर दिया और वह कम्बोडियाका एक छोटा-सा राज्य रह गया। कम्बोडिया अभी कुछ दशकों पहले तक फ्रांसका संरक्षित राज्य था।

कम्बुज देशके जो प्रतापी राजा हुए, उनमें चारका नाम उल्लेखनीय है। वे हैं जयवर्मा प्रथम तथा द्वितीय; यशोवर्मा जिसने यशोधरपुरकी स्थापना की, जिसे अब अंकोरथोम कहते हैं तथा जिसकी विजय-गाथाओंका वर्णन करनेवाले संस्कृत तथा स्थानीय भाषाओंमें कई शिलालेख मिलते हैं; सूर्यवर्मा द्वितीय, जिसने अंकोरवाटका अनुपम मंदिर बनवाया, जो अपनी विशालता तथा सुन्दरताके कारण संसारमें वास्तुकलाकी एक आश्चर्यजनक कृति माना जाता है। कम्बुज देशमें हिन्दू और बौद्ध, दोनों धर्म प्रचलित रहे। बादमें बौद्ध धर्मने अधिक प्राधान्य प्राप्त कर लिया और आधुनिक कम्बोडियामें भी यह धर्म प्रचलित है।

कम्बोज—कश्मीरके दक्षिण-पश्चिममें स्थित प्राचीन जनपद, काफिरिस्तानका कुछ भाग भी उसमें सम्मिलित था। इस देशके निवासी भी 'कम्बोज' कहलाते थे। अशोकके शिलालेखोंमें कम्बोजोंको उसकी प्रजा बताया गया है, जिनके बीच उसने बौद्ध धर्मका प्रचार किया।

कम्बोडिया—देखिये 'कम्बुज'।

कयाल—दक्षिण भारतमें ताम्रपर्णी नदीके तटपर स्थित एक नगर। वेनिसका यात्री मार्कोपोलो इस नगरमें १२८८ ई० तथा १२९३ ई० में दो बार आया था। उसने इसे विशाल नगर बताया है, जो वाणिज्य-व्यवसायका केन्द्र था। इसके पोताश्रय (बंदरगाह) में पश्चिमी तथा पूर्वके चीन जैसे सुदूर देशोंके व्यापारियोंकी भीड़ रहती थी।

करणसिंह—कश्मीरके अंतिम महाराज। अपने पिता द्वारा राज्यका विलयन भारत संघमें कर देनेके बाद वे कुछ समयतक कश्मीरके राजप्रमुख रहे। वे विद्वान् और साहित्यप्रेमी व्यक्ति हैं, उन्होंने गांधीजीपर भी एक पुस्तक लिखी है।

करणसिंह—मेवाड़के राणा अमरसिंह (दे०) का पुत्र और राणा प्रतापसिंहका पौत्र। १६१४ ई०में राणा अमरसिंह मुगलोंके अधीन हो गया और उसके तथा उसके पुत्र करणसिंहने बादशाह जहाँगीरका आधिपत्य स्वीकार कर लिया। जहाँगीर मेवाड़-विजयपर गर्वसे फूला न समाया और उसने करणसिंह तथा उसके पिताकी मूर्तियाँ आगरेके

महलमें स्थापित कीं। करणसिंहको पंचहजारी मनसबदारका पद स्वीकार कर लेना पड़ा और अपने पिताकी मृत्युके बाद वह मुगलोंका अधीनस्थ राजा होकर मेवाड़का शासन करता रहा।

करनालकी लड़ाई—१७३९ ई० में नादिरशाह और मुगल बादशाह मुहम्मद शाह (१७१९–४८ ई०) (दे०) की फौजोंके बीच हुई। नादिरशाहकी फौजें बिना किसी प्रतिरोधके दिल्लीके निकट करनाल तक चढ़ आयीं। इस लड़ाईमें मुगलोंकी जबरदस्त हार हुई, बादशाह मुहम्मद शाह बंदी बना लिया गया, नादिरशाहने अपनी सेनाके साथ दिल्लीमें प्रवेश किया और निर्दयताके साथ मारकाट कर उसे लूटा।

करिकाल—अबतक ज्ञात चोल राजाओंमें सबसे प्राचीन। उसका काल १०० ई० माना जाता है। कहा जाता है कि उसने पुहार नगरकी स्थापना की और कावेरी नदीके किनारे सौ मील लम्बा बांध बनवाया।

करीम खां—पिंढारियों (दे०) का नेता। भारतके गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्स (१८१३–२३ ई०) ने पिंढारियोंपर जो चढ़ाई की, उसके फलस्वरूप उसे १८१८ ई० में अंग्रेजोंके सामने आत्मसमर्पण करना पड़ा। उसे उत्तर प्रदेशमें गावरुपुरमें एक जागीर दे दी गयी, जहाँ वह शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगा।

करेरी, डा० जेमिली—एक इटालियन यात्री, जो शाहंशाह औरंगजेब (१६५८–१७०७ ई०) के शासनकालके अंतिम दिनोंमें भारत आया। १६९५ ई० में जब औरंगजेब कृष्णा नदीके तटपर गलगलामें पड़ाव डाले हुए था, तब डा० जेमिली करेरी उससे मिला था। उसने बूढ़े शाहंशाहके शिविर, उसकी शकल-सूरत, उसके रहन-सहनके ढंगके बारेमें बड़ा दिलचस्प विवरण लिख छोड़ा है।

करोन, फ्रैन्को—भारतमें प्रथम फ्रांसीसी फैक्टरीका संस्थापक। फ्रांसीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भेजे जानेपर वह १६६७ ई०में एक छोटे फ्रांसीसी जहाजी बेड़ेके साथ भारतीय तटपर आया और सूरतमें एक फैक्टरीकी स्थापना की।

करौली राज्य—दक्षिणी राजपूतानेकी एक पुरानी रियासत। लार्ड डलहौजी जब्तीके सिद्धांत (दे०) के अंतर्गत इसे ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लेना चाहता था। परन्तु इंग्लैण्डके उच्च अधिकारियोंने इसकी आज्ञा नहीं दी। उनका मत था कि करौली आश्रित राज्य नहीं है, जिसपर यह सिद्धांत लागू होता हो, बल्कि रक्षित मित्र राज्य है।

कर्क—एक प्रतिहार (दे०) राजा, जिसने ८३७ ई०में मुंगेरमें गौड़ राजासे युद्ध करते हुए ख्याति प्राप्त की।

कर्क द्वितीय—राष्ट्रकूट वंश (दे०) का अंतिम राजा, जिसे ९७३ ई०में तैल चालुक्य (दे०) ने अपदस्थ कर दिया।

कर्कोटक वंश—कश्मीरमें सातवीं शताब्दीमें दुर्लभवर्धनके द्वारा स्थापित। इसने कश्मीरपर ८५५ ई० तक राज्य किया। इसके बाद उत्पल वंशने इसे उखाड़ फेंका। इस वंशके तीन सबसे प्रसिद्ध राजा चन्द्रापीड़ (दे०), मुक्तापीड़ ललितादित्य (दे०) तथा जयापीड़ विनयादित्य (दे०) हुए।

कर्जन, जार्ज नेथानियल (केडिल्सटनका मारक्विस) (१८५९–१९२५)—एटन और आक्सफोर्डमें शिक्षित और १८९९ ई० में भारतका गवर्नर-जनरल नियुक्त। इससे पहले वह मध्य एशियासे कोरिया तक विस्तृत यात्रा कर चुका था और इन यात्राओंके ऊपर उसकी कई पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी थीं। गवर्नर-जनरलके पदपर उसका पहला कार्यकाल १९०४ ई० में समाप्त हुआ। लेकिन उसे दुबारा फिर इसी पदपर नियुक्त कर दिया गया। इस दौरान वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्के सैनिक सदस्यकी स्थितिको लेकर कमाण्डर-इन-चीफ लार्ड किचनरसे उसका मतभेद हो गया। ब्रिटिश सरकारसे भी इस प्रश्नपर समर्थन न मिला, अतः १९०५ में उसने गवर्नर-जनरलके पदसे त्यागपत्र दे दिया। लार्ड कर्जनके कार्यकालकी प्रमुख विशेषता प्रशासनमें किये गये सुधार थे। उसने सीमाप्रांत नामक एक नये प्रांतकी स्थापना की, जिसका उद्देश्य उस क्षेत्रकी विद्रोही जन-जातियोंपर अच्छी तरहसे नियंत्रण रख सकना था। फिर भी उसे १९०१ में वजीरी कबीलेके विरुद्ध अभियानकी स्वीकृति देनी पड़ी, जिसका अंत अंग्रेजोंकी जीतमें हुआ। १९०३ ई० में कर्जन फारसकी खाड़ीमें ब्रिटिश हितोंपर रूसी कुठाराघात रोकने और वहाँ ब्रिटिश व्यापार और प्रभाव बढ़ानेके लिए गया। तिब्बतमें रूसी प्रभाव रोकनेके लिए उसने १९०३ ई० में एक ब्रिटिश मिशन भेजा, लेकिन इसका नतीजा यह निकला कि तिब्बतसे युद्ध छिड़ गया। अंग्रेजी और भारतीय सेना ल्हासामें घुस गयी और शांतिके लिए ल्हासा-संधि (दे०) करनेके लिए तिब्बतको मजबूर होना पड़ा।

कर्जनने प्रशासनके हर क्षेत्रकी जाँच-पड़ताल की और जनमतकी ज्यादा परवाह किये बिना जो सुधार उचित समझे, किये। उसने इम्पीरियल कैडिट कोरकी स्थापना की, निजामसे बरारका विवाद निपटाया और कलकत्तामें विक्टोरिया मेमोरियल हालका निर्माण शुरू कराया। इसके लिए उसने धनाढ्य भारतीयोंसे बड़े-बड़े दान लिये।

दिसम्बर १९०२ ई० में एडवर्ड सप्तमके राज्याभिषेकपर दिल्ली दरबार आयोजित किया, भारतका वित्तीय प्रबंध दक्षतासे किया, नमक-कर दो बार कम किया, न्यूनतम आयपर कर माफ किया तथा सरकारी गोपनीयता कानून, भारतीय खान कानून, प्राचीन स्मारक संरक्षण कानून और सहकारी ऋण समिति कानून जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण कानून पास कराये। किन्तु विश्वविद्यालय अधिनियम और बंग-भंग जैसे कुछ कार्यों तथा सार्वजनिक भाषणोंमें भारतीय चरित्र और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी निंदा किये जानेकी वजहसे भारतमें उसके खिलाफ उग्र जन-आक्रोश भड़क उठा। वह शासनको उदार बनाने और भारतमें हर प्रकारके आंदोलनोंको कुचलनेमें विश्वास करता था। उसकी इन नीतियोंका नतीजा यह निकला कि भारतीय राष्ट्रवादकी भावनाने और जोर पकड़ लिया और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी लोकप्रियता पहलेसे कहीं ज्यादा बढ़ गयी।

१९०५ ई० में भारतसे अवकाश ग्रहण करनेके बाद कर्जन बीस वर्षों तक जिया, इस अवधिमें उसने ब्रिटेनके कई मंत्रिमंडलोंमें उच्च पदोंपर काम किया, लेकिन इंग्लैण्डके प्रधानमंत्रीका पद पानेकी अभिलाषा पूरी न हो सकी और १९२५ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। **(लार्ड रोनाल्डशे कृत लाइफ आफ लार्ड कर्जन)**

कर्टिस, लायोनेल—प्रख्यात पत्रकार। वह 'राउण्ड टेबुल' पत्रका संस्थापक और कई वर्षों तक उसका संपादक रहा। वह ब्रिटिश साम्राज्यकी एकता बनाये रखनेका बहुत बड़ा समर्थक था। उसीके सुझावपर १९१९ ई० के गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्टमें पहली बार 'द्वैध शासन' का सिद्धांत शामिल किया गया, जिसका प्रयोजन यह था कि ब्रिटिश भारतके प्रांतोंमें आंशिक रूपसे प्रशासनका दायित्व जनप्रतिनिधियोंपर छोड़ा जाय। यही सिद्धान्त १९३५ ई०के गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया ऐक्टके अंतर्गत केन्द्रमें भी लागू करनेकी व्यवस्था की गयी, किन्तु वह कार्यान्वित न हो सकी।

कर्णदेव—गुजरातका राजा। १२९७ ई० में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीके सिपहसालारोंने उसके राज्यपर हमला किया। युद्धमें वह पराजित हुआ और उसकी रानी कमलादेवीको बंदी बनाकर सुल्तानके हरममें भेज दिया गया। कर्णदेव भागकर देवगिरिके राजा रामचंद्रदेव (दे०) की शरणमें चला गया। परन्तु, सुल्तान अलाउद्दीनकी फौजने उसे चैनसे न बैठने दिया और उसका पीछा करती हुई दक्खिनमें नन्दरबार पहुँची, जहाँ उसने एक छोटा-सा राज्य स्थापित कर लिया था। प्रबल प्रतिरोधके बाद उसका राज्य छीन लिया गया।

कर्णसुवर्ण—शशांक (दे०) के राज्यकालमें गौड़ (बंगाल) की राजधानी। शशांक तथा उसके समसामयिक महाराजाधिराज हर्षवर्धनकी मृत्यके बाद, कामरूप (असम) के राजा भास्करवर्मा (दे०) ने कर्णसुवर्णको जीत लिया और कुछ समय तक अपने अधिकारमें रखा। उसने निधानपुरका दानपत्र कर्णसुवर्णमें अपने विजयशिविरमें लिखवाया था। कर्णसुवर्णकी पहचान तर्कसंगत रीतिसे बंगालमें भागीरथीके तटपर स्थित मुर्शिदाबादसे की जाती है।

कर्णावती—मेवाड़की एक वीर रानी। गुजरातके शासक बहादुर शाहने जब १५३५ ई० में चित्तौड़पर चढ़ाई की तो रानीने दुर्गकी रक्षाकी व्यवस्था की। जब हुमायूं बहादुरशाहके खिलाफ फौजें लेकर दिल्लीसे चला तो रानी कर्णावतीने मुगल बादशाहसे बहादुरशाहके खिलाफ संधिका प्रस्ताव किया, क्योंकि वह दोनोंका समान शत्रु था। परन्तु हुमायूंने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया। रानी कर्णावती बहादुरशाहकी फौजोंसे चित्तौड़की रक्षा करनेमें विफल रही, परन्तु मुसलमानोंकी इस विजयसे हुमायूंको भी कोई लाभ नहीं हुआ, क्योंकि बहादुरशाहने उसे भी गुजरातसे वापस लौटनेके लिए विवश कर दिया।

कर्तृपुर—समुद्रगुप्त (लगभग ३३०—३८० ई०) के इलाहाबाद स्तम्भ-लेखके अनुसार एक प्रत्यन्त (सीमांत) राज्य, जिसका राजा दूसरे प्रत्यंत राजाओंकी भांति समुद्रगुप्तका करद था। यह राज्य सम्भवतः आधुनिक कुमायूं तथा गढ़वाल जिलोंमें विस्तृत था।

कर्नाक, कर्नल—कम्पनीकी सेनाका एक जनरल, १७६५ ई० में जब पदोन्नति कर इसे बंगालकी कौंसिलमें भेजा गया, तब यह बिहारमें तैनात था। बंगालमें कम्पनीके प्रशासनमें इसने १७६५ से १७६७ ई० तक क्लाइवकी सहायता की। बादमें प्रथम मराठा-युद्धके दौरान मराठोंके विरुद्ध अंग्रेज सेनाके साथ भेजा गया और १३ जनवरी १७७९ ई०को बड़ागाँवके समझौतेपर हस्ताक्षर कर अपने माथे कलंकका टीका लगाया। इस समझौतेके अन्तर्गत उसने यह वचन दिया कि कुछ अंग्रेज अधिकारी बन्धकके रूपमें मराठोंको उस समय तकके लिए सौंप दिये जायेंगे, जब तक कम्पनीने १७७३ ई० से मराठाके जितने इलाकोंपर कब्जा किया वे सब उन्हें वापस नहीं कर दिये जाते। वारेन हेस्टिंग्सने इस समझौतेको नहीं माना और डाइरेक्टरोंके आदेशपर कर्नाकको बर्खास्त कर दिया गया।

कर्नाटककी लड़ाइयां—अठारहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें

अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियोंके बीच हुईं। ये लड़ाइयां अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंकी प्रतिद्वन्द्विताके परिणामस्वरूप हुईं और उनकी यूरोपकी प्रतिस्पर्द्धासे सम्बन्धित थीं। ये लड़ाइयां अठारहवीं शताब्दीकें आंग्ल-फ्रांसीसी युद्धोंका ही एक भाग थीं। इनको 'कर्नाटककी लड़ाइयां' इसलिए कहते हैं कि ये भारतके कर्नाटक प्रदेशमें लड़ी गयीं।

कर्नाटककी पहली लड़ाई आस्ट्रियाई उत्तराधिकारके युद्ध (१७४०-४८ ई०) से उत्पन्न आंग्ल—फ्रांसीसी शत्रुताके फलस्वरूप हुई। यह भारतमें १७४६ ई० में उस समय शुरू हुई, जब फ्रांसीसियोंने मद्रासपर कब्जा कर लिया। अंग्रेजोंने कर्नाटकके नवाब अनवरुद्दीनको फ्रांसीसियोंको मद्राससे खदेड़ देनेके लिए एक बड़ी सेना भेजनेको प्रेरित किया। लेकिन सेन्ट थोमकी लड़ाईमें नवाबकी सेना फ्रांसीसियोंसे पराजित हो गयी। फ्रांसीसियोंने पांडिचेरीपर अंग्रेजोंका हमला विफल कर दिया। डूप्लेके नेतृत्वमें उनका मद्रासपर भी कब्जा बना रहा। विजित इलाकोंकी पारस्परिक वापसीके आधारपर एक्स-ला-चैपेलकी संधि (१७४८ ई०) हो जानेके बाद यह युद्ध समाप्त हो गया। संधिके अन्तर्गत मद्रास अंग्रेजोंको मिल गया और क्षेत्रीय दृष्टिसे अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंकी स्थितिमें कोई अन्तर नहीं आया। लेकिन कर्नाटककी पहली लड़ाईसे यह महत्त्वपूर्ण सबक मिला कि यूरोपीय तरीकेसे प्रशिक्षित एवं हथियारोंसे सज्जित भारतीय सैनिकोंकी सहायतासे यूरोपीयोंकी एक छोटी सेना बहुत बड़ी भारतीय सेनाको सरलतासे हरा सकती है।

इस अनुभवके अनुसार डूप्लेने राजनीतिक लाभ उठानेके लिए हैदराबादके मामलेमें हस्तक्षेप किया। हैदराबादके निजाम आसफजाहकी मृत्यु १७४८ ई०में हो गयी और कर्नाटकके नवाब अनवरुद्दीनका भी १७४९ ई०में निधन हो गया। दोनों स्थानोंपर उत्तराधिकारका प्रश्न विवादास्पद था। डूप्लेने कर्नाटककी गद्दीके लिए नवाबके जारज पुत्र मुहम्मद अलीके विरुद्ध चन्दासाहबकी सहायता करनेका वचन दे दिया। इसी प्रकार हैदराबादकी गद्दीके लिए निजामके दूसरे पुत्र नासिरजंगके विरुद्ध उसने निजामके दोहते मुजफ्फरजंगकी सहायता करनेका आश्वासन दिया। ऐसी स्थितिमें अंग्रेजोंने सहज ही हैदराबादकी गद्दीके लिए नासिरजंग और कर्नाटकमें मुहम्मद अलीका समर्थन आरम्भ कर दिया। इस प्रकार आंग्ल-फ्रांसीसी युद्धका दूसरा चरण आरम्भ हुआ, जो कर्नाटककी दूसरी लड़ाई (१७५१-५४ ई०) के नामसे प्रसिद्ध है।

भारतमें अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंके बीच यह लड़ाई अनधिकृत थी, क्योंकि यूरोपमें दोनोंके बीच शान्ति थी। पहले डूप्लेके निर्देशनमें फ्रांसीसियोंको सभी जगह सफलता मिली। उनके आश्रित चन्दासाहबको कर्नाटककी गद्दी मिल गयी और उसके प्रतिद्वन्द्वी मुहम्मद अलीको अंग्रेज सैनिकोंके संरक्षणमें त्रिचनापल्लीके किलेमें शरण लेनी पड़ी। हैदराबादमें मुजफ्फरजंग निजामके पदपर सत्तारूढ़ हो गया और उसने फ्रांसीसियोंको कृष्णासे कन्या कुमारी तकके क्षेत्रमें दक्षिण भारतकी सार्वभौम शक्तिके रूपमें मान्यता प्रदान कर दी।

१७५१ ई० में मुजफ्फरजंग मारा गया, लेकिन फ्रांसीसी अपने दूसरे आश्रित सलाबतजंगको निजामकी गद्दीपर बैठानेमें सफल हो गये। सलाबतजंगने फ्रांसीसियों-के वे सभी अधिकार कायम रखे जो उन्हें मुजफ्फरजंगने प्रदान किये थे। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब कुछ ही समय बाद त्रिचनापल्लीपर कब्जा होते ही फ्रांसी-सियोंकी पूर्ण विजय हो जायगी। फ्रांसीसियोंकी सहायता-से चन्दासाहबने त्रिचनापल्लीको, जहाँ मुहम्मद अली आश्रय लिये था, घेर रखा था। त्रिचनापल्लीके पतनके साथ ही कर्नाटक तथा दक्षिण भारतमें अंग्रेजोंकी शक्तिका नष्ट होना प्रायः निश्चित था। इस गम्भीर परिस्थितिमें एक युवक कप्तान राबर्ट क्लाइवके सुझावपर अंग्रेजोंने चन्दासाहबकी राजधानी अंकोटपर आक्रमण करनेका निश्चय किया। यह योजना बहुत ही सफल सिद्ध हुई। क्लाइव तथा उसकी २०० अंग्रेज और ३०० भारतीय सिपाहियोंकी छोटी-सी सेनाने सरलताके साथ अर्काट-के किलेपर कब्जा कर लिया। तत्काल चन्दा साहबने त्रिचनापल्लीके सामनेसे बड़ी सेना हटाकर अर्काटपर पुनः कब्जा करनेके उद्देश्यसे घेरा डाल दिया। किन्तु क्लाइव-की मुट्ठीभर सेना ५३ दिनों तक किलेके अंदर डटी रही और अंतमें चन्दा साहबकी सेनाने जब किलेपर धावा बोलकर उसे छीननेकी कोशिश की तो उसे पीछे ढकेल दिया। चन्दा साहबकी सेनाको बाध्य होकर अर्काटके सामनेसे हटना पड़ा। क्लाइवकी विजयी सेना तब किलेके बाहर निकल आयी। उसकी सहायताके लिए अंग्रेजों तथा सहयोगी भारतीय राजाओंकी नयी फौजें भी पहुँच गयी थीं। इन फौजोंकी मददसे क्लाइवने कावेरीपाक तथा अन्य कई स्थानोंपर चन्दा साहबकी सेनाको हराया। चन्दा साहबको विवश होकर आत्मसमर्पण कर देना पड़ा और उसे मार डाला गया।

फ्रांसीसियोंने अब कर्नाटकपर अपना समस्त अधिकार त्याग दिया, किंतु निजामपर उनका प्रभाव पूर्ववत् बना

रहा। निजामके दरबारमें इस समय बुसी डूप्लेका प्रतिनिधि था। इसी बीच फ्रांसकी सरकारने १७५४ ई० में डूप्लेको स्वदेश वापस बुला लिया, क्योंकि कर्नाटककी लड़ाइयोंमें डूप्लेकी हारसे वह हतोत्साहित हो गयी थी और इस अनधिकृत युद्धको समाप्त कर फिरसे शांति स्थापित कर देना चाहती थी। इस प्रकार कर्नाटककी दूसरी लड़ाईका अंत हो गया। इसके परिणामस्वरूप निजामके दरबारमें फ्रांसीसी और कर्नाटकमें अंग्रेज प्रभुत्वशाली हो गये।

कर्नाटककी तीसरी लड़ाई ठीक दो साल बाद १७५६ ई० में शुरू हुई। इस समय यूरोपमें सप्तवर्षीय युद्ध आरम्भ हो गया था और इंग्लैण्ड तथा फ्रांसमें फिर ठन गयी थी। फलतः भारतमें भी अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंमें लड़ाई शुरू हो गयी। इस बार लड़ाई कर्नाटककी सीमा लांघ कर बंगाल तक फैल गयी। अंग्रेजोंने १७५७ ई० में फ्रांसीसियोंसे चन्द्रनगर छीन लिया। किन्तु, सर्वाधिक निर्णायक लड़ाइयाँ कर्नाटकमें ही हुईं। फ्रांसने काउंट लालीको पांडिचेरीका गवर्नर बनाकर भेजा। उसने शुरूआत अच्छी की और आते ही फोर्ट सेंट डेविडपर तथा अंग्रेजोंकी पास-पड़ोसकी सभी छोटी-छोटी बस्तियोंपर कब्जा कर लिया, परन्तु मद्रासको उनसे नहीं छीन सका। उसने एक भारी गलती यह की कि बुसीको निजामके दरबारसे वापस बुला लिया। इससे निजामपर फ्रांसीसियोंका प्रभाव समाप्त हो गया। बंगालसे एक अंग्रेज सेना कर्नल फोर्डके नेतृत्वमें भेजी गयी। उसने आकर १७५८ ई० में उत्तरी सरकार फ्रांसीसियोंसे छीन लिया। युद्ध इसके बाद भी चलता रहा। १७६० ई० में सर आयर कूटके नेतृत्वमें अंग्रेजी सेनाने बिन्दवासकी लड़ाईमें फ्रांसीसी सेनाको पराजित कर दिया। लालीको पीछे हटकर पांडिचेरी भागना पड़ा। अंग्रेजी सेनाने उसे भी घेर लिया और १७६१ ई० में लालीको आत्मसमर्पण कर देना पड़ा।

यह युद्ध १७६३ ई० में पेरिसकी संधिसे समाप्त हो गया। फ्रांसीसियोंको पांडिचेरी और अन्य बस्तियाँ इस शर्तपर वापस कर दी गयीं कि उनकी न तो किलेबंदी की जायगी और न वहाँ फौज रखी जायगी। उनका उपयोग सिर्फ तिजारतके लिए किया जायगा। इस प्रकार कर्नाटककी तीसरी लड़ाईके परिणामस्वरूप भारतमें अंग्रेजोंके प्रतिद्वंद्वी फ्रांसीसियोंका पूर्ण पराभव हो गया और भारतमें अंग्रेजी राज्यकी स्थापनाका पथ प्रशस्त हो गया।

कर्पूरमंजरी—दक्षिणके एक कवि राजशेखर द्वारा प्राकृत भाषामें लिखा गया एक नाटक। राजशेखर गुर्जर-प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल (दे०) (८९०–९१० ई०) का गुरु था।

कर्वे (महर्षि, धोंडो केशव कर्वे)—एक प्रसिद्ध समाजसेवी प्राध्यापक, जिन्होंने पूनामें महिला विश्वविद्यालयकी स्थापना की। यह अपने ढंगकी अनोखी संस्था है जो आधुनिक कालमें भारतमें नारी-शिक्षाकी प्रगतिको सूचित करती है।

कलकत्ता—स्थापना, ईस्ट इण्डिया कम्पनीके प्रतिनिधि जाब चारनाक द्वारा १६९० ई० में। उसने हुगली तटपर स्थित आधुनिक हुगली नगरसे १५ मील दक्षिण सूतानटीमें एक फैक्टरी कायम की। सूतानटीके चारों तरफ दलदल था और पहले यह सुविधाजनक स्थान नहीं लगता था। किन्तु यहाँतक जहाज आ-जा सकते थे और अंग्रेजोंकी समुद्री शक्तिके लिए यह स्थान चिनसुरा, जहाँ डच बस गये थे और चन्दरनगर जहाँ फ्रांसीसियोंने अपनेको पहलेसे जमा रखा था, दोनोंसे अधिक उपयुक्त था। डच और फ्रांसीसी दोनोंके जहाज बिना सूतानटीसे गुजरे अपनी फैक्टरियों तक नहीं पहुँच सकते थे। १६९६ ई० में शोभासिंहके विद्रोहके परिणामस्वरूप अंग्रेजोंको सूतानटी स्थित अपनी फैक्टरीकी किलेबन्दी करनेका बहाना मिल गया। दो वर्ष बाद १६९८ ई० में अंग्रेजोंने तीन संलग्न गाँव सूतानटी, कालीकाता और गोविन्दपुरके जमींदारी-अधिकार मात्र १२०० रुपये भूतपूर्व मालिकोंको देकर प्राप्त कर लिये और तीनों गाँवोंको मिलाकर एक नयी बस्ती बस गयी, जो बादमें 'कलकत्ता' के नामसे प्रसिद्ध हुई। यह नाम बंगाली 'कालीकाता' का ही अंग्रेजी रूपांतर था। १७०० ई० में यह 'फोर्ट विलियम' नामसे बंगाल प्रेसीडेन्सीका सदर मुकाम हो गया। सर चार्ल्स आयर इस प्रेसीडेंसीका प्रथम अध्यक्ष हुआ। १७१६ ई० में फोर्ट विलियमका निर्माण-कार्य पूरा हो गया। बादशाह फर्रुखसियरके दरबारमें कम्पनीके वकील सरमैनके प्रयत्नसे कम्पनीको १७१७ई० में बंगालमें बिना चुंगी दिये व्यापार करनेका अधिकार मिल गया। इसके बदलेमें कम्पनीको केवल तीन हजार रुपये वार्षिक मुगल सम्राट्को देना पड़ा। इससे बंगालमें कम्पनीका व्यापार खूब फला-फूला और कलकत्ताकी सम्पन्नता बढ़ती गयी। इसकी जनसंख्या १७३५ ई० में एक लाख तक हो गयी। १७२७ ई० तक यहाँ जहाजोंसे दस हजार टन माल प्रतिवर्ष आने लगा। १७४२ ई० में मराठोंके आक्रमणके भयसे नगरके चारों ओर एक खाई खोदनेकी शुरुआत हुई। इसी स्थानपर आजकल सर्कुलर रोड बनी हुई है। अप्रैल १७५६ ई० में नवाब अलीवर्दीके देहावसानपर

उसका पौत्र सिराजुद्दौला बंगालका नवाब बना। आंग्ल-फ्रांसीसी युद्धकी आशंकासे अंग्रेज और फ्रांसीसी दोनोंने अपनी-अपनी बस्तियोंकी किलेबन्दी शुरू कर दी। सिराजने इसे पसन्द नहीं किया और समस्त निर्माण-कार्य बन्द कर देनेका आदेश दिया। फ्रांसीसियोंने निर्माणकार्य रुकवा दिया, किन्तु अंग्रेजोंने न केवल टालमटोल की, वरन् कलकत्तामें एक राजनीतिक भगोड़ेको शरण भी दे दी। इससे सिराज आगबबूला हो गया और उसने कलकत्तापर आक्रमण कर १६ जून १७५६ ई० को उसपर घेरा डाल दिया। केवल चार दिनोंकी घेरेबन्दीके बाद अंग्रेजोंने नवाबके समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। नवाब अपनी जीतके बाद अंग्रेजोंको नगरपर पुनः कब्जा करनेसे रोकनेकी कोई व्यवस्था किये बिना ही शीघ्र वापस लौट गया। नवाबकी इस लापरवाहीका लाभ उठाकर क्लाइव और वाटसनके नेतृत्वमें अंग्रेज सेनाने जनवरी १७५७ ई० में कलकत्तापर पुनः अधिकार कर लिया। नवाबने भी फरवरी १७५७ ई० की एक संधिके द्वारा कम्पनीकी सत्ताका बहाल किया जाना स्वीकार कर लिया। इसके बाद ही कलकत्तास्थित कम्पनीके अधिकारियोंने नवाबके असन्तुष्ट दरबारी अमीरोंसे एक षड्यंत्र रचना शुरू कर दिया; जिसके परिणामस्वरूप २३ जून १७५७ ई० को पलासीकी लड़ाई हुई। इस लड़ाईमें सिराजुद्दौलाकी पराजय हुई और वह मारा गया। मीर जाफ़रको मुर्शिदाबादमें बंगालके नवाबकी गद्दीपर बैठाया गया। इन सब घटनाओं-से बंगालमें कम्पनीका प्रभाव बढ़ गया। बंगालका प्रशासन अब व्यावहारिक रूपमें अंग्रेजोंके हाथमें आ गया, अतः नवाबी राजधानी मुर्शिदाबादकी अपेक्षा अब कलकत्ता बंगालके प्रशासनका केन्द्रस्थल बन गया। बादमें होनेवाले राजनीतिक परिवर्तनोंसे कलकत्ताका महत्त्व और बढ़ गया। १७७२ ई० में बोर्ड आफ रेवेन्यू (राजस्व परिषद्) को, जो तबतक मुर्शिदाबादमें था, कलकत्ता स्थानान्तरित कर दिया गया और अगले वर्ष रेग्युलेटिंग ऐक्टके अंतर्गत बंगालका तत्कालीन गवर्नर वारेन हेस्टिंग्स भारतमें ब्रिटिश अधिकृत सभी क्षेत्रोंका गवर्नर-जनरल बना दिया गया। इस प्रकार कलकत्ता भारतके अंग्रेजी साम्राज्यकी राजधानी बन गया। यह गौरव उसे १९१२ ई० तक, जब भारत सरकारकी राजधानी दिल्ली स्थानान्तरित की गयी, प्राप्त रहा। कलकत्ता अब पश्चिमी बंगाल राज्यकी राज-धानी है।

कलकत्ताको मद्रास तथा बम्बईके अन्य दो प्रेसीडेन्सी नगरोंके सदृश स्थानीय स्वायत्त. शासनके विशेषाधिकार प्राप्त हैं। अठारहवीं शताब्दीके अंतमें नगरकी सफाईकी देखरेख तथा इसकी पुलिस-व्यवस्थाका दायित्व सरकार द्वारा नियुक्त कुछ विशिष्ट नागरिकोंको सौंप दिया गया, जिन्हें 'जस्टिस आफ पीस'की उपाधि प्रदान की गयी। १८५६ ई० में नगरकी सफ़ाई-व्यवस्थाकी देखरेख, उसमें सुधार तथा करोंके निर्धारण एवं संग्रहके लिए तीन कमिश्नरों-की नियुक्ति की गयी। लेकिन यह व्यवस्था संतोषजनक सिद्ध नहीं हो सकी, अतः 'जस्टिस आफ पीस' उपाधिधारी विशिष्ट नागरिकोंके कामकी देखरेखके लिए एक अध्यक्षकी नियुक्ति की गयी और उसे नगरका पुलिस कमिश्नर भी बना दिया गया। सर स्टुअर्ट हागकी अध्यक्षतामें जलपूर्ति तथा जलनिकासीके लिए उचित व्यवस्था तथा सीवेजके निर्माणका सूत्रपात हुआ। नगर-व्यवस्थामें अन्य सुधार भी किये गये और कलकत्ता गगनचुम्बी अट्टालिकाओंके नगरके रूपमें विकसित होने लगा। किन्तु 'जस्टिस आफ पीस' उपाधिधारी विशिष्ट नागरिकों और अध्यक्षके बीच निरन्तर खटपट चलती रहती थी। अतः १८७६ ई० में कलकत्ता कार्पोरेशनका पुनर्गठन किया गया। अब उसका प्रशासन एक अध्यक्ष तथा ७२ सदस्य चलाते थे, जिसमें दो तिहाई निर्वाचित होते थे। १८८२ ई० में निर्वाचित सदस्योंकी संख्या बढ़ाकर पचास कर दी गयी और कार्पोरेशनकी सीमा कुछ उपनगरीय क्षेत्रों तक बढ़ा दी गयी। किन्तु १८९९ ई० में लार्ड कर्जनने एक कानून पास करवा कर निर्वाचित सदस्योंकी संख्या घटा कर कुलकी आधी कर दी और अध्यक्षको, जो सरकार द्वारा नियुक्त एक अधिकारी होता था, विस्तृत अधिकार प्रदान कर दिये। इस कानूनसे जनतामें तीव्र आक्रोश उत्पन्न हुआ और प्रांतीय कौंसिलमें सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (दे०) के नेतृत्वमें भारतीय सदस्योंने उसका तीव्र विरोध किया, किन्तु उनके विरोधके बावजूद कानून पास हो गया। अतः इसका कार्यान्वयन होनेपर कलकत्ता कार्पोरेशनके अट्ठाईस भारतीय सदस्योंने सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके नेतृत्वमें कार्पोरेशनकी सदस्यतासे त्यागपत्र दे दिया। इसे भारतमें असहयोग आंदोलनकी शुरुआतका सबसे प्राचीन दृष्टांत माना जा सकता है। चौबीस वर्ष बाद सुरेन्द्रनाथ बनर्जीने, जो तब बंगालके स्वायत्त-शासन मंत्री थे, एक नया कानून पास कराया, जिसके द्वारा कलकत्ता कार्पोरेशनके विधानमें समुचित परिवर्तन कर दिया गया। सरकारी अध्यक्षके पदको समाप्त कर दिया गया, कार्पोरेशनके सभी सदस्य निर्वाचित होने लगे और कार्पोरेशनके सदस्यों अथवा कौंसिलरोंको अपना 'मेयर' निर्वाचित करनेका अधिकार मिल गया।

एक एक्जीक्यूटिव अफसर नियुक्त किया गया जो कार्पोरेशनके प्रति उत्तरदायी होता था और उसकी नियुक्तिका अधिकार भी कार्पोरेशनको ही प्राप्त था। इस प्रकार कलकत्ताको अपना नागरिक प्रशासन स्वयं चलानेका अधिकार प्राप्त हो गया।

कलकत्ता जर्नल—अंग्रेज पत्रकार जान सिल्क बकिंघमके द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित। सिल्कको कार्यकारी गवर्नर-जनरल जान एडम्सकी सरकारने १८२३ ई० में देशसे निष्कासित कर दिया और कलकत्ता जर्नलका प्रकाशन बन्द हो गया।

कलकत्ता मदरसा—तत्कालीन गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सके आदेशसे १७८१ ई०में कायम किया गया और तबसे भारतमें फारसी और अरबीके अध्ययनका यह एक प्रमुख प्राच्य-विद्या-केन्द्र है।

कलकत्ता मेडिकल कालेज—मार्च, १८३५ ई० में तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड विलियम बेन्टिक द्वारा स्थापित। इसके अन्तर्गत भारतमें पश्चिमी चिकित्सा-विज्ञानके अध्ययन और व्यवसायकी शुरुआत हुई। इसने अनेक प्रमुख भारतीय चिकित्सक और शल्यक पैदा किये, जिनमें विधानचन्द्र राय (जो बंगालके मुख्य-मंत्री भी रहे) और उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी भी थे, जिन्होंने कालाजारकी दवाका आविष्कार किया।

कलकत्ता विश्वविद्यालय—स्थापना लार्ड कैनिंगके प्रशासन-काल १८५७ ई० में। इसका आरम्भ कालेजोंको सम्बद्ध करनेवाली एवं परीक्षा लेनेवाली संस्थाके रूपमें हुआ। इसका वाइस-चांसलर मनोनीत हुआ करता था, जो अवैतनिक रूपसे एक सिंडिकेट तथा सिनेटकी मंत्रणा तथा सहमति लेकर कार्य करता था। प्रारम्भके सभी वाइस-चांसलर यूरोपियन होते थे। कुलगुरु पदपर नियुक्त होनेवाले प्रथम भारतीय थे सर गुरुदास बनर्जी। १९०४ ई० में लार्ड कर्जनने भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम पास कराया। इसका मुख्य उद्देश्य विश्वविद्यालयोंपर सरकारी नियंत्रण कड़ा करना तथा विशेषकर कलकत्ता विश्वविद्यालयके क्षेत्रीय अधिकारको सीमित करना था। उस समय कलकत्ता विश्वविद्यालयका अधिकार-क्षेत्र सुदूर बर्मा और श्रीलंका तक प्रसारित था। इस कानूनके द्वारा सिनेटरोंकी संख्या सीमित कर दी गयी, उनमेंसे अधिकांश सरकार द्वारा मनोनीत होने लगे, नये कालेजोंको सम्बद्ध करनेके नियम कड़े कर दिये गये, विश्वविद्यालयों द्वारा सम्बद्ध कालेजोंका नियमित निरीक्षण निर्धारित किया गया और विश्वविद्यालयोंको प्रोफेसरों तथा लेक्चररोंकी नियुक्तियाँ कर अध्यापनकी व्यवस्था करनेका अधिकार दिया गया। इसके साथ ही विश्वविद्यालयोंको प्रयोगशालाओं तथा संग्रहालयोंकी स्थापना करनेके अधिकार दे दिये गये। १९०४ ई० के इस अधिनियमका, जिसका उद्देश्य बंगालमें शिक्षाके प्रसारको नियंत्रित रखना था, सदुपयोग सर आशुतोष मुखर्जीने अपने कुलगुरु-कालमें किया। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालयमें अध्यापनका कार्य आरम्भ किया, जिससे न केवल बंगाल वरन् शेष भारत भी लाभान्वित हुआ। कलकत्ता विश्वविद्यालयका क्षेत्रीय अधिकार पहलेकी अपेक्षा अब बहुत कम है, किन्तु यह आज भी भारतका प्रमुख विश्वविद्यालय है। ज्ञानके प्रसारमें, जो इसका सदैव लक्ष्य रहा है, इसका योगदान अन्य भारतीय विश्वविद्यालयोंकी तुलनामें अब भी सर्वाधिक है। कलकत्ता विश्वविद्यालयके विधानमें हालमें परिवर्तन किया गया है और अब कुलगुरु तथा कोषाध्यक्ष पूर्णकालिक एवं वेतनभोगी शीर्षस्थ कार्याधिकारी होते हैं।

कलचूरि वंश—मालवा और उत्तरी महाराष्ट्रके शासक। उनको हैहयवंशी भी कहा जाता था। उनका राज्य 'चेदि' कहलाता था, जो आधुनिक मध्य प्रदेशके अधिकांश भागमें स्थित था। कलचूरि वंशका सबसे प्रसिद्ध राजा गांगेयदेव कलचूरि (लगभग १०१५–४० ई०) तथा उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी कर्णदेव (लगभग १०४०–७० ई०) था। कर्णदेवने लगभग १०६० ई०में मालवाके राजा भोजको परास्त कर दिया, परंतु बादमें कीर्तिवर्मा चंदेल (दे०) ने, जो १०४९ से ११०० ई० तक राज्य करता था, उसे हरा दिया। इस पराजयसे कलचुरियोंकी शक्ति क्षीण हो गयी और ११८१ ई० तक अज्ञात कारणोंसे इस वंशका पतन हो गया। कलचूरि शासक त्रैकूटक संवत् (दे०) का व्यवहार करते थे, जो २४८–४९ ई० में प्रचलित हुआ।

कलात—बलूचिस्तानका एक राज्य, जो अब पाकिस्तानमें है। कलातके खानने भारतीय ब्रिटिश सरकारसे एक संधि करके अंग्रेजोंको क्वेटा (दे०) सौंप दिया, जो बोलन दर्रेकी रक्षाका उपयुक्त स्थल है। १८९२ ई० में उसने अपने वजीरको उसके पिता तथा पुत्र सहित मार डाला। इस अपराधके लिए ब्रिटिश सरकारने उसे गद्दी छोड़ देनेके लिए विवश किया और उसके लड़केको 'खान' बना दिया। कलात पाकिस्तानकी स्थापना तक ब्रिटिश भारतका एक संरक्षित अधीनस्थ राज्य बना रहा। अब वह पाकिस्तानका अधीनस्थ राज्य है।

कलिंग—पूर्वी समुद्रतटपर महानदी और गोदावरी नदियोंका मध्यवर्ती क्षेत्र। इसके अंतर्गत आधुनिक उड़ीसाका राज्य

आ जाता था। इसे अशोक मौर्य (दे०) ने अपने राज्याभिषेकके आठवें वर्ष (लगभग २७३–२३२ ई० पू०) में जीत लिया। कलिंगके लोगोंने अशोककी सेनाका इतना डटकर प्रतिरोध किया कि इस युद्धमें कलिंगके एक लाख आदमी मारे गये, डेढ़ लाख कैद कर लिये गये तथा इनसे कई गुने अधिक आदमी बादमें मर गये। युद्धमें जो वध और विनाश हुआ तथा लोगोंको जो विपत्ति उठानी पड़ी, उससे अशोकको भारी दुःख और खेद हुआ। उसे सबसे अधिक पश्चाताप इस बातसे हुआ कि यह सब उसकी शस्त्रों द्वारा साम्राज्य-विस्तारकी लिप्साके कारण हुआ। इस युद्धके बाद उसकी मानसिक वृत्ति बदल गयी। उसने शस्त्रों द्वारा विजय करना छोड़ दिया और बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। **(देखिये, उड़ीसा)**

कलीमुल्ला—बहमनी वंशका अंतिम नाममात्रका सुल्तान, जो वास्तविक शासक कासिम बरीदके हाथों मारे जानेसे बचनेके लिए १५२६ ई० में बीजापुर भाग गया। बादमें वह अहमदनगर चला गया, जहाँ उसकी मृत्यु हुई।

कलुष—मराठा छत्रपति शिवाजीके पुत्र तथा उत्तराधिकारी सम्भाजी (१६८०–८९ ई०) का ब्राह्मण मंत्री। मुगलोंने सम्भाजीके साथ कलुषको भी बंदी बना लिया और उसे क्रूरतापूर्वक मार डाला।

कलेक्टर (जिला अधिकारी)—भारतमें ब्रिटिश शासनकी स्थापनाके बादसे जिलेमें राजस्व-वसूलीका प्रभारी अधिकारी। इस पदकी स्थापना सर्वप्रथम १७७२ ई०में हुई जब बंगाल, बिहार और उड़ीसाका राजस्व-प्रशासन सपरिषद-गवर्नरने भारतीय नायब दीवानोंसे अपने हाथमें लेकर कलेक्टरोंके सुपुर्द कर दिया। कलेक्टरोंके पदोंपर अंग्रेजोंकी नियुक्ति की गयी और प्रत्येक जिला एक कलेक्टरके अधीन कर दिया गया। १७७३ ई० में कलेक्टरका पद समाप्त कर दिया गया, लेकिन १७८१ ई० में वह पुनः स्थापित कर दिया गया। १७८६ ई० में उन्हें राजस्व परिषद् (दे०) की सलाह और अनुमतिसे राजस्व निर्धारित करने और वसूलनेका दायित्व सौंपा गया। कलेक्टरको जिलेमें दीवानी मुकदमोंका फैसला करनेका अधिकार पहलेसे ही था, अब उसे मजिस्ट्रेटके अधिकार भी दे दिये गये, जिससे वह फौजदारीके मुकदमे भी सुन सकता था। इस प्रकार कलेक्टर जिलोंमें ब्रिटिश शासनका एकमात्र प्रतिनिधि बन गया। उसके ऊपर बहुत-सी जिम्मेदारियाँ डाल दी गयीं। किन्तु १७९३ ई० की 'कार्नवालिस संहिता' (दे०) में कलेक्टरसे न्यायिक और मजिस्ट्रेटी सभी प्रकारके अधिकार छीन कर जिला जजको दे दिये गये। कुछ समय बाद मजिस्ट्रेटके अधिकार जिला मजिस्ट्रेटमें निहित कर दिये गये और जिला मजिस्ट्रेटका कार्यालय भी जिला कलेक्टरके कार्यालयसे अलग कर दिया गया। बादको कलेक्टरके ऊपर फिरसे मजिस्ट्रेटकी जिम्मेदारियाँ डाल दी गयीं और जिला प्रशासन पूरी तरह जिला मजिस्ट्रेट और कलेक्टरके हाथमें आ गया। १८५३ ई० में भारतीयोंको जब प्रतियोगात्मक परीक्षाके जरिये 'इंडियन सिविल सर्विस' में प्रवेशकी अनुमति मिल गयी, तबसे इस पदपर भारतीयोंकी नियुक्ति भी होने लगी। ब्रिटिश शासनके दौरान जिला मजिस्ट्रेट और कलेक्टर प्रशासन तंत्रकी एक बहुत महत्त्वपूर्ण कड़ी था। स्वाधीन भारतकी गणतंत्रीय व्यवस्थामें भी वह शासनप्रणालीका बहुत महत्त्वपूर्ण अंग बना हुआ है। **(एल० एस० एस० ओमैले कृत 'इंडियन सिविल सर्विस', जी० एन० जोशी कृत 'इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन')**

कल्याणी—अब आंध्र प्रदेश में विद्यमान। मध्यकालकी दो शताब्दियों (९७३–११९० ई०) तक यह नगर चालुक्य (दे०) राजाओंकी राजधानी रहा।

कल्हण—संस्कृतके 'राजतरंगिणी' (दे०) नामक ग्रंथका रचयिता, जिसमें कश्मीरके राजाओंका वृत्तांत दिया गया है। वह बारहवीं शताब्दी ई० में हुआ।

कश्मीर—भारतका धुर उत्तरवर्ती सीमाप्रांत। इसके पश्चिममें पाकिस्तानी सीमाप्रदेश, उत्तर-पश्चिममें अफगानिस्तान, उत्तर-पूर्वमें चीनका सिनकियांग प्रांत तथा पूर्वमें तिब्बत है। कश्मीर अपनी प्राकृतिक सुषमा तथा स्वास्थ्यप्रद जलवायुके लिए विख्यात है, सामरिक दृष्टिसे भी इसकी स्थिति महत्त्वपूर्ण है। यह उत्तर-पश्चिमसे भारतमें आनेवाले मार्गकी रक्षा करता है। इसकी सीमाएँ अफगानिस्तान, तुर्किस्तान तथा चीनकी सीमाओंसे मिली हुई हैं। इसका १००६ ई० तकका इतिहास कल्हणकी राजतरंगिणीमें, १००६ ई० से १४२० ई० तकका जोनराजकी रचनामें, १४२० ई० से १४८९ ई० तकका श्रीवरकी रचनामें तथा १४८९ ई० से १५८६ ई० तकका प्राज्ञ भट्टकी राजावलिपताकामें मिलता है। ये सभी ग्रंथ संस्कृतमें हैं। परम्परासे यह विश्वास प्रचलित है कि कश्मीर मूल रूपमें एक सरोवर (झील) था तथा कश्यप मुनिके उद्योगसे इस झीलके पानीके लिए निर्गम मार्ग बनाया गया और उन्होंने ही इस भूमिपर ब्राह्मणोंको बसाया। महाभारतमें 'कस्मीरज' के लोगोंको क्षत्रिय बताया गया है, अशोकके द्वारा भेजे गये भिक्षुओंने इस देशमें बौद्ध धर्मका प्रचार किया और वह द्वितीय शताब्दी ई० में कुषाण राज्यकाल तक फलता-फूलता रहा। परन्तु, हिन्दू धर्म इस

क्षेत्रका प्रधान धर्म बराबर बना रहा और सातवीं शताब्दी ई० में दुर्लभवर्धनने कर्कोटक राजवंश (दे०) की स्थापना की। ८५५ ई० में कर्कोटक वंशको उत्पल वंशने उखाड़ फेंका। बादमें तंत्री सैनिक नेताओं, यशस्कर तथा पर्वगुप्तके वंशजोंने क्रमिक रीतिसे शासन किया। क्षेमगुप्तकी विधवा रानी दिद्दाने १००३ ई० तक शासन किया। इसके बाद कश्मीर लोहरवंशी राजाओंके शासनमें आ गया।

कश्मीर सुल्तान महमूदके हमलोंसे बचा रहा, परन्तु १३४६ ई० में उसके अंतिम हिन्दू राजा उद्यानदेवकी हत्या उसके मुसलमान मंत्री अमीर शाहने कर दी और वह शमशुद्दीनके नामसे गद्दीपर बैठा। उसके वंशने १५८६ ई० तक कश्मीरपर शासन किया। इसके बाद वह बादशाह अकबरके अधीन हो गया और मुगल साम्राज्यका एक भाग बन गया। १७५७ ई० में अहमदशाह दुर्रानीने उसपर कब्जा कर लिया और वह १८१९ ई० तक अफगानिस्तानके राज्यका एक भाग रहा। १८१९ ई० में रणजीतसिंहने उसे पुनः जीत लिया और अपने राज्यमें सम्मिलित कर लिया। प्रथम सिखयुद्ध (१८४६ ई०) में सिखोंकी हार होनेपर कश्मीर जम्मूके राजा गुलाबसिंहके हाथ एक करोड़ रुपयेमें बेच दिया गया। पराजित सिख राज्यने विजयी अंग्रेजोंको डेढ़ करोड़ रुपया हर्जाना देना मंजूर किया था। कश्मीरको बेचकर इसी रकमकी अदायगी की गयी। गुलाबसिंहने ब्रिटिश भारतीय सरकारसे एक अलग संधि कर ली, जिसके अंतर्गत उसे कश्मीर तथा जम्मूका स्वतंत्र शासक स्वीकार कर लिया गया। गुलाबसिंहने लद्दाख भी जीता था। १८५७ ई० में उसकी मृत्यु हुई। उसके उत्तराधिकारी रणवीरसिंह (१८५७–८५ ई०), परताबसिंह (१८८५–१९२५ ई०) तथा हरिसिंह (१९२५–४९ ई०) हुए।

१९४७ ई० में भारतका विभाजन होनेपर कश्मीर पहले भारत तथा पाकिस्तान दोनोंसे अलग रहना चाहता था, परंतु २० अक्तूबर १९४७ई० को उत्तर-पश्चिमी सीमांचलोंके कबीलेवालोंने नव-स्थापित पाकिस्तान सरकारकी साजिश और सहायतासे हमला कर दिया और उसकी राजधानी श्रीनगरकी ओर बढ़ने लगे। महाराज हरिसिंहने अनुभव किया कि जम्मू तथा कश्मीर रियासतके पास इतने साधन नहीं हैं कि वह कबीलेवालोंको खदेड़ सकें और अपने राज्यकी स्वतंत्रता तथा अखंडताकी रक्षा कर सकें। अतएव शेख मुहम्मद अब्दुल्लाकी सलाहपर उन्होंने भारतसे फौजी सहायताकी मांग की और भारतीय संघके प्रवेशपत्रपर हस्ताक्षर कर दिये। भारत सरकारने हवाई जहाजोंसे अपनी फौजें भेजीं और श्रीनगर आक्रमणकारियोंके हाथमें पड़नेसे बाल-बाल बच गया। परंतु आक्रमणकारियोंने लगभग आधे कश्मीरपर अधिकार कर लिया था और भारत तथा पाकिस्तानके बीच एक भयंकर युद्धके द्वारा ही उन्हें पीछे ढकेला जा सकता था। भारत सरकारने इस प्रकारके युद्धसे बचने तथा विवादको शांतिपूर्ण रीतिसे तय करनेके उद्देश्यसे ६ जनवरी १९४८ ई० को यह मामला संयुक्त-राष्ट्र सुरक्षा परिषद्‌में पेश कर दिया। सुरक्षा परिषद्‌ने उसी महीने कश्मीरमें युद्धविराम करा दिया। परंतु अब कश्मीरका प्रश्न पश्चिमी राष्ट्रोंकी शक्तिमूलक राजनीतिकी शतरंजका मोहरा बन गया और संयुक्त राष्ट्रसंघ अभी तक इस प्रश्नको तय करनेमें सफल नहीं हो सका है। फलस्वरूप कश्मीरका आधा भाग, जिसे तथाकथित 'आजाद कश्मीर' कहा जाता है, पाकिस्तानके गैरकानूनी कब्जेमें चला गया है और कश्मीरका आधा भाग तथा जम्मू भारतीय संघके अंतर्गत है।

काँगड़ा–हिमाचल प्रदेशमें परकोटेसे घिरा एक नगर। यह भटिंडाके राजा जयपाल (दे०) के राज्यकी पूर्वी सीमा थी। १३९९ ई० में तैमूरने इसे लूटा, परंतु इसके बाद भी इस नगरपर हिन्दू राजा शासन करते रहे। १६२० ई० में बादशाह जहाँगीरने इस नगरको जीत लिया और यह मुगल साम्राज्यका अंग बन गया। मुगलोंके संरक्षणमें कांगड़ाके चित्रकारोंने अपनी अलग शैली विकसित की। १८११ ई० में यह नगर रणजीतसिंहके अधिकारमें आ गया। १८४८ ई० में उसका राज्य भारतीय ब्रिटिश साम्राज्यमें मिला लिये जानेपर यह भी उसीका भाग हो गया।

कांग्रेस–देखिये, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस।

कांची–भारतमें हिन्दुओंकी सात पवित्र नगरियोंमेंसे एक। इसका पहला ऐतिहासिक उल्लेख समुद्रगुप्त (लगभग ३३५–८० ई०) के इलाहाबाद स्तम्भलेखमें मिलता है। इसके अनुसार गुप्त सम्राट्‌ने कांचीके राजा विष्णुगोपको अपने अधीन किया था। कांची, जिसे अब कांजीवरम् कहते हैं, पल्लवों (दे०) की राजधानी रही है। ह्युएन-त्सांग लगभग ६४० ई० में इस नगरमें आया था। उस समय नरसिंहवर्माके शासनमें पल्लव राजशक्ति अपने चरम उत्कर्षपर थी। ह्युएन-त्सांगके अनुसार कांची ५ या ६ मीलके घेरेमें बसी एक विशाल नगरी थी और उसमें अनेकानेक हिन्दू, बौद्ध तथा जैन मंदिर थे। कांची प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य धर्मपालकी जन्मस्थली भी है। वैष्णव आचार्य रामानुजने इसी नगरीमें शिक्षा प्राप्त की थी और अनेक वर्षोंतक वे यहाँ रहे थे। पल्लवों और चालुक्योंके

अनवरत युद्धोंके कारण कांचीको काफी क्षति उठानी पड़ी। चालुक्योंने इस नगरीमें अनेक भव्य मंदिर बनवाये, जिनमें कैलासनाथका मंदिर सबसे प्रसिद्ध है।

कांसीजोड़ा कांड–ईस्ट इंडिया कम्पनीके शासनकालमें कलकत्ता स्थित सुप्रीम कोर्ट और सपरिषद् गवर्नर-जनरल (सुप्रीम कौंसिल) के बीच एक जमींदारके मामलेको लेकर होनेवाला संघर्ष। कांसीजोड़ाके जमींदार (राजा)से अपना कर्ज वसूलनेके लिए एक व्यक्तिने जमीदारके खिलाफ सुप्रीम कोर्टमें मुकदमा दायर किया। सुप्रीम कोर्टने मुकदमेको विचारार्थ स्वीकार करते हुए जमीदारके खिलाफ समादेश जारी किया, जिसमें उससे अदालतमें पेश होनेको कहा गया था। लेकिन उक्त जमीदारकी इस आपत्तिपर कि वह न तो कम्पनीका सेवक है और न कलकत्तावासी है, अतः उसपर सुप्रीम कोर्टका क्षेत्राधिकार लागू नहीं होता, सुप्रीम कौंसिल अर्थात् सपरिषद् गवर्नर-जनरलने सुप्रीम कोर्टसे कहा कि वह इस मामलेको आगे न बढ़ाये। लेकिन सुप्रीम कोर्ट अपना क्षेत्राधिकार बढ़ानेपर तुला हुआ था, इसलिए उसने अपने अधिकारियोंको जमींदारकी गिरफ्तारीके लिए भेजा। सुप्रीम कौंसिलने इसके जवाबमें फौरन अपने सिपाहियोंको उन अधिकारियोंकी गिरफ्तारीके लिए भेज दिया जो जमींदारको गिरफ्तार करनेके लिए सुप्रीम कोर्ट द्वारा भेजे गये थे। इस प्रकार कार्यपालिका और न्यायपालिकाके बीच कटु संघर्षकी स्थिति पैदा हो गयी। लेकिन सुप्रीम कोर्टके मुख्य न्यायाधीश सर एलिजा इम्पीको काफी अधिक भत्ता देकर सदर दीवानी अदालतका भी मुख्य न्यायाधीश बना दिये जानेसे संघर्ष टल गया। इम्पी द्वारा इस पदका स्वीकार किया जाना उचित नहीं समझा गया। उसपर बादमें जो महाभियोग लाया गया, उसका एक कारण यह भी था। **(आई० बी० बनर्जी कृत 'दि सुप्रीम कोर्ट इन कनफ्लिक्ट')**

काकतीय वंश–बारहवीं शताब्दीमें कल्याणीके चालुक्य वंशका पतन होनेके बाद प्रतिष्ठित। उसने ओरंगलके राज्यकी स्थापना की। उसके राजा प्रतापरुद्रदेव द्वितीयको १३१० ई० में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीकी फौजोंने हरा दिया। अलाउद्दीनने उससे हर्जानेके रूपमें भारी रकम ऐंठी और वार्षिक कर देनेका वचन लिया। सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक (१३२०–२५ ई०) के शासनकालमें इस राज्यको अंतिम रूपसे समाप्त कर दिया गया और उसे दिल्लीकी सल्तनतमें मिला लिया गया।

काकबर्न, कर्नल जेम्स–ईस्ट इंडिया कम्पनीकी बम्बई फौजका अधिकारी। प्रथम मराठा-युद्ध (दे०) के दौरान उसका सामना मराठोंकी सेनासे हुआ। उसने भयभीत होकर पीछे हटनेका फैसला किया और बड़गाँव जा पहुँचा। वहाँ यह महसूस होनेपर कि अब इससे पीछे हटना संभव नहीं है, उसने मराठोंसे बडगाँवका समझौता कर लिया। यह समझौता कम्पनीको अपमानजनक लगा और उसने उसे तोड़ दिया। काकबर्नको इसके बाद नौकरीसे निकाल दिया गया।

काच–गुप्तकालके कुछ सिक्कोंपर पाया गया नाम। संभवतः इस नामका राजकुमार द्वितीय गुप्त सम्राट्, समुद्रगुप्त (दे०) ही था।

काचार–आसाम प्रदेशका अब एक जिला, जिसका सदर मुकाम सिल्चर है। इसका इतिहास पुराना है, जिसका पता अनेक शताब्दियों पूर्वसे चलता है। यहाँ अनेक राजा ऐसे हो चुके हैं जो अपनेको भीम, पाँच पाण्डवोंमेंसे द्वितीयके वंशज होनेका दावा करते थे। ऐतिहासिक कालमें यह अधिकतर अहोम राजाओंका अधीनस्थ एवं उनका संरक्षित राज्य रहा है। तत्कालीन शासक राजा गोविन्दचन्द्रकी साठगांठसे १८१९ ई० में बर्मियोंने इसे रौंद डाला था, लेकिन शीघ्र ही अंग्रेजोंने बर्मियोंको काचारसे बाहर निकाल दिया और उन्होंने बदरपुर (मार्च १८२४ ई०) की संधि द्वारा गोविन्दचन्द्रको काचारके राजाके रूपमें पुनः शासनारूढ़ कर दिया। इसके बदलेमें उसने ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सत्ताको स्वीकार कर लिया और दस हजार रुपये वार्षिक खिराजके रूपमें देनेको राजी हो गया। किन्तु गोविन्दचन्द्र प्रशासनकी दुर्व्यवस्थाके कारण स्थानीय विद्रोहियोंको दबा सकनेमें विफल रहा और प्रजाको भारी करभारसे पीड़ित करने लगा, फलतः १८३० ई०में उसकी हत्या कर दी गयी। उसका कोई उत्तराधिकारी नहीं था, अतः अगस्त १८३२ ई० की एक घोषणाके द्वारा काचार ब्रिटिश साम्राज्यमें मिला लिया गया। तबसे यह निरन्तर भारतका एक भाग है। **(गेट–'हिस्ट्री आफ़ आसाम')**

काचारी–एक जनजाति। विश्वास किया जाता है कि ब्रह्मपुत्रकी घाटीमें बसनेवाली यह सबसे प्राचीन जाति है। आसामके आधुनिक काचार जिलेका नामकरण इसी जनजातिके आधार पर हुआ है। तेरहवीं शताब्दीमें काचारी लोगोंका राज्य ब्रह्मपुत्र नदीके दक्षिणी तट तक फैला हुआ था। उनके राज्यमें अधिकांश आधुनिक नौगाँव जिला और काचार जिलेका कुछ भाग सम्मिलित था। उनकी राजधानी गोलाघाटके आधुनिक नगरसे पैंतालीस मील दक्षिण, धनश्री नदीके तटपर स्थित डीमापुर थी। अहोम (दे०) लोगोंने १५३६ ई०में उनके राज्यको

जीत लिया और काचारी लोग डीभापुर छोड़कर भाग गये। इस नगरके अब खंडहर मिलते हैं। पराजित काचारी लोगोंने एक नये राज्यकी स्थापना की और मैबोंगको अपनी राजधानी बनाया। किन्तु इसके बाद भी अहोम राजाओंसे उनकी बराबर लड़ाइयाँ होती रहती थीं। अहोम राजाओंका कहना था कि वे उनके आश्रित हैं। उनका अंतिम राजा गोविन्दचन्द्र था, जिसे १८१८ ई० में मणिपुर (दे०) के राजाने हरा दिया। १८२१ ई० में बर्मियोंने उसके राज्य-पर अधिकार कर लिया। १८३६ ई० में ब्रिटिश भारतीय सरकारने बर्मियोंको निकाल बाहर किया और गोविन्द-चन्द्रको पुनः उसकी गद्दी मिल गयी। परन्तु, १८३० ई० में एक मणिपुरी आक्रमणकारीने उसकी हत्या कर दी। उसके निस्संतान होनेके कारण १८३२ ई०में उसका राज्य ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया।

काजी–भारतमें मुसलमान शासनकालमें न्याय विभागका उच्च अधिकारी।

काटन, सर आर्थर टामस (१८०३–९९)–मद्रासमें ईस्ट इंडिया कम्पनीका एक प्रख्यात इंजीनियर। वह दक्षिण भारतमें सिंचाई सम्बन्धी कार्योंका विशेषज्ञ था। उसने कावेरी, कोलरून, गोदावरी और कृष्णा नदियों द्वारा सिंचाई करनेकी योजनाएँ बनायीं व पूरी कीं और इस प्रकार तंजौर, त्रिचिनापल्ली और दक्षिणी अर्काट जिलोंकी सिंचाई-व्यवस्थाको सुधारा। उसने गोदावरी जिलेमें गोदावरी नदीपर एक बाँधका निर्माण भी किया। वह भारतीय हाईड्रालिक इंजीनियरिंग विद्याका जनक था। १८६१ ई० में उसे 'नाइट' की उपाधिसे विभूषित किया गया। सन् १८६२ में उसने कम्पनीकी सेवाओंसे अवकाश ग्रहण किया और १८९९ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी कृति 'पब्लिक वर्क्स इन इंडिया' अपने विषयका एक मानक ग्रन्थ है।

काटन, सर विलिऔबी (१७८३–१८६०)–१८२१ ई० में सैनिक अफसरके रूपमें भारत आया। उसने प्रथम बर्मी-युद्ध (दे०) (१८२५–२६ ई०) और प्रथम अफगान-युद्ध (दे०) (१८३८–३९ ई०) में भाग लिया और १८४१ ई०में ब्रिटिश सेनाके नष्ट कर दिये जानेसे पूर्व ही काबुलसे लौट आया। बादको उसे सेनाका प्रधान सेनापति (कमांडर-इन-चीफ) बनाया गया। इस पदपर वह १८४१ ई० से ५० ई० तक रहा।

काटन, सर सिडनी (१७९२–१८७४)–१८१० ई० में एक सैनिक अफसरकी हैसियतसे भारत आया और उसने मद्रास, बंगाल और बम्बई प्रेसीडेंसियोंमें सेवा की। उसने १८१७-१८ ई० में पिंडारी-युद्ध (दे०), १८२८ में बर्मी-युद्ध (दे०) और १८४२–४३ में सिंध-युद्ध (दे०) में भाग लिया। १८५३ ई० में पश्चिमोत्तर सीमापर ब्रिटिश सेनाकी कमान उसके हाथमें थी। १८५७ ई० के भारतीय स्वाधीनता संग्राम (जिसे अंग्रेजोंने 'सिपाही विद्रोह'का नाम दिया) के समय वह पेशावरमें ब्रिगेडियर जनरल था। अपनी सूझ-बूझ और दूरदर्शितासे उसने वहाँ किसी प्रकार-का उपद्रव नहीं होने दिया। इससे आश्वस्त होकर पंजाब सरकारने राज्यकी अधिकांश ब्रिटिश सेनाको दिल्लीमें विद्रोह दबानेके लिए भेज दिया। उसकी दो पुस्तकें—'नाइन इयर्स आन दि नार्थ वेस्टर्न फ्रंटियर' (पश्चिमोत्तर सीमापर नौ वर्ष) और 'सेंट्रल एशियन क्वेश्चन' (मध्य एशियाका मसला) अपने विषयकी उल्लेखनीय पुस्तकें मानी जाती हैं।

काटन, सर हेनरी जान स्टेडमेन (१८४५–१९१५)–१८६७ ई० में भारतीय सिविल सेवामें नियुक्त। वह उन्नति करते हुए १८९१ ई० में बंगालका मुख्य सचिव (चीफ सेक्रेटरी) हो गया। १८९६ ई० में उसकी नियुक्ति भारत सरकारके गृह-सचिव पदपर हुई और इसके बाद वह, आसामका मुख्य आयुक्त (चीफ कमिश्नर) बनाया गया। इस पदपर वह १८९६ से १९०२ई०में अवकाश ग्रहण करने तक बना रहा। वह बहुत ही उदारवादी सिविल अधिकारी था, इस कारण भारतीय राष्ट्रवादका प्रमुख समर्थक बन गया। उसे १९०४ ई०में बम्बईमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके २०वें अधिवेशनका अध्यक्ष चुना गया। अपने भाषणमें उसने पहली बार भारतमें स्वतंत्र और पृथक् राज्योंके महासंघ 'संयुक्त राज्य भारत' की स्थापनाका सुझाव रखा। **(पी० सीतारमैया कृत 'हिस्ट्री आफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस'–खण्ड एक)**

काठमांडू–नेपालकी राजधानी। १८१५ ई० में अंग्रेजोंने इसपर हमला किया था, परन्तु गोरखाओंने उन्हें पीछे खदेड़ दिया।

काठियावाड़ (सौराष्ट्र)–भारतके पश्चिमी भागमें स्थित। यह पहले मौर्य साम्राज्यके अंतर्गत था। उसके बाद इसपर शक क्षत्रपोंका शासन हुआ, जो कुषाण राजाओंको 'शाहोंका शाह' मानते थे। बादमें काठियावाड़ गुप्त साम्राज्यका भाग रहा और हर्षवर्धन (६०६–४७ ई०) ने भी इसपर राज्य किया। इसके बाद यह स्थानीय हिन्दू राजाओंके अधीन रहा। लगभग ७१२ ई०में मुहम्मद-इब्न-कासिमके नेतृत्वमें अरबोंने इसे जीत लिया। फिर भी हिन्दू तीर्थयात्री यहाँ बड़ी संख्यामें आते रहे। विशेषरूपसे सोमनाथके

शिव मंदिरमें पूजा करनेके लिए बहुतसे हिन्दू आते थे। १०२६ ई०में सुल्तान महमूदने सोमनाथके प्रसिद्ध मंदिरपर अधिकार कर लिया और उसे नष्ट कर डाला। धीरे-धीरे काठियावाड़ मुसलमानोंके नियंत्रणमें चला गया। तीसरे मराठा-युद्ध (दे०) के बाद यह ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें शामिल कर लिया गया।

कादम्ब—एक कुल जो तीसरी शताब्दी ईसवीमें उत्तरी, दक्षिणी तथा पश्चिमी कर्नाटकमें राज्य करता था। बनवासी अथवा वैजयंती उनकी राजधानी थी। वे लोग जातिसे ब्राह्मण थे, परन्तु, कर्मसे क्षत्रिय माने जाते थे। उनका पहला राजा मयूर शर्मा था जो चौथी शताब्दी ई०में हुआ। उसके उत्तराधिकारियोंके बारेमें हमें कुछ पता नहीं है। उनका दर्जा धीरे-धीरे घटकर स्थानीय सामंतका रह गया और वे अधीनस्थ पदोंपर कार्य करने लगे। विजयनगरके राजाओंका शायद कादम्बवंशसे संबंध रहा हो।

कादियान—पंजाबका एक कसबा। मिर्जा गुलाम अहमद (१८३८—१९०८ ई०), जिन्होंने मुसलमानोंमें सुधार आंदोलन चलाया, यहीं रहते थे। उनके अनुयायी उनके निवास-स्थानके नामपर 'कादियानी' कहलाते हैं। कट्टर मुसलमान कादियानी लोगोंको विधर्मी मानते हैं, क्योंकि वे मिर्जा गुलाम अहमदके पैगंबर होनेका दावा करते हैं।

कानपुर—उत्तर प्रदेशमें गंगा तटपर स्थित एक पुराना नगर। ब्रिटिश शासनके प्रारम्भिक दिनोंसे ही यह नगर भारतका प्रमुख सैनिक-केन्द्र रहा है। १८५७ ई० के स्वतंत्रता-संग्राम (जिसे अंग्रेजोंने 'सिपाही-विद्रोह' या 'गदर' कहकर पुकारा) में इसने प्रमुख भूमिका अदा की। जिस समय स्वाधीनता-संग्राम छिड़ा, कानपुरके निकट बिठूरमें भूतपूर्व पेशवा बाजीरावके पुत्र नाना साहब रहते थे। उन्होंने अपनेको 'पेशवा' घोषित किया और कानपुर स्थित विद्रोही सिपाहियोंका नेतृत्व अपने हाथमें ले लिया। ८ जून १८५७ ई०को ब्रिटिश फौजी अड्डेको घेर लिया गया और २७ जूनको ब्रिटिश नागरिकोंने इस आश्वासनपर आत्म-समर्पण कर दिया कि उन्हें इलाहाबाद तक सुरक्षित जाने दिया जायगा। किन्तु ब्रिटिश सेना जिस समय नौकाओंके जरिये इस स्थानसे रवाना होनेकी तैयारी कर रही थी, उसपर प्राणघाती गोलाबारी शुरू कर दी गयी। चारको छोड़कर सारे ब्रिटिश सैनिक मारे गये। इस कत्ले-आमने अंग्रेजोंके दिमागमें बदलेकी जबर्दस्त भावना पैदा कर दी। नील और हैवलकके नेतृत्वमें अंग्रेजी सेनाने कानपुर शहरपर फिर कब्जा कर लिया और देशवासियोंपर भारी अत्याचार किये। नवम्बरके अन्तमें नगरपर विद्रोही ग्वालियर टुकड़ीका कब्जा था, लेकिन दिसम्बर १८५७ ई०के शुरूमें उसपर सर कोलिन कैम्पबेलने अधिकार कर लिया। आज-कल कानपुर प्रमुख औद्योगिक केन्द्र है। १९३१ ई०में यहाँ भयानक साम्प्रदायिक दंगा हुआ, जिसमें विख्यात कांग्रेस-नेता श्री गणेश शंकर विद्यार्थी शहीद हो गये।

कान्होजी आंग्रे—एक प्रसिद्ध मराठा जल-सेनापति अथवा समुद्री डाकू जो घेरिया तथा सुवर्णदुर्गके किलोंके सहारे बम्बईसे लेकर गोआ तक सारे समुद्र तटपर नियंत्रण रखता था।

काफमैन, जनरल—१८६७ ई० में तुर्किस्तानमें रूसकी ओरसे नियुक्त गवर्नर-जनरल। उसका अफगानिस्तानके अमीर शेरअलीसे पत्र-व्यवहार चल रहा था। शेर अलीने यह पत्र-व्यवहार ब्रिटिश भारतीय सरकारके पास भेज दिया। इसके आधारपर अफगानिस्तानको लेकर रूसी इरादोंके बारेमें संदेह किया जाने लगा। परन्तु इससे कोई लाभ नहीं हुआ। १८७८ ई०में दूसरा अफगान-युद्ध शुरू होनेपर शेर अलीने रूससे मदद देनेकी जो अपील की, उसका कोई नतीजा नहीं निकला और उसे रूसमें शरण लेने तकसे निरुत्साहित किया गया। जनरल काफमैनकी साजिशोंका फल यही निकला कि शेरअलीको अपनी गद्दीसे हाथ धोना पड़ा।

काफूर—मूल रूपमें एक हिन्दू हिजड़ा, जिसे एक हजार दीनारमें खरीदकर गुलाम बनाया गया था। इसीलिए वह 'हजारदीनारी' कहलाता था। वह सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीके सामने १२९७ ई०में गुजरात-विजय के तोहफेके रूपमें लाया गया था। वह शीघ्र ही सुल्तानकी नजरोंमें चढ़ गया। सुल्तानने उसे उच्च पद प्रदान किये और १३०७ ई०में उसे सल्तनतका मलिक नायब बना दिया। मलिक काफूर बहुत ही योग्य सेनापति सिद्ध हुआ और उसने देवगिरि, ओरंगल, घोरसमुद्र, मलाबार और मदुराको जीतकर सुल्तानके अधीन कर दिया और सल्तनतकी सीमाएँ रामेश्वरम् तक विस्तृत कर दीं। इन सब सफलताओंसे उसकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी और वह सुल्तान अला-उद्दीन खिलजीका सबसे विश्वस्त अधिकारी बन गया। उसने सुल्तानपर सबसे अधिक प्रभाव जमा लिया। सत्ता और प्रभावमें वृद्धिके साथ-साथ मलिक काफूरकी महत्त्वा-कांक्षाएँ भी बढ़ गयीं और १३१६ ई०में अलाउद्दीनकी मृत्यु होनेपर उसने उसके एक नाबालिग लड़केको गद्दीपर बैठा दिया और सारी सत्ता अपने हाथमें केन्द्रित रखी। इसके बाद उसने गद्दीको स्वयं हथिया लेनेका विचार किया।

उसने अलाउद्दीनके दो बड़े बेटोंकी आँखें निकलवा लीं, नाबालिग सुल्तानकी माँको कैद कर लिया और अलाउद्दीनके परिवारसे सम्बन्धित सभी सरदारों तथा गुलामोंको मरवा डालनेकी साजिश रची। परन्तु वह जिन लोगोंकी जान लेना चाहता था वे सब संगठित हो गये और उन्होंने उसके गद्दीपर बैठनेके पैंतीस दिन बाद ही उसे मार डाला।

काबुल–एक नगरका नाम और उस नदीका भी नाम, जिसके किनारे यह नगर बसा हुआ है। यह नगर आधुनिक अफगानिस्तानकी राजधानी है। काबुल नदी, जिसे प्राचीनकालमें 'कुभा' भी कहते थे, सिंधुमें आकर मिल जाती है। मौर्यकाल (दे०) में काबुल भारतीय साम्राज्यके अंतर्गत था। मौर्यवंशके पतनपर काबुलपर कई यवन राजाओंका शासन हुआ। यह कुषाणों (दे०) के भारतीय साम्राज्यका एक भाग था, परन्तु बादमें बाबरके समय तक यह प्रदेश भारतके अधीन नहीं रहा। बाबर काबुलका शासक था और १५२६ ई०में उसने दिल्लीको जीत लिया। उसके बाद नादिर शाह (दे०) के समय तक यह भारतीय साम्राज्यका भाग रहा। नादिर शाहने अफगानिस्तान जीत लिया और उसके मरनेपर अहमद शाह अब्दाली उसका शासक हुआ। उसके बादसे अफगानिस्तान स्वतंत्र राज्य हो गया है।

कामंदक–राजशास्त्रका एक भारतीय लेखक। उसका 'नीतिसार' अपने विषयका प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है।

कामता–कामरूप (दे०) का ही दूसरा नाम।

कामतापुर–आधुनिक कूच बिहारके कुछ मील दक्षिणमें स्थित। कामरूप राज्यके ह्रासकालमें खेन नामक जनजातिने वहाँ अपना राज्य स्थापित किया और कामतापुरको राजधानी बनाया। उन्होंने लगभग ७५ वर्ष तक इस राज्यपर शासन किया। लगभग १४९८ ई०में बंगालके अलाउद्दीन हुसेनशाह (दे०) ने इस राज्यको जीत लिया।

कामबख्श–बादशाह औरंगजेब (दे०) का पाँचवा पुत्र। बादशाहकी मृत्युके बाद उसकी गद्दीके लिए उसके पुत्रोंमें जो युद्ध हुआ, उसमें वह १७०७ ई०में लड़ते हुए मारा गया।

कामरान, शाहजादा–मुगल वंशके संस्थापक बादशाह बाबर (१५२६–३० ई०)का दूसरा पुत्र। पिताकी मृत्युपर उसके बड़े भाई, बादशाह हुमायूं (दे०) ने उसके साथ बड़ी उदारताका व्यवहार किया और उसे अफगानिस्तानका शासक बना दिया। परन्तु कामरान कृतघ्न निकला। उसने हुमायूंकी उस समय मदद नहीं की, जब वह शेरशाह (दे०) से युद्ध कर रहा था। जब वह भारतसे भागा तो उसने उसे शरण देनेसे भी इनकार कर दिया। हुमायूंने जब फारसके शाहकी फौजी मददसे कामरानको परास्त कर दिया, उससे गद्दी छीनकर उसे मार डाला, तभी वह दिल्लीपर फिरसे विजय प्राप्त करनेमें सफल हुआ।

कामरूप–देखो, आसाम।

कामाख्या मंदिर–आसाममें गोहाटीके निकट नीलाचलपर स्थित। विश्वास किया जाता है कि शिव जब अपनी पत्नी सतीका शव कंधेपर लिये हुए उन्मत्तके सदृश भ्रमण कर रहे थे तो विष्णु द्वारा उसके छिन्न-भिन्न कर दिये जानेपर देवीका योनिमंडल इसी पर्वतपर गिरा था। यह शाक्तोंका केन्द्र है और देशके सभी भागोंसे धर्मप्राण हिन्दू यहाँ आते हैं। वर्तमान मंदिर कोच राजा नरनारायण (१५४०–८० ई०) (दे०) ने बनवाया है।

काम्बर मेयर, स्टेपिलटन काटन, प्रथम वाई-काउण्ट (१७७३-१८६५)–ब्रिटिश फौजके लेफ्टीनेंट कर्नलकी हैसियतसे १७९९ ई०में भारत आया और उसने टीपू सुल्तान (दे०)के विरुद्ध युद्धमें भाग लिया। १८२२ ई०में वह भारतीय सेनाका कमांडर-इन चीफ (प्रधान सेनापति) हो गया और १८२६ ई०में उसने भरतपुरके दुर्गपर विजय प्राप्त की। वह १८३० ई०में कम्पनीकी सेवासे निवृत्त हुआ और १८६५ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी।

कायदे आजम–का अर्थ है महान् नेता। मुहम्मद अली जिन्ना (दे०)को इसी नामसे पुकारा जाता था। सबसे पहले महात्मा गांधीने उनके नामके साथ इस उपाधिका प्रयोग किया था।

कायस्थ–की गणना उच्च जातिके हिन्दुओंमें होती है। बंगालमें वर्ण-व्यवस्थाके अंतर्गत उनका स्थान ब्राह्मणोंके बाद माना जाता है। बहुतसे विद्वानोंका मत है कि बंगालके कायस्थ मूलरूपमें क्षत्रिय थे और उन्होंने तलवारके स्थानपर कलम ग्रहण कर ली और लिपिक बन गये। जैसोरका राजा प्रतापादित्य, चन्द्रद्वीपका राजा कन्दर्पनारायण तथा विक्रमपुर (ढाका)का केदार राम, जिसने अकबरका प्रबल प्रतिरोध किया और अनेक वर्षों तक मुगलोंको बंगालपर अधिकार करने नहीं दिया, सभी कायस्थ थे।

कारमाइकेल, लार्ड–बिहार तथा आसामसे पृथक् कर बंगालको गवर्नरका सूबा बनानेपर, उसका पहला गवर्नर।

काराजाल–भारत और चीनके बीचका एक क्षेत्र। सुल्तान मुहम्मद तुगलकने उसे जीतनेके लिए फौज भेजी, परन्तु वह इस कार्यमें बुरी तरह विफल हुआ। पूर्ववर्ती इतिहासकारोंने इस क्षेत्रको चीन समझ लिया और गलत तरीकेसे यह मत व्यक्त किया कि सुल्तानने अपनी सनकमें चीनपर चढ़ाई की, जिसमें उसकी फौज नष्ट हो गयी।

कारुवाकी (अथवा कालुवाकी)–अशोक मौर्यकी दूसरी रानी तथा तिवल अथवा तिवरकी माता थी। अशोककी रानियोंमें सिर्फ इसी रानीका नामोल्लेख उसके शिलालेखोंमें हुआ है। संस्कृतमें उसका नाम चारुवाकी रहा होगा।

कार्टियर, जान–ईस्ट इंडिया कम्पनीका एक कर्मचारी जो पदोन्नति कर बंगालका गवर्नर बन गया। इस पदपर उसने १७६९से १७७२ ई० तक कार्य किया। उसका प्रशासन भ्रष्टाचार और कृषकोंके हितोंकी उपेक्षाके लिए कुख्यात रहा, इसके ही शासन-कालमें भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा, जिसमें बंगाल और बिहारकी एक तिहाई जनसंख्या नष्ट हो गयी।

कार्नवालिस कोड–मई १७९३ में प्रचलित। यह जार्ज बार्लो द्वारा तैयार किया गया था, जो बादमें गवर्नर-जनरल बना। यह उन सभी प्रशासकीय सुधारोंपर आधारित है जो लार्ड कार्नवालिसने अपने शासनके दौरान (१७८६–९३) किये थे। बादमें इसीके आधारपर बंगाल और संपूर्ण भारतमें सिविल सेवाकी संस्थापना हुई। इस कोडका सबसे बड़ा दोष यह था कि इसके अन्तर्गत कम्पनीकी सभी उच्च सेवाओं व ऊँचे पदोंसे भारतीयोंको पूर्णतया वंचित कर दिया गया। ये सेवाएं पूर्णरूपसे यूरोपीयोंके लिए सुरक्षित कर दिये जानेसे भारत जैसे गरीब देशके लिए बहुत खर्चीली साबित हुई। यही नहीं, भारत जैसे विशाल देशके लिए अधिकारियोंकी संख्या अत्यन्त न्यून रखी गयी थी।

कार्नवालिस, चार्ल्स (प्रथम मारक्विस) (१७३८–१८०५)–अमेरिकी स्वाधीनता-संग्रामके दौरान यार्कटाउनमें तैनात। अक्तूबर १७८१ में उसे आत्मसमर्पण करना पड़ा, जिसके साथ ही अमेरिकामें अंग्रेजी आधिपत्य समाप्त हो गया। इसके पश्चात् कार्नवालिस भारतका गवर्नर-जनरल और बंगालका कमांडर-इन-चीफ (प्रधान सेनापति) नियुक्त किया गया। इस पदपर वह सात वर्षों (१७८६–९३) तक रहा। १८०५ ई०में वह इसी पदपर दुबारा भारत भेजा गया, किन्तु तीन महीने बाद ५ अक्तूबरको गाजीपुर (उ० प्र०)में उसकी मृत्यु हो गयी। अपने प्रथम कार्यकालमें कार्नवालिसने तीसरा मैसूर-युद्ध (दे०) (१७९०–९२) किया, जिसमें उसने हैदराबादके निजाम और मराठोंके साथ मिलकर मैसूरके टीपू सुल्तानपर दो बार चढ़ाई की। अंग्रेजी फौजें राजधानी तक पहुँच जानेपर टीपू सुल्तान श्रीरंगपट्टमकी संधि (दे०) (१७९२) करनेको बाध्य हुआ। इस संधिके अंतर्गत टीपूने अपने राज्यका आधा भाग अंग्रेजों, हैदराबादके निजाम और मराठोंको सुपुर्द कर दिया। इसमें अंग्रेजोंके हिस्सेमें मलाबार, कुर्ग, डिण्डीगुल और बड़ा महल पड़ा। कुर्गको संरक्षित राज्य बनाये रखा गया और बाकी तीन क्षेत्रोंको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया।

लार्ड कार्नवालिसके शासन-सुधार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उसने पहले बंगालमें कम्पनीके वाणिज्य प्रबन्धको सुधारा, व्यापार परिषद् (बोर्ड आफ ट्रेड)के सदस्योंकी संख्या ग्यारहसे घटाकर पाँच कर दी और यह व्यवस्था की कि कम्पनीको मालकी सप्लाईके ठेके कम्पनीके अधिकारियोंको न देकर व्यापारियोंको दिये जायँ। इससे कम्पनी नीची दरोंपर माल खरीद सकती थी। नवाबके हाथोंसे फौजदारी मुकदमे करनेका अधिकार छीनकर वह सदर निजामत अदालत कलकत्ता ले गया, जहाँ सदर दीवानी अदालत वारेन हेस्टिंग्स द्वारा पहले ही स्थानान्तरित की जा चुकी थी। सदर निजामत अदालतकी अध्यक्षता सदर काजी और मुफ्तियोंकी सहायतासे गवर्नर-जनरल तथा उसकी परिषद् करती थी। चार सरकिट अदालतें स्थापित की गयीं। इनमेंसे हर अदालतमें काजी और मुफ्तियोंकी मददसे दो ब्रिटिश जज न्याय करते थे। इन जजोंको सालमें दो बार पूरे जिलेका दौरा करना पड़ता था और फौजदारीके मुकदमे निपटाने होते थे। चार प्रांतीय अपील-अदालतें कलकत्ता, पटना, ढाका और मुर्शिदाबादमें स्थापित की गयीं, जिनका काम दीवानीके बड़े मुकदमोंका फैसला करना और मुंसिफके अधीनस्थ नीची अदालतोंकी अपीलकी सुनवाई करना था। प्रांतीय अदालतोंके फैसलोंके विरुद्ध सदर दीवानी अदालतमें अपील की जा सकती थी। बंगालको प्रशासनकी दृष्टिसे कई जिलोंमें बाँटा गया। हर जिलेमें राजस्व-वसूलीका अधिकार कलेक्टरको सौंपा गया और न्याय करने तथा मुकदमोंका फैसला करनेकी जिम्मेदारी जिला जजको सौंपी गयी। हर जिलेमें एक पुलिस अधीक्षककी भी नियुक्ति की गयी, जिसका काम जिलेके अंदर कानून और व्यवस्था बनाये रखनेमें सहायता करना था। पुलिस अधीक्षकको जजके अधीन कार्य करना पड़ता था। प्रत्येक जिलेको विभिन्न थानोंमें विभाजित किया गया। थानेका इंचार्ज दारोगा (पुलिस सब-इंसपेक्टर) बनाया गया, जिसका काम स्थानीय पुलिसपर नियंत्रण रखना और जमींदारोंको शांति-व्यवस्था सम्बन्धी उस दायित्वसे मुक्त करना था, जो वे दीर्घकालसे निबाहते आ रहे थे। दारोगासे ऊपरके ओहदे वाले सभी अधिकारियोंके पदपर सिर्फ गौरांगोंकी नियुक्ति की जाती थी और भारतीयोंको जान-बूझकर

ऐसे पदोंसे वंचित रखा जाता था। उनकी नियुक्ति छोटे पदोंपर की जाती थी। इस प्रकार भारतीयोंको उनकी अपनी ही भूमिमें उच्च सेवाओंसे वंचित करना और सभी ओहदोंके गौरांग अधिकारियोंको ऊँचा वेतन देना बंगालमें कार्नवालिसके सिविल प्रशासनका मूल आधार था। इस शासन प्रणालीकी नकल कुछ आवश्यक परिवर्तनोंके साथ अन्य प्रांतोंमें भी की गयी। लेकिन यह शासन-प्रणाली बहुत खर्चीली थी, इसी वजहसे अधिक समय तक चल नहीं सकी। कार्नवालिस द्वारा किये गये इन समस्त शासन-सुधारोंका समावेश 'कार्नवालिस कोड' (दे०) में किया गया।

लार्ड कार्नवालिस द्वारा किया जानेवाला सबसे महत्त्वपूर्ण शासन-सुधार बंगालमें लगानका स्थायी बंदोबस्त था। इसके अंतर्गत जमींदारोंको उनकी जमीनका मालिक मान लिया गया। वे इस जमीनको अपने पास इस शर्तपर बराबर रख सकते थे कि उससे प्राप्त होनेवाले अनुमानित मालगुजारीका ९० प्रतिशत अंश हर साल एक निश्चित तिथिपर सूर्यास्तसे पहले कम्पनीके कोषागारमें जमा करते रहें। निश्चित तिथिपर मालगुजारी जमा न करनेपर दंड-स्वरूप सम्बन्धित जमींदारकी जमीन जब्त कर ली जाती थी और नीलामीमें सबसे ऊँची बोली लगानेवालेको बेच दी जाती थी। इस जमींदारी प्रथाके द्वारा कम्पनीको मालगुजारीसे निश्चित वार्षिक आय होने लगी और उसने बंगालमें भूस्वामियोंका ऐसा वर्ग पैदा कर दिया जिसके हित कम्पनीके हितोंसे मजबूतीके साथ बँध गये। किन्तु इस प्रथासे प्रांतीय सरकारोंको कृषि-उत्पादनोंके बढ़े हुए मूल्यों, बेहतर प्रशासन और सामान्य आर्थिक सुधारके फलस्वरूप बढ़ी हुई मालगुजारीका कोई अंश न मिलता था और किसानको पूरी तरहसे जमींदारोंकी कृपापर छोड़ दिया गया था। लेकिन इन त्रुटियोंके बावजूद बंगाल, बिहार और उड़ीसामें सन् १७९३में लागू किया गया यह स्थायी बन्दोबस्त भारतमें समूचे ब्रिटिश शासनकालमें प्रचलित रहा। **(डब्लू० एस० सेक्टन कार कृत 'दि मारक्विस आफ कार्नवालिस', एफ० डी० असकोली कृत 'अर्ली रिवाइज्ड हिस्ट्री आफ बंगाल')**

कालंजर (कालिंजर)—उत्तर प्रदेशके बांदा जिलेमें। कालंजरका किला बहुत मजबूत माना जाता था और उसपर अधिकार करनेके लिए पड़ोसके हिन्दू राजा लालायित रहते थे। १२०३ ई०में शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने इस किलेको जीत लिया, परन्तु बादमें राजपूतोंने उसे फिर ले लिया। १५४५ ई०में उसे शेरशाहने छीन लिया, परन्तु किलेपर घेरा डालनेके समय वह बारूदमें आग लग जानेसे जलकर मर गया। इसके बाद ही राजपूतोंने किला फिर ले लिया। १५६९ ई०में बादशाह अकबरने राजपूतोंसे किला जीता। इसके बाद वह मुगल साम्राज्यका एक भाग बन गया। मुगलोंके पतनपर वह अंग्रेजोंके निमंत्रणमें आ गया।

कालचक्र यान—बौद्धधर्मके विविध सम्प्रदायोंमेंसे एक, जिसकी प्रवृत्ति अद्वैतवादकी ओर है। यह तिब्बत तथा उड़ीसामें लोकप्रिय था।

कालसी—उत्तर प्रदेशमें देहरादून जिलेका एक गाँव। यहाँपर एक विशाल शिलापर अशोकके चौदह शिलालेख ब्राह्मी लिपिमें उत्कीर्ण मिले हैं।

काला पहाड़ (उर्फ राजू)—एक ब्राह्मण, जो मुसलमान बन गया था। वह बड़ा योग्य सेनापति था और बंगालके सुलेमान कर्रानी (दे०) (१५६५—७२ ई०) की सेनामें उसने भारी ख्याति प्राप्त की। १५६८ ई०में उसने उड़ीसापर चढ़ाई की, वहाँ के राजाको पराजित किया और पुरीके जगन्नाथ मंदिरको लूटा। इसके बाद उसने राजा नरनारायण (दे०) के भाई चिला रायकी कोच सेनाको हराया। आसाममें वह तेजपुर तक चढ़ गया और गौहाटीके निकट कामाख्या मंदिरको नष्ट कर दिया। परन्तु १५८३ ई०में वह राजमहलके निकट एक नौसैनिक लड़ाईमें बादशाह अकबरकी फौजोंसे हार गया और मारा गया।

कालाशोक (जो **काकवर्ण** भी कहलाता है)—मगध (दे०)के राजा शिशुनागका उत्तराधिकारी। वह राजधानीको गिरिव्रजसे उठाकर पाटलिपुत्र ले आया। उसीके राज्यकालमें, गौतम बुद्धके निर्वाण (लगभग ४८६ ई०) के लगभग सौ वर्ष बाद, बौद्धोंकी द्वितीय संगीति हुई। अज्ञात कारणोंसे उसकी हत्या कर दी गयी।

कालिदास—संस्कृतके कवियों और नाटककारोंका शिरोमणि। उसके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं-रघुवंश (महाकाव्य), शकुंतला (नाटक), मालविकाग्निमित्र (नाटक), मेघदूत (खंडकाव्य) तथा ऋतुसंहार (गीतिकाव्य)। उसका काल विवादका विषय है। लोकानुश्रुतिके अनुसार वह राजा विक्रमादित्यकी राजसभाका कवि था। विक्रमादित्यकी पहचान चन्द्रगुप्त द्वितीय (लगभग ३७५—४१३ ई०)से की जाती है और लोक-परम्पराके आधारपर उसका जो काल (चौथी शताब्दीका अंतिम भाग तथा पाँचवीं शताब्दीका प्रारम्भिक भाग) निर्धारित किया जाता है, वह शायद सही है।

कालीकट—पन्द्रहवीं शताब्दीका मलाबार तटपर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह। २७ मई १४९८ ई०में पुर्तगाली अन्वेषक एडमिरल वास्कोडिगामा तीन जहाजोंके साथ

इस बन्दरगाहपर उतरा । यहाँके हिन्दू राजा ने, जो 'जमोरिन' कहलाता था, उसका स्वागत किया । इस घटनाने समुद्र मार्गसे आनेवाले साहसी यात्रियोंके लिए देशके द्वार खोलकर भारतीय इतिहासकी धारा बदल दी । इससे भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यकी स्थापनाका मार्ग प्रशस्त हो गया ।

कालीकाता (अथवा कालीघाट)—देखिये, 'कलकत्ता' ।

काल्विन, जान (१७६७–१८५७)—कलकत्ताके एक अंग्रेज व्यापारीका पुत्र । उसका जन्म कलकत्तामें ही हुआ था । उसने सन् १८२६में इंडियन सिविल सर्विसमें प्रवेश किया और उन्नति करते-करते गवर्नर-जनरल लार्ड आकलैण्ड (दे०)के निजी-सचिव पद तक पहुँच गया । जान काल्विन-ने गवर्नर-जनरलकी अफगान नीतिको बहुत ज्यादा प्रभावित किया था । वह सन् १८५३से १८५७में अपनी मृत्युके समय तक पश्चिमोत्तर प्रांत (आधुनिक उत्तर प्रदेश)का लेफ्टिनेंट-गवर्नर रहा । उसकी मृत्यु १८५७के स्वाधीनता-संग्राम (सिपाही-विद्रोह)के दौरान हुई जिसकी उसने कभी कल्पना नहीं की थी । इस विद्रोहके कारण चिंता और कठोर परिश्रमने उसके स्वास्थ्यको जर्जर कर दिया और उसकी मृत्यु हो गयी ।

कावेनेन्टेड सिविल सर्विस—देखिये, 'कम्पनी-राजकी सिविल सर्विस' ।

काशगर—मध्य तुर्किस्तानका एक राज्य, जो पहले चीनके नियंत्रणमें था । कुषाण सम्राट् कनिष्क (लगभग १२०–४८ ई०) ने उसे अपने अधीन कर लिया । चीनी यात्री ह्युएन-त्सांगके यात्रा-विवरण से प्रकट होता है कि सातवीं शताब्दीमें काशगरमें बौद्ध धर्मका व्यापक प्रभाव था । पुरातात्त्विक अनुसंधानोंसे प्रकट हुआ है कि इस क्षेत्रमें भारतीय संस्कृतिका प्रचार-प्रसार विशेषरूपसे था ।

काशी—देखिये, 'बनारस' ।

काशीराज पंडित—एक मराठा वाकयानवीस । सदाशिव राव भाऊके नेतृत्वमें जो मराठा सेना उत्तरी भारतमें भेजी गयी और जिसने १७६१ ई०में पानीपतकी लड़ाईमें हिस्सा लिया, वह उसीके साथ नियुक्त था । उसने सावधानीसे जाँच-पड़तालके बाद अपने खरीते पूना दरबार भेजे थे । इन खरीतोंमें पानीपतकी लड़ाईका विवरण भी है । यह विवरण अब अंग्रेजी भाषामें 'एकाउण्ट आफ दि बैटिल आफ पानीपत' शीर्षकसे आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित कर दिया गया है । काशीराज पंडित कुशल पर्यवेक्षक था ।

काशीराम दास—बंगालमें पैदा हुआ एक कवि । उसने सोलहवीं शताब्दीमें बंगला भाषामें महाभारत लिखा । बंगालमें एक-एक बच्चा उसका नाम जानता है और उसका महाभारत बंगला साहित्यकी एक सबसे लोकप्रिय तथा सम्मानित पुस्तक है ।

काश्यप मातङ्ग—पहला भारतीय भिक्षु, जो चीनमें बौद्ध धर्मका प्रचार करनेके लिए लगभग ६७ ई०में वहाँ गया । चीनी सम्राट् मिंग (५८–७५ ई०)ने अपने कुछ दूत भेजे थे । उन्हींके निमंत्रणपर वह चीन गया था । वह मगधमें जन्मा था, परन्तु जिस समय चीन जानेका निमंत्रण मिला, वह गंधारमें रहता था ।

कासिम खां—एक मुगल सरदार, जिसे बादशाह शाहजहाँ (१६२७–५६ ई०)ने बंगालका सूबेदार नियुक्त किया । शाहजहाँने उसे हुक्म दिया था कि वह बंगालसे पुर्तगाली व्यापारियोंको निकाल बाहर कर दे, क्योंकि उन्हें व्यापार करनेका जो अधिकार प्रदान किया गया था, उसका वे दुरुपयोग कर रहे थे । कासिम खांने १६३२ ई०में हुगलीपर अधिकार कर लिया और बंगालमें व्यापार करनेवाले पुर्तगालियोंके होश ठिकाने लगा दिये । १६५८ ई०में कासिम खांको राजा जसवंत सिंहके साथ बागी शाहजादों, औरंगजेब और मुरादको रोकने तथा उन्हें दक्खिनसे उत्तर भारतमें न आने देनेके लिए भेजा गया । धर्मट (दे०)में शाही फौजका बागी शाहजादोंकी फौजसे मुकाबला हुआ । कासिम खांने इस युद्धमें अपने मालिकको जितानेके लिए कोई कोशिश नहीं की और युद्धमें शाही फौज हार गयी ।

कासिम बरीद—बहमनी सुल्तान महमूद (दे०) (१४८२-१५१८ ई०)का वजीर । १४९२ ई०से कासिम बरीद एक प्रकारसे बहमनी साम्राज्यसे बीजापुर, बराड़-गोलकुंडा तथा अहमदनगरके निकल जानेके बाद, राजधानीके आसपासके उसके हिस्सेका शासक रहा । कासिम बरीद बरीदशाही वंशका संस्थापक माना जाता है, जिसने १६१९ ई० तक बिदरपर राज्य किया । १६१९ ई०में बिदरपर बीजापुरने अधिकार कर लिया ।

कासिम बाज़ार—पश्चिमी बंगालके मुर्शिदाबाद जिलेमें भागीरथीके तटपर स्थित । मुर्शिदाबाद नगर बंगालके नवाबोंकी राजधानी था और कासिम बाजारका उसके अत्यधिक निकट होना फिरंगी व्यापारियोंके लिए विशेष आकर्षणकी बात थी । ब्रिटिश, फ्रांसीसी और डच, सभी लोगोंने यहाँपर अपने कारखाने स्थापित किये । १६८६ ई०में बंगालके नवाबने पहले तो ब्रिटिश कारखानेको जब्त कर लिया, बादको १६९० ई०में उसे लौटा दिया । नवाब

सिराजुद्दौलाने १७५६ ई०में उसपर फिर कब्जा कर लिया और रेजीडेंट तथा उसके सहायक (वारेन हेस्टिंग्स)को मुर्शिदाबादमें बंदी बना लिया गया। लेकिन पलासी युद्धके बाद कम्पनीने उसे सिराजुद्दौलाके हाथोंसे वापस छीन लिया। इसके बाद १७७० ई० तक इस कस्बेकी सम्पन्नता बराबर बढ़ती रही। किन्तु १७७० ई०में भीषण अकाल पड़ा, जिससे कासिम बाजारके आसपास बहुत-से खेत वीरान हो गये। १८१३ ई०में भागीरथीकी धारा भी हटकर शहरसे तीन मील दूर चली गयी। फलतः व्यापारिक क्षेत्रके रूपमें कासिम बाजारकी पुरानी महत्ता समाप्त हो गयी।

कास्मास इंदिकोप्लूसटेस—एक यवन (यूनानी) व्यापारी, जो बादको भिक्षु हो गया। उसने ५३५ ई०से ५४७ ई० तक भूमध्यसागर, लाल सागर और फारसकी खाड़ीके क्षेत्रों तथा श्रीलंका और भारतकी यात्रा की और अपनी पुस्तक 'क्रिश्चियन टोपोग्राफी' में अपना यात्रा-वृत्तांत विस्तारसे लिखा। पुस्तकसे श्रीलंका तथा पश्चिमी समुद्र-तटपर स्थित अन्य देशोंके साथ भारतके व्यापारके सम्बन्धमें बहुमूल्य जानकारी मिलती है। **(जे० डब्लू० मेक्रिंडिल कृत 'ऐंशिऐंट इंडिया')**

किचनर, होरेशियो हूबर्ट, अर्ल (१८५०-१९१६ ई०)—१९०२ ई० में भारतका प्रधान-सेनापति नियुक्त। इससे पहले वह मिस्रके सेनापतिकी हैसियतसे मिस्र तथा सूडानकी लड़ाइयों (१८९६-९९ ई०)में और १९०० में दक्षिण अफ्रीकाके युद्धमें नामवरी हासिल कर चुका था। भारतके प्रधान-सेनापतिकी हैसियतसे उसने सेनामें अनेक प्रशासनिक सुधार किये तथा सामरिक दृष्टिसे ब्रिटिश तथा भारतीय फौजोंकी अलग-अलग छावनियोंमें फिरसे तैनाती की। लार्ड किचनरको उदार नहीं कहा जा सकता। उसने वाइसरायकी एक्जीक्यूटिव कौंसिलमें भारतीय सदस्यकी नियुक्तिका विरोध किया।

भारतमें उसके प्रशासन-कालकी सबसे महत्त्वपूर्ण घटना फौजी प्रशासनके प्रश्नपर वाइसराय लार्ड कर्जन (दे०)से उसका तीव्र विवाद था। विवादास्पद प्रश्न यह था कि क्या वाइसरायकी एक्जीक्यूटिव कौंसिलमें प्रधान सेनापतिके अतिरिक्त सैनिक सदस्य भी होना चाहिए। सैनिक सदस्य फौजका आदमी था, परन्तु वह पद तथा सैनिक अनुभवमें प्रधान सेनापतिसे छोटा था। लार्ड किचनरका कहना था कि सैनिक सदस्यका पद तोड़ दिया जाना चाहिए तथा एक्जीक्यूटिव कौंसिलमें प्रधान सेनापतिको सैनिक मामलोंमें एकमात्र निर्णायक अधिकारी होना चाहिए। लार्ड कर्जन लार्ड किचनरके इस प्रस्तावके विरुद्ध था। यह विवाद अंतिम रूपसे तय करनेके लिए भारत-मंत्रीके पास भेजा गया। उसने एक समझौता प्रस्तुत किया, जिसे किचनरने स्वीकार कर लिया, परन्तु कर्जनको वह स्वीकार नहीं हुआ और उसने इस्तीफा दे दिया। किचनरने इस तरह काफी यश पैदा करके भारतसे अवकाश ग्रहण किया। अगस्त १९१४ में प्रथम विश्वयुद्ध शुरू होनेपर लार्ड किचनर-को युद्ध मंत्रणालयका अधिकारी बना दिया गया और इस पदपर उसने बड़ी सफलताके साथ काम किया। जून १९१६ ई०में 'हैम्पशायर' जहाजपर सवार होकर वह जब एक महत्त्वपूर्ण फौजी तथा कूटनीतिक कार्यसे स्कापा फ्लोसे रूस जा रहा था तो मार्गमें एक बारूदी सुरंगसे टकराकर जहाज डूब गया और उसकी मृत्यु हो गयी।

किलपैट्रिक, कर्नल जान—ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें मद्रासमें नियुक्त। अंधेरी तंग कोठरीकी दुर्घटना (जो 'ब्लैक होलकी घटना' नामसे सरनाम है) (दे०) का समाचार पाकर किलपैट्रिकको २३० सिपाहियोंके साथ बंगाल भेजा गया। कलकत्तासे दक्षिण, हुगलीके तटपर स्थित फुल्टा नामक स्थानमें जिन अंग्रेजोंने शरण ले रखी थी, उनकी सहायताके लिए पहुँचनेवाली यह पहली ब्रिटिश कुमुक थी। बादमें क्लाइव (दे०) तथा वाटसन (दे०)के पहुँचनेपर उसने कलकत्तापर फिरसे अधिकार करनेमें भाग लिया। खबर है कि पलासीकी लड़ाईसे ठीक पहले युद्ध कौंसिलकी जो बैठक हुई थी, उसमें किलपैट्रिकने सेनाको आगे बढ़नेका आदेश देनेके विरुद्ध वोट दिया। क्लाइवने पहले इस निर्णयको मान लिया, परन्तु बादमें उसे अस्वीकार कर दिया। किलपैट्रिक १७८७ ई०में मर गया।

किलागुल मुहम्मद—क्वेटाके निकट एक छोटा-सा स्थान। पुरातात्त्विक अनुसंधानोंसे प्रकट हुआ है कि यहाँ प्रागैति-हासिक कालकी एक पाषाणकालीन ग्राम सभ्यता वर्तमान थी, जब मिट्टीके बरतनोंका प्रचलन नहीं था।

किशलू खां—मुलतान तथा सिंधका नाजिम। उसने सुल्तान मुहम्मद तुगलक (१३२५-५१ ई०)के खिलाफ विद्रोह कर दिया। परन्तु १३२८ ई०में एक लड़ाईमें उसे हराकर मार डाला गया।

की-पिन—की पहचान कश्मीरसे और गंधार (दे०) से भी की जाती है। गंधारसे उसकी पहचान अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होती है। इतना निश्चित है कि यह प्रदेश अफ-गानिस्तान और पंजाबके बीच में स्थित था और तक्षशिला भी इसीके अंतर्गत थी। इसपर शकों (दे०)का अधिकार

था। बादमें इसपर कुषाण राजा कदफिसस प्रथम (लगभग ४०–७८ ई०) का अधिकार हो गया।

कीरतसागर–बुंदेलखंडमें महोबाके निकट एक सुंदर झील। इसका निर्माण चंदेल राजा कीर्तिवर्मा (लगभग १०४९–११०० ई०)ने कराया। यह झील ग्यारह मीलके घेरेमें थी और इसके तटपर कई मंदिर बने हुए थे।

कीरत सिंह–बुंदेलखंडमें कालंजरका राजा। रींवाके बघेल राजा वीरसिंह (अथवा बीर खां) को शरण देनेके कारण शेरशाह सूर (१५४०–४५ ई०) उससे कुपित हो गया। १५४५ ई०में शेरशाहने जब कालंजरका किला लेनेकी कोशिश की तो कीरतसिंहने उसकी फौजोंका डटकर मुकाबला किया। शेरशाहने किला सर कर लिया, परंतु इस से पहले वह सांघातिक रूपसे घायल हो गया। बादमें शेरशाहके लड़के इसलाम शाहने कीरत सिंहको मार डाला।

कीरत सिंह–आमेरके राजा जयसिंह (दे०) का लड़का। खबर है कि बादशाह औरंगजेबके भड़कानेपर उसने १६६७ ई०में अपने पिताको जहर देकर हत्या कर डाली। राजा जयसिंहकी मृत्यु हो जानेपर औरंगजेबने संतोषकी गहरी साँस ली।

कीर्तिवर्मा–एक चंदेल राजा, जो बुंदेलखंडपर राज्य (लगभग १०४९–११०० ई०) करता था। वह बड़ा पराक्रमी था। उसने चेदि (मध्यप्रदेश) राजा कर्णदेव (दे०)को पराजित कर अपने राज्यका काफी विस्तार किया। उसने प्रजाकी भलाईके लिए अनेक कार्य किये। उसने कीरतसागर (दे०) झील बनवायी। वह विद्वानोंका आश्रयदाता था। 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटकके रचयिता श्रीकृष्ण मिश्रको उसका आश्रय प्राप्त था।

कुजुल कदफिसस–देखिये, 'कदफिसस प्रथम'।

कुणाल–अशोकका पुत्र? उसका उल्लेख अशोक अथवा उसके किसी उत्तराधिकारीके शिलालेखमें नहीं मिलता। उसको लेकर अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं जो मनमें करुणा उत्पन्न करती हैं। कहा जाता है कि वह अपनी सौतेली माँ तिष्यरक्षिताका कोपभाजन बन गया। तिष्यरक्षिताका भी उल्लेख अशोकके किसी शिलालेखमें नहीं मिलता। उसने उसकी आँखें फोड़वा दीं और अशोककी आज्ञासे उसे तक्षशिलाके शासकके पदसे हटा दिया। बादमें अशोकको अपनी गलतीका पता चला। कहा जाता है कि भिक्षु घोषने बुद्धकी करुणापर जोप्रवचन किया, उसे सुनकर धर्मनिष्ठ भिक्षुओंके कपोलोंपर अश्रुधारा बह चली। उसे लगानेसे ही कुणालके ज्योतिहीन नेत्रोंमें ज्योति आ गयी, जिससे अशोकको सान्त्वना प्राप्त हुई।

कुतलग खां–सुल्तान मुहम्मद तुगलक (१३२५–५१ ई०) द्वारा दक्खिनका नाजिम (सूबेदार) नियुक्त किया गया। राजधानीसे दूर होने तथा सुल्तानके सनकभरे आदेशोंसे असंतुष्ट होकर उसने बगावत कर दी, किन्तु सुल्तानने १३४४–४५ ई०में उसकी बगावत कुचल दी।

कुतलग, ख्वाजा–मंगोलोंका सरदार। उसने १२९९ ई०में भारतपर विजय प्राप्त करनेके उद्देश्यसे चढ़ाई की। दिल्लीके बाहर एक युद्धमें सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (१२९६–१३१६ ई०)के एक बहुत ही योग्य सिपहसालार जफर खांने उसे हरा दिया और वह भारतसे वापस लौट गया। उसे इतना ही संतोष मिला कि युद्धमें उसका विजयी प्रतिद्वन्द्वी जफर खां मारा गया।

कुतुब मीनार–दिल्ली तथा भारतमें मुसलमान शासनकालकी सबसे शानदार इमारत। नीचेके भागको छोड़कर, यह पूरी मीनार सुल्तान इल्तुतमिशके हुक्मसे १२३२ ई०में बनायी गयी। इसका नीचेका भाग पहले सुल्तान कुतुबुद्दीनने बनवाया था। सम्भवतः इसका नामकरण कुतुबुद्दीनके नामपर नहीं, वरन् उस संतके नामपर किया गया है जिसे यहाँ दफन किया गया था।

कुतुबशाही वंश–स्थापना १५१८ ई०में कुली कुतुबशाह (दे०)के द्वारा, जो सुल्तान मुहम्मद शाह तृतीय (दे०) तथा उसके उत्तराधिकारी महमूद शाह (दे०)के राज्यकालमें बहमनी राज्यके पूर्वी भागका हाकिम था। महमूद शाहकी मृत्युपर उसने अपनेको गोलकुंडाका स्वतंत्र सुल्तान घोषित कर दिया और कुतुबशाही वंशकी स्थापना की, जिसने १५१८ ई०से १६८७ ई० तक राज्य किया। इस वंशके प्रारम्भिक सुल्तान जमशेद (१५४३–५० ई०), इब्राहीम (१५५०–८० ई०) तथा मुहम्मद कुली (१५८०–१६११ ई०) थे। जमशेद पितृघातक था। इब्राहीम योग्य शासक था। उसने १५६५ ई०में तालीकोटकी लड़ाई (दे०)में विजयनगर साम्राज्यको पराजित करनेमें भाग लिया। १६८७ ई०में औरंगजेबने कुतुबशाही वंशका उच्छेद कर दिया।

कुतुबुद्दीन ऐबक–दिल्लीका पहला मुसलमान सुल्तान। मूल रूपसे तुर्किस्तानका रहनेवाला था, जो गुलामके रूपमें खरीदकर शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी (दे०)की सेवामें उपस्थित किया गया। अपनी योग्यता के कारण वह मालिकका कृपापात्र बन गया। ११९२ ई०में तराईकी दूसरी लड़ाई (दे०)में विजयके बाद शहाबुद्दीन भारतमें युद्ध जारी रखनेका भार अपने विश्वासपात्र गुलाम और

सिपहसालार कुतुबुद्दीन ऐबकपर छोड़कर खुरासान वापस लौट गया। कुतुबुद्दीनने बड़ी योग्यताके साथ मालिकके द्वारा सौंपा गया काम पूरा किया। ११९३ ई०में उसने दिल्लीपर अधिकार कर लिया और दोआबपर चढ़ाई की। अगले दस सालों (११९३–१२०३ ई०)में उसने अपने मालिकको कन्नौज, ग्वालियर, अन्हिलवाड़, अजमेर तथा कालंजर फतह करनेमें मदद दी। इस बीचमें कुतुबुद्दीनके एक सहायक, बख्तियार (दे०)के पुत्र मुहम्मदने बिहार और बंगाल जीत लिया था।

इस तरह शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीकी मृत्युके समय तक कुतुबुद्दीन ऐबकने अपनी प्रतिष्ठा इतनी बढ़ा ली थी कि शहाबुद्दीनके मरनेके बाद उसके भारतीय साम्राज्यका उत्तराधिकारी नियुक्त होनेमें उसे किसी कठिनाईका सामना नहीं करना पड़ा। उसकी गणना दिल्लीके पहले सुलतानके रूपमें की जाती है। उसने १२०६ ई०से १२१० ई०में मृत्यु होने तक राज्य किया। कुतुबुद्दीन बुद्धिमान् राजनीतिज्ञ था। उसने अनुभव किया कि मुहम्मद गोरीसे उसका खूनका रिश्ता नहीं है, अतएव उसने मुहम्मद गोरीके प्रमुख सहयोगियोंको अपना समर्थक बना लेना उचित समझा। फलतः उसने किरमानके हाकिम ताजुद्दीन मिल्दिजकी पुत्रीसे स्वयं विवाह कर लिया और अपनी बहिनका विवाह सिंधके हाकिम नासिरुद्दीन कुबाचा (दे०) तथा अपनी पुत्रीका विवाह अपने प्रमुख गुलाम तथा सबसे योग्य सिपहसालार इल्तुतमिशसे कर दिया। कुतुबुद्दीनने केवल चार वर्ष (१२०६–१० ई०) राज्य किया और पोलोके मैदानमें दुर्घटनाग्रस्त हो जानेसे उसकी मृत्यु हो गयी। वह शक्तिशाली और क्रूर विजेता तथा शासक था, परन्तु इसके साथ ही उसमें सौन्दर्यको परखनेकी सहज वृत्ति भी थी, जिसके फलस्वरूप उसने कुतुबमीनार (दे०) बनवाना शुरू किया था।

कुतुबुद्दीन कोका–बादशाह जहाँगीर (१६०५–२७ ई०) का दूध-भाई था। जहाँगीरने तख्तपर बैठनेके बाद ही उसे शेर अफगान (दे०)को दरबारमें लानेके लिए भेजा था, जिसने मेहरुन्निसा (भावी मलका नूरजहाँ) (दे०)से शादी कर ली थी और उस समय बंगालमें बर्दवानमें उसे जागीर मिली हुई थी। कोका शांतिपूर्ण रीतिसे शेर अफगानको पकड़कर ला नहीं सका। दोनोंमें युद्ध छिड़ गया, जिसमें दोनों मारे गये।

कुतुबुद्दीन मुबारक–खिलजी वंशका अंतिम सुल्तान तथा सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (दे०)का पुत्र एवं उत्तराधिकारी। उसने १३१६से १३२० ई० तक राज्य किया। गद्दीपर बैठनेके बाद ही उसने देवगिरिके राजा हरपाल देवपर चढ़ाई की, युद्धमें उसे परास्त किया और उसे बंदी बनाकर उसकी खाल उधेड़वा दी। इस सफलताके फलस्वरूप उसका दिमाग फिर गया। वह अपना समय सुरा तथा सुन्दरीमें बिताने लगा। १३२० ई० में उसके कृपापात्र खुसरो खांने उसकी हत्या कर डाली। उसकी मृत्युके साथ खिलजी वंशका अंत हो गया।

कुन्हा, नूनो दा–१५३७ ई०में दिवका पुर्तगाली गवर्नर, उसने अपने समकालीन गुजरातके सुल्तान बहादुरशाह (१५२६–३७)को अपने जहाजपर सैरके लिए आमंत्रित किया और कुचक्र रचकर उसकी हत्या करा दी। सुल्तान जिस समय जहाजसे उतर रहा था कुन्हाने उसपर हमला करा दिया। सुल्तानने जान बचानेके लिए उछलकर जहाजके अंदर जानेकी कोशिश की किन्तु पुर्तगाली नाविकने उसके सिरपर प्रहार किया और उसे मार डाला।

कुबेर–देवराष्ट्रका राजा। प्रयागके स्तम्भ-लेखके अनुसार समुद्रगुप्त (दे०)ने उसे युद्धमें बंदी बनानेके बाद मुक्त कर दिया था। देवराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेशके विजगापट्टम जिलेमें स्थित बताया जाता है।

कुबेरनागा–चन्द्रगुप्त द्वितीय (लगभग ३८०–४१३ ई०)की एक रानी थी।

कुब्ज विष्णुवर्धन–चालुक्य राजा पुलकेशी द्वितीय (लगभग ६०९–४२ ई०)का छोटा भाई। पुलकेशीने ६११ ई०में अपने छोटे भाईको कृष्णा और गोदावरी नदियोंके मध्यमें स्थित वेंगिके राज्यका शासक नियुक्त कर दिया। इसकी राजधानी पिष्टपुर, आधुनिक पीठापुरम् थी। लगभग ६१५ ई०में कुब्ज विष्णुवर्धनने अपनेको वेंगिका स्वतंत्र राजा बना लिया और पूर्वी चालुक्य वंश (दे०) की स्थापना की, जिसने १०७० ई० तक राज्य किया।

कुमराहार–बिहारमें बाँकीपुरके निकट एक गाँव। यहींपर प्राचीन पाटलिपुत्र (दे०) नगर स्थित था।

कुमार–देखिये, 'भास्करवर्मा'।

कुमारगुप्त प्रथम–चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (लगभग ३७५–४१३ ई०)का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। उसने ४१३ ई०से ४५३ ई० तक राज्य किया, उत्तराधिकारमें प्राप्त विशाल गुप्त साम्राज्यकी अखंडता बनाये रखी और शायद उसका और विस्तार किया, क्योंकि अपने पितामह समुद्रगुप्तकी भांति उसने भी अश्वमेध यज्ञ किया था; परन्तु उसके राज्यकालमें गुप्त साम्राज्यके ऊपर विपत्तिके बादल घहराने लगे थे। पहले तो पुष्यमित्रोंने, जिन के बारेमें कुछ ज्ञात नहीं है, साम्राज्यपर आक्रमण किया;

उनके खदेड़ दिये जानेके बाद हूणोंके आक्रमण आरम्भ हो गये। कुमारगुप्तके पुत्र स्कन्दगुप्तके नेतृत्वमें हूणोंको पराजित करके उनकी बाढ़ रोक दी गयी। इन सब विपत्तियोंके कालमें ही कुमारगुप्त प्रथमकी मृत्यु हो गयी।

कुमारगुप्त द्वितीय–कुमारगुप्त प्रथमका प्रपौत्र। उसने लगभग ४७३ ई०में अपने पिता नरसिंहगुप्त बालादित्यसे सिंहासन प्राप्त किया और ४७४ ई० तक राज्य किया। उसका राज्य उसके पूर्वजोंके विशाल साम्राज्यके पूर्वी प्रांतों तक सीमित था। उसने बहुत थोड़े समय राज्य किया। वह पुत्रहीन था और उसके बाद गुप्तवंशकी सीधी वंश-परम्परा समाप्त हो गयी।

कुमारघोष–बंगालका प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु, जो जावाके शैलेन्द्र राजवंश (दे०) का गुरु हो गया। उसके आदेशसे एक शैलेन्द्र राजाने जावामें ताराका सुन्दर मंदिर बनवाया।

कुमारजीव–जन्म ३४४ ई०में। उसका पिता कुमार अथवा कुमारायन था। उसकी माता मध्य एशिया स्थित कूचाके राजाकी बहन, राजकुमारी जीवा थी। कुमारजीवकी जीवन-कहानी सामान्य रूपसे भारतसे बाहर भारतीय संस्कृति, और विशेष रूपसे बौद्धधर्मके प्रसारकी कहानी है। उसने पहले कूचामें और फिर कश्मीरमें शिक्षा पायी। २० वर्षकी अवस्थामें वह बौद्ध भिक्षु हो गया। वह कूचामें रहकर महायानी बौद्धधर्मकी शिक्षा देने लगा। जब वह बन्दी बनाकर चीन ले जाया गया तो चीनी सम्राट् याओ हीनने ४०१ ई०में उससे अपने राज्यमें बौद्धधर्मका प्रचार करनेको कहा। इसके बाद वह चीनकी राजधानी चांग-आनमें बस गया और ४१३ ई० में अपनी मृत्यु तक वहीं रहा।

कुमारजीवने अपने जीवनकालके इन अंतिम बारह वर्षोंमें चीनी विद्वानोंकी सहायतासे, जिन्हें चीनी सम्राट्ने उसकी सेवामें नियुक्त कर दिया था, अठ्ठानवे संस्कृत बौद्ध ग्रन्थोंका चीनी भाषामें अनुवाद किया। इन ग्रन्थोंमें 'प्रज्ञापारमिता', 'विमलकीर्ति-निर्देश' तथा 'सद्धर्म पुंडरीक सूत्र' नामक ग्रन्थ भी हैं जो महायानी निकायके मूल सिद्धांत-ग्रंथ हैं। उसने बहुतसे चीनियोंको अपना शिष्य बनाया। उसका सबसे प्रसिद्ध चीनी शिष्य फा-हियान था, जिसने उसके कहनेसे ४०५–११ ई०में भारतकी यात्रा की। इस तरह कुमारजीवने महायानी बौद्धधर्मकी विजय-पताका फहरायी जिसका प्रसार पहले चीनमें और फिर वहाँसे कोरियामें और फिर जापान में हुआ। वृहत्तर भारतके निर्माणमें कुमारजीव और उसके चरण-चिह्नोंपर चलनेवाले अन्य अनेकानेक भारतीय बौद्ध भिक्षुओंका बहुत बड़ा हाथ है।

कुमारदेवी–लिच्छवि राजकुमारी, चन्द्रगुप्त प्रथम (लगभग ३२०–३० ई०)के साथ विवाहित और प्रसिद्ध समुद्रगुप्त (लगभग ३३०–३८० ई०)की माता। विश्वास किया जाता है कि लिच्छविकुमारीके विवाह-सम्बन्धने चन्द्रगुप्त प्रथमके उत्कर्षमें बहुत सहायता दी और उसके पुत्रने अपने शिलालेखमें गर्वके साथ अपने लिच्छवि-दौहित्र होनेका उल्लेख किया है।

कुमारपाल–एक चालुक्य राजकुमार, जिसे राज्याधिकारियोंने गुजरातकी गद्दीपर बैठाया। उसने अह्लिलवाड़को राजधानी बनाकर ११४३ ई०से ११७२ ई० तक राज्य किया। वह पक्का जैन धर्मानुयायी और प्रसिद्ध जैन आचार्य हेमचन्द्रका संरक्षक था। अहिंसाका प्रचार करनेके उद्देश्यसे उसने राजाज्ञाकी अवहेलना करके जीव-हिंसा करनेवाले बहुतसे लोगोंको सूलीपर चढ़ा दिया। उसने अनेक जैन मन्दिरोंका निर्माण कराया।

कुमारपाल–बंगालके पालवंशका बादका राजा। वह रामपालका पुत्र था और लगभग ११२० ई०में पिताके सिंहासन-पर बैठा। उसने केवल पाँच वर्ष राज्य किया। उसके राज्यकालमें पालवंशका अपकर्ष आरम्भ हो गया। कामरूपमें कुमारपालके कृपापात्र तथा अमात्य विद्यादेवने एक स्वतंत्र राज्यकी स्थापना कर ली।

कुमारामात्य–गुप्त साम्राज्यके उच्च राज्याधिकारियोंकी एक पदवी। कवि हरिषेणको, जिसने इलाहाबाद स्तम्भपर उत्कीर्ण समुद्रगुप्त (दे०)की प्रशस्तिकी रचना की, 'कुमारामात्य'के अतिरिक्त 'महादंड नायक' (सेनाका अधि-कारी) आदिकी पदवियाँ भी प्राप्त थीं। कुमारामात्य या तो महाराजाधिराज या युवराज या प्रांतीय शासककी सेवामें रहता था।

कुमारिल भट्ट–हिन्दुओंके धर्मसूत्रों एवं पूर्व-मीमांसा दर्शनके विद्वान् भाष्यकार। वे आत्माको नित्य मानते थे और बौद्ध-धर्म एवं दर्शनके प्रखर आलोचक थे। वे दक्षिण भारतके निवासी थे और लगभग ७०० ई०में हुए।

कुम्भा–मेवाड़का राणा (१४३१–६८ ई०)। मेवाड़के सबसे महान शासकोंमें उसकी गणना की जाती है। उसने मालवा तथा गुजरातके सुल्तानोंकी शक्तिशाली सेनाओंको मेवाड़से दूर रखा। वह महान वास्तु-निर्माता था। उसने मेवाड़की रक्षाके लिए स्थापित चौरासी दुर्गोंमेंसे बत्तीस दुर्गोंका निर्माण कराया। इन दुर्गोंमें कुम्भलगढ़ सैनिक दृष्टिसे सबसे अधिक उल्लेखनीय है। उसने जयस्तम्भ

(जिसे 'कीर्तिस्तम्भ' भी कहते हैं) का निर्माण कराया। वह केवल महान् शासक तथा योद्धा ही नहीं, प्रतिभाशाली कवि, प्रकांड विद्वान् तथा प्रसिद्ध संगीतज्ञ भी था।

'कुरल' (अथवा तिरुक्कुरल)—तमिल भाषाका महत्त्वपूर्ण काव्यग्रंथ। इसकी रचना ईसवी सन्‌की प्रारम्भिक शताब्दियोंमें हुई। गोदावरीके दक्षिणका यह सबसे प्रतिष्ठित और लोकप्रिय ग्रंथ है। इसमें सदाचार और नीति विषयक अनेक शिक्षाएँ हैं जो आज भी तमिल लोगोंकी जबानपर रहती हैं।

कुरान—मुसलमानोंकी सबसे पवित्र पुस्तक। उसमें उनके पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहबकी वाणी संगृहीत है। इसलामी धर्मशास्त्र तथा राजशास्त्र उसीपर आधारित है। इस किताबको 'खुदाका कलाम' माना जाता है, जो पैगम्बर मुहम्मद साहबपर उतारी गयी थी।

कुरुक्षेत्र—प्रसिद्ध युद्धभूमि, जहाँ महाभारतके अनुसार १८ दिन तक कौरवों और पांडवोंके बीच इस बातका निर्णय करनेके लिए भीषण युद्ध हुआ कि दोनोंमेंसे कौन उत्तरी भारतका सार्वभौम शासन करेगा। इस युद्धमें पांडवोंकी विजय हुई। कुरुक्षेत्र दिल्लीके निकट ही स्थित था। यह स्थान पानीपतसे अधिक दूर नहीं है, जहाँ तीन बार भारतका भाग्य-निर्णय हुआ। पश्चिमी विद्वान् कुरुक्षेत्रके युद्धकी ऐतिहासिकतामें संदेह करते हैं, परंतु सभी धर्मनिष्ठ हिन्दुओं-का विश्वास है कि यह युद्ध हुआ था।

कुर्ग—अब मैसूर (कर्नाटक) राज्यका एक जिला। यह पश्चिमी घाटके पठारपर प्रायद्वीपके दक्षिणमें स्थित है। इस जिलेकी पुरानी राजधानी मरकारा और अब यहाँकी राजभाषा कन्नड़ है। यहाँ चावल और काफीकी पैदावार बहुतायतसे होती है। यहाँकी काफीने ही खासतौरसे अंग्रेजोंका ध्यान इस जिलेकी ओर आकर्षित किया। इस जिलेका नाम कुर्ग नामक कबायलियोंके आधारपर पड़ा, जो मूलरूपसे यहाँके निवासी थे। इस जिलेका इतिहास नवीं और दसवीं शताब्दीके बादसे ही मिलता है जब इसका शासन गंग राजाओं (दे०) के हाथमें था। ११वीं शताब्दीमें गंगवंशी राजाओंके पदच्युत कर दिये जानेपर इसका शासन क्रमशः चोल और होयसलोंके हाथ में आ गया। इसके बाद यह विजयनगर साम्राज्यका अंग बन गया। विजयनगरका पतन होनेपर राजपरिवारके एक राजकुमारने इस क्षेत्रपर अपना शासन स्थापित किया और उसके वंशज तबतक यहाँ शासन करते रहे, जबतक वह १८३४ ई० में ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला नहीं लिया गया। मैसूरके हैदरअली और उसके पुत्र टीपू सुल्तानने इसपर अपने प्रभुत्वका दावा किया, यद्यपि कुर्ग बार-बार मुस्लिम शासनके खिलाफ विद्रोह करते रहे। १७८८ ई० में जब लार्ड कार्नवालिसने टीपू सुल्तानसे युद्ध छेड़ा तो उसने वीरराजाके साथ एक संधि की, जो अपनेको कुर्गका शासक कहता था। बादको मार्च १७९२ ई० में टीपू सुल्तानने भी ईस्ट इंडिया कम्पनीके साथ संधि की, जिसके अनुसार टीपूने कुर्ग कम्पनीको दे दिया और कम्पनीने वीरराजाको कुर्गके स्वतंत्र शासकके रूपमें मान्यता दी। १८०९ ई० में वीरराजाकी मृत्यु हो गयी और १८२० ई० में वीरराजा द्वितीय उत्तराधिकारी बना। वह बहुत ही निर्दय और भ्रष्ट था। अतः गवर्नर-जनरल लार्ड विलियम बेण्टिकने १८३४ ई० में उसे अपदस्थ कर कुर्गको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया। इसके बाद जब तक भारतमें ब्रिटिश शासन रहा, कुर्गका प्रशासन बराबर पृथक् राज्यके रूपमें चीफ कमिश्नर (मुख्य आयुक्त) द्वारा चलाया जाता रहा। १९५१ ई० में इसका विलय भारतीय गणतंत्रमें हो गया और अब यह मैसूर राज्यका एक जिला है। **(पी० एस० मुत्तन्ना कृत 'कुर्ग और कुर्गवासी')**

कुर्नूल—पुराने मद्रास प्रान्तकी छोटी-सी रियासत, जिसका शासन नवाबके हाथमें था। लार्ड आकलैंड (१८३६–४२ ई०) के शासनकालमें इस रियासतको ब्रिटिश भारतीय राज्यमें मिला लिया गया, क्योंकि यह संदेह किया जाता था कि नवाब अंग्रेजोंके विरुद्ध षड्यंत्र कर रहा है।

कुर्रम (अथवा कोट्टम)—चोल राज्यमें प्रशासनकी एक इकाई। इसके अंतर्गत गाँवोंका एक समूह होता था, जिसका स्थानीय प्रशासन महासभाकी सहायतासे चलाया जाता था। महासभाका वार्षिक चुनाव सम्पन्न करानेके लिए विस्तृत नियम थे। कुर्रम (अथवा कोट्टम) को राजाके अधीन स्थानीय स्वशासनके विस्तृत अधिकार प्राप्त थे। उसकी ओरसे स्थानीय कर लगाये जाते थे। उसका स्थानीय खजाना भी होता था। अपने क्षेत्रकी भूमिपर उसका पूरा नियंत्रण रहता था। वह अपनी समितियाँ नियुक्त करती थी, जिसके द्वारा अपने क्षेत्रके जलाशयों और उद्यानोंकी देखभाल करती थी। वह अपने क्षेत्रमें शांति और न्यायकी भी व्यवस्था करती थी।

कुली कुतुबशाह—एक तुर्क सरदार, जो बहमनी सुल्तान मुहम्मद तृतीय (दे०) (१४६३–८२ ई०) का नौकर था। सुल्तानके वजीर मुहम्मद गवाँ (दे०) की कृपादृष्टि होनेके कारण वह पदोन्नति करके बहमनी राज्यके पूर्वी भाग अर्थात् गोलकुंडाका हाकिम नियुक्त हो गया। १४८१ ई० में

अपने संरक्षक मुहम्मद गवाँका-वध कर दिये जानेपर उसने बिदरके दरबारसे नाता तोड़ लिया और १५१८ ई०में अपनेको गोलकुंडाका सुल्तान घोषित कर दिया। उसने १५४३ ई० तक शासन किया। उस समय जब उसकी अवस्था नब्बे वर्षकी हो चुकी थी, उसके पुत्र जमशेदने उसकी हत्या कर दी। उसने कुतुबशाही वंशकी स्थापना की, जिसने गोलकुंडापर १६८७ ई० तक राज्य किया। १६८७ ई०में औरंगजेब (दे०)ने गोलकुंडा जीत लिया और उसे मुगल साम्राज्यमें मिला लिया।

कुलीनतावाद—का प्रवेश बंगालके ब्राह्मणोंमें बंगालके दूसरे सेन राजा, वल्लालसेन (लगभग ११५८–७६)ने किया। बादमें उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी लक्ष्मणसेन (लगभग ११७६–१२०६ ई०)ने इसका विस्तार किया। इस प्रथाका मूल उद्देश्य स्पष्ट नहीं है, परन्तु बादके समयमें यह सामाजिक उत्पीड़नका एक बहुत बड़ा कारण बन गया। इसके द्वारा विवाह-सम्बन्ध केवल उन्हीं घरानोंमें सीमित कर दिया गया, जिन्हें कुलीन माना जाता था। परिणामस्वरूप कुलीन ब्राह्मण घरानोंमें वरके अभावमें बहुत-सी कन्याएं अविवाहित रह जाती थीं। फलतः एक-एक कुलीन ब्राह्मणके साथ कई-कई कुलीन कन्याओंका पल्ला बाँध देनेकी प्रथा चली, जिनके भरण-पोषणका कोई भार उसके ऊपर नहीं रहता था। इस प्रथासे बहुत-सी सामाजिक बुराइयाँ पैदा हो गयीं और उन्नीसवीं शताब्दीके अंग्रेजी पढ़े-लिखे बंगालियोंने इस प्रथाका तीव्र विरोध कियां। यद्यपि इधर हालके वर्षोंमें यह प्रथा उतनी कठोर नहीं रह गयी है जितनी पहले थी, तथापि बंगालके कुलीन हिन्दुओंमें यह अब भी वर्तमान है।

कुलोत्तुङ्ग प्रथम—चोल राजा राजेन्द्र प्रथम (दे०) (१०१२-४४ ई०)की पुत्री अम्मभङ्गदेवी और पूर्वी चालुक्य राजा राजराज नरेन्द्र प्रथम (१०२२–६३ ई०)का पुत्र। चोल राजा अधिराजेन्द्र (१०६७–७० ई०)की मृत्यु हो जानेपर वह सिंहासनपर बैठा और इस प्रकार एक नये चालुक्य-चोल वंशका सूत्रपात हुआ। उसने १०७० से ११२२ ई० तक राज्य किया। उसके वंशने चोल राज्यपर १०७० ई० से लेकर १२७९ ई० में उसकी समाप्ति तक राज्य किया। वह सुयोग्य शासक था। उसने कलिंगको जीता और चोल राज्यमें मालगुजारीकी व्यवस्थाका व्यापक संशोधन किया। उसके पूर्ववर्ती चोल राजा अधिराजेन्द्रकी धार्मिक असहिष्णुताकी नीतिके कारण आचार्य रामानुज (दे०) चोल राज्यसे बाहर चले गये थे। कुलोत्तुङ्गके राज्यकालमें वे वापस लौट आये और चोल राजधानी श्रीरंगम्में रहने लगे।

कुलोत्तुङ्ग चोल द्वितीय—चालुक्य-चोल वंशका तीसरा राजा। उसने ११३३ से ११५० ई० तक राज्य किया।

कुलोत्तुङ्ग चोल तृतीय—चालुक्य-चोल वंशका अंतिम राजा। उसने ११७८ से १२१८ ई० तक राज्य किया। उसने पाण्ड्य देशपर कई चढ़ाइयां कीं और कुछ समयतक उसे अपने अधीन रखा। कहा जाता है कि १२०८ ई० में उसने वेङ्गि (दे०) पर भी आक्रमण किया। परंतु १२१६ ई० में उसे पाण्ड्य शक्तिसे परास्त होना पड़ा और पाण्ड्य राजा सुन्दरकी अधीनता स्वीकार करके ही वह अपनी गद्दी वापस पा सका। इसके बाद चालुक्य-चोल वंशका पराभव हो गया।

कुल्लूक—एक धर्मशास्त्रज्ञ विद्वान्, जिनका जन्म बंगालमें हुआ, परंतु काशीमें रहते थे। उनका समय चौदहवीं शताब्दीका मध्यकाल है। उन्होंने मनुसंहितापर (दे०) 'मन्वर्थमुक्तावली' नामक संस्कृत-टीका लिखी है, जिसका हिन्दू समाजपर बहुत व्यापक प्रभाव रहा है।

कुशीनगर—उत्तर प्रदेशके गोरखपुर जिलेमें स्थित आधुनिक कसिया। यहांपर गौतम बुद्धने निर्वाण प्राप्त किया था।

कुषाण—युहारी कबीलेके लोग, जो यायावर जीवन व्यतीत करता था। बैक्ट्रियामें बस जानेके बाद इस कबीलेने यायावर जीवन त्याग दिया। ईसवी सन्से पूर्वकी पहली शताब्दीमें उसके भारतपर हमले शुरू हो गये। इस कबीलेकी कई शाखाएं थीं, जिनमें कुषाण भी थे। अंतमें कुजुल कर कदफिसस (दे०) के नेतृत्वमें कुषाणोंने अन्य चार शाखाओंपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। कुजुल कर कदफिससने बादमें भारतमें कुषाण राजवंशकी स्थापना की और भारतीय इतिहासमें वह कदफिसस प्रथम (दे०)के नामसे विख्यात हुआ। कुषाणोंने भारतमें एक विशाल साम्राज्यका विस्तार किया और संभवतः लगभग ४८ ई० से २२० ई० तक उसपर राज्य किया। भारतके कुषाण राजाओंमें कदफिसस प्रथम, कदफिसस द्वितीय, कनिष्क, हुविष्क तथा वासुदेव सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। सामान्य रीतिसे यह माना जाता है कि ७८ ई० से प्रचलित शक संवत् कुषाणोंने चलाया।

कुसुमपुर—पाटलिपुत्र (दे०)का दूसरा नाम।

कूचबिहार—भारतके बंगाल प्रांतका एक नगर और जिला। यह तोरसा नदीके किनारे स्थित है और तिस्ता तथा संकोश नदियाँ ब्रह्मपुत्रमें मिलनेसे पहले इस जिलेसे होकर गुजरती हैं। इसका नाम कोच नामक कबायलियोंके आधारपर पड़ा है, जिन्हें बादको, खासकर उनके राजाओंको क्षत्रिय समझा जाने लगा। यह जिला कामरूप (आसाम)के प्राचीन

हिंदू शासकोंके राज्यका एक अंग था। भास्करवर्मा (लगभग ६००—६५० ई०)के कालमें यह राज्य करतोया तक फैला हुआ था। लेकिन सोलहवीं शताब्दीके आरंभमें वह कामरूपसे अलग हो गया और स्थानीय कोच लोगोंके मुखिया विश्वसिंह द्वारा स्थापित नये राज्यकी राजधानी कूचबिहार बन गयी। इस वंशका सबसे बड़ा राजा विश्वसिंहका पुत्र और उसका उत्तराधिकारी नरनारायण (१५४०—८४ ई०) हुआ। इसने आसामका काफी बड़ा भूभाग अपने अधीन कर लिया और आधुनिक रंगपुर जिलेके दक्षिणी अंचल तक अपनी शक्तिका विस्तार किया। वह हिन्दुत्व, कला और साहित्यका बहुत बड़ा पोषक था। उसने गौहाटीके निकट कामाख्या देवीके मंदिरका फिरसे निर्माण कराया। यह मंदिर काला पहाड़ नामक मुस्लिम हमलावर द्वारा ध्वस्त कर दिया गया था। वह आसाममें वैष्णव धर्मके महान् संस्थापक शंकरदेव (दे०)का संरक्षक था।

उसकी मृत्युके बाद उसके पुत्र और भतीजेमें उत्तराधिकारका युद्ध छिड़ गया। उसके पुत्रने अपनेको बचानेके लिए मुगल बादशाह अकबरकी अधीनता स्वीकार कर ली। उसका राज्य काफी अरसे तक मुगलोंके अधीन बना रहा, किंतु बादको १७७२ ई० में उसपर भोटोंने हमला कर दिया। तत्कालीन राजाने बंगालके गवर्नर वारेन हेस्टिंग्ससे सहायता मांगी। वारेन हेस्टिंग्सने कम्पनीके सैनिकोंकी एक टुकड़ी मददके लिए भेज दी जिसने भोटोंको खदेड़कर उन्हें संधि करनेको मजबूर कर दिया। कम्पनी और कूचबिहारके राजाके बीच एक संधि हुई, जिसके अधीन राजाने ईस्ट इंडिया कम्पनीका संरक्षण स्वीकार कर लिया और इसके बदलेमें वह कम्पनीको वार्षिक राजस्व देनेके लिए राजी हो गया। कूचबिहार १९३८ ई० तक बंगालके गवर्नरके शासनांतर्गत रहा, किन्तु इसके बाद इसका नियंत्रण ईस्टर्न स्टेट्स एजेन्सीके सुपुर्द कर दिया गया। १९५० ई० में इसका विलय भारतीय गणतंत्रमें हुआ और यह पश्चिमी बंगालका एक जिला बन गया। **(अमानुल्लाह कृत 'कूचबिहारका इतिहास')**

कूचा अथवा कुची—तुर्किस्तानका एक नगर। ईसवी सन्‌की प्रारम्भिक शताब्दियोंमें यह भारतीय संस्कृति, सभ्यता तथा बौद्ध धर्मका महान् केन्द्र था। प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु कुमारजीव (दे०)को इसी नगरसे बन्दी बनाकर चीन ले जाया गया था, जहां उसने बौद्ध धर्मके प्रचार-प्रसारमें अपना जीवन लगा दिया।

कूट, सर आयर (१७२६—१७८३)—प्रथम ब्रिटिश रेजीमेंटके साथ कैप्टनके रूपमें भारत आया। यह रेजीमेंट (३९वीं) १७५४ ई० में भारत भेजी गयी थी। कैप्टन कूट १७५६ ई० में क्लाइवके साथ बंगाल गया और वह कलकत्ताकी विजय और पलासीके युद्ध दोनों ही मौकोंपर मौजूद था। पलासी युद्धके बाद पराजित फ्रांसीसी सेनाको उसने ४०० मील तक खदेड़ा, जिसके पुरस्कारस्वरूप वह लेफ्टीनेंट-कर्नल बना दिया गया। इसके बाद उसे मद्रास भेजा गया, जहाँ पहले उसने उत्तरी सरकारपर अधिकार किया जो कई वर्षोंसे फ्रांसीसी आधिपत्यमें था और बादको २२ जनवरी १७६० ई० को विन्दवासके निर्णायक युद्धमें फ्रांसीसियोंको करारी मात देनेवाली ब्रिटिश सेनाका संचालन किया। १७६१ ई० में पांडिचेरीके अधिग्रहणमें भी उसने हिस्सा लिया। १७७९ ई० में क्लेवरिंगकी मृत्युके बाद वह गवर्नर-जनरलकी परिषद्‌का सदस्य बनाया गया। १७८० ई० में हैदरअलीके विरुद्ध अंग्रेजी फौजका नेतृत्व करनेके लिए वह फिर मद्रास भेजा गया। इस बार उसने पोर्टोनोवोके युद्ध (जून १७८१)में हैदरअलीको हराया तो सही, किंतु उसकी यह विजय विन्द्वास युद्धके विजेताके अनुरूप न थी। बादको हैदरअलीके साथ पालीलुरमें एक अन्य युद्धमें कूटको अपनी एक टांगसे हाथ धोना पड़ा। इस दुर्घटनाके बाद कूटका पुराना साहस और पराक्रम लुप्त हो गया और १७८२ से १७८३ ई० में अपनी मृत्युके समय तक उसने अपनी पुरानी ख्यातिके अनुरूप कोई कार्य नहीं किया। **(एस० सी० विली कृत 'लाइफ आफ सर आयर कूट')**

कूणिक—अजातशत्रु (दे०)को इस नामसे भी सम्बोधित किया जाता था।

कूना (जिसे **सुन्दर नेडुभरन** भी कहते हैं)—एक पांड्य शासक, जो सातवीं शताब्दी ई० में राज्य करता था। वह पहले जैनधर्मानुयायी था, बादमें शैव हो गया। शैव होनेके बाद उसने जैनोंपर भारी अत्याचार किये। कहा जाता है कि उसने ८००० जैनोंको सूलीपर चढ़वा दिया था।

कृत्तिवास—एक प्रसिद्ध बँगला कवि, जिसका जन्म १३४६ ई० में हुआ। उसने रामायणका संस्कृत भाषासे बँगलामें अनुवाद किया है। उसकी रामायणका बंगालमें घर-घरमें प्रचार है।

कृष्ण—विष्णुके अवतारके रूपमें इनकी पूजा सारे भारतमें होती है। महाभारत और भागवतपुराणमें इनका वर्णन मिलता है।

कृष्ण—सातवाहन (दे०) वंशका दूसरा राजा। उसका संभाव्य काल २३५ ई० पू० है। उसने सातवाहन राज्यका विस्तार पश्चिममें नासिक तक किया था।

कृष्ण प्रथम—द्वितीय राष्ट्रकूट (दे०) राजा (७६८–७२ ई०)। उसने चालुक्यों (दे०) पर राष्ट्रकूटोंका प्रभुत्व स्थापित किया और एलोराके कैलास मंदिर (दे०)का निर्माण कराया, जिसे प्राचीन भारतमें वास्तुकलाकी सबसे आश्चर्यजनक कृति माना जाता है।

कृष्ण द्वितीय—बादका एक राष्ट्रकूट राजा, जिसने ८७७–९१३ ई० तक राज्य किया।

कृष्ण तृतीय—राष्ट्रकूट वंशका अंतिम महान् शासक, जिसने ९३९–६८ ई० तक राज्य किया। उसके बाद तीन और नाममात्रके राजा हुए।

कृष्णदेव राय—विजयनगरका १५०९ से १५२९ ई० तक राजा। विजयनगरके शासकोंमें वह सबसे महान् था। उसने बीदरके सुल्तानके हमलेको विफल कर दिया, बीजापुरके सुल्तान यूसुफ आदिलशाहको युद्धमें परास्त किया तथा मार डाला, बादमें बीजापुरसे रायचूरका किला वापस ले लिया, जिसके लिए दोनों राज्योंमें लम्बे अर्सेसे लड़ाई चल रही थी। उसने अस्थायी रीतिसे बीजापुरपर भी अधिकार कर लिया और कुलबर्गका किला नष्ट कर दिया। उसने उड़ीसाके राजा प्रतापरुद्रको भी हराया और अपना राज्य कृष्णा नदी तक और बादमें तेलंगण होकर उड़ीसामें गोदावरी तक विस्तृत किया। दक्षिणमें उसने अपना राज्य मैसूरमें श्रीरंगपट्टनम (श्रीरंगपट्टम) तक विस्तृत किया। इस प्रकार उसके राज्यकालमें विजयनगर साम्राज्यके अंतर्गत सारा मद्रास प्रांत, उत्तरमें उड़ीसाका एक बड़ा भाग तथा सारा मैसूर राज्य आ गया था।

कृष्णदेव राय बड़ा वीर तथा पराक्रमी राजा था। उसके सम्पर्कमें आनेवाले सभी व्यक्ति उससे बहुत अधिक प्रभावित थे। इनमें नूनिज (दे०) तथा पीस (दे०) जैसे विदेशी यात्री भी थे, जो उसके राज्यमें आये थे। कृष्णदेव राय स्वयं भी कवि एवं लेखक होनेके कारण विद्वानोंका बड़ा आदर करता था। उसने मंदिरों तथा विद्वान् ब्राह्मणोंको प्रचुर मात्रामें दान दिया। प्रसिद्ध तेलुगु कवि अल्लसानि पेद्दन्न उसका राजकवि था।

कृष्णराजा—मैसूरके सर चमो राजेन्द्रका पुत्र और उत्तराधिकारी तथा उदार शासक। १८९६ ई० में वह गद्दीपर बैठा। उसने राज्यमें कई प्रशासनिक सुधार किये, जिसके फलस्वरूप मैसूर ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यकी एक उन्नत रियासत बन गयी।

कृष्णा—दक्षिण भारतकी एक नदी। यह पश्चिमी घाटसे निकलकर पूर्वकी दिशामें बहती है और आंध्र प्रदेशमें गुन्टूरके निकट बंगालकी खाड़ीमें गिरती है। तुंगभद्रा इसकी एक शाखा है और रायचूरके निकट इसमें मिलती है। दोनों नदियोंके बीचका दोआब हथियानेके लिए अनेक वर्षों तक विजयनगर साम्राज्य और बहमनी राज्यमें संघर्ष होता रहा। इसके तटपर अमरावती स्थित है, जिसकी वास्तुकला तथा मूर्तिकलाकी अपनी विशिष्ट शैली थी, जो गांधार शैलीसे प्रतिस्पर्धा करती थी। इसकी घाटी अत्यंत उर्वर है, जिससे आबादी अत्यंत सघन हो गयी है।

केनेडी, चार्ल्स (१७८४–१८४६ ई०)—शिमलाके पर्वतीय राज्योंमें, जो १८१६ ई० में ब्रिटिश शासनमें आये, ब्रिटिश भारतीय सरकारका एजेंट। उसने सबसे पहले पता लगाया कि शिमलाका जलवायु बड़ा स्वास्थ्यप्रद है और यूरोपीय देशोंसे मिलता-जुलता है। उसने १८२२ ई० में सबसे पहले शिमलामें अपना मकान बनवाया। इस प्रकार शिमला क्रमिक रीतिसे गर्मियोंमें निवासके लिए लोकप्रिय पर्वतीय स्थान बन गया। बादमें उसे भारत सरकारकी ग्रीष्मकालीन राजधानी बना दिया गया। केनेडी कई भाषाओंका अच्छा जानकार था और उसने अंग्रेजी भाषामें 'एन्शियन्ट हिन्दू माइथालोजी' (प्राचीन हिन्दू मिथक) तथा 'वेदान्त फिलासोफी आफ हिन्दूज' (हिन्दुओंका वेदान्त दर्शन) शीर्षकसे दो रोचक पुस्तकें लिखी हैं।

केरलपुत्र—अशोकके द्वितीय शिलालेखके अनुसार उसके साम्राज्यके दक्षिणी सीमांत प्रदेशके निवासी। उनके देशमें आधुनिक ट्रावणकोर क्षेत्र सम्मिलित था।

केरी, विलियम—मूल पेशेसे मोची, बादमें बैपटिस्ट मिशनरी बन गया और १७९३ ई० में कलकत्ता आकर अन्य बैपटिस्ट मिशनरियोंके साथ श्रीरामपुरमें बस गया। उसने बंगालके लोगोंके मध्य ईसाई धर्मका प्रचार करनेमें अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। उसने बंगला सीखी और अपने मुंशी रामराम बसुकी सहायतासे बाइबिलका बंगलामें अनुवाद किया। बंगला गद्यमें अन्य पुस्तकोंकी रचना की, जिनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध कथोपकथन हैं। उसने बंगलाके दो पत्र 'दिग्दर्शन' तथा 'समाचार दर्पण'के प्रकाशनमें सहायता भी दी थी। १८०१ ई० में केरी कलकत्ता स्थित फोर्ट विलियम कालेजमें संस्कृत और बंगलाका प्राध्यापक हो गया और १८३१ ई० में अपनी मृत्यु तक उस पदपर बना रहा। अपने इस पदपर रहकर उसने बंगलामें इतिहास, दर्शन, कथाओं एवं लोककथाओंकी अनेक पुस्तकोंकी रचनाको प्रोत्साहित किया। शिक्षाविद्के रूपमें केरीने भारतीयोंको पश्चिमी विज्ञान और अंग्रेजी साहित्यकी शिक्षा

देनेका समर्थन किया और उसके विचारोंने भारतमें पश्चिमी शिक्षाके प्रसारके पक्षमें लार्ड विलियम बेन्टिकके निर्णयको प्रभावित किया। केरी प्रमुख समाज-सुधारक भी था और उसके ही कहनेसे १८०२ ई० में लार्ड वेलेस्लीने गंगा और समुद्रके संगम (गंगासागर) पर शिशुओंकी बलि देनेकी प्रथापर रोक लगा दी थी। सती प्रथाकी भी केरीने जोरदार शब्दोंमें भर्त्सना की थी। उसने इस सम्बन्धमें हिन्दुओंमें भी लोकमत इतना अनुकूल बना लिया कि १८२९ ई० में लार्ड विलियम बेन्टिकने इसपर प्रतिबन्ध लगा दिया। शिक्षाविद् और समाज-सुधारकके रूपमें भारतीयों द्वारा केरीका आज भी स्मरण किया जाता है। **(जार्ज स्मिथ कृत 'लाइफ़ आफ़ विलियम केरी')**

कैलॉड, कर्नल जान–बंगालमें कम्पनीकी सेनाका १७६० ई० में कमांडर। उसने नवाब मीर जाफ़रके स्थानपर मीर कासिमको नवाब बनानेके लिए वानसिटार्टके षड्यंत्रमें भाग लिया। वानसिटार्टके आदेशोंपर वह सेनाके साथ मुर्शिदाबाद जा धमका और नवाबके महलको घेर लिया। इस प्रकार उसने मीर जाफ़रको गद्दी छोड़नेके लिए बाध्य कर दिया। उसके बाद मीर कासिमको बंगालका नवाब घोषित कर दिया गया।

केशवदेव मंदिर–मथुरामें स्थित। जहांगीर (१६०५–२७ ई०)के राज्यकालमें राजा वीरसिंह बुंदेला (दे०)ने पहलेसे तोड़े गये इस मन्दिरको फिरसे बनवाया था। १६७० ई० में औरंगजेबके हुक्मसे इस भव्य मंदिरको पुनः तोड़ डाला गया और उसी स्थानपर एक मसजिद बनायी गयी। मंदिरकी रत्नजटित मूर्तियोंको उठाकर आगरा ले आया गया, जहां उन्हें जहानाराकी मसजिदकी सीढ़ियोंके नीचे चिन दिया गया।

कैकोबाद–सुल्तान बलवन (दे०)का पोता और उसके सबसे बड़े बेटे बुगरा खांका लड़का था। १२८७ ई० में सुल्तान बलबनकी मृत्यु हो जाने और बुगरा खां द्वारा सल्तनतका भार संभालनेसे इनकार कर देनेपर, कैकोबाद, जो सत्रह या अट्ठारह वर्षका तरुण था, दिल्लीका सुल्तान बना। परंतु वह सुरा और सुन्दरीमें इतना आसक्त हो गया कि उसने अपना स्वास्थ्य चौपट कर लिया और वह शासनका संचालन नहीं कर सका। १२९० ई० में वह अपने ही महलके अंदर मार डाला गया। उसकी मृत्युसे दिल्लीके सुल्तानोंमें गुलाम वंशका अंत हो गया।

उसके स्थानपर १२९० ई० में जलालुद्दीन खिलजी (दे०) सुल्तान बना।

कैक्टस लाइन (नागफनी रेखा)–भारतमें ब्रिटिश राजके प्रारम्भिक कालमें एक सूबेसे दूसरे सूबेमें बिना चुंगी अदा किये मालकी रफ्तनी, विशेषकर देशी राज्योंमें नमककी तस्करी रोकनेके लिए २५०० मीलकी लम्बाईमें स्थापित की गयी थी। इसकी देखरेख करनेके लिए १२००० आदमियोंकी जरूरत पड़ती थी। भारतमें मुक्त व्यापारकी प्रगति होनेपर एक हजार मीलकी नागफनीकी झाड़ी लार्ड नार्थब्रुकके कार्यकालमें और शेष लार्ड लिटन (१८७६-८० ई०)के कार्यकालमें नष्ट कर दी गयी।

कैथलकी लड़ाई–१२४० ई० में हुई, जिसमें सुल्ताना रजिया (दे०) और उसका पति अल्तूनिया उसके भाई बहरामके हाथों पराजित हुए और बंदी बना लिये गये। लड़ाईके दूसरे दिन दोनोंको मार डाला गया और बहराम सुल्तान बन गया।

कैनिंग, कैप्टन–ब्रिटिश भारत सरकार द्वारा बर्माके राजा (१७७९–१८१९ ई०) बोदौंपायाके दरबारमें १८०३, १८०९ तथा १८११ ई० में दूत बनाकर भेजा गया। पहले भेजे गये दूतोंके सदृश कैनिंगके साथ भी अच्छा व्यवहार नहीं हुआ और उसे भारत तथा बर्माकी सीमाके सम्बन्धमें समझौता करानेमें सफलता नहीं मिली।

कैनिंग, वाईकाउण्ट (अर्ल)–भारतका १८५६ से १८६२ ई० तक गवर्नर-जनरल तथा प्रथम वाइसराय। उसके शासनके आरम्भिक कालमें सिपाही-विद्रोह (१८५७-५८) सबसे प्रमुख घटना थी, जिसके कारण भारतमें ब्रिटिश राज खतरेमें पड़ गया। अपनी संगठन-शक्ति तथा भारतकी अधिकांश जनताके निष्क्रिय रहनेके कारण कैनिंग विद्रोहका दमन करनेमें सफल हुआ। विद्रोहके दमनके बाद पार्लियामेण्टने भारतका शासन अच्छे ढंगसे चलानेके लिए एक कानून बनाया, जिसके अंतर्गत भारतका प्रशासन ईस्ट इंडिया कम्पनीके हाथोंसे निकालकर ब्रिटिश सम्राटके अधीन कर दिया गया और गवर्नर-जनरलको वाइसराय (सम्राटका प्रतिनिधि) बना दिया गया। इस कानूनके बन जानेके बाद महारानी विक्टोरियाका घोषणा-पत्र (दे०) प्रकाशित हुआ और इस प्रकार लार्ड कैनिंगने प्रथम वाइसरायके रूपमें भारतीय प्रशासनमें नया अध्याय प्रारम्भ किया। लार्ड कैनिंगने भारतीयोंसे प्रतिशोध लेनेकी अंग्रेजोंकी प्रवृत्तिपर अंकुश लगानेका प्रयास किया, जिसके फलस्वरूप उन्होंने 'क्षमाशील कैनिंग' कहकर उसका उपहास उड़ाया। कलकत्ता स्थित अंग्रेज व्यापारियोंने तो महारानीको आवेदन-पत्र देकर लार्ड कैनिंगके वापस बुला लेने तककी मांग की, किन्तु उसे अस्वीकार कर दिया गया और लार्ड कैनिंग भारतमें वाइसराय बना रहा। उसने भारतकी सेनाको पुनर्गठित किया और आयकर,

दस प्रतिशतका एकसमान सीमाशुल्क तथा नोटोंका प्रचलन कर डांवाडोल आर्थिक स्थितिको पुनः स्थिर बनाया। उसने १८५९ ई० में लगान कानून पासकर स्थायी बंदोबस्तके अन्तर्गत असामी काश्तकारोंको सुरक्षा प्रदान की। १८६० ई० में भारतीय दंड विधान और १८६१ ई० में जाब्ता फौजदारी बना। १८६२ ई० में एक कानून पास कर पुरानी अदालतोंके स्थानपर कलकत्ता, मद्रास और बम्बई हाईकोर्ट कायम किये गये। गोरे नील-उत्पादकोंके विरुद्ध बंगाल तथा बिहारके असामियोंकी शिकायतोंकी सुनवायीके लिए एक आयोगकी नियुक्ति की गयी। इस रिपोर्टके आधारपर नील-उत्पादकोंको असामियोंपर अत्याचार करनेसे काफी हदतक रोक दिया गया। लार्ड कैनिंगने १८५७ ई० में कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बईमें विश्वविद्यालयोंकी स्थापना करके भारतमें नवजागरणके युगका श्रीगणेश किया। उसके प्रशासनका अन्तिम महत्त्वपूर्ण कार्य १८६१ ई० में इंडियन कौंसिल एक्ट (दे०) का पास होना था, जिसके द्वारा भारतीय प्रशासन तंत्रमें महत्त्वपूर्ण सुधार हुए और भारतीय विधान मंडलोंमें भारतीयोंको प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ।

कैबिनेट मिशन—एटली (दे०) मंत्रिमंडल द्वारा १९४६ ई० में भारत भेजा गया। लार्ड पैथिक-लारेन्स प्रतिनिधिमंडलके अध्यक्ष तथा सर स्टेफर्ड क्रिप्स और श्री ए० वी० अलेक्जेण्डर उसके सदस्य थे। प्रतिनिधिमंडलने, जो अप्रैलमें भारत आ गया था, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा मुस्लिम लीगमें संवैधानिक प्रश्नोंपर पहले समझौता करानेका प्रयास किया। लेकिन समझौता-प्रयासोंके विफल होनेपर प्रतिनिधिमंडलने भारतकी संवैधानिक प्रगतिके लिए स्वयं अपने प्रस्ताव प्रस्तुत किये। वे प्रस्ताव थे: (१) ब्रिटिश भारतीय प्रांतोंके संघकी स्थापना, जिसे प्रतिरक्षा, विदेशी मामलों तथा संचार व्यवस्थाके नियंत्रणका अधिकार होगा; (२) समझौता-वार्ताके बाद भारतीय संघमें देशी रियासतोंका प्रवेश; (३) प्रांतों द्वारा अपने इच्छानुसार अपने अधीनस्थ संघोंका निर्माण, जिन्हें यह निर्णय करनेका अधिकार होगा कि संघीय विषयोंके अतिरिक्त अन्य कौन-कौन विषय उनके अधीन रहेंगे; (४) उपर्युक्त तीन प्राविधानोंके अनुसार संविधान सभाका गठन, जिसमें भारतका सर्वमान्य संविधान बनानेके लिए सभी राजनीतिक पार्टियोंको प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा; (५) इस बीच, भारतीय प्रशासनको चलानेके लिए अंतरिम राष्ट्रीय सरकारका गठन। अंतरिम सरकारमें विभिन्न सम्प्रदायोंके बीच सीटोंके बटवारेके प्रश्नपर मतभेद उत्पन्न हो जानेके कारण कैबिनेट मिशनके प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिये गये।

कैब्राल, अन्तानियो—गोवास्थित पुर्तगाली वाइसरायके दूतके रूपमें १५७३ ई० में मुगलों तथा पुर्तगालियोंके बीच संधिकी शर्तोंपर वार्ता करनेके लिए बादशाह अकबरके दरबारमें पहुँचा। कैब्राल अकबरके दरबारमें दूसरी बार १५७८ ई० में आया था। उस समय बादशाहने उससे अपने दरबारमें ईसाई धर्मके विद्वानोंको भिजवानेके लिए कहा, जिनसे वह ईसाई धर्मकी विशेषताओंके बारेमें जानकारी प्राप्त कर सके। उसकी प्रार्थनापर गोवास्थित पुर्तगाली वाइसरायने फादर अकविवा और फादर मोनसेरेतको अकबरके दरबारमें भेजा। अकबरने उनका स्वागत किया और उन्होंने ईसाई धर्मके सम्बन्धमें उसे सही जानकारी करायी।

कैब्राल, पेड्रो अलवारिस—दूसरा पुर्तगाली एडमिरल, जो वास्कोडिगामाकी रवानगीके ठीक एक वर्ष बाद एक बड़े पुर्तगाली जहाजी बेड़ेके साथ भारत आया। उसने कालीकटमें व्यापारिक कोठी अथवा कारखाना कायम किया। कन्नानोर और कोचीनसे उसे काफी तिजारती माल मिला। वह इस सफल यात्राके उपरान्त पुर्तगाल वापस लौट गया।

कैब्राल, फादर जान—एक पुर्तगाली जेसुइट पादरी। १६३२ ई० में जब बादशाह शाहजहाँने हुगलीस्थित पुर्तगाली बस्तीपर आक्रमण करके अधिकार कर लिया, तब फादर कैब्राल बंगालमें था। उसने एक प्रत्यक्षदर्शीके रूपमें १६३३ ई० में इस घटनाका वर्णन किया था।

कैमक, जनरल—प्रथम मराठा-युद्ध (१७७५—८२ ई०) में अंग्रेज सेनाका कुशल नायक। उसने १६ फ़रवरी, १७८१ ई० को सिपरीमें शिन्देकी सेनाको हराया।

कैम्पबेल, जान—कम्पनीकी सेवामें नियुक्त एक असैनिक अधिकारी, जो १८४७ तथा १८५४ ई० के बीच उड़ीसाका प्रशासक था। भारतके गवर्नर-जनरल लार्ड हार्डिञ्ज प्रथमके निर्देशपर उसने उड़ीसामें प्रचलित नरबलिकी प्रथाका उन्मूलन करनेमें प्रमुख भूमिका अदा की।

कैम्पबेल, सर आर्किबाल्ड—प्रथम बर्मी युद्ध (१८२४—२६ ई०) में चढ़ाईके लिए भेजी गयी ब्रिटिश सेनाका प्रधान सेनापति। उसने बर्मी अभियानको संगठित तथा संचालित करनेमें अनेक गलतियाँ कीं, जिसके कारण युद्ध निरर्थक ही लम्बा चला और सैनिकोंको ऐसी अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा जिनसे बचा जा सकता था। इन गलतियोंके बावजूद कैम्पबेलने रंगूनपर मई, १८२४ ई० में कब्जा कर लिया और बर्मी सेनापति बंधुलकी सेनाको पराजित कर दिया। इसके बाद ही सेनापति बंधुल

लड़ाईमें मारा गया। अंग्रेज सेना प्रोमपर कब्जा कर यांदबू तक बढ़ गयी जो बर्मी राजधानीसे ६० मीलकी दूरीपर था। इसके परिणामस्वरूप बर्माके राजाको कैम्पबेलकी शर्तोंके अनुसार यंदक (१८२६)की संधि करनी पड़ी।

कैम्पबेल, सर कालिन (बादमें लार्ड क्लाइड) (१७९२–१८६३ ई०)—यूरोपमें स्पेन प्रायद्वीप तथा नेपोलियनके विरुद्ध युद्धमें तथा १८४२ ई० में चीन-युद्धमें भाग लेकर ख्याति प्राप्त की। १८४६ ई० में ब्रिटिश भारतीय सेनामें शामिल हुआ। दूसरे सिख-युद्ध (दे०)में ब्रिगेडियरकी हैसियतसे लड़ा और नामवरी पायी। इसके बाद इंग्लैंड वापस लौट गया। प्रथम स्वाधीनता-संग्रामके समय (जिसे अंग्रेज इतिहासकारों 'सिपाही-विद्रोह' लिखा है) एक दिनकी नोटिसपर ब्रिटिश सेनाका प्रधान सेनापति नियुक्त होकर जुलाई १८५६ ई० में भारत पहुंचा।

सिपाही-विद्रोह (१८५७–५८ ई०) को दबानेमें उसका प्रमुख हाथ था। उसने विद्रोहियोंके विरुद्ध अभियानकी सुविचारित योजना तैयार की, नेपालके जंग बहादुर राणाकी सहायता प्राप्त की, नवम्बर १८५७ ई० के मध्य लखनऊको मुक्त किया, विद्रोही ग्वालियर सेनासे कानपुरको दिसम्बरमें फिर ले लिया, अवध तथा रुहेलखंडके विद्रोहका बेरहमीसे दमन किया और रानी झांसी तथा तात्या टोपेका तब तक बराबर पीछा किया, जब तक रानी लड़ाईमें मारी नहीं गयी और तात्याको बन्दी नहीं बना लिया गया। तात्याको बादमें फांसीपर चढ़ा दिया गया। इस प्रकार कैम्पबेलने गदरको दबाने और भारतमें ब्रिटिश राजको विजयी बनानेमें महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

उसे बादमें जनरल बना दिया गया और 'लार्ड' की पदवी प्रदान की गयी। १८६३ ई० में मृत्यु होनेपर उसे वेस्टमिनिस्टर एबेमें दफनाया गया।

कैलास मन्दिर—एलोरा, आन्ध्र प्रदेशमें है। वहाँ चट्टानको काटकर विरचित यह मन्दिर राष्ट्रकूट राजा कृष्ण प्रथम (लगभग ७६० ई० में राज्यारोहण)ने बनवाया था। यह सारे संसारमें वास्तुकलाकी सबसे आश्चर्यजनक कृति है। यह समूचा मन्दिर पहाड़ीके एक भागको काटकर बनाया गया है और इसका अलंकरण अद्वितीय है। पत्थरपर इतनी सुंदर पालिश की गयी है कि आज भी जो लोग मन्दिर देखनेके लिए जाते हैं, उनका प्रतिबिंब उसमें स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

कोंकण—एक सामुद्रिक पट्टी, जो उत्तरमें दमनसे लेकर दक्षिणमें कनारा तक तथा पूर्वमें पश्चिमी घाटसे लेकर पश्चिममें अरब सागरके तट तक फैली हुई है। इस क्षेत्रमें तूफानके साथ वर्षा बहुत होती है। समुद्री किनारा काफी ऊँचा-नीचा और बीहड़ है। इसके फलस्वरूप समुद्री डाकुओंके लिए कोंकणके तटपर समुद्री डकैती डालना सरल होता था। १८१२ ई० में यह समुद्री डकैती समाप्त कर दी गयी।

कोंटी, निकोलो डी—एक इटालवी यात्री, जो पन्द्रहवीं शताब्दीके प्रारंभमें भारत आया। १४२० ई० में वह देवराय द्वितीय (दे०)के शासनके समय विजयनगरमें था। उसने इस नगरका रोचक वर्णन किया है। उसका अनुमान है कि नगर ६० मीलके दायरेमें फैला था, उसकी किलेबंदी बहुत मजबूत और आबादी घनी थी तथा उसमें युद्धकलामें प्रवीण ९० हजार लोग निवास करते थे। राजाकी कई रानियाँ थीं तथा रानियोंमें भी सती प्रथा (दे०) प्रचलित थी।

कोंडपल्ली—विजयनगर साम्राज्यके अंतर्गत एक दुर्ग, जिसपर बहमनी सुलतान मुहम्मदशाह तृतीयने १४८१ ई० में अधिकार कर लिया। उसने दुर्गके भीतर एक मन्दिरमें पूजा करनेवाले कुछ ब्राह्मण पुरोहितोंको अपने हाथसे मार डाला और इस प्रकार 'गाज़ी'की उपाधि प्राप्त की, जिसपर वह बहुत गर्व करता था।

कोचीन—मलाबार समुद्र तटपर स्थित। १६वीं शताब्दीके आरम्भमें यह हिन्दू राज्य था लेकिन कालीकटके पड़ोसी हिन्दू राज्यसे इसके सम्बन्ध अमैत्रीपूर्ण चल रहे थे। इसने पुर्तगाली यात्री कैब्रालको आश्रय दिया और पुर्तगालियोंके साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये। पुर्तगालियोंने कोचीनमें अपनी एक कोठी स्थापित की। कुछ ही समयमें पुर्तगालियोंने हिंदू राजाको शक्तिहीन बना दिया। १६६२ ई० में डच लोगोंने पुर्तगालियोंको कोचीनसे खदेड़ भगाया। अठारहवीं शताब्दीमें कोचीनका राजा मैसूरके हैदरअली (दे०)का सामंत बन गया। किन्तु टीपू सुलतान (दे०)की पराजयके बाद यह ब्रिटिश आधिपत्यमें आ गया और अंग्रेजोंने इसे भारतमें अपनी एक संरक्षित रियासत बना लिया।

कोटाकी लड़ाई—कर्नल मौन्सनके नेतृत्वमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेनाओं और होल्करकी सेनाओंके बीच १८०४ई० में हुई। इस लड़ाईमें कर्नल मौन्सन हार गया और आगरेकी तरफ भागा। लार्ड वेलेस्लीके प्रशासनकालमें कम्पनीने अनेक लड़ाइयाँ जीतीं, परन्तु इस लड़ाईमें उसे हार खानी पड़ी।

कोटा, नगर तथा राज्य—दिल्लीसे २५० मीलकी दूरीपर, राजपूतानामें चम्बलके दाहिने तटपर स्थित। इस राज्यकी स्थापना १६२५ ई० में बादशाह शाहजहाँने की। शाहजहाँ-

ने गद्दीपर बैठनेसे पूर्व जब अपने पिता जहाँगीरके विरुद्ध विद्रोह किया था, तब बूंदीके छोटे राजकुमारने उसकी मदद की थी। इसके पुरस्कारमें शाहजहाँने उसे कोटा दे दिया। मार्च १९४८ ई० में कोटा रियासतका विलयन राजस्थान संघमें कर दिया गया।

कोड़ा जहानाबाद—इलाहाबाद जिलेके निकट। ईस्ट इंडिया कम्पनीने बक्सरकी लड़ाई (१७६४ ई०)के बाद इसे अवधके नवाबसे ले लिया और १७६५ ई० में इलाहाबाद जिलेके साथ बादशाह शाह आलमको दे दिया। बादशाहने बंगालकी दीवानी कम्पनीको सौंप दी और कम्पनीने इसके बदलेमें बादशाहको प्रतिवर्ष २६ लाख रुपया खिराज देना स्वीकार कर लिया। इसके बाद ही शाह आलमने कोड़ा और इलाहाबाद जिले मराठोंको दे दिये। बादमें उनसे ये जिले छीन लिये गये और इनको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला दिया गया।

कोप्पम्की लड़ाई—कल्याणीके चालुक्य राजा सोमेश्वर (दे०) तथा चोल राजा राजाधिराजके बीच ११५२ अथवा ११५३ ई० में हुई। इस लड़ाईमें चोल राजा हार गया और मारा गया। चालुक्य और चोल राजाओंमें आये दिन होनेवाली लड़ाइयोंमें यह मुख्य लड़ाई थी।

कोमारोफ—एक रूसी जनरल। १८८५ ई० में उसने अफगानोंको मर्वसे सौ मील दक्षिण पंजदेहमें अपनी चौकी हटानेपर मजबूर कर दिया, जिससे एक संकटपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गयी। रूसका कहना था कि १८८४ ई० में मर्वपर उसका अधिकार हो जानेके बाद पंजदेह उसके इलाकेमें आ गया है, परन्तु ब्रिटिश सरकार उसे अफगानिस्तानका इलाका मानती थी और उसपर रूसी अधिकारको अफगानिस्तानकी क्षेत्रीय अखंडताके लिए खतरा समझती थी। इस प्रकार कोमारोफकी काररवाईके फलस्वरूप पंजदेहकी घटना (दे०) घटित हुई।

कोयम्बटूर जिला—टीपू सुल्तान (दे०)के शासनकालमें मैसूर राज्यका एक भाग। अंतिम मैसूर-युद्धमें उसकी पराजय और मृत्युके बाद १७९९ ई० में कोयम्बटूर भारतीय ब्रिटिश साम्राज्यमें मिला लिया गया।

कोरेगांवकी लड़ाई—१८१८ ई० में तीसरे मराठा-युद्धके दौरान पेशवा बाजीराव द्वितीय और अंग्रेजोंके बीच हुई। इस लड़ाईमें पेशवा हार गया और अंतमें उसने सर जान मैलकमके सामने आत्मसमर्पण कर दिया।

कोर्कै—ईसवी सन्‌की प्रारम्भिक शताब्दियोंमें तिन्नैवेल्ली तटपर एक प्रमुख बंदरगाह। मोतियोंके व्यापारका यह मुख्य स्थान था। समुद्रतटमें परिवर्तन हो जानेसे दीर्घकालसे यह स्थान चारों ओर स्थलसे घिर गया है। यहाँपर अनेक जैन मंदिर हैं।

कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स—देखिये, 'कोर्ट आफ प्रोप्राइटर्स'।

कोर्ट आफ प्रोप्राइटर्स—में ईस्ट इंडिया कम्पनीके शेयर होल्डर होते थे। वे प्रतिवर्ष चौबीस निदेशकों (डाइरेक्टरों)को चुनते थे जो कम्पनीके कार्यकलापोंका प्रबन्ध करते थे। शुरूमें कोर्ट आफ प्रोप्राइटर्सको कोर्ट आफ डायरेक्टर्सके कार्योंका निरीक्षण करनेका अधिकार था और उसकी बैठकें हंगामी हुआ करती थीं। उसकी सारी कार्यवाही सिर्फ हानि-लाभकी दृष्टिसे संचालित होती थी। प्रतिद्वन्द्वी गुट वार्षिक चुनावोंके समय डाइरेक्टरोंको बनाते, हटाते और अपने वोट बढ़ानेके लिए शेयरोंको खरीदते व बाँटते थे। इससे भ्रष्टाचार खूब पनपा। फलतः रेग्यूलेटिंग ऐक्ट १७७३ ई० के जरिये कोर्ट आफ प्रोप्राइटर्सकी बैठकमें मत देनेकी योग्यता ५०० पौण्डसे बढ़ाकर १ हजार पौण्डका शेयर कर दी गयी। इसके अलावा अब यह कोर्ट चार वर्षोंके कार्यकालके लिए एक वर्षमें सिर्फ छः डाइरेक्टर चुन सकता था। फिर भी कोर्ट आफ प्रोप्राइटर्स सिर्फ व्यापार और वाणिज्यमें दिलचस्पी रखनेवाले व्यापारियोंकी संस्था बनी रही और वह कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सके निर्णयोंको बहुत हद तक प्रभावित करती थी। इस बीच कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सके ऊपर भारतमें बढ़ते हुए ब्रिटिश साम्राज्यके प्रशासनकी देखरेख करनेका दायित्व आ गया था। फलतः पिट्स इंडिया ऐक्ट (दे०)के द्वारा कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सके कार्यका निरीक्षण करनेके लिए बोर्ड आफ कंट्रोल स्थापित किया गया। इसके बाद कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सकी ऐसी किसी कार्यवाहीको रद्द करने या उसमें हेर-फेर करनेका अधिकार कोर्ट आफ प्रोप्राइटर्सको न रहा जिसे बोर्ड आफ कंट्रोलकी स्वीकृति मिल चुकी हो। इस प्रकार कोर्ट आफ प्रोप्राइटर्सको अब भारतीय राजनीतिको प्रभावित करनेका कोई अधिकार नहीं रहा। किन्तु कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स भारतमें ब्रिटिश राज्यको चलानेका माध्यम बना रहा, हालांकि समय बीतनेके साथ भारतीय प्रशासनपर बोर्ड आफ कण्ट्रोलके अध्यक्षका अंकुश अधिकाधिक बढ़ता गया। फिर भी डाइरेक्टरोंके हाथमें इतनी शक्ति अब भी थी कि उन्होंने लार्ड वेलेस्ली और लार्ड एलेनबरीको कार्यकाल समाप्त होनेसे पहले ही इंग्लैण्ड वापस बुला लेनेके लिए बाध्य कर दिया। १८५८ ई० में ब्रिटिश सम्राट् द्वारा भारतका प्रशासन अपने हाथमें ले लिये जानेके फलस्वरूप ईस्ट इंडिया कम्पनी भंग कर दी गयी और उसके साथ ही उसकी कार्यकारणी अर्थात् कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सका अस्तित्व भी समाप्त हो गया।

कोर्ट, जनरल क्लाइड आगस्ट—एक फ्रांसीसी सैनिक अफसर, जो १८२७ ई० में पंजाबके महाराज रणजीतसिंह (दे०) की फौजमें नियुक्त हुआ। उसने रणजीतसिंहके तोपखानेका पुनर्गठन करके उसमें भारी सुधार किये। किन्तु रणजीतसिंहकी मृत्युके बाद न जाने किस वजहसे सिख सेनाका उसपर विश्वास समाप्त हो गया और उसने कोर्टपर हमला कर दिया। किन्तु एक फ्रांसीसी सहयोगी वेंतुराकी मददसे उसकी जान बच गयी। वह लाहौरसे फ्रांस चला गया, जहाँ वह विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो गया।

कोल्लम—त्रावणकोरके क्विलोन नगरका पुराना नाम। ख्याल किया जाता है कि कोल्लम नगरकी स्थापनापर कोल्लम संवत् चलाया गया, जो ८२४—२५ ई० में प्रचलित हुआ। प्राचीन चेर राज्यके कई अभिलेखोंमें इस संवत्का प्रयोग किया गया है।

कोल्हापुर—एक शहरका भी नाम और राज्यका भी, जिसपर शिवाजीका दूसरा पुत्र शासन करता था। तीसरे मराठा-युद्धके बाद यह अंग्रेजोंका रक्षित राज्य हो गया और १९४८ ई० में भारत संघमें विलयन होने तक एक छोटा-सा अधीनस्थ रक्षित राज्य बना रहा।

कोशल—इस नामके दो प्राचीन राज्य थे। पहला, उत्तर भारतमें था जो अवधके भूभागमें स्थित था। इसकी राजधानी अयोध्या थी। दूसरा, दक्षिण भारतमें महानदीकी उत्तरी घाटीमें स्थित था। समुद्रगुप्त (लगभग ३३०—३८० ई०) के इलाहाबाद स्तम्भलेखमें दक्षिणवाले कोशलके राजा महेन्द्रका उल्लेख मिलता है, जिसने समुद्रगुप्तकी अधीनता स्वीकार कर ली। दक्षिणके कोशल राज्यमें आधुनिक विलासपुर, रायपुर तथा संभलपुर जिले सम्मिलित थे। उसकी राजधानी श्रीपुर थी, जो आजभी रायपुर जिलेमें वर्तमान है। इसने भारतीय इतिहासमें कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं अदा की।

परन्तु उत्तरका कोशल राज्य प्राचीन भारतीय अनुश्रुतियों तथा इतिहासमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसकी गौरवगाथा वाल्मीकिकी रामायणमें अंकित है, जिसमें उसके राजा दशरथ और उनके पुत्र रामका यशोगान है। ऐतिहासिक कालमें कोशल काफी बड़ा राज्य था। छठी शताब्दी ई० के आसपास भारत जिन सोलह महाजनपदों (राज्यों) में विभाजित था, उनमें कोशल भी था। उसके तीन प्रधान नगर थे—अयोध्या, साकेत तथा श्रावस्ती। इसके राजा अपनेको इक्ष्वाकुका वंशज कहते थे। इक्ष्वाकुके कुछ वंशजोंका उल्लेख वेदोंमें भी मिलता है। कोशलका पहला ऐतिहासिक राजा प्रसेनजित था जो मगधके राजा बिंबसारका समसामयिक था। दोनों राजा गौतम बुद्धके समसामयिक थे। कोशल और मगधमें शक्ति प्राप्त करनेके लिए तीव्र प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी। अंतमें अजातशत्रु (लगभग ४९४—४६७ ई०पू०)के राज्यकालमें मगधने कोशलको हड़प लिया।

कोहनूर—एक संसार-प्रसिद्ध हीरा। यह मुगल बादशाहोंके ताजमें संलग्न था, परन्तु नादिरशाह इसे लूट ले गया। उसकी मृत्युपर यह अहमदशाह अब्दाली (दे०)को मिला। उसके एक वंशज शाह शुजासे यह महाराज रणजीतसिंहको मिला और उनके वंशजसे ब्रिटिश भारतीय सरकारने ले लिया और महारानी विक्टोरियाको अर्पित कर दिया। अब यह इंलैण्डके राजमुकुटकी शोभा बढ़ा रहा है।

कौण्डिन्य—कंबोडियामें सुरक्षित अनुश्रुतियोंके अनुसार एक भारतीय ब्राह्मण जिसने कम्बुज देश (दे०)के राज्यकी स्थापना की। कम्बुज देशको ही अब 'कम्बोडिया' कहते हैं।

कौंसिल आफ स्टेट (राज्य परिषद्)—भारतीय शासन विधान १९१९ ई०के अधीन इसका संघटन हुआ, जिसके द्वारा ब्रिटिश भारतमें दो सदनोंवाले विधानमण्डलकी स्थापना की गयी। इसी विधानमंडलका उच्च सदन 'राज्य परिषद्' कहलाता था। इसकी सदस्य संख्या ६१ रखी गयी, जिनमेंसे ३४ का निर्वाचन व १० अधिकारियों तथा शेष गैर-सरकारी सदस्योंका मनोनयन होता था। निर्वाचनमें सम्पत्तिशाली व्यक्तियोंको ही मतदानका अधिकार दिया गया था। परिषद्के सदस्योंमेंसे ही किसी एकको गवर्नर-जनरल उसका अध्यक्ष मनोनीत करता था। परिषद्को निचले सदनके साथ (जिसे केन्द्रीय विधान सभाके नामसे पुकारा जाता था) समन्वयकारी अधिकार प्रदान किये गये, किन्तु अनुदान सम्बन्धी मांगें निचले सदनमें ही पेश की जा सकती थीं। राज्य परिषद्से आशा की जाती थी कि वह केन्द्रीय विधान सभाकी संभाव्य उदार और लोकतांत्रिक प्रवृत्तियोंपर अंकुश रखे। इसने काफी हद तक इस मन्तव्यको पूरा किया। भारतीय शासनविधान १९३५ ई० के अंतर्गत इसकी सदस्य संख्या एवं इसका महत्त्व बढ़ गया। अब इसमें २६० सदस्य होते थे, जिनमें १५६ सदस्य ब्रिटिश भारतके थे और १०४ सदस्य भारतीय संघमें शामिल होनेवाली रियासतोंके। ब्रिटिश भारतके १५६ मेंसे छः सदस्य अल्पसंख्यकों, दलित वर्ग और महिलाओंको समुचित प्रतिनिधित्व देनेके लिए गवर्नर-जनरल द्वारा मनोनीत किये जाने और शेष १५० का चुनाव साम्प्रदायिक आधारपर किये जानेकी व्यवस्था की गयी। मताधिकार काफी सीमित रखा गया। रियासतोंके सभी १०४

सदस्योंको नियुक्त करनेका अधिकार वहाँके राजाओंको दिया गया। इस प्रकार २६० सदस्योंके सदनमें ११० केन्द्रीय और रियासती सरकारों द्वारा मनोनीत किये जानेकी व्यवस्था की गयी। यह राज्य परिषद् स्थायी संस्था थी और भंग नहीं की जा सकती थी। उसके एक तिहाई सदस्य हर तीसरे साल निवृत्त होते थे और किसी भी हालतमें एक सदस्यका कार्यकाल नौ वर्षसे अधिक नहीं हो सकता था। परिषद्को सभी मामलोंमें जिनमें वित्तीय मामले भी शामिल थे, विधान सभा (निचले सदन)के साथ लगभग समान अधिकार प्राप्त थे। इस प्रकार भारतीय शासनविधान १९३५ ई० द्वारा गठित यह राज्य परिषद् केन्द्रमें वास्तविक उत्तरदायी सरकारके विकासकी दिशामें गंभीर बाधा थी। लेकिन १९३५ ई० के इस विधानका राज्य परिषद् सम्बन्धी भाग पूरी तरह लागू भी न हो पाया था कि भारत स्वाधीन हो गया। स्वाधीनताके बाद भारतने जो नया संविधान स्वीकार किया, उसके अंतर्गत इस राज्य परिषद्को राज्य सभा (दे०) में बदल दिया गया। राज्य सभाका गठन और स्तर पुरानी राज्य परिषद्से बहुत भिन्न प्रकारका है।

कौटिल्य (जिसे **चाणक्य** अथवा **विष्णुगुप्त** भी कहते हैं)—तक्षशिला-निवासी एक ब्राह्मण। मुद्राराक्षस (दे०) नाटकमें सुरक्षित अनुश्रुतियोंके अनुसार वह पाटलिपुत्र (दे०) चला आया, जहाँ राजा नंद (दे०)ने उसे अपमानित किया। अपमानका बदला लेनेके लिए वह चन्द्रगुप्त मौर्यसे मिल गया और उसे नंदको पराजित करने तथा मार डालने और मगधके सिंहासनपर स्वयं बैठ जानेमें मदद दी। इसके बाद वह उसका प्रधान अमात्य बन गया और मगध राज्यपर उसका अधिकार सुदृढ़ बनाने तथा राज्यका शासन-प्रबंध करनेमें उसकी सहायता की। यह पता नहीं है कि उसकी मृत्यु कहाँ और कब हुई। कौटिल्यने 'अर्थशास्त्र' की रचना की जो संस्कृतमें राजशास्त्रका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ है। यद्यपि चंद्रगुप्त मौर्य (लगभग ३२२—२९८ ई० पू०) के अमात्य कौटिल्य (अथवा चाणक्य अथवा विष्णुगुप्त) तथा अर्थशास्त्रके रचयिता कौटिल्यको एक ही व्यक्ति माना जाता है, तथापि अर्थशास्त्रको चौथी शताब्दी ई० पू० की रचना माननेमें अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। अर्थशास्त्रमें चीनका उल्लेख मिलता है। उसमें राजभाषाके रूपमें संस्कृतका व्यवहार मिलता है। उसमें राज्याधिकारियोंके जो पद (जैसे संधाता आदि) दिये गये हैं, उनमेंसे किसीका उल्लेख अशोकके शिलालेखोंमें नहीं मिलता। इन सब कारणोंसे अर्थशास्त्रको प्रारम्भिक मौर्य राजाओंके कालकी रचना न मानकर बादके कालकी रचना माना जाता है। परन्तु इस बातसे इन्कार नहीं किया जा सकता कि भारतीय राजशास्त्रपर उसका अमिट प्रभाव पड़ा।

कौरव—इन्द्रप्रस्थके राजा धृतराष्ट्रके पुत्र। इन्द्रप्रस्थ दिल्लीके निकट स्थित था, जहाँ आज इन्दरपत गाँव बसा हुआ है। पांडव (पांडुके पुत्र) (दे०) कौरवोंके चचेरे भाई थे। कौरवों और पांडवोंकी प्रतिद्वन्द्विता तथा उनका युद्ध महाभारतकी मुख्य कथावस्तु है।

कौराल—दक्षिणका एक राज्य, जिसका उल्लेख समुद्रगुप्त (दे०)के इलाहाबाद स्तम्भ-लेखमें है। उसका राजा मंत्रराज गुप्त सम्राट् द्वारा पराजित हुआ। बादमें समुद्रगुप्तने उसे फिर गद्दीपर बैठा दिया। कौराल राज्य कहाँ था, यह अभीतक निश्चित रूपसे पता नहीं चल सका है।

कौस्थलपुर—दक्षिण भारतका एक राज्य, जिसके राजा धनंजयको समुद्रगुप्त (दे०)ने सिंहासनसे उतार दिया। बादमें समुद्रगुप्तने उसका राज्य उसे लौटा दिया। यह सम्भवतः उत्तरी आर्काट जिलेमें स्थित था।

क्यूरी, सर फ्रेडरिक (१७९९-१८७५)—कम्पनीकी कावेनेंटेड सिविल सर्विसमें १८२० ई० में प्रविष्ट और १८४२ ई० में विदेश सचिव। वह गवर्नर-जनरलके स्टाफमें भी रहा। वह १८४५-४६ ई० में प्रथम सिखयुद्ध (दे०)के दौरान कमांडर-इन-चीफ था। उसने लाहौरकी संधि की, जिसके फलस्वरूप युद्ध समाप्त हो गया। इसके बाद वह ६ अप्रैल १८४८ ई० को लाहौरमें ब्रिटिश रेजीडेंट नियुक्त हुआ। जब मुल्तानके बर्खास्त सिख गवर्नर मूलराजने वहाँ उपद्रव शुरू किया और २० अप्रैलको दो ब्रिटिश अफसरोंको मार डाला तो सर फ्रेडरिकने मुल्तानके विद्रोहको दबाने और शहरकी घेराबंदी करनेका असफल प्रयास किया। उसने हजारा जिलेके सिख गवर्नर शेरसिंहको मुल्तानकी घेराबंदी करनेवाली फौजोंकी मददके लिए भेजा, किन्तु शेरसिंह जाकर मूलराजसे मिल गया और सर फ्रेडरिकके प्रयास पूरी तरह विफल हो गये। इसके बाद शीघ्र ही १८४८-४९ ई० में दूसरा सिख-युद्ध (दे०) छिड़ गया। सिखोंकी बुरी तरह पराजय हुई और उनकी राजसत्ता एकदम समाप्त हो गयी। पंजाबको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया। उसने १८५३ ई० में शासनसे अवकाश ग्रहण किया और १८५४ ई०में वह ईस्ट इंडिया कम्पनीका डायरेक्टर चुना गया। १८५७ ई० में उसे चेयरमैन बनाया गया। इसके एक वर्ष बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी समाप्त हुई और उसे इंडिया कौंसिलका सदस्य नियुक्त किया गया। १८७५ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

क्रिप्स, सर रिचर्ड स्टेफोर्ड (१८८९–१९५२)–ब्रिटेनका प्रख्यात राजनीतिज्ञ, वकील और मजदूर दल (लेबर पार्टी) का विशिष्ट सदस्य। १९३९ ई० में उसे मजदूर दलसे निष्कासित कर दिया गया था, १९४० ई० में प्रधान-मंत्री चर्चिलने सोवियत संघमें राजदूत नियुक्त किया, जहाँ उसने इंग्लैण्ड और रूसके बीच करार कराया। १९४२ ई० में वह लार्ड प्रिवी सील, कामन सभाका नेता और युद्ध मंत्रिमंडलका सदस्य नियुक्त किया गया। भारतमें लागू किये जानेवाले संवैधानिक परिवर्तनोंके संबंधमें उसका दृष्टिकोण उदार समझा जाता था। भारत की राजनीतिक और संवैधानिक समस्याओंको शांतिपूर्वक हल करानेके लिए उसे दो बार—पहले १९४२ ई० में और दुबारा १९४६ ई०में भारत भेजा गया। १९४२ ई० में क्रिप्सने भारतमें संविधानके विकासके लिए कुछ सुझाव दिये, जिन्हें 'क्रिप्स-प्रस्ताव'के नामसे जाना जाता है। इन प्रस्तावोंमें ब्रिटिश सरकारके इस इरादेको दोहराया गया कि युद्ध समाप्त होनेके बाद यथाशीघ्र भारतीय संघकी स्थापना कर दी जायगी, जिसका स्तर ब्रिटिश राष्ट्रमंडलके राज्यका-सा होगा। इस लक्ष्यकी पूर्तिके लिए क्रिप्स-प्रस्तावमें आगे कहा गया था कि प्रांतीय विधान-मंडलों द्वारा निर्वाचित संविधान सभा ब्रिटिश सरकारके साथ भावी सम्बन्धोंके बारेमें एक संधि करेगी। भारतको राष्ट्रमंडलसे अलग होने, भारतीय राज्योंको भारतीय संघमें शामिल होने न होने और किसी भी भारतीय प्रांतको प्रस्तावित भारतीय संघसे बाहर रहने और वर्तमान संवि-धान बनाये रखनेकी छूट रहेगी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस-ने उसे इस आधारपर अस्वीकार कर दिया कि उसमें भारत-को 'औपनिवेशिक स्वराज्य' तत्काल देनेकी बात नहीं कही गयी थी। १९४६ ई० में क्रिप्सने कैबिनेट मिशन (दे०)के सदस्यकी हैसियतसे प्रस्ताव पेश किया, जिसमें ब्रिटिश भारतीय प्रांतोंका ऐसा संघ बनानेका सुझाव दिया गया था, जिसके नियंत्रणमें रक्षा, विदेश और संचार सम्बन्धी सभी मामले रहते। उक्त प्रस्तावके अनुसार देशी रियासतें भी बातचीतके बाद संघमें शामिल हो सकती थीं। प्रांतोंको संघके अधीन अपना उप-संघ बनानेकी स्वतंत्रता थी। इस सम्बन्धमें बाकी सब बातें विस्तारसे तय करनेका अधिकार संविधान सभाको दिया गया था और परिवर्तनोंके पूरी तरह लागू होने तक केन्द्रमें सभी दलोंकी अंतरिम राष्ट्रीय सरकार बनानेका प्राविधान था। कांग्रेस और मुस्लिम लीगकी शत्रुता दूर न की जा सकी और कैबिनेट मिशन प्रस्ताव, जिसके तैयार करनेमें क्रिप्सका काफी बड़ा हाथ था, ठुकरा दिया गया।

क्रिवी, लार्ड–१९११–१२ ई० में ब्रिटिश सरकारका भारत-मंत्री। सम्राट् जार्ज पंचमके भारत पधारनेपर क्रिवीने दिल्लीमें दरबारका आयोजन किया। इस समय राजधानीको कलकत्तासे दिल्ली लानेकी घोषणा भी की गयी। इसके अलावा जिन अन्य महत्त्वपूर्ण परिवर्तनोंकी घोषणा की गयी थी, उनमें बंग-विभाजनको रद्द करते हुए उसे सपरिषद् गवर्नरके अन्तर्गत करना, बिहार और उड़ीसा-को बंगालसे पृथक् करना, बिहार, उड़ीसा और छोटा नागपुर-के लिए लेफ्टिनेंट-गवर्नरका नया पद चालू करना तथा आसामका दर्जा घटाकर फिर चीफ कमिश्नरीके स्तरपर ले आना शामिल था। इस प्रकार भारतीय प्रशासनमें होनेवाले अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तनोंके साथ लार्ड क्रिवीका नाम जुड़ा हुआ है।

क्रेटिरास–सिकंदरके साथ पंजाबके अभियानमें भाग लेनेके लिए जो यूनानी सेनापति आये, उनमें सबसे वफादार और योग्य। सिकंदर उसको 'बिलकुल अपने समान' मानता था। उसने करीके मैदानवाली लड़ाईमें भाग लिया था, जिसमें पुरु (दे०)की हार हुई थी। बादमें उसने सिंधु नदीके दाहिने किनारे-किनारे दक्षिणी पंजाब तथा सिंध होकर वापस लौटनेवाली यूनानी सेनाका नेतृत्व किया। अंतमें वह विजयी यूनानी सेनाओंको कंदहार और सीसतान (शकस्थान)के मार्गसे बेबिलोन वापस ले गया।

क्रोमर, ईवलिन बारिंग, लार्ड (१८४१–१९१७)–१८७७ ई० में मिस्रमें गठित अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय बोर्डके सदस्यकी हैसियतसे सार्वजनिक वित्त-प्रबंधके विशेषज्ञके रूपमें विख्यात। १८८० ई० में वह वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्के वित्तीय सदस्यकी हैसियतसे भारत आया। उसने इस पदपर तीन वर्षों तक सफलतापूर्वक कार्य किया। १८९२ ई० में उसे 'लार्ड'की उपाधिसे विभूषित किया गया। इसीके बाद मिस्रमें अपने शासन-प्रबंधके लिए उसने और भी नाम कमाया।

क्लाइड, कालिन कैम्पबेल, लार्ड–देखिये, 'कैम्पबेल, सर कालिन'।

क्लाइव, लार्ड राबर्ट–जन्म १७२५ ई० में। वह नवयुवकके रूपमें भारत आया, और मद्रासमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके लिपिक (क्लर्क) पदपर नियुक्त हो गया। बादमें उसे कम्पनीकी सैनिक सेवामें काम करनेकी अनुमति मिल गयी। १७५१ ई० में २६ वर्षकी उम्रमें ही वह कैप्टेन हो गया। इस समय कर्नाटक (दे०)में अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंके बीच दूसरी लड़ाई छिड़ी हुई थी। फ्रांसीसियोंके आश्रित चंदा साहबने अंग्रेजोंके आश्रित मुहम्मद अलीको त्रिचिना-

पल्लीमें घेर लिया था। मद्रासके कम्पनी अधिकारी यह नहीं समझ पा रहे थे कि मुहम्मद अलीको कैसे मदद पहुँचायी जाय। इस विषम स्थितिमें युवा कप्तान राबर्ट क्लाइवने सुझाव दिया कि चंदा साहबका ध्यान बटानेके लिए कर्नाटककी राजधानी अर्काटपर अचानक आक्रमण कर दिया जाय। राबर्ट क्लाइवने इस योजनाको पूरी सफलताके साथ कार्यान्वित करके अर्काटपर कब्जा कर लिया। चंदा साहबने उसपर पुनः आधिपत्य स्थापित करनेके लिए बड़ी सेना भेजी। राबर्ट क्लाइवने ५३ दिनों तक इस सेनाकी घेरेबंदीका डटकर मुकाबला किया। इसके बाद युद्धका पासा पलटकर ब्रिटिश कम्पनीके पक्षमें हो गया और क्लाइवकी ख्याति बढ़ गयी।

१७५३ ई० में क्लाइव छुट्टी लेकर इंग्लैण्ड चला गया और दो वर्षों बाद एडमिरल वाटसनकी कमानके अंतर्गत एक स्काड्रनके साथ लौटा। बम्बई आनेपर उसे शीघ्र ही घेरिया बंदरगाहपर समुद्री लुटेरोंसे निपटनेके लिए भेजा गया, जहाँ उसकी विजय हुई। बादको पश्चिमी भारतमें स्थित बनकोट और नौ गाँवोंके बदलेमें घेरिया बंदरगाह मराठोंके सुपुर्द कर दिया गया।

इसके बाद क्लाइव और वाटसन जहाजसे मद्रास गये, लेकिन कुछ ही समय बाद उसे बंगाल भेज दिया गया, जहाँ इस बीच बंगालके नवाब सिराजुद्दौलाने कलकत्तापर अधिकार जमा लिया था। जनवरी १७५७ ई० में कलकत्ताको वस्तुतः बिना किसी प्रतिरोधके नवाबके हाथोंसे छीन लिया गया। इस समयसे क्लाइव बंगालमें कम्पनीका सर्वेसर्वा हो गया। फरवरीमें उसने नवाबके साथ अलीनगर संधि (दे०)की, जिसके अंतर्गत कम्पनीने बंगालके ऊपर नवाबका आधिपत्य स्वीकार करनेका वायदा किया। लेकिन एक महीने बाद ही क्लाइवने फ्रांसीसी उपनिवेश चन्द्रनगरपर हमला किया, उसे जीता और ध्वस्त कर दिया। इस प्रकार बंगालमें फ्रांसकी प्रतिद्वंद्विता समाप्त करनेके बाद उसने नवाब सिराजको अपदस्थ करने और उसके स्थानपर मीरजाफरको बंगालका नवाब बनानेके लिए सिराजके निकाले हुए दरबारियोंके साथ ईस्ट इंडिया कम्पनीकी तरफसे षड्यंत्र रचा। जून १७५७ ई० में औपचारिक रूपसे एक संधि हुई। कलकत्ताके सेठ अमीचन्द (दे०)को उक्त संधिका पता चल गया। उसने धमकी दी कि मुर्शिदाबादके खजानेकी लूटका कुछ हिस्सा यदि मुझे देनेका वायदा नहीं किया गया तो मैं संधिका भंडाफोड़ कर दूंगा। क्लाइवने असली संधिको गुप्त बनाये रखनेके विचारसे अमीचंदको संधिकी एक नकली प्रति बनाकर चकमा दे दिया।

इधर क्लाइवने असली संधिके अनुसार बिना किसी औपचारिक घोषणाके नवाब सिराजुद्दौलाके ऊपर हमला बोल दिया और २३ जून १७५७ ई० को पलासीके युद्धमें उसकी फौजोंको बुरी तरह परास्त किया। सिराज भाग खड़ा हुआ और क्लाइव अपनी फौजके साथ मुर्शिदाबादकी ओर बढ़ा जहाँ बिना किसी प्रतिरोधका सामना किये उसने राजधानीपर अधिकार कर लिया और मीरजाफरको बंगालका नवाब बनाया। मीरजाफरने कम्पनीके सभी कर्मचारियोंको बड़े-बड़े इनाम दिये। राबर्ट क्लाइवको २ लाख ३४ हजार १ सौ पाउण्डकी भारी रकम देनेके अलावा मीरजाफरने उससे २४ परगनाकी जमींदारीके बदले ईस्ट इंडिया कम्पनीसे मिलनेवाली मालगुजारीमेंसे प्रतिवर्ष ३० हजार पाउण्डकी राशि देनेका वायदा किया। इस प्रकार राबर्ट क्लाइव स्वयं कम्पनीका एक जमींदार बन गया। उसे अब बंगालका गवर्नर बना दिया गया। उसने चिनसुराके निकट विदर्राके युद्ध (दे०)में डचोंको हराया और बंगालमें उनकी सत्ताको समाप्त किया। इसके बाद क्लाइव छुट्टीपर इंग्लैण्ड चला गया, जहाँ उसने पाँच वर्ष (१७६०–६५) बिताये। आयरलैण्डके लार्डोंकी सूचीके अंतर्गत उसे 'बैरन, क्लाइव आफ प्लासी'की उपाधि दी गयी। चैथमके अर्लने 'जन्मजात जनरल' कहकर उसका स्वागत किया।

क्लाइवके इंग्लैण्ड प्रवासकालमें बंगालमें कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। नवाब मीरजाफरको भ्रष्ट कौंसिलने अपदस्थ कर उसके स्थानपर मीरकासिम (दे०)को बैठा दिया। मीरकासिमने भी शीघ्र ही कलकत्ता कौंसिलको इस कदर नाराज कर दिया कि उसके और कम्पनीके बीच युद्ध छिड़ गया। मीरकासिमकी पराजय हुई। वह अवध भाग गया, जहाँ उसने नवाब शुजाउद्दौला और बादशाह शाहआलम द्वितीयके साथ गठबंधन किया। इन सब घटनाओंसे चिंतित होकर कम्पनीके डाइरेक्टरोंने राबर्ट क्लाइवको, जो अब 'लार्ड क्लाइव' हो गया था, बंगालका गवर्नर और प्रधान सेनापति बनाकर भेजा। वह ३ मई १७६५ ई०को बंगाल पहुँचा, लेकिन तबतक मीरकासिम और उसके सहयोगी बक्सरके युद्धमें पराजित हो चुके थे। इन पराभूत शत्रुओंके साथ राजनीतिक समझौता करना अब क्लाइवके जिम्मे पड़ा। बक्सरमें हारनेके बाद मीरकासिम भाग गया और बंगालके रिक्त राजसिंहासनपर मीरजाफरके पौत्रको बैठाया गया। नवाब शुजाउद्दौलाको अवध लौटा दिया गया और बदलेमें उसने कोड़ा और इलाहाबादके जिले कम्पनीको दे दिये, जिन्हें कम्पनीने शाहआलम द्वितीयके

सुपुर्द कर दिया। शाहआलमने दीवानी अधिकार अर्थात् बंगाल, बिहार और उड़ीसाका शासन-प्रबंध करने और मालगुजारी वसूलनेका अधिकार ईस्ट इंडिया कम्पनीको इस शर्तपर दे दिया कि वह बादशाहको सालाना २६ लाख रुपया देगी। इस प्रकार बंगाल, बिहार और उड़ीसामें लार्ड क्लाइवने बादशाह और कम्पनीकी 'दोहरी सरकार' की स्थापना की।

इस राजनीतिक व्यवस्थाके बाद लार्ड क्लाइवने कम्पनीकी आंतरिक व्यवस्था सुधारनेका कठिन कार्य हाथमें लिया। १७६५ ई० में नियुक्तिके समय लार्ड क्लाइव-को खासतौरसे यह निर्देश दिया गया था कि वह बंगालमें कम्पनीके अधिकारियोंमें व्याप्त भ्रष्टाचारका उन्मूलन करे और इनके द्वारा किये जा रहे निजी व्यापारको रोके। ये अधिकारी निजी व्यापार बढ़ानेमें लग गये थे, जिससे कम्पनी और नवाब दोनोंके ही राजस्वको नुकसान पहुँच रहा था। लार्ड क्लाइवने कम्पनीके सभी अधिकारियोंसे प्रतिज्ञापत्रोंपर दस्तखत कराये, जिनमें इस बातकी शपथ ली गयी थी कि वे रिश्वत नहीं लेंगे। क्लाइवने फिजूल-खर्ची रोकनेके लिए अधिकारियोंके दौरा-भत्तामें भी कटौती कर दी और जब गोरोंने बगावत करनेका प्रयास किया तो क्लाइवने बड़े साहसके साथ उसे कुचल दिया। निजी व्यापार रोकनेके मामलेमें क्लाइवने स्वयं अपने निर्देशोंकी उपेक्षा की। उसने कम्पनीके वरिष्ठ अधिकारियोंके साथ एक व्यापार-मंडलकी स्थापना की और उसे नमक तथा कुछ अन्य चीजोंमें निजी व्यापार चलानेका एकाधिकार प्रदान कर दिया। इसमें क्लाइवने खुद पांच हिस्से लिये, जिन्हें बादमें उसने तीन लाख रुपयोंमें बेच दिया। १७६७ ई० में क्लाइवने अंतिमरूपसे अवकाश ग्रहण कर लिया और इंग्लैण्ड चला गया। बंगालके प्रशासनकालमें क्लाइवने अपने अनगिनत शत्रु बना लिये थे। इंग्लैण्ड लौटनेपर इन शत्रुओं तथा कुछ सार्वजनिक नेताओंने, जो कम्पनीके प्रशासनको भ्रष्टाचार और धनलोलुपतासे मुक्त कराना चाहते थे, क्लाइवपर गंभीर आक्षेप किये। ब्रिटिश संसदमें कर्नल बरगोइनके प्रस्तावपर क्लाइवके बंगाल-प्रशासनकी संसदीय जाँच करायी गयी। इसके फलस्वरूप संसदने कर्नल बरगोइनका प्रस्ताव पारितकर बंगालमें व्याप्त भ्रष्टाचारकी भर्त्सना की, बंगालमें कम्पनीकी फौजकी मददसे इकट्ठी की गयी दौलतको गैरकानूनी करार दिया। राबर्ट क्लाइवके विरुद्ध संसदने एक तरफ तो यह अभियोग लगाया कि उसने २ लाख ३४ हजार पाउण्डकी धनराशि-को अवैध ढंगसे हड़प लिया, दूसरी ओर उसकी यह कहकर प्रशंसा भी की कि उसने देशकी महान् और सराहनीय सेवाएं कीं। इस प्रच्छन्न भर्त्सनासे राबर्ट क्लाइवके दिलको इतनी चोट पहुँची कि उसने २२ नवंबर १७७४ ई० को अपना गला काटकर आत्महत्या कर ली।

क्लियोफिस—यूनानी इतिहासकारोंके अनुसार असिक्नोई (दे०)की रानी। कहा जाता है कि मकदूनियाके राजा सिकन्दरसे उसको एक लड़का पैदा हुआ था।

क्लेवरिंग, जनरल, सर जान—ईस्ट इंडिया कम्पनीकी ओरसे रेगूलेटिंग ऐक्ट (१७७३ ई०)के अन्तर्गत गवर्नर-जनरलकी परिषदका सदस्य नियुक्त। वह अक्तूबर १७७४ ई० को कलकत्ता आया और तबसे अगस्त १७७७ ई० तक इसी पदपर कार्य करते हुए उसका निधन हो गया। वह सामान्य गुणोंवाला एक ईमानदार व्यक्ति था। उसने अपने कार्य-कालमें वारेन हेस्टिंग्सका बराबर विरोध किया और अपने एक अन्य साथी फिलिप फ्रांसिसका समर्थन किया। यद्यपि महाराज नन्दकुमारने उसे अपना संरक्षक समझा, तथापि उसने नंदकुमारको फांसीसे बचानेके लिए कुछ भी नहीं किया। १७७७ ई० के प्रारंभमें वारेन हेस्टिंग्सके इस्तीफेकी खबरपर सर जान क्लेवरिंगको उसका उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया, किन्तु हेस्टिंग्सने अपने इस्तीफेकी खबरका खंडन कर दिया और क्लेवरिंगको गवर्नर-जनरलके पदपर नहीं बैठने दिया। इसके खिलाफ सुप्रीम कोर्टमें अपील की गयी, लेकिन हेस्टिंग्सके पक्षमें फैसला हुआ। इस घटनाने कौंसिलमें घोर कटुता उत्पन्न कर दी और इसी कटुताके वातावरणमें क्लेवरिंगकी मृत्यु हो गयी।

क्लोज, सर बेरी (१७५६–१८१३)—१७७१ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनीकी मद्रासी पलटनके अधिकारीकी हैसियतसे भारत आया। उसने १७८० ई० में हैदरअलीके खिलाफ लड़ाईमें भाग लिया। वह १७९२ ई० में और दुबारा फिर १७९९ ई० में श्रीरंगपट्टमकी घेराबंदीके समय मौजूद था। १७९९ ई० में उसे मैसूरमें ब्रिटेनका पहला रेजीडेंट नियुक्त किया गया। नये राजाके लिए वह बड़ा ही सहानुभूतिपूर्ण पथप्रदर्शक सिद्ध हुआ। इसके बाद १८०१ ई०में वह पूनामें रेजीडेंट नियुक्त किया गया, जहाँ १० वर्षोंतक रहा। उसने दिसम्बर १८०२ ई० में बसईकी संधि (दे०)के लिए पेशवा बाजीराव द्वितीयसे वार्ता आरम्भ की। १८११ ई०में उसने अपने पदसे अवकाश ग्रहण किया और वह बैरन (लार्ड) बना दिया गया। १८१३ ई० में उसका निधन हो गया।

क्षत्रप—उत्तर भारतके कई भूभागोंपर राज्य करनेवाले शक शासकोंकी उपाधि। क्षत्रप शासक तीन वर्गोंमें विभक्त

किये जाते हैं, यथा काबुलकी घाटीमें कापिशीके क्षत्रप, पश्चिम पंजाब अथवा तक्षशिला और मथुराके क्षत्रप। ग्रनह्वर्यक, तिरह्वर्न एवं शिवसेन कापिशीके क्षत्रपोंमेंसे था। पंजाबका क्षत्रपकुल अपेक्षाकृत बड़ा था और उसमें लियक, उसका पुत्र पतिक, मणिगुल और उसका पुत्र जियोनिसस अथवा डिहोनिक, इन्द्रवर्मा और उसका पुत्र अस्थवर्मा तथा उसका भतीजा शस आदि थे। मथुराके क्षत्रप कुलमें रजुवल अथवा रजुल, उसका पुत्र सुदास, अथवा सोडाश तथा उसका भतीजा खरोष्ठ हुए। इन शक क्षत्रपोंके सम्बन्धमें कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। उनके नाम सिक्कों और खण्डित अभिलेखोंमें उपलब्ध हैं। उनकी तिथियोंका अभी तक निश्चय नहीं हो सका है, पर ऐसा विश्वास किया जाता है कि उन्होंने कुषाणोंके पूर्व राज्य किया। **(बनर्जी, पृ० ४४३ नोट)**

क्षत्रिय—भारतीय आर्योंमें अत्यंत आरम्भिक कालसे वर्ण-व्यवस्था मिलती है, जिसके अनुसार समाजमें उनको दूसरा स्थान प्राप्त था। उनका कार्य युद्ध करना तथा प्रजाकी रक्षा करना था। 'क्षत्रिय' शब्दका व्युत्पत्तिकी दृष्टिसे अर्थ है—जो (दूसरोंको) क्षतसे बचावे। ब्राह्मण ग्रंथोंके अनुसार क्षत्रियोंकी गणना ब्राह्मणोंके बाद की जाती थी, परन्तु बौद्ध ग्रन्थोंके अनुसार चार वर्णोंमें क्षत्रियोंको ब्राह्मणोंसे ऊँचा अर्थात् समाजमें सर्वोपरि स्थान प्राप्त था। गौतम बुद्ध और महावीर दोनों क्षत्रिय थे और इससे इस स्थापनाको बल मिलता है कि बौद्ध धर्म और जैन धर्म जहाँ एक ओर समाजमें ब्राह्मणोंकी श्रेष्ठताके दावेके प्रति क्षत्रियोंके विरोध भावको प्रकट करते हैं, वहीं दूसरी ओर पृथक् जीवन दर्शनके लिए उनकी आकांक्षाको भी अभिव्यक्ति देते हैं। जो भी हो, बादमें क्षत्रियोंका स्थान निश्चित रूपसे चारों वर्णोंमें ब्राह्मणोंके बाद दूसरा माना जाता था।

क्षयार्श (जरक्सीज)—पारस (फारस)का सम्राट् (४८६–४६५ ई०पू०), सम्राट् दारयवुह (डेरियस)का पुत्र एवं उत्तराधिकारी। उसने अपने पितासे प्राप्त भारतीय साम्राज्य अक्षुण्ण रखा। उसके साम्राज्यमें गंधार, सिन्धु नदीकी घाटी (पूर्वमें राजस्थानकी मरुभूमि तक) तथा संभवतः सिंध प्रांत सम्मिलित था। यूनानी इतिहासकार हेरोडोटसके अनुसार क्षयार्श यूनान (ग्रीस) पर चढ़ाई करनेके लिए जो सेना ले गया था उसमें गंधार तथा भारतके योद्धा भी सम्मिलित थे। गंधारके सैनिक नरकुलके धनुष तथा भाले लिये हुए थे। भारतीय सैनिक सूती कपड़े पहने हुए थे और वे बांसके धनुष लिये हुए थे, जिससे वे नुकीले लोहेके फलकसे युक्त तीर फेंकते थे।

क्षुद्रक—एक गण, जो पंजाबमें जहलम और चिनाब नदियोंके संगमके नीचे वाले भागमें निवास करता था। यूनानी इतिहासकारोंने इनका नाम ओक्सिड्राकाई दिया है। जब सिकन्दरने इनके देशपर आक्रमण किया तो उन्होंने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और उसे बहुत-से रथ, बकलस, सौ टेलेंट (एक प्राचीन भार) लोहा और सूती वस्त्रोंका ढेर भेंट किया। इससे संकेत मिलता है कि उनकी सभ्यता बहुत उन्नत थी।

क्षेमजित (अथवा क्षात्रौजस)—शैशुनागवंशका चौथा राजा और राजा बिम्बसार (दे०) (लगभग ५२२-४९४ ई० पू०) का पूर्ववर्ती शासक। नामके अलावा उसके बारेमें और कुछ ज्ञात नहीं है।

क्षेमधर्म—शैशुनागवंश (दे०) का तीसरा राजा, जो सातवीं शताब्दी ई० पू० के उत्तरार्धमें राज्य करता था। उसके राज्यकालके बारेमें कुछ विशेष वृतान्त ज्ञात नहीं है।

ख

खजवाकी लड़ाई—शाहजहांके दूसरे और तीसरे पुत्रों, शाहजादा शुजा (दे०) और शाहजादा औरंगजेब (दे०) के बीच १६५९ ई० में हुई। इस लड़ाईमें शुजा हारकर भागा। उसे बंगालसे बाहर खदेड़ दिया गया। वह अराकान भाग गया, जहां उसकी मृत्यु हो गयी।

खजुराहो—चंदेलों (दे०) की धार्मिक राजधानी, जो बुंदेलखण्डमें छतरपुरसे २७ मील पूर्वमें स्थित है। खजुराहोमें अनेक मंदिर बने हुए हैं जो चंदेलोंके ऐश्वर्य और उनके कला, मूर्तिकला तथा वास्तुकला-प्रेमकी साक्षी देते हैं। दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दीमें उत्तरी भारतमें जिन मंदिरोंका निर्माण किया गया, उनमें यहांके मंदिर सबसे भव्य माने जाते हैं। खजुराहोके मंदिरोंमें कंडरिया महादेवका मंदिर सबसे विशाल और सबसे सुन्दर है।

खड़कीकी लड़ाई—१८१७ ई० में तीसरे मराठा-युद्धकी शुरूआत इसीसे हुई। पेशवा बाजीराव द्वितीयने पूनामें तैनात ब्रिटिश फौजोंपर हमला बोल दिया। परन्तु एलफिन्स्टन (दे०) ने उन फौजोंका नेतृत्व बड़ी कुशलतासे किया और खड़कीकी लड़ाईमें पेशवाको हरा दिया।

खड़गसिंह—महाराज रणजीतसिंह (दे०) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। वह न केवल मंद-बुद्धि था, बल्कि उद्धत सिखोंको वशमें रखनेकी क्षमतासे भी रहित था। गद्दीपर

बैठनेके साल भर बादही १८४० ई० में उसकी हत्या कर दी गयी।

खरोष्ठी—एक प्राचीन भारतीय लिपि जो ब्राह्मी लिपिके ठीक उलटे ढंग अर्थात् दाहिनेसे बायें लिखी जाती थी। अशोकने अपने चतुर्दश शिलालेखोंमेंसे दो मानसेरा तथा शहबाजगढ़ीके शिलालेखोंमें खरोष्ठी लिपिका प्रयोग किया है। इससे मालूम पड़ता है कि तीसरी शताब्दी ई० पू० में भारतके उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्तोंमें ब्राह्मी लिपिके बजाय खरोष्ठी लिपि प्रचलित थी।

खर्डाकी लड़ाई—१७६५ ई० में हैदराबादके निजाम और मराठोंके बीच हुई, जिसमें निजाम बुरी तरह हारा और उसे अत्यंत प्रतिकूल शर्तोंपर संधि करनेके लिए विवश होना पड़ा। मुख्यरूपसे इस हारके कारण निजामने १७९८ ई० में भारतमें अंग्रेजोंके आश्रित होनेकी संधि कर ली और इस प्रकार अपनी स्वतंत्रता बेच कर जान बचा ली।

खलाफ हसन बसरी—एक विदेशी सौदागर, जो पन्द्रहवीं शताब्दीमें बहमनी राज्यमें आया और आठवें बहमनी सुल्तान फीरोज (दे०) के भाई शाहजादा अहमदको १४२२ ई० में फीरोजको गद्दीसे उतार देने तथा उसकी हत्या कर डालनेमें मदद की। इसके बाद वह नये सुल्तान अहमद (१४२२-३५ ई०) का वजीर हो गया, परंतु, अगले सुल्तान अलाउद्दीन (१४३५-५७ ई०) के राज्यकालमें बहमनी राज्यमें दक्खिनी तथा विलायती अमीरोंके बीच एक दंगेके दौरान मार डाला गया।

खलीलुल्ला खां—उस फौजका एक सिपहसालार, जिसको लेकर बादशाह शाहजहांका सबसे बड़ा पुत्र शाहजादा दारा (दे०) अपने तीसरे और चौथे भाई शाहजादा औरंगजेब तथा शाहजादा मुरादसे १६५८ ई० में आगराके किलेसे ८ मील पूर्व सामूगढ़में लड़ा। खलीलुल्ला खांकी विश्वासघातपूर्ण सलाहपर ही शाहजादा दारा लड़ाईके नाजुक दौरमें उस हाथीसे उतर पड़ा, जिसपर वह लड़ाईके शुरूसे सवार था और एक घोड़ेपर सवार हो गया। हाथीकी पीठपर खाली हौदेको देखकर दाराके सिपाहियोंने समझा कि वह मारा गया है और वे सब भाग खड़े हुए। दारा वह लड़ाई तो हार ही गया, इसके साथ दिल्लीका ताज भी उसके हाथसे निकल गया।

खानजमां—एक उजबेक अमीर, जिसे बादशाह अकबर (१५५६-१६०५ ई०) की ईरानी चाल-ढाल पसंद नहीं थी। उसने १५६७ ई० में बादशाहके खिलाफ बगावत कर दी। बगावत शीघ्र कुचल दी गयी। इसकी वजहसे अकबरकी चित्तौड़पर चढ़ाईमें कुछ विलम्ब हो गया।

खानजहां बहादुर—बादशाह औरंगजेब (१६५९-१७०७ ई०) का एक अधिकारी, जिसने उसके मंदिरोंको तोड़नेके हुक्मका बखूबी पालन किया। उसने १६७९ ई० में जोधपुरमें अनेक हिन्दू मन्दिर तोड़ दिये और कई गाड़ी भर कर देवमूर्तियां जोधपुरसे आगरा भेजीं। औरंगजेबने उसे खूब शाबाशी दी।

खानजहां लोदी—एक अफगान सरदार, जो बादशाह शाहजहांके गद्दीपर बैठनेके समय दक्खिनका सूबेदार था। उसने दावरबख्श (दे०) के बादशाह बनाये जानेका समर्थन किया, परन्तु शाहजहां (१६२७-५९ ई०) ने गद्दीपर बैठनेपर उसे क्षमा कर दिया और दक्खिनके सूबेदारके पदपर बने रहने दिया। परन्तु, जब वह बादशाहके हुक्मसे बालाघाटको फिरसे न जीत सका, जिसे उसने निजामशाहके हाथ बेच दिया था, तो उसे दिल्ली वापस बुला लिया गया। उसे डर था कि मुझे अभी और दंडित किया जायगा। इसलिए वह अहमदनगर भाग गया। परन्तु शाही फौजोंने उसका पीछा किया और वह १६३१ ई० में एक युद्ध में मारा गया।

खानवाकी लड़ाई—आगरासे थोड़ी दूरपर बादशाह बाबर (१५२५-३० ई०) तथा मेवाड़के राणा संग्रामसिंहके बीच १५२७ ई० में हुई, जिसमें राणा संग्रामसिंहकी निर्णयात्मक पराजय हो गयी। इस लड़ाईके बाद मुगल साम्राज्यके लिए राजपूतानेकी ओरसे कोई भय नहीं रहा।

खाने-जहान—मूल रूपसे तेलंगानाका एक हिन्दू। वह मुसलमान बन गया और अपनी योग्यताके कारण सुल्तान फीरोज तुगलक (१३५१-८८ ई०) का अत्यन्त विश्वस्त उच्च अधिकारी बन गया। वास्तवमें सल्तनतका सारा आंतरिक प्रशासन १३८० ई०में उसकी मृत्यु तक उसीके हाथमें था।

खाने-जहान (कनिष्ठ)—खाने-जहान (ज्येष्ठ) का पुत्र। १३७० ई० में पिताकी मृत्यु होनेपर उसके स्थानपर सुल्तान फीरोज तुगलक (१३५१-८८ ई०) का वजीर बना। उसने सुल्तान फीरोज और उसके सबसे बड़े पुत्र मुहम्मद खांमें मनमुटाव करानेकी कोशिश की, परन्तु शाहजादेने सुल्तानके सामने सारे षड्यन्त्रका पर्दाफाश कर दिया। इस तरह खाने-जहान सुल्तानके मनसे उतर गया। १३८७ ई० में उसे बर्खास्त कर मार डाला गया।

खाने दौरान—शाहजहांके राज्यकाल (१६२७-५९ ई०) में एक सूबेदार, जो रैयतसे निर्दयतापूर्वक रुपया ऐंठनेके लिए बदनाम था। उसकी मृत्युपर लोगोंने इस तरह खुशी मनायी जैसे किसी आफतसे छुटकारा पाया हो।

खाफी खां—खुरासानके ख्वाफ नामक स्थानके निवासी मुहम्मद

हाशिमका उपनाम, जिसने 'मुन्तखबुल-लुबाब' नामक प्रसिद्ध इतिहास ग्रंथकी रचना की है। वह मुगल दरबारमें रहता था और उसने अपनी पुस्तक बादशाह मुहम्मदशाह (१७१९–४८ ई०)के राज्यकालमें लिखी। मुसलमान इतिहासकारोंमें उसे अत्यन्त तटस्थ लेखक माना जा सकता है। वह इतना उदार और सत्यप्रेमी लेखक था कि उसने अपनी पुस्तकमें मराठा छत्रपति शिवाजीकी विजयोंका भी उल्लेख किया है और उनके कुछ गुणोंकी प्रशंसा की है। उसके ग्रंथमें बादशाह औरंगजेब (१६५९–१७०७ ई०)के राज्यकालका सबसे प्रामाणिक विवरण मिलता है। वह उसका निकटवर्ती समकालीन कहा जा सकता है।

खाम–भारतीय मुसलिम राज्य-प्रणालीमें राजस्वका एक स्रोत। यह युद्धकी लूट तथा खानोंकी उपजका एक बटा पाँच हिस्सा लिया जाता था।

खारवेल–कलिंग (उड़ीसा) तथा उसके आसपासके क्षेत्रका एक प्रारम्भिक राजा। उसके बारेमें सारी सूचनाओंका आधार सिर्फ हाथीगुम्फा लेख है, जिसको अभी एकदम सुनिश्चित रीतिसे पढ़ा नहीं जा सका है। उस लेखमें आये हुए दो वाक्यांशोंकी सही-सही व्याख्या होना अभी शेष है। अनुमान किया जाता है कि इन वाक्यांशोंमें तिथिका संकेत है। फिर भी इस लेखका पुरी जिलेमें उदयगिरिपर निर्ग्रन्थ (जैन) साधुओंकी एक गुफापर अंकित होना प्रमाणित करता है कि खारवेल कलिंगका राजा था और निर्ग्रन्थों (जैन साधुओं)का उपासक था। वह महान योद्धा था। उसने पूर्वी भारतमें चतुर्दिक् विजय-यात्राएँ कीं। उसकी सेनाने यदि सुदूर दक्षिणमें पांड्य राजाओंकी राज्य सीमातक धावा मारा तो उत्तरमें उसने मगधके राजा बहपति-मितमको परास्त किया, जिसकी पहचान लगभग १८५ ई०पू० में शुंगवंश के राजा पुष्यमित्र (दे०) से की जाती है। बताया जाता है कि खारवेलने मथुराके यवन राजा तथा (सातवाहन वंशके) एक शातकर्णि राजाको हराया। उसने जनताके कल्याणके लिए भी अनेक कार्य किये। उसने एक नहर नगरके बीचसे निकलवायी, जिसका निर्माण तीन सौ वर्ष पूर्व एक नन्दराजाने किया था। उसके राज्यकालकी अवधि ज्ञात नहीं है। उसके उत्तराधिकारियोंने कोई ख्याति नहीं प्राप्त की।

खालसा–सिखोंका सैनिक धर्मतंत्र। इसकी स्थापना १७१६ ई० में बन्दा (दे०)को सूलीपर चढ़ा दिये जानेके बाद हुई। इसका सूत्रपात कपूरसिंह (दे०) ने किया। जैसे-जैसे समय बीतता गया, इसका आशय सिखोंकी समूची सैनिक शक्ति हो गया। परंतु शुरूमें अनेक वर्षोंतक खालसाके अंदर एकताका अभाव था। वह बारह मिस्लोंमें विभाजित था, जिनमें आपसी लड़ाई-झगड़े चलते रहते थे। महाराज रणजीतसिंह (१७९८–१८३९ ई०) (दे०) ने इन मिस्लोंको अपने अधिनायकत्वमें संगठित किया और समस्त सिख जनता 'खालसा' सम्बोधित की जाने लगी। प्रथम सिख-युद्ध (दे०) में खालसाकी हार हुई तथा द्वितीय सिख-युद्ध (१८४८–४९ ई०) में हारके बाद उसका विघटन कर दिया गया।

खालसा–उस सरकारी जमीनको कहते हैं, जिसका प्रबंध सरकार खुद करती है। दिल्लीके सुल्तानोंके अंतर्गत मालगुजारीकी जो व्यवस्था थी, उसके सम्बंधमें इस शब्दका प्रयोग किया जाता था।

खिज्र खां–सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (१२९६–१३१६ ई०)का सबसे बड़ा पुत्र, १३०३ ई० में उसे मेवाड़का सूबेदार बनाया गया। यह राज्य अलाउद्दीनने हालमें जीता था। खिज्र खां १३११ ई० तक इसका सूबेदार रहा। उसने १३०७ ई० में गुजरातके पराजित राजा कर्णदेवकी पुत्री देवलदेवीसे विवाह कर लिया। दोनोंकी प्रेमगाथाका वर्णन कवि अमीर खुसरो (दे०)ने किया है। सब यही सोचते थे कि वही अपने पिताके राज्यका उत्तराधिकारी होगा। परंतु १३१६ ई० में सुल्तान अलाउद्दीनकी मृत्यु होनेपर उसे मलिक काफूरने अंधा बनाकर गद्दीपर बैठनेके अयोग्य कर दिया।

खिज्र खां सैयद–तैमूरकी ओरसे मुलतानका हाकिम। १४१४ ई० में दिल्लीके अंतिम तुगलक सुल्तानके ऊपर उसने चढ़ाई की और उसे बन्दी बनाकर राजधानीपर अधिकार कर लिया। इस प्रकार वह दिल्लीके सुल्तानोंमें एक नये वंश—सैयद वंशका संस्थापक बना। उसका अधिकारक्षेत्र केवल दिल्ली तथा उसके आसपासके क्षेत्र तक सीमित था। उसने दिल्लीपर सात साल (१४१४-२१ ई०) तक शासन किया।

खिलजी–तुर्कोंका एक कबीला, जो उत्तरी भारतपर मुसलमानोंकी विजयके बाद यहां आकर बस गया। जलालुद्दीनने गुलाम वंशके अंतिम सुल्तानकी हत्या करके खिलजियोंको दिल्लीका सुल्तान बनाया। खिलजी वंशने १२९० से १३२० ई० तक राज्य किया। दिल्लीके खिलजी सुल्तानोंमें अलाउद्दीन (१२९६–१३१६ ई०) सबसे प्रसिद्ध और योग्य शासक था।

खिलाफत आंदोलन–उद्देश्य मुसलमान शासनमें तुर्कीकी प्रभुसत्ता तथा अखंडता बनाये रखना तथा उसके सुल्तानको मुसलिम देशोंका खलीफा मानना था। १९१४ ई० से

पहले ही तुर्कीकी सल्तनत दिनोंदिन कमजोर होती जा रही थी और उसका तेजीसे ह्रास हो रहा था। प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४–१८ ई०) में उसे जो क्षति उठानी पड़ी, उसके फलस्वरूप इस बातका खतरा उत्पन्न हो गया कि वह पूरी तरह समाप्त हो जायगी। इससे भारतीय मुसलमानोंमें बड़ी बेचैनी फैली और उन्होंने १९२० ई० में एक आंदोलन शुरू किया, जिसका उद्देश्य इंग्लैंडपर इस बातके लिए जोर डालना था कि वह तुर्की साम्राज्य तथा 'खलीफा' पदको तोड़नेमें हिस्सा न ले। भारतीय मुसलमानोंका यह आंदोलन 'खिलाफत आंदोलन'के नामसे विख्यात है। इसमें 'अलीबंधु'–शौकत अली और मुहम्मद अली खूब चमके। दोनों सुशिक्षित और अच्छे वक्ता थे। वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसमें सम्मिलित हो गये, जिसने महात्मा गांधीके नेतृत्वमें १९२० में असहयोग आंदोलन आरम्भ किया। इस प्रकार खिलाफत आंदोलनके फलस्वरूप भारतीय मुसलमानों और हिन्दुओंमें अभूतपूर्व एकता स्थापित हो गयी और इससे भारतीय राष्ट्रीय आंदोलनको काफी शक्ति मिली। खिलाफत आंदोलनके साथ-साथ असहयोग आंदोलनने बहुतसे भारतीय मुसलमानोंको अफगानिस्तानकी हिज्रतके लिए प्रेरित किया। परंतु अफगानोंने मुसलमान होते हुए भी अपने भारतीय मुसलमान भाइयोंकी हिज्रतका स्वागत नहीं किया। उधर तुर्कीमें कमाल अतातुर्कका उदय हुआ, जिसने तुर्कीमें नवजागरणका संचार किया। १९२३ ई० में तुर्कीके सुल्तानको गद्दीसे उतार दिया गया और १९२० ई० में खलीफाका पद तोड़ दिया गया। इस प्रकार खिलाफत आंदोलनके नीचे की जमीन ही एक प्रकारसे खिसक गयी और इसके बाद आंदोलन शीघ्रतासे समाप्त हो गया।

खीव—उज्बेकिस्तानमें स्थित, जो अब सोवियत संघमें है। पहले अफगान-युद्धके अवसरपर यह अफगानिस्तानका अधीनस्थ राज्य था। रूस खीवको हथियाना चाहता था। परंतु १८३९ ई० में खीवपर उसका आक्रमण पूर्णतया विफल रहा। इससे प्रकट हो गया कि रूस अपनी राजधानीसे इतनी दूरीपर कमजोर पड़ता है। परंतु कई साल बाद १८७३ ई० में रूसने खीवपर दखल कर लिया। इससे अफगानिस्तानका अमीर शेर अली इतना घबड़ाया कि उसने ब्रिटिश भारतीय सरकारसे प्रार्थना की कि उसके साथ रक्षात्मक संधि कर ली जाय। उस समय ब्रिटिश भारतीय सरकारने उसका यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। परंतु १८७८ ई० में इसी प्रकारका एक प्रस्ताव अफगानिस्तानसे जबर्दस्ती मनवानेके लिए दूसरा अफगान-युद्ध (१८७८–८१ ई०) छेड़ा गया।

खुसरो खाँ—एक नीच जातिका गुजराती हिन्दू, जो मुसलमान बन गया था। वह सुल्तान मुबारक खिलजी (१३१६–२० ई०)का कृपापात्र होकर उसका बड़ा वजीर नियुक्त हो गया। परंतु वह इतना कृतघ्न निकला कि उसने १३२० ई० में अपने मालिककी हत्या कर दी और उसकी गद्दी हथिया ली। गद्दीपर बैठनेपर उसने अपना नाम सुल्तान नासिरुद्दीन खुसरो शाह रखा। उसने राज्यका खजाना या तो उन सरदारोंको घूस देनेमें, जिनसे वह डरता था अथवा अपने सम्बंधियों और ज्ञातिजनोंको पुरस्कृत करनेमें लुटा दिया। उसने मरहूम सुल्तानके परिवारके सदस्योंकी हत्या कर डाली और उसके समर्थकोंका वध कर दिया। परंतु वह थोड़े ही दिन राज्य कर पाया। वह १३२० ई० के अप्रैलसे सितम्बर तक गद्दीपर रहा। दिल्लीके मुसलमान सरदारोंके एक दलने उसे हराकर मार डाला।

खुसरो मलिक—खुसरो शाह (दे०) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। पंजाबपर शासन करनेवाला यह अंतिम गजनवी था। ११८६ ई० में शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने उसे हरा दिया। उसके साथ ही गजनवी वंशका अंत हो गया।

खुसरो शाह—गजनवी वंशके बहराम शाहका पुत्र तथा उत्तराधिकारी। गुज्ज तुर्कोंके हमलेके फलस्वरूप ११६० ई० में गजनी छोड़कर पंजाब भाग आनेको विवश हुआ, जहां अपनी मृत्यु तक शासन करता रहा। उसके बाद उसका पुत्र खुसरो मलिक उत्तराधिकारी हुआ।

खुसरो, शाहजादा—सलीम (जहांगीर) का सबसे बड़ा पुत्र और बादशाह अकबरका पौत्र। १६०५ ई० में अकबरकी मृत्युके समय उसकी गद्दीपर सलीमके बजाय शाहजादा खुसरोको बैठानेका प्रयत्न किया गया। राजा मानसिंहके समर्थनके बावजूद यह योजना विफल हुई। मानसिंह खुसरोका मामा था। सलीमने गद्दीपर बैठनेके बाद अपने पुत्रको क्षमा कर दिया, साथ ही उसे आगरेके किलेमें कैद कर दिया। परंतु वह कैदसे निकल भागा और अपने पिता बादशाह जहांगीरके खिलाफ बगावतका झंडा बुलंद कर दिया। परंतु उसे शीघ्र परास्त कर दिया गया। बादशाहने उसे फिर क्षमा कर दिया।

इसके बाद शाहजादा खुसरोको गद्दीपर बैठानेके लिए दूसरा षड्यंत्र रचा गया, परंतु वह विफल हो गया। शाहजादेको अंधा कर दिया गया। शाहजादा काफी लोकप्रिय था और मुगलोंके मानदंडसे एक वफादार पति था। उसने मलका नूरजहांकी पहले पतिसे उत्पन्न कन्यासे

विवाह करने और उसे अपनी दूसरी पत्नी बनानेसे इनकार कर दिया। शाहजादेका मन अपने पितासे कभी पूरी तरहसे मिल नहीं पाया। उसका छोटा भाई खुर्रम (शाहजहां) उससे ईर्ष्या एवं घृणा करता था। १६२० ई० में जहांगीरने खुसरोको शाहजहांके सुपुर्द कर दिया। उसने उसे बुरहानपुरमें कैद कर दिया, जहां १६२२ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्युका कारण निश्चित रूपसे ज्ञात नहीं है, परंतु विश्वास किया जाता है कि शाहजहांने द्वेषवश किसी रीतिसे उसकी जान ले ली।

खेर, बी० जी०—बम्बई प्रांतमें १९३७ ई० में बननेवाले पहले कांग्रेस मंत्रिमंडलके मुख्य-मंत्री। उन्होंने बड़ी योग्यता तथा सफलताके साथ प्रशासन चलाया तथा शिक्षा-प्रणालीके विकासमें विशेष रुचि दिखलायी।

खैबरका दर्रा—अविभाजित भारतवर्ष और अफगानिस्तानके बीच मुख्य पहाड़ी दर्रा। इसके पूर्वी (भारतीय) छोरपर पेशावर तथा लण्डी कोतल स्थित हैं, जहांसे अफगानिस्तानकी राजधानी काबुलको मार्ग जाता है। उत्तर-पश्चिमसे भारतपर आक्रमण करनेवाले अधिकांश आक्रमणकारी इसी दर्रेसे भारत में आये। अब यह दर्रा पाकिस्तानके पश्चिमी पंजाब प्रांतको अफगानिस्तानसे जोड़ता है। प्राचीन कालके हिन्दू राजा विदेशी आक्रमणकारियोंसे इस दर्रेकी रक्षा नहीं कर सके। मुसलमानी शासनकालमें तैमूर, बाबर, हुमायूं, नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दालीने इसी दर्रेसे होकर भारतपर चढ़ाइयां कीं। जब पंजाब ब्रिटिश शासनमें आ गया, तभी खैबरके दर्रेकी रक्षाकी समुचित व्यवस्था की गयी और उसके बाद इस मार्गसे भारतपर फिर कोई हमला नहीं हुआ।

खैरपुर—सिंधका एक नगर। १८४३ ई० में ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा सिंधपर दखल किये जानेके समय वहांपर तालपुर कबीलेके जो तीन अमीर शासन करते थे, उनमेंसे एककी यह राजधानी थी।

खोखर खुर्द—उड़ीसाकी सीमापर हीरेकी खानोंका क्षेत्र। बादशाह जहांगीर (१६०५—२७ ई०) ने इसे जीत कर मुगल साम्राज्यमें सम्मिलित किया। १७५७ ई० में पलासीकी लड़ाईके बाद यह क्षेत्र अंग्रेजोंके नियंत्रणमें आ गया।

ख्वाजा जहां—मूल नाम अहमद, सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक (१३२०—२५ ई०) के राज्यकालमें इमारतोंका दारोगा था। सुल्तानके पुत्र जूना खांने पिताके स्वागतके लिए तुगलकाबादके बाहर एक तोरण बनवाया, जो सुल्तानके ऊपर गिर पड़ा और उसकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद जूना खां सुल्तान मुहम्मद तुगलक (१३२५—५१ ई०) के नामसे गद्दीपर बैठा। अहमदको सुल्तानने 'ख्वाजा जहां'की उपाधि प्रदान की और उसे अपना वजीर बनाया। ख्वाजा जहांने सुल्तानके २६ वर्षके राज्यकालमें उसकी महती सेवा की और उसकी ओरसे कई लड़ाइयां जीतीं। परंतु १३५१ ई० में सुल्तानकी मृत्युपर उसने उसके भतीजे फीरोज तुगलकके मुकाबलेमें एक प्रतिद्वन्द्वीको गद्दीपर बैठानेकी कोशिश की, परंतु उसकी योजना विफल हो गयी। नये सुल्तानने उसे क्षमा कर दिया और उसे सामान जाकर शांतिपूर्ण जीवन बितानेकी इजाजत दे दी। परंतु उसके साथ जो फौजी टुकड़ी भेजी गयी थी, उसने उसे रास्तेमें मार डाला।

ख्वाजा जहाँ—मलिक सरवरको बख्शी गयी उपाधि, जो खोजा था। छठे तुगलक सुल्तान नासिरुद्दीन (१३९०—९४ ई०) ने उसे 'मलिक्-उस्-शर्क' (पूरबका स्वामी) बनाकर १३९४ ई० में जौनपुर भेज दिया। उसने शीघ्र अपना अधिकार गंगाके समूचे दोआबपर कर लिया और १३९९ ई० में अपनी मृत्यु तक लगभग स्वतंत्र सुल्तानकी हैसियतसे इस सारे क्षेत्रपर शासन करता रहा। उसके पुत्र तथा उत्तराधिकारी मुबारकने सुल्तानकी पदवी धारण की और जौनपुर (दे०) के शर्की वंशकी स्थापना की।

ख्वाजा जहाँ—कई बरसों तक बहमनी सुल्तानोंका वजीर। वह राज्यकी सारी शक्ति अपने हाथमें केन्द्रित करनेके मनसूबे बांधने लगा, इसलिए १४६३ ई० में उसकी हत्या कर दी गयी और उसका पद और पदवी मुहम्मद गवां (दे०)को प्रदान कर दी गयी।

ख्वाजा हाजी—सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (१२९६—१३१६ ई०)का मशहूर तथा वफादार सिपहसालार। मलिक काफूर (दे०) के साथ दक्खिनपर कई चढ़ाइयां कीं और उसे जीतकर अलाउद्दीनका राज्य वहां स्थापित किया।

ग

गंग राजा—द्वारसमुद्रके राजा विष्णुवर्धन (लगभग १११०-४१)का मंत्री। विष्णुवर्धन विष्णुका अनन्य उपासक था, जबकि गंग राजा जैन था और उसने बहुतसे जैन मंदिरोंका निर्माण कराया।

गंगवंश—दूसरीसे ग्यारहवीं शताब्दी ई० तक मैसूरके अधिकांश भागका शासक। इस वंशके प्रथम शासक कोंगनिवर्माने

अनेक युद्धोंमें विजय प्राप्त की और अपने राज्यका काफी विस्तार किया। उसके उत्तराधिकारियोंने भी दक्षिण भारतके राजाओंके बीच होनेवाले युद्धोंमें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। कुछ समय तक वे पल्लवोंकी अधीनतामें रहे। दसवीं शताब्दीके गंग राजा जैन धर्मके आश्रयदाता थे। ९८३ ई० में गंग राजा राजमल्ल चतुर्थके मंत्री चामुण्डराय-ने श्रवण-बेलगोलामें गोमटेश्वरकी साढ़े छप्पन फुट ऊँची विशाल प्रतिमाका निर्माण कराया। गंगोंकी शक्तिको विष्णुवर्धन (लगभग १११०–४१)ई० ने तलकाडके युद्धमें नष्ट कर दिया। (**डुबरनिल०**)

गंगवंश (पूर्वी)—मैसूरके गंगवंशकी ही एक शाखा, जिसने कलिंग या उड़ीसापर शासन किया। इस वंशका संस्थापक वज्रहस्त था, जिसके पुत्र और उत्तराधिकारी राजराज प्रथमने राजेन्द्र चोलदेव द्वितीय (१०७०–१११८ ई०) की पुत्री राजसुंदरीसे विवाह किया। इस वैवाहिक संबंधने इस वंशकी शक्ति अत्यधिक बढ़ा दी और राजराज प्रथमका पुत्र अनंतवर्मा चोलगंग (१०७८–११४८ ई०) (दे०) उत्तरकी ओर अपने साम्राज्यका विस्तार करनेमें समर्थ हुआ। अनंतवर्मा चोलगंगने ७० वर्ष तक शासन किया और उसके राज्यमें मद्रासके कुछ उत्तरी जिले भी शामिल थे। उसके पास शक्तिशाली नौसेना थी और उसने बंगालकी दक्षिणी सीमापर बार-बार हमले किये। अनंतवर्माके बाद उसके उत्तराधिकारी चार पुत्रोंने कुल मिलाकर एकके बाद एक ६० वर्ष तक राज्य किया। इस अवधिमें तुर्कोंके हमले शुरू हो गये थे। पूर्वके गंग राजा इनको रोक नहीं पाये। अनंतवर्माके चार पुत्रोंके बाद इस वंशके नौ और राजाओंने उस समय तक शासन किया, जब तक अंतिम राजा नरसिंह चतुर्थ (१३८४–१४०२ ई०)को तुर्कोंने उखाड़ नहीं फेंका। पूर्वी गंग शासक कलाके महान् संरक्षकोंमेंसे थे। पुरी (उड़ीसा)का प्रसिद्ध जगन्नाथ मंदिर और मुखलिंगम् (उड़ीसा) स्थित राज-राजेश्वर मंदिर पूर्वी गंग शासकोंके कलाप्रेमके भव्य प्रतीक हैं। गंग शासकों द्वारा निर्मित ये मंदिर भारतमें आज भी अपना सानी नहीं रखते। (**बनर्जी० पृ० २७०, स्मिथ० पृ० ४६८**)

गंगा—हिन्दुओंकी सबसे पवित्र नदी। इसके तटोंपर अनेक नगर बसे हुए हैं, जिनमें सबसे प्राचीन और पवित्र वाराणसी (दे०) है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक राजधानी पाटलिपुत्र गंगा और सोनके संगमपर स्थित है। आधुनिक युगमें व्यापार और वाणिज्यके प्रमुख केन्द्र कलकत्ता महानगरको भी गंगाकी ही एक सहायक नदीके तटपर बसाया गया। गंगाकी मिट्टी उत्तर भारतके अधिकांश भूभागको उर्वर बनाती है। गंगाकी घाटी आज भी भारतका हृदयस्थल मानी जाती है। गंगा और यमुनाके बीच दोआबका क्षेत्र भारतका सबसे अधिक उपजाऊ क्षेत्र है। इस क्षेत्रने भारत-में अनेक वंशोंका उत्थान और पतन देखा है।

गंगाधर शास्त्री—बड़ौदाके गायकवाड़का मुख्य-मंत्री। अंग्रेजों-से उसकी गाढ़ी मित्रता थी। इसलिए पेशवा बाजीराव द्वितीय (१७९६–१८१८ ई०) उससे नाराज हो गया। पेशवा और गायकवाड़के बीच कुछ पुराने विवादोंको तय करनेके उद्देश्यसे गंगाधर शास्त्री १८१४ ई० में पूना भेजा गया। पेशवा उसको वहांसे नासिक ले गया। नासिकमें पेशवाके हार्दिक मित्र त्र्यम्बकजीने उसकी हत्या करा दी। गंगाधर शास्त्रीकी हत्याको ब्रिटिश भारतीय सरकारने अमैत्रीपूर्ण कार्य समझा और परोक्ष रूपसे यही तीसरे मराठा-युद्ध (दे०)का कारण बना।

गंगाबाई—पेशवा नारायणराव (१७७२–७३ ई०)की पत्नी। पेशवाकी हत्या चाचा राघोबाके इशारेपर अगस्त १७७३ ई० में कर दी गयी। अगले वर्ष विधवा गंगाबाईने एक पुत्रको जन्म दिया, जिसका नाम माधवराव नारायणराव रखा गया। माधवराव १७७४ से १७९६ ई० तक पेशवा रहा।

गंगासिंह, सर, महाराज—राजपूताना स्थित बीकानेरके १८८७ से १९३४ ई० तक शासक। वे प्रगतिशील भारतीय राजा थे। १९२१ से १९२५ ई० तक वे नरेन्द्रमण्डल (चैम्बर आफ प्रिंस)के प्रथम चांसलर रहे। दिल्लीमें हुए नरेन्द्र-सम्मेलनका उन्हें महामंत्री बनाया गया (१९१६-२० ई०)। प्रथम विश्व-युद्धके समय उन्होंने अपने सारे साधनस्रोत ब्रिटिश सरकारकी सहायतामें लगा दिये। व्यक्तिगत युद्ध-सेवाकी इच्छा प्रकट करनेपर उन्हें फ्रांस-स्थित ब्रिटेनके प्रधान सेनापति सर जान फ्रेंचके स्टाफमें नियुक्त किया गया।

गंगू—'फरिश्ता'के अनुसार दिल्लीका एक ब्राह्मण ज्योतिषी और बहमनी राज्यके संस्थापक हसनका गुरु। कहा जाता है उसने हसनकी महानताके बारेमें पहलेसे ही भविष्यवाणी कर दी थी। इस किंवदंतीकी पुष्टि अन्य इतिहासग्रंथ या सिक्कों और अभिलेखोंके प्रमाणसे नहीं होती है।

गंगे कोंड—एक उपाधि, जिसे चोल नरेश राजेन्द्र चोलदेव प्रथम (१०१८–३५ ई०)ने बंगालके राजा महिपाल या गंग राजाओंपर विजय पानेके उपलक्ष्यमें धारण किया। इस विजयके उपलक्ष्यमें ही उसने गंगे कोंड-चोलपुरम्के नामसे एक नया नगर भी बसाया था। (**स्मिथ०**)

गंजाम–उड़ीसाका एक नगर, जो ६१९ ई० में कन्नौजके सम्राट हर्षवर्धन (६०६–४७ ई०) के प्रतिद्वन्द्वी और समकालीन बंगालके राजा शशांकके नियंत्रणमें था। ६४८ ई० में हर्षने हमला कर इसपर अपना अधिकार स्थापित किया। इस समय यह महत्त्वपूर्ण समृद्ध नगर है।

गंड (९९९–१०२५)–चंदेल राजा धंगका पुत्र और उत्तराधिकारी। वह पंजाबके राजा आनंदपाल द्वारा महमूद गजनीका सामना करनेके लिए १००८–९ ई० में बनाये गये हिन्दू राजाओंके संघमें शामिल हुआ और सबके साथ हार गया। दस वर्ष बाद गंडके पुत्र विद्याधरने कन्नौजके शासक राज्यपालपर हमला कर उसे मार डाला, क्योंकि उसने कायरतापूर्वक महमूद गज़नीका आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। इस बातसे क्रुद्ध होकर सुलतान गजनीने गंडके राज्यपर हमला कर दिया और उसे कालंजरका दुर्ग समर्पित कर सुलह करनेको बाध्य किया। **(स्मिथ०)**

गंडमककी संधि–द्वितीय अफगान-युद्ध (दे०) (१८७८–८० ई०)के दौरान मई १८७९ में भारतीय ब्रिटिश सरकारके तत्कालीन वाइसराय लार्ड लिटन और अफगानिस्तानके अपदस्थ अमीर शेरअलीके बड़े पुत्र याकूब खांके बीच हुई थी। इस संधिके अन्तर्गत याकूब खाँ, जिसे अमीरके रूपमें मान्यता दी गयी थी, अपने विदेशी संबंध ब्रिटिश निर्देशनसे संचालित करने, राजधानी काबुलमें ब्रिटिश रेजीडेंट रखने और कुर्रम दर्रे तथा पिशीन और सीबी जिलोंको ब्रिटिश नियंत्रणमें देनेके लिए राजी हो गया। पिशीन और सीबी जिले बोलन दर्रेके निकट स्थित हैं। गंडमक-संधि लार्ड लिटनकी अफगान-नीति (दे०)की सबसे बड़ी उपलब्धि थी और उसने ब्रिटिश भारतको इंग्लैण्डके तत्कालीन प्रधान-मंत्री लार्ड बेकन्सफील्डके शब्दोंमें 'वैज्ञानिक सीमा' प्रदान कर दी। किन्तु अंग्रेजोंकी यह विजय अल्पकालीन थी। गंडमक-संधिके केवल चार महीने बाद २ सितम्बर १८७९ ई० को अफगानोंने फिर सिर उठाया और उन्होंने ब्रिटिश रेजीडेण्टकी हत्या कर गंडमक-संधिको रद्द कर दिया। अफगानिस्तानमें युद्ध फिर भड़क उठा और वह तभी समाप्त हुआ जब अंग्रेजोंने अपने आश्रित याकूब खांको अफगानोंके हाथ समर्पित कर दिया और काबुलमें अपना रेजीडेण्ट रखनेका विचार तथा संधिके अन्तर्गत मिला समग्र अफगान क्षेत्र त्याग दिया।

गंधार–प्राचीन कालमें सिंधु नदीके दोनों तटोंपर स्थित उस प्रदेशका नाम, जहाँ आजकल पाकिस्तानके रावलपिण्डी और पेशावर जिले हैं। तक्षशिला और पुष्करावती इसके प्रमुख नगर थे। यहाँके लोग 'गांधार' कहलाते थे और उनका उल्लेख अशोककालीन अभिलेखोंमें मिलता है। बहिस्तान अभिलेख (लगभग ५२०–५१८ ई० पू०) (दे०)से पता चलता है कि इस प्रदेशको बादमें फारसके सम्राट् दारा (डेरियस)ने अपने राज्यमें मिला लिया। इस राज्यमें कुछ समय कश्मीर भी शामिल था। गंधार निश्चित रूपसे अशोकके साम्राज्यका अंग था। भारतके साथ उसके घनिष्ठ संबंध थे। महाभारतके अनुसार गंधारकी राजकुमारी धृतराष्ट्रकी महारानी और दुर्योधनकी माता थी। मौर्य वंशके पतनके पश्चात् गंधार भारत और बाख्त्री शासकोंके बीच बंट गया। इसके उपरान्त यह प्रदेश कुषाण राज्यका अंग बना। इस प्रकार यह पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियोंका संगम-स्थल बन गया और उसने कलाकी एक नयी शैलीको जन्म दिया जो 'गांधार शैली'के नामसे विख्यात है।

गक्खड़–कबायली लोग, जिनका दमन १२०६ ई० में शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने और उसके बाद १५३३ ई० में शेरशाहने किया। शेरशाहने इन लोगोंको दबाये रखनेके लिए रोहतास (पंजाब)में किलेका निर्माण भी कराया।

गजनवी–गजनीके शासक। अलप्तगीन प्रथम गजनवी शासक था जिसने ९६३ ई० तक राज्य किया। इसके बाद क्रमशः अमीर सुबुक्तगीन (९७७–९७), सुल्तान महमूद (९९७–१०३०) और बहराम शाहने राज्य किया। बहरामके पुत्र खुसरोने गजनीको त्यागकर सन् ११६० में पंजाबमें अड्डा जमाया तथा लाहौरको अपना सदर-मुकाम बनाया। उसका पुत्र खुसरो मलिक अंतिम गजनवी था। उसे सन् ११८६ में शहाबुद्दीन गोरीने उखाड़ फेंका। इसके साथ ही गजनवी वंश नष्ट हो गया।

गज़नी–अफगानिस्तानका एक पहाड़ी नगर, जो काबुलसे दक्षिण-पश्चिम ७८ मीलपर स्थित व्यापारिक केन्द्र है। मध्य युगमें यह किलेके रूपमें था। १०वीं शताब्दीमें अलप्तगीन नामक तुर्कने यहां एक छोटेसे राज्यकी स्थापना कर गजनीको राजधानी बनाया। अलप्तगीनकी मृत्यु ९६३ ई० में हुई। उसका पुत्र सुबुक्तगीन और पौत्र सुल्तान महमूद (९९७–१०३० ई०) था जो महमूद गजनवीके नामसे प्रसिद्ध हुआ। गजनी नगर बड़े-बड़े भवनों, चौड़ी सड़कों और संग्रहालयोंसे परिपूर्ण था, लेकिन सन् ११५१ में गोरके अलाउद्दीन हुसेनने इस नगरको जलाकर खाक कर दिया। इसके लिए उसे जहांसोजकी उपाधि मिली। बादमें शहाबुद्दीन गोरीने इस नगरका उद्धार किया और इसे अपना सदर-मुकाम बनाया व यही गोरी बादमें भारतका पहला मुस्लिम विजेता बना। यह नगर आधुनिक काल

तक महत्त्वपूर्ण सामरिक अड्डा बना रहा। प्रथम अफगान-युद्ध (दे०)के दौरान ब्रिटिश जनरल नाटने इस नगरकी किलेबंदीको नष्ट कर दिया।

गजनी खाँ—खान देशका सातवां सुल्तान, जो दाऊदका पुत्र था। गद्दीपर बैठने (सन् १५०८)के दस दिनोंके अंदर उसे जहर देकर मार डाला गया।

गजपति प्रतापरुद्र—उड़ीसाका शासक, जिसे विजयनगरके राजा कृष्णदेव राय (१५१०–३० ई०)ने परास्त किया। इस युद्धमें उदयगिरिका दुर्ग भी गजपतिके हाथोंसे निकल गया।

गजबाहु—श्रीलंकाका एक प्राचीन राजा, जिसने सन् १७३ से लेकर १९१ ई० तक राज्य शासन किया। यह तिथि इस दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है कि इससे प्राचीन पाण्ड्य, चेरि और चोल राजाओंकी तिथियाँ निश्चित करनेमें सहायता मिलती है। ये राजा उसके समकालीन थे।

गढ़ कटंगा—गोंडवानाके अन्तर्गत आधुनिक मध्यप्रदेशके उत्तरी जिलोंमें कहींपर स्थित था। १५६४ ई० में जब इसका प्रशासन रानी दुर्गावती अपने अल्पवयस्क पुत्र वीरनारायणकी अभिभाविकाके रूपमें चला रही थी, मुगल सम्राट् अकबरने उसपर हमला किया और उसे अपने साम्राज्यमें मिला लिया।

गढ़गांव—अहोम राजाओं (१२२८–१८२४ ई०) के शासनकालमें आसामकी राजधानी थी। यह आधुनिक शिवसागर जिलेमें दीखू नदीके तटपर स्थित है। १६६२–६३ ई० में मुगल सम्राट् औरंगजेबके सेनानायक मीर जुमलाने इस शहरपर आक्रमण कर अधिकार कर लिया। शहाबुद्दीनने गढ़गांवपर मीर जुमलाके विजय-अभियानका विस्तारसे वर्णन किया है। गढ़गांवकी शक्ति और वैभवसे प्रभावित होकर वह लिखता है कि इस शहरके चार द्वार थे जो पत्थर और गारेसे बनाये गये थे। चारों द्वारोंसे मार्ग राजप्रासादकी ओर जाता था, जो तीन कोस (दो मील)की दूरीपर था। नगरके चारों ओर प्राचीरके स्थानपर दो कोस या उससे कुछ अधिक चौड़ाईमें उगाया गया बांसोंका घना और अभेद्य झुरमुट था। राजप्रासादके चतुर्दिक् कई पुरसा गहरे पानीसे भरी खाई थी। राजप्रासाद ६६ स्तम्भोंपर खड़ा था। प्रत्येक स्तम्भकी गोलाई ६ फुट थी। सभी स्तंभ अत्यधिक चिकने और चमकदार थे। शहाबुद्दीनके विचारानुसार राजप्रासादकी काष्ठकला इतनी भव्य और रमणीक थी कि दुनियामें उसके जोड़की नक्काशी मिलना मुश्किल है। आसामने १६६७ ई० में मुगल शासनका जुआ उतार फेंका और गढ़गाँव १८२४ ई० में अंग्रेजोंकी विजय तक अहोम राजाओंकी राजधानी बना रहा।

गणेश, राजा—प्रारंभमें उत्तरी बंगालके दीनाजपुरका एक शक्तिशाली सामंत। योग्यता, अनुभव, सम्पत्ति और अन्य साधनस्रोतोंने उसे बंगालके सुल्तान गयासुद्दीन आजम (लगभग १३९३–१४१० ई०)के दरबारका सबसे शक्तिशाली व्यक्ति बना दिया। १४१० ई० में सुल्तानकी मृत्युके बाद उसके युवा पुत्रोंमें उत्तराधिकारका संघर्ष छिड़ गया और देशमें अव्यवस्था व्याप्त हो गयी। इस अराजक स्थितिका लाभ उठाकर गणेश १४१४ ई० में बंगालके तख्तपर बैठ गया। उसने 'दनुजमर्दनदेव'की उपाधि धारण की। उसने चार वर्षों तक शासन किया। इस दौरान उसके राज्यपर जौनपुरके सुल्तान इब्राहीम शाहकी फौजने हमला किया। राजा गणेशने हमलावरोंको मार भगाया और कुशलतापूर्वक शासन करता रहा। १४१८ ई० में वृद्धावस्थाके कारण उसकी मृत्यु हो गयी। गणेश अपने पीछे दो पुत्र छोड़कर मरा। बड़े पुत्रका नाम जद्दू था, जिसने बादको इसलाम धर्म स्वीकार करके अपना नाम जलालुद्दीन रख लिया और छोटेका नाम महेन्द्र था जो अपने परम्परागत हिन्दू धर्मके प्रति ही आस्थावान् बना रहा। राजाकी मृत्युके बाद कुछ लोगोंने महेन्द्रको सिंहासनपर बैठानेका असफल प्रयास किया, किन्तु अंततः बंगालकी राजगद्दी बड़े पुत्र जद्दू या जलालुद्दीनको ही मिली। उसने बंगालपर १४१८ से १४३१ ई० तक शासन किया। जलालुद्दीनका पुत्र और उत्तराधिकारी शमसुद्दीन अहमद मूर्ख और निर्दय शासक था। १४४२ ई० में दो गुलामोंने उसकी हत्या कर दी। इसके साथ ही गणेशके वंशका अंत हो गया। (हि० बं०, खंड २, पृष्ठ १२०-२९)

गदरोसिया—यूनानी (यवन) बलूचिस्तानको इसी नामसे पुकारते थे। सिकन्दरने भारतविजयके दौरान गदरोसियापर भी विजय प्राप्त की थी किन्तु बादको सेल्यूकस (दे०)ने इसे चंद्रगुप्त मौर्य (लगभग ३८३ से २९८ ई० पू०)को समर्पित कर दिया और वह मौर्योंके भारतीय साम्राज्यका अंग बन गया।

गदाई शेख—एक शिया, जिसे सम्राट अकबरके अभिभावक बैरमखाँने सदरुस्सुदुर (विधि और धार्मिक विभागका मुख्य अधिकारी) नियुक्त किया। सभी प्रकारके अनुदानों, अनुमोदनों और भत्तोंपर उसका नियंत्रण था। गदाईको इतने ऊँचे पदके लायक कोई विशेष योग्यता नहीं प्राप्त थी और ऊपरसे वह शिया था, इसलिए इस पदपर उसकी

नियुक्तिकी वजहसे कट्टर सुन्नी मुसलमानोंने बैरमखाँका विरोध और जोर-शोरसे शुरू कर दिया।

गदाधर सिंह–उन्तीसवां अहोम राजा, जिसने आसामपर पन्द्रह वर्षों (१६८१–९६ ई०) तक राज्य किया। उसने सबसे पहले १६८२ ई० में गौहाटीको मुगल आधिपत्यसे मुक्त कराया और औरंगजेबको मोनास नदी अहोम राज्यकी सीमा माननेके लिए मजबूर किया। मोनास नदी आधुनिक गोलपाड़ा और कामरूप जिलोंके बीच बहती है। गदाधर सिंह बहुत ही शक्तिशाली शासक था। उसने सभी आंतरिक षड्यंत्रों और उपद्रवोंका दमन किया, आसाममें राज्यकी गिरी हुई प्रतिष्ठाको ऊँचा उठाया, मीरी और नागा विद्रोहियोंको कुचला और सामन्तोंकी शक्तिको तोड़ा। गदाधर सिंह शाक्त (शक्तिका उपासक) था, इसलिए उसने वैष्णवोंका उत्पीड़न किया और वैष्णव गोसाइयोंको कुचल डाला। उसने गौहाटीमें कचेरी घाटके बिलकुल सामने ब्रह्मपुत्रके एक द्वीपमें उमानंदा मंदिरका निर्माण कराया, ब्राह्मणों और हिन्दू मंदिरोंको भूमिदान किया, कई राजमार्गोंका निर्माण कराया, पत्थरके दो पुल बनवाये, तालाब खुदवाये और आसाममें जोतोंका विस्तृत सर्वेक्षण आरंभ कराया। (सर एडवर्ड गेट कृत 'हिस्ट्री आफ आसाम')।

गफ, ह्यू (प्रथम वाईकाउन्ट) (१७७९–१८६९)–एक ब्रिटिश सेनाधिकारी, १७९४ में ब्रिटिश सेनामें भर्ती हुआ, स्पेन प्रायद्वीपके युद्धमें भाग लिया। १८५७ ई० में मद्रासकी सेनाके मैसूर डिवीजनका सेनापति बनकर भारत आया तथा १८४१–४३ ई० के दौरान चीनके युद्धमें भाग लिया। वहांसे लौटनेपर वह ब्रिटिश भारतीय सेनाका प्रधान सेनापति हो गया। उसने १८४३ ई० में महाराजपुरके युद्धमें शिन्देकी फौजोंको हराया तथा प्रथम सिख-युद्ध (१८४५–४६)के दौरान ब्रिटिश सेनाका नेतृत्व किया। उसके अधीन लार्ड हार्डिंजने भी काम किया था, जो बादमें भारतका गवर्नर-जनरल बना। उसने मुदकीकी लड़ाई (१८४५), फीरोजशाहकी लड़ाई (१८४६) तथा सुबराहानकी लड़ाई (१८४६)में सिखोंको परास्त कर अंतिम विजय प्राप्त की। दूसरे सिख-युद्ध (१८४८–४९)में भी उसने ब्रिटिश सेनाका नेतृत्व किया तथा रामनगरके युद्ध (१८४८)में विजय प्राप्त की। चिलियानवालाकी लड़ाई (१८४९)में उसे कुछ पीछे हटना पड़ा था, लेकिन गुजरातके युद्धमें उसने निर्णायक विजय प्राप्त की। सिख लोग सदाके लिए परास्त हो गये। उसने मई १८४९ ई० में अवकाश ग्रहण कर लिया। कहा जाता है कि ड्यूक आफ वेलिंगडनको छोड़कर कोई भी सेनापति ह्यू गफकी भाँति युद्धोंमें ऐसी सफलताके साथ नहीं लड़ा।

गफूर खाँ–लूटमार करनेवाले अफगान सरदार अमीर खाँका दामाद। अमीर खाँको कम्पनीने १८१७ ई०में टोंकका नवाब स्वीकार किया। इसी प्रकार गफूर खाँ जकड़ाका नवाब माना गया, जिसे होल्करने मन्दौरकी संधिके अनुसार १८१९ ई०में अंग्रेजोंके हाथ सौंप दिया।

गया–बिहारका एक नगर और हिन्दुओंका तीर्थस्थल। हिन्दू लोग यहां एक खास स्थानपर अपने पुरखोंको पिण्डदान देना अपना कर्तव्य समझते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यहां भगवान् विष्णुके चरणचिह्न पड़े थे। गयासे कुछ मीलकी दूरीपर बोधि-गया है, जहां गौतम बुद्धको बोधिलाभ हुआ था, इसलिए यह स्थान बौद्ध धर्मावलम्बियोंका तीर्थ है। गयामें हर वर्ष खासकर पितृपक्षके दिनोंमें भारी संख्यामें दूर दूरसे तीर्थयात्री आते हैं और शहरसे लगकर बहनेवाली फाल्गु नदीके जल और बालूके पिण्ड बनाकर अपने पूर्वजोंको चढ़ाते हैं। गयामें अब मगध विश्वविद्यालय स्थापित हो गया है।

गयासुद्दीन–गोरका सुल्तान, जिसने ११७३ ई०में गजनीको तुर्कमानोंसे छीन लिया। ये तुर्कमान गजनी और उसके आसपासके क्षेत्रोंपर ११५१ ई० से कब्जा किये हुए थे। गयासुद्दीनने बादमें यह क्षेत्र अपने भाई शहाबुद्दीनको सौंप दिया जो मुईजुद्दीन मुहम्मद बिन साम अथवा मुहम्मद गोरीके नामसे विख्यात है। गयासुद्दीन १२०३ ई० में मर गया। उसके बाद गद्दी उसके भाई शहाबुद्दीनको मिली, जो दिल्लीको जीत चुका था।

गयासुद्दीन खिलजी–मालवाके खिलजी वंशका द्वितीय सुल्तान, जिसका शासनकाल (१४६९ से १५०१ ई०) शांतिपूर्ण रहा। उसने मरनेके एक वर्ष पहले ही अपने बड़े पुत्रको गद्दीपर बैठा दिया था।

गयासुद्दीन तुगलक (अथवा तुगलक शाह)–दिल्लीका सुल्तान (१३२०–२५ ई०)। उसने तुगलक वंशकी स्थापना की थी। उसका पिता सुल्तान बलबन (१२६६–८६) (दे०)का तुर्क गुलाम था। सुल्तानने उसे गुलामीसे मुक्त कर दिया था और उसने एक जाट स्त्रीसे विवाह किया। उसके लड़के गयासुद्दीनका आरंभिक नाम गाजी मलिक था, जो अपने गुणों और वीरताके कारण सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (१२९६–१३१६ ई०)के द्वारा उच्च पदोंपर नियुक्त किया गया। उसने मंगोलोंके आक्रमणसे कई बार उत्तर-पश्चिमी सीमाकी रक्षा की। खिलजी वंशके अंतिम शासक मुबारकको मारकर (१३२० ई०) गद्दीपर

बैठनेवाले सरदार खुसरोको भी गयासुद्दीनने पराजित किया। तदनन्तर अमीरोंने गयासुद्दीनको ही गद्दीपर बैठा दिया। उसने तुगलक् वंशकी स्थापना की। गद्दीपर बैठनेके बाद उसने केवल ५ वर्ष शासन किया लेकिन अपने अल्पकालीन शासनमें ही दिल्लीके सुल्तानोंकी सैनिक शक्तिको पुनर्गठित किया। वारंगलके काकतीय राजा प्रतापरुद्रदेव द्वितीयको पराजित किया, और बंगालके विद्रोही हाकिम गयासुद्दीन बहादुरको हराया। इसके अलावा उसने गैरकानूनी भूमि अनुदानोंको छीनकर, योग्य और ईमानदार हाकिमोंको नियुक्त करके, लगानवसूलीमें मनमानी बंद करके, कृषिको प्रोत्साहित कर, सिंचाईके साधन प्रस्तुत कर, न्याय एवं पुलिस-व्यवस्थामें सुधार करके, गरीबोंके लिए सहायताकी व्यवस्था करके तथा डाक-व्यवस्थाका विकसित करके राज्यव्यवस्थाको आदर्श रूप दिया। उसने विद्वानोंका भी संरक्षण किया, जिनमें अमीर खुसरो मुख्य था। एक दुर्घटनाके कारण गयासुद्दीनके शासनका अंत हो गया, जिसके लिए कुछ इतिहासकारोंने उसके पुत्र जूनाखाँ (दे०)को ही जिम्मेदार बताया है, जो बादमें मुहम्मद तुगलकके नामसे गद्दीपर बैठा।

गयासुद्दीन बलबन–देखिये, 'बलवन'।

गयासुद्दीन बहमनी–दक्षिणके बहमनी वंशका छठा सुल्तान, जिसने १३९७ ई०में कुछ महीने तक ही शासन किया। उसे अंधा करके गद्दीसे उतार दिया गया।

गयासुद्दीन बहादुर–बंगालके सूबेदार शम्सुद्दीन फीरोजशाहके पाँच पुत्रोंमेंसे एक। वह १३१० ई०से पूर्वी बंगालपर स्वतंत्र सुल्तानकी भाँति शासन कर रहा था। १३१८ ई० में शम्सुद्दीनके मरनेपर गयासुद्दीन बहादुरने भी अपनेको बंगालकी गद्दीका हकदार बताया किंतु वह पराजित हो गया। १३२४ ई०में दिल्लीके सुल्तान गयासुद्दीन तुगलकने उसे कैद कर लिया। गयासुद्दीन बहादुरकी मृत्यु कैदखानेमें हुई।

गयासुद्दीन महमूद शाह–हुसेनशाही वंशका अंतिम सुल्तान। इस वंशने १४९३ से १५३८ ई० तक राज्य किया। गयासुद्दीन १५३३ ई०में बंगालकी गद्दीपर बैठा किन्तु वह केवल ५ वर्ष शासन कर सका, क्योंकि शेरखाँ सूरी (दे०)ने उसे बंगालसे खदेड़ दिया।

गवर्नर-जनरल–ब्रिटिश भारतका सर्वोच्च अधिकारी। १७७३ ई०के रेगुलेटिंग ऐक्ट (दे०) के अंतर्गत इस पदकी सृष्टि की गयी थी। सर्वप्रथम वारेन हेस्टिंग्स इस पदपर नियुक्त हुआ। वह १७७४ से १७८६ ई० तक इस पदपर रहा। इस पदका पूरा नाम "बंगालमें फोर्ट विलियमका गवर्नर-जनरल" था जो १८३४ ई० तक रहा। १८३३ ई०के चार्टर ऐक्टके अनुसार इस पदका नाम 'भारतका गवर्नर-जनरल' हो गया। १८५८ ई०में जब भारतका शासन कम्पनीके हाथसे ब्रिटेनकी महारानीके हाथमें आ गया तब गवर्नर-जनरलको 'वाइसराय' (राज-प्रतिनिधि) भी कहा जाने लगा। जबतक भारतपर ब्रिटिश शासन रहा तबतक भारतमें कोई भारतीय गवर्नर-जनरल या वाइसराय नहीं हुआ। १७७३ ई०के रेगुलेटिंग ऐक्टमें गवर्नर-जनरलके अधिकारों और कर्त्तव्योंका विवरण दिया हुआ है। बादमें पिटके इंडिया ऐक्ट (१७८४) तथा पूरक ऐक्ट (१७८६)के अनुसार इन अधिकारों और कर्त्तव्योंको बढ़ाया गया। गवर्नर-जनरल अपनी कौंसिल (परिषद)की सलाह एवं सहायतासे शासन करता था, लेकिन आवश्यकता पड़नेपर वह परिषदकी रायकी उपेक्षा भी कर सकता था। इस व्यवस्थासे गवर्नर-जनरल व्यवहारतः भारतका भाग्य-विधाता होता था। केवल सुदूर स्थित ब्रिटेनकी संसद और भारतमंत्री ही उसपर नियंत्रण रख सकते थे। क्रमानुसार निम्नलिखित गवर्नर जनरल हुए :

वारेन हेस्टिंग्स, लार्ड कार्नवालिस, सर जान शोर, लार्ड वेलेस्ली, लार्ड कार्नवालिस (द्वितीय), लार्ड मिण्टो (प्रथम), लार्ड हेस्टिंग्स, लार्ड एमर्हस्ट, लार्ड विलियम बेंटिक, लार्ड आकलैंड, लार्ड एलेनबरो, लार्ड हार्डिंग (प्रथम), लार्ड डलहौजी, लार्ड केनिंग, लार्ड एलगिन (प्रथम), लार्ड लारेंस, लार्ड मेयो, लार्ड नार्थब्रुक, लार्ड लिटन (प्रथम), लार्ड रिपन, लार्ड डफरिन, लार्ड लैंसडाउन, लार्ड एलगिन (द्वितीय), लार्ड कर्जन, लार्ड मिण्टो (द्वितीय), लार्ड हार्डिंग (द्वितीय), लार्ड चेम्सफोर्ड, लार्ड रीडिंग, लार्ड इरविन, लार्ड विलिंगटन, लार्ड लिनलिथगो, लार्ड वावेल तथा लार्ड माउण्टबैटेन।

भारतके स्वाधीन होनेपर श्री राजगोपालाचार्य गवर्नर-जनरलके पदपर २५ जनवरी १९५० तक रहे। उसके बाद २६ जनवरी १९५०को भारतके गणतंत्र बन जानेपर गवर्नर-जनरलका पद समाप्त कर दिया गया। लार्ड विलियम बेंटिक बंगालमें फोर्ट विलियमका अंतिम गवर्नर-जनरल था। वही फिर १८३३ ई० के चार्टर एक्टके अनुसार भारतका प्रथम गवर्नर-जनरल बना। लार्ड केनिंग १८५८के भारतीय शासन-विधानके अनुसार प्रथम वाइसराय था तथा लार्ड लिनलिथगो अंतिम वाइसराय। लार्ड माउण्टबैटेन ब्रिटिश सम्राट्का अंतिम प्रतिनिधि था। (**विस्तारके लिए उक्त नामोंके अंतर्गत अन्यत्र देखिये।**)

गवर्नर-जनरलके कानून—वे कानून जिन्हें गवर्नर-जनरल, भारतीय शासन-विधान (१९३५)के अंतर्गत प्राप्त अधिकारोंके अनुसार बना-बनाकर लागू करता था। ये कानून केवल ६ माह तक वैध माने जाते थे। गवर्नर-जनरल जिन कानूनोंको बनाना जरूरी समझता था किन्तु जिनपर विधान-मंडलकी स्वीकृति नहीं मिल पाती थी, उन्हें गवर्नर-जनरल कानून बना सकता था।

गवासपुर—अंग्रेजी शासनके समय आधुनिक उत्तरप्रदेशका एक छोटा-सा राज्य, जो १८१८ ई०में पिण्डारी नेता करीम खांको अंग्रेजोंके आगे आत्मसमर्पण कर देनेके बाद दे दिया गया था। उसके वंशज पिछले समय तक इस रियासतपर शासन करते रहे।

गांगेयदेव कलचूरि—यमुना और नर्मदा नदियोंके बीचमें स्थित चेदि (दे०)का राजा (लगभग १०१५–४० ई०)। वह योग्य और महत्त्वाकांक्षी शासक था, जिसने 'विक्रमादित्य' उपाधि धारण करते हुए उत्तर भारतमें सर्वशक्तिमान् सार्वभौम सम्राट्की स्थिति प्राप्त करनेकी कोशिश की। उसे इसमें कुछ हद तक सफलता भी मिली। १०१९ ई०में उसने सुदूर तिरहुत (आधुनिक उत्तरी बिहार) पर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित की। उसने पश्चिमोत्तरके विदेशी हमलावरों और बंगालके पाल राजाओंसे प्रयाग और वाराणसी नगरोंकी रक्षा की। उसके बाद उसका पुत्र कर्ण या लक्ष्मीकर्ण (लगभग १०४०–७० ई०) गद्दीपर बैठा।

गांधी, मोहनदास करमचंद—महात्मा गांधीके नामसे प्रसिद्ध, जन्म २ अक्तूबर १८६९ ई०को पश्चिमी भारतके पोरबंदर नामक स्थानमें। उनके माता-पिता कट्टर हिन्दू थे। उनके पिता करमचंद (कबा गांधी) पहले पोरबंदर रियासतके दीवान थे और बादको क्रमशः राजकोट (काठियावाड़) और वांकानेरमें दीवान रहे। मोहनदास करमचंद जब केवल तेरह वर्षके थे और स्कूलमें पढ़ते थे, पोरबंदरके एक व्यापारीकी पुत्री कस्तूरबाई (कस्तूरबा)से उनका विवाह कर दिया गया। वर-वधूकी अवस्था लगभग समान थी। दोनोंने ६२ वर्ष तक वैवाहिक जीवन बिताया। १९४४ ई०में पूनाकी ब्रिटिश जेलमें कस्तूरबाका स्वर्गवास हुआ। गांधीजी अठारह वर्षकी आयुमें एक पुत्रके पिता हो गये थे और अगले वर्ष इंग्लैण्ड चले गये, जहाँ तीन वर्षों (१८८८–९१) तक रहकर उन्होंने 'बैरिस्टरी' पास की। भारत लौटनेपर उन्होंने राजकोट और बम्बईमें वकालत शुरू की, किन्तु इसमें उन्हें विशेष सफलता न मिली।

इसलिए सन् १८९२में जब दक्षिण अफ्रीकामें व्यापार करनेवाले एक भारतीय मुसलमान (मेमन) व्यापारीने उनके सामने अपने मुकदमे देखनेका प्रस्ताव रखा तो उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया और सन् १८९३में वे दक्षिण अफ्रीका चले गये। वहाँ पहुँचते ही उन्हें दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंके साथ किये जानेवाले अपमानजनक व्यवहारके कटु अनुभव हुए। एक बार वे डरबनसे प्रिटोरिया तक रेलवे द्वारा प्रथम श्रेणीके डिब्बेमें यात्रा कर रहे थे। रास्तेमें मेरित्सवर्गपर एक गोरा उनके डिब्बेमें घुसा और उसने स्थानीय पुलिसकी सहायतासे उन्हें धक्का देकर डिब्बेसे नीचे उतार दिया, क्योंकि दक्षिण अफ्रीकामें किसीभी भारतीयको, चाहे वह कितना ही धनी और प्रतिष्ठित क्यों न हो, गोरोंके साथ प्रथम श्रेणीमें यात्रा करनेकी अनुमति नहीं थी। मेरित्सबर्ग-कांडने गांधीजीकी जीवनयात्राको एक नयी दिशा दी। उन्होंने स्वयं इस घटनाका विवरण इस प्रकार लिखा है—"मेरित्सबर्गमें एक पुलिस कांस्टेबुलने मुझे धक्का देकर ट्रेनसे बाहर निकाल दिया। ट्रेन चली गयी। मैं विश्रामकक्षमें जाकर बैठ गया। मैं ठंडसे काँप रहा था। मुझे नहीं मालूम था कि मेरा असबाब कहाँपर है और न मैं किसीसे कुछ पूछनेकी हिम्मत कर सकता था कि कहीं फिर बेइज्जती न हो। नींदका सवाल ही नहीं था। मेरे मनमें ऊहापोह होने लगी। काफी रात गये मैं इस नतीजेपर पहुँचा कि भारत वापस भाग जाना कायरता होगी। मैंने जो दायित्व अपने ऊपर लिया है, उसे पूरा करना चाहिए।" मेरित्सबर्ग-कांडके बाद उन्होंने अपने मनमें दक्षिणी अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोंको अपमानकी उस जिन्दगीसे उबारनेका संकल्प किया, जिसे वे लम्बे अरसेसे झेलते चले आ रहे थे। इस संकल्पके बाद गांधीजी अगले बीस वर्षों (१८९३–१९१४) तक दक्षिणी अफ्रीकामें रहे और शीघ्र ही वहाँ इनके नेतृत्वमें उत्पीड़ित भारतीयोंपर लगे सारे प्रतिबंधोंको हटानेके लिए एक आंदोलन छिड़ गया। इस आंदोलनको सफल बनानेके उद्देश्यसे उन्होंने अपनी चलती हुई वकालत छोड़ दी और ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर अपने परिवार और मित्रोंके साथ टालस्टाय आश्रमकी स्थापना करके वहीं रहने लगे। उन्होंने श्रीमद्-भगवद्गीता (दे०) और रस्किन तथा टालस्टायके ग्रंथोंका गहन अध्ययन किया और उनसे प्रेरणा प्राप्त की। श्रीमद्-भगवद्गीताकी तो उन्होंने टीका भी की। उन्हें इन ग्रंथोंके अध्ययनसे विश्वास हो गया कि परमार्थका जीवन ही सच्चा जीवन है, मनुष्यको खुद मेहनत करके अपनी रोजी कमानी चाहिए और जहाँतक हो सके मशीनोंपर कमसे कम आश्रित होना चाहिए। उन्होंने सन् १८९४में नेटाल इंडियन कांग्रेसकी स्थापना की और दक्षिण अफ्रीकाके लम्बे आंदोलनके

दौरान उन्होंने, उनकी पत्नीने और उनके साथियोंने कई बार जेलयात्रा की। एक अवसरपर कुछ गोरोंने, जो दक्षिण अफ्रीकामें गांधीजीकी मौजूदगी नापसंद करते थे, उनपर हमला कर दिया। एक अन्य अवसरपर कुछ पठानोंने उनपर हमला कर दिया क्योंकि उन्होंने दक्षिणी अफ्रीकी नेता जनरल स्मट्सके साथ एक समझौतेका समर्थन किया था। बादमें जनरल स्मट्सने अपना वचन भंग कर दिया। सन् १८९९–१९०२के दक्षिण अफ्रीकी-युद्ध और १९०६के जुलू-विद्रोहके दौरान गांधीजीने घायल ब्रिटिश सैनिकोंकी शुश्रूषाके लिए, भारतीयोंकी एक एम्बुलेंस कोरका गठन किया। गांधीजी संकटकी घड़ीमें ब्रिटिश साम्राज्यकी सहायता करना भारतीयोंका कर्त्तव्य समझते थे, किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवादी इससे प्रभावित नहीं हुए। उन्होंने उल्टे कई दमनात्मक कानूनोंके ऊपर एक नया कानून बना दिया कि ट्रांसवालमें रहनेवाले प्रत्येक भारतीयको परिवारके प्रत्येक सदस्यके साथ अपना नाम पंजीकृत कराना होगा और उसे अपने साथ हर वक्त निजी परिचयपत्र रखना होगा। इस अपमानजनक कानूनके विरुद्ध गांधीजीने दक्षिण अफ्रीकी भारतीयोंके बीच एक सशक्त आंदोलनका संचालन किया जो अहिंसक सविनय अवज्ञापर आधारित था। उनके नेतृत्वमें अनेक भारतीयोंने अपना नाम पंजीकृत करानेसे इनकार कर दिया और बार-बार कानूनका उल्लंघन करते हुए ट्रांसवाल सीमाको पार किया। गांधीजीके नेतृत्वमें लगभग दो हजार भारतीयोंने इस सिलसिलेमें अपनेको गिरफ्तार कराया। इस विरोधके फलस्वरूप दक्षिणी अफ्रीकी सरकारको सन् १९१४ में अधिकांश काले कानूनोंको रद्द करना पड़ा और गांधीजी एवं उनके अहिंसक सत्याग्रह आंदोलनको यह पहली महान सफलता प्राप्त हुई।

सन् १९१४ में गांधीजी भारत वापस लौट आये। देशवासियोंने उनका भव्य स्वागत किया और उन्हें 'महात्मा' पुकारना शुरू कर दिया। उन्होंने अगले चार वर्ष भारतीय स्थितिका अध्ययन करने तथा स्वयंको व उन लोगोंको तैयार करनेमें बिताये जो सत्याग्रहके द्वारा भारतमें प्रचलित सामाजिक व राजनीतिक बुराइयोंको हटानेमें उनका अनुगमन करना चाहते थे। इस दौरान गांधीजी मूक पर्यवेक्षक नहीं रहे। सन् १९१७में वे उत्तरी बिहारके चम्पारन जिलेमें गये और वहाँ सविनय अवज्ञा आंदोलनके माध्यमसे उन्होंने उत्पीड़ित किसानोंके मनमें नया साहस और विश्वास भरा तथा निलहे गोरोंके हाथों अरसेसे हो रहा किसानोंका शोषण समाप्त किया। इसके शीघ्र बाद गांधीजीने अहमदाबादके मिल मजदूरोंका नेतृत्व किया। इन मजदूरोंको बहुत कम वेतन मिलता था। उन्होंने उनकी हड़ताल संगठित की जो २१ दिनों तक चली और अंततः मालिक-मजदूरों, दोनोंको ही पंच-निर्णयका सिद्धांत स्वीकार करना पड़ा। मार्च सन् १९१९ में केन्द्रीय विधानमंडल द्वारा सभी भारतीय सदस्योंके संयुक्त विरोधके बावजूद रौलट बिल (दे०) पास कर दिये जाने और अप्रैल १९१९ में जालियांवाला बाग हत्याकांड (दे०) के बाद गांधीजीने भारतमें ब्रिटिश सरकारको 'शैतान'की संज्ञा दी और भारतीयोंसे अपील की कि वे सभी सरकारी पदोंसे इस्तीफा दे दें, ब्रिटिश अदालतों तथा स्कूल और कालेजोंका बहिष्कार करें तथा सरकारके साथ असहयोग करके उसे पूरी तरह अपंग बना दें। गांधीजीके इस आह्वानपर रौलट कानूनके विरोधमें बम्बई तथा देशके सभी प्रमुख नगरोंमें ३० मार्च १९१९ को और गाँवोंमें ६ अप्रैल १९१९ को हड़ताल हुई। हड़तालके दिन सभी शहरोंका जीवन ठप्प हो गया, व्यापार बंद रहा और अंग्रेज अफसर असहाय-से देखते रहे। इस हड़तालने असहयोगके हथियारकी शक्ति पूरी तरह प्रकट कर दी। सन् १९२०में गांधीजी कांग्रेसके नेता बन गये और उनके निर्देश और उनकी प्रेरणासे हजारों भारतीयोंने ब्रिटिश सरकारके साथ पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। हजारों असहयोगियोंको ब्रिटिश जेलोंमें ठूंस दिया गया और लाखों लोगोंपर सरकारी अधिकारियों ने बर्बर अत्याचार किये। ब्रिटिश सरकारके इस दमनचक्रके कारण लोग अहिंसक न रह सके और कई स्थानोंपर हिंसा भड़क उठी। हिंसाका इस तरह भड़क उठना गांधीजीको अच्छा न लगा। उन्होंने स्वीकार किया कि अहिंसाके अनुशासनमें बाँधे बिना लोगोंको असहयोग आंदोलनके लिए प्रेरित कर उन्होंने "हिमालय जैसी भूल"की है और यह सोचकर उन्होंने असहयोग आंदोलन वापस ले लिया। अहिंसक असहयोग आंदोलनके फलस्वरूप जिस 'स्वराज्य'को गांधीजीने एक वर्षके अंदर लानेका वादा किया था वह नहीं आ सका, फिर भी लोग आंदोलनकी विफलताकी ओर ध्यान नहीं देना चाहते थे, क्योंकि असलियतमें देखा जाय तो इस अहिंसक असहयोग आंदोलनको जबरदस्त सफलता हासिल हुई। उसने भारतीयोंके मनसे ब्रिटिश तोपों, संगीनों और जेलोंका खौफ निकालकर उन्हें निडर बनाया, जिससे भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यकी नींव हिल गयी। भारतमें ब्रिटिश शासनके दिन अब इने-गिने रह गये। फिर भी अभी संघर्ष कठिन और लंबा था। सन् १९२२ में गांधीजीको

राजद्रोहके अभियोगमें गिरफ्तार कर लिया गया। उनपर मुकदमा चलाया गया और एक मधुरभाषी ब्रिटिश जजने उन्हें ६ वर्ष कैदकी सजा दे दी। सन् १९२४ में एपेण्डे-साइटिसकी बीमारीकी वजहसे उन्हें रिहा कर दिया गया।

गांधीजीका विश्वास था कि भारतकी भावी राजनीतिक प्रगति हिन्दू-मुस्लिम एकतापर निर्भर करती है। वे इस एकताकी स्थापनाके लिए सन् १९१८ से बराबर प्रयत्नशील रहे। उन्होंने इस्लामी देशोंकी एकताके प्रतीक-स्वरूप तुर्कीकी खिलाफतके सवालपर भारतीय मुसलमानोंकी माँगोंका समर्थन किया किन्तु हिन्दू-मुसलिम एकताके उनके इन प्रयासोंका कोई स्थायी असर न हुआ। सितम्बर सन् १९२४में उन्होंने दिल्लीमें मुस्लिम नेता मुहम्मद अलीके निवासपर तीन हफ्तेका अनशन किया। उन्हें आशा थी कि यह उपवास हिन्दू और मुसलमानोंमें पूर्ण सौहार्द्र और सद्भावना स्थापित कर देगा। कुछ समयके लिए तो ऐसा लगा भी कि उनके इस कठिन व्रतने अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया, किन्तु पारस्परिक अविश्वास और हितोंके संघर्षसे, जिसे भारतकी अंग्रेज सरकार बराबर उभाड़ती और बढ़ावा देती रही, दोनों सम्प्रदाय जल्दी ही फिर एकताके पथसे भटक गये। गांधीजीने हिन्दुओंसे अपील की कि वे मुसलमानों द्वारा गोवधसे उत्तेजित न हों और नमाज़के समय मस्जिदोंके सामनेसे बाजा बजाते हुए जुलूस आदि न निकालें। किन्तु गांधीजीके इन उप-देशों और अपीलोंसे मुसलमान संतुष्ट नहीं हुए क्योंकि हिन्दुओंके साथ उनके मतभेद गोवध और मस्जिदोंके सामने बाजेके प्रश्न तक ही सीमित नहीं थे। इन मतभेदोंकी जड़ें गहरी थीं। मुसलमानोंको भय था कि अंग्रेजों द्वारा सत्ता भारतीयोंको हस्तांतरित किये जानेपर अल्पसंख्यक मुसलमानोंपर हिन्दुओंका शासन स्थापित हो जायेगा, जो बहुत बड़ी संख्यामें हैं। मुसलमानोंके इस भयको अंग्रेज शासकोंने और अधिक भड़काया। सन् १९०९ और १९१९के भारतीय शासन, विधानोंके अंतर्गत केन्द्रीय तथा प्रांतीय विधानमंडलोंमें सांप्रदायिक प्रतिनिधित्वका सिद्धांत लागू करके उनके इस भयको साकार रूप दे दिया गया था। गांधीजी और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा मुसलमानोंके इस भयका निवारण न हो सका और न ही ऐसा कोई उपाय निकाला जा सका जिससे अल्पसंख्यक मुसलमानोंको देशके प्रशासनमें समान अधिकारोंके लिए आश्वस्त किया जा सकता हो। बस, यहींसे पाकिस्तानकी उत्पत्तिका बीज अंकुरित हुआ।

सन् १९२५में जब अधिकांश कांग्रेसजनोंने १९१९के भारतीय शासन-विधान द्वारा स्थापित कौंसिलोंमें प्रवेश करनेकी इच्छा प्रकट की, तो गांधीजीने कुछ समयके लिए सक्रिय राजनीतिसे संन्यास ले लिया और उन्होंने अपने आगामी तीन वर्ष ग्रामोत्थान कार्यमें लगाये। उन्होंने गाँवोंकी भयंकर निर्धनताको दूर करनेके लिए चरखेपर सूत कातनेका प्रचार किया और हिन्दुओंमें व्याप्त छुआछूतको मिटानेकी कोशिश की। अपने इस कार्यक्रमको गांधीजी 'रचनात्मक कार्यक्रम' कहते थे। इस कार्यक्रमके जरिये वे अन्य भारतीय नेताओंके मुकाबले, गाँवोंमें निवास करनेवाली देशकी ९० प्रतिशत जनताके बहुत अधिक निकट आ गये। उन्होंने सारे देशमें गाँव-गाँवकी यात्रा की, गाँववालोंकी पोशाक अपना ली और उनकी भाषामें उनसे बातचीत की। इस प्रकार उन्होंने गाँवोंमें रहनेवाली करोड़ोंकी आबादीमें राजनीतिक जागृति पैदा कर दी और स्वराज्यकी मांगको मध्यमवर्गीय आंदोलनके स्तरसे उठाकर देशव्यापी अदम्य जन-आंदोलनका रूप दे दिया। सन् १९२७ में गांधीजीने फिर राजनीतिमें हिस्सा लेना शुरू कर दिया क्योंकि उन्होंने देखा कि संवैधानिक विकासकी मंद गतिके कारण देशमें हिंसा भड़क उठनेकी आशंका है। कांग्रेस पहले ही यह घोषणा कर चुकी थी कि उसका लक्ष्य पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करना है। गांधीजीके नेतृत्वमें शीघ्र ही यह निर्णय लिया गया कि अगर ब्रिटिश सरकार तत्काल 'औपनिवेशिक स्वराज्य' प्रदान करनेका वायदा नहीं करती है तो कांग्रेस सविनय-अवज्ञाका एक नया अहिंसक आंदोलन आरंभ करेगी। इस आंदोलनका नेतृत्व गांधीजीने संभाल लिया और सन् १९३०में उन्होंने अपने कुछ चुने हुए अनु-यायियोंके साथ अहमदाबादके निकट साबरमती आश्रमसे दांडी तक पदयात्रा की और वहाँ समुद्रजलसे नमक बनाया, जो तत्कालीन कानूनोंके अनुसार अवैध और दंडनीय था। साबरमतीसे दांडी तककी यह नमक यात्रा; उनका अवज्ञा-पूर्ण चुनौतीसे भरा क्रांतिकारी कदम था। इसका देशभर-पर असाधारण प्रभाव पड़ा और शीघ्र ही हजारों भारतीयोंने विभिन्न कानूनोंको तोड़ना शुरू कर दिया। देशमें एक बार फिर तेजीसे सत्याग्रह आंदोलन चल पड़ा। ब्रिटिश सरकारने पहले तो दमन और उत्पीड़नका अपना पुराना रास्ता अपनाया और हजारोंकी संख्यामें लोगोंको जेलोंमें ठूंस दिया, गांधीजीको भी कैद कर लिया; किन्तु बादको उसने राजनीतिक बातचीत भी शुरू कर दी। सन् १९३१ और ३२में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके एकमात्र प्रतिनिधिकी हैसियतसे गांधीजीने, लंदनमें होनेवाले दूसरे

और तीसरे गोलमेज सम्मेलनों (दे०)में भाग लिया। गांधीजी वहाँपर एक सामान्य ग्रामीण भारतीयकी तरह धोती पहने और चादर ओढ़े उपस्थित हुए जिसका विंस्टन चर्चिलने खूब मजाक उड़ाया और उन्हें 'भारतीय फकीर'की संज्ञा दी। गांधीजीने ब्रिटिश सम्राट्से भी मुलाकात की। गोलमेज सम्मेलनोंके नतीजोंने उन्हें निराश कर दिया और स्वदेश लौटते समय रास्तेमें ही उन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन फिरसे छेड़नेकी घोषणा कर दी। इस कारण भारत आते ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्से मेकडोनाल्डने जिस समय अपना कुख्यात 'कम्युनल एवार्ड' (साम्प्रदायिक निर्णय) (दे०) दिया, गांधीजी उस समय जेलमें थे। इस एवार्डमें केन्द्रीय और प्रांतीय विधानमंडलोंमें न केवल मुसलमानों और ईसाइयोंको अलग प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया था वरन् हिन्दुओंकी परिगणित जातियोंको भी अलग प्रतिनिधित्व दिया गया था। यह सवर्ण हिन्दुओं और परिगणित जातियोंके बीच स्थायी दरार पैदा करनेका कुचक्र था। गांधीजीने इसके खतरेको समझा और विरोध-स्वरूप आमरण अनशन शुरू कर दिया। वे अछूतोंको शेष हिन्दुओंसे हमेशाके लिए अलग कर देनेका विचार गवारा न कर सके। गांधीजीके अनशनके फलस्वरूप पूना-समझौता (दे०) हुआ जिसके अनुसार कुछ वर्षोंके लिए दलित वर्गोंके वास्ते कुछ स्थान आरक्षित रखनेके साथ संयुक्त निर्वाचन-क्षेत्रोंकी व्यवस्था की गयी। इस प्रकार हिन्दू समाजकी एकता और अखण्डता कायम रह सकी।

गांधीजी सन् १९३३में रिहा हुए और इसके बाद अगले कुछ वर्षों तक उन्होंने अपनेको अछूतोद्धारके काम में लगा दिया और इसके हेतु उन्होंने 'हरिजन' नामक एक पत्र निकाला। इस साप्ताहिकका संपादन और प्रकाशन वे आजीवन करते रहे।

जब दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ा, गांधीजी ब्रिटेनको अपना नैतिक समर्थन देनेके लिए तैयार हो गये और उन्होंने ऐसा कोई काम न करनेका फैसला किया जिससे संकटकी घड़ीमें उसे परेशानी हो। इसी कारण उन्होंने जर्मनी या जापानकी सैनिक सहायतासे भारतीय स्वाधीनता प्राप्त करनेके नेताजी सुभाषचंद्र वसुके प्रयासोंका समर्थन नहीं किया। उन्होंने अन्य कांग्रेसी नेताओंके साथ इस बातपर सहमति प्रकट की कि अगर ब्रिटेन युद्धके बाद भारतकी पूर्ण स्वाधीनता देनेका पक्का आश्वासन दे तो भारत उसके साथ पूरा सहयोग करेगा। लेकिन चूंकि ऐसा कोई आश्वासन नहीं मिला, इसलिए गांधीजी तथा कुछ उनके चुने हुए अनुयायियोंने 'व्यक्तिगत सत्याग्रह'के नामसे एक नया आंदोलन शुरू कर दिया। परन्तु इस आंदोलनका ब्रिटिश सरकारपर कोई खास असर नहीं पड़ा। इसलिए अगस्त सन् १९४२में उन्होंने अंग्रेजोंसे भारत छोड़ने और भारतवासियोंको तत्काल सत्ता हस्तांतरित करनेकी मांग की। 'भारत छोड़ो' नारा शीघ्र ही देशभरमें फैल गया। नौसेना तक इससे प्रभावित हुई। अंग्रेजोंको एक बार फिर एक शक्तिशाली जन-आंदोलनका सामना करना पड़ा। हजारों लोगोंको गिरफ्तार कर जेलमें ठूंस दिया गया। सन् १९४२में सभी कांग्रेसी नेताओंके साथ गांधीजीको भी कैद कर लिया गया। गांधीजीकी पत्नी कस्तूरबा भी गिरफ्तार कर ली गयीं और सन् १९४४में नजरबंदीकी अवस्थामें जेलके अंदर ही उनकी मृत्यु हो गयी।

इसके बाद गांधीजीको शीघ्र ही रिहा कर दिया गया। ब्रिटेन और उसके मित्रराष्ट्रोंकी युद्धमें विजय हुई। भारतमें आजादीकी माँगको बराबर जोर पकड़ता देख ब्रिटेनने महसूस किया कि उसके लिए अब भारतपर अपना आधिपत्य बनाये रखना सम्भव नहीं है। उसने भारतीयोंके हाथों सत्ता सौंपनेका फैसला किया। किन्तु उनके सामने प्रश्न यह था कि भारतको एक अखण्ड देशके रूपमें स्वतंत्रता प्रदान की जाय या साम्प्रदायिक आधारपर उसके दो टुकड़े कर दिये जायँ। दोनों सम्प्रदायोंके स्वार्थी नेताओंने देशके अंदर सन् १९४६में भयंकर साम्प्रदायिक दंगे करवा दिये। गांधीजी देशके विभाजन और साम्प्रदायिक दंगे, दोनोंके तीव्र विरोधी थे। उन्होंने बंगाल, बिहार और पंजाबमें गाँव-गाँव जाकर लोगोंको साम्प्रदायिक सौहार्द्र और राष्ट्रीय एकताका महत्त्व समझाया। किन्तु उनके प्रयास सफल न हुए। कांग्रेसके अंदर उनके साथियोंने देशको भारत और पाकिस्तान, दो पृथक् राष्ट्रोंमें बाँट देनेके आधारपर स्वाधीनता स्वीकार कर ली और अंततः गांधीजीको भी उनकी बात मान लेनी पड़ी। भारतने १५ अगस्त १९४७को स्वाधीनता प्राप्त कर ली। किन्तु इसके तुरन्त बाद भयंकर साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे और पश्चिमी सीमाके दोनों ओर अल्पसंख्यक समुदायोंपर जघन्य अत्याचार किये गये। दिल्ली भी इन दंगोंसे अछूती नहीं रही। गांधीजीने साम्प्रदायिक वैमनस्य दूर करनेके उद्देश्यसे जनवरी सन् १९४८में दिल्लीमें पुनः अनशन आरम्भ किया। कुछ ही दिनोंके अंदर एक समझौता हुआ और राजधानीमें साम्प्रदायिक सौहार्द्र स्थापित हो गया। गांधीजीने स्वयं हस्तक्षेप करके नवस्थापित भारत सरकारसे पाकिस्तान सरकारको एक बहुत बड़ी धनराशि दिलवा दी। बहुतसे हिन्दुओंके

विचारसे पाकिस्तान सरकार इस धनराशिके लिए कानूनी तौरसे हकदार न थी। इस प्रकार कुछ हिन्दू लोग गांधीजीको भारतमें हिन्दूराजकी स्थापनामें बाधक समझने लगे। गांधीजीके अंतिम उपवासके दस दिनों बाद ही ३० जनवरी १९४८ को एक धर्मान्ध हिन्दूने दिल्लीमें उन्हें उस समय गोली मार दी, जब वे अपनी दैनिक प्रार्थना-सभामें भाग लेने जा रहे थे।

अपने महान नेताकी मृत्युका समाचार सुनकर सारा देश शोकाकुल हो उठा। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरूने राष्ट्रको महात्माजीकी हत्याकी सूचना इन शब्दोंमें दी, "हमारे जीवनसे प्रकाश चला गया और आज चारों तरफ अंधकार छा गया है। मैं नहीं जानता कि मैं आपको क्या बताऊँ और कैसे बताऊँ। हमारे प्यारे नेता, राष्ट्रपिता बापू अब नहीं रहे।" महात्मा गांधी वास्तवमें भारतके 'राष्ट्रपिता' थे। सत्ताइस वर्षोंके अल्पकालमें उन्होंने भारतको सदियोंकी दासताके अँधेरेसे निकालकर आजादीके उजालेमें पहुँचा दिया। किन्तु गांधीजीका योगदान सिर्फ भारतकी सीमाओं तक सीमित नहीं था। उनका प्रभाव संपूर्ण मानव जातिपर पड़ा, जैसा कि अर्नाल्ड टायनबीने लिखा है—"हमने जिस पीढ़ीमें जन्म लिया है, वह न केवल पश्चिममें हिटलर और रूसमें स्टालिनकी पीढ़ी है, वरन् वह भारतमें गांधीजीकी पीढ़ी भी है और यह भविष्यवाणी बड़े विश्वासके साथ की जा सकती है कि मानव इतिहासपर गांधीका प्रभाव स्टालिन या हिटलरसे कहीं ज्यादा और स्थायी होगा।" (**मोहनदास करमचंद गांधी—'आत्मकथा', डा० जी० तेन्दुलकर कृत 'महात्मा', लुई फिशर कृत 'लाइफ आफ गांधी', एच० मुखर्जी कृत 'गांधीजी', अर्नाल्ड टायनबी कृत 'स्टडी आफ हिस्ट्री' खण्ड १२**)

गाज़ी—एक उपाधि, जिसका अर्थ होता है धर्मयुद्ध करनेवाला। अनेक मुसलमान बादशाहोंकी भाँति औरंगज़ेबने भी यह उपाधि धारण की थी।

गाज़ीउद्दीन इमामुलमुल्क—हैदराबादके प्रथम निजामके पुत्र गाज़ीउद्दीन खाँका पुत्र। जब उसका पिता १७५२ ई० में औरंगाबादमें उसकी सौतेली माँ द्वारा विष देकर मार डाला गया, उस समय गाज़ीउद्दीन दिल्लीमें था। दिल्लीमें वह अवधके सूबेदार सफदरजंगकी सहायतासे मीरबख्शी (वेतन-वितरण विभागका प्रधान) बन गया। बादमें उसने सफदरजंगका साथ छोड़ दिया और मराठोंके साथ हो गया, जिनकी सहायतासे उसने बादशाह अहमदशाह (१७४८—५४ ई०) को गद्दीसे उतार दिया। युवक गाज़ीउद्दीन कुटिल, एहसानफरामोश और बड़ा महत्त्वाकांक्षी था, किन्तु न तो उसमें रण-कौशल था और न संगठन-शक्ति। वह अहमदशाह अब्दालीका आक्रमण रोकनेमें विफल रहा, जिसने १७५६ ई० में दिल्लीपर हमला किया और उसे लूटा तथा पंजाबपर अधिकार कर लिया। अब्दालीके चले जानेके बाद उसने मराठोंसे मिलकर १७५८ ई० में पंजाबपर पुनः अधिकार करनेका षड्यंत्र किया, लेकिन १७५९ ई० में अब्दालीने पुनः भारतपर आक्रमण किया और पंजाबको फिर हथिया लिया। गाज़ीउद्दीन किसी प्रकार अब्दालीसे क्षमा प्राप्त करनेमें सफल हो गया। जैसे ही अब्दाली वापस गया, गाज़ीउद्दीनने फिरसे चालबाजी शुरू कर दी और १७५९ ई० में बादशाह आलमगीर द्वितीयको मार डाला। उसने औरंगज़ेबके सबसे छोटे पुत्र कामबख्शके पोतेको शाहजहाँ तृतीयके नामसे गद्दीपर बैठा दिया। लेकिन अब्दाली फिर आ धमका। गाज़ीउद्दीनने सूरजमल जाटकी शरण ली और मराठोंकी सहायतासे अब्दालीका सामना करनेका प्रयास किया, किन्तु पानीपतकी तीसरी लड़ाई (१७६१) में अब्दालीने मराठोंको बुरी तरह कुचल दिया और गाज़ीउद्दीनके षड्यंत्रों एवं राजनीतिक गतिविधियोंको सदाके लिए समाप्त कर दिया। गाज़ीउद्दीनकी मृत्यु १८०० ई० में हुई।

गाज़ीउद्दीन, फीरोज जंग—एक ईरानी जो औरंगज़ेबके शासनकालमें भारत आया। वह मुगलोंकी नौकरीमें अनेक उच्च पदोंपर रहा। १६८५ ई० में बीजापुर और १६८७ ई० में गोलकुंडापर घेरा डाले जानेके समय वह उपस्थित था। उसने युद्धमें अद्भुत कौशलका प्रदर्शन किया। १६८८ ई० में ताऊनकी बीमारी फैलनेपर उसकी एक आँख चली गयी, तो भी वह मृत्युपर्यन्त मुगल दरबारका प्रभावशाली सरदार बना रहा। उसका बेटा मीर कमरुद्दीन चिन किलिचखाँ था जो १७१३ में हैदराबादका प्रथम निजाम बना।

गाज़ी मलिक—देखिये, 'गयासुद्दीन तुगलक'।

गाडविन, जनरल सर एच० टी०—ब्रिटिश भारतीय सेनाका एक अधिकारी। प्रथम बर्मा-युद्ध (१८२४—२६) के दौरान उसने ईस्ट इंडिया कम्पनीकी महत्त्वपूर्ण सेवा की। द्वितीय बर्मा-युद्ध (१८५२) में भी उसने ७० वर्षकी अवस्था होनेपर भी ब्रिटिश सेनाका नेतृत्व किया और युद्धमें विजय प्राप्त की।

गायकवाड़—एक मराठा खानदान, जो पेशवा बाजीराव प्रथम (१७२०—४०) के शासनकालमें सत्तामें आया।

इस वंशके संस्थापक दामजी प्रथमके बारेमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। उसके भतीजे पीलाजी (१७२१–३२) के जीवनकालमें यह खानदान प्रमुखतामें आया। पीलाजी राजा साहूके सेनापति खाण्डेराव दाभाड़ेके गुटका था। उसने १७२० ई० में सूरतसे ५० मील पूर्व सौनगढ़में एक दुर्गका निर्माण कराया। १७३१ ई० में वह बिल्हापुर अथवा बालापुरके युद्धमें खाण्डेरावके पुत्र और उत्तराधिकारी त्र्यम्बकराव दाभाड़ेकी तरफसे लड़ा, किन्तु इस युद्धमें दाभाड़ेकी पराजय और मृत्यु होनेपर उसने पेशवा बाजीराव प्रथमके साथ संधि कर ली। पेशवाने उससे गुजरातपर निगाह रखनेको कहा। गायकवाड़ने अपना मुख्य ठिकाना बड़ौदा बनाया। किन्तु पीलाजीकी १७३२ ई० में हत्या कर दी गयी और उसका पुत्र दामाजी द्वितीय उत्तराधिकारी बना, जो सन् १७६१ ई० में पानीपतके युद्धमें मौजूद था और बादमें भाग निकला। १७६८ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। दामाजी द्वितीयके कई पुत्र थे, जिनमें १७६८ से १८०० ई० तक लगातार उत्तराधिकार-युद्ध चलता रहा। १८०० ई० में दामाजीके बड़े लड़के गोविन्दरावका पुत्र सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने १८१९ ई० तक शासन किया। इस दौरान गायकवाड़ वंशने अंग्रेजोंके साथ शांतिपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखा और बिना किसी युद्धके १८०५ ई० में आश्रित-संधि कर ली। गायकवाड़ वंश अंग्रेजोंके प्रति वफादार बना रहा और इस कारण दूसरे और तीसरे आंग्ल-मराठा युद्धोंमें अन्य मराठा सरदारोंको जन-धनकी जो अपार क्षति उठानी पड़ी उससे बच गया। आनंदरावका उत्तराधिकारी उसका भाई सयाजी द्वितीय (१८१९–४७) बना और उसके बाद उसके तीन पुत्र गणपतिराव (१८४७–५६), खाण्डेराव (१८५६–७०) और मल्हारराव (१८७०–७५) क्रमशः सिंहासनपर आरूढ़ हुए। मल्हाररावपर कुशासन और ब्रिटिश रेजीडेण्ट कर्नल फेयरेको विष देकर मरवा डालनेका अभियोग लगाया गया। उसे गिरफ्तार कर लिया गया और वाइसराय लार्ड नार्थब्रुक द्वारा नियुक्त आयोगके सामने उसपर मुकदमा चला। हत्याभियोगपर आयोगके सदस्योंमें मतभेद था, अतः उसे बरी कर दिया गया, किन्तु दुराचरण और कुशासनके आरोपमें उसे गद्दीसे उतार दिया गया। मल्हाररावके कोई संतान नहीं थी, इसलिए भारत सरकारने सयाजीराव नामक बालकको, जिसका गायकवाड़ वंशसे कुछ दूरका सम्बन्ध था, गद्दीपर बैठा दिया और नये शासकके अल्पवयस्क रहनेतक प्रशासन सर टी० माधवरावके हाथों सुपुर्द कर दिया। सयाजीराव तृतीयने १८७५ ई० में शासन संभाला और १९३९ ई० में उसकी मृत्यु हुई। उसने अपनेको देशी रजवाड़ोंमें सर्वाधिक योग्य और जागरूक शासक सिद्ध किया और बड़ौदाको भारतका सर्वाधिक उन्नतिशील राज्य बना दिया।

गार्डनर, कर्नल अलेक्जेण्डर हटन (१७८५–१८७७)—एक साहसी अंग्रेज पेशेवर सिपाही। उसने अफगानिस्तान पहुँचकर हबीबुल्लाह खाँके यहाँ नौकरी की और उसके चाचा अमीर दोस्त मोहम्मदके खिलाफ लड़ाइयोंमें भाग लिया। १८२६ ई० में वह पंजाब चला आया और कर्नलकी हैसियतसे रणजीत सिंहकी फौजमें शामिल हो गया। उसने उसके तोपखानेको प्रशिक्षण दिया। १८३५ ई० में उसने अफगानोंके विरुद्ध युद्धमें सिखोंकी सहायता की। रणजीतसिंहकी मृत्युके उपरान्त होनेवाले उत्तराधिकार-युद्धमें उसने भी भाग लिया। प्रथम सिख-युद्ध (दे०) के दौरान वह लाहौरमें था, किन्तु इसमें उसे कोई सक्रिय भूमिका नहीं दी गयी। १८४६ ई० में उसने जम्मू-कश्मीरमें राजा गुलाब सिंहके यहाँ नौकरी कर ली और १८४७ ई० तक मृत्युपर्यंत उन्हींकी सेवामें रहा।

गालिब खाँ—एक पठान सरदार, जो भारतपर तैमूरके आक्रमण (१३९८–९९ ई०) के बाद सामान का स्वतंत्र शासक बन गया था।

गाबिल गढ़—बरारका एक शक्तिशाली दुर्ग, जिसका निर्माण बहमनी सुलतानोंने कराया था। बादमें इसपर मराठोंका अधिकार हो गया। दूसरे मराठा-युद्ध (१८०४–६) में १५ दिसम्बर १८०३ ई० को अंग्रेजोंने इसे बरारके भोंसला राजाके हाथोंसे छीन लिया।

गाहड़वाल (गहरवार) वंश—राजपूत राजा चंद्रदेवने ग्यारहवीं शताब्दीके अंतिम दशकमें इसको प्रतिष्ठापित किया। उसके पौत्र गोविन्द्रचंद्रने युवराजके रूपमें ११०४ से १११४ ई० तक तथा उसके बाद राजाके रूपमें ११५४ ई० तक एक विशाल राज्यपर शासन किया, जिसमें आधुनिक उत्तर प्रदेश और बिहारका अधिकांश भाग शामिल था। उसने मुस्लिम तुर्कोंके आक्रमणसे वाराणसी और जेतवन जैसे पवित्र धार्मिक स्थानोंकी रक्षा की। उसने अपनी राजधानी कन्नौजका पूर्व गौरव कुछ सीमा तक पुनः स्थापित किया। गोविन्दचंद्रका पौत्र राजा जयचंद्र (जो जयचंदके नामसे विख्यात है) था, जिसकी सुन्दर पुत्री संयोगिताको अजमेरका चौहान राजा पृथ्वीराज अपहृत कर ले गया था। इस कांडसे दोनों राजाओंमें इतनी अधिक शत्रुता हो गयी कि जब तुर्कोंने पृथ्वीराजके राज्यपर हमला किया, उस समय जयचंदने उसकी कोई

सहायता नहीं की । ११९२ ई०में तराइन (तरावड़ी)के दूसरे युद्धमें पृथ्वीराज पराजित हुआ और उसने स्वयं प्राणांत कर लिया । दो वर्ष बाद सन् ११९४ ई०में चन्दावर-के युद्धमें तुर्क विजेता शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने जयचंदको भी हराया और मार डाला । तुर्कोंने उसकी राजधानी कन्नौजको खूब लूटा और नष्ट-भ्रष्ट किया । उसके साथ ही गाहड़वाल वंशका अंत हो गया ।

गिरनार–काठियावाड़ प्रायद्वीपमें जूनागढ़के निकट स्थित पर्वत । यहाँ एक चट्टानपर मौर्य सम्राट् अशोक (लगभग २७३ ई०पू० से २३२ ई०पू०)का चतुर्दश शिलालेख अंकित है । उसी चट्टानके दूसरी ओर शक क्षत्रप रुद्रदमन (लगभग १५० ई०)का अभिलेख है, जिसमें प्रथम मौर्य-सम्राट् चन्द्रगुप्त (लगभग ३२२ ई०पू० से २९८ ई०पू०)के आदेशसे वहाँपर सुदर्शन झीलके निर्माणका उल्लेख है । इन दोनों महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक अभिलेखोंके अलावा गिरनारमें अनेक भव्य मंदिर बने हुए हैं, जिन्हें गुजरातके चालुक्य राजाओंने बनवाया था । (**बर्गेस० खंड २ तथा ह० हं० खंड ८, पृ० ३६**)

गिरमिट प्रथा–मजदूरोंकी भरतीके लिए उन्नीसवीं शताब्दीके तीसरे दशकमें आरम्भ की गयी । इस प्रथाके अंतर्गत भारतीय मजदूरोंसे किसी बगीचेपर एक निर्धारित अवधि तक (प्रायः पांचसे सात साल) काम करनेके लिए 'एग्रीमेंट' (जिसे बोलचालकी भाषामें 'गिरमिट' कहा जाता था, इसीसे इस प्रथाको 'गिरमिट' प्रथा कहने लगे) कराया जाता था । 'गिरमिट'से मुक्त होनेपर मजदूरको छूट रहती थी कि वह या तो भारत लौट जाय या स्वतंत्र मजदूरकी हैसियतसे वहीं उपनिवेशमें बस जाय । यदि वह स्वदेश वापस लौटना चाहता था तो उसे किराया दिया जाता था । 'गिरमिट'की यह सामान्य प्रथा कहीं-कहीं कुछ परिवर्तित रूपमें भी प्रचलित थी । भारतीय मजदूर अनपढ़ और असंगठित होते थे । उन्हें रोजीकी तलाश थी, इसलिए न्यायान्यायके विचारसे शून्य धनी ठेकेदार बहुधा मजदूरों-से मनमानी शर्तें भी करा लेते थे । गिरमिट प्रथाके अंतर्गत बहुसंख्यक भारतीय मजदूर हिन्द महासागरमें स्थित मारीशस, प्रशांत महासागरमें स्थित फिजी, मलय प्रायद्वीप तथा द्वीपपुंज, श्रीलंका, केनिया, टांगानायका, उगांडा, दक्षिण अफ्रीका, ट्रिनिडाड, जमायका और ब्रिटिश गायना गये और इनमेंसे बहुतेरोंने 'गिरमिट'-मुक्त होनेपर उसी स्थानपर बस जाना पसंद किया । वे वहांपर या तो स्वतंत्र मजदूर बनकर या छोटे-मोटे व्यापारी बनकर जीविका कमाने लगे । इस तरह उपर्युक्त ब्रिटिश उपनिवेशोंमें प्रवासी भारतीयोंकी काफी बड़ी संख्या हो गयी । प्रवासी भारतीयोंकी संख्या जब बढ़ी और वे समृद्ध होने लगे तो उन उपनिवेशोंमें रहनेवाले गोरे उनसे ईर्ष्या करने लगे और उनके विरोधी बन गये । गोरोंने इस बातको भुला दिया कि इन प्रवासी भारतीयोंके पुरखोंको उन्हीं लोगोंने अपने देशमें आमंत्रित किया था और गिरमिटिया मजदूरों-की सेवाओंसे भारी लाभ उठाया था । उन्होंने उन उपनि-वेशोंकी समृद्धिमें उतना ही योगदान दिया था, जितना वहांके गोरे निवासियोंने । अब चूंकि वे गोरोंकी गुलामी नहीं करना चाहते थे तो उन्हें अवांछित व्यक्ति करार दिया जा रहा था । इस तरह गिरमिट प्रथाके कारण जातीय भेदभावपर आधारित नयी समस्याएं उठ खड़ी हुईं, जिनका अभीतक समाधान नहीं हो सका है ।

गिरिया–बिहारमें राजमहलके निकट, जहां दो बार युद्ध हुए । पहला युद्ध १७४० ई० में बंगालके नवाब अलीवर्दी खां (दे०) और उसके प्रतिद्वन्द्वी सरफराज खांके बीच हुआ, जिसमें सरफराज पराजित हुआ और मारा गया । अलीवर्दीखां इस विजयके बाद मसनदपर बैठा । गिरिया-की दूसरी लड़ाई (१७६३) नवाब मीर कासिम (दे०) और ईस्ट इंडिया कम्पनीके बीच हुई । मीर कासिम परा-जित हो गया तथा अन्य तीन युद्धोंमें हारकर पटना भाग गया । बंगालकी गद्दी उससे छिन गयी ।

गिरिव्रज–पटनाके समीप राजगिर नामक आधुनिक कसबेका प्राचीन नाम । इस नगरको सम्राट बिम्बसार (लगभग ५५० ई० पू०)ने बनवाकर इसका नाम राजगृह रखा और अपनी राजधानी बनाया । बादमें उसीका वंशज सम्राट् कालाशोक राजगृहसे राजधानी हटाकर पाटलिपुत्र ले गया । महात्मा बुद्धके निर्वाणके बाद राजगृहमें ही प्रथम बौद्ध संगीति (धर्मसभा) ४८६ ई० पू० में हुई, जहाँ अभिधर्म और विनय पिटकोंकी रचना की गयी । गिरिव्रज अथवा राजगृह बहुत काल तक विभिन्न प्रकारसे बौद्ध धर्मसे संबंधित रहा । आजकल राजगिर गरम पानीके झरनोंके कारण अच्छे स्वास्थ्य-केन्द्रके रूपमें भी प्रसिद्ध है ।

गिलगिट–कश्मीरके उत्तर-पश्चिमी कोनेमें स्थित । घाटीमें बहनेवाली नदी और वहाँ बसे हुए कसबेका नाम भी गिलगिट है, जो जिलेका सदरमुकाम है । गिलगिट सिंधु नदीकी सहायक नदी है । सामरिक दृष्टिसे गिलगिटका बहुत महत्त्व है । यहाँसे चित्राल होकर अफगानिस्तानके लिए सीधा रास्ता है । कुछ दूरी तक रूसकी सीमा भी इससे लगी हुई है । अतएव वाइसराय लार्ड लिटन प्रथमके समय ब्रिटिश सरकारने गिलगिट घाटीपर सीधा नियंत्रण प्राप्त

करनेका प्रयत्न किया, जो कश्मीरके महाराजके शासनके अन्तर्गत थीं। लार्ड लिटनने महाराजसे गुप्त समझौता किया जिसके अनुसार गिलगिटमें एक ब्रिटिश एजेंट नियुक्त हुआ। १८८९ ई० में एक ब्रिटिश अफसर गिलगिट भेजा गया। ब्रिटिश सरकारकी इस कार्रवाईसे अफगानिस्तान-का शासक अमीर अब्दुर्रहमान बहुत घबराया, उसकी दृष्टिमें अफगानिस्तानके प्रति ब्रिटिश इरादे सच्चे नहीं थे। इस प्रकार भारत सरकार और अफगानिस्तानके बीच उस कालमें गिलगिट विवादका विषय हो गया था। आजकल वह पाकिस्तान द्वारा नियंत्रित गुलाम कश्मीरके शासनके अन्तर्गत है।

गिलजई—एक अफगान कबीला, जिसने १८४० ई० में अफगा-निस्तानपर चढ़ाई करनेवाली ब्रिटिश सेनाकी दुर्बल स्थिति-का फायदा उठाकर विद्रोह कर दिया। यद्यपि उन्हें तत्काल दबा दिया गया, तथापि १८४१ ई० में उनका विद्रोह फिर भड़क उठा। फलतः १८४१–४२ ई० में काबुलसे जलालाबाद वापस आनेवाली ब्रिटिश फौजको भारी हानि उठानी पड़ी।

गीतगोविन्द—संस्कृतके मधुरतम गीतोंकी एक उत्कृष्ट रचना। बंगालके राजा लक्ष्मणसेन (दे०) (लगभग ११७८-१२०३) के दरबारी कवि जयदेवने इन गीतोंकी रचना की, जिनमें राधा और कृष्णके अलौकिक प्रेमका वर्णन है।

गुजरात—पश्चिमी भारतका एक प्रदेश। गुजराती भाषा बोलनेवाले सम्पूर्ण क्षेत्रको 'गुजरात' कहा जाता है, जिसमें पुराने बम्बई सूबेके अहमदाबाद, भड़ौंच, पंचमहल, खैरा तथा सूरत जिले, भूतपूर्व बड़ौदा राज्यका क्षेत्र तथा सौराष्ट्र एवं कच्छकी रियासतें शामिल थीं। अन्य प्रदेशोंकी अपेक्षा गुजरात कम प्राचीन जान पड़ता है, क्योंकि अशोक अथवा रुद्रदामाके शिलालेखोंमें इसका विवरण नहीं मिलता। पाँचवीं शताब्दी ईसवीमें जब हूणोंने भारतपर हमला किया, तबसे यह नाम प्रचलित हुआ। यह नाम गुर्जर लोगोंसे उदभूत प्रतीत होता है। गुर्जर लोग विदेशी थे, जो पाँचवीं शताब्दी ईसवीमें पश्चिमोत्तर दिशासे भारत में अन्हिलवाड़ व भिन्नमाल आये और क्रमशः यहाँ बस गये। इसके बाद दो शताब्दियोंमें गुजरात राज्य बन गया, जिसमें राजपूताना-का भी कुछ भाग सम्मिलित था। आरंभमें इसकी राजधानी अन्हिलवाड़ थी जो बादमें भिन्नमालमें स्थापित हुई। गुर्जर प्रतिहार (दे०) राजाओंके समयमें गुजरात बहुत विख्यात हुआ। १०२४ ई० में महमूद गजनवीके आक्रमणसे इस राज्यकी शक्ति घटने लगी और इसकी प्रतिष्ठा नष्ट हो गयी। इसी आक्रमणमें महमूद गजनवीने सोमनाथ मंदिर लूटा था। फिर भी यह १२९७ ई० तक स्वतंत्र रहा जबकि अलाउद्दीन खिलजीने इसे अपने अधिकारमें कर लिया। १४०१ ई० में गुजरातका हाकिम जाफर खाँ अपनेको स्वतंत्र घोषित कर नसीरुद्दीन मुहम्मदशाहके नामसे गुजरातका सुलतान बन गया। उसके वंशने १५७२–७३ ई० तक शासन किया। नसीरुद्दीन मुहम्मद शाहके वंशमें अहमदशाह (१४११–४१), महमूद बघर्रा (१४५९–१५११) तथा बहादुरशाह (१५२६–३७) प्रमुख शासक हुए। १५३७ ई० में पुर्तगालियोंने धोखा देकर बहादुरशाहको उस समय मार डाला, जब ड्यू नामक बंदरगाहमें जहाजपर पुर्तगाली गवर्नर डी'कुन्हासे मिलनेके लिए वह गया था। बहादुरशाहकी मृत्युके बाद लगभग ४० वर्ष तक गुजरातमें अराजकताकी स्थिति रही, बादमें इसपर अकबरने कब्जा कर लिया। औरंगजेबके मरनेके बाद बाजीराव प्रथम (द्वितीय पेशवा) (१७२०–४०)के जमानेमें यह राज्य मराठोंके अधिकारमें आ गया, जिसे गायकवाड़ोंको शासनके लिए दे दिया गया, जिन्होंने बड़ौदाको राजधानी बनाया। गायकवाड़ोंका संबंध अंग्रेजों-से भी अच्छा रहा और बसईकी संधि (१८०२) (दे०)से उन्हें विशेष संरक्षण प्राप्त हुआ। तीसरे मराठा-युद्ध (१८१७–१८)में गुजरात अंग्रेजोंके अधिकारमें आ गया, जिसे बम्बई प्रान्तका अंग बना दिया गया। भारतके आज़ाद होनेके बाद राज्योंका पुनर्गठन होनेपर गुजरात बम्बईसे अलग कर दिया गया और उसकी राजधानी अहमदाबाद बनायी गयी। गुजरातमें हिन्दू और मुसलमान राजाओं द्वारा बनवायी गयी इमारतें वास्तुशिल्पकी सुन्दर कृतियां हैं। राजधानी अहमदाबाद बहुत साफ सुथरा नगर माना जाता है और भारतीय सूती वस्त्र उद्योगका केन्द्र है। **(के० एम० मुंशी कृत 'ग्लोरी दैट वाज गुर्जरात')**

गुजरातकी लड़ाई—पंजाबमें १८४९ ई० में अंग्रेजों और सिखोंके बीच दूसरे सिख-युद्ध (१८४८-४९ ई०)के दौरान हुई। इस लड़ाईमें दोनों ओरसे मुख्यतः तोपोंका इतना अधिक प्रयोग हुआ कि इसे तोपोंकी लड़ाई कहा जाता है। अंग्रेज सेनापति लार्ड गफने रणभूमि-का सावधानीसे निरीक्षण करनेके बाद सिखोंकी तोपोंपर गोले बरसाकर उनका मुंह बंद कर दिया। इसके बाद अंग्रेजोंकी पैदल सेनाने सिख सेनापर हमला किया और उसमें भगदड़ मचा दी। अंग्रेजोंने सिख सेनाका दूर तक पीछा करके उसके ऊपर निर्णयात्मक विजय प्राप्त की। इस लड़ाईने एक प्रकारसे दूसरे सिख-युद्धका भाग्यनिर्णय कर दिया।

गुणवर्मा—कश्मीरका एक राजकुमारजो बौद्ध भिक्षु हो गया और अपना जीवन सुदूरपूर्वके देशोंमें धर्मप्रचारमें बिताया। वह पहले लंका, फिर जावा और अंतमें चीन पहुँचा। चीनी वृत्तांतके अनुसार उसने जावाके लोगोंको बौद्ध बनाया। ४३१ ई० में नानकिंग (चीन) में उसका देहांत हुआ।

गुप्तवंश—३२० ई० के लगभग चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा स्थापित। इस वंशने लगभग ५१० ई० तक उत्तर भारतपर शासन किया। चन्द्रगुप्त प्रथमका पिता घटोत्कच तथा पितामह गुप्त था जो शायद पाटलिपुत्रके राजा थे। चन्द्रगुप्त प्रथमने लिच्छवि राजकुमारी कुमारदेवीसे विवाह किया, जिससे उसकी शक्ति बहुत बढ़ गयी। वह केवल सम्पूर्ण मगधका शासक ही नहीं हो गया, उसका राज्य प्रयाग तक फैल गया। उसके राज्यमें तिरहुत, दक्षिणी बिहार तथा अवधके प्रदेश शामिल थे। उसने महाराजाधिराजकी पदवी धारण की। इस वंशमें कई बड़े बड़े सम्राट् हुए, यथा समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य, कुमारगुप्त प्रथम, स्कंदगुप्त, तथा कुमारगुप्त द्वितीय। इसके अलावा परवर्ती कालमें कुछ निर्बल राजा भी हुए, जिन्होंने या तो केवल मगधपर या सुदूर मालवा जैसे छोटे राज्योंपर शासन किया। गुप्त वंशका द्वितीय सम्राट् समुद्रगुप्त बहुत बड़ा विजेता था। उसने न केवल लगभग सम्पूर्ण उत्तरी भारतको अपने अधीन किया, वरन् दक्षिण-विजयके लिए भी अभियान किया। उसने कांची (कांजीवरम्) के राजा विष्णुगोपको भी अपना करद बनाया। तृतीय गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय था जो विक्रमादित्य (लगभग ३८०–४१५ ई०) के नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसने सौराष्ट्रपर विजय प्राप्त की और वहांके स्थानीय शकराजके शासनको उखाड़ फेंका। फलतः उसे 'शकारि'की उपाधि मिली। कहानियों एवं किंवदन्तियोंमें जिस विक्रमादित्यका उल्लेख मिलता है, वह कदाचित् यही विक्रमादित्य था। यही सम्राट् महान् संस्कृत कवि और नाटककार कालिदासका संरक्षक था। उसके पुत्र कुमारगुप्त प्रथम (४१५–५५) ने पुष्यमित्रोंके आक्रमणको विफल किया जो एक अज्ञात आदिवासी जातिके लोग थे। उसने गुप्त साम्राज्यको अक्षुण्ण रखा। उसके पुत्र स्कन्दगुप्त (४५५ से लगभग ४६७ ई० तक) को, जिसने पुष्यमित्रोंको खदेड़नेमें अपने पिताकी सहायता की थी और अभूतपूर्व वीरताका परिचय दिया था, हूण आक्रमणकारियोंका सामना करना पड़ा। हूणोंसे उसका जबरदस्त युद्ध हुआ और उसने उन्हें परास्त किया, लेकिन हूणोंके आक्रमण रुके नहीं। इन आक्रमणोंने गुप्त साम्राज्य को जर्जर कर दिया। हूणोंने गांधारपर कब्जा कर लिया। जब स्कंदगुप्त मरा, गुप्त साम्राज्य लड़खड़ा रहा था। उसके बाद उसका भाई पुरुगुप्त सिंहासनपर बैठा जो कुछ ही महीने जीवित रहा। उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी नृसिंहगुप्त बालादित्य (४६७–७३) बौद्धमतानुयायी था। उसने नालंदा (दक्षिण बिहार) में ३०० फुट ऊँचा एक विशालकाय मंदिर बनवाया। उसने भी हूणोंके विरुद्ध युद्ध किया और सम्भवतः उन्हें पराजित भी किया, किन्तु उसका शासनकाल भी बहुत दिनों तक नहीं चला। उसके बाद उसके पुत्र कुमारगुप्त द्वितीय (४७३–७६) का शासन भी अल्पकालीन था। यह वह समय था, जब गुप्त साम्राज्यका पतन हो रहा था। बादके गुप्त राजाओंका विशेष विवरण नहीं मिलता। सम्भवतः एक राजा बुद्धगुप्त (४७६–९५) हुआ, जिसके कालमें तोरमान तथा उसके पुत्र मिहिरगुलके नेतृत्वमें हूणोंने भीषण आक्रमण किये और वे उत्तर भारतके मध्य तक धंसते चले गये। इस प्रकार गुप्त साम्राज्य खंडित हो गया। बादमें बालादित्य नामक गुप्त राजाने मिहिरगुलके हमलोंको रोका। बताया जाता है कि मन्दसौरके राजा यशोधर्माने ५३३ ई० में मिहिरगुलको पराजित कर मार डाला। लेकिन इस विजयसे गुप्त वंशको कोई लाभ नहीं हुआ। अब कोई सम्राट् तो रहा नहीं, स्थानीय छोटे-छोटे राजा रह गये जो मगध अथवा मालवाके सीमित भागोंपर शासन करते रहे। **(आर० सी० मजूमदार लिखित 'क्लासिकल एज')।**

गुप्तवंशकी सांस्कृतिक उपलब्धियां—भारतके सांस्कृतिक इतिहासमें गुप्त वंशका बहुत बड़ा महत्त्व है। एकको छोड़कर बाकी सभी गुप्त सम्राट् ब्राह्मण धर्म (वैदिक धर्म) को माननेवाले थे। समुद्रगुप्त तथा कुमारगुप्त प्रथमने तो अश्वमेध यज्ञ भी किया था। उन्होंने बौद्ध और जैन धर्मको भी आश्रय दिया। चन्द्रगुप्त द्वितीयके समय में चीनी यात्री फाहियान आया था। उसने उस समयके भारतकी दशाका वर्णन किया है। उसके विवरणोंसे पता चलता है कि गुप्त साम्राज्य सुशासित था। हलके दण्डकी व्यवस्थाके बावजूद अपराध बहुत कम होते थे। करभार बहुत कम था। राजकाजकी भाषा संस्कृत थी। साहित्यकी प्रत्येक विधामें संस्कृतने बहुत उच्च स्थान ग्रहण कर रखा था। विश्वविश्रुत नाटक अभिज्ञान शाकुन्तल तथा रघुवंश महाकाव्यके रचयिता कालिदास, मृच्छकटिक नाटकके लेखक शूद्रक, मुद्राराक्षस नाटकके लेखक विशाखदत्त तथा सुविख्यात कोशकार अमरसिंह इसी गुप्तकालमें हुए। ऐसा विश्वास

किया जाता है कि रामायण, महाभारत, पुराण (विशेषकर वायुपुराण) तथा मनुसंहिता अपने वर्तमान रूपमें गुप्त कालमें ही बनी। महान् गणितज्ञ आर्यभट्ट (जन्म ४७६ ई०), वराहमिहिर (५०५–८७ ई०) तथा ब्रह्मगुप्त (जन्म ५९८ ई०)ने गणित तथा ज्योतिर्विज्ञानके विकासमें बहुत बड़ा योगदान किया। इसी कालमें दशमलव प्रणालीका यहां आविष्कार हुआ जो बादमें अरबोंके माध्यमसे यूरोप तक पहुँची। व्यावहारिक ज्ञानके क्षेत्रमें विश्वको भारत-की यह सबसे बड़ी देन मानी जाती है। उस कालमें वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला तथा धातुविज्ञान अत्यंत विकसित अवस्थामें पहुँच गये थे, जिसका प्रमाण झांसी और कानपुर (जिले)के गुप्तकालीन अवशेषों, अजन्ताकी गुफा सं० १६ तथा १७ की चित्रकारी, मेहरोली (दिल्ली) में स्थित राजा चन्द्रके लौहस्तम्भ, नालंदामें ८० फुट ऊँची बुद्धकी ताँबेकी मूर्ति तथा सुलतानगंज स्थित साढ़े सात फुट ऊँची बुद्धकी ताँबेकी प्रतिमासे मिलता है। निश्चय ही गुप्तकालमें कला, वास्तुशिल्प, मूर्तिनिर्माण और धातु-विज्ञानके जो स्मारक आज हमें दिखाई देते हैं, उनसे यही प्रमाणित होता है कि गुप्तकालके उस लम्बे शांतिपूर्ण युगमें भारतीय कला विकास एवं सौन्दर्यके शिखरपर पहुँच गयी थी। **(आर० डी० बनर्जी लिखित 'गुप्त सम्राटोंका युग', दत्त लिखित 'गणित विज्ञानको हिन्दुओंकी देन', ए० डी० कीथ लिखित 'संस्कृत साहित्यका इतिहास', आर० सी० मजूमदार लिखित 'क्लासिकल एज')**

गुप्त–एक गन्धी, जो किंवदन्तीके अनुसार अशोकको बौद्ध धर्ममें दीक्षित करनेवाले श्रमण उपगुप्तका पिता था। कहा जाता है, गौतम बुद्धके जन्मस्थान लुम्बिनीकी यात्रा करनेके लिए उपगुप्त अशोकके साथ गया था।

गुप्त–तृतीय और चतुर्थ शताब्दी ई०के मध्यमें वर्तमान मगध-का एक स्थानीय सामन्त, जिसका पौत्र चन्द्रगुप्त प्रथम बादमें गुप्त वंशका संस्थापक बना।

गुरुकी लड़ाई–१९०४ ई०में तिब्बतियों और ब्रिटिश भारतीय फौजोंके बीच हुई थी। तिब्बती लोग इसमें बड़ी आसानीसे पराजित हो गये। ब्रिटिश भारतीय फौजका सेनापति कर्नल फ्रांसिस यंगहस्बैण्ड (दे०) विजेताकी भांति तिब्बत-की राजधानीमें प्रविष्ट हुआ। तिब्बतने अन्ततः अंग्रेजोंकी अधीनता स्वीकार कर ली।

गुरुकुल–उत्तर प्रदेशमें हरिद्वारके निकट कांगड़ी (अब कनखल)में स्थित। इस विद्यामंदिरकी स्थापना आर्य-समाजके नेता स्वामी श्रद्धानंदने १९०२ ई०में की थी। इसका उद्देश्य भारतमें वैदिक जीवन-विधिकी पुनः प्रतिष्ठा करना रहा है। संस्कृतके माध्यमसे अध्ययन इस संस्थाकी मुख्य विशेषता है। अब यह एक विश्वविद्यालय बन गया है।

गुरु गोविन्दसिंह–सिखोंके दसवें तथा अंतिम गुरु, जो अपने पिता तथा ९वें गुरु तेगबहादुरकी गद्दीपर १६७५ ई० में बैठे। दक्षिणमें नान्देड़ नामक स्थानपर एक अफगान द्वारा १७०८ ई० में मार डाले जाने तक गद्दीपर विराजमान रहे। वे सिखोंको एक सैनिक-शक्ति बना देनेवाले प्रथम गुरु थे। उन्होंने मुसलमानोंका सामना करनेके लिए सिखोंका सैनिक संगठन किया। उन्होंने 'पाहुल' (दीक्षा) प्रथाका शुभारंभ किया, जिसके अनुसार सभी सिख समूहमें जाति-बंधन तोड़नेके उद्देश्यसे एक ही कटोरेमें 'अमृत' पान करते थे तथा प्रसाद ग्रहण करते थे। उन्होंने इन सिखोंको 'खालसा' (पवित्र) सम्बोधित किया और उन्हें अपने नामके आगे 'सिंह' जोड़नेका आदेश दिया। गुरुजीने धूमपान (तम्बाकू-सेवन)पर रोक लगा दी तथा पाँच 'ककार'का नियम बनाया, अर्थात् प्रत्येक सिखके लिए केश, कंघा, कड़ा, कच्छ (जाँघिया) तथा कृपाण रखना जरूरी कर दिया। गुरु गोविन्दसिंहने पुरानी धार्मिक शिक्षाओंको अक्षुण्ण रखते हुए सिखोंमें नये प्राण फूंक दिये। अभी तक उनकी गिनती शांतिप्रिय धर्मभीरु व्यक्तियोंमें होती थी। अब वे एक नयी सामाजिक तथा राजनीतिक शक्ति बन गये। गुरु गोविन्दसिंहको अनेक पहाड़ी राजाओं और मुगल मनसबदारोंसे युद्ध करना पड़ा। उनके दो पुत्र सरहिन्दके मुगल फौजदारके हाथमें पड़ गये, जिन्हें उसने जिन्दा दीवारमें चुनवा दिया। औरंगजेबकी मृत्युके बाद उसकी गद्दीके उत्तराधिकारके लिए जो युद्ध हुआ, उसमें गुरुजीने बहादुरशाहका पक्ष लिया। उसके बादशाह बननेपर उन्होंने उसकी सुरक्षामें शान्तिमय जीवनयापन स्वीकार कर लिया, किन्तु १७०८ ई० में एक विश्वासी पठानने दक्षिणमें उनकी हत्या कर दी।

गुरुदासपुर–पंजाबका एक किलेबंद नगर। इसी किलेमें सिखोंका नेता बंदा बैरागी सन् १७१५ ई० में मुगल सेना द्वारा घेर लिया गया था और बादमें भीषण युद्धके पश्चात् गिरफ्तार कर लिया गया। बंदा और उसके अनुयायियोंको मुगल दिल्ली ले गये, जहाँ उन्हें घोर यातनाएँ देकर मार डाला गया।

गुर्जर–एक जनजाति, जिसके बारेमें विश्वास किया जाता है कि ये लोग हूणोंके साथ भारत आये। छठी शताब्दीके बाद इन्होंने भारतीय इतिहासमें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। सातवीं शताब्दीमें इनका उल्लेख बाणकृत हर्षचरित, ह्वेनसांगके यात्रा-विवरण और पुलकेशीके ऐहोल शिलालेखमें

आया है। इन्होंने पंजाब, मारवाड़ और भड़ौंचमें अपनी रियासतें कायम कीं। इनकी कई शाखाएँ थीं, जिनमें गुर्जर प्रतिहारोंने ८वीं शताब्दी ई० में भारतीय इतिहासमें बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की।

गुर्जर प्रतिहार वंश--की स्थापना नागभट्ट नामक एक सामंतने ७२५ ई०में की। उसने रामके भाई लक्ष्मणको अपना पूर्वज बताते हुए अपने वंशको सूर्यवंशकी शाखा प्रसिद्ध किया। वह राजपूतोंकी प्रतिहार शाखाका शासक था। उसके राज्यकी स्थापना गुजरातमें हुई, अतएव उसके वंशका नाम 'गुर्जर प्रतिहार' पड़ा। लेकिन पश्चिमी विद्वानोंका कहना है कि जो गुर्जर लोग आरम्भिक हूणोंके साथ आये थे, उन्हींकी शाखा प्रतिहार थे। इसीलिए यह वंश 'गुर्जर प्रतिहार' कहा जाने लगा। कुछ भी हो, नागभट्ट प्रथम बड़ा वीर था। उसने सिंधकी ओरसे होनेवाले अरबोंके आक्रमणका सफलतापूर्वक सामना किया। साथ ही दक्षिणके चालुक्यों और राष्ट्रकूटोंके आक्रमणोंका भी प्रतिरोध किया और अपनी स्वतंत्रताको कायम रखा। नागभट्टके भतीजेका पुत्र वत्सराज इस वंशका पहला शासक था जिसने सम्राट्की पदवी धारण की, यद्यपि उसने राष्ट्रकूट राजा ध्रुवसे बुरी तरह हार खायी। वत्सराजके पुत्र नागभट्ट द्वितीयने ८१६ ई०के लगभग गंगाकी घाटीपर हमला किया, और कन्नौजपर अधिकार कर लिया। वहाँके राजाको गद्दीसे उतार दिया और वह अपनी राजधानी कन्नौज ले आया। यद्यपि नागभट्ट द्वितीय भी राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीय (दे०)) से पराजित हुआ, तथापि नागभट्टके वंशज कन्नौज तथा आसपासके क्षेत्रोंपर १०१८–१९ ई० तक शासन करते रहे, जबकि महमूद गजनवीने कन्नौजपर कब्जा करके प्रतिहार राजाको बाड़ी भाग जानेके लिए विवश किया। इस वंशका सबसे प्रतापी राजा भोज प्रथम था, जो मिहिरभोजके नामसे भी जाना जाता है और जो नागभट्ट द्वितीयका पौत्र था। भोज प्रथमने (लगभग ८३६–८६ ई०) ५० वर्ष तक शासन किया और प्रतिहार साम्राज्यका विस्तार पूर्वमें उत्तरी बंगालसे पश्चिममें सतलज तक हो गया। अरब व्यापारी सुलेमान इसी राजा भोजके समयमें भारत आया था। उसने अपने यात्रा-विवरणमें राजाकी सैनिक शक्ति और सुव्यवस्थित शासनकी बड़ी प्रशंसा की है। अगला सम्राट् महेन्द्रपाल था, जो 'कर्पूरमंजरी' नाटकके रचयिता महाकवि राजशेखर का शिष्य और संरक्षक था। महेन्द्रका पुत्र महिपाल भी राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीय (दे०)से बुरी तरह पराजित हुआ। राष्ट्रकूटोंने कन्नौजपर कब्जा कर लिया, लेकिन शीघ्र ही महिपालने पुनः उसे हथिया लिया। परन्तु महिपालके समयमें ही गुर्जर-प्रतिहार राज्यका पतन होने लगा। उसके बाद के राजाओं—भोज द्वितीय, विनायकपाल, महेन्द्रपाल द्वितीय, देवपाल, महिपाल द्वितीय और विजयपालने जैसे-तैसे १०१९ ई० तक अपने राज्यको कायम रखा। महमूद गजनवीके हमलेके समय कन्नौजका शासक राज्यपाल था। राज्यपाल बिना लड़े भाग खड़ा हुआ। बादमें उसने महमूदकी अधीनता स्वीकार कर ली। इससे आसपासके राजपूत राजा बहुत नाराज हुए। महमूद गजनवीके लौट जानेपर कालिंजरके चन्देल राजा गण्डके नेतृत्वमें राजपूत राजाओंने कन्नौजके राज्यपालको पराजित कर मार डाला और उसके स्थानपर त्रिलोचनपालको गद्दीपर बैठाया। महमूदके दुबारा आक्रमण करनेपर कन्नौज फिर उसके अधीन हो गया। त्रिलोचनपाल भागकर बाड़ीमें शासन करने लगा, उसकी हैसियत स्थानीय सामन्त जैसी रह गयी। कन्नौजमें गहड़वाल अथवा राठौर वंशका उद्भव होनेपर उसने ११वीं शताब्दीके द्वितीय चतुर्थांशमें बाड़ीके गुर्जर-प्रतिहार वंशको सदाके लिए उखाड़ फेंका। गुर्जर प्रतिहार वंशके आंतरिक प्रशासनके बारेमें कुछ भी पता नहीं है, लेकिन इतिहासमें इस वंशका मुख्य योगदान यह है कि इसने ७१२ ई०में सिंध विजय करनेवाले अरबोंको आगे नहीं बढ़ने दिया।

गुलबदन बेगम—प्रथम मुगल बादशाह बाबरकी पुत्री। वह प्रतिभाशाली महिला थी, जिसने अपने भाई बादशाह हुमायूं (१५३०–५६)के जमानेका विवरण इकट्ठा कर 'हुमायूंनामा' नामक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तकमें उस जमानेके भारतकी आर्थिक दशाका महत्त्वपूर्ण विवरण प्राप्त होता है।

गुलबर्गा (अथवा कुलबर्गा)—दक्षिणके बहमनी वंशके संस्थापक सुल्तान अलाउद्दीनने इसे १३४७ ई० में अपनी राजधानी बनाया। उसने इसका नाम एहसानाबाद रखा। १४२५ ई० तक यह इस राज्यकी राजधानी रहा, जबकि ९वें सुल्तान (१४२२–३६)ने इसे त्याग कर बीदरको राजधानी बनाया। बहमनी सुल्तानों और उनके दरबारियोंने गुलबर्गामें बहुत इमारतें बनवायी थीं। लेकिन ये इमारतें इतनी बड़ी और कमजोर थीं कि अब उनके ध्वंसावशेष ही देखे जा सकते हैं।

गुलाबसिंह, कश्मीरका महाराज—पंजाबके सिख शासक महाराज रणजीतसिंह (दे०)के यहाँ आरम्भमें घुड़सवारकी हैसियतसे नियुक्त। गुलाबसिंहकी सेवाओंसे प्रसन्न होकर रणजीतसिंहने उसे जम्मूकी जागीर दे दी, जिससे गुलाबसिंहने अपना प्रभुत्व लद्दाख तक बढ़ा लिया। १८३९ ई० में

महाराज रणजीतसिंहकी मृत्यु हो गयी, तब खालसा (दे०)ने गुलाबसिंहको भी एक मंत्री चुना। १८४६ ई० में अंग्रेजों और सिखोंमें सुबदाहानका युद्ध (दे०) हुआ। गुलाबसिंहने चतुराईसे विजयी अंग्रेजों और सिखोंके बीच लाहौरकी संधि (१८४६) करा दी, जिसके अनुसार सिखोंने कश्मीर और संलग्न इलाका अंग्रेजोंको सौंप दिया। बादमें अंग्रेजोंने कश्मीर और संलग्न इलाकेको एक लाख पौंडके बदले गुलाबसिंहके हाथ बेच दिया और उसे वहाँका राजा स्वीकार कर लिया। गुलाबसिंहने कश्मीरमें डोगरा वंशके राज्यकी स्थापना की। गुलाबसिंह और अंग्रेजोंके बीच बहुत अच्छे सम्बन्ध रहे। उसकी मृत्यु १८५७ ई० में हुई। डोगरा वंशका शासन १९४८ ई० तक रहा। इसके बाद यह राज्य भारतमें विलीन हो गया।

गुलाम कादिर—रुहेला सरदार नजीबुद्दौला (दे०)का पौत्र, जो १७६१ से १७७० ई० तक अहमदशाह अब्दालीकी सदारतमें रहा तथा बादमें मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय (१७५९–१८०६)के सहायककी हैसियतसे व्यवहारतः दिल्लीपर शासन करता रहा। १७८७ ई० में कादिरने लूटपाट करनेकी गरजसे फिर दिल्लीपर कब्जा किया, लेकिन इसके पूर्व अब्दालीकी लूटमारसे शाही खजाना खाली हो चुका था, अतएव कादिरको कुछ भी नहीं प्राप्त हुआ। इसी निराशासे खीझकर उसने शाहआलमको अंधा बना दिया। महादजी शिन्देने कादिरको पराजित कर मार डाला। इसके बाद वह व्यवहारतः मुगल बादशाहका संरक्षक बन गया।

गुलाम वंश—दिल्लीमें कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा १२०६ ई० में स्थापित। यह वंश १२९० ई० तक शासन करता रहा। इसका नाम 'गुलाम वंश' इस कारण पड़ा कि इसका संस्थापक और उसके इल्तुतमिश और बलबन जैसे महान् उत्तराधिकारी प्रारम्भमें गुलाम अथवा दास थे और बादमें वे दिल्लीका सिंहासन प्राप्त करनेमें समर्थ हुए। कुतुबुद्दीन (१२०६–१० ई०) मूलतः शहाबुद्दीन मोहम्मद गोरीका तुर्क दास था और ११९२ ई० के तराइनके युद्धमें विजय प्राप्त करनेमें उसने अपने स्वामीकी विशेष सहायता की। उसने अपने स्वामीकी ओरसे दिल्लीपर अधिकार कर लिया और मुसलमानोंकी सल्तनत पश्चिममें गुजरात तथा पूर्वमें बिहार और बंगाल तक, १२०६ ई० में गोरीकी मृत्युके पूर्व ही, विस्तृत कर दी। शहाबुद्दीनने १२०३ ई० में उसे दासतासे मुक्त कर सुल्तानकी उपाधिसे विभूषित किया। इस प्रकार स्वभावतः वह अपने स्वामीके भारतीय साम्राज्यका उत्तराधिकारी और दिल्लीके गुलाम वंशका संस्थापक बन गया। उसने १२१० ई० में अपनी मृत्युके समय तक राज्य किया। उसका पुत्र और उत्तराधिकारी आरामशाह था, जिसने केवल एक वर्ष राज्य किया और बादमें १२११ ई०में उसके बहनोई इल्तुतमिशने उसे सिंहासनसे हटा दिया। इल्तुतमिश भी कुशल प्रशासक था और उसने १२३६ ई० में अपनी मृत्यु तक राज्य किया। उसका उत्तराधिकारी, उसका पुत्र रुक्नुद्दीन था, जो घोर निकम्मा तथा दुराचारी था और उसे केवल कुछ महीनोंके शासनके उपरान्त गद्दीसे उतारकर उसकी बहिन रजिय्यतउद्दीन, उपनाम रजिया सुल्तानाको १२३७ ई०में सिंहासनासीन किया गया। रजिया कुशल शासक सिद्ध हुई, किन्तु स्त्री होना ही उसके विरोधका कारण हुआ और ३ वर्षोंके शासनके उपरान्त १२४० ई०में उसे गद्दीसे उतार दिया गया। उसका भाई बहराम उसका उत्तराधिकारी हुआ और उसने १२४२ ई० तक राज्य किया, जब उसकी हत्या कर दी गयी। उसके उपरान्त इल्तुतमिशका पौत्र मसूद शाह उत्तराधिकारी हुआ, किन्तु वह इतना विलासप्रिय और अत्याचारी शासक सिद्ध हुआ कि १२४६ ई०में उसे गद्दीसे उतारकर इल्तुतमिशके अन्य पुत्र नासिरुद्दीनको शासक बनाया गया। सुल्तान नासिरुद्दीनमें विलासप्रियता आदि दुर्गुण न थे। वह शांत स्वभावका और विद्याप्रेमी व्यक्ति था। साथ ही उसे बलबन सरीखे कर्त्तव्यनिष्ठ एक ऐसे व्यक्तिका सहयोग प्राप्त था, जो इल्तुतमिशके प्रथम चालीस गुलामोंमेंसे एक और सुल्तानका श्वसुर भी था। उसने २० वर्षों तक (१२४६–१२६६ ई०) शासन किया। उसके उपरांत उसका श्वसुर बलबन सिंहासनासीन हुआ, जो बड़ा ही कठोर शासक था। उसने इल्तुतमिशके कालसे होनेवाले मंगोल आक्रमणोंसे देशको मुक्त किया, सभी हिन्दू और मुस्लिम विद्रोहोंका दमन किया और दरबार तथा समस्त राज्यमें शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित की। उसने बंगालके तुग़रिल खाँ (दे०)के विद्रोहका दमन करके १२८६ ई० अथवा अपनी मृत्युपर्यंत राज्य किया। इसके एक वर्ष पूर्व ही उसके प्रिय पुत्र शाहजादा मुहम्मदकी मृत्यु पंजाबमें मंगोल आक्रामकोंके युद्धके बीच हो चुकी थी। उसके द्वितीय पुत्र बुगरा खाँने, जिसे उसने बंगालका सूबेदार नियुक्त किया था, दिल्ली आकर अपने पिताके शासनभारको सँभालना अस्वीकार कर दिया। ऐसी परिस्थितिमें बुगरा खाँके पुत्र कैकोबाद (दे०) को १२८६ ई०में सुल्तान घोषित किया गया। किन्तु वह इतना शराबी निकला कि दरबारके अमीरोंने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और १२९० ई०में उसका वध कर डाला। इस प्रकार

गुलाम वंशका दुःखमय अन्त हुआ। गुलाम वंशके शासकोंने प्रजाके हितोंपर अधिक ध्यान न दिया और प्रशासनकी अपेक्षा भोग-विलासोंमें ही उनका अधिक झुकाव रहा। फिर भी वास्तुकलाके क्षेत्रमें उनकी कुछ उल्लेखनीय कृतियाँ शेष हैं, जिनमें कुतुबमीनार (दे०) अपनी भव्यताके कारण दर्शनीय है। इस वंशके शासकोंने मिनहाजुद्दीन सिराज और अमीर खुसरो जैसे विद्वानोंको संरक्षण प्रदान किया। मिनहाजुद्दीन सिराजने 'तबकाते-नासिरी' (दे०) नामक ग्रन्थकी रचना की है।

गुलाम हुसेनखाँ तबत खाँ, सैयद—१८वीं शताब्दीका प्रसिद्ध इतिहासकार। वह बंगालके नवाब अलीवर्दी खाँ (दे०) का चचेरा भाई लगता था। वह मुगल बादशाहका मीर-मुंशी और बंगालके नवाबके यहाँ नियुक्त था। बादमें उसने कलकत्तामें नवाब मीर कासिम (दे०)का प्रतिनिधित्व किया। मीर कासिमके पतनके पश्चात् उसने ईस्ट इंडिया कम्पनीमें नौकरी कर ली। वह उच्चकोटिका इतिहासकार था। उसकी पुस्तक 'सियारुल मुतखरीन'में मुगल वंशके पतन तथा पिछले सात मुगल बादशाहोंके शासनकालके संबंधमें आधिकारिक तथा विश्वस्त विवरण मिलता है।

गुहा वास्तु—भारतीय प्राचीन वास्तुकलाका एक बहुत ही सुन्दर नमूना। अशोकके शासनकालसे गुहाओंका उपयोग आवासके रूपमें होने लगा। गयाके निकट बराबर (दे०) पहाड़ीपर ऐसी अनेक गुफाएँ विद्यमान हैं, जिन्हें सम्राट् अशोकने आवास-योग्य बनाकर आजीवकोंको दे दिया था। अशोककालीन गुहाएँ सादे कमरोंके रूपमें होती थीं, लेकिन बादमें उन्हें आवास एवं उपासनागृह के रूपमें स्तम्भों एवं मूर्तियोंसे अलंकृत किया जाने लगा। यह कार्य विशेष रूपसे बौद्धों द्वारा किया गया। भारतके विभिन्न भागोंमें सैकड़ों गुहाएँ बिखरी पड़ी हैं। इनमें जो गुहाएँ बौद्ध बिहारोंके रूपमें प्रयुक्त होती थीं, वे सादी होती थीं। उनके बीचोबीच एक विशाल मंडप तथा किनारे-किनारे छोटी-छोटी कोठरियाँ होती थीं। पूजाके लिए प्रयुक्त गुहाएँ 'चैत्यशाला' कहलाती थीं, जो सुन्दर कला-कृतियाँ होती थीं। चैत्यमें एक लम्बा आयताकार मंडप होता था, जिसका अंतिम भाग गजपृष्ठाकार होता था। स्तम्भोंकी दो लम्बी पंक्तियाँ इस मंडपको मुख्यकक्षा और दो पार्श्व-बीथिकाओंमें विभक्त कर देती थीं। गजपृष्ठमें एक स्तूप होता था। द्वारमुख खूब अलंकृत होता था। उसमें तीन दरवाजे होते थे। बीचका द्वार मध्यवर्ती कक्षमें प्रवेशके लिए तथा अन्य दो द्वार पार्श्वबीथियोंके लिए होते थे। चैत्यके ठीक सामने द्वारमुखके ऊपर अश्वपादत्त (घोड़ेकी नाल) के आकारका चैत्यगवाक्ष होता था। ऐसी अनेक गुहाएँ महाराष्ट्रके नासिक, भाजा, भिलसा, कार्ले और अन्य स्थानोंपर पायी गयी हैं। कार्लेकी गुहाएँ सर्वोत्कृष्ट मानी जाती हैं। इनका निर्माण ईसापूर्व २०० से ईसाबाद ३२० की अवधिमें हुआ था। (**स्मिथ कृत 'हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट इन इंडिया एण्ड सीलोन'**)।

गूजर—गुर्जर लोगोंकी एक शाखा। ऐसा विश्वास किया जाता है कि शकों और हूणोंके साथ जो और विदेशी आये थे, वे यहाँ बस गये और उन्हें हिन्दू बना लिया गया।

गृहवर्मा मौखरि—कन्नौजके मौखरि राजा अवन्तिवर्माका पुत्र। वह छठीं शताब्दी ईसवीके अन्तमें गद्दीपर बैठा और उसने थानेश्वरके राजा प्रभाकरवर्धनकी पुत्री राज्यश्री-से विवाह किया। किन्तु ६०५ ई० में मालवाके राजाने (जो कदाचित् देवगुप्त था) कन्नौजपर हमला कर दिया और गृहवर्माको पराजित कर मार डाला। राज्यश्रीको कन्नौजमें ही कैदमें डाल दिया गया। इस प्रकार मौखरि वंशका अंत हो गया।

गैरवाज—एक तकनीकी शब्द, जो सुल्तान फीरोजशाह तुगलक (१३५१—८८ ई०)की सेनामें अनियमित सिपाहियोंके लिए प्रयुक्त होता था। इन लोगोंको सीधे शाही खजानेसे वेतन मिलता था।

गोंड़—एक आदिवासी जाति, जो आधुनिक मध्यप्रदेशके छतरपुर इलाकेमें निवास करती थी। बादमें इस जातिने लूटपाटका काम छोड़कर युद्धोंमें लड़नेका व्यवसाय शुरू किया। कालांतरमें इन्हें राजपूत माना जाने लगा। जेजाकभुक्तिके चन्देल राजा (दे०) सम्भवतः मूलरूपसे गोंड़ ही थे।

गोंडवाना—गोंडोंका राज्य, जो वर्तमान मध्यप्रदेशके उत्तरी भागमें था। उसे गढ़कटंगा भी कहते थे। अकबरने १५६४ ई०में इसपर विजय प्राप्त की और अपने राज्यमें मिला लिया (देखिये, रानी दुर्गावती)।

गोण्डोफर्नीज (गोण्डोफारेंस)—भारतीय पार्थियन राजा, जिसने २० से ४८ ई० तक एक बड़े साम्राज्यपर शासन किया, जिसमें कंदहार, काबुल और तक्षशिला भी शामिल थे। एक किंवदन्तीके अनुसार ईसामसीहके शिष्य सेण्ट टामस इसीके शासनकालमें यहाँ आये, और यहाँ शहीद हुए थे।

गोकुला—१७वीं शताब्दीमें उत्पन्न, उत्तर प्रदेशके मथुरा क्षेत्र (व्रजमंडल)का जाट नेता। वह तिलपतका जमींदार था, उसने मुगल बादशाह औरंगजेबके शासनके विरुद्ध किसानोंके विद्रोहका नेतृत्व किया और असाधारण साहस

और वीरताका परिचय दिया। १६६६ ई० में उसने मथुराके अत्याचारी मुगल फौजदारपर हमला कर उसे मार डाला। इससे सारे जिलेमें अशांति उत्पन्न हो गयी। गोकुलाके विरुद्ध मुगल सेना भेजी गयी, जिसने विद्रोहियोंका दमन किया। गोकुलाकी पराजय हुई और वह मार डाला गया। उसके परिवारके लोगोंको जबरदस्ती मुसलमान बना लिया गया। लेकिन गोकुलाका बलिदान विफल नहीं गया। उसके उदाहरणने जाटोंमें अदम्य स्फूर्ति और प्रेरणा भर दी, और उन्होंने औरंगजेबकी असह्य नीतियोंका लम्बे अरसे तक इतना जबरदस्त प्रतिरोध किया कि मुगल साम्राज्य अंदरसे जर्जर हो गया। १६९१ ई०में जाटोंने औरंगजेबके अत्याचारोंका प्रतिशोध लेनेके लिए अकबरके मकबरे (सिकन्दरा)को बरबाद कर दिया और अकबरकी हड्डियाँ कब्रसे निकालकर जला दीं।

गोखले, गोपालकृष्ण (१८६६-१९१५)—भारतके महान् राष्ट्रवादी नेता। वे कोल्हापुरके एक मराठा ब्राह्मण परिवारमें पैदा हुए थे। उन्होंने फर्गुसन कालेज पूनामें इतिहास और अर्थशास्त्रके प्रोफेसरकी हैसियतसे जीवन आरंभ किया और १९०२ ई० तक वे इस पदपर रहे। आरंभसे ही वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेससे संबंधित रहे। कुछ दिनों तक वे इसके संयुक्त-मंत्री रहे, १९०५ ई०के अधिवेशनमें इसके अध्यक्ष बने। १९०२ ई०में वे बम्बई विधान परिषदके सदस्य चुने गये, और तत्पश्चात् वे वाइसराय द्वारा केन्द्रीय विधान परिषद्में गैर-सरकारी सदस्योंका प्रतिनिधित्व करनेके लिए चुने गये। १९०५ ई०में उन्होंने पूनामें 'सर्वेण्ट्स आफ इंडिया सोसायटी' (भारत सेवक समाज)की स्थापना की, जिसके सदस्य आजीवन निर्धन रहने और निस्स्वार्थ भावसे देशकी सेवा करनेका व्रत लेते थे। १९१० ई०में जब केन्द्रीय व्यवस्थापिका परिषद्का विस्तार हुआ तो गोखले उसके एक प्रमुख नेता गिने जाते थे और सरकारके प्रभावशाली आलोचक थे। सरकारकी वित्तीय नीतियोंकी बखिया उधेड़नेमें उन्हें विशेष दक्षता प्राप्त थी और वार्षिक बजटपर विवादके दौरान उनकी असाधारण पांडित्यपूर्ण वक्तृताएँ सुनने लायक होती थीं। उन्होंने अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा लागू करनेके लिए एक विधेयक प्रस्तुत किया जो सरकार द्वारा विरोध किये जानेके कारण अस्वीकृत हो गया। १९१२—१५ ई०में वे इण्डियन पब्लिक सर्विस कमीशनके सदस्य रहे। इस हैसियतसे उन्होंने सबसे बड़ी देश-सेवा यह की कि कमीशनकी सिफारिशपर सरकारी नौकरियोंमें भारतीयोंकी संख्या काफी बढ़ा दी गयी। १९१५ ई०में उनकी मृत्युसे देशमें संविधानवादी दलकी शक्तिका भारी ह्रास हुआ। असहयोग आंदोलनके युगके पहले पुरानी कांग्रेसके वे सबसे श्रेष्ठ और महान् नेता गिने जाते थे। (**आर० पी० परांजपे लिखित 'गोपालकृष्ण गोखले' और एस० शास्त्री द्वारा लिखित 'गोपालकृष्ण गोखलेका जीवन'**)।

गोखले, सेनापति—पेशवा बाजीराव द्वितीय (१७९६—१८१८ ई०)का सेनानायक। उसने तृतीय मराठा-युद्धमें पेशवाकी सेनाओंका नेतृत्व किया था, किन्तु पराजित हो गया तथा आष्ठीके युद्ध (१८१८ ई०)में मारा गया।

गोगुण्डाका युद्ध—मुगल सम्राट् अकबर तथा मेवाड़के राणा प्रताप सिंह (दे०)के बीच हुआ। यह युद्ध गोगुण्डाके निकट हल्दीघाटीमें लड़ा गया, अतएव इसे हल्दीघाटीका युद्ध भी कहते हैं। इस युद्धमें मुगल सेनाका नेतृत्व राजा मानसिंहने किया। राणा और उनकी सेनाने बड़ी बहादुरीसे युद्ध किया तो भी वे पराजित हो गये। राणाको भागना पड़ा और अपनी मृत्यु (१५९७) पर्यन्त वे अकबरके विरुद्ध लड़ते रहे।

गोडर्ड कर्नल (१७४०-८३)—जनरल कूटेके अधीन मद्रासमें १७५९ ई०में सैनिक-सेवा आरंभ की और अनेक युद्धोंमें भाग लिया, जिनके फलस्वरूप १७६१ ई०में पांडिचेरीका पतन हो गया। वह १७७८ ई० तक अनेक सैनिक पदोंपर रहा। जब अंग्रेजों तथा मराठोंके बीच पहला युद्ध हुआ, उसने वारेन हेस्टिंग्स (दे०)के आदेशसे सेना लेकर कलकत्तासे बम्बईकी ओर प्रयाण किया। उसने महू और अहमदाबाद छीन लिया, महादजी शिन्देको हराया, १७८० ई०में वसईपर अधिकार कर लिया और पूनापर चढ़ाई की, किन्तु पीछे हटना पड़ा। १७८२ ई०में सालबाईकी संधि होनेपर जब मराठा-युद्ध समाप्त हुआ, गोडर्डको बम्बईमें ब्रिटिश सेनाका प्रधान सेनाध्यक्ष बना दिया गया। लेकिन स्वास्थ्य अच्छा न होनेके कारण वह शीघ्र अवकाशपर चला गया। जब वह १७८३ ई०में समुद्रके रास्ते इंगलैण्ड जा रहा था, रास्तेमें जहाजपर ही मर गया।

गोडोलफिन, अर्ल आफ—इंग्लैण्डकी महारानी ऐन (१७०२—१४)का प्रधान-मंत्री, वह १७०२से १७०८ ई० तक इस पदपर रहा। उसने १६०० ई०में स्थापित पुरानी ईस्ट इंडिया कम्पनी तथा १६९८ ई०में स्थापित नयी कम्पनीके बीच उठे विवादमें पंच बनकर निर्णय दिया। इस निर्णयके फलस्वरूप दोनों कम्पनियाँ एक दूसरेमें मिल गयीं और उनका नामकरण "युनाइटेड कम्पनी आफ मर्चेण्ट्स आफ इंग्लैण्ड ट्रेडिंग टू दि ईस्ट इंडीज" किया गया। जनतामें उसका नाम 'ईस्ट इंडिया कंपनी' ही प्रचलित रहा।

गोदावरी–दक्षिण भारतमें पश्चिमसे पूर्वकी ओर बहनेवाली ८०० मील लम्बी नदी, जो बंगालकी खाड़ीमें मसुलीपट्टमके निकट गिरती है। यह भारतकी सात पवित्र नदियोंमेंसे एक गिनी जाती है।

गोदेहू–फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनीका डाइरेक्टर। कम्पनी-ने १७५४ ई०में उसे डूप्ले (दे०)के स्थानपर भेजा और भारतमें फ्रांसीसियोंकी स्थितिकी जाँच करनेका आदेश दिया। यहाँ आनेके बाद गोदेहूने, जिसे डूप्लेने कोई आपत्ति किये बिना कार्यभार सौंप दिया था, अंग्रेजोंके साथ युद्ध बंद कर दिया और उनसे जनवरी १७५५ ई०में अस्थायी संधि कर ली। इस संधिके द्वारा अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंने देशी राजाओंके विवादमें हस्तक्षेप न करनेका निश्चय किया तथा दोनोंके द्वारा अधिकृत कुछ क्षेत्रोंको मान्यता प्रदान कर दी। इस संधिपर दोनों कम्पनियोंको स्वीकृति देना शेष था, तभी ब्रिटेन और फ्रांसके बीच सप्तवर्षीय युद्ध छिड़ गया। फलतः भारतमें भी अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंके बीच पुनः युद्ध छिड़ गया।

गोपचन्द्र–गुप्त साम्राज्यके पतनके समय छठीं शताब्दीके पूर्वार्धके लगभग स्वतंत्र वंग राज्य (जिसमें वर्तमान बंगाल-का पूर्वी, दक्षिणी तथा पश्चिमी भाग शामिल था)के आरंभिक तीन शासकोंमेंसे एक। अन्य दोके नाम धर्मादित्य तथा समाचारदेव थे। गोचपन्द्रका नाम कुछ दानपत्रोंमें मिलता है। उसके नाम की कुछ स्वर्णमुद्राएँ भी पायी गयी हैं। उसके पूर्वजों अथवा वंशजोंके बारेमें कुछ भी ज्ञात नहीं है।

गोपाल प्रथम–बंगाल और बिहारपर लगभग चार शताब्दी तक शासन करनेवाले पाल वंशका संस्थापक। उसके पिताका नाम वप्यट और पितामहका नाम दयितविष्णु था। दोनोंका सम्बन्ध सम्भवतः किसी राजकुलसे नहीं था। आठवीं शताब्दीके मध्य बंगाल और बिहारमें अराजकता उत्पन्न होनेपर लोगोंने गोपाल (प्रथम) को राजा चुना। गोपाल (प्रथम)का शासन लगभग ७५०से ७७० ई० तक चला। उसने कहाँ-कहाँ विजय प्राप्त की, यह ज्ञात नहीं। लेकिन उसके द्वारा संस्थापित पाल वंशने दीर्घकाल तक शासन किया। इस वंशके अधिकांश राजा बौद्ध थे। १२वीं शताब्दी तक बंगाल-बिहारपर इस वंशके राजाओंका शासन रहा। ११९७ ई०में मुसलमानोंने इसपर विजय प्राप्त की। (हि० ब०, खंड १)

गोपाल द्वितीय–बंगालके पाल वंशका परवर्ती राजा, जो अपने पिता राज्यपालके बाद गद्दीपर बैठा। उसने सम्भवतः ९४०–५७ ई० तक शासन किया। उसके कार्योंके बारेमें कुछ भी ज्ञान नहीं है। (हि० बं०, खंड १)

गोपाल तृतीय–बंगालके पाल वंशका परवर्ती राजा, जो अपने पिता कुमारपालके बाद गद्दीपर बैठा। वह राजा रामपाल (दे०)का पौत्र था। उसके चाचा मदनपालने ११४५ ई०में उसको गद्दीसे उतार दिया। उसके बारेमें भी विस्तृत विवरण ज्ञात नहीं है। (हि० बं०, खंड १)

गोपुरम्–दाक्षिणात्य शैलीके मंदिरोंका एक विशेष शिखरा-कार अंग। खासतौरसे चोल राजाओं (दे०) द्वारा निर्मित मंदिर विशाल गोपुर (उत्तुंग शीर्षवाले द्वार)से मंडित होते थे। कालांतरमें कई-कई मंजिलोंके गोपुरोंका निर्माण किया जाने लगा, जिनकी वास्तु-प्राकृति अत्यंत भव्य होती थी। कुम्भकोणम्का गोपुरम् वास्तुकलाकी दृष्टिसे अत्यन्त भव्य गिना जाता है।

गोबी मरुस्थल–मध्य एशियामें स्थित, जो पूर्वसे पश्चिम १५०० मील लम्बा तथा उत्तरसे दक्षिण ७०० मील चौड़ा है। आजकल यह एक रेगिस्तान है, लेकिन प्राचीनकालमें इस क्षेत्रके बीच-बीचमें समृद्धिशाली भारतीय बस्तियाँ बसी हुई थीं। सर ऑरेल स्टोन द्वारा पुरातात्विक खुदाईमें बौद्ध स्तूपों, बिहारों, बौद्ध एवं हिन्दू देवताओंकी मूर्तियाँ, बहुत-सी पांडुलिपियाँ तथा भारतीय भाषाओं एवं वर्णाक्षरोंमें बहुत से आलेखोंके अवशेष प्राप्त हुए हैं। इन अवशेषोंके बीच घूमते हुए सर औरेलको यह अनुभव होने लगा था कि वे पंजाबके किसी प्राचीन गाँवमें घूम रहे हैं। ७वीं शताब्दीमें सुप्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यु एनसांग इसी गोबी मरूस्थलके रास्तेसे ही भारत आया और फिर चीन वापस गया। उसे इस क्षेत्रमें बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृतिका प्राधान्य दिखाई दिया। ज्यों-ज्यों इस क्षेत्रमें रेगिस्तान बढ़ता गया, त्यों-त्यों यहाँ भारतीय संस्कृतिके केन्द्र विलुप्त होते गये।

गोमटेश्वर–के नामसे प्रसिद्ध मूर्ति मैसूरके गंग वंशीय राजा-के मंत्री चामुण्डराय (दे०) ने ९८३ ई०के लगभग निर्मित करायी थी। यह मूर्ति ५६ फुटसे अधिक ऊँची है और श्रवणबेलगोलाकी एक पहाड़ीपर स्थित है। यह एक काले पत्थरको काटकर बनायी गयी है। वास्तु-कलाकी दृष्टिसे यह मूर्ति विश्वमें अपने ढंगकी अद्वितीय मानी जाती है।

गोरके सुलतान–पूर्वी ईरानी वंशके और आरंभमें गजनीके सुल्तानोंके सामन्त। गजनवी (दे०) वंशके अशक्त हो जानेपर गोरके शासक स्वाधीन होनेका लगातार प्रयास करते रहे और गजनीके सुल्तानोंसे लड़ते रहे। अंतमें ११५१ ई०में अलाउद्दीन हुसेन गोरीने गजनीपर चढ़ाई

करके उसे लूटा और जलाकर खाक कर दिया। इस प्रकार उसने गोरको गजनीसे पूर्णतया स्वाधीन कर सुल्तानकी उपाधि ग्रहण की। यद्यपि उसका पुत्र सैफुद्दीन महमूद गद्दीपर बैठनेके कुछ समय बाद ही गुज्ज तुर्कमानोंसे युद्धमें मारा गया तथापि उसका चचेरा भाई गयासुद्दीन महमूद एक सफल शासक सिद्ध हुआ। उसने ११७३ ई०में गजनीपर कब्जा कर लिया और अपने छोटे भाई शहाबुद्दीन-को वहाँका हाकिम नियुक्त किया, जो मुईजुद्दीन मुहम्मद बिन साम अथवा मुहम्मद गोरी (दे०) के नामसे विख्यात हुआ। गजनीको ही आधार बनाकर शहाबुद्दीनने भारतपर हमले शुरू किये। उसका पहला आक्रमण ११७५ ई०में मुलतानपर हुआ। दूसरे हमलेके दौरान ११९२ ई०में तराइनके युद्धमें उसने पृथ्वीराज चौहानको हराया। इसी हमलेके फलस्वरूप भारतमें मुस्लिम शासनकी स्थापना हुई। १२०३ ई०में सुलतान गयासुद्दीन गोरी मर गया और शहाबुद्दीन गौर, गजनी और उत्तर भारतका शासक बन गया। उसने बहुत थोड़े समय शासन किया। १२०६ ई०में खोकरोंने उसे मार डाला। उसके वंशमें कोई पुरुष उत्तराधिकारी नहीं था, फलतः उसकी मृत्युके बाद गोरी वंशका अन्त हो गया।

गोरखा–मंगोलियन आकृतिके लोग, जो मुख्यतः नेपालमें बसे हुए हैं। इनके दाढ़ी नहीं उगती, शरीरका रंग कुछ पीला होता है, नाक चपटी और गाल फूले होते हैं। ये लोग हिमालयकी ढलानोंपर निवास करते हैं और उच्च-कोटिके योद्धा माने जाते हैं। पहले ये लोग क्षत्रिय राजाओं-की अधीनतामें रहते थे। किंतु १७६८ ई०में क्षत्रिय राजवंशोंकी आपसी कलहसे लाभ उठाकर उन्होंने अपने देशमें गोरखा शासन स्थापित कर लिया। १८१६ ई०में अंग्रेजोंसे पराजित हो जानेपर ब्रिटिश फौजमें नौकरी करने लगे और ब्रिटिश साम्राज्यके प्रसारमें इन्होंने बड़ी सहायता दी। भारतके कथित 'सिपाही-विद्रोह' या गदर (१८५७) को दबानेमें भी गोरखोंने अंग्रेजोंकी मदद की।

गोरखा युद्ध–१८१६ ई०में ब्रिटिश भारतीय सरकार और नेपालके बीच हुआ। उस समय भारतका गवर्नर-जनरल लार्ड हैस्टिंग्स था। १८०१ ई०में ईस्ट इंडिया कम्पनीका कब्जा गोरखपुर जिलेपर हो जानेसे कम्पनीका राज्य नेपालकी सीमा तक पहुँच गया। यह दोनों राज्योंके लिए परेशानीका विषय था। नेपाली अपने राज्यका प्रसार उत्तर की ओर नहीं कर सकते थे, क्योंकि उत्तरमें शक्तिशाली चीन और हिमालय था, अतएव ये लोग दक्षिणकी ओर ही अपने राज्यका प्रसार कर सकते थे। लेकिन दक्षिणमें कम्पनीका राज्य हो जानेसे उनके राज्यके प्रसारमें बाधा उत्पन्न हो गयी। अतएव दोनों पक्षोंमें मनमुटाव रहने लगा। १८१४ ई०में गोरखोंने बस्ती जिले (उत्तर प्रदेश)के उत्तरमें बुटवलके तीन पुलिस थानोंपर, जो कंपनीके अधिकारमें थे, आक्रमण कर दिया, फलतः कम्पनी-ने नेपालके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। प्रथम ब्रिटिश अभियान तो विफल हुआ और अंग्रेज लोग नेपाली राजधानी-पर कब्जा न कर सके। कालंगके किलेपर हमलेके समय अंग्रेज सेनापति जनरल जिलेस्पी मारा गया। जैतककी लड़ाईमें भी अंग्रेजी सेना हार गयी। लेकिन १८१५ ई०में अंग्रेजी अभियानको अधिक सफलता मिली। अंग्रेजोंने अलमोड़ापर, जो उन दिनों नेपालके कब्जेमें था, अधिकार कर लिया और मालौनके किलेमें स्थित गोरखोंको आत्म-समर्पण करनेके लिए बाध्य कर दिया। गोरखोंने सोचा कि अंग्रेजोंसे लड़ना उचित नहीं है, अतएव उन्होंने नवम्बर १८१५ ई०में सुगौलीकी संधि कर ली। लेकिन नेपाल सरकारने संधिकी पुष्टि करनेमें देर की, फलतः ब्रिटिश जनरल आक्टरलोनीने पुनः नेपालपर आक्रमण कर दिया और फरवरी १८१६ ई०में मकदानपुरकी लड़ाईमें गोरखों-को पराजित कर दिया। जब ब्रिटिश भारतीय फौज आगे बढ़ते हुए नेपालकी राजधानीसे केवल ५० मील दूर रह गयी, तो गोरखोंने अंतिम रूपसे हार स्वीकार कर ली और सुगौलीकी संधिके अनुसार गढ़वाल और कुमायूं जिले अंग्रेजोंको दे दिये तथा काठमाण्डूमें अंग्रेज रेजीडेण्ट रखना स्वीकार कर लिया। इसके बाद गोरखा लोगोंके संबंध अंग्रेजोंसे बहुत अच्छे हो गये और वे लोग ब्रिटिश साम्राज्यके प्रति बराबर वफादार रहे।

गोरा–मेवाड़का एक वीर राजपूत, जिसने अपने साथी बादलके साथ सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीका घोर प्रतिरोध किया। जब सुल्तानने मेवाड़पर आक्रमण किया, उस समय नगरके बाहरी फाटकपर गोरा-बादलने डटकर सामना किया। इन दोनोंने अपनी जान दे दी, लेकिन पराजय स्वीकार नहीं की।

गोलकुण्डा–दक्षिण भारतमें हैदराबादके निकट एक किला और ध्वस्त नगर। गोदावरी और कृष्णा नदियोंके बीचका इलाका भी जो बंगालकी खाड़ी तक फैला हुआ था, गोलकुण्डा-के नामसे प्रसिद्ध था। पहले यह वरमंगल (वारंगल)के काकतीय साम्राज्यके अन्तर्गत था, जिसपर बादमें अलाउद्दीन खिलजी (१३१० ई०)ने विजय प्राप्त की। फिर वह एक स्वतंत्र राज्यके रूपमें १४२४–२५ ई० तक बना रहा और बादमें बहमनी सल्तनतमें मिला लिया गया।

बहमनी सल्तनतके पूर्वी भागकी राजधानी वारंगल बनायी गयी । १५१८ ई०में उसका कुतुबशाह नामक तुर्क हाकिम स्वतंत्र सुल्तान बन बैठा और उसने गोलकुण्डाको अपनी राजधानी बनाया । यह राज्य १६८७ ई० तक स्वाधीन रहा, जबकि औरंगजेबने उसपर अधिकार करके उसे अपने साम्राज्यमें मिला लिया । पुराने जमानेमें गोलकुण्डा हीरोंके लिए प्रसिद्ध था । आजकल यह कुतुबशाही सुल्तानों द्वारा निर्मित मस्जिदों तथा मकबरोंके ध्वंसावशेषोंके लिए प्रसिद्ध है ।

गोलमेज सम्मेलन—१९३० से १९३२ ई०के बीच लन्दनमें आयोजित । इस सम्मेलनका आयोजन तत्कालीन वाइसराय लार्ड इर्विनकी ३१ अगस्त १९२९ ई०की उस घोषणाके आधारपर हुआ था, जिसमें उन्होंने साइमन कमीशनकी रिपोर्ट प्रकाशित हो जानेके उपरान्त भारतके नये संविधानकी रचनाके लिए लंदनमें गोलमेज सम्मेलनका प्रस्ताव किया था । साइमन कमीशनके सभी सदस्य अंग्रेज थे, जिससे भारतीयोंमें तीव्र असंतोष उत्पन्न हो गया । इसी असंतोषको दूर करनेके अभिप्रायसे इस सम्मेलनका आयोजन किया गया था । १९२९ ई०में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके लाहौर अधिवेशनमें पंडित जवाहरलाल नेहरूने अध्यक्ष पदसे स्पष्ट घोषणा की थी कि भारतीयोंका लक्ष्य पूर्ण स्वतंत्रता है, और कांग्रेसका गोलमेज सम्मेलनमें भाग लेना व्यर्थ होगा । ६ अप्रैल १९३० ई०को महात्मा गांधीने सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरंभ किया और उसके एक मास उपरान्त ही साइमन कमीशनकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई । भारत सरकारने आर्डिनेंस-राज लागू करके कठोर दमननीतिका आश्रय लिया और महात्मा गांधी सहित कांग्रेसके सभी नेताओंको जेलमें बंद कर दिया । इससे यद्यपि आन्दोलन प्रकट रूपमें तो शांत हो गया, तथापि अप्रत्यक्ष रूपसे उसकी अग्नि सुलगती रही । निरन्तर बढ़ते हुए असन्तोषको दूर करनेके लिए ही नवम्बर १९३१ ई०में लन्दनमें गोलमेज सम्मेलनका आयोजन हुआ, जिसमें भारत और इंग्लैण्डके सभी राजनीतिक दलोंके प्रतिनिधियोंको आमंत्रित किया गया । इस सम्मेलनकी अध्यक्षता इंग्लैण्डके तत्कालीन प्रधानमंत्री रैम्जे मैक्डोनल्डने की और उसके तीन अधिवेशन क्रमशः १६ नवम्बर १९३० से १९ जनवरी १९३१ ई० तक, २ सितम्बरसे २ दिसम्बर १९३१ तक, तथा १७ नवम्बरसे २४ दिसम्बर १९३२ ई० तक हुए । प्रथम अधिवेशनमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने अपना कोई प्रतिनिधि नहीं भेजा था । इस अधिवेशनसे इतना लाभ अवश्य हुआ कि ब्रिटिश सरकारने इस प्रतिबंधके साथ केन्द्र और प्रान्तोंकी विधान सभाओंको शासन संबंधी उत्तरदायित्व सौंपना स्वीकार कर लिया कि केन्द्रीय विधानमंडलका गठन ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्योंके संघके आधारपर हो । द्वितीय अधिवेशनमें महात्मा गांधीने कांग्रेसके एकमात्र प्रतिनिधि बनकर भाग लिया । इसमें मुख्य रूपसे साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वके आधारपर सीटोंके बँटवारेके जटिल प्रश्नपर विचार-विनिर्मय होता रहा । किन्तु इस प्रश्नपर परस्पर मतैक्य न हो सका, क्योंकि मुसलमान प्रतिनिधियोंको ऐसा विश्वास हो गया था कि हिन्दुओंसे समझौता करनेकी अपेक्षा अंग्रेजोंसे उन्हें अधिक सीटें प्राप्त हो सकेंगी । इस गतिरोधका लाभ उठाकर प्रधानमंत्री रैम्जे मैकडोनल्डने सांप्रदायिक निर्णय (दे०) की घोषणा की, जिसमें केवल मान्य अल्पसख्यकोंको ही नहीं, बल्कि हिन्दुओंके दलित वर्गको भी अलग प्रतिनिधित्व देनेकी व्यवस्था थी । महात्मा गांधीने इसका तीव्र विरोध किया और आमरण अनशन आरम्भ कर दिया, जिसके फलस्वरूप कांग्रेस और ब्रिटिश सरकारमें एक समझौता हुआ जो 'पूना समझौता' (दे०)के नामसे विख्यात है । यद्यपि इस समझौतेसे साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी समस्याका कोई संतोषजनक समाधान न हुआ, तथापि इससे अच्छा कोई दूसरा हल न मिलनेके कारण सभी दलोंने इसे मान लिया । गोलमेज सम्मेलनके तीसरे अधिवेशनमें भारतीय संवैधानिक प्रगतिके कुछ सिद्धान्तोंपर सभी लोग सहमत हो गये, जिन्हें एक श्वेतपत्रके रूपमें ब्रिटिश संसदके दोनों सदनोंकी संयुक्त प्रवर समितिके सम्मुख रखा गया । यही श्वेतपत्र आगे चलकर १९३३ ई०के गवर्नमेन्ट आफ इंडिया एक्ट (भारतीय शासन-विधान)का आधार बना ।

गोल्लास—श्वेत हूणोंका नेता, जिसका जिक्र यूनानी यात्री कास्मस इण्डिकोप्लूस्टीजने किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि वह हूण राजा तोरमासाका पुत्र मिहिरगुल था, जिसने छठीं शताब्दीमें गुप्त साम्राज्यपर आक्रमण करके उसकी जड़ें हिला दीं । लेकिन बादमें नृसिंह गुप्त बालादित्य तथा यशोधर्मा (दे०)ने मिलकर ५३३ ई०में उसे पराजित कर दिया । **(मैकगवर्न, पृ० ४१६-१७)**

गोवा—भारतके पश्चिमी तटपर बम्बईसे दक्षिणकी ओर २०० मीलपर स्थित एक महत्त्वपूर्ण द्वीप और बंदरगाह । भारत और पश्चिमी जगतके बीच यह सदैव एक महत्त्वपूर्ण व्यापार-केन्द्र रहा है । १५१० ई०में यह बीजापुरके सुल्तानके अधिकारमें था, तभी अल्बूकर्कके नेतृत्वमें पुर्तगालियोंने इसपर अधिकार कर लिया । मुगलोंने पुर्तगालियोंसे गोवा छीननेका बहुत प्रयत्न किया, किन्तु

सफल न हुए। बादमें १८०६ ई०में नैपोलियनसे युद्धके दौरान अंग्रेजोंने बड़ी आसानीसे गोवापर कब्जा कर लिया, लेकिन वियनाकी संधि (१८१५ ई०)के अन्तर्गत वह पुनः पुर्तगालियोंको लौटा दिया गया। १९६२ ई० तक वह पुर्तगालियोंके अधिकारमें रहा। उसी वर्ष जन-आन्दोलनके बलपर भारत सरकारने उसे चार शताब्दियों-की विदेशी दासतासे मुक्त करके भारतीय गणराज्यमें मिला लिया।

गोविन्द पंडित—एक मराठा अधिकारी जिसे मराठा सेनापति सदाशिवराय भाऊने पानीपतकी तीसरी लड़ाईसे पहले अहमदशाह अब्दालीकी संचार-व्यवस्थाको भंग करनेके लिए नियुक्त किया था। लेकिन अब्दालीने पंडितकी सेना-पर हमला कर उसे पराजित कर दिया। इस विजयसे अब्दालीको रसदपूर्ति अबाध रूपसे मिलने लगी। फलतः पानीपतकी लड़ाई (जनवरी १७६१ ई०)में अब्दालीने मराठोंपर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली।

गोविन्द प्रथम—उड़ीसाके भोई वंशका संस्थापक। इस वंशने १५४२ से १५५९ ई० तक शासन किया। वह पहले उड़ीसाके राजा प्रतापरुद्र (१४९७–१५४०)का मंत्री था। गोविन्द प्रथमने प्रतापरुद्र (दे०)के वंशजोंको निकाल बाहर किया और स्वयम् गद्दीपर बैठ गया। उसने, उसके पुत्रने तथा उसके दो पौत्रोंने कुल १८ वर्ष तक शासन किया। इन लोगोंके बारेमें विस्तारपूर्वक कुछ भी ज्ञात नहीं है, लेकिन अंतिम राजा मुकुन्द हरिचंदको १५५९ ई०में गद्दीसे उतार दिया गया।

गोविन्द प्रथम—दक्षिणके राष्ट्रकूट वंश (दे०)के संस्थापक दन्तिदुर्गका पूर्वज। इसके बारेमें अधिक ज्ञात नहीं है। लेकिन राष्ट्रकूट वंश (दे०)ने ७५३ से ९७३ ई० तक शासन किया था।

गोविन्द द्वितीय—राष्ट्रकूट वंशका आरम्भिक राजा। वह कृष्ण प्रथमका पुत्र था और उसने ७७५–७९ ई० तक शासन किया। उसे उसके भाई ध्रुवने गद्दीसे उतार दिया।

गोविन्द तृतीय—राष्ट्रकूट वंशके राजा ध्रुवका पुत्र, जिसने ७९३ से ८१५ ई० तक शासन किया। उसने उत्तरमें विन्ध्य पर्वतके इस पार मालवा तक तथा दक्षिणमें काँची (काँजीवरम्) तक अपना साम्राज्य फैलाया। उसने अपने भाई इन्द्रराजको लाट (दक्षिण गुजरात)का शासक नियुक्त किया, प्रतिहार राजा वत्सराजको पराजित किया, बंगालके राजा धर्मपाल तथा कन्नौजके राजा चक्रायुधको अपने अधीन किया।

गोविन्द चतुर्थ—राष्ट्रकूट वंशका एक परवर्ती राजा, जिसने ९१८ से ९३४ ई० तक शासन किया। राष्ट्रकूट साम्राज्य-का पतन उससे कुछ पहले ही आरंभ हो गया था, वह इस राजाके कालमें भी जारी रहा। इसके ४० वर्ष बाद तो इस वंशका ही अन्त हो गया।

गोविन्दचंद्र—कन्नौजके गाहड़वाल अथवा गहरवार (दे०) वंशका एक राजा। वह इस वंशके संस्थापक राजा चन्द्रदेव-का पौत्र था, जिसने १११४ से ११५४ ई० तक विशाल साम्राज्यपर शासन किया। इस साम्राज्यमें वर्तमान उत्तर प्रदेशका अधिकांश भाग तथा बिहार शामिल था। वह उदार शासक था, उसने बहुत भूमिदान किया और सिक्के चलाये जो भारतमें अनेक स्थानोंपर पाये गये हैं। उत्तर भारतमें उस समय मुसलमानोंका प्रवेश आरंभ हो गया था। गोविन्दचन्द्रने जनतापर 'तुरुष्क दण्ड' नामक एक विशेष कर लगाया था। यह शायद मुसलमानी आक्रमणका प्रतिरोध करने हेतु धन एकत्र करनेके उद्देश्यसे लगाया गया था।

गोविन्दपुर—पास-पास बसे उन तीन गांवोंमेंसे एक, जिनके स्थानपर कलकत्ता बसाया गया था। अन्य दो गांवोंके नाम सूतानट्टी और कालीकोठा था। कलकत्ताकी नींव जॉब चारनाकने १६९० ई०में रखी थी। ईस्ट इंडिया कम्पनीको इसपर जमींदारी अधिकार १६९८ ई०में प्राप्त हुआ था।

गोशाला—बुद्ध और महावीरका समकालीन, जिसने आजीवक सम्प्रदाय (दे०)की स्थापना की।

गोसाँई—एक शैव सम्प्रदाय, जिसने १९वीं शताब्दीके पूर्वार्ध-में देशमें व्याप्त अशांति और अव्यवस्थाके कारण शस्त्र धारण कर लिया। इन लोगोंने हिम्मत बहादुरके नेतृत्वमें शिन्देकी सेनामें भाग लिया। आसाम (या अन्यत्रके भी कुछ) वैष्णव सत्रोंके प्रधान लोगोंको 'गोसाँई' कहा जाता है।

गोहाटी—ब्रह्मपुत्रके बायें या दक्षिणी तटपर स्थित आसामका सबसे विशाल नगर। इसका इतिहास बहुत पुराना है। यह प्राचीन कामरूप राज्यकी राजधानी थी और उस समय इसका नाम प्राग्ज्योतिषपुर था। आधुनिक गोहाटी नगरके निकट ही नीलाचल पहाड़ीपर कामाख्या देवीका मंदिर स्थित है। नगरका नाम प्राग्ज्योतिषपुरसे बदलकर गोहाटी कब पड़ा, यह ठीक तौरसे नहीं कहा जा सकता, किन्तु ऐसा अनुमान है कि इसका नाम बारहवीं शताब्दीके मध्यमें कामरूपके प्राचीन हिन्दू राज्यके पतनके बाद और सोलहवीं शताब्दीके प्रारंभमें मुगलोंकी विजयके बीच रखा गया। जो हो, इतना निश्चित है १६३७ ई०में मुगल शासकने

जब दक्षिणी आसाममें इस नगरको अपना सदर मुकाम बनाया, तब इसका नाम गुवा-हाटी या गोहाटी था। तीस वर्ष बाद अहोम राजा चक्रध्वज सिंह (१६६३–६९)ने इस नगरको मुगलोंके आधिपत्यसे मुक्त करा लिया और अपने एक प्रतिनिधि (बार फूकन)की नियुक्ति की। किन्तु १६७९ ई०में मुगलोंके सेनानायक मीर जुमलाने इसपर पुनः कब्जा कर लिया। तीन वर्ष बाद १६८२ ई०में अहोम राजा गदाधर सिंह (दे०) (१६८१–९६)ने इसे फिर मुगलोंके हाथसे छीन लिया। १७८६ ई०में अहोम राजा गौरीनाथ सिंह (१७८०–९४)ने गौहाटीको अपनी राजधानी बनाया। १७९३ ई०में कैप्टन वेल्शने, जिनके नेतृत्वमें यहाँ ब्रिटिश कुमुक भेजी गयी थी, इस नगरको ब्रह्मपुत्र महानदके दोनों तटोंपर बसा हुआ एक विशाल और घनी आबादीवाला स्थान पाया। आसामपर अंग्रेजोंका कब्जा हो जानेके बाद शीघ्र ही गौहाटीका महानगरीय स्वरूप समाप्त हो गया, क्योंकि अब नयी राजधानी शिलांग हो गयी। इस समय गौहाटी आसामका प्रमुख व्यापारिक केन्द्र है। यहाँपर एक विश्वविद्यालय भी है।

गौड़–इसका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों, जैसे पाणिनिके सूत्रों, कौटिल्यके अर्थशास्त्र और कुछ पुराणोंमें जनपद और वहाँके निवासियों, दोनोंके लिए हुआ है। इसका आशय पश्चिमी और पश्चिमोत्तर बंगाल क्षेत्र और यहाँके वासी, दोनों ही है। बंग नामका प्रयोग सिर्फ पूर्वी और मध्य बंगालके लिए होता था। समुद्रगुप्तके प्रयाग अभिलेख (३३०–८०)में बंगालको गुप्त साम्राज्यका अंग बताया गया है, किन्तु उसमें गौड़का जिक्र नहीं है। गौड़ राजा गुप्त सम्राटोंके पतनके बाद प्रमुखतामें आये। इसके शासकोंमें गोपचंद्र और समाचारदेवके नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने इस राज्यकी सैनिक-शक्तिका विस्तार किया। सातवीं शताब्दीमें गौड़नरेश शशांकने, जिसकी राजधानी कर्णसुवर्ण (मुर्शिदाबाद) थी, थाण्वीश्वर (थानेसर)के पुष्यमूति वंशके राजाओंसे लम्बा युद्ध किया और उसके दूसरे शासक राज्यवर्धन (दे०)को मार डाला। राज्यवर्धनके भाई और उत्तराधिकारी हर्षवर्धन (दे०)ने इसका बदला लेनेके लिए कामरूप (आसाम)के शासक कुमार भास्करवर्माके साथ मिलकर कमसे कम सन् ६१९ ई० तक शशांकके विरुद्ध युद्ध जारी रखा, किन्तु शशांकने उनकी सेनाओंका तीव्र प्रतिरोध किया। शशांककी मृत्युके बाद उसकी राजधानी कर्णसुवर्णपर कुछ समयके लिए भास्करवर्माका अधिकार हो गया। यह अधिकार कितने अरसे तक रहा, ठीक ठीक पता नहीं चलता। सातवीं शताब्दीके मध्यसे लेकर आठवीं शताब्दीके मध्य तकके सौ वर्ष गौड़ राज्य भारी उथल-पुथल, विदेशी आक्रमणों और अराजकतासे व्याप्त रहा। यह स्थिति ७५० ई०में पाल वंशके राजाओंके सिंहासनारूढ़ होनेपर समाप्त हुई। पाल नरेशोंने गौड़ेश्वरकी उपाधि धारण की। द्वितीय पालनरेश धर्मपाल (लगभग ७५२–८१०) और उसके पुत्र देवपाल (लगभग ८१०–४९)के शासनकालमें गौड़ उत्तरी भारतकी एक प्रमुख शक्ति बन गया। इसके बाद पाल वंशके पतनपर गौड़ भी अवनतिके गर्तमें तबतक गिरता रहा, जबतक वहाँ सेन राजाओंका नया वंश सत्तामें नहीं आया। ११५८ ई०के लगभग बख्तियार खिलजीके पुत्र मलिक इख्तियारुद्दीन मुहम्मदने हमला करके गौड़को सेन शासकोंके हाथसे छीन लिया। मुसलमानोंके आधिपत्यके बाद पृथक् राज्यके रूपमें गौड़का अस्तित्व समाप्त हो गया, किन्तु नगरके रूपमें वह इसी नामसे आगामी तीन शताब्दियों तक प्रांतीय राजधानी बना रहा।

गौड़, नगर–पश्चिमी बंगालके आधुनिक मालदा जिलेमें स्थित। यह सेन राजाओं (११वीं और १२वीं ई० शताब्दी)के शासनकालमें बंगालकी राजधानी था। १२०३ ई०में इसपर मलिक इख्तियारुद्दीन मुहम्मद बख्तियारने कब्जा कर लिया। १२२० ई०में गयासुद्दीन ईवाज़ने इसे बंगालकी राजधानी बनाया। १५३८ ई०में इसे शेरशाहने लूटा और जला दिया। हुमायूंने इसका पुनर्निर्माण कराया। १५७० ई०में सम्राट् अकबरने विशाल फौज भेजकर गौड़पर कब्जा कर लिया। इस कब्जेके बाद शहरमें एक भीषण महामारीका प्रकोप हुआ, जिससे इसकी आबादी बहुत कम हो गयी। जब गंगा नदी अपनी धारा बदलकर शहरसे दूर जा पहुँची, तब इसका पूरी तरहसे पतन हो गया। अब तो यह ध्वंसावशेषोंका ढेर और बीहड़ जंगल है। समृद्धिके दिनोंमें गौड़ नगर साढ़े सात मील लंबे और दो मील चौड़े क्षेत्रमें फैला हुआ था। इसके चारों ओर सुदृढ़ प्राचीर था। इस नगरकी अपनी विशिष्ट स्थापत्य शैली थी। इस शैलीकी प्रमुख विशेषता पत्थरके छोटे किन्तु भारीभरकम खम्भोंपर टिकी ईंटोंकी बनी नुकीली मेहराबें और गुम्बज हैं। गौड़में स्वर्ण मस्जिद (१५२६), छोटी स्वर्ण मस्जिद, लोटन मस्जिद और कदम्म रसूल मस्जिदके अवशेष अब भी विद्यमान हैं। इनमें कदम रसूल मस्जिदके अवशेष काफी अच्छी हालतमें हैं।

गौतम बुद्ध–देखिये, बुद्ध।

गौतमीपुत्र शातकर्णी–सातवाहन वंशका एक प्रसिद्ध राजा, जिसने दूसरी शताब्दी ईसवीके प्रथम चतुर्थांशमें शासन

किया। उसने भूमक द्वारा स्थापित क्षहरात वंशका उन्मूलन कर उसका राज्य अपने राज्यमें मिला लिया। गौतमीपुत्र-के राज्यमें मालवा, काठियावाड़, गुजरात, उत्तरी कोंकण, बरार और गोदावरीसे सींचा जानेवाला समग्र प्रदेश शामिल था। उसने विदेशी शकों, यवनों (ग्रीकों) और पल्हवों (पार्थियनों)की शक्तिका विनाशकर देशके गौरव-का पुनरुद्धार किया। उसने ब्राह्मणों और बौद्धोंको उदारतापूर्वक दान दिये, और वर्णाश्रम धर्मकी मर्यादा फिरसे स्थापित की। उसने सातवाहन वंशका गौरव फिरसे प्रतिष्ठित किया।

गौतमी बालश्री—सातवाहन वंशकी एक विधवा रानी, जिसका उल्लेख नासिक अभिलेखमें मिलता है। अभिलेख-में उसे सत्यनिष्ठ, दानी और धैर्यशाली रानी बताया गया है जो तप, त्याग और आत्मसंयमके साथ जीवन व्यतीत करती थी। वह आदर्श राजर्षिवधू और प्रसिद्ध सातवाहन राजा गौतमीपुत्र शातकर्णीकी माता थी।

ग्यांत्से—तिब्बतका एक व्यापारिक नगर। १९०४ ई०में लार्ड कर्जनने तिब्बतपर चढ़ाईके लिए अपनी सेना भेजी। संधिके अनुसार इस नगरमें ब्रिटिश भारतीय व्यापार मिशन-की स्थापना की गयी।

ग्रान्ट, चार्ल्स (१७४६—१८२३)—ईस्ट इंडिया कम्पनीमें क्लर्ककी हैसियतसे १७६७ ई०में भारतमें नियुक्त, किन्तु पदोन्नति करते-करते १७८१ ई०में वह मालदा (बंगाल) स्थित व्यापारिक कार्यवाह (कामर्शियल रेजीडेंट) बन गया। लार्ड कार्नवालिस उसकी ईमानदारीसे बहुत प्रभा-वित था। फलतः १७८७ ई०में ग्राण्टको व्यापार बोर्डका चौथा सदस्य मनोनीत किया गया। भारतमें वह ईसाई धर्मप्रचारका कट्टर समर्थक था। सेवासे निवृत्त होनेपर वह इंग्लैण्ड वापस गया और १८०२ ई०में ब्रिटिश संसदका सदस्य बनाया गया। १८०५ ई०में ईस्ट इंडिया कम्पनीके कोर्ट आफ डायरेक्टर्सका अध्यक्ष बना। इसके बाद १८०९ और १८१५ में भी इस पदपर चुना गया। ब्रिटिश संसदमें वह भारतीय मामलोंकी बहसमें प्रमुख भाग लेता था। उसने भारतमें शिक्षा-प्रसार और ईसाई धर्मप्रचारके लिए ब्रिटिश संसदसे वार्षिक अनुदान स्वीकार कराया।

ग्रान्ट, जेम्स—बंगालमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें १७८४ से १७८९ ई० तक रहा। उसने प्रान्तमें राजस्वकी व्यवस्थाकी देखरेख की और १७९१ ई०में बंगालकी जमींदारी और भूमि-व्यवस्थापर अपनी विस्तृत रिपोर्ट दी। इस रिपोर्टमें उस कालकी राजस्व-प्रणालीका प्रामाणिक विवरण मिलता है।

ग्राण्ड ट्रंक रोड—शेरशाह (१५४०—४५) (दे०) द्वारा बनवायी गयी। यह सड़क पूर्वी बंगालके सोनारगांवसे पश्चिममें सिंधु नदी तक लगभग १५०० कोस (३००० मील) लम्बी थी। यह अब भी विद्यमान है और कलकत्ता-को अमृतसर (पंजाब)से जोड़ती है।

ग्राहम, जनरल—१८८७ ई०में सिक्किमपर हुए तिब्बतके आक्रमणको विफल करनेवाली ब्रिटिश भारतीय फौजका सेनापति।

ग्रिफिन, एडमिरल—एक ब्रिटिश नौसेनाधिकारी। जब १७४७ ई०में डूप्ले (दे०)के नेतृत्वमें फ्रांसीसियोंने फोर्ट सेण्ट डेविडपर अधिकार करनेकी कोशिश की, तब इस आक्रमणको विफल करनेवाले नौसैनिक बेड़ेका नेतृत्व ग्रिफिनने ही किया था।

ग्लैडस्टन, विलियम इवर्ट (१८०९—९८)—एक प्रसिद्ध ब्रिटिश राजनेता। वह महारानी विक्टोरियाके जमानेमें उदार दलका नेता था और अपने जीवनकालमें चार बार १८६८—७४, १८८०—८५, १८८६ तथा १८९२—९४ ई० में ब्रिटेनका प्रधानमंत्री रहा। उसने भारतीय प्रशासनमें कुछ अंशोंतक उदारताकी नीति अपनायी थी। वह अनुदार दलवालोंकी उस प्रसार-नीतिका विरोधी था, जिसके फलस्वरूप दो बार अफगान-युद्ध हुआ। उसने लार्ड रिपनको भारतमें वाइसराय (१८८०—१८८४) नियुक्त किया था, जिसकी नीतियाँ बहुत लोकप्रिय हुईं। ग्लैडस्टनने द्वितीय अफगान-युद्ध (१८७८—८०)को समाप्त कराया और अमीर अब्दुर्रहमानको मान्यता प्रदान करते हुए अफगानिस्तानके आन्तरिक मामलोंमें कोई हस्तक्षेप न करनेका आदेश दिया। ग्लैडस्टन अपने उदार सिद्धान्तों और आयरलैंडके राष्ट्रवादके प्रति सहानुभूतिके कारण भारतीय जनतामें भी लोकप्रिय हुआ। भारतमें भी वह उदार नीतिका समर्थक समझा जाने लगा।

ग्लौकनिकाई—भारतपर सिकन्दरके आक्रमणके समय यह गण चनाव नदीके पश्चिम, पंजाबके एक भागमें निवास करता था। यह राज्य पुरु (दे०)के राज्यसे मिला हुआ था। इस गण राज्यमें ३७ पुर थे, जिनमेंसे प्रत्येककी जनसंख्या १० हजारसे अधिक थी। पुरु (पोरस) की पराजयके पश्चात् सिकन्दरने इस गणको भी पराजित कर अपने अधीन कर लिया। इस गणका नाम ग्लौसी भी मिलता है। **(काशीप्रसाद जायसवालने इस गणकी पहचान पाणिनिके एक सूत्रमें आये ग्लुचुकायन गणसे की है।—संपादक)**

ग्वायर, सर मारिस लिनफोर्ड–एक विख्यात अंग्रेज विधिवेत्ता, जो भारतीय संघ न्यायालय (दे०)का अध्यक्ष था और १९३७ से १९४३ ई० तक भारतके प्रधान न्यायाधीश पदपर रहा। अवकाशग्रहण करनेके पश्चात् वह दिल्ली विश्वविद्यालयका उपकुलपति हुआ और १९४६ ई० तक इस पदपर रहा। भारतीय संविधानका प्रारूप तैयार करनेमें उसने महत्त्वपूर्ण योगदान किया था।

ग्वालियर–मध्यप्रदेशका एक नगर। पहले इस नामकी देशी रियासत भी थी। यहाँ एक प्रसिद्ध किला नगरके बाहर लगभग ३०० फुट ऊँची पहाड़ीपर बना हुआ है। इसकी दीवारें बहुत ऊँची हैं और बहुत दिनों तक इसे अभेद्य माना जाता रहा। इसे किस राजाने बनवाया, इसका पता नहीं, किन्तु यह निश्चित है कि यह ५२५ ई०के पूर्व बना। ऐसी जनश्रुति प्रचलित है कि जिस सूरज नामक राजाने इस नगरकी स्थापना की, वह कुष्ठ रोगसे पीड़ित था और ग्वालिया नामक एक संतकी कृपासे रोगमुक्त हुआ। नगरका ग्वालियर नाम इसी सन्तके नामपर पड़ा। शिलालेखोंसे पता चलता है कि किलेका आरंभिक नाम गोपगिरि या गोपाद्रि था, जिसे बादमें ग्वालियर कहा जाने लगा। ऐतिहासिक प्रमाणोंके अनुसार हूण सरदार तोरमाण (दे०) तथा उसके पुत्र मिहिरगुल (दे०)ने छठीं शताब्दी ई०में इसपर अधिकार कर लिया। ९वीं शताब्दीमें यह किला कन्नौजके गुर्जर-प्रतिहार राजा भोज (दे०)के अधिकारमें आया। १०२१ ई०में महमूद गजनवीके आक्रमण तक यह राजपूतोंके अधिकारमें रहा। ११९६ ई०में सुलतान कुतुबुद्दीन ऐबक (दे०)ने इसपर अधिकार कर लिया। १२१० ई०में राजपूतोंने इसे पुनः हथिया लिया, लेकिन १२३२ ई०में सुलतान इलतुतमिशने पुनः इसपर कब्जा कर लिया। १३९८ ई०में यह तोमर (तंवर) राजपूतोंके अधिकारमें आया और १५१८ ई० तक रहा। इस वंशका सर्वप्रसिद्ध राजा मानसिंह तोमर (१४८६–१५१७) हुआ है, जिसने इस किलेमें विशाल महल और बड़े-बड़े फाटक बनवाये। उसकी रानी मृगनैनी-के कारण ग्वालियर संगीत विद्याका केन्द्र बना। तानसेन जैसा विख्यात संगीतज्ञ इसी ग्वालियरकी देन है। यहींपर उसकी कब्र बनी हुई है। १५१८ ई०में इब्राहीम लोदी (दे०)ने इस किलेपर कब्जा जमा लिया। सन् १५२६ ई०में बाबर (दे०)ने इसपर अधिकार किया। १५४२ ई०में यह शेरशाह सूरी (दे०)के कब्जेमें आया। लेकिन १५५८ ई०में अकबरने पुनः इसे मुगल सल्तनतमें मिला लिया। मुगल बादशाहोंने इस किलेको मुख्यतः शाही कैदखानेके रूपमें इस्तेमाल किया, जिसमें राजबंदी रखे जाते थे। १७५१ ई०में मराठोंने इसपर कब्जा कर लिया। १७७१ ई०में मराठा सरदार शिन्देने इसे अपनी राजधानी बनाया। १७८१ ई०में अंग्रेजी सेनाने पोफमके नेतृत्वमें इसपर अचानक कब्जा कर लिया, लेकिन बादमें अंग्रेजोंने इसे शिन्देको लौटा दिया। १८५७ ई०के स्वाधीनता संग्राम-में यहांकी फौजोंने विद्रोह किया और शिन्देके शासनको समाप्त कर दिया, लेकिन सर ह्यू रोजके नेतृत्वमें अंग्रेजी फौजने विद्रोहको दबाकर इसपर कब्जा कर लिया। १८८६ ई० तक इसपर अंग्रेज काबिज रहे। बादमें उन्होंने इसे शिन्देको लौटा दिया। १९४७ ई०में भारतके स्वाधीन होनेके बाद यह राज्य भारतीय गणतन्त्रमें विलीन हो गया। इस नगरमें तथा आसपास बहुतसे ऐतिहासिक स्मारक हैं। नगरमें ८ बड़े तालाब तथा ६ बड़े महल हैं। प्राचीन उज्जयिनी, भिलसा (विदिशा), बेसनगर, उदयगिरि तथा बाधकी प्रसिद्ध बौद्ध गुहाओंके अवशेष आज भी इस राज्यमें विद्यमान हैं। चन्देरी, मन्दसौर और गोहदमें भी, जो इसी राज्यके अंग थे, प्राचीन अवशेष पाये जाते हैं।

घ

घसीटी बेगम–बंगालके नवाब अलीवर्दीखां (१७४०–५६) की सबसे बड़ी पुत्री। वह अपने चचेरे भाई नवाजिश मुहम्मदको ब्याही थी। नवाजिशको ढाकाका हाकिम नियुक्त किया गया, जहाँ उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी विधवा घसीटी बेगम मुर्शिदाबाद लौट आयी। राजवल्लभ उसका दीवान तथा हुसेन कुली खां उसका विश्वस्त गुमाश्ता था। अलीवर्दी खांके पश्चात् घसीटी बेगमने अपने भांजे सिराजुद्दौलाको गद्दीपर बैठानेका समर्थन नहीं किया। उसने अपनी दूसरी छोटी बहनके पुत्र शौकतजंगको, जो पूर्णियाका हाकिम था, बंगालका नवाब बनाना चाहा। सिराजने इसी दौरान जब सुना कि घसीटी बेगम और हुसेन कुली खांके बीच अवैध संबंध है, तो वह आगबबूला हो गया और उसने मुर्शिदाबादकी सड़कपर खुलेआम हुसेनकुली खांकी हत्या कर दी। इससे घसीटी बेगम और सिराजके बीच मनमुटाव और बढ़ गया। जब १७५६ ई०में अलीवर्दी खां बहुत बीमार था और उसके जीवित रहनेकी कोई आशा नहीं रही, घसीटी बेगमने राजवल्लभकी सलाहपर मुर्शिदाबाद स्थित नवाबके महलको छोड़ दिया

और नगरके बाहर दक्षिणमें दो मील दूर मोतीझीलपर वह अपने १० हजार अंगरक्षकोंके साथ रहकर सिराजुद्दौला-के विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगी। सिराज गद्दीपर बैठनेके बाद बड़ी चतुराईसे घसीटी बेगमको मोतीझीलसे नवाबके महलमें ले आया। राजवल्लभ घसीटी बेगमका बहुत-सा धन हड़पकर अंग्रेजोंकी शरणमें चला गया, किंतु घसीटी बेगम अब सिराजुद्दौलाके विरुद्ध षड्यंत्रोंमें कोई सक्रिय भाग लेनेकी स्थितिमें नहीं रह गयी थी। १७५६ ई०में सिराजने घसीटी बेगमकी छोटी बहनके पुत्र शौकतजंगको लड़ाईमें हरा दिया और मार डाला। इसके बाद बंगालकी राजनीतिपर घसीटी बेगमका प्रभाव समाप्त हो गया। आज भी मोतीझीलके खंडहर विद्यमान हैं।

घोषा–वैदिक युगकी एक प्रमुख ब्रह्मवादिनी नारी, जिसके नामसे ऋग्वेदमें अनेक सूक्त मिलते हैं।

च

चंगेज खां–जन्म ११६२ ई०में। उसका मूल नाम तामूचिन था। वह मंगोलोंका सरदार था जो बादको चिंगीज़ कागन (चंगेज खाँ)के चीनी नामसे विख्यात हुआ। वह महान् सेनानायक और विजेता था, जिसने चंद वर्षोंके अंदर चीनके विशाल भूभाग और मध्य एशियाके सभी प्रसिद्ध राज्योंपर विजय प्राप्त कर ली थी। इन राज्योंमें बलख, बुखारा और समरकंद तथा हेरात और गजनी शामिल थे। चंगेज खाँने खीवाके बादशाह जलालुद्दीनको हराया जो भागकर पंजाब पहुँचा और उसने दिल्लीके सुल्तान इल्तुतमिश (१२११–३६)से शरण माँगी, मगर इलतुत-मिशने इनकार कर दिया। सुलतान इलतुतमिशके इस बुद्धिमत्तापूर्ण कदमका परिणाम यह हुआ कि चंगेजखाँ, जो वस्तुतः सिन्ध नदी तक चढ़ आया था, भारतकी ओर न बढ़कर दक्षिण-पूर्वी यूरोपकी तरफ मुड़ गया। मृत्युसे पहले (१२२७ ई०) तक चंगेज खाँ ने दक्षिण-पूर्वी यूरोपके अनेक भागोंको रौंदा और कृष्ण सागरमें गिरनेवाली नीपर नदी तक अपनी विजय-वैजयंती फहरायी। चंगेज खाँ सेनानायक और विजेता मात्र ही नहीं, सुयोग्य संगठन-कर्ता और शासक भी था। उसने अपने विशाल साम्राज्यके लिए कानून बनाये और व्यवस्थाकी स्थापना की। उसके वंशजोंने बादको इस्लाम धर्म अपना लिया। भारतीय मुगल साम्राज्यका संस्थापक बाबर भी मातृकुलसे अपनेको चंगेज खाँकी संतान मानता था।

चण्ड प्रद्योत महासेन्–देखिये, अवंतीका प्रद्योत।

चण्डीदास, अनन्तबडु–प्रख्यात वैष्णव कवि। इनका जन्म पश्चिमी बंगालके वीरभूमि जिलेके नन्नूर गाँवमें सम्भवतः चौदहवीं शताब्दीके अन्तमें हुआ था। इन्होंने राधाकृष्ण-प्रेमपर बंगला भाषामें बहुत ही सुंदर भजनोंकी रचना की है। ये गीत आज भी बहुत लोकप्रिय हैं। 'श्रीकृष्ण कीर्तन' भी इन्हींकी रचना है।

चंद बरदाई–दिल्ली और अजमेरके शासक (११७०–९०) पृथ्वीराज चौहान (दे०)का दरबारी कवि। उसने 'पृथ्वी-राज रासो' या 'चंद रायसा' नामक महाकाव्यकी रचना की थी। इस ग्रंथमें मुख्यरूपसे पृथ्वीराज चौहानकी गौरवगाथा, उसके विवाहों और मुसलमानोंसे युद्धोंका वर्णन है।

चंद रायसा–हिन्दीका एक प्रसिद्ध महाकाव्य, जिसे दिल्ली और अजमेरके चौहान शासक पृथ्वीराजके दरबारी कवि चंद्र बरदाईने लिखा है। बादमें चारणोंने इसमें कुछ अंश और जोड़कर इसकी आकार-वृद्धि कर दी। अब इस ग्रंथमें लगभग सवा लाख छंद मिलते हैं। पृथ्वीराजके जीवन, कन्नौजके राठौर राजा जयचंदसे उसकी शत्रुता, उसके विवाह, मुसलमानोंके साथ हुए उसके युद्धों और उसकी वीरगतिके बारेमें सूचना देनेवाला एकमात्र यही ग्रंथ है।

चन्दा साहब–कर्नाटकके नवाब दोस्त अलीका दामाद। १७४१ ई०में मराठोंने कर्नाटकपर हमला कर दिया और नवाब दोस्त अलीकी हत्या कर उसके दामाद चन्दा साहबको बंदी बनाकर ले गये। सात वर्ष बाद १७४८ ई० में मराठोंने चन्दा साहबको मुक्त कर दिया। इसी बीच पहला कर्नाटक या इंग्लैण्ड-फ्रांस युद्ध छिड़ गया था। इस युद्धमें डूप्लेके नेतृत्वमें फ्रांसीसियोंके श्रेष्ठ रणकौशलकी सब ओर प्रशंसा होने लगी। इसलिए चन्दा साहबने अनवरुद्दीनको गद्दीसे उतारनेके लिए, जिसे १७४३ ई० में निजामने कर्नाटकका नवाब नियुक्त किया था, डूप्लेके साथ सैनिक संधि कर ली। दोनोंकी संयुक्त फौजोंने अगस्त १७४९ ई०में आम्बूरके युद्धमें अनवरुद्दीनको हराया और मार डाला तथा उसके पुत्र और भावी उत्तराधिकारी मुहम्मद अलीको खदेड़ दिया। मुहम्मदअलीने तिरुचिरा-पल्लीके किले में शरण ली। चन्दा साहब कर्नाटक का नवाब घोषित किया गया तथा आर्काट राजधानी बनी। इसके बाद चन्दा और डूप्लेने तिरुचिरापल्लीमें मुहम्मद अलीको घेर लिया। किन्तु यह घेरा कुशलताके साथ नहीं संचालित किया गया, जिससे मुहम्मद अलीको मैसूर और तंजोरके शासकोंसे सहायता प्राप्त करनेका

समय मिल गया। उधर मद्रासस्थित अंग्रेजोंको भी मुहम्मद अलीकी तरफसे हस्तक्षेप करनेका मौका मिल गया। युवक राबर्ट क्लाइव (दे०)ने दो सौ अंग्रेज तथा तीन सौ भारतीय सैनिकोंको लेकर आर्काटके किलेपर अचानक आक्रमण करके अधिकार कर लिया। चन्दा साहब-ने आर्काटको पुनः हस्तगत करनेके लिए तुरंत भारी फौज भेजी, लेकिन वह न केवल अपने इस प्रयासमें विफल हुआ वरन् घमासान युद्धमें पराजित भी हुआ। उसने मजबूर होकर आत्मसमर्पण कर दिया। लेकिन तंजौरके राजा (१७५२)के आदेशपर उसका सर उड़ा दिया गया।

चंदावरका युद्ध—११९४ ई०में शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी और बनारस तथा कन्नौजके राजा जयचंदके बीच हुआ। जयचंद इस युद्धमें पराजित होकर मारा गया तथा कन्नौज और बनारसपर मुस्लिम शासन स्थापित हो गया।

चंदेल—राजपूतोंकी एक जाति, इस वर्गके लोग अपनेको क्षत्रिय वर्णके अन्तर्गत मानते हैं। किन्तु कुछ आधुनिक विद्वानों द्वारा उनकी उत्पत्ति गोंडों तथा भरोंसे बतलायी जाती है। बादमें इनके सरदारोंके हाथमें शासन सत्ता आ जानेपर इन्हें क्षत्रिय कहा जाने लगा। चंदेलोंकी राजनीतिक शक्ति-का उदय और विकास आधुनिक विंध्य प्रदेशके दक्षिणमें विंध्याचल और उत्तरमें यमुनाके बीच स्थित बुंदेलखण्डमें हुआ। उस समय इस प्रदेशका नाम जेजाकभुक्ति या जझौती था। खजुराहोंके भव्य मंदिर, कालिंजरका मजबूत किला, अजयगढ़का महल और महोबाका प्राकृतिक सौंदर्य चंदेलोंकी संस्कृति और उपलब्धियोंके केन्द्र थे। चंदेल शिव तथा कृष्णके उपासक थे, परन्तु कुछ चंदेल बौद्ध और जैन धर्मोंके भी अनुयायी थे। चंदेलोंने स्थापत्य-कलाकी एक भव्य शैलीका विकास किया, जिसके उदाहरण खजुराहोमें अब भी विद्यमान हैं। यहाँका महादेव नामक मुख्य शिव मन्दिर १०९ फुट लम्बा,, ६० फुट चौड़ा और ११६.५ फुट ऊँचा है। चंदेलोंकी शासनप्रणाली राज-तंत्रीय परम्परापर आधारित थी और उसमें न केवल राजसिंहासनके लिए उत्तराधिकारकी व्यवस्था थी, वरन् मंत्रियोंके पद भी वंशानुगत हुआ करते थे। दसवीं शताब्दीके अन्तमें प्रतिहारोंकी शक्ति क्षीण हो जानेके बाद चंदेलोंको संपूर्ण उत्तरी भारतपर शासन करनेका अवसर मिला, लेकिन वे इसके योग्य सिद्ध नहीं हुए। **(एन० एस० बोस कृत 'हिस्ट्री आफ चंदेलाज', एस० के० मित्र कृत 'खजुराहोके प्रारम्भिक शासक')**

चंदेलवंश—नवीं शताब्दीके आरंभमें नानुक चंदेल द्वारा इस वंशकी स्थापना हुई, जो प्रतिहारोंके मुखियाको विनष्टकर जेजाकभुक्ति (आधुनिक बुंदेलखण्ड)के दक्षिणी भागका स्वामी बन गया था। नानुकसे बीस राजाओंकी वंश-परम्परा चली। इससे पहलेके चंदेल राजा गुर्जर प्रति-हारोंके करद सामंत थे। सातवाँ राजा यशोवर्मा ही व्यावहारिक दृष्टिसे इस वंशका पहला स्वतंत्र शासक हुआ। उसने कालिंजरका प्रसिद्ध दुर्ग अपने अधिकारमें कर लिया और खजुराहो मंदिरमें स्थापनार्थ विष्णुकी बहुमूल्य प्रतिमा उपहारस्वरूप देनेके लिए प्रतिहार राजा देवपालको मजबूर कर दिया। उसका पुत्र धंग (लगभग ९५०—१००८ ई०) चंदेलवंशका सबसे अधिक प्रतापी शासक हुआ। उसने पूरे जेजाकभुक्तिपर अपने राज्यका विस्तार करते हुए तत्कालीन भारतीय राजनीतिमें सक्रिय भाग लिया। वह ९८९ या ९९० ई० में अफगानिस्तानसे होनेवाले सुबुक्तगीनके आक्रमणको रोकनेके लिए पंजाब-नरेश जयपाल द्वारा बनाये गये संघमें शामिल था। लेकिन सुबुक्तगीनके हाथों इस संघको हार खानी पड़ी। अन्तमें सौ वर्षकी लम्बी आयु प्राप्त कर धंगने प्रयागमें शिवका नाम लेते हुए गंगा-यमुना संगममें जल-समाधि ले ली। धंगके बाद उसके पुत्र गंडने पंजाबनरेश आनंदपाल (जय-पालका पुत्र)के साथ संघ बनाकर महमूद गजनवीसे मोर्चा लिया, किन्तु दुर्भाग्यसे यह दूसरा संघ भी पराजित हुआ। इस वंशके दसवें शासक विजयपाल (१०३०—५० ई०)ने कन्नौजनरेश राज्यपालपर आक्रमण कर इसलिए मार डाला कि उसने सुल्तान महमूद गजनवीके आगे आत्म-समर्पण कर दिया था। किन्तु शीघ्र ही वह स्वयं महमूद गजनवीसे पराजित हो गया। यद्यपि महमूद गजनवीका आधिपत्य अधिक समय तक नहीं रहा, तथापि श्री विजय-पालकी पराजयसे इस वंशकी शक्ति क्षीण हो गयी और बादके बारहों राजाओंमें कोई भी तत्कालीन राजनीतिमें महत्त्वपूर्ण भाग नहीं ले सका और धीरे-धीरे चंदेल शक्ति-का पतन हो गया। बारहवें राजा कीर्तिवर्माने (१०६०—११०० ई०) प्रसिद्ध आध्यात्मिक नाटक 'प्रबोधचंद्रोदय' के रचयिताको अपने यहाँ प्रश्रय दिया था। सत्रहवां शासक परमार्दि या परमल (लगभग ११६५—१२०२ ई०) इस वंशका अन्तिम उल्लेखनीय राजा था, जिसने इतिहासके मंचपर कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। परमार्दिने अजमेरके चौहान राजा पृथ्वीराजके आक्रमणका बहादुरीसे सामना किया किन्तु हारका मुंह देखना पड़ा। इसके बाद कुतुबुद्दीन ऐबक आ धमका और उसने कालिंजरके दुर्गपर कब्जा कर लिया। चंदेलवंशने बुंदेलखंडकी मात्र स्थानीय शक्तिके रूपमें १४वीं शताब्दी तक किसी न किसी तरह

अपना अस्तित्व बनाये रखा। अंतिम शासक हमीरवर्माके निधनके साथ इस वंशका अन्त हो गया (**एन० एस० बोस कृत 'हिस्ट्री आफ दि चंदेलाज़'**)।

चन्द्र—पूर्वी बंगालका स्थानीय सामन्त, जिसने ग्यारहवीं शताब्दीमें पालवंशकी अवनति शुरू होनेके बाद कुछ समयके लिए बंगालके कुछ भागपर शासन किया।

चन्द्रगिरि—लगभग १५८५ ई०में विजयनगरके परवर्ती राजाओंकी राजधानी। १६३९ ई०में चन्द्रगिरिके राजाके अधीनस्थ एक नायकने ईस्ट इंडिया कम्पनीके मि० डेको मद्रासकी भूमि प्रदान कर दी। १६४५ ई०में चंद्रगिरिके राजा रंग द्वितीयने इस अनुदानकी पुष्टि कर दी। इसके बाद वहाँ सेण्ट डेविड नामक किलेका निर्माण हुआ। इसी किलेके चारों तरफ मद्रास नगरका विकास किया गया है।

चन्द्रगुप्त—कर्कोट वंशका तीसरा राजा। इस वंशकी स्थापना सातवीं शतीके प्रारंभमें कश्मीरमें हुई थी।

चन्द्रगुप्त प्रथम—गुप्त राजाओंके वंशका प्रवर्तक और पहला शासक। शुरूमें उसका शासन मगधके कुछ भागों तक सीमित था। बादको लिच्छिवि कुमारी कुमारदेवीसे विवाह करके उसने अपनी शक्ति और राज्यका विस्तार कर लिया। उसने पाटलिपुत्रको राजधानी बनाया, महाराजाधिराजकी उपाधि धारण की; स्वयं अपने, अपनी रानी और लिच्छिवियोंके नामपर संयुक्तरूपसे सोनेके सिक्के चलाये, साम्राज्यका विस्तार मगधके बाहर इलाहाबाद तक किया और एक नये युगका प्रवर्तन किया जो गुप्तकालके नामसे ज्ञात है। गुप्तकालका शुभारंभ २६ फरवरी ३२० ई०से हुआ, जो सम्भवतः चन्द्रगुप्तके राज्याभिषेककी तिथि है। चन्द्रगुप्त प्रथमका अल्प शासनकाल ३३० ई०में समाप्त हो गया। मृत्युके पहले उसने अपने पुत्र समुद्रगुप्त (दे०) को, जो कुमारदेवीसे जन्मा था, उत्तराधिकारी मनोनीत किया। इसने अपने बाहुबलसे साम्राज्यका दूर-दूर तक विस्तार किया और शक्तिशाली गुप्त सम्राटोंके वंशका सूत्रपात किया, जिन्होंने पाँचवीं शताब्दीके अंत तक मगधपर शासन किया।

चन्द्रगुप्त द्वितीय—गुप्त वंशका तीसरा सम्राट् और समुद्रगुप्त (दे०) का पुत्र व उत्तराधिकारी। इसका शासनकाल सम्भवतः ३७५ ई०से ४१३ ई० तक रहा। उसने मालवा, गुजरात और काठियावाड़पर विजय प्राप्त की, उज्जयिनीके शक क्षत्रपोंका उच्छेदन किया और उनका राज्य गुप्त-साम्राज्यमें मिला लिया। अपनी महान् विजयोंके उपलक्ष्यमें उसने विक्रमादित्य (दे०)की उपाधि धारण की। शायद यह वही विक्रमादित्य है, जिसकी न्याय-नीति, उदारता और शौर्य-पराक्रमके बारेमें न जाने कितनी किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। इतना स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय बहुत प्रतापी और शक्तिशाली सम्राट् था। उसके शासनकालमें कला, स्थापत्य और मूर्तिरचनाका उल्लेखनीय विकास हुआ और भारतका सांस्कृतिक विकास तो अपनी पराकाष्ठापर पहुँच गया। कालिदास जैसा संस्कृतका उद्भट महाकवि और नाटककार (अभिज्ञानशाकुन्तलम्‌का लेखक) चन्द्रगुप्त द्वितीयके ही दरबारमें था। उसके ही शासनकालमें चीनी यात्री फाह्यान भारत आया और छः वर्षों (४०५—११) तक उसके राज्यमें रहा। फाह्यान यद्यपि सम्राट् चंद्रगुप्तके दरबारमें कभी गया नहीं, तथापि उसने तत्कालीन भारतकी बहुत सुंदर तस्वीर पेश की है। उसने अपने यात्रा-विवरणोंमें लिखा है कि उस समय देशका शासन अत्यन्त सुव्यवस्थित था, लोग शान्तिपूर्ण और समृद्धिशाली जीवन बिता रहे थे। सम्राट् चंद्रगुप्त आमतौरसे अयोध्या या कौशाम्बीमें रहता था, फिर भी पाटलिपुत्रकी ख्याति महत्त्वपूर्ण नगरके रूपमें बनी हुई थी। फाह्यानको इस नगरके वैभव और सुख-सम्पन्नताने अत्यन्त प्रभावित किया। चंद्रगुप्तने धर्मार्थ औषधालयों और यात्रियोंके लिए निःशुल्क विश्रामशालाओंका निर्माण कराया। वह अपने पूर्वजोंकी ही तरह धर्मनिष्ठ हिन्दू और विष्णुका उपासक था, लेकिन उसने बौद्ध और जैन धर्मोंको भी प्रश्रय दिया।

चन्द्रगुप्त मौर्य—मौर्यवंशका संस्थापक। उसके माता-पिताके नाम ठीक-ठीक ज्ञात नहीं हैं। पुराणोंके अनुसार वह मगधके राजा नन्दका उपपुत्र था, जिसका जन्म मुरा नामक शूद्रा दासीसे हुआ था। बौद्ध और जैन सूत्रोंसे पता चलता है कि चन्द्रगुप्त मौर्यका जन्म पिप्पलिवनके मोरिय क्षत्रिय कुलमें हुआ था। जो भी हो, चन्द्रगुप्त प्रारंभसे ही बहुत साहसी व्यक्ति था। जब वह किशोर ही था, उसने पंजाबमें पड़ाव डाले हुए यवन (यूनानी) विजेता सिकंदरसे भेंट की। उसने अपनी स्पष्टवादितासे सिकंदरको नाराज कर दिया। सिकंदरने उसे बंदी बना लेनेका आदेश दिया, लेकिन वह अपने शौर्यका प्रदर्शन करता हुआ सिकंदरके शिकंजेसे भाग निकला और कहा जाता है कि इसके बाद ही उसकी भेंट तक्षशिलाके एक आचार्य चाणक्य या कौटिल्यसे हुई। चाणक्यने चंद्रगुप्तको सुदृढ़ सेना गठित करने और नंदवंशके अन्तिम शासकको उच्छिन्न कर मगधमें अपना शासन स्थापित करनेमें धनकी सहायता दी। इस बीच सिकंदर भारतसे लौट गया था और उसकी मृत्यु भी हो चुकी थी। इस स्थितिका लाभ उठाकर चंद्रगुप्तने

पंजाबसे यूनानी शासनका उच्छेदन कर दिया। इन घटनाओंकी निश्चित तिथियां अभी तक निर्धारित नहीं की जा सकी हैं, लेकिन ऐसा अनुमान है कि वे ईसापूर्व ३२४ और ३२१ के बीच घटी होंगी। चंद्रगुप्तके पास विशाल सेना थी, जिसमें ३० हजार घुड़सवार, ९ हजार हाथी, ६ लाख पैदल और भारी संख्यामें रथ शामिल थे। इस विशाल वाहिनीके बलपर उसने संपूर्ण आर्यावर्त (उत्तरी भारत)पर अपनी विजय-पताका फहरायी। मालवा, गुजरात और सौराष्ट्रपर विजय प्राप्त कर उसने नर्मदा तक साम्राज्यका विस्तार किया। ईसा-पूर्व ३०५ में यूनानी सेनापति सेल्यूकसने, जो सिकंदरकी मृत्युके बाद पूर्वी यूनानी साम्राज्यका अधिष्ठाता बन बैठा था, चंद्रगुप्तकी शक्तिको चुनौती दी। भारत और यूनानी सम्राटोंमें जमकर लड़ाई हुई। यद्यपि इस युद्धके बारेमें विस्तारसे कुछ पता नहीं है, फिर भी इतना निश्चित है कि इसमें सेल्यूकसकी हार हुई और उसे अपमानजनक संधि करनेको बाध्य होना पड़ा, जिसके अंतर्गत उसने चंद्रगुप्त मौर्यको काबुल, हेरात, कन्धार और बलूचिस्तानके प्रदेश समर्पित कर दिये और अपनी पुत्री हेलनाका उससे विवाह कर दिया। चंद्रगुप्त मौर्यने सेल्यूकसको उपहारमें सिर्फ ५०० हाथी दिये। इस प्रकार चंद्रगुप्त मौर्य अपने साम्राज्यका विस्तार उत्तर-पश्चिममें हिंदुकुशकी पहाड़ियों तक करके उसे वहाँ तक पहुँचा दिया जिसे भारतकी वैज्ञानिक सीमा कहा जाता है। इतिहासकारोंके मतानुसार यह संधि ईसा-पूर्व ३०३में हुई होगी। यह संधि चंद्रगुप्त मौर्यकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी। चंद्रगुप्त अठारह वर्षोंके अल्पकालमें न केवल मगधके राजसिंहासनपर बैठा वरन् उसने पंजाब और सिंधसे यूनानी फौजोंको खदेड़ दिया, सेल्यूकसका दर्प चूर कर दिया और समग्र उत्तर भारतमें अपना एकछत्र साम्राज्य स्थापित कर लिया। इन्हीं उपलब्धियोंके कारण चंद्रगुप्तकी गणना भारतीय इतिहासके महान् और सर्वाधिक सफल सम्राटोंमें होती है।

चन्द्रगुप्तके दरबारमें मेगस्थनीज (दे०) नामक एक यूनानी राजदूत भेजा गया था। उसके द्वारा लिखी गयी पुस्तक 'इंडिका' (दे०) तथा चाणक्य या कौटिल्यके अर्थशास्त्रसे चन्द्रगुप्तकी उस शासन-प्रणालीके बारेमें पता चलता है, जिसके बलपर विशाल साम्राज्यको एक सूत्रमें बाँधकर चौबीस वर्षों (ईसा-पूर्व ३२२से ३९८)तक सफलतापूर्वक शासन करता रहा। पाटलिपुत्रमें चंद्रगुप्तका महल, जो मेगस्थनीजके अनुसार ऐश्वर्य और वैभवमें सूसा और इकबतानाके महलोंको भी मात करता था, अब नहीं है। स्वयं पाटलिपुत्र नगर भी, जो गंगा और सोन नदियोंके संगमपर आधुनिक दीनापुरके निकट बसा हुआ था, अब इन नदियोंकी रेतके नीचे दबा पड़ा है। लेकिन उसके यशस्वी निर्माताकी कीर्ति अजर अमर है। (**स्मिथ, अध्याय ४; राय चौधरी, अध्याय ४ तथा मैकक्रिनिल कृत 'एन्शियेन्ट इंडिया'**)

चन्द्रदेव—ग्यारहवीं शताब्दीके आखिरी दशकमें इसने गाहड़वाल वंशकी स्थापना की और कन्नौजको राजधानी बनाया। उसके वंशने तेरहवीं शताब्दीके आरंभ तक राज्य किया।

चन्द्रनगर—बंगालका वह स्थान, जहाँ फ्रेंच ईस्ट इंडिया कम्पनीने व्यापारिक केन्द्रकी स्थापना की। फ्रांसीसियोंको यह स्थान १६७४ ई० में नवाब शायस्ता खाँने दिया था और कारखानेका निर्माण १६९०–९२ ई०में हुआ। १७५७ ई० में क्लाइव और वाटसनके नेतृत्वमें अंग्रेजोंने इस नगरपर कब्जा कर लिया। छः वर्ष बाद १७६३ ई०में चन्द्रनगर फ्रांसीसियोंको इस हिदायतके साथ फिर लौटा दिया गया कि व्यापारिक केन्द्रके अलावा किसी और रूपमें इसका विकास न हो। चन्द्रनगर १९५० ई०में भारतीय गणतंत्रकी स्थापना तक फ्रांसीसियोंके अधिकारमें रहा। इसके बाद इसका विलय भारतीय गणतंत्रमें हो गया।

चन्द्र, राजा—मेहरौली लौह-स्तम्भके अभिलेखोंमें इसका वर्णन हुआ है। कहा जाता है कि उसने एक तरफ तो बंगालमें अपने शत्रुओंको परास्त किया और दूसरी तरफ सिंधके मुहानेपर वाह्लीकोंपर विजय प्राप्त की। इस राजाकी पहचान निश्चित रूपसे नहीं की जा सकी है। सुसुनिया अभिलेखमें भी चन्द्र नामक राजाका उल्लेख है। (**रायचौधरी, पृ० ५३५ नोट**)

चन्द्र वर्मा—इस नामके दो राजा हुए हैं। एकका वर्णन महाकाव्योंमें कम्बोजनरेशके रूपमें हुआ है और दूसरेका उल्लेख समुद्रगुप्तके प्रयाग-अभिलेखमें मिलता है। इस अभिलेखके अनुसार समुद्रगुप्तने उत्तरी भारतके जिन राजाओंको पराजित और अपदस्थ किया, उनमें एक राजा चन्द्रवर्मा भी था। सुसुनिया अभिलेखमें इस नामके जिस राजाका उल्लेख है, वह पश्चिमी बंगालके बाँकुड़ा जिलेमें दामोदर नदीके तटपर स्थित 'पुष्करण'का शासक था। (**रायचौधरी, पृ० ५३४–५४**)

चन्द्रसेन जादव—धनाजी यादवका पुत्र और मराठा राजा साहुका प्रधान सेनापति। चन्द्रसेनका अधीनस्थ सेना-संचालक बालाजी विश्वनाथ था। बादको बालाजीकी बढ़ती हुई शक्तिके आगे चन्द्रसेनकी शक्ति क्षीण हो गयी और १७१३ ई०में बालाजी पेशवा बन गया।

चम्पतराय–बुंदेलोंका नेता। उसने बुंदेलोंको संगठित करके मुगल बादशाह औरंगजेब (१६५८–१७०७ ई०) के शासन-के आरम्भिक दिनोंमें उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया, लेकिन जब चम्पतरायने देखा कि औरंगजेबसे उसकी हार निश्चित है और कैद हो जाना सम्भव है, तो उसने अपने पुत्र छत्रसालको औरंगजेबके खिलाफ लड़ाई जारी रखनेका दायित्व सौंपकर आत्महत्या कर ली।

चम्पानगर–मगधके पूर्व और राजमहल पहाड़ियोंके पश्चिममें स्थित प्राचीन अंग राज्यकी राजधानी। आधुनिक विहारका भागलपुर क्षेत्र ही प्राचीन कालका चम्पानगर था। यह नगर चम्पा नदी और गंगाके संगमपर बसा हुआ था और अत्यन्त समृद्ध था एवं वाणिज्य-व्यापारका प्रसिद्ध केन्द्र था। भागलपुर शहरके निकट चम्पानगर और चम्पापुर गाँवोंसे इस प्राचीन नगरकी पहचान की जाती है। **(राय चौधरी, पृ० १०७)**

चम्पा राज्य–एक प्राचीन हिन्दू राज्य, जिसकी स्थापना भारतीय प्रवासियोंने दूसरी शताब्दी ई०में हिन्दचीनके अनाम प्रदेशमें की थी, जो आज वियतनामके नामसे विदित है। राज्यकी राजधानीका नाम भी चम्पा था। चम्पा राज्यका अस्तित्व लगभग तेरह सौ वर्षों (लगभग १५० ई० से १४७१ ई०) तक कायम रहा। इसने कम्बुज, अनाम और यहाँ तक कि महान मंगोल सरदार कुबलई खाँके विरुद्ध लड़ाइयोंमें शानदार विजय प्राप्त की। चीनसे इसके अच्छे राजनयिक संबंध थे। यहाँके लोग मुख्यतः हिन्दू धर्मको माननेवाले थे। उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और महेशके बहुतसे मंदिरोंका निर्माण कराया। बौद्धधर्मावलम्बियोंकी संख्या भी यहाँ काफी थी। यहाँके अभिलेखोंमें संस्कृत भाषा और देवनागरी लिपिका प्रयोग किया गया है। सोलहवीं शताब्दीमें मंगोलवंशी अनामियोंने इस हिन्दू राज्यको समाप्त कर दिया।

चक्क–१५५५से १५८८ ई० तक कश्मीरपर शासन करनेवाली जनजाति। इसका शासन मुगल सम्राट् अकबरने उखाड़ फेंका था।

चक्रपाणि–एक प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान्, जिसने चिकित्सा-शास्त्रमें विशेष दक्षता प्राप्त की थी। इसका काल ग्यारहवीं शती है। इसने चरक और सुश्रुतसंहिताओंपर बहुत सुंदर व्याख्याएँ लिखीं, जिनका नाम क्रमशः 'आयुर्वेद-दीपिका' और 'भानुमती' है। चक्रपाणिकी एक अन्य पुस्तक 'चिकित्सासंग्रह' आरोग्य-विज्ञानका आधिकारिक ग्रंथ है। **(बंगालका इतिहास, खण्ड १, पृष्ठ ३१६–३१८)**

चक्रवर्ती राजा–प्राचीनकालमें उस सार्वभौम सम्राट्को कहते थे, जिसका सम्पूर्ण भारतपर एकछत्र शासन हो। प्राचीन भारतके सभी शक्तिशाली शासक इस महान् पदको प्राप्त करनेके आकांक्षी हुआ करते थे, लेकिन कुछ ही राजा अपनी इस अभिलाषाको पूरा करनेमें सफल होते थे। साहित्य और शिलालेखोंमें उल्लिखित चक्रवर्ती राजाओंसे इस बातका पता तो चलता ही है कि तत्कालीन भारतमें मौलिक राजनीतिक एकता विद्यमान थी।

चक्रायुध–बंगालके राजा धर्मपाल (लगभग ७७०–८०० ई०)का आश्रित, जिसको धर्मपालने कन्नौजके शासक इन्द्रायुध या इन्द्रराजको हराकर उसके स्थानपर वहाँका शासक नियुक्त किया। कन्नौजके शासकके रूपमें उसकी गतिविधियोंके बारेमें कुछ ज्ञात नहीं है। शिलालेखीय प्रमाणोंसे पता चलता है कि चक्रायुध धर्मपालका सामंत था और इसी धर्मपालके संरक्षकत्वमें उसका सितारा चमका। इतना निश्चित है कि कन्नौजपर चक्रायुधका शासन अधिक समय तक नहीं रहा, क्योंकि उसे और उसके संरक्षक धर्म-पाल दोनोंको ही गुर्जर-प्रतिहार नरेश नागभट्टने पराजित कर दिया और उनके राज्यको अपने बढ़ते हुए साम्राज्यमें मिला लिया। यह ठीकसे ज्ञात नहीं है कि राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीयके हाथों नागभट्टकी पराजयके बाद चक्रायुध पुनः कन्नौजके सिंहासनपर आरूढ़ हुआ कि नहीं। इतना निश्चित है कि चक्रायुधने कन्नौजमें अपना कोई राजवंश स्थापित नहीं किया।

चगताई–प्रसिद्ध मंगोल सरदार चंगेज खाँका दूसरा पुत्र; जिसने बारहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें मध्य और पश्चिमी एशियामें विशाल साम्राज्य स्थापित किया। चगताईके वंशज 'चगताई मुगल'के नामसे जाने जाते हैं। बाबर मातृकुलसे चगताई वंशका ही था।

चच–सिंधके ब्राह्मण शासक वंशका संस्थापक। जब ७११ ई० में अरबोंने सिन्धपर आक्रमण किया तो चचका पुत्र और उत्तराधिकारी 'दाहिर' (दे०) सिंधके राजसिंहासनपर आरूढ़ था।

चटगाँव जिला–आराकानके राजाने १६६६ ई०में इसे मुगल सम्राट् औरंगजेबके हवाले कर दिया। १७६० ई०में मीर कासिमने यह जिला ईस्ट इंडिया कम्पनीको दे दिया। १९०५ ई०में बंग-भंग होनेपर यह जिला अन्य जिलोंके साथ पूर्वी बंगाल और आसामके नवगठित प्रांतमें जोड़ दिया गया। बंग-भंग रद्द होनेपर १९१२ ई०में यह फिर बंगाल प्रांतके अन्तर्गत आ गया। १९४१ ई०में पाकिस्तान बननेपर चटगाँव पूर्वी-पाकिस्तान (पूर्वी बंगाल)का भाग

बन गया। बादमें दिसम्बर १६७१ ई०में पूर्वी पाकिस्तानके स्वाधीन हो जानेपर यह जिला नवोदित बंगला देशका अंग बन गया। कर्णफूली नदीपर स्थित इस जिलेका मुख्यालय चटगाँव नगर समुद्रके नजदीक है और आधुनिक सुविधाओंसे युक्त विशाल और संपन्न बंदरगाहके रूपमें विकसित हो रहा है।

चरक—प्राचीन भारतका एक सुविख्यात चिकित्सक, जिसने चिकित्साशास्त्र और औषधिविज्ञानपर एक बहुत ही आधिकारिक ग्रन्थ लिखा है, जिसका नाम उसके नामपर ही 'चरकसंहिता' प्रसिद्ध हो गया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि चरक कुषाण राजा कनिष्कका समसामयिक था, जिसका संरक्षकत्व भी उसे प्राप्त था। इसलिए कुछ इतिहासकारोंका मत है कि चरक ईसा बाद दूसरी शताब्दीमें हुआ होगा, लेकिन डाक्टर पी० सी० रायने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ हिन्दू केमिस्ट्री' (हिन्दू रसायनशास्त्रका इतिहास)में यह सिद्ध करनेका प्रयास किया है कि वह प्राक्-बौद्धकालमें हुआ था।

चर्चिल, सर विंस्टन—ब्रिटेनका प्रधानमंत्री, जिसने दूसरे विश्वयुद्धमें विजय प्राप्त की। वह पत्रकार, साहित्यिक, इतिहासकार और मार्लबरोंके ड्यूकका वंशज था। उसने अनेक महत्त्वपूर्ण पदोंपर काम किया और अन्तमें ब्रिटेनके सर्वाधिक संकटमय कालमें १० मई १९४० ई० को प्रधानमंत्री बना। इस गुरुतर दायित्वको उसने ७ जुलाई १९४५ तक सँभाला। इस अवधिमें उसने मिली-जुली सरकारके नेताके रूपमें दूसरे महायुद्धका संचालन किया और ब्रिटेनको उसमें विजयी बनाया। चर्चिल कट्टर 'टोरी' था और उसे भारतके राष्ट्रीय आंदोलनसे कोई हमदर्दी नहीं थी। वह उग्र साम्राज्यवादी था और एक अवसरपर घोषणा की थी कि "आपको देर-सबेर गांधी तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका दमन करना पड़ेगा।" वह गांधीजी तकके लिए 'भारतका नंगा फकीर' जैसे अपशब्दोंका प्रयोग करता था और एक अवसरपर बड़े ही दम्भपूर्ण स्वरमें कहा था कि "मैंने ब्रिटिश साम्राज्यका विघटन करनेके लिए प्रधानमंत्रीका पद स्वीकार नहीं किया है।" किन्तु परिस्थितियोंके आगे उसकी कुछ नहीं चली। चर्चिल के प्रधानमंत्री पदसे हटनेके बाद एक-दो वर्षोंमें ही ब्रिटेनको भारतको आजादी देनी पड़ी। अवश्य ही भारतमें ब्रिटेनकी दमनमूलक नीतिकी विफलताका कटु आभास सर विंस्टन चर्चिलको अपनी मृत्युसे पूर्व हुआ होगा।

चर्बीवाले कारतूस—इन्फील्ड रायफलमें, जो १८५६ ई० में ब्रिटिश भारतीय सेनामें चालू की गयी थी, इस्तेमाल किये जाते थे। कारतूसोंपर चर्बी लगी रहती थी और रायफलमें डालनेके पहले उन्हें दाँतसे काटना पड़ता था। चूंकि अंग्रेजोंमें किसी भी पशुका मांस वर्जित नहीं है, अतः यह विश्वास किया गया कि इन कारतूसोंका प्रचलन हिन्दुओं और मुसलमानोंको विधर्मी बनानेके लिए ही किया गया है। अधिकारियोंने पहले तो किसी प्रकारकी चर्बीके इस्तेमालको अस्वीकार किया, किन्तु बादमें जाँच करनेपर पता चला कि ऊलविच आयुध कारखानेमें जहाँ कारतूस बने थे पशुओंकी चर्बीका इस्तेमाल किया गया है। अतएव सरकारी खंडनसे स्थिति और भी छलपूर्ण समझी गयी और ऐसी धारणा फैल गयी कि चर्बीवाले कारतूसोंका जान-बूझकर प्रचलन करके ईसाई सरकार हिन्दुओं और मुसलमानोंको धर्मभ्रष्ट कर रही है। कारतूसोंको बादमें वापस ले लिया गया, लेकिन यह कार्य काफी विलम्बसे हुआ और इसे सरकारकी कमजोरीका परिचायक माना गया। सरकारके वक्तव्योंपर विश्वास नहीं किया गया और चर्बीवाले कारतूसोंके प्रयोगसे सिपाहियोंमें व्याप्त असन्तोष और भड़क उठा। १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोहके अनेक कारणोंमें यह प्रमुख कारण था।

चस्टन—मालवाके महाक्षत्रिय वंशका संस्थापक। उसका शासनकाल पहली शताब्दी ईसवीके उत्तरार्ध में था और राजधानी उज्जैन थी। उसने चाँदी और सोनेके बहुत-से सिक्के चलाये, जिनमेंसे कुछ प्राप्त हुए हैं।

चाँद बीबी—अहमदनगरके तीसरे शासक हुसैन निजामशाहकी पुत्री, जिसका विवाह बीजापुरके पाँचवें सुलतान अली आदिलशाह (१५५७—८० ई०)के साथ हुआ था। १५८० ई०में पतिकी मृत्यु हो जानेपर वह अपने नाबालिग बेटे इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय (बीजापुरके छठे सुलतान) की अभिभाविका बन गयी। बीजापुरका प्रशासन मंत्रियों द्वारा चलाया जाता रहा। १५८४ ई०में चाँदबीबी बीजापुरसे अपनी जन्मभूमि अहमदनगर चली गयी और फिर कभी बीजापुर नहीं गयी। १५९३ ई०में मुगल बादशाह अकबरकी फौजोंने अहमदनगर राज्यपर आक्रमण किया। संकटकी इस घड़ीमें चाँदबीबीने अहमदनगरकी सेनाका नेतृत्व किया और अकबरके पुत्र शाहजादा मुरादकी फौजोंसे बहादुरीके साथ सफलतापूर्वक मोर्चा लिया। किन्तु सीमित साधनोंके कारण अंतमें चाँदबीबीको मुगलोंके हाथ बरार सुपुर्द कर उनसे संधि कर लेनी पड़ी। लेकिन इस संधिके बाद जल्दी ही लड़ाई फिर शुरू हो गयी। चाँदबीबीकी सुरक्षा-व्यवस्था इतनी सुदृढ़ थी कि उसके जीवित रहते मुगल सेना अहमदनगरपर कब्जा नहीं कर

सकी। किन्तु एक उग्र भीड़ने चाँदबीबीको मार डाला और इसके बाद अहमदनगर किलेपर मुगलोंका कब्जा हो गया।

चाइल्ड, सर जान–सूरतमें स्थित ईस्ट इंडिया कम्पनीकी व्यापारिक कोठीका अध्यक्ष। इंग्लैण्डसे मिले निर्देशोंके अनुसार उसने पश्चिमी तटपर औरंगजेबकी सत्ताको माननेसे इन्कार कर दिया किन्तु मुगलोंके आगे उसकी कुछ चल न पायी और पराजयका मुंह देखना पड़ा। मुगलोंने कम्पनीकी सूरत स्थित कोठीको जब्त कर लिया। बादमें मुगल बादशाहने अपने राज्यसे अंग्रेजोंके निष्कासनका आदेश जारी कर दिया। अंततः अंग्रेजोंको झुकना पड़ा और उन्हें सूरत वापस आनेकी इजाजत फिर मिल गयी।

चाइल्ड, सर जोसिया–ईस्ट इंडिया कम्पनीका चेयरमैन या गवर्नर। कम्पनीके अन्य डाइरेक्टरोंके विपरीत सर जोसिया चाइल्ड बहुत ही महत्त्वाकांक्षी था। उसने भारतमें अंग्रेजी राज्यकी स्थापनाको अपना लक्ष्य बनाया। १६८५ ई०में उसे राजा जेम्स द्वितीयको इस बातके लिए राजी करनेमें सफलता मिल गयी कि चटगाँवपर अधिकार और किलेबंदी करनेके लिए दस या बारह जहाजोंका बेड़ा भेजा जाय। लेकिन यह अभियान बुरी तरह विफल हुआ और अंग्रेजोंको १६८८ ई०में बंगालसे निष्कासित कर दिया गया। सर जोसियाका स्वप्न उसके जीवन कालमें साकार नहीं हो सका, किन्तु बादकी घटनाएँ इस बातकी साक्षी हैं कि उसने जो सपना देखा था, वह दिवा-स्वप्न नहीं था।

चाणक्य–देखिये, 'कौटिल्य'।

चामी राजेन्द्र, सर राजा–१८६८से १८९६ ई० तक मैसूरका शासक। देशी रियासतोंके प्रशासनमें निरंकुशता समाप्त कर उदारवादी नीतियोंको अपनानेवाला वह पहला नरेश था।

चामुण्डराज–गंग वंश (दे०)के एक राजाका मंत्री, जो मैसूरपर शासन करता था। उसके ही आदेशसे श्रवण-बेलगोलामें एक पहाड़ीकी चोटीपर गोमटेश्वरकी ५६.५ फुट ऊँची विशालकाय मूर्तिका निर्माण कराया गया था। यह मूर्ति काले पत्थरकी चट्टानको तराश कर बनायी गयी थी। अपनी भव्य विशालताके कारण यह प्रतिमा विश्वमें बेजोड़ मानी जाती है।

चाय उद्योग–इसका जन्म १९वीं शताब्दीमें हुआ। ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा अठारहवीं शताब्दीमें चीनसे चाय लायी गयी थी। अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें जंगली चायके पौधोंको आसाममें उगते हुए देखा गया था, परन्तु उनके विषयमें सन्देह था कि उनकी पत्तियाँ उपभोग्य हैं कि नहीं। १८३४ ई०में लार्ड विलियम बेंटिक चायके पौधोंके बीज और उनको उगानेमें कुशल श्रमिकोंको चीनसे ले आया और एक सरकारी चायका बगीचा स्थापित किया जो १८३९में असम टी कम्पनीके हाथ बेच दिया गया। इस कम्पनीने कुछ प्रयोगोंके उपरान्त भारतमें भारतीय मजदूरों द्वारा चायके पौधे उगानेमें सफलता प्राप्त कर ली। १८५० ई०के बाद चाय उद्योगका द्रुतगतिसे विस्तार होने लगा। अब चायके पौधोंका रोपण केवल आसाममें ही नहीं वरन् काचार, दार्जिलिंग, नैनीताल तथा कांगड़ाकी घाटीमें व्यापकरूपसे होने लगा है। यह उद्योग आज भारतका विदेशी मुद्रा अर्जित करनेवाला सर्वोत्तम उद्योग है।

चारुमती–मौर्य सम्राट् अशोक (लगभग ईसा पूर्व २७२–२३२)की पुत्री। उसने देवपाल क्षत्रियसे विवाह किया था लेकिन बादमें वह बौद्ध भिक्षुणी बन गयी। वह ईसा पूर्व २५० या २४९ में पिताके साथ नेपालकी यात्रापर गयी और पिताके लौट आनेके बाद भी वहीं रह गयी। उसने वहाँ अपने दिवंगत पतिके नामपर देवपत्तन नामक नगरकी स्थापना की और खुद एक बिहारमें भिक्षुणीकी तरह रहने लगी। इस विहारका निर्माण चारुमतीने पशुपतिनाथ मन्दिरके उत्तरमें कराया। चारुमतीके नाम-पर यह विहार आज भी विद्यमान है।

चार्टर ऐक्ट (कानून)–१७९३, १८१३, १८३३ और १८५३ ई० में पास किये गये। ईस्ट इंडिया कम्पनीका आरंभ महारानी एलिजाबेथ प्रथम द्वारा वर्ष १६०० ई० के अंतिम दिन प्रदत्त चार्टरके फलस्वरूप हुआ। इस चार्टरमें कम्पनीको ईस्ट इंडीजमें व्यापार करनेका एकाधिकार दिया गया था। भारतमें घटनेवाली अनेक विलक्षण राजनीतिक घटनाओंके फलस्वरूप १७९३ ई० में कम्पनी-को व्यापार और वाणिज्य संबंधी अधिकारोंके साथ-साथ भारतके विशाल क्षेत्रपर प्रशासन करनेका दायित्व भी सौंपा गया। कम्पनीका पहला चार्टर १७९४ ई० में समाप्त होनेवाला था। कम्पनीकी गतिविधियोंके बारेमें जाँच-पड़ताल तथा कुछ विचार-विमर्श करनेके बाद १७९३ ई० में एक नया चार्टर कानून पास किया गया, जिसके द्वारा कम्पनीकी कार्य-अवधि और अधिकार २० वर्षोंके लिए पुनः बढ़ा दिये गये। इसके बाद १८५८ ई० तक हर बीस वर्षोंके उपरान्त एक नया चार्टर कानून पास करनेकी प्रथा-सी बन गयी। १८५८ ई० में ईस्ट-इंडिया कम्पनीको समाप्त कर दिया गया और उसके अधिकार तथा शासित क्षेत्रको महारानी विक्टोरियाने सीधे अपने हाथमें ले लिया।

१७९३ ई० के चार्टर कानूनमें कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया गया था और कम्पनीको भारतमें व्यापार-वाणिज्यपर एकाधिकार जमाये रखने तथा अपने हस्तगत क्षेत्रोंपर शासन करनेकी पूरी छूट दे दी गयी थी। १८१३ ई० के चार्टर कानूनने भारतके साथ व्यापार करनेके कम्पनीके एकाधिकारको समाप्त कर दिया और इंग्लैण्डके अन्य व्यापारियोंको भी आंशिक रूपमें भारतके साथ निजी व्यापार, वाणिज्य और औद्योगिक संबंध स्थापित करनेका अवसर दिया, किन्तु चीनसे होनेवाले कम्पनीके व्यापारिक एकाधिकारको समाप्त नहीं किया। इस चार्टर कानूनने कम्पनीके भारतीय क्षेत्रोंमें ईसाई पादरियोंको भी प्रवेश करनेकी अनुमति दे दी तथा भारतीय प्रशासनमें एक धार्मिक विभाग और जोड़ दिया। इस चार्टर कानूनमें यह भी कहा गया कि भारतवासियोंके हितोंकी रक्षा करना और उन्हें खुशहाल बनाना इंग्लैण्डका कर्त्तव्य है और इसके लिए ऐसे कदम उठाये जाने चाहिये जिनसे उनको उपयोगी ज्ञान उपलब्ध हो और उनका धार्मिक और नैतिक उत्थान हो। लेकिन यह घोषणापत्र केवल आदर्श अभिलाषा बनकर रह गया और इसपर कोई कार्रवाई नहीं की गयी।

१८३३ ई० के चार्टर कानूनने ईस्ट इंडिया कम्पनीकी व्यापारिक भूमिका समाप्त कर दी और उसे पूरी तरह भारतीय प्रशासनके लिए इंग्लैण्डके राजाके राजनीतिक अभिकरणके रूपमें परिणत कर दिया। गवर्नर-जनरलकी परिषद्में कानूनके वास्ते एक सदस्यको और शामिल कर दिया गया तथा कानून आयोगकी भी स्थापना की गयी, जिसके फलस्वरूप बादमें इंडियन पेनल कोड (भारतीय दण्ड संहिता) और इंडियन सिविल एण्ड क्रिमिनल प्रोसीजर कोड (भारतीय दीवानी एवं फौजदारी प्रक्रिया संहिता) लागू हुआ। इस प्रकार भारतके वर्तमान सरकारी कानूनोंका विकास १८३३ ई० के चार्टरसे शुरू हुआ। गवर्नर-जनरल और उसकी परिषदको एक साथ बैठकर कानून बनानेका अधिकार भी दिया गया। इसमें इस सिद्धांतका प्रतिपादन भी किया गया कि सरकारी पदोंके लिए अगर कोई भारतीय शैक्षणिक तथा अन्य योग्यताएँ रखता है तो उसे केवल धर्म या रंगभेदके आधार पर इस पदसे वंचित नहीं किया जायगा। यह घोषणापत्र भी काफी अरसे तक पवित्र भावनाकी अभिव्यक्ति मात्र रहा, लेकिन अन्तमें यह काफी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

चार्टर कानूनोंकी शृंखलामें १८५३ ई० का चार्टर कानून चौथा और अन्तिम था। इसमें कम्पनीको सरकारी अभिकरणके रूपमें अपना काम जारी रखनेका अधिकार दिया गया और कानून आयोगके कामको पूरा करनेका प्रबन्ध किया गया। इसमें यह प्राविधान भी किया गया कि कानूनोंको बनानेके लिए गवर्नर-जनरलकी परिषद्में छः सदस्योंको और जोड़ा जाय। इस चार्टरने इंडियन सिविल सर्विसमें प्रवेशके लिए खुली प्रतियोगिताकी प्रणाली शुरू की। इससे पहले इस सेवामें सिर्फ कम्पनी-डाइरेक्टरोंके सिफारिशी लोगोंको ही प्रवेश पानेका विशेषाधिकार प्राप्त था। लेकिन अब इस सेवाका द्वार मेधावी अंग्रेजों और भारतीयों, दोनोंके ही लिए खुल गया।

चार्ल्स द्वितीय–१६६०–८५ ई० में इंग्लैंडका बादशाह, जिसे पुर्तगालकी राजकुमारी कैथरीन ब्रेगेन्जाके साथ शादी करनेपर पुर्तगालीके राजासे बम्बई द्वीप दहेजके रूपमें मिला था। १६६८ ई० में चार्ल्सने यहाँ की जमीन ईस्ट इंडिया कम्पनीको १० पौण्डके सालाना किरायेके बदले पट्टेपर उठा दी। इसके बाद ही बम्बईकी प्रगति और समृद्धिका श्रीगणेश हुआ। १६८७ ई० में सूरतके स्थानपर बम्बई पश्चिमी तटपर अंग्रेजोंकी मुख्य बस्ती बन गयी। चार्ल्स द्वितीयने भारतमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी तरक्कीके लिए विभिन्न रीतियोंसे और भी सहायता प्रदान की।

चार्वाक–भारतीय दर्शनकी भौतिकवादी विचारधारा (लोकायत)का व्याख्याता। कट्टरपंथी हिन्दू दार्शनिकोंसे सर्वथा विपरीत वेदोंको प्रमाण नहीं माना; शरीरसे परे अजर-अमर आत्मा होनेके सिद्धांतका खण्डन किया; पुनर्जन्मके सिद्धान्तको माननेसे इनकार कर दिया और एक ऐसे दर्शनका प्रतिपादन किया जिसका मूलतत्व है कि जब तक जिओ, खाओ, पिओ और मस्त रहो, क्योंकि एक बार शरीरके भस्म हो जानेपर आत्मा नामकी कोई चीज बाकी नहीं रह जाती है। **(डी० आर० शास्त्री कृत 'दि लोकायत स्कूल आफ फिलासफी')**

चालुक्य, कल्याणीके–देखिये, 'चालुक्य'।

चालुक्य-चोल–वेंगिके चालुक्य वंशके अट्ठाईसवें नरेश राजेन्द्र तृतीयका वंशज, जिसने पूर्वी चालुक्य और चोल राज्योंको विरासतमें प्राप्त कर दोनोंको मिला दिया। राजेन्द्र तृतीयने कुलोत्तुंग चोलकी उपाधि ग्रहण की और १०७० से ११२२ ई० तक शासन किया। चोल राज्यपर इस वंशका शासन १५२७ ई० तक रहा। कुलोत्तुंग चोल तृतीयकी मृत्युके बाद इस वंशका पतन हो गया और इसके राज्यको अलाउद्दीन खिलजीकी मुस्लिम सेनाओंने रौंद डाला।

चालुक्य-वंश–छठी शताब्दी ई० के मध्य दक्षिणी भारतमें उत्कर्षको प्राप्त। इसके मूलके बारेमें ठीकसे कुछ पता नहीं। चालुक्य नरेशोंका दावा था कि वे चंद्रवंशी राजपूत हैं

और कभी अयोध्यापर शासन करते थे। गुर्जरोंकी एक शाखा चापसके एक अभिलेखमें चालुक्यनरेश पुलकेशीके उल्लेखसे कुछ आधुनिक इतिहासकारोंने यह अर्थ निकाला है कि चालुक्य—जो सोलंकीके नामसे भी विख्यात हैं—गुर्जरोंसे सम्बद्ध थे और राजपूतानासे दक्षिणमें आकर बसे थे। जो हो, इतना तो निश्चित है कि चालुक्योंके नेता पुलकेशी प्रथमने ५५० ई० में एक राज्यकी स्थापना की जिसकी राजधानी वातापी थी, जो आज बीजापुर जिलेमें 'बादामी'के नामसे ज्ञात है। पुलकेशी प्रथमने अपनेको दिग्विजयी राजा घोषित करनेके लिए अश्वमेध यज्ञ भी किया था। उसके वंशने, जो वातापीके चालुक्योंके नामसे प्रसिद्ध है, तेरह वर्षोंके व्यवधान (६४२–६५५ ई०)को छोड़कर ५५० से लेकर ७५७ ई० तक शासन किया। इस वंशके नरेशोंके नाम हैं—पुलकेशी प्रथम (५५०–६६ ई०), कीर्तिवर्मा प्रथम (लगभग ५६६–९७ ई०), मंगलेश (लगभग ५९७–६०८), पुलकेशी द्वितीय (लगभग ६०९–४२), व्यवधान (लगभग ६४२–५५), विक्रमादित्य प्रथम (६५५–८०), विनयादित्य (६८०–९६), विजयादित्य (६९६–७३३), विक्रमादित्य द्वितीय (७३३–७४६) और कीर्तिवर्मा द्वितीय (७४६–५७)। शुरूके इन नौ चालुक्य नरेशोंमें चौथा पुलकेशी द्वितीय सबसे अधिक प्रख्यात है। उसने ३४ वर्ष (६०८–४२) तक शासन किया। उसका राज्य-विस्तार उत्तरमें नर्मदासे लेकर दक्षिणमें कावेरी तक हो गया। किन्तु ६४२ ई० में वह पल्लव नरेश नरसिंहवर्मा द्वारा पराजित हुआ और शायद मारा भी गया। इसके बाद अगले तेरह सालों तक चालुक्य वंश पराभवको प्राप्त रहा। ६५५ ई० में पुलकेशीके पुत्र विक्रमादित्य प्रथमने चालुक्य-शक्ति पुनः प्रतिष्ठित की। पल्लवोंके साथ चालुक्योंका संघर्ष जारी रहा और ७४० ई० में चालुक्यनरेश विक्रमादित्य द्वितीयने पल्लवोंकी राजधानी कांचीपर अधिकार कर लिया। लेकिन उसके पुत्र और उत्तराधिकारी कीर्तिवर्मा द्वितीयको राष्ट्रकूटोंके नेता दंतिदुर्गने ७५३ ई० में सिंहासन-च्युत कर दिया। चालुक्योंकी शक्तिपर यह दूसरा ग्रहण था। दो शताब्दियों बाद चालुक्यवंश पुनः उत्कर्षको प्राप्त हुआ जब तैल या तैलपने, जो अपनेको वातापीके सातवें चालुक्य नरेश विजयादित्यका वंशज कहता था, ९७३ ई० में राष्ट्रकूट नरेश द्वितीयको परास्त कर दिया और कल्याणीको अपनी राजधानी बनाकर नये चालुक्य वंशकी स्थापना की। यह नया वंश ९७३ से १२०० ई० तक सत्तासीन रहा और इसमें १२ राजा हुए। इनके नाम हैं—तैल या तैलप (९७३–९७), सत्याश्रय (९९७–१००८), विक्रमादित्य पंचम (१००८–१४), अय्यन द्वितीय (१०१५), जयसिंह (१०१५–४२), सोमेश्वर प्रथम (१०४२–६८), सोमेश्वर द्वितीय (१०६८–१०७६), विक्रमादित्य षष्ठ (१०७६–११२७), सोमेश्वर तृतीय (११२७–३८), जगदेवमल्ल (११३८–५१), तैलप तृतीय (११५१–५६) और सोमेश्वर चतुर्थ (११८४–१२००)। कल्याणीके इस चालुक्य राज्यका एक लम्बे अर्से तक तंजोरके चोलवंशी शासकोंसे संघर्ष चलता रहा। सत्याश्रयको चोल नरेश राजराजने परास्त किया और चालुक्य राज्यको रौंद डाला। लेकिन सोमेश्वर प्रथमने इस अपमानका बदला न केवल चोल नरेश राजाधिराजको कोप्पमके युद्धमें करारी हार देकर ले लिया वरन् इस युद्धमें उसने राजाधिराजका वध कर दिया। सातवें नरेश विक्रमादित्य षष्ठने, जो विक्रमांकके नामसे भी विख्यात हैं, कांचीपर अधिकार कर लिया और प्रसिद्ध कवि विल्हणको संरक्षकत्व प्रदान किया। विल्हणने विक्रमादित्यके जीवनपर 'विक्रमांक-चरित' नामक सुविख्यात ग्रंथ लिखा है। विक्रमादित्य षष्ठकी मृत्युके बादसे कल्याणीके चालुक्योंकी शक्तिका ह्रास शुरू हो गया। ग्यारहवें राजा तैलप तृतीयके शासनकालमें चालुक्य राज्यका अधिकांश भाग उसके प्रधान सेनापति बिज्जल कलचूरिने हड़प लिया। चालुक्य राज्य शनैः-शनैः इतना कमजोर हो गया कि २१वीं शतीमें बारहवें राजा सोमेश्वर चतुर्थका शासन समाप्त होने तक उसके राज्यका पश्चिमी भाग तो देवगिरिके यादवोंने छीन लिया और दक्षिणी भाग द्वारसमुद्रके होयसलोंके नियंत्रणमें आ गया। वातापी और कल्याणीके चालुक्य नरेशोंने स्वयं कट्टर हिन्दू होनेपर भी बौद्ध और जैन धर्मको प्रश्रय दिया। इनके शासनकालमें यज्ञ-प्रधान हिन्दू धर्मपर विशेष बल दिया गया। चालुक्य राजाओंने हिन्दू देवताओंके अनेक मंदिरोंका निर्माण कराया। याज्ञवल्क्यस्मृतिकी 'मिताक्षरा' व्याख्याके लेखक प्रसिद्ध विधिवेत्ता विज्ञानेश्वर चालुक्योंकी राजधानी कल्याणीमें ही रहते थे। बंगालको छोड़कर शेष भारतमें 'मिताक्षरा'को हिन्दू कानूनका सबसे आधिकारिक ग्रंथ माना जाता है। **(वी० ए० स्मिथ कृत 'अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया')**

चालुक्य, वेंगिके—वातापीके चालुक्योंकी एक शाखा। इसे पूर्वी चालुक्य वंश भी कहते हैं। इस वंशका संस्थापक पुलकेशी द्वितीय (दे०)का भाई कुब्ज विष्णुवर्धन था। इसे पुलकेशी द्वितीयने कृष्णा और गोदावरी नदियोंके बीचमें स्थित वेंगि राज्यके सिंहासनपर अपने सामंतके रूपमें आरूढ़ किया था। इसने पिष्टपुरको, जो आजकल

पीठापुरम् कहलाता है, अपनी राजधानी बनाया। ६१५ ई० के लगभग विष्णुवर्धनने अपनेको स्वतंत्र नरेश घोषित कर दिया और इस प्रकार वेंगिके चालुक्यों या पूर्वी चालुक्यों-के नये वंशकी स्थापना की। इस वंशमें २७ शासक हुए। इनके नाम हैं—जयसिंह प्रथम, इन्द्र, विष्णुवर्धन द्वितीय, मंगी, जयसिंह द्वितीय कोक्किली, विष्णुवर्धन तृतीय, विजयादित्य प्रथम, विष्णुवर्धन चतुर्थ, विजयादित्य द्वितीय, विष्णुवर्धन पंचम, विजयादित्य तृतीय, भीम प्रथम, विजयादित्य चतुर्थ, विष्णुवर्धन षष्ठ, विजयादित्य पंचम, ताप या ताल प्रथम, विक्रमादित्य द्वितीय, भीम द्वितीय, युद्धमल्ल, भीम तृतीय, वादप, दानार्णव, शक्तिवर्मा, विमलादित्य, राजराज और राजेन्द्र। इस वंशके उपान्तिम नरेश राजराजने राजेन्द्र चोल प्रथमकी पुत्रीसे विवाह किया और उसके पुत्र राजेन्द्रने, जिसने चोल नरेश राजेन्द्र चतुर्थकी पुत्रीसे विवाह किया, विरासतमें प्राप्त वेंगि और चोल राज्योंको एकमें मिला दिया। इस प्रकार वेंगिके चालुक्यों या पूर्वी चालुक्योंके वंशका चालुक्य-चोलके वंशमें विलय हो गया।

चालुक्य, वातापीके–देखिये 'चालुक्य'।

चित्तरंजन दास (१८७०–१९२५)–कलकत्ता उच्च न्यायालयके विख्यात वकील, जिन्होंने अलीपुर बम केसमें अरविंद घोष (दे०)की पैरवी की थी। उन्होंने अपनी चलती हुई वकालतको छोड़कर गांधीजी के असहयोग आंदोलनमें भाग लिया और पूर्णतया राजनीतिमें आ गये। उन्होंने विलासी जीवन व्यतीत करना छोड़ दिया और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके सिद्धांतोंका प्रचार करते हुए सारे देशका भ्रमण किया। उन्होंने अपनी समस्त संपत्ति और विशाल प्रासाद राष्ट्रीय हितमें समर्पण कर दिया। वे कलकत्ताके नगरप्रमुख निर्वाचित हुए। उनके साथ श्री सुभाषचंद्र बोस (दे०) कलकत्ता निगमके मुख्य कार्याधिकारी नियुक्त हुए। इस प्रकार श्री दासने कलकत्ता निगमको यूरोपीय नियंत्रणसे मुक्त किया और निगमके साधनोंको कलकत्ताके भारतीय नागरिकोंके हितके लिए प्रयुक्त किया। उन्होंने मुसलमानोंसे समझौता करके और उन्हें नौकरियोंमें अधिक जगहें देकर हिन्दू-मुस्लिम मतभेदोंको दूर करनेका प्रयास किया। श्री दास सन् १९२२ ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष हुए, लेकिन उन्होंने भारतीय शासन-विधानके अन्तर्गत संवर्द्धित धारासभाओंसे अलग रहना उचित नहीं समझा। इसीलिए उन्होंने मोतीलाल नेहरू (दे०) और एन० सी० केलकरके सहयोगसे 'स्वराज्य पार्टी'की स्थापना की, जिसका उद्देश्य था कि धारासभाओंमें प्रवेश किया जाय और आयरलैण्डके देशभक्त श्री पार्नेलकी कार्यनीति अपनाते हुए १९१९ ई० के भारतीय शासन-विधानमें सुधार करने अथवा उसे नष्ट करनेका प्रयत्न किया जाय। यह एक प्रकारसे सहयोगकी नीति थी। स्वराज्य पार्टीने शीघ्र ही धारासभाओंमें बहुत-सी सीटोंपर कब्जा कर लिया। बंगाल और बम्बईकी धारासभाओंमें तो यह इतनी शक्तिशाली हो गयी कि वहां द्वैध शासन प्रणालीके अंतर्गत मंत्रिमंडल तकका बनना कठिन हो गया। श्री दासके नेतृत्वमें स्वराज्य पार्टीने देशमें इतना अधिक प्रभाव बढ़ा लिया कि तत्कालीन भारतमंत्री लार्ड बर्केनहेडके लिए भारतमें सांविधानिक सुधारोंके लिए श्री दाससे कोई न कोई समझौता करना जरूरी हो गया। लेकिन दुर्भाग्यसे अधिक परिश्रम करने और जेलजीवनकी कठिनाइयोंको न सह सकनेके कारण श्री दास बीमार पड़ गये और १६ जून १९२५ ई० को उनका देहान्त हो गया। उनकी मृत्युके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकारसे वार्ताकी बात समाप्त हो गयी और इस प्रकार भारतीय स्वाधीनताकी समस्याके शांतिमय समाधानका अवसर नष्ट हो गया। श्री दासके निधनका शोक संपूर्ण देशमें मनाया गया। सारे देशवासी उन्हें प्यारसे 'देशबंधु' कहते थे। उनके मरनेपर विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरने उनके प्रति असीम शोक और श्रद्धा प्रकट करते हुए लिखा :

एनेछिले साथे करे मृत्युहीन प्रान।
मरने ताहाय तुमी करे गेले दान॥

चित्तू–पिंडारियों (दे०) का सबसे साहसी नेता, जो अनेक लूटपाटोंमें अग्रसर रहा। पिंडारियोंके खिलाफ ब्रिटिश अभियानके दौरान उसका जगह-जगह पीछा किया गया। वह भागकर असीरगढ़के निकट जंगलोंमें जा छिपा, लेकिन वहाँ एक बाघने उसे खा डाला।

चित्तौड़–मेवाड़के राणाओंकी राजधानी। यह राजपूतानाका सबसे मजबूत गढ़ था। इसकी किलेबंदीपर मेवाड़को गर्व था और इसीके कारण सदियों तक मुस्लिम आक्रमणकारी इसपर कब्जा न कर सके। फिर भी १३०३ ई० में अलाउद्दीन खिलजीके आक्रमणके फलस्वरूप इसका पतन हो गया। लेकिन १३११ ई० में राजपूतोंने इसपर पुनः अधिकार कर लिया। १५३४ ई० में गुजरातके सुलतान बहादुरशाहने इसपर तूफानी हमला किया, किन्तु राणाने शीघ्र ही सुल्तानके कब्जेसे इसे छुड़ा लिया। इसके बाद १५६७ ई० में अकबरने चित्तौड़का प्रसिद्ध घेरा डाला। किलेके सेनापति जयमल और पत्ता (फत्ता) के कुशल नेतृत्वने चार महीने तक मुगल सेनाओंका मुकाबला किया

किन्तु अंतमें अकबर चित्तौड़के दुर्गपर विजय प्राप्त करनेमें सफल हो गया। जब-जब चित्तौड़का पतन हुआ, महलकी सभी रानियाँ, दासियों सहित अपनी लाज बचानेके लिए दुर्गके भीतर चिता जलाकर सती हो गयीं। चित्तौड़पर विजय प्राप्त करनेके बाद अकबर उस दुर्गके फाटक और विशाल नगाड़ेको जो मीलों दूर तक राजाके आगमन और प्रस्थानकी सूचना देते थे तथा देवीके मंदिरको प्रकाशित करनेवाले विशाल दीपदानको अपने साथ आगरा ले गया। इस प्रकार चित्तौड़को वीरान बना दिया गया। उसके प्राचीरको बादमें राणा जगतसिंहने फिर बनवाया लेकिन शाहजहाँके आदेशपर १६५४ ई०में वह फिर ढहा दिया गया। फलस्वरूप अठारहवीं शताब्दी तक चित्तौड़ बाघ आदि जंगली जानवरोंका केलिस्थल बना रहा। उन्नीसवीं शताब्दीके अंतमें आंशिक रूपसे इसका पुनर्निर्माण कराया गया। पर्वतमालाकी उपत्यकामें अब यहाँ छोटा-सा नगर और उसका रेलवे स्टेशन है। यहाँका प्राचीन किला पहाड़ीपर अचल खड़ा हुआ राजपूतोंकी शौर्यगाथा सुनाता हुआ हजारों दर्शकोंको अपनी ओर आकृष्ट करता है।

चित्राल–अफगानिस्तान और भारतके बीच पर्वतमालाके अंतरालमें स्थित एक घाटी, जो डुरण्ड रेखा (दे०)को अफगानिस्तान और भारतके ब्रिटिश साम्राज्यके बीच सीमा स्वीकार कर लिये जानेके बाद १८९३ ई० में भारतके ब्रिटिश शासनके अंतर्गत आ गयी। लेकिन जब ब्रिटिश सरकार चित्राल घाटीपर अधिकार जमाने चली तो यहाँके कबायलियोंने प्रतिरोध किया। ब्रिटिश सरकारको उन्हें अधीन करनेके लिए १८९५ ई०में सेना भेजनी पड़ी। अब यह पाक-अधिकृत गुलाम कश्मीरके क्षेत्रमें हो गयी है।

चिन किलिच खाँ–देखिये, 'आसफजाह'।

चिनसुराकी डच बस्ती–१६५३ ई० में डच ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा स्थापित। यह अच्छा व्यापारिक केन्द्र था, जहाँसे डच लोग कच्चा रेशम, सूती कपड़े और शोराका निर्यात किया करते थे। चिनसुरा स्थित डच लोग पलासीके युद्धके बाद बंगालमें अंग्रेजोंकी सफलताओंसे बहुत ईर्ष्या करने लगे थे। उन्होंने अंग्रेजोंके खिलाफ बंगालके नवाब मीर जाफरसे एक संधि की, किन्तु राबर्ट क्लाइवकी चौकसी और सतर्कतासे यह योजना बेकार हो गयी। इससे पहले कि डच नयी फौजें ला सकें, क्लाइवने उन लोगोंपर आक्रमण कर नवम्बर १७६९ ई० में उन्हें बिदराके युद्ध (दे०) में परास्त कर दिया। क्लाइवने डचोंको शांतिसंधिके लिए मजबूर किया, जिसके अंतर्गत चिनसुराका उपयोग सिर्फ व्यापार-केन्द्रके रूपमें किया जा सकता था। डचोंने इस स्थानको १८२५ ई० तक अपने अधीन रखा, इसके बाद सुमात्रा स्थित कुछ स्थानोंके बदले ब्रिटिश सरकारके हवाले कर दिया।

चिलियांवालाकी लड़ाई–दूसरे सिख-युद्धके दौरान (दे०) १३ जनवरी १८४९ ई० को लार्ड गफके नेतृत्वमें भारतीय-ब्रिटिश फौज और सिखोंके बीच हुई। सिखोंने बड़ा भयंकर युद्ध किया और अंग्रेजी फौजका बड़ी बहादुरीके साथ डटकर मुकाबला किया। इस युद्धमें अंग्रेजोंको जान-मालका भारी नुकसान उठाना पड़ा। उनके २३५७ सैनिक और ८९ अफसर हताहत हुए। सिखोंने तीन रेजीमेण्टोंके ध्वजों और चार तोपोंपर कब्जा कर लिया। यह वास्तवमें ब्रिटिश फौजकी हार थी, लेकिन सिख रातमें युद्धस्थल छोड़कर तीन मील दूर चले गये, इसलिए अंग्रेजोंने दावा किया कि यह लड़ाई बराबरीपर छूटी।

चीन–भारतका संबंध इसके साथ बहुत प्राचीन है, यद्यपि उसमें बहुधा व्यवधान पड़ता रहा है। कौटिल्यके अर्थशास्त्र (दे०)में चीनी रेशम (कौषेय वस्त्रों) का उल्लेख हुआ है जिससे पता चलता है कि चीनके साथ प्रारम्भमें व्यापारिक संबंध थे। अशोकके धर्मप्रचारकोंके चीन जानेका उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। पहली ई० के अंतमें कुषाण शासक कडफिस द्वितीय (ईसवी ७८–११०) और चीनी सम्राट् हो-ती (ईसवी ८९–१०५) की फौजोंमें संघर्ष हुआ। इस संघर्षमें कडफिसकी पराजय हुई। कडफिसके उत्तराधिकारी और प्रसिद्ध कुषाणशासक कनिष्क (१२०–१६२ ई०)ने इस हारका बदला लिया और चीनियोंको पराजित कर भारतीय सीमापारके उस क्षेत्रपर पुनः अधिकार कर लिया जिसे चीनी सम्राट्ने कडफिस द्वितीयसे छीन लिया था। लेकिन इसके पहले ही भारत और चीनके बीच अधिक शांतिपूर्ण और प्रभावकारी संबंधोंका बीज-वपन शुरू हो गया था। ईसा पूर्व सन् ५२ में बाख्त्री राजदरबार-स्थित, चीनी सम्राट् आईके एक राजदूतने बौद्धधर्म स्वीकार किया था। कुछ वर्षों बाद ६७ ई० में दो भारतीय भिक्षु, कश्यप मातंग और धर्मरक्ष चीनी सम्राट् मिंग-ती (५८–७५ ई०)के दरबारमें पहुँचे थे। मिंग-ती इन बौद्ध भिक्षुओंके उपदेशोंसे बहुत प्रभावित हुआ और उसने इनके आवास और उपासनाके लिए अपनी राजधानीमें नये मंदिर-का निर्माण कराया। यह मंदिर 'श्वेताश्व' मंदिर कहलाता था। कश्यप और धर्मरक्षने बौद्ध ग्रंथोंका अनुवाद चीनी भाषामें आरम्भ किया और बहुत लोगोंको बौद्ध धर्मकी दीक्षा दी। इस प्रकार चीनमें भारतके बौद्ध धर्मके प्रसार एवं प्रचारकी प्रक्रिया शुरू हो गयी। अनेक भारतीय

बौद्ध-भिक्षु पश्चिमोत्तरी स्थल मार्ग एवं पूर्वोत्तरी जलमार्गसे होकर चीन पहुँचे और उन्होंने धर्म-प्रचारके कार्यमें महान् सफलता प्राप्त की ।

चौथी शताब्दीमें चीनी सम्राट् वू-तीने बौद्ध धर्मको अपनाया । इसके बाद यदा-कदा लगनेवाले आघातोंको छोड़कर बौद्ध धर्म समग्र चीनमें फैलता गया और उसे कन्फ्यूशियसवाद और ताओवादकी तरह ही चीनी धर्मके रूपमें मान्यता मिल गयी । वस्तुतः चीनमें बौद्धोंकी संख्या शीघ्र ही अन्य मतावलम्बियोंसे अधिक हो गयी । लगभग एक हजार साल तक चीन और भारतके बीच बराबर-आना-जाना लगा रहा । भारतीय बौद्ध भिक्षु चीन जाते, वहाँ बसते और सैकड़ों पवित्र बौद्ध ग्रंथोंका अनुवाद चीनी भाषामें करते। चीनी बौद्ध भिक्षु भी भारतकी तीर्थयात्राओं-पर आते, क्योंकि यह वह देश है, जहाँ बौद्ध धर्मके संस्थापक भगवान् गौतम बुद्धने जन्म लिया था । यहाँ वे यात्री बौद्ध धर्मका अध्ययन करते और भारतसे अनेक ग्रंथोंका संग्रह कर चीन ले जाते। चीनकी यात्रापर जानेवाले भारतीय बौद्ध भिक्षुओंमें कुमारजीव, बोधिधर्म, गुणवर्मा और अमोघबज्रके नाम अधिक प्रसिद्ध हैं । चीनी तीर्थयात्रियोंमें फाह्यान और ह्वेनसांगके नाम उल्लेखनीय हैं । फाह्यान ईसाकी चौथी शताब्दीमें और ह्वेनसांग सातवीं शताब्दीके आरम्भमें भारत आया था । ये चीनी यात्री अपने साथ न केवल बौद्ध धर्म और दर्शनसे संबंधित वरन् भारतीय ज्ञानकी अन्य अनेक शाखाओंसे संबंधित हजारों संस्कृत ग्रंथ चीन ले गये, जहाँ इनका अनुवाद और अध्ययन किया गया ।

बौद्ध धर्मका महायान संप्रदाय (दे०) चीनियोंके बीच विशेषरूप से लोकप्रिय हुआ । चीनियोंने इसे नये विचार-तत्त्व प्रदान किये । उन्होंने गौतम बुद्धके इस उपदेशकी उपेक्षा की कि निर्वाण प्राप्त करनेके लिए मनुष्यको तृष्णापर विजय प्राप्त करनी चाहिये । इसके स्थानपर उन्होंने बोधिसत्त्वों, विशेषरूपसे अमिताभकी बुद्ध उपासनाका विकास किया और यह मत प्रतिपादित किया कि भगवान बुद्ध द्वारा बताये गये अष्टांग मार्गपर चलनेके अतिरिक्त अमिताभके नामचिन्तन मात्रसे (निर्वाण नहीं, जिसकी वे परवाह नहीं करते थे) अगले जीवनमें अमिताभ बुद्धलोककी प्राप्ति होगी । इस प्रकार बौद्ध धर्मके विकासमें चीनका भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । पहली ईसवीसे शुरू होकर एक हजार वर्ष तक भारतके साथ चीनके धार्मिक और सांस्कृतिक संबंधोंका चीनी चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकलापर भी गहरा प्रभाव पड़ा । तुन हुआंग, यान-कांग और लांग-मेनमें चट्टानोंको काटकर बनायी गयी गुफाओं, गौतम बुद्धकी ६०–७० फुट ऊँची विशाल प्रतिमाओं, शुंगकालमें बनी गुफाओं और कई मंजिले मंदिरोंके चीनमें उपलब्ध भित्तिचित्र इसके ज्वलंत उदाहरण हैं । भारतीय संगीत कला, ज्योतिष शास्त्र, गणित और आयुर्वेदशास्त्रका भी चीनमें अध्ययन हुआ और इसका चीनी संस्कृतिपर व्यापक प्रभाव पड़ा ।

भारतीय-भूभागमें मुसलमानी शासन स्थापित हो जानेके बाद भारत और चीनका संबंध कई शताब्दियों तक वस्तुतः विच्छिन्न-सा रहा । लेकिन ईस्ट इंडिया कम्पनीके शासनकालसे भारत-चीन संबंध फिर स्थापित हो गया । किन्तु इस कालमें यह संबंध मुख्यरूपसे ब्रिटेनके व्यापारिक और साम्राज्यवादी हितों द्वारा नियन्त्रित होता था । वास्तविक अर्थोंमें तो भारत-चीन संबंध १९४७ ई०में भारतके नये गणराज्यकी स्थापनाके बाद कायम हुए । शुरूमें यह संबंध अत्यंत सौहार्द्रपूर्ण रहा । दोनों देशोंने एक दूसरेके देशमें अपने-अपने राजदूतावास स्थापित किये, सांस्कृतिक सम्पर्क बढ़ाया, दोनोंके प्रधान-मंत्रियोंने एक दूसरेके यहाँ मैत्रीपूर्ण यात्राएँ कीं, पंचशीलके आधारपर चीनके प्रधानमंत्री चाऊ-एन-लाई और भारतके प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरूके बीच एक समझौतेपर हस्ताक्षर हुए । भारतने संयुक्त राष्ट्र संघमें प्रवेशके लिए चीनी दावेका बराबर समर्थन किया, जबकि पश्चिमी देश उसको प्रवेशसे रोके हुए थे । लेकिन चीनने मित्रता और सहानुभूतिकी परवाह न कर १९६२ ई०में भारतपर अचानक हमला कर दिया । उसने लद्दाख और पूर्वोत्तर सीमाके काफी बड़े भागपर अपना दावा किया । चीनके रुखमें सहसा इस परिवर्तनसे भारत आश्चर्यमें पड़ गया । हमारी फौजें चीनी हमलेके निरोधके लिए बिलकुल तैयार नहीं थीं, इसलिए बहादुरीसे लड़नेके बावजूद उन्हें नेफामें हार खानी पड़ी । चीनी फौजें इस क्षेत्रमें बढ़ते-बढ़ते आसामके मध्य तक पहुँच गयीं । लेकिन इसके बाद ही उन्होंने अपनी विजययात्रा अचानक रोक दी और दोनों देशोंके बीच युद्ध-विराम लागू हो गया । इसके बादसे भारत और चीनका संबंध बहुत खराब हो गया । १९६५ ई०के भारत-पाकिस्तान युद्ध में चीनने पाकिस्तानके साथ गठ-बंधन किया और भारतपर आक्रमण करनेका झूठा आरोप लगाया । इस युद्धके समय चीनने भारतको अल्टीमेटम भी दिया था, लेकिन बादको वापस ले लिया । तबसे भारत और चीनके बीच कटुता बराबर बनी हुई है ।

चीनी यात्री—बौद्ध धर्मके अनुयायी थे और इस धर्मके पवित्र उद्‌गमस्थल भारतमें बौद्ध अवशेषों और धर्मग्रंथोंकी खोज तथा बुद्ध और उनके प्रमुख शिष्योंसे संबंधित पवित्र स्थानोंपर श्रद्धा-सुमन चढ़ानेके लिए आये थे। ये यात्री अपने साथ अनेक बौद्ध ग्रंथ और अवशेष चीन ले गये। भारत आनेवाले चीनी यात्रियोंमें फाह्यान सबसे पहला था। वह चन्द्रगुप्त द्वितीय (३७५–४१३ ई०)के शासनकालमें आया और ४०१ से ४१० ई० तक रहा। इस समयसे ७०० ई० तक बहुतसे चीनी तीर्थयात्री यहाँ आते रहे। इन यात्रियोंने अपने यात्रा-वृत्तांत लिखे हैं, जिनमें तत्कालीन भारतीय इतिहासके संबंधमें बहुमूल्य सामग्री मिलती है। इन सभी यात्रियोंने तक्षशिला, वल्लभी, नालन्दा और विक्रमशिलाके विश्वविद्यालयोंमें पठन-पाठन किया। बादके चीनी तीर्थयात्रियोंमें इत्सिंग (दे०) और ह्वेनसांग (दे०) सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं।

चूटिया आदिवासी—उत्तरी आसामके कबायली लोग, जो इस समय मुख्यरूपसे लखीमपुर और शिवसागरसे संलग्न क्षेत्रमें पाये जाते हैं। इनकी भाषा बोडो है। आरंभकालमें चूटिया कबायलियोंमें शान जातिके रक्तका पर्याप्त समावेश हुआ। इसके बाद इन्होंने अहोमोंसे वैवाहिक संबंध स्थापित किये और फिर उसी जातिमें विलीन हो गये। तेरहवींसे लेकर सोलहवीं शताब्दी तक अहोमोंके साथ इनका संघर्ष होता रहा लेकिन अन्तमें अहोमोंने इनपर विजय पा ली और इसके बाद दोनों कबीलोंका परस्पर विलय हो गया। इनका मुख्यालय सदियामें था। इनके अपने पुरोहित थे, जिन्हें 'देवरी' कहा जाता था। इनकी सहायतासे ही वे काली देवीके विभिन्न रूपोंकी उपासना किया करते थे। सदिया स्थित तांबेके मन्दिरमें ये लोग कालीको प्रसन्न करनेके लिए मानवकी बलि चढ़ाते थे। **(गेट कृत 'हिस्ट्री आफ असम', पृष्ठ ४१-४२)**

चूटी खान—बंगालके शासक हुसेनशाह (१४९३–१५१८ ई०) के सेनापति परागलखाँका पुत्र। वह चटगाँवका सूबेदार था। हुसेनशाहकी तरह वह स्वयं भी बंगाली साहित्यका संरक्षक था। उसीकी संरक्षकतामें श्रीकर नंदीने महाभारतके अश्वमेध पर्वका बंगलामें अनुवाद किया था।

चूटू वंश—सातवाहनोंकी ही एक शाखा। इस वंशने २२५ ई०के लगभग सातवाहन साम्राज्यके एक भागपर शासन किया था, जिसकी राजधानी उत्तरी तुंगभद्रापर बनवासीमें थी। यह शासन तीसरी शताब्दीके अंत तक चला। अभिलेखोंमें इस वंशके दो राजाओं, विष्णुकड और उसके दौहित्र स्कंदनागका उल्लेख मिलता है। चूटू वंशके बाद कदम्ब (दे०) वंशका शासन स्थापित हुआ। **(पो० एच० ए० आई०, पृष्ठ ५०३–५०४)**

चूड़ामणि जाट—मथुरा जिलेके जाटों और किसानोंका नेता। इसने सुदृढ़ सैनिक शक्तिके रूपमें ग्रामीणोंका संगठन किया और सम्राट् औरंगजेबकी मृत्युके बाद मुगलोंसे मोर्चा लिया। १७२१ ई०में मुगल बादशाह मुहम्मदशाहने राजा सवाई जयसिंहको जाटोंके दमनके लिए भेजा। जयसिंहने चूड़ामणिके भतीजे बदनसिंहको अपनी ओर मिला लिया और चूड़ामणिको पराजित कर उसका गढ़ छीन लिया। फलतः चूड़ामणिने आत्महत्या कर ली। जयसिंहने बदनसिंह (दे०)को राजा मान लिया। बदनसिंहने आगरा और मथुरा जिलोंके कुछ भागोंको लेकर भरतपुर राज्यकी स्थापना की।

चेटफील्ड कमेटी—लार्ड लिनलिथगो (१९३६–४१) के प्रशासन कालमें भारतीय सेनाके आधुनिकीकरणपर रिपोर्ट देनेके लिए नियुक्त। लार्ड चैटफील्ड इस कमेटीके अध्यक्ष थे। कमेटीने अपनी रिपोर्ट १९३९ ई०में पेश की। इस रिपोर्टके अनुसार ब्रिटेनकी सरकारने सेनामें आवश्यक सुधारके लिए काफी बड़ी धनराशि प्रदान की। रिपोर्टमें भारत-स्थित ब्रिटिश सैनिकोंकी संख्यामें २५ प्रतिशत कमी करने और भारतीय सेनाको सीमा सुरक्षा, आंतरिक सुरक्षा, समुद्रतटीय सुरक्षा और सामान्य आरक्षित—चार वर्गोंमें फिरसे विभक्त करनेकी सिफारिश की गयी थी। इसके अलावा स्थल सेनाके लिए हलके टैंकों, बख्तरबंद गाड़ियों और मोटर परिवहनका प्रबंध करने, स्थल सेना और समुद्री सीमाकी रक्षा करनेवाली नौसेनाके साथ सहयोग और समन्वयके लिए नभ-सेनामें बम-वर्षक विमानोंका स्क्वाड्रन जोड़ने, शाही भारतीय नौसेनाको आधुनिकतम युद्धपोतोंसे सज्जित करके सुदृढ़ बनाने और आयुध कारखानोंका पुनर्निर्माण और विस्तार करके गोला-बारूदका उत्पादन बढ़ानेकी भी सिफारिश की गयी थी।

चेतसिंह—बनारसका राजा। पहले वह अवधके नवाबका सामंत था, लेकिन बादको उसने अपनी निष्ठा 'ईस्ट इंडिया कम्पनी'के प्रति व्यक्त की। कम्पनीके साथ एक संधि हुई, जिसके अंतर्गत चेतसिंहने कम्पनीको २२.५ लाख रुपयेका सालाना नजराना देना स्वीकार किया और बदलेमें कम्पनीने करार किया कि वह किसी भी आधारपर अपनी माँगको नहीं बढ़ायेगी और किसी भी व्यक्तिको राजाके अधिकारमें दखल देने और उसके देशकी शान्ति भंग करनेकी इजाजत नहीं देगी। १७७८ ई०में कम्पनी जब भारतमें फ्रांसीसियोंके साथ युद्धरत थी और मैसूर तथा मराठोंसे भी उसकी ठनी

हुई थी, हेस्टिंग्सने चेतसिंहसे पाँच लाख रुपयेका एक विशेष अंशदान माँगा। राजाने उसे दे दिया। १७७९ ई० में यह माँग फिर दोहरायी गयी और इस बार उसके साथ फौजी कार्रवाईकी धमकी भी दी गयी। १७८० ई०में यह माँग तीसरी बार फिर की गयी। इस बार चेतसिंहने २ लाख रुपये व्यक्तिगत उपहारके रूपमें हेस्टिंग्सको इस आशाके साथ भेजे कि वह प्रसन्न हो जायगा। हेस्टिंग्सने यह राशि कम्पनीकी फौजोंपर खर्च कर दी और अपनी माँगमें जरा भी कमी किये बिना उसने राजासे २ हजार घुड़सवार देनेको कहा। राजाके अनुरोधपर उसने बादमें यह संख्या घटाकर एक हजार कर दी। लेकिन राजा ५०० घुड़सवारों और ५०० तोड़दारोंका ही बंदोबस्त कर सका। राजाने हेस्टिंग्सको सूचना भिजवायी कि ये घुड़सवार और तोड़दार कम्पनीकी सेवाके लिए तैयार हैं। हेस्टिंग्सने इसका कोई जवाब नहीं दिया और चेतसिंहसे ५० लाख रुपया जुर्माना वसूलनेकी ठानी। हेस्टिंग्स अपनी योजना कार्यान्वित करने खुद बनारस पहुँचा। उसने राजाको उसके महलमें ही कैद कर दिया। राजाने चुपचाप आत्मसमर्पण कर दिया, किन्तु उसके सिपाही राजाके इस अपमानसे क्रुद्ध हो गये। उन्होंने उस छोटी-सी ब्रिटिश टुकड़ीका सफाया कर दिया जिसके साथ हेस्टिंग्सने बनारस आनेकी गलती की थी। हेस्टिंग्स अपनी जान बचानेके लिए जल्दीसे चुनार भाग गया। वहाँसे कुमुक लाकर उसने बनारसपर फिर कब्जा कर लिया और चेतसिंहके महलको कम्पनीके सिपाहियोंसे लुटवाया। लेकिन चेतसिंहको न पकड़ा जा सका। वह ग्वालियर निकल भागा। हेस्टिंग्सने चेतसिंहका सारा राजपाट जब्त करके उसके भतीजेको इस शर्तके साथ सुपुर्द कर दिया कि वह सालाना नजरानेकी रकम बढ़ाकर ४० लाख रु० कर देगा। राजाके लिए यह रकम काफी बड़ा बोझ थी और इससे उसकी आर्थिक स्थितिपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। ब्रिटेनके प्रधान-मंत्री पिटने महसूस किया कि चेतसिंहके मामलेमें हेस्टिंग्सका व्यवहार क्रूर, अनुचित और दमनकारी था। हेस्टिंग्सपर महाभियोग लगाये जानेका एक कारण यह भी था। **(सर अल्फ्रेड लायल कृत 'वारेन हेस्टिंग्स' तथा पी० ई० राबर्ट्स कृत 'हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इण्डिया')**

चेदि–गंगा और नर्मदाके बीचके क्षेत्रका नाम। प्राचीन बौद्ध ग्रंथोंमें इसका उल्लेख सोलह बड़े राज्यों (महा-जनपदों) में हुआ है। बादको इस क्षेत्रपर कल्चुरियों (दे०)ने शासन किया।

चेम्पियन, कर्नल एलेक्जेण्डर–बंगालमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें नियुक्त एक सैनिक अफसर। वारेन हेस्टिंग्सने उसे ब्रिटिश फौजका कमाण्डर बनाकर रुहेलोंके विरुद्ध अवधके नवाबकी मददके लिए भेजा। दोनोंकी संयुक्त सेनाओंने २३ अप्रैल १७७४ ई० को मीरनपुर कटराके युद्धमें रुहेलोंको परास्त कर दिया।

चेम्बरलेन, सर नेविली–ब्रिटिश राजदूत, जिसे वाइसराय लार्ड लिटन प्रथमने १८७८ ई०में अफगानिस्तान भेजा था। इसे काबुलके राजदरबारमें रूसी राजदूतका प्रभाव कम करनेके लिए भेजा गया था। अमीर शेर अली रूसी राजदूतको अपने यहाँ पहले ही बुला चुका था, अतः अमीरने सर नेविलीको स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया। सर नेविलीको अली मसजिदसे लौटना पड़ा। उसकी वापसीके फलस्वरूप दूसरा अफगान-युद्ध (१८७८–८०) छिड़ा।

चेम्सफोर्ड–१९१६से १९२१ ई० तक भारतका वाइसराय और गवर्नर-जनरल। नियुक्तिके समय उसकी आयु लगभग ५० वर्ष थी और प्रशासनका कोई अनुभव नहीं था। भारतीय राजनीति जिस समय नयी करवट ले रही थी, उसकी भूमिका अपेक्षाकृत निष्क्रियतापूर्ण रही। उसका प्रशासन मेसोपोटामियामें ब्रिटिश सेनाओंकी हारकी पृष्ठभूमिमें आरंभ हुआ। १९१४ ई०में प्रथम विश्वयुद्ध छिड़नेके बाद भारत अपनी वफादारीका जिस रीतिसे लगातार प्रदर्शन कर रहा था, ब्रिटेनने उसका कोई समुचित प्रत्युत्तर नहीं दिया था, जिससे भारतमें गहरा असंतोष व्याप्त था। लार्ड चेम्सफोर्डने इस असंतोषको दूर करनेके लिए अपनी ओरसे कोई पहलकदमी नहीं की। भारतके प्रति ब्रिटिश नीतिके निर्धारणमें उसकी भूमिका नगण्य रही। ब्रिटिश कामन सभामें भारत-मंत्री श्री एडविन मोण्टेगू द्वारा २० अगस्त १९१७ ई०को की गयी इस प्रसिद्ध घोषणामें उसका कोई विशेष हाथ नहीं था कि भारत में ब्रिटिश सरकारका अन्तिम ध्येय "क्रमिक रीतिसे उत्तरदायी सरकारकी स्थापना करना है।" बादको जब मोण्टेगू भारतकी यात्रापर आया, लार्ड चेम्सफोर्डने उसके साथ संपूर्ण देशका दौरा किया। १९१८ ई०में भारतीय सांविधानिक सुधार की जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई, उसपर मोंटेगूके साथ-साथ चेम्सफोर्ड का नाम भी दिया गया था। १९१९ ई०में इसी मोण्टेगू-चेम्सफोर्ड रिपोर्टके आधारपर नया भारतीय शासन-विधान तैयार करनेमें भी उसका बहुत थोड़ा हाथ था। इस शासन-विधानके लागू होनेके पहले ही उसका कार्यकाल समाप्त हो गया।

लार्ड चेम्सफोर्डने तत्कालीन राजनीतिक स्थितिका बड़े कुशल ढंगसे सामना किया। १९१८ ई० में महायुद्ध समाप्त हो गया, परन्तु चेम्सफोर्डकी सरकारने १९१९ ई०में रौलट कमेटी (दे०) की सिफारिशोंके आधारपर कई कानून पास किये। इनके अंतर्गत जजोंको बिना जूरीकी सहायतासे राजनीतिक मुकदमे करने और प्रांतीय सरकारोंको नजरबंदीके व्यापक अधिकार प्रदान किये गये। ये कानून इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलके सभी गैरसरकारी सदस्योंके विरोधके बावजूद पास कर दिये गये। इन दण्डात्मक कानूनोंसे रुष्ट जनताने महात्मा गांधीके नेतृत्व और निर्देशनमें जोरदार आंदोलन छेड़ दिया। देशभरमें हड़तालें और सभाएँ हुई। सरकारी प्रतिबंधके बावजूद इसी तरहकी एक सभा अमृतसरके जालियाँवाला बागमें होने जा रही थी। जनरल डायरके नेतृत्वमें ब्रिटिश सैनिकोंने इस बागमें एकत्र निहत्थी भीड़पर बिना किसी चेतावनीके गोलियाँ दागना शुरू कर दिया। यह बाग चारों तरफ ऊँची चहारदीवारीसे घिरा हुआ था और बाहर निकलनेका एक ही रास्ता था जिसे सशस्त्र ब्रिटिश सैनिकोंने बंद कर रखा था। इस गोलीकांडमें सैकड़ों स्त्री, पुरुष और बच्चे मारे गये और घायल हुए। यह जघन्य हत्याकांड था। इतना ही नहीं, इस हत्याकांडके बाद मार्शल-ला घोषित करके बेगुनाह लोगोंपर और भी अत्याचार किये गये। उन्हें बेकसूर कड़ी सजाएँ दी गयीं और कोड़ोंसे पिटाई और जमीनपर घिसटाकर अपमानित किया गया। लार्ड चेम्सफोर्डने इन बर्बर अत्याचारोंको बंद कराने और जन-आक्रोशको शान्त करनेके लिए कुछ नहीं किया और बड़ी अनिच्छासे जालियांवाला बाग कांडकी जाँच करानेके लिए हंटर कमेटी (दे०) नियुक्त की। इस कमेटीने अभी अपना काम शुरू भी नहीं किया था कि वाइसरायने अत्याचारी सैनिक और असैनिक अधिकारियोंको माफी देनेके लिए दोष-मुक्ति (इन्डेम्निटी) कानून पास कर दिया। हंटर कमेटीने जनरल डायरकी कड़ी भर्त्सना की और मार्शल कानून प्रशासनकी आलोचना की। लार्ड चेम्सफोर्ड अपराधी अफसरोंको, खासकर पंजाबके अफसरोंको तत्काल और प्रभावी ढंगसे दंडित करनेमें विफल रहा। इससे भारत-ब्रिटिश संबंधोंमें इतनी अधिक कटुता उत्पन्न हो गयी जितनी १८५७ ई० के विद्रोहके बाद किसी भी वाइसरायके जमानेमें नहीं हुई थी। किन्तु अहिंसाकी नीतिमें विश्वास करनेवाले महात्मा गांधीके व्यापक प्रभावके कारण लार्ड चेम्सफोर्डको किसी सशस्त्र विद्रोहका सामना नहीं करना पड़ा।

चेर—देखिये, 'केरल'।

चैतन्य-चरितामृत—चैतन्यदेवके जीवन-वृत्तान्तपर सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ। इसके लेखक कविराज कृष्णदास हैं, जिनका जन्म १५१७ ई० में बंगालके बर्दवान जिलेमें हुआ था।

चैतन्य देव—बंगालमें वैष्णव धर्मके संस्थापक, जन्म १४८५ ई० में बंगालमें नवद्वीपके विद्वान् ब्राह्मण परिवारमें। अपने अलौकिक पांडित्यके कारण वे शीघ्र ही विख्यात हो गये। २४ वर्षकी आयुमें उन्होंने संन्यास ले लिया। वृद्धा मां और सुन्दर पत्नीको घरमें छोड़कर उन्होंने अपने ४८ वर्षोंके छोटेसे जीवनका शेषकाल प्रेम और भक्तिके संदेशका प्रचार करनेमें व्यतीत किया। अठारह वर्ष वे उड़ीसामें रहे और ६ वर्ष उन्होंने दक्षिण भारत, वृन्दावन, गौड़ और अन्य स्थानोंपर बिताये। उनके भक्त और अनुयायी उन्हें भगवान् विष्णुका अवतार मानते थे। वे पंडितोंके कर्मकाण्डोंके विरुद्ध थे। उन्होंने जनताको हरि (विष्णु)के प्रति आस्था रखनेका उपदेश दिया। उनका विश्वास था कि प्रेम और भक्तिके माध्यमसे ईश्वरकी अनुभूति हो सकती है। उनका उपदेश सभी जाति और पंथके लोगोंके लिए उन्मुक्त था। हिन्दू और मुसलमान, सभीने उनकी शिष्यता ग्रहण की। उन्होंने भक्ति-भावना और उसकी महत्ताको फिरसे जागृत किया। उनके सिद्धान्तोंसे पूर्वी भारत, खासकर बंगालके लोग बड़ी संख्यामें प्रभावित हुए। चैतन्यके जीवन एवं उपदेशोंपर काफी बड़ा साहित्य-भण्डार रचा गया है। उन्होंने खोल (मृदंग वाद्य)की तालपर जो कीर्तन गाये हैं, वे आज भी बंगालमें, खासकर मणिपुरमें बहुत लोकप्रिय हैं। **(कविराज कृष्णदास कृत 'चैतन्य चरितामृत')**

चैतन्य-भागवत—इसमें चैतन्यदेवका जीवनवृत्तांत और उनकी शिष्यपरंपरा और उपदेशोंका विवरण है। यह ग्रंथ वृन्दावनदास (जन्म १५०७ ई०) द्वारा बंगलामें लिखा गया है। इससे बंगालमें चैतन्यके समयके सामाजिक जीवनके बारेमें महत्त्वपूर्ण सूचनाएं मिलती हैं।

चैतन्य-मंगल—चैतन्यके जीवनपर लिखी गयीं दो पुस्तकोंका नाम। इनमेंसे एक जयानन्द और दूसरी त्रिलोचनदास द्वारा विरचित है। जयानंदका जन्म १५१३ ई० और त्रिलोचन दासका जन्म १५२३ ई० में बर्दवान जिलेमें हुआ था। इन दोनोंमें त्रिलोचनदासकी पुस्तक अधिक लोकप्रिय है।

चैत्य-गुहाएं—देखिये, 'गुहा वास्तुकला'।

चोल–प्राचीन दक्षिणापथके तीन प्रमुख राज्योंमेंसे एक । अन्य दो राज्य थे—पाण्ड्य और चेर या केरल । चोल राज्य या चोलमण्डलम् समुद्रके पूर्वी किनारेपर नैलोरसे पुडुकोट्टइ तक फैला हुआ था । अशोकके अभिलेखोंमें इसका वर्णन एक स्वतंत्र राज्यके रूपमें हुआ है, जहाँ मौर्य सम्राट्ने बौद्ध भिक्षुकोंको भेजा था । चोल राज्यके निवासी तमिलभाषी थे । उन्होंने तमिल भाषामें उच्च कोटिके साहित्यका विकास किया, तिरुवल्लूर रचित 'कुरल' इसका ज्वलंत उदाहरण है । इतिहासमें करिकाल (लगभग १०० ई०)का उल्लेख चोलवंशके प्रथम राजाके रूपमें हुआ है, जिसने पुहार या पुगारकी नींव डाली, सिंहलसे लम्बे समय तक युद्ध किया और सिंहली युद्धबंदियोंसे कावेरी नदीके किनारे सौ मील लम्बे बाँधका निर्माण कराया और चोलोंकी राजधानीको उरगपुर (उरयूर)से कावेरी-पत्तनम् ले गया । उसका राजवंश कब और कैसे समाप्त हुआ यह ठीक-ठीक पता नहीं, लेकिन लगता है कि चोल राज्यका ह्रास ईसाकी आरम्भिक शताब्दियोंमें उस समय आरंभ हुआ जब उत्तरमें पल्लव (दे०) और दक्षिणमें पाण्ड्य (दे०) शक्तियाँ उभर रही थीं । सातवीं शतीके पूर्वार्धमें जब ह्वेनसांगने इस प्रदेशकी यात्रा की, चोल राज्य सिर्फ कुडप्पा जिले तक ही सीमित था और उसका शासक पल्लव नरेश नरसिंहवर्मा (दे०)का सामंत था । ७४० ई० में चालुक्य राजा विक्रमादित्यने पल्लवोंको पराजित कर उनकी राजधानी काँचीपर अधिकार कर लिया । इस हारने पल्लवोंको कमजोर कर दिया और चोल शासकोंको एक बार फिर राज्य-विस्तारका अवसर मिला । नवीं शताब्दीके मध्यमें चोल राजा विजयालयने ३४ वर्षोंतक शासन किया । उसके पुत्र और उत्तराधिकारी आदित्य (लगभग ८८०–९०७ ई०) ने पल्लवनरेश अपराजितको हराया । इससे चोल राज्य फिर उत्कर्षको प्राप्त हो गया । आदित्यके पुत्र परान्तक प्रथमने पल्लवोंकी शक्तिको पूरी तरह कुचल दिया, पाण्ड्योंकी राजधानी मदुरापर अधिकार कर लिया और सिंहलद्वीपपर आक्रमण किया । इस प्रकार चोल शक्तिकी प्रतिस्थापना वास्तवमें परान्तक प्रथमने की और उसके वंशजोंने १३वीं शताब्दीके अंत तक शासन किया ।

चोल राजाओंकी सूची इस प्रकार है—राजादित्य प्रथम (९४७–४९ ई०), गांधारादित्य (९४९–५७ ई०), अरिंजय (९५७ ई०), परान्तक द्वितीय (९५७–७३ ई०), मदुरान्तक उत्तम (९७३–८५ ई०), राजराज प्रथम (९८५–१०१६ ई०), राजेन्द्र प्रथम (१०१६–४४ ई०), राजाधिराज प्रथम (१०४४–५४ ई०), राजेन्द्रदेव द्वितीय (१०५४–६४ ई०), वीरराजेन्द्र (१०६४–६९ ई०), अधिराजेन्द्र (१०६९–७० ई०), राजेन्द्र तृतीय कुलोत्तुंग प्रथम (१०७०–११२२ ई०), विक्रमचोल (११२२–३५ ई०), कुलोत्तुंग द्वितीय (११३५–५० ई०), राजराज द्वितीय (११५०–७३ ई०), राजाधिराज द्वितीय (११७३-७९ ई०), कुलोत्तुंग तृतीय (११७९–१२१८ ई०), राजराज तृतीय (१२१८–४६ ई०) और राजेन्द्र चतुर्थ (१२४६–७९ ई०) ।

चोल नरेशोंमें यह परम्परा थी कि वे अपने उत्तराधिकारीको जीवनकाल पर्यन्त सहयोगी बनाकर रखते थे । राजराज प्रथम (९८५–१०१६ ई०) सम्पूर्ण मद्रास, मैसूर, कुर्ग और सिंहलद्वीप (श्रीलंका)को अपने अधीन करके पूरे दक्षिणी भारतका सर्वशक्तिमान् एकछत्र सम्राट् बन गया । उसने अपनी राजधानी तंजोरमें भगवान शिवका राजराजेश्वर नामक मंदिर बनवाया जो आज भी उसकी महानताकी सूचना देता है । उसके पुत्र और उत्तराधिकारी राजेन्द्र प्रथम (१०१६–४४ ई०)के पास शक्तिशाली नौसेना थी जिसने पेगू, मर्तबान तथा अण्डमान-निकोबार द्वीपोंको जीता । उसने बंगाल और बिहारके शासक महीपालसे युद्ध किया और उसकी सेनाएँ कलिंग पार करके ओड्र (उड़ीसा), दक्षिण कोसल, बंगाल और मगध होती हुई गंगा तक पहुंचीं । इस विजयके उपलक्ष्यमें उसने 'गंगैकोंड'की उपाधि धारण की । उसका पुत्र और उत्तराधिकारी राजाधिराज (१०४४–५४ ई०) चालुक्य-राजा सोमेश्वरके साथ हुए कोप्पमके युद्धमें हारा और मारा गया । परन्तु वीर राजेन्द्र (१०६४–६९)ने चालुक्योंको कुडल-संगमम्के युद्धमें परास्त कर पिछली हारका बदला ले लिया और चोल शक्तिको उत्कर्ष प्रदान किया । किंतु शीघ्र ही उत्तराधिकारके लिए युद्ध छिड़ गया, जिसका अंत होनेपर चोल सिंहासन राजेन्द्र कुलोत्तुंग प्रथम (१०७०-११२२ ई०) को प्राप्त हुआ । राजेन्द्र कुलोत्तुंगकी मां चोल राजकुमारी और पिता चालुक्य राज्यका स्वामी था । इस प्रकार कुलोत्तुंगने चालुक्य-चोलोंके एक नये वंशकी स्थापना की । उसने चालीस वर्षों तक शासन किया और कलिंगपर फिरसे आधिपत्य स्थापित किया । इसके बाद लगातार चार पीढ़ियों तक पाण्ड्य, होयसल, काकतीय आदि पड़ोसी राज्योंसे युद्धरत रहनेके कारण चोल राज्यका ह्रास होने लगा और कुछ समयके लिए दक्षिणमें पाण्ड्य राजाओंका प्रभुत्व स्थापित हो गया । इसके पश्चात् १३१० ई० में अलाउद्दीन खिलजीके सेनापति

मलिक काफूरके नेतृत्वमें तुर्कोंने दक्षिणके सभी हिन्दू राज्यों-को बुरी तरह रौंद डाला। चौदहवीं शताब्दीके अन्तमें ये राज्य विजयनगर साम्राज्यके अंतर्गत आ गये।

चोल प्रशासन—बहुत ही संगठित और सुव्यवस्थित था। यह ग्राम-पंचायत प्रणालीपर आधारित था। प्रशासनकी सुविधाकी दृष्टिसे सम्पूर्ण चोल राज्य छः प्रांतोंमें बँटा हुआ था, जिनको मण्डलम् कहा जाता था। मण्डलम्के उप-विभाग कोट्टम् (कमिश्नरी) और कोट्टम्के उपविभाग नाडु (जिला) थे। नाडुके अन्तर्गत कुर्रम (ग्रामसमूह) और ग्राम होते थे। अभिलेखोंमें नाडु (जिला) की सभाको नाट्टर और नगरकी श्रेणियोंको 'नगरतार' कहा गया है। सबसे अधिक विकसित और सुसंगठित शासन गाँवकी सभा अथवा महासभाका था। सभा या महासभा-के सदस्य गाँवके निवासियों द्वारा प्रतिवर्ष नियमतः निर्वा-चित होते थे। निर्वाचन और सदस्यताकी योग्यताके नियम बने हुए थे। इन सभाओंको ऊँचे अधिकार प्राप्त थे और उनका अपना कोषागार था। प्रत्येक मण्डलम्को पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त थी लेकिन राजाके प्रशासनको नियंत्रित करनेके लिए कोई केन्द्रीय विधानसभा नहीं थी। भूमिकी उपजका लगभग छठा भाग सरकारको लगानके रूपमें मिलता था। लगान अनाजके रूपमें या स्वर्ण मुद्राओंमें अदा किया जा सकता था। चोल राज्यमें प्रचलित सोनेका सिक्का 'कासु' कहलाता था जो १.६ औंसका होता था। चोल राजाओंके पास विशाल स्थलसेनाके साथ-साथ मजबूत जहाजी बेड़ा भी था। चोल राजाओंने सिंचाई-की बड़ी-बड़ी योजनाएँ पूरी कीं, सड़कोंका निर्माण किया और उन्हें सुंदर, साफ ढंगसे रखा। चोल प्रशासनप्रणाली वास्तवमें अत्यन्त उन्नत थी और उसके अन्तर्गत जनताको पर्याप्त स्वायत्त शासन प्राप्त था **(एस० के० आयंगर कृत —'एंशियेंट इंडिया', एन० के० शास्त्री कृत—'दि चोल')**

चोल वास्तु—विशुद्ध रूपसे भारतीय कृति, इसपर विदेशी प्रभाव-के कोई चिह्न नजर नहीं आते। चोल वास्तुका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण तंजौरका राजराजेश्वर नामक शिवमंदिर है, जिसे राजराज महान् (लगभग ९८५—१०१६ ई०)ने बनवाया था। वास्तुकला और मूर्तिकलाके अन्य भव्य उदाहरण गंगैकोंड़-चोलपुरम्में मिलते हैं, जिसे राजेन्द्रने नयी राजधानी बनाया था। विशाल मंदिरके साथ-साथ इस नगरीमें एक भव्य प्रासाद और विशाल कृत्रिम झील भी थी जिसपर १५ मील लंबा तटबंध बनाया गया था। अब इन सबके ध्वंसावशेष ही रह गये हैं। चोल वास्तुके बादके नमूने मदुराई, श्रीरंगम्, रामेश्वरम् तथा चोल-मण्डल तटपर स्थित अन्य स्थानोंमें मिलते हैं। जैसा कि फरगुसनने लिखा है, चोल वास्तु-कलाकारोंने बृहदाकार कल्पना की और जौहरियोंकी भांति सर्वांगसुंदर कृतियाँ प्रस्तुत कीं। चोलकालीन मंदिर अपनी विशालता एवं भव्यताके लिए विख्यात हैं। उनकी कई विशेषताएं हैं, पहली विशेषता यह है कि वे अनेक मंजिलोंवाले शिखरसे मंडित होते हैं। तंजोरके शिवमंदिरके शिखरकी ऊंचाई १९० फुट है और इसमें १४ मंजिलें हैं। इसका शीर्षबिन्दु २५ वर्गफुटका एक पत्थर तराश कर बनाया गया है जो ८० टन वजनी है। इन मंदिरोंकी दूसरी विशेषता अधिष्ठान-पीठसे लेकर शीर्ष-बिन्दु तक इनका प्रतिमालंकरण है। इनकी तीसरी विशेषता इनका विशाल मुख्य द्वार है जिसे गोपुरम् कहते हैं। ये गोपुरम् कहीं-कहीं मंदिरोंसे भी ऊंचे मीलों दूरसे दिखाई पड़ते हैं। उदाहरणतः कुम्भकोणम्का गोपुरम् अत्यंत विशाल और भव्य है। चोल मंदिरोंकी चौथी विशेषता यह है कि इनमें एकके बाद एक प्रांगण होते हैं जो गौण मंदिरों और विशाल मंडपोंसे युक्त होते हैं। कुछ मंडप तो एक-एक सहस्त्र स्तम्भोंपर आधारित मिलते हैं। **(जे० फरगुसन कृत 'हिस्ट्री आफ इंडियन एण्ड ईस्टर्न आर्किटेक्चर'; ए० के० कुमार-स्वामी कृत 'हिस्ट्री आफ इंडियन एण्ड इंडोनेशियन आर्ट')**

चौथ—किसी क्षेत्रपर लगाया जानेवाला वह कर, जो वहांकी राजस्व आयका चौथाई अंश होता था। सेनानायक यह कर उन क्षेत्रोंपर थोपते थे जिन्हें वे कुचलने या रौंदनेमें सक्षम थे परंतु उन्हें सीधे अपनें शासनके अन्तर्गत नहीं रखना चाहते थे। चौथकी वसूली सबसे पहले रामनगरके राजा-ने दमणमें पुर्तगाली प्रजासे की थी। शिवाजीने इसे अपने राज्यके राजस्वका अंतरंग साधन बना दिया। उन्होंने इसकी वसूली १६७० ई०में खानदेशसे की जो उस समय मुगल साम्राज्यके अन्तर्गत था। इसके बाद यह उनकी वित्तीय आयका नियमित स्रोत बन गया। इस परम्पराको शिवाजीके उत्तराधिकारियोंने भी कायम रखा। इस बातपर लोगोंकी अलग-अलग राय है कि यह कर एक प्रकारकी लूट थी या फिर सुरक्षाकी वचनबद्धताके एवजमें लिया जानेवाला धन था। व्यवहारमें यह कर एक प्रकारकी बलात् सैनिक वसूली थी। **(रानाडे कृत 'दि राइज आफ दि मराठा पावर'; एस० एन० सेन कृत 'एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम आफ दि मराठाज')।**

चौरी-चौरा—उत्तर प्रदेशके गोरखपुर जिलेमें स्थित, जहाँ १९२२ई०में भारतमें अंग्रेजी राज्यके विरुद्ध चलाये जानेवाले जनआन्दोलनने हिंसक रूप धारण कर लिया था। यह आंदो-

लन १९२० ई०में महात्मा गांधीके नेतृत्वमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा असहयोग आन्दोलनके रूपमें आरम्भ किया गया था। महात्मा गांधीने इस बातपर जोर दिया था कि आंदोलनका स्वरूप अहिंसक रहना चाहिये। आंदोलनकारियोंके हिंसापर उतर आनेसे गांधीजीको बहुत सदमा पहुंचा और उन्होंने यह स्वीकार किया कि उनसे भारी भूल हुई है। उन्होंने तुरन्त असहयोग आंदोलन स्थगित कर दिया। गांधीजीके इस आदेशसे बहुतसे कांग्रेसजनोंको भारी निराशा हुई। वाइसराय लार्ड रीडिंगने इस कांडका फायदा उठाकर गांधीजीको हिंसा भड़कानेके अभियोगमें गिरफ्तार कर लिया। गांधीजीपर मुकदमा चला और छः वर्ष कैदकी सजा हुई। इस चौरी-चौरा काण्डसे असहयोग आंदोलनको गहरा धक्का लगा।

चौसाका युद्ध—जून १५३९ ई०में दूसरे मुगल बादशाह हुमायूं और अफगान शासक शेरशाह (दे०)के बीच हुआ। इस युद्धमें हुमायूंकी बुरी तरह पराजय हुई। वह अपने घोड़ेके साथ गंगामें कूद पड़ा और एक भिश्तीकी मददसे डूबनेसे बच गया। हुमायूं उसकी मशकके सहारे नदी पार कर आगरा भाग गया और शेरशाह बिहार और बंगालका स्वतंत्र शासक बन गया। चौसा गंगाके तटपर बक्सरके निकट स्थित है, इसलिए चौसाके युद्धको कभी-कभी बक्सरका युद्ध भी कहते हैं।

चौहान—इनका नाम चाह्यान भी मिलता है। यह राजपूतोंका ही एक कुल था और पँवारों, प्रतिहारों और सोलंकियोंकी भांति उनका उद्भव भी राजपूतानाके आबू पर्वत स्थित एक यज्ञकुण्डसे माना जाता है। कुछ आधुनिक विद्वानोंका मत है कि चौहान भी पँवारों, प्रतिहारों और सोलंकियोंकी भांति वास्तवमें गुर्जरों और श्वेत हूणोंके वंशज हैं जो ईसवी पांचवीं और छठीं शताब्दीके दौरान भारतमें प्रविष्ट हुए, यहीं बस गये, और हिन्दू धर्म ग्रहण कर लिया। शासक तथा योद्धा होनेके कारण उनकी गणना क्षत्रियोंमें की जाने लगी। **(स्मिथ, पृ० ४२८–२९)**

चौहान, शाकम्भरीके—हर्षवर्धनके पतनके बाद राजपूतानामें शाकंभरी (सांभर)में कई शताब्दियों तक इन्होंने शासन किया। इनकी राजधानी अजमेर थी। इस वंशमें अनेक राजा हुए हैं और उनमें बहुतोंके नाम अभिलेखोंमें मिलते हैं, लेकिन दोके नाम विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं। पहला है विग्रहराज, जिसने बारहवीं शतीके मध्यमें शासन किया। इस राजाने अपने राज्यकी सीमाओंका काफी विस्तार किया और दिल्ली तथा उसके पास-पड़ोसके क्षेत्रोंपर विजय प्राप्त की। विग्रहराज विजेता होनेके साथ-साथ कवि और साहित्यप्रेमी भी था। उसने 'हरकाली नाटक'की रचना की। 'ललितविग्रह नाटक' उसीके शासनकालकी कृति है, जिसकी रचना विग्रहराजकी प्रशस्तिके लिए की गयी थी। कुछ लोग इस नाटकका लेखक भी विग्रहराजको ही मानते हैं। इसके कुछ अंश अजमेरमें 'अढ़ाई दिनका झोपड़ा' नामक मसजिदमें लगे पत्थरपर अंकित पाये गये हैं। इस वंशका दूसरा सर्वाधिक उल्लेखनीय शासक विग्रहराजका भतीजा पृथ्वीराज द्वितीय या राय पिथौरा (दे०) था। अजमेर और दिल्लीके चौहान वंशका पतन ११९२ ई० में तराइनके दूसरे युद्धमें पृथ्वीराज द्वितीयकी हार और मृत्युके बाद हो गया।

चौहान नरेशोंके एक वंशने तोमरोंके उत्तराधिकारीके रूपमें मालबापर शासन किया। मालबाके चौहानोंका पतन १४०१ ई०में मुसलमानोंसे हारनेके बाद हुआ। मुसलमानोंने इनका राज्य हड़पकर इन्हें अपदस्थ कर दिया। **(स्मिथ, पृ० ४००–४७४)**

छ

छतरसिंह—१८४८ ई० में दूसरा सिख-युद्ध छिड़नेके समय सिखोंका एक प्रमुख सरदार। अंग्रेजोंके खिलाफ युद्धमें उसने तथा उसके पुत्र शेरसिंहने प्रमुख भूमिका अदा की, लेकिन १८४९ ई० में गुजरातके युद्ध (दे०) में सिखोंकी पराजयके बाद उसने अंग्रजोंके आगे आत्मसमर्पण कर दिया।

छत्रपति—एक राजकीय उपाधि, जो जून १६७४ ई० में स्वतंत्र शासकके रूपमें अपने राज्याभिषेकके समय शिवाजीने धारण की थी।

छत्रसाल—बुंदेला सरदार चम्पतरायका पुत्र और उत्तराधिकारी। छत्रसालने शिवाजीके विरुद्ध मुगल बादशाह औरंगजेबकी फौजोंका साथ दिया, लेकिन बादमें उसे इस मराठा नेतासे प्रेरणा मिली। अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित करनेकी आशाके साथ उसने शिवाजीकी तरह साहस और जोखिमपूर्ण जीवन बितानेका फैसला किया। दक्षिणके फौजी अभियानसे लौटनेके बाद छत्रसालने बुंदेलखण्ड और मालवाके असंतुष्ट हिंदुओंके हितोंकी रक्षाका बीड़ा उठाया। मुगलोंके खिलाफ उसने कई लड़ाइयां जीतीं और १६७१ ई० तक पूर्वी मालवामें अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। उसने अपनी राजधानी पन्नाको बनाया और १७३१ ई० तक मृत्यु पर्यन्त शासन किया।

ज

जकात--मुसलमान बादशाहोंके द्वारा लागू किया गया एक कर, जो उनकी मुसलमान प्रजापर लगाया जाता था। यह व्यक्तिकी उपार्जित आयका दो प्रतिशत होता था और इससे प्राप्त होनेवाली धनराशि खैरातके रूपमें मुसलमानोंमें बांट दी जाती थी।

जगतसिंह--आमेरके मानसिंहका पुत्र। बादशाह अकबरके राज्यकालमें मानसिंह अनेक ऊँचे पदोंपर रहा। मानसिंह जब बंगालका सूबेदार था तब जगतसिंह उसका नायब था। अक्तूबर १५६६ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी।

जगतसिंह, मेवाड़का राणा--मेवाड़के राणा प्रतापका पौत्र और राणा अमरसिंहका पुत्र। वह बादशाह जहाँगीरका समसामयिक था। उसके राज्यकालमें जगतसिंहने चित्तौड़का किला फिरसे बनवाया। उसने बादशाह शाहजहाँ (१६२८--५८ ई०)के हुक्मको माननेसे इनकार कर दिया। इसपर उसका मानभंग करनेके लिए १६५४ ई० में शाहजहाँके हुक्मसे चित्तौड़का किला ढहा दिया गया।

जगत सेठ--यह उपाधि १७२३ ई० के आसपास दिल्लीके बादशाहने बंगालके एक बहुत अधिक धनी महाजन, मानिकचंदके भतीजे तथा गोद लिये हुए लड़के फतहचंदको प्रदान की थी। जगत सेठकी कोठियाँ ढाका और पटनामें भी थीं। उसकी मुख्य कोठी मुर्शिदाबादमें थी। उसकी अतुल सम्पत्तिका उल्लेख उस कालके अनेक राजनीतिक लेखों, क्लाइव तथा बर्क जैसे अंग्रेज राजनेताओंके भाषणोंमें मिलता है। उसका कारोबार 'बैंक आफ इंग्लैंडसे मिलता-जुलता' था। उसकी कोठी केवल रुपयेका लेन-देन ही नहीं करती थी, बंगालकी सरकारकी ओरसे ऐसे अनेक कार्य भी करती थी, जो अठारहवीं शताब्दीमें 'बैंक आफ इंग्लैंड' ब्रिटिश सरकारकी ओरसे करता था। वह बंगालमें चाँदीकी खरीद करती थी। उसने मुर्शिदाबादमें एक टकसाल खोलनेमें मदद की थी। वह प्रांतीय सरकारकी ओरसे जमींदारोंकी मालगुजारी वसूल करती थी, शाही खजानेको दिया जानेवाला आयका भाग दिल्ली भेजती थी और बंगालमें वाणिज्य-व्यवसायके जरिये जितने सिक्के आते थे उनकी विनिमय-दरका नियंत्रण करती थी।

दूसरा जगत सेठ फतहचंदका पौत्र महताबचंद हुआ। वह १७४४ ई० में वारिस बना। उसका तथा उसके चचेरे भाई तथा साझेदार महाराज स्वरूपचंदका नवाब अलीवर्दी खां (दे०)के दरबारमें बड़ा प्रभाव था। अलीवर्दी खांके उत्तराधिकारी, नवाब सिराजुद्दौला (दे०)ने उसे अपमानित किया तथा अपना विरोधी बना लिया। उसने उसके विरुद्ध अंग्रेजोंसे साजिश की और पलासीकी लड़ाई (दे०)से पहले और बादमें अंग्रेजोंकी रुपये-पैसेसे भारी मदद की। मीर जाफर (दे०)के नवाब होनेपर उसे फिर पहले जैसा सम्मान और प्रभाव प्राप्त हो गया, परंतु नवाब मीर कासिम (दे०) उससे बहुत अधिक नाराज हो गया। उसे जगत सेठकी वफादारीपर संदेह था और १७६३ ई० में नवाबके आदेशसे उसे मार डाला गया। इसके बाद ही बंगालका प्रशासन नवाबके हाथोंसे अंग्रेजोंके हाथमें आ गया। उन्होंने बेईमानी करके ईस्ट इंडिया कंपनीके ऊपर जगत सेठका कोई कर्ज होनेसे इनकार कर दिया। इन सब घटनाओंके फलस्वरूप जगत सेठके घरानेका शीघ्रतासे ह्रास हो गया और उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें उसका वैभव समाप्त हो गया, हालांकि जगत सेठकी उपाधि महताबचंदके उत्तराधिकारियोंकी छह पीढ़ियोंको मिलती रही। बादके जगत सेठ ब्रिटिश भारतीय सरकारके छोटे-मोटे पेंशनरोंसे अधिक हैसियत नहीं रखते थे। अंतिम जगत सेठ फतहचंद हुआ, जिसे यह उपाधि १९१२ ई० में मिली। उसकी मृत्युके बाद उसके वारिसोंको फिर यह उपाधि नहीं दी गयी।

जगत सेठ फतहचंद--जगत सेठ घरानेके संस्थापक मानिकचंदका भतीजा तथा गोद लिया हुआ लड़का। उसे जगत सेठकी उपाधि मुगल बादशाह मुहम्मदशाहने १७२३--२४ ई० में प्रदान की। उसीके जीवनकालमें जगत सेठका घराना प्रतिष्ठा और समृद्धिके चरम शिखरपर पहुंचा। फतहचंद जगत सेठ १७१२ से १७४४ ई० तक अपने परिवारका मुखिया रहा। नवाब मुर्शिदकुली खां और उसके देहांतके बाद नवाब अलीवर्दी खां (१७४०--५६ ई०)पर उसका भारी प्रभाव था।

जगदीशपुर--बिहारमें है। गदरमें वहां के जमींदार कुँवर सिंह (दे०)की शानदार सफलताओंसे यह स्थान प्रसिद्ध हो गया है।

जगन्नाथ मंदिर--पुरी, उड़ीसामें है। इसका निर्माण उड़ीसाके राजा अनंत वर्मा चोड़-गंग (लगभग १०७६--११४८ ई०) ने कराया था। यह वास्तुकलाका अद्भुत नमूना है और कई शताब्दियां बीत जानेपर भी कालका प्रभाव इसपर बहुत थोड़ा पड़ा है। सारे भारतसे हजारों धर्मप्रेमी हिन्दू यात्री और विदेशी पर्यटक इसे अब भी देखने आते हैं।

जजिया--एक मुंड-कर, जो कानूनके अनुसार यहूदियों और ईसाइयोंसे लिया जाता था, परन्तु मुसलमान विजेताओंने

इसे भारतमें हिन्दुओंपर भी लगा दिया। मुहम्मद बिन कासिमने ७१२ ई० में जब सिंध जीता तब जजिया पहली बार लगाया गया। विजित हिन्दुओंको यह कर देना पड़ता था और सम्पत्तिके अनुसार यह कर उनसे लिया जाता था। भारतमें मुसलमानी शासनका विस्तार होनेपर यह कर सारे भारतके हिन्दुओंपर लगा दिया गया। प्रारम्भमें ब्राह्मणोंको इस करसे मुक्त रखा गया था, परन्तु फीरोज-शाह तुगलक (१३५१—८८ ई०) (दे०)के राज्यकालमें ब्राह्मणोंपर भी यह कर पहले-पहल लगाया गया। बादशाह अकबरने जब १५६४ ई०में यह कर उठा लिया तो हिन्दुओं-ने उसकी बड़ी प्रशंसा की, परन्तु औरंगजेबने १६७६ ई० में यह फिर लगा दिया। इस धार्मिक असहिष्णुतासे हिन्दुओंमें बड़ी नाराजी फैली और औरंगजेब एवं राजपूतोंके बीच लम्बी लड़ाई चली। इसके फलस्वरूप औरंगजेबने मेवाड़को जजियासे बरी कर दिया। बादशाह फर्रुखसियरने १७१३ ई० में गद्दीपर बैठनेपर यह कर उठा लिया, परन्तु १७१७ ई० में फिर लागू कर दिया। इसके बाद, यह कर हालांकि किताबी ढंगसे जायज बना रहा, परन्तु बादशाह मुहम्मदशाह (१७१९—४८ ई०) के समयसे इसका वसूल किया जाना बंद कर दिया गया। जब दिल्लीकी हुकूमत मजबूत थी तब इस करसे काफी आय होती थी, परन्तु बादके मुगल शासकोंके समय इसकी आय काफी कम हो गयी होगी। यह अन्यायपूर्ण कर था और इसीलिए इस करके वसूल किये जानेसे हिन्दुओंमें नाराजी फैलती थी।

जझौती—जेजाकभुक्ति (दे०)का दूसरा नाम है।

जनगणना—का ज्ञान प्राचीन भारतमें था। मेगस्थनीजने लिखा है कि चन्द्रगुप्त मौर्य (३२५—२९८ ई० पू०) के शासनकालमें पाटलिपुत्र नगरपालिकाका एक काम नागरिकोंके जन्म और मृत्युका लेखा-जोखा रखना था। अर्थशास्त्र (दे०)में भी जनगणनाके स्थायी प्रबंधका उल्लेख है। लेकिन बादमें जनगणनाकी परम्परा लुप्त हो गयी। आधुनिक कालमें ब्रिटिश भारतीय सरकारने इस परम्पराको पुनर्जीवित किया। अब तो यह देशके प्रशासनका नियमित अंग बन गयी है। हर दस सालपर एक बार जनगणना होती है।

जफर खां—अलाउद्दीन खिलजीका मंत्री और सेनाध्यक्ष। सुल्तानके विभिन्न युद्धोंमें इसने प्रमुख भाग लिया। उसने मंगोल आक्रमणके प्रतिरोधमें बड़ी वीरता और रणकौशलका प्रदर्शन किया। मंगोल आक्रमणका नायकत्व १२९९ ई० में कुल्तुघ ख्वाजाने किया था। उसने मंगोलोंको हरानेमें अपनी जान न्योछावर कर दी।

जफर खां—दक्षिणमें बहमनी राज्य (दे०)का संस्थापक। उसका वास्तविक नाम हसन था। सुलतान मुहम्मद तुगलककी सराहनीय सेवा करनेके कारण उसे जफर खाँकी उपाधिसे सम्मानित किया गया। १३४७ ई० में दौलताबाद-में उसे एक बड़ी सेनाका नायकत्व सौंपा गया और इस स्थितिसे लाभ उठाकर उसने स्वयंको दक्षिणमें एक स्वतंत्र शासकके रूपमें प्रतिष्ठित किया तथा गुलबर्ग अथवा कुल-बर्गको अपनी राजधानी बनाया। सुल्तान बननेपर उसने अबुल मुजफ्फर अलाउद्दीन बहमन शाहकी उपाधि धारण की। फरिश्ताका कहना है कि हुसेन मूलतः एक ब्राह्मण, ज्योतिषी गंगूका सेवक दास था जिसने उसे जीवनमें ऊँचा उठनेमें भारी सहायता पहुँचायी। परन्तु फरिश्ताके इस कथनकी स्वतंत्र सूत्रोंसे पुष्टि नहीं होती। हसनका दावा था कि वह फारसके प्रसिद्ध वीर इस्कान्दियारके पुत्र बहमनका वंशज था और इसी आधारपर उसने जिस राजवंशकी स्थापना की वह 'बहमनी' कहलाया। उसने अपने पड़ोसी राज्योंसे अनेक युद्ध किये, विशेषरूपसे हिन्दू राज्य विजय-नगर (दे०)से, जोकि उसीके समय स्थापित हुआ था। वह विजयी योद्धा सिद्ध हुआ तथा १३५८ ई० में उसकी मृत्युके समय उसकी सल्तनत उत्तरमें बेनगंगासे दक्षिणमें कृष्णा नदी तक तथा पश्चिममें दौलताबादसे पूर्वमें मोनगिर तक फैली हुई थी। उसने राज्यका प्रबन्ध कुशलतासे किया और उसे चार प्रदेशोंमें विभक्त किया, जिनके नाम गुलबर्ग, दौलताबाद, बराड़ और बीदर थे। प्रत्येक प्रदेशका कार्यभार एक हाकिमके अधीन था, जो सेनाका गठन तथा आवश्यक नागरिक तथा सैनिक अधिकारियोंकी नियुक्ति करता था। इतिहासकारों द्वारा उसकी न्यायकारी सुल्तानके रूपमें प्रशंसा की गयी है। वह प्रजापालक था। जब मृत्युशैयापर था, तभी उसने अपने सबसे बड़े पुत्र मुहम्मदशाहको अपना उत्तराधिकारी नामांकित कर दिया था।

जफर खान—बंगालकी गद्दीका झूठा दावेदार तथा पूर्वी बंगालके सुल्तान फखरुद्दीन मुबारकशाह (दे०) का जामाता। वह भागकर सुल्तान फिरोजशाह तुगलक (दे०) के दरबारमें पहुँचा तथा सुल्तानको बंगालके ऊपर आक्रमण करनेके लिए प्रेरित किया, परन्तु इस अभियानमें सुल्तान फीरोज तुगलक असफल रहा।

जफर खान—गुजरातके स्वतंत्र सुल्तानोंके राजवंशका संस्थापक। उसने अपना जीवन तुगलक सुल्तान मुहम्मद शाहके यहाँ सेनानायकके रूपमें प्रारम्भ किया, जिसने १३९१ ई० में उसे गुजरातका सूबेदार नियुक्त किया। उसने शीघ्र ही

वहाँ शांति व व्यवस्था स्थापित की। १३९६ ई० में फीरोज तुगलकके वंशजोंके बीच होनेवाले संघर्षसे लाभ उठाकर जफर खाँने स्वयंको गुजरातके स्वतंत्र सुल्तानके रूपमें प्रतिष्ठापित किया। उसने सात वर्षों तक शांतिपूर्वक राज्य किया। अन्तिम वर्षोंमें वह अपने ही पुत्र तातारखांके द्वारा कैद कर लिया गया, जिसने बादमें स्वयंको सुल्तान घोषित कर दिया। लेकिन जफर खाँने अपने भाईकी सहायतासे अपने अवैध पुत्र तातारखाँकी हत्या करवा दी और गद्दीपर पुनः अधिकार कर लिया तथा सुलतान मुजफ्फरकी उपाधि धारण की। वृद्धावस्थाको प्राप्त हो जानेके बावजूद मुजफ्फर (जफर खान) ने मालवाके शासकको पराजित कर दिया तथा अपने भाई नुसरतको वहाँका शासक नियुक्त किया। १४११ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके वंशके सुल्तानोंने गुजरातपर १५७२–७३ ई० तक स्वतंत्र रूपसे राज्य किया। अन्तमें अकबरने उसे मुगल साम्राज्यमें मिला लिया।

जब्तीका सिद्धान्त—(डाक्ट्रिन आफ लैप्स)—इसके अनुसार जो रियासतें ब्रिटिश भारतीय सरकारके अधीन थीं अथवा जो ब्रिटिश संरक्षणमें थीं, उनके शासकके निस्संतान होनेपर उनकी प्रभुता समाप्त होकर ब्रिटिश-भारतीय सरकारके हाथमें आ जायेगी और उनमें राजाको गोद लेनेका अधिकार न होगा। इसका अर्थ यह था कि अपनी सन्तान न होनेपर राजाको किसी अन्यको गोद लेनेका अधिकार न होगा। यदि कोई राजा किसीको गोद लेता है, तो वह दत्तक पुत्र राजाकी निजी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी तो हो सकेगा; लेकिन राज्यका उत्तराधिकारी न हो सकेगा। इस सिद्धान्तका प्रतिपादन १८३४ ई० में ही किया गया था, लेकिन गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजी (दे०) (१८४८–५६ ई०) ने इसे अमली रूप देकर सख्तीसे लागू किया। इसने इस बातकी कोई परवाह नहीं की कि इससे देशी रियासतोंके हिन्दू राजाओंमें बड़ी बेचैनी फैलेगी; क्योंकि सन्तान न होनेपर गोद लेना धार्मिक कर्तव्य माना जाता है।

इस सिद्धान्तको लागू करके डलहौजीने १८४८ ई० में सतारा, १८४९ ई० में जैतपुर तथा सम्भलपुर, १८५० ई० में बघाट, १८५२ ई० में उदयपुर, १८५४ ई० में नागपुर तथा १८५५ ई० में झांसीको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया। उसने नागपुर राज्यके जवाहरात आदिकी खुली नीलामी करायी। वह करौली रियासतपर भी कब्जा करना चाहता था। लेकिन लंदनस्थित ब्रिटिश सरकारने मध्यप्रदेशके उदयपुर राज्य तथा सतलजके इस पारके बघाट राज्यकी जब्ती रद्द कर दी और करौलीकी प्रस्तावित जब्तीकी अनुमति नहीं दी। सतारा तथा नागपुरकी जब्तीसे ब्रिटिश भारतीय सरकारको यह लाभ हुआ कि कलकत्ता और बम्बई तथा बम्बई और मद्रासके बीच सीधे आवागमनमें सारी बाधाएं दूर हो गयीं। लेकिन इन जब्तियोंसे भारतीय रिआसतोंके राजाओंमें खलबली मच गयी और वे अपनेको अरक्षित मानने लगे। इस सिद्धान्तका भी यह फल निकला कि १८५७ ई० में प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम हुआ, जिसे अंग्रेजोंने सिपाही विद्रोहकी संज्ञा दी है।

जमरूदकी लड़ाई—पंजाबके महाराज रणजीतसिंह और अफगानिस्तानके अमीर दोस्त मुहम्मदके बीच १८०३ ई० में हुई। इस लड़ाईमें अमीर परास्त हुआ और रणजीतसिंहको पेशावर सौंप देनेके लिए विवश हुआ।

जमशेद—एक प्रसिद्ध ईरानी कलाकार, जिसे बादशाह अकबर (दे०)का आश्रय प्राप्त था।

जमशेद—गोलकुंडाके कुतुबशाही वंश (दे०)का दूसरा सुल्तान। इस वंशकी स्थापना उसके पिता कुली कुतुबशाहने की थी। उसने १५४३ ई० में अपने पिताको मरवा दिया और १५५० ई०में मृत्यु होनेतक राज्य किया।

जमशेदपुर—भारतका 'इस्पात-नगर'। इसका नामकरण सर जमशेदजी टाटाके नामपर हुआ, जिनके मनमें बिहारमें आज जहाँ जमशेदपुर तथा टाटानगर स्थित है, वहाँ इस्पात कारखाना खोलनेका विचार उत्पन्न हुआ। यह संसारमें इस्पातका सबसे बड़ा अकेला कारखाना है। यहाँ प्रतिवर्ष लगभग दस लाख टन इस्पात तैयार होता है।

जमानशाह—१७९३ से १७९९ ई० तक अफगानिस्तानका शासक। वह अहमदशाह अब्दालीका पौत्र था और गद्दीपर बैठते ही अपने पितामहकी भाँति भारतपर चढ़ाई करना चाहता था। परंतु उसे सुबुद्धि आ गयी कि भारतपर हमला करनेसे पहले स्वदेशमें अपनी स्थिति मजबूत कर लेनी चाहिये। फिर भी उसने १७९४ ई० में कश्मीरपर कब्जा कर लिया तथा सिंधके अमीरोंको भी कर देनेके लिए विवश किया। इसके बाद वह भारतपर चढ़ाई करनेके लिए काबुलसे रवाना हुआ, किन्तु उसकी फौजें रोहतास तक ही बढ़ पायी थीं कि अफगानिस्तानमें बलवा हो गया जिसे दबानेके लिए उसे वापस लौट जाना पड़ा। उसकी सेनाके जो अग्रिम दस्ते पंजाब तक पहुँच गये थे उन्हें सिखोंके कड़े प्रतिरोधका सामना करना पड़ा और वे कोई विजय प्राप्त किये बिना ही अफगानिस्तान वापस लौट गये। इसके बाद १७९६–९७ ई० में जमानशाहने भारतपर फिर चढ़ाई की और वह पेशावरसे लाहौरकी ओर

बढ़ने लगा। किन्तु सिखोंने पुनः कड़ा प्रतिरोध किया और उसकी सेनापर छापे मारने लगे। अतः पंजाबमें अपनी स्थितिको मजबूत करनेमें जमानशाहको काफी समय लग गया। उसी बीच अफगानिस्तानमें फिर बलवा शुरू हो गया। अतएव जमानशाहको लाहौरसे आगे बढ़े बिना ही पुनः काबुल वापस लौट जाना पड़ा। जमानशाहने भारतपर आक्रमणका अन्तिम प्रयास १७९८ ई० में किया और सरलतासे लाहौर तक बढ़ आया, जिसपर उसने पुनः अधिकार कर लिया, परन्तु इसी बीच ईरानके बादशाहने उसके सौतेले भाई शाह महमूदकी साँठगाँठसे अफगानिस्तान-पर हमला बोल दिया और उसे अपनी विजय अधूरी छोड़ कर पुनः पंजाबसे अफगानिस्तान वापस लौट जाना पड़ा। शाह महमूदने अन्तमें जमानशाहको १७९९ ई० में हरा दिया और उसकी आँखें फोड़ दीं। फिर भी भारतीय सीमाओंपर उसके हमलेका खतरा यहाँके राजाओंको लम्बे समय तक आतंकित किये रहा, जिसके फलस्वरूप भारतके शासक अंग्रेजी राज्यके प्रसारको रोकनेके लिए कोई प्रभावशाली कदम न उठा सके। **(एन० के० सिन्हा कृत 'राइज़ आफ द सिक्ख पावर इन इण्डिया')**

जयंतिया राज्य–इसके अंतर्गत आसामका जयंतिया पहाड़ी क्षेत्र तथा इन पहाड़ियों तथा बादक नदीके बीचका मैदान सम्मिलित था। इस क्षेत्रके लोग उसी वंशमूलके हैं जिसके खासी (दे०) लोग, और दोनों एक ही भाषा बोलते हैं। उनमें मातृसत्ताक व्यवस्था है और सम्पत्तिका उत्तराधिकार मातृ सम्बन्धसे प्राप्त होता है। १५०० ई० के आसपास पर्वतरायने जयंतियामें एक हिन्दू राजवंशकी स्थापना की, जिसके राजाओंके नाम संस्कृत शब्दोंपर आधारित थे। उनकी राजधानी जयंतियापुर थी। विश्वास किया जाता है कि शिवकी अर्द्धाङ्गिनी सतीके अंग जिन-जिन स्थानोंपर गिरे थे, उनमें यह भी था, इसीलिए इसे अत्यन्त पवित्र माना जाता है। १५४८ से १५६४ ई० के बीच कूचबिहारके राजा नरनारायणने जयंतियापर अधिकार कर लिया। बादमें सत्रहवीं शताब्दीके शुरूमें जयंतियाके राजा धन भानिकको कचारी राजाने हरा दिया और उसके राज्यपर अधिकार कर लिया। धन भानिकके पुत्र तथा उत्तराधिकारी जस भानिक (लगभग १६०५–२५ ई०)ने अहोम राजा प्रतापसिंह (१६०३–४१ ई०) को अपनी लड़की ब्याह दी और उसकी सहायतासे अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लिया।

जस भानिकके बाद छठे राजा लक्ष्मीनारायण (१६६९–९७ ई०) ने जयंतीपुरमें एक महल बनवाया, जिसके खंडहर आज भी वर्तमान हैं। उसके उत्तराधिकारी रामसिंह (१६९७–१७०८ ई०) और अहोम राजा रुद्रसिंह (१६९६–१७१४ ई०)के बीच युद्ध छिड़ गया, जिसमें रामसिंहको प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा। फिर भी जयंतिया राज्यकी स्वतंत्रता बनी रही। उसने १८२४ ई० में अपनी स्वतंत्रता खो दी जब बर्मियोंने हमला करके आसामपर अधिकार कर लिया। दो साल बाद अंग्रेजोंने बर्मियोंको मार भगाया और राजा रामसिंहको जयंतियाका राज्य लौटा दिया जिसे बर्मियोंने अपदस्थ कर दिया था। राम-सिंहके भतीजे तथा उत्तराधिकारी राजेन्द्रसिंहसे ब्रिटिश भारतीय सरकार बहुत नाराज हो गयी, क्योंकि उसकी प्रजाने ब्रिटिश भारतके चार नागरिकोंको पकड़कर उनकी बलि चढ़ा दी थी। ब्रिटिश भारतीय सरकारके बार-बार कहनेपर भी राजाने इस कांडके अभियुक्तोंको उसके सुपुर्द नहीं किया। अतएव १८३५ ई० में जयंतियाके राजाको गद्दीसे उतार दिया गया और उसका राज्य ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया।

जयचंद (अथवा जयचन्द्र)–बारहवीं शताब्दीके अंतिम वर्षोंमें कन्नौज तथा बनारसका शासक। वह अजमेर तथा दिल्लीके राजा पृथ्वीराजका समसामयिक तथा प्रतिद्वन्द्वी था। चंद बरदाईके रासो (दे०)के अनुसार पृथ्वीराजने उसकी पुत्री संयोगिताका हरण कर लिया था, अतएव जयचंदने क्रुद्ध होकर उससे प्रतिशोध लेनेके लिए शहाबुद्दीन मोहम्मद गोरी (दे०) की सहायता की। गोरीने ११९२ ई० में तराईनकी दूसरी लड़ाईमें पृथ्वीराजको हरा दिया और उसे मार डाला। परंतु अगले साल गोरीकी मुसलमान फौजोंने जयचन्द्रके राज्यपर हमला कर दिया। जयचंद आगरा और इटावाके बीच जमनातटपर स्थित चन्दावर (अब फीरोजाबाद) में गोरीके सिपहसालार कुतुबुद्दीनसे युद्धमें हारकर मारा गया। उसके मरनेपर उसके राजवंश-का अंत हो गया और कन्नौज मुसलमानी शासनके अंतर्गत आ गया।

जयदेव–एक प्रसिद्ध कवि, जो बंगालके राजा लक्ष्मण सेन (लगभग ११८०–१२०२ ई०) का समसामयिक था। वह 'गीतगोविन्द'का रचयिता है, जो आज भी अत्यन्त लोकप्रिय भक्तिमय गीतिकाव्य है।

जयध्वज सिंह–कामरूप (आसाम) का एक अहोम राजा (१६४८–६३ ई०)। उसके राज्यकालमें मुगल सिपह-सालार मीर जुमला (दे०)ने आसामपर चढ़ाई की। जयध्वजसिंहने उसकी फौजको खदेड़ देनेका भारी प्रयत्न किया, परन्तु सफलता नहीं मिली। वह राजधानी छोड़कर कामरूप भाग गया। १६६२ ई० में मीर जुमलाने उसकी

राजधानीपर दखल कर लिया। उसे विवश होकर जनवरी १६६३ ई० में आक्रमणकारियोंसे संधि कर लेनी पड़ी। इस संधिके द्वारा उसने हर्जानेके रूपमें एक बड़ी रकम तथा दक्षिणी आसाम मुगल बादशाहको सौंप देना मंजूर कर लिया। जयध्वजसिंह अपनी राजधानीमें लौट आया, परन्तु कुछ महीने बाद नवम्बर १६६३ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

जयपाल—ओहिन्द (उद्भांडपुर) के हिन्दू शाहीवंशका राजा, जिसका राज्य उत्तर प्रदेशके कांगड़ासे लेकर अफगानिस्तानके लगभग तक फैला था। उस समय गजनीकी गद्दीपर उसका समसामयिक अमीर सुबुक्तगीन (६७७–६६७ ई०) था। उसने जब सुना कि सुबुक्तगीन अफगानिस्तानमें उसके राज्यपर हमला कर रहा है तो उसने उसे रोकनेका निश्चय किया और सेना लेकर गजनी और लगमानके बीच गुजुक नामक स्थान तक बढ़ गया। परन्तु अचानक एक बर्फीला तूफान आ गया और जयपालको अपमानजनक संधि कर लेनी पड़ी। परन्तु उसने शीघ्र ही इस संधिकी शर्तोंको तोड़ दिया और सुबुक्तगीनके साथ फिर लड़ाई छिड़ गयी। सुबुक्तगीन ६६७ ई०में मर गया। उसके बाद उसके उत्तराधिकारी सुल्तान महमूदने फिरसे युद्ध शुरू कर दिया और १००१ ई०में पेशावरके निकट जयपाल उससे बुरी तरह हार गया। जयपाल इतना अभिमानी और देशभक्त था कि इस हारकी ग्लानिके बाद उसने जीवित रहना और राज्य करना पसंद न किया। वह जीवित जलती चितामें कूद गया। उसको आशा थी कि उसका उत्तराधिकारी पुत्र आनंदपाल देशकी रक्षा अधिक सफलताके साथ कर सकेगा। जयपाल एकमात्र हिन्दू राजा था जिसने उत्तर-पश्चिमसे भारतपर आक्रमण करनेवाले मुसलमानोंके खिलाफ आक्रामक नीति अपनायी और अपनी आहुति देकर आत्महत्याका अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया।

जयपुर—एक आदर्श नगर तथा राजपूतानाकी भूतपूर्व देशी रियासत। इस नगरकी स्थापना १७२८ ई० में महाराज जयसिंह द्वितीयने की और अब यह राजस्थानकी राजधानी है। यह सुनियोजित ढंगसे बसाया गया सुंदर नगर है। इसकी मुख्य सड़कोंने नगरको छह समचतुरस्त्र विभागोंमें बाँट रखा है, जिनके किनारे लाल पत्थरके मकान बने हैं। जयपुर राज्यकी स्थापना ११२८ ई० में दूल्हारायने की थी, जो कछवाहा राजपूत था और ग्वालियरसे आया था। सोलहवीं शताब्दीमें उसके शासक राजा बिहारीमलने स्वेच्छासे बादशाह अकबरकी अधीनता स्वीकार कर ली और उसे अपनी लड़की ब्याह दी जो बादमें जहाँगीरकी माँ बनी। बिहारीमलके उत्तराधिकारियोंमें अकबरके राज्यकालमें राजा मानसिंह (दे०) तथा औरंगजेबके शासनकालमें मिर्जा राजा जयसिंह द्वितीयने योग्य सेनापतिके रूपमें विशेष ख्याति प्राप्त की। जयसिंह द्वितीय प्रसिद्ध गणितज्ञ और खगोलवेत्ता भी था। उसने काशी, दिल्ली और जयपुरकी वेधशालाओंका निर्माण कराया। अट्ठारहवीं शताब्दीके अंतिम दिनोंमें जोधपुर (दे०)की प्रतिद्वन्द्विता तथा अमीर खाँ (दे०)के नेतृत्वमें पेंढारियोंके हमलेके कारण राज्यमें काफी अव्यवस्था फैल गयी। इन परिस्थितियोंमें जयपुर राज्यने जयपुरकी संधि द्वारा प्रतिवर्ष निश्चित रकम नजरानेके रूपमें देनेकी शर्तपर अंग्रेजोंका संरक्षण प्राप्त कर लिया। ३० मार्च १६४८ ई० को इस राज्यका राजस्थान संघमें विलयन कर दिया गया और महाराज सवाई मानसिंहको राजप्रमुख बना दिया गया।

जयपुरकी संधि—जयपुर राज्य और ब्रिटिश भारतीय सरकारके बीच १८१७ ई० में गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्सके शासनकालमें हुई। इस संधिके द्वारा जयपुरने ब्रिटिश आश्रित राज्य होना स्वीकार कर लिया।

जयमल्ल—मेवाड़का एक राजपूत वीर। बादशाह अकबरकी सेनाओंने जब चित्तौड़को घेर लिया तब राणा उदयसिंह उसको अपने भाग्यपर छोड़कर जंगलोंमें भाग गया और चित्तौड़का दुर्ग जयमल्लको सौंप गया। जयमल्लने वीरतापूर्वक चार महीने (२० दिसम्बर १५६७ ई० से २३ फरवरी १५६८ ई०) तक दुर्गकी रक्षा की। २३ फरवरीको वह खुद बादशाह अकबर द्वारा चलाये गये तोपके गोलेसे मारा गया। जयमल्लके वीरगति प्राप्त करनेके बाद चित्तौड़का पतन हो गया।

जयरुद्रमल्ल—नेपालका राजा, जिसे तिरहुतके राजा हरिसिंहने १३४२ ई०में अपने अधीन कर लिया। वह तथा उसके उत्तराधिकारी पाटन और काठमांडू क्षेत्रोंपर पन्द्रहवीं शताब्दीके मध्य तक राज्य करते रहे।

जयसिंह—मेवाड़का महाराणा (१६८०–६८ ई०), जिसने अपने पिता राजसिंहकी गद्दी प्राप्त की। उसने औरंगजेबकी फौजका मुकाबला किया और १६८१ ई० के अंतमें उससे संधि कर ली। इस संधिके द्वारा उसने जजिया (दे०)के बदले मुगल बादशाहको तीन परगने सौंप दिये। आक्रमणकारी मुगल सेना मेवाड़से वापस लौट आयी।

जयसिंह—आमेर (जयपुर)का राजा, जिसने शाहजहाँके शासनकालके अंतिम भागमें तथा औरंगजेबके शासनकालके प्रारम्भिक भागमें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। जब शाहजहाँ बीमार पड़ा और उसके बेटोंमें राजगद्दीके लिए

लड़ाई होने लगी तो जयसिंहको शाहजादा शुजाके खिलाफ भेजा गया। उसने शाहजादेको हरा दिया और बंगालकी सीमाओं तक उसका पीछा किया। शाहजादा दारा जब देवराईकी लड़ाईमें हार गया तो उसका पीछा करनेके लिए जयसिंहको भेजा गया। उसने दाराका सिंध तक पीछा किया। इसके बाद औरंगजेबने उसे दक्खिन भेजा। वहाँ वह १६६५ से १६६६ ई० तक बीजापुरपर हमले करता रहा, परन्तु उसे ले न सका। उधर शिवाजी (दे०) के विरुद्ध उसे अधिक सफलता मिली। उसने शिवाजीपर चारों ओरसे चढ़ाई बोल दी और उनकी राजधानी पुरन्दरके किलेको घेर लिया। शिवाजीको विवश होकर उसके साथ १६६५ ई०में पुरन्दरकी संधि करनी पड़ी, जिसके द्वारा उन्होंने मुगल बादशाहसे सुलह कर ली, उसे २३ किले सौंप दिये और बादशाहकी सेवा करना स्वीकार कर लिया। उसने शिवाजीको १६६६ ई०में आगरा मुगल दरबारमें जानेके लिए राजी कर लिया। बीजापुरका किला जीतनेमें उसकी असफलतासे औरंगजेब उससे नाखुश हो गया और उसे दक्खिनसे वापस बुला लिया गया। १६६७ ई० में दिल्ली लौटते हुए रास्तेमें उसकी मृत्यु हो गयी।

जयसिंह सवाई–आमेरका राजा। यह बड़ा ही वीर और कूट-नीतिज्ञ था। औरंगजेबकी मृत्युके बाद जब मुगल साम्राज्य-में अव्यवस्था फैल रही थी, उसका नाम चमक उठा। उसने बहादुरशाह प्रथमके विरुद्ध बगावतका झंडा बुलंद कर दिया, पर बादशाहने उसे क्षमा कर दिया। वह मालवा-में और बादमें आगरामें बादशाहका प्रतिनिधि नियुक्त हुआ। पेशवा बाजीराव प्रथमके साथ उसके मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे। मुगल साम्राज्यके खंडहरोंपर हिन्दू पद पादशाहीकी स्थापना करनेके पेशवा-लक्ष्यसे उसे सहानुभूति थी। परन्तु आमेरपर ४४ वर्ष राज्य करनेके बाद १७४३ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। इसीके राज्यकालमें गुलाबी नगर जयपुरके रूपमें नयी राजधानीकी रचना हुई।

जयसिंह सूरी–एक संस्कृत नाटककार, जो तेरहवीं शताब्दी ई० के प्रारम्भमें हुआ। उसने १२१९ और १२२९ ई० के बीच 'हम्मीरमदमर्दन' नाटक लिखा।

जयस्तम्भ, राणा कुम्भका–इसे कीर्तिस्तम्भ भी कहते हैं। इसकी स्थापना पन्द्रहवीं शताब्दीके लगभग मध्यमें चित्तौड़के राणा कुंभ (१४३१–६९ ई०) ने मालवा अथवा गुजरातके मुसलमान शासकके ऊपर अपनी विजयके उपलक्ष्यमें की।

जयस्थित मल्ल–तिरहुतके राजाका एक सम्बन्धी था। उसने नेपालके राजाकी लड़कीसे विवाह किया और १३७६ ई० में नेपालकी गद्दी छीन ली। उसने समस्त नेपालमें अपना राज्य स्थापित किया। उसने एक नये राजवंशकी स्थापना की जिसने १४७३ ई० तक अविभाजित नेपालपर राज्य किया।

जयाजीराव शिन्दे (१८४३–८६ ई०)–जब नाबालिग था तभी शिन्दे राजवंशका मुखिया हो गया। उसकी नाबा-लिगीकी अवस्थामें उसका संरक्षक नियुक्त करनेके प्रश्नपर षड्यंत्र रचे जाने लगे। इसके फलस्वरूप लार्ड एलेनबरो (दे०) की सरकारने उसके राज्यपर चढ़ाई करनेके लिए एक फौज भेज दी। महाराजपुर तथा पनियारकी लड़ाइयोंमें शिन्देकी फौज हारी और शिन्देका दर्जा घटकर एक आश्रित राजाका हो गया। गदरके समय जयाजीराव अंग्रेजोंका वफादार बना रहा, हालांकि उसकी सेनाने विप्लवियोंका साथ दिया। पुरस्कारस्वरूप जयाजीको ग्वालियर लौटा दिया गया जिसपर अंग्रेजोंने १८५८ ई० में विप्लवी सेनासे युद्धके समय अधिकार कर लिया था। (देखिये, 'ग्वालियर')

जयापीड़ विनयादित्य–कश्मीरके प्रसिद्ध राजा ललितादित्य (७२४–७६० ई०) का पौत्र जो उसके बाद गद्दीपर बैठा। उसने गौड़ और कन्नौजके राजाओंको हरा दिया। वह विद्वानोंका आश्रयदाता था और क्षीरस्वामी (दे०) जैसे विद्वान् उसके आश्रयमें रहते थे।

जलंधर–पंजाबमें व्यास और सतलज नदियोंके बीचका दोआब। यह महाराज रणजीतसिंहके राज्यके अंतर्गत था, परन्तु प्रथम आंग्ल-सिख युद्धकी समाप्तिपर लाहौरकी संधि (९ मार्च १८४६ ई०) के द्वारा अंग्रेजोंको सौंप दिया गया और ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें शामिल कर लिया गया।

जलालखां लोदी–सुलतान इब्राहीम लोदी (१५१७–२६ ई०) का भाई। १५१७ ई०में उसे जौनपुरका शासक बना दिया गया। परन्तु सल्तनतका यह बटवारा कई लोगोंको स्वीकार नहीं हुआ और जलाल खाँने शीघ्र दिल्लीकी सल्तनतके खिलाफ बगावतका झंडा बुलंद कर दिया। सुल्तानने जब उसके खिलाफ फौजें भेजीं तो वह ग्वालियर भागा, जहाँके राजपूत राजा विक्रमाजीतने उसे शरण प्रदान की। इससे सुल्तान इब्राहीम भड़क उठा और उसने ग्वालियरपर हमला कर दिया और राजा विक्रमाजीत-को आत्मसमर्पण करनेके लिए विवश कर दिया। युद्धमें जलाल खाँ मारा गया।

जलाल खां लोहानी–बिहारका अफगान सुलतान। शेरशाह १५२७ ई० में उसकी नौकरी करने लगा। १५३३ ई०में

सूरजगढ़की लड़ाईमें शेरशाहने उसे हरा दिया और उसके राज्यको दखल कर लिया ।

जलाल खां सूर–शेरशाह (दे०)का पुत्र और उत्तराधिकारी । दिल्लीकी गद्दीपर बैठनेपर उसने सुल्तान इसलामशाह (दे०)की उपाधि धारण की । उसने नौ वर्ष (१५४५–५४ ई०) तक शासन किया ।

जलालुद्दीन–सुल्ताना रजिया (१२३६–४० ई०) (दे०)की उपाधि थी ।

जलालुद्दीन खिलजी–दिल्लीका सुल्तान (१२९०–९६ ई०) एवं खिलजी राजवंशका संस्थापक । उसका मूल नाम फीरोजशाह खिलजी था । दिल्लीके सरदारोंने १२९० ई० में सुल्तान कैकाबादकी हत्या करनेके बाद उसे सुल्तान बनाया, तब उसने अपना नाम जलालुद्दीन रखा । जिस समय वह गद्दीपर बैठा सत्तर वर्षका बूढ़ा था और स्वभावका इतना नरम कि साहसपूर्ण कार्योंके लिए अक्षम था । उसने एक ही सफलता प्राप्त की । उसने १२९२ ई० में मंगोलोंका एक बड़ा हमला विफल कर दिया । परन्तु उसने बहुत बड़ी संख्यामें मंगोल भगोड़ोंको मुसलमान बन जाने और दिल्लीके पास बस जानेकी इजाजत देकर नयी समस्या खड़ी कर ली । बूढ़े सुल्तानके दो बेटे थे, परन्तु प्रियपात्र भतीजा और दामाद अलाउद्दीन (दे०) था । उसीने विश्वासघात करके १२९६ ई० में उसकी हत्या कर दी और दिल्लीकी गद्दीपर उसका उत्तराधिकारी बन गया ।

जलालुद्दीन मंगबरनी–खीवाका सुल्तान । चंगेज खाँ (दे०) की फौजोंने जब उसके राज्यपर हमला किया, वह भागा और १२२१ ई० में दिल्लीके दरबारकी शरण पानेकी कोशिश की । परन्तु सुल्तान इल्तुतमिशने उसे शरण देनेसे इनकार कर दिया । तब वह सिंध और उत्तरी गुजरातको लूटता हुआ फारस भाग गया ।

जलालुद्दीन रूमी–एक ईरानी सूफी रहस्यवादी तथा कवि । उसके विचारोंसे बादशाह अकबर और उसका प्रमुख दरबारी अबुल फजल, इतिहासकार (दे०) बहुत अधिक प्रभावित हुआ था ।

जसवंतराव होल्कर–तुकोजीराव होल्करका पुत्र तथा उत्तराधिकारी । उसने होल्कर राज्यपर १७९८ से १८११ ई० तक शासन किया । (देखिये, होल्कर) ।

जसवंत सिंह–मारवाड़का राजा; जोधपुर उसकी राजधानी थी । वह बादशाह शाहजहाँकी सेनामें कई ऊँचे पदोंपर रहा । जब शाहजहाँ बीमार पड़ा और उसके बेटोंमें गद्दी पानेके लिए लड़ाई छिड़ गयी तो जसवंतसिंह राजधानी में था । उसे औरंगजेबके खिलाफ भेजा गया और यह जिम्मेदारी सौंपी गयी कि औरंगजेबको दक्खिनसे उत्तर भारत न आने दे । परन्तु जसवंतसिंह उज्जैनके निकट धर्मट (दे०) की लड़ाईमें १६५८ ई० में उससे हार गया । बादमें वह बादशाह औरंगजेबकी सेवामें रहा और राजा जयसिंह (दे०)की मृत्युके बाद मुगलोंकी सेवामें सबसे प्रमुख राजपूत सरदार माना गया । उसे शाहजादा मुअज्जम (दे०)के साथ शिवाजीसे लड़नेके लिए भेजा गया, परन्तु कोई सफलता नहीं मिली । अतएव उसे खैबरके दर्रेके मुहानेपर स्थित जमरूदके किलेका फौजदार बनाकर भेजा गया । वहीं १६७८ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी । औरंगजेबको उसकी मृत्युसे काफी राहत मिली । उसने उसके राज्यको जब्त कर लेने तथा उसकी मृत्युके बाद पैदा हुए उसके लड़के अजितसिंहको मुसलमान बनानेकी योजना बनायी । परन्तु यह योजना सफल नहीं हो सकी और इसके फलस्वरूप राजपूतानेमें लम्बी लड़ाई चली, जिसने मुगल साम्राज्यको कमजोर बना दिया ।

जहाँगीर बादशाह–बादशाह अकबर (दे०) का सबसे बड़ा लड़का । १६०५ ई० में उसकी मृत्यु होनेपर उत्तराधिकारी हुआ और १६२७ ई० में मृत्यु होनेतक राज्य करता रहा । बाल्यावस्थामें उसका नाम सलीम था । उसने १६०१ से १६०४ ई० तक पिताके खिलाफ बगावत की, परंतु उसे क्षमा कर दिया गया । वह १५६९ ई० में पैदा हुआ था । उसकी मां राजपूत थी । उसने अपने शासनकालके प्रारम्भमें मुसलमान धर्मको बढ़ानेकी कोशिश की । परंतु अपने पिताकी भाँति, वह भी उदार तथा सहिष्णु था और उसने वही शासन-प्रणाली जारी रखी । शासनके प्रारम्भमें उसे अपने सबसे बड़े बेटे खुसरोकी बगावतका सामना करना पड़ा । अकबरके शासनकालके अंतिम दिनोंमें कुछ लोगोंने खुसरोको गद्दीपर बैठानेका प्रयत्न किया था । जहांगीरने बड़ी फुर्ती दिखायी और बागी शाहजादेका पंजाब तक पीछा किया । वहां वह लड़ाईमें हारा, बंदी बना लिया गया और वापस राजधानी ले आया गया । उसे कैदखानेमें डाल दिया गया, जहां १६२२ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी ।

बादशाह जहांगीर कोई कुशल सेना-नायक नहीं था, फिर भी उसने अपने पितासे जो विशाल साम्राज्य पाया था उसमें उसने वृद्धि की । उसने १६१६ ई० में अहमदनगर तथा १६२० ई० में काँगड़ा जीत लिया । उसने १६१२ ई० में अफगानोंको भी पूरी तरह वशमें कर लिया, जिन्होंने उसमान खांके नेतृत्वमें बंगालमें अपनी स्वतंत्रता बनाये रखी थी । उसने १६१४ ई० में मेवाड़के राणा अमरसिंहसे

भी हार मनवा ली। परंतु फारसके शाहने १६२२ ई० में कंदहार उससे छीन लिया। उसके दरबारमें १६०८–११ ई० तक कैप्टेन हाकिन्स (दे०) और फिर १६१५–१८ ई० तक सर थामस रो रहे। अपने पिताकी भांति उसने भी मुगल साम्राज्यका शक्तिशाली जंगी बेड़ा तैयार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं अनुभव की। पुर्तगालियोंसे होनेवाली नौसैनिक लड़ाइयोंमें वह उनके दूसरे फिरंगी प्रतिद्वन्द्वियोंकी नौसैनिक सहायतापर निर्भर रहता था। इस समय बहुत-से फिरंगी भारतमें पहुँच चुके थे और वाणिज्य सम्बंधी सुविधाएँ प्राप्त करनेका प्रयत्न कर रहे थे।

उसके शासनकालकी सबसे मुख्य घटना १६११ ई० में शेर अफगन (दे०)की विधवा, नूरजहाँ (दे०)से उसकी शादी है। इस शादीके बाद उसने क्रमिक रीतिसे शासनका अधिकाधिक कार्य नूरजहाँपर छोड़ दिया और उसका नाम सिक्कोंपर भी डाला जाने लगा। उसके तीसरे लड़के शाहजादा खुर्रम (शाहजहाँ)ने १६२२ ई० में उसके खिलाफ बगावत कर दी, परंतु उसके सिपहसालार महाबत खां (दे०)ने १६२५ ई० में उसे वशमें कर लिया। अगले साल खुद महाबत खां बगावतपर उतर आया और कुछ समय तक जहाँगीरको भी कैद कर लेनेमें सफल हो गया, परंतु मलका नूरजहाँके युक्ति-कौशलसे उसे छुड़ा लिया गया और महाबत खाँको फिरसे वशमें कर लिया गया। उसका दूसरा लड़का परवेज १६२६ ई० में मर गया और एक साल बाद बादशाह जहाँगीरका भी देहावसान हो गया।

जहाँगीर चित्रकलाका प्रेमी था और उसने अपने समयके दो महान् मुसलमान चित्रकारों, अबुल हसन और मंसूरको संरक्षण प्रदान किया। वह बड़ा न्यायप्रिय था और अपनी प्रजाके साथ न्याय करनेकी भावनासे उसने गद्दीपर बैठनेके बाद ही राजधानीमें अपने महलके फाटकपर एक घंटा लटकवा दिया था, जिसके साथ एक डोरी बंधी थी। न्याय चाहनेवाला कोई भी व्यक्ति इस डोरीसे घंटा बजा सकता था। उसकी धार्मिक प्रवृत्तियोंकी व्याख्या करना सरल नहीं है। निश्चय ही सार्वजनिक रूपसे वह पक्का मुसलमान था, परंतु अनेक वर्षों तक वह ईसाई पादरियोंका इतना अधिक सत्संग करता रहा जिससे यह आशा होने लगी कि वे उसे ईसाई बनानेमें सफल हो जायेंगे। परंतु उसने उन्हें निराश किया। वह अपने पिताकी धार्मिक सहिष्णुताकी नीतिसे हटा नहीं।

जहांदारशाह—बादशाह बहादुरशाह (दे०) का सबसे बड़ा पुत्र था और १७१२ ई० में उसका उत्तराधिकारी हुआ। परन्तु वह बहुत थोड़े समय (१७१२–१३ ई०) राज्य कर सका। उसके भतीजे फर्रुखसियर (दे०)ने १७१३ ई० में उसे हरा दिया और मार डाला।

जहांनारा बेगम—बादशाह शाहजहाँकी दो पुत्रियोंमें बड़ी। बड़ी सुसंस्कृत और तेजस्वी महिला थी। १६४४ ई० में वह अचानक बुरी तरह जल गयी। उसके घावोंको डा० बाउटनने नहीं अच्छा किया, जैसा कि आमतौरसे ख्याल किया जाता है, बल्कि आरिफ नामक गुलामके द्वारा तैयार की गयी दवाने अच्छा किया। पिताकी गद्दी पानेके लिए उसके भाइयोंमें जो युद्ध हुआ उसमें उसने दारा (दे०)का समर्थन किया और औरंगजेब (दे०) के गद्दीपर बैठनेपर जेलमें कैद अपने पिताकी सेवामें अपने दिन बिताये। वह कुमारी ही मरी और उसे निजामुद्दीन औलियाकी मसजिदके अहातेमें एक सादी कब्रमें दफनाया गया। वह शायरा थी और उसकी कब्रपर जो फारसी शेर अंकित है, वह उसीका लिखा हुआ है।

जहाजपुरका किला—मेवाड़से बूंदीको जानेवाले संकीर्ण गिरिपथकी रक्षा करता है। कहा जाता है कि अशोकके पौत्र सम्प्रतिने इसे बनवाया। अनुश्रुतियोंके अनुसार उसे अपने पितामहके साम्राज्यका पश्चिमी भाग उत्तराधिकारमें मिला था।

जहाज महल—जहाजके आकारका यह महल मालवाके खिलजी बादशाहोंकी राजधानी मांडूमें वास्तुकलाकी एक उल्लेखनीय कृति थी। यह दो झीलोंके बीचमें स्थित है। अपने महराबदार बड़े-बड़े कमरों, छतोंपर बने चोटीदार मंडपों तथा सुंदर जलाशयोंके कारण यह मांडूका सबसे दर्शनीय स्थल है। सम्भवतः इसे सुल्तान महमूद खिलजी (१४३६–१४६९) ने बनवाया था।

जहान खाँ—एक योग्य अफगान सेनापति। अहमदशाह अब्दालीने १७५७ ई० में अपने लड़के तैमूरशाहको अपना प्रतिनिधि बनाकर लाहौरमें रख दिया और जहान खाँको उसका वजीर बना दिया। जहान खाँ पंजाबमें शांति बनाये नहीं रख सका और मराठोंने तैमूर शाहको अपदस्थ करके १७५८ ई० में पंजाबपर अधिकार कर लिया।

जहानशाह—बादशाह बहादुरशाह प्रथम (१७०७–१२ ई०) का चौथा बेटा। १७१२ ई० में बादशाहकी मृत्यु होनेपर गद्दी पानेके लिए उसके चारों बेटोंमें जो लड़ाई हुई उसमें इसने भी हिस्सा लिया और मारा गया।

जहानसोज—का अर्थ है दुनियाको जला देनेवाला। यह पदवी गोरके अलाउद्दीन हुसेनको प्रदान की गयी थी। ११५१ ई० में उसने गोरको सर किया और नगरमें आग

लगा दी। यह आग, सात दिन और सात रात जलती रही। उसने सुल्तान महमूद (दे०) के मकबरेको छोड़कर सारे शहरको भस्म कर दिया।

जाकेमान्ट, विक्टर—एक फ्रेंच वनस्पतिशास्त्री, जो लगभग १८३० ई० में पंजाबमें रणजीतसिंहके दरबारमें आया। उसने 'भारतसे पत्र' नामक पुस्तकमें 'शेरे-पंजाब'के सम्बंध-में अपने विचार लिखे हैं। वह रणजीतसिंहकी जिज्ञासु वृत्तिसे बहुत प्रभावित हुआ था और उसे 'एक असाधारण व्यक्ति' मानता था। उसके लिखे ग्रंथोंमें हिमालय क्षेत्रके पेड़-पौधों तथा उस कालके भारतकी सामाजिक अवस्थाके बारेमें महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

जागीर प्रथा—दिल्लीके प्रारम्भिक सुल्तानोंने शुरू की। इस प्रथाके अंतर्गत सरदारोंको नकद वेतन न देकर जागीरें प्रदान कर दी जाती थीं। उन्हें इन जागीरोंका प्रबंध करने तथा मालगुजारी वसूल करनेका हक दे दिया जाता था। यह सामंतशाही शासन-प्रणाली थी और इससे केन्द्रीय सरकार कमजोर हो जाती थी। इसलिए सुल्तान गयासुद्दीन बलबन (दे०)ने इसपर रोक लगा दी और सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीने इसे समाप्त कर दिया। परंतु सुल्तान फीरोजशाह तुगलक (दे०)ने इसे फिरसे शुरू कर दिया और बादके कालमें भी यह चलती रही। शेरशाह और अकबर दोनों इस प्रथाके विरोधी थे। वे इसको समाप्त कर उसके स्थानपर सरदारोंको नकद वेतन देनेकी प्रथा शुरू करना चाहते थे। परंतु बादके मुगल बादशाहोंने यह प्रथा फिर शुरू कर दी। उनको कमजोर बनाने और उनके पतनमें इस प्रथाका भी हाथ रहा है।

जाजऊकी लड़ाई—१७०७ ई० में शाहजादा मुअज्जम (बाद-में बहादुर शाह प्रथम) और उसके छोटे भाई शाहजादा आजमके बीच हुई। इस लड़ाईमें आजम हार गया और मारा गया। इस प्रकार उसके बड़े भाईको गद्दीका उत्तरा-धिकारी होनेका रास्ता साफ हो गया।

जाजनगर—मुसलमानोंने उड़ीसाका उल्लेख इसी नामसे किया है।

जाट—ये लोग बड़े हृष्ट-पुष्ट होते हैं और आगरा, मथुरा, मेरठके आसपास अधिकतर रहते हैं। कुछ नृवंशशास्त्री राजपूतोंकी तरह इनकी उत्पत्ति भी विदेशी जातियोंसे मानते हैं। राजपूतोंकी तरह जाटोंका अठारहवीं शताब्दी-से पूर्व कोई राज्य नहीं रहा। परंतु वे बड़े स्वातंत्र्यप्रिय होते हैं, अतः औरंगजेबकी हिन्दू-विरोधी नीतिसे अत्यंत क्षुब्ध हो गये। १६८१ ई० में उन्होंने बगावत कर दी, अकबरके मकबरेको लूट लिया, उसकी कब्र खोदकर हड्डियां निकालकर जला दीं और मुगल साम्राज्यके लिए अच्छी खासी आफत पैदा कर दी। बादमें उन्हें चूड़ामन सिंहके रूपमें एक नेता मिल गया। उसने थूनमें किला बनवाया। वह एक स्वतंत्र राज्यकी स्थापना करनेका स्वप्न देखता था, परंतु १७२१ ई० में उसे वशमें कर लिया गया। चूड़ामनके भतीजे बदनसिंहने जाटोंको संगठित किया और उनका एक राज्य स्थापित कर दिया। १७५६ ई० में उसकी मृत्यु हो जानेपर उसके उत्तराधिकारी सूरज-मलके राज्यकालमें यह राज्य भरतपुरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसके अंतर्गत आगरा, धौलपुर, मैनपुरी, हाथरस, अलीगढ़, इटावा, मेरठ, रोहतक, फर्रुखनगर, मेवात, रेवाड़ी, गुड़गांव तथा मथुरा जिले थे। सूरजमल (१७५६-६३ ई०) के समयमें जाट इतने शक्तिशाली हो गये थे कि मराठोंने अहमदशाह अब्दालीसे लड़नेके लिए उनकी सहायता मांगी। परंतु मराठा सेनापति सदाशिव राव भाऊ (दे०)के घमंडपूर्ण व्यवहारने जाटोंको इतना नाराज कर दिया कि उन्होंने पानीपत (दे०)की तीसरी लड़ाईमें कोई भाग नहीं लिया। परंतु, जाटोंको वास्तविक खतरेका सामना पूर्वकी दिशासे करना पड़ा। विस्तारशील, ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यने लार्ड वेलेजली (दे०)के प्रशासनकाल-में भरतपुरका किला ले लेनेकी कोशिश की, परंतु सफलता नहीं मिली (१८०५ ई०)। परंतु जाट थोड़े ही समय चैनसे बैठ पाये। १८२६ ई० में अंग्रेजोंने भरतपुरका किला जीत लिया और जाटोंके स्वतंत्र राज्यका अंत हो गया।

जातक कथा—इनमें बुद्धके पूर्वजन्मकी कथाएं मिलती हैं, जो पाली भाषामें हैं। जातक कथाओंके द्वारा हमें गौतम बुद्ध-कालके भारतकी सामाजिक और राजनीतिक दशाका रोचक विवरण मिलता है। इनकी रचना तीसरी शताब्दी ई० पू० से पहले हुई होगी, क्योंकि भरहुत और सांचीके स्तूपोंपर, जो ई० पू० तीसरी शताब्दीके हैं, कई जातक कथाएं अंकित मिलती हैं। इन कथाओंके लेखक अथवा लेखकोंका नाम ज्ञात नहीं है, परंतु इन्होंने बौद्ध धर्म, साहित्य और कलाको बहुत अधिक प्रभावित किया है।

जाति व्यवस्था—हिन्दुओंके सामाजिक जीवनकी विशिष्ट व्यवस्था, जो उनके आचरण, नैतिकता और विचारोंको सर्वाधिक प्रभावित करती है। यह व्यवस्था कितनी पुरानी है, इसका उत्तर देना कठिन है। सनातनी हिन्दू इसे दैवी या ईश्वर-प्रेरित व्यवस्था मानते हैं और ऋग्वेदसे इसका सम्बन्ध जोड़ते हैं। लेकिन आधुनिक विद्वान इसे मानवकृत व्यवस्था मानते हैं जो किसी एक व्यक्ति द्वारा कदापि नहीं बनायी गयी वरन् विभिन्न कालकी परिस्थितियोंके अनुसार

विकसित हुई। यद्यपि प्राचीन धार्मिक ग्रंथोंमें मनुष्यों-को चार वर्णोंमें विभाजित किया गया है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा प्रत्येक वर्णका अपना विशिष्ट धर्म निरूपित किया गया है तथा अन्तर्जातीय भोज अथवा अन्तर्जातीय विवाहका निषेध किया गया है, तथापि वास्तविकता यह है कि हिन्दू हजारों जातियों और उप-जातियोंमें विभाजित हैं और अन्तर्जातीय भोज तथा अन्तर्जातीय विवाहके प्रतिवन्ध विभिन्न समयमें तथा भारत-के विभिन्न भागोंमें भिन्न-भिन्न रहे हैं। आजकल अंतर्जातीय भोज सम्बन्धी प्रतिबंध विशेषकर शहरोंमें प्रायः समाप्त हो गये हैं और अंतर्जातीय विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध भी शिथिल पड़ गये हैं। फिर भी जाति व्यवस्था पढ़े-लिखे भारतीयोंमें भी प्रचलित है और अब भी इस व्यवस्थाके कारण हिन्दुओंको अन्य धर्मावलम्बियोंसे सहज ही अलग किया जा सकता है।

ऐतिहासिक दृष्टिसे जाति व्यवस्था आरम्भिक वैदिक कालमें भी विद्यमान थी, यद्यपि उस समय उसका रूप अस्पष्ट था। उत्तर वैदिक युग और सूत्रकालमें यह पुश्तैनी बन गयी और विभिन्न पेशे विभिन्न जातियोंका प्रतिनिधित्व करने लगे। वेदपाठी, कर्मकांडी और पुरोहिती करनेवाले 'ब्राह्मण' कहलाये। देशका शासन करनेवाले तथा युद्ध-कलामें निपुण व्यक्ति 'क्षत्रिय' कहलाये और सर्वसाधारण, जिनका मुख्य धंधा व्यवसाय और वाणिज्य था, 'वैश्य' कहलाये। शेष लोग, जिनका धन्धा सेवा करना था, 'शूद्र' नामसे पुकारे जाने लगे। ऐतिहासिक कालमें मौर्य शूद्र माने जाते थे। मेगस्थनीजने, जो चन्द्रगुप्त मौर्यके समयमें भारत आया था, लोगोंको सात जातियोंमें विभाजित किया है जो पुश्तैनी जातियां होनेके बजाय वास्तवमें पेशोंके आधारपर वर्गीकृत जातियां थीं। उसने लिखा है, दार्शनिकोंको छोड़कर, जो समाजके शीर्षस्थ स्थानपर थे, अन्य लोगोंके लिए अंतर्जातीय विवाह अथवा पुश्तैनी पेशा बदलना वर्जित था। उसके बादके कालमें जो विदेशी विजेताओंके रूपमें अथवा आप्रवासियोंके रूपमें भारत आये, उन सबको हिन्दू धर्ममें अंगीकार कर लिया गया और उनके धंधोंके अनुसार उन्हें विभिन्न जातियोंमें स्थान मिल गया। युद्ध करनेवाले लोगोंको क्षत्रिय जातिमें स्थान मिला और वे 'राजपूत' कहलाये। इसी प्रकार गोंड आदि आदिवासियोंको भी, जिन्होंने राजनीतिक दृष्टिसे महत्त्व प्राप्त कर लिया था, क्षत्रियोंके रूपमें मान्यता प्राप्त हो गयी। मुसलमानोंके आक्रमण एवं देशको विजय कर लेनेके समय तक भारतीय समाजमें जाति व्यवस्था एक गतिशील संस्था थी। मुसलमानोंके आनेके बाद जाति बन्धन और कड़े पड़ गये। लड़ाईके मैदानमें मुसलमानोंका मुकाबला करनेमें असमर्थ होनेपर हिन्दुओंने अपनी रक्षा निष्क्रिय रूपसे जातीय प्रतिबन्धोंकी कड़ाईमें और वृद्धि करते हुए की। इस रीतिसे भारतमें मुसलमानों-के अनेक शताब्दियोंके शासनकालमें हिन्दू तथा हिन्दू धर्म-को जीवित रखा गया। आधुनिक कालमें जाति प्रथाकी कड़ाई हिन्दुओंमें आधुनिक ज्ञान और विचारोंके प्रसारके फलस्वरूप काफ़ी शिथिल पड़ गयी है। भारतीय गणतंत्रकी नीति धीरे-धीरे जातीय भेदभाव और प्रतिबन्धोंको समाप्त करनेकी है। (**हिस्ट्री आफ कास्ट इन इंडिया'; ई० सेनार्ट, 'कास्ट इन इंडिया'; जे० एच० हट्टन, 'कास्ट इन इंडिया', १९४६**)

जाफर खां—देखिये, 'मुर्शिदकुली खां'।

जाब चारनाक—ईस्ट इंडिया कम्पनीकी हुगली नदीके किनारे स्थित कोठीका मुखिया। शायस्ता खांके बाद नवाब इब्राहीम खां जब बंगालका सूबेदार बना तो उसके निमंत्रण पर जाब चारनाकने वह स्थान चुना जहाँ २४ अगस्त १६९० ई० को कलकत्ता नगरकी नींव पड़ी। अगले वर्ष उसको नवाबका फरमान मिला कि तीन हजार रु० सालाना रकम देनेपर अंग्रेजोंके मालपर चुंगी माफ कर दी जायगी। इस प्रकार जाब चारनाकने बंगालमें कलकत्ता महानगरी और भारतमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके राज्यका शिलान्यास किया। (**सी० आर० विलसन कृत 'ओल्ड फोर्ट विलियम इन बंगाल', दो खण्ड**)

जामा मसजिद—मुसलमानों द्वारा सामूहिक रूपसे नमाज पढ़नेके लिए बड़ी-बड़ी मसजिदोंका निर्माण करना मुगल वास्तुकलाकी विशेषता रही है। जामा मसजिदें कई हैं। सांभलकी जामा मसजिद बाबरने १५२६ ई० में बनवायी। फतहपुर सीकरीकी जामा मसजिद अकबरने तथा दिल्लीकी शाहजहांने बनवायी। शाहजहांने आगरामें भी दूसरी जामा मसजिद बनवायी। बीजापुरकी जामा मसजिद १५६५ ई० में सुल्तान अली आदिलशाह प्रथम (दे०) ने तथा बुरहानपुरकी जामा मसजिद १५८८ ई० में खानदेशके फारूकी वंशके बादशाह अली खांने बनवायी। दिल्लीकी जामा मसजिद इन सब मसजिदोंसे बड़ी और आलीशान है। इसे बनानेमें चौदह साल (१६४४–५८ ई०) लगे और यह मुगल राजधानीके केन्द्रमें स्थित थी।

जालिम—इस विशेषणका प्रयोग बहमनी सुल्तान हुमायूं (दे०) (१४५७–६१ ई०) (दे०) के लिए किया जाता था।

जालिम सिंह–राजपूतानाके कोटा राज्यका राजपूत शासक। इसने १८१७ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनीके साथ सुरक्षा और स्थायी मैत्रीकी आश्रित संधि कर ली जिसके परिणाम-स्वरूप वह मराठोंके आक्रमणसे अपने राज्य तथा परिवार-की रक्षा करनेमें सफल हो गया। शीघ्र ही राजपूतानाके दूसरे शासकोंने भी उसका अनुसरण किया।

जालौक–राजतरंगिणी (दे०) के अनुसार अशोकका पुत्र, उत्तराधिकारके रूपमें कश्मीरका राज्य उसे मिला। कहा जाता है कि वह और उसकी रानी ईशानदेवी शिवके उपासक थे, उसने बहुतसे म्लेच्छोंको कश्मीरसे बाहर निकाल दिया। अशोकके किसी शिलालेखमें उसका उल्लेख नहीं है। उसका भी कोई शिलालेख नहीं मिलता। राज-तरंगिणीमें उसका जो विवरण मिलता है, उससे मालूम होता है कि स्वयं सम्राट् अशोकके परिवारके सभी सदस्य बौद्ध धर्मके अनुयायी नहीं थे।

जावली–सत्रहवीं शताब्दीके मध्यमें महाराष्ट्रका एक छोटा-सा राज्य। उसके राजा चन्द्ररावने शिवाजीके द्वारा स्वराज्यकी स्थापनाके प्रयत्नोंमें योग देनेसे इन्कार कर दिया। इसपर शिवाजीके एक सहायकने उसका वध कर दिया। १६५५ ई०में यह राज्य शिवाजीके नियंत्रणमें आ गया।

जावा–मलय द्वीपपुंजका एक द्वीप। भारतसे इसका बहुत प्राचीन कालसे सम्पर्क रहा है। इसका उल्लेख यव-द्वीपके रूपमें रामायणमें मिलता है। ऐतिहासिक कालमें हिन्दुओंने भारतसे वहाँ जाकर बस्तियाँ बसायीं। आठवींसे ग्यारहवीं शताब्दी ई० तक यह द्वीप शैलेन्द्र साम्राज्यका भाग रहा। उसका पतन होनेपर वहाँ दूसरा हिन्दू राज्य स्थापित हुआ जिसकी राजधानी मजपाहित थी। जावामें बहुत-से हिन्दू तथा बौद्ध मंदिर मिलते हैं, जिनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बोरोबदूर (दे०) में है। मजपाहितके हिन्दू राज्यका पन्द्रहवीं शताब्दी ई० में अंत हो गया। वहाँके हिन्दू राजाको मुसलमान बना लिया गया तथा द्वीपपर मुसल-मानोंका अधिकार हो गया। इस प्रकार कुछ कालके लिए जावासे भारतका सम्बन्ध टूट गया। सत्रहवीं शताब्दीमें फिरंगियोंकी व्यापारिक कम्पनियोंके आगमनसे यह सम्बन्ध फिर स्थापित हो गया। ईस्ट इंडिया कम्पनीने भारत और जावा दोनोंसे व्यापार चलानेकी कोशिश की। परन्तु जावामें अंग्रेजोंका स्थान धीरे-धीरे डच लोगोंने ले लिया। विशेषरूपसे १६२३ ई० में अम्बोयनाके हत्या-कांडके बाद द्वीपपर डच लोगोंका प्रभुत्व हो गया और भारतसे उसका सम्बन्ध फिर टूट गया। परन्तु नेपोलियन-युद्धके समय १८११ ई० में भारतके गवर्नर-जनरल लार्ड मिण्टोने जावामें डच लोगोंपर चढ़ाई कर दी और द्वीपपर अधिकार कर लिया। परन्तु १८१५ ई० में वियना सम्मेलनके फलस्वरूप यह द्वीप डच लोगोंको लौटा दिया गया और अभी हाल तक उनके अधिकारमें ही रहा। द्वितीय महायुद्धके बाद डच लोगोंको वहाँसे हटना पड़ा और स्वतंत्र भारतीय गणराज्यके नैतिक तथा राजनीतिक समर्थनसे जावा तथा उसके पड़ोसके द्वीपोंको मिलाकर इंडोनेशियाके स्वतंत्र राज्यकी स्थापना कर दी गयी।

जाविद खाँ–एक खोजा, जो बादशाह अहमदशाह (१७४८–५४ ई०)के राज्यकालमें दिल्लीके दरबारियोंके दलका नेता बन गया। उसकी वजहसे वजीर सफदरजंग (दे०) की सत्ताको खतरा पैदा हो गया और वजीरकी साजिशसे उसकी हत्या कर दी गयी।

जिंजी–कर्नाटकका एक मजबूत किला, जो गोलकुण्डाके सुल्तानके राज्य क्षेत्रके अंतर्गत था। १६७७ ई० में मराठा छत्रपति शिवाजीने इसपर अधिकार कर लिया। १६८० ई० में शिवाजीके देहावसानके समय यह किला तथा आसपास-का क्षेत्र उनके साम्राज्यके अंतर्गत था। १६८९ ई० में शिवाजीके बड़े पुत्र शम्भूजीको जब औरंगजेबने कैद कर लिया और मरवा दिया, तब उनका दूसरा पुत्र राजाराम गद्दीपर बैठा। वह मुगलोंके डरसे राजधानी रामगढ़को छोड़कर जिंजी भाग गया और रामगढ़पर मुगलोंका अधि-कार हो गया। इसके बाद जिंजी पूर्वीतटपर मराठोंके स्वातंत्र्ययुद्धका प्रमुख केन्द्र बन गया। तीन पहाड़ियोंकी किलेबंदीको मजबूत दीवालसे जोड़कर ३ मीलकी परिधिमें जिंजीका शक्तिशाली किला बना हुआ था। औरंगजेबने सोचा कि राजारामको पराजित करनेके लिए जिंजीके किलेपर अधिकार करना जरूरी है। अतएव १६९० ई० में विशाल मुगल सेनाने जिंजीके किलेको घेर लिया। लेकिन इसकी किलेबंदी इतनी मजबूत थी कि मुगल फौजें इसपर अधिकार न कर सकीं और उन्हें बार-बार पीछे खदेड़ दिया गया। लगभग ८ वर्षके घेरेके बाद ही जिंजी किलेपर १६९८ ई० में औरंगजेबका अधिकार हो सका। लेकिन राजाराम सकुशल किलेसे बाहर निकल गया, अतएव जिंजीपर मुगल फौजोंका अधिकार बेकार साबित हुआ।

बादमें इस किलेपर फ्रांसीसी लोगोंने अधिकार कर लिया। १७६१ ई० में पांडिचेरीके पतनके बाद उन्हें यह किला अंग्रेजोंको सौंप देना पड़ा।

जिन्दा पीर–औरंगजेबके कालमें अनेक भारतीय मुसलमान बादशाह औरंगजेबको इस नामसे सम्बोधित करते थे।

जिन्दां रानी—पंजाबके महाराज रणजीतसिंह (दे०) की पाँचवी रानी तथा उनके सबसे छोटे बेटे दलीपसिंहकी माँ। १८४३ ई० में जब दलीपसिंह गद्दीपर बैठा तो वह नाबालिग था, अतएव जिन्दां रानी उसकी संरक्षिका बनी। परन्तु वह इस पदभारको संभाल नहीं सकी और १८४५ ई० में प्रथम सिखयुद्ध (दे०) छिड़ गया। जब १८४६ ई० में लाहौरकी संधिके द्वारा प्रथम सिख-युद्ध समाप्त हुआ तो जिन्दां रानी दलीपसिंहकी संरक्षिका बनी रही। परन्तु उसकी गतिविधियोंके कारण ब्रिटिश सरकार उसे संदेहकी दृष्टिसे देखने लगी और १८४८ ई० में षड्यंत्र रचनेके अभियोगमें उसे लाहौरसे हटा दिया गया। द्वितीय सिख-युद्ध (१८४९ ई०) जिन कारणोंसे छिड़ा, उनमें एक कारण यह भी था। इस युद्धमें भी सिखोंकी हार हुई। युद्धकी समाप्तिपर दलीपसिंहको गद्दीसे उतार दिया गया और रानी जिन्दांके साथ इंग्लैण्ड भेज दिया गया। वहीं रानीकी मृत्यु हो गयी।

जिन्ना, मुहम्मद अली (१८७६–१९४८ ई०)—पाकिस्तानके संस्थापक भारतीय मुसलमान। उनका जन्म कराचीमें हुआ, कानूनका अध्ययन किया, और बम्बईमें उनकी बैरिस्टरी अच्छी चलने लगी। उन्होंने दादाभाई नौरोजी (दे०) तथा गोपालकृष्ण गोखले (दे०) जैसे कांग्रेसके नरमदलीय नेताओंके अनुयायीके रूपमें भारतीय राजनीतिमें प्रवेश किया। १९१० ई० में वे बम्बईके मुसलिम निर्वाचन क्षेत्रसे केन्द्रीय लेजिस्लेटिव कौंसिलके सदस्य चुने गये, १९१३ ई० में मुसलिम लीगमें शामिल हुए और १९१६ ई० में उसके अध्यक्ष हो गये। इसी हैसियतसे उन्होंने संवैधानिक सुधारोंकी संयुक्त कांग्रेस-लीग योजना पेश की। इस योजनाके अंतर्गत कांग्रेस-लीग समझौतेसे मुसलमानोंके लिए अलग निर्वाचन क्षेत्रों तथा जिन प्रांतोंमें वे अल्पसंख्यक थे वहाँ उन्हें अनुपातसे अधिक प्रतिनिधित्व देनेकी व्यवस्था की गयी। इसी समझौतेको 'लखनऊ-समझौता' कहते हैं।

जिन्ना भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके समर्थक थे। परन्तु गांधीजीके असहयोग आंदोलनका उन्होंने तीव्र विरोध किया और इसी प्रश्नपर कांग्रेससे वे अलग हो गये। इसके बादसे उनके ऊपर हिन्दू राज्यकी स्थापनाके भयका भूत सवार हो गया। उनका कहना था कि अंग्रेज लोग जब भी सत्ता हस्तांतरण करें, उन्हें उसे हिन्दुओंके हाथमें नहीं सौंपना चाहिए, हालांकि वे बहुमतमें हैं। ऐसा करनेसे भारतीय मुसलमानोंको हिन्दुओंकी अधीनतामें रहना पड़ेगा। जिन्ना अब भारतीयोंकी स्वतंत्रताके अधिकारके बजाय मुसलमानोंके अधिकारोंपर ज्यादा जोर देने लगे। उन्हें अंग्रेजोंका सामान्य कूटनीतिक समर्थन मिलता रहा और इसके फलस्वरूप वे अंतमें भारतीय मुसलमानोंके नेताके रूपमें देशकी राजनीतिमें उभड़े। उन्होंने लीगका पुनर्गठन किया और 'कायदे आजम' (महान नेता)के रूपमें विख्यात हुए। १९४० ई० में उन्होंने धार्मिक आधारपर भारतके विभाजन तथा मुसलिम बहुसंख्यक प्रांतोंको मिलाकर पाकिस्तान बनानेकी मांग की। बहुत कुछ उन्हींकी वजहसे १९४७ ई० में भारतका विभाजन और पाकिस्तानकी स्थापना हुई। पाकिस्तानके पहले गवर्नर-जनरल बनकर उन्होंने पाकिस्तानको एक इसलामी राष्ट्र बनाया। पंजाबके दंगे तथा सामूहिक रूपसे जनताका एक राज्यसे दूसरे राज्यको निर्गमन उन्हींके जीवनकालमें हुआ। भारत और पाकिस्तानके बीच कश्मीरका विवाद भी उन्होंने ही खड़ा किया। ११ सितंबर १९४८ ई० को कराचीमें उनकी मृत्यु हुई।

जियाउद्दीन बर्नी—प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार, जिसे सुल्तान फिरोजशाह तुगलक (दे०)का संरक्षण प्राप्त था। उसके ग्रंथ 'तारीखे फिरोजशाही' में उसके संरक्षकके शासनकालका तात्कालिक ब्यौरा है। इसके अतिरिक्त उसके पूर्ववर्ती सुल्तान मुहम्मद तुगलकके शासनका भी ब्यौरा दिया गया है।

जिलेस्पी, जनरल सर आर० आर०—१८११ ई० में फ्रांसीसियोंको जावामें पराजित करके इसने बड़ा नाम कमाया, किन्तु नेपालके पहाड़ी किलेपर अधिकार करनेके प्रयासमें गोरखा युद्ध (१८१४–१५)के दौरान पराजित हुआ और मारा गया। इससे अंग्रेजोंकी प्रतिष्ठाको गहरा धक्का लगा।

जिहाद—वह मजहबी लड़ाई जो मुसलमान लोग अन्य धर्मावलम्बियोंसे लड़ते थे। आज भी झगड़ालू मुसलमान नेता जब-तब जिहादका नारा देते रहते हैं।

जीजाबाई (अथवा जीजीबाई)—मराठा राज्यके संस्थापक शिवाजी (दे०)की माँ। पतिके द्वारा उपेक्षित कर दिये जानेपर भी वह अपने पुत्रकी संरक्षिका बनी रहीं और उनके चरित्र, महत्त्वाकांक्षाओं तथा आदर्शोंके निर्माणमें सबसे अधिक योगदान किया। शिवाजीके जीवनकी दिशा निर्धारित करनेमें उनकी माताका सबसे अधिक प्रभाव था।

जीवन खां—बोलन दर्रेके निकट दादरका एक अफगान सरदार। शाहजहाँका सबसे बड़ा लड़का दारा १६५९ ई० में उसीके पास भागकर शरण माँगने पहुँचा था। शाहजादा दाराने इससे पहले जीवन खाँको शाहजहाँके हुक्मसे सूलीपर चढ़ाये जानेसे बचाया था। परन्तु जीवन खाँ कृतघ्न

निकला और उसने दारा और उसकी दो लड़कियों तथा एक लड़केको औरंगजेबके सिपहसालार बहादुर खाँके सुपुर्द कर दिया। बहादुर खाँ दाराको बंदी बनाकर दिल्ली लाया, जहाँ उसे कुछ समय बाद फाँसी दे दी गयी।

जीवित गुप्त प्रथम–गुप्तवंशके बादके राजाओंमें शुरूमें हुआ। वह हर्षगुप्तका पुत्र और उत्तराधिकारी था, जो छठी शताब्दी ई० के द्वितीय चतुर्थांशमें हुआ। वह पूर्वी हिमालय प्रदेश और बंगालकी खाड़ीके बीचके भूभागमें राज्य करता था। उसके बारेमें और कुछ ज्ञात नहीं है।

जीवित गुप्त द्वितीय–बादके गुप्त राजाओंमें अंतिम राजा। वह आठवीं शताब्दीके छठे दशकमें राज्य करता था। उसके देववरनाकके शिलालेखमें उसके द्वारा भूमिदानका उल्लेख मिलता है। उसके बारेमें और कुछ ज्ञात नहीं है।

जुझारसिंह–राजा वीरसिंह बुंदेला (दे०) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। जहाँगीर (उस समय शाहजादा सलीम)के कहनेसे वीरसिंह बुंदेलाने अबुल फजलको मार डाला था और १६०५ ई० में जहाँगीरके तख्तपर बैठनेपर वह पुरस्कृत हुआ था। जब शाहजहाँ तख्तपर बैठा, तब राजा वीरसिंह बुंदेला द्वारा छीने गये इलाकोंके बारेमें जाँच करनेकी बात चली। इसपर जुझार सिंहने विद्रोह कर दिया, परन्तु उसे शीघ्र वशमें कर लिया गया और हर्जानेके रूपमें उसे बहुत-सा रुपया और जमीन देनी पड़ी। जुझारसिंहने बादशाहकी सेवा करना स्वीकार कर लिया और कई वर्षों तक दक्खिनमें रहा, जहाँ उसने बहुमूल्य सेवा की। उसे ऊँचा मनसब और राजाका खिताब मिला। इससे उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ जाग उठीं और उसने शाहजहाँके हुक्मके खिलाफ अपने पड़ोसी चौरागढ़के राजापर हमला कर दिया और उसे मार डाला। इसपर शाही फौजोंने उसपर चढ़ाई कर दी और उसे शीघ्र हरा दिया। शाही फौजों द्वारा पीछा किये जानेपर वह पड़ोसके जंगलोंमें भाग गया, जहाँ गोंडोंने उसे मार डाला।

जुल्फिकार खां–एक मुगल अमीर, जिसने बहादुरशाह (दे०) के शासनकालमें भारी शक्ति एवं समृद्धि अर्जित की। वह औरंगजेबके प्रधान मंत्री असद खाँका पुत्र था। बहादुर शाहकी मृत्यु के बाद, उसकी गद्दीके लिए होनेवाली लड़ाईमें जुल्फिकार खाँने हस्तक्षेप किया। उसने बादशाहके चारों पुत्रोंके बीच फूट पैदा करा दी तथा जहाँदारशाहको सिंहासन प्राप्त करनेमें सहायता पहुँचायी। जुल्फिकार उसे अपने हाथकी कठपुतली बना कर रखना चाहता था। सिंहासनारोहणके ग्यारह महीने बाद १७१३ ई० में उसने जहाँदारशाहको कत्ल कर दिया और फर्रुखसियरको गद्दीपर बिठाया। १७१३ ई० में फर्रुखसियरके हुक्मसे उसे कत्ल कर दिया गया।

जूना खाँ–देखो मुहम्मद तुगलक।

जेकब, जान (१८१२–५८ ई०)–१८२८ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनीके तोपखानेमें प्रविष्ट हुआ। उसने पहले अफगान-युद्ध (दे०) तथा १८४३ ई० में सिंधमें मियामीकी लड़ाईमें हिस्सा लिया। १८४७ ई० में वह सिंधका राजनीतिक अधीक्षक नियुक्त किया गया। वह योग्य प्रशासक था और उसने अपने व्यक्तिगत प्रभाव तथा फौजी कार्रवाइयोंसे सिंधकी सीमापर शांति स्थापित की। वह कुशल पर्यवेक्षक था और उसने १८५३ ई० में भारत सरकारको चेतावनी दे दी थी कि सिपाहियोंमें गदरकी आशंका है। परन्तु लार्ड डलहौजीने जल्दी भयभीत होनेवाला कहकर उसकी निंदा की। १८५८ ई० में दिमागमें सूजन आ जानेसे सिंधमें उसकी मृत्यु हो गयी। सिंधका जैकोबाबाद नगर उसीकी याद दिलाता है।

जेजाकभुक्ति–यमुना और नर्मदा नदियोंके बीचमें स्थित। इसे अब बुंदेलखंड कहते हैं। इसपर चंदेल राजाओंका शासन था। यह अब आंशिकरूपसे उत्तर प्रदेशमें तथा आंशिकरूपसे मध्यप्रदेशमें सम्मिलित है। इसके मुख्य नगर महोबा, कालिंजर तथा खजुराहो हैं, जहाँ बहुतसे सुंदर मंदिर और जलाशय वर्तमान हैं। इन जलाशयोंको पहाड़ियोंके बीचके मार्गको बाँधोंसे अवरुद्ध करके निर्मित किया गया था।

जेटलैण्ड, लार्ड–१९१७ से १९२२ ई० तक बंगालका गवर्नर। एक योग्य प्रशासकसे भी बढ़कर वह एक योग्य लेखक था। उसके प्रमुख ग्रंथ हैं—'लाइफ आफ लार्ड कर्जन' और 'हार्ट ऑफ आर्यावर्त'। उसने जब ये ग्रंथ लिखे, तब वह लार्ड रोनाल्डशेकी उपाधिसे विभूषित हो गया था।

जेन्किन्स, सर रिचर्ड (१७८५–१८५३ ई०)–ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें १८०० ई० में आया और १८०४ ई० में उसका तबादला राजनीतिक विभागमें कर दिया गया। वह १८१० से १८२७ ई० तक नागपुरमें ब्रिटिश रेजिडेंट रहा। १८१८ ई० में अप्पा साहब (दे०)के गद्दीसे उतार दिये जानेके बाद वह अगले राजाकी नाबालिगी अवस्थामें नागपुर राज्यका प्रशासक रहा। उसने १८२८ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनीकी नौकरीसे अवकाश ग्रहण किया। वह १८३७–१८४१ ई० तक ब्रिटिश पार्लियामेन्टका सदस्य रहा। १८३९ ई० में वह ईस्ट इंडिया कम्पनीके कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सका चेयरमैन हो गया।

जेबुन्निसा, शाहजादी—औरंगजेबकी पुत्री (१६३६–१७०६)। वह बड़ी ही गुणवती महिला थी। फारसी और अरबीकी अच्छी विदुषी तथा सुलेखिका थी। उसने अपना अच्छा पुस्तकालय बनाया था। वह अच्छी कवियत्री भी थी। उसने कुरानपर टीका भी लिखी थी।

जेम्स प्रथम—इंग्लैण्डके राजा (१६०३–२५ ई०) ने सर थामस रोको अपना दूत बनाकर १६१५ ई० में बादशाह जहाँगीर (दे०) के दरबारमें भेजा। जेम्स प्रथम इंग्लैण्डका पहला राजा था, जिसने भारतसे सीधा सम्पर्क स्थापित किया।

जेवियर, फादर जेरोम—जेसूइट सम्प्रदायका पुर्तगाली साधु। वह अकबरके राज्यकाल (१५५६–१६०५ ई०) में भारत आया था। फादर जेवियर, बादशाह अकबरके घनिष्ट सम्पर्कमें आया। बादशाह उससे सर्वप्रथम १५९५ ई० में लाहौरमें मिला था। जहाँगीरके शासनकाल तक फादर जेवियरने मुगल दरबारसे सम्पर्क बनाये रखा। उसने सम्राट्से धर्मपरिवर्तन करानेकी अनुमति ले ली किन्तु उसे किसीको ईसाई बनानेमें सफलता न मिली। उसने मुगल सम्राटोंसे भारतमें बसे पुर्तगालियोंके लिए कुछ रियायतें अवश्य प्राप्त कीं। फादर जेरोम जेवियर और उसका साथी एमैनुएल पिनहेरो बड़े कुशल पत्रलेखक थे। इन पत्रोंमें अकबरके परवर्ती शासनकाल और जहाँगीरके पूर्ववर्ती शासनकालका रोचक विवरण प्राप्त होता है। **(सर ई० मैक्लगान कृत 'दि जेसुएट्स एण्ड द ग्रेट मुगल')**

जेसुइट पादरी—(अज्ञानियोंमें ईसाई धर्मका प्रचार करनेके उद्देश्यसे संगठित सोसाइटी आफ जीससके सदस्य) ये पहली बार भारत तथा गोआकी पुर्तगाली बस्तीमें १५४२ ई० में आये। बादशाह अकबरसे मिलनेके लिए जो पहले जेसुइट पादरी पहुँचे, वे साधु रिदालफो अकविवा तथा साधु अन्तानियो मोनसेरेत (दे०) थे। वे १५८० ई० में फतहपुर सीकरीमें बादशाहसे मिले। जेसुइट पादरियोंका दूसरा दल १५९० ई० में बादशाहके दरबारमें पहुँचा और तीसरा दल १५९५ ई० में आया। बादशाहने जेसुइट पादरियोंकी बातें ध्यान और सम्मानसे सुनीं और एक समय यह आशा होने लगी कि वे बादशाहको ईसाई धर्ममें बपतिस्मा देनेमें सफल हो जायेंगे। उन्होंने भारतमें व्यापार करनेवाली पुर्तगाली कम्पनीको राजनीतिक तथा व्यापारिक सुविधाएँ दिलानेकी भी कोशिश की। परन्तु उनकी सारी कोशिशें विफल रहीं और अकबरने ईसाई धर्ममें बपतिस्मा नहीं लिया। जेसुइट पादरी जहाँगीरके दरबारमें भी पहुँचे। उसने उन्हें अपना गिरजाघर बनाने, अपने पादरियोंके लिए लाहौरमें एक मठ बनवाने तथा बादशाहकी भारतीय प्रजाको बपतिस्मा देकर ईसाई बनानेकी इजाजत दे दी। परन्तु जहाँगीरने भी जेसुइट पादरियोंकी यह आशा पूरी नहीं की कि वह बपतिस्मा लेकर ईसाई बन जायगा। बादमें राजनीतिक कारणोंसे उसने पुर्तगालियोंके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। फलस्वरूप उसने जेसुइट पादरियोंको आदेश दिया कि वे गिरजाघर बंद कर दें और उसकी प्रजाको बपतिस्मा देकर ईसाई न बनायें। जहाँगीरके राज्यकालके बाद जेसुइट पादरियोंका सारा राजनीतिक प्रभाव समाप्त हो गया। फिर भी उन्होंने भारतमें ईसाई धर्मका प्रचार-कार्य जारी रखा, बहुतसे भारतीयोंको ईसाई बनाया और कलकत्ताके सेंट जैवियर कालेज जैसी शिक्षण संस्थाओंकी स्थापना की।

जेहलम (अथवा झेलम)—पंजाबकी पाँच मुख्य नदियोंमेंसे एक। यूनानियोंने इसका नाम हाइडस्पीस लिखा है, जिसके पूर्वमें पुरु (पोरस) का राज्य था। मकदूनियाके राजा सिकंदरने जब ३२६ ई० पू० में भारतपर आक्रमण किया तो पुरु पहला भारतीय राजा था, जिसने उसका प्रबल प्रतिरोध किया।

जैकसन, कवर्ली—१८५७ ई० में गदरके आरम्भिक कालमें अवधका चीफ कमिश्नर। वह बड़े क्रोधी स्वभावका था, उसमें युक्ति-कौशल और संयमका अभाव था। उसने गद्दीसे उतार दिये गये अवधके नवाबकी फौज बर्खास्त कर दी और इस तरह उस फौजके सिपाहियोंमें भारी असंतोष उत्पन्न कर दिया, जिनकी जीविकाका कोई साधन नहीं रह गया था। उसने अवधके ताल्लुकेदारोंकी रियासतोंकी जाँच आरम्भ की, जिससे इस प्रभावशाली वर्गमें भारी हैरानी और बेचैनी फैल गयी, फौजके बर्खास्त सिपाहियों और भयभीत ताल्लुकेदारोंने गदरमें प्रमुख हिस्सा लिया। १८५४ ई० में हेनरी लारेंसको जैकसनकी जगह भेजा गया, परन्तु उस वक्त तक इतनी देर हो चुकी थी कि गदरको रोकना सम्भव नहीं था।

जैकोबाबादकी संधि—ब्रिटिश भारतकी सरकार और कलातके खानके बीच १८७६ ई० में हुई। इस संधिके द्वारा फौजी छावनीके रूपमें क्वेटा नगर ब्रिटिश भारतकी सरकारको मिल गया।

जैतपुर—एक छोटा-सा देशी राज्य, जिसे लार्ड डलहौजी (दे०) ने १८५० ई० में जब्तीका सिद्धांत लागू करके ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया।

जैन धर्म–इसका प्रवर्त्तन छठी शताब्दी ई० पू० में वर्धमान महावीर (दे०)ने पार्श्वनाथकी शिक्षाओंके आधारपर किया जो उनसे पहले हुए थे। पार्श्वनाथ और महावीर दोनों राजकुलमें जन्मे थे, दोनोंने संसार त्याग दिया और अनागार श्रमण बन गये। महावीरने पूर्ण (केवल) ज्ञान प्राप्त किया और जिन (इन्द्रियोंके विजेता) तथा निर्ग्रन्थ (बाह्य और आभ्यंतर ग्रंथियोंसे रहित) कहलाने लगे। इसीलिए उनके अनुयायियोंको जैन और निगंठ (निर्ग्रन्थ) दोनों कहते हैं। जैन धर्ममें ब्राह्मण धर्मका कर्म (दे०) तथा पुनर्जन्मका सिद्धांत ग्रहण कर लिया गया है, परन्तु वेदोंको प्रमाण नहीं स्वीकार किया जाता, वर्णभेद नहीं माना जाता और यज्ञमें पशुओंकी बलिका विरोध किया जाता है। वह परमात्माको इस जगतका कर्त्ता नहीं मानता। वह मानता है कि प्रत्येक मनुष्यका चैतन्ययुक्त आत्मा स्वभावसे अनंत गुणोंसे युक्त होता है और जब अपने शुद्ध रूपको प्राप्त कर लेता है तो परमात्मा कहलाने लगता है। एक जैनधर्मानुयायीका जीवन-लक्ष्य होता है आत्माको बार-बार जन्म लेनेके बंधनसे मुक्त करके उस सिद्धशिलापर स्थित कर देना जहाँ वह परम आनन्दमें मग्न रहता है। इसे ही निर्वाण अथवा मोक्ष कहा जाता है। मोक्षकी प्राप्ति रत्नत्रय मार्गसे संभव है। रत्नत्रयका आशय जीवनके तीन सिद्धांत रत्नोंसे है—सम्यक् दर्शन (सच्चा विश्वास), सम्यक् ज्ञान (सच्चा ज्ञान) तथा सम्यक् चारित्र (सच्चा आचरण)। रत्नत्रय मार्गपर चलनेके लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य आवश्यक हैं।

जैन धर्ममें अहिंसाके सिद्धांतपर बौद्ध धर्मकी अपेक्षा कहीं अधिक बल दिया जाता है। वह मानता है कि चेतनासे युक्त प्रत्येक पदार्थ जीव होता है और दुःखका अनुभव करता है। इसीलिए जैनधर्मानुयायी किसी जीवको दुःख पहुँचानेसे अपनेको बचाता है। जैन धर्म मोक्षकी प्राप्तिके लिए बाह्य तथा अंतरंग तपपर बल देता है। वह परिग्रह-त्याग नग्नताकी सीमा तक ले जाता है। परन्तु इस विषयमें दो मत पाये जाते हैं। एक वर्ग साधुओंके लिए श्वेत वस्त्र धारण करनेका अनुमोदन करता है। इस प्रकार जैनोंमें दो भेद मिलते हैं। जो साधुके लिए वस्त्र-त्याग (दिगम्बर वेश) आवश्यक मानते हैं, वे दिगम्बर कहलाते हैं। जो साधुओंको श्वेत वस्त्र-धारणकी अनुमति देते हैं, वे श्वेताम्बर कहलाते हैं। जैनधर्मानुयायी यद्यपि जगत्के कर्त्ताके रूपमें परमात्मामें विश्वास नहीं करते, तथापि वे ब्राह्मणोंको अपना पुरोहित बनाते हैं और कुछ हिन्दू देवताओंकी पूजा भी करते हैं। उनके मंदिरोंमें जिन महावीर तथा उनके पूर्ववर्ती तीर्थंकरों (मार्ग-प्रवर्तकों) की मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं, जिनकी पूजा होती है। जैनधर्मानुयायी भी अपनेको हिन्दू मानते हैं, सिर्फ उनके कुछ दार्शनिक तथा धार्मिक सिद्धांत उनसे भिन्न हैं। जैन धर्ममें गृहस्थोंके लिए भी धर्मका विशद विधान है। जैन धर्म कभी भारतकी सीमाओंसे बाहर नहीं फैला। प्राचीन भारतमें देशके दक्षिणी तथा पश्चिमी भाग जैन धर्मके गढ़ थे। जैन धर्मका विशाल साहित्य है। उसका प्राचीन साहित्य 'पूर्व' कहलाता है, जिनकी संख्या चौदह है। यह साहित्य अर्द्धमागधी भाषामें था और उसमें महावीरकी शिक्षाओंका संग्रह था। जैन साहित्यका वर्गीकरण बारह अंगों, उपांगों, मूलसूत्रों आदिमें किया जाता है। जैन धर्ममें विशाल लौकिक साहित्य भी मिलता है, जिसमें महाकाव्य, आख्यान, नाटक, दर्शन-शास्त्र, न्यायशास्त्र, व्याकरण, कोशविज्ञान, काव्यशास्त्र, गणित, नक्षत्र विद्या, फलित ज्योतिष, राजनीतिशास्त्र तथा शिक्षाशास्त्रसे सम्बन्धित ग्रंथ हैं। विविध विषय विभूषित विशाल जैन साहित्यने भारतीय चिंताधारा तथा संस्कृति के विकासमें भारी योगदान किया है।

जैनुल आब्दीन–कश्मीरका आठवाँ सुल्तान। इसने १४२० से १४६० ई० तक शासन किया। उसका शासन धार्मिक सहिष्णुताके सिद्धांत तथा व्यवहारपर आधारित था। उसने हिन्दुओंपर लगे **'जजिया'** (दे०)को निरस्त कर दिया और उन्हें मन्दिर बनानेकी अनुमति भी प्रदान की। वह मांस खानेसे परहेज करता था, उसने गोवधपर प्रतिबन्ध लगाया और साहित्य व ललित कलाको प्रोत्साहन दिया। उसने करोंको कम कर दिया तथा मुद्रा-सुधार किया। वह फारसी, हिन्दी तथा तिब्बती भाषाओंका ज्ञाता था तथा कविता, संगीत व चित्रकलाका संरक्षक था। उसने महाभारत (दे०) तथा राजतरंगिणी (दे०) का अनुवाद संस्कृतसे फारसीमें तथा कुछ फारसी ग्रंथोंका अनुवाद हिन्दीमें कराया। उसने सदाचारपूर्ण जीवन-यापन किया। वह एकपत्नीव्रती था। पुत्रोंके बीच सिंहासनके लिए संघर्ष होनेके कारण, उसके जीवनके अन्तिम वर्ष दुःखपूर्ण बीते। १४७० ई० में उसकी मृत्युके बाद उसके दूसरे पुत्र हाजी खाँने शासनभार सम्हाला।

जोधपुर–राजस्थानका एक नगर एवं राज्य, जो मारवाड़के नामसे अधिक प्रसिद्ध रहा। वहाँके धनी व्यवसायी 'मारवाड़ी' कहलाते हैं। इस नगरकी स्थापना १४५९ ई० में राव जोधाने की जो कन्नौजके राजा जयचंद (दे०)का वंशज था। इस राज्यकी स्थापना इससे काफी पहले राव चंडने की थी, जो जयचंदकी पीढ़ीमें बारहवाँ राजा था।

१५६१ ई० में जोधपुर राज्यको बादशाह अकबरकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी और मुगलोंके यहाँ डोला भेजना पड़ा। १६७८ ई० में राजा जसवंतसिंह (दे०) के देहावसानपर औरंगजेबने उसके लड़केको मुसलमान बनाने और जोधपुरको मुगल साम्राज्यमें मिला लेनेकी योजना बनायी। इसके विरोधमें जोधपुर, जयपुर तथा उदयपुरमें मुगल साम्राज्यका जुआ उतार फेंकनेकी एक संधि हुई। इसके फलस्वरूप राजपूत-युद्ध छिड़ गया, जिसका अंत मुगलों द्वारा राजपूतोंको कुछ सुविधाएँ दिये जानेसे हुआ। परन्तु बादमें त्रिराज्य संधिकी एक धाराको लेकर तीनों राज्योंमें विवाद छिड़ गया। इस धाराके अनुसार जयपुर तथा जोधपुरके राजाओंको उदयपुरके राणा वंशकी लड़की लेनेका अधिकार मिल गया था। मुगल बादशाहोंको लड़कियाँ देनेके कारण दोनों राज्योंमें उदयपुरकी लड़कियाँ नहीं दी जाती थीं। इसके साथ यह शर्त लगा दी गयी कि जयपुर तथा जोधपुरके राजघरानोंमें उदयपुरके राजघरानेकी जो लड़कियाँ ब्याही जायेंगी, उनकी संतानोंको अन्य राजघरानोंकी रानियोंसे उत्पन्न संतानोंकी अपेक्षा सबसे पहले राज्यका उत्तराधिकारी बननेका हक होगा। इस शर्तके फलस्वरूप इन राजघरानोंकी बादकी पीढ़ियोंमें अनेकानेक उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध हुए जिनमें गद्दी पानेके प्रतिद्वन्द्वी दावेदारोंने मराठोंकी सहायता लेना शुरू कर दिया। अंतमें मराठोंने सभी राजपूत राज्योंको अपने अधीन कर लिया और उनके राज्योंको नष्ट कर दिया। १८१८ ई० में जोधपुर राज्यने अंग्रेजोंका आश्रित बनना स्वीकार करके अपनी रक्षा की। गदरके समय यह राज्य अंग्रेजोंका वफादार बना रहा। ३० मार्च १९४९को इसका विलय राजस्थान संघमें कर दिया गया।

जोन्स, सर हारफोर्ड—१८०९ ई० में इंग्लैण्डके राजाका दूत बनाकर फारसके शाहके दरबारमें भेजा गया। उसको यह काम सौंपा गया कि वह फारसको फ्रांस तथा रूसके प्रभावमें न जाने दे। सर हारफोर्डने फारससे एक संधि की, जिसके द्वारा उसने वचन दिया कि वह यूरोपके किसी देशकी सेनाको फारससे होकर भारत जानेकी इजाज़त नहीं देगा और यदि ब्रिटिश भारतपर किसी विदेशी ताकतने हमला किया तो उसकी मदद करेगा। इसके बदलेमें ब्रिटेनने वचन दिया कि यदि फारसपर किसी यूरोपीय ताकतने, चाहे फौजके द्वारा और चाहे आर्थिक सहायताके द्वारा अथवा फौजी अफसरोंकी सेवाएँ उधार देकर, हमला किया तो वह उसकी मदद करेगा। यह आशा की जाती थी कि इस संधिके द्वारा फारसको भारत तथा फ्रांस अथवा रूसके बीच एक मध्यवर्ती राज्य बना दिया जायगा। परन्तु बादके घटनाक्रमसे प्रमाणित हुआ कि इंग्लैण्ड और भारत दोनों फारससे इतनी दूर और इतने निर्बल थे कि रूससे उसकी रक्षा करनेके लिए उसे आवश्यक सहायता देनेमें समर्थ नहीं थे और १८०९ की संधि काम नहीं आयी।

जौनपुर—उत्तर प्रदेशका एक नगर जो पहले एक राज्य था। इस नगरकी स्थापना सुल्तान फीरोजशाह तुगलक (दे०)ने की थी। उसने इसका नामकरण अपने पूर्वाधिकारी मुहम्मद तुगलक (दे०)के नामपर किया, जिसे जूना खाँ भी कहते थे। तैमूरके हमलेके समय इसका शासन ख्वाजा जहाँके हाथमें था, जिसने दिल्लीके सुल्तानोंकी बहुमूल्य सेवा की थी। तैमूरके हमलेके फलस्वरूप सल्तनतमें जो अव्यवस्था फैली, उससे लाभ उठाकर ख्वाजा जहाँने अपनेको स्वतंत्र कर लिया और शर्की वंशकी स्थापना की। इस वंशने ८५ वर्षतक जौनपुरमें राज्य किया। अंतमें सुल्तान बहलोल लोदी (दे०)ने उसकी स्वतंत्रताका अंत कर दिया। शर्कीवंशके राज्यकालमें जौनपुर कला और संस्कृतिका महान् केन्द्र बन गया। उसने वास्तुकलाकी अपनी विशिष्ट शैली विकसित की, जिसका शानदार नमूना अटाला मसजिद है। यह तीसरे सुल्तान इब्राहीमके राज्यकालमें १४०८ ई० में पूरी हुई।

झ

झाँसी—बुंदेलखंडका एक राज्य, जो पेशवा बाजीराव द्वितीयके अधीन था। तीसरे मराठा-युद्ध (दे०)में उसके हार जानेपर १८१९ ई०में यह राज्य ब्रिटिश भारतीय सरकारके संरक्षणमें आ गया। १८५३ ई० में लार्ड डलहौजीके प्रशासन कालमें जब्तीका सिद्धांत लागू करके यह राज्य ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें शामिल कर लिया गया। इससे झाँसीकी रानी लक्ष्मीबाई (दे०) कुपित हो गयीं और १८५८ ई० में वह विप्लवियोंके दलमें सम्मिलित हो गयीं।

ट

टाटा परिवार—जीजीभाई जमशेदजी टाटा (१७८३–१८५९ ई०) से यह वंश प्रचलित हुआ। जीजीभाईका जन्म बड़ौदा राज्यके नौसारी गाँवमें बहुत ही गरीब पारसी

परिवारमें हुआ था। अपने परिश्रम, उत्साह तथा व्यावसायिक कुशाग्रताके कारण वे बहुत बड़े व्यवसायी बन गये। इसी सिलसिलेमें वे चीन गये। उन्होंने २८ वर्षके अन्दर व्यावसायिक पेशेमें दो करोड़ रुपये एकत्र किये। वे बड़े उदार तथा परोपकारी थे, दातव्य संस्थाओंके संस्थापन हेतु ५० लाख रुपयोंका वृत्तिदान (स्थिरदान) उन्होंने बम्बई नगरमें किया था। उनके पुत्र जमशेदजीने १८५८ ई० से व्यवसायका प्रबन्धाधिकरण (व्यवस्थापन) किया और धनसम्पन्नता तथा गतिविधियोंकी अभिवृद्धिमें सफल योगदान किया। अमरीकी गृहयुद्धके दौरान उन्होंने भारतसे अमरीका, कच्चे सूतका निर्यात करके लाखों रुपये पैदा किये। वे इंग्लैण्ड गये। मैनचेस्टरमें वस्त्र विनिर्माण उद्योगका अध्ययन किया और १८८७ ई० में इम्प्रेस कॉटन मिल तथा टाटा स्वदेशी मिलकी नींव डाली। लोनावालामें उन्होंने जलविद्युत परियोजनाका श्रीगणेश किया। उनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी—संकची (वर्तमान जमशेदपुर) में टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनीका संस्थापन, जिसने १९०७ ई० से उत्पादनकार्य प्रारम्भ कर दिया। आज वह संसारके सबसे बड़े इस्पात कारखानोंमेंसे एक है। अपने पिताकी भाँति जनकल्याणके लिए उन्होंने बहुत धन दिया किन्तु इनके वृत्तिदान बड़े उद्देश्यपूर्ण थे। इन्होंने दो ऐसी छात्रवृत्तियाँ प्रदान कीं जिनसे दो भारतीय विद्यार्थी यूरोपमें प्रौद्योगिकी (टेकनॉलोजी) का अध्ययन कर सकें। अपने पीछे बंगलोर टाटा साइंटिफिक रिसर्च इंस्टीट्यूटके निमित्त स्थिरदानके लिए उन्होंने अपार धन छोड़ा, जो उनकी मृत्युके उपरान्त स्थापित हुआ।

टाटाओंने उद्योगोंका पुनरुत्थान करके भारतके औद्योगिक विकासमें महत्त्वपूर्ण भाग लिया। नवीन उद्योगों एवं कारखानोंको स्थापित करके उन्होंने अनुसंधानके लिए मार्गदर्शन किया।

टाल्मी फिलेडेलफस—मिस्रका यवन (यूनानी) राजा (२८५ ई० पू०—२४७ ई०पू०)। उसने डायोनीसियसको अपना दूत बनाकर मौर्य सम्राट् बिन्दुसार (दे०) की राजसभामें भेजा था। उसका उल्लेख अशोक (दे०) के शिलालेख संख्या १३ में हुआ है। अशोकने धर्मविजयके लिए बौद्ध भिक्षुओंको उसके राज्यमें भी भेजा था।

टीपू सुलतान—मैसूरके हैदरअलीका पुत्र तथा उत्तराधिकारी। अप्रैल १७८३ ई० में अपने पिताकी मृत्युके बाद उसने मैसूरका सिंहासन ग्रहण किया। उस समय भारतमें स्थित अंग्रेजोंके साथ मैसूरका युद्ध चल रहा था। अपने पिताकी भाँति टीपू वीर तथा युद्धप्रिय था। उसने युद्ध जारी रखा और ब्रिगेडियर मैथ्यूजकी सेनाको परास्त किया और उसे बंदी बनाया। उसने मार्च १८८४ ई० में अंग्रेजोंको मंगलोरकी संधि करनेके लिए विवश किया। इस संधिके द्वारा दोनोंने एक दूसरेके जीते इलाके लौटा दिये। किन्तु यह संधि अस्थायी सिद्ध हुई, फिर पाँच वर्ष बाद अंग्रेजों और मैसूरके बीच तीसरा युद्ध प्रारंभ हो गया। यद्यपि इस युद्धमें अंग्रेजोंका साथ निजाम तथा मराठा दे रहे थे, तथापि टीपूने पर्याप्त रणकौशल एवं शौर्य प्रदर्शित किया, परन्तु अन्तमें १७९२ ई० में उसे श्रीरंगपट्टम्की संधि करनेके लिए बाध्य होना पड़ा। इस संधिके द्वारा टीपूको विजेता मित्रोंके लिए अपना आधा राज्य, तीन करोड़ रुपये क्षतिपूर्तिके रूपमें और अपने दो पुत्रोंको बंधकके रूपमें अंग्रेजोंके हाथों सौंपना पड़ा। टीपू सुलतान इस अपमानपूर्ण पराजयसे उद्विग्न और क्षुब्ध बना रहा। उसने अंग्रेजोंके विरुद्ध शक्ति-संचय जारी रखा, क्योंकि वह समझता था कि अंग्रेजोंसे अन्ततः युद्ध होना अनिवार्य है। उसने अंग्रेजोंके विरुद्ध सहायता-प्राप्ति की आशासे अपने दूतोंको अरब, काबुल, कुस्तुनतुनियाँ, फ्रांस तथा मारिशसके फ्रांसीसी उपनिवेशमें भेजा, परन्तु मारिशसके अतिरिक्त किसी भी देशने उसका उत्साहवर्धन नहीं किया। उधर अप्रैल १७९८ ई० में लार्ड वैलेजली गवर्नर-जनरलके रूपमें भारत आया। वह टीपूके शत्रुतापूर्ण मंतव्यसे परिचित होनेके कारण उसके विरुद्ध युद्ध करनेके लिए उद्यत हो गया। उसने टीपूको अंग्रेजोंका आश्रित होनेके लिए आमंत्रित किया और उसके द्वारा यह प्रस्ताव ठुकरा दिये जानेपर उसने निजाम और मराठोंके साथ त्रिपक्षीय संधि करके मार्च १७९९ में टीपूके विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी। टीपूने बड़ी वीरतासे युद्ध किया, परन्तु भाग्य उसके विरुद्ध था। तीनों मित्र सेनाओंने तीन विभिन्न दिशाओंसे श्रीरंगपट्टम्की ओर प्रस्थान किया और राजधानीपर घेरा डाल दिया, टीपूने अभूतपूर्व साहसके साथ राजधानीकी रक्षा की। वह श्रीरंगपट्टम्के प्राचीरोंके सामने लड़ता हुआ वीरगतिको प्राप्त हुआ। अस्तु, अंग्रेजोंने मई १७९९ ई० में राजधानीपर अधिकार कर लिया। इस प्रकार टीपू सुल्तानका अंत हो गया। भारतीय इतिहासमें उसका एक विलक्षण व्यक्तित्व था। विद्वेषसे कुछ तात्कालिक अंग्रेज इतिहासकारोंकी दृष्टि उसके प्रति इतनी कलुषित हो गयी थी कि उन्होंने टीपूको एक धर्मान्ध क्रूर शासक वर्णित किया है। किन्तु ये सभी आरोप निराधार हैं। वह इतना सुयोग्य शासक था कि युद्धोंसे ग्रस्त रहनेपर भी उसने मैसूरको एक श्रीसम्पन्न राज्य बना दिया। वह धर्मान्ध

नहीं था और साधारणतः उसने अपनी हिन्दू प्रजाके साथ सद्भावना एवं सहिष्णुताका व्यवहार किया। वह एक दूरदर्शी राजनेता था और यदि उसे भारतमें अंग्रेजोंके विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनानेमें सफलता नहीं मिली तो इसमें उसका दोष नहीं था। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वही एकमात्र ऐसा भारतीय शासक था जिसने किसी भारतीय शासकके विरुद्ध चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, अंग्रेजोंके साथ गठबन्धन नहीं किया, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय शासकोंका व्यवहार उसके प्रति आक्रोशपूर्ण रहा। **(विल्कीज तथा एम० एच० खान कृत 'हिस्ट्री ऑफ टीपू सुलतान')**

टुकरोईका युद्ध—यह युद्ध १५७५ ई० में उड़ीसाके बालासोर जिलेमें हुआ था, जिसमें मुनिम खांके नेतृत्वमें अकबर की मुगल सेनाने बंगालके अफगान शासक दाऊदको परास्त किया और उसे फिर शर्तके साथ छोड़ दिया गया। किन्तु १५७६ ई० के दूसरे युद्धमें वह परास्त हुआ और मार डाला गया।

टेरी एडवर्ड—एक पादरी, जो सर थामस रो (दे०) के साथ मुगल बादशाह जहांगीरके दरबारमें आया था। उसने अपनी भारतयात्राका विवरण लिखा है। उसका ग्रन्थ 'वायज टु ईस्ट इण्डिया' तत्कालीन भारत की घटनाओं तथा लोगोंके विषयमें जानकारी हासिल करनेका प्रमुख साधन है।

टैरिफ बोर्ड—१९२३ ई० में भारतीय उद्योगों की सुरक्षा तथा नये उद्योगोंके पोषणके लिए गठित। लोहा, कपड़ा, शक्कर और सीमेण्ट उद्योगोंको संरक्षण देकर इस बोर्डने अच्छा कार्य किया, जिसके परिणामस्वरूप ये उद्योग फूले-फले।

टोंकका नवाब—देखिये, 'अमीर खाँ'।

टोडरमल, राजा—अकबर बादशाहका वित्तमन्त्री, जो राजाकी उपाधिसे सम्मानित किया गया था। वह पंजाबके लाहौर नगर (अब पाकिस्तान) में एक साधारण परिवारमें उत्पन्न हुआ और १५७३ ई० में अकबरके दरबारमें आया। १५७३ ई० में जब अकबरने गुजरातपर विजय प्राप्त की, तब टोडरमलको मालगुजारीका बन्दोबस्त करनेके लिए वहां नियुक्त किया गया। उसने जमीन नापनेकी समरूप प्रणाली सर्वप्रथम प्रचलित की, उर्वरताके आधारपर जमीनका वर्गीकरण किया तथा लगानकी दर फसलकी एक तिहाई निर्धारित की, जो किसानसे सीधे वसूल की जाती थी। बादमें यह व्यवस्था कुछ स्थानीय परिवर्तनोंके साथ पूरे मुगल साम्राज्यमें लागू कर दी गयी। टोडरमल अच्छा सेनानायक भी था, १५७६ ई० में उसने बंगाल विजय किया, १५८० ई० में बंगाल, बिहार तथा उड़ीसाका सूबेदार बनाया गया। वह ईमानदार, निर्लोभी और सुयोग्य राजसेवक था।

टोपरा—पंजाबमें अम्बालाके निकट स्थित। यहाँ अशोकका एक स्तम्भ था, जिसपर उसके सप्त शिलालेखोंकी एक प्रति उत्कीर्ण थी। इस स्तम्भको सुलतान फीरोजशाह तुगलक (दे०) दिल्ली उठवा कर ले आया, जहाँ यह अब भी विद्यमान है और फीरोजशाहकी लाटके नामसे प्रसिद्ध है। **(अफीफ-ए-सिराज, 'तारीख-ए-फिरोजशाही')**

टोल—देशी संस्कृत विद्यालय, जो अध्यापकोंके घरोंमें स्थित थे। प्राचीन हिन्दू शिक्षा-व्यवस्थाके अनुसार अध्यापकगण इन संस्कृत पाठशालाओंको अपने खर्चसे चलाते थे। इनमें प्रवेश पानेवाले विद्यार्थियोंको वे स्थान, भोजन, वस्त्र उपलब्ध कराते थे। अध्ययन और अध्यापनका समय विद्यार्थी और अध्यापक दोनोंके सुविधानुकूल रखा जाता था। इस शिक्षा-व्यवस्थाके अन्तर्गत अध्यापक और विद्यार्थीका घनिष्ठ सम्पर्क रहता था और विद्यार्थीको विद्या-प्राप्तिके लिए कोई धन नहीं देना पड़ता था। चूंकि विद्यार्थीके भरण-पोषणका भार अध्यापकपर रहता था, इसलिए उनका चुनाव भी उसकी इच्छापर निर्भर करता था। इन पाठशालाओंमें विद्याध्ययनके लिए अधिकांशतया ब्राह्मणोंके बालक प्रवेश करते थे। अन्य वर्णोंके मेधावी विद्यार्थियोंको भी इनमें प्रवेश मिलता था, किन्तु अपने भोजनका प्रबंध उन्हें स्वयं करना पड़ता था। इन पाठशालाओंका खर्च निकालनेमें अध्यापकोंको काफी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती थीं क्योंकि इसके लिए उन्हें स्थानीय जमींदारों तथा दाताओंकी दानशीलतापर निर्भर करना पड़ता था। फिर भी शास्त्रोंका अध्ययन करनेके बाद प्रत्येक ब्राह्मण विद्यादान करना अपना पवित्र कर्त्तव्य मानता था, इसलिए वह अपने घरपर एक टोलकी स्थापना अवश्य करता था। इन टोलोंमें व्याकरण, साहित्य, स्मृति, न्याय और वेदांत अथवा दर्शनकी शिक्षा दी जाती थी। कुछ टोलें अब भी विद्यमान हैं और कुछको सरकारसे अब मासिक अनुदान प्राप्त होता है।

ठ

ठग—लुटेरों तथा हत्यारोंका एक गिरोह। ये लोग यात्रियोंके वेशमें छोटे-छोटे गिरोहोंमें घूमा करते थे और सीधे-सादे

बटोहियोंकी गर्दन रूमालसे बाँधकर, सोते समय या असावधानीकी अवस्थामें मार डालते और फिर उन्हें लूट लेते थे। मध्यभारतमें इनकी संख्या बहुत अधिक थी। १८३० ई० से कई वर्षकी तैयारीके बाद कर्नल स्लीमैनको इनका विनाश करनेमें सफलता प्राप्त हुई।

ठट्ठा प्रान्त—बिचली सिंध घाटीमें अवस्थित। अकबरके समयमें इसे मुलतान (दे०)के सूबेमें मिला दिया गया था, परन्तु औरंगजेबके समय इसे पृथक् सूबा बनाया गया। इस सूबेदारकी राजधानी भी ठट्ठा कहलाती थी। इसी नगरके निकट १३५१ ई० में सुल्तान मुहम्मद तुगलककी मृत्यु हुई थी।

ठाकुर अवनीन्द्रनाथ (१८७१–१९३१)—प्रख्यात कलाकार तथा साहित्यकार, 'इण्डियन सोसायटी ऑफ ओरियण्टल आर्ट्स'की स्थापना की। कला और चित्रकलाकी भारतीय पद्धति पुनः प्रतिष्ठित करके संसारमें उसे उचित सम्मान दिलाया। उनकी चित्रकारीके प्रमुख नमूने हैं—'प्रवासी यक्ष', 'शाहजहाँकी मृत्यु', 'बुद्ध और सुजाता', 'कच और देवयानी' तथा 'उमर खय्याम'।

१९०५ से १९१६ ई० तक वे कलकत्तामें 'गवर्नमेण्ट स्कूल ऑफ आर्ट'के उपप्राचार्य और कुछ समयके लिए प्राचार्य भी रहे। उन्होंने भारतीय चित्रकलाके एक नये स्कूलको जन्म किया। उनके सर्वाधिक प्रख्यात शिष्य नंदलाल बोस थे।

ठाकुर देवेन्द्रनाथ (१८१७–१९०५)—कलकत्ता निवासी श्री द्वारकानाथ टैगोर (ठाकुर)के पुत्र, जो प्रख्यात विद्वान् और धार्मिक नेता थे। अपनी दानशीलताके कारण उन्होंने 'प्रिंस'की उपाधि प्राप्त की थी। पितासे उन्होंने ऊँची सामाजिक प्रतिष्ठा तथा ऋण उत्तराधिकारमें प्राप्त किया। पिताके ऋणका भुगतान उन्होंने बड़ी ही ईमानदारीके साथ किया (जो कि उस समय असाधारण बात थी) और अपनी विद्वत्ता, शालीनता, श्रेष्ठ चरित्र तथा सांस्कृतिक क्रियाकलापोंमें योगदानके द्वारा उन्होंने टैगोर परिवारकी सामाजिक प्रतिष्ठाको और ऊँचा उठाया। वे ब्राह्म समाज (दे०)के प्रमुख सदस्य थे जिसका १८४३ ई० से उन्होंने बड़ी सफलताके साथ नेतृत्व किया। १८४३ ई० में उन्होंने 'तत्वबोधिनी पत्रिका' प्रकाशित की, जिसके माध्यमसे उन्होंने देशवासियोंको गम्भीर चिन्तन तथा हृद्गत भावोंके प्रकाशनके लिए प्रेरित किया। इस पत्रिकाने मातृभाषाके विकास तथा विज्ञान एवं धर्मशास्त्रके अध्ययनकी आवश्यकतापर बल दिया और साथ ही तत्कालीन प्रचलित सामाजिक अंधविश्वासों व कुरीतियोंका विरोध किया तथा ईसाई मिशनरियों द्वारा किये जानेवाले धर्मपरिवर्तनके विरुद्ध कठोर संघर्ष छोड़ दिया। राममोहन राय (दे०)की भाँति देवेन्द्रनाथजी भी चाहते थे कि देशवासी, पाश्चात्य संस्कृतिकी अच्छाइयोंको ग्रहण करके उन्हें भारतीय परम्परा, संस्कृति और धर्ममें समाहित कर लें। वे हिन्दू धर्मको नष्ट करनेके नहीं, उसमें सुधार करनेके पक्षपाती थे। वे समाज-सुधारमें 'धीरे चलो' की नीति पसन्द करते थे। इसी कारण उनका केशवचन्द्र सेन (दे०) तथा उग्र समाज-सुधारके पक्षपाती ब्राह्मसमाजियों, दोनोंसे मतभेद हो गया। केशवचन्द्र सेनने अपनी नयी संस्था 'नवविधान' आरम्भ की। उधर उग्र समाज-सुधारके पक्षपाती ब्राह्म समाजियोंने आगे चलकर अपनी अलग संस्था 'साधारण ब्राह्म समाज'की स्थापना की। देवेन्द्रनाथजीके उच्च चरित्र तथा आध्यात्मिक ज्ञानके कारण सभी देशवासी उनके प्रति श्रद्धा-भाव रखते थे और उन्हें 'महर्षि' सम्बोधित करते थे।

देवेन्द्रनाथजी धर्मके बाद शिक्षाप्रसारमें सबसे अधिक रुचि लेते थे। उन्होंने बंगालके विविध भागोंमें शिक्षा-संस्थाएँ खोलनेमें मदद की। उन्होंने १८६३ ई० में बोलपुरमें एकांतवासके लिए २० बीघा जमीन खरीदी और वहाँ गहरी आत्मिक शांति अनुभव करनेके कारण उसका नाम 'शांति निकेतन' रख दिया और १८८६ ई०में उसे एक ट्रस्टके सुपुर्द कर दिया। यहीं बादमें उनके स्वनामधन्य पुत्र रवीन्द्रनाथने विश्वभारतीकी स्थापना की।

देवेन्द्रनाथजी मुख्य रूपसे धर्म-सुधार तथा शिक्षा-प्रसारमें रुचि तो लेते ही थे, देश-सुधारके अन्य कार्योंमें भी पर्याप्त रुचि लेते थे। १८५१ ई० में स्थापित होनेवाले ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनका सबसे पहला सेक्रेटरी उन्हें ही नियुक्त किया गया। इस एसोसियेशनका उद्देश्य संवैधानिक आंदोलनके द्वारा देशके प्रशासनमें देशवासियोंको उचित हिस्सा दिलाना था। उन्नीसवीं शताब्दीमें जिन मुट्ठी भर शिक्षित भारतीयोंने आधुनिक भारतकी आधारशिला रखी, उनमें उनका नाम सबसे शीर्षपर लिया जायगा। **(एस० चक्रवर्ती कृत 'देवेन्द्रनाथ ठाकुर आत्मजीवनी')**

ठाकुर द्वारकानाथ—(१७९४–१८४६)—कलकत्तामें जोड़ासांकूके प्रसिद्ध ठाकुर (टैगोर) परिवारके संस्थापक। उन्होंने अंग्रेजोंके सहयोगसे व्यापार करके अपार धन अर्जित किया। उन्होंने यूनियन बैंककी स्थापना की जो बंगालियों द्वारा खोला जानेवाला पहला बैंक था। उन्होंने तत्कालीन समाज तथा धर्म-सुधारके आन्दोलनोंमें हिस्सा लिया। वे राजा राममोहन राय (दे०) द्वारा स्थापित

ब्राह्म समाजके सबसे प्रारम्भिक सदस्योंमेंसे थे। उन्होंने १८४३ ई० तक उसका नेतृत्व किया। इसके बाद उनके पुत्र देवेन्द्रनाथ (दे०)ने उसका नेतृत्व संभाल लिया। उन्होंने १८४२ तथा १८४५ ई०में दो बार यूरोप-यात्रा की और महारानी विक्टोरियासे उनके महलमें भेंट की। उन्होंने दोनों हाथों इस तरह पैसा लुटाया कि अंतमें वे कर्जमें डूब गये। उनकी दानशीलता और उदारताके कारण उन्हें प्रिंस (राजा) पुकारा जाता था। १८४६ ई० में लन्दनमें उनकी मृत्यु हो गयी।

ठाकुर रवीन्द्रनाथ (७ मई १८६१–७ अगस्त १९४१)–आधुनिक कालके सबसे महान भारतीय कवि। वे श्री देवेन्द्रनाथ (दे०) ठाकुरके पुत्र थे। उनका जन्म कलकत्तामें हुआ और विश्वख्याति तथा गुरुदेवकी उपाधि प्राप्त करनेके बाद मृत्यु भी वहीं हुई। उन्होंने बाल्यकालमें ही कविता लिखना आरम्भ कर दिया और १८८२ ई०में प्रकाशित उनके 'संध्या-संगीत'से प्रख्यात बंगला उपन्यासकार एवं साहित्यकार तथा हमारे राष्ट्रगान 'वंदेमातरम्' के रचयिता बंकिमचन्द्र चटर्जी (दे०) इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपने गलेकी माला उन्हें पहनाकर उनका सत्कार किया। रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। वे केवल कवि ही नहीं वरन् नाटककार, उपन्यासकार तथा निबंधकार भी थे। बादके जीवनमें वे चित्रकार भी बने। उन्होंने अपने काव्यमें विभिन्न प्रकारके प्रयोग किये हैं। उनकी कविता सहज ही हृत्तंत्रीको झंकृत कर देती है। उनकी विशेष ख्याति गीति-काव्यकारके रूपमें है। १९१३ ई० में 'गीतांजलि'का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित होनेपर उन्हें नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ। उसी वर्ष कलकत्ता विश्वविद्यालयने उन्हें डी०लिट्०की सम्मानित उपाधिसे विभूषित करके अपनेको गौरवान्वित किया। उन्हींके सुझावपर कलकत्ता विश्वविद्यालयने बंगला भाषाकी वर्तनी शुद्ध की और उसे अपनी सबसे ऊँची डिगरीकी परीक्षाओंके पाठ्यक्रममें सम्मिलित किया। १९१३ ई० में ब्रिटिश सरकारने उन्हें 'सर'की उपाधि प्रदान की। संसारके सभी भागोंसे उन्हें सम्मान प्राप्त हुआ और उन्होंने बौद्धिक जगतमें पराधीनताके कालमें भी भारतका मस्तक ऊंचा कर दिया। उन्होंने युरोप, अमेरिका और एशियाका विस्तृत भ्रमण किया और सभी देशोंमें भारतकी कीर्ति-पताका फहरायी।

रवीन्द्रनाथ ऊंचे कवि ही नहीं, वरन ऊंचे देशभक्त भी थे। उन्होंने स्वदेशी आन्दोलनमें प्रमुख भाग लिया। उनकी देशभक्ति संकीर्ण राष्ट्रवादपर नहीं, वरन उदार अंतरराष्ट्रीयतावाद पर आधारित थी, इसीलिए उन्होंने विदेशी वस्त्रोंकी होली जलानेके आंदोलनका समर्थन किया। वे स्वदेशी उद्योगोंको बढ़ावा देनेके पक्षमें थे। उन्होंने ग्राम-सुधारके कार्योंके लिए शांतिनिकेतनके निकट श्रीनिकेतनकी स्थापना की। उन्होंने लोकशिक्षा, लोकगीत, लोकनृत्य, लोक-कला एवं शिल्प तथा सहकारिता आंदोलनको भी प्रोत्साहन प्रदान किया। वे उग्र राजनीतिक आंदोलनोंसे अपनेको प्रायः पृथक् रखते थे, फिर भी विदेशी सरकार जब देशवासियोंपर अत्याचार करने लगती थी तो उसके विरुद्ध अपना स्वर ऊंचा करनेमें वे कभी भयभीत नहीं होते थे। अंग्रेजों द्वारा जालियांवाला बाग (दे०)में किये गये बर्बर हत्याकांडसे क्षुब्ध होकर उन्होंने ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदत्त 'सर'की पदवी लौटा दी। उनका यह कार्य भारतमें ब्रिटिश शासनकी सबसे कठोर भर्त्सना थी।

रवीन्द्रनाथने मानव-संस्कृतिके विकासमें सबसे बड़ा योगदान १९०१ ई०में शांतिनिकेतनमें विश्वभारतीकी स्थापना करके किया। इसकी स्थापनाके लिए उन्होंने तत्कालीन सरकारसे किसी प्रकारकी आर्थिक सहायता नहीं ली और पचास वर्षों तक उसे अपनी पुस्तकोंसे होनेवाली आय तथा अपनी पैतृक सम्पत्तिकी आयसे चलाते रहे। उनके देहावसानके दस वर्ष बाद इस संस्थाका भार भारतीय गणराज्यकी सरकारने अपने ऊपर ले लिया और अब उसने इसे केन्द्रीय विश्वविद्यालयका रूप दे दिया है। रवीन्द्रनाथ श्रेष्ठ कवि और विद्वान ही नहीं, दृष्टा भी थे। वे प्रथमतः भारतीय थे। उनका अंतरराष्ट्रीयतावाद उनके देशप्रेमका ही एक अंग था। महात्मा गांधी भी उन्हें अपना मार्गदर्शक मानते थे और उन्हें श्रद्धापूर्वक 'गुरुदेव' पुकारते थे। **(रवीन्द्रनाथकी कृतियां; थाम्पसन कृत 'रवीन्द्रनाथ', एस० राधाकृष्णन् लिखित 'फिलासफी आफ रवीन्द्रनाथ' तथा एस० एन० दासगुप्त लिखित 'रवीन्द्र-दीपिका')**

ठाकुर सत्येन्द्रनाथ (१८४२–१९२३)–इंडियन सिविल सर्विस परीक्षामें उत्तीर्ण होनेवाले प्रथम भारतीय। इनका जन्म कलकत्तामें हुआ था। ये देवेन्द्रनाथ टैगोर (दे०)के द्वितीय पुत्र और रवीन्द्रनाथ टैगोरके अग्रज थे। १८६४ ई० में उन्होंने इंडियन सिविल सर्विसमें प्रवेश किया और बम्बई प्रांतमें नियुक्त किये गये। उन दिनों सरकारी नौकरीमें भारतीयोंको ऊंचे उठनेका बहुत कम अवसर दिया जाता था। इस कारण अवकाश-प्राप्तिके समय तक वे केवल जिला तथा सेशन जजके पद तक

ही उन्नति कर सके। वे कवि और साहित्यकार भी थे। बंगला भाषामें उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं।

ड

डंकन, जोनाथन (१७५६–१८११ ई०)–ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी सेवामें १७७२ ई०में भारत आया। उसे १७७८ ई०में बनारस स्थित रेजीडेण्ट एवं सुपरिण्टेण्डेण्ट बनाया गया, जहां उसने प्रशासनका सुधार और शिशुबलि-की कुप्रथाका निवारण किया। बादमें १७९५ से १८११ ई० तक वह बम्बईका गवर्नर रहा और काठियावाड़में भी प्रचलित शिशुबलिकी कुप्रथाका निवारण किया। इस प्रकार उसने एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक सुधारका श्रीगणेश किया। बम्बईके गवर्नरकी हैसियतसे उसने चतुर्थ मैसूर-युद्ध (दे०) (१७९९ ई०) और दूसरे मराठा-युद्ध (दे०) (१८०३–०५ ई०)में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। मिस्रके विरुद्ध बैंर्डके अभियान (१८०१ ई०)को संगठित करने तथा गुजरात एवं काठियावाड़में शान्ति स्थापित करनेमें भी उसने विशेष योगदान किया। उसकी कब्रपर लगे पत्थरमें ठीक ही लिखा है कि वह 'सज्जन और न्यायप्रिय व्यक्ति' था।

डंडास, हेनरी–पिटके इण्डिया ऐक्ट (१७८४ ई०)के अन्तर्गत स्थापित बोर्ड आफ कण्ट्रोलका प्रथम अध्यक्ष। १७८६ ई० में उसने वारेन हैस्टिंग्स द्वारा संचालित रोहिल्ला युद्धको पार्लमेण्टमें उचित ठहराया, लेकिन बादमें वारेन हैस्टिंग्स-पर चलाये गये महाभियोगका समर्थन किया। विशेषतया बनारसके राजा चेतसिंह तथा अवधकी बेगमोंके मामलोंमें उसने वारेन हैस्टिंग्सकी कटु आलोचना की। १८०२ ई० में डंडास लार्ड मेलविले बना दिया गया। १८०६ ई० में स्वयम् उसपर सार्वजनिक धनके घोटाले और कर्त्तव्य-अव-हेलनाका आरोप लगाकर महाभियोग चलाया गया; लेकिन वह बरी कर दिया गया। बोर्ड आफ कण्ट्रोलके अध्यक्षकी हैसियतसे उसने बड़ी योग्यता तथा प्रशासनिक कुशलताका परिचय दिया। उसने बोर्ड आफ कंट्रोलको वस्तुतः एक सरकारी विभागका रूप दे दिया और उसके अध्यक्षके पदको भारतमंत्रीके पदका समकक्ष बना दिया।

डच ईस्ट इंडिया कम्पनी–अथवा नीदरलैंडकी यूनाइटेड ईस्ट इंडिया कम्पनी, की स्थापना १६०२ ई० में हुई। इस कम्पनीके पास बहुत अधिक वित्तीय साधन थे और इसे डच सरकारका भी समर्थन प्राप्त था। शुरूमें अंग्रेजोंकी तरह डच लोगोंका भी पुर्तगालियोंने विरोध किया, क्योंकि उन्होंने अंग्रेजोंकी ईस्ट इंडिया कम्पनीके सहयोगसे पूर्वमें पुर्तगालियोंके व्यापारपर एकाधिकारको चुनौती देकर व्यापारमें हिस्सा बंटा लिया। डच ईस्ट इंडिया कम्पनीने अपना ध्यान मुख्यरूपसे मसालेवाले द्वीपोंसे व्यापारपर केन्द्रित किया और १६२३ ई० के अम्बोला हत्याकांडके बाद वहांसे अंग्रेजोंको पूर्णरूपसे निकाल बाहर करनेमें सफल हो गयी। किन्तु भारतमें डच कम्पनीको उतनी सफलता नहीं मिली। पूलीकट और मसुलीपट्टममें उसकी व्यापारिक कोठियां मद्रास स्थित अंग्रेजी कम्पनीकी बराबरी कभी नहीं कर सकीं और बंगालमें चिनसुरा स्थित उसकी कोठी शीघ्र ही कलकत्ता स्थित अंग्रेजी कोठीके सामने फीकी पड़ गयी। १७५९ ई० के विदर्रा युद्ध (दे०)में अंग्रेजोंने चिनसुराके डचोंको परास्त कर दिया। इसके बाद डच लोगोंने बंगाल तथा सम्पूर्ण भारतमें राजनीतिक शक्ति बननेका इरादा छोड़ दिया और अंग्रेजोंके साथ शांति-संधि कर ली और भारतके साथ उनका व्यापार फलता-फूलता रहा। डच कम्पनीने मलय द्वीपसमूहमें अपना विशाल साम्राज्य स्थापित किया। इन द्वीपोंपर उनका आधिपत्य सन् १९५२ तक रहा, जब उन्होंने इंडोनेशियाकी स्वतंत्रताको मान्यता दे दी।

डच ईस्ट इण्डीज–मसालेवाले जावा तथा मोलुक्कास द्वीपों-का संमिलित राज्य। १७वीं शताब्दी ई० के प्रारम्भमें डचों (हालैण्डवासियों)ने इन द्वीपोंमें अपनी व्यापारिक कोठियां स्थापित कीं और अंग्रेजोंको वहां अपना पैर जमाने नहीं दिया, यहांतक कि १६२३ ई० में उन्होंने अम्बोयनामें अंग्रेजोंका कत्लेआम करके वहांसे उनका सफाया कर दिया। उन्होंने बटाविया (जावा)को अपना सदरमुकाम बनाया, जहांसे वे मलयद्वीप-समूहके अधिकांश भागपर शासन करते थे। फलतः मलय-द्वीपसमूह डच ईस्ट इण्डीजके नामसे जाना जाने लगा। १९वीं शताब्दी ई० के प्रारम्भमें जब फ्रांसके नैपोलियनने हालैण्डपर अधि-कार जमाया, तो मलय द्वीप भी उसके नियन्त्रणमें आ गया।

उस समय भारतमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीका गवर्नर-जनरल लार्ड मिण्टो (प्रथम) था। उसने मलय-द्वीपसमूह-पर कब्जा करनेका निश्चय किया। इसके लिए उसने विशेष तैयारी की। १८१० ई० में ब्रिटिश भारतीय फौजने अम्बोयना और मसालेवाले द्वीपोंपर अधिकार कर लिया। दूसरे वर्ष मिण्टोने १२ हजार नौसैनिकोंका बेड़ा सर सैमुअल अकमूटीके नेतृत्वमें भेजा जिसने पहले

मलक्कामें लंगर डाला। लार्ड मिण्टो स्वयम् इस बेड़ेके साथ था। इन सैनिकोंने बटाबियापर आसानीसे अधिकार कर लिया। इसके बाद कोर्नेलिसके किलेके लिए फ्रांसीसी जनरल जैन्सेन्स, जिसे नैपोलियनने कमांडर नियुक्त किया था और अंग्रेजी फौजके बीच घोर युद्ध हुआ। इस युद्धमें विजयके फलस्वरूप सम्पूर्ण मलय-द्वीपसमूह अंग्रेजोंके कब्जेमें आ गया। लार्ड मिण्टो इस द्वीपसमूहका प्रशासन स्टैम्फोर्ड रैफिलसके जिम्मे छोड़कर भारत वापस आ गया। लेकिन जब १८१५ ई० में वियनाकी संधिके फलस्वरूप यूरोपमें शांति स्थापित हुई, तो १८१६ ई० में डच ईस्ट इण्डीज (मलय-द्वीपसमूह) हालैण्डको वापस कर दिया गया। अब यह इण्डोनेशियाके स्वाधीन गणतंत्रके अंतर्गत है।

डफरिन, फ्रेडरिक टेम्पिल हैमिल्टन-टेम्पिल ब्लैकाउड, मार्क्विस आफ–१८८४ से १८८८ ई० तक भारतका वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल। सामान्य तौरपर उसका शासनकाल शांतिपूर्ण था, वैसे तृतीय बर्मा-युद्ध (दे०) (१८८५–८६ ई०) उसीके कार्यकालमें हुआ जिसके फलस्वरूप उत्तरी बर्मा ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यका अंग बन गया। रूसी-अफगान सीमापर स्थित पंजदेहपर रूसियोंका कब्जा हो जानेके फलस्वरूप रूस तथा ब्रिटेनके बीच युद्धका खतरा पैदा हो गया था, लेकिन अफगानिस्तानके अमीर अब्दुर्रमान (दे०) (१८८०–१९०१ ई०)के शांति-प्रयास तथा लार्ड डफरिनकी विवेकशीलतासे युद्ध नहीं छिड़ने पाया। लार्ड डफरिनके कार्यकालमें ही १८८५ ई० का बंगाल लगान कानून बना, जिसके अंतर्गत किसानोंको भूमिकी सुरक्षाकी गारंटी दी गयी, न्याययुक्त लगान निर्धारित किया गया तथा जमींदारों द्वारा बेदखल किये जानेके अधिकारको सीमित कर दिया गया। किसानोंके हितके लिए इसी प्रकारके कानून अवध और पंजाबमें भी बनाये गये। लार्ड डफरिनके कार्यकालकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है १८८५ ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका प्रथम अधिवेशन बम्बईमें होना। उस समय इस घटनाकी महत्ता नहीं आंकी गयी, लेकिन बादमें इसी संगठनके माध्यमसे भारतको १९४७ ई० में स्वाधीनता प्राप्त हुई और तभीसे भारतीय गणराज्यका शासन इस पार्टीके हाथमें है। **(सर अल्फ्रेड लायल कृत 'लाइफ आफ मार्क्विस आफ डफरिन ऐण्ड आवा')**

डफरिन, लेडी हैरियट जार्जियाना–१८६२ ई० में लार्ड डफरिनके साथ विवाह हुआ। भारतमें रहते हुए उसने 'नेशनल एसोसियेशन' नामक संस्थाकी स्थापना की, जिसका उद्देश्य भारतीय महिलाओंके लिए पश्चिमी चिकित्सा-सुविधा उपलब्ध करना था। एसोसियेशनने काउण्टेस आफ डफरिन फण्डकी स्थापना की, जिससे कलकत्तामें लेडी डफरिन अस्पताल खोला गया।

डफ, रेवरेण्ड अलेक्जेण्डर–कलकत्तामें १८३० से १८६३ ई० तक स्काटिश प्रेसबिटेरियन पादरी। संभवतः १८२३ ई० में राजा राममोहन रायके अनुरोधपर चर्च आफ स्काटलैण्डने डफको भारतमें अंग्रेजी शिक्षाके प्रचारके लिए भेजा। राजा राममोहन रायने उसका भारी स्वागत किया और उन्हींकी सहायतासे डफने १८३० ई० में जनरल असेम्बलीज इन्स्टीट्यूशन नामक अंग्रेजी स्कूल खोला। कालांतरमें इस स्कूलने कालेजका रूप धारण कर लिया। पहले इसका नाम डफ कालेज था, लेकिन बादमें स्काटिश चर्च कालेज हो गया।

डफने बंगालमें शिक्षा-प्रसार तथा समाज-सुधारके लिए बहुत कुछ किया। उसने भारतमें विश्वविद्यालयोंकी स्थापना करानेमें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। कलकत्ता विश्वविद्यालय खुलनेपर वह उसकी प्रबन्ध समितिका आरम्भिक सदस्य रहा। १८५९ ई० से कई वर्षों तक वह बेथून सोसाइटीका अध्यक्ष रहा। वह पादरी था और भारतमें ईसाई धर्मके प्रचारके उद्देश्यसे आया था। अपनी पुस्तक 'इण्डिया ऐण्ड इण्डियन मिशन्स'में उसने हिन्दू धर्मके बारेमें यहांतक लिख डाला है कि "पतित व्यक्तियोंके विकृत मस्तिष्कने जिन झूठे धर्मोंकी सृष्टि की, उनमें हिन्दू धर्म सबसे आगे है।" स्वभावतः भारतीय विद्वानों और आमजनतामें डफके विरुद्ध भीषण आक्रोश उत्पन्न हुआ। केशवचन्द्र सेन तथा देवेन्द्रनाथ ठाकुरने डफका कड़ा विरोध किया। बंगालके कुछ ही पढ़े-लिखे लोगोंको वह ईसाई बनानेमें सफल हो सका और निराश होकर १८६३ ई० में स्वदेश वापस लौट गया। उसकी मृत्यु १८७८ ई० में हुई। **(स्मिथ लिखित 'लाइफ आफ अलेक्जेण्डर डफ')**

डफला–आसामकी पूर्वोत्तर सीमा (जो डफला पर्वतमालासे लेकर आधुनिक दारंग जिलेके उत्तर तक फैली हुई है) में रहनेवाली एक जन-जाति।

डलहौजी, लार्ड–१८४८ से १८५६ ई० तक भारतका गवर्नर-जनरल। उसके प्रशासनकालमें ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यका विपुल विस्तार हुआ और शासन-सुधारके अनेक कदम उठाये गये। उसके कार्यकालमें दूसरा सिख-युद्ध (१८४८–४९) हुआ और पंजाबको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया। १८५० ई० में दो अंग्रेजोंके प्रति दुर्व्यवहारके दंडस्वरूप उसने सिक्किमके एक भागपर

अधिकार कर लिया और १८५३ ई० में उसने दूसरा बर्मी-युद्ध छेड़कर प्रोम नगर तक सम्पूर्ण उत्तरी बर्माको ब्रिटिश साम्राज्यका अंग बना लिया। इस प्रकार ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य पेशावरसे बर्मा तक फैल गया, जिसमें बंगालकी खाड़ीका पूरा तटवर्ती प्रदेश शामिल था। उसके मतानुसार भारतीयोंके लिए देशी राजाओंके शासनकी अपेक्षा ब्रिटिश शासन अधिक हितकर था। इसलिए उसने जब्तीका सिद्धांत (डाक्ट्रिन आफ लैप्स) (दे०) ईजाद किया, जिसके अनुसार यदि ब्रिटिश सरकार द्वारा संरक्षित कोई देशी राजा निस्संतान मर जाता है तो उसके दत्तक पुत्रको राज्य प्राप्त करनेका अधिकार नहीं होगा और उसके राज्यको अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया जायगा। इस सिद्धान्तको लागू करके उसने सतारा (१८४८ ई०), जैतपुर तथा संभलपुर (१८४९ ई०), बाघाट (१८५० ई०), उदयपुर (१८५२ ई०), झांसी (१८५३ ई०), नागपुर (१८५४ ई०) और करौली (१८५५ ई०)को ब्रिटिश साम्राज्यमें मिला लिया। बाघाट, उदयपुर और करौलीके राज्य बादको उच्च अधिकारियोंके आदेशपर दत्तक पुत्रोंको लौटा दिये गये। डलहौजीने कर्नाटक और तंजोरकी नाममात्रकी स्वाधीनताको भी यह कहकर समाप्त कर दिया कि अब उनके स्वतंत्र अस्तित्वकी कोई आवश्यकता नहीं है। १८५३ ई० में भूतपूर्व पेशवा बाजीराव द्वितीयकी मृत्युपर उसने उसके दत्तकपुत्र ढोण्ढू पंत (जो नाना साहबके नामसे अधिक विख्यात हैं) को दी जानेवाली ८० हजार पौण्ड सालानाकी वह पेंशन बंद कर दी जो उसके धर्मपिता बाजीरावको मिलती थी। अंतमें निदेशकमंडल (कोर्ट आफ डायरेक्टर्स)के आदेशपर डलहौज़ीने १८५६ ई० में अवधको भी ब्रिटिश साम्राज्यमें मिला लिया। इस प्रकार आठ वर्षोंके अल्प शासनकालमें उसने भारतका राजनीतिक मानचित्र एकदम बदल दिया।

आंतरिक प्रशासनमें भी डलहौजीने अनेक सुधार किये। बंगालका प्रशासन उसने लेफ्टिनेंट-गवर्नर (१८५४) के सुपुर्द कर दिया। सार्वजनिक निर्माण विभाग स्थापित करके उसे ग्राण्ड ट्रंक रोड आदि सड़कोंके निर्माण और रख-रखावका भार सौंप दिया। उसके प्रशासनकालमें सार्वजनिक निर्माणके कार्योंपर अधिक पैसा खर्च होने लगा। सिंचाई व्यवस्थापर पहलेसे कहीं अधिक ध्यान दिया गया और गंगा नहरका निर्माण उसीने शुरू कराया। रेलवे लाइन बिछानेकी एक सुविचारित योजना तैयार की गयी और १८५३ ई० में बम्बईसे थाना तक पहली रेल लाइनका उद्घाटन हुआ। १८५४ ई० में कलकत्ता और रानीगंजके बीच दूसरी रेलवे लाइन चालू हुई। तार-व्यवस्थाका श्रीगणेश भी डलहौज़ीके ज़मानेमें ही हुआ और देश भरमें दो पैसे (तीन नया पैसा)की सामान्य दरपर डाक प्रणाली आरंभ की गयी। भारतकी सार्वजनिक शिक्षा-प्रणालीमें सुधारके लिए उसने १८५४ ई० की शिक्षा संबंधी घोषणा क्रियान्वित की और कलकत्ता, बम्बई एवं मद्रास विश्वविद्यालयोंकी स्थापनाके लिए प्रारंभिक कदम उठाये।

लार्ड डलहौज़ी स्वेच्छाचारी प्रवृत्तिका प्रशासक था और जो कुछ उचित और लाभदायक समझता था, वही करता था। वह दूसरों, विशेषरूपसे भारतीयोंकी भावनाओंकी कोई परवा नहीं करता था और उसने भारतीय राजाओं और साधारण जनता दोनोंके ही मनमें गहरा असंतोष उत्पन्न कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप १८५७ ई० में प्रथम स्वाधीनता-संग्राम (सिपाही-विद्रोह) छिड़ गया। **(सर ली वार्नर कृत 'लाइफ आफ डलहौज़ी')**

डायर, जनरल–ब्रिटिश भारतीय सरकारका एक सेनाधिकारी। अप्रैल १९१९ ई० में वह अमृतसर (पंजाब)में तैनात था। इस वर्षके आरम्भमें रौलट ऐक्ट नामक अत्यंत दमनकारी कानून बनाया गया। केन्द्रीय विधान परिषदके गैर-सरकारी (निर्वाचित) सदस्योंके विरोधके बावजूद यह कानून पास किया गया था। भारतीय जनमतकी इस प्रकारकी घोर उपेक्षा किये जानेसे समस्त भारतमें रोष उत्पन्न हुआ और दिल्ली, गुजरात, पंजाब आदि प्रान्तोंमें जगह-जगह इस कानूनके विरोधमें प्रदर्शन हुए। १० अप्रैलको अमृतसरमें जो प्रदर्शन हुआ, वह अधिक उग्र हो गया और उसमें चार यूरोपियन मारे गये, एक यूरोपीय ईसाई साध्वीको पीटा गया और कुछ बैंकों और सरकारी भवनोंको आग लगा दी गयी।

पंजाब सरकारने तुरन्त बदलेकी कार्रवाई करनेका निश्चय किया और एक घोषणा प्रकाशित कर अमृतसरमें सभाओं आदिपर प्रतिबन्ध लगा दिया तथा नगरका प्रशासन जनरल डायरके नेतृत्वमें सेनाके सुपुर्द कर दिया। उक्त प्रतिबन्धको तोड़कर जलियांवाला बागमें सभा आयोजित की गयी। यह स्थान तीन तरफसे घिरा हुआ था। केवल एक ही तरफसे आने-जानेका रास्ता था। इस सभाका समाचार पाते ही जनरल डायर अपने ९० सशस्त्र सैनिकोंके साथ जलियांवाला बाग आया और बागमें प्रवेश एवं निकासके एकमात्र रास्तेको घेर लिया। उसने आते ही बागमें निश्शस्त्र पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंको बिना किसी चेतावनीके गोली मारनेका आदेश दिया। यह

गोलीकाण्ड १० मिनट तक होता रहा। सरकारी रिपोर्टके अनुसार ३७९ व्यक्ति मारे गये तथा १२०८ घायल हुए। हताहतोंके उपचारकी कोई व्यवस्था नहीं की गयी और जनरल डायर सैनिकोंके साथ सदर मुकाम वापस आ गया, मानो उसने एक ऊँचे कर्तव्यका पालन किया हो।

डायर कदाचित् कुछ यूरोपियनोंकी हत्याके इस प्रतिशोधको पर्याप्त नहीं समझता था। अतएव उसने नगरमें मार्शल-ला लागू किया, जनताके विरुद्ध कठोर दण्डात्मक कार्रवाई तथा सार्वजनिक रूपसे कोड़े लगाये जानेकी अपमानजनक आज्ञा दी। यह आदेश भी दिया कि जो भी भारतीय उस स्थानसे गुजरे, जहां यूरोपीय ईसाई साध्वीको पीटा गया था वह सड़कपर पेटके बल रेंगता हुआ जाय। डायरकी यह कार्रवाई भारतीयोंका दमन करनेके लिए नृशंस शक्ति-प्रयोगका नग्न प्रदर्शन थी। समस्त भारतमें इसका तीव्र विरोध हुआ। रवीन्द्रनाथ ठाकुरने घृणापूर्वक 'सर'की उपाधि सरकारको वापस कर दी। लेकिन ब्रिटिश भारतीय सरकारने इस सार्वजनिक रोष-प्रदर्शनकी कोई परवाह नहीं की। इतना ही नहीं, पंजाब सरकारने जनरल डायरकी इस बेहूदी कार्रवाईपर अपनी स्वीकृति प्रदान की और उसे सेनामें उच्च पद देकर अफगानिस्तान भेज दिया।

फिर भी इंग्लैण्डमें कुछ भले अंग्रेजोंने जनरल डायरकी कार्रवाईकी निंदा की। एस्क्विथने जलियांवाला बाग काण्डको "अपने इतिहासके सबसे जघन्य कृत्योंमेंसे एक" बताया। ब्रिटिश जनमतके दबावसे तथा भारतीयोंकी व्यापक मांगको देखते हुए भारत सरकारने अक्तूबर १९१९ में एक जांच कमेटी नियुक्त की, जिसका अध्यक्ष एक स्काटिश जज, लार्ड हण्टर बनाया गया। कमेटीने जांचके पश्चात् अपनी रिपोर्टमें जनरल डायरकी कार्रवाईको अनुचित बताया। भारत सरकारने उक्त रिपोर्टको मंजूर करते हुए जनरल डायरकी निंदा की और उसे इस्तीफा देनेके लिए विवश किया। लेकिन साम्राज्य-मदमें चूर अंग्रेजोंमें जनरल डायरके बहुतसे प्रशंसक भी थे, जिन्होंने चन्दा करके धन एकत्र किया और उससे जनरल डायरको पुरस्कृत किया। **(देखिये 'हण्टर कमेटीकी रिपोर्ट' तथा पट्टाभिसीतारामैया कृत 'कांग्रेसका इतिहास' प्रथम भाग, पृष्ठ १६५)**

डायोनीसियस–एक यूनानी दूत, जिसे मिस्रके सम्राट तालमी फिलाडेलफस (लगभग २८५–४७ ई० पू०) द्वारा मौर्य सम्राट् बिन्दुसार अथवा अशोकके दरबारमें पाटलिपुत्र भेजा गया था। अशोकके शिलालेख संख्या १३ में तालमीका उल्लेख है।

डिओडोरस–एक प्राचीन इतिहासकार, जिसने मेगस्थनीजके विवरणका आधार लेते हुए भारतपर किये गये सिकन्दरके आक्रमणका इतिहास यूनानी भाषामें लिखा है।

डिग्बी, जान–रंगपुरका कलेक्टर, जिसकी अधीनतामें राममोहन राय (दे०)ने, जब वे केवल २० वर्षके थे, १८०९ ई० में सरिश्तेदारकी हैसियतसे नौकरी शुरू की। इसी दौरान राममोहन रायने अंग्रेजी पढ़ी और कलेक्टरके पास आनेवाली अंग्रेजीकी तमाम पत्र-पत्रिकाओंको पढ़-पढ़कर वे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक गतिविधियोंसे परिचित हो गये।

डिसरायली, बेंजामिन, अर्ल आफ बीकन्सफील्ड–एक अंग्रेज राजनीतिज्ञ और उपन्यासकार। १८३७ ई०में ब्रिटिश पार्लमेण्टका सदस्य बना और अनुदार दलके पील-विरोधी गुटका नेता बन गया। वह पहले १८६८ ई० में तथा बादमें १८७४–८० ई० में ब्रिटेनका प्रधानमंत्री रहा। दूसरी बार उसके प्रधानमंत्रित्व-कालने भारतीय इतिहासपर अपनी छाप छोड़ी। १८७४ ई० में स्वेज नहर कम्पनीके शेयर खरीद कर उसने भारत और ब्रिटेनके बीच एक सीधा निकटका रास्ता खोलनेमें मदद दी। उसीने महारानी विक्टोरियाको १८७७ ई० में भारतकी सम्राज्ञीकी उपाधिसे विभूषित किया। इस प्रकार उसने भारतके ऊपर ब्रिटिश नरेशके सार्वभौम प्रभुत्वपर बल दिया। उसने वाइसराय लार्ड लिटन (दे०) (१८७६–८०)की "अग्रसर नीति"का समर्थन करते हुए द्वितीय अफगान युद्ध (दे०) (१८८७-७९) छेड़ दिया।

डी'एक, काउंत–फ्रांसका एक नौसैनिक अधिकारी। यह फ्रांसके उस जहाजी बेड़ेका कमांडर था जिसपर सवार होकर कर्नाटकमें अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंके बीच हो रहे युद्धके आखिरी चरणमें १७५८ ई० में काउंत दि लाली और फ्रांसीसी सेना भारत आयी थी। प्रारम्भमें डी'एकको भारी सफलता मिली और उसने पीकाकके नेतृत्वमें ब्रिटिश बेड़ेको मद्रासके समुद्रतटसे दूर भागनेको मजबूर कर दिया। किन्तु पीकाकका बेड़ा शीघ्र ही लौट आया और उसने कारीकलसे कुछ दूरीपर डी'एकको परास्त कर दिया (१७५८)। डी'एककी इस पराजयसे चौथे कर्नाटक-युद्धमें फ्रांसीसियोंको बहुत नुकसान पहुँचा और उसे फ्रांस वापस लौट जाना पड़ा।

डुरंड रेखा–सर मार्टीमेर डुरंड (दे०) की अध्यक्षतामें गठित अफगान-सीमा आयोगने १८९३ ई० में अफगानिस्तान तथा भारतके बीच यह सीमा-रेखा निर्धारित की थी। दोनों देशोंके बीच जो कबायली क्षेत्र था, उसके दो भाग कर दिये गये। एक भाग अफगानिस्तानके नियन्त्रणमें और दूसरा

भाग ब्रिटिश भारतीय सरकारके नियंत्रणमें कर दिया गया। ब्रिटिश नियंत्रणमें खैबर क्षेत्रके अफरीदी, महसूद, वजीरी तथा स्वात कबीले और चित्राल तथा गिलगिटके क्षेत्र आये।

डुरंड, सर हेनरी मार्टीमेर—१८७३ ई० में २३ वर्षकी आयुमें इण्डियन सिविल सर्विसमें प्रवेश किया। उसका पिता सर हेनरी मेरियन डुरंड था जो बंगाल इंजीनियर्सका अफसर होकर भारत आया और १८७० ई० में पंजाबका गवर्नर हो गया। लेकिन १८७१ ई० में एक दुर्घटनामें उसकी मृत्यु हो गयी। हेनरी मार्टीमेर डुरंड १८७६ ई० में काबुल-अभियानके दौरान सर फ्रेडरिक राबर्ट्सका राजनीतिक सचिव था। १८८४ ई० में वह भारत सरकारका विदेश-सचिव हो गया और इस पदपर १८९४ ई० तक रहा। १८९३ ई० में एक ब्रिटिश प्रतिनिधि-दलके साथ अफगानिस्तानके अमीर अब्दुर्रहमानके पास जाकर उसने बड़ी चतुराईके साथ अमीरको एक सीमा-आयोगकी स्थापनाके लिए राजी कर लिया। वही इस आयोगका अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इस आयोगने प्रसिद्ध डुरंड रेखा (दे०) निर्धारित की जो भारत और अफगानिस्तानके बीच स्थायी सीमा बनी। पाकिस्तान आज भी डुरंड रेखाको पाकिस्तान और अफगानिस्तानके बीचकी सीमा रेखा बनाये रखनेपर बल देता है।

डूप्ले, जोसेफ फ्रैंक्वाय—फ्रांसीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी व्यापारिक सेवामें भारत आया और बादको १७३१ ई० में चन्द्रनगरका गवर्नर बन गया। १७४१ ई० में वह पाण्डिचेरीका गवर्नर-जनरल बनाया गया और १७५४ ई० तक इस पदपर रहा, जहाँसे वापस बुला लिया गया। वह योद्धा न होते हुए भी कुशल राजनीतिज्ञ और राजनेता था। उसने अपनी दूरदृष्टिसे यह देख लिया (जैसा कि कोई नहीं कर सका) कि १८वीं शताब्दी ई० के पंचम दशकमें दक्षिण भारतके राजनीतिक संतुलनमें परिवर्तन घटित हो रहा है। तत्कालीन दक्षिण भारतकी राजनीतिक व्यवस्थाकी कमजोरियोंको उसीने समझा और इस बातको भी महसूस किया कि एक छोटी-सी यूरोपियन सेना लम्बी दूरीकी मार करनेवाली तोपों, जल्दी गोली दागनेवाली पैदल सिपाहियोंकी बन्दूकों और प्रशिक्षित सैनिकोंकी सहायतासे दक्षिण भारतकी राजनीतिमें निर्णायक भूमिका अदा कर सकती है। उस समय फ्रांस और इंग्लैण्डके बीच युद्ध चल रहा था। डूप्लेका उद्देश्य मद्रासपर कब्जा करके ब्रिटिश शक्तिको पंगु बना देना था। इसी उद्देश्यसे उसने फ्रांसीसी जलसेनापति ला-बोर्दनेको अपना जहाजी बेड़ा सशक्त करनेके लिए धन दिया और सितम्बर १७४६ ई० में मद्रास अंग्रेजोंसे छीन लिया। ला-बोर्दने अंग्रेजोंसे घूस लेकर मद्रास वापस कर देना चाहता था लेकिन डूप्लेने बड़ी चतुराईसे ऐसा नहीं होने दिया। बरसात आनेपर ला-बोर्दनेके बेड़ेने जब मद्राससे हटकर आयल्स आफ फ्रांसमें अड्डा जमाया, तो डूप्लेने स्वयं जाकर मद्रासपर अधिकार किया।

उसने अंग्रेजोंके निकटवर्ती सेण्ट डेविडके किलेको भी लेनेकी कोशिश की लेकिन विफल हो गया। किंतु अन्य स्थानोंपर उसे उल्लेखनीय सफलताएं मिलीं। कर्नाटकके नवाब अनवरुद्दीनने एक बड़ी सेना मद्रासपर कब्जा करनेके लिए भेजी, लेकिन उसे दो बार फ्रांसीसी-भारतीय सेना द्वारा परास्त कर दिया गया। ये दोनों युद्ध कावेरीपाक और सेण्ट टोममें हुए। यूरोपमें फ्रांस और इंग्लैण्डके बीच युद्ध १७४८ ई० में समाप्त हो गया। दोनो देशोंके बीच एक्स-ला-चैपेलकी संधि हुई जिसके अनुसार मद्रास अंग्रेजोंको वापस कर दिया गया। इस प्रकार डूप्लेने जो श्रम किया, वह व्यर्थ गया। कुछ भी हो, डूप्लेने यह सिद्ध कर दिया कि यूरोपीय ढंगसे प्रशिक्षित और आधुनिक शस्त्रोंसे लैस छोटी-सी फ्रांसीसी भारतीय सेना इस देशकी विशाल भारतीय सेनाओंकी अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

डूप्लेने अपने इस अनुभवका प्रयोग करके दक्षिण भारतकी रियासतोंके आन्तरिक मामलोंमें दखल देना शुरू कर दिया। ये रियासतें बाहरसे देखनेमें बड़ी सशक्त जान पड़ती थीं, किन्तु सैनिक दृष्टिसे बहुत कमजोर तथा आन्तरिक विग्रहसे पीड़ित थीं। १७४८ ई० में हैदराबादके निजामके मरनेपर जब उत्तराधिकारका झगड़ा चला, तो डूप्लेने हस्तक्षेप किया और निजामके पुत्र नासिरजंगके विरुद्ध पोते मुजफ्फर जंगका पक्ष लिया। इसी रीतिसे डूप्लेने कर्नाटकमें नवाब अनवरुद्दीनके विरुद्ध चन्दासाहबका पक्ष-समर्थन किया। आरंभमें डूप्लेको कुछ सफलता मिली। १७४९ ई० में आम्बूरकी लड़ाईमें अनवरुद्दीन मारा गया। उसका पुत्र मुहम्मद अली भागकर त्रिचनापल्ली पहुँचा जहां चन्दासाहब और फ्रांसीसियोंकी सेनाने उसे घेर लिया।

दूसरी ओर हैदराबादमें १७५० ई० में नासिरजंग मारा गया और फ्रांसीसी जनरल बुसीके संरक्षणमें मुजफ्फरजंग निजामकी गद्दीपर बैठा दिया गया। नये निजामने डूप्लेको कृष्णा नदीके दक्षिणमें समस्त मुगल प्रदेशका नाजिम मान लिया। नये निजामने पाण्डिचेरीके आसपासके क्षेत्र तथा उड़ीसाके तटीय क्षेत्र और मसुलीपट्टम् भी फ्रांसीसियोंको दे दिये। इस प्रकार डूप्लेने भारतमें फ्रांसीसी

साम्राज्यकी स्थापनाके स्वप्नको साकार होते देखा। लेकिन इसके बाद ही उसका पासा पलटने लगा। वह जिन फ्रांसीसी जनरलोंपर निर्भर था, वे बड़े अयोग्य साबित हुए, फलतः उसकी योजनाएं विफल होने लगीं। फ्रांसीसी सेनापति त्रिचनापल्लीपर कब्जा न कर सके। फ्रांसीसियों द्वारा त्रिचनापल्लीकी घेराबंदी इतने लम्बे समयतक चली कि अंग्रेजी सेना कर्नाटकके शाहजादेकी मददके लिए आ गयी। दूसरी ओर राबर्ट क्लाइवके नेतृत्वमें एक अंग्रेजी सेनाने कर्नाटककी राजधानी आर्काटके किलेको घेर लिया। यह घेरा ५० दिन तक चला। कुछ और अंग्रेजी सेना आ जानेपर क्लाइवने चन्दा साहबको पराजित करके मार डाला।

इसी बीच नया निजाम मुजफ्फरजंग भी मर गया। उसकी जगह सलाबजंग गद्दीपर बैठा। उसने भी फ्रांसीसियोंसे मैत्री कायम रखी। डूप्ले त्रिचनापल्लीपर कब्जा करनेका बराबर प्रयत्न करता रहा। उसने तंजौरके राजाको तटस्थ रखने, मराठा सरदार मुरारीरावका समर्थन प्राप्त करने और मैसूरके शासकको अपनी ओर मिलानेमें सफलता प्राप्त की और ३१ दिसम्बर १७५२ ई० को त्रिचनप्पल्लीकी घेराबंदी पुनः शुरू कर दी। यह घेराबंदी १७५४ के मध्य तक चली। जब यह सब कुछ हो रहा था, फ्रांसकी सरकारने डूप्लेकी नीतियोंकी महत्ताको नहीं समझा और भारतमें होनेवाली इन लड़ाइयोंके भारी खर्चोंसे वह परेशान हो उठी। फ्रांसीसी सरकारने डूप्लेका कार्य पूरा होनेके पहले ही उसे १७५४ ई०में स्वदेश वापस बुला लिया और उसके स्थानपर १ अगस्त १७५४ ई० को जनरल गोदेहूको नया गवर्नर-जनरल बना दिया। गोदेहूने आते ही १७५५ ई०में अंग्रेजोंसे संधि कर ली। इस संधिके अनुसार तय पाया गया कि अंग्रेज और फ्रांसीसी दोनों ही भारतीय रियासतोंके आन्तरिक मामलोंमें हस्तक्षेप नहीं करेंगे और जितना-जितना क्षेत्र अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंके पास है, वह उनके पास बना रहेगा।

इस प्रकार फ्रांसीसी सरकारने ही डूप्लेकी नीतिको विफल कर दिया। यह अवश्य हुआ कि हैदराबादके निजामके दरबारमें फ्रांसीसियोंका प्रभाव बना रहा और वहां जनरल बुसीके नेतृत्वमें फ्रांसीसी भारतीय फौज तैनात रही। निराश डूप्लेकी मृत्यु फ्रांसमें १७६३ ई०में गरीबीकी दशामें हुई।

डूप्ले भले ही विफल रहा हो, यह मानना पड़ेगा कि वह भारतीय इतिहासका एक प्रतिभाशाली और शक्तिमान व्यक्ति था। डूप्लेने जिस राजनीतिक दूरदृष्टिका परिचय दिया, उससे अंग्रेजोंने बादमें स्वयं लाभ उठाया। यद्यपि फ्रांसीसी-भारतीय साम्राज्यकी स्थापना करनेका डूप्लेका स्वप्न साकार नहीं हुआ, तथापि ब्रिटिश-भारतीय साम्राज्यकी स्थापना मुख्यतः डूप्लेकी दूरदृष्टिके ही आधारपर हुई। (पी० कल्त्रू लिखित 'डूप्ले', एच० एच० डाडवेल लिखित 'डूप्ले एण्ड क्लाइव')

डूमा, जनरल–फ्रांसीसी उपनिवेश पाण्डिचेरीका गवर्नर। उसने पांडिचेरीके विकासमें बड़ा योग दिया। १७४४ ई० में उसके स्थानपर डूप्ले आया जिसकी प्रसिद्धिके आगे डूमाकी सफलताएं धूमिल पड़ गयीं।

डेन, सर लुई–१९०४ ई० में ब्रिटिश भारतीय मिशनका नेता बनाकर अफगानिस्तान भेजा गया। यह मिशन दिसम्बर १९०४ ई०से मार्च १९०५ ई० तक काबुलमें रहा और उसने वहांके तत्कालीन शासक अमीर हबीबुल्ला खांके साथ संबंध सुधारनेमें सफलता प्राप्त की।

डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी–१६१६ ई० में स्थापित। इसने १६२० ई० में भारतके पूर्वी समुद्रतटपर त्रंक्वेबारमें अपनी पहली व्यापारिक कोठी स्थापित की। १७५५ ई० में उसने बंगालमें श्रीरामपुरमें अपनी बस्ती स्थापित की। किंतु डेनिश ईस्ट इंडिया कम्पनी कभी पनप नहीं सकी और १८४५ ई०में उसने अपनी कोठियां ब्रिटिश सरकारको बेच दीं।

डे, फ्रांसिस–अरमा गाँव स्थित ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी फैक्ट्रीका मुखिया। उसने १६४० ई० में स्थानीय राजासे मसुलीपट्टम्से २३० मील दक्षिणकी ओर जमीनकी एक पतली पट्टी प्राप्त की, साथ ही वहांपर एक किला बनानेकी अनुमति भी ले ली। उसका नाम फोर्ट सेण्ट जार्ज पड़ा। बादमें चंद्रगिरिके राजाने भी इस अनुदानपर अपनी स्वीकृति दे दी। यह राजा उपर्युक्त स्थानीय राजाका अधीश्वर था। कुछ ही वर्षोंमें फोर्ट सेंट जार्जके चारों ओर एक शहर बस गया, जिसका नाम 'मद्रास' पड़ा जो बादमें चोलमण्डल तटपर ईस्ट इंडिया कम्पनीका मुख्यालय बन गया। फ्रांसिस डे साहसिक और दूरदर्शी व्यक्ति था। उसीने जोर देकर बंगालकी खाड़ीके किनारे स्थित कम्पनीकी बस्तियोंको न छोड़नेका आग्रह किया था। बादकी घटनाओंने सिद्ध कर दिया कि फ्रांसिस डे सही ढंगसे सोच रहा था।

डेरियस (दारा)–देखिये, 'दारयबहु'।

डोरीजियफ–एक मंगोल, जो जन्मतः रूसकी प्रजा था। तिब्बतके दलाई लामाकी सेवामें वह उच्च पदपर पहुँच गया। १८९८ और १९०१ ई० के बीच उसने रूसकी

अनेक बार यात्रा की। १९०१ ई० में उसने रूसके जारके दरबारमें जाकर उससे मुलाकात की। डोरीजियफकी यात्राओंका विज्ञापित उद्देश्य तिब्बतमें बननेवाले बौद्ध मंदिरोंके लिए रूसी बौद्धोंसे चन्दा वसूल करना था। यद्यपि रूसी सरकारने सेण्ट पीटर्सवर्ग स्थित ब्रिटिश राजदूत-को यह आश्वासन दिया कि डोरीजियफकी यात्राओंका कोई राजनीतिक उद्देश्य नहीं है, तथापि ब्रिटिश भारतके वाइसराय लार्ड कर्जनने तिब्बत सरकारके विरुद्ध अनेक निराधार आरोप लगाकर १९०४ ई० में सर फ्रांसिस यंगहसबैण्ड (दे०)के नेतृत्वमें तिब्बतपर चढ़ाई करनेके लिए एक सैन्यदल भेज दिया।

ड्यूक आफ कनाट—महारानी विक्टोरियाका पुत्र और इंग्लैण्डके राजघरानेका प्रमुख सदस्य। मार्च १९२१ ई० में वह भारत आया और गवर्नमेन्ट आफ इंडिया एक्ट १९१९ ई०के अंतर्गत भारतमें लागू नये संविधानका श्रीगणेश किया। इस रीतिसे शाही हाथोंसे नये शासन-विधानका शुभारम्भ करानेपर भी वह भारतीयोंको संतोष नहीं प्रदान कर सका और भारत और इंग्लैण्डके सम्बंध कटु बने रहे।

ड्रेक, रोगर—जून १७५६ ई० में जब नवाब सिराजुद्दौला (दे०)ने कलकत्तापर हमला किया तो ईस्ट इण्डिया कम्पनीके फोर्ट विलियमका गवर्नर था। ड्रेक किलेकी रक्षा करनेके बजाय स्त्री-बच्चोंको लेकर नदीमें खड़े एक जहाजपर सवार होकर भाग खड़ा हुआ। उसने किलेकी रक्षा करनेवाली सेनाको उसके भाग्यपर छोड़ दिया और कलकत्तासे दक्षिणकी ओर भाग गया। जनवरी १७५७ ई०में जब वाटसन तथा क्लाइवने पुनः कलकत्तापर अधिकार कर लिया तो ड्रेकको फिर गवर्नर बना दिया गया। इसके बाद ड्रेकके बारेमें कोई उल्लेख नहीं मिलता।

ढ

ढाका—बाँगलादेशकी राजधानी। यह नगर ब्रह्मपुत्र और गंगा (पद्मा)को जोड़नेवाली बूढ़ी गंगा नदीके तटपर बसा हुआ है। ढाका १६०८ ई० में मुगलोंके सूबा बंगालका मुख्यालय था और उसका नाम बादशाह जहाँगीरके नाम-पर जहाँगीरनगर कर दिया गया था। आसामपर मुगलों-का पहला हमला ढाकासे ही किया गया था जब मीर जुमला वहाँसे बढ़ता हुआ उत्तरी आसाममें अहोम राज्यकी राज-धानी तक पहुँच गया था। वहाँसे मीर जुमला ढाका वापस लौट आया और कुछ समय बाद वहीं उसकी मृत्यु हो गयी। मीर जुमलाके उत्तराधिकारी शायस्ता खाँने १६६३ ई० से तीस वर्षों तक बंगालका शासन ढाकासे ही किया। इंग्लैण्डकी ईस्ट इंडिया कंपनीने महीन बढ़िया सूती वस्त्रों, विशेषरूपसे मलमलका, जिसको बनानेमें ढाकाके बुनकरोंका बड़ा नाम था, व्यापार करनेके लिए ढाकामें एक कोठी स्थापित की। १७०५ ई० में जब मुर्शिद कुली खां बंगालका सूबेदार बना तो वह मुख्यालय ढाकासे हटाकर मुर्शिदाबाद ले गया। इसके बाद दो सौ वर्षों तक ढाका उपेक्षित रहा। १९०५ ई० में वह पूर्वी बंगाल और आसाम प्रांतका सदर मुकाम बना दिया गया। लेकिन उसको यह गौरव कुछ ही समय तक हासिल रहा, क्योंकि १९१२ ई०में पूर्वी बंगालके जिले पुनः बंगालमें मिला दिये गये और आसामको चीफ कमिश्नरके अधीन अलग प्रांत बना दिया गया। १९२० ई० में ढाकामें विश्व-विद्यालयकी स्थापना हुई और १९४७ ई० में भारतकी आजादी और विभाजनके बाद वह पूर्वी पाकिस्तानकी राजधानी बना दिया गया। दिसम्बर १९७१ ई० में पाकिस्तानकी तानाशाहीके खिलाफ ऐतिहासिक लड़ाई जीतकर पूर्वी पाकिस्तान स्वतंत्र सार्वभौम गणतंत्र 'बांगला देश' बन गया और ढाका उसकी राजधानी हो गयी।

त

तक्षशिला—अति प्राचीन नगर, जो पश्चिमी पंजाबमें रावल-पिण्डीसे उत्तर-पश्चिमकी ओर २० मीलकी दूरीपर सराय-कला नामक रेलवे स्टेशनके निकट स्थित था। सिकन्दरके आक्रमणके समय, यह राजा आम्भि (दे०)की राजधानी थी और चिकित्सा-शास्त्रके केन्द्रके रूपमें विख्यात था। कहा जाता है कि राजा बिम्बसार (दे०)के चिकित्सक जीवकने तक्षशिलामें सात वर्ष वैद्यकशास्त्रका प्रशिक्षण प्राप्त किया था। इस स्थानपर विस्तृत पुरातात्त्विक पर्यवेक्षणके परिणामस्वरूप प्राक्-मौर्य, मौर्य, यवन और कुषाणकालीन स्मारकोंका उद्घाटन हुआ है। हिन्दू, जैन एवं बौद्ध साहित्यमें तक्षशिलाका विशेष उल्लेख हुआ है। अपोलोनियस नामक यूनानी यात्रीने जिसने ४३–४४ ईसवीमें तक्षशिलाका भ्रमण किया था, नगरका विस्तृत विवरण लिखा है। अशोक (दे०) के कालमें तक्षशिलामें राजप्रतिनिधि (उपराजा) रहता था। यवन और

कुषाण (दे०) शासकोंके कालमें भी यह राजनीतिक केन्द्र रहा। सातवीं शताब्दीमें यह कश्मीर राज्यका अंग हो गया। ११वीं शताब्दीके प्रारंभमें सुल्तान महमूद (दे०)की पंजाब-विजयके उपरान्त तक्षशिलाका महत्त्व कम होता गया और वह एक वीरान स्थल बन गया। (सर जॉन मार्शल कृत 'गाइड टु टैक्शिला')

तबकाते अकबरी–सम्राट् अकबरके कालका आधिकारिक इतिहास ग्रन्थ। दरबारी इतिहासकार निजामुद्दीन अहमदने इसे फारसीमें लिखा था। तिथि तथा भौगोलिक वर्णनकी दृष्टिसे यह सर्वाधिक विश्वसनीय ग्रंथ है।

तबकाते नासिरी–यह मिनहाजुद्दीन सिराज (दे०) द्वारा लिखित दिल्लीके प्रारम्भिक सुल्तानोंका इतिहास है। सिराजने इस ग्रंथकी रचना अपने आश्रयदाता नासिरुद्दीन (दे०)के राज्यकालमें की थी।

तमिळगम्–तमिल देश, जिसके अंतर्गत तीन प्राचीन राज्य—पाण्ड्य, चोल और चेर अथवा केरल स्थित थे। इसका विस्तार उत्तरमें मद्रासके सौ मील उत्तर पश्चिम पुलीकट और तिरुपति पहाड़ियों तक, दक्षिणमें केप कमोरिन तक, पूरबमें कारोमण्डल घाट तक और पश्चिममें पश्चिमी घाट तक था। यहाँ अधिकांश लोग तमिल भाषा बोलते थे, जिसका साहित्य प्राचीन एवं समृद्ध है। यहाँके प्राचीन निवासी अधिकांश द्रविड़ लोग थे, किन्तु बादमें बहुतसे आर्य भी बस गये हैं। तमिल भाषा भी संस्कृत व्याकरण और वाक्य-विन्याससे प्रभावित और परिवर्तित है। तमिल साहित्यके सर्वाधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय ग्रंथ 'कुरल', और 'मणिमेकलै' हैं। इनमेंसे 'कुरल' गोदावरीके दक्षिणमें सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सम्मानित है।

तराइनका युद्ध–११९१ ई० और ११९२ ई० में दिल्ली और अजमेरके चौहान राजा पृथ्वीराज (दे०) और शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीके मध्य हुआ। तराइनके पहले युद्धमें पृथ्वीराजने शहाबुद्दीनको परास्त किया। वह घायल होकर भाग खड़ा हुआ। परन्तु एक ही वर्ष बाद ११९२ ई० में होनेवाले दूसरे युद्धमें शहाबुद्दीनने पृथ्वीराजको परास्त करके मार डाला। इस दूसरे युद्धमें विजयके बाद शहाबुद्दीनने दिल्लीपर अपना अधिकार कर लिया। इसके फलस्वरूप पूरा उत्तरी भारत कई शताब्दियोंतक मुसलमानोंके शासनमें रहा।

तरावड़ीका युद्ध–देखिये तराइन, जो तरावड़ीका दूसरा नाम है।

तर्दी बेग–एक मुगल सेनापति जिसे १५५५ ई० में हुमायूं (दे०)के मरनेके तुरंत बाद बैरम खाँ (दे०) द्वारा दिल्लीकी सुरक्षाका भार सौंपा गया था, परन्तु वह अपने कार्यमें असफल रहा। दुष्परिणाम-स्वरूप १५५६ ई० में दिल्लीको हेमू (दे०)ने विजित कर अपने अधिकारमें ले लिया। इस असफलताके लिए बैरमखांकी आज्ञासे उसका वध कर दिया गया।

तर्मशीरी–मंगोलोंकी चगताई प्रशाखाका खान (शासक)। इसने १३२८–१३२९ ई० में भारतपर आक्रमण किया और दिल्लीके निकट तक पहुँच गया। मोहम्मद तुगलकने उसे अपनी फौजें वापस ले जानेके लिए प्रेरित किया।

तहमस्प, शाह–फारसका बादशाह, जिसकी शरण १५४४ ई० में निर्वासित मुगल बादशाह हुमायूं (दे०)ने ली थी। शरण देनेके साथ ही उसने मुगल बादशाहको सैन्य सहायता भी दी जिसके फलस्वरूप हुमायूं कंधार और काबुलको १५४५ ई० में अपने अधीन करनेमें समर्थ हो सका और अन्ततः भारतीय साम्राज्यका पुनः अधीश्वर हो गया।

ताजमहल–भारतमें मुगल शासनका सर्वाधिक प्रसिद्ध स्मारक। इस मकबरेको बादशाह शाहजहाँ (दे०)ने आगरामें अपनी प्रिय बेगम मुमताज महल (दे०)के मजारपर बनवाया है। इसका निर्माणकार्य १६३२ ई० में आरम्भ हुआ था और १६५३ ई० में बाईस वर्षमें पूरा हुआ, जिसमें पचास-लाख रुपये खर्च हुए थे। अपने सौंदर्यके कारण यह सारे संसारमें विख्यात है। इसका नकशा उस्ताद ईसा नामक भारतीय वास्तुकारने बनाया था। हो सकता है कि उसने नकशा बनानेमें किसी इतालवी अथवा फ्रांसीसी वास्तुकारकी सहायता ली हो या वह उसकी मौलिक कृति हो। ताजमहल आजभी आगराके निकट यमुनाके किनारे स्थित है और संसारके सभी भागोंसे हजारों यात्री उसे देखने आते हैं। इसे 'संगमरमरकी स्वप्निल रचना' कहा जाता है। (स्मिथ, वी. ए., 'हिस्ट्री ऑफ दि फाइन आर्ट्स इन इंडिया')

ताजुद्दीन यिल्दिज–देखिये, 'यिल्दिज'।

तातार खाँ–देखिये, 'नासिरुद्दीन मुहम्मद शाह' (गुजरात)।

तात्या जोग–जसवन्तराव जोगका मंत्री। इसने तृतीय मराठा-युद्ध (दे०) के बाद होल्कर राज्यके पुनर्गठन और पुनरुत्थानमें विशेष योग दिया था।

तात्या टोपे–सिपाही-विद्रोह (दे०) में विप्लवियोंकी ओरसे लड़नेवाला प्रख्यात मराठा सेनानायक। वह नाना साहब (दे०) का विशेष सहयोगी तथा आंदोलनकारियोंका सशक्त समर्थक था। वह अंग्रेजोंका प्रबल विरोधी था। विप्लवियों द्वारा कानपुरपर अधिकार करनेके समय वह उपस्थित था। बीबीगढ़में फिरंगी नर-नारियों तथा बच्चोंका संहार उसके सामने हुआ। वह सेनानायक, रणनीति-

वेत्ता, संगठनकर्ता था। बीस हजार सैनिकोंकी ग्वालियर-सेनाका नायक बनकर उसने कानपुरमें अंग्रेजी सेनानायक विंढमको पराभूत किया। सर कॉलिन कैम्पबेल द्वारा कानपुरसे भगाये जाने और परास्त किये जानेपर तात्याने रानी झांसीसे मिलकर मध्यभारतमें भीषण युद्ध छेड़ दिया, किन्तु बेतवाके युद्धमें सर ह्यू ग रोज (दे०) द्वारा परास्त हो गया। इन पराजयोंने तात्याको हतोत्साहित नहीं किया। कुछ ही महीनोंमें उसने रानी झाँसीके साथ ग्वालियरकी दिशामें प्रयाण किया, सिंधिया (शिन्दे) की सेनाको विजित किया और सिंधिया आगरामें अंग्रेजोंकी शरणमें चला गया। नानासाहबको पेशवा घोषित किया गया और उसने सभी मराठोंको अंग्रेजोंके विरुद्ध खड्गहस्त करनेका प्रयास किया। परन्तु ह्यू गने ग्वालियरपर कब्जा कर लिया और उसे मोरार और कोटाके युद्धोंमें पराजित कर दिया। इन्हीं युद्धोंमें झाँसीकी रानी भी लड़ते हुए मारी गयी। तात्या पुनः भाग गया और उसने आत्मसमर्पण नहीं किया। जगह-जगह उसका पीछा किया गया, पर वह बच निकला। अंतमें अप्रैल १८५९ ई० में सिंधियाके सामन्त मानसिंहने विश्वासघात करके उसे पकड़वा दिया। उसपर ब्रिटिश अदालतमें मुकदमा चलाया गया और विद्रोह और हत्याका अभियोग लगाया गया, परन्तु उसने यह माननेसे इनकार कर दिया कि ब्रिटिश अदालतको उसके विरुद्ध सुनवाई करनेका अधिकार है। अंततः उसे फाँसीकी सजा दे दी गयी।

तानसेन—एक प्रख्यात संगीतज्ञ। यह सम्राट् अकबरका दरबारी गायक था। कहा जाता है कि 'भारतमें सैकड़ों वर्षोंसे तानसेनके समान गायक नहीं हुआ'। उसने मानसिंह (दे०) के शासनकालमें ग्वालियरमें प्रशिक्षण प्राप्त किया और वहीं उसका अन्तिम संस्कार किया गया। बादशाह अकबरके दरबारमें उसका आगमन इतनी महत्त्वपूर्ण घटना मानी गयी कि बादशाहने उसका एक रंगीन चित्र १५६२ ई० में बनवाया था।

ताम्रपर्णी—तिनैवेल्ली जिलेकी एक नदीका नाम। अशोकके स्तम्भलेख दो और तेरहमें सीलोनको ताम्रपर्णी कहा गया है।

ताम्रलिप्ति—प्राचीन नगर। इस स्थानपर पश्चिमी बंगालका मिदनापुर जिलेका तामलुक नगर स्थित है। पहले यह समुद्रके निकट था (गंगाका मार्ग बदल जानेके कारण आधुनिक तामलुक समुद्रसे दूर हो गया है), पाँचवीं शताब्दीमें यह व्यस्त बन्दरगाह था। ताम्रलिप्तिसे ही प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान (दे०), जिसने ४०१से ४१० ई०के बीच भारतका भ्रमण किया, जलपोतपर सवार होकर स्वदेश वापस गया था।

तारकी पहली लाइन—भारतमें १८५४ ई० में स्थापित की गयी। यह कलकत्तासे आगरा तक ८०० मील लम्बी थी। सिपाही-विद्रोह (प्रथम स्वाधीनता-संग्राम) के कालमें अंग्रेजोंको इससे भारी लाभ हुआ। १८५७ ई० तक इसका विस्तार पहले लाहौर और फिर पेशावर तक कर दिया गया। इसके बाद इसका विस्तार सारे भारतमें कर दिया गया। अब भारत और संसारके सभी देशोंके बीच तारकी व्यवस्था है।

तारानाथ—प्रसिद्ध तिब्बती लेखक और इतिहासकार जो सत्रहवीं शताब्दीमें हुआ। उसके ग्रंथोंमें तिब्बती परम्परामें सुरक्षित भारतके प्रारम्भिक कालका इतिहास मिलता है। यह अन्य सूत्रोंसे प्राप्त सूचनाओंकी पुष्टि तथा अन्तरालोंकी पूर्तिके लिए उपयोगी है।

ताराबाई—शिवाजी प्रथमके द्वितीय पुत्र राजाराम (दे०) की पत्नी। १७०० ई० में पतिकी मृत्युके उपरान्त यह अपने अल्पवयस्क पुत्र शिवाजी तृतीयकी संरक्षिका एवं प्रतिशासक बनी और उसके नामसे मराठा राज्यका शासन-प्रबन्ध सम्हाला तथा मुगल सम्राट् औरंगजेबसे अनवरत युद्ध किया। उसके प्रोत्साहनपूर्ण नेतृत्वमें मराठोंने फिरसे मुगल सल्तनतके बराड, गुजरात और अहमदनगरके इलाकोंपर हमले करने शुरू कर दिये। इसमें उसे अभूतपूर्व सफलता, सम्मान और धन मिला। १७०७ ई० में उसके पतिके अग्रज शम्भूजीके पुत्र और उत्तराधिकारी शाहू अथवा शिवाजी द्वितीयको मुगलोंने जब बन्दीगृहसे मुक्त कर दिया, तब ताराबाई बड़ी विकट स्थितिमें पड़ गयी। शम्भूजीने महाराष्ट्र आकर अपनी पैतृक सम्पत्तिका अधिकार माँगा। उसको शीघ्र पेशवा बालाजी विश्वनाथके नेतृत्वमें बहुत-से समर्थक मिल गये। ताराबाईका पक्ष कमजोर पड़ गया और उसे शाहूको मराठा साम्राज्यका छत्रपति स्वीकार कर लेना पड़ा। फिर भी वह अपने पुत्र शिवाजी तृतीयको सतारामें राजपदपर बनाये रखनेमें सफल हुई। १७००से १७०७ ई० तकके संकटकालमें ताराबाईने मराठा राज्यकी एकसूत्रता और अखंडता बनाये रखकर अमूल्य सेवा की। बादमें उसके पुत्र शिवाजी तृतीयको राजा शाहूने गोद लेकर अपना उत्तराधिकारी घोषित किया।

तालपुरके अमीर—सिंधके अमीरों (दे०) की तीन शाखाओंमेंसे एक; जो १८४३ ई० में अंग्रेजों द्वारा परास्त, अपदस्थ और निर्वासित किये गये।

तालीकोटका युद्ध—रामराजा (दे०) जो विजयनगर (दे०) की सेनाका नेतृत्व कर रहा था, तथा अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डाके सुल्तानोंकी संयुक्त सेनाके बीच २३ जनवरी

१५६५ ई०को हुआ। इस युद्धमें रामराजा परास्त होकर वीरगतिको प्राप्त हुआ एवं विजयनगरकी सेना पूर्णतः ध्वस्त हो गयी। यह एक निर्णायक युद्ध था जिसके परिणामस्वरूप विजयनगरके हिन्दू राज्यका पूर्णरूपेण पतन हो गया।

ताशकन्द घोषणा–भारतके प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री तथा पाकिस्तानके राष्ट्रपति अयूब खाँ की लम्बी वार्ताके उपरान्त ११ जनवरी १९६६ ई०को हस्ताक्षर किये गये, संयुक्त रूपसे प्रकाशित हुई। ताशकंद सम्मेलन सोवियत रूसके प्रधानमंत्री द्वारा आयोजित किया गया था। ताशकंद घोषणामें कहा गया कि भारत और पाकिस्तान शक्तिका प्रयोग नहीं करेंगे और अपने झगड़ोंको शांतिपूर्ण ढंगसे तय करेंगे, वे २५ फरवरी १९६६ तक अपनी सेनाएँ ५ अगस्त १९६५की सीमा-रेखापर पीछे हटा लेंगे; दोनों देशोंके बीच आपसी हितके मामलोंमें शिखर वार्ताएँ तथा अन्य स्तरोंपर वार्ताएँ जारी रहेंगी; दोनों देशोंके बीच सम्बन्ध एक दूसरेके आन्तरिक मामलोंमें हस्तक्षेप न करनेपर आधारित होंगे; दोनोंके बीच राजनयिक संबंध पुनः स्थापित कर दिये जायेंगे; एक दूसरेके विरुद्ध प्रचारकार्यको हतोत्साहित किया जायेगा, आर्थिक एवं व्यापारिक सम्बन्धों तथा संचार सम्बन्धोंकी फिरसे स्थापना तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान फिरसे शुरू करनेपर विचार किया जायगा; ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की जायेंगी कि लोगोंका निर्गमन बंद हो; शरणार्थियोंकी समस्याओं तथा अवैध प्रवासी प्रश्नपर विचार-विमर्श जारी रखा जायगा तथा हालके संघर्षमें जब्त कर ली गयी एक दूसरेकी सम्पत्तिको लौटानेके प्रश्नपर विचार किया जायगा। इस घोषणाके क्रियान्वयनके फलस्वरूप दोनों पक्षोंकी सेनाएँ उस सीमारेखापर वापस लौट गयीं जहाँ वे युद्धके पूर्व तैनात थीं। परन्तु इस घोषणासे भारत-पाकिस्तानके दीर्घकालीन सम्बन्धोंपर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह अभी नहीं कहा जा सकता। फिर भी ताशकंद घोषणा इस कारण याद रखी जायगी कि इसपर हस्ताक्षर करनेके कुछ घंटे बाद ही लालबहादुर शास्त्रीकी दुःखद मृत्यु हो गयी।

तिब्बत–और भारतके बीच सांस्कृतिक सम्बन्धोंका लम्बा इतिहास है। सातवीं शताब्दीमें तिब्बतके राजा स्रोङ गचन्-स्गाम्-पो (दे०) (लगभग ६२९–९८ ई०)ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया और थोव्मी-सम्भोटा नामक तिब्बती विद्वान्को भारत भेजा, जिसने बौद्ध धर्म सम्बन्धी कुछ ग्रंथ इकट्ठे किये और पश्चिमी गुप्त लिपिको तिब्बत ले गया, जो देवनागरी लिपिसे काफी मिलती-जुलती थी। यही लिपि तिब्बती वर्णमालाका आधार बनी। सम्भव है बुद्ध अवलोकितेश्वरकी चंदनकी प्रसिद्ध मूर्ति जो अब तक दलाईलामाके राजमहल पोतालामें प्रतिष्ठापित है और पूजी जाती है, वह सर्वप्रथम थोव्मीके द्वारा तिब्बत ले जायी गयी हो। राजा स्रोङ-ग्चन्ने न केवल बौद्ध धर्म ग्रहण किया बल्कि थोव्मीका शिष्य बनकर विद्याध्ययन भी किया। उसने तिब्बती लोगोंमें बौद्ध धर्मका प्रचार करके उनमें सत्यवादिता, दया, पवित्र एवं सादा जीवन, विद्वानोंका आदर और मातृभूमि-प्रेम आदि गुणोंका विकास किया। इस प्रकार बौद्ध धर्मने तिब्बतके सांस्कृतिक और आर्थिक विकासमें पर्याप्त योगदान किया। संस्कृत ग्रंथोंके तिब्बती भाषामें अनुवादका जो कार्य स्रोङ ग्चन्-स्गाम्-पोके द्वारा प्रारम्भ किया गया था, वह उसके उत्तराधिकारियों द्वारा आगे बढ़ाया गया और इससे तिब्बती भाषा प्रांजल एवं समर्थ साहित्यिक माध्यमके रूपमें निखर कर सामने आयी। बौद्ध धर्मके प्रचार-प्रसारने तिब्बत और भारतके बीच घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित कर दिया। तिब्बती लोग बौद्ध धर्मके भारतीय शिक्षाकेन्द्रों, विशेषतः नालंदा और विक्रमशिला आने लगे और इसी प्रकार भारतीय लोग तिब्बत जाने लगे। आने-जानेका यह सिलसिला तिब्बत और भारतके सांस्कृतिक सम्बन्धोंका एक नियमित अंग बन गया। बौद्ध धर्मके महान् आचार्यों शांतिरक्षित (दे०) और पद्मसम्भव (दे०)ने तिब्बतकी यात्राएँ ८वीं शतीके मध्यमें और अतिशा (दे०)ने ११वीं शताब्दीके मध्यमें कीं। इस सांस्कृतिक सम्पर्कसे तिब्बतमें लामावादकी स्थापना और विकास हुआ। लामावादने बौद्ध धर्मके हीनयान, महायान और तंत्रयान सम्प्रदायोंमें समन्वय स्थापित करनेका प्रयास किया। इसने तिब्बतियोंके राष्ट्रीय चरित्रमें परिवर्तन करके उन्हें धीरे-धीरे युद्धप्रियसे शांतिप्रिय धर्मभीरु व्यक्ति बना दिया। इसने उनके बीच अनेक आध्यात्मिक गुरु, प्रकांड विद्वान्, सुयोग्य भाषाविद् और ऊँचे साधक उत्पन्न किये। संस्कृत ग्रंथोंका तिब्बती भाषामें अनुवाद करनेका तिब्बती और भारतीय विद्वानोंका प्रयास अत्यधिक सफल सिद्ध हुआ और बहुतसे संस्कृत ग्रंथ जिनकी मूल प्रतियाँ अब भारतमें नहीं पायी जाती हैं, या तो मूलरूपमें या तिब्बती अनुवादके रूपमें तिब्बतमें उपलब्ध हुए हैं।

भूतकालमें तिब्बत और भारतके मध्य राजनीतिक सम्बन्ध बहुत थोड़े थे। द्वितीय गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त (दे०) नेपालके नृपतिको अपना करद तथा आज्ञापालक बनानेपर बड़ा गर्व करता था। उसने अपने चौथी शताब्दीके

प्रयाग अभिलेखमें तिब्बतका कोई उल्लेख नहीं किया है। ७वीं शताब्दीमें हर्षवर्धन (दे०)ने, जिसका चीनके साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध था, तिब्बतके मार्गसे एक दूत चीन भेजा था, जिससे प्रकट होता है कि तिब्बतके साथ भी उसका मैत्री-सम्बन्ध था। हर्षकी मृत्युके बाद उसका मंत्री अर्जुन जिसने उसकी गद्दी छीन ली थी, तिब्बती शासक स्रोङ्‌ग्चन्‌का कोपभाजन बन गया, क्योंकि उसने चीनी दूत वांग-ह्यु‌एन-त्से-सी (दे०)को लूट लिया था, और उसे परास्त होकर तिरहुतसे हाथ धोना पड़ा। किन्तु १७०३ ई० में तिरहुतने तिब्बती शासनका जुआ उतार फेंका। इसके पश्चात् तिब्बतका भारतके साथ किसी भी प्रकारका राजनीतिक सम्बन्ध नहीं रहा। भारतके मुसलमान विजेता तिब्बतके हिमवेष्टित पर्वतोंपर सेनाएँ भेजनेसे कतराते थे और बख्तियारके बेटे इख्तयारुद्दीन मोहम्मदके सिवा जिसका तिब्बतके ऊपर आक्रमण १२०४ ई०में बुरी तरह विफल हुआ, और किसीने उसे विजय करनेका प्रयास तक नहीं किया। किन्तु अंग्रेजोंका व्यापारिक लोभ सीमाहीन था, और १७७४–७५ ई०में वारेन हेस्टिंग्ज (दे०)ने कम्पनीके युवा अधिकारी जार्ज बोगलको तिब्बतके धार्मिक गुरु एवं शासक ताशीलामासे भेंट करनेके लिए भेजा। किन्तु बोगल, जिसने अपनी यात्राका रोचक वर्णन किया है, अंग्रेजोंके लिए कोई लाभ नहीं प्राप्त कर सका। तिब्बत अठारहवीं शताब्दीके प्रारम्भसे ही चीनकी प्रभुसत्ताको स्वीकार करने लगा था और तिब्बतकी राजधानी ल्हासामें दो चीनी राजप्रतिनिधि, जिन्हें अम्बन कहा जाता था, निवास करने लगे थे। चीन और तिब्बतने उन्नीसवीं शताब्दीके अन्त तक अंग्रेजोंको भारतसे तिब्बतमें घुसने नहीं दिया। तीसरे बर्मायुद्ध (दे०)के बाद १८८६ ई०में ब्रिटिश सरकारने चीनके साथ एक समझौता किया, जिसके अंतर्गत तिब्बतपर चीनकी प्रभुसत्ताकी परोक्ष स्वीकृतिके बदलेमें चीनी सरकार ब्रिटेन द्वारा बर्मा हथियानेपर कोई आपत्ति न करनेके लिए सहमत हो गयी। १८८७ ई०में तिब्बतियोंने ब्रिटिश सुरक्षित सिक्किम राज्यपर हमला कर दिया, किन्तु वे बड़ी आसानीसे पीछे खदेड़ दिये गये और १८९० ई०में तिब्बत-सिक्किमकी सीमा का निर्धारण चीन और ब्रिटेनके मध्य हुए समझौतेके अंतर्गत किया गया। १८९३ ई० में अंग्रेजोंको तिब्बतमें कुछ व्यापारिक सुविधाएँ प्रदान करनेकी बात तय हुई, किन्तु व्यवहाररूपमें ये सुविधाएँ उपलब्ध नहीं करायी गयीं। इस प्रकार बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें भी अंग्रेजोंके लिए तिब्बत वर्जित देश बना रहा। प्रथम ब्रिटिश नागरिक, जिसने ल्हासामें घुसनेका साहस किया (दे०) और वहाँकी राजनीतिक और धार्मिक अवस्थाकी अमूल्य जानकारी प्राप्त करके वापस लौटा, शरत्‌चंद्र दास (दे०) नामक एक बंगाली अध्यापक था। बीसवीं शतीके प्रारम्भमें दलाई लामाने अपने शिक्षक तथा रूसी बौद्ध दोरजीफकी सहायतासे चीनी प्रभुसत्ता उखाड़ फेंकनेके लिए रूसी सरकारके साथ कुछ समझौतेकी वार्ता चलायी, जिससे ब्रिटिश भारतीय सरकार जो उस समय दबंग वाइसराय लार्ड कर्जन (दे०) द्वारा नियंत्रित थी, सशंकित हो उठी कि तिब्बत शीघ्र ही रूसी संरक्षणमें चला जायगा। ब्रिटिश भारतीय सरकार इसे रोकनेके लिए कृतसंकल्प थी और १९०३ ई० में कर्नल-फ्रांसिस यंगहसबैण्डके नेतृत्वमें एक दल तिब्बत भेजा गया। इसने जुलाई १९०३ ई० में बिना किसी विरोधके तिब्बती क्षेत्रोंमें प्रवेश किया और मार्च १९०४ ई०में तिब्बती सेनाको गुरु नामक स्थानपर आसानीसे परास्त कर दिया। अप्रैलमें उसने विशाल तिब्बती सेनाको पुनः हरानेके बाद अगस्त १९०४ ई०में ल्हासामें प्रवेश किया। वहाँ यंगहसबैण्डने सितम्बरमें तिब्बतको संधि करनेके लिए विवश किया, जिसके अंतर्गत उसे अंग्रेजोंको तिब्बतकी तीन मंडियोंमें व्यापार करने, ७५ लाख रुपयेका हर्जाना देने (पहले तो ७५ वार्षिक किश्तोंमें देनेकी बात तय हुई), किन्तु बादमें इसे घटाकर २५ लाख रुपया कर दिया गया और उसे तीन वार्षिक किस्तोंमें अदा करनेकी बात तय हुई, हर्जानेका भुगतान न होने तक अंग्रेजोंको सिक्किम और भूटानके मध्य स्थित चुम्बी घाटीपर अधिकार करने, किसी विदेशी शक्तिको तिब्बतका कोई भूभाग न देने तथा उसे तिब्बतमें रेलवे लाइन बिछानेकी इजाजत उस समय तक न देने जबतक उसी प्रकारकी सुविधाएँ ब्रिटिश सरकारको न दी जाएँ, की शर्तें स्वीकार करनी पड़ीं। इस प्रकार तिब्बतमें रूसी-प्रसारका मार्ग बंद कर दिया गया, किन्तु शीघ्र ही अंग्रेजोंकी गलतियोंके परिणामस्वरूप तिब्बतपर चीनकी जो प्रभुसत्ता अभी तक केवल नाममात्रकी और सांकेतिक रूपमें थी, वह वास्तविक रूपमें स्वीकार कर ली गयी। तिब्बतकी ओरसे २५ लाख रु० हर्जाना चीनको अदा करनेकी अनुमति दे दी गयी और अंग्रेजोंको चुम्बी घाटीसे हट आना पड़ा। १९०६ ई०में इंग्लैण्ड और चीनके बीच एक समझौतेके अंतर्गत इंग्लैण्ड इस बातके लिए राजी हो गया कि वह न तो तिब्बतके किसी भूभागपर अधिकार करेगा और न उसके आंतरिक प्रशासनमें हस्तक्षेप करेगा। इसके बदलेमें चीन सहमत हो गया कि वह किसी विदेशी शक्तिको तिब्बतके आंतरिक प्रशासनमें हस्तक्षेप करने अथवा

उसकी क्षेत्रीय अखंडताका उल्लंघन करनेकी अनुमति नहीं देगा। १९०७ ई०में इंग्लैण्ड और रूस तिब्बतके साथ अपने राजनीतिक सम्बन्ध चीनके माध्यमसे संचालित करनेके लिए सहमत हो गये। इस प्रकार चीनको तिब्बतका स्वामी स्वीकार कर लिया गया और इसके बाद ही चीनने तिब्बतको रौंद डाला और दलाई लामाको भागकर भारतमें शरण लेनी पड़ी। ब्रिटिश सरकारने इसपर तीव्र प्रतिवाद किया और तिब्बतियोंने १९१८ ई० में चीनकी आंतरिक अव्यवस्थासे लाभ उठाकर अपनेको चीनी आधिपत्यसे मुक्त कर लिया। १९१७की राज्यक्रांतिके बाद रूसमें जो परिवर्तन हुए तथा चीनमें जो अव्यवस्था व्याप्त रही उसके परिणामस्वरूप तिब्बतमें ब्रिटिश हितोंपर किसी विदेशी शत्रु द्वारा आघात किये जानेका खतरा समाप्त हो गया और अगले बीस वर्षों तक तिब्बत और भारतकी सरकारोंके बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहे। किन्तु इस शताब्दीके पाँचवें दशकमें राजनीतिक परिस्थितियाँ बदल गयीं। माओत्से तुंगके नेतृत्वमें चीन एक महान् साम्यवादी राष्ट्र बन गया और उसने तिब्बतके ऊपर अपनी प्रभुसत्ताको पुनः स्थापित करनेका संकल्प किया। इसके अनुसार चीनी सेनाओंने १९५९ ई०में तिब्बतपर अधिकार कर लिया और दलाई-लामाको प्राणरक्षाके लिए भागकर भारतकी शरण लेनी पड़ी। भारतीय गणराज्यकी नवस्थापित सरकार इन घटनाओंकी मूक दर्शक बनी रही। इस प्रकार तिब्बत विशाली चीनी साम्राज्यका अंग बना लिया गया और उसकी दक्षिणी सीमा भारतकी उत्तरी सीमारेखाको छूने लगी। इसके परिणामस्वरूप दोनों देशोंके बीच संघर्ष अनिवार्य हो गया। (१९६२ ई०में भारत और चीनके बीच युद्ध हुआ जिसके परिणामस्वरूप दोनों देशोंके सम्बन्ध अभी तक सामान्य नहीं हो पाये हैं।—संपादक)

तिरुमल—विजयनगरके सेनानायक राजराज (दे०) का भाई जो १५६५ ई० में तालीकोटके युद्धमें परास्त हुआ। युद्धोपरांत तिरुमलने नाममात्रके राजा सदाशिव (दे०)के साथ परकोण्डामें आश्रय लिया और लगभग १५७० ई० में उसका सिंहासन छीन लिया। उसने केवल तीन वर्ष तक राज्य किया और चौथे अरविंद अथवा कर्णाट राजवंशकी नींव डाली। उसका अन्तिम वंशज रंग था, जो लगभग सत्रहवीं शताब्दीके मध्यमें हुआ।

तिलक, बाल गंगाधर (१८५७–१९२०)—प्रख्यात भारतीय राष्ट्रवादी नेता एवं विद्वान्। उनका रत्नागिरिके मराठा ब्राह्मण परिवारमें जन्म हुआ। डकेन कालेजमें शिक्षा पायी और कानूनकी डिग्री हासिल की। बादमें इन्होंने फर्गुसन कालेजकी स्थापना की और 'मराठा' (अंग्रेजी) और 'केसरी' (मराठी) पत्रोंके सम्पादकके रूपमें पत्रकारिताके क्षेत्रमें प्रवेश किया। १८९७ ई०में उन्होंने शिवाजी उत्सवका शुभारम्भ किया और भारतीयोंमें पुनः देशभक्तिकी तीव्र भावना जगानेका प्रयास किया। पूनामें प्लेगके भयंकर प्रकोपको दबानेके लिए सरकार द्वारा किये गये कठोर उपायों-की उन्होंने कटु आलोचना की, जिसके परिणामस्वरूप राजद्रोहका अभियोग लगाकर उन्हें दण्डित किया गया। १९०७ ई०में उन्होंने विपिनचन्द्रपाल और लाला लाजपत-रायके साथ कांग्रेसके अंदर गरम दल संगठित किया। इस दलका कहना था कि प्रस्तावों द्वारा देशकी माँगोंको ब्रिटिश सरकार द्वारा मनवाना सम्भव नहीं है और इसके लिए अधिक प्रभावोत्पादक रीतिमें काररवाई की जानी चाहिए। तिलक और उनके साथियोंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके इस लक्ष्यको अस्वीकार कर दिया कि भारतमें उसी प्रकारकी उत्तरदायी सरकार गठित होनी चाहिए जैसी ब्रिटिश साम्राज्यके स्वायत्तशासी उपनिवेशोंमें प्रचलित है। उन्होंने भारतमें ब्रिटिश नियंत्रणसे पूर्णतया मुक्त, पूर्ण स्वराज्यकी स्थापनाकी माँग की। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके नरम और गरम दलके बीच मौलिक मतभेद उत्पन्न हो गये। १९१६ ई० में तिलकने होमरूल लीगका गठन किया। तिलक १९१९ के गवर्नमेण्ट आफ इंडिया एक्टसे संतुष्ट न थे, किन्तु अगस्त १९२०में उनका स्वर्गवास हो गया। दिसम्बर १९२० में कांग्रेसके नागपुर अधिवेशनमें घोषणा की गयी कि कांग्रेसका लक्ष्य डोमीनियन स्टेटस (औपनिवेशिक स्वराज्य) नहीं, बल्कि सभी उचित तथा शांतिपूर्ण उपायों द्वारा पूर्ण स्वराज्यकी स्थापना करानी है। इस प्रकार तिलकके स्वर्गवासके बाद उनकी माँगका कांग्रेसने भी जोरदार समर्थन किया। ब्रिटिश प्रभुत्वका घोर विरोध करनेके कारण उन्हें जीवनका एक बड़ा भाग ब्रिटिश जेलोंमें बिताना पड़ा, परन्तु इससे उनका आत्मबल तोड़ा नहीं जा सका। सर वैलेन्टाइन चिरोलने अपनी 'इंडियन अनरेस्ट' (भारतीय अशांति) नामक पुस्तकमें उनपर जो झूठे लांछन लगाये, उनका प्रतिवाद करनेके लिए उन्होंने इंग्लैण्ड जाकर उसपर मुकदमा दायर किया, परन्तु ब्रिटिश अदालतने उनके विरुद्ध फैसला दिया। उनके 'गीता रहस्य' तथा 'ओरियन' नामक ग्रंथ उनके प्रकांड पांडित्यका परिचय देते हैं। **(टी० वी० पर्वते कृत 'बालगंगाधर तिलक'; एन० सी० केलकर कृत 'लैंडमार्क्स इन लोकमान्याज लाइफ'; डी० पी० करमरकर कृत 'बालगंगाधर तिलक'; अरविन्द**

घोषकी 'स्पीचेज आफ बी० जी० तिलक' तथा रोशनर एवं गोल्डबर्ग कृत 'तिलक एण्ड दि स्ट्रगल फार इंडियन फ्रीडम')

तिवर (तिवल)–सम्राट् अशोककी दूसरी रानी कारुवाकीके गर्भसे उत्पन्न राजकुमार। इसका उल्लेख अशोकके रानी वाले अभिलेखमें हुआ है। इसके विषयमें और अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है। (भट्टाचार्यजी)

तिस्स–लगभग २५० ई० पू० से २११ ई० पू० तक सिंहलद्वीप (श्रीलंका)का राजा। राजकुमार महेन्द्र (दे०) इसीके आमंत्रणपर श्रीलंका गया और वहाँ बौद्ध धर्मका प्रचार किया। तिस्स और मौर्य सम्राट् अशोक (दे०)में अत्यंत सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध थे तथा श्रीलंकामें बौद्ध धर्मके प्रसारमें उसने महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उसने अनुराधपुरकी नींव डाली, जहाँ बोधिगयासे ले जाकर पवित्र बोधिवृक्ष आरोपित किया गया। यह बोधिवृक्ष आज भी विद्यमान है।

तुंगभद्रा–दक्षिणकी एक नदी। यह पश्चिम घाटसे निकलती है और रायचूरके निकट कृष्णामें मिलती है। इसका प्रसिद्ध दोआब दीर्घकाल तक विजयनगरके हिन्दू राज्य व मुस्लिम बहमनी राज्य और उसके परवर्ती राज्योंके बीच विवादका विषय रहा।

तुकाराम–महाराष्ट्रके एक प्रसिद्ध कवि तथा संत। ये शिवाजी प्रथम (दे०)के ज्येष्ठ समकालीन थे। इनकी कविताओं तथा शिक्षाओंका शिवाजीपर बहुत प्रभाव पड़ा।

तुकोजी राव होल्कर प्रथम–१७६७ ई० में रानी अहल्याबाई (दे०) द्वारा होल्कर सेनाका सेनापति नियुक्त। रानीकी मृत्युके बाद १७९५ ई० में वह होल्कर राज्यका शासक बना और मृत्युपर्यन्त अर्थात् १७९७ ई० तक शासन किया।

तुकोजी राव द्वितीय–१८४३ से १८४६ ई० तक होल्कर राज्यका शासक। अपने कुशल शासनसे उसने होल्कर वंशके ऐश्वर्य एवं प्रतिष्ठामें विशेष अभिवृद्धि की थी।

तुकोजी राव तृतीय–१९०३ से १९२६ ई० तक होल्कर राज्यका शासक। राज्यके बाहरके एक व्यक्तिको मार डालनेके अभियोगमें भारत सरकारकी ओरसे उसे पदत्यागके लिए बाध्य किया गया।

तुगरिल खां–एक तुर्की अमीर, जिसे सुल्तान बलबन (दे०) ने बंगालका सूबेदार नियुक्त किया था, किन्तु १२७८ ई० में वह स्वतंत्र हो गया। सुल्तान बलबनने १२७९ से १२८२ ई० तक तीन वर्षकी लड़ाईमें उसे परास्त किया और मार डाला।

तुगलकशाह–देखिये, 'गयासुद्दीन तुगलक'।

तुरुष्क-दण्ड–एक अतिरिक्त कर, जो लगभग ११०४–११५५ ई० में राजा गोविन्दचन्द्र द्वारा लगाया गया। मुस्लिम आक्रमणकारियोंसे टक्कर लेनेके लिए यह कर-आरोपण किया गया था।

तुलसीदास–प्रसिद्ध हिन्दी कवि तथा संत। उनका जीवनकाल १५३२ ई० से १६२३ ई० तक माना जाता है। वे काशीमें रहते थे। उनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'रामचरितमानस' है जिसका उत्तरी भारतके सभी हिन्दू, चाहे गरीब हों अथवा अमीर, बड़ा आदर करते हैं। वे केवल उच्चकोटिके कवि ही नहीं थे, वरन् हिन्दुओंके धार्मिक नेता भी थे और आज भी उनका नाम बड़ी श्रद्धाके साथ लिया जाता है।

तुलसी बाई–यशवन्तराव होल्करकी प्रिया (१७९८–१८११ ई०)। तुलसीबाई बड़ी ही बुद्धिमती और चतुर थी। १८०८ ई० में जब यशवन्तराव होल्कर पागल हो गया तब होल्कर राज्यकी संरक्षिका वही बनी। १८११ ई० में राजाकी मृत्यु होनेपर राज्यका वास्तविक शासन उसके हाथमें आ गया। उसको राज्यके दीवान बलराम सेठ और पेंढारी नेता अमीर खाँका समर्थन प्राप्त था। १८१७ ई० में सेनाने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और उसे मार डाला। इसके तुरन्त बाद यह सेना १८१७ ई० में महीदपुरके युद्धमें अंग्रेजों द्वारा हरा दी गयी।

तुलुव वंश–की प्रस्थापना नरस नायक द्वारा १५०३ ई० में विजयनगरमें हुई। इस वंशने १५६५ ई० तक शासन किया। इसमें छः राजा हुए—नरस नायक (१५०३–१५०५ ई०); उसका पुत्र नरसिंह (१५०५–१५०९ ई०); उसका भाई कृष्णदेव राय (दे०) (१५०९–१५२९), जो कि अपने वंशका सबसे प्रतापी राजा था और इसके कालमें राज्य अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। १५२९ से १५४२ ई० तक उसका भाई अच्युत और उसके बाद १५४२ ई० में उसका पुत्र वेंकट प्रथम और फिर (१५४२–१५६५ ई० तक) उसका चचेरा भाई सदाशिव शासक रहा। अन्तिम राजाके शासनकालमें बीजापुर, गोलकुण्डा और अहमदनगरके सुल्तानोंने मिलकर विजयनगर राज्यपर हमला किया और १५६५ ई० में तालीकोटके युद्धमें राजाको परास्त कर दिया। उन्होंने राजधानीमें लूटमार करनेके पश्चात् उसे उजाड़ डाला। सदाशिव पेनुकोण्डा भाग गया, जहाँ वह १५७० ई० में मार डाला गया। इस प्रकार विजयनगर और तुलुव वंशका अंत हो गया।

तुषास्प–अशोक (दे०)के राज्यकालमें गुजरात और काठियावाड़का महामात्य था। उसे राजाकी उपाधि प्राप्त थी। गिरनारके पास सुदर्शन नामक झील (दे०)का उसने

पुनर्निर्माण इतनी मजबूतीके साथ कराया कि फिर ४०० वर्ष तक उसकी मरम्मत की आवश्यकता नहीं पड़ी। १५० ई०में क्षत्रप रुद्रदामाने इसका जीर्णोद्धार कराया। तुषास्प संभवतः ईरानी था और सम्राट् अशोककी सेवामें नियुक्त था।

तेगबहादुर (१६६४–१६७५)–सिखोंके नवें गुरु। ये छठे गुरु हरगोविन्दके पुत्र थे और आठवें गुरु हरकिशनके उत्तराधिकारी बने। पंजाबमें कीरतपुरके निकट आनन्द-पुरमें वे निवास करते थे। कुछ समयके लिए वे पटनामें भी रहे, जहाँ १६६६ ई०में इनके प्रख्यात पुत्र तथा उत्तरा-धिकारी गोविन्दसिंहका जन्म हुआ। १६६८ ई०में गुरु तेगबहादुर औरंगजेबकी सेनाके साथ आसाम गये परन्तु वहाँसे पंजाब वापस आनेके बाद बादशाहके कोपभाजन बन गये। कश्मीरके ब्राह्मणोंको मुगल सम्राट्के विरुद्ध भड़कानेके आरोपमें राजाज्ञानुसार गुरु तेगबहादुरको बन्दी बनाकर दिल्ली लाया गया, जहाँ उनके सम्मुख विकल्प रखा गया कि या तो मुसलमान बन जाओ या मौतको स्वीकार करो। उन्होंने धर्म देनेकी अपेक्षा जीवन दे देना अच्छा समझा और १६७५ ई०में औरंगजेबकी आज्ञासे उनको क्रूरतापूर्वक सूली दे दी गयी। उनके बाद उनके सुपुत्र गोविन्दसिंह सिखोंके गुरु हुए, जिन्होंने शांतिप्रिय सिखोंको एक सैनिक शक्तिके रूपमें परिवर्तित कर दिया। गुरु तेगबहादुरकी शहादतने सिखोंको मुगलोंके अत्याचारों-का बदला लेनेके लिए प्रेरित किया।

तेजा सिंह–प्रथम सिख-युद्ध (दे०) (१८४५–४६) छिड़नेके समय सिख सेनाका प्रधान सेनापति। वह युद्धमें विजय पानेकी अपेक्षा प्रतिरोधी अंग्रेजोंकी सद्भावना प्राप्त करनेके लिए अधिक प्रयत्नशील रहा। उसके विश्वासघातके ही कारण सिखोंको युद्धमें पराजयका मुंह देखना पड़ा।

तैमूर (अथवा तैमूरलंग) (१३३६–१४०५)–१३६९ ई० में समरकंदके अमीरके रूपमें अपने पिताके सिंहासनपर बैठा और इसके बाद ही विश्व-विजयके लिए निकल पड़ा। मेसोपोटामिया, फारस और अफगानिस्तानको विजित कर १३९८ ई० में उसने अपनी विशाल अश्वसेनाके साथ भारतपर आक्रमण किया और दिल्ली तक बढ़ आया। मार्गमें उसने सहस्त्रों लोगोंकी हत्या की और बहुतसे नगरोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। उसने दिल्लीके निकट सुलतान महमूद तुगलककी विशाल सेनाको निर्णायक रूपसे परास्त कर दिया और १८ दिसम्बर १३९८ ई० को दिल्लीके अन्दर प्रवेश किया। उसके सैनिकोंने कई दिनों तक राज-धानीकी लूटपाट की। दिल्लीमें वह केवल १५ दिन रुका, फिर हजारों छकड़ोंपर लूटका माल लादकर अपने वतन वापस लौट गया। मार्च १३९८ ई० में उसने सिंधु नदीको दुबारा पार किया। उसकी सेना जिन-जिन इलाकोंसे होकर गुजरी, वहाँ अराजकता, अकाल और महामारी फैल गयी। उसके आक्रमणसे दिल्ली सल्तनतकी जड़ें हिल गयीं और उसका शीघ्र पतन हो गया।

तैमूरलंग –देखिये, 'तैमूर'।

तैल (अथवा तैलव)–द्वितीय चालुक्य राजवंशका प्रतिष्ठापक। उसकी राजधानी कल्याणी थी। ९७२ ई०के आसपास उसने अन्तिम राष्ट्रकूट राजा कर्क द्वितीय (दे०)को परास्त किया। तैल द्वारा प्रतिष्ठापित राजवंशने ११९९ ई० तक शासन किया।

तैलगु–दक्षिणकी चार प्रमुख भाषाओंमेंसे एक भाषा। शेष तीन हैं–तमिल, मलयालम और कन्नड़। एक समय मद्रास प्रेसीडेन्सीके उत्तरी भागमें तेलुगु भाषा बोली जाती थी। वर्तमान आंध्र राज्यमें जो तमिलनाडु तथा उड़ीसा राज्यके बीचमें स्थित है, अधिकांश लोग तेलुगु भाषा बोलते हैं। विजयनगरके राजाओंका, विशेषरूपसे कृष्णदेव रायका संरक्षण तेलुगु भाषाको प्राप्त रहा। कृष्णदेव राय स्वयं तेलुगु तथा संस्कृतमें कविता करता था। उसके दरबारमें तेलुगुके आठ उच्चकोटिके कवि थे, उनमें पेदन्न सर्वाधिक विख्यात था।

तोमर–राजपूतों (दे०)की एक शाखा। कुछ विद्वानोंके अनुसार, प्रतिहारों और चौहानोंकी भाँति ये भी विदेशी थे। ये लोग ११वीं शताब्दीमें वर्तमान दिल्ली क्षेत्रके शासक थे। तोमर-अग्रणी अनंगपालने ग्यारहवीं शताब्दीके मध्यमें दिल्ली नगरकी नींव डाली थी। प्रसिद्ध लौहस्तम्भ, जिसपर चंद्र नामक अपरिचित राजाकी प्रशस्ति अंकित है, १०५२ ई०में अनंगपाल द्वारा हटाकर वर्तमान स्थानपर लाया गया और मंदिरोंके बीच खड़ा कर दिया गया, मुसल-मान विजेताओंने बादमें इन मंदिरोंको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला और उस सामग्रीका प्रयोग एक मसजिद और कुतुब-मीनारके निर्माणमें किया।

तोरमाण–हूणोंका नेता, जिसने ५०० ई०के लगभग मालवापर अधिकार कर लिया। इसने महाराजाधिराजकी उपाधि धारण की और उसका प्रभुत्व संभवतः मध्यप्रदेश, नमककी पहाड़ियों तथा मध्यभारत तक व्याप्त था। बहुत बड़ी संख्यामें उसके चाँदीके सिक्के प्राप्त हुए हैं। उसका सुप्रसिद्ध पुत्र मिहिरिकुल अथवा मिहिरगुल लगभग ५०२ ई०में उसका उत्तराधिकारी बना।

तोर्णा—पूनासे दक्षिण-पश्चिमकी ओर लगभग बीस मीलकी दूरीपर स्थित एक दुर्ग । शिवाजीने उन्नीस वर्षकी अवस्थामें १६४६ ई०में इस दुर्गको अधिकारमें करके अपना स्वराज्य अभियान आरम्भ किया ।

तोसली—अशोक (दे०)के राज्यकालमें उसका एक महामात्य यहाँ रहता था । इसका उल्लेख उसके कलिंग शिलालेख में मिलता है जो उड़ीसाके पुरी जिला स्थित धौलीमें पाया गया है । (भट्टाचार्यजी)

त्रंक्वाबार—कारोमण्डल समुद्रतटपर स्थित एक बन्दरगाह, जहाँ १६२० ई०में डेनमार्कवासियोंने एक व्यापारिक कोठी स्थापित की थी । यह एक व्यापारिक बंदरगाह था, जो राजनीतिक दृष्टिसे कभी महत्त्वपूर्ण नहीं रहा । १८४५ ई०में यह ब्रिटिश सरकारके हाथ बेच दिया गया ।

त्रिचनापल्ली—कर्नाटकका दुर्ग, जहाँ कर्नाटककी मसनदके दावेदार मुहम्मद अली (दे०)ने १७५१ ई०में शरण ली थी । फ्रांसीसी तथा उनके आश्रित चंदा साहबने इस दुर्गपर घेरा डाल दिया, किन्तु राबर्ट क्लाइव (दे०)ने जब आरकाटको अपने अधिकारमें कर लिया तो उन्हें अपना घेरा उठा लेना पड़ा । १७५३ ई०में यहाँ पुनः फ्रांसीसियों द्वारा घेरा डाला गया परन्तु १७५४ ई०में अंग्रेजोंने इस घेरेको तोड़ दिया और यह तबतक कर्नाटकके नवाबके अधीन रहा जबतक भारतीय ब्रिटिश साम्राज्यमें नहीं मिला लिया गया ।

त्रिपक्षीय संधि—१८३८ ई०में अंग्रेजों, अफगानिस्तानके भगोड़े अमीर शाहशुजा और पंजाबके महाराज रणजीतसिंहमें ऑकलैंडके शासनकालमें सम्पन्न हुई थी । इसके अनुसार शाहशुजाको सिख सेना और ब्रिटिश आर्थिक सहायतासे काबुलकी गद्दीपर पुनः बैठानेकी बात तय हुई । इसके बदलेमें रणजीतसिंहने जितना प्रदेश जीत लिया था, वह उसके अधिकारमें रहने देना और सिंधको अफगानिस्तानके अमीर शाहशुजाको सौंप देना स्वीकार कर लिया गया । यह आशा की जाती थी कि शाहशुजा अंग्रेजोंके हाथकी कठपुतली बन जायगा । इस आक्रामक सन्धिने अन्ततः लार्ड ऑकलैण्डकी सरकारको १८३८–४२ ई०के विनाशकारी अफगान-युद्ध (दे०)में फंसा दिया ।

त्र्यम्बक जी—एक मराठा सरदार । बाजीराव द्वितीय (दे०) का विश्वासी कृपापात्र था । पेशवाने उसे अहमदाबादका सूबेदार बना दिया । गायकवाड़का दूत गंगाधर शास्त्री, सुरक्षाके आश्वासनपर जब पूना आया तब त्र्यम्बकजीने षड्यंत्र रचाकर उसे मरवा डाला । अंग्रेजोंने इसपर गहरा आक्रोश व्यक्त किया और ब्रिटिश रेजीडेण्ट एलिफिंस्टनके आग्रहपर त्र्यम्बकजीको बन्दी बनाकर, अंग्रेजोंको सौंप दिया गया जिन्होंने उसे साष्टीमें नजरबन्द कर दिया ।

त्रिलोचन पाल—चंदेल राजा गण्डने १०१९ ई० में राजा राज्यपालको परास्त करके मार डाला और उसके स्थानपर त्रिलोचन पालको कन्नौजका राजा बनाया । उसी साल त्रिलोचन पालने सुलतान महमूद गजनवीको जमुना पार करनेसे रोकनेका असफल प्रयास किया और संभवतः इस प्रयासमें वह मारा गया । इससे अधिक उसके विषयमें कुछ पता नहीं है ।

त्रिलोचन पाल—ओहिन्दका पूर्वान्तिम साही राजा । इसने सुल्तान महमूद गजनवीकी सेनाको रोकनेका विफल प्रयास किया । रामगंगाके युद्धमें वह परास्त हुआ और १०२१–२२ ई०में मार डाला गया । उसका पुत्र तथा उत्तराधिकारी भीम अन्तिम साही राजा था, जिसकी मृत्यु १०२६ ई०में हुई ।

थ

थानेश्वर—संस्कृत साहित्यमें वर्णित एक प्रख्यात प्राचीन नगर । यह आधुनिक दिल्ली तथा प्राचीन इंद्रप्रस्थ नगरके उत्तरमें अम्बाला और करनालके बीच स्थित था । यह ब्रह्मावर्त क्षेत्रका केन्द्रबिन्दु था, जहाँ भारतीय आर्योंका सबसे पहले विस्तार हुआ । इसीके निकट कुरुक्षेत्र स्थित है, जहाँ कौरवों-पाण्डवोंके बीच अठारह दिन तक युद्ध हुआ था जो महाभारत महाकाव्यका प्रमुख विषय है । थानेश्वरको स्थानेश्वर भी कहते थे, जो शिवका पवित्र स्थान था । छठी शताब्दीके अन्तमें यह पुष्यभूति वंशकी राजधानी बना और इसके शासक प्रभाकरवर्धनने इसे एक विशाल साम्राज्यका, जिसके अंतर्गत मालवा, उत्तर-पश्चिमी पंजाब और राजपूतानाका कुछ भाग आता था, केन्द्रीय नगर बनाया ।

प्रभाकरवर्धनके छोटे पुत्र हर्षवर्धनके काल (६०६–६४७)में इसका महत्त्व घट गया । उसने अपने अपेक्षाकृत अधिक विशाल साम्राज्यकी राजधानी कन्नौजको बनाया । सातवीं और आठवीं शताब्दीमें हूण आक्रमणोंके फलस्वरूप इस नगरका तेजीसे पतन हो गया, फिर भी यह हिन्दुओंका पवित्र तीर्थस्थल बना रहा । १०१४ ई० में यह सुलतान महमूद द्वारा लूटा तथा नष्ट किया गया और अन्ततः पंजाबके गजनवी राज्यका अंग हो गया । यह दिल्ली

जानेवाली सड़कपर स्थित है। इसके इर्द-गिर्द क्षेत्रमें तराइन (दे०)के दो तथा पानीपत (दे०)के तीन युद्ध हुए जिन्होंने कई बार भारतके भाग्यका निर्णय किया। तृतीय मराठा-युद्ध (दे०)के उपरान्त यह भारतीय ब्रिटिश साम्राज्यका अंग हो गया।

थारका रेगिस्तान—राजपूताना और सिंधु नदीकी घाटीके निचले भागके मध्य फैला हुआ है। इस रेगिस्तानमें एक बूंद जल नहीं मिलता और इसे केवल कारवांके द्वारा ही पार किया जा सकता है। यह भारत और पाकिस्तानके बीचकी सीमा-रेखा बनाता है। यह सिंधको दक्षिण और उत्तरी पश्चिमी भारतसे पृथक् करता है। अरबोंने जब ७१० ई० में सिंध-विजय किया तो इस रेगिस्तानके कारण वे अपने राज्यका विस्तार सिंधसे आगे नहीं कर सके। इसने कुछ समय तक अंग्रेजोंको भी सिंधपर अपना आधिपत्य जमानेसे रोक रखा। अंग्रेज सिंधपर दांत इसलिए गड़ाये थे क्योंकि वह अफगानिस्तान और पंजाबका प्रवेशद्वार था। अंग्रेजों द्वारा सिंध (दे०)के अधिग्रहणके बाद यह रेगिस्तान भारतीय ब्रिटिश साम्राज्यका अंग बन गया।

थियोसोफिकल सोसाइटी—की स्थापना १८७५ ई० में संयुक्त राज्य अमेरिकामें मैडम ब्लावतसकी (दे०) और कर्नल एच० एस० ओलकाट द्वारा हुई। बादमें वे लोग भारत आये और सोसाइटीका प्रधान कार्यालय मद्रासके उपनगर अड्यार-में स्थापित किया। जबसे सोसाइटीकी सर्वेसर्वा श्रीमती एनी बेसेण्ट (दे०) भारतमें आकर बस गयीं, तबसे भारतीय राजनीति और जनजीवनमें सोसाइटीने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। श्रीमती एनी बेसेण्टके सत्प्रयासों और उनकी वाग्मिताके फलस्वरूप शीघ्र ही सोसाइटीकी अनेक शाखाएँ सम्पूर्ण भारतमें स्थापित हो गयीं। भारतमें एक अलग धार्मिक सम्प्रदायकी स्थापनाके रूपमें सोसा-इटीको बहुत थोड़ी सफलता मिली, किन्तु पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त हिन्दुओंके मस्तिष्कमें इसने हिन्दूधर्मके प्रति श्रद्धाभाव पुनः जागृत कर दिया। पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त विद्वानों द्वारा प्राचीन हिन्दू धर्मकी प्रशंसाके फलस्वरूप शिक्षित भारतीयोंके मनमें नव आत्मसम्मान, प्राचीनताका गौरव, देशभक्तिकी नयी लहर और राष्ट्रके पुनर्निर्माणकी भावना भर गयी। श्रीमती एनी बेसेण्टने उसको समुन्नत करके पराकाष्ठापर पहुँचा दिया। भारतमें थियोसोफिकल सोसाइटीको लोकप्रियता श्रीमती एनी बेसेण्टने प्रदान की। श्रीमती एनी बेसेण्टने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा परि-चालित राष्ट्रीय आन्दोलनमें अपनेको अर्पित कर दिया था।

थीबा—उत्तर बर्माका १८७८ से १८८६ ई० तक शासक। उसका कहना था कि उसे ब्रिटेनके अलावा अन्य यूरोपीय देशोंसे स्वतंत्र व्यापारिक और राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित करनेका पूर्ण अधिकार है। उसके इसी दावेके कारण वाइसराय लार्ड डफरिन (दे०)ने यह बहाना करके कि थीबाने ब्रिटिश व्यापारियोंको बर्मामें सुविधाएँ प्रदान करनेसे इनकार कर दिया है और वह अपनी प्रजापर कुशासन कर रहा है, दिसम्बर १८८५ ई० में उसके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। थीबा इस आक्रमणका कोई मुकाबला नहीं कर सका, उसकी सेनाएँ सरलतासे परास्त हो गयीं और उसने बिना किसी शर्तके आत्मसमर्पण कर दिया। उसे निर्वासित कर भारत भेज दिया गया, जहाँ वह मृत्यु पर्यन्त रहा। उसका राज्य ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यका एक अंग बना लिया गया।

थेर तिस्स—वरिष्ठ तथा बहुश्रुत भारतीय बौद्ध भिक्षु, जिसने अशोकके कालमें पाटिलपुत्रमें समायोजित बौद्ध संगीति (परिषद्, दे०)का सभापतित्व किया था।

द

दण्डनायक—विजयनगरके हिंदू राजाओंके सेनाध्यक्षोंकी उपाधि।

दण्डी—छठीं शताब्दी ई०में वर्तमान, जो संस्कृतका सरस कवि, साहित्य समालोचक और गद्य-लेखक था। 'काव्यादर्श' संस्कृत पद्यमें लिखा उसका काव्यशास्त्रका प्रसिद्ध ग्रंथ है। उसके द्वारा लिखा गया 'दशकुमारचरित्र' संस्कृत गद्य-काव्यका सबसे प्रसिद्ध प्रेमाख्यान है।

दंतिदुर्ग—आठवीं शताब्दी ई० के मध्यमें राष्ट्रकूट वंशका प्रवर्तक। उसने वातापीके चालुक्य राजा कीर्तिवर्मा द्वितीयको पराजित एवं अपदस्थ किया और एक नये राजवंश-की स्थापना की, जिसके शासकोंने ७३३ से ९७२ ई० तक दक्षिण भारतमें शासन किया।

दक्षिण—मूलरूपसे दक्षिण अथवा दक्षिणापथका प्रयोग उस क्षेत्रके लिए किया जाता था, जो उत्तरमें विंध्य पर्वत और नर्मदासे लेकर दक्षिणमें कन्याकुमारी तक विस्तृत है। बादमें दक्षिणका अर्थ वह क्षेत्र माना जाने लगा, जो उत्तरमें नर्मदा तक, दक्षिणमें तुंगभद्रा तथा कृष्णानदीके बीच स्थित है, अर्थात् दक्षिणी पठारके मुख्य भागको दक्षिण कहा जाने लगा, जिसके अंतर्गत आजकलका मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र

तथा आंध्रप्रदेश आता है। कृष्णा और तुंगभद्राके दक्षिणके क्षेत्रको कभी-कभी तमिळहम् अर्थात् तमिल देश कहा जाता था। यहाँ दक्षिणका अर्थ है नर्मदा और कृष्णा नदियोंके बीचका दक्षिणी पठार। भूगर्भीय दृष्टिसे सिंधु और गंगाके मैदानोंकी अपेक्षा यह पठार बहुत प्राचीन माना जाता है।

दक्षिणमें जो पुरातात्त्विक अवशेष मिले हैं, वे उत्तरी भारत (हिमालय क्षेत्रको छोड़कर)में प्राप्त अवशेषोंसे अधिक प्राचीन हैं। दक्षिणी पठार वस्तुतः एक पर्वतीय त्रिकोणपर स्थित है, जिसका शीर्षबिन्दु नीलगिरि है। पश्चिमीघाट एवं पूर्वीघाट इस त्रिकोणकी दो भुजाएँ हैं तथा विंध्य पर्वतश्रेणी इसका आधार है। विन्ध्य पर्वत-श्रेणीके कारण कोई नदी उत्तरसे दक्षिणकी ओर नहीं बहती। चूंकि पश्चिमी घाट पूर्वीघाटकी अपेक्षा अधिक ऊँचे हैं, अतएव दक्षिणकी सभी नदियाँ सतपुड़ा पहाड़ियोंके नीचे पश्चिमसे पूर्वकी ओर बहती हैं और बंगालकी खाड़ीमें गिरती हैं।

रामायण तथा महाभारतमें सुरक्षित प्राचीन अनुश्रुतियोंके अनुसार सर्वप्रथम अगस्त्य मुनि दक्षिण गये थे। वहाँ उन्होंने वानरों, असुरों तथा राक्षसोंको प्रभावित कर अपना सम्मानजनक स्थान बनाया। विश्वास किया जाता है कि ये दक्षिणवासी द्रविड़ थे, जिनकी भौतिक सभ्यता आर्योंकी अपेक्षा ऊँची थी।

ऐतिहासिक दृष्टिसे हमें दक्षिणके सम्बन्धमें जो जानकारी मिलती है, वह उत्तर भारतकी तुलनामें काफी अर्वाचीन है। नन्दवंश (दे०) से पहले हमें दक्षिणके बारेमें जानकारी नहीं मिलती। इन नंद राजाओं (ई०पू० चौथी शताब्दी)के साम्राज्यमें कलिंग शामिल था। हो सकता है कि सम्पूर्ण दक्षिण उनके साम्राज्यके अंतर्गत रहा हो। अशोकके साम्राज्यमें यद्यपि कलिंग ही शामिल था, तथापि उसका साम्राज्य पेनार नदी तक फैला हुआ था। उसके साम्राज्यकी दक्षिणी सीमाएँ चेर, चोल, पाण्ड्य तथा सातियपुत्र राज्योंको छूती थीं। मौर्यवंशके पतनके पश्चात् सातवाहनों(दे०)ने, जो आंध्र भी कहे जाते थे, एक विशाल साम्राज्यकी स्थापना की और ई०पू० ५० से २२५ ई० तक शासन किया। इसी कालमें शकों (दे०) की एक शाखाने दक्षिणके पश्चिमी भागपर अधिकार कर लिया।

सातवाहनोंके पतनके पश्चात् दक्षिणके विविध भागोंमें अनेक छोटे-छोटे राजवंशोंका प्रादुर्भाव हुआ। इनमें गंग (दे०), वाकाटक (दे०) तथा कदम्ब (दे०) मुख्य थे। गंगवंशकी एक शाखाने दूसरीसे ग्यारहवीं शताब्दी तक मैसूरके एक बड़े क्षेत्रपर राज्य किया। श्रवण-बेलगोलाकी पहाड़ीपर स्थापित ५६।। फुट ऊँची गोमटेश्वरकी विशाल प्रतिमा इन्हीं राजाओंकी याद दिलाती है। गंगवंशकी एक शाखाने उड़ीसामें भी छठीसे १६वीं शताब्दी तक शासन किया। इसी वंशके अनंतवर्मा चोड़गंगने पुरीके विख्यात जगन्नाथ मंदिरको बनवाया था। कदम्ब राजाओंने तीसरीसे छठी शताब्दी तक दक्षिण कर्नाटक और पश्चिमी मैसूरमें शासन किया, जबकि वाकाटकोंने चतुर्थसे छठी शताब्दी तक मध्यप्रदेश तथा दक्षिणके पश्चिमी भागपर शासन किया। चतुर्थ शताब्दीके मध्यमें समुद्रगुप्त (दे०)ने, जो गुप्तवंशका द्वितीय सम्राट् था, दक्षिणकी ओर अभियान किया और वहाँके अनेक राजाओंको अपने अधीन किया, जिनमें पल्लव राजा विष्णुगोप भी था, जिसकी राजधानी कांची थी जिसे आजकल कांजीवरम् कहते हैं। गुप्तवंशके तृतीय सम्राट् चंद्रगुप्त विक्रमादित्य (दे०)ने उज्जयिनीके शक क्षत्रपको पराजित कर सम्पूर्ण मालवा और गुजरातको अपने अधीन कर लिया।

गुप्त साम्राज्यके पतनके पश्चात् उत्तर भारत दक्षिणसे अलग हो गया तथा दक्षिणमें चालुक्यवंशका राज्य स्थापित हुआ जो कदाचित् उत्तर भारतके किसी राजपूत-वंशकी एक शाखा थे। चालुक्योंकी राजधानी वातापी अथवा बादामीमें थी, जो आजकल महाराष्ट्रके बीजापुर जिलेमें है। इस वंशने लगभग दो सौ वर्ष तक शासन किया। इस वंशका सबसे प्रतापी राजा पुलकेशी द्वितीय (दे०) था, जिसने ६०८–४२ ई० तक शासन किया और ६४१ ई० में नर्मदा नदीके किनारे उत्तर भारतके सुप्रसिद्ध सम्राट् हर्षवर्धनको पराजित किया और इस प्रकार उत्तर तथा दक्षिणके बीच नर्मदा नदीकी प्राकृतिक सीमाको कायम रखा। पड़ोसी कांचीके पल्लव राजा (दे०) उसके सबसे शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी थे। पल्लव राजा नरसिंह वर्माने ६४२ ई० में चालुक्य नरेश पुलकेशी द्वितीयको पराजित कर मार डाला। बत्तीस वर्ष पश्चात् राष्ट्रकूट वंशके दंतिदुर्ग (दे०) ने चालुक्यवंशका मूलोच्छेद कर दिया। राष्ट्रकूटोंके नये वंशने मान्यखेट (आधुनिक मालखेट)को अपनी राजधानी बनाकर दक्षिणी भारतपर शासन किया। इस वंशका सबसे प्रतापी राजा अमोघवर्ष (लगभग ८१५–७७ ई०) (दे०) था, जिसका उल्लेख अरब यात्रियोंने बलहर अथवा वल्लभरायके नामसे किया है। ९७३ ई० में द्वितीय चालुक्यवंशने राष्ट्रकूट वंशका मूलोच्छेद कर दिया। इस द्वितीय चालुक्यवंशने दक्षिणी भारतपर ११९० ई० तक शासन किया।

द्वितीय चालुक्यवंशके पतनके पश्चात् दक्षिणापथ तीन राजवंशोंमें विभाजित हो गया। यादवोंने देवगिरिको अपनी राजधानी बनाकर दक्षिणके पश्चिमी भागपर शासन किया। होयसल वंशने द्वारसमुद्र (आधुनिक हैलविड)को अपनी राजधानी बनाकर मैसूरपर शासन किया। काकतीयवंशने वारंगलको राजधानी बनाकर दक्षिणके पूर्वी भाग (तेलंगाना)पर शासन किया। दक्षिणके इन राजाओंके बीच बराबर युद्ध होते रहते थे। फलतः दिल्लीके सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीने एक-एक करके सभीको अपने अधीन कर लिया। यादव राजा १२९६ और १३१३ ई० के बीच परास्त हुए, काकतीय राजा १३१० ई० में तथा होयसल-नरेश १३११ ई० में। इसके बाद होयसलोंने नाममात्रके लिए १४२४—२५ ई० तक शासन किया। इनके राज्यको बादमें बहमनी सुल्तानोंने अपने राज्यमें मिला लिया। इस प्रकार उत्तर भारतकी भाँति दक्षिणमें भी हिन्दू राज्य समाप्त हो गया।

यद्यपि राजनीतिक दृष्टिसे नंदों, मौर्यों तथा गुप्तोंको छोड़कर शेष कालमें दक्षिण उत्तर भारतसे लगभग अलग ही रहा, तथापि सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टिसे वह सदैव हिन्दू भारतका अभिन्न अंग रहा। यद्यपि दक्षिणवासी उत्तरभारतीयोंसे भिन्न भाषाएँ बोलते थे, तथापि उत्तरके हिन्दुओंकी भाँति दक्षिणकी भी राजभाषा संस्कृत ही रही। ब्राह्मण धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्मका दक्षिणमें भी उतना ही आदर हुआ, जितना उत्तरमें। यदि दक्षिणने उत्तरसे बहुत कुछ प्राप्त किया, तो उसने उत्तरको बहुत कुछ दिया भी। आदि शंकराचार्य दक्षिणके ही थे, जिन्होंने वेदान्तदर्शनका प्रतिपादन किया। रामानुजाचार्यने वैष्णवधर्मकी स्थापना की। विख्यात स्मृतिकार विज्ञानेश्वरने 'मिताक्षरा सिद्धांत' प्रतिपादित किया जो बंगाल और आसामको छोड़कर शेष भारतके सामाजिक जीवनका नियमन करता है। कला और वास्तुशिल्पमें दक्षिणने हिन्दू परम्पराको जीवित रखा। कला, वास्तुशिल्प, मूर्तिकला और चित्रकलाके क्षेत्रमें हिन्दुओंकी उन्नतिका परिचय दक्षिण जानेपर ही मिलता है, जहाँ विशाल मंदिरोंके रूपमें अत्यन्त सुन्दर कलाकृतियाँ विद्यमान हैं। एलोरा-अजंताकी गुफाएँ और ये मंदिर हिन्दुओंके कलावैभवका जो चित्र प्रस्तुत करते हैं, उसकी कल्पना उत्तर भारतके मंदिरोंको देखकर नहीं की जा सकती।

दक्षिणका बादका इतिहास—अलाउद्दीन खिलजीने १३१० ई० में देवगिरि, उसी वर्ष वारंगल और १३११ ई० में द्वारसमुद्रके हिन्दू राजाओंको जीता। बादमें उसने अपने सेनापति मलिक काफूर (दे०) को सुदूर दक्षिणकी विजयके लिए भेजा। काफूरने पाण्ड्य राजधानी मदुरापर अधिकार कर लेनेके बाद रामेश्वरम् तक धावा बोला। इस प्रकार उसने कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण दक्षिण भारतको मुसलमानोंके अधीन कर दिया। वह अपने साथ लूटके सामानमें ६१२ हाथी, २० हजार घोड़े, ९६ हजार मन सोना तथा मोती एवं जवाहरातके बहुतसे संदूक भर कर लाया। इससे दक्षिण भारतके वैभवका पता चलता है। किन्तु दिल्लीका प्रभुत्व वहाँ बहुत दिनों तक कायम न रह सका।

सुल्तान मुहम्मद तुगलककी नीतियोंकी प्रतिक्रियास्वरूप मअबर (सुदूर दक्षिण)ने विद्रोह कर दिया तथा १३३५ ई० में अहसानशाहके नेतृत्वमें स्वाधीन हो गया और अगले दशकमें नर्मदा और कृष्णाके बीचका दक्षिणी पठार भी अलाउद्दीन हसन बहमनी (दे०) के नेतृत्वमें १३४७ ई० में स्वतंत्र हो गया। उसी समयके आसपास विजयनगर (दे०)में हिन्दू साम्राज्यकी स्थापना हुई, जो कृष्णा नदीके दक्षिणमें था। १६वीं शताब्दीके द्वितीय दशकमें बहमनी सल्तनतके टुकड़े-टुकड़े हो गये। जब १५२६ ई० में बाबरने दिल्लीमें मुगल साम्राज्यकी स्थापना की तब बहमनी सल्तनत पांच मुस्लिम राज्यों—बरार, बीदर, बीजापुर, अहमदनगर तथा गोलकुण्डामें बँट गयी। विजयनगरका हिन्दू राज्य १५६५ ई० तक कायम रहा, जबकि बीजापुर, अहमदनगर, गोलकुण्डा तथा बीदरके सुल्तानोंने मिलकर उसपर आक्रमण किया और तालीकोटके युद्धमें पराजित किया। लेकिन मुस्लिम राज्योंकी एकता भी कायम न रह सकी। अहमदनगरको, जिसने १५७४ ई० में बरारको जीत लिया था, मुगल सम्राट् अकबर (दे०)को १५९६ ई० में सौंप देना पड़ा। बादमें १६३७ ई० में सम्पूर्ण सल्तनतको मुगल साम्राज्यमें मिला लिया गया। इसके बाद बीजापुरको भी, जिसने १६१९ ई० में बीदरको जीत लिया था, १६८६ ई० में मुगल साम्राज्यमें शामिल कर लिया गया। एक वर्ष पश्चात् गोलकुंडा भी शामिल कर लिया गया। उसके तीन वर्ष बाद महाराष्ट्र अर्थात् दक्षिणके उत्तरी-पश्चिमी भागको जहाँ शिवाजीने स्वराज्यकी स्थापना की थी, मुगल सम्राट् औरंगजेबने अपने अधिकारमें कर लिया। इस प्रकार सम्पूर्ण दक्षिण पुनः उत्तरका भाग बन गया।

लेकिन इस बार भी यह एकता बहुत दिन तक कायम न रह सकी। महाराष्ट्रने औरंगजेबकी मृत्यु (१७०७ ई०) के पहले ही पुनः स्वाधीनता प्राप्त कर ली। औरंगजेबके उत्तराधिकारी बहादुरशाह (१७०७—१२ ई०)ने महाराष्ट्रकी स्वाधीनताको मान्यता भी दे दी। १७२४ ई० में

दक्षिणका मुगल सूबेदार चिनक्लिच खाँ (दे०), जो निजा-मुलमुल्क आसफजाहके नामसे जाना जाता है, स्वाधीन हो गया और उसने अपनेको स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। इस प्रकार १८वीं शताब्दीके प्रथम चतुर्थांशमें ही दक्षिण पुनः उत्तरसे अलग हो गया। कुछ समय बाद ही दक्षिण दो भागोंमें बँट गया। हैदराबादमें निजामका शासन तथा पूनामें मराठोंका शासन स्थापित हुआ। इस बीच यूरोपीय व्यापारी भी दक्षिण पहुँच गये और पूर्वी तथा पश्चिमी तटपर यत्र-तत्र बस गये। पुर्तगाली गोवा, दमण और दिवमें, अंग्रेज सूरत, बम्बई और मद्रासमें और फ्रांसीसी पाण्डेचेरी, माहे तथा कारीकलमें जम गये।

इन विदेशी व्यापारियोंमें भी प्रतिद्वन्द्विता शुरू हो गयी। पहले अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंने मिलकर पुर्तगालियोंके व्यापारको खत्म किया। बादमें अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंके बीच द्वन्द्व हुआ। दोनोंके बीच यूरोपमें लड़ाई शुरू हो जानेके कारण भारतमें भी संघर्ष शुरू हो गया। १७४० और १७६३ ई० के बीच दक्षिणकी भूमिपर दोनोंमें लड़ाइयाँ हुईं। दोनोंके पास देशी सेनाएँ भी थीं। ये लड़ाइयाँ कर्नाटक-युद्ध (दे०)के नामसे जानी जाती हैं। इन युद्धोंका फल यह हुआ कि दक्षिणमें फ्रांसीसियोंकी राजनीतिक शक्ति समाप्त हो गयी और अंग्रेजोंकी सत्ता स्थापित हो गयी। इसके अलावा दक्षिणमें और भी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटीं। महाराष्ट्रमें शिवाजीके पौत्र साहू (१७०७-४८) ने १७२७ ई० में अपनी राजसत्ता पेशवा बाजीराव प्रथम (दे०)को हस्तांतरित कर दी, जिसने महाराष्ट्रपर अपनी मृत्यु (१७४० ई०) पर्यंत शासन किया।

पेशवाने मराठा संघकी स्थापना की और पहली बार १७३७ ई० में अपनी सेनाएँ उत्तरमें भेजीं, जिसका मुख्य उद्देश्य पतनोन्मुख मुगल साम्राज्यके स्थानपर हिन्दू साम्राज्यकी स्थापना था। लेकिन १७४० ई० में पेशवा बाजीरावकी अचानक मृत्यु हो गयी। मृत्युके पहले उसने अपने प्रधान सरदार भोंसलेको नागपुर क्षेत्र, गायकवाड़को बड़ौदा क्षेत्र, होलकरको इंदौर क्षेत्र तथा शिन्देको ग्वालियर क्षेत्रका शासन सौंपा था। उसके पुत्र पेशवा बालाजी बाजीराव (१७४०-६१ ई०) (दे०)ने पंजाबमें मराठा सेना भेजी, जहाँ अहमदशाह अब्दालीका पुत्र तैमूर शासन कर रहा था। इस प्रकार बालाजीने अब्दालीसे लड़ाई मोल ले ली। फलतः पानीपतकी तीसरी लड़ाई (१७६१ ई०) (दे०)में मराठोंको करारी हार खानी पड़ी। बालाजी-को इससे भारी धक्का लगा और उसका प्राणांत हो गया। मराठा एकताको भी भारी धक्का लगा।

इसी बीच १७६१ ई०में एक मुस्लिम सिपाही हैदर अलीने मैसूरके हिन्दू वाडयार वंश (दे०)के राजाको उखाड़ फेंका। यह हिन्दू राज्य विजयनगरके पतन (१५६५ ई०) के पश्चात् स्थापित हुआ था और इसका विस्तार दक्षिणी प्रायद्वीपके अंतिम छोर तक था। अब दक्षिणके तीनों राज्यों—हैदराबाद, मैसूर तथा पूनाके बीच द्वन्द्व होने लगा। इन्होंने दक्षिणमें अंग्रेजोंकी बढ़ती हुई राजशक्तिकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। ये तीनों राज्य एक दूसरेके विरुद्ध षड्यंत्रों और देशविरोधी कार्योंमें संलग्न रहे। फल यह हुआ कि दक्षिणके राज्य मिलकर अंग्रेजोंको निकाल बाहर करनेमें विफल रहे। दूसरी ओर अंग्रेजोंने इन राज्योंकी प्रतिद्वन्द्विताका पूरा-पूरा फायदा उठाया। अंग्रेजोंने निजाम-को आश्रित संधि (दे०) करनेके लिए बाध्य किया और फिर उसकी मददसे १७९९ ई०में श्रीरंगपट्टम्के युद्ध में मैसूरके सुल्तान टीपूको पराजित करके मार डाला। मराठे निष्क्रिय होकर तमाशा देखते रहे। इसके बाद अंग्रेजोंने उसी वर्ष तंजौर और सूरतको अपने अधिकारमें कर लिया। अंतमें १८०२ ई०में अंग्रेजोंने मराठोंको भी पराजित कर उनपर बसईंकी संधि (दे०) आरोपित कर दी, जिसके अनुसार पेशवा भी आश्रित संधि करनेको बाध्य हो गया।

मराठोंने इस संधिसे निकलनेका प्रयास किया। फलतः दूसरा मराठा-युद्ध (१८०३-०५ ई०) (दे०) हुआ, जिसमें मराठा संघके सभी राज्य हार गये और सभीको आश्रित संधि स्वीकार करनी पड़ी। इस प्रकार दक्षिणपर अंग्रेजोंका प्रभुत्व स्थापित हो गया। मराठोंकी बची-खुची शक्ति तीसरे मराठा-युद्ध (१८१७-१९ ई०) (दे०)में समाप्त हो गयी जिसके फलस्वरूप पेशवा बाजीराव द्वितीयको पेंशन देकर उत्तर भारत (बिठूर) भेज दिया गया। होलकर आदि मराठा सरदारोंने भी अंग्रेज सरकारकी अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार दक्षिणका पृथक् राजनीतिक अस्तित्व पूर्णतया समाप्त हो गया। इसके बाद वह बराबर राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिसे भारतका अभिन्न अंग बना रहा। १९४७ ई० में भारतके स्वतंत्र होनेपर दक्षिणके देशी रजवाड़े भी जो अंग्रेजोंके अधीन थे, भारतीय गणतंत्रमें विलीन हो गये। उत्तर भारतकी भाँति दक्षिणा-पथ अथवा दक्षिण भी अब भारतका अविभाज्य अंग है।

दक्षिण एजूकेशन सोसाइटी—महाराष्ट्रके न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानाडेकी प्रेरणासे १८८४ ई०में स्थापित की गयी। इसका मुख्यालय बम्बई था और इसका उद्देश्य शिक्षा-पद्धतिमें ऐसा सुधार करना था, जिससे तत्कालीन शिक्षा-संस्थाओंमें प्रशिक्षित युवकोंकी अपेक्षा कहीं बेहतर युवक

देशसेवाके लिए तैयार किये जा सकें। सोसाइटीके सदस्योंके लिए यह आवश्यक था कि वे ७५ रुपया नाममात्रके वेतनपर कमसे कम २० वर्ष तक देशसेवा करें। गोपाल-कृष्ण गोखले, श्री श्रीनिवास शास्त्री आदि विख्यात समाज-सेवकोंने, जो इसी सोसाइटीको देन थे, बादमें सुप्रसिद्ध फर्गुसन कालेज, पूना तथा वेलिंगडन कालेज, सांगलीकी स्थापना की।

दत्ताजी शिन्दे—एक मराठा सेनापति, जो १७५६ ई० में पेशवा बालाजी रावकी ओरसे पंजाबका शासक था। यह सूबा अहमदशाह अब्दाली (दे०)के पुत्र तैमूरसे छीना गया था। जब अहमदशाह अब्दालीने यह खबर सुनी तो वह आग-बबूला हो गया। उसने वर्ष समाप्त होनेके पहले ही एक बड़ी सेना लेकर पंजाबपर आक्रमण कर दिया। दत्ताजी-ने अब्दालीका सामना थानेश्वरके युद्ध (दिसम्बर १७५६ ई०)में किया, लेकिन हारकर भाग खड़ा हुआ। दिल्लीके १० मील उत्तर बरारीघाटमें फिर दोनोंके बीच युद्ध हुआ जिसमें दत्ताजी ६ जनवरी १७६० को अब्दालीके हाथों मारा गया।

दनुजमर्दन देव—बंगालका शासक, जिसके सिक्के बंगालके सुदूर स्थानों, जैसे पांडुआ (पश्चिमी बंगाल), स्वर्णग्राम (ढाका जिला ?) और चटगाँवमें मिले हैं। इन सिक्कोंपर बंगलामें संस्कृत लेख और शक संवत् १३३६—१३४० अंकित हैं। ऐसी धारणा है कि दनुजमर्दन देव और राजा गणेश एक ही थे। राजा गणेश पन्द्रहवीं ईसवी शताब्दीमें बंगालका शासन करता था। (**'ढाका हिस्ट्री आफ बंगाल', खण्ड दो, पृष्ठ १२०—२२**)

दयानंद सरस्वती, स्वामी—(१८२४—८३ ई०) आर्य समाज (१८७५ ई०)के संस्थापक। भारतमें अंग्रेजी राज्य, विशेषरूपसे अंग्रेजी शिक्षा तथा ईसाई धर्मके प्रसारके साथ पश्चिमके अंधानुकरणकी जो प्रवृत्ति बढ़ती जा रही थी, उसका आर्य समाजने विरोध किया। स्वामीजी संस्कृतके अद्वितीय विद्वान् थे, लेकिन उन्हें अंग्रेजीका ज्ञान नहीं था। वे वैदिक धर्म, वैदिक शिक्षा तथा वैदिक दर्शनमें अत्यधिक विश्वास करते थे और उसीके अनुसार हिन्दू धर्म और समाज-को फिरसे ढालना चाहते थे। 'वेदोंकी ओर चलो' उनका नारा था। उन्होंने परवर्ती पौराणिक धर्मकी आलोचना की और बहुदेववाद तथा मूर्तिपूजाका खण्डन किया। वे एकेश्वरवादमें विश्वास करते थे। उन्होंने जातिबंधन, बालविवाह और समुद्रयात्रा-निषेधकी निंदा की। उन्होंने नारी-शिक्षा तथा विधवा-विवाहको प्रोत्साहित किया। वस्तुतः वे मुस्लिम शासनके अंतर्गत हिन्दू समाजमें आ जानेवाली बुराइयोंको दूर करना चाहते थे। इसके अलावा वे यह भी कहते थे कि किसी भी अहिन्दूको हिन्दू बनाया जा सकता है। इसके लिए उन्होंने शुद्धि-आंदोलन चलाया, जिसका उद्देश्य भारतीयोंकी अखण्डता और एकता-को बल प्रदान करना था। अतएव इस आंदोलनके राजनी-तिक निहितार्थ भी थे। स्वामीजीने अपने सिद्धांतोंके प्रचारके लिए अनेक पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'सत्यार्थप्रकाश' मुख्य है। वे एक महान् वक्ता थे और सीधे जनताके बीच जाकर उपदेश देते थे। पंजाब और उत्तर प्रदेशमें उनके सिद्धान्तोंका बहुत प्रचार हुआ। उन्होंने यद्यपि पश्चिमी विज्ञान तथा समाजशास्त्र तथा धर्मके सम्बन्धमें वैज्ञानिक दृष्टिकोणकी उपेक्षा की, तथापि उन्होंने अपने असाधारण व्यक्तित्वसे हिन्दू समाजको नींवसे हिला दिया। उन्होंने हिंदू मस्तिष्कको पश्चिमी शिक्षा और धर्मकी चुनौतीका सामना करने, प्राच्य सभ्यताको जीवित रखने तथा हिन्दू धर्म एवं संस्कृतिके शुद्ध रूपको प्रतिष्ठित करनेका भगीरथ प्रयास किया।

आर्य समाजके आंदोलनका फल यह हुआ कि हिन्दुओंका धर्म-परिवर्तन रुक गया। जिन हिन्दुओंने दूसरा मजहब स्वीकार कर लिया था, उनमेंसे अनेकको फिर हिन्दू बना लिया गया। आर्य समाजने भारतमें राष्ट्रवादके विकासमें बहुत बड़ा योगदान किया एवं यह शिक्षा दी कि जातिभेद और सामाजिक भिन्नताके बावजूद समस्त भारतकी जनता एक है। इससे राष्ट्रीयताकी भावनाको बहुत बल मिला। गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार) स्वामीजीके आदर्शोंका मूर्तिमान रूप है, जहाँ संस्कृत शिक्षाका माध्यम है। स्वामीजीके अनुयायियोंने बादमें आधुनिक शिक्षापर भी जोर दिया। इसके लिए उन्होंने उत्तर भारतमें सैकड़ों दयानंद ऐंग्लो-वैदिक स्कूल-कालेज खोले, जिनमें आधुनिक ज्ञान-विज्ञानके साथ अंग्रेजीकी भी शिक्षा दी जाने लगी। १६वीं शताब्दीमें भारतीय राष्ट्रीयताके विकासमें स्वामी दयानंदका बहुत बड़ा योगदान माना जाता है।

दर्शक (लगभग ४६७—४४३ ई० पू०)—मगधके सम्राट् अजातशत्रु (लगभग ४६४—४६७ ई० पू०) का पुत्र और उत्तराधिकारी। कदाचित् यह वही नरेश था, जिसका उल्लेख भास लिखित नाटक 'स्वप्नवासवदत्ता'में मिलता है।

दलाई लामा—कुछ वर्ष पहले तक तिब्बतके धर्मगुरु तथा शासक। वर्तमान दलाई लामा, जिन्हें तिब्बतपर चीनी आक्रमणके बाद भागकर भारतमें शरण लेनी पड़ी, दलाई लामाओंके क्रममें चौदहवें हैं। तिब्बतकी बौद्ध मतावलम्बी जनता दलाई लामाको बोधिसत्व अवलोकितेश्वरका

अवतार मानती है। प्रचलित प्रथाके अनुसार दलाई लामाको देवता और मनुष्य मिलकर खोजते हैं। उस समय वे आमतौरसे बालक होते हैं और गद्दीपर बैठनेके बाद उनकी तरफसे अभिभावक और भिक्षुओंकी परिषद् शासन चलाती है। वयस्क हो जानेपर वे स्वयं भिक्षुओंकी परिषद् चुनते हैं और उसकी सहायतासे शासन करते हैं।

दलायल-ए-फीरोजशाही—फारसीका एक उल्लेखनीय काव्य-ग्रंथ। इसकी रचना सुल्तान फीरोजशाह तुगलकके आदेशपर उसके दरबारी कवि आजुद्दीन खालिद खानीने की थी। इसमें विभिन्न विषयोंके ३०० संस्कृत ग्रंथोंका अनुवाद है। ये ग्रंथ सुल्तानको नगरकोटके निकट ज्वालामुखीके मंदिरमें उस समय मिले थे जब १३३७ ई० में छः महीनेकी घेराबंदीके बाद नगरकोटने सुल्तानके आगे आत्मसमर्पण कर दिया था।

द-लाली—देखिये, 'लाली'।

द-ला-हाये—एक फ्रांसीसी नौसेनाधिकारी, जो चोलमण्डल तटपर फ्रांसीसी हितोंकी रक्षा करनेके लिए भेजा गया था। १६७२ ई० में फ्रांसीसियोंने मद्रासके निकट सेण्ट थोमपर कब्जा कर लिया, लेकिन अगले वर्ष ही डचोंने श्रीलंकाके त्रिकोमाली बंदरगाहमें तैनात फ्रांसीसी बेड़ेको, जिसका नेतृत्व द-ला-हाये कर रहा था, वहाँसे मार भगाया। बादमें डचोंने १६७४ ई० में सेण्ट थोमपर भी अधिकार कर लिया।

दलीपसिंह—पंजाबके महाराज रणजीतसिंहका सबसे छोटा पुत्र। १८४३ ई० में वह नाबालिगीकी अवस्थामें अपनी माँ रानी जिंदाँकी संरक्षकतामें राजसिंहासनपर बैठाया गया। उसकी सरकार प्रथम सिख-युद्ध (१८४५–४६) में शामिल हुई, जिसमें सिखोंकी हार हुई और उसे सतलज नदीके बायीं ओरका सारा क्षेत्र एवं जलंधर दोआब अंग्रेजोंको समर्पित करके और डेढ़ करोड़ रुपया हर्जाना देकर संधि करनेके लिए बाध्य होना पड़ा। रानी जिंदाँसे नाबालिग राजाकी संरक्षकता छीन ली गयी और उसके सारे अधिकार सिख सरदारोंकी परिषद्में निहित कर दिये गये। किन्तु परिषद्ने दलीपसिंहकी सरकारको १८४८ ई० में ब्रिटिश भारतीय सरकारके विरुद्ध दूसरे युद्धमें फँसा दिया। इस बार भी सिखोंकी पराजय हुई और ब्रिटिश विजेताओंने दलीपसिंहको अपदस्थ करके पंजाबको ब्रिटिश राज्यमें मिला लिया। दलीपसिंहको पाँच लाख रुपया वार्षिककी पेंशन बाँध दी गयी और इसके बाद शीघ्र ही माँके साथ उसे इंग्लैण्ड भेज दिया गया, जहाँ दलीपसिंहने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया और वह नारफाकमें कुछ समय तक जमींदार रहा। इंग्लैण्ड प्रवासके दौरान दलीपसिंहने १८८७ ई० में रूसकी यात्रा की और वहाँ जारको भारतपर हमला करनेके लिए राजी करनेका असफल प्रयास किया। बादमें वह भारत लौट आया और फिरसे अपना पुराना सिख धर्म ग्रहण करके शेष जीवन व्यतीत किया। (**'बंगाल पास्ट ऐण्ड प्रेजेण्ट', खण्ड ७४, पृष्ठ १८६**)

दवार बख्श—बादशाह जहाँगीर (१६०५–२७) के पुत्र खुसरू (दे०) का पुत्र। खुसरूकी मृत्यु १६२२ ई० में हो गयी और अक्तूबर १६२७ ई० में जहाँगीरके मरनेपर शाहजहाँके श्वसुर आसफखाँने दिल्लीकी गद्दीपर दवार बख्शको बैठा दिया ताकि जहाँगीरका सबसे छोटा पुत्र शहरयार जो मलका नूरजहाँका कृपापात्र था, गद्दीपर न बैठ सके। फरवरी १६२८ ई० में शाहजहाँके दक्षिणसे आगरा लौट आनेपर दवार बख्शको गद्दीसे उतार दिया गया और शाहजहाँ सम्राट् घोषित किया गया। दवार बख्शको कारागारमें डाल दिया गया। बादमें वह मुक्त होनेपर फारस चला गया और वहाँके बादशाहकी संरक्षकतामें जीवन व्यतीत करता रहा।

दशरथ—अयोध्या अथवा अवधके राजा, जो भारतके आदि-कवि वाल्मीकि-रचित रामायणके नायक रामचंद्रजीके पिता थे।

दशरथ—अशोक मौर्यका पौत्र, जो लगभग २३२ ई० पू० गद्दीपर बैठा। उसने बिहारकी नागार्जुनी पहाड़ियोंकी कुछ गुहाएँ आजीविकोंको निवासके लिए दान कर दी थीं। इन गुहाओंकी दीवालोंपर अंकित अभिलेखोंसे प्रकट होता है कि दशरथ भी अपने पितामहकी भाँति 'देवानाम्प्रिय'की उपाधिसे विभूषित था। यह कहना कठिन है कि वह भी बौद्ध धर्मका अनुयायी था या नहीं। (**रायचौधरी, पृ० ३५०–५१**)

दस्तक—बंगालमें ईस्ट इंडिया कम्पनी जो पारपत्र जारी करती थी, उनमें कंपनीके अभिकर्ताओंको अधिकार दिया जाता था कि वे प्रांतके अंदर चुंगी अदा किये बिना व्यापार कर सकें। १७१७ ई० में शाह फर्रुखसियर द्वारा कम्पनीको दिये गये फरमानके अन्तर्गत ढाई प्रतिशत चुंगी अदा न करनेकी छूट दी गयी थी। कानूनी तौरपर यह छूट केवल कम्पनी ही प्राप्त कर सकती थी। लेकिन इस छूटका बेजा फायदा दो प्रकारसे उठाया जाता था। पहले तो कम्पनीके कर्मचारी दस्तक प्राप्त करके स्वयं बिना चुंगी दिये निजी व्यापार करते थे। फिर कम्पनी इस प्रकारके दस्तक भारतीय व्यापारियोंको भी बेच दिया करती थी, जिनके द्वारा वे लोग भी बिना चुंगी दिये व्यापार करते थे।

नवाब सिराजुद्दौला (दे०)ने 'दस्तक' प्रथाका विरोध किया, लेकिन पलासीके युद्ध (दे०)के बाद 'दस्तक' प्रथा और अधिक बढ़ गयी। इस समय नवाब मीर जाफर (दे०) नाममात्रका शासक था। अन्तमें इस प्रथाका फल यह हुआ कि इससे सबसे अधिक हानि भारतीय व्यापारियोंको ही उठानी पड़ी और नवाबको भी राजस्वके बहुत बड़े अंशसे हाथ धोना पड़ा।

मीर जाफरके पदच्युत किये जाने और मीर कासिम (१७६०–६३) (दे०)के पदारूढ़ किये जानेके बाद यह बुराई इतनी अधिक बढ़ गयी कि १७६२ ई० में मीर कासिमने कम्पनीसे इसका घोर विरोध किया तथा माँग की कि इसे रोका जाय। लेकिन कम्पनीने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। फलतः मीर कासिमने सभीके लिए पूरी चुंगी माफ कर दी, जिससे सभी प्रकारके व्यापारियों-को समान लाभ मिल सके। इसका नतीजा यह हुआ कि कम्पनीके कर्मचारियोंको अपनी गैरकानूनी आमदनीका घाटा होने लगा। उन्होंने, विशेषरूपसे पटनाके एलिस नामक कम्पनीके कर्मचारीने, शस्त्रबलसे अपने गैरकानूनी दावेको मनवानेका प्रयास किया। फलतः कम्पनी और मीर कासिममें युद्ध (१७६३) छिड़ गया। मीर कासिम लड़ाईमें हारकर भाग खड़ा हुआ। क्लाइव (दे०)ने, दूसरी बार (१७६५–१७६७ ई०) बंगालका गवर्नर नियुक्त होनेपर 'दस्तक' प्रथासे उत्पन्न बुराईको दूर करने और कर्मचारियोंके निजी व्यापारको नियंत्रित करनेका प्रयास किया। लेकिन अन्तमें गवर्नर-जनरल लार्ड कार्न-वालिस (१७८६–९३ ई०)के जमानेमें ही यह बुराई पूरी तौरसे समाप्त हो सकी।

दस्यु—देखिये, 'दास'।

दाऊद खाँ—बंगालके हाकिम सुलेमान कर्रानीका पुत्र और उत्तराधिकारी। सुलेमानकी १५७८ ई० में मृत्यु हो गयी। दाऊदने गद्दीपर बैठनेके बाद अपनेको स्वतंत्र बादशाह घोषित किया। उसने गाजीपुर जिले (उ० प्र०)के एक मुगल किलेपर अधिकार कर लिया। तत्कालीन मुगल बादशाह अकबर (दे०), बंगालमें स्वतंत्र राज्यकी स्थापना-को मुगल साम्राज्यकी सुरक्षाके लिए खतरनाक मानकर १५७४ ई० में स्वयं दाऊदको दंडित करनेके लिए, एक बड़ी सेना लेकर रवाना हुआ। दाऊद बिहार छोड़कर भागा। मुगल सेनापति मुनअम खाँने उसे टुकरोई (उड़ीसा) के युद्ध (मार्च १५७५) में पराजित किया। फिर भी दाऊद मुगलोंके विरुद्ध लड़ता रहा। जुलाई १५७६ ई० में राज-महलके युद्धमें दाऊद अंतिम रूपसे पराजित हुआ और मारा गया। उसके बाद बंगालको मुगल साम्राज्यमें मिला लिया गया।

दाऊद खाँ—गुजरातमें १४०१ ई० में जफर खाँने अपनेको स्वतंत्र सुलतान घोषित करके जो नया राजवंश चलाया, उसमें चौथा सुलतान। दाऊद १४५१ ई० में गद्दीपर बैठा। परन्तु आरम्भमें ही उसने अपने दुराचरणसे समस्त अमीरोंको अपना विरोधी बना दिया और उन्होंने उसे कुछ ही दिनोंके बाद गद्दीसे उतार दिया।

दाऊद खाँ—खानदेशके फारूकी वंशका छठा शासक। उसने सात वर्ष (१५०१–१५०८ ई०) तक शासन किया। उसके शासनकालमें कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं घटी।

दाऊद बहमनी—दक्षिणके बहमनी वंशका चौथा सुलतान। वह तृतीय सुलतान मुजाहिदशाहका चचेरा भाई था। दाऊदने उसकी हत्या करायी और स्वयं १३७८ ई० में गद्दीपर बैठ गया। लेकिन वह अधिक दिन तक शासन न कर सका। कुछ ही समय बाद मृत मुजाहिदशाहकी दूध-बहनने दाऊदको मरवा दिया।

दादाजी खोंडदेव (कोण्डदेव)—एक मराठा ब्राह्मण और महान मराठा नेता शिवाजी (१६२७–८० ई०)का गुरु और अभिभावक। उसने अपने इस शिष्यके मनमें बचपन-से साहस और पराक्रमके उदात्त भावके साथ-साथ प्राचीन भारतके महान् हिंदू वीरोंके प्रति श्रद्धाकी भावना भरी। उसने गौ और ब्राह्मणको पूज्य बताया। उसीसे प्रेरित होकर शिवाजीने भारतमें स्वराज्य स्थापित करनेका संकल्प किया। दादाजी खोंडदेवने शिवाजीके छोटेसे राज्यका शासन सुव्यवस्थित करके उसकी भावी राजस्व प्रणालीकी आधारशिला रखी। **(यदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी ऐण्ड हिज टाइम्स')**

दादाभाई नौरोजी (१८२५–१९१७)—बम्बईके एक प्रमुख व्यापारी, जिनका इंग्लैण्डतक गहरा व्यापारिक संबंध था। वे जातिके पारसी और बहुत धनिक थे। उनका दृष्टिकोण बहुत उदार था और उन्हें भारतके सार्वजनिक आन्दोलनोंमें गहरी दिलचस्पी रहती थी। १८८६ ई० में कलकत्तामें हुए दूसरे अधिवेशनमें उन्हें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका अध्यक्ष चुना गया। वे पहले भारतीय थे जिन्हें उदार दल (लिबरल पार्टी) के टिकटपर इंग्लैण्डकी कामन सभाका सदस्य चुना गया। इसके बाद भी वे दो बार, १८९३ और १९०६ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। उनके देखते-देखते भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस प्रशासन संबंधी शिकायतें दूर करानेके लिए प्रयत्नशील पराधीन जनताके मामूलीसे संगठनसे स्वराज्य प्राप्त

करनेके लिए संघर्षशील एक शक्तिशाली राष्ट्रीय प्रतिनिधि सभा बन गयी। स्वराज्यकी मांग भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने पहली बार १९०६ ई०में श्री नौरोजीकी अध्यक्षता-में हुए कलकत्ता अधिवेशनमें की। उनकी मृत्यु ९२ वर्षकी अवस्थामें १९१७ ई०में हुई, जिसके १२ वर्ष बाद कांग्रेसने पूर्ण स्वाधीनताको अपना लक्ष्य घोषित किया। **(आर० पी० मसानी कृत 'दादाभाई नौरोजी—दि ग्रेंड ओल्ड मैन आफ इंडिया')**

दादू—इन्होंने एक निर्गुणवादी संप्रदायकी स्थापना की, जो 'दादूपंथ'के नामसे ज्ञात है। वे अहमदाबादके एक धुनिया-के पुत्र और मुगल सम्राट् शाहजहां (१६२७—५८) के समकालीन थे। उन्होंने अपना अधिकांश जीवन राज-पूतानामें व्यतीत किया एवं हिन्दू और इस्लाम धर्ममें समन्वय स्थापित करनेके लिए अनेक पदोंकी रचना की। उनके अनुयायी न तो मूर्तियोंकी पूजा करते हैं और न कोई विशेष प्रकारकी वेशभूषा धारण करते हैं। वे सिर्फ राम-नाम जपते हैं और शांतिमय जीवनमें विश्वास करते हैं, यद्यपि दादूपंथियोंका एक वर्ग सेनामें भी भर्ती होता रहा है।

दाबोका युद्ध—मार्च १८४३ ई० में सर चार्ल्स नेपियरके नेतृत्वमें भारतीय ब्रिटिश सेना द्वारा मीरपुर (सिंध) के सर्वाधिक शक्तिसंपन्न अमीर मुहम्मदके खिलाफ छेड़ा और जीता गया। इस युद्धके बाद वस्तुतः पूरे सिंध प्रदेशपर अंग्रेजोंका कब्जा हो गया और उसे ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया।

दानसागर—बंगालके राजा वल्लालसेन (११५८—७९ ई०) द्वारा संकलित ग्रन्थ। इसमें ७० अध्याय हैं, जिनमें दानकी महत्ता, दानके प्रकार, दान करनेके काल तथा दान देनेकी विधियोंका विवेचन है।

दानाध्यक्ष—शिवाजीके प्रशासनके अष्ट-प्रधानोंमेंसे एक, जो 'पंडितराव' भी कहलाता था। वह राजपुरोहित और राजकीय दान-वितरक होता था।

दानियाल, शाहजादा—मुगल सम्राट् अकबरका तीसरा और सबसे छोटा पुत्र। जन्म १५७२ ई० में। वह उस मुगल सेनाका नायक था जिसके आगे अहमदनगरको आत्म-समर्पण करना पड़ा। वह अकबरका बहुत ही प्यारा पुत्र था, लेकिन शराबखोरीकी बुरी आदत पड़ जानेसे उसकी मृत्यु बहुत जल्दी १६०४ ई० में हो गयी।

दानिशमंद खाँ—शाहजहाँके शासनके अंतिमकाल और औरंगजेबके शासनके प्रारम्भिककालमें दिल्ली दरबारमें विद्यमान। वह बर्नियरका संरक्षक था, जो उसे एशियाका योग्यतम व्यक्ति समझता था। **(बर्नियर कृत 'ट्रैवेल्स')**

दामाजी गायकवाड़—पिलानी गायकवाड़का पुत्र, जो आरम्भ-में मराठा सेनापति त्र्यम्बकराव दाभाड़ेकी सेनामें नौकर था। १७३१ ई० में बिल्हापुरके युद्धमें त्र्यम्बकरावकी पराजय हुई और वह मारा गया। दामाजीने इस युद्धमें अद्भुत शौर्यका प्रदर्शन किया। इससे प्रभावित होकर विजेता पेशवा बाजीराव प्रथमने दामाजीको अपनी सेवामें रख लिया और बादको उसे गुजरातमें पेशवाका प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया। इस प्रकार दामाजी मराठा संघका एक प्रमुख सरदार बन गया और उसने बड़ौदाको अपनी राजधानी बनाकर गुजरातमें गायकवाड़ोंकी सत्ता स्थापित की। उसने बाजीराव प्रथमके बाद दूसरे पेशवा बालाजी बाजीरावकी भी सेवा की और १७६१ ई० में पानीपतके युद्धमें भाग लिया, किंतु जान बचानेके लिए वह युद्धक्षेत्रसे भाग आया। इस पराजयके बाद भी दामाजी गुजरातको अपने अधिकारमें किये रहा। १७६८ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। **('बम्बई गजेटियर', खण्ड ७)**

दामोदर गुप्त—एक प्रख्यात विद्वान्। वह नवीं शताब्दी ई० में कश्मीरके शासक महाराज जयापीडका दरबारी कवि था।

दारयबहु (लगभग ई० पू० ५२२—४८६)—फारसके अखामनी वंशका तीसरा सम्राट्। उसके बहिस्तान अभिलेख (लग-भग ई० पू० ५१९)में गंधारके लोगोंको भी उसकी प्रजा बताया गया है। हमदान, परसीपोलिस तथा नक्शेरुस्तम-से प्राप्त उसके एक अन्य अभिलेखमें भारतीयोंका भी उल्लेख उसकी प्रजाके रूपमें किया गया है। हेरोडोटसके अनुसार गंधार उसके साम्राज्यका सातवाँ प्रांत और भारत अर्थात् सिंधुघाटी बीसवाँ प्रांत था। दारयबहुको अपने भारतीय साम्राज्यसे काफी राजस्व प्राप्त होता था और साथ ही यहांसे उसकी सेनाके लिए सैनिक भी भेजे जाते थे। इस प्रकार भारत और फारसके बीच अत्यंत प्राचीनकालसे संपर्क था, जो दिनोंदिन बढ़ता गया। फलस्वरूप बहुतसे फारसी शब्द भारतमें प्रचलित हो गये। फारसके विचारोंने कुछ अंश तक भारतीय कलाको भी प्रभावित किया। **(राय चौधरी, पृ० २४० नोट)**

दाराशिकोह, शाहजादा—मुगल बादशाह शाहजहाँ (दे०)का सबसे बड़ा पुत्र। मुमताज बेगम उसकी माता थी। आरम्भमें वह पंजाबका सूबेदार बनाया गया, जिसका शासन वह राजधानीसे अपने प्रतिनिधियोंके जरिये चलाता था। शाहजहाँ अपने पुत्रोंमें सबसे ज्यादा इसीको चाहता था और उसे आमतौरसे अपने साथ दरबारमें रखता था। दारा बहादुर इंसान था और बौद्धिक दृष्टिसे उसे अपने प्रपितामह अकबरके गुण विरासतमें मिले थे। वह सूफीवाद-

की ओर उन्मुख था और इस्लामके हनफी पंथका अनुयायी था। वह सभी धर्म और मजहबोंका आदर करता था और हिंदू दर्शन व ईसाई धर्ममें विशेष दिलचस्पी रखता था। उसके इन उदार विचारोंसे कुपित होकर कट्टरपंथी मुसलमानोंने उसपर इस्लामके प्रति अनास्था फैलानेका आरोप लगाया। इस परिस्थितिका दाराके तीसरे भाई औरंगजेबने खूब फायदा उठाया। दाराने १६५३ ई० में कंधारकी तीसरी घेराबंदीमें भाग लिया था, यद्यपि वह इस अभियानमें विफल रहा, फिर भी अपने पिताका कृपापात्र बना रहा और १६५७ ई०में शाहजहाँ जब बीमार पड़ा तो वह उसके पास मौजूद था।

दाराकी उम्र इस समय ४३ वर्ष थी और वह पिताके तख्ते ताऊसको उत्तराधिकारमें पानेकी उम्मीद रखता था। लेकिन तीनों छोटे भाइयों, खासकर औरंगजेबने उसके इस दावेका विरोध किया। फलस्वरूप दाराको उत्तराधिकारके लिए अपने इन भाइयोंके साथ युद्ध करना पड़ा (१६५७–५८ ई०)। लेकिन शाहजहाँके समर्थनके बावजूद दाराकी फौज १५ अप्रैल १६५८ ई० को धर्मटके युद्धमें औरंगजेब और मुरादकी संयुक्त फौजोंसे हार गयी। इसके बाद दारा अपने बाग़ी भाइयोंको दबानेके लिए दुबारा खुद अपने नेतृत्वमें शाही फौजोंको लेकर निकला, किन्तु इस बार भी उसे २९ मई १६५८ ई० को सामूगढ़के युद्धमें पराजयका मुंह देखना पड़ा। इस बार दाराके लिए आगरा वापस लौटना संभव नहीं हुआ। वह शरणार्थी बन गया और पंजाब, कच्छ, गुजरात एवं राजपूतानामें भटकनेके बाद तीसरी बार फिर एक बड़ी सेना तैयार करनेमें सफल हुआ। दौराईमें अप्रैल १६५९ ई० में औरंगजेबसे उसकी तीसरी और आखिरी मुठभेड़ हुई। इस बार भी वह हारा। दारा फिर शरणार्थी बनकर अपनी जान बचानेके लिए राजपूताना और कच्छ होता हुआ सिंध भागा। यहाँ उसकी प्यारी बेग़म नादिराका इंतकाल हो गया।

दाराने दादरके अफगान सरदार जीवनखानका आतिथ्य स्वीकार किया। किंतु मलिक जीवनखान गद्दार साबित हुआ और उसने दाराको औरंगजेबकी फौजके हवाले कर दिया, जो इस बीच बराबर उसका पीछा कर रही थी। दाराको बंदी बनाकर दिल्ली लाया गया, जहाँ औरंगजेबके आदेशपर उसे भिखारीकी पोशाकमें एक छोटे-सी हथिनीपर बिठाकर सड़कोंपर घुमाया गया। इसके बाद मुल्लाओंके सामने उसके खिलाफ मुक़दमा चलाया गया। धर्मद्रोहके अभियोगमें मुल्लाओंने उसे मौतकी सजा दी। ३० अगस्त १६५९ ई० को इस सजाके तहत दाराका सिर काट लिया गया। उसका बड़ा पुत्र सुलेमान पहलेसे ही औरंगजेबका बंदी था। १६६२ ई० में औरंगजेबने जेलमें उसकी भी हत्या करा दी। दाराके दूसरे पुत्र सेपहरशिकोहको बख्श दिया गया, जिसकी शादी बादको औरंगजेबकी तीसरी लड़कीसे हुई। **(कालिकारंजन कानूनगो कृत 'दाराशिकोह')**

दारोगा–एक फारसी शब्द, जिसका अर्थ होता है 'प्रधान'। ब्रिटिश कालमें यह थाना अधिकारीका पद-नाम बन गया। इसका अंग्रेज़ी पर्याय सब-इंसपेक्टर, पुलिस है। इस पदका सर्जन लार्ड कार्नवालिस (१७८६–९३) के प्रशासनके दौरान हुआ, जिसने प्रत्येक जिलेको थानों या पुलिस स्टेशनोंमें विभाजित किया था। थानोंका इंचार्ज दारोगा होता था।

दास–वैदिक साहित्यमें 'दास' शब्द आर्योंके शत्रुके लिए प्रयुक्त हुआ है, जिनके साथ उन्हें पंजाबमें युद्ध करना पड़ा था। इन्हें दस्यु भी कहते हैं। दासोंको श्याम वर्ण और चपटी नाकवाला बताया गया है। वे ऐसी भाषा बोलते थे, जिसे आर्य नहीं समझते थे। उनके किलों और पशुधनको हस्तगत कर लेनेके लिए आर्य लोग लालायित रहते थे। दास लोग आर्योंकी यज्ञप्रथाके विरोधी थे। ये लोग कदाचित् निचली सिंधु घाटीमें फलने-फूलनेवाली प्रागैतिहासिक सभ्यतासे सम्बंधित थे। बादमें 'दास' शब्दका अर्थ नौकर अथवा गुलाम हो गया और दस्यु डाकुओंको कहा जाने लगा। **(मेकडानेल एवं कीथ रचित 'वैदिक इण्डेक्स')**

दास प्रथा–भारतवर्षमें प्रायः सभी युगोंमें विद्यमान रही है। यद्यपि चौथी शताब्दी ई० पू० में मेगस्थनीज (दे०) ने लिखा था कि भारतवर्षमें दास प्रथा नहीं है, तथापि कौटिल्यके अर्थशास्त्र (दे०) तथा अशोकके अभिलेखोंमें प्राचीन भारतमें दास प्रथा प्रचलित होनेके संकेत उपलब्ध होते हैं। ऋणग्रस्त अथवा युद्धोंमें बन्दी होनेवाले व्यक्तियोंको दास बना लिया जाता था। फिर भी प्राचीन भारतमें यूरोपकी भांति दास प्रथा न तो व्यापक थी और न दासोंके प्रति वैसा क्रूर व्यवहार होता था। मुसलमानोंके शासनकालमें दास प्रथामें वृद्धि हुई और उन्हें नपुंसक बना डालनेकी क्रूर प्रथा आरम्भ हुई। यह प्रथा भारतमें ब्रिटिश शासन स्थापित हो जानेके उपरांत भी यथेष्ट दिनों तक चलती रही। १८४३ ई० में इसको बन्द करनेके लिए एक अधिनियम पारित किया गया।

दासबोध–१७वीं शताब्दीमें स्वतंत्र मराठा राज्यकी स्थापना करनेवाले शिवाजीके गुरु रामदास द्वारा लिखित प्रसिद्ध ग्रंथ।

दास्ताने अमीर हमजल–चित्रोंकी एक किताब, जिसमें फारसके सुप्रसिद्ध कलाकार मीर सैयद अली और ख्वाजा अब्दुस्समदके चित्र संगृहीत हैं। जब हुमायूंने भारतसे भागकर फारसमें शरण ली थी, तो यह पुस्तक उसे समर्पित की गयी थी। जब हुमायूं काबुलसे वापस लौटा तो वह इस पुस्तकको अपने साथ ले आया। बादमें जब उसने पुनः दिल्लीको विजय किया, वह उस किताबको दिल्ली ले आया। तबसे यह चित्रसंग्रह भारतमें है। इस संग्रहके चित्रोंसे ही मुगल चित्रकलाकी नींव पड़ी।

दाहिर–चचका पुत्र। जब आठवीं शताब्दी ई० के पहले दशकमें अरबोंने सिंधपर आक्रमण किया, वह वहाँका शासक था। शुरूके हमलोंको तो दाहिरने कुचल दिया किन्तु ७१२ ई० में मुहम्मद-इब्न-कासिमके नेतृत्वमें अरबोंने उसे परास्त कर दिया और राओरके युद्धमें वह मारा गया। उसकी विधवा रानीने राओरका किला बचानेमें असफल होनेपर जौहर कर लिया। इसके बाद अरबोंने सिंधकी राजधानी आलोरपर कब्जा कर लिया और इस प्रकार सिंध मुस्लिम अरबोंके शासनाधीन हो गया।

दिगम्बर जैन–जैन धर्म (दे०) का एक सम्प्रदाय, जिसके साधु वस्त्रहीन रहते हैं। इसके विपरीत श्वेताम्बर साधु श्वेत वस्त्र धारण करते हैं।

दिङ्नाग–प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य और कवि, जो सम्भवतः चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (३८०–४१५ ई०)के शासन-कालमें विद्यमान था।

दिद्दा–कश्मीरनरेश क्षेमगुप्तकी रानी, जिसने १०वीं शताब्दी ईसवीमें पहले अपने पतिकी ओरसे शासन किया जो उसके हाथकी कठपुतली मात्र था, बादमें राजाके मरनेपर वह स्वयं राजसिंहासनपर आरूढ़ हो गयी। १००३ ई० में उसने अपने भतीजे संग्रामराजको राजमुकुट सौंप दिया, जिससे कश्मीरमें लोहर राजवंश प्रचलित हुआ।

दिया ज द नोवैस, बार्थो लोम्यो–प्रथम पुर्तगाली नाविक, जिसने १४८७ ई० में दक्षिण अफ्रीकाके उत्तमाशा अन्तरीप-का चक्कर लगाया और इस प्रकार यूरोप और भारतके बीच समुद्रमार्गकी खोज की।

दिलरस बानो बेगम–मुगल अफसर शाहनवाज खांकी पुत्री, जो एक ईरानी अमीर था, १६३७ ई० में शाहजादा औरंग-जेबके साथ ब्याही गयी। जब १६५८ ई० में औरंगजेब सम्राट्की हैसियतसे दिल्लीकी गद्दीपर बैठा, तो दिलरस बानो सम्राज्ञी बनी।

दिलावर खां गोरी–शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीका वंशज होनेका दावा करनेवाला एक सरदार। वह १३९२ ई० में मालवा-का सूबेदार नियुक्त किया गया। जब तैमूरने १३९८ ई० में दिल्लीपर आक्रमण किया तो चारो ओर अराजकता उत्पन्न हो गयी, जिसका लाभ उठाकर दिलावर खाँ मालवा-का स्वतंत्र शासक बन बैठा। पाँच वर्ष शासन करनेके पश्चात् उसकी मृत्यु हो गयी। १४०६ ई० में उसका पुत्र अल्प खाँ गद्दीपर बैठा और उससे मालवामें एक नये राजवंश-का प्रचलन हुआ। मालवा स्वाधीन राज्यके रूपमें १५६१ ई० तक बचा रहा जब कि मुगल सम्राट् अकबरने उसे विजय करके अपने अधिकारमें कर लिया।

दिलावर खां लोदी–दिल्लीके अंतिम सुल्तान इब्राहीम लोदी (१५१७–२६)के अधीनस्थ लाहौरके अर्ध-स्वतन्त्र सूबेदार दौलतखां लोदीका पुत्र, जिसके साथ सुल्तानने बड़ा कठोर व्यवहार किया। इसके फलस्वरूप दौलत खां सुल्तानसे कुपित हो गया और उसने बाबरको भारतपर आक्रमण करनेके लिए आमंत्रित किया।

दिलेर खां–एक मुगल अमीर, जिसे सम्राट् औरंगजेबने शिवाजीके विरुद्ध राजा जयसिंहके साथ भेजा था। शिवाजी-को जून १६६५ ई० में पुरन्दरकी संधिके लिए बाध्य करनेका श्रेय जयसिंहके साथ इस अमीरको भी है। किन्तु १६७० ई० में मराठों और मुगलोंके बीच पुनः युद्ध आरम्भ हो गया। दिलेर खांको शाहजादा शाहआलमका सहायक बनाकर युद्धके लिए भेजा गया। इस युद्धमें शिवाजीके विरुद्ध दिलेर खांको बहुत कम सफलता मिली। पुरन्दरकी संधिके अनुसार जो किले शिवाजीके हाथसे निकल गये थे, वे पुनः शिवाजीने छीन लिये और १६७४ ई० में शिवाजीने एक स्वतन्त्र नरेश के रूपमें अपना राज्याभिषेक किया

दिल्ली–भारतकी राजधानी। ऐसा विश्वास किया जाता है कि मूल दिल्ली उस स्थानपर थी जहां पहले महाभारत वर्णित पाण्डवोंकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी। इस नगरकी प्राचीनता इसी बातसे सिद्ध होती है कि इन्द्रपत नामका गाँव आज भी विद्यमान है, जहाँ हुमायूं और शेरशाहके किलोंके अवशेष पाये जाते हैं। ऐतिहासिक दृष्टिसे दिल्ली-का प्रथम निर्माता तोमर नरेश अनंगपाल था, जो ईसाकी ११वीं शताब्दीमें शासन करता था। उसने एक लाल किला भी बनवाया था जहाँ आजकल कुतुबमीनार अवस्थित है, जो वर्तमान नयी दिल्लीसे दक्षिणमें तीन मीलपर है। बारहवीं शताब्दीमें यह नगर अजमेरके चौहानोंके हस्तगत हो गया। किन्तु ११९३ ई०में शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने इसे अंतिम चौहान नरेश पृथ्वीराजसे छीन लिया। इस प्रकार दिल्लीपर हिन्दू शासनका अंत हो गया।

मुस्लिम विजेताओंने १८५७ ई० तक इसे अपनी

राजधानी बनाये रखा, जबकि अंग्रेजोंने अंतिम मुगल सम्राट् बहादुरशाह (१८३७–५७ ई०)को गद्दीसे उतारकर उसपर अधिकार कर लिया। मुस्लिम शासकोंने इस लम्बे काल (११९३–१८५७)के दौरान विभिन्न समयोंमें दिल्ली क्षेत्रके अंतर्गत विभिन्न स्थानोंपर अपने महल बनाये। इन लोगोंने कभी दिल्ली छोड़ देनेकी बात नहीं सोची। केवल कुछ अवधिके लिए बाबर, अकबर और जहांगीरने आगरा अपनी राजधानी बनायी थी।

अलाउद्दीन खिलजी (१२९६–१३१६)ने पुरानी दिल्लीके उत्तर-पूर्व तीन मीलपर सीरी बसायी, गयासुद्दीन तुगलकने पुरानी दिल्लीके पूर्व चार मीलपर तुगलकाबादका निर्माण कराया, उसके पुत्र मुहम्मद तुगलकने १३२७ ई०में राजधानीको दिल्लीसे दौलताबाद ले जानेका असफल प्रयास करनेके पश्चात् पुरानी दिल्ली और सीरीके बीच शहरपनाहका निर्माण कराया तथा उसके उत्तराधिकारी फीरोज तुगलकने पुरानी दिल्लीके उत्तरमें ८ मीलपर फीरोजाबाद बसाया। इसमें संदेह नहीं कि मुस्लिम शासकोंने दिल्ली क्षेत्रमें सात शहर बसाये, लेकिन सबका केन्द्र पुरानी दिल्ली ही रही। लोदी शासकोंने आगराको राजधानी बनाया, जो मुगल शासक बाबरके जमानेमें भी राजधानी रही। लेकिन हुमायूं फिर दिल्ली आ गया और पुराना किला बनवाना शुरू किया, जिसके चारों ओर मुगल बादशाहोंकी राजधानी अवस्थित थी। शाहजहांने पुरानी दिल्लीसे जुड़ा हुआ शाहजहाँबाद बसाया, जहाँ उसने बहुतसे शानदार महल बनवाये। पुरानी दिल्लीके बीच निर्मित जामा मस्जिद अपनी भव्यताके लिए आज भी प्रसिद्ध है। दिल्लीको कम दुर्दिन नहीं देखने पड़े। १३९८ ई०में तैमूर, १७३९ ई०में नादिरशाह तथा १७५७ ई०में अहमदशाह अब्दालीने इसपर आक्रमण कर खूब लूटा और हजारों आदमियोंको मौतके घाट उतारा। १७५८ ई०में इसपर मराठोंका कब्जा होते-होते रह गया। १७६१ ई०में पानीपतकी तीसरी लड़ाईके बाद भी यह लुटनेसे बच गयी।

मुगल बादशाहोंकी शक्ति धीरे-धीरे क्षीण हो गयी और १८०३ ई०में दिल्लीपर अंग्रेजोंका प्रभुत्व हो गया और मुगल बादशाह नाममात्रके शासक बने रहे। अंग्रेजोंने कलकत्ताकी स्थापना की, उसका विकास किया और उसे अपनी राजधानी बनाया। फलतः दिल्लीका महत्त्व घट गया। १८५७ ई०के स्वाधीनता-संग्राममें विद्रोही सिपाहियोंने मईके महीनेमें दिल्लीपर कब्जा कर लिया, लेकिन सितम्बर महीनेमें अंग्रेजोंने पुनः उसे छीन लिया। जनवरी १८५८ ई०में अंतिम मुगल शासक बहादुरशाहको औपचारिक रीतिसे गद्दीसे उतार दिया गया और दिल्लीको अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया गया। बहादुरशाहको पेंशन देकर रंगूनमें नजरबंद कर दिया गया। १९११ ई० तक कलकत्ता अंग्रेजी भारतकी राजधानी रही। इसके बाद राजधानी पुनः दिल्ली लायी गयी। मुस्लिम शासकोंकी भांति अंग्रेजोंने भी पुरानी दिल्लीसे ६ मील दूर नयी दिल्ली बसायी, जो आज भी भारतीय गणतंत्रकी राजधानी है।

दिल्ली दरबार—अंग्रेज सरकारने १८७७, १९०३ तथा १९११ ई०में कुल तीन बार दिल्लीमें विशाल दरबार किये। पहला दरबार लार्ड लिटनने किया था, जिसमें महारानी विक्टोरियाको भारतकी सम्राज्ञी घोषित किया गया। इस दरबारकी शान-शौकतपर बेशुमार धन खर्च किया गया, जबकि १८७६ से १८७८ ई० तक दक्षिणके लोग भीषण अकालसे पीड़ित थे, जिसमें हजारों व्यक्तियोंकी जानें गयीं। उस समय दरबारके आयोजनको जन-धनकी बहुत बड़ी बरबादी समझा गया। दूसरा दरबार लार्ड कर्जनने १९०३ ई०में आयोजित किया, जिसमें बादशाह एडवर्ड सप्तमकी ताजपोशीकी घोषणा की गयी। यह दरबार पहले से भी ज्यादा खर्चीला साबित हुआ। इसका कुछ नतीजा तो निकला नहीं। यह केवल ब्रिटिश सरकारका शक्ति-प्रदर्शन मात्र था। तीसरा दरबार लार्ड हार्डिंज (दे०)के जमानेमें १९११ ई०में आयोजित हुआ। बादशाह जार्ज पंचम और उसकी महारानी इस अवसरपर भारत आये थे और उनकी ताजपोशीका समारोह हुआ था। इसी दरबारमें एक घोषणा द्वारा बंगालके विभाजन (दे०)को रद्द किया गया, साथ ही राजधानी कलकत्तासे दिल्ली लानेकी घोषणा की गयी।

दिल्ली विश्वविद्यालय—१९२२ ई०में स्थापित हुआ, १९५२ ई०में उसका पुनस्संगठन किया गया। इस विश्वविद्यालयमें शिक्षा भी दी जाती है तथा अनेक डिग्री कालेज इससे सम्बद्ध भी हैं। अब बहुतसे विश्वविद्यालयोंमें इसी प्रकारकी व्यवस्था है।

दिल्ली समझौता—५ मार्च १९३१ ई०को तत्कालीन वायसराय लार्ड इरविन तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके नेता महात्मा गांधीके बीच हुआ। इसके अनुसार सत्याग्रह आंदोलन जो अप्रैल १९३०में चालू किया गया था, स्थगित कर दिया गया, कांग्रेस राजनीतिक मसले हल करनेके लिए लंदनके गोलमेज सम्मेलनमें भाग लेनेके लिए सहमत हो गयी तथा १९३० ई० के बाद जितने भी दमनात्मक अध्यादेश जारी किये गये थे, वे वापस ले लिये गये।

सत्याग्रह आंदोलन के सिलसिलेमें जो लोग गिरफ्तार किये गये थे उन्हें रिहा कर दिया गया ।

दिल्ली सल्तनत—१२०६ ई०से लेकर, जबकि कुतुबुद्दीन ऐबक भारतका प्रथम मुस्लिम सुल्तान हुआ, १५२६ ई० तक जबकि मुगल बादशाह बाबरने पानीपतकी लड़ाईमें इब्राहीम लोदीको पराजित कर मार डाला और मुगल साम्राज्यकी स्थापना की, दिल्लीपर सुल्तानोंका शासन रहा और इसे दिल्ली सल्तनतका काल कहा जाता है। इस ३२० वर्ष-के लम्बे कालमें दिल्लीके सुल्तान सारे हिन्दुस्तानके बादशाह माने जाते थे, हालांकि उनकी सल्तनतका विस्तार घटता-बढ़ता रहा। मुहम्मद तुगलक (१३२५–५१)के जमानेमें तो दिल्ली सल्तनतका विस्तार हिमालयसे लेकर कन्याकुमारीतक हो गया था, किन्तु सन् १५२६ई०में पानीपत-की लड़ाईके समय उसका विस्तार दिल्लीके चारों ओर तक ही सीमित था। दिल्ली सल्तनतके अन्तर्गत पांच पृथक् वंशोंने राज्य किया, जिनका एक दूसरेसे कोई सम्बन्ध नहीं था, यथा—गुलामवंश (१२०६–९० ई०), खिलजी-वंश (१२९०–१३२० ई०), तुगलकवंश (१३२०–१४१३ ई०), सैयदवंश (१४१४–५१ ई०) तथा लोदी-वंश (१४५१–१५२६ ई०)।

गुलामवंशके १० सुल्तानोंमें कुतुबुद्दीन ऐबक (१२०६-१० ई०), आराम (१२११ ई०), इल्तुतमिश (१२११–३६ ई०), रुकनुद्दीन (१२३६ ई०) रजिया (१२३६–४० ई०), बहराम (१२४०–४२ ई०), मसऊद (१२४२–४६ ई०), नासिरुद्दीन (१२४६–६६ ई०), गयासुद्दीन बलबन (१२६६–८७ ई०) तथा कैकबाद (१२८७–९० ई०) हुए हैं। इनमेंसे अधिकांश सुल्तान अपने जीवन-कालके प्रारंभमें गुलाम रह चुके थे, अतएव यह वंश गुलामवंश कहलाया। ये लोग बादके तीन वंशोंकी भाँति तुर्क जातिके थे। अंतिम लोदीवंश अफगान जातिका था। गुलामवंशकी पाँचवीं शासिका रजिया सुल्ताना इल्तुत-मिशकी लड़की थी। यह एकमात्र मुस्लिम रानी थी जो दिल्लीके तख्तपर बैठी।

खिलजीवंशमें ६ सुल्तान हुए, यथा—जलालुद्दीन (१२९०–९६ ई०), रुकनुद्दीन (१२९६ ई०), अला-उद्दीन (१२९६–१३१६ ई०), शहाबुद्दीन उमर (१३१६ ई०), मुबारक (१३१६–२० ई०) तथा खुसरो (१३२० ई०)। इन सुल्तानोंमें अलाउद्दीन सबसे प्रतापी था। उसने न केवल राजस्थानको वरन् कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण दक्षिणको अपने अधीन किया। उसके पास बहुत बड़ी सेना थी तथा जासूसोंका संगठित दल था। जो भी उसके शासनका विरोध करता, उसे कठोर दण्ड दिया जाता था। सिपाहियोंके वेतन निर्धारित थे तथा बहुत-सी वस्तुओंके दाम भी नियंत्रित एवं निर्धारित थे। लेकिन उसके उत्तरा-धिकारी बहुत कमजोर साबित हुए। उसके मरनेके ६ वर्ष बाद यह राज्य तुगलकवंशके हाथमें चला गया।

तुगलकवंशमें ९ सुल्तान हुए, यथा—गयासुद्दीन (१३२०–२५ ई०), मुहम्मद (१३२५–५१ ई०), फीरोज (१३५१–८८ ई०), गयासुद्दीन द्वितीय (१३८९ ई०), अबूबकर (१३८९–९० ई०), नासिरुद्दीन (१३९०–९४ ई०), अलाउद्दीन (१३९४ ई०), नुसरतशाह (१३९५–९८ ई०) तथा महमूद (१३९९–१४१३ ई०)। इस वंशके द्वितीय सुल्तान मुहम्मद तुगलकके जमानेमें सल्तनतका सर्वाधिक विस्तार हुआ, लेकिन इसके समयमें उसका विघटन भी शुरू हो गया जबकि बंगाल और मअबरने १३३८ ई०में विद्रोह किया, दक्षिणमें बहमनी सल्तनतकी स्थापना हुई तथा १३४७ ई०में सुदूर दक्षिणमें विजयनगरके हिन्दू साम्राज्यका उदय हुआ। उसके शासनकालकी सबसे स्मरणीय घटना यह थी कि उसने १३२७ ई०में राजधानी दिल्लीसे देवगिरि (दौलताबाद) ले जाने तथा १३२९–३२ ई०में ताँबेकी सांकेतिक मुद्रा चलानेका प्रयास किया। उसके ये दोनों प्रयोग विफल रहे और सुल्तानकी प्रतिष्ठाको गहरा धक्का लगा। १३९८ ई०में तैमूरने दिल्लीपर आक्रमण किया और उसे लूटा। कमजोर सुल्तान मुकाबला न कर सका। अंतिम सुल्तान महमूदकी मृत्यु (१४१३) पर खिज्र खाँने गद्दीपर अधिकार कर लिया और नया सैयदवंश चलाया, जिसने १४१४ से १४५१ ई० तक शासन किया। इस वंशमें चार सुल्तान हुए, यथा—खिज्र खाँ (१४१४–२१ ई०), मुबारक (१४२१–३४ ई०), मुहम्मद (१४३४–४५ ई०) तथा आलमशाह (१४४५–५३ ई०)। इनमेंसे कोई भी इतना शक्तिशाली नहीं था कि वह सल्तनतकी ताकतको फिरसे प्रतिष्ठित करता। अंतिम शासक आलमशाहके जमानेमें तो यह हाल हो गया कि सल्तनतके अंतर्गत केवल दिल्ली नगर और आसपासके गाँव रह गये। नतीजा यह हुआ कि उसे गद्दीसे उतारकर लोदीवंशने शासन शुरू किया। इस वंशने १४५३–१५२६ ई० तक शासन किया। इस वंशमें कुल तीन शासक हुए, जिनके नाम हैं—बहलोल (१४५३–८९ ई०), सिकंदर (१४८९–१५१७ ई०) तथा इब्राहीम (१५१७–२६ ई०)। इनमेंसे सिकंदर बहुत वीर था। उसने जौनपुरपर पुनः कब्जा किया और बिहारपर अपना आधिपत्य स्थापित किया। उसने आगरेका विकास

किया, ताकि आसपासके राज्योंपर नियंत्रण रह सके। इब्राहीम लोदीने अपने उद्दण्ड व्यवहारसे अपने सरदारोंको नाराज कर दिया। नतीजा यह हुआ कि पंजाबके हाकिम दौलत खाँ और सुल्तानके चाचा अलम खाँने मुगल बादशाह बाबरको भारतपर आक्रमणके लिए आमंत्रित किया। बाबरने १५२६ ई०में पानीपतकी लड़ाईमें इब्राहीमको परास्त किया और उसे मारकर दिल्लीकी गद्दीपर बैठा। इस प्रकार दिल्ली सल्तनतका अंत हो गया।

दिल्लीके सुल्तानोंने तलवारके जोरपर शासन किया और एक ऐसा प्रशासन स्थापित किया जिसका उद्देश्य सरदारोंकी सहायतासे जनताको दबाये रखना था। यह एक प्रकारसे निरंकुश शासन-प्रणाली थी जिसमें, हिन्दू और मुसलमान जनताको कोई अधिकार नहीं था। हिन्दुओंको और भी ज्यादा सताया जाता था। उनपर जजिया लगाया गया। साथ ही तीर्थयात्रा-कर भी लिया जाता था। जमीनका लगान और अन्य कर तो मनमाने ढंगसे सुल्तानों द्वारा वसूल ही किये जाते थे। इस प्रकारके प्रशासनमें प्रगति असंभव थी। शासन-प्रणाली पूर्णतया एक वर्ग तक सीमित थी। हाकिमोंकी एकके ऊपर एक कई श्रेणियाँ थीं, परन्तु सभी हाकिम केवल सुल्तानके प्रति उत्तरदायी होते थे और उसकी इच्छापर नियुक्त और बर्खास्त होते थे। प्रशासनको हिंदुओंकी कोई परवाह नहीं थी, जो बहुमतमें थे। उदारसे उदार कहे जानेवाले सुल्तानोंने भी हिन्दू जनताके कल्याणके लिए कोई कार्य नहीं किया। नतीजा यह हुआ कि हिन्दू प्रजा प्रशासनके प्रति उदासीन हो गयी और मुस्लिम सूबेदारोंको केन्द्रीय सत्ताके निर्बल होते ही अपनेको स्वतंत्र घोषित करनेका मौका मिल गया। विजयनगरको छोड़कर कहीं भी हिन्दुओंने संगठित होकर मुस्लिम शासनको उखाड़नेका प्रयत्न नहीं किया।

हिन्दू संस्कृति और सभ्यताने इससे पहलेके आक्रमणकारियों—यूनानियों, शकों और हूणोंको आत्मसात कर लिया, लेकिन मुस्लिम आक्रमणकारियों और उनके धर्म एवं संस्कृतिको आत्मसात न किया जा सका। इसके विपरीत हजारों विजित हिन्दुओंको बलात् मुसलमान बना लिया गया। फिर भी इस्लाम सभी हिन्दुओंको मुसलमान न बना सका और अंतमें वह एक अल्पसंख्यक धर्म बनकर रह गया। मुसलमानोंको हिन्दुओंके साथ-साथ रहनेके लिए बाध्य होना पड़ा। हिन्दुओंने भी लड़ाईके मैदानोंमें पराजित होकर मुस्लिम विजेताओंसे दूर रहनेका प्रयत्न किया। हिन्दुओंने अपने जातिबंधनको और भी कठोर कर लिया, महिलाओंको पर्देके अंदर कैद कर दिया गया तथा छुआछूत हिन्दुओंका अभिन्न अंग बन गया। लेकिन मुसलमानोंसे हिन्दुओंका कुछ न कुछ सम्पर्क तो बना ही रहा। इसका फल यह हुआ कि एक नयी उर्दू भाषाका जन्म हुआ, जो हिन्दुओं और उन मुसलमानोंके बीच सम्पर्क भाषा बनी जो तुर्की भाषा बोलते थे, सरकारी लिखापढ़ीमें फारसी भाषा प्रयुक्त करते थे तथा धार्मिक समारोहोंमें अरबीका इस्तेमाल करते थे। हिन्दू विभिन्न प्रकारकी क्षेत्रीय भाषाएँ बोलते थे, लेकिन धार्मिक कार्योंमें संस्कृतका प्रयोग करते थे। दोनों धर्मोंके कुछ उदारचेता व्यक्तियोंने दोनों धर्मोंकी विशेषताओंका अध्ययन किया और दोनोंके बीच समन्वयकी स्थापनाका प्रयत्न किया। फलतः मुसलमानोंमें 'सूफीवाद'का जन्म हुआ और हिन्दुओंमें रामानंद, चैतन्य, कबीर और नानक जैसे धार्मिक सुधारकोंने मत-मतान्तरोंसे ऊपर उठकर केवल एक ईश्वरकी आराधनापर जोर दिया। लेकिन हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीचकी खाई यथावत् बनी रही।

कुछ सुल्तानोंको भवन-निर्माणका भारी शौक था। उन्होंने अनेक भव्य प्रासादों और मस्जिदोंका निर्माण कराया। यद्यपि उनके बनवाये प्रासाद इस युग तक अक्षुण्ण नहीं बचे, तथापि मस्जिदें अभी विद्यमान हैं, जो उनके कला और वास्तुशिल्पके प्रति प्रेमको व्यक्त करती हैं। यह निर्माण कार्य मुख्यतः हिन्दू शिल्पकारोंकी सहायतासे हुआ और मस्जिदोंका निर्माण तो मुख्यतः उस सामग्रीकी मददसे हुआ जो हिन्दुओंके मंदिरोंको तोड़कर प्राप्त की गयी थी। इस प्रकार दिल्ली सल्तनतकी कला एवं वास्तुशिल्पमें भारतीय (हिन्दू) और विदेशी (फारसी तथा तुर्की) इस्लामी विचारोंका प्रस्फुटन हुआ। भारतमें वास्तुशिल्पकी एक नयी शैलीका जन्म हुआ, जिसे भारतीय-अरबी कहते हैं। सल्तनतके विभिन्न भागोंमें विभिन्न प्रकारके वास्तुशिल्पका विकास हुआ, जिसका दिल्लीकी वास्तुशैलीसे कोई सम्बन्ध नहीं था। इस प्रकार जौनपुर, बंगाल, गुजरात, मालवा और दक्षिणमें भिन्न-भिन्न प्रकारके वास्तुशिल्पका विकास हुआ। इनमेंसे हरएकको अपनी-अपनी विशेषता थी। दिल्ली सल्तनतके कालकी सबसे प्रसिद्ध इमारतें हैं—कुतुबमीनार और उसका अलाई दरवाजा, निजामुद्दीन औलियाकी दरगाह और मस्जिद, कुव्वतुल इस्लाम मस्जिद और फीरोज तुगलककी कब्र। इन सबका निर्माण सुल्तानोंने दिल्लीमें ही कराया। (कैम्ब्रिज, खण्ड तीन; ईश्वरीप्रसाद लिखित 'मध्यकालीन भारत'; टामस कूल 'दिल्लीके पठान बादशाहोंका

इतिवृत्त'; के० एम० अशरफ रचित 'हिन्दुस्तानकी जनताका जीवन और दशा'; फर्गुसन कृत 'भारतीय वास्तुशिल्पका इतिहास'; हैवेल कृत 'भारतीय वास्तुशिल्प'; विन्सेण्ट स्मिथ रचित 'भारतमें ललित कलाका इतिहास')

दिव—गुजरातके समुद्रतटपर एक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र और बंदरगाह। १५३५ ई० में जब बादशाह हुमायूंने गुजरातपर विजय प्राप्त की, गुजरातके सुल्तान बहादुरशाह (दे०) (१५२६–३७ ई०) ने भागकर मालवामें शरण ली और पुर्तगालियोंकी मदद मांगी। पुर्तगालियोंने इस अवसरका लाभ उठाया और १५३५ ई० में दिवपर अधिकार कर लिया। इसपर पुर्तगालियोंका अधिकार चार सौ वर्षसे अधिक काल तक रहा। १९६१ ई०में वह स्वाधीन भारतीय गणराज्यमें सम्मिलित कर लिया गया।

दिवाकर—एक कवि, जो महाराज हर्षवर्धन (६०६–४७ ई०) के कालमें विद्यमान था, और उनका आश्रित था।

दिवोक अथवा दिव्य—कैवर्तों का नेता, जिसने राजा महिपाल द्वितीय (लगभग १०७०–७५ ई०) को पराजित कर मार डाला और उत्तरी बंगालमें अपने स्वतंत्र राज्यकी स्थापना की।

दिवोदास—एक प्रसिद्ध राजा, जिसका उल्लेख ऋग्वेदमें हुआ है। उसने दासोंके अनार्य राजा संवरसे युद्ध किया था।

दीगकी लड़ाई—द्वितीय मराठा-युद्ध (दे०) के दौरान नवम्बर १८०४ ई० में छेड़ी गयी। इस लड़ाईमें अंग्रेजोंने मराठा सरदार होल्करको पराजित किया। (दीग पहलेकी भरतपुर रियासतकी पुरानी राजधानी थी। सं०)

दीदोमीर—एक मुस्लिम नेता, जिसके बहुत-से अनुयायी फरीदपुर (बांगलादेश) जिलेमें थे। इसने १८४७ ई० में अंग्रेजोंके विरुद्ध विद्रोह किया, जो बलप्रयोग द्वारा दबा दिया गया।

दीनइलाही—एक नया धर्म जिसे अकबर बादशाहने १५८२ ई० में चलाया। यह एक समन्वयात्मक धर्म था जिसमें हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, जैन, पारसी तथा ईसाई धर्मकी मुख्य-मुख्य बातोंको शामिल किया गया था। यह एकेश्वरवादपर आधारित था, किन्तु उसमें थोड़ा बहुदेववादका भी पुट था। इसका उद्देश्य सार्वभौम धार्मिक सहिष्णुताकी स्थापना करना था। भारतमें, जो धार्मिक भेदभावसे बहुत पीड़ित था, इस प्रकारकी सहिष्णुता एक राष्ट्रीय आवश्यकता थी। यह धर्म तर्कपर आधारित था। अकबरके कालमें ही इसके बहुतसे अनुयायी हो गये थे। लेकिन अकबरकी मृत्युके बाद यह धर्म लुप्त हो गया।

दीपवंश—सिंहल (श्री लंका) के प्राचीन इतिहासका एक ग्रन्थ, जो चतुर्थ अथवा पंचम शताब्दी ईसवीमें लिखा गया। इस ग्रन्थसे इस बातकी पुष्टि होती है कि मौर्य सम्राट् अशोककी ओरसे भारतके बाहर धर्म-प्रचारक भेजे जाते थे। इसमें अशोक द्वारा भेजे गये धर्म-प्रचारकोंके नाम भी मिलते हैं। इस प्रकार इस पुस्तकमें अशोकके धर्म-विजयके प्रयासोंपर बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है।

दीवान—मुगल प्रशासनमें सबसे बड़ा अधिकारी होता था। वह राजस्व एवं वित्तका एकमात्र प्रभारी होता था। उसकी नियुक्ति न केवल केन्द्रीय सरकारमें वरन् प्रान्तीय सरकारोंमें भी होती थी। प्रान्तोंमें उसका पद सूबेदारके बाद माना जाता था। प्रान्तोंमें दीवान भी सम्राट् द्वारा नियुक्त होता था जो केवल सम्राट्के प्रति उत्तरदायी होता था। इस प्रकार वह सूबेदारको मनमानी करनेसे रोकता था।

दीवान—इस शब्दका प्रयोग सामान्यतः एक विभागके लिए होता था, यथा—

दीवान-ए-आम—अथवा सम्राट्का कार्यालय।
दीवान-ए-अमीर कोही—अथवा कृषि विभाग।
दीवान-ए-अर्ज—अथवा सेना विभाग।
दीवान-ए-बंदगान—अथवा दास विभाग।
दीवान-ए-इन्शा—अथवा पत्राचार विभाग।
दीवान-ए-इश्तिहकाक—अथवा पेन्शन विभाग।
दीवान-ए-खैरात—अथवा दान विभाग।
दीवान-ए-खास—अथवा सम्राट्का अन्तरंग सभाकक्ष।
दीवान-ए-मुश्तखराज—अथवा कर वसूल करनेवालोंसे बकाया वसूल करनेवाला विभाग।
दीवान-ए-काजिए-ममालक-अथवा न्याय, गुप्तचरी और डाक विभाग।
दीवान-ए-रिसालात—अथवा अपील विभाग।
दीवान-ए-रियासत—अथवा हाट अधीक्षकोंका विभाग।

यह शब्दावली प्रकट करती है कि दिल्लीके सम्राटोंकी प्रशासन पद्धतिमें एक प्रकारकी विभागीय व्यवस्था थी।

दीवानी अदालत—दीवानी (धनसंबन्धी) न्यायकी अदालत।

दुर्गादास—मारवाड़का इतिहास-प्रसिद्ध राठौर-सरदार। वह जोधपुरके राजा जसवंतसिंहके मंत्री असिकर्णका पुत्र था। मुगल सम्राट्की ओरसे जब राजा जसवंतसिंह काबुल अभियानपर गया था, उसी बीच वहां १० दिसम्बर १६७८ ई० को उसकी मृत्यु हुई। उस समय उसका कोई पुत्र नहीं था। लेकिन दो मास पश्चात् विधवा रानियोंके दो पुत्र हुए। एक पुत्र तो तत्काल मर गया, लेकिन दूसरा अजितसिंहके नामसे विख्यात हुआ। यही अजितसिंह मारवाड़का वैध उत्तराधिकारी था। स्व० राजाके सरदारोंके संरक्षणमें

शिशु अजितसिंह तथा उसकी मां को दिल्ली लाया गया। इन सरदारोंमें दुर्गादास प्रमुख था।

सरदारोंने औरंगजेबसे आग्रह किया कि वे अजितसिंहको मारवाड़की गद्दीका उत्तराधिकारी स्वीकार करें। लेकिन औरंगजेब मारवाड़को मुगल साम्राज्यमें मिलाना चाहता था, अतएव उसने यह शर्त रखी कि अजितसिंह मुसलमान हो जाय तो उसे मारवाड़की गद्दीका उत्तराधिकारी माना जा सकता है। औरंगजेबने अजितसिंह और उसकी विधवा मांको पकड़नेके लिए मुगल सैनिक भेजे, किन्तु चतुर वीर दुर्गादासने औरंगजेबकी योजना विफल कर दी। उसने कुछ राठौर सैनिकोंको मुगल सैनिकोंका सामना करनेके लिए भेज दिया तथा स्वयं रानियों और शिशु को दिल्ली स्थित महलसे निकालकर सुरक्षित जोधपुर ले गया। औरंगजेबने जोधपुरपर कब्जा करनेके लिए विशाल मुगल सेना भेजी। १६८० ई० में जो युद्ध हुआ उसमें राठौरोंका नेतृत्व दुर्गादासने बड़ी बहादुरीसे किया। औरंगजेबका पुत्र शाहजादा अकबर राजपूतोंसे मिल गया।

इस समय एक अवसर उपस्थित हुआ था जब राजपूत और अकबर मिलकर औरंगजेबका तख्ता पलट सकते थे, लेकिन औरंगजेबने छलनीतिसे राजपूतों और अकबरमें फूट पैदा कर दी। जब दुर्गादासको वास्तविकताका पता लगा तो वह अकबरको खानदेश और बगलाना होते हुए मराठा राजा शम्भूजीके दरबारमें ले गया। दुर्गादासने बहुत प्रयत्न किया कि राजपूत, मराठा और अकबरकी फौजें मिलकर औरंगजेबसे युद्ध करें, लेकिन आलसी शम्भूजी इसके लिए तैयार नहीं हुआ। दुर्गादास १६८७ ई० में मारवाड़ लौट आया। यद्यपि मेवाड़ने औरंगजेबसे संधि कर ली थी, तथापि मारवाड़की ओरसे दुर्गादास लगातार २० वर्ष तक औरंगजेबके विरुद्ध युद्ध करता रहा। १७०७ ई० में औरंगजेबकी मृत्यु हो गयी। इसके बाद नये मुगल बादशाहने १७०८ ई० में अजितसिंह को मारवाड़का महाराज स्वीकार कर लिया।

दुर्गावती, रानी–गोंडवानाकी शासक, जो भारतीय इतिहासकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रानियोंमें गिनी जाती है। वह महोबा कालिंजरके चन्देल राजा कीर्तिराजकी पुत्री थी। यह राजा १५४५ ई० में शेरशाह सूरी द्वारा कालिंजरके किलेके घेरेके समय मारा गया था। दुर्गावतीका विवाह गढ़-मण्डल (गोंडवाना)के राजा दलपतिशाहके साथ हुआ, किन्तु वह जल्दी ही विधवा हो गयी। उस समय उसका वीर नारायण नामक नाबालिग पुत्र था जिसकी ओरसे उसने स्वयम् शासन करना शुरू किया। उसने मालवाके बाजबहादुर और बंगालके अफगानोंके हमलोंसे गोंडवानाकी रक्षा की।

१५६४ ई० में मुगल सम्राट् अकबरने रानीके राज्यपर हमला करनेके लिए अपने सेनापति आसफ खाँको भेजा। पुत्रको साथ लेकर रानीने मुगलोंकी ५० हजार सेनाका सामना किया। दोनोंके बीच राजधानीके पास नरहीमें घोर युद्ध हुआ। युद्धके दूसरे दिन उसका पुत्र घायल हो गया, जिसे रानीके सैनिकोंकी देखरेखमें सुरक्षित स्थानपर भेज दिया गया। इन सैनिकोंके जानेसे रानीका पक्ष कमजोर हो गया और वह पराजित हो गयी। उसके दो तीर लगे और वह घायल हो गयी। शत्रुओंके हाथमें अपनेको पड़नेसे बचानेके लिए रानीने कटार मारकर अपनी जान दे दी। इसके बाद मुगल सेना राजधानी चौरागढ़की ओर बढ़ी। वहाँ उसके घायल अल्पवयस्क पुत्रने पुनः जबर्दस्त प्रतिरोध किया, लेकिन बेचारा पराजित हुआ और मारा गया। गोंडवाना अकबरके साम्राज्यमें मिला लिया गया। सेनापति आसफ खाँ अपने साथ बेशुमार सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात, सिक्के और एक हजार हाथी लेकर दिल्ली लौटा। यह इस बातका प्रमाण है कि रानीके राज्यकालमें गोंडवाना अत्यन्त समृद्धिशाली था।

दुर्जनसाल–१८२४ ई० में भरतपुरकी गद्दीपर अनधिकृत कब्जा करनेवाला जाट सरदार; जबकि वास्तविक अधिकारी मृतक राजाका नाबालिग पुत्र था। ब्रिटिश सरकारने दुर्जनसालको मान्यता देनेसे इनकार कर दिया। १८२६ ई० में लार्ड कोम्बरमियरके नेतृत्वमें एक ब्रिटिश भारतीय फौज भरतपुरपर चढ़ाईके लिए भेजी गयी। किलेपर अंग्रेजोंका कब्जा आसानीसे हो गया। दुर्जनसालको कैद करके बाहर भेज दिया गया।

दुर्योधन–'महाभारत' महाकाव्यमें वर्णित कौरवोंका सबसे बड़ा भाई, जिसका युद्ध पाण्डवोंसे हुआ। युद्धमें दुर्योधन पराजित हुआ और मारा गया।

दुर्रानी–अब्दालीवंशका दूसरा नाम। जब अफगानिस्तानके सुल्तान अहमदशाह (१७४७–७३ ई०)ने नादिरशाहकी हत्याके पश्चात् शासन-भार ग्रहण किया, उसने गद्दीपर बैठते ही दुर्-ये-दुर्रानकी पदवी धारण की। तभीसे अब्दाली खानदानको 'दुर्रानी' कहा जाने लगा।

दुर्लभराय–नवाब सिराजुद्दौला (दे०)का विश्वासघाती सेनापति, जिसने मीर जाफरके सहयोगसे अपने स्वामीके विरुद्ध अंग्रेजोंसे साँठगाँठ की। उसने और मीर जाफरने अंग्रेजोंसे १० जून १७५७ ई० को एक गुप्त संधि की। इसका फल यह हुआ कि २३ जून १७५७ ई० को जब सिरा-

जुद्दौला और अंग्रेजोंके बीच विख्यात पलासी-युद्ध हुआ, दुर्लभराय और मीर जाफरने लड़ाईमें कोई भाग नहीं लिया। इस प्रकार सिराजुद्दौला पराजित हुआ।

दुर्लभवर्धन—सातवीं शताब्दी ई० में कश्मीरके कर्कोट वंशका प्रवर्तक। इस वंशने ८५५ ई० तक कश्मीरपर शासन किया। इसके बाद उत्पलवंशका शासन स्थापित हुआ। कर्कोट-वंशके प्रसिद्ध राजाओंमें ललितादित्य (दे०) तथा जयापीड विनयादित्य (दे०)का नाम लिया जाता है।

देरोजियो, हेनरी लुई विवियन—एक पुर्तगाली भारतीय परिवारमें सन् १८०९ ई०में कलकत्तामें पैदा हुआ। उसने अपने पिताके कार्यालयमें क्लर्ककी हैसियतसे कार्य आरम्भ किया। बादमें वह अध्यापक और पत्रकार बन गया। १८२६ ई० में वह कलकत्ताके हिन्दू कालेजमें अध्यापक नियुक्त हुआ, किन्तु अप्रैल १८३१ ई० में उसे इस्तीफा देनेके लिए बाध्य किया गया। इन पाँच वर्षोंके अध्यापन कालमें हिन्दू कालेजके छात्रोंपर उसका असाधारण प्रभाव जम गया। इन छात्रोंके माध्यमसे बंगालके नौ-जवानोंको भी उसने प्रभावित किया, जिनमें अधिकांश स्वतंत्र चिंतक बन गये और 'युवा बंगाल'के नामसे पुकारे जाने लगे। ये लोग अपने विचारोंमें बहुत उग्र थे और हिन्दू समाज और धर्मकी उन सभी बातोंकी आलोचना करते थे जो उन्हें असंगत जान पड़ती थीं। इससे सारे देशमें हलचल मच गयी। कट्टर हिन्दुओंने इन युवकोंका तीव्र विरोध किया। नतीजा यह हुआ कि देरोजियोको हिन्दू कालेजसे त्यागपत्र देनेके लिए बाध्य कर दिया गया। तत्पश्चात् देरोजियो बहुत कम दिन यहाँ रहा, लेकिन आधुनिक बंगालके इतिहासपर उसने अपनी अमिट छाप छोड़ी। उसकी शिक्षाओंने आधुनिक विचारोंके ऐसे युवकोंका समूह खड़ा कर दिया जो विचारोंमें प्रगतिशील थे और जिन्होंने न केवल धार्मिक कट्टरताका विरोध किया, वरन् बादमें प्रशासनके विरुद्ध भी आवाज उठायी। शायद ही कभी किसी अध्यापकने इतने कम समयमें अपने छात्रोंपर ऐसा व्यापक प्रभाव प्रदर्शित किया हो। (**टी० एडवर्ड्स कृत देरोजियोका जीवन**)

देवगढ़—उत्तर प्रदेशके झाँसी जिलेमें स्थित, जहाँ गुप्तकाल (३००–४५० ई०)के अनेक सुन्दर मंदिर विद्यमान हैं। यहाँके दशावतार मंदिरमें शिव, विष्णु तथा अन्य देवी-देवताओंकी अत्यंत कलापूर्ण मूर्तियाँ मिलती हैं, जो मुसल-मानोंकी तोड़फोड़से बच गयीं।

देवगाँवकी संधि—१७ दिसम्बर १८०३ ई० को रघुजी भोंसले और अंग्रेज़ोंके बीच हुई। द्वितीय मराठायुद्ध (दे०)के दौरान आरगाँवकी लड़ाई (नवम्बर १८०३)में अंग्रेजोंने भोंसलेको पराजित किया था, उसीके फलस्वरूप उक्त संधि हुई। इसके अनुसार बरारके भोंसला राजाने अंग्रेजोंको कटकका प्रांत दे दिया, जिसमें बालासोरके अलावा वरदा नदीके पश्चिमका समस्त भाग शामिल था। उसे अपनी राजधानी नागपुरमें ब्रिटिश रेजीडेण्ट रखनेके लिए मजबूर होना पड़ा। उसने निजाम अथवा पेशवाके साथ होनेवाले किसी भी झगड़ेमें अंग्रेजोंको पंच बनाना स्वीकार किया और यह वायदा किया कि वह अपने यहाँ कम्पनी सरकारकी अनुमतिके बिना किसीभी यूरोपीय अथवा अमेरिकीको नौकरी नहीं देगा। व्यावहारिक दृष्टिकोणसे इस संधिने भोंसलेको अंग्रेजोंका आश्रित बना दिया।

देवगिरि—देखिये, 'दौलताबाद'।

देवगुप्त—तीन विभिन्न वंशोंके तीन राजाओंका नाम। प्रथमतः गुप्तवंशके तृतीय सम्राट् समुद्रगुप्त (लगभग ३२०–५९० ई०)के पुत्र चंद्रगुप्त द्वितीयका यह एक नाम था। उसे देवगुप्त प्रथम कहा जाता है। दूसरा मालवाके गुप्त राजाका भी यह नाम था, जिसने सम्राट् हर्षवर्धनके बहनोई मौखरि नरेश गृहवर्मा (दे०)को लगभग ६०६ ई० में पराजित कर मार डाला। मालवाके इस राजाको देव-गुप्त द्वितीयके नामसे याद किया जाता है। तीसरा देवगुप्त मगधके राजा आदित्यसेनका पुत्र एवं उत्तराधिकारी था जिसने हर्षवर्धनकी मृत्यु (६४७ ई०)के बाद पुनः गुप्तवंशकी स्थापना की थी। वह देवगुप्त तृतीयके नामसे जाना जाता है। सम्भवतः वह सम्पूर्ण उत्तर भारतपर शासन करता था। उसे चालुक्य नरेश विनयादित्यने पराजित किया, जिसने ६८० ई० तक राज्य किया। (**बनर्जी० पृष्ठ ५५४, ६०७, ६१०**)।

देवदत्त—बौद्ध धर्मके प्रवर्तक गौतम बुद्धका चचेरा भाई। उसने बौद्ध धर्मको त्यागकर एक नये मतका प्रवर्तन किया, जो गुप्तकाल (चतुर्थ शताब्दी ईसवी) तक वर्तमान रहा।

देवपाल (लगभग ८१०–५० ई०)—बंगाल और बिहारपर शासन करनेवाले पालवंश (दे०)का तृतीय राजा और धर्मपालका पुत्र। उसने लगभग ३५ वर्ष तक शासन किया। उसके कालमें पालवंशकी शक्ति अपनी चरम सीमापर पहुँच गयी थी। आसामसे लेकर कश्मीरकी सीमा तक और हिमालयसे विन्ध्य पर्वत तक सम्पूर्ण उत्तर-भारतपर उसका आधिपत्य था। जावाके शैलेन्द्रवंशके राजा बालपुत्रदेवका दूतमंडल उसके दरबारमें आया था। शैलेन्द्र राजाने नालंदामें एक बिहारका निर्माण कराया था और देवपालने उसके अनुरोधपर पाँच गाँवोंका दान किया

था। राजा देवपाल भी बौद्ध धर्म तथा नालंदा बिहारका महान् संरक्षक था, जो उन दिनों बौद्ध शिक्षाका बहुत बड़ा केन्द्र था। **(ढाका हिस्ट्री आफ बंगाल, खण्ड १, पृष्ठ ११६ एफ-एफ०)**

देवपाल—कन्नौजके प्रतिहारवंशका राजा, जिसने लगभग ६४०से ६५५ ई० तक शासन किया। इसीके कालमें प्रतिहारोंकी शक्ति क्षीण होने लगी। चंदेल राजा यशोवर्माने उसे पराजित किया और उसे विष्णुकी बहुमूल्य एक मूर्ति समर्पित करनेके लिए बाध्य किया, जिसे फिर खजुराहोके मंदिरमें प्रतिष्ठित किया गया।

देवभूति (अथवा देवभूमि)—मगधके शुंगवंश (दे०) (लगभग १८५ ई० पू० से ७३ ई० पू०) का अंतिम राजा। वह चरित्रहीन और दुराचारी था, फलतः उसके ब्राह्मण मंत्री वासुदेवने लगभग ७३ ई० पू० में उसे मारकर कण्वबंशका शासन स्थापित किया।

देवराय प्रथम—(लगभग १४०६—२२) विजयनगर (दे०)के प्रथम राजवंशका तृतीय शासक। उसके सिंहासनारूढ़ होनेपर विवाद उठ खड़ा हुआ, जिससे उसकी स्थिति बहुत कमजोर हो गयी। बहमनी सुल्तान फीरोज़ (दे०)ने इसका लाभ उठाते हुए विजयनगरपर हमला कर राजधानीपर कुछ समयके लिए अधिकार कर लिया। देवरायने विवश होकर उससे संधि की जिसके अनुसार उसने सुल्तानको कर देनेका वायदा किया और उसके साथ अपनी लड़कीका विवाह कर दिया।

देवराय द्वितीय (१४२५—४६)—विजयनगरके प्रथम राजवंशका छठा शासक। उसने राज्यकी उत्तरी सीमा पुनः कृष्णा नदी तक ले जाकर केरलपर अपनी प्रभुता स्थापित की। बहमनी सुल्तान अहमद (दे०) ने उसके समयमें ही विजयनगरपर आक्रमण किया और सारे प्रजावर्गको भीषण अत्याचारोंसे संत्रस्त कर डाला। लेकिन जान पड़ता है कि इस आक्रमणके बाद विजयनगरने पुनः अपना पूर्व वैभव प्राप्त कर लिया, क्योंकि इटालियन यात्री निकोलो कोण्टीने, जिसने १४२० ई० में विजयनगरकी यात्रा की थी और फारसके यात्री अब्दुर्रज्जाकने, जिसने १४४३ ई० में विजयनगरका भ्रमण किया था, अपने यात्रा-विवरणोंमें इस राज्यके ऐश्वर्य और वैभवका वर्णन किया है।

देवराष्ट्र—एक प्रदेश, जिसके राजा कुबेरको सम्राट् समुद्रगुप्त (दे०) (लगभग ३३० से ३७५ ई०)ने अपने दक्षिणापथ अभियानमें पराजित करनेके बाद उसके अपहृत राज्यको उसे लौटा दिया। इतिहासकार स्मिथके अनुसार यह राज्य महाराष्ट्र प्रदेशमें था किन्तु नयी खोजोंके अनुसार यह भारतके पूर्वीतटपर विजगापट्टम जिलेमें स्थित था। **(स्मिथ० पृष्ठ ३०१, डुबरनिल० पृष्ठ १६०)।**

देवाक—समुद्रगुप्त (लगभग ३३०—३८० ई०)के प्रयाग अभिलेखमें वर्णित एक प्रत्यंत राज्य, जिसका राजा समतट (पूर्वी बंगालका एक भाग) तथा कामरूप (प० असम)की भाँति गुप्त सम्राट्का करद था। देवाक राज्य कहाँपर स्थित था, यह अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है। अनुमानतः यह पूर्वी बंगाल या पश्चिमी आसाममें स्थित रहा होगा।

देवानाम्पिय तिस्स—सिंहलद्वीप (श्रीलंका)का राजा, जो सम्राट् अशोकका समकालीन था। अशोकने अपने भाई अथवा पुत्र महेन्द्रको इसी राजाके दरबारमें भेजा था जिसने बादमें बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया।

देवानाम्पिय पियदस्सी—(संस्कृत रूप देवानाम् प्रिय प्रियदर्शी) तृतीय मौर्य सम्राट् अशोककी उपाधि, जिसका उल्लेख अनेक शिलालेखोंमें हुआ है। केवल मास्कीके शिलालेखमें उसे देवानाम्पिय अशोक सम्बोधित किया गया है। इस उपाधिका अर्थ है देवोंका प्रिय जो सभीके कल्याणकी कामना करता है। **(एस० भट्टाचार्य कृत 'सेलेक्ट अशोकन इपीग्राफ्स')।**

देवी-चन्द्र गुप्तम्—संस्कृतका एक लुप्त नाटक, जिसके कतिपय अंशोंकी खोज हाल हीमें हुई है। इसका लेखक विशाखदत्त (दे०) माना जाता है। इस नाटकका कथानक चन्द्रगुप्त द्वितीयके बड़े भाई रामगुप्तके राज्यकालसे सम्बन्धित है, जो कायर तथा कुलकलंक था। जब वह अंतिम शकक्षत्रप रुद्रसिंहके आक्रमणसे भयभीत होकर उसे अपनी भार्याको भेंट करनेको प्रस्तुत हो गया, तो उसके कनिष्ठ भ्राता चंद्रगुप्त द्वितीयने, शकराजकी हत्या करके कुलगौरवकी रक्षा की। इसके बाद चंद्रगुप्त द्वितीयने बड़े भाईका भी वध कर डाला और उसकी भार्यासे स्वयं विवाह कर लिया। इस नाटकसे विदित होता है कि गुप्तराजवंशमें समुद्रगुप्त (दे०) और चंद्रगुप्त द्वितीय (दे०)के बीच रामगुप्त भी सिंहासनारूढ़ हुआ था। **(इ० एँ० १६२३, पृ० १८१ नोट)**

दोआब—उत्तर भारतमें गंगा और यमुनाके बीच तथा दक्षिण भारतमें कृष्णा और तुंगभद्राके बीचके ऐसे क्षेत्र, जो भारतके सर्वाधिक उपजाऊ भूभाग माने जाते हैं। इन क्षेत्रोंपर अधिकार करनेके लिए आसपासके राजा बराबर प्रयत्नशील रहते थे। दिल्लीके सुल्तान गंगा और यमुनाके दोआबपर अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके इच्छुक रहते थे। यह दोआब बहुधा दिल्लीपर शासन करनेवालोंके ही हाथमें

रहता रहा है। कुछ समयके लिए शिन्देके नेतृत्वमें मराठों-का भी अधिकार इसपर रहा। १८०३ ई० में यह ब्रिटिश सरकारके हाथमें आया। कृष्णा और तुंगभद्राके बीचके क्षेत्रको रायचूर दोआब भी कहते हैं। बहमनी सुल्तानों और विजयनगरके हिन्दू राजाओंके बीच इस दोआबपर कब्जेके लिए बराबर द्वन्द्व होता रहा। इस दोआबमें रायचूर तथा मुदगल नामके दो किले हैं। १५६५ ई०में विजयनगरके ध्वंसके पश्चात् रायचूर दोआब बीजापुरके सुल्तानके अधीन हुआ, और बादमें क्रमशः मुगल सम्राटों और अंग्रेज सरकारके कब्जेमें आया।

दोनाबूका युद्ध–प्रथम बर्मा-युद्धके दौरान (दे०) अप्रैल १८२४ ई०में हुआ। इस युद्धमें अंग्रेजोंने बर्मियोंको पराजित कर दिया। बर्माका सेनापति बंधुल मारा गया।

दोस्त अली–कर्नाटकका नवाब, जो हैदराबादके निजामकी अधीनतामें था। १७४३ ई० में मराठोंने कर्नाटकपर हमला कर दिया। दोस्त अली पराजित हुआ और मारा गया। मराठे उसके दामाद चंदा साहब (दे०)को बंदी बनाकर अपने साथ ले गये। चंदा साहबने आगे चलकर कर्नाटकके परवर्ती इतिहासमें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

दोस्त मुहम्मद खाँ–अफगानिस्तानका अमीर, जिसने १८२६से १८६३ ई० तक शासन किया। जब १८३६ ई० में रूसके इशारेपर फारसने हेरातपर हमला करनेकी धमकी दी, दोस्त मुहम्मद खाँने ब्रिटिश भारतीय सरकारसे मैत्रीके लिए यह शर्त रखी कि वह अमीरको पंजाबके महाराज रणजीतसिंहसे पेशावर वापस लेनेमें मदद दे। चूंकि ब्रिटिश भारतीय सरकारने इस शर्तपर अमीरको मदद देनेसे इनकार कर दिया, अतएव अमीरने १८३७ ई०में अपने दरबारमें रूसके राजदूतको आमंत्रित किया। भारतका गवर्नर-जनरल लार्ड आकलैण्ड इससे कुपित हो गया और उसकी नीतिकी चरम परिणति १८३८ ई० में ब्रिटिश-अफगान-युद्ध (दे०)में हुई जो १८४२ ई० तक चला। युद्धके दौरान दोस्त मुहम्मद खाँने १८४० ई० में आत्म-समर्पण कर दिया और अंग्रेज उसे बंदी बना कर कलकत्ता ले गये। १८४२ ई० तक ब्रिटिश-भारतीय सेनाको २० हजार आदमी गँवाकर तथा लगभग १५ करोड़ रुपया बर्बाद करके अफगानिस्तानसे लौट आना पड़ा। इसके बाद दोस्त मुहम्मद खाँको रिहा कर अफगानिस्तान भेज दिया गया। वहाँ वह फिरसे अमीरकी गद्दीपर बैठा और एक स्वतन्त्र शासक की भाँति १८६३ ई० तक जीवित रहा। १८५५ तथा १८५७ ई० में उसने ब्रिटिश सरकारसे दो संधियाँ कीं। अमीरने ईमानदारीसे इन संधियोंका पालन किया और १८५७–५८ ई० के भारतीय स्वतन्त्रता संग्रामको कुचलनेमें अंग्रेजोंकी पूरी मदद की।

दौराईका युद्ध–अंतिम युद्ध था जो दारा (दे०) और औरंगजेबकी सेनाओंके बीच हुआ। यह युद्ध अजमेरके दक्षिणमें एक पहाड़ी दर्रेके बीच हुआ था जो तीन दिन (१२–१४ अप्रैल १६२९ ई०) तक चला। इस युद्धमें दाराकी पूर्ण पराजय हुई और वह भाग निकला। अन्तमें वह पकड़ा गया और औरंगजेबने धर्मद्रोहका आरोप लगाकर उसे मृत्युदण्ड दिया।

दौलत खाँ–जब फारसके शाह अब्बासने दिसम्बर १६४८ ई० में कन्धारपर आक्रमण किया, उस समय वहाँका मुगल हाकिम। दौलत खाँ किलेकी रक्षा न कर सका, फलतः फरवरी १६४९ ई० में कन्धार फारसके अधिकारमें चला गया।

दौलत खाँ लोदी–पन्द्रहवीं शताब्दीके आरम्भमें दिल्लीका एक मुख्य अमीर। उस समय सुल्तान मुहम्मद तुगलक (दे०)की मृत्युके फलस्वरूप तुगलकवंशका अंत हो चुका था। दिल्लीके अमीरोंने दौलत खाँ लोदीको गद्दीपर बिठा दिया। लेकिन वह कुछ ही महीनों तक सुल्तान रहा, क्योंकि खिज्र खाँ (दे०)ने मार्च १४१४ ई० में उसे गद्दीसे उतार दिया। खिज्र खाँने स्वयं गद्दीपर बैठकर सैयद वंश प्रचलित किया।

दौलत खाँ लोदी–जिस समय दिल्लीमें इब्राहीम लोदी (१५१७–२६ ई०) शासन कर रहा था, उस समय पंजाबका हाकिम। वह स्वाभिमानी प्रकृतिका था और अपने पुत्रके साथ दुर्व्यवहार किये जानेके कारण सुल्तान इब्राहीमसे बहुत नाराज हो गया था। दौलत खाँने सुल्तानके चाचा आलम खाँसे मिलकर अफगानिस्तानके शासक बाबरको भारतपर आक्रमण करनेके लिए आमंत्रित किया। दौलत खाँने आशा की थी कि बाबर भारत आकर लूट-पाट करनेके पश्चात् वापस चला जायगा। बाबरने जब १५२४ ई० में लाहौरपर अधिकार कर लिया और अफगानिस्तान वापस जानेकी इच्छा नहीं की, तो आलम खाँने अपना समर्थन वापस ले लिया। फलतः उस समय तो बाबर अफगानिस्तान वापस चला गया, लेकिन १५२६ ई० में उसने पुनः आक्रमण किया और भारतमें मुगल साम्राज्यकी नींव डाली। इस बार दौलत खाँ लोदीको भी बाबरकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

दौलत राव शिन्दे–महादजी शिन्दे (दे०)के भाई तुकोजीका पौत्र। १७९४ ई० में महादजीके मरनेपर ग्वालियरका अधिपति बना। गद्दीपर बैठनेके समय दौलतराव युवक

था। उसने १८२७ ई० में अपनी मृत्यु पर्यन्त शासन किया। उसका राज्य बहुत बड़ा, उत्तरसे लेकर दक्षिण तक फैला हुआ था। उसके पास विशाल सेना थी, जिसको फ्रांसीसी अफसर द-ब्वाञ्ज (दे०)ने प्रशिक्षित किया था और उस समय एक अन्य फ्रांसीसी अफसर पेरों उसका कमांडर था। दौलतराव पूनाके पेशवाको अपनी मुट्ठीमें करना चाहता था, लेकिन इंदौरका जसवंतराव होल्कर (दे०) इस मामलेमें उसका मुख्य प्रतिद्वन्द्वी था। इसके अलावा पेशवाका मुख्यमंत्री नाना फड़नवीस भी इसमें बाधक था। लेकिन १८०० ई० में नानाकी मृत्यु हो गयी। दौलतराव तुरन्त पूनामें अपनी धाक जमानेका प्रयास करने लगा। होल्करने उसका विरोध किया, फलतः पूनाके परकोटेके बाहर ही अक्तूबर १८०२ ई० में दोनोंके बीच युद्ध हुआ। पेशवा बाजीराव द्वितीय डरकर भाग खड़ा हुआ। उसने अंग्रेजोंकी शरण लेकर उनसे बसईंकी संधि (दे०)की जिसके अनुसार अंग्रेजोंने पेशवाको पूनाकी गद्दीपर बैठानेका वायदा किया और बदलेमें पेशवाने अपने खर्चपर पूनामें अंग्रेज पलटन रखना स्वीकार किया। अंग्रेजोंने मई १८०३ ई० में पेशवाको पुनः गद्दीपर बैठा दिया। लेकिन शिन्दे, होल्कर और भोंसले (दे०) सभीने बसईंकी संधिका विरोध किया, क्योंकि उससे मराठोंकी स्वाधीनता समाप्त हो जाती थी।

फलतः १८०३ ई० में द्वितीय मराठा-युद्ध हुआ। दौलतराव शिन्देकी सेना यद्यपि यूरोपीय पद्धतिसे प्रशिक्षित थी तथापि वह असई, आरगाँव और लासवाड़ीके युद्धोंमें बुरी तरह पराजित हुई। दौलतरावके फ्रांसीसी सेनापति पेरोंने नौकरी छोड़ दी। दौलतरावको विवश होकर सुर्जी-अर्जुनगाँवकी संधि करनी पड़ी, जिसके अनुसार उसने अपना दक्षिणका प्रदेश तथा गंगा-यमुनाके बीचका दोआब अंग्रेजोंको समर्पित कर दिया। दौलतराव इस पराजयसे बहुत क्षुब्ध हुआ। फलतः नवम्बर १८०५ ई० में उसने अंग्रेजोंसे फिर युद्ध कर दिया। यद्यपि उसे विजय प्राप्त नहीं हुई, तथापि अंग्रेजोंने पहलेकी संधिकी शर्तोंको नरम कर दिया। अंग्रेजोंने चम्बल नदी शिन्दे तथा अंग्रेजी राज्यकी सीमा स्वीकार कर ली। दौलतराव अब भी अपने खोये हुए प्रदेशोंको वापस पानेके लिए लालायित था। उसने अंग्रेजी क्षेत्रमें लूटपाट करनेवाले पेंढारियोंको सहायता देना आरंभ किया। १८१७ ई० में लार्ड हेस्टिंग्जने पेंढारियोंके दमनके लिए अभियान चलाया और दौलतरावको नयी संधि करनेके लिए बाध्य किया, जिसके अनुसार दौलतरावने पेंढारियोंको कोई सहायता न देनेका वायदा किया तथा अंग्रेजोंका यह अधिकार भी स्वीकार किया कि वे राजपूत राजाओंसे संधि कर सकते हैं। इस प्रकार दौलतराव अंग्रेजोंको कोई भी हानि पहुँचानेमें असमर्थ हो गया। १८२७ ई० में जब उसकी मृत्यु हो गयी, तब भी उसके अधीन एक विशाल राज्य था, जिसकी राजधानी ग्वालियर थी।

दौलताबाद–दक्षिणके यादववंशी (दे०) राजाओंकी राजधानी देवगिरिका सुल्तान मुहम्मद तुगलक द्वारा रखा गया नाम। यह गोदावरी नदीकी उत्तरी घाटीमें स्थित है और भौगोलिक दृष्टिसे भारतका केन्द्रीय स्थल कहा जा सकता है। इस नगरने इतिहासमें बहुत बार उत्थान और पतन देखा। यह १३१८ ई० तक यादवोंकी राजधानी रहा, १२९४ ई० में अलाउद्दीन खिलजीने इसे लूटा। बादमें खिलजीकी फौजोंने दुबारा १३१८ ई०में यादव राजा हरपाल देवको पराजित कर मार डाला। उसकी मृत्युसे यादववंशका अंत हो गया और नगर दिल्ली सल्तनतके अंतर्गत आ गया। बादमें जब सुल्तान मुहम्मद तुगलक गद्दीपर बैठा, उसे देवगिरिकी केन्द्रीय स्थिति बहुत पसंद आयी। उस समय मुहम्मद तुगलकका शासन पंजाबसे बंगाल तक तथा हिमालयसे लेकर कन्याकुमारी तक फैला हुआ था।

सुल्तानने देवगिरिका नाम दौलताबाद रखा। उसने इस नगरमें बड़े-बड़े भवन और सड़कें बनवायीं। एक सड़क दौलताबादसे दिल्ली तक बनायी गयी। १३२७ ई० में सुल्तान दिल्लीसे राजधानी हटाकर दौलताबाद ले गया। दिल्लीके नागरिकोंने दौलताबाद जाना पसंद नहीं किया। इस स्थानांतरणसे लाभ कुछ नहीं हुआ, उल्टे परेशानियाँ बढ़ गयीं। फलतः राजधानी पुनः दिल्ली ले आयी गयी। लेकिन इससे दौलताबादका महत्त्व नहीं घटा। दक्षिणमें जब बहमनी राज्य टूटा, तब अहमदनगर राज्यमें दौलताबादका गढ़ अत्यन्त शक्तिशाली माना जाता रहा। १६३१ ई० में सम्राट् शाहजहाँ इस गढ़को सर न कर सका, और किलेदार फतेहखाँको घूस देकर ही उसपर कब्जा कर सका। मुगल शासनके अन्तर्गत भी दौलताबाद प्रशासनका मुख्य केन्द्र बना रहा। इसी नगरसे औरंगजेबने अपने दक्षिणी अभियानोंका आयोजन किया। औरंगजेबके आदेशसे गोलकुण्डाका अंतिम शासक अब्दुल हसन दौलताबादके ही गढ़में कैद किया गया था। १७०७ ई० में बुरहानपुरमें औरंगजेबकी मृत्यु होनेपर उसके शवको दौलताबादमें ही दफनाया गया। १७६० ई० में यह नगर मराठोंके अधिकारमें आ गया, लेकिन इसका पुराना नाम देवगिरि

पुनः प्रचलित न हो सका । आज भी यह दौलताबादके नामसे ही जाना जाता है ।

द्रविड़ (देश)—तमिलनाडुका प्राचीन नाम, अर्थात् मद्राससे लेकर दक्षिणमें कन्याकुमारी तक दक्षिण भारतका भूभाग ।

द्रविड़ (निवासी)—भारतमें बसी हुई प्राचीनतम प्रजातियोंमें-से एक, जो पहले उत्तर और दक्षिण दोनों भागोंमें फैली हुई थी । कालांतरमें उत्तर भारतके द्रविड़ मेसोपोटामिया (वर्तमान ईराक) की ओर चले गये और रास्तेमें बलूचिस्तान-में अपनी ब्राहुई शाखा छोड़ गये जो आज भी द्रविड़ भाषासे मिलती-जुलती बोली बोलते हैं । उत्तर भारतके द्रविड़ लोगोंको आर्योंने दक्षिणकी ओर खदेड़ दिया । आर्योंकी सभ्यता और संस्कृति द्रविड़ोंके मुकाबले निचले दर्जेकी थी, लेकिन अच्छे योद्धा होनेके कारण उत्तर भारतमें अपनी सत्ता स्थापित करनेमें वे सफल हो गये ।

उत्तरमें आर्योंके जम जानेके बावजूद दक्षिण भारतमें द्रविड़ लोगोंकी सत्ता शताब्दियोंतक कायम रही । इनकी सन्तान आज भी दक्षिण भारतमें है जो तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषाएँ बोलती है । इन भाषाओंका मूल उद्भव संस्कृतसे नहीं हुआ है जो आर्योंकी भाषा मानी जाती है । समय बीतनेके साथ द्रविड़ों और आर्योंमें रक्तका सम्मिश्रण हुआ और इस समय दोनोंके बीचका भेद लगभग लुप्त हो गया है और दोनोंकी सभ्यता, संस्कृति और धर्ममें समन्वय स्थापित हो गया है । द्रविड़ लोगोंके देवी-देवता वैदिक धर्ममें शामिल हो गये हैं और उत्तर भारतमें उनकी पूजा उसी प्रकार होती है जैसे दक्षिण भारतमें ।

द्रौपदी—पंचालके राजा द्रुपदकी पुत्री, जिसे पाण्डुपुत्र अर्जुनने अपनी धनुर्विद्याका प्रदर्शन करके विजित किया था, लेकिन बादमें पाँचों पाण्डवोंके साथ उसका विवाह हुआ । संस्कृतके प्रसिद्ध महाकाव्य 'महाभारत' की वह मुख्य नायिका है ।

द्वारसमुद्र—आधुनिक हैलविड़का प्राचीन नाम । यह होयसल राजाओंकी राजधानी थी जो वर्तमान कर्नाटक क्षेत्रपर शासन करते थे । इस राजधानीकी स्थापना बिट्टिग (दे०)ने की, जो बादमें विष्णुवर्धन (लगभग १११९—१४ ई०)के नामसे विख्यात हुआ । यह नगर वैष्णव धर्मका केन्द्र बना । विख्यात वैष्णव संत रामानुजको विष्णुवर्धनकी ही संरक्षकता प्राप्त थी । इस राजाने कई भव्य विष्णुमंदिर बनवाये । द्वारसमुद्रमें बना विष्णुमंदिर अपने सौंदर्य और कलाके लिए बहुत विख्यात हुआ । किसी समय द्वारसमुद्रका राज्य देवगिरि (दे०) तक फैला हुआ था । १३२६ ई० में सुल्तान मुहम्मद तुगलककी मुस्लिम सेनाने इस नगरको लूट-पाटकर बरबाद कर डाला ।

द्वैध शासन-पद्धति—सांविधानिक व्यवस्थाका एक रूप । द्वैध शासनका सिद्धांत सबसे पहले लियोनेल कर्टिसने प्रतिपादित किया था जो बहुत दिनों तक 'राउण्ड टेबिल'का सम्पादक रहा । बादमें यह सिद्धान्त १९१९ ई० के भारतीय शासन विधानमें लागू किया गया जिसके अनुसार प्रान्तोंमें द्वैध शासन स्थापित हुआ । इस पद्धतिके अनुसार प्रान्तोंमें शिक्षा, स्वायत्त शासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सार्वजनिक निर्माण, कृषि तथा सहकारिता आदि विभागोंका प्रशासन मंत्रियोंको हस्तांतरित कर दिया गया । ये मंत्री प्रान्तीय विधानसभाके निर्वाचित सदस्य होते थे और विधानसभाके प्रति उत्तरदायी थे । दूसरी ओर राजस्व, कानून, न्याय, पुलिस, सिंचाई, श्रम तथा वित्त आदि विभागोंका प्रशासन गवर्नरकी एक्जीक्यूटिव कौंसिलके सदस्योंके लिए सुरक्षित रखा गया । ये सदस्य गवर्नर द्वारा मनोनीत होते थे और उन्हींके प्रति उत्तरदायी होते थे, विधानसभाके प्रति नहीं ।

अंग्रेज शासकोंके मतानुसार द्वैध शासन-पद्धतिकी स्थापनाका मुख्य उद्देश्य भारतीयोंको क्रमिक रूपसे प्रशासन चलानेकी कलाका प्रशिक्षण देना था और यह एक प्रकारसे भारतीयोंकी प्रशासन-क्षमतापर आक्षेप था । इसके अलावा हस्तांतरित विभाग खर्चेवाले विभाग थे, जबकि सुरक्षित विभाग आमदनीवाले विभाग थे । इस प्रकारका विभागोंका बँटवारा मंत्रियोंके लिए परेशानी पैदा करनेवाला था, क्योंकि ऐसी स्थितिमें उन्हें खर्चेके लिए एक्जीक्यूटिव कौंसिलके सदस्योंका मुंह देखना पड़ता था । वास्तवमें यह द्वैध शासन-पद्धति एक प्रकारसे संक्रमणकालीन शासन-पद्धति थी, जिसे भारतीयोंने पसन्द नहीं किया । लेकिन ब्रिटिश सरकारको इस शासन-पद्धतिमें अधिक लाभ नजर आता था, क्योंकि अधिक महत्त्वपूर्ण विभाग एक्जीक्यूटिव कौंसिलके सदस्योंके हाथमें थे जो गवर्नरके प्रति उत्तरदायी थे । इस शासन-पद्धतिकी अलोकप्रियता तथा कार्यान्वियनमें कठिनाईके बावजूद इसे आगे चलकर १९३५ ई० के भारतीय शासन-विधानमें भी शामिल कर लिया गया । अर्थात् केन्द्रमें भी द्वैध प्रशासन-पद्धति लागू करनेकी व्यवस्था की गयी, जबकि पहले यह केवल प्रान्तोंमें लागू थी । लेकिन १९३५ ई० का नया शासन-विधान कभी पूर्णतया लागू नहीं किया जा सका, अतः केन्द्रमें द्वैध शासन-पद्धति लागू नहीं हुई । जब स्वतन्त्र भारतका नया संविधान बना, पुराने शासन-विधान और द्वैध शासन-पद्धतिका स्वतः अंत हो गया ।

द्वैध शासन, बंगालका—१७६५ ई० की इलाहाबादकी संधि (दे०)के अंतर्गत बंगाल, बिहार और उड़ीसामें स्था-

पित। उक्त संधिके फलस्वरूप एक ओर ईस्ट इण्डिया कम्पनी और दूसरी ओर अवधके नवाब शुजाउद्दौला, बंगालके नवाब मीर कासिम और दिल्लीके सम्राट् शाह-आलम द्वितीयके बीच युद्धका अन्त हो गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनीको बंगालकी दीवानी (दे०) सौंप दी गयी, अर्थात् कम्पनीको बंगालका दीवान (वित्तमंत्री तथा राजस्व संग्रहकर्त्ता) बना दिया गया, जबकि मीर जाफरके लड़के-को बंगालका नवाब मान लिया गया। यह तय पाया गया कि कम्पनी जो राजस्व वसूल करेगी, उसमेंसे २६ लाख रुपया सालाना सम्राट्को तथा ५२ लाख रुपया बंगालके नवाबको शासन चलानेके लिए दिया जायगा तथा शेष भाग कम्पनी अपने पास रखेगी। इस प्रकार बंगाल, बिहार और उड़ीसामें दोहरे शासनका आविर्भाव हुआ।

इसके अंतर्गत कम्पनी राजस्व वसूलनेके लिए तथा नवाब शासन चलानेके लिए जिम्मेदार हुए। दोनोंने ही सम्राट्की अधीनता स्वीकार की और सम्राट्को भी राजस्व-का कुछ भाग मिलने लगा जो बहुत वर्षोंसे बंद हो गया था। इस दोहरे शासनसे कम्पनीकी असंगत स्थितिका तो अंत हो गया, किन्तु शासन-व्यवस्थामें कोई सुधार न हो सका।

दूसरी ओर नवाबसे वित्तीय प्रबंध ले लिये जाने और उसपर शांति एवं व्यवस्था तथा कम्पनीके कर्मचारियोंकी घूसखोरीकी प्रवृत्तिको रोकनेकी जिम्मेदारी सौंप दिये जानेसे बंगालकी शासन-व्यवस्था बिगड़ने लगी; क्योंकि कम्पनीके कर्मचारी अपनेको मालिक समझते थे, उनपर नियंत्रण पा सकना बहुत कठिन था। गरीब जनता कम्पनी तथा नवाब दोनोंके अफसरोंके अत्याचारोंसे त्राहि-त्राहि करने लगी। इसीका फल हुआ कि १७६९–७० ई० में भयंकर अकाल पड़ा जिससे बंगालकी एक-तिहाई आबादी नष्ट हो गयी। इस दुखद घटनाने दोहरी शासन-पद्धतिकी बुराईको सबसे अधिक उजागर कर दिया। फलतः १७७२ ई० में इसे समाप्त कर दिया गया।

ध

धंग–(लगभग ९५०–९९)–मध्य भारतके चंदेलवंशका सबसे अधिक शक्तिशाली राजा। उसने अपना साम्राज्य चारों दिशाओंमें फैलाया और काफी लम्बे अरसे तक शासन किया। उसने खजुराहोके कुछ सुन्दर मंदिर भी बनवाये तथा तत्कालीन राजनीतिमें सक्रिय भाग लिया। ९८९–९० ई०में वह पंजाबके राजा जयपाल (दे०) द्वारा संगठित भारतीय नरेशोंके महासंघमें शामिल हुआ और सबके साथ मिलकर गजनीके सुबुक्तगीन (दे०)के हमलेका मुकाबला करनेको बढ़ा, लेकिन कुर्रम घाटीके निकट युद्धमें सब राजाओंके साथ धंगने भी हार खायी। राजा धंग सौ वर्ष तक जिया। जीवनके सौ वर्ष पूरे होनेपर उसने प्रयाग जाकर त्रिवेणीमें जलसमाधि ले ली। (एन० एस० बसु कृत 'चंदेलोंका इतिहास')

धनञ्जय–दक्षिण भारतके उत्तरी अर्काट जिलेमें स्थित कुस्थल-पुरका राजा। प्रयागके स्तम्भलेखके अनुसार समुद्रगुप्त (चतुर्थ शताब्दी)ने अपने दक्षिणी अभियानमें धनञ्जयको पराजित करने बाद उदारतापूर्वक मुक्त भी कर दिया।

धन नंद–नंदवंशी राजाओंमें अंतिम, जो सिकन्दरके आक्रमणके समय शासन करता था। प्राचीन यूनानी लेखकोंने उसका नाम अग्रमस अथवा जैण्ड्रमस लिखा है। इन लेखकोंके अनुसार धननंदके पास अपार सम्पत्ति थी। पश्चिममें उसके साम्राज्यकी सीमा व्यास नदी तक थी। उसके पास विशाल सेना थी, जिसमें २० हजार घुड़सवार, दो लाख पैदल, दो हजार रथ तथा तीन हजार हाथी थे। इस विशाल सेनासे मुकाबला होनेकी बात सुनकर ही सिकन्दरके सैनिकोंने आगे पूर्वकी ओर बढ़नेसे इनकार कर दिया। फलतः सिकंदरको अपने देश वापस लौटना पड़ा। धननंद अत्याचारी राजा था और प्रजा उससे कुपित थी। चन्द्र-गुप्त मौर्य (दे०)ने तक्षशिलाके स्नातक चाणक्यकी सहायतासे प्रजाके असंतोषका लाभ उठाकर मगधपर आक्रमण कर दिया और धननंदको मार डाला तथा पाटलिपुत्रको राजधानी बनाकर मौर्यवंशको सत्तारूढ़ किया।

धनाजी जादव–एक मराठा सरदार, जिसने १६८९ ई० में शम्भु जी (दे०) की पराजय और मृत्युके पश्चात् मुगलोंके विरुद्ध मराठोंका संघर्ष पूरी शक्तिसे जारी रखा। उसने मुगलोंके विभिन्न क्षेत्रोंको बारी-बारीसे रौंदा और मराठों-का स्वराज्यके लिए संघर्ष जारी रखा। १७०७ ई० में मुगलों-की कैदसे साहुकी मुक्तिके पश्चात् धनाजी मराठा सेनाका प्रधान बनाया गया। धनाजीकी मृत्यु हो जानेपर उसके स्थानपर उसका लड़का चंद्रसेन जादव सेनापति बनाया गया।

धरसेन–पश्चिममें वल्लभीके मैत्रकवंश (दे०)के चार राजाओंने यह नाम धारण किया। यह वंश गुप्त राजाओंके पतनके पश्चात् राज्यश्रीसम्पन्न हुआ था। धरसेन प्रथमने सेनापतिकी उपाधि ग्रहण की, किन्तु अन्य तीनोंने राजकीय उपाधियाँ धारण की। धरसेन चतुर्थने ६४५ से ६४९ ई०

तक शासन किया। वह सम्राट् हर्षवर्धनका दौहित्र था। उसने 'परमभट्टारक परमेश्वर चक्रवर्ती'की उपाधि धारण की थी। वह अपने नाना हर्षवर्धनका उत्तराधिकारी भी बनना चाहता था, लेकिन उसे सफलता न मिली। उसके कार्यकलापोंके बारेमें अधिक जानकारी नहीं मिलती।

धर्मटकी लड़ाई–१५ अप्रैल १६५८ ई० को उज्जैनसे १४ मील दूर हुई। इस युद्धमें एक ओर बीमार सम्राट् शाहजहाँ-की ओरसे दाराका पक्ष लेते हुए राजा जसवंतसिंह तथा कासिम अलीकी फौजोंने तथा दूसरी ओरसे विद्रोही औरंगज़ेब तथा मुरादकी फौज़ोंने भाग लिया। इस लड़ाईमें शाही फौज बुरी तरह परास्त हुई। औरंगज़ेबने विजयी होकर दिल्लीकी ओर तेज़ीसे प्रयाण किया। वह चम्बल नदी पारकर आगरासे पूर्व आठ मीलपर सामूगढ़ पहुँचा, जहाँ दाराके नेतृत्वमें शाही फौजसे उसकी पुनः मुठभेड़ हुई। दारा पराजित होकर भाग खड़ा हुआ।

धर्मपाल–बंगाल और बिहारके पालवंश (दे०)का द्वितीय राजा। उसने लगभग ७५२ से ७६४ ई० तक शासन किया। वस्तुतः वह पालवंशकी कीर्तिका प्रतिष्ठापक था। बंगालके नरेशोंमें वह सबसे अधिक प्रतापी था। उसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी, जहाँसे उसने बंगाल और बिहारकी सीमाओंके बाहर अनेक विजय-यात्राएँ कीं। कुछ समयके लिए वह सम्पूर्ण उत्तरी भारतका अधिपति हो गया। उसने कन्नौजके राजा इन्द्रराजको गद्दीसे उतारकर उसके स्थानपर चक्रायुधको बैठाया, जिसने उसका सामंत बनना स्वीकार कर लिया। धर्मपालको दो मोर्चोंपर युद्ध करना पड़ा। उसने दक्षिणमें राष्ट्रकूटों (दे०)से लोहा लिया जिन्होंने उसे गंगा-यमुनाके दोआबसे पीछे खदेड़ दिया। उधर प्रतिहारों (दे०)ने कन्नौजसे उसके सामंत चक्रायुधको मार भगाया। राजा धर्मपाल बौद्धधर्मका उत्साही संरक्षक था, उसने विक्रमशिला (आधुनिक भागलपुर जिले)में सुप्रसिद्ध विहार एवं विश्व-विद्यालयकी स्थापना की तथा राजशाही जिलेके पहाड़पुरके निकट सोमपुर विहार बनवाया। (**ढाका हिस्ट्री आफ बंगाल, खण्ड एक**)

धर्मपाल–कामरूप (आसाम)में १०वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें राजा ब्रह्मपाल द्वारा प्रवर्तित वंशका सातवाँ राजा। धर्मपाल १२वीं शताब्दीमें हुआ। उसके शासनकी अवधि-का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। तीन आलेखोंमें उसके द्वारा ब्राह्मणोंको दिये गये भूमिदानका उल्लेख मिलता है। वह सात्त्विक विचारोंका शासक था, अतः अपने भूमिदानके आलेखोंमें धर्माचरणसे होनेवाले पुण्योंका उल्लेख अवश्य कराता था। सम्भवतः वह विष्णुका उपासक था।

धर्मरत्न–मध्य एशियामें रहनेवाला एक भारतीय बौद्ध भिक्षु, जो ६५ ई० में कश्यप मातंग (दे०)के साथ चीन गया और वहाँके हान सम्राट् मिंग-तीकी संरक्षकतामें लोयांगमें श्वेताश्व विहारकी स्थापना की। इस प्रकार उसने चीनमें बौद्ध धर्मके प्रसारमें योगदान किया।

धर्मशास्त्र–वेदोंके बाद धर्मशास्त्रोंको ही हिन्दुओंमें सबसे अधिक मान्यता प्राप्त है। धर्मशास्त्रोंमें वैदिक धर्मसूत्रोंके अतिरिक्त जिनमें उस युगकी सामाजिक रीति-नीति और विधि-विधानोंका विवरण है, मनुस्मृति आदि स्मृतियाँ भी शामिल की जाती हैं।

धृतराष्ट्र–महाभारतकी कथाके अनुसार कौरवोंका पिता। इन्हीं कौरवोंका युद्ध अपने चचेरे भाई पाण्डवोंसे हुआ था। धृतराष्ट्र जन्मसे ही अंधा था, अतएव वह हस्तिनापुरका औपचारिक राजा था और उसकी ओरसे छोटा भाई पाण्डु शासन चलाता था। पाण्डुके मरनेके बाद कौरवों और पाण्डवोंमें उत्तराधिकारका विवाद चला, जिसके फल-स्वरूप कुरुक्षेत्रमें 'महाभारत' युद्ध हुआ, जिसमें दुर्योधनके नेतृत्वमें कौरवोंकी पराजय हुई और युधिष्ठिरके नेतृत्वमें पाण्डवोंकी विजय हुई।

धीमान्–९वीं शताब्दी ई० में बंगालके पाल राजाओंके समय-में एक सुप्रसिद्ध कलाकार और मूर्तिकार। विख्यात तिब्बती इतिहासकार तारानाथने धीमान् और उसके पुत्र विटोपालका उल्लेख अपनी पुस्तकमें किया है और उन्हें बंगालमें प्रस्तर-मूर्तिकला, ताम्र-मूर्तिकला तथा चित्रकलाकी पृथक् शैलीका प्रवर्तक बताया है।

धोयी–बंगालके राजा लक्ष्मणसेन (११७९–१२०५ ई०)के दरबारका कवि। उसने कालिदासके 'मेघदूत'के अनुकरण पर 'पवनदूत' काव्यकी रचना की, जिसमें राजकुमार लक्ष्मणसेनके अभियानका वर्णन है।

धौली–उड़ीसाके पुरी जिलेमें स्थित, जहाँ अशोकके चतुर्दश शिलालेखोंकी एक प्रति प्राप्त हुई है। जौगढ़की भाँति यहाँ भी संख्या ११, १२ तथा १३ के लेख नहीं मिलते। उनके स्थानपर दो अन्य लेख मिले हैं, जो विशेषरूपसे कलिंगके लिए उत्कीर्ण कराये गये थे।

ध्रुव–मान्यखेटके राष्ट्रकूट वंशका चौथा राजा, जिसने लगभग ७८० से ७९३ ई० तक शासन किया। वह पराक्रमी योद्धा था, जिसने भिन्नमालके गुर्जर राजा वत्सराज-को पराजित किया और उससे वे दोनों श्वेत छत्र छीन लिये जो इसके पहले गुर्जर नरेशने गौड़ नरेशसे छीने थे। राजा ध्रुवने लगभग ७७५ ई०में पल्लव (दे०) नरेशको भी परास्त किया।

ध्रुवदेवी–आरंभमें, सम्राट समुद्रगुप्तके बड़े पुत्र रामगुप्तकी

रानी। बादमें जब समुद्रगुप्तके छोटे पुत्र चंद्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य (३८० से ४१५ ई०, दे०)ने रामगुप्तको मारकर गद्दी प्राप्त की तब उसने ध्रुवदेवीसे विवाह कर लिया। उससे कुमारगुप्त उत्पन्न हुआ, जिसने बादमें ४१५ से ४५५ ई० तक शासन किया।

ध्रुवभट्ट—वल्लभीका राजा, जिसने कन्नौजके सम्राट् हर्षवर्धन (६०६–६४७ ई०)की पुत्रीसे विवाह किया। उसके मरने पर उसके पुत्र धरसेन चतुर्थ (दे०)ने 'परमभट्टारक' की पदवी प्राप्त की।

न

नंदवंश—का प्रवर्तन महापद्मनन्द (दे०) द्वारा लगभग ३६२ ई० पू० मगधमें हुआ। इस वंशमें नौ शासक हुए, यथा महापद्म और उसके आठ पुत्र, जिन्होंने बारी-बारीसे राज्य किया। विभिन्न प्रमाणोंके आधारपर उनका शासन काल १००, ४०, अथवा २० वर्षोंका माना जाता है। केवल दो ही पीढ़ियोंके शासकोंके लिए १०० वर्षोंका शासनकाल अत्यधिक जान पड़ता है। ४० वर्षोंका शासनकाल उचित प्रतीत होता है। इस आधारपर मानना पड़ेगा कि ३२२ ई० पू० के आसपास चन्द्रगुप्त मौर्य (दे०)ने नंदवंशका नाश किया। नंदवंशके शासक शूद्र थे, फिर भी उन्होंने यथेष्ट शक्ति और धन संचय किया था। इस वंशके अंतिम शासकके पास, जिसे पुराणोंने धननन्द और यूनानी इतिहासकारोंने अग्रमस अथवा जैण्ड्रमस लिखा है, अतुल कोष तथा एक विशाल सेना थी, जिसमें २०,००० अश्वारोही, २००,००० पदाति, २,००० रथ और ३,००० हाथी थे। यूनानी इतिहासकारोंने उसे प्राच्य देशके शासकके रूपमें उल्लिखित किया है। उसके राज्यकी सीमा व्यास नदी तक विस्तृत थी और उसकी शक्तिसे भयभीत होकर सिकन्दरके सैनिकोंने व्यास नदीसे आगे बढ़ना अस्वीकार कर दिया और सिकन्दरको वापस लौटना पड़ा। किन्तु नंदवंशका अन्तिम शासक धननन्द अत्यंत अलोकप्रिय था। चन्द्रगुप्त मौर्यने चाणक्य अथवा कौटिल्य नामक ब्राह्मणकी सहायतासे ३२२ ई० पू० के निकट उसे तथा नंदवंशको नष्ट करके मौर्य वंशकी नींव डाली।

नंदकुमार—एक बंगाली फौजदार, जो १७५७ ई० में क्लाइव तथा वाटसन द्वारा चन्द्रनगरके फ्रांसीसियोंपर आक्रमण करनेके समय हुगलीमें नियुक्त था। नन्दकुमारके अधीन बंगालके नवाबकी एक बड़ी सैन्य टुकड़ी थी, जिसका प्रयोग वह अंग्रेजोंके आक्रमणके समय फ्रांसीसियोंकी रक्षाके लिए कर सकता था। किन्तु उक्त आक्रमणके पूर्व नन्दकुमार अपने अधीनस्थ सैनिकोंको लेकर हुगलीसे दूर चला गया और अंग्रेजोंने सरलतासे चन्द्रनगरपर अधिकार कर लिया। "यह स्पष्ट है कि इस प्रकारके आचरणके लिए नंदकुमारको उत्कोच (घूस) दिया गया था।" पलासीके युद्धके उपरान्त वह नवाब मीर जाफ़रका कृपा-पात्र बन गया और १७६४ ई० में शाहआलमने उसको 'महाराज'की उपाधि प्रदान की। उसी साल वारेन हेस्टिंग्स-को हटाकर नन्दकुमारको वर्दवानका कलक्टर नियुक्त किया गया और इस कारण हेस्टिंग्सने उसे कभी क्षमा नहीं किया। अगले ही वर्ष नन्दकुमारको बंगालका नायब सूबेदार नियुक्त किया गया, किन्तु शीघ्र ही उसे पदमुक्त कर वहां मुहम्मद रज़ा खांकी नियुक्ति की गयी। १७७२ ई० में तत्कालीन गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सने रज़ा खांको हटा दिया तथा नन्दकुमारकी सहायतासे उसपर मुकदमा भी चलाया। किन्तु आरोप सिद्ध न हुए और तभीसे नन्दकुमार और वारेन हेस्टिंग्समें मतभेद हो गया।

मार्च १७७५ ई०में नन्दकुमारने वारेन हेस्टिंग्सके विरुद्ध कलकत्ता कौंसिलके सम्मुख भ्रष्टाचार एवं घूसके गंभीर आरोप लगाये, किन्तु दूसरे ही महीने बारवेल (दे०) नामक कौंसिलके सदस्यने नन्दकुमारके विरुद्ध षड्यंत्रका एक वाद प्रस्तुत कर दिया। ये दोनों वाद विचाराधीन ही थे कि मोहनप्रसाद नामक एक व्यक्तिने नन्दकुमारके विरुद्ध जालसाजीका एक और वाद प्रस्तुत कर दिया। इस अभियोगकी सुनवाई मई, १७७५ में प्रारंभ हुई और समस्त कार्यवाही, बड़ी शीघ्रतासे पूर्ण की गयी। नन्दकुमार दोषी सिद्ध किया गया और गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सके मित्र तथा सुप्रीम कोर्टके जज सर एलिजा इम्पी (दे०)ने उसको फाँसीकी सजा दी। ५ अगस्त १७७५ ई०को नन्दकुमारको फांसी दे दी गयी। यद्यपि नन्दकुमार निर्दोष तथा सच्चा देशभक्त न था, तथापि जालसाजीके आरोपमें उसे प्राणदण्ड देना एक प्रकारसे न्यायकी हत्या करना था। (**बेवरिज कृत 'महाराजा नंदकुमारका मुकदमा'**)

नन्दिवर्धन—पुराणोंके अनुसार शिशुनागवंशके अंतिम शासक पंचमकके पूर्व मगधका शासक। इसके संबंधमें कोई विवरण उपलब्ध नहीं है।

नम्बूद्री ब्राह्मण—इस वर्गका निवास मलाबार (केरल) का भूभाग है। इन लोगोंने वैदिक परंपरा और कर्मकाण्डको विपरीत परिस्थितियोंमें भी आत्मत्यागपूर्वक सुरक्षित रखा है। अपनी

विशिष्टताके कारण इन्हीं लोगोंमेंसे बद्रीनाथ आदि पवित्र मन्दिरोंके रावल (मुख्य पुजारी) नियुक्त किये जाते हैं।

नगरकोट–आधुनिक काँगड़ा, जो हिमाचल प्रदेशमें है। सुल्तान मुहम्मद तुगलक (दे०)ने १३३७ ई० में उसपर अधिकार कर लिया था।

नजफ़ खाँ–देखिये, 'मिर्जा नजफ़ खाँ'।

नजमुद्दौला–बंगालके नवाब मीर जाफ़रका द्वितीय पुत्र और उत्तराधिकारी। १७६६ ई० में मीर जाफ़रकी मृत्युके उपरान्त अंग्रेजोंने बड़े भाईके स्थानपर उसको इस शर्तपर गद्दीपर बैठाया कि राज्यका संचालन कलकत्ता कौंसिल द्वारा चुने गये एक डिप्टी या उपशासक द्वारा होगा। कौंसिलने रजा खांको उपशासक चुना और इस प्रकार नजमुद्दौला केवल नाममात्रका शासक रह गया। १७६६ ई० में उसका भत्ता कम करके ४१ लाख कर दिया गया, जो पुनः १७६६ ई० में ३२ लाख और १७७२ ई० में केवल १५ लाख कर दिया गया, जो उसके पद और शक्तिके क्रमिक ह्रासका सूचक है।

नयपाल–बिहार और बंगालके पालवंशीय शासक महीपाल (दे०)का पुत्र और उत्तराधिकारी। वह पालवंशका दसवाँ शासक था और उसने लगभग १०३८ से १०५५ ई० तक राज्य किया। उसके राज्यकालमें दीर्घकाल तक कलचुरियों (दे०)से संघर्ष चलता रहा। पाल शासनका विघटन नयपालके राज्यकालसे ही प्रारंभ हो गया था और पूर्वी, पश्चिमी तथा दक्षिणी बंगाल उसके हाथोंसे निकल गया था। उसके राज्यकालमें प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् अतिशा (दीपंकर श्रीज्ञान)ने तिब्बतके शासकोंके निमंत्रणपर अपने शिष्यों सहित वहांकी यात्रा की।

नरसा नायक–विजयनगरके सालुववंशके दूसरे और अन्तिम अल्पवयस्क शासक इम्मडि नरसिंहका संरक्षक। उसने उस बाल-शासकको एक प्रकारसे बन्दी बना लिया और शासन-संचालनकी समस्त शक्ति अपने हाथोंमें ले ली। यह कार्य उसने इतनी चतुरता एवं कठोरतासे किया कि १५०३ ई० में उसकी मृत्युके उपरान्त उसका पुत्र वीर नरसिंह ही संरक्षक बना और वही १५०५ ई० में शासक बन बैठा।

नरसिंहगुप्त–सुविख्यात गुप्तवंशका एक शासक, जिसने बालादित्यका विरुद धारण किया था। वह सम्राट् पुरुगुप्त (दे०)का पुत्र एवं उत्तराधिकारी था। उसका शासन-काल लगभग ४६७ ई० से ४७३ ई० तक माना जाता है। नरसिंहगुप्त बौद्ध धर्मका कट्टर अनुयायी था और उसने नालन्दामें, जो उत्तरी भारतमें बौद्ध शिक्षाका विश्वविख्यात केन्द्र था, ईंटोंका एक भव्य मंदिर बनवाया, जिसमें ८० फुट ऊँची बुद्धकी ताम्रप्रतिमाकी स्थापना की गयी थी। विद्वानोंने बालादित्यको ही हूण शासक मिहिरकुलका विजेता माना है, जिसकी सत्ता ५३३–३४ ई० में समाप्त कर दी गयी। ऊपर जो तिथियाँ दी गयी हैं, उनसे यह समीकरण सही नहीं प्रतीत होता।

नरसिंहवर्मा–कांचीके विख्यात पल्लव सम्राट् महेन्द्रवर्मा (दे०)का पुत्र और उत्तराधिकारी। उसका उपनाम राजसिंह भी था। उसने लगभग ६३० ई० से ६६८ ई० तक राज्य किया। नरसिंहवर्मा पल्लववंशका सबसे सफल एवं ख्यातिलब्ध शासक था। उसने ६४२ ई० में चालुक्यवंशके प्रतापी सम्राट् पुलकेशी द्वितीयको पराजित कर मार डाला और चालुक्योंकी राजधानी वातापी (आधुनिक बादामी)पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार उसने दक्षिण भारतमें पल्लवोंकी सार्वभौम सत्ता स्थापित की। ६४० ई० में ह्यु एनत्सांग नामक चीनी यात्री दक्षिणमें परिभ्रमण करते हुए उसकी राजधानी कांची गया था, और नरसिंहवर्माकी शक्ति एवं ऐश्वर्यसे विशेषरूपसे प्रभावित हुआ था। नरसिंहवर्माने पल्लव कलामें एक नवीन शैलीका प्रचलन किया जो राजसिंह शैलीके नामसे विख्यात है। उसने महाबलिपुरम् (मामल्लपुर)में धर्म-राजरथका निर्माण कराया और कांचीका प्रसिद्ध कैलासनाथ मंदिर भी उसीके राज्यकालमें निर्मित हुआ।

नरेन्द्रनाथ दत्त–देखिये, 'स्वामी विवेकानन्द'।

नरेन्द्र-मण्डल–माण्टेगू-चेम्सफोर्ड रिपोर्टकी सिफारिशोंके अनुसार ८ फरवरी १९२१ ई० को शाही ऐलान द्वारा इसकी स्थापना हुई। भारतीय देशी रियासतोंके विभिन्न प्रतिनिधि. शासक इसके सदस्य थे। वाइसराय इसका अध्यक्ष होता था और हर साल राजाओंमेंसे इसके चांसलर और प्रोचांसलरका चुनाव होता था। यह सिर्फ एक सलाहकार संस्था थी और इसे कार्यकारी अधिकार प्राप्त नहीं थे। वाइसराय इस संस्थासे उन सभी मामलोंमें परामर्श ले सकता था, जिनसे ब्रिटिश भारत और देशी रियासत, दोनोंका ही संबंध होता था। यह रियासतों और उनके शासकोंके आंतरिक मामलों या ब्रिटेनके बादशाहसे उनके संबंधों, या रियासतोंके वर्तमान अधिकारों या विवाह-संबंधोंमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता था और न उनकी कार्य-स्वतंत्रतापर अंकुश लगा सकता था। इस मण्डलकी स्थापनाका उद्देश्य देशी रियासतोंको ब्रिटिश भारतीय सरकार तथा नयी राष्ट्रीय विचारधाराके निकट संपर्कमें लाना था। संस्था बहुत कारगर सिद्ध नहीं हुई। परिस्थितियोंवश इसकी उपयोगिता सिर्फ इतनी रही कि

उसने सम्पूर्ण भारतके लिए आजकी तरहकी संघीय सरकार-की स्थापनाके लिए रास्ता साफ कर दिया।

नवाज़ ख़ाँ, शाह—१६५८—५९ ई० में मुगलोंकी ओरसे अहमदाबादका सूबेदार। सामूगढ़ (दे०)के युद्धके उपरान्त जब शाहज़ादा दारा (दे०) भागकर अहमदाबाद आया तो उसने उसको शरण दी। नवाज़ ख़ाँने दाराको सूरतपर अधिकार करनेमें इस आशयसे भी सहायता दी कि कदाचित् वह पुनः अपना राज्य पानेमें समर्थ हो सके। किन्तु दारा अजमेर चला गया और नवाज़ खां द्वारा की गयी सहायता व्यर्थ सिद्ध हुई।

नवाब वज़ीर (अवधके)—देखिये, 'शुजाउद्दौला'।

नसरतशाह—हुसैनशाहका सबसे बड़ा पुत्र और उत्तराधिकारी। उसने १५१८ से १५३३ ई० तक बंगालमें शासन किया। हुसैनशाहके १८ पुत्र थे और नसरतशाहने सभी के साथ अच्छा व्यवहार किया। उसने तिरहुत भी जीत लिया था और वह ललितकलाओं, वास्तुकला और साहित्यका पोषक था। उसने अपनी राजधानी गौड़में बड़ी सुनहली मसजिद और कदमरसूल नामक दो प्रसिद्ध मसजिदोंका निर्माण कराया। साथ ही उसने महाभारतका संस्कृतसे बंगलामें अनुवाद कराया।

नसरत शाह—तुगलकवंश (दे०)का आठवाँ सुल्तान। वह सुल्तान फीरोज तुगलकका पौत्र था। उसे जनवरी १३९५ ई० में गद्दीपर बैठाया गया किन्तु ३ या ४ ही वर्ष नाममात्रका शासक रहनेके उपरांत उसकी हत्या कर दी गयी। अपने शासनकालमें वह फिरोजाबादमें दरबार लगाता था, जबकि उसका प्रतिद्वन्द्वी और चचेरा भाई महमूद तुगलक पुरानी दिल्लीमें शासन करता था। उसकी मृत्युसे महमूद तुगलक, तुगलकवंशका एकमात्र निर्विरोध प्रतिनिधि रह गया।

नहपान—शकोंके क्षहरातवंशका एक प्रसिद्ध क्षत्रप, जिसने नासिक या उसके निकट राजधानी बनाकर महाराष्ट्र प्रदेशपर शासन किया। उसकी तिथिका निश्चयपूर्वक निर्धारण नहीं हो सका है, लेकिन उसके सिक्कों एवं अभिलेखोंसे यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि उसने दूसरी शताब्दीके प्रथम चतुर्थांशमें राज्य किया। उसके राज्यमें पूना (पुणें), उत्तरी कोंकण, काठियावाड़ और मालवाके भूभाग तथा अजमेर सम्मिलित थे। कुछ लोग उसे ही शक संवत्का प्रवर्तक मानते हैं।

नाग—नर्मदा नदीकी घाटीके मूल निवासी। उनके एक शासक गणपति नागका उल्लेख समुद्रगुप्तके प्रयाग स्तम्भ-लेखमें हुआ है।

नागपुर—विदर्भ क्षेत्रका एक नगर और ब्रिटिशकालीन मध्य-प्रदेशकी एक रियासत। अब यह महाराष्ट्र प्रदेशके अन्तर्गत है। पेशवा बाजीराव प्रथम (दे०)के कालमें रघुजी भोंसला द्वारा स्थापित राजवंशके शासकोंकी यह नगर राजधानी था। १७६१ ई० में पेशवा बालाजी बाजीराव (दे०)की मृत्युके उपरान्त नागपुरके भोंसला शासक प्रायः स्वतंत्र हो गये। परन्तु द्वितीय मराठा-युद्ध (दे०)में अंग्रेजों द्वारा पराजित होनेपर १८०३ ई० में उन्हें सहायक-सन्धि स्वीकार करनी पड़ी। १८५४ ई० में जब्तीके सिद्धांतके अनुसार इसे ब्रिटिश साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया।

नागभट्ट प्रथम—गुर्जर प्रतीहार वंशका संस्थापक। साधारणतया उसका काल आठवीं शताब्दी माना जाता है। सिन्धके अरबों और दक्षिणके चालुक्यों तथा राष्ट्रकूटोंके विरुद्ध वह अपने वंशकी सत्ता बनाये रखनेमें समर्थ रहा।

नागभट्ट, द्वितीय—गुर्जर प्रतिहार वंशका एक प्रारंभिक शासक। लगभग ८१६ ई० में उसने गंगाके मैदानपर आक्रमण करके कन्नौजपर अधिकार कर लिया और वहाँके शासकको सिंहासनसे उतारकर कन्नौजको अपनी राजधानी बनाया। उपरान्त राष्ट्रकूट शासक गोविन्द तृतीय (दे०)के हाथों उसकी पराजय हुई।

नागसेन—एक प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु एवं दार्शनिक। मेनेण्डर नामक यवन शासकको बौद्ध धर्मके सिद्धान्तोंसे परिचित करानेवाले विद्वानके रूपमें इसका उल्लेख 'मिलिन्द-पञ्हो' (मिलिन्दके प्रश्न) नामक ग्रंथमें हुआ है।

नागसेन—समुद्रगुप्त (दे०)की प्रयाग-प्रशस्ति लेखमें उट्टंकित एक शासक। समुद्रगुप्तने उसे पराजित करके उसके राज्यको अपने साम्राज्यमें मिला लिया। उसे पद्मावती (पदम पवाया)का शासक बताया गया है, जो ग्वालियर और झाँसीके बीच स्थित थी।

नागा—लोग भारतके उत्तर-पूर्वी सीमा-प्रदेशमें रहते हैं। वे प्रारम्भमें बड़े ही क्रूर थे और नर-मुण्डोंका शिकार करते थे। उनकी मांग है कि उनके निवास क्षेत्र नागालैण्डको स्वायत्त-शासन प्राप्त हो। (अब 'नागालैंड' भारतीय संघका एक राज्य बना दिया गया है।—सं०)

नागानन्द—एक प्रसिद्ध संस्कृत नाटक, जिसकी रचना सातवीं शतीमें सम्राट हर्षवर्धन (दे०) द्वारा की हुई मानी जाती है।

नागार्जुन—एक प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान्, जिसका समय दूसरी शताब्दी ई० माना जाता है। कदाचित उसको सम्राट् कनिष्क (दे०)का संरक्षण प्राप्त था। उसकी दो प्रसिद्ध कृतियाँ 'सुहृल्लेख' और 'मध्यमकारिका' हैं। 'सुहृल्लेख'

में बौद्धधर्मके सिद्धान्तोंका संक्षिप्त वर्णन है और 'मध्यम-कारिका' महायान सम्प्रदायका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

नागार्जुन–एक प्रख्यात हिन्दू रसायनशास्त्रका विद्वान। उसका समय सातवीं-आठवीं शताब्दी माना जाता है। उसके प्रसिद्ध ग्रंथ 'रसरत्नाकर'में धातुओंके संशोधन और उनके गुण-दोषोंका निरूपण है, जिसमें पारेका उल्लेख (पारद प्रयोग) सबसे महत्त्वपूर्ण है। अरबोंने नागार्जुनके ग्रन्थोंसे ही रसायन-विद्याका विशेष ज्ञान प्राप्त किया था (देखिये–पी० सी० राय कृत 'हिन्दू रसायनशास्त्रका इतिहास', भाग दो)।

नाट, जनरल सर विलियम (१७८२ से १८४५ ई० तक)–ईस्ट इंडिया कम्पनीकी बंगाल सेनामें १८०० ई० में एक सैनिक पदाधिकारी होकर आया। उसकी अतिशीघ्र पदोन्नति हुई और १८३९ ई० में उसे कंदहार स्थित ब्रिटिश सेनाओंका नेतृत्व सौंपा गया। आगे चलकर उसने अफगानोंके आक्रमणोंसे कंदहारकी रक्षा की। मैकनाटन (दे०)की हत्याके उपरांत उसने बिना स्पष्ट आदेशके भारत लौटना अस्वीकार कर दिया, किन्तु जब १८४२ ई० के जुलाई मासमें लार्ड एलेनबराने उसे अपने मनचाहे मार्गसे लौटनेकी अनुमति दी, तब उसने लौटनेके लिए जानबूझकर लम्बा मार्ग चुना। गजनी होता हुआ वह १७ सितम्बर १८४२ ई० को काबुल पहुँचा और ब्रिटिश सेनाओंकी शक्ति जताता हुआ जलालाबाद होकर भारत लौटा। इस प्रकार उसने अफगान-युद्धकी पराजयको विजयका रूप दे दिया। उपरान्त उसकी नियुक्ति काबुलके रेजीडेण्टके रूपमें हुई और १८४४ ई० में उसने भारतीय सेवासे अवकाश लिया।

नादिरशाह–१७३६ ई० में फ़ारसमें सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने १७३८ ई० में काबुल और कन्दहारपर अधिकार कर लिया और १७३९ ई० के प्रारंभमें भारतवर्षपर आक्रमण कर दिया। तत्कालीन मुगल बादशाह मुहम्मदशाह (दे०) राजपूतोंका सहयोग उपलब्ध न कर सका। मुसलमान अमीरों और अधिकारियोंमेंसे अधिकांश नादिरशाहके साथ षड्यंत्र करते रहे। फलस्वरूप नादिरशाह निर्विरोध ल तक बढ़ आया और मुगल सेनाओंको सरलतासे परास्त कर २० मार्च १७३९ ई०को उसने दिल्लीमें प्रवेश किया। पराजित मुगल बादशाहको उसका स्वागत करना पड़ा। उसके सैनिकोंने पहले कुछ दिनों तक दिल्लीमें कोई लूटमार नहीं की, परंतु उसके सैनिकोंपर जब हमले होने लगे तो उसने क्रुद्ध होकर कत्लेआम तथा प्रातः आठ बजेसे सायंकाल तक नगरको लूटनेका आदेश दे दिया। मुगल-सम्राट्की मध्यस्थताके फलस्वरूप उसने नर-संहार एवं लूटमार बन्द करवा दी, किन्तु तब तक दिल्लीके ३०,००० नागरिक मारे जा चुके थे और नगरका अधिकांश भाग जलाया जा चुका था।

नादिरशाहने काबुल और सिन्धु नदीके पश्चिमका समस्त भूभाग अपने राज्यमें सम्मिलित कर लिया तथा मुहम्मदशाहको दिल्लीका सम्राट् बना रहने दिया। १६ मई १७३९ ई० को वह ३० करोड़ रुपये, बहुमूल्य रत्न, मोती, कोहेनूर (दे०) सहित असंख्य हीरे, तख़्ते ताऊस (दे०), १००० हाथी, ७००० घोड़े, १०,००० ऊँट, मुगल रनिवास (हरम)की बहुत-सी सुंदरियाँ, २०० कारीगर, १०० मिस्त्री एवं २०० बढ़ई लेकर तथा भारतको रक्तरंजित और पददलित छोड़कर स्वदेश लौट गया। वस्तुतः उसे इस आक्रमणमें लूटका इतना धन प्राप्त हुआ कि उसने फारसको ३ वर्ष तक कर-मुक्त रखा। किन्तु उसके प्रारब्धमें इस धनका उपभोग अधिक काल तक बदा न था। इसीलिए भारतसे लौटनेके आठ ही वर्ष बाद उसका मस्तिष्क विकृत हो गया और विक्षिप्तावस्थामें उसके ही शिविरमें १७४७ ई० में छुरेसे उसकी हत्या कर दी गयी।

नादिरा बेगम–बादशाह शाहजहाँके ज्येष्ठ पुत्र दारा शिकोहकी पत्नी। सामूगढ़के युद्धोपरान्त उसने दाराके साथ पलायन किया और उसके साथ ही समस्त दुःख एवं कष्ट सहे। अन्ततः इस दारुण दुःखको और अधिक सहन करनेमें असमर्थ होकर दादर जाते समय १६५९ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्युसे दाराको गहरा आघात लगा।

नानक–सिख धर्मके प्रवर्तक। १४६९ ई० में लाहौरके निकट तलवण्डी अथवा आधुनिक ननकाना साहिबमें खत्री परिवारमें वे उत्पन्न हुए। वे साधु स्वभावके धर्म-प्रचारक थे। उन्होंने अपना समस्त जीवन हिन्दू और इस्लाम धर्मकी उन अच्छी बातोंके प्रचारमें लगाया, जो समस्त मानव समाजके लिए कल्याणकारी हैं। उनका ध्येय धार्मिक झगड़ोंको मिटाना था। उन्होंने विश्वमें एक दूसरेके प्रति उदारता एवं सहनशीलताका उपदेश दिया। उन्होंने सर्वशक्तिमान् ईश्वरमें आस्था रखनेकी शिक्षा दी तथा धार्मिक कट्टरता एवं अंधविश्वासका विरोध किया। उन्होंने सभी मनुष्योंको जाति और धर्मके भेदभावोंसे ऊपर उठाकर एक माना तथा अपने अनुयायियोंको इस अपवित्र संसारमें पवित्र जीवन बितानेकी प्रेरणा दी। उन्होंने अत्यधिक तपस्या तथा अत्यधिक सांसारिक भोगविलास, अहंभाव

एवं आडम्बर, स्वार्थपरता और असत्यभाषणसे दूर रहनेकी शिक्षा दी। उन्होंने सभीको अपने धर्मका उपदेश दिया, फलतः हिन्दू और मुसलमान, दोनों ही उनके अनुयायी हो गये। उनके स्वरचित पवित्र पद तथा शिक्षाएँ (बानियाँ) सिखोंके धर्मग्रंथ 'ग्रंथ साहिब'में संकलित हैं। नानकदेवकी मृत्यु १५३९ ई०में हुई।

नाना फड़नवीस–एक मराठा राजनेता, जो पानीपत (दे०) के तृतीय युद्धके समय पेशवाकी सेवामें नियुक्त था। वह युद्धभूमिसे जीवित लौट आया था। उपरान्त १७७३ ई० में नारायणराव पेशवाकी हत्या कराकर उसके चाचा राघोबाने जब स्वयं गद्दी हथियानेका प्रयत्न किया तो उसने उसका विरोध किया। नाना फड़नवीसने नारायणरावके मरणोपरान्त उत्पन्न पुत्र माधवराव नारायणको १७७४ ई० में पेशवाकी गद्दीपर बैठाकर राघोबाकी चाल विफल कर दी। नाना फड़नवीस ही अल्पवयस्क पेशवाका मुख्य-मंत्री बना और १७७४ से १८०० ई० में मृत्युपर्यन्त मराठा राज्यका शासन-संचालन करता रहा। किन्तु उसकी स्थिति निष्कंटक न थी, क्योंकि अन्य मराठा सरदार, विशेषकर महादजी शिन्दे (दे०) उसके विरोधी थे।

फिर भी नाना फड़नवीस अपनी चतुराईसे समस्त विरोधोंके बावजूद अपनी सत्ता बनाये रखनेमें सफल रहा। १७७५ से १७८३ ई० तक उसने अंग्रेजोंके विरुद्ध प्रथम मराठा-युद्धका संचालन किया। सालबाईकी संधिसे इस युद्धकी समाप्ति हुई। उक्त संधिके अनुसार राघोबाको पेंशन दे दी गयी और मराठोंको साष्टीके अतिरिक्त अन्य किसी भूभागसे हाथ नहीं धोना पड़ा। १७८४ ई०में नाना फड़नवीसने मैसूरके शासक टीपू सुल्तानसे लोहा लिया और कुछ ऐसे इलाके पुनः प्राप्त कर लिये, जिन्हें टीपूने बलपूर्वक अपने अधिकारमें कर लिया था। १७८९ ई०में टीपू सुल्तानके विरुद्ध उसने अंग्रेजों और निजामका साथ दिया तथा तृतीय मैसूर-युद्धमें भी भाग लिया, जिसके फलस्वरूप मराठोंको टीपूके राज्यका एक भूभाग प्राप्त हुआ। १७९४ ई०में महादजी शिन्देकी मृत्यु हो जानेसे नाना फड़नवीसका एक प्रबल प्रतिद्वन्द्वी उठ गया और उसके बाद नाना फड़नवीसने निर्विरोध मराठा राजनीतिका संचालन किया। १७९५ ई०में उसने मराठा संघकी सम्मिलित सेनाओंका निजामके विरुद्ध संचालन किया और खर्दा (दे०)के युद्धमें निजामकी पराजय हुई। फलस्वरूप निजामको अपने राज्यके कई महत्त्वपूर्ण भूभाग मराठोंको देने पड़े।

१७९६ ई० में नाना फड़नवीसके कठोर नियंत्रणसे तंग आकर माधोराव पेशवाने आत्महत्या कर ली। उपरांत राघोबाका पुत्र बाजीराव द्वितीय (दे०) पेशवा बना, जो प्रारंभसे ही नाना फड़नवीसका विरोधी था। इस प्रकार ब्राह्मण पेशवा और उसके ब्राह्मण मुख्यमंत्रीमें प्रतिद्वन्द्विता चल पड़ी। दोनोंमेंसे किसीमें भी सैनिक क्षमता न थी, किन्तु दोनों ही राजनीतिके चतुर एवं धूर्त खिलाड़ी थे। दोनोंके परस्पर षड्यंत्रोंसे मराठोंका दो विरोधी शिविरोंमें विभाजन हो गया, जिससे पेशवाकी स्थिति दुर्बल हो गयी। इसके बावजूद नाना फड़नवीस आजीवन मराठा संघको एक सूत्रमें आबद्ध रखनेमें समर्थ रहा। १८०० ई० में नाना फड़नवीसकी मृत्यु हो गयी और इसके साथ ही मराठोंकी समस्त क्षमता, चतुरता एवं सूझ-बूझका अंत हो गया।

नाना साहब (धोण्डो पंत)–अंतिम पेशवा बाजीराव द्वितीय (दे०)के दत्तक पुत्र। वे अपने निर्वासित पिता बाजीराव द्वितीयके साथ कानपुर जिलेमें बिठूर नामक स्थलपर रहते थे और वहाँके अंग्रेजोंसे उनका अच्छा मैत्री सम्बन्ध था। किन्तु १८५३ ई० में उनके पिता बाजीरावकी मृत्युके उपरान्त तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजीने उनकी पैतृक वार्षिक पेंशन देना अस्वीकार कर दिया, जिससे उनमें अंग्रेजोंके प्रति घृणा और विरोध-भावना उत्पन्न हो गयी। तथाकथित सिपाही-विद्रोह (१८५७)में उनका कितना हाथ था, इस संबंधमें निश्चय कर पाना कठिन है, किन्तु यह निश्चित है कि उसके संगठन एवं संचालनमें उनका प्रमुख योगदान था। कुछ विद्रोहियोंने तो अंग्रेजी सत्ता हटाकर उन्हींको सिंहासनासीन करने तककी योजना बनायी थी। कानपुरके निकट बीबीपुरमें अंग्रेजोंकी हत्याका उत्तरदायित्व भी उन्हींपर आरोपित किया गया। किन्तु नाना साहबमें अपने पिताकी ही भाँति सैनिक योग्यता न थी। १८५८ ई० में तांत्या टोपेने ग्वालियरपर अधिकार कर लेनेके उपरान्त उन्हें पेशवा भी घोषित किया, पर नाना साहब विद्रोही सैनिकोंका सफल नेतृत्व न कर सके। तांत्या टोपे (दे०)की पराजय और २० जून १८५८ ई० को ग्वालियरपर अंग्रेजोंके पुनः अधिकार कर लेनेके उपरान्त नाना साहब भाग खड़े हुए। अनेक प्रयत्न करनेपर भी अंग्रेज उन्हें बन्दी न बना सके और अज्ञातवासमें ही उनकी मृत्यु हो गयी।

नाभपंक्ति–का उल्लेख सम्राट् अशोकके १३वें शिलालेखमें हुआ है परन्तु उसकी ठीक पहचान नहीं हो सकी है। अभिलेखकी अन्य प्रतियोंमें उन्हें नाभक और नाभिति भी कहा गया है। भण्डारकर महोदयका मत था कि वे उत्तर

पश्चिमी सीमांत प्रदेश और भारतके पश्चिमी तटके बीच निवास करते थे। (दे०—डी० आर० भण्डारकर कृत 'अशोक', पृ० ३३)।

'नामहीन शासक'—अनुमानतः कुषाण राजा था जिसने कदफिसस द्वितीयकी मृत्युके उपरान्त, संभवतः ११० ई०से १२० ई०में कनिष्कके सिंहासनारोहण तक राज्य किया। कदाचित् इस अज्ञातनामा राजाने ही वे नामरहित सिक्के प्रचलित किये थे जिनपर सोटरमेगस या त्रातारस (महान रक्षक)का लेख उत्कीर्ण पाया गया है।

नायडू, सरोजिनी (१८७६—१९४६)—इस सुप्रसिद्ध विदुषी महिलाका जन्म बंगाली परिवारमें और विवाह मराठा सज्जन (दाक्षिणात्य महानुभाव)से हुआ। वे ख्यातिलब्ध कवि तथा वक्ता थीं। उन्होंने भारतीय राजनीतिमें महत्त्वपूर्ण भाग लिया और १९२५ ई०में कानपुरमें होनेवाले भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अधिवेशनकी अध्यक्षता की। इस उच्च पदपर आसीन होनेवाली वे प्रथम महिला थीं। भारतीय गणतंत्रमें १९४७ से १९४९ ई० में मृत्यु पर्यन्त उत्तर प्रदेशके राज्यपालका पद सँभालनेवाली वे प्रथम महिला थीं। उनकी पुत्री पद्मजा नायडू भी पश्चिमी बंगालकी राज्यपाल रहीं।

नारायण राव—मराठोंका पांचवां पेशवा, जिसने १७७२—७३ ई० में केवल ९ महीनों तक शासन किया। वह पेशवा माधवराव नारायण (१७६१—७२) (दे०)का सहोदर एवं उत्तराधिकारी था। सिंहासनासीन होनेके केवल ९ मास उपरान्त ही उसके चाचा रघुनाथराव अथवा राघोबाके समर्थकोंने उसकी हत्या कर दी।

नार्थब्रुक, अर्ल—१८७२से १८७६ ई० तक भारतवर्षका वाइसराय और गवर्नर-जनरल। वह ग्लैडस्टोनके विचारोंका समर्थक और उदारदलका था। भारतमें उसकी नीति "करोंमें कमी, अनावश्यक कानूनोंको न बनाने तथा कृषि योग्य भूमिपर भार कम करने" की थी। वह मुक्त व्यापारका समर्थक था, परन्तु आयात होनेवाली वस्तुओंपर अल्प करोंसे होनेवाली आयको तिलांजलि नहीं दे सका। उसने तेल, चावल, नील और लाखको छोड़कर निर्यात होनेवाली समस्त वस्तुओंपरसे निर्यात-कर हटा दिया और आयात करोंमें भी ७॥ प्रतिशतसे ५ प्रतिशतकी कमी कर दी। परन्तु इस अल्प आयातकरका भी लंकाशायरके सूती उद्योगपतियोंने विरोध किया। परिणामस्वरूप लार्ड डिजरेलीकी अनुदार सरकार तथा तत्कालीन भारत-मंत्री लार्ड सैलिसबरीने उद्योगपतियोंके हितोंको ध्यानमें रखकर ५ प्रतिशतके आयातकरको भी हटा देनेपर बल दिया, इस कारण भारत-मंत्री (लार्ड सैलिसबरी) और नार्थब्रुकमें मतभेद हो गया। यह मतभेद अफगानिस्तानके प्रति अपनायी जानेवाली नीतिके प्रश्नपर और भी बढ़ गया।

१८७३ ई० में जब रूसने कीब (दे०)पर अधिकार कर लिया, तब अफगानिस्तानके अमीर शेरअलीने भारतकी अंग्रेजी सरकारसे और भी निकटके मैत्री-सम्बन्धका प्रस्ताव रखा। भविष्यमें रूसके आक्रमण और साम्राज्य-विस्तारको ध्यानमें रखकर यह संधि-प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। नार्थब्रुक शेरअलीकी इस प्रार्थनाको उचित समझता था, इसलिए उसने ब्रिटिश सरकारसे अफगानिस्तानके साथ इस आशयका लिखित समझौता कर लेनेकी अनुमति चाही। किन्तु इंग्लैण्डकी सरकारने अनुमति देना स्वीकार न किया तथा शेरअलीको केवल साधारण सहायताका वचन देनेको कहा गया। किन्तु इंग्लैण्डमें डिजरैलीकी सरकार बनते ही ब्रिटिश मंत्रिमंडलकी नीतियोंमें परिवर्तन आ गया। उसने अफगानिस्तानके प्रति १८७३ ई० से चली आती हुई अत्यधिक निष्क्रियताकी नीतिको त्यागकर अग्रसर नीति अपनानेमें रुचि प्रकट की। नये भारतमंत्री लार्ड सैलिसबरीने १८७४ ई० में नार्थब्रुकको आदेश दिया कि वे अमीर शेरअलीसे अपने राज्यमें एक अंग्रेज रेजीडेण्ट रखनेको कहें। किन्तु नार्थब्रुकने इस माँगको अनुचित समझा क्योंकि थोड़े ही दिन पूर्व भारत सरकारने अमीरके संधि-प्रस्तावोंको ठुकरा दिया था। उसके विचारसे रेजीडेण्ट रखनेका प्रस्ताव अनुचित था और उसके भयंकर परिणाम हो सकते थे। फलतः लार्ड नार्थब्रुकने अंग्रेज सरकारके साथ पहलेसे ही मतभेद होनेके कारण त्यागपत्र दे दिया। कहना न होगा कि भारतीय अर्थव्यवस्थाकी स्थिरताकी दृष्टिसे उक्त आयातकरका प्रचलित रहना अत्यावश्यक था।

नालन्दा—सातवीं शताब्दीका एक विश्वविख्यात बौद्ध विद्यापीठ। नालन्दा दक्षिणी बिहारमें राजगिरि (राजगृह)के निकट स्थित है और उसके ध्वंसावशेष बड़गाँव नामक ग्राममें दूरतक बिखरे पड़े हैं। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि कब और किसने नालन्दा महाविहारकी नींव डाली। फाहियानने, जिसने पाँचवीं शताब्दीमें पाटलिपुत्र और आसपासके क्षेत्रोंमें भ्रमण किया था, इसका उल्लेख नहीं किया है, किन्तु सातवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें भारत भ्रमण करनेवाले चीनी यात्री ह्युएनत्सांगने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इस प्रकार नालन्दा महाविहारने, विश्वविद्यालयके रूपमें पांचवीं और छठी शताब्दियोंमें विशेष कीर्ति अर्जित कर ली थी। वस्तुत

ह्युएन-त्सांगका कथन है कि गुप्त सम्राट् नरसिंहगुप्त बालादित्य (लगभग ४७० ई०)ने नालन्दामें एक सुन्दर मन्दिरका निर्माण कराया और उसमें ८० फुट ऊँची ताँबेकी बुद्ध प्रतिमाकी स्थापना की। जिन दिनों ह्युएन-त्सांग नालन्दा विश्वविद्यालयमें शिक्षा प्राप्त कर रहा था, उस समय शीलभद्र नामक बंगाली बौद्ध भिक्षु वहाँका महास्थविर था। प्रायः इसी कालमें शैलेन्द्र शासक बाल-पुत्रदेवने मगधके तत्कालीन शासक देवपालकी अनुमतिसे नालन्दामें एक नये विहारका निर्माण इस आशयसे कराया कि जावासे नालन्दा शिक्षा प्राप्त करने आनेवाले भिक्षुओंको निवासकी सुविधा प्राप्त हो सके।

वास्तवमें नालन्दा विहार अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विश्वविद्यालय था। वहाँ केवल भारतसे नहीं, बल्कि सुदूर तिब्बत, चीन, जावा और लंकासे अनेकानेक विद्यार्थी और विद्वान आते रहते थे। यद्यपि वहाँ सभी प्रकारकी शिक्षा दी जाती थी तथापि बौद्धधर्मकी महायान शाखाका अध्ययन-अध्यापन विशेषरूपसे होता था। वहाँ हस्तलिखित ग्रंथोंका एक विशाल पुस्तकालय, जो तीन विशाल भवनोंमें, जिनमेंसे एक नौ खंडों (मंजिलों)का था, स्थापित था। आजके किसीभी भारतीय विश्वविद्यालयको यह श्रेय प्राप्त नहीं है। वहाँका अनुशासन कठोर था और समयकी सूचना जलघड़ी द्वारा विधिवत् दी जाती थी। सभी प्रश्नों एवं समस्याओंपर खुलकर वाद-विवाद होते थे। शिक्षाके इस महान् केन्द्रका कब और कैसे विनाश हुआ, यह निश्चयपूर्वक ज्ञात नहीं है, किन्तु ध्वंसावशेषोंके अध्ययनसे प्रतीत होता है कि एक भयंकर अग्निकांड इसका कारण था। (**पी० वी० बापट कृत '२५०० ईअर्स आफ बुद्धिज्म'**)

नासिक–महाराष्ट्र प्रदेशमें गोदावरी तीरवर्ती एक प्राचीन नगर तथा हिन्दुओंका पवित्र तीर्थस्थल। यह नगर कदाचित् शक क्षत्रप नह्पान (दे०)की राजधानी था। चालुक्य सम्राट् पुलकेशी द्वितीय और प्रारम्भिक राष्ट्रकूट (दे०) शासकोंके कालमें इस नगरकी महत्ता बनी रही, परन्तु राष्ट्रकूट शासक अमोघवर्ष द्वारा मान्यखेट (आधुनिक मालखेड़)को राजधानी बना लेनेपर इसका महत्त्व कम हो गया। नासिक और उसके समीपवर्ती क्षेत्र हिन्दू, बौद्ध एवं जैन अवशेषोंके लिए प्रसिद्ध हैं।

नासिर जंग–दक्षिण (हैदराबाद)के निजामुलमुल्क आसफ-जाहका द्वितीय पुत्र और उत्तराधिकारी। वह १७४८ ई० में निजाम बना, किन्तु उसके भानजे मुजफ्फर जंग (दे०) ने उत्तराधिकारके सम्बन्धमें विवाद खड़ा कर दिया। फ्रांसीसी गवर्नर डूप्ले और अर्काटके सिंहासनके दावेदार चंदा साहबने उसका पक्ष लिया। नासिर जंगने कर्नाटक पर आक्रमण करके अपने विरोधियोंको मार्च १७५० ई० में वेलुडाबूरके युद्धमें पराजित किया और मुजफ्फर जंगने पूर्णरूपसे आत्मसमर्पण कर दिया। किन्तु नासिर जंग इस विजयसे अधिक दिनों तक लाभ न उठा सका, क्योंकि दिसम्बर १७५० ई० में एक आकस्मिक आक्रमणमें वह मारा गया।

नासिरुद्दीन–१५००से १५१२ ई० में अपनी मृत्युपर्यन्त मालवाका सुलतान। वह पितृहन्ता था; यद्यपि उसके पिताने उसे स्वेच्छासे १५०० ई० में सुल्तान बना दिया था तथापि उसने १५०१ ई० में उसे विष देकर मार डाला। वह क्रूर एवं अत्याचारी शासक था।

नासिरुद्दीन कुबाचा (कुबैजा)–शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी (दे०)का तुर्क गुलाम। अपनी योग्यताके बलपर वह सिंधका सूबेदार नियुक्त हुआ और उसने कुतुबुद्दीन ऐबककी बहिनसे विवाह कर लिया। कुतुबुद्दीन भी उसीकी भाँति गोरीका एक तुर्क गुलाम था। शहाबुद्दीन गोरीकी मृत्युके उपरान्त जब कुतुबुद्दीन (१२०६–१० ई०) दिल्लीका सुल्तान बना, कुबाचाने विद्रोह कर दिया। किन्तु उसकी पराजय हुई और उसे कुतुबुद्दीनकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

नासिरुद्दीन महमूद–दिल्लीका सुल्तान जिसने १२४६ ई० से १२६६ ई० तक राज्य किया। वह सुल्तान इल्तुतमिश (दे०) (१२११–१२३६)का कनिष्ठ पुत्र था। नासिरुद्दीन विद्याप्रेमी और शान्त स्वभावका व्यक्ति था। शासनका सम्पूर्ण भार उलग खाँ अथवा गयासुद्दीन बलबन (दे०)पर छोड़कर वह सादा जीवन व्यतीत करता था। उसने बलबनकी पुत्रीसे विवाह किया था। उसके राज्य-कालमें बलबनने शासन-प्रबन्धमें विशेष क्षमता दिखायी और पंजाब तथा दोआबके हिन्दुओंके विद्रोहोंका दृढ़तासे दमन किया। साथ ही उसने मुगलों (मंगोलों)के आक्रमणोंको भी रोका। नासिरुद्दीन विद्वानों का आश्रयदाता था और तबकाते-नासिरी (दे०)के लेखक मिनहाजुद्दीन सिराजको उसके दरबारमें उच्च पद प्राप्त था।

नासिरुद्दीन मुहम्मद शाह–तातार खाँने १४०३ में सिंहासनारोहणके उपरान्त उपाधि धारण की। उसने अपने पिता जफ़र खाँको, जो उन दिनों गुजरातका सूबेदार था, बन्दी बना लिया और स्वयं स्वतंत्ररूपसे उस प्रदेशपर शासन करने लगा। किन्तु एक वर्ष बाद ही उसके पिताने उसे विष देकर मार डाला और स्वयं गुजरातके सिंहासनपर अधिकार

कर लिया ।

निकितिन, अथनासियस–एक रूसी व्यापारी एवं पर्यटक, जिसने १४७० से १४७४ ई० तक दक्षिणके बहमनी राज्यमें भ्रमण किया । उसने दक्षिणकी तत्कालीन दशाका आँखों देखा विवरण लिखा है । उसके अनुसार दक्षिणमें साधारण मनुष्योंकी स्थिति दयनीय थी, परन्तु वहाँका शासक वर्ग तथा अमीर उमरा अत्यधिक धनी और विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे ।

निकोल्सन, ब्रिगेडियर जनरल जॉन (१८२१–१८५७ ई०)–एक वीर सैनिक, जो १८३९ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें कलकत्तेमें नियुक्त हुआ । उसने १८५७ ई० के तथाकथित सिपाही-विद्रोहमें यथेष्ट ख्याति अर्जित की । अफगानिस्तानमें होनेवाले १८४०–४१ ई० के अभियानमें भाग लेते हुए वह बंदी बनाया गया, परन्तु शीघ्र ही मुक्त हो गया । १८४८–४९ ई० के सिख-युद्धमें भी उसने विशेष ख्याति प्राप्त की । १८५७ ई०के सिपाही-विद्रोहके प्रारंभ होनेके समय वह पेशावरमें डिप्टी कमिश्नर था । किन्तु शीघ्र ही उसको एक द्रुतगामी सैनिक टुकड़ीका नायक बनाकर पंजाबसे दिल्लीको पुनः जीत लेनेके लिए भेजा गया । निकोल्सन शीघ्रतासे मंजिल तय करता हुआ १४ अगस्त १८५७ ई० को दिल्ली पहुँच गया और १४ सितम्बरको उस अंग्रेज सेनाका नेतृत्व किया, जिसने दिल्लीपर पुनः अधिकार कर लिया । दिल्लीकी सड़कोंपर लड़ते हुए निकोल्सनके सीनेमें गोली लगी और इस संघातिक चोटके फलस्वरूप २३ सितम्बर १८५७ ई० को उसकी मृत्यु हो गयी । किन्तु दिल्लीपर उसके द्वारा अधिकार कर लेनेसे विद्रोह प्रायः समाप्त हो गया और इस प्रकार उसने अंग्रेजोंके भारतीय साम्राज्यकी रक्षा की ।

निजाम आसफजाह–देखिये, आसफजाह निजाम खाँ ।

निजाम खां–देखिये, सिकन्दर लोदी ।

निजामशाह बहमनी–बहमनी सल्तनत (दे०) का बारहवाँ सुल्तान । १४६१ ई०में अपने पिता सुल्तान हुमायूं (दे०)के उपरांत सिंहासनासीन होनेके समय वह अल्पवयस्क था । १४६३ ई० में अचानक उसकी मृत्यु हो गयी ।

निजामशाही वंश–का आरम्भ जुन्नारमें १४९० ई० में मलिक अहमदके द्वारा हुआ, जिसने तत्कालीन बहमनी शासक सुल्तान महमूद (दे०) (१४८२ से १५१८) के विरुद्ध विद्रोह कर दिया । उसने निजामशाहकी उपाधि धारण की और अपनी राजधानी अहमदनगर ले गया । उसके द्वारा प्रवर्तित निजामशाही वंश १४९० से १६३७ ई० तक राज्य करता रहा । पश्चात् १६३७ ई० में सम्राट् शाहजहाँके राज्यकालमें उसे जीतकर मुगल साम्राज्यमें मिला लिया गया । १५७४ ई०में इस वंशने बरारपर भी अधिकार कर लिया था, परन्तु १५९६ ई० में उसे बरारको मुगल सम्राट् अकबरको दे देना पड़ा ।

इस वंशके तृतीय शासक हुसैनशाहने विजयनगर (दे०) राज्यके विरुद्ध दक्षिणके मुसलमान राज्योंके गठबंधनमें भाग लिया था और १५६५ ई० के तालीकोट (दे०)के युद्धमें विजय प्राप्त करनेके उपरांत विजयनगरके लूटनेमें भी पूरा हाथ बँटाया । चाँदबीबी, जो मुगलोंके विरुद्ध अपनी वीरताके लिए प्रसिद्ध हुई, निजामशाही वंशके सुल्तान हुसैन निजामशाह (१५५३ से १५६५ ई०) की पुत्री थी । निजामशाही वंशका आधुनिक कालमें अवशिष्ट स्मारक भद्रमहल है, जो सफेद पत्थरोंसे निर्मित है और अपनी जीर्णदशामें अहमदनगरमें विद्यमान है ।

निजामुद्दीन–मुगल सम्राट् अकबरके कालका इतिहासलेखक । उसने 'तबकाते अकबरी' नामक पुस्तक लिखी, जिसमें अकबरके राज्यकालका प्रामाणिक एवं विश्वसनीय विवरण है ।

निजामुद्दीन औलिया–एक प्रसिद्ध सूफी संत, जो अकबरके राज्यकालमें दिल्लीमें आकर बस गया था । समस्त जनता उसे अत्यधिक आदरकी दृष्टिसे देखती थी । दिल्लीमें उसकी कब्रके पास एक विशाल मस्जिदका निर्माण किया गया ।

निजामुलमुल्क–इस उच्च उपाधिका शाब्दिक अर्थ है–'समस्त साम्राज्यका उपप्रधान' । सम्राट् मोहम्मदशाह (१७१९-४८)ने सर्वप्रथम यह उपाधि चिन किलिच खाँको प्रदान की थी । तभीसे उनके वंशमें यह उपाधि आनुवंशिक रूपमें कुछ समय पहले तक चली आ रही थी । इस वंशका मुखिया साधारणतया निजाम कहलाता था ।

नियार्कस–मकदूनियाके महान् विजेता सिकन्दरका नौसेनाधिकारी । उसीने सिकन्दरके जलपोतोंका पहले झेलम नदीसे सिन्धु नदीके मुहाने तक और उपरान्त फारसकी खाड़ी होते हुए दजला और फरात नदियोंके मार्गसे सूसा पहुँचने तक नेतृत्व किया था । सूसा पहुँचनेपर वह सिकंदरसे मिला, जो स्थल मार्गसे पहले ही वहाँ पहुँच चुका था । नियार्कसने अपनी इस लम्बी यात्राका विवरण भी लिखा है ।

निवेदिता, सिस्टर–स्वामी विवेकानन्द (दे०)की एक प्रमुख शिष्य, जो आयरिश महिला थी और उसका मूल नाम कुमारी मार्गरेट नोबुल था । वह स्वामी विवेकानन्दसे सर्वप्रथम लन्दनमें मिली थी और उनसे प्रभावित होकर भारत चली आयी । यहाँ विधिवत् दीक्षित होकर वह

स्वामीजीकी शिष्य बन गयीं और उसे रामकृष्ण मिशनके सेवाकार्यमें लगा दिया गया। इस प्रकार वह पूर्णरूपसे समाजसेवाके कार्योंमें निरत हो गयीं और कलकत्तेमें भीषणरूपसे प्लेग फैलनेपर भारतीय बस्तियोंमें प्रशंसनीय सुश्रूषा कार्य कर उसने एक आदर्श स्थापित कर दिया। उत्तरी कलकत्ताके उस भागमें एक बालिका विद्यालयकी स्थापना उसने की, जहाँ घोर कट्टरपंथी हिन्दू बहुसंख्यामें थे। प्राचीन हिन्दू आदर्शोंको शिक्षित जनता तक पहुँचानेके लिए अंग्रेजीमें पुस्तकें लिखीं और सम्पूर्ण भारतमें घूम-घूमकर अपने व्याख्यानों द्वारा उनका प्रचार किया। वह भारतकी स्वतंत्रताकी कट्टर समर्थक थी और अरविन्द घोष सरीखे राष्ट्रवादियोंसे उसका घनिष्ठ सम्पर्क हो गया। स्वामी विवेकानन्दकी मृत्युके उपरान्त एक सप्ताहके अंदर ही उसने भारतकी सेवामें अपना सम्पूर्ण समय लगा देनेके उद्देश्यसे रामकृष्ण मिशनसे संबंध विच्छेद कर लिया। 'भारतकी बालसुलभ कहानियाँ' (Cradle Tales of India) उसकी अनेक रचनाओंमेंसे एक लोकप्रिय रचना है। (**देखिये——प्रवर्तिक आत्मप्राण द्वारा रचित 'सिस्टर निवेदिता'**)

नील प्रभु मुंशी—शिवाजीका ब्राह्मण परामर्शदाता। छत्रपति शिवाजीने औरंगजेब (दे०)को जो विरोधपत्र भेजा था, वह उसीने लिखा था। यह पत्र शिवाजीने औरंगजेब द्वारा १६७६ ई०में हिन्दुओंपर पुनः जजिया (दे०) लगानेके विरोधमें भेजा था।

नील, ब्रिगेडियर जनरल, जेम्स—प्रथम स्वाधीनता संग्राम—(तथाकथित सिपाही-विद्रोह)के दिनोंमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेनाका एक उच्च अधिकारी। ११ जून, १८५७ ई० को उसने एक साहसिक धावेके उपरान्त इलाहाबादके किलेपर उसी समय अधिकार कर लिया, जब वह दुर्ग विद्रोहियोंके हाथोंमें जाने ही वाला था। शीघ्र ही वहाँ जनरल हैवलाकके नेतृत्वमें एक और ब्रिटिश टुकड़ी उससे आ मिली। इस प्रकार स्थिति सुदृढ़ हो जानेपर हैवलाक और नीलके नेतृत्वमें अंग्रेज सेनाएं कानपुरकी ओर चल पड़ीं। इलाहाबादसे कानपुर तकके मार्गमें नीलने, प्रतिशोधकी भावनासे प्रेरित होकर, अपनी नृशंस बर्बरताका परिचय दिया और मार्गके गाँवोंकी निरीह तथा निर्दोष भारतीय जनताको वह मौतके घाट उतारता चला। इस प्रकार उसने प्रतिशोधकी ऐसी ज्वाला धधका दी जिसका प्रतिफल भारतीयों तथा अंग्रेजों दोनोंको भोगना पड़ा। नील और उसकी सेनाओंके कानपुर पहुँचनेके पूर्व ही बीबीगढ़का दुःखद काण्ड हो चुका था। नील और हैवलाकने शीघ्र ही कानपुरपर अधिकार कर लिया और नील वहीं रुक गया। वहाँ उसने अपनी प्रतिशोध भावनाका अत्यधिक बीभत्स प्रदर्शन किया तथा हैवलाकके सहायतार्थ जब वह कानपुरसे लखनऊको चला तो मार्गमें जिस किसी भारतीयको वह पकड़ पाता था उसे पेड़ोंपर लटकाकर फाँसी दे देता था। किन्तु लखनऊ पहुँचनेपर वहाँ की गलियोंमें युद्ध करता हुआ वह मौतके घाट उतार दिया गया।

नुनीज़, फ़रनाओ—एक पुर्तगाली यात्री जो १५३५ ई० में विजयनगर (दे०) आया। उसने सम्पूर्ण विजयनगर राज्यका विस्तृत भ्रमण किया और उसके इतिहास तथा तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दशाका विस्तृत वर्णन किया है।

नूरजहाँ—सम्राट् जहाँगीरकी पत्नी। उसका मूल नाम मेहरुन्निसा था। जब उसका पिता मिर्जा गयासबेग, जो फारसका निवासी था, अपने भाग्यकी परीक्षा करने भारत आ रहा था, तभी मार्गमें नूरजहाँका जन्म कंदहारमें हुआ। उसका पिता गयासबेग अकबरके दरबारमें एक उच्च पद पानेमें सफल हुआ और १६०५ ई० में जहाँगीरके राज्यारोहणके वर्ष ही वह मालमंत्री नियुक्त हो गया। उसे एतमादुद्दौलाकी उपाधि दी गयी। सत्रह वर्षकी अवस्थामें मेहरुन्निसाका विवाह अलीकुली नामक एक साहसी ईरानी नवयुवकसे हुआ, जिसे जहाँगीरके राज्यकालके प्रारम्भमें शेर अफगनकी उपाधि और बर्दवानकी जागीर दी गयी थी। १६०७ ई० में जहाँगीरके दूतोंने शेर अफगनको एक युद्धमें मार डाला और विधवा मेहरुन्निसाको दिल्लीके शाही हरममें लाया गया, जहाँ वह सम्राट् अकबरकी विधवा रानी सलीमा बेगमकी परिचारिका बनी। उसके सौन्दर्यके प्रति आकर्षित होकर जहाँगीरने १६११ई० में उससे विवाह कर लिया। उसका नाम बदलकर पहले नूरमहल और उपरांत नूरजहाँ रखा गया।

असाधारण सुन्दरी होनेके अतिरिक्त नूरजहाँ बुद्धिमती, शील और विवेकसंपन्न भी थी। उसकी साहित्य, कविता और ललित कलाओंमें विशेष रुचि थी। उसका लक्ष्यवेध अचूक होता था। १६१९ ई० में उसने फतेहपुर सीकरीमें एक ही गोलीसे शेरको मार दिया था। इन समस्त गुणोंके कारण उसने अपने पतिपर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर लिया, फलतः जहाँगीरके शासनका प्रायः समस्त भार उसीपर आ गया। सिक्कोंपर भी उसका नाम खोदा जाने लगा और वह महलमें ही दरबार करने लगी। उसके पिता एतमादुद्दौला और भाई आसफ खाँको मुगल दरबारमें उच्च पद प्रदान किया गया और उसकी

भतीजीका विवाह, जो आगे चलकर मुमताजमहलके नामसे प्रसिद्ध हुई, शाहजादा खुर्रम (दे०)से हो गया। उसने पहले पतिसे उत्पन्न अपनी पुत्रीका विवाह जहाँगीरके सबसे छोटे पुत्र शाहजादा शहरयारसे कर दिया और चूंकि उसकी जहाँगीरसे कोई संतान न हुई थी, अतः शहरयारको ही जहाँगीरके उपरांत वह सिंहासनासीन कराना चाहती थी। महाबत खां और शाहजादा खुर्रमने उसके प्रभाव और शक्तिको कम करनेका प्रयास किया, किन्तु नूरजहाँने अपनी बुद्धिमत्ता और कार्यपटुतासे उनके प्रारम्भिक प्रयासोंको विफल कर दिया।

जहाँगीरके जीवनकालमें वह सर्वशक्तिसम्पन्न रही, किन्तु १६२७ ई० में जहाँगीरकी मृत्युके उपरांत उसकी राजनीतिक प्रभुता नष्ट हो गयी और उसने १६४५ ई० में मृत्यु पर्यन्त तकका शेष जीवन लाहौरमें बिताया। उसकी कलात्मक रुचिका प्रमाण उस भव्य एवं आकर्षक मकबरेमें उपलब्ध है, जिसे उसने अपने पिता एतमादुद्दौलाके अस्थि-अवशेषोंपर आगरेमें बनवाया था। कलाविदोंके अनुसार यह मकबरा बारीक पच्चीकारी और साजसज्जाकी दृष्टिसे अनुपम है।

नेकसियर—औरंगजेब (दे०)का पौत्र और उसके चतुर्थ पुत्र शाहजादा अकबरका पुत्र। वह उन पाँच कठपुतली बादशाहोंमेंसे तीसरा था, जिसे सैयद बन्धुओं (दे०)ने १७१६ ई० में दिल्लीमें सिंहासनासीन किया था। वह केवल थोड़े दिनोंके लिए ही बादशाह बना और मुहम्मद इब्राहीमको गद्दीपर बैठानेके लिए सैयद बंधुओंने उसकी हत्या करवा दी।

नेगापट्टम् (नागपत्तनम्)—भारतके पूर्वी समुद्रतटपर एक प्रसिद्ध नगर तथा बन्दरगाह। डच लोगोंने यहाँ अपनी एक बस्ती और व्यापार-केन्द्र स्थापित किया था, जिसपर अंग्रेजोंने १७८१ ई०में अधिकार कर लिया।

नेपाल—भारतकी उत्तरी सीमाके अंतर्गत पश्चिममें सतलज नदीसे पूर्वमें सिक्किम तक लगभग ५०० मील फैला हुआ स्वतंत्र राज्य। इसकी राजधानी काठमांडू है। तीसरी शताब्दी ई० पू० में यह भूभाग अशोकके साम्राज्यका एक अंग था और चौथी शताब्दी ई० में नेपाल राज्य सम्राट् समुद्रगुप्तकी सार्वभौम सत्ता स्वीकार करता था। सातवीं शताब्दीमें इसपर तिब्बतका आधिपत्य हो गया। उपरांत इस देशमें आंतरिक संघर्षोंके कारण अत्यधिक रक्तपात हुआ। ग्यारहवीं शताब्दीमें नेपालमें ठाकुरीवंशके राजा राज्य करते थे। इसके बाद जब नेपालमें मल्लवंश, जिसका सबसे प्रसिद्ध शासक यक्षमल्ल (लगभग १४२६ से १४७५ ई०) था, राज्य कर रहा था, मिथिलाके शासक नान्यदेवने नेपालपर अपनी नाममात्रकी प्रभुता स्थापित कर ली। यक्षमल्लने मृत्युके पूर्व ही राज्यका बँटवारा अपने पुत्रों और पुत्रियोंमें कर दिया था। इस विभाजनके फलस्वरूप नेपाल, काठमांडू तथा भातगाँवके दो परस्पर प्रतिद्वन्द्वी राज्योंमें बँट गया।

इन आंतरिक झगड़ोंका लाभ उठाकर पश्चिमी हिमालयके प्रदेशोंमें बसनेवाली गोरखा जातिने १७६८ ई० में नेपालपर अधिकार कर लिया। शनैः-शनैः गोरखाओंने अपनी सैनिक शक्तिमें वृद्धि कर नेपालको एक शक्तिशाली राज्य बना दिया। १९वीं शताब्दीमें उन्होंने अपने राज्यकी दक्षिणी सीमा बढ़ाकर ब्रिटिश भारतकी उत्तरी सीमासे मिला दी। सीमा सामीप्यके कारण १८१४–१५ ई० में नेपाल और अंग्रेजोंमें युद्ध हुआ, इस गोरखा युद्ध (दे०)के उपरांत दोनों पक्षोंमें सुगौली (दे०)की संधि हुई, जिसके अनुसार नेपालने अपने राज्यके कुछ भूभाग ब्रिटिश सरकारको दे दिये। संधिकी एक धाराके अनुसार नेपालकी वैदेशिक नीति भारतकी ब्रिटिश सरकारके द्वारा नियंत्रित होती रही। इस प्रकार कुछ प्रतिबंधोंके साथ नेपाल स्वतंत्र देश बना रहा। नेपालके बहुसंख्यक लोग हिन्दू धर्मके अनुयायी हैं और अल्पसंख्यामें लोग बौद्ध धर्मके विकृत रूपके अनुयायी हैं। नेपालमें संस्कृतके बहुतसे हस्तलिखित महत्त्वपूर्ण ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं। नेपालके वर्तमान शासक महाराज वीरेन्द्र हैं। उनके पिता स्वर्गीय महाराजा महेन्द्रने नेपालमें एक नया संविधान प्रचलित किया था।

नेपियर, सर चार्ल्स जेम्स (१७८२–१८५३)—एक प्रसिद्ध सेनानायक एवं राजनीतिज्ञ। यूरोपके युद्धोंमें, अपनी सैनिक योग्यताका परिचय देनेके उपरान्त, उसे १८४२ई० में भारतवर्षके सिंध प्रदेशमें भारतीय और ब्रिटिश सेनाके संचालनका भार सौंपा गया। वह स्वभावसे साम्राज्यवादी मनोवृत्तिका तथा आक्रामक नीतिका समर्थक था। पदभार सँभालते ही उसने सिंधके लोगों और वहाँके अमीरों (दे०)के न्यायोचित अधिकारों की उपेक्षा करके समूचे प्रदेशको जीतनेका संकल्प किया। अपनी आक्रामक नीतिके आधार-पर उसने जानबूझकर सिंधके अमीरोंसे युद्ध ठाना। १८४३ ई० में उसने मियानीके युद्ध (दे०)में अमीरोंको परास्त किया और पुनः हैदराबादके युद्ध (दे०)में उनकी समस्त सैन्य शक्ति नष्ट कर दी। उपरान्त वह १८४७ ई० तक सिंध प्रदेशपर एक निरंकुश किन्तु योग्य शासककी भाँति हुकूमत करता रहा और एक महान् सेनानायकका यश उपार्जित कर इंग्लैण्ड वापस लौट गया। चिलियानवालाके

प्रसिद्ध युद्ध (दे०)के उपरान्त, जिसमें सिखों द्वारा ब्रिटिश सेना लगभग पराजित हो गयी थी, नेपियरको ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी सेनाके सर्वोच्च सेनाधिकारीके रूपमें पुनः भारत बुलाया गया। किन्तु उसके भारत आनेके पूर्व ही अंग्रेजोंकी विजय तथा सिख युद्धकी समाप्ति हो चुकी थी। भारत आनेपर उसने कम्पनीकी सेनाओंके पुनर्गठनपर विशेष ध्यान दिया परन्तु कम्पनीकी सेवामें रत भारतीय सैनिकोंके भत्ते सम्बन्धी नियमोंमें परिवर्तन कर देनेके लिए उसे तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजीकी भर्त्सना सहनी पड़ी। फलतः उसने त्यागपत्र प्रेषित कर दिया और इंग्लैण्ड लौट गया। यद्यपि नेपियर योग्य सेनानायक था, तथापि एक राजनीतिज्ञके रूपमें वह औचित्य-अनौचित्यपर ध्यान न देनेवाला तथा झगड़ालू प्रकृतिका व्यक्ति भी था। उसे १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोहका पूर्वाभास हो गया था। उसने तत्कालीन भारत सरकारके प्रशासकीय एवं सैनिक दोषोंपर एक पुस्तक भी लिखी थी।

नेहरू, पण्डित जवाहरलाल (१८८९–१९६४)–भारतीय स्वतंत्रता संग्रामके महान् सेनानी एवं स्वतंत्र भारतके प्रथम प्रधान मंत्री। जन्म इलाहाबादमें १४ नवम्बर १८८९ ई० को हुआ। वे पं० मोतीलाल नेहरू और श्रीमती स्वरूप रानीके एकमात्र पुत्र थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा घरपर ही हुई और १५ वर्षकी उम्रमें वे इंग्लैण्डके हैरो स्कूल भेजे गये। वहाँ (हैरो)से ट्रिनिटी कालेजमें दाखिल किये गये और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयसे स्नातक हुए। उनके विषय रसायनशास्त्र, भूगर्भ विद्या और वनस्पति शास्त्र थे। १९१२ ई० में वे बैरिस्टर बने और उसी वर्ष भारत लौटकर उन्होंने इलाहाबादमें वकालत प्रारम्भ की। वकालतमें उनकी विशेष रुचि न थी और शीघ्र ही वे भारतीय राजनीतिमें भाग लेने लगे। १९१२ ई० में उन्होंने बाँकीपुर (बिहार)में होनेवाले भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अधिवेशनमें प्रतिनिधिके रूपमें भाग लिया और १९१६ ई० के लखनऊ अधिवेशनमें वे सर्वप्रथम महात्मा गाँधीके सम्पर्कमें आये। उसी वर्ष उन्होंने कुमारी कमला कौलसे विवाह किया, जिनसे उन्हें एक पुत्री इन्दिरा, जो आजकल भारतकी प्रधान मंत्री हैं, तथा एक पुत्र प्राप्त हुआ, जिसकी शीघ्र ही मृत्यु हो गयी। समयके साथ-साथ पं० नेहरूकी रुचि भारतीय राजनीतिमें बढ़ती गयी। जालियाँवाला बाग हत्याकांडकी जाँचमें देशबन्धु चितरंजनदास एवं महात्मा गाँधीके सहयोगी रहे और १९२१ के असहयोग आंदोलनमें तो महात्मा गाँधीके अत्यधिक निकट सम्पर्कमें आ गये। यह सम्बन्ध समयकी गतिके साथ-साथ दृढ़तर होता गया और उसकी समाप्ति केवल महात्मा गाँधी जीकी मृत्युसे ही हुई।

असहयोग आंदोलनमें वे पहली बार जेल गये। उनके जीवनकालके नौ वर्ष जेलमें ही बीते। उन्होंने कुल नौ बार जेलयात्रा की। साइमन कमीशनके विरुद्ध लखनऊके प्रदर्शनमें उन्होंने भाग लिया। एक अहिंसात्मक सत्याग्रही होनेपर भी उन्हें पुलिसकी लाठियोंकी गहरी मार सहनी पड़ी। १९२८ ई० में वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके महामंत्री बने और १९२९ के लाहौर अधिवेशनमें उसके अध्यक्ष चुने गये। इसी ऐतिहासिक अधिवेशनमें कांग्रेसने पूर्ण स्वराज्यका प्रस्ताव पारित किया था। वे पुनः १९३६ तथा १९४६ में इसके अध्यक्ष हुए और १९५१ से १९५४ तकके प्रत्येक अधिवेशनमें कांग्रेस अध्यक्ष चुने जाते रहे। १९५८ ई० में उनकी पुत्री इन्दिरा (गाँधी) भी उसी अध्यक्ष पदपर आसीन हुई, जिस पदको उनके पिता एवं पितामह (पं० मोतीलाल नेहरू) सुशोभित कर चुके थे।

१९२९ के बाद पं० नेहरू भारतीय राष्ट्रीय आंदोलनके अग्रणी नेता रहे। १९३० ई० में सविनय अवज्ञा आंदोलनमें उन्हें ६ मासका कारागार-दण्ड मिला और वहाँसे मुक्त होनेके केवल ८ दिन बाद ही उन्हें धारा १४४ भंग करनेके अभियोगमें पुनः बन्दी बनाया गया तथा ३० माहका कारागार-दण्ड मिला। किन्तु एक वर्ष बाद ही उन्हें मुक्त कर दिया गया। कारागारसे छूटनेके १२ दिन बाद ही उनके पिता पं० मोतीलाल नेहरू की १९३१ ई० में मृत्यु हो गयी। उसके उपरान्त जेलयात्राओं तथा परिवारके प्रियजनोंके बिछोहका ताँता-सा लगा रहा। उनकी माता स्वरूप रानीजी तथा पत्नी कमलाजी गंभीर रूपसे अस्वस्थ थीं। माँ पक्षाघातसे तथा पत्नी राजयक्ष्मासे पीड़ित थीं। जब वे सातवीं बार कारागारमें थे, तभी जर्मनीमें उनकी पत्नी मरणासन्न दशामें पहुँच गयीं और सरकारने अन्तिम क्षणपर उन्हें पत्नीकी मृत्युशैय्याके निकट पहुँचनेकी अनुमति दे दी। कमलाजीकी मृत्युके बाद ही १९३८ ई० में उनकी माताकी मृत्यु हो गयी। उपरान्त उन्होंने स्पेन, चेकोस्लोवाकिया और चुंगकिंग (चीन)का भ्रमण किया। किन्तु भारतकी राजनीतिक गतिविधियोंसे उनका निकट सम्पर्क बराबर बना रहा। १९३९ ई० में महात्मा गाँधीके विरोध करनेपर भी नेताजी सुभाषचन्द्र बसुके भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके दूसरी बार अध्यक्ष चुने जानेपर, उनमें और नेताजीमें गंभीर सैद्धान्तिक मतभेद हो गया और उन्होंने उनके द्वारा गठित वर्किंग कमेटीसे त्यागपत्र दे दिया। १९४० ई० में महात्माजी द्वारा निर्देशित व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन-

में भाग लेनेके कारण उन्हें ४ वर्षोंका कारागार-दण्ड मिला, किन्तु एक वर्ष बाद ही छोड़ दिये गये। उसके उपरान्त पर्ल हार्बरपर हवाई हमलेकी घटना घटी, जिसके फलस्वरूप जापान और अमेरिका भी द्वितीय विश्व महायुद्धमें कूद पड़े। युद्ध क्रमशः भारतकी पूर्वी सीमाओंके निकट पहुँच गया।

पंडित नेहरूके लिए वे दिन घोर मानसिक पीड़ाके थे। एक ओर वे धुरी राष्ट्रों (जर्मनी, इटली और जापान) की पराजय भी चाहते थे और दूसरी ओर मित्र राष्ट्रों तथा अंग्रेजोंकी विजयसे भारतके भविष्यको लेकर गंभीर रूपसे चिन्तित भी थे। अहिंसाके प्रश्नपर उनमें और महात्मा जीमें मतभेद था, क्योंकि गाँधीजी अहिंसाको जीवनका एक मार्ग मानते थे और पंडित नेहरू उसे केवल एक नीतिके रूपमें स्वीकार करनेके पक्षमें थे। अन्तमें उन्होंने महात्मा गाँधीके दृष्टिकोणको ही अपनाया और अगस्त १९४२ ई०में उनके द्वारा संचालित 'भारत छोड़ो' आंदोलनमें सक्रिय भाग लिया। अन्य भारतीय नेताओंके साथ वे भी बन्दी बना लिये गये। इस नवीं बार वे सबसे अधिक दिनों तक कारागारमें रहे। जून १९४५ ई०में उन्हें मुक्त कर दिया गया। उपरान्त उन्होंने मुसलिम लीगके साथ ब्रिटिश मंत्रिमंडलीय योजना (कैबिनेट मिशन प्लान) पर पारस्परिक विचार-विनिमय किया, पर वार्ताएँ असफल रहीं। २ सितम्बर १९४६ ई० को तत्कालीन वाइसरायके आमंत्रण-पर जो अन्तरिम सरकार बनी, उसके वे प्रधान चुने गये। मुस्लिम लीगको इस अन्तरिम सरकारमें सम्मिलित करनेमें उनको सफलता तो मिली, किन्तु जिन्ना (दे०)के नेतृत्वमें लीगसे कोई ठोस एवं विश्वसनीय समझौता न हो सका। परिणामस्वरूप कांग्रेस, जिसमें हिन्दू बहुसंख्यामें थे और लीग, जो पूर्णतया मुसलमानोंकी संस्था थी, एक दूसरेसे दूर खिंचती गयीं। सम्पूर्ण देश, विशेषतः पंजाब और बंगालमें हिन्दू और मुसलमानोंका भयंकर रक्तपात हुआ।

इसी बीच लार्ड माउण्टबैटन भारतके वाइसराय नियुक्त हुए। प्रारंभमें कुछ विरोध और हिचकके उपरान्त पं० नेहरू वाइसरायके इस सुझावसे सहमत हो गये कि भारतमें स्वतंत्रता और आंतरिक शान्ति तभी संभव है जब देशका भारत और पाकिस्तानमें विभाजन हो जाय। ३ जून १९४७ ई० को पं० नेहरूने आकाशवाणीके माध्यमसे घोषणा की कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने देशके विभाजनकी योजना स्वीकार कर ली है। १५ अगस्त १९४७ ई० को वे स्वतंत्र भारतके प्रथम प्रधान-मंत्री बने। तब उनकी उम्रके ५८ वर्षोंमें ३ मास कम थे।

१७ वर्षों तक वे भारत सरकारके इस महत्त्वपूर्ण पदपर आसीन रहे और कार्यरत रहते हुए ही २७ मई १९६४ ई० को उनका देहान्त हो गया। विश्वके प्रमुख राजनीतिज्ञोंमें उनका एक विशिष्ट और सम्माननीय स्थान था। उन्होंने यूरोप और एशियाके सभी देशोंकी यात्राएँ की थीं। सभी देशोंमें, विशेषतः रूस और चीनमें भी, जहाँ वे १९५४ में गये थे, उनका भव्य स्वागत किया गया।

देशकी आन्तरिक समस्याओंको सुलझानेमें नेहरूके सम्मुख अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं। उनकी सरकारको सर्वप्रथम महात्मा गाँधीकी हत्याका आघात सहना पड़ा। कश्मीर और हैदराबादके जटिल प्रश्नोंके साथ-साथ शरणार्थियोंकी दीर्घकालिक तथा हृदयविदारक विकराल समस्याएँ भी समक्ष थीं। यद्यपि फ्रांसीसी औपनिवेशिक बस्तियोंकी समस्याओंका पारस्परिक समझौतेसे समाधान हो गया, तथापि पुर्तगाली बस्तियोंके भारतमें विलयन हेतु १९६१ ई० में सेनाका प्रयोग करना पड़ा। दक्षिणसे लेकर नागालैण्ड तक सम्पूर्ण देशमें संकीर्ण भाषावाद एवं साम्प्रदायिकतावादकी प्रवृत्तियाँ फिरसे उभरने लगीं और कहीं-कहीं तो इन प्रश्नोंने हिंसात्मक रूप धारण कर लिया। फिर भी नेहरू सरकार, सामान्यतः सम्पूर्ण देशमें शान्ति, सुव्यवस्था तथा जनमतपर आधारित उसका संवैधानिक स्वरूप बनाये रखनेमें समर्थ रही, जिससे स्वतंत्र भारतके नूतन इतिहासका श्रीगणेश हुआ। समुचित साधनोंका अभाव होते हुए भी उनके मंत्रिमंडल द्वारा तीन पंचवर्षीय योजनाओंके माध्यमसे देशके औद्योगिक एवं सामाजिक विकासकी महती योजना बनायी गयी, जिसके परिणाम यथेष्ट समय बीतनेपर ही दृष्टिगत होंगे।

वैदेशिक सम्बन्धोंमें पं० नेहरूने तटस्थताकी नीति अपनायी और आंग्ल-अमेरिकी तथा रूसी, दोनों ही गुटोंसे अलग रहे। उन्होंने दोनों ही गुटोंके देशोंसे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखे और समस्त अन्तर्राष्ट्रीय विवादोंको परस्पर विचार-विमर्श एवं शान्तिपूर्ण समझौतेसे सुलझानेपर बल दिया। उनके विचारों और आदर्शोंको भलीभाँति न समझनेके कारण कई बार उनकी तीव्र आलोचना भी हुई, पर मेक्सिकोकी सीनेटके एक सदस्यके शब्दोंमें 'वे सही-रूपसे विश्वमें शांति और सौहार्द्रके सच्चे नायक थे।' पाकिस्तानके साथ उन्होंने मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करनेका भरसक प्रयास किया और एक युद्ध-निषेध संधिका भी प्रस्ताव रखा, परन्तु सीटो और सेण्टोकी सदस्यता तथा अमरीका-से बिना माँगे ही प्राप्त अत्यधिक सैनिक सहायतासे प्रोत्सा-हित होकर पाकिस्तानने उस सन्धि-प्रस्तावको ठुकरा दिया।

इस प्रकार भारत और पाकिस्तानके सम्बन्धोंको सुधारनेमें पं० नेहरूके प्रयास असफल रहे। उन्हें सर्वाधिक आघात अक्टूबर १९६२ ई० में लगा, जब चीनने, जिसे भारतने बिना सैनिक अथवा अन्य किसी प्रकारके विरोधके तिब्बतपर बलपूर्वक अधिकार कर लेने दिया था, भारतीय सीमाके अंतर्गत घुसकर लद्दाख तथा उत्तरी पूर्वी सीमांचल प्रदेशों (नेफा)पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमणका कारण दीर्घकालसे चला आ रहा भारत-चीन सीमा-विवाद था।

पं० नेहरू तथा भारतके लिए यह आक्रमण अप्रत्याशित था। यद्यपि लद्दाखमें भारतीय सैनिकोंने चीनियोंको यथासंभव रोकनेका प्रयास किया, तथापि उत्तरी पूर्वी सीमामें चीनी सेनाएँ निरन्तर घुसती चली आयीं। वे आसाम प्रदेशको रौंद डालनेकी स्थितिमें थीं, पर नवम्बर १९६२ ई० में चीनने एकतरफा युद्धविरामकी घोषणा कर दी और नेफासे उसकी सेनाएँ लौटने लगीं। यद्यपि भारतने युद्ध-विराम स्वीकार नहीं किया, तथापि उसके सम्मुख युद्ध बन्द करनेके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय न था। देशभरमें भारतकी इस सैनिक एवं सामरिक तैयारीके अभावकी तीव्र आलोचना हुई। फलतः पं० नेहरूको अपने रक्षामंत्री कृष्ण मेननको हटाकर मंत्रिमंडलमें परिवर्तन करना पड़ा। उन्होंने विश्वके सभी देशोंसे सहायताकी अपील की और इंग्लैण्ड, अमरीका तथा रूसने भारतके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए तत्काल सहायताका वचन दिया। किन्तु आंग्ल-अमरीकी गुटने भारतकी इस विषम परिस्थितिका अनुचित लाभ उठानेके लिए पं० नेहरू-पर दबाव डालना प्रारम्भ किया कि वे भारत-पाकिस्तान-के बीच उन विवादग्रस्त क्षेत्रोंको जो भारतके अभिन्न भूभाग बन चुके थे, पाकिस्तानको देकर समझौता कर लें। किन्तु पंडित जी विपत्तियोंसे घबरानेवाले व्यक्ति न थे। वे आंग्ल-अमरीकी गुटकी चालोंमें न फँसे। उन्होंने देशवासियोंको चीनके साथ एक दीर्घकालीन संघर्षकी चेतावनी भी दी। दिसम्बर १९६२ ई० में अफ्रीका तथा एशियाके कुछ देशोंने कोलम्बो (श्रीलंका)की एक बैठक-में एक योजना तैयार की, जो 'कोलम्बो योजना'के नामसे विख्यात है और जिसमें भारत तथा चीनके सीमा-सम्बन्धी विवादोंको हल करनेके कुछ सुझाव थे। यद्यपि इस योजनाके कुछ सुझाव प्रत्यक्षरूपसे भारतके प्रति न्यायोचित न थे, तथापि पंडित नेहरूने उन्हें स्वीकार कर लिया, क्योंकि वे युद्ध अथवा संघर्षकी अपेक्षा शांतिमय ढंगसे इन विवादोंको समाप्त करना चाहते थे। किन्तु चीनने उन सुझावोंको स्वीकार न किया और सीमा-विवादका प्रश्न पण्डित नेहरूकी मृत्यु पर्यंत बना रहा।

पंडित नेहरू पहले राष्ट्राध्यक्ष थे, जिन्होंने १९६३ ई० में रूस, इंग्लैण्ड तथा अमेरिकाके बीच आंशिक परमाणविक परीक्षण-निषेध संधिपर हस्ताक्षर किये जानेका स्वागत किया। उपरान्त लोकसभाके कुछ उपचुनावोंमें कांग्रेसी उम्मीदवारोंकी विफलताके कारण कांग्रेस दलने उन्हें सुझाव दिया कि वे अपने मंत्रिमंडलका पुनर्गठन करें, ताकि कांग्रेसके कुछ गण्यमान्य नेता दलको पुनर्संगठित करनेमें अपना पूर्ण समय दे सकें। पंडित नेहरूने अपने मंत्रिमंडलके सदस्योंकी संख्या कम कर दी और श्री मोरारजी देसाई तथा श्री पाटिल सरीखे अपने पुराने सहयोगियोंका त्यागपत्र स्वीकार कर लिया। साथ ही उन्होंने एक छोटे तथा ठोस मंत्रिमंडलका गठन किया। जनवरी १९६४ ई० में जब वे भुवनेश्वर कांग्रेस अधिवेशनमें भाग ले रहे थे, तभी वे गंभीर रूपसे अस्वस्थ हो गये। यद्यपि कुछ दिनोंके लिए उनके स्वास्थ्यमें थोड़ा सुधार अवश्य हुआ, किन्तु २७ मई १९६४ ई० को दिल्लीमें उनका प्राणान्त हो गया।

पंडित नेहरू एक महान् राजनीतिज्ञ और प्रभाव-शाली वक्ता ही नहीं, ख्यातिलब्ध लेखक भी थे। उनकी आत्मकथा १९३६ ई० में प्रकाशित हुई और संसारके सभी देशोंमें उसका आदर हुआ। उनकी अन्य रचनाओंमें भारत और विश्व (India and the World), सोवियत रूस (Soviet Russia), विश्व इतिहासकी एक झलक (Glimpses of World History), भारतकी एकता (Unity of India) और स्वतंत्रता और उसके बाद (Independence and After) विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमेंसे अन्तिम दो पुस्तकें उनके फुटकर लेखों और भाषणोंके संग्रह हैं।

स्वतंत्रता सेनानीके रूपमें पंडित नेहरू स्वाधीन भारतीय गणतंत्रके मुख्य निर्माता थे, किन्तु राष्ट्रवादके प्रति उनका दृष्टिकोण व्यापक था। विश्वकी समस्त मानव जातिकी स्वतंत्रताके प्रति उन्हें प्रेम था। इसीलिए उन्होंने अफ्रीका, एशिया तथा दक्षिण अमरीकाके सभी स्वातंत्र्य आंदोलनोंके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की तथा उनका समर्थन भी किया। देश, वर्ग, वर्ण और जातिके भेदोंसे ऊपर उठकर उन्हें समस्त मानव जातिकी स्वतंत्रतामें गहरी निष्ठा थी। इसी प्रकार विश्व शांतिकी स्थापनाके प्रयासोंमें उन्हें अटूट विश्वास था और इस हेतु वे संयुक्त राष्ट्रसंघके प्रबल समर्थक थे। स्वेज नहर, कोरिया, लाओस, कांगो और वियतनाम सरीखी कई अन्तर्राष्ट्रीय

समस्याओंको उन्होंने शांतिपूर्ण वार्तासे सुलझानेका सुझाव दिया और विश्वने भी उनके विचारोंका आदर किया।

नेहरू, पण्डित मोतीलाल (१८६१-१९३१)—ख्यातिलब्ध देशभक्त. जन्म दिल्लीके एक काश्मीरी परिवारमें १८६१ ई० में। उन्होंने इलाहाबाद हाईकोर्टमें वकालत प्रारम्भ की और थोड़े ही समयमें समस्त उत्तरी भारतके बड़े वकीलोंमें उनकी गणना होने लगी। १९१९ ई० में माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्टके आधारपर किये गये शासन-सुधारोंके उपरान्त वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके आन्दोलनमें सम्मिलित हुए और उसका समर्थन करनेके लिए 'इण्डिपेण्डेण्ट' नामक एक दैनिक निकालना प्रारम्भ किया। १९२० ई०में असहयोग आन्दोलनमें सम्मिलित हुए और आर्थिक दृष्टिसे अपनी अत्यन्त लाभप्रद वकालत छोड़नेके साथ ही असेम्बली-की सदस्यतासे भी त्यागपत्र दे दिया। किन्तु कुछ ही समयके उपरान्त उन्होंने तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों पर पुनर्विचार करके देशबन्धु चितरंजन दास (दे०)के सहयोगसे कांग्रेसके अन्दर स्वराज्य पार्टीकी स्थापना की। १९२३ ई० में वे पुनः असेम्बलीके सदस्य चुने गये और वहाँ स्वराज्य पार्टीके नेता बने।

प्रभावशाली वक्ता होनेके साथ ही वे कुशल संसदीय नेता भी थे। परिणामस्वरूप अल्पसंख्यक होते हुए भी उनकी स्वराज्य पार्टीने तत्कालीन असेम्बलीमें अनेक उल्लेखनीय सफलताएँ प्राप्त कीं। वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके दो बार, प्रथम बार १९१९ ई० कलकत्तामें और दूसरी बार १९२८ ई० में अमृतसरमें, अध्यक्ष बने और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ओरसे १९२८ ई० में भावी भारतीय संविधानकी एक रूपरेखा तैयार की, जो 'नेहरू रिपोर्ट'के नामसे विख्यात है। इस रिपोर्टमें उन्होंने भारतवर्षके लिए तत्काल औपनिवेशिक स्वराज्य दिये जाने-की संस्तुति की थी। किन्तु जब तत्कालीन भारत सरकारने उस रिपोर्टको अस्वीकार कर दिया, तब पं० मोतीलालने १९३० के असहयोग आंदोलनमें सक्रिय भाग लिया। वे कारागार भेज दिये गये। जेलयात्राका उनके स्वास्थ्यपर बड़ा ही सांघातिक प्रभाव पड़ा और १९३१ ई० में, एक वर्ष उपरान्त ही उनकी मृत्यु हो गयी। पं० मोतीलाल भारतके एक सच्चे सपूत तो थे ही, उन्होंने देशको पंडित जवाहरलाल नेहरू सरीखा पुत्ररत्न भी दिया।

नौनिहालसिंह—महाराज रणजीतसिंह (दे०)के पुत्र एवं उत्तराधिकारी खड़गसिंह (दे०)का पुत्र। अपने पिता खड़गसिंहकी हत्याके एक दिन बाद ही एक दुर्घटनामें मार्च १८४० ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

नौमुस्लिम—आक्रमणकारी मंगोलोंको, जिन्होंने १२९२ ई०के आसपास इस्लामधर्म ग्रहण कर लिया और जिन्हें किलोखेड़ी तथा दिल्लीके आसपास बसा दिया गया था, 'नौमुस्लिम' कहा जाता था। लेकिन उनको बसा दिये जानेके बाद भी मंगोलोंके आक्रमण होते रहे, अतएव १२९७ ई० में तत्कालीन दिल्ली शासक अलाउद्दीन खिलजी (दे०)ने इन सभी नौमुस्लिमोंकी हत्या करा दी, क्योंकि उसे इनपर मंगोलोंसे षड्यंत्र रचनेका संदेह हो गया था।

नौसेना विद्रोह—१९४७ ई० में बम्बईके बन्दरगाहमें स्थित भारतीय नौसेनाने विद्रोह कर दिया। यद्यपि उसके विद्रोह-का बलपूर्वक दमन कर दिया गया, तथापि इससे स्पष्ट हो गया कि भारतीय नौसैनिकोंमें भी राजनीतिक असंतोष फैल गया है और ब्रिटिश सरकारको सेनाके इस महत्त्व-पूर्ण भागसे निष्ठा एवं आज्ञापालनकी आशा नहीं करनी चाहिए।

प

पंगुलकी लड़ाई—१४२० ई० में बहमनी सुल्तान फीरोजशाह और विजयनगरके राजा देव रायके बीच हुई। इस लड़ाईमें सुल्तान हार गया और विजयनगरकी सेनाने बहमनी राज्यके कुछ पूर्वी तथा दक्षिणी जिलोंपर अधिकार कर लिया। इस हारसे सुल्तान बहुत खिन्न हो गया, उसने शासनसे हाथ खींच लिया और कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो गयी।

पंजदेह—अफगान सीमाका एक गाँव तथा जिला और सामरिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण मर्व (दे०) नगरसे सौ मील दक्षिणमें स्थित। १८८४ ई०में रूसियोंने मर्वपर अधिकार कर लिया, जो अफगानिस्तानकी सीमासे १५० मीलकी दूरी पर स्थित है। कुछ अंग्रेज सैनिक अधिकारी तथा राज-नीतिज्ञ झूठमूठ इस नगरको बहुत अधिक सामरिक महत्त्व प्रदान कर रहे थे। अतएव मर्वपर रूसका अधिकार हो जानेसे इंग्लैण्डमें भारी खलबली मच गयी। १८८५ ई० में रूसी अफगान सीमाकी ओर और अधिक आगे बढ़े और उन्होंने मार्च १८८५ ई० में अफगानोंको पंजदेहसे निकाल दिया। इससे इंग्लैण्डमें बेचैनी और बढ़ गयी। अंग्रेजोंको अफगानिस्तानपर रूसी हमलेका भय होने लगा। अतएव उन्होंने अफगानिस्तानके मित्र तथा रक्षक होनेका नाटक करके, किंतु वास्तवमें अफगानिस्तान होकर भारतकी

दिशामें आगे बढ़नेसे रोकनेके लिए, रूसियोंकी इस कार-रवाईपर गहरी नाराजी प्रकट की और इस बातकी आशंका की जाने लगी कि पंजदेहके प्रश्नको लेकर इंग्लैण्ड और रूसमें लड़ाई छिड़ जायगी। अमीर अब्दुर्रहमान (दे०) की बुद्धिमत्तासे यह लड़ाई टल गयी। उसने दूरदर्शितासे यह समझ लिया था कि यदि पंजदेहके प्रश्नपर इंग्लैण्ड और रूसके बीच लड़ाई हुई तो अफगानिस्तान युद्धभूमि बन जायगा और वह इस विपत्तिको दूर रखना चाहता था। उसने घोषणा की कि यह निश्चय नहीं है कि पंजदेह वास्तवमें अफगानिस्तानका हिस्सा है और यदि पंजदेह और अफगानिस्तानके बीच जुल्फिकार दर्रेपर उसका अधिकार मान लिया जाय तो उसे संतोष हो जायगा। अमीर अब्दुर्रहमानके इस समझौतापरक रवैयेसे ब्रिटिश सरकारको भी अपना रवैया बदलना पड़ा। इंग्लैण्ड और रूसका संयुक्त सीमा कमीशन नियुक्त किया गया। उसने जिस सीमा-रेखाकी सिफारिश की, उसे १८८७ ई० में स्वीकार कर लिया गया। इस सीमारेखाके अनुसार पंजदेहपर रूसियोंका अधिकार और जुल्फिकार दर्रेपर अफगानिस्तानका अधिकार मान लिया गया। इस सिफा-रिशके अनुसार पामीरकी दिशामें रूसियोंके बढ़ावपर कोई रोकटोक नहीं लगायी गयी।

पंजाब–पाँच नदियोंका देश। पाँच नदियाँ हैं झेलम, चिनाब, रावी, व्यास तथा सतलज, जो सभी सिंधुमें मिल जाती हैं। यह त्रिकोणात्मक प्रदेश है। सिंधु और सतलज इसकी दो भुजाएँ और हिमालय इसका आधार है। उत्तर-पश्चिममें यह हिमालयके उस पारके देशोंके साथ चार दर्रोंसे जुड़ा हुआ है, जिनमें खैबर दर्रा मुख्य है। अतएव पश्चिमसे सभी युगोंमें सभी जातियोंके लोग यहाँ आकर बसते रहे हैं। इसे जातियोंका संगम-स्थल कहा जा सकता है। समुद्र मार्गसे यूरोपीयोंके आगमनसे पूर्व सभी आक्रमणकारी पंजाब होकर भारतीय उपमहाद्वीपमें प्रवेश करते रहे हैं और उसकी आबादीपर अपने चिह्न छोड़ते रहे हैं। पंजाबमें अत्यंत प्राचीन कालसे सभ्यता फलती-फूलती रही है, जिसके अवशेष हालमें सिंधु घाटी सभ्यता (दे०)के रूपमें मिले हैं। ऐतिहासिक कालमें पंजाब पांचवी शताब्दी ई० पू० में हखामनी वंशके सम्राट् दारयबहु प्रथम (दे०)के साम्राज्यमें सम्मिलित था। ३२६ ई० पू० में जब मकदूनियाके राजा सिकन्दरने हमला किया, पंजाब कई छोटे-छोटे राज्योंमें बँटा हुआ था, जिन्हें सिकन्दरने जीत लिया। परंतु वह पंजाबमें अपने पैर नहीं जमा सका और उसकी मृत्युके बाद ही पंजाब मौर्य साम्राज्य (दे०)का एक भाग बन गया। मौर्य साम्राज्य-के अपकर्ष तथा पतनके बाद पंजाबपर क्रमिक रीतिसे बाख्त्री (बैक्ट्रिया)के यूनानियों (यवनों), शकों, कुषाणों तथा हूणोंने आक्रमण किया और उसपर अधिकार कर लिया।

पंजाबका पहला मुसलमान विजेता गजनीका सुल्तान महमूद (९७१–१०३० ई०) (दे०) था, जिसके वंशजों-से इसे ११८६ ई० में शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने जीत लिया। १२०६ ई० से यह दिल्ली सल्तनतके अधीन रहा और उसके बाद अठारहवीं शताब्दीके मध्य तक मुगल साम्राज्यका भाग रहा। तत्पश्चात् इसपर अधिकार करनेके लिए अफगानों, मराठों तथा सिखोंमें त्रिपक्षीय संघर्ष चलता रहा। १७६१ ई० में पानीपतकी तीसरी लड़ाई (दे०) में अफगान अहमदशाह अब्दालीकी विजयसे मराठोंकी राज्यशक्ति समाप्त हो गयी। इसके बाद ही अहमदशाह अब्दालीकी भी मृत्यु हो गयी और सिखोंकी राज्यशक्तिका उदय होने लगा। रणजीतसिंह (१७९०-१८३९ ई०)ने पंजाबमें शक्तिशाली स्वतंत्र सिख राज्यकी स्थापना की। परंतु उसकी मृत्युके बाद ही राज्यमें अव्यवस्था फैल गयी और सिखों और अंग्रेजोंके बीच दो लड़ाइयोंके फलस्वरूप १८४९ ई० में पंजाब ब्रिटिश साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया। यह १९४७ ई० तक ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यके एक प्रांतके रूपमें फलता-फूलता रहा। १९४७ ई० में भारतके स्वाधीन होनेपर पंजाब दो भागोंमें बाँट दिया गया। मुसलिम-बहुल पश्चिमी पंजाबको पाकिस्तान (दे०)में सम्मिलित कर लिया गया और पूर्वी पंजाब, जहाँ हिन्दुओंकी जनसंख्या अधिक थी, भारतका भाग बना रहा।

पंजाब भूमि-बेदखली कानून–१९०० ई० में वाइसराय लार्ड कर्जनकी प्रेरणासे बनाया गया। इस कानूनमें महाजनोंके पास भूमि गिरवी रख देनेवाले किसानोंको बेदखलीसे सुरक्षा प्रदान की गयी। उसमें व्यवस्था की गयी कि वंश-परंपरासे भूमि जोतनेवाले किसानोंको कर्जेकी अदायगी-के लिए अदालतसे प्राप्त की गयी डिगरीके आधारपर भूमिसे बेदखल नहीं किया जा सकेगा। इसके फलस्वरूप पंजाबके किसानोंको भूमिहीन बननेसे रोक दिया गया।

पंडितराव–शिवाजी (दे०)के अष्ट प्रधानोंमेंसे एक। वह राजपुरोहित था और मराठा राज्यका धर्म विभाग उनके अधीन था।

पंडित, श्रीमती विजयालक्ष्मी–जन्म १९०० ई० में। पंडित मोतीलाल नेहरू (दे०)की पुत्री तथा पंडित जवाहरलाल

नेहरू (दे०)की बहिन। भारतके राष्ट्रीय आंदोलन तथा स्वाधीनता संग्राममें मुख्य भाग लिया। वक्तृत्व कलामें दक्ष हैं। भारतकी स्वाधीनताके बाद अनेक उच्च पदोंपर रह चुकी हैं। इंग्लैण्डमें भारतकी उच्चायुक्त (१९५५–६१ ई०), सोवियत संघ (१९४७–४९ ई०) तथा अमरीका (१९४९–५१ ई०)में भारतकी राजदूत रह चुकी हैं। १९५४ ई० में संयुक्त राष्ट्र जनरल असेम्बली-की अध्यक्ष रहीं। १९६२ ई० में महाराष्ट्रकी राज्यपाल नियुक्त हुईं। देशकी राजनीतिमें सक्रिय भाग लेनेके लिए अक्तूबर १९६४ ई० में इस पदसे इस्तीफा दे दिया और पंडित नेहरूके फूलपुर निर्वाचन क्षेत्रसे लोकसभाकी सदस्य चुनी गयीं। १९६७ ई० में चौथे आम चुनावमें पुनः इसी क्षेत्रसे विजयी हुईं। १९७१ ई० में राजनीतिसे अवकाश ग्रहण कर लिया।

पंडिता रमाबाई (१८५८–१९२२ ई०)—उन्नीसवीं शताब्दी-की उन थोड़ी-सी भारतीय महिलाओंमें मुख्य, जिन्होंने पश्चिमी शिक्षा प्राप्त की। वे बाल्यावस्थामें ही विधवा हो गयी थीं। उन्होंने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया और एक विधवाश्रमकी स्थापना की। उन्होंने अमरीकामें व्याख्यान दिये और भारतीय महिलाओं, विशेषरूपसे हिन्दू विधवाओंके लिए एक शिक्षण संस्थान खोलनेके निमित्त धन-संग्रहका प्रयास किया। पश्चिमी देशोंमें उनकी विद्वत्ता एवं वाग्मिताकी बड़ी प्रसिद्धि थी और उन्हें 'सरस्वती'की उपाधिसे विभूषित किया जाता था।

पंत, गोविन्दवल्लभ—भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके एक प्रमुख सदस्य तथा नेता। स्वाधीनताके बाद वे उत्तर प्रदेशके मुख्य मंत्री हुए और पंडित नेहरूके केन्द्रीय मंत्रिमंडलमें गृह मंत्रीके रूपमें सम्मिलित होने तक प्रांतका प्रशासन बड़ी योग्यताके साथ चलाते रहे। उन्होंने देशकी महती सेवा की और जिस समय उनकी मृत्यु हुई, उस समय भी वे केन्द्रीय गृह मंत्रीका पदभार संभाले हुए थे।

पंत प्रतिनिधि—यह पद पेशवा (दे०) से भी ऊँचा था। यह नया पद शिवाजीके दूसरे पुत्र राजाराम (दे०)ने उस समय बनाया जब उसने जिंजीके किलेमें शरण ले रखी थी। शाहू (दे०)के राज्यकालमें पंत प्रतिनिधिके पदका महत्त्व घट गया और पेशवाके पदका महत्त्व बढ़ गया।

पटना—भारतीय गणराज्यके बिहार राज्यकी राजधानी। गंगाके तटपर प्राचीन पाटलिपुत्र (दे०) नगरीके निकट स्थित है। ईस्ट इंडिया कम्पनीने पटनामें एक व्यापारिक केन्द्र खोल रखा था और मि० एलिस उसका प्रधान था। १७६३ ई० में उसने बंगालके नवाब मीर कासिमसे पटना छीन लेनेकी कोशिश की, जिसमें उसे सफलता नहीं मिली। इसके फलस्वरूप अंग्रेजों और मीर कासिमके बीच युद्ध शुरू हो गया। मीर कासिमके हार जानेपर तथा ईस्ट इंडिया कम्पनीको दीवानी मिल जानेपर पटना बिहारके पटना डिवीजनका मुख्यालय बना दिया गया। १९१२ ई० में यह बिहार तथा उड़ीसाके नवनिर्मित प्रांतकी राजधानी बना दिया गया और यहां पृथक् उच्च न्यायालय तथा विश्वविद्यालयकी स्थापना कर दी गयी।

पटियाला—एक नगर और पंजाबकी एक भूतपूर्व देशी रियासत थी। दिल्लीसे लगभग १२५ मील उत्तर-पश्चिममें स्थित है। रियासतकी स्थापना १७६३ ई० में सिखोंकी फुलकियां मिस्लके एक सरदारने की थी। रणजीतसिंह (दे०)के राज्यप्रसारके भयसे पटियाला राज्य १८०९ ई० में अंग्रेजों-का रक्षित राज्य बन गया और जुलाई १९४८ ई० में भारत संघमें विलयन होने तक रक्षित राज्य बना रहा। यह पहले पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य संघ (जिसे संक्षेपमें पेप्सू कहते थे) का हिस्सा था, किंतु १९५६ ई० के राज्य पुनर्गठन अधिनियमके अंतर्गत इसे पंजाब राज्यका एक हिस्सा बना दिया गया। ब्रिटिश शासन कालमें पटियाला नरेश, महाराज भूपेन्द्रसिंह (१८९१–१९३८ ई०)ने पटियाला रियासतकी काफी उन्नति की, नरेन्द्रमंडलकी स्थापनामें भारी योग दिया और १९२५ ई० में राष्ट्रसंघ असेम्बलीमें देशी राजाओंका प्रतिनिधित्व किया।

पटेल, वल्लभभाई, सरदार (१८७५–१९५० ई०)—एक प्रसिद्ध देशभक्त तथा राजनेता, जन्म ३१ अक्तूबर १८७५ ई० को गुजरातमें। उन्होंने गोधरा नगरमें वकालतसे जीवन आरम्भ किया। बादमें उन्होंने इंग्लैण्ड जाकर बैरिस्टरी पास की और लौटकर अहमदाबादमें रहने लगे। महात्मा गांधीसे जब पहली बार मिले तो अहमदाबादमें ही बैरिस्टर थे। इसके बाद ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसमें सम्मिलित हो गये और बारडोली सत्याग्रहका नेतृत्व किया और जेल गये। बारडोलीके किसानोंका जिस कुशलतासे संगठन किया, उसके फलस्वरूप वे गांधीजीके अधिक निकट आ गये और उनके द्वारा 'सरदार' कहलाने लगे। क्रमिक रीतिसे सरदार पटेलको कांग्रेस नेताओंमें उच्च स्थान प्राप्त हो गया। १९३१ ई० में वे कांग्रेसके अध्यक्ष चुने गये और १९४२ ई० में महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये 'भारत छोड़ो' आंदोलनमें प्रमुख भाग लिया। कांग्रेस वर्किंग कमेटीके सभी सदस्योंके साथ उन्हें नजरबंद कर दिया गया और १९४५ ई० में उनके साथ वे भी रिहा किये गये।

१९४६ ई० में गठित अंतरिम सरकारमें वे गृह सदस्यके रूपमें सम्मिलित हुए। इसके बाद ही सारे देशमें साम्प्रदायिक दंगे शुरू हो गये, जिन्हें रोकनेमें आंशिक सफलता ही मिली। स्वाधीनताकी अनिवार्यता देखते हुए वे देशके विभाजनसे सहमत हो गये और स्वतंत्रता-प्राप्तिके बाद गृह मंत्री तथा उपप्रधान मंत्री नियुक्त हुए। इस पदपर १५ दिसम्बर १९५० ई० को मृत्यु होने तक बने रहे। भारतीय गणराज्यके उपप्रधान मंत्री तथा गृहमंत्रीके रूपमें उन्होंने बड़ी दृढ़ताका परिचय दिया, जिसके फलस्वरूप वे 'लौहपुरुष'के रूपमें विख्यात हुए। उनकी सबसे महान् उपलब्धि शांतिपूर्ण रीतिसे भारतीय गणराज्यमें देशी रियासतोंका विलयन था।

१९४७ ई० में पाकिस्तानके हमलेके बाद कश्मीरका भारतमें विलयन स्वीकार करनेके निर्णयमें उनका मुख्य हाथ था। उनकी अंतिम महान् उपलब्धि हैदराबादके निजामके विरुद्ध पुलिस काररवाईका निर्णय था। इसके फलस्वरूप हैदराबाद रियासत भारतीय गणराज्यमें विलयनके लिए विवश हो गयी और भारतीय उपमहाद्वीपमें तीसरा स्वतंत्र राज्य अथवा दक्षिणमें पाकिस्तानका गढ़ नहीं बन सका। महात्मा गांधीकी हत्याके समय उन्होंने अपनी स्वभावगत दृढ़ताका परिचय दिया और हत्याकांडके बाद ही यह घोषणा करके कि हत्यारा एक पागल हिन्दू था तथा शांति तथा व्यवस्था बनाये रखनेके कड़े प्रबंध करके एक भयानक गृह युद्धसे देशको बचा लिया।

पटेल, विट्ठलदास झवेरभाई (१८७३–१९३३ ई०)–भारतके प्रमुख राष्ट्रीय नेता और सरदार पटेलके बड़े भाई। २७ सितम्बर १८७३ ई० को नड़ियादमें जन्म और २२ अक्तूबर १९३३ ई०को वियनामें देहावसान हुआ। १९०५ ई० बैरिस्टर हुए और वकालत करने लगे, परंतु शीघ्र ही भारतीय राष्ट्रीय आंदोलनमें खिंच आये। उन्होंने रौलट कानून (दे०)के विरुद्ध प्रबल आंदोलन चलाया, केन्द्रीय असेम्बलीके सदस्य चुने गये, किंतु कांग्रेसकी असहयोगकी नीतिके अनुसार सदस्यतासे त्यागपत्र दे दिया। बादमें स्वराज्य पार्टी (दे०)में सम्मिलित हो गये और पुनः केन्द्रीय असेम्बलीके सदस्य चुने गये। वे केन्द्रीय असेम्बलीके पहले गैरसरकारी अध्यक्ष निर्वाचित हुए और अपना निर्णायक मत डालकर सरकारी सार्वजनिक सुरक्षा बिलको अस्वीकृत करा दिया और अधिवेशनके दौरान पुलिसको केन्द्रीय असेम्बली हालमें प्रवेश करनेसे रोक दिया। उन्होंने १९३० ई० में कांग्रेस नेताओंके नजरबंद कर दिये जानेके विरोधस्वरूप केन्द्रीय असेम्बलीके अध्यक्ष पदसे इस्तीफा दे दिया और इसके बाद ही स्वयं उनको भी नजरबंद कर दिया गया। जेलमें उनका स्वास्थ्य चौपट हो गया और वे स्वास्थ्य-सुधारके लिए यूरोप चले गये। वियनामें उनकी भेंट नेताजी सुभाष चन्द्र वसुसे हुई। नेताजीपर उनका पूरा विश्वास था और उन्होंने उनको अपने इच्छानुसार राष्ट्रीय कार्योंमें खर्च करनेके लिए दो लाख रुपयेकी वसीयत कर दी। इसके बाद ही वियनामें उनकी मृत्यु हो गयी। १९३३ ई० में उनकी मृत्युपर छोटे भाई सरदार पटेलने असहयोगके सिद्धान्तोंमें विश्वास करते हुए भी भारतमें एक ब्रिटिश अदालतमें मुकदमा दायर कर दिया और बड़े भाईकी वसीयत रद्द करा दी। विट्ठलदास झवेरभाई पटेल महान् देशभक्त थे और भारतके अंग्रेज शासक भी उनसे डरते थे।

पठान–भारत और अफगानिस्तानके बीच सीमांत क्षेत्रमें रहनेवाली जनजातियाँ। कुछ इतिहास ग्रंथोंमें, जैसे थामसके अंग्रेजी भाषाके 'पठान बादशाहोंके वृत्तांत' शीर्षक ग्रंथमें इस शब्दका गलत प्रयोग किया गया है और कुतुबुद्दीनसे लेकर इब्राहीम लोदीतक दिल्लीके समस्त सुल्तानोंको 'पठान' लिख दिया गया है। दिल्लीके सुल्तानोंके अधिकांश राजवंशोंका विकास तुर्कोंसे हुआ था, लोदी और संभवतः खिलजी वंश इसके अपवाद थे। शेरशाह अफगान था और उसके वंशको पठानवंश कह सकते हैं। सीमाप्रांतके पठान वजीरी, अफ्रीदी आदि अनेक कबीलोंमें बंटे हुए हैं और कुछ समय पहले तक लगभग घुमन्तू जीवन व्यतीत करते रहते थे। इसीलिए ये जब-तब भारतपर चढ़ाइयाँ करना जीवन-यापनका वैध साधन मानते थे। भारतमें बसनेवाले बहुत-से पठान रुपया उधार देनेका काम करते हैं और बड़ी लम्बी दरसे सूद वसूल करते हैं।

पतंजलि–पाणिनि (दे०)की प्रसिद्ध संस्कृत व्याकरण पुस्तक अष्टाध्यायीके ख्यातिप्राप्त टीकाकार, जिनकी उक्त टीका 'महाभाष्य' नामसे प्रसिद्ध है। विश्वास किया जाता है कि वे शुंग (दे०) राजा पुष्यमित्रके समसामयिक थे, जो दूसरी शताब्दी ई०पू०में हुआ।

पतंजलि–एक महान् दार्शनिक, जिन्होंने संस्कृत भाषामें 'योगसूत्र' नामसे प्रसिद्ध दर्शन-ग्रंथकी रचना की। उनका काल अनिश्चित है, परंतु वे प्रसिद्ध भाष्यकार पतंजलिसे भिन्न थे।

पद्मभूषण–भारतीय गणराज्यमें प्रदान किये जानेवाले अलंकरणोंमें इसका स्थान तीसरा है। सर्वोच्च अलंकरण 'भारतरत्न' है और उसके बाद दूसरा स्थान 'पद्मविभूषण' का है।

पद्मश्री—भारतीय गणराज्यमें प्रदान किये जानेवाले अलंकरणोंमें इसका चौथा स्थान है।

पद्मसंभव—एक प्रसिद्ध भारतीय भिक्षु जो आठवीं शताब्दी ई० के मध्यकालमें वर्तमान था। कहा जाता है कि वह पहले उद्यान (स्वात)का राजकुमार था और उसने बौद्ध भिक्षुकी दीक्षा ले ली थी। तिब्बतके राजा ख्रि-स्रोङ-लदे-वचन्के निमंत्रणपर वह तिब्बत गया और वहाँ उसने तंत्रयानका प्रचार किया। तिब्बती लोगोंको विश्वास था कि उसे ऐसी सिद्धियाँ प्राप्त थीं जिनसे वह अलौकिक चमत्कार दिखा सकता था। उसने तिब्बतमें बौद्ध धर्मके जिस सम्प्रदायकी स्थापना की, उसे पश्चिमी विद्वान् 'लाल टोपीवाले' कहते हैं। उसने तिब्बतके राजाको तथा बहुत-से तिब्बतियोंको शिष्य बनाया। उसने तिब्बतमें बौद्ध-धर्मके जिस रूपका प्रचार किया, वह 'लामा धर्म'के नामसे विख्यात है। तिब्बती लोग बुद्धके समान पद्मसंभवकी भी पूजा करते हैं।

पद्मिनी—मेवाड़के राणा रतनसिंहकी रानी। राजपूत अनुश्रुतियोंके अनुसार सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी पद्मिनीके रूपकी प्रशंसा सुनकर उसे पानेके लिए व्याकुल हो उठा और उसने १३०३ ई० में चित्तौड़पर हमला कर दिया। राजपूत बड़ी वीरताके साथ लड़े, परंतु वे चित्तौड़गढ़की रक्षा नहीं कर सके। जब यह देखा गया कि अब दुर्गपर शत्रुका अधिकार होनेसे रोका नहीं जा सकता तो पद्मिनीने अन्य रानियोंके साथ जलती चिताओंपर कूदकर 'जौहर' कर लिया।

पनगलका राजा—जस्टिस अथवा अब्राह्मण पार्टीका नेता, जो गवर्नमेण्ट आफ इंडिया एक्ट, १९१९ के द्वारा स्थापित संविधानको क्रियान्वित करनेके लिए १९२१ ई० में मद्रासका मुख्य मंत्री नियुक्त हुआ। उसके मंत्रिमंडलने शिक्षा तथा मंदिरोंकी धर्मादा सम्पत्तिकी प्रबंध व्यवस्थामें सुधार किये।

परगना—प्रशासनकी दृष्टिसे सरकार (जिला)का एक उपविभाग। यह प्रशासकीय व्यवस्था अकबरने की थी।

परमार (पँवार) वंश—इसका आरम्भ नवीं शताब्दीके प्रारम्भमें नर्मदाके उत्तर मालवा (प्राचीन अवन्ती) क्षेत्रमें उपेन्द्र अथवा कृष्णराजसे हुआ। इसकी राजधानी धारा नगरी थी। इस वंशमें आठ राजा हुए, जिनमें सातवाँ मुंज और आठवाँ मुंजका भतीजा भोज (दे०) सबसे प्रतापी था। मुंज अनेक वर्षों तक कल्याणीके चालुक्य राजाओंसे युद्ध करता रहा और ९९५ ई० में युद्धमें ही मारा गया। उसका उत्तराधिकारी भोज (१०१८–६० ई०) गुजरात तथा चेदिके राजाओंकी संयुक्त सेनाओंके साथ युद्धमें मारा गया। उसकी मृत्युके साथ परमार वंशका प्रताप नष्ट हो गया, यद्यपि स्थानीय राजाओंके रूपमें परमार राजा तेरहवीं शताब्दीके आरम्भ तक राज्य करते रहे, अन्तमें तोमरों (दे०)ने उनका उच्छेद कर दिया। परमार राजा, विशेषरूपसे मुंज और भोज बड़े विद्वान् थे और विद्वानों एवं कवियोंके आश्रयदाता थे।

परमार्थ (४९९–५६९ ई०)—एक प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु तथा विद्वान्, जिसने ५४६ तथा ५६९ ई० के बीच अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'वसुबंधुचरित'की रचना की। इस पुस्तकमें उसने कनिष्क (दे०)के द्वारा आमंत्रित बौद्धोंकी चौथी संगीति (महासभा)का विवरण लिपिबद्ध किया है।

परमार्दि (अथवा परमाल)—जेजाकभक्ति (दे०)का अंतिम चंदेल शासक, जिसे एक महत्त्वपूर्ण स्वतंत्र राजा कहा जा सकता है। वह पाँच वर्षकी अवस्थामें सिंहासनपर बैठा और ११८२ ई० तक राज्य करता रहा, जब कि चौहान राजा पृथ्वीराज (दे०)से युद्धमें पराजित हो गया। पृथ्वीराजने उसकी राजधानी ध्वस्त कर दी। इस पराजयके बाद ही दिल्लीके सुल्तान कुतुबुद्दीन (दे०)के नेतृत्वमें मुसलमानोंने उसके राज्यपर आक्रमण कर दिया और कालंजरका किला घेर लिया। परमार्दिको कालंजरका किला शत्रुओंके हाथ सौंप देना पड़ा और संभवतः युद्धभूमिमें वह मारा गया। उसकी मृत्युके साथ चंदेल-वंशका उत्कर्ष समाप्त हो गया।

परवेज, शाहजादा—बादशाह जहाँगीरका दूसरा लड़का। उसके बड़े भाई शाहजादा खुसरोके अंधा कर दिये जानेके बाद उसे युवराज बनाया गया। उसको मेवाड़पर आक्रमण करनेके लिए भेजा गया, वह इलाहाबाद तथा दक्खिनमें ऊँचे पदोंपर रहा। उसके छोटे भाई शाहजादा खुर्रम (बादमें शाहजहाँ)ने जब जहाँगीरके विरुद्ध विद्रोह कर दिया, उसने पिताका साथ दिया और १६२४ ई० में इलाहाबादके निकट डमडमकी लड़ाईमें शाहजादा खुर्रमको हरा दिया। इसके बाद परवेजको गुजरातका सूबेदार बना दिया गया। अत्यधिक शराब पीनेके कारण १६२६ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

परशाद, राणा—राजपूतानेमें स्थित अमरकोटका शासक। उसने भगोड़े मुगल बादशाह हुमायूं और उसकी नवपरिणीता बेगम हमीदा बानूको शरण दी। इनका पुत्र अकबर राणा परशादके संरक्षणमें अमरकोटमें १५४२ ई० में पैदा हुआ।

परसाजी भोंसले—रघुजी भोंसले (दे०)का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। वह जड़बुद्धि था और गद्दीपर बैठनेके एक

साल बाद, १८१७ ई० में उसके चचेरेभाई अप्पा साहेब (दे०)ने उसकी हत्या कर दी।

परान्तक प्रथम—चोल राजा आदित्य (दे०)का पुत्र तथा उत्तराधिकारी, जिसने ९०७ ई०से ९४९ ई० तक राज्य किया। वह प्रबल पराक्रमी योद्धा था और उसने पांडय राजाओंकी राजधानी मदुरापर अधिकार कर चोल राज्यकी सीमाओंका विस्तार कर दिया। उसने सिंहलद्वीप (श्रीलंका)पर भी आक्रमण किया।

परान्तक द्वितीय—चोल राजा परान्तक प्रथम (दे०)का पौत्र, जिसने ९५६ से ९७३ ई० तक राज्य किया।

परागल खां—बंगालके सुल्तान हुसेनशाह (१४३९–१५१९ ई०)का सेनापति। वह बँगला साहित्यका संरक्षक था। परमेश्वरने महाभारतका बंगला अनुवाद उसीकी आज्ञासे किया, जो बँगला भाषामें महाभारतका सबसे प्राचीन अनुवाद है।

परिहार—देखिये, 'प्रतिहार'।

परेरा, पादरी जूलियन—बंगालका बड़ा पादरी, जो १५७६ तथा १५७७ ई० में बादशाह अकबरके सम्पर्कमें आया और उसे ईसाई धर्मके बारेमें जानकारी दी।

पर्चाज, सैमुएल—भारतमें फिरंगियोंकी प्रारम्भिक बस्तियोंका विवरण-लेखक, जिसकी 'पिल्ग्रिम्स' (यात्रीगण) नामक पुस्तक विख्यात है। कम्पनीके डाइरेक्टरोंका मत था कि भारतकी वस्तुस्थिति, डच लोगोंकी धूर्तताओं तथा भारतमें भूतपूर्व अंग्रेज व्यापारियोंकी धोखेबाजियोंके ज्ञानार्थ कम्पनीके नौकरोंके लिए इस पुस्तकको पढ़ना बहुत जरूरी है। कम्पनीने भारतमें कर्मचारियोंकी ज्ञानवृद्धिके लिए १८९६ ई० में इस पुस्तककी प्रतियाँ भारत भेजी थीं।

परोपनिसदे—यूनानी इतिहासकारोंके अनुसार अफगानिस्तानकी राजधानी काबुलके आसपासका भूभाग। सेल्यूकस निकेटरने आरिया (हेरात क्षेत्र), आकासिया (कंदहार क्षेत्र) तथा गदरोसिया (बलूचिस्तान)के साथ-साथ यह भूभाग भी चन्द्रगुप्त मौर्य (दे०)को सौंप दिया।

पल्लववंश—इस वंशके शासक अर्काट, मद्रास, त्रिचनापल्ली तथा तंजौरके आधुनिक जिलोंपर राज्य करते थे। उनके उत्कर्षकालमें यह राज्य उत्तरमें उड़ीसाकी सीमा तक तथा दक्षिणमें पेन्नार नदी तक विस्तृत था। पश्चिममें भी वह दक्षिण भारतमें दूर तक फैला हुआ था। यह पता नहीं है कि पल्लव राजवंशकी स्थापना कब हुई और किसने की। उत्तरी भारतके शिलालेखमें जिस सबसे पहले पल्लव राजाका उल्लेख मिलता है, वह कांचीका विष्णुगोप था। चौथी शताब्दी ई० के लगभग मध्यकालमें समुद्रगुप्त (दे०)ने पहले उसे बंदी बनाकर फिर मुक्त कर दिया था। सिंहविष्णुके राज्यकालके बाद इस राजवंशका इतिहास अधिक सुनिश्चित रीतिसे ज्ञात है। सिंहविष्णु छठीं शताब्दी ई० के उत्तरार्धमें सिंहासनपर बैठा। उसके बाद लगभग दो शताब्दियों तक अनेक शक्तिशाली पल्लववंशी राजाओंने राज्य किया। इन राजाओंके नाम थे—महेन्द्रवर्मा प्रथम (लगभग ६००–२५ ई०), नरसिंहवर्मा प्रथम (लगभग ६२५–४५ ई०), महेन्द्रवर्मा द्वितीय, परमेश्वरवर्मा, नरसिंहवर्मा द्वितीय, परमेश्वरवर्मा द्वितीय, महेन्द्रवर्मा तृतीय, नन्दीवर्मा (लगभग ७१७–८२ ई०), दंतिवर्मा, नन्दीवर्मा द्वितीय तथा अपराजित।

पल्लव राज्यकालके इतिहासकी सबसे मुख्य विशेषता यह है कि इसके पूर्वार्धकालमें इस वंशके राजाओंका वातापीके चालुक्य राजाओंके साथ तथा उत्तरार्ध कालमें मान्यखेटके राष्ट्रकूट राजाओंके साथ अनवरत युद्ध चलता रहा। महेन्द्रवर्मा प्रथम महान् वास्तु-निर्माता था। उसने पत्थरोंको तराशकर अनेक मंदिर बनवाये। उसने महेन्द्र तालाब भी खुदवाया। उसे लगभग ६१० ई० में चालुक्य राजा पुलकेशी द्वितीय (दे०)ने पराजित कर दिया और वह उसे वेङ्गि प्रांत सौंप देनेके लिए विवश हुआ। महेन्द्रके पुत्र तथा उत्तराधिकारी नरसिंहवर्मा (दे०)ने ६४२ ई० में पुलकेशी द्वितीयको परास्त कर दिया, उसकी राजधानी वातापीपर अधिकार कर लिया और उसका वध कर दिया। परंतु चालुक्योंने ६५५ ई० में इस हारका बदला ले लिया। चालुक्य राजा विक्रमादित्य प्रथमने पल्लव राजा परमेश्वरवर्माको पराजित कर राजधानी कांचीपर अधिकार कर लिया।

इसके बाद पल्लव राज्यशक्ति क्षीण होने लगी। लगभग ७४० ई० में पल्लव राजा नन्दीवर्मा प्रथमको चालुक्य राजा विक्रमादित्य द्वितीयने परास्त कर उसकी राजधानी कांचीपर पुनः अधिकार कर लिया। नन्दीवर्माके उत्तराधिकारी दंतिवर्माको राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीय (दे०)ने परास्त कर दिया। अगले पल्लव राजाने राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष प्रथमकी पुत्रीसे विवाह करके अपनी राज्यशक्ति सुदृढ़ करनेका प्रयास किया। परंतु यह विवाह-सम्बंध अधिक समय तक, पल्लववंशकी रक्षा नहीं कर सका। नवीं शताब्दीके अंतमें चोल राजा आदित्य प्रथमने पल्लव राजा अपराजितको परास्त करके पल्लववंशका अंत कर दिया। इसके बाद पल्लव राज्य चोलोंके राज्यके अंतर्गत आ गया।

प्रारम्भिक पल्लव राजाओंने अनेक मंदिरोंका निर्माण

कराया। उन्होंने मामल्लपुरम् अथवा महाबलिपुरम् नगर-की स्थापना की और वहांपर पांच रथ-मंदिरोंका निर्माण कराया। इनमें से प्रत्येक रथ एक-एक चट्टानको काटकर बनाया गया है। इनपर सुन्दर मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। ये मंदिर वास्तुकलाकी आश्चर्यजनक कृति हैं। कांचीमें पल्लव राजाओंके बनवाये बहुत-से मंदिर हैं। उन्होंने कांचीको एक प्रकारसे मंदिरोंका नगर बना दिया। पल्लव राजा अधिकांशतः हिन्दूधर्मानुयायी थे। उनमेंसे कुछ विष्णुके उपासक थे और कुछ शिवके।

पलासीकी लड़ाई—रावर्ट क्लाइव (दे०)के नेतृत्वमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेना और बंगालके नवाब सिराजुद्दौला-की सेना के बीच २३ जून १७५७ ई० को की गयी। नवाबके प्रमुख सेनाध्यक्ष मीर जाफर तथा उसके सहयोगियोंके विश्वासघातके कारण लड़ाई कुछ घंटे ही चली—सुबह आरम्भ हुई तथा दोपहर तक समाप्त हो गयी। फलतः नवाबकी हार हुई। इसे लड़ाई न कहकर झड़प कहना अधिक युक्तिसंगत होगा। फिर भी इसके गम्भीर परिणाम हुए। नवाब सिराजुद्दौला, जो युद्धभूमिसे भाग गया था, शीघ्र बंदी बना लिया गया और उसकी हत्या कर दी गयी। विजयी अंग्रेजी सेना अपनी कठपुतली, विश्वासघाती मीर जाफरको लेकर मुर्शिदाबादकी ओर बढ़ी और उसके पहुँचते ही मुर्शिदाबादने बिना किसी लड़ाईके आत्मसमर्पण कर दिया। मीर जाफरको बंगालका नवाब घोषित कर दिया गया। मीर जाफर ने सारा खजाना राबर्ट क्लाइव तथा उसके सहयोगी अंग्रेजोंको पुरस्कृत करनेमें लुटा दिया और पूरी तरहसे वह अंग्रेजोंका आश्रित हो गया। अंग्रेज एक प्रकारसे बंगालके सर्वेसर्वा बन गये। बंगालकी जो दौलत उनके हाथ लगी, उसने उनको भारतमें फ्रांसीसियों-पर विजय प्राप्त करनेमें बहुत मदद दी। फ्रांसीसियोंके साथ उनका जो युद्ध हुआ, वह कर्नाटक युद्धके नामसे विख्यात है।

पल्लीलोरकी लड़ाई—१७८१ ई० में मैसूरके हैदरअली (दे०) और सर आयरकूट तथा जनरल पियर्सके नेतृत्वमें कम्पनीकी सेनाओंके बीच हुई। इस लड़ाईमें हैदरअली हार गया और उसकी रोकथाम कर दी गयी।

पँवार—देखिये, 'परमार'।

पांडव—राजा पांडुके पुत्र, जो पाँच भाई थे। महाभारतमें उनकी और कौरवोंकी प्रतिद्वन्द्विता तथा लड़ाईका वर्णन है।

पांडिचेरी—मद्राससे कुछ मील दक्षिण भारतके पूर्वी तटपर स्थित एक बंदरगाह। इसकी स्थापना १६७४ ई० में फ्रांकोइस मर्टिनने की, जो फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनीका कर्मचारी था। १६९३ ई० में इसपर डच लोगोंने अधिकार कर एक मजबूत किला बनाया। १६९९ ई० में यह फ्रांसीसी लोगोंको किलेके साथ वापस मिल गया। मार्टिन-ने समृद्ध नगरके रूपमें इसका विकास किया और यह भारतमें फ्रांसीसी साम्राज्यकी राजधानी बना दिया गया। फ्रांसीसी लोगोंके पास बंगालमें चन्द्रनगर, मलाबारमें माहे तथा कारोमंडल तटपर कारिकलकी बस्तियां थीं। अंग्रेजोंने १७४५ ई० में और पुनः १७४७ ई० में पांडिचेरीपर कब्जा करनेकी कोशिश की, परंतु सफल नहीं हुए। अंतमें उन्होंने १७६१ ई० में इसपर अधिकार कर लिया। इसके छिन जानेसे भारतमें फ्रांसीसी साम्राज्यका अंत हो गया। १७६३ ई० में इसे फ्रांसीसी लोगोंको लौटा दिया गया, किंतु इसकी किलेबंदी तोड़ दी गयी और यहांपर रखी जानेवाली सेनाकी संख्यापर कड़ी पाबंदी लगा दी गयी। इसके बादसे यह भारतमें फ्रांसीसी बस्तियोंकी राजधानी बना रहा। भारतके स्वाधीन होनेके बाद पांडिचेरी तथा भारतकी अन्य फ्रांसीसी बस्तियोंका शांतिपूर्ण रीतिसे भारतीय गणराज्यमें विलयन कर दिया गया। इसका शासन अब केन्द्र-शासित क्षेत्रके रूपमें होता है। इसकी एक निर्वाचित विधान सभा है और लोकप्रिय सरकार-के द्वारा इसका शासन संचालित होता है। ब्रिटिश शासन-कालमें अरविन्द घोष (दे०)ने ब्रिटिश भारतसे भाग कर पांडिचेरीमें शरण ली और वहाँ एक आश्रमकी स्थापना की थी। संसारके विविध देशोंसे श्री अरविन्दके भक्तगण यहाँ आते रहते हैं।

पांड्य—उत्तरमें वेल्लास नदीके दक्षिणी भागसे लेकर दक्षिणमें केप कमोरिन तथा पूर्वमें कारोमंडल तटसे लेकर पश्चिममें त्रावणकोरके मार्गपर पड़नेवाले अच्चनकोविल दर्रे तकका प्रदेश पांड्यवंशी राजाओंका शासित क्षेत्र होनेके कारण पांड्य देश कहलाता था। इस प्रकार पांड्य राज्य आधुनिक मदुरा तथा तिन्नेवेल्ली जिलोंमें तथा त्रावणकोरके उस भूभागमें जिसमें केप कमोरिन स्थित है, विस्तृत था। उसकी राजधानी मदुरा थी। दूर-दूरके देशोंके साथ इस राज्यके व्यापारिक सम्बंध थे। यह व्यापार कोर्कै और बादमें कयाल बंदरगाहसे होता था। ईसवी सन्‌की पहली शताब्दीमें प्लिनीने इसे एक अत्यंत समृद्ध देश बताया है। पेरिप्लस (लगभग ८० ई०) तथा टालमी (लगभग १४० ई०)ने भी इसकी सम्पन्नताका उल्लेख किया है। मेगस्थनीजने भी, जो चौथी शताब्दी ई० पू० में आया था, इस देशका नाम सुना था और वह इसकी उत्पत्ति हेराक्लीजकी पुत्रीसे मानता था। यह कपोलकथा मात्र

है, किंतु यह सही है कि पांड्य देशमें मातृसत्ताक व्यवस्था प्रचलित थी। संस्कृत वैयाकरण कात्यायनने भी, जो चौथी शताब्दी ई० पू० में हुआ, पांड्य देशका वर्णन किया है। मार्कोपोलो (दे०)के यात्रा-वृत्तांतसे पांड्य देशके बारेमें काफी जानकारी मिलती है। उसने दो बार, १२८८ ई० में और १२९३ ई० में पांड्य देशकी यात्रा की थी। वह पांड्य राजा और प्रजाके धन और ऐश्वर्यको देखकर चकित रह गया था।

यद्यपि प्राचीन तमिल साहित्यमें पांड्य राज्यका महत्त्व-पूर्ण वर्णन है, तथापि उसके प्राचीन इतिहासके बारेमें अधिक जानकारी नहीं मिलती। सबसे पहला पांड्य राजा, जिसकी तिथि निश्चित रूपसे निर्धारित की जा सकी है (दूसरी शताब्दी ई०), नेडुंचेलियन था। पांड्य और पल्लव (दे०) राजाओंके बीच बराबर युद्ध होते रहते थे, जो कई शताब्दियों तक चलते रहे। प्रतीत होता है कि पांड्य राजाओंकी अपेक्षा पल्लव राजा अधिक शक्ति-शाली सिद्ध हुए और ८६२–६३ ई० में पल्लव राजा अपराजितने पांड्य राजाको परास्त कर दिया। किंतु पल्लवोंको चोल राजाओंने परास्त कर दिया और लगभग ९९४ ई० से तेरहवीं शताब्दीके अंत तक पांड्य राजा भी चोल राजाओंकी अधीनतामें रहे।

इस बीच पांड्य राजाओंको अक्सर सिंहल (श्रीलंका)के राजाओंसे भी युद्ध करना पड़ता था। ११०० ई० से १५६७ ई० के बीच सत्रह पांड्य राजाओंने कभी स्वतंत्र रूपसे और कभी करद राजाके रूपमें राज्य किया। इनमें जटावर्मा सुन्दर सबसे शक्तिशाली राजा था। उसने १२५१ से १२७१ ई० तक राज्य किया। वह नेल्लोरसे लेकर केप कमोरिन तक सारे पूर्वी तटका स्वामी था। १३१० ई०में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीके सेनानायक मलिक कफूर (दे०) के नेतृत्वमें मुसलमानोंने पांड्य राज्यको रौंद डाला। इसके बाद पांड्य राजाओंकी स्थिति पलायगार (स्थानीय जमींदार)के समान हो गयी। पांड्य देशको मुसलमान 'मअबर' कहते थे। मुहम्मद तुगलकके राज्य-काल तक पांड्य देश दिल्ली सल्तनतके अधीन रहा। १३३५ ई० में वहांके मुसलमान सूबेदार जलालुद्दीन अहसान-शाह (दे०)ने अपनेको स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। उसके वंशने १३७८ ई० तक पांड्य देशपर राज्य किया। इसके बाद पांड्य देश विजयनगरके हिन्दू साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया।

पाकिस्तान—यह नाम १९३३ ई० में चौधरी रहमत अलीने गढ़ा। अंग्रेजीमें पंजाब 'पी' से, अफगान (सीमाप्रांत) 'ए' से, कश्मीर 'के' से तथा सिंध 'एस' से लिखा जाता है। अतएव इन चारों प्रांतोंके प्रथम अक्षरोंको मिलाकर अंग्रेजीमें PAKS (पाक्स) शब्द बनता है। इसमें 'स्तान' (स्थान) प्रत्यय लगाकर उसने पाकिस्तान शब्द बनाया, जिसका अर्थ उसने किया 'पाक देश'। यहांपर स्मरण रखना चाहिए कि पाकिस्तानका निर्माण करनेके लिए जिन चार प्रांतोंको चुना गया था, वे सभी मुसलिम बहुमतवाले प्रांत थे। १९३० ई० में सर मुहम्मद इकबालने भारत संघके अंतर्गत उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत, बलूचिस्तान, सिंध तथा कश्मीरके प्रांतोंका एक अलग मुसलिम राज्य बनानेका सुझाव दिया था।

१९४० ई० में मुसलिम लीगने पाकिस्तानकी स्थापना अपना लक्ष्य बना लिया। जैसे-जैसे यह स्पष्ट होता गया कि अंग्रेज अब भारतीयोंके हाथमें सत्ता हस्तांतरण कर देंगे, वैसे-वैसे भारतीय मुसलमानोंको भय होने लगा कि उन्हें हिन्दुओंके बहुमतके शासनमें रहना पड़ेगा और मुहम्मद अली जिन्ना (दे०)के नेतृत्वमें उन्होंने मांग की कि उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांत, सिंध, कश्मीर तथा बंगालको मिलाकर पाकिस्तान बना दिया जाय और भारतका विभाजन—हिन्दुस्तान और पाकिस्तान—ऐसे दो राज्योंमें कर दिया जाय। इतिहासकी दृष्टिसे भारतके विभाजनकी मांग गलत थी और न देश और न देशवासियोंके हितमें थी। परंतु 'फूट डालो और शासन करो'की नीतिके अनुसार अंग्रेजोंने बहुत समय पहले ही मुसलमानोंकी साम्प्रदायिक आधारपर पृथक् निर्वाचन क्षेत्रोंकी मांग स्वीकार कर ली थी और अब वे पृथक् राज्यकी मांग अस्वीकार नहीं कर सकते थे। कुछ ब्रिटिश अधिकारियोंने भी पाकिस्तानकी मांगका समर्थन किया। इससे उत्साहित होकर मुसलमानोंने लूट, आगजनी, बलात्कार तथा हत्याओंके रूपमें सारे देश-में, और विशेष रूपसे पंजाब, सिंध तथा बंगालके मुसलिम बहुमतवाले प्रांतोंमें 'सीधी काररवाई' शुरू कर दी। देशमें अराजकताकी स्थिति उत्पन्न होने लगी और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने अगस्त १९४७ ई० में स्वाधीनता पानेकी बेचैनीमें देशके विभाजन तथा पाकिस्तानके निर्माणकी मांग स्वीकार कर ली।

पाकिस्तानमें उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांत, बलूचिस्तान, सिंध, पश्चिमी पंजाब तथा पूर्वी बंगालको सम्मिलित किया गया। इस प्रकार मुसलिम लीगकी इच्छाके विपरीत पाकिस्तान दो हिस्सोंमें बंटा हुआ था। कश्मीरने पहले तो हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तान दोनोंमेंसे किसी राज्यमें मिलनेसे इनकार कर दिया, बादमें वह हिन्दुस्तानमें मिल

गया। पूर्वी बंगाल (जो अब 'बंगला देश' बन गया है), उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांत, सिंध तथा पश्चिमी पंजाबको मिलाकर बनाये गये पश्चिमी पाकिस्तानसे एक हजारसे अधिक मीलके फासलेपर था। प्रारम्भमें पाकिस्तानकी राजधानी कराची हुई और मुहम्मद अली जिन्ना उसके पहले गवर्नर-जनरल नियुक्त किये गये। पाकिस्तानको 'इसलामी राज्य' घोषित किया गया और वहां संसदीय लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था स्थापित की गयी। परंतु १९४८ ई० में जिन्नाकी मृत्यु के बाद संविधानकी धाराओंके अनुसार शासन चलाना कठिन हो गया। पाकिस्तानका पहला संविधान २३ मार्च १९५६ ई० को लागू हुआ, जिसके अनुसार जनरल इसकंदर मिर्जाको पहला अस्थायी प्रेसीडेंट चुना गया। जनरल इसकंदर मिर्जाने ७ अक्तूबर १९५८ ई०को पाकिस्तानका संविधान रद्द करके फौजी शासनकी स्थापना कर दी, जो दिसम्बर १९७१ ई० तक चलता रहा। २७ अक्तूबर १९५८ ई० को जनरल अयूब खांने जनरल इसकंदर मिर्जाको अपदस्थ कर दिया। २५ मार्च १९७० ई० को जनरल याहिया खांने जनरल अयूब खांका स्थान ले लिया। दिसम्बर १९७१ ई० के भारत-पाकिस्तान युद्धमें हारनेके बाद जनरल याहियां खांको शासन-सत्ता जुल्फिकार अली भुट्टोके हाथमें सौंप देनी पड़ी।

पाकिस्तानी शासकोंने पिछले २६ सालोंमें भारतके प्रति संघर्ष और टकरावकी जो नीति बरती, उसके फलस्वरूप दोनों देशोंके बीच चार युद्ध हो चुके हैं—पहला १९४८-४९ ई० में, दूसरा अप्रैल १९६५ ई० में, तीसरा अगस्त १९६५ ई० में और चौथा दिसम्बर १९७१ ई० में।

पाकिस्तानी शासकोंने पूर्वी पाकिस्तानको पश्चिमी पाकिस्तानका उपनिवेश जैसा भाग मानकर उसके प्रति जो भेदभावपूर्ण नीति बरती, उसके फलस्वरूप १८ अप्रैल १९७१ ई० को शेख मुजीबुर्रहमानके नेतृत्वमें उसने पाकिस्तानसे अपना सम्बंध-विच्छेद कर लिया और 'बंगला देश'के नामसे स्वतंत्र राज्य घोषित कर दिया। बंगला देशपर बलात् अधिकार रखनेवाली पाकिस्तानी सेनाओंने १६ दिसम्बर १९७१ ई०को ढाकामें भारतीय सेनाओं और बंगला देशकी मुक्तवाहिनीकी संयुक्त कमानके सामने बिला शर्त आत्मसमर्पण कर दिया। २६ महीने बाद २२ फरवरी १९७४ ई०को पाकिस्तानने बंगला देशको मान्यता प्रदान कर दी।

बंगला देशके निर्माणके फलस्वरूप पाकिस्तानका इसलामी गणराज्य अब पश्चिमी पाकिस्तान तक सीमित रह गया है। बंगला देश भी भारतकी भांति धर्मनिरपेक्ष गणराज्य है। पिछले २६ वर्षोंमें पाकिस्तानके उथल-पुथलसे भरे इतिहासमें उसके तीन संविधान बन चुके हैं। उसका नया संविधान १४ अगस्त १९७३ ई० को लागू हुआ। इसके अंतर्गत पाकिस्तानको 'इसलामी गणराज्य' घोषित किया गया है। संविधानमें प्रधान मंत्रीको विशेष अधिकार प्रदान किये गये हैं।

पाटलिपुत्र—मगधके राजाओंकी प्रसिद्ध राजधानी। सोन और गंगा नदीके संगमपर आधुनिक पटना तथा बांकीपुरके निकट स्थित। पाटलिपुत्रका दुर्ग राजा अजातशत्रु (लगभग ४९४–४६७ ई० पू०)ने बनवाया और उसके पौत्र उदयी (लगभग ४४३–४१८ ई० पू०)ने पाटलिपुत्र दुर्गके पड़ोसमें गंगा तटपर कुसुमपुरकी स्थापना की। दोनों नगर शीघ्र मिलकर एक हो गये और मौर्य राजा चन्द्रगुप्तके अधीन पाटलिपुत्र नगरका राजधानीके रूपमें विकास हुआ। नगरके चारों ओर लकड़ीकी प्राचीर बनी हुई थी, जिसमें ५७० बुर्ज तथा ६४ द्वार थे। प्राचीरके बाहर नगरकी रक्षाके निमित्त गहरी खाई थी, जिसमें सोन नदीका पानी भरा रहता था। प्राचीरके भीतर राजाका महल था, जिसके ध्वंसावशेष आधुनिक कुमराहार ग्रामके निकट मिले हैं। राजाका महल इतना भव्य था कि मेगस्थनीज (दे०)ने उसके सामने सूसा तथा एकबतानाके राजमहलोंको हेय बताया था। राजमहल लकड़ीका बना हुआ था और अब लगभग नष्ट हो गया है। बादमें अशोकने नगरके अंदर पत्थरका महल बनवाया। यह महल भी नष्ट हो गया है, किंतु पांचवीं शताब्दी ई० में जब फाहियान पाटलिपुत्र आया था, यह वर्तमान था। चीनी यात्री इस भव्य महलको देखकर इतना चकित हो गया कि उसे विश्वास नहीं हुआ कि यह मनुष्योंका बनाया हुआ है, वह इसे असुरोंके द्वारा निर्मित समझता था।

पाटलिपुत्र शुंग (दे०) और कण्व (दे०) वंशके राजाओंकी भी राजधानी रहा। उड़ीसाके राजा खारवेल (दे०) और संभवतः भारतीय यवन राजा मिनाण्डर (दे०)ने इसपर आक्रमण किया, फिर भी नगर फलता-फूलता रहा। यह गुप्त सम्राटोंकी राजधानी रहा, जिन्होंने ३२० ई० से ५०० ई० तक राज्य किया। उनका राज्यकाल भारतीय इतिहासका स्वर्णकाल माना जाता है और पाटलिपुत्र उस युगमें भारतीय संस्कृति और सभ्यताका महान् केन्द्र था। गुप्तवंशके पतनके बाद इस नगरका महत्त्व घटने लगा। सातवीं शताब्दी ई० में इसका स्थान कन्नौज (दे०)ने ले लिया। बादमें नवीं शताब्दीमें पाल राजाओंने मुद्गगिरि (मुंगेर)को अपनी राजधानी बनाया। मुसल-

मानी शासनकालमें पाटलिपुत्रका महत्त्व और घट गया और अब पटना (दे०) नगर, जो प्राचीन पाटलिपुत्रके निकट स्थित है, बिहार राज्यकी राजधानी है।

पाटिंगर, एल्ड्रेड—ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें नियुक्त एक अंग्रेज जनरल। उसने १८३८ ई० में फारसके हमलेके विरुद्ध हेरातकी रक्षा की।

पाटिंगर, सर हेनरी—सिंधमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके द्वारा नियुक्त पहला ब्रिटिश रेजिडेंट। उसने १८३२ ई० में सिंधके अमीरोंसे संधि-वार्ता की, जिसके फलस्वरूप अंग्रेजोंके लिए दक्षिणी सिंधु नदीमें नावें चलाकर व्यापार करनेका रास्ता खुल गया।

पाणिनि—प्रसिद्ध संस्कृत वैयाकरण। वे चौथी शताब्दी ई० पू० के पूर्व हुए। उनकी 'अष्टाध्यायी' नामक रचना संस्कृतके व्याकरण-ग्रंथोंमें सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है।

पाणिनि—एक संस्कृत कवि, जो वैयाकरण पाणिनिसे भिन्न थे। संस्कृत कवियोंमें उनका नाम आदरसे लिया जाता था और संस्कृत काव्यग्रंथोंमें उनकी कविताओंके उद्धरण मिलते हैं।

पानचाओ—एक चीनी सेनापति, जिसने ७३ ई० और १०२ ई० के बीच किसी समय खोतानमें बढ़कर कदफिसस द्वितीयकी आक्रमणकारी सेनाओंको खदेड़ दिया और उसे चीनी सम्राट हो-ती (८९—१०५ ई०) को कर देनेके लिए विवश किया।

पान यांग—चीनी सेनापति पान-चाओ (दे०)का पुत्र और अपने पिताकी भाँति तुर्किस्तानका चीनी शासक। वह योग्य प्रशासक ही नहीं, इतिहासकार भी था। उसने लिखा है कि १५२ ई० में खोतान चीनी साम्राज्यसे निकल गया। उसका यह वक्तव्य इस धारणासे मिलता है कि कनिष्क (लगभग १२०—१६२ ई०) ने १२५ ई० तथा १६० ई० के बीच खोतान तथा उसके आसपासके क्षेत्रको जीत लिया था।

पानीपत—तीन भाग्यनिर्णायक लड़ाइयां यहाँ हुईं, जिन्होंने भारतीय इतिहासकी धारा मोड़ दी। पानीपतकी पहली लड़ाई २१ अप्रैल १५२६ ई० को दिल्लीके सुल्तान इब्राहीम लोदी (दे०) और मुगल आक्रमणकारी बाबरके बीच हुई। इब्राहीमके पास एक लाख फौज थी। उधर बाबरके पास केवल १२००० फौज तथा बड़ी संख्यामें तोपें थीं। रणविद्या, सैन्य-संचालनकी श्रेष्ठता तथा तोपोंके प्रभावशाली प्रयोगके कारण बाबरने इब्राहीम लोदीके ऊपर निर्णयात्मक विजय प्राप्त की। लोदी रणभूमिमें मारा गया। पानीपतकी पहली लड़ाईके फलस्वरूप दिल्ली और आगरापर बाबरका दखल हो गया और उससे भारतमें मुगल राजवंशका प्रचलन हुआ।

पानीपतकी दूसरी लड़ाई ५ नवम्बर १५५६ ई० को अफगान बादशाह आदिलशाह सूर (दे०) के योग्य हिन्दू सेनापति और मंत्री हेमू (दे०) और अकबरके बीच हुई, जिसने अपने पिता हुमायूं (दे०) से दिल्लीका तख्त पाया था। हेमूके पास अकबरसे कहीं अधिक बड़ी सेना तथा १,५०० हाथी थे। प्रारम्भमें मुगल सेनाके मुकाबलेमें हेमूको सफलता प्राप्त हुई, परंतु संयोगवश एक तीर हेमूकी आँखमें घुस गया और उसने युद्धका पासा पलट दिया। तीर लगनेसे हेमू अचेत होकर गिर पड़ा और उसकी सेना भाग खड़ी हुई। हेमूको गिरफ्तार कर लिया गया और उसे किशोर अकबरके सामने ले जाया गया। अकबरने उसका सिर धड़से अलग कर दिया। पानीपतकी दूसरी लड़ाईके फलस्वरूप दिल्ली और आगरा अकबरके कब्जेमें आ गये। इस लड़ाईके फलस्वरूप दिल्लीके तख्तके लिए मुगलों और अफगानोंके बीच चलनेवाला संघर्ष अंतिम रूपसे मुगलोंके पक्षमें निर्णीत हो गया और अगले तीन सौ वर्षों तक दिल्लीका तख्त मुगलोंके पास रहा।

पानीपतकी तीसरी लड़ाई १४ जनवरी १७६१ ई० को अफगान आक्रमणकारी अहमदशाह अब्दाली (दे०) और मुगल बादशाह शाहआलम द्वितीय (दे०) के संरक्षक और सहायक मराठोंके बीच हुई। इस लड़ाईमें मराठा सेनापति सदाशिव राव भाऊ अफगान सेनापति अब्दालीसे लड़ाईके दांव-पेंचोंमें मात खा गया। अवधका नवाब शुजाउद्दौला और रुहेला सरदार नजीब खां अब्दालीका साथ दे रहे थे। अब्दालीने घमासान युद्धके बाद मराठा सेनाओंको निर्णयात्मक रूपसे हरा दिया। सदाशिव राव भाऊ, पेशवाके होनहार तरुण पुत्र और अनेक मराठा सरदारोंने युद्धभूमिमें वीरगति पायी। इस हारसे मराठोंकी राज्यशक्तिको भारी धक्का लगा। युद्धके छह महीने बाद ही भग्नहृदय पेशवा बालाजीरावकी मृत्यु हो गयी।

पानीपतकी तीसरी लड़ाईने भारतका भाग्य निर्णय कर दिया जो उस समय अधरमें लटक रहा था। मुगल बादशाह अपने पुराने शत्रु मराठोंकी सहायतासे भी अपनी रक्षा न कर सका। इस हारसे पेशवाका दबदबा समाप्त हो गया और वह मराठा सरदारोंके ऊपर अपना नियंत्रण कायम नहीं रख सका। मराठा संघकी एकता भंग हो जानेसे मुगल साम्राज्यके खंडहरोंपर मराठा राज्यकी स्थापनाका अवसर हाथसे निकल गया। अहमदशाह अब्दाली भी अपनी इस जीतसे कोई फायदा न उठा सका।

यह जीत उसके लिए बड़ी मंहगी साबित हुई। इसके बाद ही उसकी विजयी सेनामें विद्रोहका भय उत्पन्न हो गया। अतः दिल्लीके तख्तपर अपना कब्जा मजबूत बनानेसे पहले ही उसे अफगानिस्तान वापस लौट जाना पड़ा।

पानीपतकी तीसरी लड़ाईमें मराठोंको जो क्षति उठानी पड़ी, मुगलोंका जो पराभव शुरू हो गया, तथा मुसलमान शासकोंमें जो अनेकता वर्तमान थी, उसके फलस्वरूप भारतमें ब्रिटिश शक्तिके उदयकी दिशामें काफी सहायता मिली।

पामर एण्ड कम्पनी कांड—यह कम्पनी साहूकारीकी एक फर्म थी, जिसकी एक शाखा निजाम हैदराबादमें भी थी। फर्मकी एक साझेदार महिला रमबोल्डका अभिभावक गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्स (१८१३–२३ ई०) था। ब्रिटिश पालियामेण्टने कानून बनाकर यूरोपीय लोगों द्वारा देशी रियासतोंसे लेन-देन करनेपर रोक लगा दी थी, फिर भी लार्ड हेस्टिंग्सने रमबोल्डके प्रति अपने स्नेहके कारण फर्मसे निजामको रुपया उधार देनेकी इजाजत दे दी। नये रेजिडेंट चार्ल्स मेटकाफने जब इस अनियमितताकी ओर संकेत किया, तब भी उसने कोई हस्तक्षेप नहीं किया। इस कांडके कारण लार्ड हेस्टिंग्सको गवर्नर-जनरलके पदसे हटा दिया जानेवाला था, परंतु राजा जार्ज चतुर्थके हस्तक्षेपसे उसे अपने पदपर बना रहने दिया गया। फिर भी इस घटनाके फलस्वरूप कोर्ट आफ डाइरेक्टर्ससे उसके सम्बन्ध हमेशाके लिए खराब हो गये।

पामर, जनरल सर आर्थर पावर (१८४०–१९०४ ई०)—१८५७ ई० में भारतीय सेनाका एक अफसर नियुक्त हुआ। उसने १८५७–५८ ई० में गदरका दमन करनेमें, १८६३-६४ ई० में मोहमंद कबीलेके खिलाफ लड़ाईमें, १८७४-७५ ई० में दफला अभियानमें, १८७८–७९ ई० में अफगान युद्धमें तथा १८९७–९८ ई० में तिरहके युद्धमें भाग लिया। वह १९०० से १९०२ ई० में अवकाश ग्रहण करने तक भारतका प्रधान सेनापति रहा। उसने ब्रिटिश भारतीय सेनामें कई सुधार किये।

पामर्स्टन, लार्ड—एक प्रमुख ब्रिटिश राजनेता, वह १८३० से १८४१ ई० तक इंग्लैण्डका विदेश-मंत्री रहा। १८३३ ई० में रूसने तुर्कीके साथ अनकियार स्केलेसीकी जो संधि की, और जिसके फलस्वरूप रूसने एक सीमा तक तुर्कीपर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया, उसकी उसके ऊपर तीव्र प्रतिक्रिया हुई। पामर्स्टनको भय था कि इस संधिका भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यके विरुद्ध उपयोग किया जायगा। इसलिए वह अफगानिस्तानको ब्रिटिश प्रभाव क्षेत्रमें लानेको उत्सुक था ताकि रूसपर दबाव डालनेके लिए अफगानिस्तानका उपयोग किया जा सके। लार्ड पामर्स्टनकी इस रूस-विरोधी नीतिने लार्ड आकलैंडको जिस नीतिपर चलनेके लिए विवश किया, उसके फलस्वरूप पहला अफगान-युद्ध (१८३९–४२ ई०) (दे०) हुआ।

पामीर—२५,००० फुट ऊँची एक पर्वत-शृंखला, जिसे संसारकी छत कहा जाता है। यह भारतको सोवियत संघसे अलग करती है। अनुमान लगाया जाता है कि आर्योंने इस पर्वत-शृंखलाको पार करके भारतमें प्रवेश किया। ऐतिहासिक कालमें कुषाण राजा कनिष्क (दे०) ने इस पर्वत-शृंखलाको पार करके चीनपर हमला करनेके लिए एक सेना भेजी। चौथी शताब्दी ई० में चीनी यात्री फाहियान इस पर्वतमालाको पार कर भारत आया। सातवीं शताब्दी ईसवीमें ह्यु,एन-त्सांग भारतसे लौटते समय इसी पर्वतमालाको लांघ कर चीन गया। ६५७ ई० में एक चीनी यात्री वांग ह्यु,एन-त्से, जो भारतमें बौद्ध तीर्थस्थानोंमें चीवरदान करने आया था, पामीरके रास्ते चीन वापस लौटा। मध्य एशियामें रूसी राज्यशक्तिका विस्तार होनेपर बीसवीं शताब्दीमें पामीरको नया सामरिक महत्त्व प्राप्त हो गया। (देखिये, 'पंजदेह'की घटना)।

पामीरा—सीरियाके रेगिस्तानमें एक नगर। कुषाणकालमें यह भारत और यूरोपके बीच व्यापारका महत्त्वपूर्ण केन्द्र था।

पारसी—जरथुस्त्रके अनुयायी एवं पारस देशके निवासियोंका एक छोटा-सा समुदाय। सातवीं शताब्दी ई० में जब मुसलमान अरबोंने पारस देशको जीता, वे वहाँसे भाग आये और भारतमें शरण ली। पारसी लोग अपने धर्म और संस्कृतिके अनुरक्षणके लिए बड़े सचेष्ट रहते हैं। वे पहले गुजरातके तटपर संजानमें बस गये, इसके बाद बम्बईमें आ बसे। भारतके अल्पसंख्यक वर्गोंमें पारसी सबसे धनी और सबसे उन्नतिशील माने जाते हैं। दादाभाई नौरोजी (दे०), जो ब्रिटिश पार्लियामेण्टके सदस्य निर्वाचित होनेवाले पहले भारतीय थे, पारसी थे। प्रसिद्ध उद्योगपति टाटा भी पारसी हैं। पारसी लोगोंका ज्योतिषशास्त्रमें भारी विश्वास होता है। उनके विवाह समारोहोंमें पुरोहित लोग पहले जेन्द भाषाके और फिर संस्कृत भाषाके मंत्र पढ़ते हैं।

पार्श्वनाथ—जैनोंके तेईसवें तीर्थंकर (मार्गदाता), वे महावीर स्वामी (दे०) से लगभग दो शताब्दी पहले बनारसके एक राजकुलमें उत्पन्न हुए। उन्होंने जैन धर्मका प्रवर्तन किया और चातुर्याम व्रत—अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा अपरिग्रहका उपदेश दिया। छठीं शताब्दी ई०पू० में

महावीरने उनके चार व्रतोंमें ब्रह्मचर्यका पाँचवा व्रत और जोड़ दिया।

पालपाकी लड़ाई–नेपाल युद्ध (१८१४–१६ ई०)के दौरान ब्रिटिश भारतीय सेना और गोरखाओंके बीच हुई। इस लड़ाईमें गोरखाओंने ब्रिटिश भारतीय सेनाको हरा दिया। परंतु अंतमें गोरखाओंको परास्त कर दिया गया।

पालवंश–बंगालमें इस वंशका उद्भव लगभग ७५० ई० में गोपालसे हुआ। कुछ समयसे बंगालमें अराजकता फैली हुई थी। इसीका अंत करनेके लिए जनताने गोपालको राजा निर्वाचित किया। इस वंशके सभी अठारह राजाओंके नामका अंत पाल शब्द से होता है, अतएव इस राजवंशको पालवंश कहा जाता है। इस वंशने बंगालपर लगभग ७५० से ११५५ ई० तक तथा बिहारमें ११९९ ई० में मुसलमानोंकी विजय तक राज्य किया। पालवंशके राजाओंकी वंशावली, विशेषरूपसे चौदहवें राजा रामपाल (लगभग १०७७–११२० ई०)के बाद अस्त-व्यस्त रूपमें मिलती है। फिर भी अस्थायी रूपसे निम्नोक्त वंशावलीको सही माना जा सकता है—(१) गोपाल (७५०–७० ई०), (२) धर्मपाल (७७०–८१० ई०), (३) देवपाल (८१०–५० ई०), (४) विग्रहपाल (अथवा सुरपाल) (८५०–५४ ई०), (५) नारायणपाल (८५४–९०८ ई०), (६) राज्यपाल (९०८–४० ई०), (७) गोपाल द्वितीय (९४०–६० ई०), (८) विग्रहपाल द्वितीय (९६०–८८ ई०), (९) महीपाल (९८८–१०३८ ई०), (१०) नयपाल (१०३८–५५ ई०), (११) विग्रहपाल तृतीय (१०५५–७० ई०), (१२) महीपाल द्वितीय (१०७०–७५ ई०), (१३) सुरपाल द्वितीय (१०७५–७७ ई०), (१४) रामपाल (१०७७–११२० ई०), (१५) कुमारपाल (११२०–२५ ई०), (१६) गोपाल तृतीय (११२५–४० ई०), (१७) मदनपाल (११४०–५५ ई०) तथा (१८) गोविन्दपाल (११५५–५९ ई०)।

पालवंशका दूसरा शासक धर्मपाल (दे०) इस वंशका सबसे महान् राजा था। उसने अपना राज्य कन्नौज तक विस्तृत किया और प्रतिहारों तथा राष्ट्रकूटोंके साथ त्रिकोणात्मक संघर्षमें अपने राज्यको सुरक्षित रखा। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी देवपाल (दे०)ने भी कई युद्धोंको जीता। वह अपनी राजधानी पाटलिपुत्रसे उठाकर बंगाल ले गया। उसकी राजसभामें सुमात्राके राजा बालपुत्रदेवका दूत आया था। देवपाल (८१०–५० ई०)के बाद पालवंशकी राज्यशक्ति राजाओंकी निर्बलता तथा गूर्जर-प्रतिहार राजाओंके आक्रमणोंके कारण क्षीण होने लगी। नवें राजा महीपाल प्रथमके राज्यकालमें चोलराजा राजेन्द्र (दे०)ने लगभग १०२३ ई० में गंगा तकके प्रदेशोंको जीता। रामपाल (१०७७–११२० ई०)के राज्यकालमें अस्थायी रूपसे पालोंकी राज्यशक्ति फिर उत्कर्षको प्राप्त होने लगी। किन्तु बारहवीं शताब्दीके मध्य तक सेन राजाओं (दे०)ने पाल राजाओंसे बंगाल छीन लिया। बादमें ११९९ ई० में बख्तियारके पुत्र (दे०) इख्तियारुद्दीन मुहम्मदके नेतृत्वमें मुसलमानोंने बिहारमें भी पालवंशको समाप्त कर दिया।

पालवंशी राजा बौद्ध थे और उनके राज्यकालमें बौद्ध शिक्षाकेन्द्रोंकी बड़ी उन्नति हुई। नालन्दा (दे०) तथा विक्रमशिला (दे०)के प्रसिद्ध महाविहारोंको उनका संरक्षण प्राप्त था। प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु अतिशा (दे०) दसवें पालराजा नयपालके राज्यकालमें उत्पन्न हुआ, जो तिब्बतके राजाके निमंत्रणपर तिब्बत गया था। पालवंशी राजा कला तथा वास्तुकलाके महान् प्रेमी थे और उन्होंने धीमान (दे०) तथा विटपाल (दे०) जैसे महान् शिल्पियोंको संरक्षण प्रदान किया। पाल-कालकी कोई इमारत शेष नहीं बची है, परन्तु उन्होंने जो बहुतसे जलाशय खुदवाये, उनमें कई, विशेष रूपसे दीनाजपुर जिलेमें बचे हुए हैं।

पालवंश (कामरूपका)–बंगाल तथा बिहारपर राज्य करनेवाले पालवंशसे यह भिन्न था। इसकी उत्पत्ति कामरूपमें लगभग १००० ई० में ब्रह्मपालसे हुई। कहा जाता है कि उसे जनताने स्वयं राजा चुना। उसने जिस राजवंशको चलाया, उसमें सात राजा—रत्नपाल, इन्द्रपाल, गोपाल, हर्षपाल, धर्मपाल तथा जयपाल हुए। इन राजाओंने कामरूपपर ग्यारहवीं शताब्दीके प्रारम्भसे बारहवीं शताब्दीके प्रारम्भ तक राज्य किया। दूसरे राजा रत्नपालने २६ वर्षसे अधिक समय तक राज्य किया। उसने दुर्जयको अपनी नयी राजधानी बनाया। दुर्जयकी पहचान अभी तक नहीं हो सकी है। उसने 'परमेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज'की पदवी धारण की। अंतिम राजा जयपालको संभवतः बंगालके राजा रामपाल (दे०)ने अपदस्थ कर दिया। रामपालके सम्बन्धमें कहा जाता है कि उसने कामरूपको जीता था।

पिगट, लार्ड–मद्रासका गवर्नर (१७७५–७८ ई०)। मद्रासमें कम्पनीके पदाधिकारियोंमें जो भ्रष्टाचार व्याप्त था, उसे वह समाप्त नहीं तो रोकना अवश्य चाहता था। परन्तु उसके अधीनस्थ भ्रष्टाचारी पदाधिकारी उस ईमानदार गवर्नरसे कहीं अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुए।

उन्होंने उसे अपदस्थ करके कैदखानेमें डाल दिया। मद्रासके कैदखानेमें ही उसकी मृत्यु हो गयी।

पिंडारी (पेंढारी)—अनियमित सवार, जो मराठा सेनाओंके साथ-साथ चलते थे। उन्हें कोई वेतन नहीं दिया जाता था और शत्रुके देशको लूटनेकी इजाजत रहती थी। यद्यपि कुछ प्रमुख पेंढारी नेता पठान थे, तथापि सभी जातियोंके खूंखार और खतरनाक व्यक्ति उनके दलमें सम्मिलित थे। उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भ-में उनको शिन्देका संरक्षण प्राप्त था। उसने उनको नर्मदा घाटीके मालवा क्षेत्रमें जमीनें दे रखी थीं। वहां से वे मध्यभारतमें दूर-दूर तक धावे मारते थे और अमीरों तथा गरीबोंको समान रूपसे लूटा करते थे। १८१२ ई० में उन्होंने बुंदेलखंडमें, १८१५ ई० में निजाम-के राज्यमें तथा १८१६ ई० में उत्तरी सरकारमें लूटपाट की। इस तरह उन्होंने ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यकी शांति और समृद्धिके लिए खतरा उत्पन्न कर दिया। अतएव १८१७ ई० में गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्सने उनके विरुद्ध अभियानके लिए एक बड़ी सेना संगठित की। यद्यपि पेंढारी-विरोधी अभियानके फलस्वरूप तीसरा मराठा-युद्ध (दे०) छिड़ गया तथापि पेंढारियोंका दमन कर दिया गया। उनके पठान नेता अमीर खांको टोंकके नवाबके रूपमें मान्यता प्रदान कर दी गयी। उसने अंग्रेजोंकी अधीनता स्वीकार कर ली। पेंढारियोंका दूसरा महत्त्वपूर्ण नेता चित्तू था। उसका पीछा किया जानेपर वह जंगलोंमें भाग गया, जहां एक चीतेने उसे खा डाला।

पिटका इंडिया ऐक्ट—विलियम पिट कनिष्ठने, जो उस समय इंग्लैण्डका प्रधान मंत्री था, प्रस्तावित किया और १७८४ ई० में पास हुआ। इसका उद्देश्य १७७३ ई० के रेग्युलेटिंग ऐक्टके कुछ स्पष्ट दोषोंको दूर करना था। इसके द्वारा भारतमें ब्रिटिश राज्यपर कम्पनी और इंग्लैण्डकी सरकारका संयुक्त शासन स्थापित कर दिया गया। 'कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स' (दे०)के हाथमें वाणिज्यका नियंत्रण तथा नियुक्तियाँ करनेका कार्य रहने दिया गया, परन्तु कोर्ट आफ प्रोप्राइटर्स (दे०)के हाथसे कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सका चुनाव करनेके अतिरिक्त सब अधिकार छीन लिये गये। एक बोर्ड आफ कंट्रोलकी स्थापना कर दी गयी। इसमें छह अवैतनिक प्रिवी कौंसिलर होते थे। उनमेंसे एकको अध्यक्ष बना दिया जाता था और उसे निर्णायक मत प्राप्त होता था। अब कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स बोर्डकी पूर्व अनुमति-के बिना कोई भी खरीता भारत नहीं भेज सकता था। इसी प्रकार भारतसे जो खरीते आते थे, वे बोर्डके सामने रखे जाते थे। बोर्ड यह आग्रह भी कर सकता था कि कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सकी सहमति न होनेपर भी केवल उसीके आदेश भारत भेजे जायें। गवर्नर-जनरलकी नियुक्ति पहलेकी भाँति कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स करता था, परन्तु इंग्लैण्डका राजा उसे वापस बुला सकता था। गवर्नर-जनरलकी कौंसिलके सदस्योंकी संख्या चारसे घटाकर तीन कर दी गयी, जिनमेंसे एक प्रधान सेनापति होता था। कौंसिलके सहित गवर्नर-जनरलको युद्ध, राजस्व तथा राजनीतिक मामलोंमें बम्बई तथा मद्रास प्रेसीडेंसीपर अधिक नियंत्रण प्रदान कर दिया गया। कौंसिलके सहित गवर्नर-जनरलको बोर्ड आफ कंट्रोलकी सहमतिसे कोर्ट अथवा उसकी गुप्त समितिके द्वारा भेजे गये किसी स्पष्ट निर्देशके बिना युद्धकी घोषणा करने अथवा युद्ध शुरू करनेके उद्देश्यसे कोई संधि वार्ता चलानेसे रोक दिया गया। ऐक्टमें बादमें एक संशोधन कर दिया गया, जिसके द्वारा गवर्नर-जनरलको जब वह आवश्यक समझे, अपनी कौंसिलके निर्णयको अस्वीकार कर देनेका अधिकार दे दिया गया।

पिट, विलियम (कनिष्ठ)—ब्रिटेनका १७८३ ई० से १८०१ ई० तक प्रधान मंत्री। उसने मुख्यरूपसे भारतमें ब्रिटिश प्रशासनके प्रश्नपर चुनाव जीता। १७७३ ई० का रेग्यु-लेटिंग ऐक्ट पास होनेके बाद जो एक दशक बीता था, उसमें भारतमें ब्रिटिश प्रशासनके अनेक दोष उजागर हुए थे और उनको दूर करना आवश्यक समझा जा रहा था। अतएव प्रधान मंत्री नियुक्त होनेके बाद पिटने जो पहला महत्त्वपूर्ण कदम उठाया वह इंडिया ऐक्ट (दे०) पास करना था। इस ऐक्टके द्वारा भारतके प्रशासनपर ब्रिटिश पार्लियामेण्टका निमंत्रण अधिक दृढ़ बना दिया गया, एक बोर्ड आफ कंट्रोलकी स्थापना की गयी तथा बंगालके गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौंसिलको बम्बई तथा मद्रास प्रेसीडेंसीके आंतरिक तथा बाह्य प्रशासनपर नियंत्रण करनेके अधिक अधिकार प्रदान किये गये।

पिटका इंडिया ऐक्ट पास होनेपर वारेन हेस्टिंग्सने, जो उस समय बंगालका गवर्नर-जनरल था, इस्तीफा दे दिया। इसके बाद ही ब्रिटिश पार्लियामेण्टमें भारतीय प्रशासनका सर्वेक्षण आरम्भ किया गया। पिटने नंदकुमार (दे०)की फांसी तथा रुहेला युद्ध (दे०)के प्रश्नपर वारेन हेस्टिंग्सके पक्षमें वोट दिया, किन्तु चेतसिंह (दे०) तथा अवधकी बेगमों (दे०)के प्रश्नपर उसके विरुद्ध वोट दिया। अतएव १७८८ ई० में हेस्टिंग्सपर महाभियोग चलाया गया, यद्यपि सात सालके मुकदमेके बाद उसे बरी कर दिया गया। किन्तु पिटने वारेन हेस्टिंग्सको 'पिअर'की पदवीसे सम्मानित

करना स्वीकार नहीं किया। इससे प्रकट होता है कि उसके बारेमें उसका क्या मूल्यांकन था।

पिटके प्रधान मंत्रित्वकालमें लार्ड कार्नवालिस (दे०) (१७८६–९३ ई०), सर जान शोर (दे०) (१७९३–९८ ई०) तथा लार्ड वेल्जली (दे०) (१७९८–१८०५ ई०) गवर्नर-जनरल रहे। लार्ड कार्नवालिससे पिटके सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण थे और उसने उसके बंगालमें स्थायी बंदोबस्त करनेके प्रस्तावका समर्थन किया। उसने लार्ड वेल्जलीका भी उसके प्रशासनकालके प्रारम्भिक वर्षोंमें समर्थन किया। परन्तु जब लार्ड वेल्जलीने युद्धोंका एक अंतहीन सिलसिला जारी कर दिया तो पिटने उसका समर्थन करना बंद कर दिया। १८०५ ई० में लार्ड वेल्जलीको वापस बुला कर उसके स्थानपर लार्ड कार्नवालिसको भेजा गया। १८०६ ई० में पिटकी मृत्यु हो गयी।

पितनिक–लोगोंका उल्लेख अशोकके शिलालेख संख्या ५ तथा ८ में मिलता है। ये लोग उसके साम्राज्यकी पश्चिमी सीमाओंपर रहते थे।

पिनहेरो, पादरी एमैनुएल–एक जेशूइट पादरी। १५९५ ई० में पादरी जेरोम जैवियरके साथ बादशाह अकबरके दरबारमें गया और उसके राज्यकालके अंतिम वर्षोंमें वहीं रहा। उन्हें बादशाहने अपनी प्रजाको बपतिस्मा देकर ईसाई बनानेकी इजाजत दे दी। पिनहेरोने अपने देशको जो पत्र लिखे, उनसे उस युगके इतिहासपर अच्छी रोशनी पड़ती है।

पियर्स, कर्नल ह्यु–ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें नियुक्त एक फौजी अफसर। उसने पहले मैसूर-युद्ध (१७६७–६९ ई०)में स्थल मार्ग द्वारा बंगालसे मद्रास जानेवाली एक सेनाका नेतृत्व किया था।

पीर मुहम्मद–तैमूर (दे०)का पौत्र। उसने १३९७ ई० में तैमूरकी चढ़ाईसे एक साल पहले आकर कच्छ और मुलतानको जीत लिया। इस प्रकार उसने तैमूरके हमलेके लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया।

पीर मुहम्मद खाँ–शुरूमें बैरम खाँ (दे०)का नौकर। पानीपतकी दूसरी लड़ाई (दे०) (१५५६ ई०)के बाद हेमू (दे०)की पत्नीका पीछा करनेके लिए भेजा गया, जो खजाना लेकर भाग गयी थी। वापस लौटनेपर वह बैरम खाँके विरोधी दलमें सम्मिलित हो गया। इसपर बैरम खाँ उसका विरोधी हो गया, उसका पद छीन लिया गया और उसे गुजरात भेज दिया गया। यह समझा गया कि पीर मुहम्मद खाँको बैरम खाँकी प्रतिहिंसाका शिकार बनाया गया है और बैरम खाँ-विरोधी दलके समर्थनसे उसे शीघ्र दरबारमें वापस बुला लिया गया। उसे बैरम खाँकी गतिविधियोंपर नजर रखनेके लिए नियुक्त किया गया। १५६० ई० में बैरम खाँका पतन हो जाने तथा उसकी हत्या कर दिये जानेपर, पीर मुहम्मद खाँको अदहम खाँका सहायक सेनापति बनाकर मालवापर आक्रमण करनेके लिए भेजा गया और मालवाको जीत लिया गया। पीर मुहम्मद खाँने मालवामें बंदी बनाये गये मुसलमानोंके साथ अत्यन्त क्रूरताका व्यवहार करके अपनेको कलंकित किया। अदहम खाँके हटा दिये जानेपर वह मालवाका सूबेदार बनाया गया। इसके बाद उसने खानदेशपर हमला किया, किन्तु उसकी फौजोंको खदेड़ दिया गया। नर्मदाको दुबारा पार करते समय वह डूब कर मर गया।

पीस, डैमिनगोस–एक पुर्तगाली यात्री, जो कृष्णदेव राय (दे०)के राज्यकालमें विजयनगर आया। उसने राजाके स्वभाव तथा उस कालकी आर्थिक तथा सामाजिक दशाका रोचक वर्णन किया है। उसका विश्वास था कि विजयनगर उतना ही बड़ा है, जितना बड़ा रोम और यहाँ असंख्य लोग निवास करते हैं। वह उसे संसारका सबसे सम्पन्न नगर मानता था। उसने राजाके महलमें एक कमरा फर्शसे लेकर ऊपर छत तक समूचा हाथीदाँतका बना देखा। राजसभाका शिष्टाचार बड़ा विशद था और राजाके पास बहुत विशाल सेना थी।

पुरनिया–मैसूर निवासी एक ब्राह्मण, जो अपनी योग्यताके बलपर उन्नति करके टीपू सुल्तान (दे०) (१७८२–९९ ई०)का दीवान बन गया। १७९९ ई० में उसकी पराजय तथा मृत्युपर विजयी अंग्रेजोंने मैसूर राज्यके एक हिस्सेमें उसके पुराने हिन्दू राजाके जिस नाबालिग पौत्रको गद्दीपर बिठाया, उसका दीवान पुरनियाको नियुक्त कर दिया। पुरनिया बहुत योग्य प्रशासक सिद्ध हुआ और उसने बालक राजाकी ओरसे राज्यका प्रशासन बड़ी कुशलतासे किया।

पुरन्दरकी संधि–मार्च १७७६ ई० में मराठों तथा ईस्ट इंडिया कम्पनीके बीच हुई। बम्बई सरकार और अपनेको पेशवा माननेवाले राघोबा (दे०)के बीच १७७५ ई० की सूरतकी संधि (दे०)के फलस्वरूप कम्पनी और मराठोंके बीच युद्ध छिड़ गया था। इस युद्धको रोकनेके लिए कम्पनीने अपने प्रतिनिधि कर्नल अपटनको मराठोंसे संधि-वार्ताके लिए भेजा था। पुरन्दरकी संधिके द्वारा अंग्रेजोंने इस शर्तपर राघोबाका साथ छोड़ना स्वीकार कर लिया कि उन्हें साष्टीको अपने अधिकारमें रखने दिया जायगा। कोर्ट आफ

डाइरेक्टर्सने इस संधिको नामंजूर कर दिया और मराठोंसे फिर युद्ध छिड़ गया। यह युद्ध १७८२ ई० तक चलता रहा और साल्बाईकी संधिके द्वारा समाप्त हुआ। अंग्रेजोंने साल्बाईमें पुरन्दरकी संधिकी सभी शर्तें स्वीकार कर लीं और मराठोंसे सुलह कर ली।

पुराण—धार्मिक अनुश्रुतियों तथा प्राचीन ऐतिहासिक आख्यानोंके भंडार। पुराण अठारह हैं, जिनमेंसे वायु, विष्णु, ब्रह्मांड, मत्स्य तथा भागवत पुराणोंमें राजाओंकी वंशावलियाँ मिलती हैं जो अत्यन्त मूल्यवान हैं। पुराणोंका काल-निर्णय कठिन है। पुराणोंमें भविष्य, ब्रह्मांड तथा मत्स्य पुराण सबसे प्राचीन हैं और उनका रचनाकाल ई० पू० चौथी शताब्दी भी हो सकता है। परन्तु पुराणोंमें बहुत-से अंश बहुत बादके काल तक जुड़ते रहे और उन्हें वर्तमान रूप चौथी तथा पाँचवीं शताब्दी ई० में प्राप्त हुआ। पूर्वोक्त पुराणोंके अतिरिक्त अन्य तेरह पुराण हैं—ब्रह्म, पद्म, नारदीय, मार्कण्डेय, आग्नेय, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म तथा गरुड़ पुराण।

पुरी—हिन्दुओंका पवित्र तीर्थस्थान, जो उड़ीसाके समुद्रतटपर स्थित है। यहाँ जगन्नाथजीका विशाल मंदिर है, जिसे उड़ीसाके राजा अवन्तीवर्मा चोलगंग (दे०) (१०७६—११४८ ई०)ने बनवाया।

पुरु—इस जनका उल्लेख वेदोंमें मिलता है। वे आर्यजातिके अन्तर्गत थे, फिर भी 'वैरीकी भाषा' बोलते थे। आर्योंके अन्य जनों (कबीलों)से उनका युद्ध चलता रहता था। वे अन्य जनोंके साथ सरस्वती नदीके तटपर रहते थे। यह ज्ञात नहीं है कि ३२६ ई०पू० में झेलम नदीके तटपर सिकंदरकी सेनाओंका युद्धभूमिमें मुकाबला करनेवाले राजा पुरुसे प्राचीन पुरुजनका क्या सम्बन्ध था।

पुरु—यूनानी इतिहासकारोंने इसका नाम पोरस लिखा है। उनके वर्णनानुसार मकदूनियाके राजा सिकन्दरने ३२६ ई० पू० में जब पंजाबपर आक्रमण किया, उसका राज्य झेलम और चिनाब नदियोंके बीचमें स्थित था। पुरु इस बातका उदाहरण प्रस्तुत करता है कि भारतीय क्षत्रिय राजा शूरवीर और स्वाभिमानी होते थे। पुरुके पड़ोसी, तक्षशिलाके राजा आम्भिने, जिसका राज्य झेलमके पश्चिममें था, सिकन्दरकी अधीनता स्वीकार कर ली। किन्तु पुरुने सिकन्दरके आगे सिर झुकानेसे इनकार कर दिया और उससे युद्धभूमिमें भेंट करनेका निश्चय किया। सिकन्दरने इस बातका पता लगा लिया था कि उसके शत्रुका मुख्य बल हाथी हैं और उसने अपनी सेनाको बता दिया था कि उनका सामना किस रीतिसे करना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि पुरुने इस बातका पता लगानेकी कोशिश नहीं की कि यवन सेनाकी शक्तिका क्या रहस्य है। यवन सेनाका मुख्य बल उसके द्रुतगामी अश्वारोही तथा घोड़ोंपर सवार फुर्तीले तीरंदाज थे। पुरुको अपनी वीरता और हस्तिसेनाका विश्वास था और उसने सिकन्दरको झेलम नदी पार करनेसे रोकनेकी चेष्टा नहीं की। सिकन्दरके द्रुतगामी अश्वारोही तथा घोड़ोंपर सवार तीरंदाज जब सामने आ गये तब जाकर उसने झेलमके पूर्वी तटपर करीके मैदानमें व्यूहरचना करके उनका सामना किया। उसकी धीरे-धीरे चलनेवाली पदाति सेना सबसे आगे थी, उसके पीछे हस्तिसेना थी। उसने जिस ढंगकी वर्गाकार व्यूहरचना की थी उसमें सेनाके लिए तेजीसे गमन करना सम्भव नहीं था। उसके धनुषधारी सैनिकोंके धनुष इतने बड़े थे कि उन्हें चलानेके लिए जमीनपर टेकना पड़ता था। सिकन्दरने अपनी द्रुतगामी सेनाकी गतिशीलताका पूरा लाभ उठाया और उसकी इस रणनीतिने उसे युद्धमें विजयी बना दिया। पुरु बड़ी वीरतासे लड़ा और घायल हो जाने पर भी उसने युद्धभूमिमें पीठ नहीं दिखायी। यवन सैनिकोंने उसे बंदी बना लिया। सिकन्दरने बुद्धिमत्तासे काम लेकर उसे मित्र राजा बना लिया। उसने उसे पूरा राजोचित सम्मान प्रदान किया और उसका राज्य लौटा दिया और शायद पंजाबमें जीते गये कुछ राज्य भी उसे सौंप दिये। सिकंदरकी वापसीके बाद पुरुकी क्या भूमिका रही, यह ज्ञात नहीं है। पंजाबको यवनोंसे चन्द्रगुप्त मौर्य (दे०)ने मुक्त कराया।

पुरुषपुर—आधुनिक पेशावरका प्राचीन नाम, जो महान् कुषाण राजा कनिष्क (दे०)की राजधानी थी।

पुरुषोत्तम—एक हिन्दू दर्शनवेत्ता, जिसको बादशाह अकबरने लगभग १५८० ई०में फतेहपुर सीकरीके इबादतखानेमें वाद-विवादके लिए आमंत्रित किया था।

पुरुषोत्तम गजपति—उड़ीसाका एक राजा (१४७०—९७ ई०)। वह कपिलेन्द्र वंश (दे०)का था। उसे विजयनगरके राजा तथा बहमनीके सुल्तानसे युद्ध करना पड़ा और अपने राज्यकालके प्रारम्भमें वह उनसे पराजित हुआ। उन्होंने उसके राज्यका गोदावरीसे दक्षिणका भाग छीन लिया। परन्तु पुरुषोत्तम गजपतिने अपनी मृत्युसे पूर्व गोदावरी तथा कृष्णा नदीके दोआबपर फिरसे अधिकार कर लिया और कोंडविन्दु तक अपने राज्यका विस्तार कर लिया।

पुरोहित—राजाका धार्मिक परामर्शदाता और धर्मानुष्ठाता। हिन्दू राजतंत्रमें प्रशासनपर उसका काफी प्रभाव होता था।

पुर्तगाली—वास्को द गामाके नेतृत्वमें ये लोग चार जहाजोंपर

सवार होकर २० मई १४९८ ई० को भारत पहुँचे। वे समुद्रमार्गसे आशा अंतरीपका चक्कर लगाकर भारत पहुँचनेवाले पहले यूरोपीय व्यापारी थे। उन्होंने अपने जहाजोंका लंगर कालीकट में डाला। वहाँके हिन्दू राजाने, जिसे जमोरिन कहते थे, उनका स्वागत किया। वे वहाँसे कोचीन और कन्नानोर गये और सकुशल पुर्तगाल वापस लौट गये। पुर्तगाली भाग्यवशात् बड़े अच्छे मौकेपर भारत आये थे, उस समय उत्तरी भारतमें दिल्लीकी सल्तनत और दक्खिनमें बहमनी राज्य दोनों विघटनकी अवस्थामें थे। उस कालमें भारत जिन राज्योंमें विभाजित था, उनमें से किसीके पास नौसेना नहीं थी। किसी राज्यने नौसेना संगठित करनेका विचार तक नहीं किया था। इसलिए भारतमें पुर्तगालियोंके बढ़ावमें सिर्फ वे अरब सौदागर बाधक थे जिनके हाथमें भारतका पश्चिमसे होनेवाला सारा व्यापार था। वास्को द गामा जब १५०२ ई० में दुबारा आया तब जमोरिनसे उसका संघर्ष हो गया, क्योंकि उसने अरब सौदागरोंके हाथसे सारा व्यापार छीनकर पुर्तगालियोंके हाथमें सौंप देनेसे इनकार कर दिया। किन्तु भारतके साथ पुर्तगालियोंका व्यापार बढ़ता रहा और १५०५ ई० में डोम फ्रांसिस्को द आलमीदा (दे०)को भारतमें पहला पुर्तगाली वाइसराय (प्रतिनिधि) नियुक्त किया गया। १५०८ ई० में उसने अरब सागरमें एक नौसैनिक लड़ाईमें मिस्र और गुजरातके सुल्तानोंके एक संयुक्त बेड़ेको हरा दिया और इस प्रकार समुद्री मार्गोंपर पुर्तगाली प्रभुत्व स्थापित कर लिया। इसके फलस्वरूप अगले पुर्तगाली गवर्नर आलबुकर्कको पश्चिमसे हिन्द महासागरमें प्रवेश करनेके सभी मार्गोंपर अपने अड्डे स्थापित करने तथा अरबोंके जहाजोंको समुद्रसे मार भगानेमें सफलता प्राप्त हुई। उसने १५१० ई० में बीजापुरके सुल्तानसे गोआका टापू छीन लिया। आलबुकर्कने १५११ ई० में मलक्कापर तथा १५१५ ई० में ओर्मुजपर भी अधिकार कर लिया। इससे पहले अदनपर अधिकार करनेके प्रयत्न में वह विफल रहा था। पुर्तगालियोंने गोआ के साथ-साथ भारतके पश्चिमी तटपर डामन और डयू नामक दो और स्थानोंपर कब्जा कर लिया और इस प्रकार भारतमें एक प्रकारसे अपना छोटा-सा साम्राज्य स्थापित कर लिया, जिसपर वे लोग अब तक शासन करते रहे। भारतीय बस्तियोंपर उनका शासन अत्यन्त दमनकारी रहा। उन्होंने विधर्मियोंपर, विशेषरूपसे मुसलमानोंपर क्रूर अत्याचार किये और उनको दंडित करनेके लिए धार्मिक अदालतोंकी स्थापना की। पुर्तगाली संख्यामें बहुत थोड़े थे जो उनके साम्राज्यके प्रसारमें सबसे बड़ी कमी थी। आलबुकर्कने इस बाधाको दूर करनेके लिए पुर्तगाली नाविकोंको अपहृत भारतीय विवाहिता स्त्रियों तथा कन्याओंसे विवाह करनेके लिए प्रोत्साहित किया। उसका ख्याल था कि इस प्रकारसे वर्णसंकरोंकी एक जाति उत्पन्न करके पुर्तगाली भारतमें अपना शासन बनाये रखनेमें सफल हो जायेंगे, किन्तु उसका यह मनोरथ पूरा न हुआ।

सत्रहवीं शताब्दीमें डच और अंग्रेज व्यापारी भी भारत पहुँचे। अंग्रेज और पुर्तगाली व्यापारियोंमें स्थल और समुद्रपर दीर्घकाल तक लड़ाइयाँ चलती रहीं, जिनके फलस्वरूप पुर्तगालियोंके हाथसे न केवल व्यापार, बल्कि समुद्रके ऊपरसे भी एकाधिकार छिन गया। यद्यपि पुर्तगाली मुगल बादशाहों तथा मराठोंके आक्रमणसे अपने भारतीय साम्राज्यकी रक्षा करनेमें सफल रहे, तथापि यह निश्चित था कि उनके भारतीय साम्राज्यका वही परिणाम हुआ होता जो फ्रांसीसी साम्राज्यका हुआ और वह ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य द्वारा अवश्य निगल लिया जाता, मगर नेपोलियनके विरुद्ध युद्धमें पुर्तगाल इंग्लैण्डका मित्रराष्ट्र था। इस वजहसे फ्रांस और हालैंडको जबकि उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें भारतमें अपने साम्राज्यसे हाथ धोना पड़ा, और वे केवल कुछ व्यापारिक केन्द्रोंपर अपना कब्जा बनाये रख सके, पुर्तगालने गोआ, डामन और डयूपर अपना स्वतंत्र साम्राज्य बनाये रखा। स्वतंत्र भारत अपने भूखंडपर पुर्तगाली साम्राज्यको जारी रखनेकी इजाजत नहीं दे सकता था, अतएव जब पुर्तगाल द्वारा शांतिपूर्ण रीतिसे अपनी भारतीय बस्तियोंकी शासन-सत्ता हस्तांतरित कर देनेकी दीर्घकालीन समझौता वार्ता विफल हो गयी, तब १९६० ई० में उनसे वह भूभाग बल-पूर्वक आजाद करा लिया गया।

पुलकेशी प्रथम–दक्षिणमें वातापी अथवा बादामीमें चालुक्य वंश (दे०)का प्रवर्तक। वह छठी शताब्दीके लगभग मध्यकालमें हुआ था।

पुलकेशी द्वितीय–पुलकेशी प्रथमका पौत्र तथा चालुक्य वंश (दे०)का चौथा राजा, जिसने ६०९–४२ ई० तक राज्य किया। वह महाराजाधिराज हर्षवर्धनका समसामयिक तथा प्रतिद्वन्द्वी था। उसने ६२० ई० में दक्षिणपर हर्षका आक्रमण विफल कर दिया। वह महान् योद्धा था और उसने गुजरात, राजपूताना तथा मालवाको विजय किया। उसने कृष्णा और गोदावरी नदियोंके बीच स्थित वेंगिका राज्य जीता और अपने भाई कुब्ज विष्णुवर्धन (दे०)को वहाँ अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया।

उसने दक्षिण भारतके चोल, पांड्य तथा केरल राज्योंको अपने अधीन कर लिया, पल्लव राजाओंसे भी दीर्घकाल तक युद्ध किया और लगभग ६०९ ई० में राजा महेन्द्रवर्माको परास्त कर दिया। उसकी कीर्ति सुदूरवर्ती फारस देश तक पहुँच गयी थी। फारसके शाह खुसरो द्वितीयने ६२५–२६ ई० में पुलकेशी द्वितीयके द्वारा भेजे गये दूतमंडलसे भेंट की थी। इसके बदलेमें उसने भी अपना दूतमंडल पुलकेशी द्वितीयकी सेवामें भेजा। अजंता-की गुफा संख्या १ में एक भित्तिचित्रमें फारसके दूतमंडलको पुलकेशी द्वितीयके सम्मुख अपना परिचयपत्र प्रस्तुत करते हुए दिखाया गया है। चीनी यात्री ह्यूएन-त्सांग ६४१ ई० में उसकी राजसभामें आया था और उसके राज्यका भ्रमण किया था। उसने पुलकेशी द्वितीयके शौर्य और उसके सामंतोंकी स्वामिभक्तिकी प्रशंसा की है। किन्तु ६४२ ई० में इस शक्तिशाली राजाको पल्लव राजा नरसिंहवर्माने एक युद्धमें पराजित कर मार डाला। उसने उसकी राजधानी पर भी अधिकार कर लिया और कुछ समय के लिए उसके वंशका उच्छेद कर दिया।

पुलिस, भारतीय—सर्वप्रथम ब्रिटिश भारतमें इस विभागकी स्थापना गवर्नर-जनरल लार्ड कार्नवालिस (१७८६–९३ ई०) ने की। कलकत्ता, ढाका, पटना तथा मुर्शिदाबादमें चार अधीक्षकोंके अधीन पुलिस रखी गयी। क्रमशः प्रत्येक जिलेमें एक पुलिस अधीक्षककी नियुक्ति हुई। उसके अधीन प्रत्येक सब-डिवीजनमें एक उप-पुलिस अधीक्षक, प्रत्येक सर्किलमें एक पुलिस इंसपेक्टर तथा प्रत्येक थानेमें एक थानाध्यक्ष होता था। थानाध्यक्षके अधीन कई कांस्टेबिल होते थे। इन सबको राज्यसे वेतन दिया जाता था और वे सामूहिकरूपसे अपने-अपने क्षेत्रमें शांति और व्यवस्था बनाये रखनेके लिए जिम्मेदार होते थे। गाँवोंमें चौकीदार रखे जाते थे जिन्हें सरकार मामूली वेतन देती थी। उनका काम अपने क्षेत्रके बदमाशोंपर नजर रखना और कोई दंडनीय अपराध होनेपर उसकी सूचना थानाध्यक्षको देना होता था। कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रासके प्रेसीडेंसी नगरोंमें पुलिस कमिश्नरके अधीन एक संयुक्त पुलिसदल होता था। पुलिस कमिश्नर सीधे पुलिस विभागसे सम्बन्धित मंत्रीके अधीन होता था और कानून तथा व्यवस्था बनाये रखना तथा विभागीय प्रशिक्षण प्रदान करना उसकी जिम्मेदारी होती थी। अब भारतीय प्रशासकीय सेवाके सदस्योंकी भाँति पुलिस अधीक्षकोंकी भरती भी मुख्यरूपसे अखिल भारतीय प्रतियोगिता परीक्षाके आधारपर होती है, किन्तु अभी तक कोई अखिल भारतीय पुलिस सेवा नहीं गठित की गयी है।

१८६१ ई० के पुलिस ऐक्टके द्वारा पुलिसको प्रांतीय संगठन बना दिया गया और उसका प्रशासन सम्बन्धित प्रांतीय सरकारोंके जिम्मे कर दिया गया। प्रत्येक प्रांतके पुलिस संगठनका प्रधान पुलिस महानिरीक्षक होता है, जो उसका नियंत्रण करता है। सारे देशमें पुलिस संगठनका सबसे बड़ा दोष यह था कि पुलिस अफसरोंमें शिक्षाका अभाव तथा भ्रष्टाचारका बोलबाला रहता था। १९०२ ई० में पुलिस प्रशासनकी जाँच करनेके लिए एक कमीशन-की नियुक्ति की गयी और उसकी सिफारिशोंके आधारपर पुलिस दलमें सुधार करने और उसका मनोबल ऊँचा उठाने-के लिए कदम उठाये गये। एक खुफिया जाँच विभागकी स्थापना की गयी तथा अंतरप्रांतीय समन्वयके लिए केन्द्रीय सरकारके गृह विभागके अधीन केन्द्रीय खुफिया विभाग गठित किया गया। स्वतंत्रता-प्राप्तिके बाद पुलिस दलमें अधिक शिक्षित व्यक्तियोंको आकर्षित करनेके उद्देश्यसे वेतन-मानमें सुधार कर दिया गया है और सुविधा-ओंमें काफी वृद्धि कर दी गयी है। पुलिस दलके सदस्योंमें यह भावना उत्पन्न करनेका प्रयास किया गया है कि वे जनताके सेवक हैं, किन्तु इसमें सीमित सफलता ही मिली है।

पुष्यगुप्त—एक वैश्य, जिसे चंद्रगुप्त मौर्य (दे०)ने सौराष्ट्रमें अपना राष्ट्रीय प्रतिनिधि नियुक्त किया था, जिसने वहाँकी एक नदीपर बाँध बनाकर प्रसिद्ध सुदर्शन झीलका निर्माण कराया।

पुष्यभूति वंश—छठी शताब्दी ई० में दिल्लीके निकट थानेश्वरमें पुष्यभूतिसे, जो शिवका उपासक था, इस वंशका प्रारम्भ हुआ। इस वंशमें तीन राजा हुए—प्रभाकरवर्धन और उसके दो पुत्र राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन। प्रभाकर-वर्धन (दे०)की मृत्युपर उसके सिंहासनपर उसका बड़ा पुत्र राज्यवर्धन (दे०) बैठा। किन्तु राज्याभिषेकके बाद ही राज्यवर्धनको युद्धोंमें फँस जाना पड़ा और उसका वध कर दिया गया। तब उसका यशस्वी छोटा भाई हर्षवर्धन (दे०) (६०६–४७ ई०) शासक हुआ, जिसने चालीस वर्ष तक राज्य करके अपनी कीर्तिका विस्तार किया। वह निस्संतान था, अतः उसकी मृत्युके साथ पुष्य-भूति वंशका अन्त हो गया।

पुष्यमित्र—एक जनजाति, जिसका विकास और निवास अज्ञात है। पाँचवीं शताब्दीके प्रारम्भमें कुमारगुप्त प्रथम (दे०)के राज्यकालमें पुष्यमित्रोंने गुप्त साम्राज्यपर आक्रमण कर दिया। युवराज स्कन्दगुप्त (दे०)ने उन्हें

परास्त कर दिया, परन्तु इसके लिए उसे भयंकर युद्ध करना पड़ा और कुछ रातों उसे जमीनपर हाथोंका तकिया लगाकर सोना पड़ा। गुप्त साम्राज्यके पतनका एक कारण पुष्यमित्रोंका आक्रमण भी था।

पुष्यमित्र शुंग–मौर्यवंशको पराजित करनेवाला तथा शुंग-वंश (लगभग १८५ ई० पू०) का प्रवर्तक। वह जन्मसे ब्राह्मण और कर्मसे क्षत्रिय था। मौर्यवंशके अंतिम राजा बृहद्रथने उसे अपना सेनापति नियुक्त कर दिया। बृहद्रथ जब एक सैन्य-प्रदर्शनका निरीक्षण कर रहा था, पुष्यमित्रने उसे मरवा दिया और स्वयं सिंहासनपर बैठ गया। उसने ३८ वर्ष तक राज्य किया। यह सरल कार्य नहीं था। साम्राज्यपर दक्षिण-पूर्वसे उड़ीसाके राजा खारवेल (दे०)ने तथा उत्तरसे भारतीय यवन राजा मिनाण्डर (दे०)ने आक्रमण किया। पुष्यमित्रने दोनों आक्रमणोंको विफल कर दिया, उसने विशाल साम्राज्यको खंडित नहीं होने दिया और अपनी विजयोंके उपलक्ष्यमें लम्बे अंतरालके बाद अश्वमेध यज्ञ (दे०) का अनुष्ठान किया। अशोकके प्रभावसे अश्वमेध जैसे हिंसाप्रधान यज्ञोंकी परिपाटी विलुप्त हो गयी थी। पुष्य-मित्रने हिन्दू धर्मको पुनरुज्जीवित किया और राजभाषाके रूपमें संस्कृतकी फिरसे प्रतिष्ठापना की। प्रसिद्ध संस्कृत वैयाकरण पतंजलि उसीके कालमें हुए।

उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी अग्निमित्र (दे०) तथा पौत्र वसुमित्र (दे०) दोनों महान् योद्धा थे। कहा जाता है कि पुष्यमित्रोंने बहुत-से बौद्ध स्तूपोंका ध्वंस कराया तथा बौद्ध श्रमणोंका सिर कटवाया, किन्तु इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

पूना–महाराष्ट्रका प्रमुख नगर, जो शिवाजी (दे०) तथा उनके पुत्र एवं उत्तराधिकारी शम्भूजी (दे०) की राज-धानी था। शाहू (दे०) अपनी राजधानी यहाँसे उठाकर सतारा ले गया, परन्तु १७४६ ई० में उसकी मृत्युके बाद पेशवा बालाजी बाजीराव (दे०) ने इसे फिर मराठा राज्य-की राजधानी बना दिया। अंतिम पेशवा बाजीराव द्वितीय-के हार जाने तथा अपदस्थ कर दिये जानेके बाद इसका मान घट गया। पूना अब भी महत्त्वपूर्ण नगर है और यहाँ एक विश्वविद्यालय स्थित है। गांधीजीने ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैमजे मैकडोनाल्डका साम्प्रदायिक निर्णय (दे०)रद्द करानेके लिए १९३२ ई० का प्रसिद्ध उपवास पूनामें ही किया था।

पूनाकी संधि–१८१७ ई० में पेशवा बाजीराव द्वितीय (दे०) और अंग्रेजोंके बीच १८०२ ई० की बसईकी संधि (दे०) के स्थानपर की गयी। इस संधिके द्वारा पेशवाने अपने दरबारसे समस्त विदेशी प्रतिनिधियोंको निकाल दिया, पूनामें ब्रिटिश सेना रखनेका खर्च पूरा करनेके लिए कुछ क्षेत्र सौंप दिये तथा मराठा संघका नेतृत्व त्याग दिया। बादमें बाजीराव द्वितीयको पश्चात्ताप हुआ कि यह संधि उसके ऊपर जबर्दस्ती थोप दी गयी है। उसने १८१८ ई० में अंग्रेजोंके विरुद्ध विद्रोह कर दिया, परन्तु उसे पराजित होकर आत्मसमर्पण करना पड़ा और १८१८ ई० में उसे गद्दी से उतार दिया गया।

पूना महिला विश्वविद्यालय–इसकी स्थापना प्रोफेसर धोण्डो केशव कर्वेने १९१७ ई० में की। इससे भारतमें महिला शिक्षाकी प्रगतिके एक महत्त्वपूर्ण अध्यायका सूत्रपात हुआ।

पूना समझौता–२४ सितम्बर १९३२ ई०को गांधीजीकी रोगशैयापर हुआ। रैमजे मैकडोनाल्डके साम्प्रदायिक निर्णय (दे०)के द्वारा न केवल मुसलमानोंको, बल्कि दलित जातिके हिन्दुओंको सवर्ण हिन्दुओंसे अलग करनेके लिए भी पृथक् प्रतिनिधित्व प्रदान कर दिया गया था। गांधीजीने इसीके विरुद्ध आमरण उपवास आरम्भ कर दिया था। इस समझौतेके द्वारा दलित जातिके प्रति-निधियोंको सामान्य निर्वाचन क्षेत्रोंके द्वारा, जिनमें सभी गैर-मुसलमानोंको वोट देनेका अधिकार था, निर्वाचित करनेका निर्णय किया गया।

पूर्वनन्द–इस शब्दका प्रयोग गलत ढंगसे नन्दवंशके पूर्ववर्ती राजाओंके लिए किया जाता है। पूर्वनन्द कोई वंश नहीं, एक राजा था।

पूर्व मीमांसा–हिन्दूदर्शनका एक सम्प्रदाय। इस सम्प्रदायमें वेदविहित यज्ञ-यागादि कर्मोंपर बहुत बल दिया जाता है। मीमांसा दर्शनके प्रमुख प्रवक्ता शबरस्वामी, प्रभाकर तथा कुमारिल थे जो चौथी-पाँचवीं शताब्दी ई० में हुए।

पूर्वी गंगवंश–राजराज प्रथमसे इसका प्रचलन हुआ, जो ११वीं शताब्दी ई० के मध्यमें कलिंग (उड़ीसा)का शासक बना। वह वज्रहस्तका पुत्र था। इस वंशने १४०२ ई० तक शासन किया। बादमें मुसलमानोंने इस वंशका उच्छेद किया। इस वंशमें कुल १५ राजा हुए, यथा—राजराज प्रथम, अनन्तवर्म्मा चूड़गंग (१०७८-११४२ ई०), कामार्णव, राघव, राजराज द्वितीय, अनंगभीम प्रथम, राजराज तृतीय, अनंगभीम द्वितीय, नृसिंह प्रथम, भानुदेव प्रथम, नृसिंह द्वितीय, भानुदेव द्वितीय, नृसिंह तृतीय, भानुदेव तृतीय तथा नृसिंह चतुर्थ (१३८४–१४०२ ई०)। इस वंशका द्वितीय राजा अनन्तवर्मा चूड़गंग बहुत प्रसिद्ध हुआ। उसीने पुरीमें जगन्नाथजीका मन्दिर बनवाया था।

पूर्वी गंगवंशके अधिकांश राजा कला एवं साहित्यके अनुरागी थे। उन्हींकी संरक्षतामें कला एवं वास्तुकी उड़िया शैली का विकास हुआ। इस वंशके शासनमें जितने मन्दिर बनवाये गये, उतने देशमें कहीं नहीं बनवाये गये। राजनीतिक दृष्टिसे इस वंशके राजा दूरदर्शी नहीं कहे जा सकते। जब बंगालपर मुसलमानोंका आक्रमण हुआ और स्वयं उड़ीसाकी सीमापर हमले होने लगे, तब भी अनन्तवर्माके बादके चार राजाओंने प्रभावी ढंगसे मुसलमानोंको खदेड़ने के लिए आगे कदम नहीं बढ़ाया। लेकिन १३वीं शताब्दी ई० में बादके गंग राजाओंने अनेक वर्षों तक मुसलमानोंको राज्यमें घुसने नहीं दिया। अंतमें मुस्लिम आक्रमणकारियोंने १४०२ ई० में गंगवंशका उन्मूलन कर डाला।

पूर्वी बंगाल—(दे०) 'बांगला देश'।

पृथ्वीराज चौहान (जिसे राय पिथौरा भी कहते थे)—सांभर, अजमेर और दिल्लीका शासक। उसका मुख्य प्रतिद्वन्द्वी कन्नौजका राजा जयचंद्र (दे०) था जिसकी पुत्री संयोगिताने पिताकी इच्छाके विरुद्ध स्वयंवर सभामें उसका वरण किया था और पृथ्वीराज लगभग ११७५ ई० में उसका अपहरण कर लाया था। पृथ्वीराज महान् योद्धा था और उसने ११८२ ई० में चंदेल राजा परमालको हरा कर उसकी राजधानी महोबापर अधिकार कर लिया था। शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीके आक्रमणका उसने डटकर मुकाबला किया और ११८२ ई० में तराइनकी पहली लड़ाईमें उसे हरा दिया। किन्तु अगले साल तराइनकी दूसरी लड़ाईमें वह हार गया तथा मारा गया। उसकी प्रेम तथा युद्ध-कथाओंका वर्णन उसके प्रसिद्ध चारण चन्द बरदाईने 'रासो' नामक महाकाव्यमें लिखा है।

पेथिक-लारेंस, लार्ड—भारतमें १९४६ ई० में जो कैबिनेट मिशन (दे०) आया, उसके अध्यक्ष। वे भारतकी संवैधानिक सुधारोंकी मांगके प्रबल समर्थक थे। एटली मंत्रिमण्डलमें भारतमंत्री (१९४५–४७ ई०) की हैसियतसे उन्होंने ब्रिटेनकी उस नीतिके निर्माणमें मुख्य हिस्सा लिया, जिसके फलस्वरूप १९४७ ई० में भारतको स्वाधीनता प्राप्त हुई।

पेप्सू—अंग्रेजी भाषामें पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य संघका नाम-संक्षेप। इस राज्य संघका निर्माण सतलजके किनारे स्थित उन सिख रियासतोंको मिला कर किया गया था जिन्होंने १८०९ ई० में अमृतसरकी संधिके द्वारा ब्रिटिश संरक्षण स्वीकार कर लिया था।

पेयटन, एडमिरल—१७४६ ई० में भारतीय समुद्रमें ला बोर्दने (दे०) के नेतृत्वमें फ्रांसीसी जंगी बेड़ेका सामना करनेवाले ब्रिटिश जंगी बेड़ेका कमांडर। फ्रांसीसी बेड़ेके मुकाबलेमें पेयटनको अपना बेड़ा लेकर भागना पड़ा, जिसके फलस्वरूप मद्रास (दे०) पर फ्रांसीसियोंका अधिकार हो गया।

पेरों, जनरल—एक फ्रांसीसी भृत्य (भाड़ेका) सैनिक, जो पहली बार १७८० ई० में भारत आया। १७८१ ई० में गोहदके राणाने उसे नौकर रख लिया। बादमें वह भरतपुर राज्यकी सेवामें आ गया। १७९० ई० में द-ब्वांग (दे०) ने उसे महादजी शिन्देकी सेवामें रख लिया। उसने शिन्देको कई प्रतिद्वन्द्वी राजाओंपर विजय प्राप्त करनेमें मदद दी। १७९६ ई० में द-ब्वांगके अवकाश ग्रहण करनेपर वह शिन्देकी सेनाका सेनापति नियुक्त हुआ। उसने राजपूतानापर शिन्देका आधिपत्य स्थापित किया। किन्तु १८०३ ई० में जब दूसरा मराठा-युद्ध शुरू हुआ, तब पेरों भारतीय-ब्रिटिश सेनाओंके विरुद्ध कोई सफलता नहीं प्राप्त कर सका और अलीगढ़ तथा कोमलकी लड़ाइयोंमें उसे हार खानी पड़ी। फलस्वरूप दौलतराव शिन्देका पेरोंपरसे विश्वास उठ गया और उसने उसकी जगह अम्बाजीको नियुक्त कर दिया। लालवाड़ी (दे०) में शिन्देकी सेनाके हारनेके बाद पेरोंने यह नौकरी छोड़ दी और कलकत्ता चला गया। वहां उसने ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी शरण ली। कम्पनीने उसके सकुशल फ्रांस लौटनेका प्रबंध कर दिया, जहां १८३४ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

पेशवा—मूलरूपसे शिवाजीके द्वारा नियुक्त अष्ट प्रधानोंमेंसे एक। उसे मुख्य प्रधान भी कहते थे। उसका कार्य सामान्य रीतिसे प्रजाहितपर ध्यान रखना था। शाहू (दे०) (१७०८–४८ ई०) के राज्यकालमें बालाजी विश्वनाथ (दे०) ने इस पदका महत्त्व बहुत अधिक बढ़ा दिया। वह १७१३ ई० में पेशवा नियुक्त हुआ और १७२० ई० में मृत्यु होने तक इस पदपर रहा। उसने सेनापति तथा राजनीतिज्ञ, दोनों ही रूपोंमें जो सफलताएं प्राप्त कीं, उससे दूसरे प्रधानोंकी अपेक्षा पेशवाके पदकी मर्यादा बहुत बढ़ गयी। १७२० ई० में उसकी मृत्युके बाद उसका पुत्र बाजीराव प्रथम (दे०) पेशवा नियुक्त हुआ, तबसे यह पद बालाजीका एक प्रकारसे खानदानी हक बन गया। बाजीराव प्रथम बीस साल (१७२०–४० ई०) तक पेशवा रहा और उसने निजामपर विजय प्राप्त करके तथा उत्तरी भारतमें विजययात्राएं करके पेशवा पदका महत्त्व और बढ़ा दिया। उसकी उत्तरी भारतकी विजययात्राओंके फलस्वरूप मालवा, गुजरात तथा मध्य भारतमें मराठा राज्यशक्ति स्थापित हो गयी तथा मराठा संघकी शक्ति

बहुत बढ़ गयी। मराठा संघमें शिन्दे, होल्कर, गायकवाड़ तथा भोंसले सम्मिलित थे।

१७४० ई० में बाजीराव प्रथमकी मृत्यु होनेपर उसका पुत्र बालाजी बाजीराव पेशवा बना। १७४६ ई० में महाराज शाहू (दे०) निस्संतान मर गया। इसके फलस्वरूप पेशवाका पद वंशगत होनेके साथ ही मराठा राज्यमें सर्वोच्च मान लिया गया। पेशवा मराठा राज्यकी राजधानी सतारासे हटा कर पूना ले गया। इसके बाद मराठा राजा पेशवाके हाथकी कठपुतली मात्र रह गये और राज्यका वास्तविक इतिहास पेशवाओंके इतिहाससे सम्पृक्त हो गया। बालाजी बाजीरावने १७४० से १७६३ ई० तक शासन किया और वह इतना शक्तिशाली हो गया कि मुगल बादशाह आलमगीर द्वितीय (दे०) (१७५४–५६ ई०) और शाहआलम द्वितीय (दे०) (१७५६–१८०६ ई०) अहमदशाह अब्दालीके हमलेसे अपनी रक्षा करनेके लिए उसपर आश्रित रहे। बाजीरावके पिताने हिन्दूपाद पादशाही-की स्थापना अपना उद्देश्य बनाया था। परन्तु उसने पिताकी इस नीतिको त्याग कर मुगल साम्राज्यके स्थानपर मराठा साम्राज्यकी स्थापना करना अपना उद्देश्य बना लिया और हिन्दू तथा मुसलमान राज्योंको समान रूपसे लूटना शुरू कर दिया। इससे फलस्वरूप महाराष्ट्रके बाहरके सभी प्रदेशोंके लोगोंकी सहानुभूति वह खो बैठा। १७६१ ई० में पानीपतकी तीसरी लड़ाई (दे०)में अहमदशाह अब्दालीकी सेनासे उसकी जबर्दस्त हारका एक कारण यह भी था। इस लड़ाईमें मराठोंको भारी क्षति उठानी पड़ी और उसका परिणाम उनके लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ। इस लड़ाईके छः महीनेके बाद ही पेशवा बालाजी बाजीराव शोकाभिभूत होकर मर गया।

उसकी मृत्युके बाद पेशवाओंका और उनके साथ-साथ मराठा राज्यशक्तिका पतन आरम्भ हो गया। उसका उत्तराधिकारी माधवराव प्रथम (दे०) (१७६१–६२ ई०) बहुत जल्दी मर गया। अगला पेशवा नारायणराव (दे०) १७७२–७३ ई० में अपने चाचा राघोबाके (दे०) संकेतपर मार डाला गया। उसके बाद १७७३ ई० में कुछ समयके लिए राघोबा पेशवा रहा, परन्तु उसे विवश होकर पेशवाई नारायणरावकी मृत्युके बाद जन्मे उसके पुत्र माधवराव नारायण (दे०) को सौंपनी पड़ी। माधवराव नारायण १७७४ ई० से १७६६ ई० तक पेशवा रहा। परन्तु राघोबा पेशवा कुल-कलंक साबित हुआ। अपनी स्वार्थपूर्तिके लिए उसने पेशवाको पहले अंग्रेज-मराठा युद्धमें फंसा दिया जो १७७५ ई० से १७८२ ई० तक चलता रहा। इस युद्धके फलस्वरूप मराठा संघपर पेशवाका नियंत्रण और शिथिल पड़ गया। नाना फड़नवीस इस समय पेशवाका प्रधानामात्य था। उसकी नीतिकुशलता तथा योग्यताके कारण अगले १८ सालोंतक दक्षिणमें पेशवाओंकी राज्यशक्ति अखंडित रही, किन्तु, उत्तर भारतमें मराठा राज्यशक्ति स्थापित करनेके सारे प्रयत्न त्याग दिये गये। १८०० ई० में नाना फड़नवीसकी मृत्युके साथ पेशवाको बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह देनेवाला कोई न मिला। १८०२ ई० में पेशवा बाजीराव द्वितीयने, जो १७६६ ई० में पेशवा बना था, अपने मराठा सरदारों, विशेषरूपसे होल्कर और शिन्दे-के चंगुलसे अपनेको बचानेके लिए अंग्रेजोंके साथ स्वेच्छासे बसईकी संधि (दे०)कर ली। उसने अंग्रेजोंकी आश्रित सेना रखना स्वीकार करके एक प्रकारसे अपनी स्वतंत्रता बेच दी। उसके इस कायरतापूर्ण आचरणपर मराठा सरदारोंमें भारी क्षोभ उत्पन्न हो गया। फलस्वरूप दूसरा मराठा-युद्ध (१८०३–५ ई०) हुआ, और मराठा राज्य-शक्ति और मजबूतीसे अंग्रेजोंके फौलादी पंजेमें कस गयी। अंग्रेजोंका जुआ अपने ऊपर लाद लेनेपर बाजीराव द्वितीय-को शीघ्र पछतावा होने लगा कि उसने भारी गलती की है। उसके द्वारा उस जुएको उतार फेंकनेकी कोशिश करनेपर तीसरा मराठा-युद्ध (दे०) (१८१७–१६ ई०) छिड़ गया। इस युद्धमें कई लड़ाइयोंमें पेशवाकी निर्णयात्मक हार हुई और उसे गद्दीसे उतार दिया गया और पेशवाई समाप्त कर दी गयी, फिर भी बाजीराव द्वितीयको ८ लाख रुपयेकी वार्षिक पेन्शनपर कानपुरके निकट बिठूर जाकर रहनेकी इजाजत दे दी गयी। १८५३ ई०में बिठूरमें ही उसकी मृत्यु हुई। अंग्रेजोंने उसके गोद लिये हुए लड़के नाना साहब (दे०)को पेन्शन देनेसे इनकार कर दिया। इसके फलस्वरूप उसने प्रथम स्वाधीनता संग्राममें प्रमुख भाग लिया और अंतमें पराजित हो गया।

पेशावर—अविभाजित भारतके उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त-का एक महत्त्वपूर्ण नगर और प्रान्तीय मुख्यालय भी। सामरिक दृष्टिसे नगरकी स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह खैबर दर्रेकी भारतीय सीमामें पड़नेवाले भागकी रक्षा करता है। उत्तर-पश्चिमसे आनेवाले आक्रमणकारी इसी दर्रेको पार करके भारत आते रहे हैं। भारत और उत्तर-पश्चिमके देशोंके बीचका मुख्य वणिक्-पथ भी इसी दर्रेसे होकर जाता है। इसका प्राचीन नाम पुरुषपुर था और ईसवी सन्‌की प्रारम्भिक शताब्दियोंमें यह कुषाण साम्राज्य-की राजधानी था। दसवीं शताब्दीमें इसपर गजनी (दे०) के सुल्तान महमूदका अधिकार हो गया और १८३४ ई०

तक यह अफगानिस्तानके राज्यका एक भाग रहा। १८३४ ई० में इसपर महाराज रणजीतसिंहने अधिकार कर लिया। १८४८ ई० तक यह सिख राज्यका भाग रहा। १८४८ ई०में दूसरा सिख-युद्ध (दे०) छिड़नेपर सिखोंने अंग्रेजोंके खिलाफ अफगानिस्तानके अमीर दोस्त मुहम्मदकी सहायता प्राप्त करनेके लिए इसे उसके हाथ सौंप दिया। पंजाबपर अधिकार कर लिये जानेके बाद यह ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यका एक भाग बन गया। अब यह पाकिस्तानमें है।

पैठन–उत्तरी गोदावरी घाटीमें स्थित एक नगर। इसे पहले 'प्रतिष्ठान' कहते थे, जो प्रारम्भिक आंध्र राजाओं (दे०) की राजधानी था।

पैन्तेलियोन–एक भारतीय-यवन राजा, जिसने चौकोर सिक्के चलाये थे। उसका काल लगभग १६०–१८० ई० पू० माना जाता है।

पोकाक, एडमिरल–बंगालकी खाड़ीमें द-एकके नेतृत्ववाले फ्रांसीसी बेड़ेके विरुद्ध अंग्रेजी बेड़ेका नायक, जिसने १७५८ ई० में कारिकलके निकट उसे हरा दिया। इस विजयके फलस्वरूप अंग्रेजोंको लालीके नेतृत्ववाले फ्रांसीसी हमलेके विरुद्ध मद्रासकी रक्षा करनेमें मदद मिली।

पोरस–(दे०), 'पुरु'।

पोर्टो नोवोकी लड़ाई—१७८१ ई० में मैसूरके हैदरअली और सर आयरकूटके नेतृत्वमें कम्पनीकी फौजोंके बीच की गयी। इसमें हैदरअली हार गया और उसे भारी क्षति उठानी पड़ी। फलस्वरूप उसकी शक्ति नियंत्रित कर दी गयी।

पोलक, जनरल–एक योग्य फौजी अफसर। पहले अफगान-युद्धमें उसके नेतृत्वमें सेना पेशावर भेजी गयी, जिसे जलालाबादमें १८४१ ई०में घिरी हुई अंग्रेजी सेनाको मदद पहुंचानेका कार्य सौंपा गया था। पोलकने काफी सूझ-बूझका परिचय दिया, उसने जलालाबादका घेरा तोड़ दिया और वहांसे अंग्रेजी सेनाको निकाल लाया। इसके बाद उसने जगदलक और तेजिनकी दो लड़ाइयोंमें अफगानोंको हराया और सितम्बर १८४२ ई० में एक विजयी सेना लेकर काबुल जा पहुंचा। काबुलमें यूरोपीय बंदियोंको रिहा करने तथा प्रतिशोधके रूपमें बाजारमें आग लगा देनेके बाद, उसने अक्तूबर १८४२ ई० में काबुल खाली कर दिया और इस प्रकार पहले अफगान-युद्ध (दे०)का अंत हो गया।

पोलो, मार्को–वेनिसका एक यात्री, जो १२८८ ई० तथा १२६३ ई० में भारत आया। उसने यहां जो कुछ देखा और पाया उसका विशद वर्णन किया है। उसने लिखा है कि पांडव देशका राजा बड़ा न्यायिक था और अपने राज्यका शासन बड़ी योग्यताके साथ कर रहा था। वहांके लोग अत्यन्त समृद्ध थे और उसके कयाल बंदरगाहसे बहुत अधिक मात्रामें व्यापार होता था। उसने कयालको विशाल तथा सुन्दर नगर बताया है।

पौफम, कर्नल–ईस्ट इंडिया कम्पनीका एक फौजी अफसर। पहले मराठा-युद्ध (दे०) (१७७५–८२ ई०)में उसने १७७६ ई०में बंगालसे स्थल मार्ग द्वारा बम्बई भेजी जानेवाली सेनाका गौडर्ड (दे०)के साथ नेतृत्व किया और १७८० ई० में ग्वालियरका किला सर करके भारी नाम कमाया।

प्रतापरुद्र—उड़ीसाका प्रसिद्ध राजा। लगभग १५१० ई० में विजयनगरके राजा कृष्णदेव राय (दे०)ने उसे पराजित कर दिया।

प्रतापरुद्र–ओरंगलका काकतीय वंशज (दे०) राजा। दिल्लीके सुल्तान गयासुद्दीन (दे०)के सिपहसालार उलुग खांने १३२३ ई० में उसे हरा दिया और गद्दीसे उतार दिया।

प्रतापसिंह, राणा–राणा उदय सिंहका पुत्र तथा उत्तराधिकारी, जिसने मेवाड़पर १५७२ ई०से १६ जनवरी १५६७ ई०में मृत्यु होने तक राज्य किया। वह बड़ा शूरवीर और सच्चा देशभक्त था। उसने अपनी मातृभूमि मेवाड़की स्वतंत्रताकी रक्षाके लिए बादशाह अकबरकी अपनेसे कहीं बड़ी फौजका मुकाबला किया। अकबरने चित्तौड़गढ़ पहले ही ले लिया था। वह उस समय दुनियाका सबसे दौलतमंद बादशाह था। जब राणा प्रतापने अकबरकी अधीनता स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया, अकबरने आमेरके राजा मानसिंह तथा आसफ खांके नेतृत्वमें एक बड़ी शाही फौज भेजी। अप्रैल १५७६ ई०में हल्दीघाट (दे०) में लड़ाई हुई। राणा बड़ी वीरतासे लड़ा, किन्तु उसकी पराजय हुई। राणाने भागकर पहाड़ोंकी शरण ली। शाही सेनाने उसका पीछा किया और उसके कई किलोंपर अधिकार कर लिया। फिर भी राणा प्रतापने अकबरकी अधीनता स्वीकार नहीं की। वह पहाड़ियोंमें मारा-मारा फिरता रहा, उसके बच्चे कंद-मूलपर गुजारा करते रहे, मगर उसने अपना स्वातंत्र्य-युद्ध जारी रखा और १५६७ ई० में मृत्युसे पूर्व अपने कुछ मजबूत गढ़ोंको फिरसे अपने अधिकारमें कर लिया। राजपूतोंमें वही एक ऐसा वीर था जिसने मातृभूमिकी स्वतंत्रताका अपहरण न होने देनेके लिए मुसलमानोंकी विशाल सेनासे युद्ध किया। उसके बाद उसका पुत्र अमरसिंह गद्दीपर बैठा। उसने १६१४ ई० में बादशाह जहाँगीरकी अधीनता स्वीकार कर ली।

प्रतापादित्य--जेसोर (बंगाल)का एक वीर भूमिपति (जमींदार)। उसने अकबरको खिराज देनेसे इनकार कर दिया और मुगल सेनाको हरा दिया। अंतमें उसे परास्त कर के बंदी बना लिया गया। जब वह दिल्ली भेजा जा रहा था, रास्तेमें उसकी मृत्यु हो गयी।

प्रतिहार (अथवा परिहार)--देखिये, 'गूर्जर-प्रतिहार वंश'।

प्रबोध चंद्रोदय--एक मनोभावात्मक संस्कृत रूपक जिसमें वेदांत दर्शनका सुन्दर निरूपण किया गया है। यह चंदेल राजा कीर्तिवर्मा (दे०)के आश्रयमें लिखा गया था, जो ग्यारहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें राज्य करता था।

प्रभाकरवर्धन--थानेश्वरका राजा, जो पुष्यभूतिवंश (दे०) का था और छठी शताब्दीके अंतमें राज्य करता था। उसकी माता गुप्तवंशकी राजकुमारी, महासेनगुप्त नामक थी। उसने अपने पड़ोसी राज्यों, मालवों, उत्तर-पश्चिमी पंजाबके हूणों तथा गुर्जरोंके साथ युद्ध करके काफी प्रतिष्ठा प्राप्त की। उसने अपनी पुत्री राज्यश्रीका विवाह कन्नौजके मौखरि राजा ग्रहवर्मासे कर दिया। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु ६०४ ई० में हुई। उसके बाद उसका सबसे बड़ा पुत्र राज्यवर्धन उत्तराधिकारी हुआ।

प्रभावती गुप्ता--चन्द्रगुप्त द्वितीय (लगभग ३८०--४१३ ई०) (दे०)की पुत्री। उसका विवाह वाकाटक (दे०) राजा रुद्रसेन द्वितीयसे हुआ था। उसके वंशज कई शताब्दियों तक दक्षिण भारतपर राज्य करते रहे।

प्रवरसेन प्रथम--वाकाटक वंश (दे०) का शासक, जो चौथी शताब्दी ई० में राज्य करता था। उसके राज्यमें मध्य प्रदेश तथा दक्षिणका अधिकांश पश्चिमी भाग था। उसके बारेमें अधिक ज्ञात नहीं है।

प्रवरसेन द्वितीय--वाकाटक (दे०) राजा रुद्रसेन द्वितीय (दे०)का पुत्र एवं उत्तराधिकारी। उसने प्रभावती गुप्ता (दे०)से विवाह किया और लगभग ४१० ई०में सिंहासन-पर बैठा। उसने धीरे-धीरे गुप्त राजाओंकी अधीनतासे अपनेको स्वतंत्र कर लिया।

प्रसेनजित्--छठी शताब्दी ई० पू० के मध्यकालके आसपास कोशलका राजा और गौतम बुद्ध (दे०) तथा वर्धमान महावीर (दे०)का समसामयिक। दोनोंने उसके राज्यमें विहार किया था। प्रसेनजितने मगधके राजा बिम्बिसार (दे०)की बहिनसे विवाह किया था और उसकी बहिन राजा बिम्बिसारको ब्याही थी। इस विवाह-सम्बन्धके बावजूद प्रसेनजितको बिम्बिसार तथा उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी तथा पितृघाती अजातशत्रुसे युद्ध करना पड़ा। अजातशत्रुने उससे काशी ग्राम छीन लिया जो बिम्बिसारकी रानी कोशल देवीको स्नानचूर्ण मूल्यके रूपमें मिला था। इसके बाद ही प्रसेनजितकी मृत्यु हो गयी और कोशल राज्यका अपकर्ष आरम्भ हो गया।

प्रान्तीय स्वशासन--गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्ट १९३५ ई० के द्वारा किये गये संवैधानिक परिवर्तनोंकी मुख्य विशेषता थी। (दे०, भारतमें ब्रिटिश प्रशासन)।

प्राकृत--संस्कृत भाषाका बोलचालका विकृत रूप। यह पालीसे अधिक मिलती-जुलती है। सम्राट् अशोकके कालमें यह सारे भारतकी बोलचालकी भाषा थी। देहरादून जिलेमें स्थित कालसीसे लेकर मैसूर तक मिलनेवाले उसके सभी शिलालेखोंमें इसी भाषाका प्रयोग किया गया है।

प्राग्ज्योतिष--महाभारतमें उल्लिखित आसामके आधुनिक प्रांतका पुराना नाम। कुछ लोग प्राग्ज्योतिषपुरकी पहचान दक्षिण आसामकी घाटीमें स्थित गोहाटी नगरसे करते हैं।

प्राचीन भारतकी कला और वास्तुकला--की गौरवशाली परम्परा और महान् उपलब्धियाँ हैं। प्रागैतिहासिक कालसे आधुनिक काल तक भारतकी कला और वास्तुकला-में बहुतसे परिवर्तन हुए हैं। सिन्धु घाटी सभ्यता (लगभग ३०००से १५०० ई० पू०) के जो अवशेष मिले हैं उनसे मालूम होता है कि उस समय विशाल भवन बनाये जाते थे, जिनमें आधुनिक सुविधाएँ--जैसे बाजार, सार्वजनिक स्नानागार, पानीकी निकासीके लिए नालियाँ और गंदा पानी सोखनेके गड्ढे सभी पकी ईंटोंसे बनाये जाते थे। इस प्रकारके निर्माणकार्य मोहन्जोदाड़ो, हड़प्पा और सिन्धु घाटी सभ्यताके दूसरे नगरोंमें मिले हैं। उस कालकी मिली मोहरोंसे प्रकट होता है कि तक्षणकला और लिपि कला उस समय लोगोंको ज्ञात थी। ऐसा प्रतीत होता है कि सिन्धु घाटी सभ्यताके नष्ट हो जानेके बाद पत्थरके मकान बनानेकी कला त्याग दी गयी और ऐतिहासिक काल (लगभग ३२० ई० पू०) शुरू होनेपर भारतीयोंने लकड़ीके मकान बनाना शुरू कर दिया। चन्द्रगुप्त मौर्य (लगभग ३२२ ई० पू० से २९८ ई० पू०) के महल, जिसकी मेगस्थनीजने बड़ी प्रशंसा की है और जिसे सूसा और एकबतानाके महलोंसे अच्छा बताया है, लकड़ीके बने थे और नगरके चारों ओरके परकोटेमें भी शहतीरोंका इस्ते-माल किया गया था। पत्थरका फिरसे प्रयोग चन्द्रगुप्त मौर्यके पौत्र अशोक (लगभग २७०--२३२ ई०पू०) के कालमें शुरू हुआ जिसने प्रस्तर स्तम्भोंपर अनेक लेख अंकित कराये। इनपर इतनी सुन्दर पालिश की जाती थी

कि वे सदियों तक लौह-स्तम्भ माने जाते रहे। अशोकने स्तूपोंके निर्माणमें भी पत्थरका प्रयोग किया। उसका महल भी पत्थरका बना था जो इतना सुन्दर और विशाल था कि करीब ६०० वर्ष बाद जब फाहियेन ४०५–११ ई०में भारत आया और उसने उसे देखा तो उसने उसे देवों द्वारा निर्मित समझा। अशोकके स्तम्भोंका अलंकरण उच्चकोटि का है, जिससे पता चलता है कि उस समय पत्थरको तरासने (तक्षण) और पालिश करनेकी कला काफी विकसित हो चुकी थी। कुछ लोगोंका अनुमान है कि भारतीय स्थापत्य कलापर यूनानी प्रभाव पड़ा था।

पत्थरपर आधारित प्राचीन भारतीय वास्तुकलाके नमूने मुख्य रूपसे मंदिरोंके रूपमें मिलते हैं। उत्तर अथवा दक्षिण भारतमें किसी प्राचीन राजप्रासादके अवशेष अब तक नहीं मिले हैं। लेकिन १२० ई० से ११९३ ई० के बीच अनेक हिन्दू, बौद्ध और जैन मंदिरोंके निर्माणमें पत्थरका प्रयोग किया गया। दुर्भाग्यसे इनमेंसे अधिकांश मंदिरोंको जो उत्तर भारतमें स्थित थे और कलाके उत्कृष्ट नमूने थे, मुसलमान आक्रमणकारियोंने नष्ट कर दिया। केवल कुछ ही मंदिर मनुष्य और कालके विनाशसे बच गये हैं। इनमें झांसी जिलेमें देवगढ़के मंदिर, कानपुर जिलेके भीतर गाँवके मंदिर और छतरपुर जिलेके खजुराहोके मंदिर हैं। इनमेंसे दो मंदिर उत्तर प्रदेशमें और तीसरा मध्य प्रदेशमें है। ये मंदिर उत्तरी भारतमें भारतीय वास्तु तथा स्थापत्य कलाके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। प्राचीन भारतीय कला और वास्तुकलाकी महानताको समझनेके लिए हमें दक्षिण भारतकी ओर देखना पड़ता है, जिसे सही अर्थोंमें मंदिरोंका देश कहा गया है। कांजीवरम्, तंजोर, तिरुचीपल्ली, मदुरा और रामेश्वरके भव्य मंदिर हिन्दू कला और वास्तुकलाके उत्तम उदाहरण हैं। इनके मंडपोंकी चौड़ी छतें, ऊँचे शिखर और दीवालोंपर उत्कीर्ण मानवीय मूर्तियाँ और प्राकृतिक दृश्य भारतीय कलाकी विशेषताएँ प्रदर्शित करते हैं। अजन्ता, एलोरा और नासिकके गुहा-मंदिरोंकी चित्रकला अपना सानी नहीं रखती। प्राचीन भारतकी वास्तुकलाका सबसे सुन्दर नमूना जो आधुनिक कालमें सुरक्षित है, वह एलोराका कैलाश मंदिर (७७० ई०) है जिसे एक शिलाखंडको तराश कर बनाया गया था। इस मंदिरकी दीवालों और फर्शकी पालिश इतनी सुन्दर है कि अनेक शताब्दियाँ बीत जानेपर उसकी चमक बनी हुई है और उसमें स्पष्ट प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। यह संसार भरमें मानवश्रम और शिल्पकलाकी सबसे उत्तम रचना है।

प्राचीन भारतीय कला और वास्तुकला समुद्र पार करके विदेशोंमें भी पहुँची थी और उसने हिन्देशिया, हिन्दचीन और कंबोडियाकी कला, वास्तुकला तथा स्थापत्यकलाको प्रभावित किया था। जावाके बोरोबुदूरका स्तूप और कम्बोडियाके अंकोरवटका मंदिर दक्षिण पूर्वी एशियामें भारतीय कलाका सबसे भव्य नमूना है। (**एम० ह्वीलर-दि इंडस सिविलीजेशन; ए० के० कुमारस्वामी—हिस्ट्री आफ इंडियन ऐंड इंडोनेशियन आर्ट; जे० फर्ग्यूसन—हिस्ट्री आफ इंडियन ऐंड ईस्टर्न आर्कीटेक्चर; वी० ए० स्मिथ—हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट इन इंडिया ऐंड सीलोन**)

प्रार्थना समाज—इसकी स्थापना १८६७ ई०में ब्राह्म समाजके नेता केशवचन्द सेन (दे०) के निर्देशनमें महाराष्ट्रमें की गयी। ब्राह्म समाजियोंके विपरीत प्रार्थना सभाजके सदस्य अपनेको हिन्दू मानते थे। वे एकेश्वरवादमें विश्वास करते थे और महाराष्ट्रके तुकाराम (दे०) तथा रामदास जैसे महान् संतोंकी परम्पराके अनुयायी थे। उन्होंने अपना मुख्य ध्यान हिन्दुओंमें समाज-सुधारके कार्यों, जैसे सहभोज, अंतर्जातीय विवाह, विधवा-विवाह, अछूतोद्धार आदिमें लगाया। प्रार्थना समाजने बहुतसे समाज-सुधारकोंको अपनी ओर आकर्षित किया, जिनमें जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे भी थे। मुख्य रूपसे उनके प्रयत्नसे प्रार्थना समाजकी ओरसे 'दक्कन एजूकेशन सोसाइटी' (दक्षिण शिक्षा समिति) (दे०) जैसी लोकोपकारी संस्थाओंकी स्थापना की गयी।

प्रिंस आफ वेल्स—अर्थात् युवराज एडवर्डने १९२१ ई०में भारतकी यात्रा की। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने युवराजका बहिष्कार किया। युवराजके स्वागत-समारोहोंका शांतिपूर्ण रीतिसे बहिष्कार करनेके आंदोलनको जो अभूतपूर्व सफलता मिली, उससे अच्छी तरह स्पष्ट हो गया कि भारतमें ब्रिटेनके विरुद्ध कितना असंतोष व्याप्त है और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका जनतापर कितना प्रभाव है। इससे ब्रिटिश सरकारकी आँखें खुल गयीं।

प्रौढ़ देवराय (अथवा पडियाराव)—विजयनगरके प्रथम राजवंशका अंतिम राजा। उसे १४८५ ई०में सालुव नरसिंहने अपदस्थ कर दिया।

प्लिनी—एक प्राचीन यूनानी भूगोलवेत्ता। उसके 'नेचुरल हिस्ट्री' (प्राकृतिक इतिहास) नामक ग्रंथमें प्रथम शताब्दी ईसवी सन्के भारतके बारेमें काफी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। विश्वास किया जाता है कि उसका यह ग्रन्थ ७७ ई०में प्रकाशित हुआ था।

प्लेग—यह महामारी बम्बईमें १८९६ ई०में भयंकर रूपसे

फैल गयी। इसे रोकनेके लिए लोगोंको उनके घरोंसे हटाकर अलग कैम्पोंमें रखने तथा मरीजोंको अस्पताल भेजनेके कड़े नियम बनाये गये। इन नियमोंका देशवासियों-की भावनाओंकी कोई चिंता न करके कठोरतासे पालन कराया गया। इसके फलस्वरूप जनतामें भारी असंतोष उत्पन्न हो गया और १८९७ ई० में प्लेगमें सहायता-कार्य करनेवाले दो अंग्रेज अफसरोंकी पूनामें हत्या कर दी गयी तथा १८९८ ई० में बम्बई में भयानक दंगा हो गया। इसके फलस्वरूप सरकारने कड़े दमनकारी कानून बनाये और लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक (दे०) पर राजद्रोहका अभियोग लगाकर उनपर मुकदमा चलाया और दंडित किया।

१८९८ ई० में कलकत्तामें भी प्लेगकी महामारी फैल गयी और इसमें बहुत-सी जानें गयीं। इस महामारीके समय रामकृष्ण मिशन (दे०) तथा सिस्टर निवेदिताने बीमारों तथा मरणासन्न व्यक्तियोंकी सेवा-सुश्रूषा करके भारी नाम कमाया। धीरे-धीरे प्लेगकी महामारीका प्रसार रोक दिया गया, किन्तु भारतसे इस महामारीका पूर्ण उन्मूलन अभी तक संभव नहीं हो सका है।

फ

फखरुद्दीन—सुल्तान बल्बनके शासनकालमें दिल्लीका कोतवाल। वह बड़ा ऐशपरस्त था और प्रतिदिन पोशाक बदलता था। जब बलबनने अमीरोंकी शक्तिको कुचलनेके लिए दोआबके दो हजार शमसी घुड़सवारोंकी भूमिके पट्टोंका नियमन और भूमिके पुराने अनुदानोंको इस आधारपर रद्द करना शुरू किया कि उन लोगोंने सैनिक सेवा प्रदान करना बंद कर दिया है, फखरुद्दीन भूस्वामियोंके हितोंका मुख्य संरक्षक और प्रवक्ता बन गया।

एक दिन फखरुद्दीन सुल्तानके पास गमगीन शक्ल लिये हुए गया। सुल्तानने पूछा कि वह गमगीन क्यों है, तो उसने जवाब दिया कि शमसी घुड़सवारोंकी जमीन वापस ली जा रही है, अतएव मुझे चिंता हो गयी है कि अब बुढ़ापेमें जिंदगी कैसे कटेगी। इस चतुरतापूर्ण कथनसे सुल्तानको बड़ी दया आयी। सुल्तानने शमसी घुड़सवारों-से जमीन वापस लेनेका आदेश रद्द कर दिया। १२८७ ई० में बलबनकी मृत्युके पश्चात् फखरुद्दीनने पहले कैकोबादको गद्दीपर बिठाने और फिर १२९० ई० में उसे गद्दीसे उतारकर जलालुद्दीन खिलजीको उसपर बैठानेमें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। १३०१ ई०में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीको संदेह हुआ कि फखरुद्दीनने हाजी मौलाको विद्रोह करनेके लिए उकसाया है, तब उसने उसे सपरिवार मरवा दिया।

फखरुद्दीन अब्दुल अजीज कूफी—नैशापुरका काजी था जिसने एक गुलाम बालक खरीदा और उसे अपने लड़कोंके साथ धार्मिक एवं सैनिक शिक्षा दी। यही बालक आगे चलकर कुतुबुद्दीन ऐबकके नामसे प्रसिद्ध हुआ जो दिल्लीका प्रथम सुल्तान और गुलाम वंशका संस्थापक बना। फख-रुद्दीनके लड़कोंने इस गुलाम बालकको एक व्यापारीके हाथ बेच दिया। इस व्यापारीने उसे गजनीमें बेच दिया।

फखरुद्दीन मुबारक शाह—सुल्तान मुहम्मद तुगलक (१३२५–५१ ई०) के जमानेमें सोनारगाँव (बंगाल) के सूबेदार बहराम खाँ (जो तातार खाँके नामसे भी जाना जाता था) का जिरहबख्तर बरदार। १३३६ ई०में बहराम खाँके मरनेके पश्चात् उसने अपनेको सोनारगाँवका शासक घोषित कर दिया और फखरुद्दीन मुबारक शाहकी पदवी धारण की। इस प्रकार उसने बंगालमें स्वतन्त्र सल्तनतकी स्थापना की। उसने लगभग दस वर्ष तक शासन किया। (भट्टसाली, पृष्ठ १५)।

फखरुद्दीन मुहम्मद जूना खाँ—देखिये, 'मुहम्मद तुगलक'।

फजलुलहक, अब्दुल कासिम (१८७३-१९६२)—भूतपूर्व पूर्वी पाकिस्तान (अब बंगलादेश)का गवर्नर। उसका जन्म बरीसालमें हुआ। पहले वह डिप्टी मजिस्ट्रेटके पदपर था, किन्तु शीघ्र ही उसे छोड़कर कलकत्ता हाईकोर्टमें वकालत शुरू कर दी। उसका जीवन विविधतापूर्ण और विलक्षण रहा। १९०४ ई० में वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसमें शामिल हुआ, किन्तु शीघ्र ही कांग्रेसको छोड़कर मुस्लिम लीगमें शामिल हो गया और उसका अध्यक्ष भी रहा। गोलमेज सम्मेलन (दे०)के पहले और दूसरे अधि-वेशनोंमें उसने मुस्लिम लीगका प्रतिनिधित्व किया। वह १९३७ से ४३ ई० तक अविभाजित बंगालका मुख्यमंत्री और कृषक प्रजा पार्टीका नेता रहा। देश विभाजनके बाद वह पूर्वी पाकिस्तान चला गया। वहाँपर वह मुख्य-मंत्री और गवर्नर भी रहा।

फतेहउल्ला, इमादशाह—जिसने हिन्दू धर्मको छोड़कर इस्लाम अपना लिया, चौदहवें बहमनी सुल्तान महमूद (१४८२-१५१८ ई०)के शासनकालमें बरारका सूबेदार। सुल्तानके नाबालिग होने और महमूद खाँकी हत्याके बाद उत्पन्न अराजकता और विघटनकी स्थितिका लाभ उठा कर फतेहउल्ला १४८४ ई० में बरारका शासक बन

बैठा और उसने 'इमादुलमुल्क'की उपाधि धारण की। इस प्रकार इमादशाही वंशका सूत्रपात हुआ। इस वंशने १५७४ ई० तक बरारमें शासन किया। इसके बाद बरारको अहमदनगरमें मिला लिया गया।

फतेहखाँ–सुल्तान फीरोज़शाह तुगलकका सबसे बड़ा पुत्र (१३५१-८८)। उसकी मृत्यु फीरोज़से पहले ही हो गयी थी। फतेहखाँका बड़ा लड़का गयासुद्दीन तुगलक अपने बाबा सुल्तान फीरोजशाहकी मृत्युके तत्काल बाद गद्दीपर बैठा, किन्तु कुछ ही महीनों बाद उसे अपदस्थ कर उसकी हत्या कर दी गयी। फतेहखाँका दूसरा लड़का नसरतशाह तुगलक वंशका उपांतिम सुल्तान था, जिसने १३९५ से १३९९ ई० तक शासन किया।

फतेहखाँ–मलिक अम्बरका पुत्र। मलिक अम्बर अहमदनगरके निजामशाहोंका वर्षोंतक वज़ीर रहा। फतेहखाँमें अपने बाप जैसी वफादारी नहीं थी। वह अहमदनगरके उपान्तिम शासक मुरतज़ा निजामशाह द्वितीयका वजीर था। उसने १६३० ई० में निजामशाहकी हत्या कर उसके युवा पुत्र हुसेनको अहमदनगरका शासक घोषित कर दिया। १६३१ ई० में उसने बड़ी बहादुरीके साथ मुगल-सम्राट् शाहजहाँकी फौजोंसे दौलताबाद दुर्गकी रक्षा की। उसके पिता मलिक अम्बरने दौलताबादकी बड़ी मजबूत किलेबन्दी की थी। १६३३ ई० में मुगल सम्राट्ने फतेहखाँ को लालच दिया जिससे उसने दौलताबादका दुर्ग मुगल सम्राट्के हवाले कर दिया। शाहजहाँने अहमदनगरके अंतिम निजामशाह हुसेनको ग्वालियरके किलेमें आजीवन कैद रखा और फतेहखाँको अपनी सेवामें ले लिया। वह मृत्यु पर्यन्त बादशाहकी सेवामें रहा। (कैम्ब्रिज०, पृष्ठ २६५)

फतेहपुर सीकरी–आगरासे २३ मील पश्चिममें स्थित, यहाँ प्रसिद्ध मुस्लिम फकीर शेख सलीम चिश्ती रहता था। सम्राट् अकबर, जो संतानके लिए अधीर था, अपनी मुराद पूरी होनेके लिए चिश्तीसे दुआ मांगने गया। १५६९ ई०में जब उसकी पहली हिन्दू बेगम जोधाबाईने सीकरीमें पुत्र (भावी सम्राट् जहाँगीर)को जन्म दिया, कृतज्ञ सम्राट्ने शेखके नामपर उसका नाम सलीम रखा और सीकरीको राजधानी बनानेका निश्चय किया ताकि वह स्वयं वहाँ रह सके। सीकरीका निर्माण १५७० ई०में आरंभ हुआ और पूरा नगर अनेक आलीशान इमारतोंके साथ कुछ ही वर्षोंमें बनकर तैयार हो गया। अकबरने १५७३ ई०में सीकरीसे ही गुजरातको फतह करनेके लिए कूच किया था। इसलिए इसकी सफलताके उपलक्ष्यमें उसने सीकरीका नाम फतेहपुर (विजयनगरी) रखा। तभीसे सीकरी 'फतेहपुर सीकरी'के नामसे प्रसिद्ध हो गयी। लगभग १५ वर्षों तक यह अकबरकी राजधानी बनी रही। इस अल्प अवधिमें नगरीमें अनेक विशाल भवनोंका निर्माण किया गया। सभी भवन प्रायः लाल पत्थरसे बनाये गये हैं। इन भवनोंमें सलीम चिश्तीका मकबरा, जामा मस्जिद, बुलंद दरवाजा, जोधाबाईका महल, हवाखाना, दीवानेखास, बीरबल महल, मरियम और तुर्की सुल्तानोंके महल तथा इबादतखाना (उपासना-गृह) विशेष उल्लेखनीय हैं। इबादतखानाको छोड़कर बाकी ये सभी इमारतें आज भी मौजूद हैं और सम्राट् अकबरके ललितकला प्रेमकी भव्य प्रतीक हैं। (कुमार स्वामी०, खण्ड द्वितीय, पृष्ठ २९७)।

फरायज़ी आन्दोलन–फरीदपुर (जो अब बंगलादेशमें है) के हाजी शरियतुल्लाहने चलाया। यह मुस्लिम पुनरुद्धार आन्दोलन था जिसका उद्देश्य इस्लामका शुद्धीकरण था। इसने फरीदपुर जिले और उसके पास-पड़ोसके क्षेत्रोंमें रहनेवाले मुस्लिम काश्तकारोंको भारी संख्यामें आकर्षित किया। यह शान्तिपूर्ण आन्दोलन था जिसने बादको कृषि आन्दोलनका रूप ले लिया। बाद धीरे-धीरे यह ठंडा पड़ गया।

फरिश्ता, मुहम्मद कासिम (१५७०-१६१२)–एक प्रसिद्ध इतिहासकार, जिसने फारसीमें इतिहास लिखा है। उसका जन्म फारसमें कैस्पियन सागरके तटपर अस्त्राबादमें हुआ। वह युवावस्थामें अपने पिताके साथ अहमदाबाद आया और वहाँ १५८९ ई० तक रहा। इसके बाद वह बीजापुर चला गया, जहाँ उसे सुल्तान इब्राहीम आदिल-शाह द्वितीयका संरक्षण प्राप्त हुआ। सुल्तानने उससे भारतका इतिहास लिखनेको कहा। यह कार्य उसने १६०९ ई०में पूरा किया। उसके द्वारा लिखा गया भारतका इतिहास 'तारीखे फरिश्ता'के नामसे विख्यात है। ब्रिग्सने उसकी पुस्तकका अंग्रेजीमें अनुवाद 'भारतमें मुसलमानी शक्तिके विकासका इतिहास' नामसे किया है, उसकी मृत्यु १६१२ ई०में बीजापुरमें हुई। पूर्वी देशोंके इतिहासकारोंमें वह अधिक विश्वसनीय है। उसका प्रसिद्ध इतिहास ग्रंथ आज भी भारतमें मुसलमानोंके शासनकाल पर सबसे प्रामाणिक माना जाता है।

फरीद खाँ–देखिये, 'शेरशाह'।

फर्रुखसियर–नवाँ मुगल बादशाह (१७१३–१९) और अज़ीमुश्शानका पुत्र, जो अपने पिता शाह आलम प्रथम (१७०७–१२)की मृत्युके पश्चात् उत्तराधिकारके

युद्धमें १७१२ ई० में मारा गया था। फर्रुखसियर वजीर जुल्फिकार खाँकी सहायतासे अपने चाचा बादशाह जहाँदारशाह (१७१२–१३)को, जिसकी बादमें हत्या करा दी गयी, पदच्युत कर खुद दिल्लीके राजसिंहासन पर बैठ गया। इसके कुछ ही दिन बाद फर्रुखसियरने जुल्फिकार खाँको सूलीपर चढ़वा दिया और हुसेनअली व अब्दुल्ला खाँ नामक दो सैयद भाइयोंको अपना विश्वासपात्र बनाया। उसने हुसेन अलीको प्रधान सेनापति और अब्दुल्ला खाँको वजीर बनाया। अपने अल्प शासनकालमें फर्रुखसियरने सिख नेता बंदा बैरागीको उसके एक हजार अनुयायियोंके साथ गिरफ्तार कर १७१५ ई०में सबको मरवा डाला।

ईस्ट इंडिया कम्पनीने फर्रुखसियरसे बहुत लाभ उठाया। १७१५ ई०में एक अंग्रेजी दूत-मंडल, जिसमें विलियम हैमिल्टन नामक शल्यचिकित्सक भी था, उसके दरबारमें आया था। अंग्रेज शल्यचिकित्सकने बहादुरशाहकी बीमार पुत्रीको मामूली इलाजसे ठीक कर दिया। फर्रुखसियरने खुश होकर शल्यचिकित्सककी स्वामी ईस्ट इंडिया कम्पनीको इनामके तौरपर व्यापारमें महत्त्वपूर्ण रियायतें दीं और बंगालमें उसके लिए तटकर माफ कर दिया। फर्रुखसियर दिमागका कमजोर था। वह सैयद भाइयोंके नियंत्रणसे मुक्त होना चाहता था। दैवयोगसे उन्हें सम्राट्के षड्यंत्रका पता चल गया और उन्होंने पहले ही उसको अपदस्थ कर दिया और बादको आँखें निकलवा कर मरवा डाला।

फाउलर, सर हेनरी–१८९४ ई०में ब्रिटिश सरकारका भारत-मंत्री। १८९८ ई०में उसकी अध्यक्षतामें गठित एक समितिकी सिफारिशपर गिन्नी (सोना) और रुपये (चाँदी) दोनोंको ही असीमित विधिमान्य मुद्रा मान लिया गया, जिसकी दर एक शिलिंग चार पेंस प्रति रुपया निर्धारित हुई और टकसालमें केवल सोनेके मुक्त सिक्के ही ढाले जाने लगे।

फाक्स, चार्ल्स जेम्स (१७४९-१८०६)–इंग्लैंडका प्रमुख राजनैतिज्ञ और सांसदिक। १७८३ ई०में उसने लार्ड नार्थके साथ मिलकर इंग्लैंडमें एक मंत्रिमंडलका गठन किया। इसी वर्ष उसने संसदके सामने भारत संबंधी विधेयक पेश किया जिसमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके कोर्ट आफ प्रोप्राइटर्स और बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स दोनोंको ही भंग करके सारे राजनीतिक और सैनिक अधिकार चार वर्षोंके लिए पहले संसद और बादको महाराज (क्राउन) द्वारा नियुक्त किये जानेवाले सात डायरेक्टरों या कमिश्नरोंको हस्तांतरित कर देनेका प्रस्ताव था। कामन सभा (हाउस आफ कामन्स)ने तो इस विधेयकको भारी बहुमतसे पास कर दिया किन्तु जार्ज तृतीय द्वारा लार्ड टैम्पिलके जरिये किये जानेवाले विरोधी प्रचारके फलस्वरूप लार्ड सभा (हाउस आफ लार्ड्स) ने उसे ठुकरा दिया। तदनन्तर जार्ज तृतीयने फ़ाक्स और नार्थके मंत्रिमंडलको बर्खास्त कर दिया। किन्तु फाक्स अपने उदारवादी दृष्टिकोणके कारण भारतीय मामलोंमें गहरी दिलचस्पी लेता रहा। १७८८ ई०में वारेन हेस्टिंग्स (दे०)पर महाभियोग लगानेमें उसका प्रमुख हाथ था।

फारस–और भारतका अत्यन्त प्राचीन कालसे गहरा सम्बन्ध रहा है। विश्वास किया जाता है कि फारसमें जा बसनेवाले आर्य उसी मूलवंशके थे जिससे भारतीय आर्योंका विकास हुआ। अवेस्ताकी भाषा संस्कृतसे इतनी मिलती-जुलती है कि दोनों एक ही भाषा-परिवारकी मानी जाती हैं। भारतसे फारसका निकट सम्बन्ध छठी शताब्दी ई० पू०में स्थापित हुआ, जब फारसके शाहंशाह साइरस (कुरुष अथवा कुरु) (लगभग ५५५-५३० ई० पू०)ने काबुल नदी तथा सिंधु नदीके बीचका प्रदेश जीत लिया, जिसमें अश्वक आदि गणोंका निवास था। डेरियस (दारयवुह) (लगभग ५२२–४८६ ई० पू०)के राज्यकालमें फारसके साम्राज्यकी सीमाओंका और विस्तार हुआ और गंधार तथा उससे और पूर्वमें सिन्धु नदी तकका प्रदेश उसके अंतर्गत आ गया। गंधारसे पूर्वके प्रदेशको ईरानी 'हिन्द' कहते थे और वह फारसके साम्राज्यका बीसवाँ प्रांत था। गंधार और 'हिन्द' डेरियसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी जरेक्सीज (क्षयार्श) (४८६–४६५ ई० पू०)के राज्यके अन्तर्गत बने रहे। जरेक्सीजने जब यूनान पर चढाई की तब उसकी सेनामें गंधार और 'हिन्द'के भी सैनिक लड़ने गये थे।

फारस और भारतके प्राचीन सम्पर्कके फलस्वरूप उत्तर-पश्चिम भारतमें खरोष्ठी लिपि प्रचलित हो गयी तथा भारतीय वास्तुकलापर भी पारसी प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा। फारसके शाहंशाह डेरियस तृतीय (३३५–३३० ई० पू०)को मकदूनियाके राजा सिकन्दरने ३३१ ई० पू० में गौगामेलकी जिस लड़ाईमें हराया उसमें भारतीय सेनाओंने भी फारसकी सेनाओंके साथ युद्ध किया था। इस युद्धके बाद ही डेरियस तृतीयकी मृत्यु हो गयी, जिसके फलस्वरूप सिकन्दर फारसके साम्राज्यका स्वामी हो गया। इसके बाद ही सिकन्दरने

३२७ ई० पू०में पंजाब तथा सिंधपर आक्रमण किया, जिनके ऊपर फारसके साम्राज्यका नियंत्रण शिथिल पड़ गया था और जहाँ अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये थे। सिकन्दरकी मृत्युके बाद पंजाबने फारसके साम्राज्यके नियंत्रणसे अपनेको मुक्त कर लिया, किंतु, फारस और भारतके बीच व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध कायम रहे।

अशोकने पश्चिमके जिन सुदूरवर्ती राज्योंमें धर्म-विजयके लिए बौद्ध भिक्षुओंको भेजा था, वे फारस होकर उन देशोंमें गये थे। फारसमें उस समय मानी धर्म प्रचलित था। बौद्ध भिक्षुओंने इस मानी धर्मको भी प्रभावित किया। अजंताकी गुफा संख्या १ के भित्ति-चित्रसे प्रकट होता है कि फारस और भारतके बीच दौत्य सम्बन्ध बराबर बना रहा। इस भित्तिचित्रमें दिखाया गया है कि फारसके शाह खुसरो द्वितीय द्वारा लगभग ६२७ ई०में भेजा गया दूत चालुक्य राजा पुल-केशी द्वितीय (६०८–४२ ई०)को अपना परिचय-पत्र प्रस्तुत कर रहा है। सातवीं शताब्दीके मध्यमें अरबोंने जब फारसपर अधिकार करके वहां इसलाम धर्मका प्रचार किया, जरथुश्ती पारसियोंका एक दल, जो अपनी जमीन और दौलतकी अपेक्षा अपने धर्मसे अधिक प्रेम करता था, भागकर भारत चला आया और यहाँ उन्हें आश्रय प्राप्त हुआ। इन पारसियोंके वंशज आज भी वर्तमान हैं और भारतके सम्मानित एवं समृद्धिशाली अल्पसंख्क वर्गमें उनकी गणना की जाती है।

भारतपर जिन मुसलमानोंने विजय प्राप्त की, उनमें अधिकांश तुर्क तथा सुन्नी थे। उधर फारसके लोग तथा वहाँके शाह शिया मतावलम्बी थे। इसलिए मुसलमानी शासन-कालमें फारस और भारतके सम्बन्ध-सूत्र शिथिल पड़ गये। फिर भी फारसके साहसी मुस-लमान अक्सर दौलतकी खोजमें भारत आते रहते थे और उन्हें अक्सर यहाँ आनेपर अमीर बना दिया जाता था। इस प्रकारका एक ईरानी अमीर यूसुफ आदिल शाह था, जिसने बीजापुरका आदिलशाही वंश (१४९०–१६७३ ई०) चलाया। प्रसिद्ध मुसलमान इतिहासकार फरिश्ता (दे०) भी फारसका रहनेवाला था। उसने भारतमें मुसलमानी राज्यशक्तिके उत्थान और पतनका इतिहास लिखा है। दिल्लीके सुलतानोंके दरबारमें फारसी भाषाका प्रयोग होता था और मुगल दरबारमें भी इसी भाषाका प्रयोग जारी रहा। सारे भारतमें मुसलमान शासकोंके दरबारोंमें फारसी भाषा, फारसी पहनावे और फारसी शिष्टाचारका प्रचलन था। दूसरे मुगल बादशाह हुमायूं (दे०)को फारसके शाह ताहमस्यके दरबारमें शरण मिली थी और उसीकी फौजी सहायता-से उसने दुबारा दिल्लीका तख्त प्राप्त किया। १६४९ ई० में फारसने कंदहार छीन लिया और शाहजहाँ तथा औरंगजेब द्वारा उसपर दुबारा अधिकार कर लेनेके सारे प्रयत्नोंको विफल कर दिया। फारसने भारतको सबसे जबर्दस्त चोट १७३९ ई०में पहुँचायी जब फारसके शासक नादिरशाह (दे०)ने भारतपर चढ़ाई की, दिल्लीको निर्दयता-पूर्वक लूटा तथा तख्तेताऊस, कोहनूर और बहुत-सी दौलत लेकर फारस लौट गया। १७४७ ई०में नादिरशाहकी मृत्युके बाद ही अफगानिस्तानमें अहमदशाह दुर्रानीकी राज्यशक्तिके उदयसे फारस और भारतके बीच नवस्थापित राजनीतिक सम्बन्ध फिर भंग हो गया। परन्तु, नादिरशाहके हमलेसे भारतको जो क्षति पहुँची, उससे वह फिर उबर न सका। नादिर-शाहके हमलेने मुगल साम्राज्यको जर्जर कर दिया। १७६१ ई०में पानीपतकी तीसरी लड़ाईमें मुगलों तथा मराठोंकी पराजय तथा उसके बाद ही भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यका उदय, नादिरशाहके क्रूर हमलेका ही परिणाम था।

उन्नीसवीं शताब्दीमें फारसको लेकर ब्रिटेन और रूसमें काफी प्रतिद्वन्द्विता चली। दोनों ही फारसको अपने संरक्षणमें लेना चाहते थे। फलतः भारत और फारसका राजनीतिक सम्बन्ध ब्रिटेन और रूसकी कूट-नीतिक चालोंसे सम्बद्ध हो गया। १९०७ ई०में ब्रिटेन और रूसमें समझौता हो गया जिसके द्वारा दोनोंने फारसकी अखंडता बनाये रखनेकी प्रतिज्ञा की। इसके साथ ही वे इस बातपर भी सहमत हो गये कि उत्तरी फारसको रूसी प्रभाव क्षेत्रमें तथा दक्षिण-पूर्वी फारसको ब्रिटिश प्रभाव क्षेत्रमें माना जायगा। रूसने यह स्वीकार कर लिया कि फारसकी खाड़ीमें इंग्लैंडका विशेष स्वार्थ हैं। इस प्रकार युरोपके दो सभ्य देशोंने एक स्वतंत्र देशका आपसमें जिस नीतिसे बंदरबाट कर लेनेका निर्णय लिया, वह उनकी सभ्यताके वास्तविक चेहरेको बेनकाब करनेवाला था। १९३४ ई०से फारसका नाम सरकारी तौरसे बदलकर ईरान कर दिया गया है। ईरान अब शक्तिशाली आधुनिक राष्ट्र बन गया है। भारतीय गण-राज्यसे उसका मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध है।

फारूकी वंश–खानदेशमें १३८८ ई० में सुल्तान फीरोजशाह तुगलक (१३५१–८८) के निजी सेवक मलिक रजा

फारूकीसे प्रचलित, जिसे सुल्तानने प्रांतके प्रशासनका भार सौंपा था। मलिक रजा फारूकीने ग्यारह वर्षों (१३८८–९९) तक शासन किया। बादको उसका पुत्र मलिक नासिर (१३९९–१४३८) उत्तराधिकारी बना। उसने हिन्दू राजाको परास्त कर असीरगढ़ किलेपर कब्जा किया, लेकिन पड़ोसमें स्थित गुजरातके मुस्लिम बादशाह और बहमनी सुल्तान अलाउद्दीन अहमदने फारुकीको हरा कर उसकी पुत्रीसे विवाह कर लिया। इस वंशके तीसरे बादशाह आदिल खाँ प्रथम (१४३४–४१) और चौथे बादशाह मुबारक खाँ प्रथम (१४४१-५७) के शासनकालमें कोई उल्लेखनीय घटना नहीं घटी। किन्तु पाँचवाँ बादशाह आदिल खाँ द्वितीय (१४५७–१५०८) योग्य और शक्तिशाली शासक था जिसने गोंडवानापर अपनी प्रभुसत्ता कायम की। आदिल खाँ द्वितीयके कोई पुत्र न था इसलिए गद्दी उसके भाई दाऊद (१५०१–०८)को मिली। दाऊदके पुत्र और उत्तराधिकारी गजनी खाँ को गद्दीपर बैठनेके दस दिनोंके अन्दर ही जहर देकर मार डाला गया। इसके बाद फारूकी वंश गृहयुद्धका शिकार बन गया, जिसे अहमदनगर और गुजरातके सुल्तानोंने और भड़काया। इस आंतरिक संघर्षने फारुकी वंशको अत्यधिक कमजोर कर दिया और उसके अंतिम शासक बहादुर फारूकीने १६०१ ई०में मुगल सम्राट् अकबरके आगे आत्मसमर्पण कर दिया। इस वंशके शासकोंने अपनी राजधानी बुरहानपुर तथा थालनेर नगरको सुन्दर मस्जिदों और मकबरोंका निर्माण करके सुसज्जित किया था। बुरहानपुरमें ताप्ती नदीपर निर्मित उनके राजप्रासाद के ध्वंसावशेष स्थापत्य कलाके प्रति उनके प्रेम और कलापूर्ण रुचिके प्रतीक हैं।

फाहियान (फाहियेन)—एक चीनी तीर्थ-यात्री, जो भारतमें ४०१ से ४१० ई० तक रहा। वह विनय-पिटककी प्रामाणिक प्रति प्राप्त करनेके उद्देश्यसे आया था। फाहियान पश्चिमी चीनसे चलकर गोबी मरुस्थलके दक्षिणमें लाप-नोर होते हुए खोतान आया, जहाँ बौद्ध धर्मकी महायान शाखाका प्रचलन था। वह पामीर पार करते और भयंकर कष्टोंका सामना करते हुए उदयनोर (स्वान) पहुंचा। उसके बाद तक्षशिला होते हुए पुरुषपुर (पेशावर) पहुँचा। समस्त उत्तरी भारतकी यात्रा करते हुए वह तीन वर्ष पाटलिपुत्रमें तथा दो वर्ष ताम्रलिप्ति (आधुनिक पश्चिमी बंगालके मिदनापुर जिलान्तर्गत तमलुक) में रहा। उस जमानेमें ताम्रलिप्ति प्रसिद्ध बन्दरगाह था।

वह ४१० ई०में ताम्रलिप्तिसे जलयान द्वारा स्वदेश रवाना हुआ और रास्तेमें श्रीलंका तथा जावा रुकता हुआ ४१४ ई०में चीन वापस लौटा।

फाहियानने भारतमें जो कुछ देखा, उसका बड़ा रोचक विवरण लिखा है। वह गंगा घाटीके मैदानसे बहुत आकर्षित हुआ जिसे उसने मध्यदेशकी संज्ञा दी, जो उस समय गुप्त वंशके चन्द्रगुप्त द्वितीय (लगभग ३८०–४१५ ई०)के शासनके अन्तर्गत था। फाहियानने अपने विवरणमें चन्द्रगुप्तका कहीं उल्लेख नहीं किया और न कभी उनके दरबारमें ही उपस्थित हुआ। लेकिन वह यहाँके कुशल एवं उदार प्रशासनसे बहुत प्रभावित हुआ। उसने लिखा है कि यहाँ लोग बेरोकटोक कहीं भी आ-जा सकते हैं। कहीं किसीको पंजीयन अथवा पारपत्रकी आवश्यकता नहीं होती। अपराधोंके लिए मुख्यतः अर्थदण्ड दिया जाता है। फाँसीकी सजा नहीं दी जाती, लेकिन गम्भीर अपराधोंके लिए अंग-भंगका दण्ड दिया जाता है। भूमिके लगानसे राजस्व प्राप्त किया जाता है और सभी राजकीय अधिकारियोंको नियमित रूपसे वेतन मिलता है।

मगधके नगर उसे बहुत पसन्द आये। पाटलिपुत्रमें उसने तीन वर्ष रहकर संस्कृत भाषा सीखी और बौद्ध धर्मग्रन्थोंका अध्ययन किया। उसके कथनानुसार आम जनता धनी और वैभव-सम्पन्न थी। धर्मार्थक संस्थाएँ बहुत थीं। महापथोंपर यात्रियोंके लिए विश्रामगृह बने हुए थे। एक बहुत अच्छा चिकित्सालय भी था। फाहियानको अशोकका राजप्रासाद, जो उस समय भी वर्तमान था, बहुत पसन्द आया। वह उसकी विशालता और भव्यतासे अति प्रभावित हुआ। उसे प्रतीत हुआ कि यह राजप्रासाद देवों द्वारा निर्मित हुआ होगा, मानव इस प्रकारका कलापूर्ण भवन बना ही नहीं सकता। उसने बौद्ध तीर्थ-स्थानों यथा बोध-गया, श्रावस्ती, कपिलवस्तु तथा कुशीनगरको लगभग वीरान अथवा उजड़ा हुआ पाया। उसने लिखा है कि सम्पूर्ण देशमें कोई किसी भी प्राणीकी हत्या नहीं करता। कोई शराब नहीं पीता और न कोई प्याज-लहसुन खाता है। इससे प्रकट होता है कि उस जमानेमें लोग बहुत संयमी होते थे और शाकाहारी भोजनके आदी थे। फाहियानके विवरणमें एक महत्त्वपूर्ण बात छूट गयी है। उसने नालंदा विहार और विश्वविद्यालयका जिक्र नहीं किया है। जान पड़ता है कि फाहियानके स्वदेश वापस हो जानेके बाद इनकी स्थापना हुई।

फिंच, जनरल (१८२०-९२)–ब्रिटिश भारतीय फौजका एक अधिकारी, जिसने द्वितीय बर्मा-युद्ध (१८५२ ई०) में भाग लिया था। युद्ध जीत लेनेके बाद उसने नव-नियुक्त कमिश्नर मेजर आर्थर फेरेको बर्माके नये प्रांत-में आवश्यक प्रशासनिक सुधार करनेमें बहुत सहायता दी। १८७८ ई०में उसकी पुस्तक 'बर्मा, पास्ट एण्ड प्रेजेण्ट' (बर्मा: अतीत और वर्तमान) प्रकाशित हुई।

फिच, राल्फ–एक अंग्रेज सौदागर जो स्थल मार्गसे १५८३ ई०में भारत आया। उसने उत्तरी भारत, बंगाल, बर्मा, मलक्का और श्रीलंकाकी यात्रा की और १५९१ ई०में सकुशल इंग्लैंड वापस लौट गया। उसने अपना जो यात्रा-विवरण लिखा उसके आधारपर ईस्ट इंडिया कम्पनीने अपनी प्रारम्भिक व्यापारिक योजना तैयार की।

फीरोजखां–शेरशाह (१५४०-४५)के एकमात्र पुत्र और उत्तराधिकारी इस्लाम (या सलीम) शाहका इकलौता लड़का। इस्लामशाह (१५४५-५४)की मृत्युपर अल्प-वयस्क फीरोजखाँको उसके मामा मुबारिजखाँने मार डाला, जो बादको मुहम्मद आदिलशाह (१५५४-५६) के नामसे खुद तख्तपर बैठ गया।

फीरोजशाह–मुगल बादशाह बहादुरशाह द्वितीय (१८३७–५८)का एक सम्बन्धी। उसने भारतीय स्वाधीनता संग्राम (१८५७ ई०)से पहले कुछ दिनों तक ब्रिटिश-विरोधी भावना भड़कानेमें प्रमुख भूमिका अदा की थी।

फीरोज शाहका युद्ध–२१ और २२ दिसम्बरको प्रथम सिख-युद्ध (१८४५-४६) के दौरान सिखों और अंग्रेजोंके बीच छेड़ा गया। २१ दिसम्बरकी रातको ब्रिटिश फौजकी हालत बेहद नाजुक थी, जब उसे खुले मैदानमें पड़ाव डालना पड़ा। दूसरे दिन तड़के ही युद्ध फिर शुरू हुआ, किन्तु सिख जनरल तेजसिंह द्वारा स्वार्थवश बहादुर सैनिकोंको पीछे हटनेका आदेश दिये जानेके कारण वह अकस्मात् समाप्त हो गया। युद्धमें सिखोंकी हार हुई, किन्तु अंग्रेजोंको जीतका भारी मूल्य चुकाना पड़ा। ब्रिटिश फौजके २४१५ जवान हताहत हुए जिसमें १०३ अधिकारी भी थे। अधिकारियोंमें गवर्नर-जनरलके पांच अंगरक्षक मारे गये और चार घायल हो गये। इस लड़ाईकी समाप्तिसे सिख-अंग्रेज युद्ध समाप्त नहीं हुआ, उसकी समाप्ति दो महीने बाद फरवरी १८४६ ई०में सुबराहानमें अंग्रेजोंकी जीतके साथ हुई। (जे० डी० कानिंघम कृत हिस्ट्री आफ दि सिक्ख्स)।

फीरोजशाह बहमनी (१३९७-१४२२)–बहमनी वंशका आठवां सुल्तान। इतिहासकार फरिश्ताके अनुसार उसका शासनकाल बहमनी वंशका सबसे अधिक गौरवशाली काल था। फीरोजशाहने लगभग हर वर्ष पड़ोसी हिन्दू राज्य विजयनगरपर हमले किये। १४०६ ई०में तो वह वस्तुतः नगरमें घुस गया और उसने विजयनगरके राजा देवराय प्रथम (१४०६–१२)को संधि करनेके बदलेमें अपनी लड़की देनेको मजबूर किया। किन्तु १४२० ई०में सुल्तानको कृष्णा नदीके उत्तर पंगलके युद्धमें हिन्दुओंसे करारी मात खानी पड़ी और वह बिल-कुल टूटा हुआ घर लौटा। फीरोजने अपन जीवनके शेष दो वर्ष इबादतमें बिताये और प्रशासनको तुर्की गुलामोंके हाथोंमें छोड़ दिया। फीरोज इमारतोंका शौकीन था। उसने राजधानी गुलबर्गको अनेक भव्य इमारतोंसे अलंकृत किया जिनमें प्रमुख एक मस्जिद है जिसका निर्माण उसने स्पेनकी कुर्तुबा (कारडोवा) मस्जिदकी शैलीपर कराया था। उसने राजधानीके दक्षिणमें भीम नदीके तटपर फीरोजाबाद नगरमें विशाल प्राचीरयुक्त राज-प्रासाद भी बनवाया।

फीरोजशाह खिलजी–देखिये, जलालुद्दीन फीरोजशाह खिलजी।

फीरोजशाह तुगलक–तुगलक वंशके दूसरे सुल्तान मुहम्मद तुगलकका चचेरा भाई और उत्तराधिकारी। उसने मार्च १३५१ से लेकर सितम्बर १३८८ ई०में मृत्यु पर्यन्त शासन किया। उसका पिता रजब सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक (१३२०-२५)का छोटा भाई था। फीरोजशाह शांतिप्रेमी सुल्तान था, जिसकी पहली समस्या ठट्टा (सिंध) से फौजको सकुशल दिल्ली वापस लानेकी थी। यह फौज मुहम्मद तुगलक वहां विद्रोहको दबानेके लिए ले गया था किन्तु अचानक उसकी मृत्यु हो गयी। १३६१-६३ ई०में फीरोजने सिंधको नियंत्रणमें लानेकी कोशिश की और एक लम्बी लड़ाईके बाद उसे वहाँके विद्रोही शासक जाम बाबनियाको आत्मसमर्पणके लिए मजबूर करनेमें सफलता मिली। उसने जामको सालाना नजराना देनेके लिए मजबूर किया। सुल्तानने १३५३ और १३५९ ई०में बंगालपर भी पुनः आधिपत्य स्थापित करनेकी कोशिशें कीं किन्तु विफल रहा। फीरोजने दक्षिणमें मुस्लिम बहमनी सुल्तानों और विजयनगरके हिन्दू राजाओंपर पुनः विजय प्राप्त करनेकी कोशिश नहीं की। वे लोग मुहम्मद तुगलक (१३२५-५१)के शासन कालके अंतिम वर्षोंमें दिल्लीके प्रभुत्वको स्वीकार करके स्वतंत्र हो गये थे। फीरोज दिल्ली सल्तनतके विघटनको भी न रोक सका जिसकी शुरूआत उससे पहले-

के सुल्तान मुहम्मद तुगलकके शासनकालमें ही हो गयी थी। फीरोजको एकमात्र सैनिक सफलता जाजनगर (उड़ीसा) में मिली, जहाँ उसने १३६० ई० में फतेह हासिल की।

फीरोजाबाद—एक नगर, जिसे सुल्तान फिरोजशाह तुगलक (१३५१-८८)ने अपनी राजधानी दिल्लीसे दस मील-की दूरीपर बसाया था। यही नाम सुल्तानने १३५३-५४ ई०में बंगालकी चढ़ाईके दौरान वहाँके पंडुवा नगर-को भी दिया था।

सुलतान फीरोज कट्टर मुसलमान था और उसने देशका प्रशासन इस्लामके सिद्धान्तोंके अनुरूप चलानेका प्रयास किया। फलस्वरूप हिन्दुओंको, जो बहुमतमें थे, भारी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। उनके धार्मिक उत्सवों, सार्वजनिक सभाओं और पूजा-पाठपर प्रतिबंध लगाया गया। इस धार्मिक कट्टरताके बावजूद फीरोज उदार शासक था। उसने अनेक कष्टदायी और अनुचित करोंको समाप्त किया, यद्यपि ब्राह्मणोंपर भी जजिया कर थोपा गया जो अभी तक इससे मुक्त थे। उसने सिंचाई कार्यको प्रोत्साहन दिया, जौनपुर सहित कई नगरोंकी स्थापना की, अनेक बाग-बगीचोंको लगाया और वहाँ तमाम मस्जिदोंका निर्माण कराया। उसने अंग-भंग जैसे कठोर दंडोंको समाप्त किया और एक धर्मार्थ चिकित्सालयकी स्थापना की जहाँ रोगियोंको दवाएँ और भोजन मुफ्त दिया जाता था। उसका शासन कठोर नहीं था। चीजोंकी कीमत कम थी। लोग शांतिसे रहते थे। किन्तु फीरोजकी यह कोमलता आनेवाली पीढ़ीके लिए घातक सिद्ध हुई। उसने अपनी फौजका गठन सामंती परम्पराके आधारपर किया था; वह आमतौरसे वेतनकी जगह अधिकारियोंको जागीरें और सिपाहियोंको जमीनें बाँटता था। वृद्धोंके प्रति दयालुता प्रदर्शित करनेके लिए उसने सेनाकी सेवाओंको पुश्तैनी बना दिया। इस प्रकार दिल्ली सल्तनतकी फौज कमजोर हो गयी और फीरोजकी मृत्युके दस साल बाद तैमूरने १३९८ ई०में जब दिल्लीपर आक्रमण किया वह बड़ी आसानीसे हरा दी गयी। फीरोज जिज्ञासु प्रकृति-का व्यक्ति था। यही वजह थी कि वह टोपरा और मेरठसे दो अशोक-स्तंभोंको बड़ी सावधानीसे दिल्ली लाया और उन्हें वहाँ स्थापित किया। उसने दो मुसलमान इतिहासकारों—जियाउद्दीन बरनी (दे०) और शम्सी शीराज अफीफको संरक्षण प्रदान किया था।

फुलर, सर जे० बैमफील्ड—१९०५ ई० में वाइसराय लार्ड कर्जन द्वारा बंगाल और आसामको मिलाकर बनाये गये पूर्वीप्रांतका पहला लेफ्टीनेंट-गवर्नर। फुलर इंडियन सिविल सर्विस और भारतीयोंकी राष्ट्रीय आकांक्षाओंका विरोधी था। इस नये प्रांतका प्रशासन चलानेमें उसने जानबूझकर हिन्दूविरोधी रवैया अपनाया और बंगभंग-विरोधी आन्दोलनसे मुसलमानोंको अलग करनेके लिए उन्हें सरकारकी 'चहेती बेगम' ऐलान किया। किन्तु इससे आंदोलनको दबाया न जा सका। इस आन्दोलनके समर्थकोंमें स्कूली छात्रोंकी संख्या बहुत बड़ी थी। छात्रों-को आंदोलनसे रोकनेके लिए फुलरने स्कूलोंको एक परिपत्र भेजा, जिसमें धमकी दी गयी थी कि अगर छात्रोंने राजनीतिक आंदोलनमें भाग लिया तो उनको मिलनेवाली राजकीय सहायता बंद और उनकी मान्यता रद्द कर दी जायगी। दो स्कूलोंको इस आदेशके उल्लंघन-का दोषी समझा गया। फुलर उनकी मान्यता रद्द करना चाहता था, किन्तु भारत सरकारने भारत-मंत्री लार्ड मोर्लेकी सहमतिसे उससे अनुरोध किया कि वह उक्त दो स्कूलोंकी मान्यता समाप्त करनेका अपना प्रस्ताव वापस ले ले। फुलरको इसपर इतना आक्रोश हुआ कि उसने अपना त्यागपत्र दे दिया। उसका इस्तीफा तुरन्त स्वीकार कर लिया गया।

फुलार्टन, कर्नल विलियम—द्वितीय मैसूर-युद्ध (१७७९—८४)के दौरान ईस्ट इंडिया कम्पनीकी फौजका एक अफसर। उसने नवम्बर १७८३ ई०में कोयम्बटूरपर अधिकार किया और वह श्रीरंगपत्तनम्पर हमला करनेवाला ही था कि मद्रास सरकारने टीपू सुल्तानके साथ शांति स्थापित करनेके उद्देश्यसे उसे वापस बुला लिया। अवकाश ग्रहण करनेके बाद इंग्लैंडमें उसने फेलो आँफ रायल सोसाइटी तथा संसद सदस्यके रूपमें सक्रिय जीवन व्यतीत किया। उसने 'ए व्यू आँफ इंगलिश इण्टरेस्ट इन इंडिया', (भारतमें ब्रिटिश हितोंपर एक दृष्टिपात) नामक पुस्तक लिखी। १८०८ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी।

फूट—एक अंग्रेज नाटककार, जिसने १७७० ई०में 'दि नवाब' नामक नाटक लिखा। इसमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके उन कर्मचारियोंका व्यंग्य-चित्र प्रस्तुत किया गया था जो बंगालसे बेशुमार दौलत इकट्ठा कर स्वदेश लौटनेपर अपने आडंबर-युक्त जीवनसे सामाजिक जीवनको दूषित बनाते थे और अपनी संपदासे औरोंमें ईर्ष्या पैदा करते थे। इस नाटकने इंग्लैंडकी जनताको इस बातकी जांच-पड़तालके लिए प्रेरित किया कि कम्पनीके अवकाश-

प्राप्त अधिकारियोंके पास जो व्यंग्य-पूर्वक 'नवाब'के नामसे संबोधित किये जाने लगे, इतनी दौलत कहाँसे आयी ?

फूनान–कम्बुज राज्यका, जो अब कम्बोडिया कहलाता है, प्राचीन चीनी नाम, जहाँ एक भारतीय प्रवासी ब्राह्मण कौण्डिन्यने सम्भवतः ईसाकी पहली शताब्दीमें हिन्दू राज्यकी स्थापना की थी। छठी शताब्दीमें फूनानका पूरी तरह कम्बुज देशमें विलय हो गया।

फेडरेल कोर्ट आफ इंडिया (संघ न्यायालय)–भारतीय शासनविधान १९३५ ई०के अन्तर्गत स्थापित। भारतके प्रथम मुख्य न्यायाधीश सर मौरिस ग्वायरकी अध्यक्षतामें इसने १९३७ ई०से कार्य आरम्भ किया। भारतीय संघ, प्रांतों और संघीय राज्योंके बीच विवादोंके निपटानेका अधिकार एकमात्र इसी अदालतको प्राप्त था। इसके क्षेत्राधिकारमें कुछ अपीलोंकी सुनवाई करना भी शामिल था। इसके फैसलेके खिलाफ सिर्फ इंग्लैंडकी प्रिवी कौन्सिलमें अपील की जा सकती थी। जनवरी १९५० ई०में इसका विलय भारतके सर्वोच्च न्यायालयके रूपमें हो गया। (**भारतीय शासन विधान, १९३५**)।

फेरे, कर्नल–बड़ोदाके मल्हारराव गायकवाड़के दरबारमें ब्रिटिश रेजिडेंट। उसने गायकवाड़के विरुद्ध कुशासनके कई आरोप लगाये। एक कमीशन द्वारा इन आरोपोंकी जांच किये जानेपर मल्हाररावको फेरेके निर्देशनमें प्रशासनमें सुधार करनेके लिए अठारह महीनेका समय दिया गया। परन्तु यह समय प्रशासनके किसी सुधारके बिना बीत गया। १८७५ ई०में कर्नल फेरेने मल्हाररावपर आरोप लगाया कि उसने मुझे जहर देनेकी कोशिश की। मल्हारराव पर मुकदमा चलाया गया और अंतमें उसे गद्दीसे उतार दिया गया।

फेरे, सर आर्थर–ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें फौजका मेजर। बर्मा विजय कर लेनेपर वह विजित प्रदेशोंका प्रशासक नियुक्त किया गया। उसने यह दायित्व इतने अच्छे ढंगसे सँभाला कि उसे बर्माका पहला चीफ कमिश्नर नियुक्त कर दिया गया, जिसमें ब्रिटिश बर्मा, तेनासरीम, पगू तथा अराकान सम्मिलित थे।

फैजी–शेख मुबारकका पुत्र, अबुलफजलका बड़ा भाई और अकबरके नवरत्नोंमेंसे एक। वह श्रेष्ठ कवि और साहित्यकार था। अकबरसे वह पहली बार १५६७ ई०में मिला। अकबर उसकी विद्वत्ताके सम्बन्धमें पहले ही बहुत कुछ सुन चुका था, अतएव उसने उसकी बड़ी आवभगत की और अपने दरबारमें सम्मानित स्थान प्रदान किया। २७ जून १५७९ ई०को पहली बार अकबरने पुलपिटपर खड़े होकर जो खुतबा पढ़ा, उसकी रचना फैजीने की थी। इस प्रकार अकबरने नये धर्मका प्रवर्तन किया जो 'दीन-इलाही' (दे०) नामसे विख्यात हुआ। १५९१ ई०में अकबरने फैजीको खानदेश और अहमदनगर अपना दूत बनाकर भेजा। वह खानदेशको अधीन करनेमें सफल हुआ, लेकिन अहमदनगरमें उसे सफलता नहीं मिली। इस प्रकार राज-दौत्यकर्ममें उसे आंशिक सफलता प्राप्त हुई। १५९५ ई०में उसकी मृत्यु हुई।

फैजुल्ला खाँ–रुहेलखण्ड राज्यके संस्थापक अली मुहम्मद रुहेलाका पुत्र। १७७४ ई०में हाफिज रहमत खाँकी पराजय और मृत्युके पश्चात् उसे रुहेलखण्डका एक भाग दे दिया गया, जिसमें रामपुर भी शामिल था। बादमें वह कम्पनी सरकारकी अधीनतामें वहाँका शासक बना दिया गया।

फोर्ट विलियम–इस किलेका निर्माण कलकत्तामें १६९६ से १७१५ ई०के दौरान हुआ। इसके बन जानेसे कलकत्ता नगरमें अंग्रेजोंको सुरक्षा प्राप्त हो गयी। १७५६ ई०में इसपर नवाब सिराजुद्दौलाने कब्जा कर लिया, किन्तु १७५७ ई०में अंग्रेजोंका इसपर पुनः अधिकार हो गया। बादमें इस किलेको तुड़वाकर इसके स्थानपर कस्टम हाउस और जनरल पोस्ट आफिसकी इमारतोंका निर्माण कराया गया। आजकल जिस स्थानपर किला है, उसे बादमें चुना गया था।

फोर्ट सेण्ट जार्ज–इस किलेका निर्माण मसुलीपत्तनम् स्थित ईस्ट इंडिया कम्पनीकी कौन्सिलके एक सदस्य फ्रांसिस डेने १६४० ई०में चोलमंडल तटपर जमीनकी एक पतली पट्टीके ऊपर कराया। यह जमीन पड़ोसके हिन्दू राजा चन्द्रगिरिसे पट्टेपर मिली थी। इस किलेके चारों ओर आधुनिक मद्रास नगरका विकास हुआ। अंग्रेजोंने बादमें मसुलीपत्तनम्के स्थानपर इसको अपना मुख्यालय बनाया और अंततः इसे मद्रास प्रेसीडेंसीकी राजधानी बनाया गया।

फोर्ट सेण्ट डेविड–इस किलेका निर्माण ईस्ट इंडिया कम्पनीने १८वीं शताब्दीमें कराया। यह पांडिचेरीसे कुछ दक्षिणमें चोलमंडल तटपर स्थित है। १७४७-४८ ई०में फ्रांसीसियोंने अठारह महीनों तक इसपर घेरा डाल रखा। तदनन्तर १७५८ ई०में काउण्ट दि लालीके नेतृत्वमें एक महीनेकी घेराबंदीके बाद इसपर फ्रांसीसियोंने कब्जा कर लिया, किन्तु १७६० ई०में विंदवासके युद्धके बाद यह पुनः अंग्रेजोंके हाथमें आ गया।

फोर्ड, कर्नल–ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी बंगाल सेनाका एक अफसर, जिसे राबर्ट क्लाइवने १७५९ ई०में दक्षिण भारतमें फ्रांसीसियोंपर प्रहार करनेके लिए भेजा था। वह सफलताके साथ समुद्र तटपर बढ़ता गया और मसुलीपत्तनम्पर कब्जा कर लिया। इस प्रकार उत्तरी सरकारपर फ्रांसीसियोंका नियंत्रण समाप्त हो गया और वह अंग्रेजोंके कब्जेमें आ गया। बादको इसी साल उसने बिदराके युद्धमें डचोंको परास्त किया, जिनका मुख्यालय चिनसुरा (बंगाल)में था। इस पराजयके बाद बंगालसे डचोंका भी सफाया हो गया।

कर्नल फोर्डकी मृत्यु दर्दनाक ढंगसे हुई। १७६९ ई०में लंदन स्थित कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सने वैंसिटार्ट और स्क्रैफ्टनके साथ उसे कम्पनीकी हर शाखाकी जांच करनेका अधिकार देकर भारत भेजा। किन्तु जिस जहाजसे कर्नल फोर्ड और उसके दोनों साथी यात्रा-कर रहे थे, उत्तमाशा अन्तरीप (केप आफ गुडहोप)से रवाना होनेके बाद उसकी कोई खबर नहीं मिली। शायद वह दुर्घटना-ग्रस्त होकर समुद्रमें डूब गया।

फोर्थ, डा०–बंगालकी तत्कालीन राजधानी मुर्शिदाबादके निकट कासिमबाजार स्थित ईस्ट इंडिया कम्पनीकी एक कोठीसे सम्बद्ध अंग्रेज चिकित्सक। १७५६ ई०में मार्चके उत्तरार्धमें एक दिन जब नवाब अलीवर्दी खां (दे०) गंभीर रूपसे बीमार पड़ा, डा० फोर्थ उसे देखने गया। डा० फोर्थ जिस समय बीमार नवाबसे बातचीत कर रहा था, उसके पौत्र और संभावित उत्तराधिकारी सिराजुद्दौलाने नवाबको सूचना दी कि अंग्रेजोंने मेरे विरुद्ध षड्यंत्र करनेवाली घसीटी बेगमको सहायता देना स्वीकार कर लिया है। मरणासन्न नवाब द्वारा यह पूछे जानेपर कि क्या यह खबर सही है, डा० फोर्थने न केवल उसे गलत बताया, वरन् ईस्ट इंडिया कम्पनीकी तरफसे इस बातकी भी घोषणा की कि बंगालकी राजनीतिमें हस्तक्षेप करनेका कंपनीका कोई इरादा नहीं है। फोर्थकी इस बातपर सिराजुद्दौलाने विश्वास नहीं किया। इस घटनासे पता चलता है कि ईस्ट इंडिया कम्पनीके कर्मचारी कम्पनीके हितोंके संरक्षणके लिए किस तरह झूठ बोलते और छल करते थे।

फोर्बेस, जेम्स (१७४९-१८१९)–भारत आनेवाले उन विशिष्ट अंग्रेजोंमेंसे एक, जिन्होंने हिन्दुओंकी प्राचीन जीवनशैली और भारतकी प्राचीन सभ्यताकी काफी सराहना की। वह १७६५ ई०में ईस्ट इंडिया कम्पनीके एक अधिकारीकी हैसियतसे भारत आया था। १७७८ ई०में प्रथम मराठा-युद्धके कुछ पहले वह कर्नल कीटिंगका निजी सचिव नियुक्त हुआ। १७८४ ई०में कम्पनीकी सेवासे अवकाश ग्रहण कर वह स्वदेश वापस लौट गया। भारतसे इंग्लैंड रवाना होनेके समय वह अपने साथ साहित्य, दर्शन, कला और स्थापत्य आदि विभिन्न भारतीय विषयोंके लगभग १५४ ग्रंथ ले गया। उसने १८१३-१५ ई०में अपने भारत विषयक संस्मरण चार खण्डोंमें 'ओरियण्टल मेमायर्स'के नामसे प्रकाशित किये।

फौजदार–मुगलकालीन भारतका वह अधिकारी, जिसका काम जिले (सरकार)में कानून एवं व्यवस्था बनाये रखना होता था। यह अधिकारी जिलेमें तैनात फौजी टुकड़ीका नायक होता था। उसके ऊपर छोटी-मोटी बगावतोंको दबाने, डाकू गिरोहोंको भगाने या गिरफ्तार करने और हिंसक अपराधोंकी रोकथाम करनेका दायित्व रहता था। वह राजस्व अधिकारियों अथवा काजियोंको अपनी आज्ञाओंका पालन करवानेमें सहायता प्रदान करता था। वह आमतौरसे जिलेके मुख्यालयमें ही वास करता था।

फौजदारी अदालत–वह अदालत जिसका काम हिंसात्मक अपराधोंके खिलाफ मुकदमोंकी सुनवाई करना है। बंगालमें ब्रिटिश शासनकी शुरुआतके समय फौजदारी अदालत हर जिलेमें होती थी। इस अदालतके फैसलोंके खिलाफ सदर निजामत अदालतमें अपील की जा सकती थी। यह अदालत दीवानी अदालतसे भिन्न है जो केवल सिविल (दीवानी) या राजस्व सम्बन्धी मुकदमोंकी सुनवाई करती है।

फ्रांसिस, सर फिलिप (१७४०-१८१८)–को रेग्युलेटिंग ऐक्टके अन्तर्गत बंगालमें फोर्ट विलियमके गवर्नर-जनरलकी परिषदका सदस्य नामजद किया गया। उसका वार्षिक वेतन १० हजार पौण्ड निर्धारित हुआ। अक्तूबर १७७४ ई०में कलकत्ता आनेके कुछ समय बाद उसने दो अन्य सहयोगियों-मौनसन और क्लेवरिंगके साथ गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सकी नीतियों और शासन-प्रणालीका तीव्र विरोध किया। इस प्रकार फ्रांसिस और वारेन हेस्टिंग्समें संघर्ष शुरू हो गया, जिसका अन्त फ्रांसिसकी हारमें हुआ। १७८० ई०में फ्रांसिस और हेस्टिंग्समें संघर्ष हो गया और इसके बाद अशक्त होकर वह इंग्लैंड चला गया। वहाँ उसने वारेन हेस्टिंग्सपर महाभियोग लगानेके अभियानको संगठित और संचालित करनेमें प्रमुख भाग लिया। फिलिप बंगालमें लगानके स्थायी बन्दोबस्तका सुझाव देनेवाला पहला अंग्रेज

अधिकारी था। १७९५ ई०में वारेन हेस्टिंग्सके निर्दोष घोषित किये जानेपर वह बहुत निराश हुआ और १८०७ में सार्वजनिक जीवनसे अलग हो गया।

फ्रायर, डा० जान—एक ब्रिटिश यात्री जो सत्रहवीं शताब्दीके सातवें दशकमें भारत आया। उसने मुख्यतः दक्षिणी भारतकी यात्रा की। इस यात्राका उसने रोचक वर्णन लिखा है। (ए न्यू एकाउण्ट)

फ्रेरे, सर हेनरी बार्टल एडवर्ड (१८१५-८९)—एक प्रख्यात ब्रिटिश प्रशासक, जो १८३४ ई०में उच्च अधिकारीकी हैसियतसे भारत आया। १८४६ ई०में वह सतारामें रेजीडेण्ट नियुक्त किया गया और १८४८ ई०में सताराको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिये जानेपर, जिसका वह विरोधी था, वहाँका कमिश्नर बनाया गया। १८५० ई०में सिन्धका कमिश्नर बना, जहाँ नौ वर्षों (१८५०–५९) तक बड़ी सफलताके साथ प्रशासन चलाता रहा। १८५९ से १८६२ ई० तक वह वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्का सदस्य रहा और भारतका वित्तीय संतुलन बनाये रखनेमें सहायता की। १८६२ से १८६७ ई० तक बम्बईका गवर्नर रहा। इस दौरान उसने शिक्षाका प्रसार किया, कालेज (जैसे डक्कन कालेज) खुलवाये, रेलोंका विस्तार किया, बम्बई नगरनिगमकी स्थापना की और नारीशिक्षाको बढ़ावा दिया। किन्तु बैंक आफ बम्बईकी असफलताके लिए उसकी आलोचना हुई। अवकाश ग्रहण कर इंग्लैण्ड चले जानेके बाद वह इंडिया कौन्सिल (१८६७–७७) का सदस्य बना। वह अफगानिस्तानमें अग्रसर नीतिका समर्थक था और ब्रिटिश प्रशासनकी स्वेच्छाचारी मनोवृत्तिका पोषक था। इंग्लैंडके लिए उसने सबसे बड़ी सेवा अफ्रीकामें की, किन्तु वहाँ उसकी आक्रामक नीतिके कारण जुलू-युद्ध छिड़ गया, जिसकी वजहसे उसे इंग्लैंड वापस बुला लिया गया। उसकी मृत्यु १८८९ ई०में हुई।

फ्रेंच-ईस्ट इंडिया कम्पनी—इसकी स्थापना १६६४ ई०में कोलबर्टकी प्रेरणासे फ्रांसकी सरकारने की। इसमें सरकारी पूंजी भी लगायी गयी, किंतु प्रबन्ध-कुशलताके अभावमें प्रथम चार वर्षोंके दौरान मद्रासके उपनिवेशीकरणके प्रयास सफल नहीं हुए। व्यापार कार्यमें उसे इंग्लिश और डच कम्पनियोंकी प्रतिद्वन्द्विताका सामना करना पड़ा, जो भारतके साथ पहलेसे व्यापार कर रही थीं और यहाँ अपनी कोठियाँ स्थापित कर चुकी थीं। इनके विरोधके बावजूद फ्रांसीसी १६६८ ई०में सूरतमें एक कोठी स्थापित करनेमें सफल हो गये। १६७३ ई० में उन्होंने मद्रासपे ८५ मील दक्षिणमें आधुनिक पांडिचेरीका स्थान प्राप्त कर लिया और १६९४ ई० में फ्रांकोई मार्टिनको इसका मुख्य अधिकारी नियुक्त कर दिया। उसने इसे शीघ्र ही विकसित कर इतना महत्त्वपूर्ण बंदरगाह बना दिया कि भारतमें यह फ्रैंच ईस्ट इंडिया कम्पनीका मुख्यालय बन गया।

फ्रैंच कम्पनीको १६७४ ई०में बंगालके नवाब शायस्ता खाँसे भागीरथीके किनारे कलकत्ताके निकट, चंद्रनगरका स्थान मिल गया, जहाँ १६९०–९२ के दौरान उसने नया व्यापार-केन्द्र स्थापित किया। इस प्रकार पांडिचेरी और चंद्रनगरमें फ्रैंच कम्पनी मद्रास और कलकत्ता स्थित इंग्लिश कंपनीकी पड़ोसी और प्रतिद्वन्द्वी बन गयी। परन्तु अठारहवीं शताब्दीके प्रथम दो दशकोंमें फ्रैंच कम्पनीको व्यापारमें सफलता नहीं मिली और उसे सूरत स्थित अपनी कोठी बंद कर देनी पड़ी। अगले दो दशकोंमें कम्पनीका व्यापार फलने-फूलने लगा और उसने १७२१ ई०में मारीशसमें, १७२५ ई०में मलाबार तटपर माही तथा १७३९ में चोलमण्डल तट स्थित कारीकलमें अपनी कोठियाँ स्थापित कर लीं।

अभी तक फ्रैंच कम्पनीका सारा ध्यान भारतके साथ व्यापार करनेपर ही केन्द्रित था, किन्तु १७४२ ई०में पांडिचेरीके गवर्नर पदपर डूप्लेकी नियुक्तिके साथ उसकी नीति और उद्देश्यमें परिवर्तन हुआ। इस समय यूरोपमें आस्ट्रियाई उत्तराधिकारका युद्ध (१७४०-४८) चल रहा था और फ्रांस व इंग्लैंड परस्पर संघर्षरत थे। इधर चोलमण्डल तटपर अंग्रेजोंका कोई जहाजी बेड़ा तैनात न था, किन्तु फ्रांसका जहाजी बेड़ा तैनात था। इस स्थितिका लाभ उठाकर फ्रांसीसियोंने सितम्बर १७४६ ई०में मद्रास पर कब्जा कर लिया। मद्राससे खदेड़े गये इंग्लिश कम्पनीके अधिकारियोंने कर्नाटकके नवाब अनवरुद्दीनसे अपील की, जिसके शासन क्षेत्रके अन्तर्गत मद्रास आता था। अनवरुद्दीनने मद्रासको फ्रांसीसियोंसे हस्तगत करनेके लिए विशाल सेना भेजी, मगर फ्रांसीसियोंकी छोटी-सी सेनाने मैलापुर अथवा सेण्टथोमके युद्धमें नवाबकी विशाल वाहिनीको करारी शिकस्त दी और मद्रासपर फ्रांसीसियोंका कब्जा बना रहा। दो वर्ष बाद यूरोपमें अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंके बीच युद्ध एक्स-ला चैंपेलकी संधिके साथ समाप्त हो गया। इस संधिकी शर्तोंके अनुसार मद्रास इंग्लिश कम्पनीको वापस कर दिया गया।

मैलापुरके युद्धमें नवाबकी विशाल सेनापर फ्रांसी-

सियोंकी विजयने बता दिया कि पुराने तौर-तरीकोंसे लड़नेवाली टिड्डी दल जैसी भारतीय सेनाको यूरोपवासियोंकी छोटी-सी अनुशासित सेना भारतीय सिपाहियोंकी मददसे किस तरह परास्त कर सकती है। इस नसीहतका डूप्लेकी नीतियों पर गहरा प्रभाव पड़ा। अभी तक फ्रांसीसियोंमें किसी प्रकारकी राजनीतिक महत्त्वकांक्षा न थी। अब डूप्लेने अपनी श्रेष्ठ सेना-शक्तिके आधार पर भारतीय राजनीतिमें सक्रिय भाग लेना और भारतमें अपना साम्राज्य विस्तार करना आरम्भ कर दिया। उसकी पहलकदमी पर फ्रांसीसी कम्पनीने १७४८ ई०में कर्नाटक तथा हैदराबादके उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्धोंमें भाग लिया। आरम्भमें उसे अच्छी सफलता मिली। उसे अपना एक आदमी हैदराबादके निजामके पदपर बिठानेमें सफलता मिल गयी, जो पूरी तरहसे फ्रांसीसी जनरल बुसीकी मुट्ठीमें था। उसने फ्रांसीसियोंको अपनी सेनाके खर्चके लिए उत्तरी सरकारकी राजस्व-वसूलीका अधिकार प्रदान कर दिया। किन्तु डूप्ले इंग्लिश कम्पनीको भारतसे बाहर खदेड़नेका अपना लक्ष्य पूरा करनेमें विफल रहा। इस दौरान यूरोपमें इंग्लैंड और फ्रांसके बीच शांति कायम रही और फ्रांसकी सरकारने इंग्लैंडके साथ इस अघोषित युद्धको जिसकी शुरुआत डूप्लेने भारतमें की थी, समाप्त करनेका निश्चय किया। फलतः १७५४ ई०में डूप्लेको फ्रांस वापस बुला लिया गया और इस प्रकार उसका भारतमें फ्रांसीसी साम्राज्यकी स्थापनाका स्वप्न अधूरा रह गया।

डूप्लेके फ्रांस लौटनेके दो वर्ष बाद यूरोपमें सप्तवर्षीय युद्ध छिड़ गया और भारत-स्थित इंग्लिश और फ्रांसीसी कम्पनियां पुनः संघर्षरत हो गयीं। १७५७ ई०में अंग्रेजोंने पहले तो चंद्रनगर (बंगाल)में फ्रांसीसी बस्तीपर कब्जा कर लिया और उसके बाद ही पलासीके युद्धमें बंगालके नवाब सिराजुद्दौलाको परास्त कर और नवाबकी गद्दी पर अपने आश्रित मीर जाफरको बिठाकर बंगालपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। १७५८ ई० में कर्नल फोर्डके नेतृत्वमें अंग्रेजी फौजने फ्रांसीसियोंको उत्तरी सरकारसे बेदखल कर दिया और १७६० ई०में फ्रांसीसियोंको बिदवासके युद्धमें अंग्रेज जनरल सर आयरकूटके हाथों करारी मात खानी पड़ी। इसके एक वर्ष बाद अंग्रेजोंने पांडिचेरी पर भी कब्जा कर लिया और इस प्रकार फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनीके हाथसे भारतका सारा इलाका छिन गया। १७६३ ई०में पेरिस-शांति-संधि हुई और सप्तवर्षीय युद्ध समाप्त हुआ। इस संधिके अन्तर्गत फ्रांसीसी कम्पनीको पांडिचेरी, चन्द्रनगर, माही और कारीकालकी बस्तियाँ लौटा दी गयीं, किन्तु भारतमें उसका राजनीतिक प्रभुत्व समाप्त हो गया। अब वह इन स्थानों पर केवल व्यापारी संस्थाके रूपमें कार्य कर सकती थी। १९५० ई०में भारत स्थित इन फ्रेंच बस्तियोंका विलयन भारतीय गणराज्यमें कर दिया गया।

फ्रैण्ड आफ इंडिया—एक पत्र, जिसका प्रकाशन जान मार्शमेनके निर्देशनमें सिरामपुरके मिशनरियोंने १८१८ ई०में शुरू किया था। यह ईसाई धर्मका प्रचार करनेवाला समाज-सुधारक पत्र था। इसने सती-प्रथा जैसी सामाजिक बुराइयोंके उन्मूलनका समर्थन किया। बादमें यह पत्र कलकत्ताके 'स्टेट्समैन'में विलीन हो गया।

ब

बंकिदेव, अलुपेन्द्र—सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (दे०) के सेनापति मालिक काफूरके आक्रमणके समय भारतके सुदूर दक्षिणी भागमें विद्यमान एक छोटा राजा। काफूरने उसे हराकर उसका राज्य खत्म कर दिया।

बंग-भंग—पहली बार १९०५ ई०में वाइसराय लार्ड कर्जन द्वारा किया गया। उसका तर्क था कि तत्कालीन बंगाल प्रांत, जिसमें बिहार और उड़ीसा भी शामिल थे, बहुत बड़ा है। एक लेफ्टिनेंट-गवर्नर उसका प्रशासन ठीक ढंगसे नहीं चला पाता, फलस्वरूप पूर्वी बंगालके जिलोंकी उपेक्षा होती है जहाँ मुसलमान अधिक संख्यामें हैं। अतएव उत्तरी और पूर्वी बंगालके राजशाही, ढाका तथा चटगाँव डिवीजनोंमें आनेवाले पन्द्रह जिले आसाममें मिला दिये गये और पूर्वी बंगाल तथा आसाम नामसे एक नया प्रांत बना दिया गया और उसे बंगालसे अलग कर दिया गया। बिहार तथा उड़ीसाको पुराने बंगालमें सम्मिलित रखा गया। बंगालके लोगों, विशेष रूपसे हिन्दुओंमें बंग-भंगसे भारी क्षोभ फैल गया, क्योंकि इसका उद्देश्य था एक राष्ट्रको विभाजित कर देना, बंगवासियोंकी एकताको भंग कर देनेका प्रयास, जातीय परंपरा, इतिहास तथा भाषापर घृणित प्रहार। इसको जनताकी राजनीतिक आकांक्षाओंको कुचल देनेका एक साधन माना गया। बंगवासियोंने अपने प्रांतका विच्छेद

रोकनेके लिए अंग्रेजी माल, विशेष रूपसे इंग्लैंडके बने वस्त्रोंका बहिष्कार प्रारम्भ कर दिया और १७ अक्तूबर-को, जिस दिन बंगविच्छेद किया गया, राष्ट्रीय शोक-दिवस मनाया गया।

सरकारको यह जन-आन्दोलन रुचिकर नहीं प्रतीत हुआ। उसने उसे विफल बनानेके लिए मुसलमानोंको अपनी ओर मिलानेका चेष्टा की और वचन दिया कि नये प्रांतमें उनको विशेष सुविधाएँ प्राप्त होंगी। इसके साथ ही उसने दमनकारी उपायोंका सहारा लिया और सार्वजनिक स्थानों पर 'वंदेमातरम्'का घोष करना तक दंडनीय अपराध करार दिया गया। दमनके फलस्वरूप जन-असन्तोष और गहरा हो गया और आतंकवादी गतिविधियाँ आरम्भ हो गयीं। अंग्रेज अफसरों तथा उनके भारतीय गुर्गोंकी हत्या करनेके प्रयत्न किये गये। सरकारने दमनचक्र और तेज कर दिया परन्तु, उसका कोई फल नहीं निकला। परिणामस्वरूप दिसम्बर १९११ ई०के दिल्ली दरबारमें शाही घोषणा करके बंग-विच्छेद सम्बन्धी आदेशमें संशोधन कर दिया गया। पूर्वी बंगालके १५ जिलोंको आसामसे अलग करके पश्चिमी बंगालमें फिर संयुक्त कर दिया गया। इसके साथ ही बिहार तथा उड़ीसाको बंगाल प्रांतसे अलग कर दिया गया। संयुक्त बंगालका प्रशासन एक गवर्नरके अधीन हो गया। प्रशासनकी कथित शिथिलता दूर करनेके लिए यह सुझाव लार्ड कर्जनको भी दिया गया था, परन्तु उसने इसे नामंजूर कर दिया था।

बंगालका दूसरी बार विभाजन १९४७ ई०में भारत विभाजनके फलस्वरूप हुआ। भारतको इसी शर्तपर स्वाधीनता प्रदान की गयी कि उसका विभाजन भारत तथा पाकिस्तान नामके दो राज्योंमें कर दिया जाय। फलस्वरूप बंगालके ढाका तथा चटगाँव डिवीजनके सभी जिलों तथा राजशाही एवं प्रेसीडेंसी डिवीजनके कुछ जिलोंको अलग करके पूर्वी पाकिस्तानका निर्माण कर दिया गया। १६ दिसम्बर १९७१ ई०को पूर्वी पाकिस्तान शेष पाकिस्तानसे अलग होकर एक स्वतंत्र सार्वभौम प्रभुसत्ता-सम्पन्न राष्ट्र बन गया, जो अब 'बांगलादेश' कहलाने लगा है।

बंगाल—वह क्षेत्र, जिसके पश्चिममें बिहार, पूर्व में आसाम, उत्तरमें हिमालयकी तराई तथा दक्षिणमें उड़ीसा तथा बंगालकी खाड़ी स्थित है। यह नदियोंका क्षेत्र है, जिसमें मुख्यतया गंगा और ब्रह्मपुत्र तथा उसकी अनेक सहायक नदियाँ बहती हैं। कछारी भूमि होनेसे कृषि-कार्य यहाँ अपेक्षाकृत सरल है। इसके समृद्ध एवं विविध साधनों-से सम्पन्न होनेके कारण पड़ोसी राज्योंके लोग सदासे इसकी ओर आकृष्ट होते रहे हैं। इस क्षेत्रका नाम 'बंगाल' अंग्रेजोंने प्रचलित किया। पहले इसे बंगला कहते थे, जो संस्कृत शब्द 'बंग'का अपभ्रंश है। प्राचीनकालमें बंगसे पूर्व और मध्य बंगाल निर्दिष्ट होते थे। इस शब्दका प्रयोग महाकाव्योंमें भी मिलता है। पश्चिम तथा पश्चिमोत्तर बंगालको तब गौड़के नामसे जाना जाता था। बंग और गौड़ दोनों मौर्य और गुप्त साम्राज्योंमें शामिल थे। गुप्त साम्राज्यका पतन हो जानेपर धर्मादित्य, गोपचन्द्र और समाचारदेव आदि स्थानीय राजाओंने अपनेको स्वाधीन कर लिया।

छठीं शताब्दीके मध्यमें गौड़ शक्तिशाली राज्य हो गया। सातवीं शताब्दीके आरम्भमें वहाँ शशांक नामक अत्यन्त पराक्रमी राजा हुआ, जो हर्षवर्धनका प्रबल प्रतिद्वन्द्वी था। उसकी मृत्युके पश्चात् बंगाल हर्षके साम्राज्यका अंग बन गया। उसके बाद यह कामरूपके भास्कर वर्माके शासनान्तर्गत आ गया। कैसे और कब बंगाल कामरूपके शासनसे मुक्त हुआ, यह विदित नहीं है। फिर भी यह अधिक समय तक स्वतंत्र नहीं रह सका, क्योंकि आठवीं शताब्दीके आरम्भमें कन्नौजके यशोवर्माने इसे रौंद डाला। इस आक्रमणके फलस्वरूप पूरे प्रदेशमें अराजकता व्याप्त हो गयी। जनश्रुतियोंके आधारपर कहा जाता है, कि इसी कालमें यहाँ आदि सूर नामक शासक हुआ। प्रसिद्धि है कि उसने मिथिलासे पाँच ब्राह्मणोंको पाँच ब्राह्मणेतर सेवकोंके साथ बंगाल-में ब्राह्मण धर्मको पुनः प्रतिष्ठित करनेके लिए आमंत्रित किया। ऐसा प्रतीत होता है कि बंगालमें अराजकताकी दशाका अन्त तभी हुआ, जब वहांकी जनताने गोपाल नामक व्यक्तिको राजा निर्वाचित करके सिंहासनासीन किया। गोपालसे ही प्रसिद्ध पाल राजवंशकी परम्परा चली, जिसके शासनकालमें बंगाल महान् शक्तिशाली और समृद्धिशाली हुआ और बौद्ध संस्कृतिका प्रमुख केन्द्र बना, धर्मपाल तथा अतिशा (दे०), आदि आचार्योंको चीन, तिब्बत जैसे सुदूर देशोंमें बौद्धधर्मके प्रचारके लिए भेजा और अपनी निजी ललितकला और वास्तु शैली विकसित की जिसका प्रतिनिधित्व धीमान (दे०) और विटपाल (दे०) करते थे।

बारहवीं शताब्दीके मध्य तक पाल राजवंशकी शक्ति-का ह्रास हो गया और उसके स्थान पर सेन राजवंश प्रतिष्ठित हुआ, जो ११९८ और १२०१ ई०के बीच

किसी समय मलिक इख्तियारुद्दीन मुहम्मद खिलजीकी पश्चिमी बंगाल विजय तक कायम रहा। पचास वर्ष बाद मुसलमानोंने पूर्वी बंगाल भी जीत लिया, इस प्रकार पूरा प्रदेश दिल्ली सल्तनतका भाग हो गया। किन्तु १३३६ ई०के लगभग फखरुद्दीन मुबारक शाहने पूर्वी बंगालमें बगावत कर दी जो अन्तमें सारे सूबेमें फैल गयी। फलस्वरूप दिल्लीकी सल्तनतसे उसका पूरी तरहसे सम्बन्ध टूट गया। १३४५ से १४९० ई० तक इलियास शाही राजवंश बंगालपर राज्य करता रहा। बीचमें केवल ४ वर्षों (लगभग १४१४–१८ ई०) में चार हिन्दू राजाओं गणेश, उसके पुत्र जदु, दनुज मर्दन तथा महेन्द्रने अस्थायी रूपसे शासन किया। १४९० ई० में अलाउद्दीन हुसेन शाहने सैयद राजवंशका सूत्रपात किया। इस वंशके लोग १५३८ ई० तक जब हुमायूँने बंगालको जीता, वहाँ राज्य करते रहे। इसके एक वर्ष बाद ही शेरशाहने हुमायूँको परास्त कर दिया और उसके वंशज १५६४ ई० तक शासन करते रहे, जब सुलेमान करनानीने एक नया राजवंश चलाया। करनानी वंशका अन्तिम शासक दाऊद खाँ १५७६ ई०में बादशाह अकबरसे हार गया और बंगाल पुनः दिल्लीके प्रभुत्वमें आ गया।

इसके बाद शांति और सम्पन्नताका युग आरम्भ हुआ और बंगालने वाणिज्य-व्यवसायमें इतनी उन्नति की कि उसकी समृद्धिकी विदेशी यात्रियों तकने प्रशंसा की और यूरोपीय व्यावसायिक कम्पनियाँ अपनी व्यापारी कोठियाँ स्थापित करनेके लिए प्रेरित हुईं।

सर्व प्रथम बंगालमें पुर्तगाली आये, लेकिन विधिवत् वाणिज्यकी अपेक्षा समुद्री डकैती और गुलामोंका सौदा करनेकी तरफ उन्होंने अधिक ध्यान दिया। परिणामस्वरूप बंगालके कछारी भूभागमें उनका भारी आतंक छा गया, जिसका निवारण १६३२ ई०में मुगल सूबेदार कासिम अलीने उनका दमन करके किया। बाद ही क्रमशः डच (हालैण्डवासी), डेन (डेनमार्कवासी), फ्रांसीसी और अंग्रेज आ धमके और क्रमशः चिनसुरा, सिरामपुर, चन्द्रनगर और कलकत्तामें, जो सभी हुगलीके तटपर हैं, जम गये। जबतक मुगल बादशाह सबल बने रहे, बंगालमें उनके सूबेदारोंने इन यूरोपीय व्यवसायोंको अपने नियंत्रणमें रखा और शांति भंग करनेका उनका साहस नहीं हुआ। बंगालके सूबेदार मुर्शिद कुली खांके शासन कालमें बिहार और उसके उत्तराधिकारी शुजाउद्दीनके शासन काल (१७२७–३८ ई०) में उड़ीसा भी बंगालमें सम्मिलित कर लिया गया। लेकिन शुजाका पुत्र अयोग्य सिद्ध हुआ और १७४० ई०में अलीवर्दी खाँ द्वारा, जो बिहारमें उसका नायब था, अपदस्थ कर दिया गया।

नवाब अलीवर्दी खाँ दिल्लीसे लगभग स्वतंत्र होकर १७५६ ई०में अपनी मृत्यु तक बंगालपर शासन करता रहा। उसका उत्तराधिकारी पौत्र सिराजुद्दौला अनुभवहीन और कमजोर शासक साबित हुआ। परिणामस्वरूप वह अंग्रेजोंपर नियंत्रण न रख सका, जिन्होंने उसकी प्रभुसत्ताकी अवहेलना कर फ्रांसीसियोंसे युद्ध छेड़ दिया। वह अन्तमें उस षड्यंत्रका शिकार हो गया जो अंग्रेजोंने उसके असन्तुष्ट दरबारियोंके साथ मिलकर रचा था। फलस्वरूप जून १७५७ ई०में पलासीकी लड़ाईमें सिराज हार गया। वह लड़ाईके मैदानसे भाग कर मुर्शिदाबाद पहुँचा और विजेताओंका प्रतिरोध करनेके लिए सैन्य-संग्रह न कर पानेपर वहाँसे भी भाग निकला। विजयी अंग्रेजोंने २८ जून १७५७ ई०को मीर जाफरको, जो सिराजका निकट सम्बन्धी और षड्यंत्रकारियोंमें प्रमुख था, नवाबकी गद्दी पर बैठाया। इसके चार दिन बाद ही भगोड़े सिराजुद्दौलाका वध कर दिया गया। इस प्रकार बंगालमें मुस्लिम शासनका लज्जास्पद ढंगसे पतन हुआ।

मीर जाफरको भी शीघ्र इस बातका अहसास हो गया कि वह अंग्रेजोंके हाथकी कठपुतली मात्र है। उसे भी उन्होंने शीघ्र ही अपदस्थ कर उसके दामाद मीर कासिमको गद्दी पर बैठाया। उसके साथ भी अंग्रेजोंकी पटरी नहीं बैठी और उन्होंने उससे युद्ध छेड़ दिया और १७६४ ई०में बक्सरमें उसकी हार हुई। इसके बाद मीर कासिम विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो गया और मीर जाफर, फिरसे नवाब बनाया गया। १७६५ ई०में मीर जाफर मर गया।

इसी वर्ष अंग्रेजोंको दिल्लीके बादशाहसे बंगाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानी मिल गयी। कम्पनीने पलासीके विजेता राबर्ट क्लाइवको गवर्नर नियुक्त किया। दो वर्ष बाद वह इंग्लैंड चला गया और अगले पाँच वर्षों तक बंगालमें अत्यधिक कुशासन रहा। नवाब कम्पनीके स्थानीय अधिकारियोंके हाथका खिलौना मात्र रह गया, जिसे जनताकी हितरक्षाका कोई खयाल नहीं था। इसी बीच बंगालमें भयंकर अकाल पड़ा, जिसमें एक तिहाई आबादी विनष्ट हो गयी। १७७२ ई०में कम्पनीकी ओरसे वारेन हेस्टिंग्स बंगालके गवर्नरके रूपमें नियुक्त

हुआ। अगले साल रेग्युलेटिंग कानून पास हो जाने पर वह गवर्नर-जनरल बना दिया गया और बम्बई तथा मद्रासकी प्रेसीडेन्सियां उसके अधीन कर दी गयीं। इस प्रकार बंगाल भारतमें बढ़ते हुए ब्रिटिश साम्राज्यका न केवल अंग वरन् उसका केन्द्र-बिन्दु भी बन गया, क्योंकि कलकत्ताको शीघ्र ही भारतीय ब्रिटिश साम्राज्यकी राजधानी बना दिया गया।

प्रशासकीय दृष्टिसे बंगालमें अनेक परिवर्तन हुए। ब्रिटिश प्रशासनके आरम्भमें बिहार और उड़ीसा समेत पूरे प्रदेशमें गवर्नर-जनरल द्वारा कौन्सिलकी सहायतासे शासन चलाया गया। १८५४ में इसको लेफ्टिनेण्ट-गवर्नरके अधीन कर दिया गया। १९०५ ई० में लार्ड कर्जनने प्रदेश दो टुकड़ोंमें विभाजित कर दिया—पश्चिमी बंगाल, बिहार और उड़ीसाकी एक इकाई लेफ्टिनेण्ट-गवर्नरके अधीन बनायी गयी और पूर्वी बंगालकी दूसरी इकाई आसामके साथ मिलाकर अन्य लेफ्टिनेण्ट-गवर्नरके अधीन बनायी गयी। इस विभाजनपर बंगालके लोगों, विशेषकर हिन्दुओंने जबर्दस्त विरोध प्रकट किया और सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके नेतृत्वमें बहुत ही प्रभावशाली आन्दोलन चलाया, जिसमें स्वदेशी वस्तुओंका उपयोग और ब्रिटिश सामानका बहिष्कार प्रमुख था। ब्रिटिश सरकारने आन्दोलनको बल-प्रयोग द्वारा दबानेके जो भी प्रयास किये उनसे जनरोष भूमिगत हो गया और अरविन्द घोषके नेतृत्वमें बंगालमें आतंक-वादने अपना सिर उठाया। फलस्वरूप प्रसिद्ध अलीपुर बम काण्डका मुकदमा चला। मुकदमेमें अरविन्द घोष दोषमुक्त कर दिये गये, यद्यपि उनके अनेक साथियोंको आजीवन कारावासकी सजा मिली। अन्तमें ब्रिटिश सरकारने १९११ ई०में बंग-भंग रद्द कर पश्चिमी बंगालको पूर्वी बंगालके साथ फिर जोड़ दिया। बिहार, उड़ीसा और आसाम इससे पृथक् कर दिये गये और बंगाल सपरिषद् गवर्नरके शासनके अधीन कर दिया गया।

१९४७ ई०में देशको स्वाधीनता दिलानेके हेतु, बंगाल पुनः दो हिस्सेमें बाँटा गया। पश्चिमी बंगालके जिलोंको उत्तरी बंगालके कुछ जिलोंसे जोड़कर भारतमें 'पश्चिमी बंगाल' राज्य बनाया गया और पूर्वी बंगालके जिलोंका भाग 'पूर्वी पाकिस्तान'के नामसे गठित हुआ। दिसम्बर १९७१ ई०में पूर्वी पाकिस्तान पश्चिमी पाकिस्तानसे अलग होकर 'बांगला देश'के नामसे स्वतन्त्र देश बन गया। प्रांतका यह अस्वाभाविक विभाजन यद्यपि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी सहमतिसे हुआ था, फिर भी इसके परिणामस्वरूप लाखों लोगोंको, अधिकांशतः पूर्वी बंगालके हिन्दुओंको अपना घर-बार छोड़ना पड़ा, व्यापक हिंसा, लूटपाट, बलात्कारकी तकलीफें उठानी पड़ीं और बचेखुचे लोग भी बार-बार उत्पीड़नके शिकार होते रहे। इधर कटा-छँटा पश्चिमी बंगालका राज्य पुराने प्रदेशका केवल एक तिहाई भाग रह गया और विभाजनके बाद उसे अनेक समस्याओंका सामना करना पड़ा, जिसमें पूर्वी बंगालके विस्थापित हिन्दुओंके पुनर्वासकी समस्या सबसे जटिल थी।

बंगाल, पहला भारतीय प्रदेश था जिसने ब्रिटिश शासनका स्वागत किया। साथ ही संसदीय शासन और लोकतंत्रके ब्रिटिश राजनीतिक विचारोंको आत्मसात् करनेकी दिशामें भी भारतका यह प्रदेश अग्रणी हुआ। भारतीय राष्ट्रीयताका शंखनाद यहीं फूंका गया और प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन भी यहीं आयोजित किया गया। इस प्रकार बंगालने ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके शुभारम्भका मार्ग प्रशस्त किया और उसे अपना पहला अध्यक्ष प्रदान किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ही अन्तमें भारतकी स्वाधीनता प्राप्त करनेमें सफल रही। गोपाल कृष्ण गोखलेने एक बार यह कह कर बंगालकी प्रशंसा ठीक ही की थी कि 'बंगाल जो आज सोचता है, उसे भारत कल सोचता है।'

बंगालकी दीवानी—१७६५ ई०में बादशाह शाह आलमने ईस्ट इंडिया कम्पनीको प्रदान की। १७६४ ई०में बक्सरके युद्धमें अवधके नवाबके पराजित हो जानेपर कम्पनीने इलाहाबाद तथा आसपासके क्षेत्रपर अधिकार कर लिया था। कम्पनीने ये क्षेत्र सम्राट्को देकर बदलेमें बंगालकी दीवानी प्राप्त की। इसका अर्थ था कि कम्पनीको बंगाल, बिहार और उड़ीसामें राजस्व वसूल करनेका अधिकार प्राप्त हो गया। बदलेमें कम्पनी बादशाहको २६ लाख रुपया वार्षिक देती थी। साथ ही मुर्शिदाबादके नवाबको भी कम्पनी सामान्य प्रशासनके लिए ५३ लाख रुपया देती थी। शेष बचे हुए धनको कम्पनी अपने पास रखती थी। नवाबको दी जानेवाली वार्षिक रकम बादमें घटाकर ३२ लाख रुपया कर दी गयी। कम्पनीको दीवानी मिलनेसे उसे प्रान्तीय प्रशासनमें पहली बार कानूनी हैसियत प्राप्त हो गयी। वैसे १७५७ ई०में पलासीके युद्धमें षड्यन्त्रोंके द्वारा विजय प्राप्त करनेके पश्चात् कम्पनीको शासनका अधिकार प्राप्त हो गया था, किन्तु राजस्वकी वसूलीका अधिकार प्राप्त होनेका अर्थ यह था कि कम्पनीको व्यावहारिक रूपसे प्रान्तीय

शासन करनेका अधिकार है, क्योंकि राजस्वकी वसूलीको सामान्य प्रशासनसे अलग करना कठिन था। प्रशासन हाथमें आ जानेके बावजूद कम्पनीकी कानूनी हैसियत दीवानकी ही रही, जो ब्रिटिश महारानी द्वारा भारतीय शासन अपने हाथमें लेनेके समय तक कायम रही।

बकिंघम, जान सिल्क—'कलकत्ता जर्नल'का सम्पादक, जो सरकारी अधिकारियोंकी मुक्त कण्ठसे आलोचना किया करता था। अतः कार्यवाहक गवर्नर-जनरल जान एडम्सने उसे १८२३ ई०में भारतसे निष्कासित कर दिया।

बक्सरकी लड़ाई—२२ अक्तूबर १७६४ ई०को आरम्भ इस लड़ाईमें मेजर जनरल हेक्टर मुनरोके नेतृत्वमें कम्पनीकी सेनाने शाह आलम द्वितीय, अवधके नवाब शुजाउद्दौला तथा बंगालके भगोड़े नवाब मीर कासिमकी मिली-जुली सेनाको हरा दिया। इस विजयसे भारतमें कम्पनीकी प्रतिष्ठा काफी बढ़ गयी, जिसके फलस्वरूप होनेवाले समझौतेके अन्तर्गत बादशाहने कम्पनीको बंगाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानी सौंप दी। इसके बदलेमें कम्पनीने उसे इलाहाबाद तथा कड़ाके जिले, जो उसने अवधके नवाबसे छीन लिये थे, लौटा दिये और बंगाल, बिहार तथा उड़ीसाके राजस्वसे २६ लाख रुपया वार्षिक खिराजके रूपमें देना स्वीकार किया। इस प्रकार बंगाल, बिहार तथा उड़ीसामें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी स्थिति वैधानिक हो गयी।

बख्त खाँ—१८५७ ई०में दिल्लीके विद्रोही सिपाहियोंका नेता, जिसने गदरके दिनोंमें दिल्लीकी हलचलोंमें प्रमुख रूपसे भाग लिया।

बख्तियारउद्दीन गाजी शाह—पूर्वी बंगालके पहले स्वतंत्र शासक फखरुद्दीन मुबारक शाहका लड़का और उत्तराधिकारी। उसने १३२६ से १३५२ ई० तक राज्य किया। पश्चिमी बंगालके सुल्तान शमसुद्दीन इलियास शाह (दे०) ने उसकी गद्दी छीन ली।

बख्तियार खिलजी—इख्तियारुद्दीन मुहम्मदका पिता, जिसने नवद्वीप या नदियाके राजा लक्ष्मणसेनको भगा दिया और इस प्रकार बंगालमें मुसलमानी राज्यकी नींव डाली।

बघाट—सतलज पार स्थित एक पहाड़ी रियासत, जिसे लार्ड डलहौजीने १८५० ई०में अपने जब्तीके सिद्धान्तके अनुसार जब्त कर लिया। डलहौजीके उत्तराधिकारी लार्ड कैनिंगने अपने पूर्वाधिकारीके निर्णयको बदल कर बघाट रियासत उसके पुराने राजाको लौटा दी।

बटलर, डाक्टर फैनी—प्रथम अंग्रेज महिला चिकित्सक, जिसने १८८० ई०में भारत आकर डाक्टरी शुरू की। उसने महिलाओंके लिए सेवाका एक नया आदर्श उपस्थित किया था।

बटलर-समिति रिपोर्ट—१९२९ ई०में प्रस्तुत की गयी। भारतमें सर्वोच्च (ब्रिटिश) सत्ता और देशी रियासतोंके तत्कालीन सम्बन्धोंकी जाँच करनेके उपरान्त समितिने दोनोंके वित्तीय एवं आर्थिक सम्बन्धोंको व्यवस्थित करनेके विषयमें अपनी सिफारिशें प्रस्तुत कीं। इसकी आधारभूत सिफारिश थी कि सर्वोच्च सत्ता और देशी राजाओंके बीच ऐतिहासिक सम्बन्धोंको ध्यानमें रखकर उन्हें उनकी सहमतिके बिना भारतीय विधान मंडलके प्रति उत्तरदायी नयी सरकारसे सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए विवश न किया जाये। रिपोर्टमें देशी राजाओंकी ये आशंकाएँ प्रतिलक्षित थीं कि भारतमें लोकप्रिय शासन प्रचलित होनेसे वे अपने अधिकारोंसे वंचित हो जायेंगे। भारतीय लोकमतने इस रिपोर्टको प्रतिगामी माना।

बटलर, सर हरकोर्ट—वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषदका सदस्य। बादमें संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) और बर्माका गवर्नर हुआ। समर्थ प्रशासकके रूपमें उसकी ख्याति बहुत थी और भारत-मंत्री द्वारा गठित देशी रियासत समिति (इंडियन स्टेट्स कमेटी)का १९२७ ई०में वह अध्यक्ष नियुक्त किया गया। यह समिति देशी रियासतों और सर्वोच्च सत्ताके पारस्परिक सम्बन्धोंकी जांचके लिए नियुक्त की गयी थी। समितिने १९२९ ई०में रिपोर्ट प्रस्तुत की थी।

बड़गांव समझौता—प्रथम मराठा-युद्ध (१७७६–८२ ई०)के दौरान भारतमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सरकारकी ओरसे कर्नल करनाक द्वारा जनवरी १७७९ ई०में किया गया। कर्नल काकबर्नके नेतृत्वमें अंग्रेजोंकी एक सेनाने कमिश्नर कर्नल करनाकके साथ पूनाकी ओर कूच किया, किन्तु रास्तेमें उसे पश्चिमी घाट स्थित तेल गाँव नामक स्थानपर मराठोंकी विशाल सेनाका मुकाबला करना पड़ा। अंग्रेज सेनाकी कई स्थानोंपर हार हुई और उसे मराठोंने चारों तरफसे घेर लिया। ऐसी स्थितिमें कर्नल करनाक हिम्मत हार गया और उसके जोर देनेपर ही कमांडिंग अफसर कर्नल काकबर्नने बड़गाँव समझौतेपर हस्ताक्षर किये। इस समझौतेके अनुसार तय हुआ कि कम्पनीकी बम्बई सरकार १७७३ ई०के बाद जीते गये समस्त इलाके मराठोंको लौटा देगी और अपने वचनोंका पालन करनेकी गारंटीके रूपमें कुछ अंग्रेज अफसरोंको बंधकके रूपमें मराठोंके सुपुर्द कर देगी, राघोबा (दे०)को, जिसको पेशवाकी गद्दीपर बिठानेके उद्देश्यसे अंग्रेजोने लड़ाई छेड़ी

थी उसे मराठोंको सौंप देगी, बंगालसे मददके लिए आ रही ब्रिटिश कुमुक वापस लौटा दी जायगी और भड़ौंचसे प्राप्त राजस्वका एक हिस्सा महादजी शिन्देको दिया जायगा। सैनिक स्थिति अंग्रेजोंके इतने प्रतिकूल नहीं थी कि वे इस प्रकारकी शर्तें स्वीकार करते। गवर्नल-जनरलने इस समझौतेको अस्वीकृत कर दिया और समझौता करनेवाले अंग्रेज अधिकारियोंको कम्पनीकी नौकरीसे बर्खास्त कर दिया। राघोबाने महादजी शिन्देकी शरण लेकर अपनी प्राणरक्षा की और अंग्रेजोंको भी परेशानीसे बचा लिया। अंग्रेजोंने बुद्धिमत्ता दिखाते हुए समझौतेकी शर्तोंके अनुसार भड़ौंचसे प्राप्त राजस्वका भाग शिन्देको देकर उसके साथ अच्छे संबंध स्थापित कर लिये।

बड़ गोहांई—आसामके अहोम राजाओंके दो शीर्षस्थ अधिकारियोंमेंसे एकका सरकारी पद नाम, जिसे स्वयं राजाके बाद सर्वोच्च अधिकार प्राप्त थे। दूसरा उच्च अधिकारी बूढ़ा गोहांई कहलाता था। इस पदपर पन्द्रह अहोम परिवारोंका ही कोई व्यक्ति, जो अहोम अभिजात वर्गमें गिने जाते थे, पदासीन होता था। यह सामान्यतः वंशानुगत होता था किन्तु राजाको यह अधिकार प्राप्त था कि वह निर्धारित परिवारके किसी भी सदस्यको, जिसे वह पसन्द करे, चुन ले। यदि वह चाहे तो बड़-गोहांईको बर्खास्त भी कर सकता था। अहोम राज्यके एक भागका प्रशासन बड-गोहांईके अधीन था, जिसे प्रशासनिक, सैनिक तथा न्यायिक अधिकार प्राप्त थे। (ई० गेट कृत हिस्ट्री आफ आसाम)

बड़ बरुआ—अहोम राजा प्रताप सिंह (१६०३-४१ ई०)के राज्यमें आसामके उत्तरी भागमें स्थित कलियाबडके पूर्वके क्षेत्रके लिए नियुक्त प्रशासकका पदनाम। इस पदपर सबसे पहले राजाके चाचा मोमाई तमूलीकी नियुक्ति हुई थी।

बड्डोवाल—२१ जनवरी १८४६ ई०को यहाँ सिखोंके साथ हुई एक मुठभेड़में ब्रिटिश सेना पराजित हो गयी, जिसका नेतृत्व सर हेनरी स्मिथ कर रहा था। एक सप्ताह बाद ही अलीवालके युद्धमें सिख अंग्रेजोंसे हार गये।

बड़ोदा—गुजरातका एक महत्त्वपूर्ण नगर, मराठोंने सर्वप्रथम इसपर १७०६ ई०में आक्रमण किया। १७३२ ई०में पीलाजी गायकवाड़ने, जो पेशवा बाजीराव प्रथमका अनुयायी और समर्थक था, गुजरातमें अपनी सत्ता कायम की और बड़ोदाको सदर मुकाम बनाया। पीलाजीके पुत्र एवं उत्तराधिकारी दामाजी द्वितीय (१७३२-६८)के प्रशासनकालमें बड़ोदाका गौरव अधिक बढ़ा और यह गायकवाड़ोंकी राजधानी बन गया। दामाजीने इसे भव्य इमारतों तथा प्रमुख संस्थाओंके निर्माण द्वारा आकर्षक बनाया। आजकल यहाँ एक विश्वविद्यालय भी है।

बदनचन्द्र—गौहाटीका (१८१०—२० ई० तक) बड़ फूकन (सूबेदार)। उसने प्रजाका बड़ी निर्दयतासे दमन किया और जबरन धन वसूला। अन्तमें स्थिति यहाँ तक पहुँची कि बड़ गुहांई (प्रधान मंत्री) पूर्णानन्दने, जिसके पुत्रके साथ बदनचन्द्रकी लड़की ब्याही थी, बदनचन्द्रको उसके पदसे हटा दिया। उसे पकड़नेके लिए गौहाटी सिपाही भेजे गये। लेकिन बदनचन्द्रको अपनी पुत्रीसे इसकी सूचना पहले मिल गयी थी और वह सैनिकोंके पहुँचनेके पहले वहाँसे चला गया। बदनचन्द्रने इसका बदला लेनेका निश्चय किया। वह भाग कर कलकत्ता पहुंचा और वहाँ उसने गवर्नर-जनरल लार्ड मिंटोसे मिल कर आसाममें अंग्रेजी फौज भेजनेका अनुरोध किया। लेकिन मिंटोने हस्तक्षेप करनेसे इनकार कर दिया।

इसके बाद बदनचन्द्र बर्मी शासकके दरबारमें गया और उसे आसाममें बर्मी फौज भेजनेके लिए राजी कर लिया। इस प्रकार १८१६ ई०में बर्मी फौज आसामपर हमला करते हुए जोरहाट तक बढ़ गयी और गौहाटीमें बदनचन्द्रको फिरसे सूबेदार बना दिया। इसी बीच पूर्णानन्दकी मृत्यु हो गयी और बदनचन्द्रने बर्मी सेनाको आसामसे लौट जानेके लिए राजी कर लिया और उसे हर्जानेके रूपमें भारी रकम अदा की। इस प्रकार सफलता पानेके बाद बदनचन्द्र अहंकारी और निरंकुश हो गया। उसने अहोम राजाकी माता और अनेक सरदारोंको अपना विरोधी बना लिया। इन लोगोंकी शह पाकर बदनचन्द्रकी हत्या कर दी गयी। उसने जो नीति अपनायी थी, उसके फलस्वरूप १८१९ ई०में बर्मियोंने आसामको विजय करके उसे अपने राज्यमें मिला लिया।

बदन सिंह—भाऊ सिंहका पुत्र, जिसने अपनी सैनिक कुशलता, कूटनीति और विवाह सम्बन्ध द्वारा आगरा और मथुरा जिलोंके पार्श्वमें भरतपुर नामक एक जाट रियासतकी स्थापना की। उसकी जन्म-तिथिका पता नहीं है, मृत्यु १७५६ ई०में हुई।

बदर-ए-चाच—मुहम्मद तुगलक (१३२५—५१)का समसामयिक एक इतिहासकार।

बराबर पहाड़ियां—गयासे लगभग १५ मील उत्तरमें स्थित। इन पहाड़ियोंमें सात गुफाएं हैं, जिनमेंसे चार अशोक मौर्यके नामसे सम्बद्ध हैं। शेष तीनमें, जो नागार्जुनी वर्गकी कहलाती हैं, अशोकके पौत्र दशरथके शिलालेख

हैं। अशोकके युगमें इन पहाड़ियोंकी ख्याति 'खलाटिका'के नामसे थी। खारवेलके समय इनको लोग गोरथ गिरिके नामसे जानते थे। बादमें इनका प्रवारगिरि नाम प्रचलित हो गया। आधुनिक कालमें पहाड़ीके अशोक-शिलालेखोंवाली गुफाओंके भागको 'बराबरकी पहाड़ियाँ' कहते और दूसरे भागको 'नागार्जुनी पहाड़ी' कहते हैं।

बदरीनाथ—उत्तरप्रदेशके पर्वतीय भूभाग गढ़वालमें स्थित हिन्दुओंका प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान। यहाँ नर-नारायणकी प्रतिमा बदरी नारायणके नामसे पूजी जाती है। यहाँसे कुछ दूरपर आद्य शंकराचार्य द्वारा स्थापित 'ज्योतिष्पीठ' मठ है। प्रतिवर्ष यहाँ हजारों तीर्थ-यात्री आते हैं।

बदायूँनी—अब्दुल कादिर अल बदायूँनी अकबरका दरबारी इतिहासकार था। वह कट्टर सुन्नी था। उसकी 'मुंतखबुत्-तवारीख में अकबरके शासनकालका विवरण सुन्नी मुसलमानोंके दृष्टिकोणसे प्रस्तुत किया गया है जिससे वह अकबरकी उदार नीतियोंकी प्रशंसा नहीं कर सका। इस पुस्तकका अंग्रेजी अनुवाद उपलब्ध है। अबुल फजलकी पुस्तक 'अकबर नामा'में अकबरकी प्रशंसा अधिक है। बदायूँनीकी पुस्तकसे अकबरके कालका एक संतुलित चित्र प्रस्तुत करनेमें सहायता मिलती है।

बनर्जी, कृष्णमोहन—डेरोजियो (१८०९–३१ ई०)के प्रारंभिक शिष्योंमेंसे एक तथा हिन्दू कालेजके आदर्श स्नातक। जन्म कलकत्ताके एक ब्राह्मण परिवारमें। पश्चिमके बुद्धिवादके प्रभावसे कृष्णमोहन अपना पैतृक धर्म छोड़कर ईसाई बन गये। जीवनके अन्तिम दिनोंमें वे पादरी बन गये। वे मान्य शिक्षाविद् एवं पत्रकार थे, अपने समयके राजनीतिक आन्दोलनोंमें भी भाग लेते थे, इंडियन असोसियेशनके प्रथम मंत्री थे और कलकत्ता विश्वविद्यालय सीनेटके प्रारम्भिक सदस्योंमेंसे थे।

बनर्जी, (बोनर्जी) डब्लू सी० (१८४४–१९०६)—भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके प्रथम अध्यक्ष और कलकत्ता हाईकोर्टके प्रमुख वकील। वे अंग्रेजी चाल-ढालके कट्टर अनुयायी थे, अतः स्वयं अपने पारिवारिक नाम 'बनर्जी'का अंग्रेजीकरण करके उसे 'बोनर्जी' कर दिया और अपने पुत्रका नाम भी 'शेली' रखा, लेकिन हृदयसे वे सच्चे भारतीय थे। इसीलिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके १८८५ ई०में हुए प्रथम अधिवेशनके अध्यक्ष चुने गये। उन्हे दुबारा भी इलाहाबादमें १८९२ ई०में हुए कांग्रेस अधिवेशनका अध्यक्ष बनाया गया। १९०२ ई०में वे इंग्लैंड जाकर बस गये। वहाँ १९०६ में अपनी मृत्यु पर्यन्त भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके आन्दोलनको बढ़ावा देते रहे।

बनर्जी रंगलाल—बंगला कवि (१८१७–८७ ई०)। अपनी रचनाओं द्वारा उन्होंने राष्ट्रीयताकी भावनाका प्रसार किया तथा देशवासियोंमें स्वाधीनताकी उत्कट कामना पैदा की। उसकी उदात्त रचना 'पद्मिनी'की यह मार्मिक पंक्ति बड़ी लोक प्रिय थी "स्वाधीनता-हीनताय के वसिते चाय रे, के वसिते चाय ?" (ऐसे राज्यमें कौन रहना चाहता है ? जहाँ आजादी नहीं है ?)

बनर्जी, सर गुरुदास—(१८४४–१९१८)—कलकत्ता हाईकोर्टके अवर न्यायाधीश। उन्होंने अपना जीवन बंगालके एक कालेजमें प्रोफेसरके रूपमें आरम्भ किया, किन्तु शीघ्र ही वकालत आरम्भ कर दी और १८७६ ई० में डी० एल० की डिग्री प्राप्त कर ली। १८८८ ई० में वे हाईकोर्टके न्यायाधीश बने और १९०४ ई० में सेवानिवृत्त हुए। शिक्षाके विकास और प्रसारमें उनकी तीव्र रुचि थी और कलकत्ता विश्वविद्यलयके दो कार्यावधि तक वाइस-चांसलर रहे। वे सनातनधर्मी विचारके थे। हिन्दू धर्मपर कई पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें मुख्य हैं—बँगलामें 'ज्ञान ओ कर्म' तथा अंग्रेजीमें 'फ्यू थाट्स ओन एजूकेशन'।

बनर्जी, सर सुरेन्द्रनाथ—कलकत्ताके ब्राह्मण परिवारमें १८४८ ई० में जन्म हुआ था। कलकत्ता विश्वविद्यालयसे स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की एवं १८६९ ई० में आई० सी० एस० परीक्षा पास की। इंडियन सिविल सर्विसमें १८७१ ई० में शामिल हुए और सिलहटमें असिस्टेन्ट मजिस्ट्रेट तथा कलक्टर नियुक्त किये गये। शीघ्र ही उन्हें इस आधारपर बर्खास्त कर दिया गया कि उन्होंने अनियमित ढंगसे एक मुकदमेमें फैसला दिया था। उन्होंने तब बैरिस्टरके रूपमें अपना नाम दर्ज करानेका प्रयास किया, किन्तु उसके लिए उन्हें अनुमति देनेसे इन्कार कर दिया गया, क्योंकि वे इंडियन सिविल सर्विससे बर्खास्त किये गये थे। उनके लिए यह एक करारी चोट थी और उन्होंने महसूस किया कि एक भारतीय होनेके नाते उन्हें यह सब भुगतना पड़ा है।

बैरिस्टर बननेमें विफल होनेके बाद १८७५ ई० में भारत लौटनेपर वे प्रोफेसर हो गये; पहले मेट्रोपालिटन इंस्टीट्यूशनमें (जो अब विद्यासागर कालेज कहलाता है) और बादमें रिपन कालेज (जो अब सुरेन्द्रनाथ कालेज कहलाता है) में, जिसकी स्थापना उन्होंने की थी। अध्यापकके रूपमें उन्होंने अपने छात्रोंको देशभक्ति और सार्वजनिक सेवाकी भावनासे अनुप्राणित किया। मेजिनीके जीवन और भारतीय एकता सदृश विषयोंपर उनके

भाषणोंने छात्रोंमें बहुत उत्साह पैदा किया। राजनीतिमें भी भाग लेते रहे और १८७६ में इंडियन असोसियेशन की स्थापना तथा १८८३ में कलकत्तामें प्रथम अखिल भारतीय राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित करनेमें प्रमुख योगदान किया। एक राष्ट्रीय संगठनकी स्थापनाकी दिशामें यह पहला प्रयास था। १८८५ ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (इंडियन नेशनल कांग्रेस) की स्थापनाके बाद उन्होंने अखिल भारतीय राष्ट्रीय सम्मेलन (आल इंडिया नेशनल कान्फ्रेंस) का उसमें विलय करानेमें प्रमुख भाग लिया और उसके बादसे उनकी गिनती कांग्रेसके प्रमुख नेताओंमें होने लगी। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके १८६५ में पूनामें हुए ग्यारहवें अधिवेशन और १६०२ में अहमदाबादमें हुए अठारहवें अधिवेशनकी अध्यक्षता की। उन्होंने देश-व्यापी भ्रमण कर बड़ी-बड़ी सभाओंमें भाषण करते हुए राष्ट्रीय एकताकी आवश्यकता और देशके प्रशासनमें भारतीयोंको अधिक हिस्सा देनेपर जोर दिया। उन्होंने पत्रकारिताके क्षेत्रमें भी कार्य किया और 'दि बंगाली' के यशस्वी सम्पादक रहे। बीसवीं शताब्दीके प्रथम दशक तक इस पत्रने जनमतको जाग्रत करनेमें बहुमूल्य योगदान किया। उन्होंने १८७८ ई० के वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्टके विरोधका नेतृत्व किया और इलबर्ट बिलके समर्थनमें प्रमुख भाग लिया।

बंगाल लेजिस्लेटिव कौंसिलके १८९३ से १९१३ तक वे सदस्य रहे और बड़े साहसके साथ लार्ड कर्जनके कलकत्ता कार्पोरेशन ऐक्टका विरोध किया, जिसका उद्देश्य कार्पोरेशनका सरकारीकरण था। उक्त कानून पास हो जानेपर उन्होंने कार्पोरेशनमें भाग लेनेसे इन्कार कर दिया। उन्होंने बंगालके विभाजनका भी घोर विरोध किया और इसके विरोधमें जबर्दस्त आन्दोलन चलाया जिससे वे बंगालके निर्विवाद रूपसे नेता मान लिये गये। वे बंगालके 'बिना ताजके बादशाह' कहलाने लगे। बंगालका विभाजन १९११ ई० में रद्द कर दिया गया, जो सुरेन्द्रनाथ बनर्जीकी बड़ी जीत थी। लेकिन इस समय तक देशवासियोंमें एक नया वर्ग पैदा हो गया था जिसका विचार था कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके वैधानिक आन्दोलन विफल सिद्ध हुए और भारतमें स्वराज्य-प्राप्तिके लिए और प्रभावपूर्ण नीति अपनायी जानी चाहिए। यह वर्ग, जो गरम दल कहलाता था, हिंसात्मक तरीके अपनानेसे भी नहीं डरता था, उससे चाहे क्रांति ही क्यों न हो जाये। लेकिन सुरेन्द्रनाथ बनर्जीका, जिनकी शिक्षा-दीक्षा अट्ठारहवीं शताब्दीके अंग्रेजी साहित्य, विशेषकर बर्कके सिद्धांतोंपर हुई थी, क्रांति अथवा क्रांतिकारी तरीकोंमें कोई विश्वास नहीं था और वे भारत तथा इंग्लैण्डके बीच पूर्ण अलगावकी बात सोच भी नहीं सकते थे। इस प्रकार सुरेन्द्रनाथ बनर्जीको, जिन्हें कभी अंग्रेज प्रशासक गरम विचारोंका उग्रवादी व्यक्ति मानते थे, अब स्वयं उनके देशवासी नरम दलका व्यक्त मानने लगे थे। सूरत कांग्रेस (१९०७) के बाद वे कांग्रेसपर गरम दलवालोंका कब्जा होनेसे रोकनेमें सफल रहे थे, किन्तु इसके बाद शीघ्र ही कांग्रेस गरम दलवालोंके नियन्त्रणमें चली गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि माण्टेग्यू-चेम्सफर्ड रिपोर्टके आधारपर जब १९१९ का गवर्नमेण्ट आफ इंडिया एक्ट पास हुआ तो सुरेन्द्रनाथ बनर्जीने तो उसे इस आधारपर स्वीकार कर लिया था कि कांग्रेस अपने आरम्भिक दिनोंमें जो मांग कर रही थी, वह इस एक्टसे बहुत हद तक पूरी हो गयी है, लेकिन स्वयं कांग्रेसने उसे अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेससे सुरेन्द्रनाथ बनर्जीका पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद हो गया। उन्होंने कांग्रेस के अन्य पुराने नेताओंके साथ लिबरल फेडरेशनकी स्थापना की जो अधिक जन-समर्थन नहीं प्राप्त कर सका। फिर भी सुरेन्द्रनाथ बनर्जी नयी बगाल लेजिस्लेटिव कौंसिलके सदस्य निर्वाचित हो गये। १९२१ ई० में 'सर' की उपाधिसे विभूषित किये गये और बंगाल सरकारके मंत्री बने। १९२३ ई० में कलकत्ता म्युनिसिपल बिलको विधान मंडलसे पास कराया, जिससे लार्ड कर्जन द्वारा बनाया गया पूर्ववर्ती कानून निरस्त हो गया और कलकत्ता कार्पोरेशनपर पूर्ण रूपसे लोकप्रिय नियंत्रण स्थापित हो गया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी १९२० ई० में शुरू किये गये असहयोग आन्दोलन से सहमत नहीं थे। फलतः स्थानीय स्वशासनके क्षेत्रमें उनकी महत्त्वपूर्ण कानूनी उपलब्धियोंके बावजूद उन्हें पहलेकी भाँति देश वासियोंका समर्थन नहीं मिल सका। वे १९२३ के चुनावमें हार गये और तदुपरान्त १९२५ में अपनी मृत्यु पर्यन्त सार्वजनिक जीवनसे प्रायः अलग रहे। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन जिसकी १८७६ ई० में सुरेन्द्रनाथ बनर्जीने शुरूआत की थी, इस समय तक बहुत विकसित हो गया था और देशके लिए कानून बनाने तथा देशके प्रशासनमें अधिक हिस्सा दिये जानेकी जिन मांगोंके लिए सुरेन्द्रनाथ बनर्जीने पचास वर्षसे भी अधिक समय तक संघर्ष किया था, उन मांगोंकी पूर्तिसे

अब देशवासी संतुष्ट नहीं थे। वे अब स्वाधीनताकी माँग कर रहे थे, जो सुरेन्द्रनाथकी कल्पनासे परे थी। उनकी मृत्यु जिस समय हुई उस समय उनकी गिनती देशके लोकप्रिय नेताओंमें नहीं होती थी, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वे आधुनिक भारतीय राष्ट्रीयताके निर्माताओंमेंसे थे जिसकी स्वाधीन भारत एक देन है। **(एस० एन० बनर्जी, कृत ए नेशन इन मेकिंग)**

बनर्जी, हेमचन्द्र–एक बंगला कवि (१८३८–१९०३ ई०)। उनकी 'वृत्रसंहार', जैसी काव्य रचनाओंने राष्ट्रीय भावनाओंका प्रसार किया। उनकी प्रसिद्ध रचना 'भारत-संगीत' (१८७० ई०)ने लोगोंको देशकी स्वाधीनताके लिए प्रयत्नशील होनेको प्रेरित किया।

बनारस–देखिये 'वाराणसी'।

बनारसकी संधि–अवधके नवाब शुजाउद्दौला तथा ईस्ट इंडिया कम्पनीके बीच १७७३ ई०में हुई। इसके अनुसार कड़ा तथा इलाहाबाद जिले, जो १७६५ ई०में बादशाह शाह आलम द्वितीयको दिये गये थे, उससे वापस लेकर अवधके नवाबके अधीन कर दिये गये। इसकी एवजमें एकमुश्त पचास लाख रुपये तथा वार्षिक आर्थिक सहायता देना नवाबने स्वीकार किया। शर्त यह थी कि कम्पनी नवाबके संरक्षणके लिए अवधमें अपनी एक सैनिक टुकड़ी रखेगी।

बनारसकी संधि–राजा चेतसिंह और ईस्ट इंडिया कम्पनीके बीच १७७५ ई०में हुई। इसके द्वारा चेतसिंहने, जो मूलरूपमें अवधके नवाबका सामन्त था, ईस्ट इंडिया कम्पनीका प्रभुत्व इस शर्तपर स्वीकार कर लिया कि वह कम्पनीको साढ़े बाइस लाख रुपयेका वार्षिक नजराना दिया करेगा। संधिमें इस बातका भी उल्लेख था कि कम्पनी उससे अन्य किसी प्रकारकी माँग नहीं करेगी और न किसी व्यक्तिको उसके अधिकारमें हस्तक्षेप करने अथवा देशकी शांति भंग करने दिया जायेगा। इस निश्चित आश्वासनके बावजूद वारेन हेस्टिंग्सने १७७८–८० ई०के वर्षोंमें अतिरिक्त धनकी माँग की। यह घटना 'चेतसिंहके मामले'के नामसे विख्यात है।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय–पं० मदन मोहन मालवीयके अथक उत्साह और प्रयासोंसे १९१५ ई०में स्थापित हुआ। संप्रति यह भारतके सबसे बड़े आवासीय विश्वविद्यालयोंमेंसे एक है।

बन्दा (वीर बैरागी)–दसवें गुरु गोविन्द सिंहकी १७०८ ई०में हत्या हो जानेके बाद सिखोंका नेता बना। वह सिखोंका आध्यात्मिक नेता नहीं था किन्तु १७०८ से १७१५ ई० तक अपनी मृत्यु पर्यन्त उनका राजनीतिक नेता रहा। गुरु गोविन्द सिंहके बच्चोंको सरहिन्दके फौजदार वजीर खाँने बड़ी क्रूरताके साथ मार डाला था। वजीर खाँसे बदला लेना बन्दा अपना मुख्य कर्तव्य मानता था। इसे उसने शीघ्रतासे पूरा किया। उसने बड़ी संख्यामें सिखोंको संगठित किया और उनकी मददसे सरहिन्द पर कब्जा कर फौजदार वजीर खाँको मार डाला। उसने यमुना और सतलजके प्रदेशको अपने अधीन कर लिया और मुखीशपुर में लोहागढ़ (लोहगढ़ अथवा लौहगढ़) नामक मजबूत किला निर्मित कराया, इसके साथ ही राजाकी उपाधि ग्रहण कर अपने नामसे सिक्के भी जारी करा दिये। कुछ काल बाद सम्राट् बहादुर शाह प्रथम (१७०७–१२) ने शीघ्र ही लोहगढ़पर घेरा डाल कर कब्जेमें कर लिया। बन्दा तथा उसके अनेक अनुयायियोंको बाध्य होकर बहादुर शाह प्रथमकी मृत्यु तक अज्ञातवास करना पड़ा। इसके उपरान्त बन्दाने लोहगढ़को पुनः अपने अधिकारमें कर लिया और सरहिन्दके सूबेमें लूटपाट आरम्भ कर दी। किन्तु १७१५ ई०में मुगलोंने गुरुदासपुरके किलेपर घेरा डाल दिया। बन्दा उसी किलेमें था। मुगलोंने किलेपर कब्जा करनेके साथ ही बन्दा तथा उसके अनेक साथियोंको भी बन्दी बना लिया। बन्दाको कैदीके रूपमें दिल्ली भेजा गया, जहाँ उसे अमानवीय यंत्रणाएँ दी गयीं। आँखोंके सामने ही उसके पुत्रको मार डाला गया और स्वयं उसे गर्म चिमटोंसे नोचकर १७१५ ई०में हाथीसे कुचलवा दिया गया। बन्दाकी शहादत वर्षों तक सिखोंके लिए प्रेरणाका स्रोत रही।

बन्धुल अथवा महाबन्धुल–बर्मी सेनापति, प्रथम आंग्ल-बर्मी-युद्ध (१८२४–२६ ई०) छिड़नेपर उसने बंगालमें बर्मी सेनाका नेतृत्व किया था। उसे सफलता मिलनेका इतना भरोसा था कि गवर्नर-जनरल लार्ड एम्हर्स्टके लिए वह सोनेकी बेड़ियां अपने साथ लाया था। बंधुलने चटगाँव सीमाके निकट एक ब्रिटिश रेजिमेण्टको हरा दिया। लेकिन अंग्रेजोंने इस बीच रंगूनपर नौसैनिक अभियान करके मई, १८२४ में कब्जा कर लिया। ब्रिटिश आक्रमणकारियोंका सामना करनेके लिए तब बंधुलको बर्मा वापस बुला लिया गया, जहाँ सेनापतिके रूपमें उसने बड़े रणकौशलका परिचय दिया, लेकिन रंगूनके कब्जेके लिए दिसम्बर १८२४ ई०में किये गये हमलेमें वह पराजित हो गया। वहाँसे पीछे हटकर डोनाबियूमें लकड़कोटके सहारे वह २ अप्रैल

१८२५ ई० तक बहादुरीके साथ शत्रुओंका मुकाबला करता रहा। किन्तु अचानक एक राकेट आ लगनेसे उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार प्रथम आंग्ल-बर्मी युद्धमें बर्मा पराजित हो गया।

बन्धुपालित—वायु पुराणके अनुसार कुणालका पुत्र और सम्राट् अशोकका पौत्र। कहा जाता है कि वह अपने पिताका उत्तराधिकारी हुआ था, किन्तु शिलालेखों अथवा अन्य सूत्रोंसे उसके बारेमें कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

बन्धुवर्मा—गुप्त सम्राट् कुमार गुप्त प्रथम (४१५–५५ ई०) का पश्चिमी मालवा स्थित दशपुरका सामन्त। उसका उल्लेख ४३७–३८ ई०के मन्दसोर शिलालेखमें हुआ है।

बम्बई—देशका एक प्रमुख औद्योगिक नगर एवं महाराष्ट्र प्रदेशकी राजधानी। नगरका बन्दरगाह १८·५३ उत्तरी अक्षांश और ७२·५४ पूर्वी देशान्तर रेखावाले अरब सागर तटपर स्थित है। बन्दरगाह भव्य एवं प्राकृतिक है, किन्तु अंग्रेजोंके अधिकार तथा उनके द्वारा इसका विकास किये जानेसे पूर्व इसका कोई महत्त्व नहीं था, क्योंकि सँकरी खाड़ियों, दलदलों और पहाड़ियोंके कारण यह भारतके आंतरिक भूभागसे अलग-अलग था। वर्तमान नगरकी भूमि तथा बन्दरगाह और पास-पड़ोसके क्षेत्रोंपर पुर्तगाली सेनापति अल्बुकर्क १५१० ई०से कब्जा किये हुए था। १६६१ ई०में पुर्तगालकी राजकुमारी कैथरीनका विवाह इंग्लैंडके राजा चार्ल्स द्वितीयके साथ सम्पन्न होनेपर दहेजके रूपमें पुर्तगालियोंने इसे भी अंग्रेजोंको सौंप दिया। यह जागीर इतनी बेकारकी मानी गयी कि राजा चार्ल्स द्वितीयने १६६८ ई०में इसे मात्र १० पौण्ड वार्षिक किराये पर ईस्ट इंडिया कम्पनीको हस्तान्तरित कर दिया। जिराल्ड आंगियरके प्रयासोंके फलस्वरूप जो १६६९ से १६७७ ई० तक इसका गवर्नर था, बम्बईका विकास आरम्भ हुआ और शीघ्र ही यह इतना समृद्ध नगर हो गया कि सूरतको पछाड़ कर अंग्रेजोंका मुख्य व्यवसाय-भूमि बन गया।

१७७३ ई०के रेग्युलेटिंग ऐक्टने बम्बई प्रेसीडेन्सीको बंगालके तथा उसकी कौन्सिलके सामान्य नियंत्रणमें कर दिया था, अतः यह केन्द्रीय सरकारकी राजधानी कभी नहीं बन सका, किन्तु इसका महत्त्व ब्रिटिश राज्यके प्रसारके साथ-साथ बढ़ता गया। बम्बई प्रेसीडेन्सीमें भारतके पश्चिमी तटका सारा उत्तरी भाग, जिसमें सिन्ध, मालवा और गुजरात भी शामिल था, मिला दिया गया। नगरमें वृद्धि हुई, बन्दरगाह विकसित किया गया और नयी गोदीका निर्माण हुआ। १८६४ ई०में बम्बई-बड़ौदा-और सेंट्रल रेलवे लाइनोंके बन जानेपर तथा १८६९ ई०में स्वेज नहरके चालू हो जानेपर यूरोपसे पूर्वमें आनेवाले जहाजोंके लिए भारतमें रुकने लायक यह पहला बंदरगाह हो गया। इस प्रकार बम्बई नगर 'भारतका मुख्य प्रवेशद्वार' बन गया। यह सूती वस्त्रोंका प्रमुख उत्पादक केन्द्र भी है। धनिक पारसियोंने इसे अपना बना लिया है और उन्होंने इसकी समृद्धिमें भारी योगदान किया है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका प्रथम अधिवेशन १८८५ ई०में बम्बईमें ही हुआ था और देशके स्वाधीनता आन्दोलनमें भी बम्बईका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। सिन्धको इससे १९३५ ई०में पृथक् कर दिया गया। स्वाधीनताके उपरान्त बम्बई राज्य भाषाई आधार पर दो राज्योंमें विभाजित हुआ। पहला राज्य महाराष्ट्र बना, जिसकी राजधानी बम्बई है और दूसरा गुजरात, जिसकी राजधानी अहमदाबाद अथवा गांधीनगर है। (सर डब्ल्यू० हण्टर कृत इम्पीरियल गजेटियर जिल्द ७; एस० एम० एडवर्ड्स कृत दि राइज आफ बाम्बे तथा शेपर्ड कृत बाम्बे, १९३२)।

बम्बईका प्लेग—१८९७ ई०में फैला, जब बम्बई और पूना दोनों नगरोंमें गिल्टियाँ निकलनेवाली प्लेग (ताउन)की बीमारी गम्भीर महामारीके रूपमें व्याप्त हो गयी। भयभीत सरकारने अनावश्यक तथा अत्यधिक कठोर कदम उठाकर न केवल व्याधिग्रस्त लोगोंको बस्तीसे अलग हटा दिया, वरन् उन लोगोंको भी हटा दिया, जिनके रोगपीड़ित होनेका जरा भी सन्देह था। बाल गंगाधर तिलकने अपने पत्र 'केसरी'में सरकारके निर्मम आचरणकी तीव्र भर्त्सना की; वैसे तो तिलक महामारी रोकनेके सरकारी प्रयासोंके प्रशंसक थे, किन्तु उन्होंने इस बातकी मांग उठायी कि सरकारी कानूनोंको लागू करनेमें कठोरता न बरती जाय। उसके तुरन्त बाद अज्ञात आक्रमणकारियोंने प्लेग कमिश्नर रैण्ड तथा उसके सहायक आयेर्स्टकी हत्या कर दी। फलतः तिलकके विरुद्ध राजद्रोह फैलानेका आरोप लगा कर मुकदमा चलाया गया और उन्हें कारावासकी सजा मिली। इस प्रकार बम्बईके प्लेग (ताउन)के संकट ने तिलकको देशका अग्रणी नेता बना दिया।

बयाना—राजस्थानके भरतपुर जिलेका एक पहाड़ी किला और पुरानी बस्ती। यहाँ यौधेय गणका एक शिलालेख भी उपलब्ध हुआ है। पिछले समयमें यह स्थान एक मुस्लिम जागीरदारके अधीन हो गया। उस युगमें दिल्ली-

पर अभियान करनेवाली सेनाओंके लिए इस किलेपर कब्जा करना महत्त्वपूर्ण माना जाता था।

बरगोइने, कर्नल–ब्रिटिश पार्लियामेण्टका सदस्य, जिसने मई, १७७३ ई० पार्लियामेण्टमें राबर्ट क्लाइवके विरुद्ध तीव्र आरोप लगाये। उसीके प्रस्तावपर पार्लियामेण्टने पारित किया कि ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेना द्वारा भारतमें अधिग्रहीत क्षेत्रों अथवा धनको यदि कम्पनीका कोई कर्मचारी अपनी निजी सम्पत्ति बना लेता है तो उसका यह कार्य गैर-कानूनी है और यह बात प्रमाणित है कि राबर्ट क्लाइवने इस प्रकारसे २,३४,००० पौंडकी राशि प्राप्त की है। प्रस्तावमें एक संशोधन यह भी जोड़ दिया गया कि राबर्ट क्लाइवने अपने देशके लिए महान् और सराहनीय सेवाएँ की हैं। राबर्ट क्लाइवको बरगोइनेका प्रस्ताव पारित होनेसे इतना सदमा पहुँचा कि उसने १७७४में आत्महत्या कर ली।

बरनी, जियाउद्दीन–प्रसिद्ध मुसलमान इतिहासकार, जो फिरोज शाह तुगलकके समयमें हुआ था। उसकी पुस्तक 'तारीखे फिरोजशाही'में फिरोज शहंशाह तुगलकके शासनका विश्वसनीय वर्णन है। साथ ही इस पुस्तकमें दिल्लीके पूर्ववर्ती सुल्तानोंके शासनके सम्बन्धमें भी काफी जानकारी मिलती है।

बरबोसा, इडोरडो–जेशुइट यात्री, जो १५६० ई०में भारत आया। उसने विजयनगरका भ्रमण किया और १५८१ ई०में उत्तरी भारत तथा बंगालकी यात्रा की। वह विजयनगरकी समृद्धि और बंगालमें निर्मित उत्कृष्ट वस्तुओंसे बहुत प्रभावित हुआ। (**मैकलागन कृत जेस्युट मिशन**)

बराड़ (बरार)–प्राचीन राज्य विदर्भका आधुनिक नाम। यह वर्धा नदीकी घाटीमें स्थित है। मौर्योंके साम्राज्यका यह एक भाग था। पुष्यमित्र शुङ्गके पुत्र अग्निमित्रके शासनकालमें इसने साम्राज्यसे पृथक् हो जानेका विफल प्रयास किया। बादमें यह चालुक्योंके अधीन हो गया, जिनसे इसे अलाउद्दीन खिजलीने जीत लिया। फिर यह मुहम्मद तुगलकके राज्यमें सम्मिलित हो गया तथा बहमनी राज्यकी स्थापनापर उसका अंग बन गया। यह १४८४ ई०में उस समय तक उसका भाग बना रहा जब इमादुल मुल्कने यहाँ एक स्वतंत्र राज्य कायम किया। उसने इमाद-शाही राज-वंश चलाया, जो १५७४ ई० तक शासक रहा, तदनन्तर बरारको अहमद नगरने आत्मसात् कर लिया। १५९६ ई०में यह बादशाह अकबरको सौंप दिया गया जिसने इसको अलग सूबा बना दिया।

१७१४ ई०की संधिके अनुसार, जो बादशाहोंको अपने इच्छानुसार तख्तपर बैठाने और उतारनेवाले सैयद-बन्धु हुसेन अली और पेशवा बालाजी विश्वनाथके बीच हुई थी, बराड़ मराठोंके नियंत्रणमें चला गया। इसके शीघ्र ही बाद एक जागीरके रूपमें इसे रघुजी भोंसलेको अर्पित कर दिया गया। रघुजी विवाह सम्बन्धसे राजा साहूका सम्बन्धी था। कालान्तरमें मराठा राज्यका प्रसार होनेपर रघुजी भोंसलेने अपनी जागीरमें नये इलाकोंको शामिल कर लिया। तीसरे पेशवा बालाजी बाजी रावके समयमें बरार भोंसला राज्यका केन्द्र बन गया।

द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्धमें भोंसला राजा आरगाँवकी लड़ाईमें पराजित हो गया और देवगाँव (दिसम्बर, १८०३ ई०)की संधिके अनुसार बरार भोंसला राजासे लेकर पुरस्कार-स्वरूप हैदराबादके निजामको सौंप दिया गया। निजाम पहले ही अंग्रेजोंके साथ आश्रित-संधि कर चुका था। वह इस बातके लिए वचनबद्ध था कि अपने राज्यमें ब्रिटिश टुकड़ीके खर्चके लिए वार्षिक सहायता देगा। किन्तु वर्षों तक निजामने यह धन नहीं चुकाया। अन्तमें बकायेके भुगतानके लिए उसने बरारका राजस्व जमानतके रूपमें ब्रिटिश भारतीय सरकारको अर्पित कर दिया, किन्तु यह व्यवस्था सन्तोषजनक तरीकेसे नहीं चल सकी। अतः १९०२ ई०में निजामने बरारको स्थायी पट्टेपर भारत सरकारको सौंप दिया। इस प्रकार यह ब्रिटिश भारतका अंग हो गया।

बरारी घाटकी लड़ाई–९ जनवरी १७६० ई० में छेड़ी गयी। यह स्थान दिल्लीसे दस मील उत्तर स्थित है, जहाँ अहमदशाह अब्दालीने मराठा सेनापति दत्ताजी शिन्देको हरा कर मार डाला। लड़ाईमें मराठा सेना भाग खड़ी हुई। इस प्रकार अब्दालीके लिए दिल्लीका मार्ग खुल गया। मराठोंकी यह हार एक वर्ष बाद पानीपतकी तीसरी लड़ाईमें होनेवाली उनकी जबर्दस्त हारका पूर्वाभास थी।

बरीद, अमीर–बीदरके बरीदशाही राजवंशके प्रवर्तक कासिम बरीदका पुत्र तथा उत्तराधिकारी, जिसने यह शाही उपाधि १५२६ ई० में ग्रहण की।

बरीदशाही राजवंश, (बीदरका)–कासिम बरीदने बहमनी राज्यके पाँच शाखाओंमें विभाजित हो जानेके पश्चात् १४९२ ई० में इसे चलाया। इस राजवंशने बीदर तथा उसके पास-पड़ोसके इलाकोंपर १६१९ ई० तक जब बीजापुरके सुल्तानने इसे अपदस्थ कर दिया, शासन किया।

बरुआ–आसामके अहोम राजाओंका एक पदाधिकारी। उनका स्थान फूकनके बाद होता था। मूलरूपमें ऐसे लगभग बीस अधिकारी होते थे जो उच्च अहोम परिवारोंमें से चुने जाते थे। वे प्रशासनके विभिन्न विभागों-के प्रधान होते थे। बादमें अहोमोंसे इतर प्रजासे भी इनकी नियुक्तियाँ होने लगीं। कालान्तरमें धर्म अथवा जातिका ध्यान किये बिना इस पदपर आसीन सभी व्यक्तियोंको 'बरुआ' कहा जाने लगा। यह पदनाम उन सभी लोगोंने ग्रहण कर लिया जिनके पूर्वज कभी इस पद पर रहे थे। आसामके कुछ मुसलमान परिवारोंकी भी उपाधि 'बरुआ' है।

बर्क, एडमंड–(१७२९–९७ ई०)–इंग्लैण्डका एक प्रमुख सार्वजनिक नेता। इसने साहित्यिक एवं राजनीतिक क्षेत्रमें विशेष ख्याति प्राप्त की। अपने समयमें यह ब्रिटिश टोरी या कंजरवेटीय विचारधाराका मान्य नेता था। पालियामेण्टके सदस्यकी हैसियतसे उसने भारतके गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सके विरुद्ध महाभियोग चलानेमें प्रमुख भाग लिया और अपनी सहज उदारताका परिचय देते हुए सत्तारूढ़ शासनाधिकारियों द्वारा प्रजा-के उत्पीड़नपर गहरा क्षोभ प्रकट किया। उसकी मुख्य रचनाएँ हैं: 'आन कांसिलिएशन विद अमेरिका', 'फ्रेन्च रेवलूशन' तथा 'दि सब्लाइम एण्ड दि ब्यूटीफुल'।

बर्कनहेड, लार्ड–(१८७२–१९३०)–बहुत ही सफल अंग्रेज वकील और राजनीतिज्ञ। वह पालियामेण्टका १९०६ से १९१९ ई० तक सदस्य रहा, फिर लार्ड बना दिया गया। वह १९१५–१९ ई० में एटर्नी जनरल और १९१९–२२ में लार्ड चांसलर तथा १९२४–२८ में सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया (भारत-मंत्री) नियुक्त हुआ। वह उदारवादी (लिबरल) राजनीतिज्ञ था, लेकिन १९२७ ई० में साइमन कमीशनमें सभी अंग्रेज सदस्यों की नियुक्त करनेपर भारतीयोंने उसकी तीव्र निन्दा की। साइमन कमीशनकी नियुक्ति १९१९ के गवर्नमेण्ट आफ इंडिया एक्टकी कार्य-व्यवस्थाकी जांचके लिए की गयी थी।

बर्ड, आर० एम०–भारत सरकारकी सेवामें नियुक्त एक अधिकारी, जो लार्ड विलियम बेण्टिकके शासनकालमें पश्चिमोत्तर प्रदेशमें भूमि बन्दोबस्तका मुख्य प्रभारी था। उसने इस कामको पूरा करनेमें दस वर्ष (१८३०–४०) लगाये और भूमिका अर्द्ध-स्थायी महालवारी बन्दोबस्त किया है। लार्ड कार्नवालिसके शासनकालमें बंगालमें प्रचलित इस्तमरारी बन्दोबस्तसे यह बिलकुल भिन्न था।

बर्न, कर्नल–जब १८१६ ई० में पेशवा बाजीराव द्वितीयने खड़कीमें स्थित ब्रिटिश सेनापर अचानक हमला बोला, तब उसके कमाण्डर कर्नल बर्नने पेशवाको पूरी तरह पराजित कर उसकी योजनाको विफल कर दिया।

बर्नियर, फ्रैंको–एक फ्रांसीसी विद्वान् डाक्टर। भारतमें वह १६५६ ई० से १६६८ ई० तक रहा, सारे देशका भ्रमण किया और शाहजहाँ तथा औरंगजेबके मध्यवर्ती शासन-कालोंमें उसने भारतमें जो कुछ देखा उसका रोचक विवरण प्रस्तुत किया है। उसने मुगल दरबारके प्रमुख दरबारी दानिशमन्दकी नौकरी कर ली थी। वह दिल्ली-में उस समय मौजूद था, जब शाहजादा दाराको राज-धानीकी सड़कोंपर घुमाया गया। उसके पीछे-पीछे भारी भीड़ चल रही थी, जो उसके दुर्भाग्यपर विलाप कर रही थी। फिर भी भीड़मेंसे किसी व्यक्तिको अपनी तलवार निकाल कर दाराको छुड़ानेका साहस नहीं हुआ। इस प्रकार बर्नियरने विदेशी होनेपर भी सत्ताधारियोंके सम्मुख भारतीय जनताकी निष्क्रियता तथा असहायावस्थाको लक्षित कर लिया था।

बर्नियरने शाहजहाँ तथा औरंगजेबके रेखाचित्र भी प्रस्तुत किये हैं। बंगालकी समृद्धिसे वह बहुत प्रभावित हुआ था, परन्तु जनसाधारणकी निर्धनताने उसे अत्य-धिक द्रवित भी किया था। दरबारकी शान-शौकत तथा विशाल सेनाका खर्च निकालनेके लिए प्रजापर करोंका भारी बोझ लाद दिया गया था। इस विशाल सेनाका उपयोग जनताको दबाये रखनेके लिए किया जाता था। **(वी० ए० स्मिथ द्वारा संपादित ट्रैवेल्स आफ बर्नियर)**

बर्न्स, जेम्स (१८०१-६२ ई०)–सर अलेक्जेण्डर बर्न्सका बड़ा भाई, जो १८२१ ई०में भारत आया और कम्पनीकी सेनामें १८४९ तक सर्जन रहा। वह विद्वान् लेखक भी था। 'हिस्ट्री आफ़ कच्छ' उसकी रचना है।

बर्न्स, सर अलेक्जण्डर (१८०५–४१)–कम्पनीकी सैनिक सेवामें १६ वर्षकी उम्रमें दाखिल हुआ, फारसी सीखी और एक नीतिज्ञके रूपमें ख्याति प्राप्ति की। उसे १८३० ई०में दौत्य कार्यके लिए रणजीत सिंहके दरबारमें लाहौर और बादमें अफगानिस्तान, बुखारा और फारस भेजा गया। ऊपरी तौरपर उसकी यात्राका उद्देश्य व्यावसा-यिक घोषित किया गया था, किन्तु वास्तवमें उसे काबुल में रूसी एजेंटकी गतिविधि जाननेके लिए भेजा गया था। भारत लौटनेपर उसने अमीर दोस्त मोहम्मदका समर्थन करनेकी सलाह दी, किन्तु उसकी रायको ठुकरा दिया गया। लार्ड लिटन प्रथम द्वारा अपनायी गयी

आक्रमक नीतिके परिणाम-स्वरूप द्वितीय अफगान-युद्ध (दे०) हुआ। युद्धके दौरान बर्न्स सर डब्ल्यू. एच. मैक-नाघटनकी अधीनतामें काबुलमें पोलिटिकल एजेन्ट नियुक्त किया गया, लेकिन २ नवम्बर, १८४०ई०को काबुलमें अफगानोंने बगावत कर दी और बर्न्सकी हत्या कर दी। इस प्रकार लार्ड लिटनकी आक्रमक नीतिका दंड बर्न्सको भुगतना पड़ा।

बर्नी, मेजर हेनरी—आवाके दरबारमें १८३० ई०में नियुक्त होने वाला पहला ब्रिटिश रेजिडेण्ट।

बर्मा—भारतके पूर्वमें स्थित एक विशाल देश, जिसे पटकोई पर्वत श्रृंखला, घने जंगलों तथा बंगालकी खाड़ीने भारतसे अलग कर रखा है। ऐसा लगता है, आरम्भिक कालमें भारत और बर्माके बीच कोई राजनीतिक सम्बन्ध नहीं था, यद्यपि बर्मा उस कालमें भी हिन्दू संस्कृतिसे इतना प्रभावित हो चुका था कि इसके नगरोंके नाम जैसे अयूथिया अथवा अयोध्या संस्कृत नामोंपर रखे जाने लगे थे। बादमें अशोकके कालमें बौद्ध धर्म और संस्कृतिका बर्मामें इतना अधिक प्रसार हुआ कि आज भी वहाँके बहुसंख्यक लोग बौद्ध मतावलम्बी हैं। मुसलमानोंके शासनकालमें बर्मासे भारतका सभी प्रकारका सम्पर्क भंग हो गया। स्वयं भी वह अनेक छोटे राज्योंमें बँटा होनेसे सैनिक-शक्ति-सम्पन्न नहीं था। १७५७ ई०में राजा अलोम्प्राने नया बर्मी राजवंश चलाया। इस वंशके शासकों ने न केवल उत्तरी और दक्षिणी बर्माको राज्यमें मिलाया, वरन् उसकी सीमाएं स्याम, तनासरिम, अराकान तथा मणिपुर तक बढ़ा लीं। विजयोंसे, विशेषकर १८१६ई०में आसामकी विजयसे, बर्मी राज्यकी सीमा भारतमें बढ़ते हुए ब्रिटिश साम्राज्यकी सीमाओंके सन्निकट आ गयी, जिससे दोनोंके बीच शक्ति-परीक्षण अनिवार्य हो गया।

फल-स्वरूप तीन क्रमिक बर्मी-युद्ध हुए और १८८६ ई०में पूरा देश ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यके अंतर्गत आ गया। किन्तु १९३५ ई०के भारतीय शासन विधानके अंतर्गत बर्माको भारतसे अलग कर दिया गया। १९४७ ई०से भारत और बर्मा दो स्वाधीन पड़ोसी मित्र राष्ट्र हैं।

बर्मा-शासनविधान—ब्रिटिश संसदने १९३२ ई०में पारित किया, जिसके द्वारा बर्माको भारतसे अलग कर दिया गया। इसके अनुसार बर्माको उसी प्रकारके अधिकार प्रदान किये गये जिस प्रकार भारतको १९२१ ई०के शासनविधानके अन्तर्गत प्रदान किये गये थे।

बर्मी युद्ध—कुल तीन हुए। पहला आंग्ल-बर्मी युद्ध दो वर्ष (१८२४–२६ ई०) तक चला। इसका कारण बर्मी राज्यकी न सीमाओंका आसपास तक फैल जाना तथा दक्षिणी बंगालके चटगांव क्षेत्रपर भी बर्मी अधिकारका खतरा उत्पन्न हो जाना था। लार्ड एम्हर्स्टकी सरकारने, जिसने युद्ध घोषित किया था, आरम्भमें युद्धके संचालन-में पूर्ण अयोग्यताका प्रदर्शन किया, उधर बर्मी सेनापति बंधुलने युद्धके संचालनमें बड़ी योग्यताका परिचय दिया। ब्रिटिश भारतीय सेनाने बर्मी सेनाको आसामसे मार भगाया, रंगूनपर चढ़ाई करके उसपर कब्जा कर लिया। दोनाबूकी लड़ाईमें बंधुल परास्त हुआ और युद्धभूमिमें अकस्मात् गोली लग जानेसे मारा गया। तब अंग्रेजोंने दक्षिणी बर्माकी राजधानी प्रोमपर कब्जा कर बर्मी सर-कारको यन्दबूकी संधि (१८२६) करनेके लिए मजबूर कर दिया।

संधिके अन्तर्गत बर्मियोंने अंग्रेजोंको एक करोड़ रुपया हर्जानेके रूपमें देना स्वीकार किया, अराकान और तेनासरीमके सूबे अंग्रेजोंको सौंप दिये, मणिपुरको स्वा-धीन राज्यके रूपमें मान्यता प्रदान कर दी, आसाम, कचार और जयन्तियामें हस्तक्षेप न करनेका वायदा किया तथा आवामें ब्रिटिश रेजीडेण्ट रखना स्वीकार कर लिया। इसके अलावा बर्मियोंको एक व्यावसायिक सन्धि भी करनी पड़ी, जिसके अन्तर्गत अंग्रेजोंको बर्मामें वाणिज्य और व्यवसायके अनिर्दिष्ट अधिकार प्राप्त हो गये।

यन्दबू सन्धिके आधारपर राजनीतिक एवं व्याव-सायिक मांगोके फलस्वरूप १८५२ ई०में द्वितीय बर्मी-युद्ध छिड़ा। लार्ड डलहौजीने जो उस समय गवर्नर-जनरल था, बर्माके शासकपर संधिकी सभी शर्तें पूरी करनेके लिए जोर डाला। बर्मी शासकका कथन था कि अंग्रेज संधिकी शर्तोंसे कहीं ज्यादाकी मांग कर रहे हैं। अपनी मांगोंको एक निर्धारित तारीख तक पूरा करानेके लिए लार्ड डलहौजीने कमोडोर लैम्बर्टके नेतृत्वमें एक जहाजी बेड़ा रंगून भेज दिया। ब्रिटिश नौसेनाके अधि-कारीकी तुनुक-मिजाजीके कारण ब्रिटिश फ्रिगेट और एक बर्मी जहाजके बीच गोलाबारी हो गयी। लार्ड डलहौजीने तत्काल अल्टीमेटम भेज दिया और एडमिरल आस्टेनके नेतृत्वमें ब्रिटिश नौसेनाने दक्षिणी बर्मापर आक्रमण कर दिया। रंगून, मर्तबान, बेसीन, प्रोम और पेगू पर शीघ्र ही कब्जा हो गया। लार्ड डलहौजी, सितम्बर १८५२ ई०में स्वयं बर्मा पहुँचा। बर्मी राजा उसकी शर्तोंको स्वीकार करनेके लिए उद्यत नहीं हो रहा था। गवर्नर-जनरलकी हैसियतसे डलहौजीने तत्काल

उत्तरी बर्मातक बढ़ना विवेकपूर्ण नहीं समझा, अतएव उसने दक्षिणी बर्माको भारतमें मिला लिये जानेकी घोषणा कर स्वयं अपनी पहलपर युद्ध बन्द कर दिया। पेगू अथवा दक्षिणी बर्मापर कब्जा हो जानेसे बंगालकी खाड़ीके समूचे तटपर अंग्रेजोंका नियंत्रण हो गया।

तृतीय बर्मी-युद्ध ३८ वर्ष बाद १८८५ ई० में हुआ। उस समय थिबा ऊपरी बर्माका शासक राजा था और मांडले उसकी राजधानी थी। लार्ड डफरिन भारतका गवर्नर-जनरल था। बर्मी शासक जबर्दस्ती दक्षिणी बर्मा छीन लिये जानेसे कुपित था और मांडले स्थित ब्रिटिश रेजिडेण्ट तथा अधिकारियोंको उन मध्ययुगीन शिष्टाचारोंको पूरा करनेमें झुंझलाहट होती थी जो उन्हें थिबासे मुलाकातके समय पूरी करनी पड़ती थीं। १८५२ ई० की पराजयसे पूरी तरह चिढ़े हुए थिबाने फ्रांसीसियोंका समर्थन और सहयोग प्राप्त करनेका प्रयास शुरू कर दिया। उस समय तक फ्रांसीसियोंने कोचीन चीन तथा उत्तरी बर्माके पूर्वमें स्थित टेन्किनमें, अपना विशाल साम्राज्य कायम कर लिया था। फ्रांसीसियोंके साथ बर्मियोंके मेलजोल तथा थिबाकी सरकार द्वारा एक अंग्रेज फर्मपर, जो उत्तरी बर्मामें लट्ठेका रोजगार करती थी, भारी जुर्माना कर देनेके कारण भारत सरकारने १८८५ ई०में तृतीय बर्मी-युद्धकी घोषणा कर दी। युद्धके लिए अंग्रेजोने तैयारियाँ पूरी तरहसे कर रखी थीं, जबकि थिबाकी फ्रांसीसियोसे सहायता प्राप्त करनेकी आशा मृग-मरीचिका सिद्ध हुई। युद्ध घोषणा ६ नवम्बर १८८५ ई०को की गयी और बीस दिनोंमें ही मांडलेपर कब्जा हो गया। राजा थिबा बन्दी बना लिया गया, उसे अपदस्थ कर उत्तरी बर्माको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया और दक्षिणी बर्माको मिलाकर एक नया सूबा बना दिया गया, रंगूनको उसकी राजधानी बनाया गया। इस प्रकार ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य पूर्वोत्तरमें अपनी चरम सीमा तक प्रसारित हो गया। (सर ए० फेरे, हिस्ट्री आफ बर्मा; जी० ई० हार्वे, हिस्ट्री आफ बर्मा)

बलबन, सुल्तान गयासुद्दीन—गुलाम वंशका नवाँ सुल्तान (१२६६–८७)। बलबन मूलतः सुल्तान इलतुतमिशका तुर्की गुलाम था। अपनी योग्यता और गुणोंके कारण वह धीरे-धीरे ऊँचे पदों और प्रतिष्ठाको प्राप्त करता गया। उसकी पुत्री सुल्तान नसीरउद्दीन (१२४६–६६ ई०)को ब्याही थी जिसने उसे अपना मंत्री तथा सहायक नियुक्त किया। सुल्तानके सहायकके रूपमें बलबन अपने दामादके नामपर १२६६ ई०में उसकी मृत्यु तक दिल्ली सल्तनतका प्रशासन चलाता रहा। उसके बाद वह स्वयं सिंहासनपर बैठ गया और सुल्तान गयासुद्दीनकी उपाधि धारण की। उसने बड़ी योग्यतासे शासन किया। विद्रोही तुर्की अमीरोंको कुचल कर, मेवाती सदृश्य लुटेरोंको कठोर दंड देकर, निष्पक्ष न्याय व्यवस्था, जिसमें छोटे-बड़ेके साथ कोई भेद भाव नहीं होता था तथा एक बहुत ही कार्यकुशल गुप्तचर व्यवस्था संगठित कर, जो उसके राज्यमें होनेवाली सभी बातोंसे उसे अवगत रखती थी, बलबनने राज्यमें शान्ति-व्यवस्था पुनः कायम की।

बलबर्मा—आर्यावर्तका एक राजा, जिसका राज्य प्रयागन स्तम्भलेखके अनुसार समुद्रगुप्त (३३०–८० ई०) ने बलपूर्वक उन्मूलित कर दिया। बलवर्मा अथवा उसके राज्यकी अबतक पहचान नहीं हो सकी है।

बलराम सेट—जसवंत राव होल्कर (१७९८–१८११)का मंत्री। जसवंतरावकी मृत्यु हो जानेपर बलराम सेठने होल्करकी उपपत्नी (रखैल) तुलसी बाईका समर्थन किया और तृतीय आंग्ल-मराठा युद्ध (१८१७–१८ ई०) छिड़ने तक उसे सत्तासीन रखा। उसके बाद दोनों विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो गये।

बलहारा—संस्कृत शब्द 'बल्लभ'का अरबी रूपान्तर, जिसका प्रयोग अरब लेखकोंने मान्यखेट अथवा मालखेड़के राष्ट्रकूट राजाओंके लिए किया है। यह पदवी कदाचित् राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष प्रथमके लिए प्रयुक्त होती थी, जिसने लगभग ६२ वर्ष (८१५–७७ ई०) तक राज्य किया था।

बलि—कर अथवा अतिरिक्त अधिभार, यह उपजके छठें हिस्से (भाग)के अतिरिक्त लगाया जाता था। मौर्य शासक भूमिकरके रूपमें इसे इकट्ठा करते थे।

बलूचिस्तान—भारतीय उपमहाद्वीपके पश्चिममें किरथर पर्वत-शृंखलाके उस पार स्थित। भौगोलिक दृष्टिसे यह भारतके बाहर है लेकिन राजनीतिक दृष्टिसे प्रायः भारतीय साम्राज्यका भाग रहा है। इसे सिकन्दरने जीता था, तदनन्तर सेल्यूकसने चन्द्रगुप्त मौर्य (३२२ ई०पू०–२९८ ई०पू०) को सौंप दिया और यह मौर्य साम्राज्यका अंग बन गया। उसके बाद यह काफी लम्बे अर्से तक किसी भी भारतीय शासनतन्त्रके अंतर्गत नहीं रहा। १५९५ ई०में इसे अकबरने जीत कर मुगल साम्राज्यका अंग बना लिया। अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें यह अफ़गानिस्ताका आश्रित राज्य बन गया।

१८३९ ई०में अफ़गानिस्तानपर आक्रमण करनेके लिए

ब्रिटिश भारतीय सेना इस क्षेत्रसे गुजरी, और १८४३ ई० तक यह ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यके नियंत्रणमें आ गया। १८४७ ई०में इसकी राजधानी क्वेटाको औपचारिक रूपमें अंग्रेजोंने अधिकृत कर लिया। १९४७ ई०में भारतके विभाजनके उपरान्त बलूचिस्तान पश्चिम पाकिस्तानका भाग बन गया।

बलोचपुरकी लड़ाई–१६२३ ई० में जहाँगीरकी शाही फौजों और उसके पुत्र शाहजहाँके बीच, जिसने बादशाहके विरुद्ध बगावत कर दी थी, हुई। अन्तमें शाहजहाँ पराजित हो गया और उसे दक्षिणकी ओर भागना पड़ा।

बल्लाल सेन–बंगालके सेन वंशका (१११८–७९ ई०) प्रमुख शासक। उसने उत्तरी बंगालपर विजय प्राप्त की और कदाचित् मगधके पालोंके विरुद्ध भी अभियान चलाया और बंगालमें पालवंशके शासनका अंत कर दिया। वह विद्वान् और संस्कृतका ख्यातिप्राप्त लेखक था। उसकी दो कृतियाँ–दानसागर और अद्भुत सागर आज भी उपलब्ध हैं, जिनके द्वारा उसने बंगालमें सनातन धर्मको पुनरुज्जीवित किया। उसे बंगालके ब्राह्मणों और कायस्थोंमें 'कुलीन प्रथा' का प्रवर्तक माना जाता है।

बसई (बेसीन)–बम्बईके निकट, भारतका पश्चिमी तटवर्ती एक बन्दरगाह, जिसपर १६ वीं शताब्दीके आरम्भमें पुर्तगालियोंने अधिकार कर लिया। मराठोंने लगभग १७७० ई०में इसे पुनः प्राप्त कर लिया। ईस्ट इंडिया कम्पनी इसको अपने कब्जेमें करना चाहती थी। इस उद्देश्यसे बम्बईकी सरकारने १७७२ ई०में पेशवा नारायणरावकी मृत्युके उपरान्त मराठोंकी घरेलू राजनीतिमें हस्तक्षेप शुरू कर दिया। इस कारण अन्तमें प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध (१७७५-८२ ई०)में हुआ, जिसके बाद भी बसई पर मराठोंका ही अधिकार रहा।

बसईकी संधि–दिसम्बर ३१, १८०२ ई०को पेशवा बाजीराव द्वितीय और अंग्रेजोंके बीच हुई, जिसके द्वारा पेशवाने ईस्ट इंडिया कम्पनीका आश्रित होना स्वीकार कर लिया। यह एक सामान्य प्रतिरक्षात्मक समझौता था, जिसका उद्देश्य भारतमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके इलाकों और पेशवाके राज्यक्षेत्रको पारस्परिक सुरक्षा प्रदान करना था। कम्पनीने पेशवाके इलाकेमें कमसे कम ६ बटालियन सैनिक रखने तथा पेशवाकी उसके सभी शत्रुओंसे रक्षा करनेका उत्तरदायित्व ग्रहण कर लिया। बदलेमें पेशवाने कम्पनीको २६ लाख रुपयेकी वार्षिक आर्थिक सहायता देना, तथा अपनी सेवामें अंग्रेजोंके शत्रु यूरोपियनोंको न रखना, सूरतसे अपने सारे दावोंको छोड़ देना, किसी विदेशी ताकतसे बिना ब्रिटिश सरकारकी सलाहके कोई सम्बन्ध न रखना और निजाम तथा गायकवाड़से अपने विवादोंमें अंग्रेजोंको मध्यस्थ बनाना स्वीकार किया।

इस संधिके तुरन्त बाद ब्रिटिश भारतीय सेनाने पेशवा बाजीराव द्वितीयको पूनामें उसकी गद्दीपर पुनः प्रतिष्ठित कर दिया। किन्तु उक्त संधिका वास्तविक परिणाम यह निकला कि पेशवाने अपनी स्वाधीनताके साथ ही साथ मराठा सरदारोंकी स्वाधीनताकी भी बलि चढ़ा दी। मराठोंने, विशेष कर शिन्दे और होल्करने इस संधिपर बहुत आक्रोश प्रकट किया। उनके विरोध तथा स्वयं पेशवा द्वारा इसकी अवहेलना किये जानेके परिणामस्वरूप द्वितीय मराठा-युद्ध (१८०३–५ ई० में) हुआ और अन्तमें मराठोंको ब्रिटिश प्रभुसत्ता स्वीकार करनेके लिए विवश होना पड़ा।

बहलोल लोदी–१४५१ से ८९ ई० तक दिल्लीका सुल्तान। वह लोदी कबीलेका अफगान था, इसलिए लोदी उसका उपनाम बन गया। १४५१ ई०में जब सैयद राजवंशके सुल्तान आलम शाहने दिल्लीका तख्त छोड़ा, उस समय बहलोल लाहौर और सरहिन्दका सूबेदार था। उसने अपने वजीर हमीद खाँकी मददसे दिल्लीके तख्तपर कब्जा कर लिया। वह दिल्लीका पहला अफगान सुल्तान था, जिसने लोदी राजवंशकी शुरूआत की। बहलोलके सुल्तान बननेके समय दिल्ली सल्तनत नाम मात्रकी थी। बहलोल शूरवीर, युद्धप्रिय और महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसने जौनपुर, मेवात, सम्भल तथा रेवाड़ीपर अपनी सत्ता फिरसे स्थापित की और दोआबके सरदारोंका दमन किया। उसने ग्वालियरपर भी कब्जा कर लिया। इस प्रकार उसने दिल्ली सल्तनतका पुराना दरबार एक प्रकारसे फिरसे कायम कर दिया। वह गरीबोंसे हमदर्दी रखता था और विद्वानोंका आश्रयदाता था।

दरबारमें शालीनता और शिष्टाचारके पालनपर जोर देकर तथा अमीरोंको अनुशासनमें बांध करके उसने सुल्तानकी प्रतिष्ठाको काफी ऊँचा उठा दिया। उसने दोआबके विद्रोही हिन्दुओंका कठोरताके साथ दमन किया, बंगालके सूबेदार तोगरल खाँको हराकर मार डाला और उसके प्रमुख समर्थकोंको बंगालकी राजधानी लखनौतीके मुख्य बाजारमें फांसीपर लटकवा दिया। उपरांत अपने पुत्र बुगरा खांको बंगालका सूबेदार नियुक्त करके

यह चेतावनी दे दी कि उसने भी यदि विद्रोह करनेका प्रयास किया तो उसका भी हश्र वही होगा जो तोगरल खांका हो चुका है।

बलबनने अपना ध्यान सल्तनतकी सुरक्षापर केन्द्रित किया, जिसके लिए उस समय पश्चिमोत्तर सीमापर मंगोलोंसे खतरा था। वे किसी भी समय भारतपर आक्रमण कर सकते थे। अतः बलबनने अपने बड़े लड़के मुहम्मद खांको मुल्तानका हाकिम नियुक्त किया और स्वयं भी सीमाके आसपास ही पड़ाव डाल कर रहने लगा। उसका डर बेबुनियाद नहीं था। मंगोलोंने १२७९ ई०में भारतपर आक्रमण करनेका प्रयास किया, किन्तु शाहजादा मुहम्मद खांने उन्हें पीछे खदेड़ दिया। १२८५ ई०में पुनः आक्रमण कर वे मुल्तान तक बढ़ आये, और शाहजादेपर हमला करके उसे मार डाला। सुल्तानके लिए, जो अपने बड़े बेटेको बहुत ही प्यार करता था और यह उम्मीद लगाये बैठा था कि वह उसका उत्तराधिकारी होगा, यह भीषण आघात था। बलबनकी अवस्था उस समय अस्सी वर्ष हो चुकी थी और पुत्र-शोकमें उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी गणना दिल्लीके सबसे शक्तिशाली सुल्तानोंमें होती है। (**बरनी कृत तारिखे फिरोज शाही**)

बसी (बुसी), मारकुइस डि—एक प्रमुख फ्रांसीसी सेनापति, जिसने कर्नाटकमें हुए आंग्ल-फ्रांसीसी युद्धोंमें हिस्सा लिया। उसका पूरा नाम चार्ल्स जोसेफ पार्टस्सियर, मारकुइस डि बुसी था। १७५१ ई० में डूप्लेके आदेशानुसार वह नये निजाम मुजफ्फरजंगको पदासीन करने उसकी राजधानी औरंगाबाद ले गया। मुजफ्फरजंगकी मृत्युके बाद सलावतजंगके गद्दीनशीन होनेपर बुसी नये निजामका परामर्शदाता बना। उसकी सरकारका उसने सात वर्षों तक बड़ी कुशलताके साथ संचालन किया। १७५३ ई० में बुसीने निजाम सलावतजंगको सलाह दी कि वह फ्रांसीसी सेनाका खर्च चलानेके लिए, जो निजामके शत्रुओंसे उसकी रक्षा करनेके लिए तैनात की गयी थी और जिसके आधारपर निजामके दरबारमें फ्रांसीसी प्रभुत्व स्थापित हो गया था, उत्तरी सरकारका राजस्व उसके सुपुर्द कर दे। तीसरा आंग्ल-फ्रांसीसी युद्ध (१७५६–६३ ई०) शुरू होनेपर १७५८ ई० में काउण्ट डि लाली (दे०) ने बुसीको निजामके दरबारसे वापस बुला लिया, जिससे निजामके दरबारमें फ्रांसीसी प्रभुत्व समाप्त हो गया। सर आयरकूटके नेतृत्वमें अंग्रेजी सेनाने फ्रांसीसियोंको १७६० ई० में विन्दवासकी लड़ाई (दे०) में हरा कर उत्तरी सरकारपर भी कब्जा कर लिया। इस लड़ाईमें बुसी बन्दी बना लिया गया। बादमें रिहा होकर वह फ्रांस वापस लौट गया।

१७८३ ई० में उसे अंग्रेजोंके विरुद्ध हैदरअलीकी सहायता करनेके लिए पुनः भारत भेजा गया। इस समय तक बुसी वृद्ध हो चला था और बीमार रहता था। उसके आनेके पहले ही हैदरअलीकी मृत्यु हो गयी। ऐसी परिस्थितिमें वह घटनाक्रमको प्रभावित नहीं कर सका और अन्तमें सेवानिवृत्त होकर फ्रांस लौट गया। निजाम सलावतजंगके परामर्शदाताके रूपमें उसे प्रचुर धन प्राप्त हुआ था। उसके आधारपर उसने अपना शेष जीवन सुखसे बिताया।

बहमनी राज्य और राजवंश—दक्षिणमें बहमनी राज्य और राजवंशका आरम्भ दिल्लीके सुल्तान मुहम्मद तुगलक (१३२५–५१ ई०) के एक अधिकारी हसन (उपनाम जफरशाह) ने १३४७ ई० में किया। तुगलकके अत्याचारों और उसकी सनकोंके कारण दक्षिणके मुसलमान अमीरोंने विद्रोह कर दिया। हसनने इस विद्रोहका फायदा उठाया और वहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया। हसन अपनेको फारसके वीर योद्धा बहमनका वंशज मानता था, इसीलिए उसका वंश बहमनी कहलाने लगा। तख्तपर बैठनेके बाद हसनने अलाउद्दीन बहमन शाहका खिताब धारण कर लिया और अपनी राजधानी कुलबर्ग अथवा गुलबर्गमें बनायी। उसने ११ वर्ष (१३४७-५८ ई०) शासन किया। उसकी मृत्युके समय बहमनी राज्य उत्तरमें पेनगंगासे दक्षिणमें कृष्णा नदीके किनारे तक और पश्चिममें गोवासे पूर्वमें भोंगिर तक फैल गया था।

बहमनी राजवंशमें हसनके अतिरिक्त १३ अन्य सुल्तान हुए थे। इनमें मुहम्मद प्रथम (१३५८–७३ ई०) मुजाहिद (१३७३–७७ ई०); दाउद (१३७८ ई०); मुहम्मद द्वितीय (१३७८–९७ ई०); ग्यासुद्दीन (१३९७ ई०); शम्सुद्दीन (१३९७ ई०); फिरोज (१३९७–१४२२ ई०) अहमद द्वितीय (१४२२–३५ ई०); अलाउद्दीन (१४३५–५७ ई०); हमायू (१४५७–६१ ई०); निजाम (१४६१–६३ ई०); मुहम्मद तृतीय (१४६३–८२) और महमूद (१४८२–१५१८ ई०) शामिल हैं।

बहमनी सल्तनतकी अपने पड़ोसी विजयनगरके हिन्दू राज्यसे लगातार अनबन चलती रही। विजयनगर राज्य उस समय तुंगभद्राके दक्षिण और कृष्णाके उत्तरी क्षेत्रमें फैला हुआ था और उसकी पश्चिमी सीमा बहमनी राज्यसे मिली हुई थी। विजयनगर राज्यके दो

मजबूत किले मुगदल और रायचूर बहमनी सीमाके निकट स्थित थे। इन किलोंपर बहमनी सल्तनत और विजयनगर राज्य दोनों दांत लगाये हुए थे। इन दोनों राज्योंमें धर्मका अन्तर भी था। बहमनी राज्य इस्लामी और विजयनगर राज्य हिन्दू था। बहमनी सल्तनतकी स्थापनाके बाद ही इन दोनों राज्योंमें लड़ाइयां शुरू हो गयीं और वे तबतक चलती रहीं, जबतक बहमनी सल्तनत कायम रही। बहमनी सुल्तानों द्वारा पड़ोसी हिन्दू राज्य-को नष्ट करनेके सभी प्रयास निष्फल सिद्ध हुए, यद्यपि इन युद्धोंमें अनेक बार बहमनी सुल्तानोंकी विजय हुई और रायचूरके दोआब पर विजयनगरके राजाओंके मुकाबलेमें बहमनी सुल्तानोंका अधिकार अधिक समय तक रहा।

बहमनी सुल्तानोंमें तख्तके लिए प्रायः रक्तपात होता रहा। चार सुल्तानोंको कत्ल कर दिया गया, दो अन्यको गद्दीसे जबरन उतार कर अंधा कर दिया गया। १४ सुल्तानोंमेंसे केवल पांच अपनी मौतसे मरे। नवें सुल्तान अहमदने राजधानी गुलबर्गसे हटाकर बीदर बनायी, जहाँ उसने अनेक आलीशान इमारतोंका निर्माण कराया।

बहमनी राज्यकी आबादीमें मुसलमान अल्पसंख्यक थे, इलिए सुल्तानोंने राज्यके बाहरके मुसलमानोंको वहाँ आकर बसनेके लिए प्रोत्साहित किया। परिणाम-स्वरूप बहुतसे विदेशी मुसलमान वहाँ जाकर बस गये जो अधिकतर शिया थे। उनमेंसे बहुतसे लोगोंको राज्यके महत्त्वपूर्ण पदोंपर नियुक्त किया गया। विदेशी मुसल-मानोंके बढते हुए प्रभावसे ईर्ष्यालु होकर दक्खिनी और अबीसीनियाई मुसलमान, जो ज्यादातर सुन्नी थे, उनसे शत्रुता रखने लगे। दसवें सुल्तान अलाउद्दीन द्वितीय (१४३५–५७ ई०) के शासनकालमें दक्खिनी और विदेशी मुसलमानोंके संघर्षने अत्यन्त उग्र रूप धारण कर लिया। १४८१ ई० में १३ वें सुल्तान मुहम्मद तृतीय-के राज्यकालमें मुहम्मद गवाँको फाँसी दे दी गयी जो ग्यारहवें सुल्तान हुमायूंके समयसे बहमनी सल्तनतका बड़ा वजीर था और उसने राज्यकी बड़ी सेवा की थी। मुह-म्मद गवाँकी मौतके बाद बहमनी सल्तनतका पतन शुरू हो गया। अगले और आखिरी सुल्तान महमूदके राज्य-कालमें बहमनी राज्यके पांच स्वतन्त्र राज्य बरार, बीदर, अहमदनगर, गोलकुंडा और बीजापुर बन गये, जिनके सूबेदारोंने अपनेको स्वतन्त्र सुल्तान घोषित कर दिया। इन पाँचों राज्योंने १७ वीं शताब्दी तक अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखी। तब इन सबको मुगल साम्राज्यमें मिला लिया गया।

बहमनी सल्तनतसे भारतको कोई खास फायदा नहीं पहुंचा। कुछ बहमनी सुल्तानोंने इस्लामी शिक्षाको प्रोत्साहन दिया और राज्यके पूर्वी भागमें सिंचाईका प्रबन्ध किया। लेकिन उनकी लड़ाइयों, नरसंहार और आगजनीसे प्रजाको बहुत नुकसान पहुंचा। इस सल्तनत-में साधारण प्रजाकी दशा बहुत दयनीय थी, जैसा कि रूसी व्यापारी एथानासियस निकितिनने लिखा है, जिसने बहमनी राज्यका चार वर्ष (१४७०–७४ ई०) तक भ्रमण किया। उसने लिखा है कि भूमिपर जन-संख्याका भार अत्यधिक है, जबकि अमीर लोग समृद्धि और ऐश्वर्यका जीवन विताते हैं। वे जहाँ कहीं जाते हैं, उनके लिए चांदीके पलंग पहलेसे ही रवाना कर दिये जाते हैं। उनके साथ बहुतसे घुड़सवार और सिपाही, मशालची और गवैये चलते हैं। बहमनी सुल्तानोंने गाविलगढ़ और नरनालमें मजबूत किले बनवाये और गुलबर्ग एवं बीदरमें कुछ मस्जिदें भी बनवायीं। बहमनी सल्तनतके इतिहाससे प्रकट होता है कि हिन्दू आबादीको सामूहिक रूपसे जबरन मुसलमान बनानेका सुल्तानोंका प्रयास किस प्रकार विफल सिद्ध हुआ। **(मीडोज टेलर—(मैन्यूअल आफ इण्डियन हिस्ट्री; किंग-हिस्ट्री आफ दि बहमनी किंगडम् और निकितिन—इण्डिया इन दि फिफ-टींथ सेंचुरी)**

बहराम ऐबा—उपनाम किशलू खाँ। वह सुल्तान मुहम्मद तुगलक (१३२५–५१ ई०) के शासनकालमें उच्च, सिन्ध और मुलतानका नाजिम था। १३२६ ई० में बहराम ऐबाने सुल्तानके विरुद्ध उस समय विद्रोह किया जब वह देवगिरिमें था। सुल्तानने वहाँसे मुल्तानकी ओर कूच किया और बहरामको पराजित करके बंदी बना लिया। सुल्तानने उसका सिर काट कर शहरके फाटकपर टंगवा दिया जिससे किसीको फिर विद्रोह करनेका साहस न हो।

बहराम खां—सुल्तान मुहम्मद तुगलकका दूध-भाई। सुल्तानने उसे गयासुद्दीन बहादुर शाहके साथ पूर्वी बंगालका सूबेदार बनाया। जब गयासुद्दीनने सुल्तानके विरुद्ध विद्रोह किया, बहराम खांने उसे पराजित कर मार डाला। इसके बाद बहराम पूर्वी बंगालका एकमात्र सूबेदार बन गया। १३३६ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी और उसके बाद ही पूर्वी बंगाल दिल्ली सल्तनतसे स्वतंत्र हो गया।

बहाई सम्प्रदाय—बहाउल्लाह (१८१७–९२)के द्वारा प्रव-र्तित। उसका जन्म फारस (ईरान)में हुआ था, परन्तु शाहके आदेशसे उसे देशसे निर्वासित कर दिया गया। इस सम्प्रदायके मुख्य सिद्धांत हैं: ईश्वर अज्ञेय है, वह केवल

अपने पैगम्बरों द्वारा अपनेको व्यक्त करता है; इलहाम किसी एक युगतक सीमित नहीं है, वह हर युगमें होता रहता है; हर हजार वर्षके बाद पैगम्बरोंका जन्म होता रहता है; वर्तमान युगके लिए ईश्वरीय आदेश है कि समस्त मानवजातिको एक मजहब तथा एक विश्व व्यवस्था के अंतर्गत संगठित कर दो। इस सम्प्रदायका सबसे पहला मुखिया उसका संस्थापक बहाउल्लाह था। उसके बाद यह पद उसके वंशजोंको उत्तराधिकारके रूपमें प्राप्त होता रहा। कट्टर मुसलमान बहाई सम्प्रदायको नास्तिकोंका सम्प्रदाय मानते हैं, फिर भी भारत तथा पाकिस्तान सहित ४० देशोंमें इस सम्प्रदायके अनुयायी मिलते हैं। इस संप्रदायकी ओरसे अंग्रेजीमें 'दि बहाई वर्ल्ड' नामका एक पत्र भी प्रकाशित होता है।

बहाउद्दीन गुरशास्प—सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक (१३२०–२५ ई०)का भांजा। जिस समय सुल्तान मुहम्मद तुगलक १३२५ ई०में गद्दीपर बैठा, बहाउद्दीन दक्षिणमें सागरका हाकिम था। उसने मुहम्मद तुगलकको दिल्लीका सुल्तान माननेसे इन्कार कर इसके विरुद्ध १३२६–२७ ई०में विद्रोह कर दिया। वह पराजित करके बंदी बना लिया गया और उसी रूपमें दिल्ली भिजवा दिया गया, जहाँ जीवित दशामें ही उसकी खाल खिंचवा ली गयी और उसके शवको दिल्लीमें घुमाया गया, ताकि राजद्रोह करनेवालोंको चेतावनी मिल जाय।

बहादुर पुरकी लड़ाई—फरवरी १६५८ ई०में दारा शिकोहके सबसे बड़े लड़के सुलेमान और बादशाह शाहजहाँके दूसरे लड़के शुजाके बीचमें हुई। शुजाने शाहजहाँकी बीमारीकी खबर मिलते ही अपनेको बंगालका स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। इस लड़ाईमें शहजादा शुजा पराजित हुआ और वह बंगाल वापस लौट गया।

बहादुर शाह—गुजरातका सुल्तान (१५२६–३७ ई०)। उसने मालवाके सुल्तानको पराजित कर उसके राज्यको १४३१ ई०में अपने राज्यमें मिला लिया। उसने मेवाड़-पर भी चढ़ाई और १५३४ ई०में चित्तौड़पर कब्जा कर लिया। लेकिन एक वर्ष बाद मुगल बादशाह हुमायूँने उसे पराजित कर दिया। बहादुर शाहने गोवा भागकर अपनेको बचाया। कुछ समय बाद हुमायूँ गुजरातसे लौट गया और उसके बाद बहादुर शाहने फिरसे अपने राज्यपर अधिकार जमा लिया। मुगलोंके आक्रमणके कारण उसने पुर्तगालियोंको बेसीन सौंप कर उनसे सन्धि कर ली। जब बहादुर शाहने अपने राज्यपर पूरी तरह फिरसे दखल कर लिया तब उसमें और पुर्तगालियोंमें उन्हें दी गयी रियायतोंको लेकर मतभेद पैदा हो गया, जिन्हें दूर करनेके लिए पुर्तगालियोंने बहादुर शाहको पुर्तगाली गवर्नर नूनो डा० कुन्हासे फरवरी १५३७ ई०में उसके जहाजपर जाकर मुलाकात करनेपर सहमत कर लिया। लेकिन पुर्तगालियोंने बहादुर शाहको धोखा देकर जहाजसे गिराकर डुबो दिया और उसके साथियोंको मार डाला।

बहादुर शाह—१६वीं शताब्दीके अन्तमें खानदेशका शासक। १६०० ई०में बादशाह अकबरने जिस समय असीर गढ़के किलेका घेरा डाला, उस समय बहादुर शाहने बड़ी योग्यतासे ६ महीने तक किलेकी रक्षा की, लेकिन बादमें बादशाह अकबर द्वारा व्यक्तिगत सुरक्षाका आश्वासन पाकर वह मुगल खेमेमें जाकर सुलहकी बातचीत करनेके लिए राजी हो गया। लेकिन अकबरने अपने वायदेको तोड़कर बहादुर शाहको नजरबन्द कर लिया और उसे किलेमें अपने आदमियोंको आत्म-समर्पण करनेका लिखित आदेश भेजनेके लिए बाध्य किया। अकबरने इस तरह छलसे किलेपर कब्जा कर लिया।

बहादुर शाह प्रथम—दिल्लीका सातवाँ मुगल बादशाह (१७०७–१२ ई०)। वह औरंगजेबका दूसरा लड़का था, जो १७०७ ई०में उसके उत्तराधिकारीके रूपमें गद्दीपर बैठा। औरंगजेबके मरनेके बाद उत्तराधिकारके युद्धमें उसके उस समय दो जीवित भाई—आजम और कामबख्श पराजित हुए और मारे गये। शाहजादेके रूपमें बहादुर प्रथम मुअज्जम कहलाता था। वह शाह आलमके नामसे भी प्रसिद्ध है। तख्तपर बैठनेके बाद उसने बहादुर शाह का खिताब धारण किया, लेकिन वह अपने पहले नाम शाह आलम अथवा आलम शाहके नामसे भी पुकारा जाता था। उसके पिताने अपने जीवन कालमें उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया था, कुछ वर्षोंतक तो उसे पिताकी कैदमें भी रहना पड़ा। कठोर दमनके कारण उसका व्यक्तित्व कुंठित हो चुका था और गद्दीपर बैठनेके समय संकटकी स्थितिमें मुगल साम्राज्यकी रक्षा करने अथवा उसे सुदृढ़ बनानेकी क्षमता उसमें नहीं थी। फिर भी उसने पांच वर्षके अपने अल्प-कालीन शासनमें मुगल साम्राज्यको फिरसे सुदृढ़ बनानेका प्रयास किया। उस समय मुगल साम्राज्यको मुख्य रूपसे तीन शत्रुओंसे खतरा था; यथा,—राजपूत, मराठा और सिख। उसने राजपूतोंको रियायतें देकर उनसे सुलह कर ली। शम्भूजीके पुत्र साहू-को रिहा कर मराठोंकी शत्रुताको मिटानेका प्रयास किया। साहूके महाराष्ट्र लौटनेके बाद मराठोंमें फूट पैदा हो गयी और गृह-युद्ध छिड़ जानेके कारण कुछ समयके लिए वे

दिल्लीके मुगल साम्राज्यको परेशान करनेकी स्थितिमें नहीं रहे। लेकिन बादशाहने सिखोंके विरुद्ध सख्तीसे काम लिया और उनको तथा उनके नेता वीर बन्दा वैरागीको पराजित करके उन्हें कुछ समयके लिए कुचल दिया। लेकिन इसके बाद ही १७१२ ई०में बहादुर शाह प्रथमकी मृत्यु हो गयी।

बहादुर शाह द्वितीय—दिल्लीका १९ वाँ और अंतिम मुगल बादशाह (१८३७—५८ ई०)। अपने पिता और पूर्ववर्ती बादशाह अकबर द्वितीयकी भाँति बहादुर शाह द्वितीय भी ईस्ट इंडिया कम्पनीसे पेंशन पाता रहा और अपनी स्थितिमें किसी तरहका सुधार नहीं कर पाया। १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोह शुरू होनेके समय बहादुर शाह ८२ वर्षका वृद्ध था, और स्वयं निर्णय लेनेकी क्षमता खो चुका था। विद्रोहियोंने उसको आजाद हिन्दुस्तानका बादशाह बनाया। इस कारण अंग्रेज उससे कुपित हो गये और उन्होंने उससे शत्रुवत् व्यवहार किया। सितम्बर १८५७ में अंग्रेजोंने दुबारा दिल्ली पर कब्जा कर लिया और बहादुर शाह द्वितीयको गिरफ्तार कर उसपर मुकदमा चलाया तथा उसे रंगून निर्वासित कर दिया, जहाँ ८७ वर्षकी अवस्थामें १८६२ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी। जिस दिन बहादुर शाह द्वितीय पकड़ा गया, उसी दिन उसके दो बेटों और पोतेको भी गिरफ्तार करके गोली मार दी गयी। इस प्रकार बादशाह अकबरके वंशका अंत हो गया।

बहार खां लोहानी—१६वीं शताब्दीके प्रथम चतुर्थांशमें बिहारका स्वतंत्र अफगान शासक। उसने फरीद खाँको १५२२ ई०में अपनी सेवामें नियुक्त किया, जो बादमें शेर शाहके नामसे प्रसिद्ध हुआ। बहार खाँने फरीद खाँ को 'शेर खाँ'का खिताब दिया था, क्योंकि उसने बिना किसी हथियारके शेरको मार डाला था। बहार खाँने शेरखाँको अपना नायब बनाया और अपने नाबालिग लड़के जलाल खाँका उस्ताद भी नियुक्त किया। इस प्रकार बहार खाँने शेर खाँके भावी उत्कर्षका पथ प्रशस्त कर दिया।

बांगला देश—पहले पूर्वी बंगाल और पूर्वी पाकिस्तानके नामोंसे विख्यात। इसमें ढाका, राजशाही तथा चटगाँव डिवीजनोंके अन्तर्गत १५ जिले हैं। पूर्वी बंगालको लार्ड कर्जनने सर्वप्रथम बंगालसे अलग करके पूर्वी बंगाल एवं आसामका नया प्रांत बनाया। बंगालकी जनताने इसका घोर विरोध किया। बंगालियोंके विचारमें उनकी विकासशील राष्ट्रीय भावनाको कुचलनेके लिए बंग-भंग किया गया था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके नेतृत्वमें बंग-भंग-विरोधी जबर्दस्त आंदोलन शुरू हुआ। जगह-जगह सभाएँ आयोजित की गयीं, प्रदर्शन किये गये, अंग्रेजी मालका बहिष्कार किया गया और स्वदेशी वस्तुओंके प्रयोगको प्रोत्साहन प्रदान किया गया। जब इन विरोध-प्रदर्शनोंका लार्ड कर्जनपर असर पड़ता न दिखाई दिया, तब बंगालमें आतंकवादी आन्दोलन शुरू हो गया। अंग्रेज सरकारने एक ओर आंदोलनकारियोंका कठोर दमन प्रारम्भ किया, दूसरी ओर उसने मुसलमानोंको हिन्दुओंके विरुद्ध भड़काना शुरू किया, क्योंकि पूर्वी बंगालमें मुसलमानोंका भारी बहुमत था। लार्ड कर्जनके ब्रिटेन वापस चले जानेके बाद १९१२ ई०में बंग-भंग रद्द कर दिया गया और पूर्वी बंगालको पश्चिमी बंगालमें पुनः मिला कर पूर्ववत् एक प्रान्त बना दिया गया।

१९४७ ई०में भारतको स्वाधीनता प्रदान किये जानेपर जब देशका बँटवारा हुआ, तब पूर्वी बंगालको पुनः पश्चिमी बंगालसे अलग करके पाकिस्तानका अंग बना दिया गया, और उसे 'पूर्वी पाकिस्तान' कहा जाने लगा। दिसम्बर १९७१ ई०में 'पूर्वी पाकिस्तान' पाकिस्तानसे अलग होकर सार्वभौम प्रभुता-सम्पन्न स्वतंत्र देश बन गया और उसका नाम बदलकर 'बांगला देश' रख दिया गया।

बांसवाड़ा—राजपूताना और गुजरातकी सीमापर स्थित एक राजपूत रियासत, जहाँ उदयपुरके राणाओंकी एक शाखाका राज्य था। इसने ईस्ट इंडिया कम्पनीकी अधीनता स्वीकार कर ली और १८१८ ई०में आश्रित संधि द्वारा ब्रिटिश संरक्षण प्राप्त कर लिया।

बाघ—मध्य भारतमें ग्वालियरके निकट स्थित यह स्थान शैलगृहोंमें उत्कीर्ण भित्ति-चित्रोंके लिए प्रसिद्ध है। ये भित्ति-चित्र अजंता शैलीके हैं, परन्तु स्थानकी दुर्गमताके कारण उतने प्रसिद्ध नहीं हैं।

बाजबहादुर—मालवाका शासक, जो अकबरके सेनापति अदहम खाँ और पीरमुहम्मदसे १५६१—६२ ई०में पराजित हो गया। बाजबहादुरने शीघ्र ही मालवा पुनः प्राप्त कर लिया और मुगलोंके साथ कुछ समय तक लड़ाई जारी रखी, किन्तु अन्तमें पुनः पराजित हुआ और मालवासे भगा दिया गया। उसे कुछ समयके लिए मेवाड़के राणाके यहाँ शरण मिली। किन्तु फरवरी १५६८ ई०में चितौड़के पतनके पश्चात् उसने बादशाह अकबरको आत्म-समर्पण कर दिया। रूपमतीके साथ जुड़े हुए उसके प्रेम सम्बन्धने कहानीका रूप ले लिया

है। वह सुरुचि-पूर्ण व्यक्ति था और उसने मालवाकी राजधानी मांडूमें कुछ अच्छी इमारतें बनवायीं। बादमें बादशाह अकबरकी सेवामें गायकके रूपमें उसने बड़ी ख्याति अर्जित की।

बाजीराव प्रथम—मराठा राज्यका दूसरा पेशवा (१७२०—४० ई०), जिसकी नियुक्ति उसके पिता बालाजी विश्वनाथके उत्तराधिकारीके रूपमें राजा साहू (दे०) ने की थी। साहूने राजकाजसे अपनेको करीब-करीब अलग कर लिया था और मराठा राज्यके प्रशासनका पूरा काम पेशवा बाजीराव प्रथम देखता था। वह महान् राजनयक और योग्य सेनापति था। उसने अपनी दूर-दृष्टिसे देख लिया था कि मुगल साम्राज्य छिन्न भिन्न होने जा रहा है और उसने महाराष्ट्र क्षेत्रसे बाहरके हिन्दू राजाओंकी सहायतासे मुगल साम्राज्यके स्थानपर हिन्दू-पद-पादशाही स्थापित करनेकी योजना बनायी थी। इसी उद्देश्यसे उसने मराठा सेनाओंको उत्तर भारत भेजा जिससे पतनोन्मुख मुगल साम्राज्यकी जड़पर अंतिम प्रहार किया जा सके। उसने १७२३ ई०में मालवापर आक्रमण किया और १७२४ ई०में स्थानीय हिन्दुओंकी सहायतासे गुजरात जीत लिया।

लेकिन मराठा सरदारोंका एक वर्ग उत्तर भारतमें मराठा शक्तिके प्रसारकी इस नीतिका विरोधी था, जिसका नेतृत्व सेनापति त्र्यंम्बक राव दाभाड़े कर रहा था। बाजीरावने घबोईके युद्धमें दाभाडेको पराजित कर उसका वध कर दिया। १७३१ ई०में निजामके साथ की गयी एक सन्धिके द्वारा पेशवाको उत्तर भारतमें अपनी शक्तिका प्रसार करनेकी छूट मिल गयी और दक्षिण भारतमें निजामको इसी प्रकारकी छूट मिल गयी। बाजीराव प्रथमका अब महाराष्ट्रमें कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रह गया था और राजा साहूका उसके ऊपर केवल नाम मात्रका नियंत्रण था। इन परिस्थितियोमें बाजीराव प्रथमने पेशवा पदको पैतृक उत्तराधिकारीके रूपमें अपने परिवारके लिए सुरक्षित कर दिया और उत्तर भारतमें मराठा शक्तिके प्रसार की अपनी योजनाओंको फिरसे आगे बढ़ाया। उसने आमेरके राजपूत राजा और बुन्देलोंसे गठबंधन कर लिया। १७३७ ई०में उसकी विजयी सेनाएँ दिल्लीके पास पहुँच गयीं। मुगल बादशाह मुहम्मदशाह (१७१९—४८ ई०) ने घबड़ा कर हैदराबादके निजामको बुलाया जिसने मराठोंसे की गयी १७३१ ई० वाली संधिका उल्लंघन कर बाजीराव प्रथमका बढ़ाव रोकनेके लिए अपनी सेना उत्तर भारतमें भेज दी। पेशवाने निजामकी सेनाको भोपालके निकट युद्धमें पराजित कर दिया और उसे फिर सन्धि करनेको मजबूर किया, जिसके द्वारा मराठोंको केवल मालवाका क्षेत्र ही नहीं, वरन नर्मदा और चम्बलके बीचका क्षेत्र भी मिल गया। इस सन्धिकी पुष्टि मुगल बादशाहने की और हिन्दुस्तानके बड़े हिस्से पर मराठोंक आधिपत्य हो गया।

१७३९ ई०में बाजीराव प्रथमने पुर्तगालियोंसे साष्टी और बसईका इलाका छीन लिया। लेकिन बाजीराव प्रथमको अनेक मराठा सरदारोंके विरोधका सामना करना पड़ रहा था; विशेषरूपसे उन सरदारोंका जो क्षत्रिय थे और ब्राह्मण पेशवाकी शक्ति बढ़नेसे ईर्ष्या करते थे। बाजीराव प्रथमने पुश्तैनी मराठा सरदारोंकी शक्ति कम करनेके लिए अपने समर्थकोंमेंसे नये सरदार नियुक्त किये और उन्हें मराठों द्वारा विजित नये क्षेत्रोंका शासक नियुक्त किया। इस प्रकार मराठा मंडलकी स्थापना हुई जिसमें ग्वालियरके शिन्दे, बड़ोदाके गायकवाड़, इन्दौरके होल्कर और नागपुरके भोंसला शासक शामिल थे। इन सबके अधिकारमें काफी विस्तृत क्षेत्र था। इन लोगोंने बाजीराव प्रथमका समर्थन कर मराठा शक्तिके प्रसारमें सहयोग दिया। लेकिन इनके द्वारा जिस सामन्तवादी व्यवस्थाका बीजारोपण हुआ, उसके फलस्वरूप अन्तमें मराठोंकी शक्ति छिन्न-भिन्न हो गयी। यदि बाजीराव प्रथम कुछ समय और जीवित रहता तो सम्भव था कि वह इसे रोकनेके लिए कुछ उपाय करता। लेकिन १८४० ई०में उसकी ४२ वर्षकी आयुमें मृत्यु हो गयी, जिससे हिन्दू-पद-पादशाहीकी स्थापनाके लक्ष्यको गहरी क्षति पहुँची। (**डफ ग्रांट—हिस्ट्री आफ मराठाज; एच० एन० सिन्हा—राइज आफ दि पेशवाज**)

बाजीराव द्वितीय—आठवाँ और अन्तिम पेशवा (१७९६—१८१८)। वह राघोबाका पुत्र था, उसने अंग्रेजोंकी सहायतासे पेशवाका पद प्राप्त किया और उसके लिए कई मराठा क्षेत्र अंग्रजोंको दे दिये। बाजीराव द्वितीय स्वार्थी और अयोग्य शासक था तथा महत्त्वाकांक्षी होनेके कारण अपने प्रधान मंत्री नाना फडनवीससे ईर्ष्या करता था। नाना फडनवीसकी मृत्यु १८०० ई०में हो गयी और बाजीराव सत्ता खुद सँभालनेके लिए आतुर हो उठा। लेकिन वह सैनिक गुणोसे रहित और व्यक्तिगत रूपसे कायर था और समझता था कि केवल छल-कपटसे अपने लक्ष्यको प्राप्त किया जा सकता है। नाना फड़नवीसकी मृत्युके बाद उसके रिक्त पदके लिए दौलतराव शिन्दे और जसवन्तराव होल्करमें प्रतिद्वन्द्विता शुरू हो

गयी। बाजीराव द्वितीय छल कपटसे इन दोनोंको अपने नियंत्रणमें रखना चाहता था, जिससे मामला और उलझ गया। शिन्दे और होल्करने पेशवाको अपने नियंत्रणमें लेनेके लिए पूनाके फाटकोंके बाहर युद्ध शुरू कर दिया। बाजीराव द्वितीयने शिन्देका साथ दिया लेकिन होल्कर-की सेनाने उन दोनोंकी संयुक्त सेनाओंको पराजित कर दिया।

भयभीत पेशवा बाजीराव द्वितीयने १८०१ ई०में बसई भागकर अंग्रेजोंकी शरण ली और वहीं एक अंग्रेजी जहाजपर बसईकी सन्धि (३१ दिसम्बर, १८०२) पर हस्ताक्षर कर दिये। इसके द्वारा उसने ईस्ट इंडिया कम्पनी-का आश्रित होना स्वीकार कर लिया। अंग्रेजोंने बाजी-राव द्वितीयको राजधानी पूनामें पुनः सत्तासीन करनेका वचन दिया और पेशवाकी रक्षाके लिए उसने राज्यमें पर्याप्त सेना रखनेकी जिम्मेदारी ली। इसके बदलेमें पेशवाने कम्पनीको इतना मराठी इलाका देना स्वीकार कर लिया जिससे कम्पनीकी सेनाका खर्च निकल आये। उसने यह भी वायदा किया कि वह अपने यहाँ अंग्रेजोंसे शत्रुता रखनेवाले अन्य यूरोपीय देशके लोगोंको नौकरी पर नहीं रखेगा। इस प्रकार बाजीराव द्वितीयने अपनी रक्षाके लिए अंग्रेजोंके हाथ अपनी स्वतंत्रता बेच दी। मराठा सरदारोंने बसईकी सन्धिके प्रति रोष प्रकट किया, क्योंकि उन्हें लगा कि पेशवाने अपनी कायरताके कारण उन सभीकी स्वतंत्रता बेच दी है। अतः उन लोगोंने इस आपत्तिजनक सन्धिको खत्म करानेके लिए युद्धकी तैयारी-की। परिणाम-स्वरूप द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध (दे०) (१८०३–६ ई०) हुआ, जिसमें अंग्रेजोंकी जीत हुई और मराठा क्षेत्रोंपर उनकी प्रभु-सत्ता स्थापित हो गयी।

पेशवा बाजीराव द्वितीयने शीघ्र सिद्ध कर दिया कि वह केवल कायर ही नहीं, वरन् विश्वासघाती भी है। वह अंग्रेजोंके साथ हुई सन्धिके प्रति भी सच्चा साबित नहीं हुआ। संधिके द्वारा लगाये गये प्रतिबन्ध उसे रुचि-कर नहीं थे। उसने मराठा सरदारोंमें व्याप्त रोष और असन्तोषसे फायदा उठाकर अंग्रजोंके विरुद्ध दुबारा मराठोंको संगठित किया। नवम्बर १८१७में बाजीराव द्वितीयके नेतृत्वमें संगठित मराठा सेनाने पूनाकी अंग्रेजी रेजीडेन्सीको लूट कर जला दिया और खड़की स्थित अंग्रेजी सेनापर हमला कर दिया, लेकिन वह पराजित हो गया। तदनन्तर वह दो और लड़ाइयों—जनवरी १८१८ में कोरे गाँव और एक महीने बाद आष्टीकी लड़ाई—में पराजित हुआ। उसने भागनेकी कोशिश की, लेकिन ३ जून १८१८ ई०को उसे अंग्रेजोंके सामने आत्म-समर्पण करना पड़ा। अंग्रेजोंने इसबार पेशवाका पद ही समाप्त कर दिया और बाजीराव द्वितीयको अपदस्थ करके बंदीके रूपमें कानपुरके निकट बिठूर भेज दिया, जहाँ १८५३ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी। मराठोंकी स्वतंत्रता नष्ट करनेके लिए वह सबसे अधिक जिम्मेदार था।

बाण—थानेश्वर और कन्नौजके पुष्यभूति-वंशज राजा हर्ष-वर्धन (६०६–४७ ई०)का दरबारी कवि। उसकी रचना 'हर्ष-चरित'में जो लगभग ६२० ई०में लिखी गयी, हर्षके शासन-कालके आरंभिक वर्षोंका विवरण मिलता है। उसकी दूसरी रचना 'कादम्बरी' संस्कृत गद्य साहित्य-का प्रसिद्ध गौरवपूर्ण ग्रंथ है।

बादरायण—ब्राह्मण ग्रन्थोंके बाद सूत्र-कालके प्रसिद्ध मनीषी और लेखक। उन्हींके 'ब्रह्मसूत्र'के आधारपर शंकराचार्यने अद्वैतवादी (एकेश्वरवाद) वेदान्त दर्शनकी स्थापना की।

बादल—मेवाड़का वीर राजपूत योद्धा, जिसका नाम दूसरे वीर योद्धा गोराके साथ जुड़ गया है। बादल और गोरा-ने थोड़ेसे राजपूत सैनिकोंके साथ सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीकी बहुत बड़ी सेनाका बहादुरीसे मुकाबला किया, जिसने चित्तौड़पर आक्रमण किया था। अन्तमें बादलने युद्ध क्षेत्रमें वीरगति पायी और सुल्तानकी सेना चित्तौड़ पर चढ़ गयी। चित्तौड़ किलेमें राजपूत महिलाएँ रानी पद्मनीके साथ जल कर सती हो गयीं, मुसलमान सैनिक उनका स्पर्श न कर सके। पद्मिनीक सुन्दरतासे आकृष्ट होकर ही अलाउद्दीनने चित्तौड़पर आक्रमण किया था।

बादशाहनामा—इस ऐतिहासिक ग्रंथमें औरंगजेबके राज्यका अधिकृत विवरण मिलता है, जिसे अब्दुल हमीदने लिखा था।

बादामी—बीजापुर जिलेके वातापी नामक प्राचीन नगरका आधुनिक नाम। यह चालुक्य राजाओंकी राजधानी था। यहाँ अनेक गुप्त मन्दिर तथा पाषाण मन्दिर हैं, जो अपनी वास्तुशैली तथा भव्य मूर्तियोंके लिए प्रसिद्ध हैं।

बापा—चित्तौड़के प्रसिद्ध गुहिलोत राजवंशका प्रवर्तक। इसी वंशमें राणा संग्राम सिंह तथा राणाप्रताप सिंह सहित मेवाड़के अनेक प्रसिद्ध शूर-वीर शासक हुए हैं।

बाबर—दिल्लीका प्रथम मुगल बादशाह (१५२६–३० ई०)। उसका पितृकुल तैमूर जो तैमूरलंगके नामसे प्रसिद्ध है, और मातृकुल चंगेज खाँसे सम्बन्धित था। बाबरका जन्म १४८३ ई० में हुआ। ११ वर्षकी उम्रमें ही वह फरगना में अपने पिताकी छोटी-सी जागीरका मालिक बना। फरगना अब चीनी तुर्किस्तानमें है। आरम्भमें बाबरको

अनेक कष्ट झेलने पड़े, लेकिन वह महत्त्वाकांक्षी और साहसी था। यद्यपि वह फरगनासे शीघ्र ही निकाल दिया गया, लेकिन १५०४ ई० में काबुलपर अधिकार जमानेमें सफल हो गया। उस समय उसकी उम्र केवल २१ वर्षकी थी। इसके बाद बाबरने समरकंद जीतनेका निष्फल प्रयास किया, जो उसके पूर्वज तैमूरकी राजधानी रह चुका था। इसके बाद उसने वहाँसे दक्षिण पूर्वकी ओर भारतमें अपना भाग्य आजमानेका निश्चय किया। उस समय भारतकी राजनीतिक स्थिति उसके मंसूबोंको पूरा करनेकी दृष्टिसे अनुकूल थी। दिल्लीकी सल्तनत विघटनकी ओर थी, दक्षिण भारत दिल्लीसे स्वतन्त्र हो चुका था। उत्तरमें कश्मीर, मालवा, गुजरात और बंगाल व्यावहारिक रूपसे विभिन्न अफगान सुल्तानोंके अधीन स्वतंत्र राज्य बन गये थे। राजपूतानेके क्षत्रिय शासक भी स्वतन्त्र हो गये थे और मेवाड़ का राणा संग्राम सिंह उत्तर भारतमें फिरसे हिन्दू राज्य स्थापित करनेका स्वप्न देख रहा था। पंजाब दौलत खाँ नामके विद्रोही अमीरके आधिपत्यमें था और इब्राहीम लोदी (१५१५–२६ ई०) के तख्तके लिए स्वयं उसका चाचा आलम खाँ दावेदार था। इस प्रकार बाबरके आक्रमणके समय भारतमें कोई शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता नहीं रह गयी थी। उस समय अनेक छोटे-छोटे राज्य वर्तमान थे जो आपसमें लड़ते रहते थे और उनकी इस आंतरिक फूटसे बाबरको बहुत मदद मिली।

दौलत खाँ और आलम खाँने तो इस उम्मीदमें बाबरको भारतपर आक्रमण करनेका न्यौता दिया कि वह तैमूरकी भाँति दिल्लीकी सल्तनतको धाराशायी कर वापस चला जायगा और दिल्लीके तख्तपर इनमेंसे कोई अपना अधिकार जमा लेगा। इस पृष्ठभूमिमें बाबर १५२४ ई० में पंजाबमें दाखिल हुआ और लाहौरपर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने भारतमें रुकनेका इरादा जाहिर किया। इससे दौलत खाँ और आलम खाँकी आशाओंपर पानी फिर गया और उन्होंने उसका साथ छोड़ दिया। इस प्रकार अकेला पड़ जानेपर बाबरको काबुल लौटना पड़ा, लेकिन अगले वर्ष वह बहुत बड़ी सेना लेकर फिर भारत आ धमका। उसने दौलत खाँका दमन किया और २१ अप्रैल १५२६ ई० को पानीपतकी पहली लड़ाईमें सुल्तान इब्राहीम लोदीको परास्त कर उसे मार डाला। इस विजयके बाद बाबर दिल्ली और आगराका शासक बन गया। उसके अधिकारको भारतके विभिन्न भागोंके अफगान सरदार अथवा मेवाड़के राणा-संग्राम सिंह माननेको तैयार नहीं थे। लेकिन राजपूतों और अफगानोंने एकसाथ इसका प्रतिरोध नहीं किया और बाबरको उनसे अलग-अलग निपटनेका मौका मिल गया।

बाबरने राणाको १६ मार्च १५२७ ई० को खानवाके युद्धमें परास्त किया। इसके बाद उसने यमुना नदी पार कर चन्देरीके किलेको सर कर लिया। इस प्रकार उसने राजपूतोंके प्रतिरोधको प्रभावशाली ढंगसे कुचल दिया। दो वर्ष बाद बाबरने बंगाल और बिहारके अफगान सरदारोंको (६ मई १५२९ ई० को) घाघराके युद्धमें पराजित कर दिया। यह लड़ाई पटनाके निकट घाघरा और गंगाके संगमके पास हुई थी। इन तीन लड़ाइयोंको जीतनेके बाद बाबर अफगानिस्तानसे बंगालकी सीमा तक और हिमालयसे ग्वालियर तकके क्षेत्रका शासक हो गया। इस प्रकार बाबरने भारतमें मुगल साम्राज्यकी स्थापना की। लेकिन शीघ्र ही २६ दिसम्बर १५३० ई० को बाबरकी मृत्यु हो गयी और उसे इतना समय नहीं मिला कि वह अपने साम्राज्यकी शासन-व्यवस्थाको सुधार कर उसे मजबूत बना सकता, जैसा कि बादमें उसके पौत्र अकबर (१५५६–१६०५ ई०) ने किया।

बाबर केवल कुशल योद्धा ही नहीं था जिसने दिल्ली पर अधिकार कर अपना साम्राज्य स्थापित किया, वरन् वह साहित्य-प्रेमी भी था, जैसा कि उसके संस्मरणोंसे सिद्ध होता है जो उसने तुर्की भाषामें लिखे और जिनका बादमें अकबरके आदेशसे फारसीमें अनुवाद कराया गया। (लेन और मूल कृत 'बाबर')

बाम्बे-बर्मा ट्रेडिंग कार्पोरेशन—एक अंग्रेजी व्यापारी कम्पनी, जो उत्तरी आसाममें लट्ठोंका रोजगार करती थी। १८८४ ई० में बर्माकी सरकारने, जो उस समय राजा थिबा द्वारा शासित थी, कम्पनीके ऊपर विभिन्न अभियोगोंमें २,३०,००० पौंडका जुर्माना कर दिया। बर्मा और भारतकी ब्रिटिश सरकारके सम्बन्ध पहलेसे ही तनावपूर्ण थे। भारत सरकारकी इस माँगको कि इस मामलेको वाइसरायकी मध्यस्थताके लिए सौंप दिया जाना चाहिए, बर्मा सरकार द्वारा ठुकरा देना तृतीय बर्मी युद्ध (१८८५–८६ ई०) का प्रत्यक्ष कारण बन गया जिसके फलस्वरूप उत्तरी बर्मा अंग्रेजोंके कब्जेमें आ गया था।

बायजीद—बंगालके शासक सुलेमान करनानी (१५६९–७२ ई०) का पुत्र जो अपने पिताका उत्तराधिकारी बना। किन्तु शीघ्र ही बंगालपर मुगल बादशाह अकबर-

का कब्जा हो गया और वह उड़ीसा भाग गया, जहाँ उसकी मृत्यु हो गयी।

बायजीद शाह–बंगाल (१४१२–१४ ई०) का नाममात्रका शासक, जिसे कदाचित् राजा गणेशने अपदस्थ कर दिया था।

बारकर, सर राबर्ट–वारेन हेस्टिंग्सके शासनकालमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें था और बादमें तरक्की कर प्रधान सेनापति बन गया। उसकी उपस्थितिमें १७ जून १७७२ ई०को अवधके नवाब शुजाउद्दौला और रुहेलोंके नेता हफीज रहमत खांके बीच सन्धिपर हस्ताक्षर हुए थे। इस सन्धिमें यह उल्लिखित था कि यदि मराठे रुहेलखंड पर आक्रमण करते हैं तो अवधका नवाब मराठोंको निष्कासित करनेमें रुहेलोंकी सहायता करेगा और बदलेमें रुहेले उसे चालीस लाख रुपया देंगे। राबर्ट बारकर संधिपर हस्ताक्षर होनेका केवल साक्षी था, उसने कम्पनी अथवा वारेन हेस्टिंग्सकी तरफसे संधिके क्रियान्वयनके सम्बन्धमें कोई आश्वासन नहीं दिया था। बादमें संधिका उल्लंघन होनेपर अंग्रेजोंको उसे लागू करनेके लिए रुहेलखंडमें अपनी सेना भेजनी पड़ी।

बारटोली, एफ०–एक (जेशुयिट) पादरी और लेखक, जो अकबर बादशाह (१५५६–१६०५ ई०)के शासनकालमें भारत आया और उसने यहाँ जो कुछ देखा, उसका वृतान्त लिख छोड़ा। दीन-इलाही धर्मके सम्बन्धमें जिसका प्रवर्तन अकबरने किया था, उसके विचार बड़े ही रोचक हैं। उसके अनुसार इस नये धर्ममें मुहम्मद साहबकी कुरान ब्राह्मणोंके धर्म ग्रंथों और कुछ हदतक बाइबिलकी उन बातोंको ग्रहण किया गया था, जिनसे बादशाहके धार्मिक एकीकरण संबंधी उद्देश्योंकी पूर्ति होती थी।

बारथेमा, एल० डि०–एक विदेशी यात्री जो १५०३ और १५०८ ई०के बीच भारत आया तथा गुजरातसे बंगाल तक भ्रमण करता रहा। उसने बंगालमें निर्मित वस्तुओंकी उत्कृष्टताकी बहुत प्रशंसा की है। उसके विचारमें बंगाल कपास, चीनी, अनाज तथा हर प्रकारके गोश्तके लिए संसारका सबसे सम्पन्न देश था।

बारनेट, कमाडोर कुर्टिस–१७४० ई०में आस्ट्रियाई उत्तराधिकारका युद्ध छिड़नेके समय ईस्ट इंडिया कम्पनीके जहाजी बेडेका कमांडर। उसने हिन्द महासागर स्थित फ्रांसीसी जहाजों पर कब्जा कर लिया। लेकिन लाबोरदोनेके नेतृत्वमें फ्रांसीसी बेड़ेके मद्रास पहुँचने पर बारनेटने उसका मुकाबला नहीं किया और वह हुगलीकी तरफ रवाना हो गया। बारनेटकी इस निष्क्रियताके फलस्वरूप फ्रांसीसियोंको मद्रास पर घेरा डालकर कब्जा करनेका मौका मिल गया।

बारबक शाह–बंगालके स्वतंत्र सुलतान नसीरउद्दीन महमूदका पुत्र (१४४२–६०)। उसका मूल नाम रुकुनुद्दीन था, जिसने बंगाल पर १४६० से ७४ ई० तक १४ वर्ष शासन किया। उसकी राजसत्ताके आधार-स्तम्भ हब्शी (अबसीनियाई) गुलाम थे, जिनमेंसे कुछको उसने ऊँचे ओहदों पर नियुक्त कर रखा था। वह बुद्धिमान् शासक था और प्रशासनका संचालन शरीयत (इस्लामी कानून)के अनुसार करता था।

बारबक शाह–मूल रूपसे बंगालके नवाब जलालउद्दीन फतहशाह (१४८१–८६)का एक हब्शी (अबीसीनियाई) गुलाम। उसने जलालउद्दीनके विरुद्ध बगावत की और असन्तुष्ट अबीसीनियाई गुलामोंका सरगना बनकर अपने मालिकको मार डाला और स्वयं १४८६ ई०में बारबक शाह और सुल्तान शाहजादाके नामसे गद्दीपर बैठा। लेकिन इन्दिल खाँ नामक दूसरे अबीसीनियाई गुलामने शीघ्र ही उसकी हत्या कर गद्दीपर खुद कब्जा कर लिया।

बारबक शाह–सुल्तान बहलोल लोदी (दे०)का बड़ा पुत्र। १४८६ ई०में सुल्तानने उसे जौनपुरमें राज प्रतिनिधि नियुक्त किया। १४८९ ई०में पिताकी मृत्यु हो जानेपर छोटे भाई सिकन्दर लोदीने उसकी उपेक्षा कर दिल्लीके तख्तपर अधिकार कर लिया। सिकन्दर लोदीने तीन वर्ष बाद उसे जौनपुरसे भी निकाल दिया जहाँ वह स्वतन्त्र होकर शासन करनेका प्रयास कर रहा था।

बारवेल रिचर्ड–बंगालमें १७५८ ई०से ईस्ट इंडिया कंपनीकी सेवामें नियुक्त। १७७३ ई०में रेग्युलेटिंग ऐक्टके अनुसार वह गवर्नर-जनरलकी कौंसिलका सदस्य नियुक्त हुआ। वह कौंसिलके अन्य सदस्योंके विरुद्ध वारेन हेस्टिंग्सका समर्थक था। हेस्टिंग्स जबतक गवर्नर-जनरल रहा, वह बराबर उसके प्रशासनका समर्थक बना रहा।

बार्लो, सर जार्ज–ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवाके लिए भारत आया। लार्ड वेलेजली (१७९५–१८०५ ई०)के प्रशासनकालमें पदोन्नति कर वह कौंसिलका सदस्य बन गया। अक्तूबर १८०५ ई०में लार्ड कार्नवालिसकी मृत्युके समय उसे कौंसिलका वरिष्ठ सदस्य होनेके नाते कार्यकारी गवर्नर-जनरल नियुक्त कर दिया गया। उस पदपर वह १८०७ ई० तक रहा। वह अपने पूर्वाधिकारी लार्ड कार्नवालिस द्वारा अपनायी गयी अहस्तक्षेपकी नीतिका

अनुगामी बना रहा। इसके परिणामस्वरूप उसने राजपूत राजाओंको मराठोंकी दयापर छोड़ दिया, जिन्होंने राजपूतानापर आक्रमण कर मनमानी लूट-खसोट की। इससे कम्पनी सरकारकी प्रतिष्ठा बहुत गिर गयी। उसके प्रशासन-कालमें बेल्लोरमें सिपाहियोंने विद्रोह कर दिया जिसे सख्तीके साथ दबा दिया गया। उसकी अहस्तक्षेपकी नीतिसे खर्चमें कमी हुई और वार्षिक बचत होने लगी। इससे कम्पनीके डाइरेक्टर तो खुश हुए किन्तु उसकी दुर्बल नीतियोंसे भारत तथा इंग्लैंडके अंग्रेज इतने नाराज हुए कि गवर्नर-जनरलके पदपर उसकी नियुक्तिकी पुष्टि नहीं की गयी और लार्ड मिण्टो प्रथमको उसके स्थान पर भेज दिया गया।

बालपुत्रदेव–सुवर्णद्वीपके शैलेन्द्र वंशका एक राजा, जिसने नालन्दामें एक बिहार बनवाया और मगध तथा बंगालके राजा देवपाल (८३९–७८ ई०)के पास राजदूत भेज कर प्रार्थना की कि नालन्दा स्थित बिहारके खर्चके लिए पाँच गाँव प्रदान कर दिये जायँ।

बाल श्री रानी–सातवाहन नरेश गौतमीपुत्र (१०२ ई०) की माता। रानी बालश्रीने नासिकमें एक शिलालेख उत्कीर्ण कराया था, जिसपर उसके आत्मज गौतमीपुत्रकी विजयोंका उल्लेख है।

बालाजी बाजीराव–तृतीय पेशवा (१७४०–६१ ई०)। अपने पिता बाजीराव प्रथमके उत्तराधिकारीके रूपमें १७४० ई०में पेशवा बना। उसके पदारूढ़ होनेके समय मुगल साम्राज्यके स्थानपर हिन्दू राज्यकी स्थापनाके लिए स्थिति बहुत अनुकूल थी। भारतपर बाहरी आक्रमण हो रहे थे और १७३९ ई०में नादिरशाह द्वारा दिल्ली निर्दयतापूर्वक उजाड़ी जा चुकी थी। मुगल साम्राज्यकी साख इतनी ज्यादा इससे पहले कभी नहीं गिरी थी। उपरांत अहमदशाह अब्दालीके बारबारके हमलोंसे वह और भी कमजोर हो गया। अहमदशाह अब्दालीने पंजाबपर कब्जा कर लिया, दिल्लीको लूटा और अपने प्रतिनिधिके रूपमें नाजीबुद्दौलाको रख दिया, जो मुगल बादशाहके ऊपर व्यावहारिक रूपमें हुकूमत करने लगा। इस प्रकार यह प्रकट था कि भारतके हिन्दुओंमें यदि एकता स्थापित हो सके तो वे मुगल-साम्राज्यको समाप्त करनेमें समर्थ हो सकते हैं। इसपर भी पेशवा बालाजी बाजीराव अवस से लाभ नहीं उठा सका। वह मराठा शक्तिकी प्रधानताके विचारसे इतना अभिभूत था कि मुगल साम्राज्यके स्थान पर हिन्दू पदपादशाही स्थापित करनेकी अपने पिताकी योजना त्याग कर उसके स्थान पर मराठा साम्राज्य स्थापित करनेका स्वप्न देखने लगा। इस प्रकार मराठा साम्राज्यवाद हिन्दू राष्ट्रवादका पर्याय नहीं रह गया। बालाजी बाजीरावने भारतके अन्दरूनी और बाहरी मुसलमानोंके विरुद्ध समस्त हिन्दू साधनोंको संगठित करनेकी बात कभी सोची ही नहीं। उसकी संकुचित योजनाके अनुरूप मराठा साम्राज्यवादकी स्थापनाके लिए मराठोंकी संख्या चूँकि बहुत कम थी, इसलिए उसे गैर-मराठा भाड़ेके सैनिकोंकी भर्ती कर अपनी सेनाको शक्तिशाली बनानेकी नीति अपनानी पड़ी। फलतः उसकी सेना अपनी संरचनामें 'राष्ट्रीय' नहीं रह गयी और लूट-खसोटके अलावा वह किसी उच्चतर प्रेरणासे प्रेरित नहीं हो सकी।

बालाजी बाजीरावने हलके हथियारोंसे सुसज्जित फुर्तीली पैदल सेनाका प्रयोग करनेकी पुरानी मराठा रणनीतिमें भी परिवर्तन कर दिया। वह पहलेकी अपेक्षा अधिक वजनदार हथियारोंसे लैस घुड़सवारों और भारी तोपखानेको अधिक महत्त्व देने लगा। पेशवा स्वयं अपने सरदारोंको पड़ोसके राजपूत राजाओंके इलाकोंमें लूट-खसोट करनेके लिए प्रोत्साहित करता रहता था, इस प्रकार वह अपने पुराने मित्रोंकी सहायतासे वंचित हो गया, जो उसके पिता बाजीराव प्रथमके लिए बड़े उपयोगी सिद्ध हुए थे। उसने एक ही साथ दो मोर्चोंपर–दक्षिणमें निजामके विरुद्ध और उत्तरमें अहमदशाह अब्दालीके विरुद्ध लड़नेकी भी गलती की। आरम्भमें तो उसे कुछ सफलता मिली, उसने निजामको १७५० ई० में उदगिरकी लड़ाईमें हरा दिया और बीजापुरका पूरा प्रदेश तथा औरंगाबाद और बीदरके बड़े भागोंको निजामसे छीन लिया। मराठा शक्तिका सुदूर दक्षिणमें भी प्रसार हुआ। उन्होंने मैसूरके हिन्दू राजाको हरा कर बेदनूरपर आक्रमण कर दिया। किन्तु उनके बढ़ावको मैसूर राज्यके मुसलमान सेनापति हैदरअलीने रोक दिया, जिसने बादमें वहाँके हिन्दू राजाको भी अपदस्थ कर दिया।

उत्तरमें बालाजी बाजीरावको पहले तो अच्छी सफलता मिली, उसकी सेनाने राजपूतोंकी रियासतोंको मनमाने ढंगसे लूटा, दोआबको रौंद कर उसपर कब्जा कर लिया, मुगल बादशाहसे गठबंधन करके दिल्लीपर दबदबा जमा लिया, अब्दालीके नायब नाजीबुद्दौला को खदेड़ दिया और पंजाबसे अब्दालीके पुत्र तैमूरको निष्कासित कर दिया। इस प्रकार मराठोंका दबदबा अटक तक फैल गया। किन्तु मराठोंकी यह सफलता अल्पकालिक

सिद्ध हुई। अब्दालीने १७५९ ई० में पुनः भारतपर आक्रमण किया और मराठोंको जनवरी १७६० ई० में बरारीघाटकी लड़ाईमें हराया और पंजाबको पुनः प्राप्त कर दिल्लीकी तरफ बढ़ा।

इस बीच मराठोंकी लूटमारसे न केवल रुहेले और अवधके नवाब वरन् राजपूत, जाट और सिख भी विरोधी बन गये थे। रुहेले और अवधके नवाब तो अब्दालीसे जा मिले, राजपूत, जाट और सिखोंने तटस्थ रहना पसन्द किया। फलतः अब्दालीकी फौजका दिल्लीकी तरफ बढ़ाव शाहआलम द्वितीयके लिए उतना ही बड़ा खतरा था जितना मराठोंके लिए; अतः दोनोंने आपसमें संधि कर ली। पेशवा बालाजी बाजीरावने सदाशिवराव भाऊके सेनापतित्वमें एक बड़ी सेना अब्दालीको रोकनेके लिए भेजी। पेशवाओंने अभी तक उत्तर भारतमें जितनी सेनाएँ भेजी थीं, उनमें यह सबसे विशाल थी। मराठोंने दिल्लीपर कब्जा तो कर लिया, पर वह उनके लिए मरुभूमि साबित हुई, क्योंकि वहाँ इतनी बड़ी सेनाके लिए रसद उपलब्ध नहीं थी। अतः वे पानीपतकी तरफ बढ़ गये। १४ जनवरी १७६१ ई० को अब्दालीके साथ पानीपतका तीसरा भाग्यनिर्णायक युद्ध हुआ। मराठोंकी बुरी तरहसे हार हुई। पेशवाका युवा पुत्र विश्वासराव, जो नाममात्रका सेनापति था, भाऊ, जो वास्तवमें सेनाकी कमान सम्भाल रहा था तथा अनेक मराठा सेनानी मैदानमें खेत रहे। उनकी घुड़सवार और पैदल सेनाके हजारों जवान मारे गये। वास्तवमें पानीपतका तीसरा युद्ध समूचे राष्ट्रके लिए भयंकर वज्रपात सिद्ध हुआ। पेशवा बालाजी बाजीराव की, जो भोगविलासके कारण पहले ही असाध्य रोगसे ग्रस्त हो गया था, २३ जून, १७६१ ई० को मृत्यु हो गयी। (जी० डफ–हिस्ट्री आफ मराठाज; जे० एन० सरकार–फाल आफ दि मुगल एम्पायर)

बालाजी विश्वनाथ–प्रथम पेशवा, (१७१३–२० ई०), जिसका जन्म एक निर्धन परिवारमें हुआ था। उसने अपना जीवन राजा साहूके सेनापतिके अधीन एक कारकुनके रूपमें आरम्भ किया। अपनी प्रशासकीय और सैनिक संगठन-क्षमतासे वह राजा साहूकी नजरोंमें चढ़ गया और उसने १७१३ ई० में उसे पेशवा नियुक्त कर दिया। वैधानिक रूपसे पेशवा राजाके आठ मन्त्रियोंमेंसे एक होता था और उसका दर्जा निश्चय ही पंत प्रतिनिधि (दे०) के नीचे था, किन्तु अपनी योग्यतासे बालाजी विश्वनाथने शीघ्र ही पेशवाको मराठा प्रशासनका वास्तविक प्रधान बना दिया। उसने मराठा राज्यकी शक्ति और प्रतिष्ठामें भारी वृद्धि की। १७१४ ई० में उसने मुगल बादशाहसे एक संधि की, जिसके अन्तर्गत दस लाख रुपये वार्षिक खिराज देनेके बदले उसे शाही सेवाके निमित्त १५,००० घुड़सवार सेना तथा दक्षिणमें शांति व्यवस्था कायम रखनेका अधिकार प्राप्त हो गया।

इस नीतिसे पेशवाने मराठोंके लिए न केवल उन इलाकोंको पुनः प्राप्त कर लिया, जो कभी शिवाजी (दे०) के अधिकारमें थे और बादमें मुगलों द्वारा छीन लिये गये थे, वरन् मराठी-भाषी जिले—खानदेश, गोंडवाना, बरार तथा हैदराबाद व कर्नाटक के कुछ हिस्से भी प्राप्त कर लिये। साथ ही उसने मराठा सरकारके लिए मुगल साम्राज्यके दक्खिनके छहसूबामें चौथ और सरदेशमुखी एकत्र करनेका अधिकार भी प्राप्त कर लिया। बादमें दिल्लीकी सरकारके अनुरोधपर पेशवाने एक बड़ी मराठा सेना मुगल राजधानीमें सैयद बन्धुओंकी सत्ता बनाये रखनेके लिए भेजी, जो दिल्लीकी बादशाहतके भाग्यविधाता बन गये थे। इस प्रकार बालाजी विश्वनाथने मुगल बादशाहकी प्रभुताको नाममात्रके लिए मान्यता देकर न केवल मराठोंके राज्य क्षेत्रका विस्तार किया तथा उन्हें दक्षिणके समस्त मुगलाई इलाकोंमे चौथ व सरदेशमुखीकी वसूलीका अधिकार दिलाया, वरन् मुगल सल्तनतकी राजस्व-वसूलीमें सहभागी बनाकर उन्हें, उसकी राजनीतिक सत्तामें भी भागीदार बना दिया। इसपर कृतज्ञ राजा साहूने बालाजी विश्वनाथकी १७२० ई० में मृत्यु होनेपर उसके पुत्र बाजीराव प्रथम को उसका पेशवाका पद प्रदान कर दिया। (जी० डफ०–हिस्ट्री आफ मराठाज तथा जे० एन० सरकार–फाल आफ दि मुगल एम्पायर)

बालादित्य प्रथम–देखिये, नरसिंह गुप्त।

बालादित्य द्वितीय–गुप्त राजा भानु गुप्तका उपनाम था।

बाली–मलाया द्वीप-समूहके अन्तर्गत एक द्वीप। यह दक्षिण पूर्वी एशियाके उन स्थानोंमें एक है, जहाँ ईसवी सन्के आरम्भकी शताब्दियोंमें हिन्दुओंने अपने उपनिवेश बनाये और भारतीय सभ्यता, संस्कृति और धर्मका प्रसार किया। बाली द्वीपमें अब भी हिन्दू धर्मका प्रचार है।

बाल्डविन, स्टेनली (१८६७–१९४७)–इंग्लैण्डका १९२३-२९ ई०में और पुनः १९३५–३७ ई०में प्रधान मंत्री। उसने १९१९ ई०के भारतीय शासन विधानकी कार्य-प्रणालीकी जाँचके लिए १९२८ ई०में सात सदस्यीय

'साइमन कमीशन' नियुक्त किया। कमीशनके सभी सदस्य अंग्रेज थे। भारतके मामलोंकी जांचके कार्यसे सभी भारतीयोंको अलग रखनेकी नीतिसे भारतमें उस समय बड़ा असन्तोष और आक्रोश पैदा हो गया था।

बिट्टिग अथवा बिट्टिदेव–देखिये 'विष्णुवर्धन'।

विट्ठल नाथ–प्रसिद्ध वैष्णव सन्त वल्लभाचार्य (जन्म १४४९ ई०)के सुयोग्य पुत्र जो अपने पिताके गोलोक वासके बाद उनकी गद्दीपर बैठे। उन्होंने हिन्दीमें 'चौरासी वैष्णववनकी वार्ता' नामसे प्रसिद्ध ग्रंथकी रचना की।

बिठूर–उत्तर प्रदेशमें कानपुरके निकटवर्ती एक छोटा कस्बा। १८१८ ई०में अंग्रेजोंसे पराजित हो जानेके पश्चात् अन्तिम पेशवा बाजीराव द्वितीयने आठ लाख रुपयेकी वार्षिक पेंशनके सहारेपर यहाँ एकान्तवास किया। १८५३ ई०में उसकी मृत्यु हो जानेके बाद बिठूर पेशवाके पुत्र नाना साहबका वासस्थल बना रहा। १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोह आरम्भ हो जानेपर उन्होंने अपनेको 'पेशवा' घोषित कर दिया और अंग्रेजोसे पराजित होने तथा पलायन करनेके लिए विवश होनेसे पूर्व तक यहाँ अपना दरबार लगाते रहे।

बितिक्ची–मुगल प्रशासन कालमें यह सूबेके हिसाब-किताबका प्रभारी अधिकारी होता था।

बिन्दुसार (३०० ई०पू०–२७३ ई०पू०)–मौर्य राजवंशके प्रवर्तक चन्द्रगुप्त मौर्यका पुत्र और उत्तराधिकारी। उसकी गतिविधियोंके बारेमें बहुत कम जानकारी है। इस तथ्य से कि उसने 'अमित्रघात'की पदवी ग्रहण की थी, अनुमान होता है कि उसने अपने अनेक शत्रुओंका घात किया था और उसके शासन-कालमें संभवतः कलिंगको छोड़कर दक्षिण भारत मौर्य साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया था। उसने अपने साम्राज्यके पश्चिममें स्थित यवन (यूनानी) राज्योंसे मैत्री-सम्बन्ध कायम रखे। उसके दरबारमें डायमेत्रस नामक यूनानी राजदूत रहता था। उसका उत्तराधिकारी उसका प्रसिद्ध पुत्र अशोक था।

बिम्बसार–मगधका राजा, जिसके शासन-कालमें मगध राज्यका उत्कर्ष आरम्भ हुआ। उसने अंग (पूर्वी बिहार) को अपने राज्यमें मिला लिया, कोशल तथा वैशालीसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये और आधुनिक पटना जिलेमें स्थित राजगृहको अपनी नयी राजधानी बनाया। उसके शासनकालमें मगध एक समृद्ध राज्य बन गया। जैनोंके अंतिम तीर्थङ्कर वर्धमान महाबीर तथा बौद्ध धर्मके प्रवर्तक गौतम बुद्ध उसके समकालीन थे। सिंहली दंत कथाओंके अनुसार बिम्बसार गौतम बुद्धके निर्वाणके साठ वर्ष पूर्व सिंहासनारूढ हुआ था। गौतम बुद्धका निर्वाण काल ४८६ ई० पू० माना जाता है। इस आधारपर बिम्बसार लगभग ५४६ ई० पू०में सिंहासनारूढ़ हुआ। जन-श्रुतियोंके अनुसार वृद्धावस्थामें उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी अजातशत्रुने उसकी हत्या कर दी। पुराणोंके अनुसार बिम्बसार शैशुनाग वंश (दे०)का पांचवा राजा था, परंतु सिंहली ग्रंथ तथा अश्वघोषके साक्ष्यके अनुसार वह हर्यक वंश (दे०) का था। वह मगधका प्रथम महान सम्राट् था। **(राय चौधरी, पृ० ११५)**

बिलग्रमी, सैयद हुसेन–निजामकी रियासतका शिक्षा निदेशक। लार्ड कर्जनके द्वारा १९०२ ई०में नियुक्त शिक्षा आयोगके दो भारतीय सदस्योंमेंसे एक यह भी थे। (दूसरे सदस्य सर गुरुदास बनर्जी थे)। भारत-मंत्री लार्ड मार्लेने इंडियन कौंसिलमें जिन दो सदस्योंको नियुक्त किया था, उनमें यह भी एक थे (अन्य सदस्य सर के० जी० गुप्त थे)।

बिल्हण–कश्मीरमें जन्मा कल्याणीके चालुक्य राजा विक्रमादित्यका दरबारी कवि। उसने 'विक्रमांक-चरित' नामक रचनामें अपने संरक्षकके युद्धों और आखेट यात्राओंका वर्णन किया है। उक्त पुस्तककी प्रतिलिपि बुह्लरको एक जैन पुस्तकालयमें उपलब्ध हुई थी और उसने उसका सम्पादन भी किया था।

बिल्हापुरकी लड़ाई–पेशवा बाजीराव प्रथम और उसके प्रतिद्वन्द्वी मराठा राज्यके पुश्तैनी सेनापति त्र्यम्बक राव दाभाड़ेके बीच पहली अप्रैल १७३१ ई०को हुई। दाभाड़ेको कोल्हापुर राज्य तथा निजामुलमुल्ककी सहायता प्राप्त थी, फिर भी वह पराजित हुआ और मारा गया। इस विजयसे बाजीराव प्रथमका मराठा राज्यमें कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रह गया और पेशवा ही व्यवहारतः उसका वास्तविक शासक बन गया।

बिशनदास–एक ख्यातिप्राप्त हिन्दू चित्रकार, जिसे सम्राट् जहाँगीरका संरक्षण प्राप्त था।

बिश्नाग–पुर्तगाली यात्री फर्नाओ नूनिजने विजयनगरके लिए इस नामका प्रयोग किया है। इस यात्रीने १५३५ ई०में विजयनगरकी यात्रा की थी।

बिहार–आधुनिक कालमें उस प्रदेशका नाम, जिसके पूर्वमें पश्चिमी बंगाल और पश्चिममें उत्तर प्रदेश है। इसमें प्राचीन कालके अंग (भागलपुर मंडल), वृज्जि (तिरहुत मंडल) तथा मगध (पटना तथा गया मंडल), राज्य शामिल हैं। कालान्तरमें अंग और वृज्जिका मगधमें विलीनीकरण हो गया। बिहारका आधुनिक राज्य बारहवीं शताब्दीके अन्त तक मगधके नामसे ही सम्बोधित किया

जाता था, जब इसे मुसलमानोंने रौंद डाला और बख्तियार खिलजीके पुत्र इख्तियारउद्दीनने दिल्ली सल्तनतके अधीन कर दिया। आक्रमणकारी मुसलमानोंने सर्वत्र फैले हुए बौद्ध बिहारोंको किले समझा और तबसे यह सूबा बिहार नामसे सम्बोधित किया जाने लगा। अकबरके साम्राज्यका यह अलग सूबा था, किन्तु १७१९ ई०के लगभग मुर्शीद कुली खाँकी सूबेदारीके समय यह बंगालमें मिला दिया गया। इस प्रकार बिहारका बंगालके साथ प्रशासकीय संयोजन १९११ ई० तक चलता रहा। पश्चात् इसमें उड़ीसाको शामिल कर गवर्नरके शासनाधीन एक पृथक् सूबा बनाया गया। भारतीय गणतंत्रमें भी यह पृथक् राज्य है, यद्यपि उड़ीसाको इससे अलग कर दिया गया है।

१९५१ ई०की जनगणनाके अनुसार इसका क्षेत्रफल ७०,३६८ वर्ग मील और जनसंख्या ४,०२,१८,९१६ है। इसकी राजधानी पटनाके साथ, जहाँ प्राचीन नगर पाटलिपुत्रकी स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं, वहाँ जमदेशपुर टाटानगर आधुनिक कालके इस्पात और लोहा उद्योगका मुख्य केन्द्र है। इस राज्यसे गुजरती हुई गंगाने इसे दो भागोंमें विभाजित कर दिया है। यहाँ चावल, गेहूँ, मक्का, गन्ना, तम्बाकू तथा तिलहनकी अच्छी उपज होती है और कोयला, लोहा तथा अबरक जैसे खनिज प्रचुरतासे उपलब्ध हैं। भारतकी औद्योगिक प्रगतिके साथ ही बिहारकी भी प्रगति निश्चित है, क्योंकि यहाँ लोहा और कोयलाकी प्रचुरता है। यहाँकी अनेक नदियोंको बाँधोंसे नियंत्रित करके बाढ़ोंकी रोक-थाम की जा रही है और भारी मात्रामें विद्युत शक्ति भी उपलब्ध होने लगी है। जो बिहार अशोक महान्‌का जन्म-स्थल था, वह भारतीय गणतंत्रके प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादका भी जन्म-स्थल है।

बिहारीमल—आमेरका राजा, जो राजनीतिमें यथार्थवादका अनुगामी था। वह राजपूतानाके उन राजपूत शासकोंमें अग्रणी था, जिन्होंने मुगलोंका विरोध करनेकी नीतिकी निरर्थकता समझ ली थी। उसने बाबरकी और उसके उपरांत हुमायूँकी अधीनता स्वीकार कर ली। १५५५ ई०में उसकी भेंट अकबरसे हुई, जिसने उसका समुचित सत्कार किया। १५६१ ई०में अजमेरके जागीरदारने बिहारीमलपर आक्रमण करके उसके कुछ इलाकोंको दबा लिया और इसके पुत्रको बंधकके रूपमें अपने पास रख लिया। बिहारीमलने अपने राज्यको बचानेके लिए अकबरकी अधीनता स्वीकार कर ली और अपनी पुत्रीका विवाह उसके साथ करके मैत्री-सम्बन्धको और मजबूत बना लिया। यह सम्बन्ध सुखद सिद्ध हुआ और यही राजकुमारी अकबरके ज्येष्ठ पुत्र जहाँगीरकी माँ बनी। राजा बिहारीमलने अपने पुत्र भगवानदास तथा दत्तक पौत्र मानसिंहके साथ बादशाह अकबरकी नौकरी कर ली और इन सबको ऊँचे मनसब दिये गये। इस प्रकार बिहारीमलने अपनी नीतिसे आमेर (जयपुर)को मुगलोंकी लूट-मार तथा बरबादीसे बचा कर जयपुर रियासतको राजपूतानेकी सबसे धनी और कलाकौशलपूर्ण रियासत बना दिया।

बिहारी लाल—तुलसी दासके बाद सत्रहवीं शताब्दीका सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त हिन्दी कवि। इसने अपनी रचना 'सतसई' १६६२ ई०में पूरी की।

बीकानेर—राजस्थानका एक नगर तथा पुरानी रियासत। इसे राठौर सरदार बीकाजीने स्थापित किया था। दिल्लीसे यह ढ़ाई सौ मील दूर थार रेगिस्तानकी सीमापर स्थित है। १५७० ई० में यह राज्य सम्राट् अकबरकी अधीनतामें आया और १८१८ ई० में अंग्रेजोंका आश्रित बननेतक मुगल साम्राज्यका हिस्सा रहा। बीकानेर ऊँटोंके लिए प्रसिद्ध है। प्रथम विश्वयुद्धमें बीकानेरके महाराज गंगासिंहने बीकानेरी ऊँटोंका रिसाला संगठित किया था जो सोमालीलैण्डमें बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। महाराज बीकानेरको इसके पुरस्कार-स्वरूप पुराने राष्ट्रसंघ (लीग आफ नेशन्स) में भारतका प्रतिनिधि नियुक्त किया गया था। महाराज बीकानेर नरेन्द्र-मंडल (चेम्बर आफ प्रिन्सेज)के आरम्भसे ही एक महत्त्वपूर्ण सदस्य रहे। स्वाधीनताके उपरान्त बीकानेर रियासत भारतमें विलीन हो गयी।

बीजापुर—दक्षिणमें भीमा और कृष्णाके दोआबमें स्थित एक मध्यकालीन मुस्लिम राज्य। पन्द्रहवीं शताब्दीके अन्तमें जब बहमनी सल्तनत पाँच शाखाओंमें विभक्त हो गयी, तब उनमें यह सबसे महत्त्वपूर्ण शाखा बनी। पाँचों सल्तनतोंमें यह सबसे दक्षिणमें थी। इस राज्यकी स्थापना यूसुफ आदिलशाहने की थी, जो मूल रूपमें गुलाम था, लेकिन अपनी योग्यताके बलपर बीजापुरमें ब्रहमनी सुल्तानोंका हाकिम बना दिया गया। १४८९ ई० में उसने अपनेको स्वतन्त्र घोषित कर आदिलशाही राजवंशके अन्तर्गत बीजापुरको पृथक् राज्य बना लिया। इसके नौ सुल्तान हुए, यथा—यूसुफ (१४९०–१५१०), इस्माईल (१५१०–३४), मल्लू (१५३४–३५), इब्राहीम प्रथम (१५३५–५७), अली (१५५७–८०), इब्राहीम

द्वितीय (१५८०–१६२६), मुहम्मद (१६२६–५६), अली द्वितीय (१६५६–७६) तथा सिकन्दर (१६७१–८८)।

बीजापुरको आरम्भसे ही अपने पड़ोसियों, विशेषकर हिन्दू राज्य विजयनगरसे संघर्ष करना पड़ा। गोआका बन्दरगाह, जो बीजापुर राज्यमें स्थित था, १५१० ई० में पुर्तगालियोंके अधिकारमें चला गया। १५३६ ई० में बीदर, अहमदनगर तथा गोलकुंडाने मिलकर बीजापुरपर आक्रमण कर दिया, लेकिन उन्हें परास्त होना पड़ा। इसका बदला लेनेके लिए बीजापुरके सुल्तानने विजयनगरसे समझौता कर लिया और दोनों राज्योंकी मिली-जुली सेनाने अहमदनगरमें लूटपाट की। लेकिन छह वर्ष बाद बीजापुरका बीदर, अहमदनगर तथा गोलकुंडाके साथ विजयनगरके विरुद्ध गठबंधन हो गया और १५६५ ई० में तालीकोटकी लड़ाईमें विजयनगर राज्यको नष्ट कर दिया गया। लेकिन १५७० ई० में बीजापुरका सुल्तान अहमदनगरके सुल्तान, कालीकटके जमोरिन तथा अचिनके राजाकी सहायताके बलपर भी पुर्तगालियोंको खदेड़ कर गोआको पुनः प्राप्त करनेमें विफल रहा। सत्रहवीं शताब्दीमें बीजापुरको दो शत्रुओंका सामना करना पड़ा—मुगल बादशाह, जिसने उत्तरसे चढ़ाई बोल दी थी तथा शिवाजी, जिनके नेतृत्वमें मराठा शक्तिका उत्कर्ष हो रहा था। सातवें सुल्तानने शाहजहाँको वार्षिक खिराज देनेका वायदा कर मुगलोंसे समझौता कर लिया किन्तु न तो वह और न उसके उत्तराधिकारी शिवाजी का बढ़ाव रोक सके। शिवाजीकी शक्तिका उदय होनेसे बीजापुर सल्तनत काफी कमजोर हो गयी। अन्तमें १६८६ ई० में नवें आदिलशाही सुल्तान सिकन्दर (१६७१–८८ ई०) के शासनकालमें बीजापुरको बाध्य होकर मुगल बादशाह औरंगजेबके आगे १८ महीनेके घेरेके बाद आत्मसमर्पण कर देना पड़ा। सुल्तान सिकन्दर, को कैदखानेमें डाल दिया गया, जहाँ पन्द्रह वर्ष बाद उसकी मृत्यु हो गयी। उसके पतनके बाद बीजापुरका स्वाधीन अस्तित्व समाप्त हो गया।

बीजापुर सल्तनतके संस्थापक शिया मतावलम्बी थे। यह परंपरा सल्तनतके चौथे सुल्तान इब्राहीम प्रथम (१५३५–५७) के शासनकाल तक चली। सुल्तान इब्राहीम प्रथम पुनः सुन्नी मतावलम्बी हो गया। लेकिन उसका पुत्र और उत्तराधिकारी अली (१५५७–८०) फिर शिया हो गया। आदिलशाही सुल्तान सामान्यतः सहिष्णु थे। यूसुफ आदिलशाहने एक मराठी महिलासे शादी की थी, जो उसके पुत्र और उत्तराधिकारी इस्माईल आदिलशाहकी माँ बनी। हिन्दुओंको उत्तरदायित्वपूर्ण पदोंपर नियुक्त किया जाता था और राज्यका हिसाब-किताब और पत्र-व्यवहार मराठीमें किया जाता था। आदिलशाह सुल्तान कला और साहित्यका संरक्षक था। प्रसिद्ध इतिहासकार मुहम्मद कासिम उपनाम फरिस्ताने छठे सुल्तान इब्राहीम द्वितीय (१५८०–१६२६ ई०)की संरक्षकतामें अपने ग्रंथोंकी रचना की थी। बीजापुरमें एक अच्छा पुस्तकालय था, जिसकी कुछ पुस्तकें अब भी ब्रिटिश संग्रहालयमें उपलब्ध हैं।

बीजापुरमें ललित कला तथा वास्तुकला की एक शैली विकसित हुई। इस कालकी इमारतें अपनी अभिकल्पना और भव्यताके लिए प्रसिद्ध हैं। सुल्तान यूसुफ अली, इब्राहीम द्वितीय तथा मुहम्मद शाहने अनेक इमारतें बनवायीं। बीजापुर नगरका विशाल परकोटा, जिसकी परिधि सवा छह मील है, मस्जिद, जिसमें एक साथ पाँच हजार लोग नमाज पढ़ सकते हैं, सभाकक्ष जिसे गगनमहल कहते हैं, इब्राहीम द्वितीयकी कब्र तथा मुहम्मद शाहका मकबरा, जिसकी गुम्बज संसारकी दूसरी सबसे बड़ी गुम्बज है; बीजापुरकी भूतकालीन भव्यताके कुछ बचे हुए कीर्तिस्तम्भ हैं। (**सेवेल–ए फारगाटेन एम्पायर; मिडोज टेलर–मैन्युअल आफ इण्डियन हिस्ट्री; हेनरी कजिन्स–बीजापुर एण्ड इट्स आर्कीटेक्चरल रुयेन्स, विद एन हिस्टोरिकल आउटलाइन आफ आदिल शाह डाईनेस्टी**)

बीदर–दक्षिण (आन्ध्र) का एक पुराना नगर, जो आधुनिक हैदराबाद नगरसे ज्यादा दूर नहीं है। यह प्राचीन हिन्दू राज्य वारंगलके अन्तर्गत था। इसे पहले अलाउद्दीन खिलजीने रौंद डाला और बादमें सुल्तान ग्यासउद्दीन तुगलकके शासनकालमें उसके पुत्र जूना खाँने इसे दिल्लीकी सल्तनतके अधीन कर दिया। १३४७ ई० में बहमनी सल्तनतकी स्थापना होनेपर बीदर उसका अंग बन गया और नवें सुल्तान अहमद शाहके शासनकालमें उसकी राजधानी हो गया। १४९२ ई०में बहमनी सल्तनतके छिन्न-भिन्न होनेपर जब कासिम बरीदने स्वतंत्र बीदर सल्तनतकी स्थापना की, तब यह उसकी राजधानी बनाया गया। १५६५ ई०में विजयनगरके विरुद्ध बीजापुर, अहमदनगर और गोलकुण्डाके सम्मिलित अभियानमें यह भी शामिल था और तालीकोटकी लड़ाईमें इन सबने सम्मिलित रूपसे विजय प्राप्त की,

लेकिन १६१९ ई० में इसपर बीजापुर सल्तनतने कब्जा कर लिया और इसकी स्वतन्त्रता समाप्त हो गयी। बरीदशाही सुल्तानों द्वारा निर्मित कुछ उल्लेखनीय इमारतोंके अवशेष बीदरमें आज भी मौजूद हैं। (मिडोज टेलर—मैन्युअल आफ इण्डियन हिस्ट्री)

बीबीगढ़—कानपुरमें स्थित एक इमारत, जिसमें १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोहके दौरान २११ अंग्रेज स्त्री-पुरुषों और बच्चोंको, जिन्होंने २६ जूनको आत्मसमर्पण किया था, १५ जुलाईको नाना साहब और तात्या टोपेके आदेशानुसार मार डाला गया और उनके शवोंको करीबके कुएंमें फेंक दिया गया। इससे पूर्व बनारस तथा इलाहाबादमें अंग्रेजोंने गाँवके गाँव फूँक दिये थे। यह उसीके बदलेकी काररवाई थी। इसके फलस्वरूप ब्रिटिश सेनाओंने भी भारतीयोंपर नृशंस अत्याचार किये।

बीरबल, राजा—एक राजपूत सरदार, जो स्वेच्छासे बादशाह अकबरकी सेवामें आ गया और उसका मुँह-लगा स्नेह-पात्र बन गया था। अकबरने उसे 'राजा'की पदवी दी। बीरबल उतना प्रतिभाशाली सेनापति नहीं था, जितना प्रतिभाशाली कवि। अकबरने उसे 'कविराय' की उपाधिसे सम्मानित किया था। वह १५८६ ई० में पश्चिमोत्तर सीमाके यूसुफजाई कबीलेपर चढ़ाई करनेके लिए मुगल सेनाका नायक बनाकर भेजा गया और युद्धमें मारा गया।

बुक्क प्रथम—संगमका पुत्र, अपने भाई हरिहर प्रथमके साथ १३३६ ई० में उसने विजयनगरकी स्थापना की। हरिहर प्रथमके निधनके बाद १३५४ ई० से १३७७ ई० तक मृत्युपर्यन्त वह विजयनगरका शासन करता रहा। उसके जीवनका अधिकांश भाग बहमनी सुल्तानोंसे युद्ध करनेमें व्यतीत हुआ। उसने अपना एक दूतमंडल चीन भी भेजा था।

बुक्क द्वितीय—बुक्क प्रथमका पौत्र। विजयनगरके राजसिंहासनपर बैठाये जानेपर उसके भाई विरूपाक्षने उसका विरोध किया था। वह केवल दो वर्ष (१४०४—०६ ई०) राज्य कर सका।

बुद्ध, गौतम—बौद्ध धर्मके सुप्रसिद्ध संस्थापक। बस्ती जिले (उत्तर प्रदेश) के पास आधुनिक नेपाल राज्यमें स्थित कपिलवस्तुके क्षत्रिय राजपरिवारमें उनका जन्म हुआ। उनके पिताका नाम शुद्धोधन और माताका नाम माया देवी था। शिशु-जन्मके उपरांत माताकी मृत्यु हो गयी और बालकका नाम सिद्धार्थ रखा गया। उनका लालन-पालन उनकी मौसी और विमाता प्रजापति गौतमीने किया। उनके गोत्रका नाम गौतम था, शाक्य जातिमें उत्पन्न होनेके कारण वे शाक्य सिंह और बादमें शाक्य मुनि कहलाये। सोलह वर्षकी उम्रमें उनका विवाह यशोधरासे (जिन्हें भद्द कच्छना, सुभद्रका, बिम्वा अथवा गोपा भी कहते हैं) कर दिया गया। अगले तेरह वर्षोंतक सिद्धार्थने अपने पिताके महलमें राजसी जीवन व्यतीत किया। किसी दिन भ्रमणके समय वृद्धावस्था, रोग तथा मृत्युके दर्शन हो जानेपर उन्होंने सांसारिक सुखोंकी निस्सारताका अनुभव इतनी तीव्रतासे किया कि जिस रात उनके पुत्रका जन्म हुआ, उसी रात पिताके ऐश्वर्यपूर्ण राजप्रासाद, प्रिया एवं सुन्दर पत्नी तथा नये पुत्रका परित्याग कर दिया। उन्होंने परिव्राजक भिक्षुका जीवन अपना कर उस मार्गकी खोज शुरू कर दी जिससे रोग, वृद्धावस्था तथा मृत्युकी पीड़ासे छुटकारा पाया जा सके। इस महान् त्यागके समय गौतमकी अवस्था केवल २९ वर्ष थी।

प्रथम एक वर्ष तक उन्होंने दर्शनका अध्ययन किया, किन्तु उससे उनकी शंकाओंका कोई समाधान नहीं हुआ। तत्पश्चात् अगले पाँच वर्षों तक उन्होंने इस आशामें कि मुक्तिका मार्ग प्राप्त हो सकेगा, कठोर तप किया। लेकिन वह निष्फल ही रहा। तब एक दिन जब वे आधुनिक बोध गयामें नैरञ्जना नदीके तटपर पीपल वृक्षके नीचे ध्यानावस्थामें बैठे हुए थे, बुद्धत्व लाभ हुआ। इसके बाद वे बुद्धके नामसे विख्यात हो गये और उन्होंने आजीवन सत्यका जिस रूपमें साक्षात्कार किया था, उसका उपदेश करनेका संकल्प किया। उन्होंने वाराणसीके निकट सारनाथके मृगवनमें अपना पहला धर्मोपदेश किया, जहाँ पाँच भिक्षु उनके अनुयायी हो गये। उपरांत अगले ४५ वर्षों तक बुद्ध उत्तर प्रदेश तथा बिहारमें पदयात्रा करके धर्मोपदेश करते रहे। उन्होंने जाति-पांतिका कोई भेदभाव किये बगैर राजपुत्रोंसे लेकर किसानों तकको अपना अनुयायी बनाया, भिक्षु संघमें संगठित किया, उसके नियम निश्चित किये और सहस्त्रों नर-नारियोंको अपना मतावलम्बी बनाया। उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म बादमें बौद्ध धर्मके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उनका, निर्वाण ८० वर्षकी आयुमें देवरिया जिलेके कुशीनगर अथवा कसियामें हुआ। उनके निर्वाणकी तिथि जन्मतिथिके सदृश अभी तक सही निश्चित नहीं हो सकी है, यद्यपि यह सभी स्वीकार करते हैं कि वे मगधके राजा बिम्बसार तथा अजातशत्रुके समकालीन थे और अजातशत्रुके शासनकालमें ही उनकी मृत्यु हुई। चीनकी

जनश्रुतिके अनुसार बुद्धका निधन ४८६ ई० पू० में हुआ था। इस प्रकार उनका जन्म अस्सी वर्ष पूर्व ५६६ ई० पू० में सिद्ध होता है। धर्मसंस्थापकके रूपमें गौतम बुद्धका स्थान अप्रतिम है। सर्वप्रथम वे निश्चित रूपसे ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। दूसरे, उन्होंने लोकोत्तर पुरुष होनेका कोई दावा नहीं किया और अपनी पूजाको सब प्रकारसे हतोत्साहित किया। उनका मात्र इतना दावा था कि मुझे सम्यक् सम्बोधि-लाभ हुआ है। इस सम्बन्धमें भी उनकी यह मान्यता थी कि पुरुषार्थ करनेपर किसीको भी बोधि-लाभ हो सकता है। तीसरे, वे पहले धर्म-संस्थापक थे, जिन्होंने भिक्षु संघ संगठित किया और शांतिमय तरीकेसे समता, प्रेम और दयाके संदेशका प्रचार करके लोगोंको अपने धर्ममें दीक्षित किया। उन्होंने सर्वोपरि बुद्धिवादको स्थान दिया और अपने अनुयायियोंको समझाया कि वे किसी बातको उस समय तक सत्यके रूपमें स्वीकार न करें, जब तक वह तर्कसंगत न हो। उन्होंने विश्व-बन्धुत्वका केवल उपदेश ही नहीं दिया, वरन् आजीवन उसका आचरण किया और उन सभीको बिना जाति या वर्णके भेदभावके, अपने शिष्योंके रूपमें स्वीकार किया जो उनका धर्मोपदेश सुननेके लिए तैयार थे। इस प्रकार उन्होंने एक ऐसे धर्मकी संस्थापना की, जो भारतकी सीमाएँ लाँघकर चारों ओरके देशोंमें फैल गया। फलतः वह संसारके महान् धर्मोंमें अन्यतम माना जाता है। **(ओल्डेनबर्ग–बुद्ध; ई० जे० थामस–लाइफ आफ बुद्ध; एडविन आर्नोल्ड–लाइट आफ एशिया)**

बुद्ध गुप्त–गुप्त राजवंशकी मुख्य शाखाका अन्तिम सम्राट् (४७६–९५ ई०)। इसने गुप्त साम्राज्यकी अखण्डता बनाये रखनेका भारी प्रयास किया। इसकी मृत्युके बाद तोरमाण तथा उसके पुत्र मिहिरगुलके नेतृत्वमें हूणोंके आक्रमणके कारण गुप्त साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

बुद्धराज–कलचूरि वंशका एक राजकुमार। विश्वास किया जाता है कि वह राज्यवर्द्धनका समकालीन था और राज्यवर्द्धनने उससे अपनी अधीनता स्वीकार करवा ली थी। उसके बारेमें बहुत कम जानकारी प्राप्त है। **(रायचौधरी, पृष्ठ ६०७ का फुटनोट)**

बुद्धवर्मा–कांचीका एक पल्लव नरेश, जिसने चोलोंको पराजित किया। शिलालेखोंमें उसका उल्लेख हुआ है, जिससे अनुमान किया जाता है कि विष्णुगोपके बाद वह छठा राजा था। उसके बारेमें अधिक कुछ जानकारी नहीं है। **(रायचौधरी, पृष्ठ ५०१)**

बुन्देलखण्ड–उस भूखण्डका नाम, जिसके उत्तरमें यमुना और दक्षिणमें विन्ध्य पर्वत-शृंखला, पूर्वमें बेतवा और पश्चिममें होंस अथवा तमसा नदी है। बुन्देलोंका नाम तब प्रसिद्धिमें आया, जब उन लोगोंने यहाँ अपना राज्य चौदहवीं शताब्दीसे स्थापित किया। इससे पूर्व यह प्रदेश जुझौती अथवा जजाकभुक्ति नामसे जाना जाता था और चन्देलों द्वारा नवींसे चौदहवीं शताब्दीतक शासित होता रहा। राज्यके प्रमुख नगर थे—खजुराहो जिला छतरपुर; महोबा-जिला हमीरपुर तथा कालञ्जर, जिला बाँदा। खजुराहोमें आज भी अनेक भव्य वास्तुकृतियाँ अवशिष्ट हैं। कालंजरमें राज्यकी सुरक्षाके लिए एक मजबूत किला था। शेरशाह इस किलेकी घेराबन्दीके समय १५४५ ई० में यहीं मारा गया था। बुन्देलखण्डका अधिकांश भूभाग अब उत्तर प्रदेशमें है, किन्तु कुछ भाग मध्यप्रदेशमें भी मिला दिया गया है।

बुन्देला–देशज मूलके राजपूतोंका एक गोत्र, जो चौदहवीं शताब्दीके मध्यमें जमुनाके दक्षिण और विन्ध्य पर्वत-शृंखलाके उत्तरमें पड़नेवाले प्रदेशमें शक्तिसम्पन्न हो गये थे। इससे पहले यह क्षेत्र जेजाकभुक्तिके नामसे प्रसिद्ध था, जिसपर चन्देले शासन करते थे। बुन्देले युद्धप्रिय लोग थे और जिस भूमिपर वे शासन करते थे, वह उनके नामसे बुन्देलखण्ड कहलाने लगी। बुन्देलोंने अकबरकी अधीनता स्वीकार कर ली थी, किन्तु बादमें औरंगजेबके शासनकालमें बुन्देला सरदार छत्रसाल पूर्वी मालवामें अपने लिए एक स्वतंत्र राज्य कायम करनेमें सफल हो गया, जिसकी राजधानी पन्ना थी। बादमें इस राज्यने अंग्रेजोंको अपना प्रभु स्वीकार कर लिया।

बुरहान-ए-मासिर–बहमनी सल्तनतके सुल्तानोंका एक इतिहास-वृत्तान्त है। फरिस्ताके इतिहाससे इसमें अधिक प्रामाणिक विवरण है। इसे सईद अली तबातबाने लिखा था। लेखक अहमदनगरके सुल्तान बुरहान निजाम शाह द्वितीयकी सेवामें था, जिसके नामपर ही पुस्तकका नामकरण किया गया है। इतिहासको पूरा करनेमें उसे छह वर्ष (१५९१–९६) लगे थे। इसमें बहमनी शाही खानदान तथा अहमदनगरके सुल्तानोंका विवरण है।

बुरहान निजामशाह प्रथम–अहमदनगरके निजामशाही खानदानका दूसरा सुल्तान। ४५ वर्ष (१५०८–५३ ई०) के लम्बे शासनकालमें वह मुख्यतः पड़ोसके राज्यों, विशेष कर हिन्दू राज्य विजयनगरसे युद्ध करनेमें व्यस्त रहा। १५३० ई०में उसने बीजापुरके मुसलमान शासकके विरुद्ध विजयनगरके हिन्दू राजासे संधि कर ली, लेकिन यह संधि

अधिक दिनों तक नहीं टिकी। बुरहान मूलतः सुन्नी था, लेकिन जीवनके अन्तिम दिनोंमें वह शिया हो गया था।

बुलन्द दरवाजा–अकबरने फतेहपुर सीकरीमें १५७५–७६ ई०में इसका निर्माण कराया। यह तोरणद्वार कदाचित् उसकी गुजरातकी विजयकी स्मृतिके रूपमें बनाया गया था। संगमरमर और लाल पत्थरसे निर्मित यह दरवाजा फतेहपुर सीकरी स्थित बड़ी मस्जिदके मार्गपर विद्यमान है।

बून, चार्ल्स–बम्बईका गवर्नर (१७१५–२२), जिसने नगरके चारों तरफ एक दीवार बनवायी थी और व्यापारिक कोठी तथा व्यवसायकी सुरक्षाके लिए बन्दरगाहपर कम्पनीकी ओरसे तैनात सशस्त्र जहाजोंकी संख्यामें वृद्धि कर दी थी।

बूढ़ा गोहाँई–आसामके अहोम राजाओंके अधीन दो सर्वोच्च अधिकारियोंमेंसे एकका पदनाम। दूसरे अधिकारीका पदनाम बड़-गोहाँई था। अधिकारीका चयन अहोम राजा एक विशेष परिवारके सदस्योंमेंसे करते थे और व्यावहारिक रूपमें यह पद वंशानुक्रमसे उत्तराधिकारमें प्राप्त होता रहता था। (गेट–हिस्ट्री आफ आसाम, पृ० २३५-३६)

बूरन–पिण्डारियों (पेंढारियों) का एक सरदार, जो १८१२ ई०से १८१८ ई० तक लूटमारके कार्योंमें प्रमुख भाग लेता रहा। लार्ड हेस्टिंग्स द्वारा १८१७–१८ ई०में पिण्डारियोंके विरुद्ध आयोजित किये गये अभियानमें वह मारा गया।

बूसेस, फादर–एक ईसाई पादरी। भारत आनेपर वह बादशाह शाहजहाँके सबसे बड़े शाहजादे दाराशिकोहका अन्तरंग मित्र हो गया था।

बृहद्रथ–मगधके प्राचीनतम, राजवंशका प्रवर्तक। वह जरासन्धका पिता था और उसके वंशने मगधपर छठी शताब्दी ई० पू० तक शासन किया।

बृहद्रथ–मगधके मौर्यवंशका अन्तिम राजा, जिसे लगभग १८५ ई० पू०में ब्राह्मण मंत्री पुष्यमित्रने अपदस्थ कर दिया था। फलस्वरूप मौर्य राजवंशका अन्त हो गया।

बृहस्पति–भारतका एक प्राचीन राजनयज्ञ एवं स्मृतिकार। उसकी कृति बृहस्पति स्मृति गुप्तकालकी रचना मानी जाती है, जो अभीतक अन्य ग्रन्थोंमें उद्धरण रूपमें ही उपलब्ध है।

बृहस्पति मित्र–कलिङ्गके राजा खारवेलके हाथी गुम्फा शिलालेखमें यह नाम 'वहसतिमित'के रूपमें मिलता है। शिलालेखमें इसको राजगृहका राजा बताया गया है। कुछ विद्वानोंने उसकी पहचान मगधके राजा पुष्यमित्रसे की है, जिसने १८५ ई० पू०के लगभग शुंग राजवंश संस्थापित किया। किन्तु यह मान्यता सन्देहसे मुक्त नहीं है। (रायचौधरी० पृष्ठ ३७३ तथा ४१८ के फुटनोट)

बूँदी–एक छोटी-सी राजपूत रियासत, जो मेवाड़के समीप है। इसके शासकने काफी वर्षों तक अपनेको स्वाधीन रखा, किन्तु बादमें अकबरकी अधीनता स्वीकार कर ली। मुगल साम्राज्यके अधःपतनपर यह कुछ समयके लिए मराठा सरदार होल्करके नियंत्रणमें चली गयी, किन्तु द्वितीय मराठा-युद्ध (१८०३–०६ ई०) में होल्करकी पराजय हो जानेपर उसका नियंत्रण समाप्त हो गया। फिर भी मराठोंका आतंक बना रहा। अतः १८१८ ई० में बूँदीने ईस्ट इंडिया कम्पनीसे आश्रित-संधि कर ली। १९४७–४८ में भारतीय गणतंत्रमें विलीन होनेसे पूर्व तक यह रियासत ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यके अंतर्गत रही।

बूबूजी खानम–बीजापुरके सुल्तान यूसुफ आदिलशाह (१४८९–१५१० ई०) की मराठा पत्नी। वह मराठा सरदार मुकुन्द रावकी बहिन थी, जिसे यूसुफ आदिलशाहने अपने शासनकालके आरम्भमें ही पराजित कर दिया था। तदनन्तर मुकुन्दरावने आदिलशाहके साथ उसका विवाह कर दिया। वह द्वितीय आदिलशाही सुल्तान इस्माइल तथा तीन शाहजादियोंकी माँ बनी। इन शाहजादियोंका विवाह पड़ोसके मुसलमान राज्योंके शाही परिवारोंके साथ कर दिया गया।

बेगमें, अवधकी–नवाब आसफउद्दौलाकी माँ और दादी। १७७५ ई० में अवधकी गद्दीपर बैठनेके बाद आसफउद्दौलाने ईस्ट इंडिया कम्पनीके साथ फैजाबादकी संधि की, जिसके अन्तर्गत उसने अवधमें ब्रिटिश सेना रखनेके लिए एक बड़ी धनराशि देना स्वीकार किया। अवधका प्रशासन भ्रष्ट और कमजोर था, अतः नियत धनराशि न दे सकनेके कारण नवाबपर कम्पनीका बकाया चढ़ गया। १७८१ ई० तक मैसूर, मराठों तथा चेत सिंहसे हुई लड़ाइयोंके कारण कम्पनीको रुपयेकी बड़ी आवश्यकता थी। गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सने नवाब अवधसे बकायेकी रकमको चुकता कर देनेके लिए जोर डाला, लेकिन नवाबने भुगतान करनेमें अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए कहा कि मैं भुगतान उस समय कर सकता हूँ जब मुझे उस बड़ी जागीर तथा दौलतपर अधिकार दिलवा दिया जाय जो मेरी माँ और दादीने हथिया ली है।

अवधकी बेगमें आसफउद्दौलाको २५०,००० पौंडकी धनराशि पहले दे चुकी थीं, १७७५ ई० में ब्रिटिश रेजीडेन्ट मिडिल्टनके समझानेपर ३००,००० पौंड उन्होंने पुनः दिया। इससे कम्पनीका पावना अदा कर दिया गया। कलकत्ता स्थित कौंसिलने बेगमोंको आश्वासन था कि भविष्यमें उनसे धनकी माँग नहीं की जायेगी। वारेन होस्टिंग्सने इस प्रकारका वचन देनेका विरोध किया था, किन्तु कौंसिलके अन्दर मतदानमें वह पराजित हो गया था। इसके बाद ही १७८० ई० में चेतसिंह कांड (दे०) हुआ।

हेस्टिंग्स अवधकी बेगमोंसे नाराज था, क्योंकि १७७५ ई० में उन्होंने कौंसिलमें उसके विरोधियोंका समर्थन प्राप्त किया था। अतः १७८१ ई० में नवाब अवधने जब बकाया भुगतान करनेमें उस समय तक अपनी असमर्थता व्यक्त की जब तक उसे अपनी माँ और दादी-की दौलत न दिला दी जाय तो हेस्टिंग्सने तत्काल उसके अनुरोधको स्वीकार कर ब्रिटिश रेजिडेन्ट मिडिल्टनको आदेश दिया कि वह बेगमोंपर बकाये की धनराशिका भुगतान करनेके लिए दबाव डाले। चूंकि रेजिडेन्ट मिडिल्टनने जोर जबर्दस्ती करनेमें समुचित तत्परता नहीं दिखायी, अतः उसके स्थानपर ब्रिस्टोको नियुक्त कर दिया गया जिसने बेगमोंके उच्च पदस्थ कर्मचारियों-को कैदमें डलवा दिया, उनको बेड़ियाँ डलवा दीं, उनका भोजन भी बन्द करवा दिया था और कदाचित उनको कोड़े भी लगवाये। उन्हें इतनी कठोर यातनाएँ दी गयीं कि उनकी दुर्दशा देखकर स्वयं नवाब भी विचलित होने लगा, किन्तु हेस्टिंग्स टससे मस नहीं हुआ और कोई समझौता-वार्ता चलाने अथवा दया प्रकट करनेकी मनाही कर दी। आखिरमें बेगमोंको बाध्य होकर रुपया देना पड़ा, जिसके सम्बन्धमें कलकत्ता स्थित कौंसिलने १७७५ ई० में उन्हें गारन्टी दी थी कि अब उनसे धनकी कोई माँग नहीं की जायगी। सारा मामला निःसन्देह घिनावना, क्षुद्रतापूर्ण और राज्यकी आवश्यकताओंको देखते हुए भी अनुचित था। हेस्टिंग्सकी बादमें दी गयी यह दलील बड़ी लचर थी कि चेतसिंहसे साँठगाँठके कारण बेगमोंने ब्रिटिश संरक्षण प्राप्त करनेका अधिकार खो दिया था, तथा कलकत्ताकी कौंसिल द्वारा दी गयी गारन्टी समाप्त हो गयी थी। वारेन हेस्टिंग्सने बेगमोंके खिलाफ द्वेषवश काररवाई की थी और यह विस्मयकारी है कि लार्ड सभाने उसे बेगमोंपर अत्याचार करनेके आरोपसे दोषमुक्त कर दिया। उसने निःसन्देह उनपर अत्याचार किया था, यद्यपि इस प्रकार जोर-जबर्दस्तीसे प्राप्त की गयी धनराशिका उपयोग कम्पनीकी ही सेवामें किया गया था। (**पी० ई० राबर्ट्स—हिस्ट्री आफ दि ब्रिटिश रूल इन इण्डिया, तथा सर अल्फ्रेड ल्याल—वारेन हेस्टिंग्स**)

बेचर, रिचर्ड—अठारहवीं शताब्दीके छठे दशकमें ईस्ट इंडिया कम्पनीका बंगाल स्थित एक अधिकारी, जिसने २४ मई, १७६४ ई० को कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स, लन्दनकी गुप्त समितिको एक रिपोर्ट भेजी। रिपोर्टमें १७७० ई०के भयावह अकालके पूर्व बंगालमें व्याप्त शोचनीय स्थिति का ब्यौरा दिया गया था। उसने लिखा था कि कम्पनी-ने जबसे दीवानीके अधिकार प्राप्त किये हैं, लोगोंकी हालत पहलेसे ज्यादा खराब हो गयी है। जो बंगाल निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासनमें भी फल-फूल रहा था, वह अब विनाशके कगारपर है। किन्तु रिपोर्टकी व्यावहारिक दृष्टिसे उपेक्षा कर दी गयी।

बेडेन पावेल, लार्ड—संसार भरमें बालचर (ब्वाय स्काउट्स) आन्दोलनका प्रतिष्ठापक। प्रारम्भमें इसमें भारतीयोंको शामिल नहीं किया गया था, भारतकी यात्रा करनेके बाद बेडेन पावेलने प्रयास करके इस आन्दोलनसे रंगभेद की नीतिको खत्म करा दिया।

बेण्टिक, लार्ड विलियम कवेण्डिश—बंगालका अन्तिम गवर्नर-जनरल (१८२८–३३ ई०) और भारतके गवर्नर-जनरलों में पहला (१८३३–३५ ई०)। वह पहले मद्रासके गवर्नरकी हैसियतसे भारत आया, लेकिन १८०६ ई० में वेल्लोरमें सिपाही-विद्रोह हो जानेपर उसे वापस बुला लिया गया। इक्कीस वर्षोंके बाद लार्ड एम्हर्स्ट द्वारा त्यागपत्र दे देनेपर उसे गवर्नर-जनरल नियुक्त किया गया और उसने जुलाई १८२८ ई० में यह पद ग्रहण किया। उसके सात वर्षके प्रशासनकालमें कोई युद्ध नहीं हुआ और प्रायः शांति बनी रही। यद्यपि उसने युद्धके द्वारा कोई नया प्रदेश नहीं जीता, तथापि १८३० ई० में कछार (आसाम) के उत्तराधिकारियोंका आपसमें कोई निर्णय न होनेपर उसपर कब्जा कर लिया गया, इसी प्रकार १८३४ ई० में शासकीय अयोग्यताके कारण दक्षिणका कुर्ग इलाका एवं १८३५ ई० में आसामका जयन्तिया परगना ब्रिटिश भारतमें मिला लिया गया, क्योंकि उसके शासकने उन आदमियोंको सौंपनेसे इंकार कर दिया था जो ब्रिटिश नागरिकोंको उड़ा ले गये थे और कालीदेवीके आगे उनकी बलि चढ़ा दी थी।

सामान्यतः लार्ड बेण्टिकने देशी रियासतोंके मामलोंमें

हस्तक्षेप न करनेकी नीतिका अनुसरण किया। लेकिन १८३१ ई० में मैसूर नरेशके लम्बे कुशासनके कारण उसके राज्यको ब्रिटिश प्रशासनके अन्तर्गत ले लिया गया। बेण्टिक भारतीय साम्राज्यके विभिन्न प्रांतोंकी स्वयं जानकारी रखनेके उद्देश्यसे बहुत अधिक दौरे किया करता था। १८२९ ई० में वह मलय प्रायद्वीप गया और उसकी राजधानी पेनांगसे सिंगापुर स्थानान्तरित कर दी। इंग्लैण्डकी सरकारके निर्देशपर उसने सिंधके अमीरोंसे व्यावसायिक संधियाँ कीं, जिसके फलस्वरूप सिन्धुका जलमार्ग अंग्रेजोंकी जहाजरानीके लिए खुल गया। १८३१ ई० में उसने पंजाबके महाराज रणजीत सिंहसे संधि की, जिसके फलस्वरूप अंग्रेजों और महाराजके बीच स्थायी मैत्री स्थापित हो गयी। महाराजने सतलज और ऊपरी सिन्धके मार्गसे व्यापारको प्रोत्साहित करना स्वीकार कर लिया। उसके द्वारा एक गलत नीतिका सूत्रपात इस रूपमें हो गया कि अमीर दोस्त मोहम्मदसे अफगानिस्तानकी राजगद्दी प्राप्त करनेके लिए निर्वासित शाह शुजाको प्रोत्साहित किया गया। इस गलत नीतिके फलस्वरूप १८३८–४२ ई० में प्रथम अफगानयुद्धमें अंग्रेजोंको भारी क्षति उठानी पड़ी और सिंधको अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया गया।

बेण्टिकके शासनका महत्त्व उसके प्रशासकीय एवं सामाजिक सुधारोंके कारण है, जिनके फलस्वरूप वह बहुत लोकप्रिय हुआ। इनका आरम्भ सैनिक और असैनिक सेवाओंमें किफायतशारी बरतनेसे हुआ। उसने राजस्व, विशेषकर अफ़ीमके एकाधिकारसे होनेवाली आयमें भारी वृद्धि की। फलतः जिस वार्षिक बजटमें घाटे होते रहते थे, उनमें बचत होने लगी। उसने भारतीय सेनामें प्रचलित कोड़े लगानेकी प्रथाको समाप्त कर दिया। भारतीय नदियोंमें स्टीमर चालू किये, आगरा क्षेत्रमें कृषि भूमिका बन्दोबस्त कराया, जिससे राजस्वमें वृद्धि हुई, तथा किसानों द्वारा दी जानेवाली मालगुजारीका उचित निर्धारण कर उन्हें अधिकारोंके अभिलेख दिलवाये। बेण्टिकने लार्ड कार्नवालिसकी भारतीयोंको कम्पनीकी निम्न नौकरियोंको छोड़कर ऊंची नौकरियोंसे अलग रखनेकी गलत नीतिको उलट दिया और भारतीयोंकी सहायक जज जैसे उच्च पदोंपर नियुक्तियाँ कीं। जिला मजिस्ट्रेट तथा जिला कलक्टरके पदको मिलाकर एक कर दिया, प्रादेशिक अदालतोंको समाप्त कर दिया, भारतीयोंकी नियुक्तियाँ अच्छे वेतनपर डिप्टी मजिस्ट्रेट जैसे प्रशासकीय पदोंपर कीं तथा डिवीजनल कमिश्नरों (मंडल आयुक्त) के पदोंकी स्थापना की। इस प्रकार उसने भारतीय प्रशासकीय ढाँचेको उसका आधुनिक रूप प्रदान किया।

लार्ड बेण्टिकके सामाजिक सुधार भी कुछ कम महत्वके नहीं थे। १८२९ ई० में उसने सती प्रथाको समाप्त कर दिया। कर्नल स्लीमनके सहयोगसे उसने ठगीका भी उन्मूलन किया। उस समय ठगोंका देशव्यापी गुप्त संगठन था, वे देश भरमें घूमा करते थे और भोले-भाले यात्रियोंकी रुमालसे गला घोंटकर हत्या कर दिया करते थे और उनका सारा मालमत्ता लूट लेते थे। १८३२ ई० में धर्म-परिवर्तनसे होनेवाली सभी अयोग्यताओंको समाप्त कर दिया गया। १८३३ ई० में कम्पनीके अधिकार पत्रको अगले बीस वर्षोंके लिए नवीन कर दिया गया। इससे कम्पनी चीनके व्यवसायपर एकाधिकारसे वंचित हो गयी। वह अब मात्र प्रशासकीय संस्था रह गयी। नये चार्टर एक्ट द्वारा अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। बंगालके गवर्नर-जनरलका पद नाम बदलकर भारतका गवर्नर-जनरल कर दिया गया। गवर्नर-जनरलकी कौंसिलकी सदस्य संख्या बढ़ाकर चार कर दी गयी तथा यह सिद्धांत निर्दिष्ट किया गया कि कोई भी भारतीय, मात्र अपने धर्म, जन्म अथवा रंगके कारण कम्पनीके अन्तर्गत किसी पदसे, यदि वह उसके लिए योग्य हो, वंचित नहीं किया जायेगा। १८३२ ई० के चार्टर एक्टमें यह निर्देश दिया गया था कि भारतीयोंमें शिक्षाका प्रसार करनेके लिए उचित कदम उठाये जाने चाहिए। अतः लार्ड विलियम बेण्टिकने आदेश दिया कि भविष्यमें सरकार द्वारा संचालित स्कूलोंमें शिक्षाका माध्यम अंग्रेजी होनी चाहिए और भारतीयोंमें पश्चिमी शिक्षाका प्रसार करनेके लिए और अधिक धन खर्च किया जाना चाहिए। लार्ड विलियम बेंटिकने १८३५ ई० में कलकत्ता मेडिकल कालेजकी स्थापना की। उसी वर्ष मार्चके महीनेमें वह अपने उच्च पदसे सेवा-निवृत्त हो गया। लार्ड विलियम बेण्टिकने अपने प्रशासनकालमें जिस उदारता तथा सहानुभूतिका परिचय दिया, उसके फलस्वरूप भारतीयोंमें उसे अपने किसी भी पूर्वाधिकारीको अपेक्षा अधिक लोकप्रियता मिली। (**थार्न्टन,–हिस्ट्री आफ इण्डिया; मार्शमैन–हिस्ट्री आफ इण्डिया; डी० बूलगर० डी०–लाइफ आफ लार्ड बेण्टिक**)

बेथ्यून, जान इलियट ड्रिन्कवाटर (१८०१–६२)–भारतकी सर्वोच्च परिषद्का विधि-सदस्य। उसने भारतीयों, विशेषकर महिलाओंके लिए शिक्षा-प्रसारके कार्यमें

काफी रुचि ली और कलकत्तामें उच्च वर्गकी भारतीय लड़कियोंमें पश्चिमी शिक्षाका प्रसार करनेके लिए बेथ्यून स्कूलकी स्थापना की। आगे चलकर इस संस्थाका स्तर पर्याप्त ऊँचा उठ गया और आजकल कलकत्ताका यह प्रसिद्ध बालिका महाविद्यालय हो गया है।

बेदारा (बिदर्रा) की लड़ाई—नवम्बर, १७५९ ई०में छिड़ी। कलकत्तासे कुछ मील दूर चिनसुरामें रहनेवाले डच लोग अंग्रेजोंको अपदस्थ करना चाहते थे। उन्होंने नवाब मीरजाफरके साथ साँठ-गाँठकर जावा-स्थिति अपनी बस्तियोंसे सैनिक सामग्री मँगानेका प्रयास किया। राबर्ट क्लाइवने जो उस समय बंगालका गवर्नर था, डचोंके इरादेका पूर्वानुमान लगाकर उन्हें चिनसुराके निकट बेदाराकी लड़ाईमें पराजित कर दिया। इससे डचोंकी प्रभुताकी सभी सम्भावनाएँ नष्ट हो गयीं और बंगालमें अंग्रेजोंका कोई यूरोपीय प्रतिस्पर्द्धी शेष नहीं रह गया।

बेनफील्ड, पाल—एक सूदखोर अंग्रेज महाजन जिसने कर्नाटक-के नवाबपर ईस्ट इंडिया कम्पनीके प्रभुत्वकालके आरम्भिक वर्षोंमें नवाबको ब्याजकी अत्यधिक ऊँची दरोंपर ऋण दिया था। बेनफील्डका बोर्ड आफ कन्ट्रोलके अध्यक्ष विलियम डुंडासपर काफी प्रभाव था। डुंडासने कार्यकारी गवर्नर-जनरल सर जान मैक्फर्सनको प्रभावित कर उससे आदेश दिलवा दिया कि नवाबपर लदे कर्जका भुगतान बिना जाँच-पड़तालके बेनफील्ड तथा अन्य लोगोंको कर्नाटकके राजकोषसे करा दिया जाय। कर्ज लगभग पचास लाख पौंडका था। यह भ्रष्टाचारका लज्जाजनक दृष्टान्त था जो डण्डासके आदेशपर किया गया।

बेबादल खां—आगराका प्रसिद्ध और उत्कृष्ट जौहरी। बादशाह शाहजहाँके आदेशपर तख्त-ए-ताऊसका निर्माण उसीकी देखरेखमें हुआ था।

बेरीगाजा—पश्चिम समुद्र तटवर्ती नगर भडौंचका यूनानी नाम। इसका प्राचीन नाम भृगुकच्छ था। प्राचीनकालमें यह व्यस्त बन्दरगाह था। यहाँसे पश्चिममें मैडागास्कर और पूर्वमें पूर्वी द्वीपसमूह तक जहाज जाते थे।

बेली, कर्नल—ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेनाका एक अधि-कारी। दूसरे आंग्ल-मैसूर युद्धके दौरान नवाब हैदरअली-के पुत्र टीपूने कांजीवरम्‌के निकट कर्नल बेली और उसके ३७२० सिपाहियोंको घेर लिया। उसके बहुतसे सैनिक मारे गये और बेली बन्दी बना लिया गया। बादमें उसको रिहा कर दिया गया, लेकिन इस पराजयके बाद उसे किसी महत्त्वपूर्ण पदपर नियुक्त नहीं किया गया।

बेली, बटरवर्थ—लार्ड एम्हर्स्टके प्रशासनकालमें गवर्नर-जनरलकी कौंसिलका वरिष्ठ सदस्य। मार्च १८२८ ई० में एम्हर्स्ट द्वारा त्यागपत्र दे देनेपर जुलाई १८२८ ई० तक, जब लार्ड विलियम बेण्टिकने गवर्नर-जनरलका कार्यभार सम्हाला था, यह कार्यकारी गवर्नर-जनरल रहा। उसके अल्प प्रशासनकालमें कोई उल्लेखनीय घटना नहीं घटी।

बेसनगर—पूर्वी मालवा-स्थित प्राचीन नगर विदिशाका आधुनिक नाम। शुंग राजाओंके शासनकालमें इसका बहुत महत्त्व था और बादमें भी अनेक वर्षों तक यह स्थानीय शासकोंकी राजधानी बना रहा। यहाँके शासकों-ने भारतकी पश्चिमोत्तर सीमापर स्थित यवन (यूनानी) शासकोंके साथ राजनीतिक सम्बन्ध बना रखे थे। यहाँ भगवान वासुदेवके सम्मानमें तक्षशिलाके राजा एंटिआल्किडसके राजदूत हेलियोडोरोस द्वारा लगभग १३५ ई० पू० में एक गरुड़ध्वज स्थापित कराया गया था।

बेसीन—बर्मामें इरावदी नदीके पश्चिमोत्तर कोणमें स्थित एक बन्दरगाह, जिसको ब्रिटिश भारतीय सेनाने द्वितीय बर्मी-युद्ध के समय मई, १८५२ ई० में अपने अधिकारमें कर लिया था।

बेसेन्ट, श्रीमती एनी (१८४७-१९३३ ई०)—थियोसोफिकल विचारधाराकी सुप्रसिद्ध प्रचारिका। लन्दनके विलियम पेजउडकी पुत्री; अक्तूबर १८४७ ई०में जन्म। बीस वर्षकी उम्रमें रेवरेंड फ्रैंक बेसेंटके साथ उनका विवाह हुआ, किन्तु यह विवाह-सम्बन्ध सुखदायी नहीं सिद्ध हुआ। अत: श्रीमती बेसेण्टने १८७३ ई०में अपने पतिसे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। अगले ग्यारह वर्षों तक चार्ल्स ब्राडलाके घनिष्ठ सम्पर्कमें रहकर वे राजनीतिज्ञ तथा स्वतन्त्र विचारोंकी प्रचारिका बन गयीं। इस दिशामें उन्होंने अनेक व्याख्यान दिये और 'अजैक्स'के उपनामसे लेख लिखे। धीरे-धीरे उनके विचार क्रान्ति-कारी समाजवादकी ओर मुड़ गये। फलस्वरूप १८८९ ई०में उनके तथा चार्ल्स ब्राडलाके बीच गम्भीर मतभेद उत्पन्न हो गया। तदनन्तर उनकी दृढ़ निष्ठा थियोसिफी (ब्रह्मविद्या) में हो गयी, वे हेलेने ब्लावत्सकीके निकट सम्पर्कमें आयीं और भारतको उन्होंने अपना घर बना लिया। उन्होंने बनारसमें सेन्ट्रल हिन्दू कालेज नामसे विशाल शिक्षाकेन्द्र स्थापित किया। १९०७ ई०में वे थियोसोफि-कल सोसायटीकी अध्यक्ष निर्वाचित हुईं। १९१६ ई०में उन्होंने इंडियन होमरूल लीगकी स्थापना की और उसकी प्रथम अध्यक्ष बनीं। १९१७ ई०में भारतीय राष्ट्रीय

कांग्रेसके कलकत्ता अधिवेशनकी अध्यक्ष बनायी गयीं। बादमें उन्होंने अपनेको यद्यपि कांग्रेसके गरमदलसे अलग कर लिया था, तथापि भारत सरकार उन्हें खतरनाक व्यक्ति मानती थी और १९१७ ई०में उन्हें कुछ समयके लिए नजरबंद भी रखा गया। 'मान्टेग्यू सुधारों'की घोषणा होनेपर श्रीमती बेसेन्टने पहले उनका समर्थन किया, किन्तु थोड़े समयके बाद उन्होंने उग्र राष्ट्रवादियोंके दृष्टिकोणका जोरदार समर्थन आरम्भ कर दिया। इसी बीच उन्होंने अपने धर्मपुत्र जे० कृष्णमूर्तिको भावी विश्व-गुरुके रूपमें प्रतिष्ठित किया और नये अध्यात्मवादी दलकी स्थापना की। १९२६–२७ ई०में श्रीमती एनी बेसेन्टने कृष्णमूर्तिके साथ इंग्लैंड और अमेरिकाका व्यापक भ्रमण किया और अपने जोशीले भाषणोंमें उनके नये मसीहा होनेके दावेका समर्थन किया। भारत लौटने पर बालक कृष्णमूर्तिके पिताके साथ उनकी मुकदमेबाजी शुरू हो गयी। इस कांडसे उनकी प्रतिष्ठाको काफी धक्का लगा। १९३३ ई०में भारतमें उनका निधन हुआ। अपनी भाषण-पटुता, संगठन-क्षमता और स्वाधीनता-प्रेमके कारण वे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनकी अग्रगामी नेता बन गयीं, यह निश्चय ही एक अंग्रेज महिलाके लिए अभूतपूर्व सम्मान था। प्रतिभा-सम्पन्न लेखिका और स्वतन्त्र विचारकके नाते उन्होंने ब्रह्म-विद्यापर प्रचुर रूपमें लिखा है। उन्होंने अपनी आत्मकथा १८९३ ई०में प्रकाशित की थी, और १९०२ ई०में प्रकाशित 'रिलीजस प्राबलेम इन इंडिया' (भारतमें धार्मिक समस्या) उनकी अन्तिम महान् साहित्यिक कृति थी। 'हाऊ इंडिया राट फार फ्रीडम'में उन्होंने भारतको अपनी मातृभूमि बताया है।

बेस्ट, कप्तान—अंग्रेजोंके लड़ाकू जहाज 'ड्रैगॉन'का कप्तान। नवम्बर १६१२ ई०में एक अन्य छोटे जहाज 'ओसियान्दर'के सहारे उसने हिन्द महासागरमें पुर्तगाली बेड़ेको, जिसमें चार बड़े और पचीस छोटे जहाज थे, हरा दिया। इसी घटनासे भारतीय राजनीतिमें अंग्रेजी जहाजी बेड़ेका दबदबा छा गया, क्योंकि इस लड़ाईकी खबरसे मुगल बादशाह जहाँगीरका यह पुराना ख्याल जाता रहा कि यूरोपियन शक्तियोंमें पुर्तगाली सबसे शक्तिशाली हैं।

बैक्ट्रिया (बाख्त्री)—हिन्दू कुश और आक्सस नदीके बीचका क्षेत्र। यह क्षेत्र सीरियाके सिल्यूकीडियन साम्राज्यका अंग था, लेकिन २०२ ईसा पूर्वमें यहाँ युथिडिमास नामक यवन राजाने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। उसके उत्तराधिकारी डेमेट्रिअसने अफगानिस्तान और पंजाबके क्षेत्रको जीत लिया। यूनानी इतिहासकारोंने उसे भारतका राजा लिखा है। उसने बैक्ट्रियाके यवनों और पश्चिमोत्तर भारतके लोगोंमें निकट सम्पर्क स्थापित कर दिया। शीघ्र ही उत्तर-पश्चिमी भारतके विभिन्न भागोंमें भारतीय-यवन राजाओंके छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये, जिनमें मेनाण्डर सबसे अधिक विख्यात है। बैक्ट्रियाके साथ इस सम्पर्कके परिणामस्वरूप भारतीय कलापर यवन प्रभाव पड़ा और मूर्तिकलाकी गंधार-शैलीका विकास हुआ।

बैजाबाई महारानी—दौलतराव सिंधिया (दे०) की पत्नी। १८२७ ई०में दौलतरावकी मृत्युके बाद वह नाबालिग उत्तराधिकारी जनकोजीरावकी संरक्षिका बनी। वह बड़ी महत्त्वाकांक्षी महिला थी और सारा राज्य-प्रबंध अपने नियंत्रणमें रखना चाहती थी। इसी वजहसे राज्य-प्रबंधमें छल-कपट और गड़बड़ी बढ़ गयी और उसके परिणामस्वरूप १८३३ ई०में उसको राज्यसे निकाल दिया गया।

बैरकपुरका विद्रोह—बैरकपुर छावनीमें दो बार विद्रोह हुआ। पहला १८२४ ई०में और दूसरा १८५७ ई०में हुआ। यह छावनी हुगलीके किनारे कलकत्तासे १५ मील उत्तर स्थित थी। यहाँ गवर्नर-जनरलका देहाती निवास-स्थान था और कम्पनीकी कुछ रेजीमेन्टें भी यहाँ रहती थीं। १८२४ ई०में भारतीय सेनाका एक दस्ता प्रथम आंग्ल-बर्मी युद्ध (१८२४–२६ ई०)में लड़नेके लिए भेजा जानेवाला था। भारतीय सेनाके सिपाही जो इस दस्तेमें थे, उन्हें उस समयके नियमोंके अनुसार अपनी यात्राकी व्यवस्था खुद करनी थी जो यदि असम्भव नहीं तो भी बहुत कठिन कार्य था। लेकिन इस कठिनाईको दूर करनेके लिए कुछ नहीं किया गया। इसके अलावा हिन्दू सिपाही समुद्री यात्रासे भयभीत रहते थे, क्योंकि उनका विश्वास था कि समुद्री यात्रा करनेसे वे जातिच्युत हो जायेंगे। अतः ४७ वीं नेटिव इन्फेन्टरी तथा बैरकपुर स्थित कुछ अन्य रिसालोंने परेडके मैदानमें आदेशोंका पालन करनेसे इंकार कर दिया। पर अंग्रेज तोपचियों तथा इसके बंदूकधारी ब्रिटिश रिसालोंको उनपर गोली वर्षाका आदेश दिया गया, जिससे परेडके मैदानमें बूचड़खानेका दृश्य उपस्थित हो गया। इस घटनासे ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेनाके भारतीय सैनिकोंमें अंग्रेजोंके विरुद्ध भारी कटुता फैल गयी। बैरकपुरमें सिपाहियोंकी दूसरी बगावत २९ मार्च, १८५७ ई०को हुई, जब मंगल पांडे नामक ३४ वीं नेटिव इन्फेन्टरीके एक सिपाहीने अपनी रेजिमेन्टके यूरोपीय एड्जुटेन्टको परेड मैदानपर

सभी सहयोगियोके सामने काट डाला और कोई सिपाही अपने स्थानसे हिला तक नहीं। तत्काल ब्रिटिश सैनिकोंको बुलाया गया और विद्रोहियोंको या तो मार डाला गया या उन्हें कठोर रूपमें दंडित किया गया। इस बगावतसे बैरकपुर स्थित भारतीय सिपाहियोंमें काफी उत्तेजना फैल गयी और अन्तमें उसने व्यापक सिपाही-विद्रोहका रूप ग्रहण कर लिया, जिससे ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यकी नींव हिल गयी।

बैरम खाँ—बादशाह हुमायूँका सहयोगी तथा उसके नाबालिग पुत्र अकबरका वली अथवा संरक्षक। १५५६ ई० में हुमायूँकी मृत्यु होनेपर बैरम खाँने अकबरको उसका उत्तराधिकारी तथा दिल्लीका बादशाह घोषित कर दिया, लेकिन शीघ्र ही दिल्ली उसके हाथसे निकल गयी। बैरम खाँके सेनापतित्वमें ही १५५६ ई० में पानीपतकी दूसरी लड़ाईमें अकबरकी विजय हुई और दिल्लीके तख्तपर उसका अधिकार हुआ। इसके बाद चार वर्ष बाद तक बैरम खाँ अकबरका संरक्षक रहा और इस अवधिमें मुगल सेनाओंने ग्वालियर, अजमेर और जौनपुर राज्योंको जीत कर मुगल साम्राज्यमें उन्हे शामिल कर लिया। बैरम खाँने मालवा जीतनेकी तैयारियाँ भी शुरू कर दीं। परन्तु इस बीच बहुतसे दरबारी और स्वयं अकबर उसके विरुद्ध हो चुका था। अकबर १८ वर्षका हो चुका था और उसके हाथकी कठपुतली बनकर नहीं रहना चाहता था। अतः १५६० ई० में उसने बैरम खाँको बर्खास्त कर दिया। बैरम खाँने पहले तो उसकी आज्ञा चुपचाप मान ली और मक्का जानेकी तैयारियाँ शुरू कर दी, परन्तु इसके बाद ही उसने बगावतका झंडा बुलन्द कर दिया। अकबरने उसे परास्त कर दिया और उसके साथ दयाका बर्ताव किया। उसने उसे मक्का जानेकी इजाजत दे दी। परन्तु १५६१ ई० में मक्का जाते समय मार्गमें पाटन (गुजरात) में एक पठानने उसकी हत्या कर दी। बादमें उसका पुत्र अब्दुर्रहमान अकबरका प्रमुख दरबारी बना।

बैर्ड, सर डेविड—लार्ड वेलेजली (१७९८–१८०५ ई०) के शासनकालमें कम्पनीकी सेनाका उच्च अधिकारी। १८०१ ई० में बैर्डके नेतृत्वमें अंग्रेजी सेना लालसागर भेजी गयी जिससे मिस्रसे फ्रांसीसियोंको निकालनेमें मदद पहुँचायी जा सके। बैर्डके काहिरा पहुंचनेके पहले ही फ्रांसीसियोंने सिकन्दरियामें आत्मसमर्पण कर दिया था। लेकिन बैर्डने सेनाका संचालन बड़ी योग्यतासे किया, इस वजहसे उसे 'सर' की उपाधिसे विभूषित किया गया।

बोइन, बेनोयद (१७५१-१८३०)—सेवाय (फ्रांस) में जन्म। सैनिकका पेशा ग्रहण कर उसने १७७८ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनीकी मद्रासी पलटनमें नौकरी कर ली। कुछ समय बाद यहांसे निकल कर महादजी शिन्देके यहाँ नौकर हो गया और शिन्देकी सेनाओंको यूरोपीय युद्धकलाकी शिक्षा देने लगा। इस कार्यके लिए उसे बहुत अधिक वेतन मिलता था। बोइनकी ही सहायतासे शिन्दे ने जून १७९० ई० में पाटनका युद्ध जीता और मेड़ताके युद्ध (सितम्बर १७९० ई०) में पठानों, राजपूतों और मुगलोंको एक साथ पराजित किया। इसके बाद वह शिन्देका सेनाध्यक्ष हो गया। उसने लखेरीके युद्ध (सितम्बर १७९३ ई०) में होलकरको पराजित किया। १७९४ ई० में महादजी शिन्देकी मृत्युके पश्चात् बोइनने उसके उत्तराधिकारी दौलतराव शिन्देकी सेवा शुरू की, लेकिन स्वास्थ्य खराब हो जानेके कारण दिसम्बर १७९५ ई० में त्यागपत्र दे दिया। दूसरे वर्ष वह लंदन होकर फ्रांस गया तथा वहीं बस गया। १८३० ई० में मृत्युके उपरान्त उसने २ करोड़ फ्रैंककी सम्पत्ति छोड़ी।

बोगाज कोई—एशिया माइनरमें एक स्थान, जहाँ महत्त्वपूर्ण पुरातत्त्व सम्बन्धी अवशेष प्राप्त हुए हैं। वहाँके शिलालेखोंमें जो चौदहवीं शताब्दी ई० पू० के बताये जाते हैं, इन्द्र, दशरथ, आर्त्ततम आदि आर्यनामधारी राजाओंका उल्लेख है और इन्द्र, वरुण और नासत्य आदि आर्य देवताओंसे संधियोंका साक्षी होनेकी प्रार्थना की गयी है। इस प्रकार बेगाज कोईसे आर्योंके निष्क्रमण मार्गोंका संकेत मिलता है। **(हाल—हिस्ट्री आफ इजिप्ट)**

बोंग्ले, जार्ज—ईस्ट इंडिया कम्पनीका बंगालमें स्थित एक अधिकारी, जिसे १७७४ ई० में गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिग्सने व्यावसायिक सुविधाएँ प्राप्त करनेके लिए पहले पहल तिब्बत भेजा था। उसे अपने उद्देश्यमें नगण्य सफलता मिली।

बोदापाया- बर्माका राजा (१७७९–१८१९ ई०) जिसने १७८५ ई० में अराकानको और १८१३ ई० में मणिपुरको अपने राज्यमें मिला लिया तथा १८१६ ई० में आसामपर चढ़ाई की। तदनन्तर उसने ब्रिटिश भारत सरकारसे चटगाँव, ढाका तथा मुर्शिदाबाद समर्पित कर देनेकी माँग की, किन्तु स्यामियोंके हाथों पराजित हो जानेसे उसकी महत्त्वाकांक्षाओंपर लगाम लग गयी और १८१९ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। लार्ड हेस्टिंग्सने, जो उस समय गवर्नर-जनरल था, बर्मी राजाका पत्र इस टिप्पणीके साथ वापस कर दिया कि कदाचित् यह नकली

है। इस प्रकार कुछ समयके लिए आँग्ल-बर्मी युद्ध टल गया।

बोध गया—बिहारके आधुनिक गया नगरसे ६ मील दक्षिण नैरंजना नदीके तटपर स्थित। यहाँ बोधि वृक्षके नीचे सिद्धार्थ गौतमको बोधि प्राप्त हुई जिससे वे 'बुद्ध' कहे जाने लगे। बौद्धोंका यह पवित्र तीर्थ स्थान है। आठवें स्तम्भ-लेखके अनुसार सम्राट् अशोक अपने राज्यभिषेक-के दसवें वर्ष यहाँ आया था। अशोकने बोध गयामें एक विहार भी निर्मित कराया। कालांतरमें यह स्थान बौद्धोंके लिए तीर्थ बन गया और भारतसे बाहरके बौद्ध तीर्थ-यात्रियोंका भी यहाँ आना आरम्भ हो गया। समुद्रगुप्त (३३५—७५ ई०) के शासनकालमें सिंहलद्वीप-के राजा मेघवर्णने भी गुप्त सम्राट्की अनुमतिसे यहाँ एक विहार निर्मित कराया था। लेकिन ४०५—११ ई० में भारत-भ्रमण करनेवाले चीनी यात्री फाह्यानने इस स्थानको जंगलोंसे घिरा हुआ पाया। सातवीं शताब्दीके आरम्भमें इस स्थानपर और संकट उस समय आया जब गौड़ अथवा मध्य बंगालके राजा शशांकने जो बौद्ध धर्म से द्वेष करता था, पवित्र बोधिवृक्षको कटवा कर जलवा दिया। बादमें ह्युएनसांगके अनुसार मगधके स्थानीय राजा पूर्णबर्मा द्वारा, जिसे अशोकका बंशज बताया गया है, यहाँ दूसरा वृक्ष लगाया गया। इस स्थानकी अब समुचित देखरेख होती है, यहाँ अच्छा विश्रामालय बन गया है और देश-देशान्तरोंसे बौद्ध तीर्थयात्री यहाँ निरन्तर आते रहते हैं। (**स्मिथ०—पृष्ठ ३०३, ३१६, ३६७**)

बोधिसत्व—बौद्धोंके महायान सम्प्रदायके अनुसार जो अर्हत बुद्धपदवी पानेके अधिकारी होनेपर भी महाकरुणासे प्रेरित होकर सबके दुःखनाशके लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं, वे 'बोधिसत्व' कहलाते हैं। महा-यानियोंमें बुद्धोंके साथ-साथ बोधिसत्त्वोंकी पूजा और भक्तिका विशेष स्थान है। (**सर सी० ईटिलयर कृत हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म**)

बोप देव—संस्कृतका एक प्रसिद्ध वैयाकरण और कवि जो देवगिरिके पश्चात्कालीन यादव नरेशोंके समय विद्यमान था। उसका रचा हुआ 'मुग्धबोध' संस्कृत व्याकरणका मानक ग्रंथ माना जाता है।

बोरोबुदुर—जावा द्वीपका सर्वाधिक प्रसिद्ध बौद्ध स्तूप, जिसे ७५०—८५४ ई० में शैलेन्द्र राजवंशके एक शासक-ने बनवाया था। इसके निर्माताका नाम ज्ञात नहीं है और न इसके निर्माणकी तिथि ज्ञात है। बोरोबुदुर स्तूप आज भी शैलेन्द्र राजाओंके वैभवपूर्ण युगके स्मारकके रूपमें विद्यमान है। इसे संसारका आठवाँ आश्चर्य माना जा सकता है। इसकी वास्तुशैलीपर भारतीय प्रभाव सुस्पष्ट है। यह एक पहाड़ीकी चोटीपर स्थित है।

इसमें ९ खंड हैं जो उत्तरोत्तर एक दूसरेसे छोटे बनाये गये हैं। शीर्षस्थ खंडपर घंटेकी आकृतिका स्तूप है। इसका आकार अति विशाल है। सबसे नीचेके चौकोर खंडकी लम्बाई १३१ गज है। बुद्धकी अनेक मूर्तियाँ इसके शिलापट्टोंपर उत्कीर्ण हैं। प्रदक्षिणा-मार्गके शिला-पट्टोंपर बुद्धके जीवनकी अनेक घटनाएँ उत्कीर्ण हैं, जिनमेंसे कुछ 'ललित विस्तर' से ली गयी हैं। यह स्तूप जावा और उसके पड़ोसके द्वीपोंपर शासन करनेवाले भारत वंशी राजाओंकी वास्तुशिल्पीय परिकल्पनाकी भव्यताका उत्कृष्ट उदाहरण है। (**आर० सी० मजूमदार—सुवर्णद्वीप, जिल्द दो तथा ए० के० कुमार स्वामी—हिस्ट्री आफ इंडियन एण्ड इंडोनेशियन आर्ट**)

बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल—भारतमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके प्रशासन-को ब्रिटिश सरकार द्वारा नियन्त्रित करनेके लिए १७८४ ई०के पिटके इंडिया ऐक्टके अन्तर्गत गठित। प्रिवी कौंसिल-के मेम्बरोंमेंसे छः व्यक्ति इसके सदस्य हुआ करते थे, जिन्हें इस कार्यके लिए कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाता था। उनमेंसे ही एक इसका अध्यक्ष होता था, जिसे निर्णायक मताधिकार प्राप्त था। बोर्डको नियुक्तियाँ करने अथवा वाणिज्य सम्बन्धी मामलोंमें हस्तक्षेप करने-का कोई अधिकार नहीं था। लेकिन भारत सरकारके समस्त असैनिक अथवा सैनिक मामलों तथा राजस्वसे सम्बन्धित समस्त मामलोंकी देख-रेख, निर्देश और उनके नियंत्रणका अधिकार उसीके हाथमें था। कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्सके द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनीको जो खरीते भेजे जाते थे, उनपर इसकी सहमति प्राप्त होना आव-श्यक था। वह बोर्ड आफ डाइरेक्टर्सकी बिना स्वीकृतिके स्वयं भी आदेश भेज सकता था। बोर्ड आफ कन्ट्रोलका प्रथम अध्यक्ष हेनरी डुण्डास, पिटका एक मित्र तथा उसके मंत्रिमंडलका सदस्य था। डुण्डासके बुद्धिमत्तापूर्ण कार्योंके फलस्वरूप अध्यक्ष पदको शीघ्र ही सेक्रेटरी आफ़ स्टेट फ़ार इंडिया (भारत-मंत्री) के समकक्ष बना दिया। इस प्रकार शनैः-शनैः भारतके प्रशासनपर बोर्ड आफ़ कन्ट्रोलकी सत्तामें काफी वृद्धि हो गयी। गदरके उपरान्त जब १८५९ के कानूनके अन्तर्गत भारतका प्रशासन ब्रिटिश राजसत्ताको हस्तान्तरित किया गया, तब बोर्ड आफ कन्ट्रोलको समाप्त कर दिया गया। उसका अध्यक्ष सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया (भारत-

मंत्री) हो गया और बोर्डका विलयन उसकी भारत परिषद्में कर दिया गया। लार्ड एलनबेरा बोर्ड आफ कंट्रोलका अन्तिम अध्यक्ष था। (सर सी० इलबर्ट—गवर्नमेण्ट आफ इंडिया; बी० कीथ—कांस्टीट्यूशनल हिस्ट्री आफ इंडिया)

बोर्ड आफ ट्रेड—ईस्ट इंडिया कम्पनीके वरिष्ठ अधिकारियोंका एक संगठन, जो भारतके प्रशासनके साथ-साथ कम्पनीकी व्यापारिक काररवाइयोंको भी नियंत्रित करता था। इसके सभी मेम्बर व्यक्तिगत रूपसे व्यापारमें रुचि लेते थे, उनके प्रत्यक्ष अथवा परोक्षके समर्थनसे ईस्ट इंडिया कम्पनीके सभी कर्मचारी निजी व्यवसाय करने लगे, जिससे देश और साथ ही कम्पनीको भी काफी आर्थिक क्षति होती थी। लार्ड कार्नवालिसके आरम्भिक कार्योंमें इसको नियंत्रित करनेका काम सबसे महत्त्वपूर्ण था। उसने पहले इसके भ्रष्ट सदस्योंको निकाल दिया और इसका पुनर्गठन कर ऐसे सदस्योंको उसमें रखा जिनका प्रशासनसे कोई सरोकार नहीं था। इस प्रकार बोर्ड कम्पनीके केवल व्यावसायिक कार्योंकी ही देखरेख करता था। धीरे-धीरे इसका महत्त्व कम होता गया क्योंकि कम्पनीके व्यापारिक अधिकार सीमित थे और १८३३ ई०में व्यावसायिक संगठनके रूपमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके समाप्त किये जानेपर यह भी समाप्त हो गया।

बोर्ड आफ रेवेन्यू (राजस्व परिषद्)—इसका गठन १७७२ ई०में वारेन हेस्टिंग्सने उस समय किया जब ईस्ट इंडिया कम्पनी दीवानीका कार्य कर रही थी। दो नायब दीवानोंके पद समाप्त कर दिये गये और आरम्भमें गवर्नर तथा उसकी परिषद्ने राजस्व परिषद्के रूपमें कार्य शुरू किया, किन्तु १७८७ ई०में इसे पुनर्गठित किया गया। गवर्नरकी परिषद्का एक सदस्य इसका अध्यक्ष तथा कम्पनीके कुछ वरिष्ठ अधिकारी सदस्य बनाये गये। लार्ड कार्नवालिसने सर जान शोरकी नियुक्ति राजस्व परिषद्के अध्यक्षके रूपमें की और उसको बंगालमें भू-राजस्वकी दीर्घकालिक प्रणाली शुरू करनेके बारेमें रिपोर्ट प्रस्तुत करनेकी जिम्मेदारी सौंपी। शोर बन्दोबस्तके विरुद्ध था किन्तु लार्ड कार्नवालिसके अनुरोधपर बंगालमें भू-राजस्वकी स्थायी प्रणाली चालू करायी गयी। इस व्यवस्थासे कलकत्ता स्थित राजस्व-परिषद्का महत्त्व बढ़ गया और एक सुयोग्य अधिकारीकी अधीनतामें उसने अपना कार्य भी जारी रखा। राजस्व परिषद् आज भी कार्यरत है और उसका प्रभारी अधिकारी वरिष्ठ प्रशासकोंमेंसे ही होता है। इसका सम्बन्ध मुख्यतः मालके मामलोंसे ही रहता है।

बोलन दर्रा—सिन्धुके मैदानको अफगानिस्तान स्थित कलात और कन्धारके क्षेत्रोंसे जोड़नेवाला संकीर्ण मार्ग। इसपर कब्जा रखना उन अनेक कारणोंमें मुख्य माना जाता था जिनसे उन्नीसवीं शताब्दीमें आंग्ल-अफगान सम्बन्ध प्रभावित होते थे।

बोस, आनन्द मोहन (१८४७-१९०६ ई०)—अपने समयके प्रमुख जनसेवी। मेमनसिंह जिलेके मध्यवर्गीय हिन्दू परिवारमें जन्म। शिक्षा प्रेसीडेन्सी कालेज कलकत्तामें हुई। १८६७ ई०में गणितमें प्रथम श्रेणीमें प्रथम स्थान प्राप्त कर 'प्रेमचन्द रायचन्द छात्रवृत्ति' पायी। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें १८७३ ई०में रैंगलर होनेवाले प्रथम भारतीय। १८७४ ई०में बैरिस्टर बनकर स्वदेश लौट आनेपर इन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभाका राजनीतिज्ञ, शिक्षाविद् और धार्मिक सुधारकके रूपमें देशकी सेवामें उत्सर्ग कर दिया। वे इंडियन एसोसियेशनके, जिसकी स्थापना कलकत्तामें १८७६ ई०में की गयी थी, प्रथम संस्थापक सचिव थे।

१८८३ ई०में भारतीय राष्ट्रीय सम्मेलनका प्रथम अधिवेशन कलकत्तामें संपन्न करानेमें उन्होंने प्रमुख योगदान किया जिससे १८८५ ई०में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी स्थापनाका मार्ग प्रशस्त हुआ। वे आजीवन कांग्रेसके प्रमुख सदस्य रहे और १८९८ ई०में मद्रासमें होनेवाले कांग्रेसके चौदहवें अधिवेशनकी अध्यक्षता की। उन्होंने बंग-भंग विरोधी आन्दोलनमें प्रमुख भाग लिया और स्वदेशी आन्दोलन चलानेका सुझाव देनेवालोंमें वे अग्रणी थे। मृत्युसे कुछ महीने पूर्व उनका अन्तिम सार्वजनिक कार्य, १६ अक्तूबर, १९०५ ई० को कलकत्तामें फेडरेशन हालका शिलान्यास करना था। शिक्षाविदके रूपमें उन्होंने देशकी जो सेवा की, कलकत्ताका सिटी कालेज और मेमनसिंह स्थित आनन्द मोहन कालेज उसका साक्षी हैं। वे अत्यधिक धर्मभीरु और बुद्धिवादी दृष्टिकोणसे सम्पन्न व्यक्ति थे। जीवनके आरम्भिक दिनोंमें वे ब्रह्म समाजी हो गये, उन्होंने ब्रह्म समाज आन्दोलनके विकासमें प्रमुख भाग लिया। वे साधारण ब्रह्म समाजके प्रथम अध्यक्ष भी हुए और इस संगठनका लोकतांत्रिक विधान उन्हींकी देन है। (एच० सी० सरकार—ए लाइफ आफ आनन्द मोहन बोस)

बोस, सर जगदीश चन्द्र (१८५८-१९३७ ई०)—ख्यातिप्राप्त भारतीय वैज्ञानिक, वनस्पति विज्ञान तथा भौतिक

शास्त्री, जन्म बंगालके ढाका जिलेमें। शिक्षा सेण्ट जेवियर्स कालेज, कलकत्ता और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें, जहाँसे उन्होंने १८८४ ई०में उच्च सम्मानके साथ डिग्री प्राप्त की। १८९६ ई०में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयसे वे डी० एस-सी० हुए तथा प्रेसीडेन्सी कालेज कलकत्तामें भौतिक विज्ञानके १८८५ ई०से १९१५ ई० तक प्रोफेसर रहे। १९१७ ई०में कलकत्तामें बोस शोध-संस्थान (बोस रिसर्च इंस्टीच्यूट) की स्थापना की और १९३७ ई०में मृत्यु पर्यन्त वे उसके डाइरेक्टर रहे।

भारतीय वैज्ञानिकोंमें वे अग्रगण्य थे। उन्हें अपने वैज्ञानिक शोध कार्योंमें भारी विघ्न-बाधाओंका सामना करना पड़ा। उन्होंने भौतिक विज्ञानमें विद्युत्-विकिरणके क्षेत्रमें और पूर्ण जीव एवं वनस्पति विज्ञानके क्षेत्रमें महत्त्वपूर्ण अन्वेषणकार्य किया। उन्होंने पौधों पर निद्रा, हवा, भोजन और औषधियोंका प्रभाव सिद्ध करनेके लिए नये प्रयोगात्मक तरीके अपनाये और नये उपकरणोंका आविष्कार किया। उन्होंने प्रदर्शित किया कि पौधों और जन्तुओंके ऊतकों (टिशुओं) की प्रतिक्रियाओंमें कितनी समानता है। उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं—'रिस्पॉन्स इन दि लिविंग एण्ड दि नान लिविंग' (१९०२), 'प्लान्ट रिस्पान्सेज' (१९०६) तथा 'मोटर मेकनिज्म आफ प्लान्ट्स' (१९२८), (पी० गेड्डेस–**दि लाइफ एण्ड वर्क आफ सर जगदीश चन्द्र बोस तथा सर जे० सी० बोस**)

बोस, सुभाषचन्द्र—नेताजीके नामसे विख्यात; मध्यवर्गीय सम्भ्रांत बंगाली परिवारमें २३ जनवरी, १८९७ ई०को कटक, उड़ीसामें जन्म। वे १९१९ ई०में बी० ए० परीक्षा पास कर इंग्लैंड चले गये। १९२० ई०मे इंडियन सिविल सर्विस परीक्षामें बैठे और योग्यताक्रमसे उनका चौथा स्थान आया, लेकिन फिर उससे त्यागपत्र दे दिया। १९२१ ई०में स्वदेश लौटने पर वे चित्तरंजन दास (दे०) और गांधीजीकी प्रेरणासे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसमें शामिल हो गये। उनका राजनीतिक जीवन भारतकी स्वाधीनताके लिए अंग्रेजोंके विरुद्ध एक लम्बे संघर्षकी कहानी है। उन्हें पहली बार दिसम्बर १९२१ ई०में ६ महीनेकी जल हुई और उसके बाद तो उन्हें ग्यारह बार कारावास दंड मिला। उन्होने १९२४ ई०में कलकत्ता कार्पोरेशनके मुख्य अधिकारीके रूपमें अपनी विलक्षण संगठन-क्षमताका परिचय दिया। अक्तूबर १९२४ ई०से १६ मई १९२७ ई० तक उन्हें मांडलेमें न्यू बंगाल आर्डिनेन्सके अन्तर्गत नजरबंद रखा गया।

वे कांग्रेसमें नरम विचारधाराके विरोधी थे और १९२८ ई०में ही कलकत्तामें हुई कांग्रेसकी विषय-समितिकी बैठकमें उन्होंने औपनिवेशिक स्वराज्य सम्बन्धी प्रस्तावका विरोध किया था। वे भारतमें ब्रिटिश शासनको किसी भी रूपमें जारी रखनेके प्रबल विरोधी थे और ब्रिटिश सरकारने उन्हें बराबर विभिन्न तरीकोंसे जेलमें बंदी बना कर रखा। १९३८ ई०में वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके हरिपुरा अधिवेशनके अध्यक्ष चुने गये और १९३९ ई०में महात्मा गांधीके विरोधके बावजूद कांग्रेसके त्रिपुरी अधिवेशनके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। उन्होंने अधिवेशनमें अपने अध्यक्षीय भाषणमें सुझाव दिया कि स्वाधीनताकी राष्ट्रीय मांग एक निश्चित समयके अन्दर पूरी करनेके लिए ब्रिटिश सरकारके सामने रखी जाये, और ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्धारित अवधि तक मांग पूरी न करने पर सविनय-अवज्ञा तथा सत्याग्रह आन्दोलन शुरू कर देना चाहिए। किन्तु कांग्रेस वर्किंग कमेटीके बहुसंख्यक सदस्योंके, जो महात्मा गांधीके कट्टर अनुयायी थे, निरन्तर विरोधके फलस्वरूप उन्हें अप्रैल १९३९ ई०में अध्यक्ष पदसे त्यागपत्र दे देना पड़ा।

उसके बाद उन्होंने दोहरा संघर्ष किया। एक तरफ तो उनका संघर्ष ब्रिटिश भारत सरकारसे था जिसे वे हर तरीकेसे उखाड़ फेंकना चाहते थे और दूसरी ओर महात्मा गांधीकी अहिंसा नीतिकी समर्थक पार्टीसे था। उन्होंने अहिंसाको एक साधनके रूपमें ही स्वीकार किया, साध्यके रूपमें नहीं। उस समय द्वितीय विश्वयुद्ध पूरे जोरपर था और सुभाषचन्द्र इस बातके पक्षमें थे कि भारतको अन्तर्राष्ट्रीय स्थितिका पूरा पूरा लाभ उठाना चाहिए और भारतके लिए सम्मानजनक शर्तोंपर इंग्लैंडके शत्रुओंसे सशस्त्र सहायता प्राप्त करनी चाहिए। स्वाभाविक रूपसे ब्रिटिश सरकार उन्हें सबसे खतरनाक व्यक्ति मानने लगी और उन्हें पुलिसकी कड़ी निगरानीमें घरमें ही नजरबन्द कर दिया।

किन्तु सुभाषचन्द्र २६ जनवरी १९४१ ई०को चुपकेसे अपने घरसे निकल भागे और स्थल मार्गसे काबुल और वहाँसे जर्मनी पहुँच गये। अगले वर्ष दक्षिणपूर्व एशिया स्थित भारतीयोंके एक सम्मेलनमें उन्हें आजाद हिन्द फौज तथा इंडियन इंडिपेन्डेन्स लीगकी जिम्मेदारी सम्भालनेके लिए आमन्त्रित किया गया। तदनुसार १९४३ ई० में सुभाषचन्द्र बोस एक पनडुब्बीमें सवार होकर जर्मनीसे सिंगापुर पहुँचे, जहाँसे उस समय तक अंग्रेजी सेना हट आयी थी। उन्होंने तत्काल उन भारतीय सैनिकोंको

संगठित किया जिन्हें पीछे हटते हुए अंग्रेजोंने मलय प्रायद्वीपमें छोड़ दिया था। उनके द्वारा संगठित सेना 'आजाद हिन्द फौज'के नामसे प्रसिद्ध हुई।

२१ अक्तूबर १९४३ ई०को उन्होंने अस्थायी आजाद हिन्द सरकार गठित करनेका अपना प्रसिद्ध घोषणापत्र जारी किया और इसके बाद भारतको स्वाधीन करनेके लिए पूर्वकी तरफसे ब्रिटिश भारतीय क्षेत्रपर आक्रमण कर दिया। उन्होंने बर्माकी सीमापर आजाद हिन्द फौजके अभियानका स्वयं नेतृत्व किया और मणिपुर स्थित कोहिमा तक बढ़ आये। किन्तु हथियारों और गोला-बारूदकी कमी, विशेष रूपसे हवाई जहाजोंके अभावके कारण उन्हें १९४४ ई०में मणिपुरके मोर्चेसे पीछे हटनेके लिए बाध्य होना पड़ा।

इस बीच जापान पराजित हो गया और नेताजी सुभाषचन्द्र बोसका किसी प्रकारसे कोई सहायता करनेकी स्थितिमें नहीं रह गया। अतः उन्हें सिंगापुरसे एक विमान द्वारा जापानके लिए रवाना होना पड़ा, किन्तु उनका विमान थैहोकू नामक स्थानपर गिर कर नष्ट हो गया और इस दुर्घटनामें नेताजी सुभाषचन्द्र बोसका १८ अगस्त, १९४५ ई०को प्राणांत हो गया, फिर भी उनका तूफानी जीवन निरर्थक नहीं गया। उन्होंने देशवासियोंमें अंग्रेजोंको भारतसे निकाल बाहर करने और स्वाधीनता प्राप्त करनेकी उद्दाम इच्छा जाग्रत कर दी, जिसके फलस्वरूप १९४७ ई०में देश स्वतंत्र हो गया। **(सुभाषचन्द्र बोस कृत आटोबायोग्राफी; पी० डी० सग्गी कृत लाइफ एण्ड वर्क आफ नेताजी सुभाषचन्द्र बोस)**

बोस्कावन, एडमिरल एडवर्ड–जून १७४८ ई०में एक संगठित जहाजी बेड़ेके साथ फ्रांसीसियोंसे बदला लेनेके लिए आया, जिन्होंने मद्रास पर कब्जा कर लिया था। बोस्कावेनने पांडिचेरी पर घेरा डाल दिया, किन्तु उसने यह कारवाई ऐसी ढिलाईके साथ की जिससे पांडिचेरामें फ्रांसीसी फौजें वर्षाऋतु तक डटी रहीं। वर्षाऋतु प्रारम्भ हो जानेपर उसे अपना बेड़ा हटा लेना पड़ा। १७४८ ई०में एक्सला चैपेलकी संधि द्वारा युद्धकी समाप्तिपर वह अपना बेड़ा लेकर इंग्लैंड वापस चला गया।

बौद्धधर्म–की स्थापना गौतम बुद्धने ई० पू० छठीं शताब्दीके उत्तरार्धमें की। यह मूलरूपसे पुनर्जन्म तथा कर्मके सिद्धांतोंपर आधृत है जिनको तत्कालीन भारतीय दार्शनिक इतना सत्य मानते थे कि उनके लिए प्रमाणकी आवश्यकता नहीं थी। कर्मवादकी मान्यताके अनुसार जीवके पूर्वजन्मके अच्छे और बुरे कर्मोंके अनुसार उसकी वर्तमान जीवन-दशा निश्चित होती है। पुनर्जन्मवादके अनुसार मृत्यु होनेपर शरीर नष्ट हो जाता है, किन्तु आत्मा अमर होनेके कारण मुक्ति प्राप्त होनेतक नये जन्म लेता रहता है। परन्तु बौद्धधर्म हिन्दुओंके आत्मवादको नहीं मानता। उसकी मान्यताके अनुसार एक जन्मका कर्मभव दूसरे जन्मके उपपत्तिभवको व्यवस्थित करता है।

बौद्धधर्म चार आर्य सत्योंपर आधृत है : १) संसार दुःखमय है; (२) दुःखोंका कारण है; (३) दुःखका नाश होता है; तथा (४) दुःखोंके नाशके लिए उपाय भी है। बौद्धधर्मकी मान्यताके अनसार दुःखोंका मूल कारण तृष्णा है, अतः तृष्णाके क्षयसे भवचक्र तथा दुःखोंसे मुक्ति मिलती है। तृष्णाके क्षयके लिए अष्टांग मार्गका उपदेश दिया गया है—

(१) सम्यक् दृष्टि अर्थात् चार आर्य सत्यों तथा भवचक्रके कारणोंका ज्ञान; (२) सम्यक् संकल्प अर्थात् सांसारिक विषयों, राग-द्वेष तथा हिंसाके परित्यागके लिए दृढ़ संकल्प; (३) सम्यक् वाक् अर्थात् मिथ्या, अनुचित तथा दुर्वचनोंका परित्याग; (४) सम्यक् कर्म अर्थात् हिंसा, पर-द्रव्यका अपहरण तथा वासनाकी पूर्तिकी इच्छाका परित्याग; (५) सम्यक् आजीविका अर्थात् न्यायपूर्ण जीविका; (६) सम्यक् व्यायाम अर्थात् बुराइयोंका नाश करके अच्छे कर्मके लिए उद्यत रहना; (७) सम्यक् स्मृति अर्थात् लोभादिको रोककर चित्त-शुद्धि; तथा (८) सम्यक् समाधि अर्थात् चित्तकी एकाग्रता।

अष्टांग मार्गको मध्य मार्ग भी कहा गया है, क्योंकि यह दोनों अन्तों (छोरों) लोकमें आसक्ति तथा काय-क्लेशसे बचनेका उपदेश देता है। इस मार्गपर चलनेसे निर्वाणकी प्राप्ति होती है, जिसे बौद्धधर्ममें जीवनका परम लक्ष्य माना गया है।

बौद्धधर्म वेद-वचनको प्रमाण नहीं मानता। वह वैदिक कर्मकाण्ड, बलि, दान तथा स्तोत्र पाठसे होनेवाले किसी फलको स्वीकार नहीं करता तथा व्यावहारिक रूपमें ईश्वरके अस्तित्वमें भी विश्वास नहीं करता। उसकी मान्यताके अनुसार चार आर्य सत्योंको अंगीकार कर लेने तथा अष्टांग मार्गपर चलनेसे तृष्णाका क्षय होता है, जिससे इसी जीवनमें निर्वाणकी प्राप्ति होती है तथा पुनर्जन्मसे छुटकारा मिल जाता है। बौद्धधर्मका द्वार वर्ण तथा जातिके भेदभावके बिना सभीके लिए खुला है। उसकी मान्यताके अनुसार भिक्षु जीवन अंगीकार कर लेनेसे निर्वाण प्राप्तका मार्ग सरल हो जाता है, किन्तु

गृहस्थ, श्रावक भी निर्वाण-प्राप्तिका अधिकारी बन सकता है। बौद्ध-भिक्षुओंको पुरोहितोंके समकक्ष नहीं रखा जा सकता क्योंकि वे पौरोहित्य कार्य नहीं करते। ब्राह्मणोंकी भाँति उनको भी बुद्धजीवीकी कोटिमें ही रखा जा सकता है। उनके भोजन तथा निवासकी व्यवस्था श्रद्धालु गृहस्थ (श्रावक) करते हैं। बौद्धधर्मका पालन करनेके लिए किसी मन्दिरमें जानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। उसका संगठन भिक्षु संघपर आधारित है जो विहारोंमें निवास करता है और बुद्धकी शिक्षाओंका उपदेश देता है। बौद्ध लोग गौतम बुद्धको ईश्वर न मानकर महापुरुष मानते हैं, जिन्होंने सत्यका साक्षात्कार किया था और जिनके उपदेशोंपर चलनेसे बुद्धत्वकी प्राप्ति होती है बौद्धधर्मका प्रसार प्रारम्भमें गौतम बुद्धने उत्तरप्रदेश तथा बिहारमें गंगाके मैदानमें किया। उनके निर्वाणके लगभग २५० वर्ष बाद सम्राट् अशोकने बौद्धधर्म अंगीकार किया तथा भिक्षुओंको धर्मप्रचारके लिए देश-देशांतरोंमें भेजा, जिसके फलस्वरूप बौद्धधर्मका प्रसार धीरे-धीरे सारे विश्वमें हो गया और वह विश्वधर्म बन गया।

कालान्तरमें बौद्धधर्मका उसके जन्मस्थान भारतमें लोप हो गया। उसके ह्रासके अनेक कारण थे। बौद्ध-विहारोंमें धीरे-धीरे अतुल सम्पत्ति एकत्र हो गयी जिससे भिक्षुओंके जीवनमें शिथिलाचारका प्रवेश हो गया और बहुतसे अवांछनीय तथा अयोग्य व्यक्ति भी भिक्षु जीवनकी ओर आकर्षित होने लगे। गृहस्थोंकी तुलन में भिक्षुओंकी संख्या बहुत अधिक हो गयी और बौद्धधर्म क्रमिक रूपसे निवृत्ति एवं आचार-प्रधान धर्मसे प्रवृत्ति-प्रधान महायानमें परिवर्तित हो गया। बादमें उसमें तन्त्रवादके रूपमें खुले व्यभिचारका प्रवेश हुआ। उधर शंकराचार्य (दे०) और कुमारिल भट्ट (दे०) सदृश विद्वानोंने हिन्दू धर्मको नवोन्मेष प्रदान किया। अन्तमें मुसलमानोके आक्रमणके फलस्वरूप भारतसे बौद्धधर्मका पूर्ण लोप हो गया, हालांकि संसारकी एक तिहाई जनसंख्या आज भी बौद्ध धर्मावलम्बी है। (**एस० राधाकृष्णन् कृत हिस्ट्री आफ इंडियन फिलासफी खंड १; राइस डेविड्स कृत बुद्धिज्म; थामस कृत हिस्ट्री आफ बुद्धिस्ट थाट; सर चार्ल्स ईलियट कृत हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म, तीन खंडोंमें; ई० कौजे कृत बुद्धिज्म, इट्स इसेन्स एण्ड डेवलपमेण्ट**)

बौद्ध संगीति—का आयोजन चार बार हुआ। पहली संगीति (महासभा) गौतम बुद्धके निर्वाणके बाद ही राजगृह (आधुनिक राजगिरि) में हुई। इसमें बौद्ध स्थविरों (थेरों) ने भाग लिया और बुद्धके प्रमुख शिष्य महाकस्यप (महाकश्यप) ने उसकी अध्यक्षता की। चूंकि बुद्धने अपनी शिक्षाओंको लिपिबद्ध नहीं किया था, इस लिए संगीतिमें उनके तीन शिष्यों—महापण्डित महाकाश्यप, सबसे वयोवृद्ध उपालि तथा सबसे प्रिय शिष्य आनन्दने उनकी शिक्षाओंका संगायन किया। तत्पश्चात उनकी ये शिक्षाएँ गुरु-शिष्य परम्परासे मौखिक चलती रहीं, उन्हें लिपिबद्ध बहुत बादमें किया गया।

एक शताब्दी बाद बुद्धोपदिष्ट कुछ विनय-नियमोंके सम्बन्धमें भिक्षुओंमें विवाद उत्पन्न हो जानेपर वैशालीमें दूसरी संगीति हुई। इस संगीतिमें विनय-नियमोंको कठोर बनाया गया और जो बुद्धोपदिष्ट शिक्षाएँ अलिखित रूपमें प्रच लत थीं उनमें संशोधन किया गया।

बौद्ध अनुश्रुतियोंके अनुसार बुद्धके परिनिर्वाणके २३६ वर्ष बाद सम्राट् अशोकके संरक्षणमें तीसरी संगीति हुई, जिसकी अध्यक्षता प्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ 'कथावत्थु'के रचयिता तिस्स मोग्गलीपुत्रने की। विश्वास किया जाता है कि इस संगीति में त्रिपिटक (दे०) को अन्तिम रूप प्रदान किया गया। यदि इसे सही मान लिया जाय कि अशोकने अपना सारनाथवाला स्तम्भ-लेख इस संगीतिके बाद उत्कीर्ण कराया, तब यह मानना उचित होगा कि इस संगीतिके निर्णयोंको इतने अधिक बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियोंने स्वीकार नहीं किया कि अशोकको धमकी देनी पड़ी कि संघमें फूट डालनेवालोंको कड़ा दण्ड दिया जायगा।

चौथी और अंतिम संगीति कुषाण सम्राट् कनिष्कके शासनकाल (लगभग १२०—१४४ ई०) में हुई। इस संगीतिमें त्रिपिटकका प्रामाणिक भाष्य तैयार किया गया, जिसे ताम्रपत्रोंपर उत्कीर्ण कराकर कुंडल वन-विहारमें स्तूपका निर्माण कराकर उसीमें सुरक्षित रख दिया गया। इन ताम्रपत्रोंको अभी तक उपलब्ध नहीं किया जा सका है। (**कर्न—मैनुएल आफ बुद्धिज्म; राइस डेविड्स—बुद्धिज्म; इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, मार्च १९५९**)

बौद्ध साहित्य—की रचना गौतम बुद्धके निर्वाणके बाद हुई। गौतम बुद्धने अपने उपदेशोंको लिपिबद्ध नहीं किया। उनके निर्वाणके बाद ही राजगृहमें प्रथम संगीतिमें उनके तीन प्रमुख शिष्यों, आनन्द, उपालि तथा कश्यपने उनकी शिक्षाओंका सर्वप्रथम संगायन किया। विश्वास किया जाता है कि त्रिपिटकमें बुद्धके इन्हीं वचनोंका संग्रह है। अनेक शताब्दियों तक इन बुद्ध-वचनोंका संगायन होता रहा और वे गुरु-शिष्य परम्परासे केवल

मौखिक रूपमें प्रचलित रहे। ई० पू० ८० में सिंहलद्वीपके राजा वट्टगामणिके शासनकालमें इनको सर्वप्रथम लिपिबद्ध किया गया। त्रिपिटकमें सुत्तपिटक, विनयपिटक तथा अभिधम्मपिटककी गणना होती है। सुत्तपिटकमें बुद्धके उपदेशों और संवादोंका संग्रह है। विनयपिटकमें भिक्षु संघके आचार-विचार एवं नियमोंका तथा अभिधम्मपिटकमें बौद्धधर्मके आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारोंका संग्रह है। सुत्तपिटकके पाँच बड़े विभाग हैं, जो 'निकाय'के नामसे प्रसिद्ध हैं। इनके अन्तर्गत धम्मपद, थेरगाथा, थेरीगाथा तथा जातक आदि ग्रन्थ हैं। विनयपिटक भी तीन विभागोंमें विभक्त है। अभिधम्मपिटकके सात विभाग हैं, जिनमें धम्मसंगणि मूल ग्रन्थ माना जाता है।

इस समय त्रिपिटक साहित्य चार भाषाओंमें मिलता है। उसका पाली संस्करण मुख्य रूपसे सिंहलद्वीप, बर्मा तथा स्याममें प्रचलित है। नेपाल तथा मध्य एशियाके बौद्ध केन्द्रोंमें उसका संस्कृत रूपान्तर प्रचलित है। उसका चीनी भाषामें अनुवाद संस्कृतसे हुआ तथा ईसवी सन्‌की नवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दीके बीच भोट भाषामें रूपान्तर हुआ। उसका जापानी रूपांतर १०० जिल्दोंमें उपलब्ध है, जिनमेंसे प्रत्येकमें एक हजार पृष्ठ हैं।

त्रिपिटकके अतिरिक्त नागसेन रचित 'मिलिन्दपन्हो' (लगभग १४७ ई०पू०) तथा बुद्धघोष रचित 'विशुद्धिमग्ग' बौद्धोंके प्रमुख धर्मग्रन्थ हैं। (**ताकाकुशु कृत एंशेन्शियल्स आफ बुद्धिस्ट फिलासफी**)

बौद्धोंमें सम्प्रदाय-भेद—इस कारण हुआ कि गौतम बुद्धके जीवनकालमें उनकी शिक्षाओंको लिपिबद्ध नहीं किया गया था। फलतः उनके परिनिर्वाणके बाद ही भिक्षु-भिक्षुणियोंके आचार-नियमों तथा उनके वचनोंके अभिप्रायको लेकर उनके शिष्योंमें वाद-विवाद होने लगा। उनके परिनिर्वाणके एक शताब्दीके अन्दर ही बौद्धोंमें अनेक निकायों (सम्प्रदायों) का आविर्भाव हो चुका था, जिनमें दो मुख्य निकाय बादमें हीनयान और महायानके नामसे प्रसिद्ध हुए। हीनयान निकायका साहित्य पाली भाषामें तथा महायानका संस्कृत भाषामें निबद्ध होनेके कारण हीनयानको पाली निकाय तथा महामानको संस्कृत निकाय भी कहते हैं। हीनयान मुख्य रूपसे श्रीलंका (सिंहल द्वीप) तथा बर्मामें प्रचलित होनेके कारण बहुधा दक्षिणी बौद्धधर्म भी कहा जाता है। इसी प्रकार महायान मुख्यरूपसे नेपाल, चीन, तिब्बत, मंगोलिया, कोरिया तथा जापानमें प्रचलित होनेके कारण उत्तरी बौद्ध धर्म भी कहा जाता है। हीनयान और महामान, दोनों ही यान (मार्ग) बौद्धधर्मके निकाय होनेके कारण कुछ लोग उसके साथ 'हीन' तथा 'महा' विशेषण का प्रयोग उचित नहीं मानते और इसीलिए वे हीनयान को स्थविरों (थेरों) का मार्ग अथवा स्थविरवाद (थेरवाद) कहना पसंद करते हैं।

बौद्धधर्ममें सम्प्रदाय-भेद किस कालमें हुआ, यह निश्चित रूपसे ज्ञात नहीं है। महायानका आविर्भाव अचानक नहीं हुआ, वरन् उसका विकास अनेक शताब्दियोंमें क्रमिक रीतिसे हुआ। कुछ लोग महायानका उद्‌गम महासंघिक और सर्वास्तिवादी निकायोंसे मानते हैं, जो ई० पू० ३५० में वर्त्तमान थे। अशोक (लगभग ई० पू० २७३–२३१) के शिलालेखोंमें महायानके अस्तित्वका कोई संकेत नहीं मिलता। कनिष्क (राज्यारोहण लगभग १२० ई०) के शासनकालमें चौथी बौद्ध धर्मसंगीति (धर्म महासभा) हुई। उस समय भी महायान का विशेष प्रचार नहीं था, हालांकि नागार्जुनने, जो कनिष्कका समकालीन एवं आश्रित था, अपनी 'कारिका' में हीनयानके मतोंका खंडन किया है। ईसवी सन्‌की चौथी शताब्दीमें जब फाहियान भारत आया था तो उसने सभी स्थानोंपर हीनयानी भिक्षुओंके विहारोंके साथ-साथ महायानी भिक्षुओंके विहार भी पाये थे। अतः महायानका विकास ईसवी सन् की दूसरी और चौथी शताब्दीके मध्य हुआ होगा। इसी कालमें बहुतसे विदेशियोंने भी बौद्धधर्म ग्रहण किया। इस आधारपर यह मत प्रतिपादित किया जाता है कि महायानका विकास इनकी प्रवृत्तियोंको ध्यानमें रख कर हुआ। परन्तु यह मत भी युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि महायानका विकास भारतीय बौद्धोंकी आध्यात्मिक तथा दार्शनिक प्रवृत्तियोंके आधारपर हुआ, हालांकि बादके युगोंमें यह भारतकी अपेक्षा भारतके बाहरके देशोंमें अधिक लोकप्रिय हुआ।

हीनयान और महायान निकायमें व्यापक सिद्धान्तभेद है। हीनयान-वादियोंके अनुसार सिद्धार्थ गौतम बुद्धपद लाभ करनेवाले एकमात्र बुद्ध थे, जिन्होंने स्वयं निर्वाण लाभ किया और जिनकी शिक्षाओंका अनुसरण करनेसे अन्य लोग भी इस जीवन अथवा परवर्ती जीवनमें निर्वाण-लाभ कर सकते हैं। इस मार्गमें बुद्ध अथवा बुद्ध प्रतिमाओंकी पूजा अर्चना तथा भक्तिका कोई स्थान नहीं है, क्योंकि हीनयानी बुद्धको ईश्वर न मानकर महापुरुष मानते हैं, जिन्होंने अपने पुरुषार्थसे बुद्धत्व लाभ कर भवचक्र-

के कारणभूत कर्मबीजोंको दग्ध कर दिया था। प्रत्येक व्यक्ति उन्हींकी भाँति अपने पुरुषार्थसे तृष्णाका क्षय करके तथा अष्टांगिक मार्गके अनुकूल सम्यक् जीवन अपना करके निर्वाण लाभ कर सकता है। महायानियोंके अनुसार असंख्य बुद्धोंमें सिद्धार्थ गौतम भी बुद्धावतार थे। अतीतकालमें भी अनेक बुद्ध हो चुके हैं और अनागतकाल में भी होंगे। केवल इस लोकमें ही नहीं, गंगा नदीकी बालूके कणोंकी भाँति अनन्त लोकोंमें कोटि कल्पोंके अन्तर पर बुद्धोंका अवतार और धर्मोपदेश होता रहता है। यह लोक अनंताकाशमें धूलके कणके समान तथा अनंतकाल प्रवाहमें एक क्षणके समान है, इस कल्पमें भावी बुद्ध मैत्रेय होंगे। अतीतकालके बुद्ध और अनागत बुद्ध सर्वशक्तिमान् देवाधिदेव हैं जो मनुष्योंकी प्रार्थना तथा स्तुतिपाठसे अनुग्रहशील होते हैं तथा फूल-धूप-दीपादिके अर्पणसे प्रसन्न होते हैं।

अंततोगत्वा चीनमें अमिद अथवा अमिताभ बुद्धकी पूजा प्रचलित हो गयी, जिनका प्रारम्भिक बौद्ध ग्रंथोंमें कोई उल्लेख नहीं मिलता। यह माना जाता है कि वे सुखावती लोकमें निवास करते हैं। उनके श्रद्धालु भक्तों द्वारा कामना की जाने लगी कि मरणोपरान्त उनका जन्म उन्हींके लोकमें हो। निर्वाण तथा गौतम बुद्धको भुला दिया गया। महायानी बौद्ध साधकके जीवनका उद्देश्य व्यक्तिगत निर्वाण प्राप्त करना नहीं होता। वह बोधि प्राप्त कर लेनेपर अपने व्यक्तिगत निर्वाणके लिए नहीं, बल्कि विश्वके सभी प्राणियोंके निर्वाणके लिए उद्योग करता है। ऐसे साधकको 'बोधिसत्व' कहते हैं। इस प्रकार महायानमें बुद्धों और बोधिसत्वोंकी पूजा प्रचलित हो गयी। मन्दिरोंमें उनकी प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठापना होने लगी और विविध विधि-विधानोंसे उनकी वंदना और पूजा होने लगी।

बुद्धके जीवनकाल, जातक कथाओंमें वर्णित पूर्वजन्मों तथा ललितविस्तर जैसे बादके ग्रंथोंमें वर्णित उनके जीवनकी विविध घटनाओंके आधारपर बौद्ध स्थापत्यके अंतर्गत मूर्तियोंका निर्माण प्रचुर मात्रामें होने लगा। बौद्ध धर्मग्रंथोंका प्रणयन संस्कृतमें होने तथा बुद्धों एवं बोधिसत्वोंकी मूर्ति पूजा प्रचलित होनेसे धीरे-धीरे महायान बौद्धधर्म और हिन्दूधर्मके बीच अंतर मिटने लगा और अंततोगत्वा बौद्धधर्म हिन्दूधर्ममें समाहित हो गया। हीनयान और महायानमें सिद्धांत-भेद होते हुए भी दोनों बुद्धोपदिष्ट मार्ग हैं और दोनों ही बुद्धकी शिक्षाओंपर आधारित हैं। दोनोंका विकास अपने ढंगसे अलग-अलग भूमियोंपर तथा अलग-अलग वातावरणमें हुआ है। (ईलियट—हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म; वी० ए० स्मिथ—आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, मैकगेगर—इंट्रोडक्शन टू महायान फिलासफी; सुजुकी—डेवलपमेण्ट आफ महायान बुद्धिज्म; एन० दत्त—एस्पेक्ट्स आफ महायान बुद्धिज्म)

ब्रजभाषा—हिन्दीकी एक बोली। वल्लभाचार्यके शिष्य कवियोंने, जो अष्टछापके नामसे सामूहिक रूपमें प्रसिद्ध हैं, इसका उपयोग किया और लोकप्रिय बनाया। वल्लभाचार्यके शिष्योंमें सबसे प्रमुख सूरदास थे, जिन्होंने सूरसागरकी रचना की। सूरसागरमें विशेष रूपसे कृष्णकी बाल-लीलाओंका पद्योंमें वर्णन हैं। प्रसिद्ध भक्त कवि मीराबाईने भी ब्रजभाषामें गीतोंकी रचना की थी।

ब्रजभूमि—यमुनाके तटवर्ती उस क्षेत्रका नाम, जिसमें मथुरा और वृन्दावन स्थित हैं। वैष्णव भक्तोंने कृष्ण और राधाकी लीला-भूमिके रूपमें इसका वर्णन किया है।

ब्रह्म—परमात्माकी संज्ञा। ब्राह्मण दार्शनिकोंने परमात्माको, जो अन्तर्यामी और घट-घटव्यापी पथ-दर्शक हैं, इस संज्ञासे सम्बोधित किया है। उपनिषदों और वेदान्त दर्शनमें ब्रह्म-स्वरूपकी चर्चा है। शंकराचार्यने अपनी रचनाओंमें ब्रह्मवादकी विस्तारसे व्याख्या की है।

ब्रह्मजीत गौड़—शेरशाह (१५३०–४५ ई०) की सेवामें नियुक्त एक हिन्दू सेनापति।

ब्रह्मणस्पति—ऋग्वेदमें वर्णित एक देवता, जो प्रार्थनाका अधिपति है।

ब्रह्मपाल—कामरूपके पाल राजवंशका प्रवर्तक, जो लगभग १००० ई० में हुआ। सालस्तम्भ राजवंशका उच्छेद होनेपर, ब्रह्मपालको, जो सालस्तम्भ राजवंशसे सम्बन्धित था, जनताने उसकी योग्यताके कारण कामरूपका शासक चुना। उसके वंशमें आठ राजा हुए, सभीके नामोंके अन्तमें 'पाल' शब्द जुड़ा हुआ है। ये बंगालके समकालीन पाल राजाओंसे भिन्न हैं। ब्रह्मपाल राजवंशका बारहवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें अन्त हो गया। (बी० के० बरुआ कृत ए कल्चरल हिस्ट्री आफ आसाम, पृष्ठ ३३-३५)

ब्रह्मपुत्र—एक विशाल नदी, जो तिब्बतसे, जहाँ इसे सांगपो कहते हैं, निकल कर भारतमें आती है। इसकी लम्बाई १८०० मील है। आसाम प्रदेशसे गुजरती हुई यह पहले पूर्वसे पश्चिम और फिर दक्षिणकी तरफ बहकर बंगालमें गंगासे मिलती है। प्राचीन नगर प्राग्ज्योतिषपुर, (आधुनिक गोहाटी), कामरूप राज्यकी राजधानी, ब्रह्मपुत्रके तटपर बसा हुआ था।

ब्रह्मसभा—एक एकेश्वरवादी संगठन, जिसकी स्थापना राजा-

राम मोहन रायने १८२८ ई० में कलकत्तामें की। इसका उद्देश्य उन सभी लोगोंको एक मंचपर लाना था जो एकेश्वरवादमें विश्वास करते थे और मूर्तिपूजाका खंडन करते थे। आरम्भमें इसकी बैठकें किरायेके मकानमें होती थीं और इसके प्रथम मंत्री थे श्री ताराचन्द्र चक्रवर्ती। शनिवारको इसकी साप्ताहिक सभाएँ होतीं थीं, जिनमें ब्राह्मणों द्वारा वेद-पाठ किया जाता था। शीघ्र ही इन सभाओंमें बड़ी संख्यामें लोग भाग लेने लगे, अतः राजा राम मोहन रायने १८३० ई० में इसके सदस्योंसे एकत्र किये गये चन्देसे चितपुर रोडपर एक मकान खरीद कर ट्रस्टियोंकी समितिको सौंप दिया। अब यह माना जाता है कि ब्रह्मसभाने ही ब्रह्मसमाजकी स्थापनाका मार्ग प्रशस्त किया है, यद्यपि दोनों संगठनोंमें मौलिक अन्तर था। उदाहरणार्थ, ब्रह्मसभाके सदस्य, ब्राह्मसमाजके सदस्योंके विपरीत अपनेको हिन्दू घोषित करते थे और धार्मिक कामों तथा विवाहों आदिमें वर्ण-व्यवस्थाको मानते थे।

ब्रह्म-समाज आन्दोलन—का श्रीगणेश राजा राम मोहन राय द्वारा १८२८ ई० में स्थापित ब्रह्मसभासे हुआ। ब्रह्मसभाका उद्देश्य असाम्प्रदायिक आधारपर एकेश्वरवादका प्रचार करना था। वह विभिन्न सामाजिक सुधारों, जैसे जाति-पाँतिका उन्मूलन, अन्तर्जातीय विवाहका प्रचलन तथा महिलाओंका उद्धार और उनमें शिक्षाप्रसारके पक्षमें थी। राम मोहन रायके इंग्लैण्ड प्रस्थान करने और वहां उनकी मृत्यु हो जानेके फलस्वरूप ब्रह्मसभा निष्प्राण हो गयी, किन्तु महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर (१८१७–१९०५ ई०) ने १८४३ ई०में इसका नेतृत्व सँभाल कर और 'तत्त्वबोधिनी' पत्रिका द्वारा इसके सिद्धांतोंका प्रचार करके इसे नवजीवन प्रदान किया। उस समय इस आंदोलनका उद्देश्य हिन्दूधर्मके एकेश्वरवादी स्वरूपका प्रचार करना था। ब्रह्मसभाके सदस्य वेदोंको अपौरुषेय मानते थे तथा जाति-पाँतिके उन्मूलन, अंतर्जातीय विवाह आदि सामाजिक सुधारोंके विरुद्ध थे। परंतु नवयुवक वर्गने, जिसका नेतृत्व प्रारम्भमें अक्षयकुमार सेन और बादमें केशवचन्द्र सेनने किया, वेदोंके अपौरुषेय होनेमें शंका प्रकट की और ब्रह्मसभाके सदस्यों द्वारा जाति-पाँतिको न मानने तथा अन्य सामाजिक सुधारोंका समर्थन करनेपर जोर दिया। देवेन्द्रनाथ ठाकुरने उनकी इस माँगको स्वीकार नहीं किया और १८६५ ई० में केशवचन्द्र सेन और उनके अनुयायियोंको सभी पदोंसे हटा दिया। इस प्रकार ब्रह्म-समाज आंदोलनमें गहरी फूट पड़ गयी। तत्पश्चात् देवेन्द्रनाथ और उनके अनुयायियोंने आदि ब्राह्मसमाज गठित किया जो हिन्दुओंके शुद्ध एकेश्वरवादका प्रतिपादक और सामाजिक सुधारोंका विरोधी था। नवयुवक वर्गने केशवचन्द्र सेनके नेतृत्वमें ब्राह्मसमाजकी स्थापना की, जो १८७८ ई० तक खूब फला-फूला। १८७८ ई० में केशवचन्द्रसेन और उनके अनुयायियोंमें कुछ सिद्धांतोंपर मतभेद हो जाने और मुख्यरूपसे उनकी अवयस्क कन्याका हिन्दू रीत्यानुसार महाराज कूच बिहारसे विवाह होनेके कारण, ब्राह्मसमाजमें पुनः फूट पड़ गयी और विरोधी दलने साधारण ब्राह्मसमाजकी स्थापना की। केशवचन्द्र सेन और उनके समर्थकोंने भी 'नवविधान' नामक नया संगठन खड़ा कर दिया। इस प्रकार ब्राह्मसमाजी इस समय तीन दलोंमें विभक्त हैं—आदि ब्राह्मसमाज, साधारण ब्राह्मसमाज तथा नवविधान। तीनों दलोंके उपासना-गृह अलग-अलग हैं।

ब्राह्मसमाज आंदोलनका सूत्रपात तो कलकत्तामें हुआ, परन्तु शीघ्र ही उसका प्रचार सारे बंगालमें तथा बंगालके बाहर उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा मद्रास तक हो गया। सभी प्रांतीय समाज साधारण ब्राह्मसमाजसे सम्बद्ध हैं। महाराष्ट्रमें इसका नाम 'प्रार्थना समाज' रखा गया।

बादमें ब्राह्मसमाज आंदोलनका जोर काफी कम पड़ गया। किन्तु इस आदोलनने देशकी बहुमूल्य सेवा की। यह आंदोलन पर्दा प्रथा मिटाने, विधवा-विवाह प्रचलित करने, अंतर्जातीय विवाहको वैध ठहरानेवाला कानून बनवाने, जाति-पाँतिके बंधनोंको शिथिल करने, हिन्दुओंको ईसाई बननेसे रोकने तथा उच्च शिक्षाका, विशेषरूपसे महिलाओंमें शिक्षाका प्रचार करनेमें सहायक सिद्ध हुआ। किन्तु इसे हिन्दुओंमें एकेश्वरवादका प्रचार करने तथा मूर्ति-पूजा समाप्त करानेमें बहुत थोड़ी सफलता मिली। **(शिवनाथ शास्त्री रचित हिस्ट्री आफ दि ब्राह्म समाज, खंड १-२)**

ब्रह्मर्षि देश—मनुने थानेश्वरके आस-पासके क्षेत्र, पूर्वी राजस्थान, गंगा और यमुनाके दोआब तथा मथुरा जिलेके अंचलको यह नाम दिया है।

ब्रह्मा—एक हिन्दू देवता। विष्णु और शिवके साथ त्रिदेवोंमें इनकी गणना होती है। ये सृष्टिकी रचना करते हैं और वेदोंमें इन्हें विधाता, हिरण्यगर्भ तथा प्रजापति कहा गया है।

ब्रह्मावर्त—इससे उस प्रदेशका बोध होता था जो सरस्वती और दृष्टद्वती नदियोंके बीचमें स्थित था। संप्रति दोनों नदियाँ लुप्त हो चुकी हैं, अतः इस प्रदेशकी सीमाओंकी सही-सही पहचान नहीं हो सकती।

ब्राइडन, डा०—एक अंग्रेज सर्जन (शल्य चिकित्सक) जो प्रथम अफगानिस्तान युद्ध (१८३९–४२ ई०) (दे०) में अफगानिस्तानपर चढ़ाई करनेवाली ब्रिटिश सेनामें नियुक्त था। युद्धमें उसकी रेजिमेंटके सभी आदमी मारे गये और १३ जनवरी १८४२ ई० को जलालाबाद वापस पहुँचने तथा अफगानोंके हाथ ब्रिटिश सेनाकी पराजयका संवाद देनेवाला वह अकेला अंग्रेज बचा था।

ब्राउन, रेवरेण्ड डेविड—ब्रिटेनसे शुरू-शुरूमें बंगाल आनेवाले मिशनरियोंमेंसे एक। उस समय ईसाई मिशनरियोंको कम्पनीके इलाकोंमें लोगोंका धर्मपरिवर्तन करनेकी अनुमति नहीं थी। अतः डेविड ब्राउन कलकत्तामें ईस्ट-इंडिया कम्पनीका चैपलेन बन गया।

ब्रासियर, कैप्टन—ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें नियुक्त एक सैनिक अधिकारी, जो मई-जून १८५७ ई० में विद्रोही सिपाहियोंके विरुद्ध सिखोंकी छोटी-सी पलटनके साथ इलाहाबादके किलेकी रक्षा उस समय तक बड़ी सूझ-बूझसे करता रहा, जब तक कि नीलके नेतृत्वमें ११ जूनको ब्रिटिश सेना वहाँ पहुँच नहीं गयी।

ब्राहुई—बलूचिस्तानकी एक छोटी-सी जनजाति, जो द्रविड़ भाषा बोलती है। उसका अस्तित्व इस बातका द्योतक है कि द्रविड़ लोग जो आजकल मुख्यतः दक्षिणमें ही पाये जाते हैं, कभी समूचे भारतमें फैले थे और बलूचिस्तानसे होकर मैसोपोटामिया जाते हुए मार्गमें अपना एक छोटा-सा वर्ग यहाँ छोड़ गये।

ब्राह्मण ग्रंथ—वेदोंका ही एक विवरणात्मक विभाग। मंत्र-भाग अथवा संहिताभाग जबकि पद्यमें है, ब्राह्मण-भाग गद्यमें है। दोनोंको ही वेद कहा गया है और अपौरुषेय माना गया है। ब्राह्मण ग्रंथोंमें यज्ञानुष्ठानके सम्बन्धमें विस्तृत विवरण, नाना विषयोंके उपाख्यान तथा प्राचीन राजाओं और ऋषियोंकी गाथाएं मिलती हैं। (**मैकडोनेल एवं कीथ कृत वैदिक इंडेक्स**)

ब्राह्मण जाति—जाति-व्यवस्थाके अन्तर्गत हिन्दुओंमें सबसे ऊँची जाति गिनी जाती है। सनातनी हिन्दुओंके विचारानुसार ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति विराट् पुरुषके मुखसे हुई, उन्हें मनुष्योंमें देवता बताया गया है। इस प्रकार चारों वर्णोंमें उन्हें सर्वाधिक महत्ता प्रदान की गयी है। अन्य विचारानुसार जाति-व्यवस्था विविध व्यवसायोंपर आधारित थी। जो वर्ग सामान्य रूपसे पौरोहित्य कार्य एवं वेदाध्यापन करता था, उसकी गणना ब्राह्मण वर्णमें की जाने लगी। हिन्दू वर्ण-व्यवस्थामें मूलतः क्षत्रियोंको, जो राजन्य (राजा) होते थे, ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ माना जाता था। परवर्ती कालमें हिन्दू वर्ण-व्यवस्थामें ब्राह्मणोंने क्षत्रियोंसे भी ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया। (**देखिये, जाति-व्यवस्था**)

ब्राह्मण-धर्म—हिन्दू धर्मका प्रारम्भिक रूप, जो ईसा पूर्व छठीं शताब्दीमें बौद्ध एवं जैन धर्म जैसे ब्राह्मणोत्तर धर्मोंके उदयसे पूर्व प्रचलित था।

ब्राह्मणपाल—भारतकी पश्चिमोत्तर सीमापर स्थित उद्भाण्डपुर (वैहाण्ड)के हिन्दू शाही वंशके राजा जयपालका पौत्र एवं आनन्दपालका पुत्र। १००८ ई०में इसने गजनीके सुल्तान महमूदके विरुद्ध वैहाण्डकी लड़ाईमें अपने पिताकी सेनाका नेतृत्व किया था, किन्तु युद्धमें पराजित हुआ और मारा गया।

ब्राह्मी लिपि—आधुनिक देवनागरी लिपिका प्राचीन रूप, जिसका प्रयोग संस्कृत तथा उत्तरी एवं पश्चिमी भारतकी अन्य भाषाओंको लिखनेमें होता था। अशोकके शिलालेख, (पश्चिमोत्तर सीमा क्षेत्रके शिलालेखोंको छोड़कर), ब्राह्मी लिपिमें अंकित हैं।

ब्रिटिश प्रशासन तंत्र—भारतमें धीमी गतिसे विकसित हुआ, जिसे दो कालोंमें विभाजित किया जा सकता है। पहला १७७३ ई० से १८५८ ई० तक और दूसरा १८५८ ई० से १९४७ ई० तक। इसका केन्द्रविन्दु १७७३ ई०का रेग्युलेटिंग एक्ट था और चरमविन्दु स्वाधीन भारतका वर्तमान प्रशासन है। रेग्युलेटिंग एक्टके पास होनेके पूर्व ईस्ट इंडिया कम्पनीकी भारतमें तीन व्यापारिक कोठियां कलकत्ता, मद्रास और बम्बईमें थीं। प्रत्येक कोठी एक अध्यक्षके अधीन थी। प्लासीकी लड़ाई (१७५७ ई०) तथा उसके बादकी घटनाओंके फलस्वरूप ईस्ट इण्डिया कम्पनीको बंगाल और बिहारपर शासन करनेका अधिकार प्राप्त हो गया। जो प्रबन्ध-व्यवस्था एक व्यावसायिक एवं व्यापारिक संस्थाका प्रशासन चलानेके लिए की गयी थी, वह एक राज्यका प्रशासन चलानेके लिए, जिसके बढ़नेकी सम्भावना थी, स्वाभाविक रीतिसे अनुपयुक्त समझी गयी। फलतः इंग्लैण्डकी पार्लियामेंटने १७७३ ई०में रेग्युलेटिंग एक्ट (दे०) पास किया। इसके द्वारा भारतीय प्रशासन ईस्ट इण्डिया कम्पनीके हाथोंमें छोड़ दिया गया, किन्तु इसके साथ ही भारतीय राज्यपर कम्पनीके प्रशासनकी संसदीय देख-रेखका भी प्राविधान कर दिया गया। भारतमें कम्पनीके अधीन सभी इलाकोंमें एकाएक प्रशासनिक व्यवस्थाका सूत्रपात बंगालका प्रशासन गवर्नर-जनरल तथा उसकी चार सदस्यीय परिषद्में निहित करके, युद्ध तथा शान्तिसे सम्बन्धित मामलोंमें

प्रेसीडेन्सियोंको उसके अधीन करके किया गया। मद्रास और बम्बई, प्रेसीडेन्सियोंका प्रशासन भी गवर्नर तथा उसकी परिषद्में निहित कर दिया गया। एक्टमें गवर्नर-जनरल तथा उसकी परिषद्के सदस्योंके नाम उल्लिखित थे। चूंकि सभीका कार्यकाल पाँच वर्ष निर्धारित कर दिया गया था, उनको अपना कार्यकाल पूरा होनेसे पहले वापस बुला लेनेकी भी व्यवस्था थी और सभी निर्णय बहुमतसे लेनेका प्राविधान था, अतः आरम्भसे ही इस प्रशासनिक व्यवस्थामें एक व्यक्तिके निरंकुश शासनको असम्भव बना दिया गया था और उसका संचालन पारस्परिक विचार-विमर्श और सहमतिके आधारपर ही हो सकता था। इसके अतिरिक्त रेग्युलेटिंग एक्टके अन्तर्गत कलकत्तामें एक सर्वोच्च न्यायालय स्थापित किया गया, जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश और तीन अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति की गयी और सभीको ऊँचा वेतन दिया गया। सभी नियुक्तियाँ ब्रिटिश सरकार द्वारा की गयीं थीं और सर्वोच्च न्यायालयका अधिकार-क्षेत्र कलकत्ता स्थित सभी ब्रिटिश नागरिकों तथा ईस्ट इंडिया कम्पनीके सभी अधिकारियों तक विस्तृत था। इस प्रकार एक्टके द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनीके प्रशासित क्षेत्रोंमें कानूनका शासन स्थापित करनेका प्रयास किया गया।

इसके बावजूद रेग्यूलेटिंग एक्ट, अनेक दृष्टियोंसे त्रुटिपूर्ण था, जैसा कि १७७३-८४ ई०की अवधिमें प्रथम गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्स तथा उसकी चार सदस्यीय परिषद् द्वारा इसके कार्यान्वित किये जानेपर प्रकट हुआ। इसके द्वारा भारतमें कम्पनीके प्रशासनपर पालियामेंटका नियन्त्रण प्रभावकारी ढंगसे लागू करना सम्भव नहीं हो सका। गवर्नर-जनरलको परिषद्की रायके विरुद्ध कार्य करनेका अधिकार न होनेसे उसे परिषद्में पक्षपातपूर्ण अड़ङ्गोंका सामना करना पड़ता था। सुदूरवर्ती मद्रास और बम्बई प्रेसीडेन्सियोंपर देख-रेख रखनेका जो अधिकार गवर्नर-जनरल तथा उसकी परिषद्में निहित किया गया था, वह इतना अस्पष्ट था कि इन दोनों प्रेसीडेन्सियोंके अधिकारी गवर्नर-जनरल तथा उसकी परिषद्की पूर्व स्वीकृतिके बिना ही युद्ध शुरू कर देते थे। सर्वोच्च न्यायालयको कम्पनीके शीर्षस्थ अधिकारियोंके विरुद्ध भी मुकदमोंकी सुनवायी करनेका अधिकार दे दिये जानेसे न्यायपालिका और कार्यकारिणीमें टकरावकी सूरत पैदा हो गयी। इन त्रुटियोंको दूर करनेके लिए १७८४ ई० में पिट्का इंडिया एक्ट पास हुआ। इसके द्वारा भारतीय प्रशासनपर ब्रिटिश सरकार और कम्पनीका संयुक्त नियन्त्रण स्थापित कर दिया गया। इसके द्वारा इंग्लैण्डमें बोर्ड आफ कन्ट्रोल (दे०) गठित करके भारत स्थित कम्पनीके इलाकोंके प्रशासनपर पालियामेण्टका नियन्त्रण अधिक प्रभावी बना दिया गया। बोर्ड आफ कण्ट्रोलमें प्रिवी कौंसिलके ६ सदस्य होते थे, जिन्हें कोई वेतन नहीं दिया जाता था। इन ६ सदस्योंमेंसे ही एकको बोर्डका अध्यक्ष बना दिया जाता था, जिसे निर्णायक मत डालनेका भी अधिकार प्राप्त था। बोर्डको नियुक्तियाँ करने अथवा कम्पनीके व्यावसायिक मामलोंमें हस्तक्षेप करनेका कोई अधिकार न था। ये दोनों जिम्मेदारियाँ ईस्ट इण्डिया कम्पनीके कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स (दे०) पर छोड़ दी गयी थीं। किन्तु बोर्ड आफ कण्ट्रोलको ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्रोंके असैनिक, सैनिक तथा आर्थिक प्रशासनसे सम्बन्धित सभी मामलोंमें देख-रेख करने, निर्देश देने और नियन्त्रण रखनेका अधिकार प्राप्त था।

भारत स्थित कम्पनीके अधिकारियोंको बिना बोर्ड आफ कण्ट्रोलकी सहमतिके कोई आदेश सीधे नहीं भेजा जा सकता था। बोर्डको यह अधिकार भी प्राप्त था कि वह यदि कोई आदेश देना उचित समझे तो उसे बोर्ड आफ डाइरेक्टर्सकी स्वीकृतिके बिना भी जारी कर सकता था। हेनरी जान डुण्डास बोर्ड आफ कण्ट्रोलका प्रथम अध्यक्ष था और उसके कुशल मार्ग-निर्देशनमें बोर्ड आफ कण्ट्रोल भारतीय प्रशासनका वास्तविक सूत्रधार बन गया। भारतमें गवर्नर-जनरलकी स्थिति सुदृढ़ करनेके लिए उसकी परिषद्के सदस्योंकी संख्या चारसे घटाकर तीन कर दी गयी और प्रधान सेनापतिको भी उसका सदस्य बना दिया गया। गवर्नर-जनरल तथा उसकी परिषद्का बम्बई और मद्रास प्रेसीडेन्सियोंके प्रशासनोंपर नियन्त्रण अधिक प्रभावी बना दिया गया। दो वर्ष पश्चात् एक पूरक कानून द्वारा गवर्नर-जनरलको विशेष मामलोंमें परिषद्के बहुमतके निर्णयकी अवहेलना कर देनेका अधिकार भी प्रदान कर दिया गया। भारतके ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्रोंका प्रशासन अब सपरिषद् गवर्नर-जनरलमें निहित कर दिया गया। इसीके अनुसार १८३४ ई०में उसका पद नाम बदलकर बंगाल स्थित फोर्ट विलियमके गवर्नर-जनरलके बजाय भारतका गवर्नर-जनरल कर दिया गया।

भारतीय प्रशासन पर बोर्ड आफ कण्ट्रोलके माध्यमसे ब्रिटिश पालियामेण्ट और कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सके माध्यमसे ईस्ट इंडिया कम्पनीका दोहरा नियन्त्रण १८५७ ई०के गदरतक कायम रहा। फिर भी व्यावहारिक रूपमें

ब्रिटिश पार्लियामेण्टका नियन्त्रण अधिक प्रभावी था। यह मुख्यतः बोर्ड आफ कण्ट्रोलके प्रथम अध्यक्ष डुण्डासके कुशल और विवेकपूर्ण निर्देशनके फलस्वरूप सम्भव हो सका। उसने अपने लम्बे कार्यकालमें बोर्ड आफ कण्ट्रोल-को राजनीतिक निर्णयोंके लिए सर्वोपरि सत्ताके रूपमें प्रतिष्ठित कर दिया तथा बोर्डके सारे अधिकारोंको अपने हाथोंमें केन्द्रित करके बोर्डके अध्यक्षपदको वस्तुतः भारत-मन्त्रीके पदका समकक्ष बना दिया।

उक्त दोनों कानूनोंको पास करके ब्रिटिश पार्लिया-मेण्टने वस्तुतः भारतीय प्रशासनका नैतिक उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके अधिकार-पत्रका प्रत्येक बीस वर्षके बाद नवीनीकरण किया जाता था। फलतः इन अवसरोंका लाभ उठाकर ब्रिटिश पार्लि-यामेण्टने भारतीय प्रशासन व्यवस्थामें समयानुकूल आवश्यक परिवर्तन करना आरम्भ कर दिया। १८१३ ई० के चार्टर एक्ट द्वारा भारतसे व्यापार करनेके लिए इंगलैण्डकी जनताको भी आंशिक रूपसे छूट दे दी गयी और ईस्ट इंडिया कम्पनीका व्यापारिक रूप बड़ी हद तक समाप्त कर दिया गया। १८३३ ई० के चार्टर ऐक्ट द्वारा भारतीय व्यापारपर कम्पनीका एकाधिकार बिल्कुल समाप्त कर दिया गया और उसे भारतका प्रशासन चलाने-के लिए ब्रिटिश सरकारका राजनीतिक प्रतिनिधि बना दिया गया। इस एक्टके द्वारा गवर्नर-जनरलकी परिषद्में चौथा सदस्य बढ़ा दिया गया और उसे कानून बनानेका अधिकार प्रदान कर दिया गया। प्रधान सेनापतिकी सदस्यता यथापूर्व जारी रखी गयी। इस ऐक्टके द्वारा एक विधि आयोगकी भी नियुक्ति की गयी, जिसने अन्त-तोगत्वा भारतमें दीवानी और फौजदारीके मामलोंमें एक सामान्य सार्वजनिक कानूनका प्रचलन किया। अन्तमें १८५३ ई० के चार्टर ऐक्ट द्वारा इंडियन सिविल सर्विस-में भरतीके लिए खुली प्रतियोगिताकी प्रणाली चालू की गयी। इससे इंडियन सिविल सर्विसके भारतीयकरणका मार्ग प्रशस्त हुआ, जिसमें तब तक केवल अंग्रेज ही भर्ती होते थे। इस ऐक्टके द्वारा कानूनोंका निर्माण करनेके लिए गवर्नर-जनरलकी परिषद्में अतिरिक्त ६ सदस्य बढ़ानेकी व्यवस्था की गयी। इस कार्यके लिए परिषद्में प्रारम्भमें जो ६ सदस्य नामांकित किये गये, वे निःसन्देह सभी अंग्रेज थे। फिर भी इस व्यवस्थासे ही भारतमें विधान मंडलकी शुरूआत संभव हो सकी।

१८५३ ई०के चार्टर कानूनके पास होनेके चार वर्ष बाद सिपाही-विद्रोह शुरू हो जानेसे भारतमें कम्पनीके शासनकी जड़ें हिल गयीं। विद्रोहको कम्पनीकी सेनाओं-ने दबा दिया। किन्तु भारतमें कम्पनीके प्रशासनकी कमजोरियाँ स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर हो गयीं। फलतः ब्रिटिश पार्लियामेण्टने १८५८ ई०में भारतमें उत्तम शासन व्यवस्थाके लिए कानून पास करके भारतीय प्रशासनका नियंत्रण ब्रिटिश राजसत्ताको हस्तांतरित कर दिया। कानूनमें प्राविधान किया गया कि भारतका शासन अब ब्रिटिश सम्राट्के नामसे उसके मंत्रियोंमेंसे एक मंत्री द्वारा चलाया जायगा और उसकी सहायताके लिए एक पन्द्रह सदस्यीय परिषद् गठित की जायगी। गवर्नर-जनरलको वाइसराय (राज प्रतिनिधि)का नया पदनाम दिया गया, कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स (दे०)को तोड़ दिया गया, बोर्ड आफ कन्ट्रोल (दे०)का नाम बदल कर भारत-परिषद् कर दिया गया और उसका अध्यक्ष जो ब्रिटिश मंत्रिमंडलका सदस्य होता था, भारत-मंत्री कहा जाने लगा। भारतीय प्रशासन पद्धतिमें परिवर्तनकी घोषणा महारानीके घोषणापत्र (दे०)द्वारा की गयी, जो १ नबम्बर १८५८ ई०को जारी हुई। इस घोषणापत्रमें उन संधियों तथा करारोंकी जो ईस्ट इंडिया कम्पनीने भारतीय राजाओंसे किये थे, पुष्टि की गयी, आम माफी दी गयी और घोषित किया गया कि "सभी लोगोंको वे चाहे जिस जाति अथवा धर्मके हों, मुक्त रूपसे और निष्पक्ष भावसे ब्रिटिश सम्राट्की सेवामें, उन कार्योंके लिए जिनके लिए वे अपनी शिक्षा, योग्यता और ईमानदारी-के आधार पर उपयुक्त सिद्ध होंगे, नौकरी दी जायगी।"

भारतीय प्रशासन व्यवस्थामें अगला महत्त्वपूर्ण परि-वर्तन १८६१ ई०के इंडियन कौंसिल ऐक्ट द्वारा किया गया। इस कानूनके द्वारा वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्में पाँचवा साधारण गैर-सरकारी (यूरोपीय) सदस्य बढ़ा दिया गया, वाइसरायके अधिकारोंमें पर्याप्त वृद्धि कर दी गयी और उसे कार्यकारिणी परिषद्के कार्य-संचालनके लिए नियम बनानेके अधिकार प्रदान कर दिये गये। इन अधिकारोंका प्रयोग करके कैनिंगने, जो उस समय वाइसराय था, कार्यकारिणी परिषद्के प्रत्येक सदस्यके जिम्मे अलग-अलग विभाग कर दिये। उसे अधिकार दिया गया कि वह अपने विभागके छोटे मामलों-को स्वयं और अधिक महत्त्वके मामलोंको वाइसरायसे विचार-विमर्श करनेके उपरान्त निपटा सकता था। सामान्य नीतिके प्रश्न अथवा अन्य विभागोंसे भी संबंधित मामले निर्णयके लिए कार्यकारिणी परिषद्में रखे जाते थे। विभागोंके बँटवारेकी इस पद्धतिसे समयकी काफी

बचत हुई और यह न केवल ब्रिटिश शासनकालमें चलती रही, वरन् कुछ परिवर्तनोंके साथ इसे स्वाधीन भारतमें भी अंगीकार कर लिया गया है।

१८६१ ई०के इंडियन कौंसिल ऐक्ट (भारतीय परिषद् कानून)के द्वारा भारतकी विधायनी प्रणालीमें भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये थे। सिपाही-विद्रोहसे प्रकट हो गया था कि भारतीय प्रशासन तंत्रमें ऐसी व्यवस्था आवश्यक है जिसके द्वारा भारतीय लोकमतको जाना जा सके। अतः १८६१ ई०के कानूनमें इस बातका प्राविधान किया गया कि विधायी कार्योंके लिए वाइसरायकी परिषद्की सदस्य संख्या ६ से १२ तक बढ़ा दी जाये और इनमेंसे आधे सदस्य गैरसरकारी होने चाहिए। यद्यपि विधि-निर्माणके अधिकार विभिन्न रीतियोंसे सीमित कर दिये गये थे, तथापि यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया था कि गैरसरकारी भारतीयोंको कानून बनानेमें, जिनसे वे शासित होते हैं, शामिल किया जाना चाहिए। तीन भारतीयों यथा महाराजा पटियाला, राजा बनारस तथा ग्वालियरके सर दिनकर रावको लेजिस्लेटिव कौंसिल अर्थात् वाइसरायकी विधान परिषद्में मनोनीत किया गया।

१८६१ ई०के इंडियन कौंसिल्स ऐक्टके द्वारा बम्बई और मद्रास सरकारोंको भी प्रांतकी शांति और उत्तम शासन-व्यवस्थाके लिए कानून बनानेके सीमित अधिकार प्रदान कर दिये गये और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए गवर्नरकी कार्यकारिणी परिषद्की सदस्य संख्या चारसे आठ तक बढ़ा दी गयी जिनमेंसे कम से कम आधे गैर-सरकारी होते थे।

१८६१ ई०के ऐक्टमें गवर्नर-जनरल तथा उसकी परिषद्को इसी प्रकारकी विधान परिषदें न केवल शेष तीन सूबों यथा बङ्गाल, पश्चिमोत्तर प्रदेश (बादमें संयुक्त प्रांत अथवा उत्तर प्रदेश) तथा पंजाबमें गठित करने वरन् अन्य उन नये सूबोंमें भी गठित करनेका अधिकार दिया गया जो इस कानूनके अन्तर्गत बादमें निर्मित हों। विधान परिषदें बंगालमें १८६२ ई०में, पश्चिमोत्तर प्रदेशमें १८८६ ई०में तथा पंजाबमें १८९८ ई०में गठित हुईं। १८६१ ई०के एक्टमें यद्यपि कानून बनानेमें गैरसरकारी भारतीयोंसे विचार-विमर्श करनेके सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया गया था, तथापि सरकारके नियंत्रणको शिथिल करनेका इरादा लेशमात्र भी नहीं था, बल्कि प्रवृत्ति इसके विपरीत दिशामें थी, जैसा कि १८७० ई०के इंडियन कौंसिल ऐक्टसे प्रकट हुआ। इस एक्टके द्वारा गवर्नर-जनरल तथा उसकी कार्यकारिणीको न केवल विधान परिषद्से परामर्श लिये बिना ही कानून बनानेका अधिकार प्राप्त हो गया, वरन् वाइसरायको यह अधिकार भी दे दिया गया कि भारत-स्थित ब्रिटिश साम्राज्यके हितमें अथवा उसकी सुरक्षा और शान्तिके लिए यदि वह आवश्यक समझे तो वह अपनी कार्यकारिणी द्वारा बहुमतसे किये गये निर्णयोंकी भी अवहेलना कर सकता था। वाइसरायको इस प्रकार मुगलोंकी भाँति पूर्ण स्वेच्छाचारी शासक बना दिया गया। १८७४ ई०में वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्में एक साधारण छठां सदस्य बढ़ाया गया। उसके जिम्मे सार्वजनिक-निर्माण विभाग कर दिया गया।

इस बीच भारतीय लोकमत उत्तरोत्तर जागृत होता जा रहा था। पश्चिमी शिक्षाके प्रसारके फलस्वरूप सार्वजनिक मंचों और समाचारपत्रोंके माध्यमसे जनता अपनी भावनाओंको प्रकट करने लगी थी। कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बईमें लार्ड कैनिंगके शासनकालमें विश्वविद्यालयोंकी स्थापना हो चुकी थी। १८६९ ई०में स्वेज नहरके खुल जाने और १८७० ई०में इंग्लैंड और भारतके बीच सीधा तार-सम्बन्ध स्थापित हो जानेसे दोनों देशोंके बीचकी दूरी कम हो गयी और बड़ी संख्यामें भारतीय इंग्लैंड जाने लगे और वहाँ पर प्रचलित उदार राजनीतिक भावनासे अनुप्राणित होकर वे स्वदेश लौटने लगे। इसके फलस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (दे०)की स्थापना हुई, जिसका प्रथम अधिवेशन बम्बईमें १८८५ ई०में हुआ। शिक्षित भारतीयोंने अभूतपूर्व राष्ट्रीय एकताका परिचय देते हुए दृढ़तापूर्वक न केवल यह मांग की कि देशकी नौकरियोंमें उन्हें अधिक स्थान दिया जाय वरन् इस बातकी भी माँग की कि समुचित संख्यामें जनताके निर्वाचित प्रतिनिधियोंको विधान परिषद्में शामिल कर उनके अधिकार-क्षेत्रको बढ़ाया जाय; उन्हें परिषद्में वार्षिक बजटपर बहस करने तथा प्रश्नोत्तरों द्वारा सरकारसे सूचनाएँ प्राप्त करनेका अधिकार प्राप्त हो।

प्रबुद्ध लोकमतके दबावके फलस्वरूप ब्रिटिश पार्लियामेण्टने १८९२ ई० में इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट बनाया, जिसके फलस्वरूप गवर्नर-जनरलकी विधान परिषद् तथा प्रादेशिक गवर्नरोंकी परिषदोंके गैर-सरकारी सदस्योंकी संख्यामें वृद्धि कर दी गयी। यद्यपि कुछ सदस्योंका सरकार द्वारा मनोनयन जारी रखा गया, तथापि उनमेंसे कुछ को परोक्षरूपमें निर्वाचित करनेका भी प्राविधान कर दिया गया। ऐक्टके द्वारा विधान परिषदों-

को वार्षिक बजटपर बहस करने तथा प्रश्नों द्वारा सूचनाएँ प्राप्त करनेका भी अधिकार प्राप्त हो गया। निर्वाचनके सिद्धांतको स्वीकार कर और विधान परिषदों-को कार्यकारिणीपर कुछ नियंत्रण प्रदान कर, इंडियन कौंसिल एक्ट १८९२ ई० ने भारतमें शासन-सुधारोंका मार्ग प्रशस्त कर दिया।

भारतीय लोकमत प्रशासन व्यवस्थाको और अधिक उदार बनानेके लिए निरन्तर दबाव डालता रहा। अगला महत्त्वपूर्ण परिवर्तन १९०९ ई० के भारतीय शासन विधान द्वारा किया गया। इसे मार्ले मिन्टो सुधार कहते हैं। इस कानूनमें योग्य भारतीयोंको पहलेकी अपेक्षा अधिक संख्यामें सरकारमें शामिल करनेका प्राविधान किया गया। इसके फलस्वरूप एक भारतीय (सर सत्येन्द्र प्रसन्न सिन्हा, बादमें रायपुरके लार्ड सिन्हा) की वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्में तथा बंगालकी कार्य-कारिणी परिषद्में राजा किशोरीलाल गोस्वामीकी नियुक्ति हुई थी। इसी प्रकार मद्रास और बम्बई प्रांतोंकी कार्यकारिणी परिषदोंमें भी भारतीयोंकी नियुक्तियां की गयीं। १९०९ ई० के कानूनमें विधानपरिषदोंकी संरचना तथा उनके कार्योंमें भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। केन्द्रीय विधान परिषद्की सदस्य संख्या बढ़ाकर साठ और बड़े प्रांतोंकी विधान परिषदोंमें निर्वाचित गैर-सरकारी सदस्योंकी अनुपातिक संख्या बढ़ा दी गयी, यद्यपि बहुमत मनोनीत सरकारी एवं गैरसरकारी सदस्यों-का ही बनाये रखा गया। सदस्योंका निर्वाचन पहलेकी भाँति परोक्ष पद्धतिसे ही होता था, अब साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वका भी सूत्रपात कर दिया 'गया। निर्वाचन क्षेत्र पहलेकी तुलनामें अधिक व्यापक बना दिये गये। विधान परिषदोंको बजटपर बहस करने और उनपर तथा सेना, विदेशी मामले तथा देशी रजवाड़ोंके प्रश्नोंको छोड़कर, अन्य प्रश्नोंपर प्रस्ताव लानेकी भी अनुमति प्रदान कर दी गयी। प्रस्ताव सिफारिशके ही रूपमें होते थे और उन्हें स्वीकार करनेके लिए सरकार बाध्य नहीं थी, इस प्रकार १९०९ ई० का कानून भारतमें उत्तर-दायी सरकारकी शुरुआतकी दिशामें एक महत्त्वपूर्ण कदम था, फिर भी इस कानूनके द्वारा भारतमें उत्तरदायी शासन प्रणालीकी स्थापना नहीं हुई और भारतीय प्रशा-सन पहलेकी भाँति पूर्णरूपसे ब्रिटिश पार्लियामेन्टके प्रति उत्तरदायी बना रहा।

अतः १९०९ ई० के शासन-सुधारोंसे भारतीय राजनीतिक आकांक्षाएँ सन्तुष्ट नहीं हो सकीं और असंतोष बढ़ता रहा। उसके बाद प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया और भारतने अपनी राजभक्तिका परिचय देते हुए युद्धमें इंग्लैण्डका साथ दिया और अपनी सरकारकी नीतियोंके निर्धारणमें अधिक आवाजकी माँग की। भारतीयोंकी माँगोंको सन्तुष्ट करनेके लिए ब्रिटिश सरकारने २० अगस्त १९१७ ई० को भारत मंत्री श्री एड्विन मान्टेग्यू-के माध्यमसे घोषणा की कि "सम्राट्की सरकारकी यह नीति है कि प्रशासनकी प्रत्येक शाखामें भारतीयोंको अधिक स्थान दिया जाय तथा स्वायत्तशासी संस्थाओंको क्रमिक रूपसे विकसित किया जाये ताकि ब्रिटिश साम्रा-ज्यके अभिन्न अंगके रूपमें भारतमें उत्तरोत्तर उत्तरदायी सरकारकी स्थापना हो सके।" यह एक युगान्तरकारी घोषणा थी जिसके द्वारा भारतमें संसदीय पद्धतिकी उत्तरदायी सरकारकी स्थापनाका वचन दिया गया था। इस नीतिके अनुसरणमें १९१९ ई० का भारतीय शासन विधान पास किया गया जो १९२१ ई० से लागू हुआ।

१९१९ ई० के भारतीय शासन विधानने भारतीय प्रशासन और भारतमंत्रीके सम्बन्धोंमें कोई प्रभावी परि-वर्तन नहीं किया। यद्यपि भारतमंत्रीकी परिषद्में भार-तीयोंकी नियुक्तिका पथ प्रशस्त कर दिया गया, तथापि परिषद्को यथापूर्व भारतमंत्रीके अधीनस्थ रखा गया। भारतमंत्रीका भारतीय प्रशासनपर पूर्ण नियंत्रण, केवल प्रांतोंके हस्तान्तरित विभागोंके प्रशासनको छोड़कर, पूर्ववत् बना रहा। भारतमंत्रीको केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारोंके एजेंटकी हैसियतसे किये जानेवाले कार्योंसे मुक्त कर दिया गया। यह दायित्व एक नये अधिकारी, हाईकमिश्नर, को सौंपा गया जिसकी नियुक्ति भारत सरकार करती थी। इसके अतिरिक्त भारतमंत्री तथा उपमंत्रीका वेतन तथा उसके विभागका व्यय, जो तब तक भारतीय राजस्वसे वहन किया जाता था, आगेसे ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा स्वीकृत ब्रिटेनके बजटसे वहन किये जानेका प्राविधान किया गया। इस प्रकार भारतपर ब्रिटिश पार्लियामेण्टका नियंत्रण और सुदृढ़ बना दिया गया।

१९१९ ई० के विधानमें भारतकी प्रशासकीय व्य-वस्थामें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल यथापूर्व भारतमंत्री तथा पार्लियामेन्टके प्रति उत्तरदायी बना रहा, किन्तु उसकी कार्यकारिणी परिषद्का आकार बढ़ा दिया गया और यह परम्परा प्रचलित की गयी कि उसके तीन सदस्य भारतीय होंगे। इस प्रकार भारतीय प्रशासनको प्रभावित करनेकी दृष्टि-

से भारतीयोंकी स्थिति पहलेकी अपेक्षा सुधर गयी। केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारोंके कार्योंको यथासम्भव स्पष्ट रूपसे विभाजित कर दिया गया और उनके आयके स्रोतोंको भी निर्धारित कर दिया गया।

केन्द्रीय विधानमंडलको भी पूरी तरहसे नया रूप दिया गया। उसे दो सदनोंमें विभक्त कर दिया गया। अपर सदनका नाम कौंसिल आफ स्टेट (राज्यसभा) तथा निम्न सदनका नाम केन्द्रीय लेजिस्लेटिव असेम्बली (विधानसभा) रखा गया। कार्यकारिणी परिषदके सदस्योंको गवर्नर-जनरल इन दोनोंमेंसे किसी एक सदनमें मनोनीत कर सकता था। यद्यपि साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी प्रणाली कायम रखी गयी, तथापि प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणालीके सिद्धान्तको मान्यता प्रदान कर दी गयी और दोनों सदनोंमें निर्वाचित सदस्योंका बहुमत हो गया। मताधिकार सम्पत्ति सम्बधी योग्यतापर आधारित था जो कौंसिल आफ स्टेटके लिए निम्न सदन की अपेक्षा अधिक ऊँची थी, किन्तु अनुचित रूपसे प्रतिबंधात्मक नहीं थी।

केन्द्रीय विधानमंडलको विधि-निर्माणके क्षेत्रमें तथा वित्तीय मामलोंमें विस्तृत अधिकार प्रदान कर दिये गये, किन्तु साथ ही गवर्नर-जनरलको प्रमाणीकरण तथा अध्यादेश जारी करनेके अधिकार प्रदान करके उसके इन अधिकारोंको काफी हद तक सीमित भी कर दिया गया। दोनों सदनोंके अधिकार समान थे, किन्तु अनुदानोंको स्वीकार या अस्वीकार करनेका अधिकार केवल निम्न सदनको था। इस प्रकार भारतके इतिहासमें पहली बार एक निर्वाचित संसदकी स्थापना हुई, जिसे प्रशासनको काफी हद तक नियंत्रित करनेका अधिकार प्राप्त था।

१९१९ ई० के शासन-विधान नेप्रादेशिक शासन-व्यवस्थामें भी व्यापक परिवर्तन कर दिये। सभी १० प्रांतोंको, जिनमें उस समय ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य विभक्त था, गवर्नरोंवाला प्रांत बना दिया गया। इन प्रांतोंका शासन गवर्नर कार्यकारिणी-परिषदकी सहायतासे चलाते थे, जिनमें कुछ गैरसरकारी भारतीय सदस्योंकी नियुक्तिका प्राविधान कर दिया गया। गवर्नरकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती थी। उसे व्यापक अधिकार तथा विशेषाधिकार प्राप्त थे। वास्तवमें प्रांतीय शासनकी वास्तविक सत्ता उसी के हाथमें केन्द्रित थी। फिर भी नये विधानके अनुसार प्रांतोंमें पहली बार वैधशासनका प्रचलन किया। प्रशासकीय विभागोंको दो भागोंमें विभक्त कर दिया गया। पुलिस, न्याय, भूमि राजस्व आदि विभागोंको आरक्षित विषयोंके अंतर्गत रखा गया तथा हस्तान्तरित विषयोंके अंतर्गत स्वायत्त-शासन, शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ, आबकारी आदि विभागोंको कर दिया गया। आरक्षित विषयोंके सम्बन्धमें प्राविधान किया गया कि इन विभागोंका प्रशासन गवर्नर कार्यकारिणी परिषद्के सदस्योंके परामर्श और सहायतासे चलायेगा जो पहलेकी भाँति गवर्नर-जनरल तथा भारत-मंत्रीके प्रति उत्तरदायी होंगे। किन्तु हस्तान्तरित विषयोंका प्रशासन गवर्नर द्वारा अपने मन्त्रियोंके परामर्श तथा सहायतासे चलानेका प्राविधान किया गया। इन मंत्रियोंकी नियुक्ति गवर्नर प्रांतीय विधानमंडलके निर्वाचित सदस्योंमेंसे ही कर सकता था। मंत्री अपने पदपर गवर्नरकी खुशीपर बने रह सकते थे, किन्तु उनके लिए विधानमंडलका विश्वास बनाये रखना अनिवार्य था। विश्वास खो देनेपर उन्हें बर्खास्त कर दिया जाता था।

प्रांतोंमें विधान मंडलोंको व्यापक अधिकार प्रदान किये गये। उनके बहुसंख्यक सदस्य गैरसरकारी होते थे, जो प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणालीके आधारपर निर्वाचित किये जाते थे। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व तथा नामजदगीकी प्रणालीको कायम रखा गया, किन्तु प्रांतीय विधान मंडलोंके अधिकार काफी बढ़ा दिये गये। उनमें किसी भी प्रांतीय विषयके सम्बन्धमें विधेयक प्रस्तुत किया जा सकता था; किन्तु आरक्षित विषयोंसे सम्बन्धित विधेयकको उसके प्रतिकूल मतदानके बावजूद कानून बनाया जा सकता था, यदि गवर्नर यह प्रमाणित कर दे कि वह प्रांतकी शांति एवं व्यवस्थाके लिए आवश्यक है। लेकिन हस्तान्तरित विषयोंसे सम्बन्धित विधेयक केवल उसकी अनुमतिसे ही स्वीकृत हो सकते थे। इसी प्रकार प्रांतका पूरा बजट प्रांतीय विधान मंडलमें प्रस्तुत किया जाना और उस पर विधान मंडलमें बहस होना आवश्यक था, किन्तु हस्तान्तरित विषयोंसे सम्बन्धित अनुदानोंपर जबकि उसकी स्वीकृति आवश्यक थी, आरक्षित विषयोंसे सम्बन्धित अनुदानको अस्वीकृत हो जानेपर भी गवर्नर अपने विशेषाधिकारसे प्रमाणित करके पास कर सकता था। इस प्रकार विधि-निर्माण एवं वित्तीय मामलोंमें प्रांतीय विधान मंडलोंके अधिकार, यद्यपि आरक्षित विषयोंके सम्बन्धमें काफी सीमित थे, तथापि पहलेकी तुलनामें काफी विस्तृत हो गये थे। केन्द्रीय एवं प्रांतीय विधान मंडलोंमें व्यापक मताधिकारके आधारपर प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणालीकी शुरुआत तथा उन्हें बहस करने और निर्णय लेनेके व्यापक अधिकार प्रदान किया जाना

१९१९ ई०के शासन-विधानकी महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। इस शासन-विधानने अनेक प्रतिबंधोंके बावजूद ब्रिटिश भारतको संसदीय लोकतांत्रिक शासन-प्रणालीके पथपर निश्चित रूपसे अग्रसर कर दिया।

फिर भी १९१९ ई०के शासन-विधानसे, जो १९२१ ई०में कार्यान्वित हुआ, भारतीयोंकी राष्ट्रीय आकांक्षाओं-को सन्तुष्ट नहीं किया जा सका। भारतीय लिबरलोंने इन शासन-सुधारोंको स्वीकार कर लिया और उन्हें कार्यान्वित करनेका भी प्रयास किया; किन्तु भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने उन्हें नितांत अपर्याप्त मान कर अस्वीकार कर दिया। महात्मा गांधी, जो उस समय तक कांग्रेसके मान्य नेता बन गये थे और खिलाफत आन्दोलन (दे०) का भी नेतृत्व कर रहे थे, असहयोग आन्दोलन शुरू कर दिया। यह आंदोलन शीघ्र ही सारे देशमें फैल गया। किन्तु १९२४ ई० तक खिलाफत आन्दोलनकारी कांग्रेससे अलग हो गये और ब्रिटिश सरकार भी पशु-बलके आधार-पर असहयोग आन्दोलनका दमन करनेमें सफल हो गयी। फिर भी कांग्रेसने झुकना तो दूर, अपने १९२७ ई०के मद्रास अधिवेशनमें भारतका लक्ष्य 'पूर्ण स्वाधीनता' घोषित किया। अपनी इस घोषणाको उसने और अधिक स्पष्ट शब्दोंमें १९२९ ई०के लाहौर अधिवेशनमें दोहराया। १९३० ई०में महात्मा गांधीने सविनय-अवज्ञा आन्दोलन (दे०) आरम्भ कर दिया। ब्रिटिश सरकारने पुनः कठोर दमनकी नीति अपनायी, महात्मा गांधी सहित सभी कांग्रेस नेताओंको कैद कर लिया और हजारों लोगोंको जेलोंमें ठूंस दिया। फलस्वरूप सविनय-अवज्ञा आन्दोलन धीरे-धीरे शिथिल पड़ गया, किन्तु देशमें असंतोष बना रहा। असन्तुष्ट भारतको सन्तुष्ट करनेकी आशामें ब्रिटिश पार्लियामेण्टने १९३५ ई०में नया भारतीय शासन विधान पास किया, जिसके द्वारा भारतीय प्रशासनतंत्रमें महत्त्व-पूर्ण परिवर्तन किये गये। १९३५ ई०के शासन-विधानमें भारत सरकारको पहलेकी भाँति वाइसराय तथा गवर्नर-जनरलको भारत मंत्रीके प्रति उत्तरदायी बनाकर ब्रिटिश पार्लियामेण्टके अधीन रखा गया। इसके साथ उसमें तत्कालीन भारतीय शासन-विधानकी सभी विशेषताओं, जैसे विधान मंडलोंमें जनताका प्रतिनिधित्व, द्वैध शासन, मंत्रियोंका उत्तरदायित्व, प्रांतोंको स्वशासन-साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व एवं विशेषाधिकारोंको यथापूर्व कायम रखा गया। इसके अतिरिक्त इस विधानमें दो नयी विशेषताएँ थीं—यथा, केन्द्रमें संघशासन तथा प्रदेशोंमें जिन्हें स्वशासन प्रदान कर दिया गया था, लोकप्रिय उत्तरदायी सरकार।

दो नये प्रांत, यथा सिन्ध तथा उड़ीसा गठित किये गये और इन दोनोंको पश्चिमोत्तर सीमा-प्रांतके साथ गवर्नर-वाला प्रांत बना दिया गया। बर्माको ब्रिटिश भारतसे पृथक् कर दिया गया। इस प्रकार ब्रिटिश भारतमें तब ११ गवर्नरोंवाले प्रांत तथा ४ चीफ-कमिश्नरों द्वारा शासित क्षेत्र यथा दिल्ली, अजमेर-मारवाड़, कुर्ग, अंडमान तथा निकोबार द्वीपसमूह तथा ब्रिटिश बलूचिस्तान थे।

१९३५ ई०के शासन-विधानकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता संघीय शासन-प्रणाली थी। उसमें सभी भारतीय प्रांतों तथा सभी देशी रियासतोंकी एक संघीय इकाई बनानेका प्रस्ताव किया गया था। केन्द्रमें द्विसदनीय विधानमंडल तथा गवर्नर-जनरलकी कार्यकारिणी परिषद्-में द्वैध शासनकी व्यवस्था की गयी थी। गवर्नर-जनरलको अधिकार दिया गया था कि वह अपनी कार्यकारिणी परिषद्में दो सदस्योंको मनोनीत करके सुरक्षा तथा विदेशी मामलोंके आरक्षित विभागोंको उनके जिम्मे कर दें। अन्य सभी विभाग हस्तांतरित विभागोंके अन्तर्गत कर दिये गये थे और यह प्राविधान किया गया था कि उनका शासन चलानेके लिए गवर्नर-जनरल मंत्रियोंकी नियुक्ति करेगा, जो विधान मंडलके प्रति उत्तरदायी होंगे। गवर्नर-जनरलको पहलेकी ही भाँति यह विशेषाधिकार प्राप्त था कि संघीय विधानमंडलमें प्रतिकूल मतदान होनेके बावजूद वह प्रमाणित करके किसी विधेयकको कानूनका रूप दे सकता था। इसके साथ ही वह ६ महीनेकी अवधिके लिए अध्यादेश भी जारी कर सकता था। संघीय विधानमंडलके दोनों सदनोंके बहुसंख्यक सदस्योंके मतदाताओं द्वारा सीधे निर्वाचित किये जानेकी व्यवस्था की गयी थी, किन्तु संघमें शामिल होनेवाली देशी रियासतोंको निचले सदनके एक तिहाई प्रतिनिधियों-को तथा ऊपरी सदनके दो बटा पाँच प्रतिनिधियोंको मनोनीत करनेका अधिकार प्रदान किया गया था। इस प्रकार सम्पूर्ण भारतके प्रतिनिधियोंके एक ही सदनमें बैठनेकी व्यवस्था पहली बार की गयी थी।

१९३५ ई०के शासन-विधानमें प्रांतोंमें द्वैध शासन समाप्त करके लोकप्रिय सरकारोंकी स्थापना की गयी। सभी विभागोंका प्रशासन मंत्रियोंके जिम्मे कर दिया गया, जिनकी नियुक्ति गवर्नरोंके हाथमें थी, लेकिन वे लोकप्रिय निर्वाचित विधान-सभाओंके प्रति उत्तरदायी होते थे। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व बरकरार रखा गया और ६ प्रांतोंमें द्विसदनीय विधान मंडलोंकी व्यवस्था की गयी। प्रत्येक प्रांतके निचले सदनमें जनता द्वारा निर्वाचित

प्रतिनिधि होते थे। सभी वयस्क स्त्री पुरुषोंको जो थोड़ी सम्पत्ति भी रखते थे, मताधिकार प्रदान कर दिया गया था।

१९३५ ई०का शासन-विधान भारतको औपनिवेशिक स्वराज्यका दर्जा दिलानेकी दिशामें एक महत्त्वपूर्ण कदम था, किन्तु इसके द्वारा जो शासन-व्यवस्था स्थापित की गयी थी, वह कुछ महत्त्वपूर्ण मामलोंमें औपनिवेशिक स्वराज्यके दर्जेके अनुकूल नहीं थी। प्रथमतः, केन्द्रमें द्वैध शासन होनेके कारण कार्यकारिणीका एक भाग भारतके लोगों द्वारा हटाया नहीं जा सकता था और वह ब्रिटिश पार्लियामेण्टके प्रति उत्तरदायी था। दूसरे, वाइसरायके प्रमाणित करके तथा अध्यादेशों द्वारा कानून बनानेके विशेषाधिकार वास्तविक औपनिवेशिक स्वराज्यके प्रतिकूल थे और इनसे सिद्ध होता था कि भारत अब भी इंग्लैण्ड पर आश्रित है। तीसरे, यह प्राविधान कि भारतीय संघीय विधानमंडल द्वारा पास किये गये कानूनोंपर गवर्नर-जनरल अपनी स्वीकृति प्रदान करनेमें इंकार कर सकता है अथवा आरक्षित रख सकता है और भारत-मंत्रीके परामर्शपर ब्रिटिश राजसत्ता उसे अस्वीकृत कर सकती है, भारतके पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्यके दर्जेका उपभोग करनेके मार्गमें सबसे गम्भीर रुकावट थी।

ऐसी परिस्थितियोंमें १९३५ ई०के शासन-विधानके सम्बन्धमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया। विधानके संघीय भागका क्रियान्वयन देशी राजाओंके सहयोगपर निर्भर करता था और चूंकि इस भागका स्वागत नहीं हुआ था, अतः विधानका केवल प्रांतीय विभाग ही १९३७ ई०में कार्यान्वित किया गया। सभी पार्टियोंने चुनावमें भाग लिया और सभी प्रांतोंमें लोकप्रिय सरकारोंकी स्थापना हो गयी, किन्तु केन्द्रमें पुरानी प्रणालीकी अनुत्तरदायी कार्यकारिणी और आंशिक लोकप्रिय विधायिका, जो कि १९१९ ई० के विधानके अनुसार गठित की गयी थी, कार्य करती रही। दो वर्ष पश्चात् द्वितीय विश्व-युद्ध शुरू हो गया, जिसका भारतकी राजनीतिक स्थितिपर जबर्दस्त प्रभाव पड़ा। प्रारम्भमें ब्रिटेनकी पराजयोंके बाद उसके द्वारा शत्रुओंका जबर्दस्त मुकाबला, जापानियोंका आक्रमण, युद्धमें अमेरिकी हस्तक्षेप तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीगके बीच गम्भीर मतभेदोंके फलस्वरूप भारतमें अत्यधिक तनावपूर्ण राजनीतिक स्थित पैदा हो गयी। कुछ लोगोंका विचार था कि ब्रिटेनके खतरेसे लाभ उठाकर भारतको अपनी आजादीके लिए दबाव डालना चाहिए, किन्तु महात्मा गांधीने घोषित किया कि 'हम ब्रिटेनका विनाश करके अपनी आजादी नहीं प्राप्त करना चाहते हैं।' इन परिस्थितियोंमें ब्रिटिश सरकारने वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्की सदस्य संख्या बढ़ाकर १५ कर दी, जिनमेंसे ११ सदस्य भारतीय होनेवाले थे। इस प्रकार ब्रिटिश सरकारने भारतीय प्रशासनके काफी बड़े हिस्से पर भारतीयोंका नियंत्रण स्थापित कर और सर स्टैफर्ड क्रिप्सको भारतीय समस्याका समाधान ढूंढ़नेके लिए भारत भेजनेकी घोषणा की। लेकिन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तत्काल पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान करनेके लिए आन्दोलन करती रही। चूंकि ब्रिटिश सरकारने स्वेच्छासे इस मांगको स्वीकार नहीं किया, अतएव कांग्रेसने महात्मा गांधीके नेतृत्वमें अंग्रेजोंसे तत्काल भारत छोड़ देनेकी मांग की और १९४२ में देशव्यापी सविनय-अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ कर दिया। महात्मा गांधीद्वारा अहिंसाका आग्रह करनेके बावजूद आन्दोलनके दौरान काफी हिंसात्मक घटनाएँ घटीं। ब्रिटिश सरकार पशुबलका प्रयोग करके आन्दोलनका दमन करनेमें सफल हो गयी और अन्तमें युद्धमें भी जीत गयी। किन्तु १९४२ ई०की बगावत और १९४६ ई०में नौसेनाके विद्रोहने यह प्रकट कर दिया कि ब्रिटेन अब बहुसंख्यक भारतीयोंकी सहमतिसे अपना शासन कायम नहीं रख सकता है। उसने अप्रैल १९४६ ई०में कैबिनेट मिशनको भारत भेजा, उसकी विफलता तथा उसके बाद भारत-व्यापी साम्प्रदायिक दंगोंने इस विश्वासको और भी सुदृढ़ कर दिया। विश्वयुद्धमें जीत जानेके बावजूद ब्रिटेन इतना थक और दिवालिया हो गया था कि वह यह समझ गया कि मात्र शक्तिके बलपर वह भारतको अपने कब्जेमें नहीं रख सकता है। भारतको यदि तत्काल आजाद न किया गया तो वह न केवल उसे खो बैठेगा वरन् उसके साथ मैत्रीपूर्ण व्यावसायिक सम्बन्ध भी कायम नहीं रख सकेगा। व्यावसायिक सम्बन्धोंपर ब्रिटेनकी आर्थिक व्यवस्था एवं वित्तीय सम्पन्नता निर्भर करती है। ऐसी परिस्थितिमें ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंने अभूतपूर्व दूरदर्शिता और साहसका परिचय देते हुए १५ अगस्त १९४७ ई०को भारतको स्वाधीनता प्रदान कर दी, देशका भारत और पाकिस्तानके रूपमें दो भागोंमें विभाजन कर दिया। ब्रिटेनकी 'फूट डालो और शासन करो की नीतिके फलस्वरूप भारतमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीचकी खाई इतनी चौड़ी हो गयी थी कि देशका विभाजन अनिवार्य हो गया था। इस प्रकार १७७३

ई०के रेग्युलेटिंग एक्ट द्वारा जिस भारतीय प्रशासनतंत्रकी नींव डाली गयी, उसकी चरम परिणति भारतकी स्वाधीनताके रूपमें हुई। (सर सी० इल्बर्ट–दि गवर्नमेण्ट आफ इंडिया तथा ए० बी० कीथ–कांस्टीच्यूशनल हिस्ट्री आफ इंडिया)

ब्रेथवेट, कर्नल–एक ब्रिटिश सैनिक अधिकारी, जो १७८१ ई०के द्वितीय आंग्ल-मैसूर युद्धमें हैदरअलीकी सेनासे पराजित हो गया।

ब्लावत्स्की, मैडम हेलेना पेत्रव्ना (१८३१-९१)–एक प्रतिभाशाली रूसी महिला, जो भारतके प्राचीन अध्यात्मवादकी बहुत प्रशंसक थीं और १८७५ ई०में उन्होंने ब्रह्मविद्या-समाज (थियोसोफिकल सोसाइटी) की स्थापना की। १८७९ ई०में वे भारत आयीं और मद्रासके निकट अडयारमें थियोसोफिकल सोसाइटीके प्रधान कार्यालयकी स्थापना की। उनके प्रमुख प्रकाशनोंमें 'आइसिस' 'अनवेल्ड' 'सिक्रेट डाक्ट्रिन' तथा 'दि वायस आफ साइलेन्स' हैं। (ए० पी० क्लीथर—एच० पी० ब्लावत्स्की: हरसेल्फ)

ब्लेकेट, सर बसील–लार्ड इर्विन (१९२६–३१ ई०)के शासनकालमें वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्का वित्त-सदस्य। सर बसीलने रुपयेका विनिमय मूल्य १ शिलिंग ६ पेंस स्थिर किया, जिसकी भारतीयोंने तीव्र आलोचना की।

ब्लैकहोल (कालकोठरी)–कलकत्ता स्थित फोर्ट विलियममें १८ फुट लम्बा और १४ फुट दस इंच चौड़ा एक कमरा। २० जून १७५६ ई०को नवाब सिराजुद्दौलाने किलेपर कब्जा करके अनेक अंग्रेजोंको बन्दी बना लिया। बी० जेड० हालवेलके अनुसार, जिसके ऊपर उस समय किलेकी रक्षाका भार था, अंग्रेज बन्दियोंकी संख्या १४६ थी। उन सबको रातमें किलेकी काल-कोठरीमें बंद कर दिया गया, जिसके फलस्वरूप दम घुटनेसे रातमें १२३ बन्दियोंकी मृत्यु हो गयी। इस घटनाको क्रूर नृशंसता माना गया और सिराजुद्दौलाको इसके लिए जिम्मेदार ठहराया गया। ठोस सबूतोंके आधारपर इस घटनाकी सचाईपर सन्देह प्रकट किया जाता है और सम्भव है कि यह कोरी कपोल-कल्पना हो। जो कुछ भी हो, सिराजुद्दौला इस घटनाके लिए जिम्मेदार नहीं था। (मिल—हिस्ट्री आफ इंडिया, विद विल्सन नोट्स, जिल्द ३, १८५८ ई० का संस्करण; ए० के० मैत्र कृत बंगला पुस्तक सिराजुद्दौला; सी० लिटिल—दि ब्लैक होल ट्रेजडी)

भ

भगदत्त–कामरूपका पौराणिक राजा, जिसका उल्लेख महाभारतमें भी मिलता है। ऐतिहासिक कालमें कामरूपके राजा पुष्यवर्मा (लगभग ३३०–६४६ ई०)के वंशज अपनेको भगदत्त कुलोत्पन्न मानते थे। ८ वीं शताब्दीमें कामरूपका राजा हर्ष हुआ। उसने अपनी पुत्री राज्यमतीका विवाह नेपालके राजासे किया था। नेपालके एक शिलालेखमें राजा हर्षको भी भगदत्त-कुलोपन्न बताया गया है। (इं० ए०, खण्ड ९, पृ० १७९)

भगवद्गीता महाभारतके भीष्मपर्वका अंश। सनातनी हिन्दुओंकी मान्यताके अनुसार इसमें पाण्डव-वीर अर्जुनको दिया गया भगवान् कृष्णका उपदेश संगृहीत है। इसका रचनाकाल अभी तक निश्चित रूपमें निर्धारित नहीं हो सका है। स्वामी विवेकानन्दके विचारसे इसकी रचना बुद्धसे पूर्व हो चुकी थी। पश्चिमके विद्वान् इसका रचनाकाल चौथी शताब्दी ईसवी मानते हैं। यह हिन्दू धर्मका सर्वश्रेष्ठ और सर्वमान्य ग्रंथ है, जिसमें निष्काम कर्म और भक्तिका उपदेश दिया गया है।

भगवानदास–आमेर (जयपुर)का शासक, जिसके पिता राजा बिहारीमलने स्वेच्छासे मुगल बादशाह अकबरका आधिपत्य स्वीकार कर उससे अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया। अकबरकी सेवामें आकर भगवानदासने अच्छी पदोन्नति की और मुगल सेनाके आक्रमणका नेतृत्व कर कश्मीरपर विजय प्राप्त की, जिससे वह मुगल साम्राज्यका अंग बन गया। राजा भगवानदास ख्याति-प्राप्त हिन्दी कवि भी थे।

भग्ग (भर्ग) गण–प्राक्-मौर्यकालमें सुंसुमार गिरिपर निवास करता था।

भट्ट कुल–जिसने बालाजी विश्वनाथ भट्टको उत्पन्न किया, जो राजा साहूके अष्ट प्रधानोंमेंसे एक था। उसने पेशवा अथवा मुख्य प्रधानके पदकी प्रतिष्ठा बढ़ा कर उसे मराठा राज्यका सर्वेसर्वा बना दिया। उसने इस पदको अपने परिवारमें पुश्तैनी कर दिया। सभी पेशवा उसके वंशज थे।

भण्डि–राज्यवर्धन (दे०)की मृत्युके समय कन्नौजका प्रमुख राजपुरुष, जिसने हर्ष (दे०)को सिंहासनासीन करनेमें प्रधान भूमिका पूरी की।

भत्ता–एक पारिभाषिक शब्द। यह एक प्रकारका अतिरिक्त वेतन था जो बंगालमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके सैनिक अधिकारियोंको दिया जाता था। इसकी रकम मीरजाफरने

दूसरी बार बंगालका नवाब बननेपर दुगुनी कर दी, लेकिन १७६६ ई०में ईस्ट इंडिया कम्पनीके डाइरेक्टरोंने इसे बन्द कर देनेका निर्णय किया। जब बंगालके गर्वनर क्लाइवने तत्कालीन भत्ता बन्द करनेके निर्णयको कार्यान्वित किया, तब कम्पनीके भारत स्थित अंग्रेज सैनिक अधिकारियोंने इसके कार्यान्वयनको रोकनेके प्रयासमें अपने कमीशन सामूहिक रूपमें त्याग दिये। यह व्यवहारतः एक प्रकारका विद्रोह था, किन्तु क्लाइवने स्थितिका मुकाबला बड़ी सूझ-बूझके साथ किया और अधिकारी भी झुक गये। १७६५ ई० में यह भत्ता उस समय पुनः चालू कर दिया गया जब अंग्रेज अधिकारियोंने संयुक्त रूपसे इसके पुनः चालू किये जानेका अनुरोध किया। किन्तु लार्ड विलियम बेण्टिक (१८२८—३५ ई०)के प्रशासन-कालमें डाइरेक्टरोंके आदेशानुसार इसे अन्तिम रूपसे समाप्त कर दिया गया।

भद्रक—शुंग राजवंशका पाचवाँ राजा। उसकी पहचान पभोसाके शिलालेखमें वर्णित राजा उदक अथवा औड्रकसे की जाती है, लेकिन यह अभी निश्चित नहीं है। उसके बारेमें और अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है। **(रायचौधरी, पृ० ३९३-९४)**

भद्रबाहु—श्रुत केवली जैन मुनियोंमें अन्तिम, जो सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्यके समकालीन थे। चन्द्रगुप्तके शासनकी अन्तिम अवधिमें बारह वर्षीय अकाल पड़ा, जिससे सारे साम्राज्यमें त्राहि-त्राहि मच गयी, अन्तमें चन्द्रगुप्त सिंहासन त्याग कर भद्रबाहुके नेतृत्वमें अन्य जैन मुनियोंके साथ दक्षिण भारतके कर्नाटक देशस्थ श्रवण बेलगोला नामक स्थानपर चला गया। भद्रबाहुने पूर्णायुका भोग कर अंतमें पण्डितमरणकी जैन विधिके अनुसार अनशन करके देहत्याग किया। उन्होंने दक्षिण भारतमें जैन-धर्मका अच्छा प्रचार किया। उनका उल्लेख श्रीरंगपट्टम्में प्राप्त लगभग ६०० ई०के दो शिलालेखोंमें मिलता है। श्रवण बेलगोला स्थित जैन मठके गुरु, जो दक्षिण भारतके सभी जैन साधुओंके आचार्य माने जाते हैं, अपनेको भद्रबाहुकी शिष्य-परम्परामें बतलाते हैं। **(जैकोबी—सैक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट)**

भद्रव्यास—एक भारतीय वीर, जिसने पूर्वी पंजाबके बाख्त्री यवन राज्यको नष्ट करनेमें प्रमुख योगदान किया था। **(राय चौधरी, पृ० ४२९)**

भद्रसाल—नन्दवंशके अन्तिम राजाका सेनापति, जिसे चन्द्रगुप्त मौर्यने सिंहासनपर अधिकार करनेके लिए काफी रक्तपातके बाद पाटलिपुत्र (पटना)में हराया था।

भरत—अनेक वैदिक राजाओं, ऋषभदेवके छोटे पुत्र, दुष्यंत-शकुन्तलाके पुत्र तथा रामचन्द्रजीके अनुजका नाम। उत्तरमें हिमालयसे लेकर दक्षिणमें हिन्दमहासागर तक विस्तृत उपमहाद्वीप भारतवर्षके नामसे विख्यात है, क्योंकि इसमें भरतके वंशज रहते हैं। **(विष्णु पुराण, खण्ड २ पृष्ठ ३.१)**

भरतपुर—एक नगर और भूतपूर्व देशी राज्य, जिसकी स्थापना अठ्ठारहवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें जाट सरदार बदनसिंहने की। उसके दत्तक पुत्र और उत्तराधिकारी सूरजमलके शासनकालमें भरतपुर राज्यकी सीमा आगरा, धौलपुर, मैनपुरी, हाथरस, अलीगढ़, इटावा, गुरगांव तथा मथुरा तक फैल गयी थी। इस प्रकार यह केन्द्रीय भारतमें एक शक्तिशाली सत्ताके रूपमें संगठित हो गया। बादमें इसका क्षेत्र कम हो गया। भरतपुरमें एक बहुत ही मजबूत दुहरा किला बना हुआ है। पानीपतकी तीसरी लड़ाई (१७६१ ई०)में इसके शासक सूरजमलने मराठोंका साथ नहीं दिया। इसकी ख्याति और प्रतिष्ठा उस समय और बढ़ गयी जब १८०५ ई०में द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्धके दौरान इसने लार्ड लेकके नेतृत्वमें लड़ रही ब्रिटिश सेनाको मार भगाया और किलेपर कब्जा करनेके प्रयासको विफल कर दिया। फलतः भरतपुरका किला अभेद्य माना जाने लगा। फिर भी भरतपुरके राजाने अंग्रेजोंके साथ आश्रित रहनेकी सन्धि कर ली और १८२४ ई० तक उनके साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बने रहे। किन्तु प्रथम आंग्ल-बर्मी युद्धके दौरान अंग्रेजी सेनाकी पराजयोंसे प्रोत्साहित होकर भरतपुरके सिंहासनके एक दावेदार, दुर्जन सालने स्वर्गीय राजाके अल्पवयस्क पुत्र तथा अपने चचेरे भाईको सिंहासनपर बैठानेके ब्रिटिश भारत सरकारके निर्णयको सशस्त्र चुनौती दी। किन्तु लार्ड काम्बरमियरके नेतृत्वमें ब्रिटिश सेनाने १८२६ ई०में भरतपुरके किलेको सरलतासे जीत लिया। दुर्जन सालको निर्वासित कर दिया गया और अंग्रेजों द्वारा मनोनीत कुँवरको गद्दीपर बैठाया गया। भरतपुर तबसे ब्रिटिश साम्राज्यका एक निष्ठावान् अधीनस्थ राज्य बना रहा। स्वाधीनता-प्राप्तिके उपरान्त इसे भारतीय गणराज्यमें मिला लिया गया।

भरहुत—मध्य भारतमें स्थित। यह स्थान शुंग-कालीन (१८५ ई० पू०—७३ ई० पू०)। आरम्भिक बौद्ध वास्तु एवं मूर्तिकलाके लिए प्रसिद्ध है।

भरहुत स्तूप—सर जान मार्शलकी रायमें शुंगकाल (१८५—७३ ई० पू०) का सबसे प्राचीन अवशेष। भरहुत मध्य-

प्रदेश राज्यमें विलीन रीवाँ रियासतके क्षेत्रमें अवस्थित है। यह स्तूप उस स्थानपर बनाया गया था, जहाँ मगध और प्रयागके मार्ग मालवा और दक्षिणको जानेवाली सड़कोंसे मिलते थे। यह ईंट और पत्थरका बना हुआ है। इसके चारों तरफ एक वेदिका थी, जिसमें चार तोरण द्वार थे। इसके दो तोरण द्वारोंपर उत्कीर्ण अभिलेखोंमें डाहलके राजाओंकी तीन पीढ़ियोंका उल्लेख है, जो शुंगोंके सामन्त थे। बौद्धधर्मके लुप्त हो जानेपर पड़ोसके गाँवोंके लोगोंने स्तूपको तोड़-फोड़ डाला। इसके अवशेषोंका पता कनिंघम साहबने चलाया। उनके ही प्रयाससे पूर्वी तोरण द्वार तथा वेदिकाके जो बचे हुए स्तम्भ रहे उन्हें कलकत्ता ले जाकर भारतीय संग्रहालयमें रख दिया गया। पूर्वी तोरणद्वार तेईस फुट ऊँचा था। स्तूपके स्तम्भों, सूचियों, उष्णीषों आदि पर बुद्धके जीवन तथा जातकोंके अनेक दृश्योंके चित्र मिलते हैं। **(कैम्ब्रि०, खण्ड १, पृष्ठ ६२४–२५)**

भर्तृदमन—उज्जैनका महाक्षत्रप (२८६–६५ ई०), जो रुद्रसेन (मृत्यु २७४ ई०) का पुत्र था। वह बड़े भाई विश्वसिंह (मृत्यु २८८ ई०) के बाद शासनारूढ़ हुआ। उसका पुत्र विश्वसूर केवल क्षत्रप कहलाता था। ऐसा लगता है, भर्तृदमनकी मृत्युके बाद महाक्षत्रपका पद अस्थाई-रूपसे अप्रचलित हो गया। पश्चिमोत्तर भारतपर सासानी बादशाहों लगभग (२६३–३५० ई०) के आक्रमणोंके बाद सम्भवतः, महाक्षत्रप पद समाप्त कर दिया गया।

भर्तृहरि—एक प्रसिद्ध संस्कृत कवि, जो ईसाकी सातवीं शताब्दीमें विद्यमान थे। उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति 'शतकत्रय' के साथ ही भट्टि काव्य भी कही जाती हैं, जिसकी रचना उन्होंने मुख्यतः संस्कृत व्याकरण पढ़ानेके उद्देश्यसे की थी। मैकडोनेलके अनुसार, विदित होवा है कि भर्तृहरि कविके अतिरिक्त वैयाकरण, तथा तत्त्वज्ञानी थे। **(मैक्डोनेल—हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर)**

भवनाग—भारशिवोंका एक शासक। वाकाटक नरेशोंके अनेक शिलालेखोंमें इसका उल्लेख है। गुप्त साम्राज्यके उत्कर्षके पूर्व इसका अभ्युदय हुआ था और इससे एक राजवंश भी प्रचलित हुआ, जिसका शासन-क्षेत्र गंगा तक फैल गया। भारशिवोंने दस अश्वमेध यज्ञ किये थे। **(रायचौधरी०, पृष्ठ ४८०)**

भवभूति—संस्कृतका दाक्षिणात्य कवि तथा नाटककार, जिसकी प्रसिद्ध रचना 'उत्तरामचरित' तथा 'मालती-माधव' हैं। कहा जाता है कि वह आठवीं शतीके आरम्भमें कन्नौजपर शासन करनेवाले यशोवर्माका दरबारी कवि था।

भाग—भूमि-कर, जो कृषिउपजमेंसे राजाके हिस्सेके रूपमें लिया जाता था और उपजका सामान्यतः षष्ठांश होता था। इसकी मात्रामें हेर-फेर भी होता रहता था। उदाहरणार्थ, अशोकने महात्मा बुद्धकी जन्मस्थली लुम्बिनी ग्राममें इसे घटाकर मात्र आठवाँ भाग कर दिया था।

भागभद्र, काशीपुत्र—विदिशाका एक राजा, जिसके राज्याभिषेकके चौदहवें वर्षमें तक्षशिलाके यवन राजा एण्टीआल्की डसका राजदूत हेलियोडोरस भेंट करने आया। **(स्मिथ०, पृष्ठ २३८ नोट ३; रायचौधरी०, पृष्ठ ३९४)**

भागवत—विदिशाका एक राजा, जिसके राज्याभिषेकके बारहवें वर्षमें विदिशा अथवा बेसनगरमें गरुड़स्तम्भ निर्मित किया गया। यह राजा बेसनगरके राजा भागभद्रसे भिन्न है, जिसका उल्लेख हेलियोडोरस द्वारा स्थापित गरुड़स्तम्भमें किया गया है। **(रायचौधरी०, पृष्ठ ३९४)**

भागवत—एक वैष्णव सम्प्रदाय, जिसके अनुयायी विष्णु, वासुदेव अथवा कृष्णकी पूजा करते हैं। इस सम्प्रदायका प्रादुर्भाव उत्तर वैदिककालमें माना गया है। आगे चलकर इसका प्रभाव अधिक व्यापक हो गया और भारतमें बसे यवनों (यूनानियों) का भी इसकी ओर झुकाव हुआ। तक्षशिलाके यवन राजा एण्टीयाल्कीडसके राजदूत हेलियोडोरसने, जिसने १४० और १३० ई० पू० के बीच बेसनगर अथवा विदिशामें एक गरुड़-स्तम्भ निर्मित कराया, अपनेको गर्वके साथ 'परम-भागवत' घोषित किया है।

भागवत लोग वैष्णवके नामसे भी प्रसिद्ध थे और वासुदेवकी भक्तिको भगवान्का अनुग्रह और कर्म-फलसे मुक्ति पानेका आधार मानते थे। गुप्त-शासकोंके कालमें इस सम्प्रदायका महत्त्व काफी बढ़ गया। कुछ गुप्त सम्राटोंने भी अपनेको 'भागवत' कहा है। कतिपय चालुक्य शासक भी अपनेको भागवत मतावलम्बी बताते थे। बादामी गुहाके प्रसिद्ध मन्दिरोंके आधारपर सिद्ध होता है कि छठीं शताब्दीमें भागवत सम्प्रदायका दक्षिणमें प्रचार था। इस सम्प्रदायके धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धांतोंका प्रतिपादन करनेवाले प्रमुख वैष्णवाचार्योंमें सबसे ज्यादा प्रसिद्धि रामानुज और मध्वको मिली। पूर्वी भारतमें इस सम्प्रदायके सर्वाधिक लोकप्रिय व्याख्याता श्री चैतन्य महाप्रभु हुए। **(राय चौधरी—अर्ली हिस्ट्री आफ दि वैष्णव सेक्ट)**

भानुगुप्त–प्रारम्भिक गुप्त सम्राटोंमेंसे एक, जिसका समय ५१० ई० के लगभग निश्चित किया गया है। उसकी पहचान सम्राट् बालादित्यमे की गयी है, जिसने ह्वेनसांगके अनुसार हूणोंके नेता मिहिरकुलको पराजित किया था।

भाऊ साहब–देखिये, 'सदाशिव राव'।

भानुदेव–गंग राजवंशका एक राजा, जो दक्षिण भारतपर हुए अलाउद्दीनके आक्रमणसे पूर्व उड़ीसापर शासन कर रहा था। १२६४ ई० के लगभग मुस्लिम आक्रमणोंके फलस्वरूप उसका राज्य नष्ट हो गया।

भारत–एशिया महाद्वीपके दक्षिणी भागमें स्थित तीन प्राय-द्वीपोंमें मध्यवर्ती और सबसे बड़ा प्रायद्वीप। यह त्रिभु-जाकार है। हिमालय पर्वत-शृंखलाको इस त्रिभुजका आधार और कन्याकुमारीको उसका शीर्षबिन्दु कहा जा सकता है। इसके उत्तरमें हिमालय तथा दक्षिणमें हिन्द महासागर स्थित है। ऊँचे-ऊँचे पर्वतोंने इसे उत्तर-पश्चिममें अफगानिस्तान तथा उत्तर-पूर्वमें बर्मासे अलग कर दिया है। यह स्वतंत्र भौगोलिक ईकाई है। इसका क्षेत्रफल १७,०६,५०० वर्ग मील तथा १६५१ ई०की गणनाके अनुसार जनसंख्या ४४,६८,६६,३०० है (१६७१ ई०की जनगणनाके अनुसार जनसंख्या अब ५४,६६,५५,६४५ है।–सं०)। प्राकृतिक दृष्टिसे इसे तीन क्षेत्रोंमें विभक्त किया जा सकता है—हिमालयका क्षेत्र; उत्तरका मैदान जिससे होकर सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियाँ बहती हैं; दक्षिणका पठार, जिसे विंध्य पर्वतमाला उत्तरके मैदानसे अलग करती है। इसकी विशाल जनसंख्या दो सौ से अधिक बोलियाँ बोलती है और संसारके सभी मुख्य धर्मोंको माननेवाले यहाँ मिलते हैं। अंग्रेजीमें इस देशका नाम 'इंडिया' सिन्धुके फारसी रूपांतरणके आधार पर यूनानियों द्वारा प्रचलित 'इंडस' नामसे पड़ा। मूल रूपसे इस देशका नाम प्रागैतिहासिक कालके राजा भरत-के आधार पर भारतवर्ष है। अब इसका क्षेत्रफल संकु-चित हो गया है और इसी प्रायद्वीपके दो छोटे-छोटे क्षेत्रों-पाकिस्तान तथा बंगलादेशको इससे पृथक् करके शेष भू-भागको भारत कहते हैं। 'हिन्दुस्थान' नाम सही तौरसे केवल गंगाके उत्तरी मैदानके लिए प्रयुक्त किया जा सकता है जहाँ हिन्दी बोली जाती है। इसे भारत अथवा इंडियाका पर्याय नहीं माना जा सकता।

भारतकी आधारभूत एकता उसकी विशिष्ट संस्कृति तथा सभ्यता पर आधारित है। यह इस बातसे प्रकट है कि हिन्दू धर्म सारे देशमें फैला हुआ है; संस्कृतको सब देवभाषा स्वीकार करते हैं; जिन सात नदियोंको पवित्र माना जाता है उनमें सिंधु पंजाबमें बहती है और कावेरी दक्षिणमें; इसी प्रकार जिन सात पुरियोंको पवित्र माना जाता है उनमें हरिद्वार उत्तर प्रदेशमें स्थित है और कांची सुदूर दक्षिणमें। भारतके सभी सार्वभौम राजाओंकी आकांक्षा रही है कि उनके राज्यका विस्तार आसेतु हिमालय हो। परन्तु इतने बड़े देशको, जो वास्तव-में एक उपमहाद्वीप है और क्षेत्रफलमें पश्चिमी रूसको छोड़कर सारे यूरोपके बराबर है, एक राजनीतिक इकाई बनाये रखना अत्यन्त कठिन है। वास्तवमें उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यमें ब्रिटिश शासनकी स्थापनासे पूर्व सारा देश, बहुत थोड़े कालको छोड़कर, कभी एक साम्राज्य-के अंतर्गत नहीं रहा। ब्रिटिश शासन-कालमें सारे देशमें एक समान शासन-व्यवस्था करके तथा अंग्रेजीको सारे देशमें प्रशासन और शिक्षाकी समान भाषा बनाकर पूरे देशको एक राजनीतिक इकाई बना दिया गया। परन्तु यह एकता एक शताब्दीके अंदर भंग हो गयी। १६४७ ई०में जब भारत स्वाधीन हुआ, उसे विभाजित करके सिन्ध, उत्तर पश्चिमी सीमाप्रांत, पश्चिमी पंजाब (यह भाग अब 'पाकिस्तान' कहलाता है), पूर्वी तथा उत्तरी बंगाल (यह भाग अब 'बांगलादेश' कहलाता है) उससे अलग कर दिया गया।

भारतका इतिहास प्रागैतिहासिक कालसे आरम्भ होता है। ३००० ई० पू० तथा १५०० ई० पू० के बीच सिन्धु घाटी (दे०)में एक उन्नत सभ्यता वर्तमान थी, जिसके अवशेष मोहन जोदड़ो और हड़प्पा (दे०)में मिले हैं। विश्वास किया जाता है कि भारतमें आर्योंका प्रवेश बादमें हुआ। आर्योंने पाया कि इस देशमें उनसे पूर्वके जो लोग निवास कर रहे थे, उनकी सभ्यता यदि उनसे श्रेष्ठ नहीं तो किसी रीतिसे निकृष्ट भी नहीं थी। आर्यों-से पूर्वके लोगोंमें सबसे बड़ा वर्ग द्रविड़ों (दे०)का था। आर्यों द्वारा वे क्रमिक रीतिसे उत्तरसे दक्षिण खदेड़ दिये गये, जहाँ दीर्घकाल तक उनका प्राधान्य रहा। बादमें उन्होंने आर्योंका प्रभुत्व स्वीकार कर लिया, उनसे विवाह सम्बन्ध स्थापित कर लिये और अब वे महान् भारतीय राष्ट्रके अंग हैं। द्रविड़ोंके अलावा देशमें और मूल जातियाँ थीं, जिनमेंसे कुछका प्रतिनिधित्व मुण्डा, कोल, भील आदि जनजातियाँ करती हैं जो मोन-ख्मेर वर्गकी भाषाएँ बोलती हैं। भारतीय आर्योंका प्राचीनतम साहित्य हमें वेदों (दे०)में विशेष रूपसे ऋग्वेद (दे०)में मिलता है, जिसका रचनाकाल कुछ विद्वान् तीन हजार ई० पू० मानते हैं। वेदोंमें हमें उस कालकी सभ्यताकी एक झाँकी

मिलती है। आर्योंने इस देशको कोई राजनीतिक एकता नहीं प्रदान की, यद्यपि उन्होंने उसे एक पुष्ट दर्शन और धर्म प्रदान किया, जो हिन्दू धर्मके नामसे प्रख्यात है और कम से कम चार हजार वर्षसे अक्षुण्ण है।

प्राचीन भारतीयोंने कोई तिथि क्रमानुसार इतिहास नहीं सुरक्षित रखा है। सबसे प्राचीन सुनिश्चित तिथि जो हमें ज्ञात है, ३२६ ई० पू० है, जब मकदूनियाके राजा सिकन्दरने भारतपर आक्रमण किया। इस तिथिसे पहलेकी घटनाओंका तारतम्य जोड़ कर तथा साहित्यमें सुरक्षित ऐतिहासिक अनुश्रुतियोंका उपयोग करके भारतका इतिहास सातवीं शताब्दी ई० पू० तक पहुँच जाता है। उस कालमें भारत काबुलकी घाटीसे लेकर गोदावरी तक षोडश जनपदोंमें विभाजित था, जिनके नाम निम्नोक्त प्रकारके थे :—

अंग (पूर्वी बिहार), मगध (दक्षिणी बिहार), काशी (बनारस), कोशल (अवध), वृजि (उत्तरी बिहार), मल्ल (गोरखपुर), चेदि (बुन्देलखंड), वत्स (इलाहाबाद), कुरु (थानेश्वर तथा दिल्ली क्षेत्र), पंचाल (बरेली तथा बदायूं क्षेत्र), मत्स्य (जयपुर), शौरसेन (मथुरा), अश्मक (गोदावरीके तटपर), अवन्ती (मालवा), गंधार (पेशावर क्षेत्र) तथा कम्बोज (कश्मीर तथा अफगानिस्तान)। इन राज्योंमें आपसमें बराबर लड़ाई होती रहती थी। छठीं शताब्दी ई० पू०के मध्यमें बिम्बिसार (दे०) तथा अजातशत्रु (दे०) के राज्यकालमें मगधने काशी तथा कोशलपर अधिकार करनेके बाद अपनी सीमाओंका विस्तार आरम्भ किया। इन्हीं दोनों मगध राजाओंके राज्यकालमें वर्धमान महावीर (दे०)ने जैन धर्म तथा गौतम बुद्ध (दे०)ने बौद्ध धर्मका उपदेश दिया। बादके कालमें मगध राज्यका विस्तार जारी रहा और चौथी शताब्दी ई० पू०के अंतमें नन्द राजाओंके शासनकालमें उसका विस्तार बंगालसे लेकर पंजाबमें व्यास नदीके तट तक सारे उत्तरी भारतमें हो गया।

यूनानी इतिहासकारों द्वारा वर्णित 'प्रेसिआई' (दे०) देशका राजा इतना शक्तिशाली था कि सिकन्दरकी सेनाएँ व्यास पार करके 'प्रेसिआई' देशमें नहीं घुस सकीं और सिकन्दर, जिसने ३२६ ई० में पंजाबपर हमला किया, पीछे लौटनेके लिए विवश हुआ। वह सिन्धु नदीके मार्गसे वापस लौटा। इस घटनाके बाद ही मगधपर मौर्यवंश (दे०) शासन करने लगा। इस वंशके संस्थापक चंद्रगुप्त मौर्य (लगभग ३२२ ई० पू०—२९८ ई० पू०) ने पंजाबमें सिकन्दर जिन यूनानी अधिकारियोंको छोड़ गया था उन्हें निकाल बाहर किया और बादमें एक युद्धमें सिकन्दरके सेनापति सेल्यूकसको हरा दिया। सेल्यूकसने हिन्दूकुश तकका सारा प्रदेश वापस लौटा कर चन्द्रगुप्तसे संधि कर ली। चंद्रगुप्तने सारे उत्तरी भारतपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। उसने सम्भवतः दक्षिण भी विजय कर लिया। वह अपने इस विशाल साम्राज्यपर अपनी राजधानी पाटलिपुत्र (दे०) से शासन करता था। उसकी राजधानी पाटलिपुत्र वैभव और समृद्धिमें सूसा और एकबताना नगरियोंको भी मात करती थी। उसका पौत्र अशोक (दे०) था, जिसने कलिंग (उड़ीसा) को जीता। उसका साम्राज्य उत्तरमें हिमालयके पादमूलसे लेकर दक्षिणमें पन्नार नदी तक तथा उत्तर-पश्चिममें हिन्दूकुशसे लेकर उत्तर-पूर्वमें आसामकी सीमा तक विस्तृत था। उसने अपने विशाल साम्राज्यके समग्र साधनोंको मनुष्यों तथा पशुओंके कल्याण-कार्यों तथा बौद्धधर्मके प्रसारमें लगाकर अमिट यश प्राप्त किया। उसने बौद्धधर्मके प्रसारके लिए भिक्षुओंको मिस्र, मकदूनिया तथा कोरिन्थ (प्राचीन यूनानकी विलास नगरी) जैसे दूर-दूर स्थानोंमें भेजा और वहाँ लोकोपकारी कार्य कराये। उसके प्रयत्नोंसे बौद्धधर्म विश्वधर्म बन गया, परन्तु उसकी युद्धसे विरत रहनेकी शांतिपूर्ण नीतिने उसके वंशकी शक्ति क्षीण कर दी और लगभग आधी शताब्दीके बाद पुष्यमित्र (दे०) ने उसका उच्छेद कर दिया। पुष्यमित्रने शुङ्गवंश (लगभग १८५ ई० पू०—७३ ई० पू०) की स्थापना की, जिसका उच्छेद कराववंश (लगभग ७३ ई० पू०—२८ ई० पू०) ने कर दिया।

मौर्यवंशके पतनके बाद मगधकी शक्ति घटने लगी और सातवाहन (दे०) राजाओंके नेतृत्वमें मगध साम्राज्यसे दक्षिण अलग हो गया। सातवाहन वंशको आंध्र (दे०) वंश भी कहते हैं और उसने ५० ई० पू० से २२५ ई० तक राज्य किया। भारतमें एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकारके अभावमें बैक्ट्रिया और पार्थियाके राजाओंने उत्तरी भारतपर आक्रमण शुरू कर दिये। इन आक्रमणकारी राजाओंमें मिनाण्डर (दे०) सबसे विख्यात है। इसके बाद ही शक (दे०) राजाओंके आक्रमण शुरू हो गये और महाराष्ट्र, सौराष्ट्र तथा मथुरा शक क्षत्रपोंके शासनमें आ गये। इस तरह भारतकी जो राजनीतिक एकता भंग हो गयी थी, वह ईसवी पहली शताब्दी में कदफिसस प्रथम (दे०) द्वारा कुषाण वंश (दे०) की

शुरुआतसे फिर स्थापित हो गयी। इस वंशने तीसरी शताब्दी ईसवीके मध्य तक उत्तरी भारतपर राज्य किया।

इस वंशका सबसे प्रसिद्ध राजा कनिष्क (लगभग १२०–१४४ ई०) था, जिसकी राजधानी पुरुषपुर अथवा पेशावर थी। उसने बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया और अश्वघोष (दे०), नागार्जुन (दे०) तथा चरक (दे०) जैसे भारतीय विद्वानोंको संरक्षण दिया। कुषाणवंशका अज्ञात कारणोंसे तीसरी शताब्दीके मध्य तक पतन हो गया। इसके बाद भारतीय इतिहासका अंधकार युग आरम्भ होता है जो चौथी शताब्दीके आरम्भमें गुप्तवंश (दे०) के उदयसे समाप्त हुआ।

लगभग ३२० ई० में चन्द्रगुप्तने गुप्तवंशको प्रचलित किया और पाटलिपुत्रको फिरसे अपनी राजधानी बनाया। गुप्त वंशमें एकके बाद एक चार महान् शक्तिशाली राजा हुए, जिन्होंने सारे उत्तरी भारतमें अपना साम्राज्य विस्तृत कर लिया और दक्षिणके कई राज्योंपर भी प्रभुत्व स्थापित किया। उन्होंने हिन्दूधर्मको राज्यधर्म बनाया, बौद्धधर्म और जैनधर्मके प्रति सहिष्णुता बरती और ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, कला, वास्तुकला और चित्रकला-की उन्नति की। इसी युगमें कालिदास (दे०), आर्य-भट (दे०) तथा वराहमिहिर (दे०) हुए। रामायण, महाभारत, पुराणों तथा मनुसंहिताको भी इसी युगमें वर्तमान रूप प्राप्त हुआ। चीनी यात्री फाह्यानने ४०१ से ४१० ई० के बीच भारतकी यात्रा की और उसने उस कालका रोचक वर्णन किया है। उसका मत है कि उस कालमें देशमें पूरा रामराज्य था। स्वाभाविक रूपसे गुप्त युगको भारतीय इतिहासका स्वर्ण युग माना जाता है और उसकी तुलना एथेन्सके पेरीक्लीज युगसे की जाती है। (पेरीक्लीज (लगभग ४९२–५२९ ई० पू०) एथेन्सका महान् राजनेता तथा सेनापति था। उसके प्रशासनकाल (४६०–४२९ ई० पू०) में एथेन्स उन्नतिके शिखरपर पहुँच गया।)

आंतरिक विघटन तथा हूणोंके आक्रमणोंके फलस्वरूप छठीं शताब्दीमें गुप्त साम्राज्यका पतन हो गया। परन्तु सातवीं शताब्दीके प्रारम्भमें हर्षवर्धन (दे०) ने एक दूसरा साम्राज्य खड़ा कर दिया, जिसकी राजधानी कन्नौज थी। यह साम्राज्य सारे उत्तरी भारतमें विस्तृत था। दक्षिणमें चालुक्य राजा पुलकेशी द्वितीयने उसका साम्राज्य नर्मदाके तटसे आगे बढ़नेसे रोक दिया था। चीनी यात्री ह्युएनत्सांग (दे०) उसके राज्यकालमें भारत आया था और उसने अपने यात्रा-वर्णनमें लिखा है कि हर्षवर्धन बड़ा प्रतापी और शक्तिशाली राजा है। वह ६४७ ई० में निस्संतान मर गया और उसके बाद सारे उत्तरी भारतमें फिर अव्यवस्था फैल गयी।

इस अव्यवस्थाके फलस्वरूप बहुतसे युद्धप्रिय राज-वंशोंका उदय हुआ, जो अपनेको राजपूत (दे०) कहते थे। इनमें पंजाबका हिन्दूशाही राजवंश, गुजरातका गुर्जर-प्रतिहार वंश (दे०) अजमेरका चौहान वंश (दे०), कन्नौजका गहड़वाल वंश (दे०) तथा मगध और बंगाल का पाल वंश (दे०) था। दक्षिणमें भी सातवाहन वंशके पतनके बाद इसी प्रकार सत्ताका विघटन हो गया। उड़ीसाके गंगवंश (दे०) जिसने पुरीका प्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर बनवाया, वातापीके चालुक्यवंश (दे०), जिसके राज्यकालमें अजंता (दे०) के कुछ गुफा चित्र बने तथा कांचीके पल्लववंशने, जिसकी स्मृति उस कालमें बनवाये गये कुछ प्रसिद्ध मन्दिरोंमें सुरक्षित है, दक्षिणको आपस-में बाँट लिया और परस्पर युद्धोंमें एक-दूसरेका नाश कर दिया। इसके बाद मान्यखेट अथवा मालखेड़के राष्ट्रकूट वंश (दे०)का उदय हुआ, जिसका उच्छेद पुनः चालुक्य वंशकी एक नवीन शाखाने कर दिया, जिसने कल्याणी (दे०) को अपनी राजधानी बनाया। उसका उच्छेद देवगिरिके यादव वंश (दे०) तथा द्वारसमुद्रके होमसल (दे०) वंशने कर दिया। सुदूर दक्षिणमें चेर (दे०), पांड्य (दे०) और चोल राज्योंका उदय हुआ, जिनमेंसे अंतिम राज्य सबसे अधिक चला। वह ९०० से १३०० ई० तक वर्तमान रहा। इस तरह सारे भारतमें अनैक्य व्याप्त हो गया।

इस बीच ७१२ ई० में भारतमें इस्लामका प्रवेश हो चुका था। मुहम्मद-इब्न-कासिमके नेतृत्वमें मुसलमान अरबोंने सिंधपर हमला किया और वहांके ब्राह्मण राजा दाहिरको हरा दिया। इस तरह भारतकी भूमिपर पहली बार इस्लामके पैर जम गये और बादकी शताब्दियोंके हिन्दू राजा उसे फिर हटा नहीं सके। परन्तु सिंधपर अरबोंका शासन वास्तवमें निर्बल था और ११७६ ई० में शहाबुद्दीन मुहम्मदगोरी (दे०) ने उसे आसानीसे उखाड़ दिया। इससे पूर्व सुबुक्तगीन (दे०) के नेतृत्वमें मुसल-मानोंने हमले करके पंजाब छीन लिया था और गजनीके सुल्तान महमूदने (दे०) ने ९९७ से १०३० ई० के बीच भारतपर सत्रह हमले किये और हिन्दू राजाओंकी शक्ति कुचल डाली। फिर भी हिन्दू राजाओंने मुसलमानी आक्रमणका जिस अनवरत रीतिसे प्रबल प्रतिरोध किया, उसका महत्त्व कम करके नहीं आँकना चाहिए।

फारस तथा पश्चिम एशियाके दूसरे राज्योंकी तरह मुसलमानोंको भारतमें शीघ्रतासे सफलता नहीं मिली। यद्यपि सिंधपर अरब मुसलमानोंका शीघ्रतासे कब्जा हो गया, परन्तु वहांसे वे लगभग चार शताब्दियोंतक आगे नहीं बढ़ पाये। उत्तर-पश्चिमके मुसलमान आक्रमण-कारियोंको भी भारतने लगभग तीन शताब्दियोंतक रोक रखा। शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीका दिल्ली जीतनेका पहला प्रयास विफल हुआ और पृथ्वीराज (दे०)ने ११९१ ई०में तराईकी पहली लड़ाईमें उसे हरा दिया। वह ११९२ ई०में तराईकी दूसरी लड़ाईमें ही पृथ्वीराज-को हरानेमें सफल हुआ। इस विजयके बाद शहाबुद्दीन और उसके सेनापतियोंने उत्तरी भारतके दूसरे हिन्दू राजाओंको भी हरा दिया और वहाँ मुसलमानी शासन स्थापित कर दिया। इस तरह तेरहवीं शताब्दीके प्रारंभ-में दिल्लीके सुल्तानोंकी अधीनतामें उत्तरी भारतकी राजनीतिक एकता फिरसे स्थापित हो गयी।

दक्षिण एक और शताब्दी तक स्वतन्त्र रहा, किन्तु सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (दे०)के राज्यकालमें दक्षिण भी दिल्ली सल्तनतके अधीन हो गया और इस तरह चौदहवीं शताब्दीमें कुछ कालके लिए सारे भारतका शासन फिर एक केन्द्रीय सत्ताके अन्तर्गत हो गया। परंतु दिल्ली सल्तनतका शीघ्र विघटन शुरू हो गया और १३३६ ई०में दक्षिणमें हिन्दुओंका एक विशाल राज्य स्थापित हुआ, जिसकी राजधानी विजयनगर थी बंगाल (१३३८ ई०), जौनपुर (१३९३ ई०), गुजरात तथा दक्षिणके मध्यवर्ती भागमें भी बहमनी सल्तनत (१३४७ ई०)के नामसे स्वतन्त्र मुसलमानी राज्य स्थापित हो गये। १३९८ ई०में तैमूर (दे०)ने भारतपर हमला किया और दिल्लीपर कब्जा कर लिया और उसे लूटा। उसके हमलेसे दिल्लीकी सल्तनत जर्जर हो गयी।

दिल्लीकी सल्तनत वास्तवमें कमजोर थी, क्योंकि सुल्तानोंने अपनी विजित हिन्दू प्रजाका हृदय जीतनेका कोई प्रयास नहीं किया। वे धार्मिक दृष्टिसे अत्यन्त कट्टर थे और उन्होंने बलपूर्वक हिन्दुओंको मुसलमान बनानेका प्रयास किया। इससे हिन्दू प्रजा उनसे कोई सहानुभूति नहीं रखती थी। इसके फलस्वरूप १५२६ ई० में बाबर (दे०)ने आसानीसे दिल्लीकी सल्तनतको उखाड़ फेंका। उसने पानीपतकी पहली लड़ाईमें अन्तिम सुल्तान इब्राहीम लोदीको हरा दिया और मुगल वंश (दे०)को प्रतिष्ठित किया, जिसने १५२६ से १८५८ ई० तक भारतपर शासन किया। तीसरा मुगल बादशाह अकबर (दे०) असाधारण रूपसे योग्य और दूरदर्शी शासक था। उसने अपनी विजित हिन्दू प्रजाका हृदय जीतनेकी कोशिश की और विशेष रूपसे युद्धप्रिय राज-पूत राजाओंको अपने पक्षमें करनेका प्रयास किया। अकबरने धार्मिक सहिष्णुता तथा मेल-मिलापकी नीति बरती, हिन्दुओंपरसे जजिया उठा लिया और राज्यके ऊँचे पदोंपर बिना किसी भेद-भावके सिर्फ योग्यताके आधारपर नियुक्तियाँ कीं। राजपूतों और मुगलोंके सह-योगसे उसने अपना साम्राज्य कन्दहारसे आसामकी सीमा तक तथा हिमालयकी तलहटीसे लेकर दक्षिणमें अहमद-नगर तक विस्तृत कर दिया। उसके लड़के जहाँगीर (दे०) तथा पौत्र शाहजहाँ (दे०)के राज्यकालमें मुगल साम्राज्यका विस्तार जारी रहा। शाहजहांने ताज(दे०) का निर्माण कराया, परन्तु कन्दहार उसके हाथसे निकल गया। अकबरके प्रपौत्र औरंगजेब (दे०)के राज्यकालमें मुगल साम्राज्यका विस्तार अपने चरम शिखरपर पहुँच गया और कुछ कालके लिए सारा भारत उसके अन्तर्गत हो गया। परन्तु औरंगजेबने जान-बूझकर अकबरकी धार्मिक सहिष्णुताकी नीति त्याग दी और हिन्दुओंको अपने विरुद्ध कर लिया। उसने हिन्दुस्तानका शासन सिर्फ मुसलमानोंके हितमें चलानेकी कोशिश की और हिन्दुओंको जबर्दस्ती मुसलमान बनानेका विफल प्रयत्न किया। इससे राजपूताना, बुन्देलखंड तथा पंजाबके हिन्दू उसके विरुद्ध खड़े हो गये। महाराष्ट्रमें शिवाजी (दे०) ने १७०७ ई०में औरंगजेबकी मृत्युसे पूर्व ही एक स्वतन्त्र हिन्दू राज्य स्थापित कर दिया। औरंगजेब अन्तिम महान् मुगल बादशाह था। उसके उत्तराधिकारी अत्यन्त निर्बल और अयोग्य थे, उनके वजीर विश्वासघाती थे। फारसके नादिरशाह (दे०)ने मुगल बादशाहतपर सबसे सांघातिक प्रहार किया। उसने १७३९ ई०में भारतपर चढ़ाई की, दिल्लीपर कब्जा कर लिया और उसे निर्दयता-पूर्वक लूटा। उसके हमलेसे मुगल साम्राज्य पूरी तरह जर्जर हो गया और इसके बाद शीघ्रतासे उसका विघटन हो गया। अवध, बंगाल तथा दक्षिणके मुसलमान सूबे-दारोंने अपनेको लगभग स्वतन्त्र कर लिया। राजपूत राजा भी अर्द्ध-स्वतन्त्र हो गये। पेशवा बाजीराव प्रथम (दे०)के नेतृत्वमें मराठोंने मुगल साम्राज्यके खंडहरोंपर हिन्दू पद पादशाहीकी स्थापनाका प्रयास किया।

परंतु यह सम्भव नहीं हो सका। फिरंगी लोग समुद्री मार्गोंसे भारतकी जमीनपर पैर जमा चुके थे। अकबरसे लेकर औरंगजेब तक मुगल बादशाहोंने भारतके इस नये

मार्गका महत्त्व नहीं समझा। इनमेंसे कोई इन नवांगतुकों-की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओंका अनुमान नहीं लगा सका और उनके जंगी बेड़ेका मुकाबला करनेके लिए एक शक्तिशाली भारतीय जंगी बेड़ा तैयार करनेकी आवश्यकताको अनुभव नहीं कर सका। इस तरह भारतीयों-की ओरसे किसी प्रतिरोधका सामना किये बगैर सबसे पहले पुर्तगाली भारत पहुँचे। उसके बाद डच, अंग्रेज, फ्रांसीसी आये। सोलहवीं शताब्दीमें इन फिरंगियोंमें आपस-में लड़ाइयाँ होती रहीं, जो अधिकांश समुद्रमें हुई। डच और अंग्रेजोंने मिलकर सबसे पहले पुर्तगालियोंकी सामुद्रिक शक्ति समाप्त कर दी। इसके बाद डच लोगोंको पता चला कि उनके लिए भारतकी अपेक्षा मसालेवाले द्वीपोंसे व्यापार करना अधिक लाभदायी है। इस तरह भारतमें सिर्फ अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंके बीच प्रतिद्वन्द्विता हुई।

अठारहवीं शताब्दीके शुरूमें अंग्रेजोंकी ईस्ट इंडिया कम्पनीने बम्बई, मद्रास तथा कलकत्तापर कब्जा कर लिया। उधर फ्रांसीसियोंकी ईस्ट इंडिया कम्पनीने माहे, पांडिचेरी तथा चन्द्रनगरपर कब्जा कर लिया। उन्हें अपनी सेनाओंमें भारतीय सिपाहियोंको भरती करनेकी भी इजाजत मिल गयी। वे इन भारतीय सिपाहियोंका उपयोग न केवल अपनी आपसी लड़ाइयोंमें करते थे, बल्कि इस देशके राजाओंके विरुद्ध भी करते थे। इन राजाओंकी आपसी प्रतिद्वन्द्विता और कमजोरीने इनकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाको जाग्रत कर दिया और उन्होंने कुछ देशी राजाओंके विरुद्ध दूसरे देशी राजाओंसे संधियाँ कर लीं। १७४४–४६ ई०में मुगल बादशाहकी प्रभुसत्ता-की पूर्ण उपेक्षा करके उन्होंने आपसमें कर्नाटककी पहली लड़ाई (दे०) छेड़ी। एक सालके बाद कर्नाटककी दूसरी लड़ाई (दे०) शुरू हुई, जिसमें फ्रांसीसी गवर्नर डूप्ले (दे०)ने पहली लड़ाईसे सबक लेते हुए न केवल कर्नाटक-के प्रशासनपर, बल्कि निजामके राज्यपर भी फ्रांसका राजनीतिक नियन्त्रण स्थापित करनेकी कोशिश की। परन्तु अंग्रेजोंने उसकी महत्त्वाकांक्षा पूरी न होने दी। अंग्रेजोंको बंगालमें भारी सफलता मिली थी। बादशाह औरंगजेबकी मृत्युके केवल पचास वर्ष बाद, १७५७ ई०में रावर्ट क्लाइव (दे०)के नेतृत्वमें अंग्रेजोंने नवाब सिराजु-द्दौला (दे०)के विरुद्ध विश्वासघातपूर्ण राजद्रोहात्मक षड्यन्त्र रचकर पलासीकी लड़ाई (दे०) जीत ली और बंगालको एक प्रकारसे अपनी मुट्ठीमें कर लिया। उन्होंने बंगालकी गद्दीपर एक कठपुतली नवाब मीर-जाफर को बिठा दिया। इसके बाद एकके बाद, तेजीसे कई घटनाएँ घटीं।

अहमद शाह अब्दाली (दे०)ने १७४८ से १७६० ई० के बीच भारतपर कई चढ़ाइयाँ कीं और १७६१ ई० में पानीपतकी तीसरी लड़ाई (दे०) जीत कर मुगल साम्राज्यका फातिहा पढ़ दिया। उसने दिल्लीपर दखल करके उसे लूटा। पानीपतकी तीसरी लड़ाईमें सबसे अधिक क्षति मराठोंको उठानी पड़ी। कुछ समयके लिए उनकी बाढ़ रुक गयी और इस प्रकार वे मुगल बादशाहों-की जगह ले लेनेका मौका खो बैठे। यह लड़ाई वास्तवमें मुगल साम्राज्यके पतनकी सूचक है। इसने भारतमें मुगल साम्राज्यके स्थानपर ब्रिटिश साम्राज्यकी स्थापनामें मदद दी। अब्दालीको पानीपतमें जो फतह मिली, उससे न तो वह स्वयं कोई लाभ उठा सका और न उसका साथ देनेवाले मुसलमान सरदार। इस लड़ाईसे वास्तविक फायदा अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनीने उठाया। इसके बाद कम्पनीको एकके बाद दूसरी सफलताएँ मिलती गयीं।

बंगालके साधनोंसे बलशाली होकर अंग्रेजोंने १७६० ई०में वाण्डीवाशकी लड़ाईमें फ्रांसीसियोंको हरा दिया और १७६२ ई०में पांडिचेरी ले लिया। इस प्रकार उन्होंने भारतमें फ्रांसीसियोंकी राजनीतिक शक्ति समाप्त कर दी। १७६४ ई०में अंग्रेजोंने बक्सरकी लड़ाईमें बादशाह बहादुरशाह (दे०) और अवधके नवाबकी सम्मिलित फौजोंको हरा दिया और १७६५ ई०में बाद-शाहसे बंगाल, बिहार तथा उड़ीसाकी दीवानी (दे०) प्राप्त कर ली। इसके फलस्वरूप ईस्ट इंडिया कम्पनीको पहली बार बंगाल, बिहार तथा उड़ीसाके प्रशासनका कानूनी अधिकार मिल गया। कुछ इतिहासकार इसे भारतमें ब्रिटिश राज्यका प्रारम्भ मानते हैं। १७७३ ई० में ब्रिटिश पालियामेण्टने एक रेग्युलेटिंग ऐक्ट (दे०) पास करके भारतमें ब्रिटिश प्रशासनको व्यवस्थित रूप देनेका प्रयास किया। इस ऐक्टके अन्तर्गत भारतमें कम्पनीके क्षेत्रोंका प्रशासन गवर्नर-जनरलके अधीन कर दिया गया। उसकी सहायताके लिए चार सदस्योंकी कौंसिल गठित की गयी। ऐक्टमें बंगालके गवर्नरको गवर्नर-जनरलका पद प्रदान कर दिया गया और कल-कत्तामें एक सुप्रीम कोर्टकी भी स्थापना की गयी। वारेन हेस्टिंग्स, जो उस समय बंगालका गवर्नर था, १७७३ ई० में पहला गवर्नर-जनरल बनाया गया।

१७७३ ई० से १९४७ ई० तकका काल, जब

भारतमें ब्रिटिश शासन समाप्त हुआ और भारत स्वाधीन हुआ, दो भागोंमें बाँटा जा सकता है। पहला, कम्पनीका शासनकाल, जो १८५८ ई० तक चला और दूसरा, १८५८ से १९४७ ई०का काल, जब भारतका शासन सीधे ब्रिटेनके द्वारा होने लगा।

कम्पनीके शासन कालमें भारतका प्रशासन एकके बाद एक बाईस गवर्नर-जनरलों (दे०)के हाथमें रहा। इस कालके भारतीय इतिहासकी सबसे उल्लेखनीय घटना यह है कि कम्पनी युद्ध तथा कूटनीतिके द्वारा भारतमें अपने साम्राज्यका उत्तरोत्तर विस्तार करती रही। मैसूर (दे०)के साथ चार लड़ाइयाँ, मराठों (दे०)के साथ तीन, बर्मा (दे०) तथा सिखों (दे०)के साथ दो-दो लड़ाइयाँ तथा सिंधके अमीरों (दे०), गोरखों (दे०) तथा अफगानिस्तानके साथ एक-एक लड़ाई छेड़ी गयी। इनमेंसे प्रत्येक लड़ाईमें कम्पनीको एक या दूसरे देशी राजाकी मदद मिली। उसने जिन फौजोंसे लड़ाई की उनमें अधिकांश भारतीय सिपाही थे और लड़ाईका खर्च पूरी तरह भारतीय करदाताको उठाना पड़ा। इन लड़ाइयोंके फलस्वरूप १८५७ ई० तक सारे भारतपर कम्पनीका प्रभुत्व स्थापित हो गया। दो-तिहाई भारत सीधे कम्पनीके शासनमें आ गया और शेष एकतिहाईपर देशी राज्योंका शासन बना रहा। परन्तु उन्होंने कम्पनीका सार्वभौम प्रभुत्व स्वीकार कर लिया और अधीनस्थ तथा आश्रित मित्र राजाके रूपमें अपनी रियासतका शासन चलाते रहे।

इस कालमें सती प्रथा (दे०)का अन्त कर देनेके समान कुछ सामाजिक सुधारके भी कार्य किये गये: अंग्रेजीके माध्यमसे पश्चिमी शिक्षाके प्रचारकी दिशामें कदम उठाये गये, अंग्रेजी देशकी राजभाषा बना दी गयी, सारे देशमें समान जाब्ता दीवानी और जाब्ता फौजदारी कानून लागू कर दिया गया जिससे सारे देशमें एकता की नयी भावना पैदा हो गयी। परन्तु शासन स्वेच्छाचारी बना रहा और वह पूरी तरह अंग्रेजोंके हाथमें रहा। १८३३ ई०के चार्टर ऐक्ट (दे०)के विपरीत ऊँचे पदोंपर भारतीयोंको नियुक्त नहीं किया गया। भापसे चलनेवाले जहाजों और रेलगाड़ियोंका प्रचलन, ईसाई मिशनरियों द्वारा आक्षेपजनक रीतिसे ईसाई धर्मका प्रचार, लार्ड डलहौजी (दे०) द्वारा जब्तीका सिद्धांत (दे०) लागू करके अथवा कुशासनके आधारपर कुछ पुरानी देशी रियासतोंकी जब्ती तथा ब्रिटिश भारतीय सेनाके भारतीय सिपाहियोंकी शिकायतें—इन सब कारणोंने मिलकर सारे भारतमें एक गहरे असन्तोषकी आग धधका दी, जो १८५७-५८ ई०में गदर (दे०)के रूपमें भड़क उठी।

अधिकांश देशी राजाओंने अपनेको गदरसे अलग रखा। देशकी अधिकांश जनताने भी इसमें कोई हिस्सा नहीं लिया। फलस्वरूप कम्पनीको बलपूर्वक गदरको कुचल देनेमें सफलता मिली, परन्तु गदरके बाद ब्रिटिश पार्लियामेण्टने भारतपर कम्पनीका शासन समाप्त कर दिया। भारतका शासन अब सीधे ब्रिटेनके द्वारा किया जाने लगा। महारानी विक्टोरियाने एक घोषणा-पत्र (दे०) जारी करके अपनी भारतीय प्रजाको उसके कुछ अधिकारों तथा कुछ स्वाधीनताओंके बारेमें आश्वासन दिया।

इस प्रकार भारतमें ब्रिटिश शासनका दूसरा काल (१८५८-१९४७ ई०) आरम्भ हुआ। इस कालका शासन एकके बाद इकत्तीस गवर्नर-जनरलोंके हाथमें रहा। गवर्नर-जनरलको अब वाइसराय (ब्रिटिश सम्राट्का प्रतिनिधि) कहा जाने लगा। लार्ड कैनिंग (दे०) पहला वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। इस कालके भारतीय इतिहासकी सबसे प्रमुख घटना है—भारतमें राष्ट्रवादी भावनाका उदय और १९४७ ई० में भारतकी स्वाधीनताके रूपमें उसकी अंतिम विजय। १८५७ ई० में कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बईमें विश्वविद्यालयोंकी स्थापनाके बाद शिक्षाका प्रसार होने तथा १८६९ ई० में स्वेज नहर खुलनेके बाद इंग्लैण्ड तथा यूरोपसे निकट सम्पर्क स्थापित हो जानेसे भारतमें नये मध्यवर्गका विकास हुआ। यह मध्यवर्ग पश्चिमी दर्शन शास्त्र, राजनीतिशास्त्र तथा अर्थशास्त्रके विचारोंसे प्रभावित था और ब्रिटिश शासनमें भारतीयोंको जो नीचा दर्जा मिला हुआ था, उससे रुष्ट था। ब्रिटिश शासनमें स्थापित शांतिके फलस्वरूप यह वर्ग सारे भारतको एक देश तथा समस्त भारतीयोंको एक कौम मानने लगा और ब्रिटेनकी भाँति संसदीय शासन प्रणालीकी स्थापना उसका लक्ष्य बन गया। वह एक ऐसे संगठनकी आवश्यकता अनुभव करने लगा जो समस्त भारतीय राष्ट्रका प्रतिनिधित्व कर सके। इसके फलस्वरूप १८८५ ई० में बम्बईमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी स्थापना हुई जिसमें देशके समस्त भागोंसे ७१ प्रतिनिधियोंने भाग लिया। कांग्रेसका दूसरा अधिवेशन १८८६ ई० में कलकत्तामें हुआ जिसमें सारे देशसे निर्वाचित ४३४ प्रतिनिधियोंने भाग लिया। इस अधिवेशनमें मांग की गयी कि भारतमें केन्द्रीय तथा प्रांतीय विधानमंडलोंका

विस्तार किया जाय और उसके आधे सदस्य निर्वाचित भारतीय हों। कांग्रेस हर साल अपने अधिवेशनोंमें अपनी मांगें दुहराती रही। लार्ड डफरिन (दे०) ने कांग्रेसपर व्यंग्य करते हुए उसे ऐसे अल्पसंख्यक वर्गका प्रतिनिधित्व करनेवाली संस्था बताया जिसे सिर्फ खुर्दबीनसे देखा जा सकता है। लार्ड लैन्सडाउन (दे०) ने उसके प्रति पूर्ण उपेक्षाकी नीति बरती, लार्ड कर्जन (दे०) ने उसका खुलेआम मजाक उड़ाया तथा लार्ड मिन्टो द्वितीय (दे०) ने १९०९ के इंडियन कौंसिल ऐक्ट द्वारा स्थापित विधानमंडलोंमें मुसलमानोंको अनुपातसे अनुचित रीतिसे अधिक प्रतिनिधित्व देकर उन्हें फोड़ने तथा कांग्रेसको तोड़नेकी कोशिश की, फिर भी कांग्रेस जिन्दा रही।

कांग्रेसको पहली मामूली सफलता १९०९ में मिली जब इंग्लैण्डमें भारतमंत्रीके निर्देशनमें काम करनेवाली भारत परिषद्में दो भारतीय सदस्योंकी नियुक्ति पहली बार की गयी, वाइसरायकी एक्जीक्यूटिव कौंसिलमें पहली बार एक भारतीय सदस्यकी नियुक्ति की गयी तथा इंडियन कौंसिल ऐक्टके द्वारा केन्द्रीय तथा प्रांतीय विधानमंडलोंका विस्तार कर दिया गया तथा उनमें निर्वाचित भारतीय प्रतिनिधियोंका अनुपात पहलेसे अधिक बढ़ा दिया गया। इन सुधारोंके प्रस्तावक लार्ड मार्लेने हालांकि भारतमें संसदीय संस्थाओंकी स्थापना करनेका कोई इरादा होनेसे इन्कार किया, फिर भी ऐक्टमें जो व्यवस्थाएँ की गयी थीं, उनका उद्देश्य उसी दिशामें आगे बढ़नेके सिवा और कुछ नहीं हो सकता था। १९११ ई० में लार्ड कर्जन द्वारा १९०५ ई० में किया गया बंगालका विभाजन रद्द कर दिया गया और १९१२ ई० में भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यकी राजधानी कलकत्तासे उठाकर दिल्ली ले जायी गयी। दो साल बाद पहला विश्वयुद्ध (दे०) छिड़ गया और भारतने ब्रिटेनका पूरा साथ दिया। भारतने युद्धको जीतनेके लिए ब्रिटेनकी फौजोंसे, धनसे तथा सामग्रीसे मदद की। भारत आशा करता था कि इस राजभक्ति-प्रदर्शनके बदले युद्धसे होनेवाले लाभोंमें उसे भी हिस्सा मिलेगा।

भारतके लिए स्वशासनकी माँग करनेमें पहली बार भारतीय मुसलमान भी हिन्दुओंके साथ संयुक्त हो गये और अगस्त १९१७ ई० में ब्रिटिश सरकारने घोषणा की कि भारतमें ब्रिटिश शासनकी नीति यह है कि 'शासनकी प्रत्येक शाखामें भारतीयोंको अधिकाधिक स्थान दिया जाय तथा स्वायत्त शासनका क्रमिकरूपसे विकास किया जाय ताकि ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत भारतमें उत्तरदायी सरकारकी उत्तरोत्तर स्थापना हो सके।' इस घोषणाके अनुसार १९१९ का गवर्नमेन्ट आफ इंडिया ऐक्ट पास किया गया। इस ऐक्टके द्वारा विधान मंडलोंका विस्तार कर दिया गया और अब उनके बहुसंख्यक सदस्य भारतीय जनताके निर्वाचित प्रतिनिधि होने लगे। ऐक्टके द्वारा केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारोंके कार्योंका विभाजन कर दिया गया और प्रांतोंमें द्वैधशासन प्रणाली लागू करके कार्यपालिकाको आंशिक रीतिसे विधानमंडलके प्रति उत्तरदायी बना दिया गया। इस ऐक्टके द्वारा भारतने सुनिश्चित रीतिसे प्रगति की। भारतके इतिहासमें पहली बार एक ऐसी संस्थाकी स्थापना की गयी, जिसके द्वारा ब्रिटिश भारतके निर्वाचित प्रतिनिधि सरकारी आधारपर एकत्र हो सकते थे, पहली बार उनका बहुमत स्थापित कर दिया गया था और अब वे सरकारके कार्योंकी निर्भयतापूर्वक आलोचना कर सकते थे।

इन सुधारोंसे पुराने कांग्रेसजन संतुष्ट हो गये, परन्तु नवयुवकोंका दल, जिसे मोहनदास करमचंद गांधी (दे०) के रूपमें एक नया नेता मिल गया था, संतुष्ट नहीं हुआ। इन सुधारोंके अन्तर्गत केन्द्रीय कार्यपालिकाको केन्द्रीय विधानमंडलके प्रति उत्तरदायी नहीं बनाया गया था और वाइसरायको बहुत अधिक अधिकार प्रदान कर दिये गये थे। अतएव उसने इन सुधारोंको अस्वीकृत कर दिया। उसके मनमें जो आशंकाएँ थीं, वे गलत नहीं थीं, यह १९१९ के ऐक्टके बाद ही पास किये गये रौलट ऐक्ट (दे०) जैसे दमनकारी कानूनों तथा जलियाँवाला बाग हत्याकांड (दे०) जैसे दमनमूलक कार्योंसे सिद्ध हो गया। कांग्रेसने १९२० ई० में अपने नागपुर अधिवेशनमें अपना ध्येय पूर्ण स्वराज्यकी स्थापना घोषित कर दिया और अपनी माँगोंको मनवानेके लिए उसने अहिंसक असहयोगकी नीति अपनायी। चूंकि ब्रिटिश सरकारने उसकी माँगें स्वीकार नहीं कीं और दमनकारी नीतिके द्वारा वह असहयोग आंदोलनको दबा देनेमें सफल हो गयी, इसलिए कांग्रेसने दिसम्बर १९२९ ई० में लाहौर अधिवेशनमें अपना लक्ष्य पूर्ण स्वाधीनता निश्चित किया और अपनी माँगको मनवानेके लिए उसने १९३० में सत्याग्रह आंदोलन (दे०) शुरू कर दिया।

सरकारने पहलेकी तरह आन्दोलनको दबानेके लिए दमन और समझौतेके दोनों रास्ते अख्तियार किये और १९३५ का गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्ट (दे०) पास

किया। इस ऐक्टके द्वारा ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतोंके लिए सम्मिलित रूपसे एक संघीय शासनका प्रस्ताव किया गया, केन्द्रमें एक प्रकारके द्वैध शासनकी स्थापना की गयी तथा प्रांतोंको स्वशासन प्रदान कर दिया गया। ऐक्टका प्रांतोंसे सम्बन्धित भाग लागू कर दिया गया तथा अप्रैल १९३७ ई०में प्रांतीय स्वशासनका श्रीगणेश कर दिया गया। परन्तु ऐक्टके संघ सरकारसे सम्बन्धित भागके लागू होनेसे पहले ही सितम्बर १९३९ ई०में द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो गया जो १९४५ ई० तक जारी रहा। यह विश्वव्यापी युद्ध था और ब्रिटेनको अपने सारे साधन उसमें झोंक देने पड़े। भारतने ब्रिटेनका साथ दिया और भारतके पास जन और धनकी जो विशाल शक्ति थी उससे लाभ उठाकर तथा अमरीकाकी सहायतासे ब्रिटेन युद्ध जीत गया। गांधीजीके अमित प्रभाव तथा अहिंसामें उनकी दृढ़ निष्ठाके कारण भारतने यद्यपि ब्रिटिश सम्बन्धको बनाये रखा, फिर भी यह स्पष्ट हो गया कि भारत अब ब्रिटिश साम्राज्यकी अधीनतामें नहीं रहना चाहता।

कुछ ब्रिटिश अफसरोंने भारतको स्वाधीन होनेसे रोकनेके लिए अंतिम दुरभिसंधि की और मुसलमानोंकी भारतका विभाजन करके पाकिस्तानकी स्थापनाकी मांगका समर्थन करना शुरू कर दिया। इसके फलस्वरूप अगस्त १९४६ ई०में सारे देशमें भयानक साम्प्रदायिक दंगे शुरू हो गये, जिन्हें वाइसराय लार्ड वेवेल (दे०) अपने समस्त फौजी अनुभवों तथा साधनोंके बावजूद रोकनेमें विफल रहा। यह अनुभव किया गया कि भारतका प्रशासन ऐसी सरकारके द्वारा चलाना संभव नहीं है जिसका नियंत्रण मुख्य रूपसे अंग्रेजोंके हाथमें हो। अतएव सितम्बर १९४६ ई०में लार्ड वेवेलने पंडित जवाहरलाल नेहरूके नेतृत्वमें भारतीय नेताओंकी एक अंतरिम सरकार गठित की। ब्रिटिश अधिकारियोंकी कृपापात्र होनेके कारण मुस्लिम लीगके दिमाग काफी ऊँचे हो गये थे। उसने पहले तो एक महीने तक अंतरिम सरकारसे अपनेको अलग रखा, इसके बाद वह भी उसमें सम्मिलित हो गयी।

भारतका संविधान बनानेके लिए एक भारतीय संविधान सभाका आयोजन किया गया। १९४७ ई०के शुरूमें लार्ड वेवेलके स्थान पर लार्ड माउन्टबेटेन वाइसराय नियुक्त हुआ। उसे पंजाबमें भयानक साम्प्रदायिक दंगोंका सामना करना पड़ा, जिनको भड़कानेमें वहांके कुछ ब्रिटिश अफसरोंका हाथ था। वह प्रधान-मंत्री एटलीके नेतृत्वमें ब्रिटेनकी सरकारको यह समझानेमें सफल हो गया कि भारतका भारत और पाकिस्तानके रूपमें विभाजन करके उसे स्वाधीनता प्रदान करनेसे शांतिकी स्थापना संभव हो सकेगी और ब्रिटेन भारतमें अपने व्यापारिक हितोंको सुरक्षित रख सकेगा। ३ जून १९४७ को ब्रिटिश सरकारकी ओरसे घोषणा कर दी गयी कि भारतका भारत और पाकिस्तानके रूपमें विभाजन करके उसे स्वाधीनता प्रदान कर दी जायगी। ब्रिटिश पार्लियामेण्टने १५ अगस्त १९४७ ई०को इंडिपेंडेंस आफ इंडिया ऐक्ट पास कर दिया। इस तरह भारत उत्तर पश्चिमी सीमाप्रांत, बलूचिस्तान, सिंध, पश्चिमी पंजाब, पूर्वी बंगाल तथा उत्तरी बंगालके मुसलिम-बहुल भागोंसे रहित हो जानेके बाद, सात शताब्दियोंकी विदेशी पराधीनताके पश्चात्, स्वाधीनताके एक नये पथपर अग्रसर हुआ।

स्वाधीन भारतको जिन समस्याओंका सामना करना पड़ा, वे सरल नहीं थीं। उसे सबसे पहले साम्प्रदायिक उन्मादको शांत करना था। भारतने जानबूझकर धर्मनिरपेक्ष राज्य बनना पसंद किया। उसने आश्वासन दिया कि जिन मुसलमानोंने पाकिस्तानको निर्गमन करनेके बजाय भारतमें रहना पसन्द किया है उनको नागरिकताके पूर्ण अधिकार प्रदान किये जायेंगे, हालांकि पाकिस्तान जानबूझकर अपने यहाँसे हिन्दुओंको निकाल बाहर करने अथवा जिन हिन्दुओंने वहाँ रहनेका फैसला किया था, उनको एक प्रकारसे द्वितीय श्रेणीका नागरिक बना देनेकी नीति पर चल रहा था। लार्ड माउन्टबेटेनको स्वाधीन भारतका पहला गवर्नर-जनरल बनाये रखा गया और पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा अंतरिम सरकारमें उनके कांग्रेसी सहयोगियोंने थोड़ेसे हेरफरके साथ पहले भारतीय मंत्रिमंडलका निर्माण किया। इस मंत्रिमंडलमें सरदार पटेल तथा मौलाना अबुलकलाम आजादको तो सम्मिलित कर लिया गया था, परन्तु नेताजीके बड़े भाई शरतचन्द्र बोसको छोड़ दिया गया। ३० जनवरी १९४८ ई०को एक पागल हिन्दूने राष्ट्रपिता महात्मा गांधीकी हत्या कर दी। सारा देश शोकके सागरमें डूब गया। नौ महीनेके बाद श्री जिन्ना जो पाकिस्तानके पहले गवर्नर-जनरल बन गये थे, उनकी भी मृत्यु हो गयी। उसी वर्ष लार्ड माउन्टबेटेनने भी अवकाश ग्रहण कर लिया और श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी भारतके पहले और अंतिम गवर्नर-जनरल नियुक्त हुए।

अधिकांश देशी रियासतोंने, जिनके सामने भारत

अथवा पाकिस्तानमें विलयनका प्रस्ताव रखा गया था, भारतमें विलयनके पक्षमें निर्णय किया, परन्तु, दो रियासतों—कश्मीर तथा हैदराबादने कोई निर्णय नहीं किया। पाकिस्तानने बलपूर्वक कश्मीरकी रियासतपर अधिकार करनेका प्रयास किया, परन्तु अक्तूबर १९४७ ई०में कश्मीरके महाराजने भारतमें विलयनकी घोषणा कर दी और भारतीय सेनाओंको वायुयानोंसे भेजकर श्रीनगर सहित कश्मीरकी घाटी तक जम्मूकी रक्षा कर ली गयी। पाकिस्तानी आक्रमणकारियोंने रियासतके उत्तरी भागपर अपना कब्जा बनाये रखा और इसके फलस्वरूप पाकिस्तानसे युद्ध छिड़ गया। भारतने यह मामला संयुक्त राष्ट्र संघमें उठाया और संयुक्त राष्ट्र संघने जिस क्षेत्रपर जिसका कब्जा था, उसीके आधारपर युद्ध-विराम करा दिया। वह आज तक इस प्रश्नका कोई निपटारा नहीं करा सका है। हैदराबादके निजामने अपनी रियासतको स्वतंत्रताका दर्जा दिलानेका षड्यंत्र रचा, परन्तु भारत सरकारकी पुलिस कारखाईके फलस्वरूप वह १९४८ ई०में अपनी रियासतका भारतमें विलयन करनेके लिए मजबूर हो गये।

भारतीय संविधान सभा द्वारा २६ नवम्बर १९४९ में पास किया गया भारतका संविधान अधिनियम २६ जनवरी १९५० को लागू कर दिया गया। इस संविधानमें भारतको लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित किया गया था और संघात्मक शासनकी व्यवस्था की गयी थी। डा० राजेन्द्रप्रसादको पहला राष्ट्रपति चुना गया और बहुमत पार्टीके नेताके रूपमें पंडित जवाहरलाल नेहरूने प्रधानमन्त्रीका पद ग्रहण किया। इस पदपर वे २७ मई १९६४ ई०, अपनी मृत्यु तक बने रहे। नवोदित भारतीय गणराज्यके लिए उनका दीर्घकालीन प्रधानमंत्रित्व बड़ा लाभदायी सिद्ध हुआ। उससे प्रशासन तथा घरेलू एवं विदेश नीतियोंमें निरंतरता बनी रही। पंडित नेहरूने वैदेशिक मामलोंमें गुट-निरपेक्षताकी नीति अपनायी और चीनसे राजनयिक सम्बन्ध स्थापित किये। फ्रांसने १९५१ ई० में चंद्रनगर शांतिपूर्ण रीतिसे भारतको हस्तांतरित कर दिया। १९५६ ई० में उसने अन्य फ्रेंच बस्तियाँ (पांडिचेरी, कारीकल, माहे तथा युन्नान) भी भारतको सौंप दीं। पुर्तगालने फ्रांसका अनुकरण करने और शांतपूर्ण रीतिसे अपनी पुर्तगाली बस्तियाँ (गोआ, दमन और दिव) छोड़नेसे इनकार कर दिया। फलस्वरूप १९६१ ई० में भारतको बलपूर्वक इन बस्तियोंको ले लेना पड़ा। (अब १९७५ ई० में पुर्तगाली शासनने वास्तविकताको समझकर इसको वैधानिक मान्यता दे दी है।—सं०) इस तरह भारतका एकीकरण पूरा हो गया।

पंडित नेहरूने १९५१ ई० में भारतको नियोजित अर्थ-व्यवस्था तथा उद्योगीकरणके मार्गपर आगे बढ़ानेके लिए २,०६९ करोड़ रुपयेकी प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रस्तुत की। भारतने बालिग मताधिकार स्वीकार कर लिया और उसके आधारपर उसका पहला आम चुनाव शांतिपूर्वक सम्पन्न हुआ। १९५३ ई० में भाषावार आधारपर आंध्रको मद्राससे अलग करके नया राज्य बना दिया गया। इसी आधारपर पूर्वी पंजाबको पंजाब तथा हरियाणाके दो राज्योंमें विभाजित कर दिया गया है। जून १९५४ ई० में चीनके प्रधानमंत्री चाऊ एन लाई भारतकी यात्रापर आये। अगले अक्तूबरमें पंडित नेहरूने चीनकी यात्रा की। पंचशीलके समझौतेपर हस्ताक्षर होनेसे भारत और चीनके मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध अपनी पराकाष्ठापर पहुँच गये। १९५५ ई० में भारतने अप्रैलमें होनेवाले बांडुंग सम्मेलनमें प्रमुख भूमिका अदा करके अंतरराष्ट्रीय राजनीतिमें अपना प्रभाव बढ़ाया। जूनमें पंडित नेहरूने सोवियत संघकी यात्रा की, जहाँ उनका बहुत उत्साहके साथ स्वागत किया गया। नवम्बरमें सोवियत नेताओं, ख्रुश्चेव तथा बुलगानिनने भारतकी यात्रा की और उनका जनताके द्वारा अपूर्व स्वागत किया गया।

१९५६ ई० में भारतने ४८०० करोड़ रुपयेकी अपनी द्वितीय पंचवर्षीय योजना आरम्भ की। उसने बर्मा, श्रीलंका तथा इंडोनेशियाके साथ मिलकर ब्रिटिश फौजोंको मिस्रसे हटा लेनेकी माँग की, जहाँ प्रेसीडेंट नासिरने स्वेज नहरका राष्ट्रीयकरण कर दिया था। अंतरराष्ट्रीय राजनीतिमें भारतकी प्रतिष्ठा उस समय उच्च शिखरपर थी। १९५७ ई० में बालिग मताधिकारके आधारपर भारतीय गणराज्यका दूसरा आम चुनाव हुआ। पंडित नेहरूके नेतृत्वमें कांग्रेस पार्टीको पुनः केन्द्रमें तथा केरलको छोड़कर अन्य सभी राज्योंसे बहुमत प्राप्त हो गया। केरलमें कम्युनिस्टोंके नेतृत्वमें मंत्रिमंडल गठित हुआ, परंतु पंडित नेहरूके नेतृत्वमें केन्द्रने उसपर अपना नियंत्रण बनाये रखा। १९५८ ई० में इंडियन रिफाइनरीज लि० की स्थापनाके साथ भारतने बड़े उद्योगोंके क्षेत्रमें अपने कदम बढ़ाये। उसने विज्ञानके क्षेत्रमें भी प्रगति की और प्रथम पारमाणविक भट्ठी (रिऐक्टर) निर्मित किया। परंतु भारतने पारमाणविक बम बनानेसे इन्कार कर दिया और परमाणु शक्तिका

केवल शांतिपूर्ण कार्योंमें प्रयोग करनेके अपने निश्चयकी घोषणा की।

१९५९ ई० में चीनने तिब्बतपर हमला किया और पंडित नेहरूकी सरकार मौन दर्शक बनी रही। दलाई लामा तथा हजारों तिब्बतियोंने भाग कर भारतमें शरण ली और पंडित नेहरूकी सरकारने उन्हें तत्परतासे शरण प्रदान की। चीनने इसे अमित्रतापूर्ण कार्य माना और १९५९ ई० में उत्तर-पूर्वी सीमा क्षेत्रमें लांगजूपर तथा हिमालय क्षेत्रके लद्दाख प्रदेशमें भारतीय क्षेत्रोंपर बलपूर्वक अधिकार करके भारतके प्रति अपने आक्रामक रवैयेको उजागर कर दिया। तीन साल बाद चीनने भारतके उत्तरी तथा पूर्वी सीमा क्षेत्रोंपर अकारण बड़ा हमला बोल दिया। भारतीय सेना मित्र माने जानेवाले देशके इस हमलेके लिए तैयार नहीं थी, फिर भी उत्तरमें उसने अपने पैर मजबूतीसे जमाये रखे, परन्तु उत्तर-पूर्वी मोर्चेपर वह बहुत थोड़ा अथवा नगण्य प्रतिरोध कर सकी और चीनी फौजें आसामकी सीमाके निकट पहुंच गयीं। इससे भारतको बहुत अपमानित होना पड़ा। इससे भी बड़ा अपमान उसे तब उठाना पड़ा जब चीनने १९६३ ई० में एकांगी युद्धविरामकी घोषणा कर दी, लड़ाई रोक दी और भारतके जिन क्षेत्रोंको वह लेना चाहता था, उनको अपने अधिकारमें रखा। इससे पंडित नेहरूको, जो १९५० ई० से चीनके प्रति मैत्रीपूर्ण नीति बरत रहे थे, भारी निराशा हुई और इसके शीघ्र ही बाद १९६४ ई० में उनकी मृत्यु हो गयी।

पाकिस्तान भारतके लिए भारी चिंताका विषय बना रहा। उसने १९४७ ई० में ही पाकिस्तानी सैनिकोंको कबीलेवालोंके वेशमें कश्मीरमें भेजा था और वह कश्मीरके प्रश्नको भारतके साथ अपने विवादका मुख्य विषय बनाये हुए था। इसके फलस्वरूप सितम्बर १९६५ ई० में भारत और पाकिस्तानके बीच तीन सप्ताहका युद्ध छिड़ गया। यह युद्ध संयुक्त राष्ट्रसंघ तथा सोवियत संघके हस्तक्षेपसे समाप्त हुआ। सोवियत संघने ताशकंदमें पाकिस्तानके प्रेसीडेंट अयूब खां तथा भारतके प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री (दे०) का एक सम्मेलन किया। दोनों राष्ट्राध्यक्षोंने एक संयुक्त घोषणा प्रकाशित करके सभी विवादास्पद प्रश्नोंको शांतिपूर्ण रीतिसे तय करने तथा अपनी सेनाओंको युद्ध-पूर्वकी स्थितिपर वापस लौटा लेनेपर सहमति व्यक्त की। ११ जनवरी १९६६ ई० को ताशकंद समझौतेपर हस्ताक्षर करनेके कुछ घंटे बाद ही लालबहादुर शास्त्रीकी मृत्यु हो गयी। पश्चात् पंडित जवाहरलाल नेहरूकी पुत्री श्रीमती इंदिरा गांधी उनके स्थानपर भारतकी प्रधानमंत्री चुनी गयीं।

भारतका विभाजन–स्वाधीनता प्रदान किये जानेसे पूर्व १९४७ ई०में किया गया। मुसलमानोंकी हठपूर्ण माँग तथा अंग्रेजोंकी 'फूट डालो और शासन करो'की पुरानी नीति ही इसका मूल थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा मुसलिम लीगके नेताओंकी सहमतिसे भारतके विविध प्रांतोंमें रहनेवाले बहुसंख्यक लोगोंके धर्मके आधार पर भारतका विभाजन भारत और पाकिस्तानमें कर दिया गया। उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत, पश्चिमी पंजाब, सिंध तथा पूर्वी बंगालको मिलाकर एक नया राज्य बना जो 'पाकिस्तान' कहलाया। पाकिस्तानने अपनेको इसलामी राज्य घोषित किया। शेष भारतको धर्मनिरपेक्ष भारतीय गणराज्य घोषित कर दिया गया।

१९४७ ई०में भारतके विभाजनके फलस्वरूप लाखों लोगोंको भारी मुसीबतें झेलनी पड़ीं और करोड़ों लोगोंको देशके विभाजनपर भारी दुःख हुआ। फिर भी भारतके लोगोंने देशके विभाजनको अनिवार्य मानकर स्वीकार कर लिया। १६ दिसम्बर १९७१ ई०को पाकिस्तानका भी विभाजन हो गया और पूर्वी पाकिस्तान पाकिस्तानसे अलग होकर 'बांगला देश'का नया राज्य बन गया।

भारतका संविधान–२६ नवम्बर १९४९ ई०को संविधान सभा द्वारा पास किया गया और २६ जनवरी १९५० ई०से लागू हुआ। यह एक भारी-भरकम दस्तावेज है, जिसमें २२ भागोंके अंतर्गत ३९५ धाराएँ तथा नौ अनुसूचियाँ हैं। भारतका संविधान एक अभिलिखित तथा सरलतासे परिवर्तनशील संविधान है। इसके द्वारा देशमें सार्वभौम, संघीय, लोकतांत्रिक धर्मनिरपेक्ष और संसदीय गणतंत्रकी स्थापना की गयी है। इसकी प्रस्तावनामें कहा गया है––"हम भारतवासी भारतको एक सार्वभौम लोकतांत्रिक गणतंत्र बनाने, सभी नागरिकोंको सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, धर्म, पंथ और पूजाकी स्वतंत्रता, स्तर और अवसरकी समानता दिलाने तथा व्यक्तिगत सम्मान और राष्ट्रीय एकताका ध्यान रखते हुए उनमें भ्रातृत्व भावना बढ़ानेका पावन संकल्प करते हैं और यह संविधान बनाते, स्वीकार करते और अपनेको प्रदान करते हैं।"

जैसा कि एक अनुसूचीमें उल्लेख है, यह संविधान देशके लिए संघीय शासनकी व्यवस्था करता है और

उन सभी व्यक्तियोंको नागरिकता प्रदान करता है, जिनका जन्म भारतमें हुआ है या जिनके माँ-बापमेंसे कोई भारतमें पैदा हुआ है या संविधान लागू होनेके पाँच वर्ष पहलेसे जो भारतमें रह रहे हैं। यह संविधान देशके नागरिकोंको कुछ मौलिक अधिकार देता है जिनकी रक्षा-के लिए देशकी सबसे बड़ी अदालत सर्वोच्च न्यायालयमें सीधे अपील की जा सकती है। ये मौलिक अधिकार हैं— समानता, अस्पृश्यता-विनाश, विचार-अभिव्यक्ति और बोलनेकी स्वतंत्रता, शांतिपूर्ण ढंगसे सम्मेलन और सभा करनेकी स्वतंत्रता, संघ व संगठन बनानेकी स्वतंत्रता, भारतके किसी भागमें आने-जाने और रहनेकी स्वतंत्रता, धनोपार्जन और सम्पत्ति रखनेकी स्वतंत्रता तथा कोई भी व्यवसाय व धंधा और व्यापार करनेकी स्वतंत्रता। संविधानमें कुछ नीति-निर्देशक सिद्धांत भी हैं, जो यद्यपि न्यायालयके आदेशसे लागू नहीं कराये जा सकते तथापि देशमें कल्याणकारी राज्यके विकास हेतु प्रशासकीय कार्योंमें केन्द्र और राज्योंका पथ-प्रदर्शन करते हैं।

संविधानमें केन्द्र और राज्योंके लिए पृथक् शासन व्यवस्था है। केन्द्रीय कार्यपालिकाके सारे अधिकार निर्वाचित राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और प्रधानमंत्रीके नेतृत्ववाली मंत्रिपरिषद्में निहित हैं। राष्ट्रपतिका कार्यकाल पाँच वर्ष है। वह दुबारा फिर चुना जा सकता है। उसको १० हजार रु० मासिक वेतन और इसके अलावा कुछ भत्ते मिलते हैं। प्रधानमंत्रीकी नियुक्ति राष्ट्रपति करता है और वही बादको प्रधानमंत्रीकी सलाहसे अन्य मंत्रियोंकी नियुक्ति भी करता है। संविधान राष्ट्रपतिको कार्यपालिका और न्यायपालिका सम्बन्धी बहुत व्यापक अधिकार प्रदान करता है, परन्तु ब्रिटिश शासन प्रणाली-के अनुरूप राष्ट्रपति इन अधिकारोंका प्रयोग मंत्रियों-की सलाह और स्वीकृतिसे ही कर सकता है। मंत्रियोंका कार्यकाल राष्ट्रपतिकी इच्छा पर निर्भर है, किन्तु ये मंत्री संसदके प्रति उत्तरदायी होते हैं। राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाकर उसे संसदके बहुमत द्वारा हटाया जा सकता है। केन्द्रकी विधायिका शक्ति संसदमें निहित है। उसके दो सदन होते हैं—एक राज्य सभा और दूसरी लोकसभा।

राज्यसभामें २३८ प्रतिनिधि होते हैं जिनमें १२ राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जाते हैं और शेषका निर्वाचन राज्य-विधानमंडलोंके निर्वाचित सदस्यों द्वारा राज्यों-की आबादीके अनुपातमें होता है। लोकसभाकी शक्ति पाँच सौ सदस्योंकी है, जिनमेंसे सभी वयस्क मताधिकार-के आधार पर पांच वर्षोंके लिए चुने जाते हैं। संसदके दोनों सदनोंके अधिकार वित्त-विधेयकको छोड़कर परस्पर समन्वयकारी हैं। वित्त-विधेयक सिर्फ लोकसभामें ही पेश हो सकता है। राज्यसभा उसमें संशोधनके लिए सुझाव दे सकती है, किन्तु लोकसभा इन सुझावोंको मानने न माननेके लिए स्वतंत्र है।

केन्द्रीय न्यायपालिकाके अधिकार सर्वोच्च न्यायालय-में निहित हैं, जिसमें एक प्रधान न्यायाधीश तथा १३ अन्य न्यायाधीश होते हैं। इन न्यायाधीशोंकी नियुक्ति राष्ट्रपति करता है और ये ६५ वर्षकी उम्र तक अपने पदोंपर कार्य कर सकते हैं। सर्वोच्च न्यायालयको मूल क्षेत्राधिकार तथा पुनर्विचाराधिकार, दोनों ही प्रकारका अधिकार प्राप्त है और वह किसी भी कानूनकी संवैधा-निकतापर निर्णय दे सकता है। हाँ, उसकी उपयुक्तता परखनेका उसे अधिकार नहीं है।

राज्योंमें कार्यपालिकाके अधिकार राज्यपाल तथा मुख्यमंत्री और उसकी मंत्रिपरिषद्में निहित हैं। राज्य-पालकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा पाँच वर्षोंके लिए की जाती है। राज्यपालका वेतन ५५०० रु० मासिक है। मुख्यमंत्रीके नेतृत्वमें मंत्रिपरिषद्की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है जो राज्य विधानमंडलोंके प्रति उत्तर-दायी होती है। राज्योंकी विधायिका दो सदनोंवाले एक विधानमंडलमें निहित होती है। इनमें उच्च सदन अर्थात् विधानपरिषद्के सदस्य अप्रत्यक्ष रूपसे निर्वाचित होते हैं और निम्न सदन यानी विधान सभाके सदस्य प्रत्यक्ष रूपसे जनता द्वारा चुने जाते हैं। कुछ राज्यों जैसे आंध्र, बिहार, मध्यप्रदेश, मद्रास, महाराष्ट्र, मैसूर, पंजाब, उत्तरप्रदेश और पश्चिमी बंगालमें दो सदनोंवाले विधान-मंडल हैं जब कि अन्य राज्योंमें प्रत्यक्ष रूपसे निर्वाचित सदस्योंवाली विधान सभाएँ ही हैं।

राज्योंकी न्यायपालिका उच्च न्यायालयोंमें निहित हैं, जिनमें एक मुख्य न्यायाधीश तथा कई अन्य न्याया-धीश होते हैं। इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होती है और ये ६२ वर्ष की उम्र तक अपने पदपर बने रह सकते हैं। संविधानमें संशोधनके लिए अबतक दो दर्जनसे अधिक अधिनियम पारित हो चुके हैं और आगे भी आवश्यकता पड़ने पर पारित होते रहेंगे। इस प्रकार इस संविधानने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी आकांक्षाओंको आशासे अधिक पूरा करते हुए देशमें ऐसी सरकारकी स्थापना की है, जो जनताके लिए है और जनता द्वारा ही चलायी जाती है।

भारतके यवन राज्य—इनका आरम्भ अफगानिस्तान तथा उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांतमें अशोकके देहावसान (लगभग २३२ ई० पू०)के बाद किसी समय हुआ। सीरियाके महान् राजा एन्टीओकसने २०६ ई० पू०के आसपास हिन्दूकुशको पार कर काबुलकी घाटीमें राज्य करनेवाले सुभगसेन नामक एक भारतीय राजाको हराया और हर्जानेके रूपमें उससे अपरिमित धन और बहुत-से हाथी प्राप्त करके स्वदेश वापस चला गया। उसके बाद ही बैक्ट्रियाके यवन राजा डेमेट्रियस (दे०)ने पंजाबका काफी भाग जीत लिया। एक दूसरे यवन राजा युक्रेटीयसने डेमेट्रियससे बैक्ट्रियाका राज्य छीन लिया। भारतके उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांतमें उस कालमें बहुत-से छोटे-छोटे यवन सामन्त राज्य करते थे, जिनका परिचय हमें उनके द्वारा जारी किये गये नाना प्रकारके सिक्कोंसे मिलता है। इनमें सबसे प्रसिद्ध राजा मिनान्डर था, जो भारतमें काफी भीतर तक घुस आया था। उसने बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया और उसकी पहचान प्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ 'मिलिन्द पन्हो' (मिलिन्दके प्रश्न) में उल्लिखित राजा मिलिन्दसे की जाती है। एक दूसरा यवन राजा एन्टिआल्कीडस था जो तक्षशिलामें राज्य करता था। उसने अपने दूत हेलियोडोरस (दे०)को शुंग राजा भागभद्रकी राजसभामें भेजा था। हेलियोडोरस भागवत धर्मका अनुयायी बन गया था और उसने बेसनगरमें वासुदेवके गरुड़-स्तम्भका निर्माण कराया था। अंतिम यवन राजा हरमाओस था, जिसका राज्य ईसवी सन्की पहली शताब्दीमें कुषाण राजा कदफिसस प्रथम (दे०) ने छीन लिया।

भारत परिषद् (इण्डिया कौंसिल)—भारतीय शासन विधान १८५८ ई०के अन्तर्गत स्थापित। इस विधानके अनुसार भारतका शासन ईस्ट इंडिया कम्पनीके हाथोंसे लेकर ब्रिटिश सम्राट्के अधीन कर दिया गया। बोर्ड आफ कंट्रोल और उसके अध्यक्षका पद समाप्त कर उसके स्थानपर 'कौन्सिल आफ इंडिया' अथवा भारत परिषद्की स्थापना की गयी। इसका अध्यक्ष ब्रिटिश सरकारके भारतीय मामलोंके मन्त्री—(भारत-मंत्री)को बनाया गया। इस कौन्सिलमें १५ सदस्य थे, जिनकी नियुक्ति पहले तो जीवन भरके लिए की गयी, लेकिन बादको उसकी अवधि १०से १५ वर्षोंके बीच कर दी गयी। कौन्सिलमें उन्हीं सदस्योंकी नियुक्ति की जाती, जिन्हें भारतीय गतिविधियोंका ज्ञान होता था। कौन्सिलसे यह अपेक्षा की जाती थी कि वह भारत-मन्त्रीको परामर्श दे और उसपर नियन्त्रण रखे। अतः उसे विशेष अधिकार प्रदान किये गये तथा भारतीय राजस्वके व्यय और विनियोजन एवं वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्के साधारण सदस्योंकी नियुक्तिके लिए उसकी स्वीकृति आवश्यक कर दी गयी। १८६९ ई०के विधान द्वारा इसके सदस्योंका कार्यकाल घटाकर दस वर्ष कर दिया गया (जिसे भारत-मन्त्रीकी मर्जीसे बढ़ाया जा सकता था) और कौन्सिलका स्तर परामर्शदात्री संस्थाका कर दिया गया। पूरी १९वीं शताब्दी तक इसके सदस्य सिर्फ ब्रिटिश लोग ही बनाये जाते थे। १९०७ ई०में पहली बार दो भारतीयों—श्री कृष्णगोविन्द गुप्त और सैयद हुसेन बिल्ग्रामीको इसका सदस्य नियुक्त किया गया। १९१९ ई०के विधान द्वारा कौन्सिलके सदस्योंकी संख्या घटाकर १२ कर दी गयी और कार्यकाल पाँच वर्ष। अब कौन्सिल पहलेसे अधिक भारत-मन्त्रीके अधीन हो गयी। १९३५ ई०के भारतीय शासन विधानके अनुसार, अप्रैल १९३७ से इंडिया कौंसिल (भारत परिषद्)को खत्म कर दिया गया। जब तक यह कौंसिल रही, तब तक भारतीयोंने इसे बराबर प्रतिक्रियावादी संस्थाके रूपमें घृणाकी दृष्टिसे देखा, जिसका काम भारतीय हितोंकी कीमतपर ब्रिटिश स्वार्थोंकी रक्षा करना था।

भारत-भूमिके निवासी—इनको चार मुख्य विभागों अथवा नसलोंमें बाँटा जाता है, यथा (१) भारतीय आर्य, (दे०) जो लम्बे गौरवर्ण, लम्बी नासिकावाले तथा संस्कृतसे उद्भूत भाषाओंके बोलने वाले हैं; (२) द्रविण, (दे०), जो दक्षिण भारतमें बड़ी संख्यामें संस्कृत मूलसे भिन्न हैं तथा तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषाएँ बोलते हैं; (३) आदिवासी, जो भील, कोल और मुण्डा लोगोंकी भाँति छोटे, कृष्णवर्ण तथा चपटी नाकवाले हैं। उनकी बोलियोंकी न कोई वर्णमाला है और न लिखित साहित्य ही; (४) मंगोल जातिके वंशज, जो गोरखाओं, भोटियों और खासी लोगोंकी भाँति दाढ़ी-मूँछ रहित, पीतवर्ण, छोटी आँखों तथा गालोंपर उभरी हुई हड्डियोंवाले लोग हैं। अन्तिम दो विभागोंके लोग नवप्रस्तर युगके आग्नेयवंशी लोगोंकी सन्तानें हैं। इन चारों नसलोंके लोग भारतवर्षमें अनेकानेक शताब्दियोंसे निवास करते रहे हैं, और उनमें, विशेषतः आर्यों, द्रविड़ों तथा मंगोलोंके वंशजोंमें, परस्पर विवाह सम्बन्ध भी होते रहे हैं। फलतः उनमें ऐसा रक्त-सम्मिश्रण हो गया है कि भेद करना कठिन है। भारतकी अन्य संस्थाओंकी भाँति आधुनिक भारतीय जातियाँ भी एक ऐसे सम्मिश्रणकी

परिणति हैं, जिसकी प्रक्रिया दीर्घकालसे इस देशमें चलती रही है।

भारत रक्षा कानून—प्रथम विश्वयुद्धके समय १९१४ ई०में बना। इसके अन्तर्गत भारत सरकारको युद्धके दौरान लोगोंको गिरफ्तार करने, नजरबन्द करने तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगानेके व्यापक अधिकार प्राप्त हो गये। भारतीयोंने इस कानूनको व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका हनन करनेवाला और कठोर दमन चक्रका प्रतीक माना।

भारतवर्ष—वह देश जहाँ राजा भरत (दे०)के वंशज रहते हैं। यह उत्तरमें हिमालयसे लेकर दक्षिणमें हिन्द महासागर तक विस्तृत है (विष्णुपुराण, खंड २,३ .१)। इसका आधुनिक नाम भारत है।

भारतीय आर्य—उन आर्यों (दे०)की एक शाखा, जिनके सम्बन्धमें अनुमान लगाया जाता है कि उन्होंने ईसा पूर्व लगभग दो हजार वर्ष पहले किसी अनिश्चित कालमें उत्तर-पश्चिम दिशासे भारतमें प्रवेश किया। वे यायावर थे और सबसे पहले पंजाबमें बसे। इसके बाद वे इस देशमें रहनेवाले लोगोंसे, जिन्हें वे दास या दस्यु कहते थे, दीर्घकालीन युद्ध करते हुए गंगाकी घाटीसे होकर उत्तरी भारतमें आगे बढ़े। अन्तमें उन्होंने विजयी होकर इस देशके आदिम लोगोंको अपने वशमें किया। जिस धर्मका विकास वे लोग करते आ रहे थे, उसकी झाँकी वेदों (दे०)में मिलती है। वेदोंसे हमें उनके राजनीतिक और सामाजिक संघटनका भी परिचय मिलता है।

वे जनों या कबीलोंमें विभक्त थे। प्रत्येक जनका शासन एक मुखिया करता था जो 'राजा' कहलाता था। जनोंमें आपसमें लड़ाइयाँ होती रहती थीं, परन्तु अनार्य शत्रुओंके विरुद्ध वे एक हो जाते थे। राजा वंशगत होता था और उसकी आयका स्रोत था—विजित कबीलों द्वारा दी जानेवाली बलि (कर) तथा प्रजासे मिलनेवाली भेंट। उसके मुख्य अधिकारी थे—सेनानी (सेनाका मुखिया), ग्रामणी (गाँवका मुखिया) तथा पुरोहित। प्रजा समिति तथा सभाके माध्यमसे राज्यकार्यमें हाथ बँटाती थी। समितिमें जनपदकी सम्पूर्ण जनता एकत्र होती थी। सभा पितर अथवा वृद्ध लोगोंकी संस्था थी। सामाजिक व्यवस्था पितृ-सत्तात्मक थी और पिता परिवारका मुखिया होता था। अधिकतर एक विवाह प्रचलित था, परन्तु बहु-विवाह भी होते थे। सामाजिक जीवनमें स्त्रियोंको ऊँचा स्थान प्राप्त था और गृह-प्रबंध उन्हींके हाथमें था। कुछ स्त्रियाँ इतनी विदुषी होती थीं कि मन्त्रों तककी रचना करती थीं। आधुनिक अर्थमें जाति-व्यवस्था प्रचलित नहीं थी, परन्तु वर्ण-व्यवस्था वर्तमान थी, जिसके अन्तर्गत जनताका वर्गीकरण ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा विशः (वैश्य)में किया जाता था।

आर्य गाँवोमें निवास करते थे, उनके पुर अथवा नगर नहीं थे। उनकी आजीविकाका मुख्य साधन था—पशुपालन और कृषि। उनमें चर्मकार, रथकार (बढ़ई) आदि व्यवसाय भी प्रचलित थे। व्यापार बैलों तथा सुवर्ण आभूषणोंके द्वारा किया जाता था। उनका मुख्य भोजन घी, शाक और फल था। यज्ञमें बलि दिये गये पशुओंका मांस भी खाया जाता था। सोम और सीमित सुरापान प्रचलित था। द्यूत-क्रीड़ा और रथोंकी दौड़ मनोरंजनके मुख्य साधन थे। आर्योंने विजित अनार्योंको भी अपनी वर्ण-व्यवस्थामें सम्मिलित कर लिया और उनका वर्गीकरण शूद्रोंमें किया जाने लगा। आर्य प्रकृतिकी विविध शक्तियोंको साधारणतः, देवता मानकर उनकी उपासना करते थे। वे द्यौः (आकाश), वज्र (बिजली) तथा सूर्यकी शक्तियोंके रूपमें वरुण, इन्द्र, सूर्य आदि की पूजा करते थे। आर्योंके देवताओंकी संख्या विशाल थी और उनकी उपासनाके लिए जटिल कर्मकाण्डके ज्ञाता पुरोहितोंकी आवश्यकता पड़ती थी। आर्योंमें यह विश्वास भी प्रचलित था कि मूलतः ईश्वर एक और सर्वव्यापक है, यद्यपि उसके नाम भिन्न-भिन्न हैं। आर्य बड़े उद्यमी और पुरुषार्थी थे और उनके विचारों तथा संस्थाओंका विकास अनेक युगोंमें हुआ। महान् हिन्दू सभ्यता और संस्कृति उन्हींकी देन है।

भारतीय कानून कमीशन—इसकी स्थापना १८३३ ई०में लार्ड मैकालेकी अध्यक्षतामें की गयी। इसने कई वर्ष तक कार्य किया और उसीके आधारपर १८६० ई०में भारतीय दण्ड विधान तथा १८६१ ई०में जाब्ता दीवानी और जाब्ता फौजदारी तैयार किये गये। इस तरह ब्रिटिश भारतमें समान कानूनी व्यवस्थाकी स्थापना हुई।

भारतीय दण्ड विधान—गवर्नर-जनरल लार्ड विलियम बेण्टिक (१८२८—३५ ई०) द्वारा नियुक्त कानून कमीशनने इसका प्रणयन किया। मैकाले (दे०) इस कमीशनका प्रमुख सदस्य था। इस कानूनको १८६० ई०में लागू किया गया। फलस्वरूप समूचे ब्रिटिश भारतमें समान दण्ड-विधान लागू हो गया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस—भारतीयोंके सबसे बड़े इस राजनीतिक संगठनकी स्थापना २८ दिसम्बर १८८५ ई०को

की गयी। इसका पहला अधिवेशन बम्बईमें कलकत्ता हाईकोर्टके बैरिस्टर उमेशचन्द्र बनर्जीकी अध्यक्षतामें हुआ। कहा जाता है कि वाइसराय लार्ड डफरिन (१८८४–८८ ई०)ने कांग्रेसकी स्थापनाका अप्रत्यक्ष रीतिसे समर्थन किया। यह सही है कि एक अवकाश-प्राप्त अंग्रेज अधिकारी एलन आक्टेवियन ह्यूम कांग्रेसका जन्मदाता था और १९१२ ई०में उसकी मृत्यु हो जाने-पर कांग्रेसने उसे अपना "जन्मदाता और संस्थापक" घोषित किया था। गोखलेके अनुसार १८८५ ई०में ह्यूम-के सिवा और कोई व्यक्ति कांग्रेसकी स्थापना नहीं कर सकता था। परन्तु वस्तुस्थिति यह प्रतीत होती है, जैसाकि सी० वाई० चिन्तामणिका मत है, राजनीतिक उद्देश्योंसे राष्ट्रीय सम्मेलनका विचार कई व्यक्तियोंके मनमें उठा था और वह १८८५ ई०में चरितार्थ हुआ।

कांग्रेसके प्रारम्भिक वर्षोंमें उसके समर्थक खुले आम कहते थे कि इस संगठनसे भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यकी नींव मजबूत होगी। इसीलिए सरकार उसपर कृपा-दृष्टि रखती थी और वाइसराय लार्ड डफरिनने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके दूसरे अधिवेशनके प्रतिनिधियोंको गार्डन पार्टी दी थी। यह अधिवेशन १८८६ ई०में कलकत्तामें हुआ। इसी रीतिसे मद्रासके गवर्नरने कांग्रेसके तीसरे अधिवेशनके प्रतिनिधियोंका स्वागत किया था। यह अधिवेशन १८८७ ई०में मद्रासमें हुआ। परंतु यह उसी समय स्पष्ट होने लगा था कि कांग्रेसका विकास लार्ड डफरिनकी आशाओंके अनुरूप नहीं होने जा रहा है, बल्कि वह वास्तवमें एक राष्ट्रीय संस्थाके रूपमें विक-सित होती जा रही है और वह उन अधिकारों और सिद्धांतोंका समर्थन करती है जो उसके विचारमें भारतीय राष्ट्रके राजनीतिक विकासमें सहायक हो सकते हैं। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस शीघ्र ही सरकारका कोपभाजन बन गयी और भारतीय जनतामें अधिकाधिक लोकप्रिय होती गयी।

शीघ्र ही उसे भारतीय राष्ट्रकी आवाज माना जाने लगा और उसने अपनी स्थापनाके बासठ वर्षोंके बाद ही राष्ट्रको स्वाधीनता दिला दी। यह एक ऐसी उपलब्धि है जिसपर कोई भी संगठन उचित रीतिसे गर्व कर सकता है। परंतु इस महान लक्ष्यकी प्राप्तिसे पूर्व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसको कड़ी अग्नि-परीक्षासे गुजरना पड़ा। कांग्रेसके पहले अधिवेशनमें प्रतिनिधियोंकी संख्या जहाँ ७१ थी, दूसरे कलकत्ता अधिवेशनमें बढ़कर ४३६ हो गयी और बम्बईमें होने वाले पाँचवें अधिवेशनमें बढ़कर १८८९ हो गयो। यह आवश्यक समझा गया कि सारे देशमें विविध राजनीतिक सार्वजनिक संस्थाओंसे चुने जानेवाले प्रति-निधियोंकी अधिकतम सीमा १००० निर्धारित कर दी जाय। कांग्रेसके अधिवेशनोंमें पहुँचनेवाले दर्शकोंकी संख्या भी उत्तरोत्तर बढ़ती गयी और प्रतिनिधियों-को ठहरानेकी व्यवस्था करना तथा अधिवेशनमें सबके बैठनेकी व्यवस्था करना एक कठिन समस्या बन गयी, जिसे संतोषजनक रीतिसे हल करना सरल कार्य नहीं था। प्रतिनिधियों तथा दर्शकोंकी उत्तरोत्तर बढ़ती संख्यासे यह निर्विवाद रूपसे स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस राष्ट्रीय संस्था है, यद्यपि मुसलमान लोग सामान्य रीतिसे अपनेको उससे अलग रख रहे थे।

समय बीतनेके साथ कांग्रेसके उद्देश्यों और उनको प्राप्त करनेके उपायोंमें परिवर्तन होता गया। कांग्रेसके पहले अधिवेशनमें केवल नौ प्रस्ताव पास किये गये, जिनके द्वारा माँग की गयी कि (१) एक शाही कमीशनके द्वारा, जिसमें भारतको भी उचित रीतिसे प्रतिनिधित्व प्राप्त हो, भारतीय प्रशासनकी जाँच की जाय; (२) इंडिया कौंसिल (भारत परिषद)को तोड़ दिया जाय; (३) केन्द्रीय तथा प्रांतीय लेजिस्लेटिव कौंसिलोंका विस्तार करके उनमें यथेष्ट अनुपातमें निर्वाचित सदस्योंको लिया जाय और उन्हें वार्षिक बजटपर विचार करने तथा प्रश्न पूछनेका अधिकार दिया जाय; (४) इंडियन सिविल सर्विसकी परीक्षा इंग्लैण्ड और भारतमें एक साथ ली जाय और उसमें प्रवेश करनेवालोंकी अधिकतम उम्र १९ वर्षसे बढ़ाकर २३ वर्ष कर दी जाय; (५) फौजी खर्च घटाया जाय; (६) चुंगी फिरसे लगायी जाय और बढ़ा हुआ फौजी खर्च यदि घटाया न जा सके तो उसकी पूर्तिके लिए लाइसेंस करका विस्तार किया जाय; (७) बर्माको, जिसपर अधिकार कर लेनेकी निंदा की गयी, अलग कर दिया जाय; (८) उक्त प्रस्तावोंको सभी प्रांतोंकी सभी राजनीतिक संस्थाओंको भेजा जाय ताकि वे उनके क्रियान्वयनकी माँग कर सकें; (९) अगले साल बड़े दिन पर कलकत्तामें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका अधिवेशन फिर बुलाया जाय।

उक्त प्रस्तावके अनुसार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका दूसरा अधिवेशन १८८६ ई०में बड़े दिनपर कलकत्तामें हुआ। इसके बाद प्रति वर्ष बड़े दिनपर उसका अधि-वेशन भारतके किसी न किसी बड़े नगरमें होता रहा। १९३७ ई०में पहली बार उसका अधिवेशन एक गाँव (फैजपुर)में हुआ। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारतीय

राष्ट्रीय कांग्रेस प्रारम्भमें अपने प्रस्तावोंके क्रियान्वयनके लिए ब्रिटिश सरकारकी सद्-भावनापर पूरी तरहसे निर्भर रहती थी। उसके प्रस्ताव प्रार्थनाके रूपमें पेश किये जाते थे। कांग्रेसको ब्रिटेनपर पूरा विश्वास था और वह उसके राजनीतिक सिद्धांतों तथा संस्थाओंके प्रति आदर भाव रखती थी।

बहुत वर्षों तक कांग्रेसके नेताओंका विश्वास रहा कि अंग्रेज लोग इतने न्यायप्रिय हैं कि यदि भारतीयोंकी शिकायतें उनके सामने रख दी जायें तो वे अवश्य दूर कर दी जायेंगी। इसी विश्वासके आधारपर वैधानिक आंदोलन चलाकर जूरीके द्वारा मुकदमोंकी सुनवाईकी प्रथाका विस्तार करने, न्याय कार्यको प्रशासन कार्यसे पृथक् करने, शस्त्र कानून रद्द करने, सामान्य तथा तकनीकी शिक्षाका विस्तार करने, केन्द्रीय तथा प्रांतीय विधान मंडलोंका विस्तार करके उनमें निर्वाचित भारतीय प्रतिनिधि बढ़ाने तथा उन्हें देशके वित्तीय तथा सामान्य प्रशासनपर नियंत्रणका अधिक अधिकार प्रदान करके देशमें स्वशासनका विकास करनेकी माँग की गयी। ब्रिटिश जनताको सूचना देनेके उद्देश्यसे १८८८ ई०में लंदनमें एक प्रचार एजेंसी खोली गयी। बादमें इस कार्यके लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीकी स्थापना की गयी, जो साप्ताहिक 'इंडिया'का प्रकाशन करती थी।

परंतु इन सब प्रयत्नोंका कोई फल नहीं निकला और ब्रिटिश सरकारने १८९२ ई०के इंडियन कौंसिल ऐक्ट (दे०)को छोड़कर और कोई सुधार नहीं किया। उसने कांग्रेस तथा उसके प्रस्तावोंकी पूर्ण उपेक्षा की। इससे कांग्रेसके अनुयायियोंमें निराशाकी भावना फैली। देशके अंदर कांग्रेसके प्रचारके फलस्वरूप कांग्रेसके अनुयायियोंकी संख्या प्रति वर्ष बढ़ती जा रही थी और धीरे-धीरे ब्रिटिश सरकारकी विरोधी भावना बढ़ने लगी। कांग्रेसजनोंका एक वर्ग वैधानिक आंदोलनमें अपना विश्वास खो बैठा। वह प्रति वर्ष सरकारको प्रार्थनाएँ भेजनेकी पद्धतिकी खिल्ली उड़ाता था, जिनको सरकार रद्दीकी टोकरीमें फेंक देती थी। इस वर्गका नेतृत्व बाल गंगाधर तिलक, अरविन्द घोष, विपिन चन्द्र पाल तथा लाला लाजपतराय कर रहे थे। उसका कहना था कि सिर्फ जबान चलानेसे शासन सुधार नहीं प्राप्त होंगे, उनके लिए ठोस काररवाई करनेकी आवश्यकता है। उसका कहना था कि सिर्फ स्वायत्तशासी संस्थाओंके विस्तारसे देश संतुष्ट नहीं हो सकता, देश प्रशासनपर वास्तविक नियंत्रण चाहता है। उसने आत्म-सहायता और जनताको जाग्रत करनेकी आवश्यकतापर बल दिया।

इस बीच भारत सरकारने कई प्रतिगामी कार्य किये, जैसे टकसालोंमें जनताकी चाँदीसे सिक्कोंकी ढलाई बंद कर देना, विनिमय दरसे होनेवाली हानिकी पूर्तिके लिए भत्ता देना, इंडियन यूनीवर्सिटीज ऐक्ट (दे०) तथा बंगभंग (दे०) (१९०५)। इसके साथ कई वाइसरायोंने ऐसे वक्तव्य दिये जो बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं थे, जैसे "भारतको तलवारके बलपर जीता रखा गया है और उसीके बलपर कब्जेमें रखा जायगा" (लार्ड एलगिन) तथा "भारतमें सच्चाईका आदर नहीं किया जाता और वास्तवमें सच्चाई कभी भारतीय आदर्श नहीं रहा है" (लार्ड कर्जन)।

इन सब बातोंसे भारतीयोंमें, विशेषरूपसे कांग्रेसजनोंके नये और नवयुवक वर्गमें गहरा आक्रोश भर गया। पुराने और नये कांग्रेसजनों, नरमदल और गरमदलवालों, वैधानिक आंदोलनमें विश्वास करनेवालों और उग्र राष्ट्रीयतावादियोंमें मतभेद पहलीबार १९०५ ई० में बनारसमें गोपालकृष्ण गोखलेकी अध्यक्षतामें होनेवाले कांग्रेस अधिवेशनमें प्रकट हुए। अध्यक्षकी ओरसे रखे गये प्रस्तावमें "भारतीय विधानमंडलोंका और विस्तार और सुधार करने" की प्रार्थना की गयी थी। इसके विरोधमें नवयुवक वर्गने माँग की कि भारतमें ऐसी सरकार होनी चाहिए जो स्वायत्तशासी हो और ब्रिटिश नियंत्रणसे पूर्णतया मुक्त हो। अध्यक्षका प्रस्ताव पास हो गया। अगले साल १९०६ ई० में कलकत्तामें होनेवाले अधिवेशनमें मतभेद फिर प्रकट हुए। अध्यक्ष दादाभाई नौरोजी (दे०) ने दोनों दलोंमें समझौता करानेका प्रयास किया। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषणमें घोषणा की कि भारतको "ब्रिटेन अथवा उपनिवेशों जैसा स्वराज्य" मिलना चाहिए। परन्तु यह समझौता भ्रामक सिद्ध हुआ और अगले साल १९०७ ई० की सूरत कांग्रेसमें नरमदल और गरमदलवालोंमें खुला संघर्ष हुआ और कांग्रेस अधिवेशन भंग हो गया। अगले साल (१९०८ ई० में) इलाहाबाद अधिवेशनमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका संविधान तैयार किया गया। इसकी पहली धारामें कहा गया था कि कांग्रेसका ध्येय "संवैधानिक उपायोंसे एक ऐसी शासनप्रणालीकी स्थापना करना है जो ब्रिटिश साम्राज्यके स्वशासन-युक्त सदस्योंके अनुरूप हो।" इसको कांग्रेसकी नीतिके रूपमें स्वीकार कर लिया गया और भविष्यमें ऐसा कोई व्यक्ति कांग्रेस अधिवेशन-

के लिए प्रतिनिधि नहीं चुना जा सकता था जिसने इस प्रस्तावको लिखितरूपसे स्वीकार न कर लिया हो। मार्ले-मिन्टो सुधारोंकी रिपोर्टपर आधारित १९०९ ई० के इंडियन कौंसिल ऐक्ट (दे०) तथा १९११ ई० में बंग-भंग रद्द कर दिये जानेसे नरम दलवालोंकी स्थिति मजबूत हो गयी और १९१६ ई० तक कांग्रेस उनके नियंत्रणमें रही।

परंतु मार्ले-मिन्टो सुधार इतने सीमित थे कि शीघ्र ही उनके विरुद्ध असंतोष उत्पन्न होने लगा। इस बीच देशकी अंदरूनी तथा अंतरराष्ट्रीय घटनाओंके फलस्वरूप भारतीय मुसलमानोंका एक वर्ग भी स्वशासनकी माँग करने लगा। अभी तक भारतीय मुसलमानोंने कांग्रेसके नेतृत्वमें चलाये गये राष्ट्रीय आंदोलनसे अपनेको अलग रखा था। परंतु १९०९ ई० के इंडियन कौंसिल ऐक्ट-में मुसलमानोंको खुश रखनेके उद्देश्यसे प्रदान किये गये साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वके बावजूद, मुसलिम लीगने १९१३ ई० में स्वशासनको प्राप्ति अपना उद्देश्य घोषित कर दिया। १९१६ ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुसलिम लीगका अधिवेशन लगभग साथ-साथ लखनऊमें हुआ, जिसमें शासन-सुधारोंकी संयुक्त योजना तैयार की गयी। इस संयुक्त माँगके जवाबमें तथा प्रथम विश्वयुद्ध (दे०) के फलस्वरूप उत्पन्न परिस्थितियोंके दबावसे ब्रिटेनने १९१८ ई० में मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों (दे०) की घोषणा की। शीघ्र ही इनके आधारपर १९१९ ई० का गवर्नमेन्ट आफ इंडिया ऐक्ट (दे०) तैयार किया गया, जिसमें विधानमंडलोंमें प्रत्यक्ष चुनावके आधारपर जनताको प्रतिनिधित्व प्रदान करनेका सिद्धांत स्वीकार कर लिया गया और आंशिक रीतिसे प्रांतीय स्वशासनकी स्थापना कर दी गयी। इन सुधारोंको स्वीकार करनेके प्रश्नपर कांग्रेसमें दो दल हो गये। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और तेजबहादुर सप्रू जैसे पुराने कांग्रेसजनोंके नेतृत्वमें नरमदलवालोंने सुधारोंको स्वीकार कर लिया और उन्हें क्रियान्वित करनेका निश्चय किया। दूसरी ओर राष्ट्रीयतावादियोंने, जो अब कांग्रेसमें बहुमतमें थे, सुधारोंको अपर्याप्त माना और १९१८ ई० के अधिवेशनमें कांग्रेसने उन्हें अस्वीकार कर दिया। नरमदलवाले अब कांग्रेससे अलग हो गये, जिसके निर्माणमें उन्होंने बहुत परिश्रम किया था और उसके लिए अनेक कुर्बानियाँ की थीं।

इसी समय कांग्रेसको मोहनदास करमचंद गांधी (दे०) के रूपमें एक नया नेता मिल गया और जिसके निर्देशनमें १९२० ई० के नागपुर अधिवेशनमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने अपना ध्येय सभी उचित तथा शांतिपूर्ण उपायोंसे पूर्ण स्वराज्यकी प्राप्ति घोषित किया और अपनी माँगोंको मनवानेके लिए सरकारके प्रति अहिंसक असहयोगकी नीति बरतनेका निश्चय किया। इस प्रकार कांग्रेसके ध्येय और उसके उपायोंमें भारी परिवर्तन आ गया।

कांग्रेसको अब पहलेसे कहीं अधिक जन-समर्थन प्राप्त होने लगा और उसने एक ऐसा साधन प्राप्त कर लिया, जिसका प्रयोग करके वह अपनी माँगोंको मनवा सकती थी। १९२१ ई० में गांधीजीके नेतृत्वमें कांग्रेसने मुसलमानोंके द्वारा चलाये जा रहे खिलाफत आंदोलन (दे०) का समर्थन किया और एक सालमें स्वराज्य दिलानेका वादा करके असहयोग आंदोलन आरम्भ कर दिया। प्रिंस आफ वेल्सके आगमनपर उसका बायकाट किया गया और हिन्दुओं तथा मुसलमानोंके संयुक्त असहयोगसे सरकारको किस रीतिसे पंगु बनाया जा सकता है, इसका अपूर्व प्रदर्शन हुआ। सरकारने तीव्र दमन किया और आंदोलन गांधीजी के इच्छानुसार पूर्णरूपसे अहिंसक नहीं रह सका। तुर्कीमें घटनेवाली घटनाओंके फलस्वरूप खिलाफत आंदोलन मृत हो गया और असहयोग आंदोलन बंद कर दिया गया। परन्तु कांग्रेसका आंदोलन चलता रहा और १९२९ ई० के लाहौर अधिवेशनमें पूर्ण स्वाधीनताकी प्राप्ति कांग्रेसका लक्ष्य घोषित किया गया।

कांग्रेसने अपने लक्ष्यकी पूर्तिके लिए अप्रैल १९३० ई० में सत्याग्रह आंदोलन (दे०) आरम्भ कर दिया। मुसलिम लीगने सत्याग्रह आंदोलनमें शरीक होनेसे इनकार कर दिया। सरकारने फिर दमनका सहारा लिया। उसने गांधीजी और कांग्रेसके दूसरे बहुतसे नेताओंको जेलोंमें बंद कर दिया और कांग्रेस आंदोलन पुन: स्थगित कर दिया गया। परंतु दमनके जोरसे स्वाधीनताकी आकांक्षाको नहीं कुचला जा सका और १९३९ ई० में द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू होनेपर यह अच्छी तरह प्रकट हो गया कि ब्रिटेन युद्ध जीतनेके लिए भारतके साधनोंपर कितना अधिक निर्भर है। गांधीजीके नेतृत्वमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने ब्रिटेनके शत्रुराष्ट्रोंका खुला समर्थन करनेसे साफ इनकार कर दिया और इस बातकी प्रतीक्षा करना उचित समझा कि ब्रिटेनमें एक दिन सद्बुद्धिका उदय होगा और वह स्वेच्छासे भारतकी राजनीतिक माँगोंको स्वीकार कर लेगा, परन्तु सुभाषचन्द्र

बोस (दे०) के नेतृत्वमें कांग्रेसजनोंका एक वर्ग ब्रिटेनके शत्रु राष्ट्रोंसे फौजी गठबंधन कर लेनेके पक्षमें था। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस कलकत्तामें अपने घरमें नजरबद थे। एक दिन वे चुपकेसे भाग निकले और स्थल-मार्गसे जर्मनी जा पहुंचे। अनेक साहसिक घटनाओंके बाद वे सिंगापुर पहुँचे और वहाँ १९४२-४३ ई०में अंग्रेजोंने बर्मा खाली करते समय जिन ६०,००० भारतीय सेनाओंको जापानियोंके हाथ बंदीके रूपमें छोड़ दिया था, उनकी सहायतासे आजाद हिन्द फौजका संगठन किया, अपनी अध्यक्षतामें एक अस्थायी आजाद हिन्द सरकारकी रचना की और जापानियोंकी सहायतासे भारतको बलपूर्वक आजाद करनेके लिए उसकी पूर्वी सीमाओंपर फौजी आक्रमण कर दिया। परन्तु १९४४ ई०में उनका प्रयास विफल हुआ। गांधीजीने १९४२ ई०में अंग्रेजोंके विरुद्ध जो 'भारत छोड़ो' आन्दोलन छेड़ा था, वह भी विफल रहा।

१९४५ ई० तक ब्रिटेन फिर विजयी हो चुका था और प्रतीत होता था कि वह फिर पुराना साम्राज्यवादी रवैया अख्तियार कर लेगा। परन्तु युद्धने ब्रिटेनको जन और धनकी भारी क्षति पहुँचायी थी, वह पूरी तरहसे जर्जर और पंगु हो चुका था। वह यद्यपि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका दमन करनेमें सफल हो गया था, तथापि भारतमें ब्रिटिश-विरोधी भावनाओं एवं गतिविधियोंने इतना प्रबल रूप धारण कर लिया था कि ब्रिटेनके लिए इसके सिवा कोई चारा नहीं रह गया कि वह कांग्रेसकी मांगोंको स्वीकार करके ही भारतपर अपना अधिकार बनाये रख सकता है। कांग्रेसने १९४६ ई०के मेरठ अधिवेशनमें पुनः स्वाधीनताकी माँग दोहरायी और अंतमें अगस्त १९४७ ई०में भारत और पाकिस्तान (दे०) के रूपमें देशके विभाजनकी भारी कीमत चुका कर अपनी मांगें मनवा लीं। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने बासठ वर्ष पूर्व अपनी स्थापनाके अवसर पर अपना जो ध्येय निश्चित किया था, उससे अधिक प्राप्त कर लिया। इस समय कांग्रेस ही भारत सरकारका संचालन कर रही है। उसके कार्यकालमें भारतको संघीय लोकतांत्रिक गणतंत्रात्मक संविधान प्रदान किया गया और अनेक शताब्दियोंकी विदेशी दासताके फलस्वरूप देश गरीबी, अज्ञान तथा सामाजिक एवं आर्थिक असमानताके जिन अभिशापोंसे ग्रस्त था, उनसे छुटकारा दिलानेका बीड़ा उठाया गया है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस आज भी भारतकी प्रमुख राजनीतिक पार्टी है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस लोकतांत्रिक संगठन है जो सारे देशमें फैला हुआ है। १८ वर्ष या इससे अधिक उम्रका कोई भी व्यक्ति २५ पैसा वार्षिक चंदा देकर उसका प्राथमिक सदस्य बन सकता है और २० वर्षसे अधिक उम्रका कोई भी प्राथमिक सदस्य खादी पहनने आदिकी कुछ शर्तें पूरी करने पर उसका पूर्ण तथा सक्रिय सदस्य बन सकता है। सबसे नीचे ग्राम या मोहल्ला कांग्रेस कमेटी होती है, उससे ऊपर जिला कांग्रेस कमेटी होती है। प्रत्येक प्रदेशमें अपनी सभी जिला कांग्रेस कमेटियोंके कार्योंका पर्यवेक्षण और नियंत्रण करनेके लिए एक प्रदेश कांग्रेस कमेटी होती है। सभी प्रदेश कांग्रेस कमेटियाँ अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके अधीन होती हैं, जिसके सदस्य सभी राज्योंसे चुने जाते हैं। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका कार्य समूचे वर्ष चलता रहता है और उसका निर्देशन वर्किंग कमेटी करती है, जिसके अध्यक्षका चुनाव दो वर्षके लिए होता है। ऊपरसे ऐसा प्रतीत होता है कि संगठनके अन्दर कार्योंका काफी विकेन्द्रीकरण है, परन्तु अनुभवोंसे सिद्ध होता है कि आवश्यकता पड़ने पर यह संगठन अपने कार्योंमें केन्द्रीयकरणकी भारी क्षमता रखता है।

नीचे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके १८८५ ई०में होनेवाले पहले अधिवेशनसे लेकर १९४७ ई० तकके अधिवेशन स्थानों तथा अध्यक्षोंकी सूची दी जा रही है, जिससे उसका राष्ट्रीय एवं अखिल भारतीय रूप प्रकट होता है।

सन् स्थान अध्यक्ष

१८८५–बम्बई–उमेशचन्द्र बनर्जी
१८८६–कलकत्ता–दादाभाई नौरोजी
१८८७–मद्रास–सैयद बदरुद्दीन तैयबजी
१८८८–इलाहाबाद–जार्ज यूल
१८८९–बम्बई–सर विलियम वेडरबर्न
१८९०–कलकत्ता–सर फीरोजशाह मेहता
१८९१–नागपुर–आनन्द चार्लू
१८९२–इलाहाबाद–उमेशचंद्र बनर्जी
१८९३–लाहौर–दादाभाई नौरोजी
१८९४–मद्रास–अलफ्रेड वेब
१८९५–पूना–सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
१८९६–कलकत्ता–मोहम्मद रहीमतुल्ला सयानी
१८९७–अमरावती–सी० शंकरन नायर
१८९८–मद्रास–आनन्द मोहन वसु
१८९९–लखनऊ–रमेशचन्द्र दत्त
१९००–लाहौर–नारायण गणेश चन्द्रावरकर

१९०१—कलकत्ता—दीनशा ईदलजी वाचा
१९०२—अहमदाबाद—सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
१९०३—मद्रास—लालमोहन घोष
१९०४—बम्बई—सर हेनरी काटन
१९०५—बनारस—गोपालकृष्ण गोखले
१९०६—कलकत्ता—दादाभाई नौरोजी
१९०७—सूरत—रासबिहारी घोष (अधिवेशन भंग)
१९०८—मद्रास—रासबिहारी घोष
१९०९—लाहौर—मदनमोहन मालवीय
१९१०—इलाहाबाद—सर विलियम बेडरबर्न
१९११—कलकत्ता—बिशन नारायण दर
१९१२—पटना—रघुनाथ नृसिंह मुधोलकर
१९१३—कराची—नवाब सैयद मोहम्मद बहादुर
१९१४—मद्रास—भूपेन्द्रनाथ वसु
१९१५—बम्बई—सत्येन्द्र प्रसन्न सिंह
१९१६—लखनऊ—अम्बिकाचरण मुजुमदार
१९१७—कलकत्ता—श्रीमती एनी बेसेंट
१९१८—बम्बई (विशेष)—सैयद हसन इमाम
१९१९—अमृतसर—पंडित मोतीलाल नेहरू
१९२०—कलकत्ता (विशेष)—लाला लाजपत राय
१९२०—नागपुर—चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य
१९२१—अहमदाबाद—हकीम अजमल खाँ
१९२२—गया—चित्तरंजन दास
१९२३—कोकोनडा—मौलाना मोहम्मद अली
१९२३—दिल्ली (विशेष)—अबुल कलाम आजाद
१९२४—बेलगाँव—मोहनदास करमचंद गांधी
१९२५—कानपुर—श्रीमती सरोजिनी नायडू
१९२६—गौहाटी—श्रीनिवास आयंगर
१९२७—मद्रास—डा० मुख्तर अहमद अन्सारी
१९२८—कलकत्ता—पंडित मोतीलाल नेहरू
१९२९—लाहौर—पंडित जवाहरलाल नेहरू
१९३०—कोई अधिवेशन नहीं हुआ
१९३१—कराची—वल्लभभाई पटेल
१९३२—दिल्ली—सेठ रणछोरलालदास अमृतलाल
१९३३—कलकत्ता—श्रीमती नेलो सेनगुप्त
१९३४—बम्बई—राजेन्द्र प्रसाद
१९३५—कोई अधिवेशन नहीं हुआ
१९३६—लखनऊ—पंडित जवाहरलाल नेहरू
१९३७—फैजपुर—पंडित जवाहरलाल नेहरू
१९३८—हरीपुरा—सुभाषचंद्र बोस
१९३९—त्रिपुरी—सुभाषचंद्र बोस
१९४०—रामगढ़—मौलाना अबुलकलाम आजाद
१९४१—१९४५—कोई अधिवेशन नहीं हुआ
१९४६—……पंडित जवाहरलाल नेहरू
१९४६—……आचार्य जयरामदास दौलतराम कृपालानी
१९४७—……राजेन्द्र प्रसाद

स्वाधीनता पानेके बाद १९४८ ई० में कांग्रेसका अधिवेशन जयपुरमें पट्टाभि सीतारमैयाकी अध्यक्षतामें हुआ, १९५० ई० में नासिकमें पुरुषोत्तमदास टंडनकी अध्यक्षतामें, १९५१ ई०में नयी दिल्लीमें पंडित जवाहरलाल नेहरूकी अध्यक्षतामें, जिन्होंने हैदराबाद (१९५३) तथा कल्याणी अधिवेशनोंकी भी अध्यक्षता की, १९५५ ई० में अवाड़ीमें उच्छ्रङ्गराय नवलराय ढेबरकी अध्यक्षता में, जिन्होंने अमृतसर (१९५६ ई०) तथा गोहाटी (१९५८ ई०) अधिवेशनोंकी भी अध्यक्षता की, १९५९ ई० में नागपुरमें श्रीमती इंदिरा गांधीकी अध्यक्षतामें, १९६० ई० में बंगलोरमें तथा १९६१ ई० में गुजरातमें नीलम संजीव रेड्डीकी अध्यक्षतामें, १९६२ ई० में भुवनेश्वरमें तथा १९६३ ई० में पटनामें दामोदरन संजीवैयाकी अध्यक्षतामें तथा १९६४ ई० में भुवनेश्वरमें तथा १९६५ ई० में दुर्गापुरमें के० कामराजकी अध्यक्षता में हुआ। अवाड़ी अधिवेशन (१९५५ ई०) में कांग्रेसने देशमें लोकतांत्रिक आधारपर समाजवादी राज्यकी स्थापनाकी नीति स्वीकार की, जिसे उसने भुवनेश्वर अधिवेशन (१९६५ ई०) में दोहराया।

भारतीय वर्णमाला—सबसे प्राचीन भारतीय लिपिमालाके नमूने पिपरहवाके स्तूप और अशोक (२७३ ई० पू० से २३२ ई० पू०) के शिलालेखोंमें मिलते हैं। उस लिपिको ब्राह्मी लिपि कहा जाता है और भारतकी सभी आधुनिक लिपियाँ उसीसे विकसित हुई हैं। ब्राह्मी लिपिका विकास कैसे हुआ, यह अब तक रहस्य है। एक मत है कि पश्चिमी एशियामें जो लिपियाँ प्रचलित थीं, उन्हींसे ब्राह्मी लिपिका विकास हुआ। दूसरा मत है कि प्राचीन ब्राह्मी लिपिका विकास सिन्धके मोहनजोदड़ो और हड़प्पाके प्रागैतिहासिक अवशेषोंमें प्राप्त मोहरों या मुद्राओंपर अंकित चित्र लिपिसे हुआ। पश्चिमोत्तर भारतमें अशोकके शिलालेख खरोष्ठी लिपिमें मिले हैं और अफगानिस्तानके हालमें उसके जो दो शिलालेख मिले हैं, उनमें खरोष्ठी और अरमइक ग्रीक, दोनों लिपियोंका प्रयोग है। इस प्रकार ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दीमें भारतमें ब्राह्मी, खरोष्ठी और अरमइक, तीनों लिपियोंका प्रयोग होता था; और उनमेंसे ब्राह्मी लिपि

पूरे भारतमें प्रचलित थी और बादकी अधिकांश भारतीय लिपियाँ उसीसे विकसित हुई हैं। ईसाकी सातवीं शताब्दीमें जब तिब्बतमें राजा स्रोङ् ग़म्पन् स्गम्पो (६२९–६९८ ई०) का राज्य था, उस समय बौद्धधर्मने तिब्बत अथवा भोट देशमें प्रवेश किया और उसके साथ ही भारतीय वर्णमाला और लिपि भी वहाँ पहुंची जो भोट वर्णमालाका आधार बनी।

भारतीय शासन विधान—१८५८, १९०९, १९१९ तथा १९३५ ई० के शासन-विधानोंका विवरण 'ब्रिटिश भारतीय प्रशासनतंत्र'के अन्तर्गत देखिये।

भारतीय संविधान सभा—इसकी स्थापनाका अधिकार ब्रिटिश पार्लियामेन्टने १६ मई १९४६ ई० की कैबिनेट मिशन (दे०) योजनामें स्वीकार किया। इस योजनाके अंतर्गत संविधान सभाका गठन किया गया, जिसमें सभी प्रांतों तथा देशी रियासतोंका प्रतिनिधित्व करनेवाले ३८१ सदस्य थे। परन्तु मुसलिम लीग उसकी बैठकोंमें शामिल नहीं हुई और इसीलिए भारतीय संविधान सभा दिसम्बर १९४६ ई० में होनेवाले अधिवेशनमें कोई कार्य नहीं कर सकी। ब्रिटिश पार्लियामेन्टकी ओरसे भारतके पाकिस्तान तथा भारत नामसे दो स्वतंत्र राज्यों-में विभाजन करनेकी योजनाके आधारपर जब १९४७ ई० में इंडियन इंडिपेन्डेन्स एक्ट पास किया गया, तब संविधान सभाका भी विभाजन कर दिया गया। पाकिस्तानमें शामिल क्षेत्रोंका प्रतिनिधित्व करनेवाले सदस्यों-को लेकर पाकिस्तान संविधान सभाका गठन कर दिया गया। शेष सदस्य भारतीय संविधान सभाके सदस्य बने रहे। लम्बी बहसके बाद डा० राजेन्द्रप्रसाद (दे०)की अध्यक्षतामें भारतीय संविधान सभाने २६ नवम्बर १९४९ ई० को भारतका संविधान अधिनियम पास कर दिया।

इस अधिनियममें निर्धारित किया गया कि भारत सार्वभौम सत्ता-सम्पन्न लोकतांत्रिक गणराज्य होगा और उसके राज्यक्षेत्रमें गवर्नरोंके द्वारा शासित प्रांत, देशी रियासतें तथा चीफ कमिश्नरोंके द्वारा शासित प्रांत सम्मिलित होंगे। संविधान सभाने भारतीय विधान-मंडलकी हैसियतसे कार्य करते हुए निर्णय किया कि भारतीय गणराज्य ब्रिटिश राष्ट्रमंडलका सदस्य बना रहेगा। भारतीय संविधान सभाने जो संविधान तैयार किया था, उसमें भारतमें एक निर्वाचित राष्ट्रपतिके अधीन संघात्मक लोकतांत्रिक गणराज्यकी स्थापना स्वीकृत की गयी थी। इस संविधानको २६ जनवरी १९५० ई० को एक घोषणाके द्वारा स्वीकार किया गया और उसी दिनसे लागू कर दिया गया। उसीके उपलक्ष्यमें प्रतिवर्ष २६ जनवरीको भारतमें 'गणराज्य दिवस' मनाया जाता है।

भारतीय संवैधानिक सुधारोंकी रिपोर्ट—इसमें १९१७–१८ ई० में नियुक्त भारतमंत्री एडविन मांटेग्यू तथा वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्डकी सिफारिशें निहित थीं। १९१९ ई० का गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्ट इसी रिपोर्टपर आधारित था। इस ऐक्टमें केन्द्रीय तथा प्रांतीय विधान-मंडलोंका विस्तार कर दिया गया तथा द्वैध-शासन प्रणाली (दे०) के द्वारा प्रांतोंका प्रशासन आंशिक रूपसे उत्तरदायी बना दिया गया।

भारतीय सभ्यता और धर्मका विदेशोंमें विस्तार—'वृहत्तर भारत' भारतके प्राचीन इतिहासका एक गौरवपूर्ण अध्याय है। दूसरे देशोंके साथ भारतका सम्पर्क प्रागैतिहासिक कालमें भी था। ऐतिहासिक कालमें देशके बाहर भारतीय संस्कृतिका प्रसार सबसे पहले तीसरे मौर्य सम्राट् अशोक (लगभग २७३ से २३२ ईसा-पूर्व) ने किया, जिसने बौद्ध धर्म प्रचारकोंको पश्चिममें अफगानिस्तानके रास्ते फारस, सीरिया, मिस्र और मेसीडोनिया (मकदूनिया) तथा दक्षिणमें श्रीलंका तक भेजा। अशोकने अपने अभिलेखोंमें दावा किया है कि उसके धर्म-विजय संबंधी प्रयासोंके फलस्वरूप इन सभी देशोंमें बहुतसे लोगोंने बौद्ध धर्म अपनाया और उसने इन सभी देशोंमें मनुष्य और पशुओं दोनोंके लिए अस्पताल खुलवाये। अशोकका यह दावा सही था, इसके प्रमाण उपलब्ध हैं। यूनानी इतिहासकारोंने इस बातका उल्लेख किया है कि ईसवी सन्‌की प्रारंभिक शताब्दियोंमें भारतीय व्यापारी अपने जहाजोंपर सवार होकर विविध भारतीय बंदरगाहोंसे विदेश यात्रापर जाते थे और अरब सागर पार करके पश्चिमी देशोंके साथ व्यापार करते थे। उन्होंने सोकोत्रा-में अपना उपनिवेश स्थापित किया था और रोम तथा उसके साम्राज्यके साथ उनका प्रगाढ़ व्यापारिक संबंध था।

लगभग इसी समय, विशेष रीतिसे कुषाणोंके शासन कालमें बौद्ध धर्मका भारतसे बाहर मध्य एशियामें प्रसार हुआ और ताशकद, खोतन और यारकंद भारतीय संस्कृति-के केन्द्र बन गये। गोमति-विहार और कूचा या कूची नगर भारतीय संस्कृतिके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे। सर आरेल स्टीनकी गवेषणाओंके फलस्वरूप एशियामें भारतीय संस्कृतिके अनेक अवशेष प्राप्त हुए हैं। मध्य

एशियासे भारतीय बौद्ध धर्म और संस्कृतिका प्रसार ईसवी सन् की प्रारंभिक-शताब्दियोंके दौरान चीनमें हुआ और लगभग एक हजार वर्षोंतक भारत तथा चीनके बीच घनिष्ठ सांस्कृतिक संबंध कायम रहे। भारी संख्यामें भारतीय बौद्ध भिक्षु चीन गये, वहाँ बसे तथा उन्होंने चीनी विद्वानों-की मददसे न केवल बौद्ध धर्म वरन् ज्ञानकी विभिन्न शाखाओं, जैसे–व्याकरण, छंदशास्त्र, काव्यशास्त्र, कला और चिकित्सा शास्त्रकी सैकड़ों पुस्तकोंका संस्कृतसे चीनी भाषामें अनुवाद किया। ये भारतीय भिक्षु संस्कृत भाषाके पंडित थे, अतः चीनी विद्वानोंने इनसे संस्कृत सीखी।

इन बौद्ध भिक्षुओंमें सबसे पहले कश्यप मातंग और धर्मरक्ष ६७ ई०के आस-पास चीन गये थे। इनके अलावा चीन जानेवाले अन्य कई भारतीय भिक्षुओंके नाम चीनी इतिहास-ग्रंथोंमें सुरक्षित हैं। इनमेंसे कुछ प्रमुख हैं—कुमारजीव (४०१–१३ ई०), बोधिधर्म (लगभग ५२०–९ ई०) गुणवर्मा (४२४–६० ई०) और अमोघ-वज्र (७४६–७४ ई०)। इसी तरह बौद्धधर्मके पवित्र ग्रंथोंकी खोजमें और बौद्ध तीर्थोंकी यात्रा करनेके लिए चीनी भिक्षु भी भारी संख्यामें भारत आये। वे वापसी-में अपने साथ सैकड़ों संस्कृत ग्रंथ चीन ले गये और उनका चीनी भाषामें अनुवाद किया। भारत आनेवाले चीनी यात्रियोंमें सबसे अधिक प्रसिद्ध फाहियान और ह्यएनत्सांग हैं, जो क्रमशः ईसवी सनकी ५ वीं और ७ वीं शताब्दियोंमें भारत आये थे। इस आवागमनके फलस्वरूप बौद्ध धर्मका महायान रूप चीनियोंमें इतना अधिक प्रचलित हो गया कि यह वस्तुतः चीनका राष्ट्रीय धर्म बन गया। चीनसे बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति कोरिया पहुँची और कोरियासे जापान।

बौद्ध धर्मका नेपाल और तिब्बतमें भी प्रसार हुआ। भारतीय बौद्ध भिक्षुओंमें पद्मसंभव और अतिशा दीपंकर श्रीज्ञान (१०४२–५४ ई०)के नाम तिब्बतवासी आज भी बहुत श्रद्धाके साथ लेते हैं। पद्मसंभव आठवीं शताब्दीके मध्यमें तिब्बत गये और वहाँ लामा धर्मकी स्थापना की। तिब्बतने भारतीय धर्म ग्रहण करनेके साथ-साथ उसकी लिपिको भी ग्रहण किया।

श्रीलंकामें अशोकके धर्म प्रचारकोंको भारी सफलता मिली। द्वीप-वासियोंने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया और श्रीलंका शीघ्र ही बौद्ध संस्कृतिका केन्द्र बन गया। यहीं बौद्ध त्रिपिटकोंको पहली बार लिपिबद्ध किया गया।

भारतीय संस्कृति तथा हिन्दू एवं बौद्ध धर्मका प्रसार श्रीलंकाके अतिरिक्त बर्मा, मलय प्रायद्वीप, सुमात्रा, जावा (यवद्वीप) और मलयद्वीपसमूह तथा वहाँसे उत्तरकी ओर स्याम, कम्बुज (कम्बोडिया) और अनाममें भी हुआ। इन देशोंमें केवल भारतीय भिक्षु और व्यापारी ही नहीं पहुँचे, वरन् भारतीयोंने वहाँ अपने उपनिवेश भी बसाये, जिनपर हिन्दू राजा शासन करते थे। इन राज्योंके शासक अपनेको भारतके क्षत्रिय राजाओंका वंशज बताते थे। इन राज्योंमें चम्पा (आधुनिक अनाम और हिन्द चीन), कम्बुज (जो अब कम्बोडियाके नामसे जाना जाता है), और सुमात्रामें श्रीविजय राज्य, जिसकी राज-धानी परंबनम थी, उल्लेखनीय थे। ये हिन्दू राज्य ईसवी तीसरी शताब्दीसे बारहवीं शताब्दी तक खूब फले-फूले। इनके राजा या तो हिन्दू या फिर बौद्ध धर्मके अनुयायी थे। उन्होंने संस्कृत भाषामें अपनी प्रशस्तियां लिखवायी हैं। उन्होंने शिव, ब्रह्मा और बुद्धके साथ-साथ ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्मके अन्य देवी-देवताओंकी मूर्तियां स्थापित कीं और अनेक भव्य मंदिरोंका निर्माण कराया।

इन मंदिरोंमें जावाके बोरोबुदूर और प्रापाम्नाण मंदिर तथा कम्बोडियाके अंकोरवटके मंदिर आज भी अपने समस्त कला वैभवके साथ विद्यमान हैं। ये मन्दिर दक्षिण-पूर्व एशियामें हिन्दू सभ्यताकी महान उपलब्धियोंके ज्वलंत प्रतीक हैं। चम्पा राज्य अनामवासियोंके हमलोंके कारण १४७१ ई०में नष्ट हो गया। कम्बुजका पतन भी लगभग इसी समय स्यामकी शक्तिके प्रदुर्भावके साथ हुआ और मलय-द्वीपसमूहका हिन्दू राज्य एक शताब्दी पहले वहाँके अंतिम शासक द्वारा इस्लाम-धर्म ग्रहण कर लेनेके कारण समाप्त हो गया। तथ्य यह है कि तेरहवीं शताब्दीमें भारतपर मुसलमानों की विजयके बाद दक्षिण-पूर्व एशिया-की ओर भारतीयोंका प्रसार बंद हो गया और दोनों क्षेत्रोंके बीच संपर्क टूट गया। दक्षिण-पूर्व एशियाके देश इसके बाद शताब्दियों तक पुर्तगालियों, फ्रांसीसियों और डचोंके शोषणके शिकार रहे। **(आर० सी० मजूम-दार कृत चम्पा एण्ड स्वर्णद्वीप, बी० आर० चटर्जी कृत इण्डियन इन्फ्लुएंस आन कम्बोज, डी० जी० ई० हाल कृत हिस्ट्री आफ साउथ ईस्ट एशिया, सर ए० स्टीन कृत ऐंशियेण्ट खोतान, इनरमोस्ट एशिया, रूइंस आफ डेजर्ट कै थे।)**

भास–'अर्थ शास्त्र'के लेखक कौटिल्यका पूर्ववर्ती संस्कृत नाटककार। विश्वास किया जाता है कि उसने 'चारु दत्त' 'प्रतिमा' और स्वप्न-वासवदत्ता' आदि तेरह नाटकोंकी रचना की थी। स्वप्नवासवदत्तामें शैशुनाग वंशी राजा

दर्शक (लगभग ४६७ ई० पू०)का उल्लेख है। इन नाटकोंका, जिनका बादके युगोंमें लोप हो गया था, बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें केरलीय गणपति शास्त्रीने पता लगाया। (**गणपति शास्त्री : दि ड्रामाज आफ़ भास तथा इंडियन एन्टीक्वेरी**, १९१६, पृष्ठ १८९–९५)

भास्कर पण्डित–मराठा शासक रघुजी भोंसलाका सेनापति, जिसने १७४३–४५ ई०में नवाब अलीवर्दी खांके शासन कालमें बंगालपर आक्रमण किया। खुली लड़ाईमें उसका मुकाबला करनेमें असमर्थ होनेपर नवाब अलीवर्दी खाँने भास्कर पंडितको कासिम बाजारके निकट मानकड़ाहमें एकांतमें मिलनेके लिए बुलाया और वहां उसकी हत्या करवा दी। लेकिन भास्कर पंडितकी हत्या से मराठोंकी चढ़ाइयाँ बंद नहीं हुई। फलतः १७५१ई०में उड़ीसा सौंप कर तथा बारह लाख रुपये वार्षिक चौथ देना स्वीकार कर नवाबको मराठोंके साथ सन्धि करनी पड़ी। भास्कर पंडितके आक्रमणोंसे बंगालमें अत्यधिक आतंक फैल गया था और उसके बारगीरों (स्वयंसेवक अश्वारोही सैनिकों)की लूटमारको आज भी बंगालके लोग याद करते हैं। (**सरकार–हिस्ट्री आफ बंगाल, भाग दो, पृष्ठ** ४५५-६१)

भास्कर वर्मा–कामरूप (आसाम)के आरम्भिक राजाओंमें सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त, जिसने लगभग ६०० से ६५० ई० तक शासन किया। ईसाकी चौथी शताब्दीमें यह पुष्यवर्मा द्वारा स्थापित राजवंशका अन्तिम किन्तु सर्वाधिक महान् शासक था। इसका उल्लेख बाणके 'हर्षचरित' और ह्वेनत्सांगकी "ट्रैवल्स एण्ड लाईफ" में हुआ है। निधानपुर ताम्र दानपत्रमें भी उसका कीर्तिगान है, जिसमें समयका कोई निर्देश नहीं किया गया है, ६४६ ई०में हर्षवर्धनकी मृत्यु हो जानेके उपरान्त ही कदाचित् उसे जारी किया गया था। बाण तथा ह्वेनत्सांगने भास्कर वर्माका उल्लेख 'कुमार'के नामसे किया है। उसकी हर्षवर्धनके साथ एक संधि हुई थी। यह संधि कदाचित् बंगालके राजा शशांक (दे०) की शक्तिको रोकनेके लिए की गयी थी। लेकिन इस बातका कहीं उल्लेख नहीं है कि उन्होंने कभी मिलकर शशांकपर आक्रमण किया था। यह तथ्य कि भास्कर वर्माने निधानपुर दानपत्र कर्णसुवर्ण-स्थित शिविरसे जारी किया था, जिसकी पहचान मुर्शिदाबाद स्थित रंगमाटीसे की गयी है, निश्चितरूपमें सिद्ध करता है कि किसी समय उसने कामरूप राज्यकी सीमा बंगालमें मुर्शिदाबाद जिले तक प्रसारित कर दी थी।

वह विद्वानोंका संरक्षक था। यद्यपि वह व्यक्तिगत रूपमें सनातनी हिन्दू धर्म मतावलम्बी था तथापि उसने अपने दरबारमें बौद्ध चीनी यात्री ह्वेनत्सांगको आमंत्रित किया और उसका बड़े सम्मानके साथ स्वागत किया था। बादमें सम्राट् हर्षवर्धनके आदेशपर भास्कर वर्मा राजमहलके निकट स्थित हर्षवर्धनके शिविरमें चीनी यात्रीके साथ-साथ गया था और वहाँसे अपने मित्र सम्राट्की सभाओंमें कन्नौज और प्रयागमें सम्मिलित हुआ। वह हर्षकी मृत्यु (६४८ ई) के बाद कई वर्ष जीवित रहा, और चीनी वृत्तांतोंके अनुसार समस्त पूर्वी भारतका स्वामी बन गया। चीनी राजदूत वांग ह्युएनत्सेने जब हर्षके सिंहासन पर अधिकार कर लेनेवाले उसके मंत्री अर्जुनको दंड देनेके लिए कन्नौज पर आक्रमण किया, तब भास्कर वर्माने साज-सामान देकर उसकी पर्याप्त सहायता की थी। भास्कर वर्मा निःसन्तान था। उसकी मृत्यु (६५० ई०) के उपरान्त कामरूप राज्यपर नये सालस्तम्भ राजवंशका शासन स्थापित हो गया। (**के० बरुआ–अर्ली हिस्ट्री आफ कामरूप; पी० भट्टाचार्य–कामरूप शासनावली तथा एस० भट्टाचार्य–डेट आफ दि निधानपुर ग्रान्ट, जर्नल आफ इंडियन हिस्ट्री–जिल्द** ३१, अगस्त, १९५३, पृष्ठ ११२–१७)

भास्कराचार्य–ख्यातिप्राप्त गणितज्ञ और ज्योतिषाचार्य, जन्म १११४ ई०में दक्षिण देशवर्ती सह्याद्रि शृंखलाके पादमूलमें स्थित बीजापुरमें। उनके पिता चूड़ामणि महेश्वर भी ज्योतिषी थे, जिनसे उन्होंने गणित और खगोल-शास्त्र सीखा। छत्तीस वर्षकी अल्पावस्थामें उन्होंने अपनी प्रसिद्ध रचना 'सिद्धान्तशिरोमणि' लिखी। यह पुस्तक दो भागोंमें विभाजित है–अंकगणित तथा बीजगणित, प्रथम भागको लीलावती भी कहते हैं। यह पुस्तक पद्यमय है और दर्शाती है कि गणित विज्ञानमें हिन्दुओंने कितनी उन्नति की थी। (**एच० बनर्जी–लीलावती तथा, बी० बी० दत्त–कन्ट्रीब्यूशन्स आफ दि हिन्दूज टू मैथमेटिक्स**)

भितरी–बनारससे पूर्व गाजीपुर जिलेमें स्थित। यहाँ पाँचवें गुप्त सम्राट् स्कन्दगुप्त (४५५–६७ ई०) ने एक स्तम्भ निर्मित कराया था जिसके शीर्षपर विष्णुकी मूर्ति थी। मूर्ति अब लुप्त हो चुकी है, लेकिन स्तम्भ अब भी खड़ा है और इस पर संस्कृतमें एक विस्तृत अभिलेख अंकित है। अभिलेखमें स्कन्दगुप्तकी वंशावली तथा पुष्यमित्रों तथा हूणोंसे हुए युद्धोंका भी विवरण है। अभिलेखके अनुसार स्कन्दगुप्त कुमारगुप्त प्रथम (४१३-५५ ई०) का पुत्र और उत्तराधिकारी था। १८८९ ई० में कुमारगुप्त द्वितीयकी एक मोहर भितरीमें मिली थी।

इस मोहर पर स्कन्दगुप्तका कोई उल्लेख नहीं है और पुरगुप्तको कुमारगुप्त प्रथमका पुत्र तथा उत्तराधिकारी बतलाया गया है। भितरीमें प्राप्त अभिलेख तथा मोहर-की परस्पर प्रतिकूल बातोंका समाधान करनेके लिए यह अनुमान किया जाता है कि पुरगुप्त स्कन्दगुप्तका सौतेला भाई था और वह स्कन्दगुप्तकी मृत्युके उपरान्त सिंहासनारूढ़ हुआ था। (**फ्लीट–गुप्ता इंसक्रिपशन्स, नम्बर १३; बनर्जी–क्रॉनालोजी आफ दि लेट इम्पीरियल गुप्ताज, अनल्स आफ भण्डारकर रिसर्च इंस्टीच्यूट, 'जिल्द १, भाग १, १९१९ तथा रायचौधरी० पृ० ५७२-८५**)

भिन्नमाल–उत्तर गुजरातके निकट पुरानी सिरोही रियासत-में स्थित एक प्राचीन नगर। गुर्जर प्रतिहारोंके काल (नवीं शताब्दी) में यह शासनका प्रमुख केन्द्र था।

भिलसा–प्राचीन नगर विदिशाका आधुनिक नाम। इसके निकट कुछ स्तूपोंके अवशेष हैं जिन्हें जनश्रुतियोंके अनु-सार अशोक द्वारा स्थापित बताया जाता है। मुसलमानों-के जमानेमें यह फूलता-फलता नगर था। यहाँ एक किला था जिससे मालवा प्रदेशमें भिलसा सामरिक महत्त्वका स्थान माना जाता था। इस पर सुल्तान इल्तुतमिशने १२३४ ई०में कब्जा कर लिया था। पश्चात् १२९२ ई०में इस पर अलाउद्दीनका कब्जा हो गया और इसके फलस्वरूप उसके लिए दक्षिण भारतपर चढ़ाई करनेका मार्ग प्रशस्त हो गया।

भीतरगांव–उत्तर प्रदेशके कानपुर जिलेमें अवस्थित, जहाँ गुप्तकालका एक मन्दिर है। इसे चन्द्रगुप्त द्वितीयके कालका बताया जाता है। इस मन्दिरकी मृन्मय मूर्तियाँ दृष्टव्य हैं। यह मंदिर गुप्त-कालीन कला और वास्तु-रचनाकी भव्यताका उत्कृष्ट नमूना है।

भीम अथवा भीमसेन–महाभारतकी कथाओंके नायक पाँच पाण्डव राजकुमारोंमें दूसरा। पाण्डुके पाँचों पुत्रोंमें शारी-रिक दृष्टिसे यह सबसे अधिक बलवान था और महा-भारतमें इसके शक्ति-प्रदर्शनकी अनेक घटनाएँ वर्णित हैं।

भीम–कैवर्त जातिमें उत्पन्न और दिव्योक अथवा दिव्य (दे०)का भतीजा एवं उत्तराधिकारी। उसने बंगालके राजा महीपाल द्वितीयके विरुद्ध विद्रोहका नेतृत्व किया और उत्तरी बंगालमें स्वाधीन राज्यकी स्थापना की। भीम-का शासन थोड़े ही समय रहा, क्योंकि महीपालके छोटे भाई रामपालने १०८४ ई०में उसका राज्य छीन लिया।

भीम–उद्भाण्डपुरके हिन्दू शाहीय वंशका चौथा राजा। उसकी दौहित्री (पुत्रीकी पुत्री) कश्मीरकी ख्यातिप्राप्त रानी दिद्दा थी। उसके शासनकालमें गजनीका सुल्तान सबुक्तगीन (९७७–९७ ई०) काफी शक्तिशाली हो गया। उसके राज्य-प्रसारको रोकनेमें भीमका उत्तराधिकारी जयपाल विफल रहा।

भीमदेव प्रथम–गुजरातके चालुक्य अथवा सोलंकी वंशका राजा। उसके शासनकालमें महमूद गजनवीने सोमनाथ-के शिव-मन्दिरपर आक्रमण किया और राजा उसको रोकने तथा मन्दिरकी रक्षा करनेमें असफल रहा। महमूद गजनवीने १०२५ ई० में मन्दिरको नष्ट कर दिया। उसके लौट जानेपर राजा भीमने पुराने मन्दिरके स्थानपर, जो ईंटों और लकड़ीका बना हुआ था, पत्थर-का नया मन्दिर बनवाना शुरू कर दिया।

भीमदेव द्वितीय–गुजरातके सोलंकी अथवा चालुक्यवंशका पश्चात्कालीन राजा, जिसने ११७८ ई० में शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीके आक्रमणको विफल कर दिया। इस विजयके फलस्वरूप पूरा गुजरात एक शताब्दीसे अधिक समय तक मुसलमानोंके अधिकारमें जानेसे सुरक्षित रहा। इतनेपर भी भीमदेवकी राजधानी अन्हिलवाड़पर कुतुबुद्दीनने ११९७ ई० में आक्रमण और लूटमार कर ही डाली। भीमदेव द्वितीय उन गिने-चुने हिन्दू राजाओं-में से एक था जो कुछ समय तक भारतमें मुसलमानोंकी प्रगति रोकनेमें समर्थ हुए थे।

भीमसेन–एक हिन्दू इतिहासकार, जो औरंगजेब (१६५६–१७०७ ई०) के शासनकालमें विद्यमान था। उसने फारसीमें 'नुस्खा ए दिलकुशा' नामक ग्रंथ लिखा है। उसका जन्म दक्षिणमें बुरहानपुरमें हुआ, अतः भीमसेन बुरहानपुरी कहलाता था। उसके ग्रंथसे देशकी आर्थिक स्थितिके बारेमें काफी जानकारी मिलती है।

भील–भारतकी एक आदिवासी जाति, जिसका उल्लेख वैदिक साहित्यमें निषादोंके रूपमें किया गया है। ये लोग जो भाषा बोलते हैं, उसकी गणना आग्नेय भाषा परिवारमें की जाती है।

भुइयाँ–पूर्वी बंगाल तथा आसामके छोटे-मोटे जमींदारोंकी पदवी। उनकी संख्या बारह बतायी जाती है। यह जाति-बोधक शब्द नहीं है, वरन् जमींदारोंके समूहका वाचक है। ये लोग इतने धनिक और शक्तिशाली हो गये थे कि अर्धस्वाधीन शासकोंकी तरह कार्य करते थे और एक दूसरेसे स्वतंत्र थे। पूर्वी बंगालमें ढाका, मैमनसिंह, फरीदपुर, बरिसाल तथा कोमिल्ला जिलोंके बड़े भागपर उनका अधिकार था। आसाममें उनकी जमींदारियाँ ब्रह्मपुत्र नदीके दोनों तटोंपर पश्चिममें कामता राज्य और पूर्वमें चुटिया राज्यके बीचके क्षेत्र

में विस्तृत थीं। बंगालमें सोलहवीं शताब्दीमें अकबरने उनका दमन किया। आसाममें पहले तो राजा नरनारायण (१५४०–८४) ने उनको वशमें किया और बादमें उनकी जमींदारियाँ अहोम शासकोंके राज्यमें विलीन कर दी गयीं। 'भुइयाँ' शब्द आसाम और बंगालमें अब सामान्य पारिवारिक पदवी मात्र रह गयी है और इसका प्रयोग जाति-धर्मके भेदभावके बिना होता है। (जे० एन० सरकार–हिस्ट्री आफ बंगाल, खण्ड दो तथा गेट–हिस्ट्री आफ आसाम)

भुक्ति–गुप्त साम्राज्यकी एक प्रशासकीय इकाई। इसका प्रयोग सामान्यतः प्रांतका बोध करानेके लिए होता था। एक भुक्तिको अनेक विषयों अथवा मंडलोंमें बाँटा जाता था। भुक्तिके शासकको 'उपरिक' अथवा 'उपरिक महाराज' कहते थे।

भुवनेश्वर–उड़ीसाका एक प्राचीन नगर, जो अब इसकी राजधानी है। यहाँ प्रारम्भिक कलिंग शैलीके मंदिर-वास्तुके कुछ उत्कृष्ट नमूने मिलते हैं, उदाहरणार्थ लिङ्गराज और राजरानीके मन्दिर, जिन्हें कड़ा अथवा केसरीवंशके राजाओंने बनवाया था। (आर० डी० बनर्जी–हिस्ट्री आफ उड़ीसा, जिल्द एक)

भूटान–पूर्वी हिमालयमें एक स्वाधीन राज्य, जो तिब्बत और भारतके बीच स्थित है। इसकी सीमा भारतके साथ लगभग दो सौ मील तक फैली हुई है। इसके पूर्वमें अबोर और मिशमी जनजातियोंका निवास है और पश्चिममें सिक्किम अवस्थित है। यह पर्वतीय प्रदेश है जिसे सहजरूपमें तीन भागोंमें बाँटा जा सकता है; दक्षिणी भाग जो भारतसे सटा हुआ है, पर्वतीय है और यहाँ भारी वर्षा होती है। मध्य भाग घाटियोंका प्रदेश है और वर्षा मामूली होती है। इसमें कृषि सम्भव है। इसी क्षेत्रमें अधिकांश लोग रहते हैं। उत्तरी भाग पर्वतोंसे आच्छादित है। इसके कुछ शिखर २४००० फुट तक ऊँचे हैं। इस क्षेत्रमें न तो मनुष्योंका निवास है और न कृषि ही होती है। भूटानमें अनेक नदियाँ बहती हैं, जिनमें मानस, तोरसा और संकोशसे भारतीय भलीप्रकारसे परिचित हैं। लकड़ीके बहुमूल्य लट्ठे यहाँ बहुतायतसे तैयार होते हैं और वन्य-पशुओं जैसे हाथी, गैंडा, बाघ, तेन्दुआ और अरनाभैंसाका यह घर है।

भूटान नाम भारतीय शब्द भोटान्तका अपभ्रंश है, जिसका अर्थ है भोट देश अर्थात् तिब्बतका अन्त। यहाँके बहुसंख्यक लोग जिन्हें भोटिया कहते हैं, तिब्बती मूलके हैं और वे बौद्धधर्मके उस रूपको मानते हैं जो बहुत कुछ तिब्बतके लामाओंके मतसे मिलता-जुलता है। तिब्बतकी तरह भूटानमें भी पुरोहितोंको 'लामा' कहते हैं। लामाओंके सम्बन्धमें विश्वास किया जाता है कि उनके पास अलौकिक शक्ति होती है, अतः लोग उनका आदर करते हैं और उनसे भयभीत भी रहते हैं। भूटानमें सामन्ती व्यवस्था है। सारी सत्ता नौ सरदारों पेन्लेपोंके हाथमें है जो पैंतालीस मकानोंमें, जिन्हें फोंग कहते हैं, रहते हैं और सशस्त्र अनुचर रखते हैं। राजा पूरे देशका प्रधान होता है और सिद्धान्तः उसका निर्वाचन परिषद् करती है, किन्तु व्यावहारिक रूपमें सरदारों (पेन्लेपों) में जो सबसे ज्यादा शक्तिशाली होता है उसीके द्वारा वह मनोनीत किया जाता है। १९०७ ई० से भूटानका राज्यपद पश्चिमी क्षेत्रके पेन्लेप (सरदार) के परिवारमें पुश्तैनी हो गया है।

भूटानके प्रारम्भिक इतिहासके बारेमें बहुत कम जानकारी है। कहा जाता है, भारतमूलक कुछ राजाओंने भूटानमें नवीं शताब्दी तक शासन किया था। उसके बाद तिब्बतियोंने उन्हें बाहर निकाल दिया। किसी मुसलमान शासकने भूटानपर कभी शासन नहीं किया। ब्रिटिश-भारतके साथ इसका सम्बन्ध १७७२ ई० में उस समय कायम हुआ, जब एक भूटानी सेनाने कूच-बिहारपर आक्रमण किया और राजाको बन्दी बना कर ले गयी। तत्कालीन गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सने एक सैन्यदल भेजा, जिसने आक्रमणकारियोंको खदेड़ दिया और १७७४ ई० में संधि हुई। वारेन हेस्टिंग्सने वाणिज्य सम्बन्ध विकसित करनेके लिए १७७४ ई० में जार्ज बोग्ले तथा तत्पश्चात् सैम्युअल टर्नरको राजदूतके रूपमें भूटान भेजा, लेकिन दोनों ही असफल रहे। १८२६ ई० में आसामपर ब्रिटिश भारतका कब्जा हो जानेपर ही घनिष्ठ सम्बन्ध कायम हो सका। कैप्टन राबर्ट पेम्बर्टनका दूतमंडल भूटानको इस बातके लिए राजी करनेमें विफल हो गया कि वह दारंग जिला स्थित दुआर क्षेत्र भारतको समर्पित कर दे। भूटानने इसपर गैरकानूनी ढंगसे १८४१ ई०में कब्जा कर लिया था। ब्रिटिश सरकारने भूटानको एक हजार रुपये वार्षिक सहायता उस समय तक देना स्वीकार किया था जब तक कि दुआर क्षेत्रमें शांति कायम रहती है। लेकिन भूटानियोंके आक्रमण इतनेपर भी बन्द न हुए और १८६३ ई०में भूटान सरकारने ब्रिटिश राजदूत सर ऐशले ईडेनके साथ दुर्व्यवहार किया, परिणामस्वरूप १८६५ ई०में ब्रिटिश सेनाने भूटानपर आक्रमण कर दिया। पहले तो ब्रिटिश सेना

देवनागिरिकी लड़ाईमें पराजित हो गयी, किन्तु बादमें उसने भूटानियोंको परास्त कर दिया। उन्हें बंगाल और आसामका सम्पूर्ण दआर (तराई) क्षेत्र अंग्रेजोंको सौंप कर संधि करनेके लिए बाध्य किया गया, इसके बदलेमें उनको वार्षिक आर्थिक सहायता देना स्वीकृत हुआ। उसके बादसे भूटान और भारतका सम्बन्ध घनिष्ठ होता गया। १९१०ई०में यह समझौता हुआ कि वैदेशिक मामलोंमें भूटान सरकार ब्रिटिश भारत सरकारकी सलाहके अनुसार चलेगी और भूटानके आन्तरिक प्रशासनमें ब्रिटिश भारत सरकार कोई हस्तक्षेप नहीं करेगी। वार्षिक भत्ता भी बढ़ाकर एक लाख रुपया कर दिया गया।

इस संधिके बाद ही चीनी सरकारने दावा किया कि भूटान उसका करद राज्य है। लेकिन भारतकी ब्रिटिश सरकारने चीनको सूचित कर दिया कि भूटान स्वतंत्र राज्य है और उसकी वैदेशिक नीति भारतीय ब्रिटिश सरकार द्वारा संचालित होती है, जो भूटानके मामलोंमें किसी प्रकारके चीनी हस्तक्षेपको सहन नहीं करेगी।

स्वाधीन हो जानेके उपरान्त भारतने भूटानके साथ नयी संधि की, जिसके द्वारा उसकी वार्षिक आर्थिक सहायता बढ़ाकर पाँच लाख रुपये कर दी गयी, देवनगिरिका क्षेत्र भूटानको सौंप दिया गया। इसके बदलेमें भूटानने वचन दिया कि उसके वैदेशिक सम्बन्ध पूर्ववत् भारतके परामर्शसे ही संचालित होंगे। (**रोनाल्डशे—लैण्ड्स आफ दि थण्डरबोल्ट तथा सर चार्ल्स बालटिब्रेट, पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट**)

भूति वर्मा—महाभूति वर्मा अथवा भूतवर्मा भी सम्बोधित किया जाता है। कामरूपके पुष्यवर्मा द्वारा प्रवर्तित राजवंशका आरम्भिक राजा, जिसने शताब्दीके मध्यमें शासन किया।० बादगंगा चट्टान शिलालेखके अनुसार, जिसपर गुप्त युगकी तिथि अंकित कही जाती है और जो ५५४ ई०के समकक्ष है, भूतिवर्माने अश्वमेध यज्ञ किया था। इससे प्रकट होता है कि उसने गुप्तोंके अधिराज्यका परित्याग कर दिया था। उसने भारी संख्यामें ब्राह्मणोंको कौशिकी नदीके निकट चन्द्रपुरी परगनेमें पट्टे लिखकर भूमि प्रदान की, जिनका उसके उत्तराधिकारी भास्करवर्माने नवीनीकरण किया। (**एफ० आर० ए० एस० आठ, पृष्ठ १३८—१३९ तथा वस, पृष्ठ ६४—६७;. भट्टाचार्य—कामरूपशासनावली, पृष्ठ २७**)

भूमक—महाराष्ट्रमें क्षहरात कुलका पहला क्षत्रप, जिसकी राजधानी नासिक थी। उसके शासनका पता केवल सिक्कोंसे चलता है, उसका वास्तविक समय निश्चित नहीं है। अनुमानसे वह ईसाकी प्रथम शताब्दीके आरम्भिक वर्षोंका निर्धारित किया गया है।

भूमिकर—देखिये, 'मालगुजारी'।

भूमि व्यवस्था—भारतके अलग-अलग भागोंमें यह अलग-अलग प्रकारकी है। भारतीय राजाओंके शासनकालमें किसानोंको किन शर्तोंपर भूमि-खेती करनेके लिए दी जाती थी, इसका ठीकसे पता नहीं है। मुसलमानी शासनकालमें अकबरसे पूर्व भूमि-व्यवस्थाका कोई सुनिश्चित रूप नहीं था। अकबरने सीधे रैयत (किसान) से मालगुजारीकी वसूलीका बंदोबस्त किया, इसलिए यह 'रैयतवारी व्यवस्था' कहलायी। रैयतको नकद अथवा उपजके रूपमें भूमिकर अदा करनेकी छूट थी, यद्यपि उसे नकद भुगतान करनेके लिए प्रोत्साहित किया जाता परंतु अठारहवीं शताब्दीमें, जब मुगल बादशाहोंकी शक्ति उत्तरोत्तर क्षीण होने लगी, भूमिकरकी वसूलीका कार्य वंशगत बन गया और किसानोंसे भूमिकरकी वसूली, जो एक सरकारी कर्त्तव्य था, अधिकार माना जाने लगा और भूमिकरकी वसूली करनेवाला अपनेको भूमिका मालिक अथवा 'जमींदार' समझने लगा। इस प्रकार उसने वह अधिकार प्राप्त कर लिया, जो उसे पहले कभी नहीं प्राप्त था।

मुगलोंके उत्तराधिकारीके रूपमें अंग्रेजोंने विशेषरूपसे बंगाल, बिहार तथा उड़ीसामें कुछ दुर्भाग्यपूर्ण प्रयोगोंके बाद जमींदारोंको जमीनका मालिक स्वीकार कर लिया और स्थायी बन्दोबस्त कर दिया, जिसके अंतर्गत जमींदारोंको इस शर्तपर जमीनका मालिक मान लिया गया कि वे सरकारको प्रतिवर्ष एक निश्चित तिथिपर मालगुजारी अदा कर दिया करें। यह मालगुजारी रैयतसे मिलनेवाले अनुमानित लगानका ९० प्रतिशत होती थी। जमींदारोंको यह छूट दे दी गयी कि वे रैयतको जितने समयके लिए चाहें उतने समयके लिए काश्त करनेको दे दें। बादमें कानून बनाकर रैयतसे मनमाने तरीकेसे लगान बढ़ाते जाने तथा अनुचित रीतिसे बेदखली करनेके विरुद्ध उसको सुरक्षा प्रदान करनेकी कोशिश की गयी, परंतु उसको अपनी काश्तकी जमीनपर कोई मालिकाना हक नहीं प्रदान किया गया। हाँ, यदि वह जमींदारको अतिरिक्त शुल्क अथवा धन देकर जमीन खरीद ले तो बात दूसरी थी।

बंगाल, बिहार तथा उड़ीसामें सन् १७९३ ई० में

स्थापित यह जमींदारी व्यवस्था भारतके स्वाधीनता प्राप्तिके बाद तक जारी रही। हालमें यह व्यवस्था समाप्त कर दी गयी है, परंतु अभी भी जमीन जोतनेवालोंको जमीनपर मालिकाना हक देनेकी दिशामें कानून बनाया जाना शेष है। (अब अधिकांश राज्योंमें इस प्रकारके कानून बन गये हैं।—सं०)

दूसरी 'रैयतवारी व्यवस्था' उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें मद्रास तथा बम्बई प्रांतोंमें जारी की गयी। इसके अंतर्गत सरकार सीधे रैयत अथवा किसानसे बंदोबस्त करती है, जो जमीनका मालिक बन जाता है। परंतु उसे यह मालिकाना हक थोड़े समयके लिए प्रदान किया गया था। बादमें यह समय तीस वर्ष निर्धारित कर दिया गया, जिसके बाद नयी पैमाइश करके नयी शर्तोंपर नया बंदोबस्त करनेकी व्यवथा थी। इस व्यवस्थाके अंतर्गत भूमिकी उपजकी आधी मात्रा सरकारी भाग नियत की गयी। इस प्रकार इस व्यवस्थाके अंतर्गत काश्तकारको केवल सीमित लाभ हुआ। उसे निर्धारित अवधिके लिए भूमिकी सुरक्षा प्राप्त हो गयी, परंतु इसके लिए उसे अत्यधिक ऊँची दरपर भूमिकर देनेके लिए बाध्य होना पड़ा।

तीसरी 'महालवारी व्यवस्था' उत्तर प्रदेशमें की गयी। इसके अंतर्गत महाल (कई गाँवों) के आधारपर बंदोबस्त किया गया और महालके सभी गाँवोंको सामूहिक रूपसे मालगुजारीका देनदार बना दिया गया। महालके गाँवोंके मुखिया हर काश्तकारसे उसकी काश्तके आधारपर उसकी देनदारी निर्धारित करते थे। इसके लिए जमीनकी सावधानीसे पैमाइश की जाती थी। महालवारी प्रथाके साथ-साथ उत्तरप्रदेशमें 'ताल्लुकदारी प्रथा' भी प्रचलित थी। इस प्रथाके अंतर्गत ताल्लुकेदारको अपने ताल्लुकेका मालिक मान लिया गया और अपनी रैयतपर उसे पूरा अधिकार प्रदान किया गया। इस प्रथामें और बंगालकी जमींदारी प्रथा अथवा स्थायी बंदोबस्तमें इतना ही अंतर था कि यह स्थायी नहीं थी।

पाँचवी 'मामलतदारी प्रथा' गुजरात तथा दक्खिनमें प्रचलित थी। इसके अंतर्गत मामलातदार प्रत्येक गाँवके देसाई अथवा पटेलसे तय कर लेते थे कि उनका गाँव कितनी मालगुजारीका देनदार है और इसके बाद तय की गयी रकमकी वसूलीका भार उसके ऊपर छोड़ देते थे। धीरे-धीरे सारे बम्बई प्रांतमें मामलतदारी व्यवस्थाके स्थानपर रैयतवारी व्यवस्था लागू कर दी गयी।

ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें विभिन्न प्रकारकी भूमि-व्यवस्थाका एक ही तात्पर्य था और वह था सरकार और काश्तकारोंके बीच मध्यवर्तियोंको कायम रखना। इन मध्यवर्तियोंको देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारा जाता था, ऐसे लोगों द्वारा एक प्रकारके सामंतवादी वर्गका निर्माण किया गया जिनके समर्थनपर सरकार टिकी हुई थी। स्वाधीनता प्राप्तिके बाद भारतीय गणराज्यने समाजवादी व्यवस्थाका निर्माण अपना आदर्श बनाया है, जिसके लिए सामंतवादके सभी अवशेषोंका उन्मूलन आवश्यक है। किन्तु अभी तक समाजवादी आधारपर भूमिका, विशेषरीतिसे कृषि-योग्य भूमिका वितरण करनेकी दिशामें बहुत थोड़ा कार्य हुआ है, ताकि भूमिको वास्तविक रूपसे जोतनेवाला व्यक्ति ही उस भूमिका मालिक हो जाय। (अब इस दिशामें काफी प्रगति हुई है।—सं०)

भृगु—एक ऋषि, जिन्हें मानव-धर्मशास्त्र अथवा मनुस्मृतिकी रचनाका श्रेय दिया जाता है। इनका स्थितिकाल २०० ई० पू० से २०० ई० के बीच किसी समयमें माना जाता है।

भृगुकच्छ—प्राक् मौर्यकालका एक महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह, बादके वर्षोंमें भी इसका महत्त्व बना रहा। इसका आधुनिक नाम भड़ौंच है।

भोंसला—उस परिवारका नाम, जिसमें शिवाजी उत्पन्न हुए थे। इस परिवारकी एक शाखा बादमें नागपुरमें जाकर बस गयी और भोंसलाराज परिवारके नामसे प्रसिद्ध हुई।

भोई राजवंश—ने १५४२–५९ ई० तक उड़ीसाका शासन किया। इस वंशका प्रवर्तक गोविन्द माना जाता है, जो उड़ीसाके पूर्ववर्ती शासक प्रतापरुद्र (१४९७–१५४० ई०) का मंत्री था। गोविन्द भोई अथवा लेखकवर्गका था और उसका घराना इसी कारण भोई राजवंश कहलाया। इसमें केवल तीन राजा हुए, यथा गोविन्द, उसका पुत्र तथा पौत्र और उनका शासन केवल अट्ठारह वर्ष तक चला।

भोग कुल—बौद्ध अनुश्रुतियोंके अनुसार वज्जीसंघमें सम्मिलित था जिसकी राजधानी वैशाली (दे०) थी। (सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट, खण्ड ४५, पृ० ७१ का नोट)

भोगवर्मा—कन्नौजका एक मौखरि सामन्त। उत्तरकालीन गुप्त सम्राट आदित्यसेन (७७२–७३ ई०) की पुत्रीसे इसका विवाह हुआ था, फलस्वरूप यह अपने श्वसुरका सहायक बन गया। (राय चौधरी० पृष्ठ ६१०)

भोज—प्राचीन साहित्यमें इसका प्रयोग तीन अर्थोंमें हुआ

है; प्रथम शासकीय पदवीके रूपमें, जो दक्षिणके मूर्धाभिषिक्त राजाओंके लिए प्रयुक्त होती थी, द्वितीय जनपदके रूपमें, जैसा कि अशोकके शिलालेख संख्या १३ में प्रयुक्त हुआ है जो कदाचित् बरारमें था; और तीसरे, व्यक्तिवाचक संज्ञाके रूपमें, जैसा कि कन्नौज और मालवाके अनेक राजाओंका नाम था।

भोज प्रथम–कन्नौजका गुर्जर प्रतिहारवंशज राजा, जिसने पचास वर्ष (८४०–९०० ई०) पर्यन्त शासन किया। उसका मूलनाम मिहिर था और भोज कुलनाम अथवा उपनाम। वह अत्यधिक प्रतापी शासक था और उसका राज्य उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें नर्मदा, पूर्वमें बंगाल और पश्चिममें सतलज तक विस्तृत था, जिसे सही अर्थोंमें साम्राज्य कहा जा सकता था। भोज प्रथम विशेषरूपसे विष्णुके वाराह अवतारका उपासक था, अतः उसने अपने सिक्कोंपर आदि-वाराहको उत्कीर्ण कराया था। वह वीर सेनानी था, जिसने अरबोंको न केवल सिंधमें ही रोक रखा, वरन् कश्मीरके राजा शंकरवर्मा, भड़ोचके राष्ट्रकूट राजा ध्रुव तथा बंगालके पाल राजाओंके साथ अनेक युद्ध किये।

सम्राट भोज प्रथम बड़ा विद्यानुरागी था। अरब यात्री सुलेमानने, जो उसके राज्यमें आया था, अपने विवरणमें लिखा है कि सम्राट् भोज प्रथमके पास एक शक्तिशाली सेना है, जिसमें सर्वश्रेष्ठ अश्वारोही और ऊँटोंकी बड़ी फौज शामिल है। वह अत्यंत वैभव-संपन्न राजा था और भारतमें कोई प्रदेश डाकुओंसे इतना सुरक्षित नहीं था जितना उसका राज्य। इससे प्रकट होता है कि भोज प्रथम अति कुशल प्रशासक था। **(आर० सी० मजूमदार –एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, त्रिपाठी–हिस्ट्री आफ कन्नौज)**

भोज द्वितीय–भोज प्रथमका पौत्र, जिसने प्रतिहार राज्यपर दो-तीन वर्ष (९०८–१० ई०) की अल्प अवधि पर्यन्त ही शासन किया।

भोज परमार–मालवाके परमार अथवा पँवार वंशका यशस्वी राजा, जिसने १०१८–६० ई० तक शासन किया था। उसकी राजधानी धार थी। उसने 'नवसाहसाक' अर्थात् 'नव विक्रमादित्य' पदवी धारण की। जनश्रुति है कि उसने पुरुष्कों (तुर्कों) को भी पराजित किया। वह विद्याका पोषक, कवियोंका संरक्षक और स्वयं भी बहुमुखी विद्वान् था। उसने संस्कृतमें छन्द, अलंकार, योगशास्त्र, गणित ज्योतिष तथा वास्तुकला आदि विषयोंपर गंभीर पुस्तकें लिखी थीं। उसने भोजपुरमें विशाल सरोवरका निर्माण कराया, जिसका क्षेत्रफल २५० वर्गमीलसे भी अधिक विस्तृत था। यह सरोवर पन्द्रहवीं शताब्दी तक विद्यमान था, जब उसके तटबन्धोंको कुछ स्थानीय शासकोंने काट दिया। अपने शासनकालके अंतिम वर्षोंमें उसे पराजयका अपयश भोगना पड़ा। गुजरातके चालुक्यराज तथा चेदि-नरेशकी संयुक्त सेनाओंने लगभग १०६० ई०में उसे पराजित कर दिया। इसके बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी।

भोटविष्टि–एक तरहकी बेगार, जो गुप्तोंके शासनकालमें सीमावर्ती भोट देशमें ली जाती थी।

भोटिया–गूजरोंकी भाँति एक घुमंतू जाति, जिसमें सातवीं और आठवीं शताब्दी ईसवीमें बहुतसे विदेशी आक्रमणकारी हिन्दू-धर्म ग्रहण करनेके बाद समाविष्ट हो गये।

भोपाल–मध्य प्रदेशमें स्थित प्रमुख नगर। इसे बादशाह अकबरने रानी दुर्गावतीके गोंडवाना राज्यसे अलग करके जागीर बना दिया। कुछ काल तक यह एक नवाबके अधीन रहा, पश्चात् १७६१ ई०के बाद वह अर्ध-स्वतंत्र हो गया। लेकिन १८१७ ई०में इसका शासक अंग्रेजोंके साथ सहायक संधि करनेके लिए बाध्य हुआ। १९४८ ई०में भोपाल रियासत भारतीय गणराज्यमें मिला ली गयी एवं संप्रति यह मध्यप्रदेशकी राजधानी है।

म

मंगलूरकी संधि–ईस्ट इंडिया कम्पनी और मैसूरके टीपू सुल्तानके बीच १७८४ ई०में हुई। इस संधिके फलस्वरूप दूसरे मैसूर-युद्ध (दे०)का अन्त हो गया, जो १७८१ ई०में शुरू हुआ था। इस संधिके द्वारा दोनों पक्षोंने एक दूसरेके छीने गये इलाके वापस लौटा दिये।

मंगोल–छोटी आँख, पीली चमड़ीवाली एक जाति, जिसके दाढ़ी-मूँछ नहीं होती। मंगोलोंके कई समूह विविध समयोंमें भारतमें आये और उनमेंसे कुछ यहीं बस गये। चंगेज खाँ (दे०), जिसके भारत पर हमला करनेका खतरा १२११ ई०में उत्पन्न हो गया था, मंगोल था। इसी प्रकार तैमूर भी, जिसने भारत पर १३९८ ई०में हमला किया, मंगोल था। परन्तु चंगेज खाँ और उसके अनुयायी मुसलमान नहीं थे, तैमूर और उसके अनुयायी मुसलमान हो गये थे। मंगोल लोग ही मुसलमान बननेके बाद 'मुगल' कहलाने लगे। १२११ ई०में चंगेज खाँ तो

सिंध नदीसे वापस लौट गया, किंतु उसके बाद मंगोलोंने और कई आक्रमण किये। दिल्लीके बलवन (दे०) और अलाउद्दीन खिलजी (दे०) जैसे शक्तिशाली सुल्तानोंको भी मंगोलोंका हमला रोकनेमें एड़ी-चोटीका पसीना एक कर देना पड़ा। १३९८ ई०में तैमूरके हमलेने दिल्लीकी सल्तनतकी नींवें हिला दीं और मुगल वंशकी स्थापनाका मार्ग प्रशस्त कर दिया, जिसने अठारहवीं शताब्दीमें ब्रिटिश शासनकी स्थापना होने तक इस देशमें राज्य किया।

मण्डी, पीटर–यूरोपीय यात्री जो जहाँगीरके शासनकालमें भारत आया। उसने भारतका बड़े ही रोचक शब्दोंमें आँखों देखा विवरण प्रस्तुत किया है, जो तत्कालीन भारतकी समाजिक और आर्थिक दशापर विशेष प्रकाश डालता है।

मंदसोर–मालवाका एक प्राचीन नगर, जो प्रसिद्ध पुरानी राजधानी उज्जयिनीसे अधिक दूर नहीं है। संभवतः महाकवि कालिदास (दे०)का निवास इसी नगरमें था। निश्चय ही राजा यशोधर्मा (लगभग ५३ ई०)की राजधानी यहीं थी। यशोधर्माने हूण राजा मिहिरगुल (दे०) को परास्त किया और आसाम तकके प्रदेशोंको जीता।

मंसूर अली खाँ (१८२९–८४ ई०)–बंगालका अंतिम नवाब नाजिम। इससे पहले मुर्शिदाबादके नवाबोंको १९ तोपोंकी सलामीका हक मिला हुआ था। उन्हें दीवानी अदालतोंमें हाजिर नहीं होना पड़ता था। ये समस्त अधिकार उससे छीन लिये गये, उसके वेतन और भत्ते में भी कमी कर दी गयी। मंसूर अली खाँ स्वयं इंग्लैंड गया और वहाँ हाउस आफ कामन्समें अपील की, परंतु वह नामंजूर हो गयी। फलस्वरूप १८८० ई०में उसने अपने पदसे त्यागपत्र दे दिया।

मंसूर, ख्वाजा शाह–बादशाह अकबरका पहला दीवान और विश्वासपात्र, किन्तु उसने अकबरके भाई मिर्जा हकीमसे मिलकर उसके खिलाफ साजिश की और १५८१ ई०में उसे अकबरके हुक्मसे फाँसी दे दी गयी।

मअबर–मुसलमान इतिहासकारों द्वारा दिया गया कारोमंडल तटका नाम। इसे अलाउद्दीन खिलजी (दे०) ने जीता, परन्तु १३३४ ई०में यह अहसानशाहके अधीन स्वतंत्र राज्य बन गया।

मकाओ–चीनके तटके समीप एक पुर्तगाली बस्ती, जिसे १८०९ ई०में ईस्ट इंडिया कम्पनीने छीन लिया। (अब भी यह द्वीप पुर्तगाल सरकारके अधीन है।–सं०)

मक्का–पैगम्बर मुहम्मद साहबका जन्म-स्थान। मुसलमानोंके लिए अरबका यह पवित्र तीर्थस्थान है और प्रतिवर्ष भारतसे हजारों मुसलमान वहाँ जाते हैं।

मगध–दक्षिण बिहारके पटना तथा गया जिलोंका एक जनपद। यह अत्यंत प्राचीन राज्य था और इसका उल्लेख वेदोंमें भी मिलता है। ऐतिहासिक कालमें इसपर जिस राजवंशका शासन था, उसीमें बिम्बिसार हुआ जो जैन धर्मके प्रवर्तक वर्धमान महावीर तथा बौद्ध धर्मके प्रवर्तक गौतम बुद्धका समसामयिक था। बिम्बिसार दोनोंका उपासक था। उसने अंग अथवा पूर्व बिहार (भागलपुर जिला) पर अधिकार करके तथा कोशल और वैशालीके राजघरानोंसे विवाह सम्बन्ध करके मगध राज्यका विस्तार किया। बिम्बिसारके पुत्र तथा उत्तराधिकारी अजातशत्रुने वैशाली (तिरहुत)को अपने राज्यमें सम्मिलित कर लिया, कोशलको पराजित किया तथा गंगा और सोन नदीके संगमपर स्थित पाटलिग्राममें दुर्ग बनवाया। बिम्बिसारके राजवंशके बादके राजाओंने इसी दुर्गके चारों ओर पाटलिपुत्र अथवा कुसुमपुर नगर बसाया। एक और बादका राजा राजधानी गिरिव्रजसे उठा कर पाटलिपुत्र ले आया। इस प्रकार मगध राज्यके साथ पाटलिपुत्रका नाम जुड़ गया।

राजा महापद्मनन्दकी राजधानी भी पाटलिपुत्र थी। उसने बिम्बिसारके राजवंशका उच्छेदन किया और मगध राज्यका विस्तार पूर्वमें कलिंग (उड़ीसा) से लेकर पश्चिममें पंजाबमें व्यास नदी तक किया। 'प्रेसिआई'के राजा (यूनानी इतिहासकारोंने मगधके राजाका उल्लेख इसी नामसे किया है)की सेनाओंसे मुठभेड़ होनेके भयसे ही सिकन्दरकी सेनाओंने व्यास नदीसे आगे बढ़नेसे इनकार कर दिया और सिकन्दरको वापस लौटना पड़ा। मौर्य राजा चन्द्रगुप्त (दे०)ने नन्द वंशका उच्छेद कर दिया और चौथी शताब्दी ई० पू०के उत्तरार्द्धमें मगध साम्राज्यको देशकी सबसे मुख्य राज्यशक्ति बना दिया। मगध साम्राज्यका विस्तार पश्चिममें हिन्दूकुशसे लेकर पूर्वमें कलिंग तक हो गया। वह संभवतः दक्षिणमें भी विस्तृत था। चन्द्रगुप्तके पौत्र अशोक (दे०) ने कलिंग विजय करके उसे अपने साम्राज्यमें मिला लिया। इसके बाद ही अशोक बौद्ध धर्मका अनुयायी हो गया और अपने विशाल साम्राज्यके समस्त साधनोंको सभी मनुष्योंके कल्याण तथा बौद्ध धर्मके प्रचारके लिए प्रयुक्त करने लगा। इस प्रकार मगधने एक नये राज्यादर्शकी प्रतिष्ठापना की और भारतीय इतिहासको नयी एकता प्रदान की।

मगधकी राजधानी पाटलिपुत्र इतनी भव्य नगरी थी

कि उसकी प्रशंसा न केवल चन्द्रगुप्तकी राजसभाके यवन (यूनानी) राजदूत मेगास्थेनीजने की है, वरन् चीनी यात्री फाहियान (दे०)ने भी की है, जोकि पांचवीं शताब्दी ई० में भारत आया था। इस बीच शुंग तथा कण्व वंशके अधीन मगधकी राज्यशक्ति क्षीण हो गयी, परंतु चौथी शताब्दी ई०में गुप्त वंश (दे०)की स्थापनाके बाद वह फिर उत्कर्षको प्राप्त हो गया और मगध साम्राज्य सारे उत्तरी भारतमें विस्तृत हो गया। सुदूर दक्षिणमें कांची तकके राजा उसके प्रभुत्वको स्वीकार करते थे। छठीं शताब्दीके अंतमें मगध फिर अपकर्षको प्राप्त हो गया। नवीं शताब्दीमें राजा धर्मपाल (दे०)के राज्यकालमें फिर थोड़े समयके लिए उसका उत्कर्ष हुआ। बारहवीं शताब्दीके अंतमें मगधको मुसलमानोंने जीत लिया। वह उनकी सल्तनतका एक सूबा बन गया और बिहारोंकी अधिकताके कारण समूचे सूबेको 'विहार' कहा जाने लगा।

मणिपुर—भारतके उत्तर-पूर्वी भागमें एक छोटा-सा राज्य। यह आसामके दक्षिणमें स्थित है। इसकी राजधानी इम्फाल, इसका क्षेत्रफल ८,६२० वर्ग मील तथा जनसंख्या लगभग ६ लाख है। परंपरागत अनुश्रुतियोंके आधारपर इसका सम्बन्ध महाभारतमें वर्णित राज्यसे और इसके राजवंशका सम्बन्ध पंच पांडवोंमेंसे तीसरे भाई अर्जुनसे जोड़ा जाता है। परंतु महाभारतमें वर्णित मणिपुर कलिंगके निकट अवस्थित था और उसकी पहचान आधुनिक मणिपुर राज्यसे करना उचित नहीं है। इसका इतिहास भी १७१४ ई०से पूर्व नहीं पाया जाता। उस समय इसपर गरीब निवाज नामक एक राजा राज्य करता था। वह सुयोग्य हिन्दू शासक था। उसने सुचारु रीतिसे शासन किया, परंतु उसके उत्तराधिकारियोंको बर्मियोंसे युद्ध करना पड़ा जो बार-बार राज्यपर हमले करते रहते थे। अंतमें १८२५ ई०में बर्मियोंने इसपर अधिकार कर लिया। परंतु इस क्षेत्रमें बर्मियोंका राज्य-विस्तार होनेके फलस्वरूप आंग्ल-बर्मी युद्ध (दे०) छिड़ गया जो यन्दव्की संधि (दे०)के द्वारा समाप्त हुआ। इसके फलस्वरूप मणिपुर राज्य उसके राजा गम्भीर सिंहको वापस मिल गया।

ब्रिटिश भारतीय सरकार अब मणिपुरके साथ अर्द्ध-स्वतंत्र रक्षित राज्य जैसा व्यवहार करने लगी, जिसका शासन उसके राजाके हाथमें था। परंतु १८९० ई०में शासनारूढ राजाको उसके भाई टिकेन्द्रजीतके कहनेसे जो राज्यकी सेनाका प्रधान सेनापति भी था, गद्दीसे उतार दिया गया। एक नये राजाको गद्दीपर बैठाया गया। ब्रिटिश सरकारने नये राजाको मान्यता प्रदान कर दी, किंतु टिकेन्द्रजीतको राज्यसे निष्कासित कर देनेका फैसला भी किया। लेकिन आसामका चीफ कमिश्नर मि० क्विन्टन जब निष्कासन आज्ञाको क्रियान्वित करने मणिपुर गया, उसपर विश्वासघात पूर्ण हमला किया गया और मार डाला गया। फलतः एक भारतीय-ब्रिटिश सेना भेजी गयी, जिसने सरलतापूर्वक राज्यपर अधिकार कर लिया, टिकेन्द्रजीतको बंदी बना लिया और उसे और उसके द्वारा गद्दीपर बैठाये गये गुड्डा राजाको फांसी दे दी गयी तथा एक नये राजाको गद्दीपर बैठाया गया। नया राजा नाबालिग था, इसलिए राज्यका प्रशासन मध्यकालके लिए पोलिटिकल एजेंटने सँभाल लिया। १९४८-४९ ई०में भारतीय गणराज्यमें विलयन होने तक यह भारतकी एक अधीनस्थ देशी रियासत थी।

मणिमेखलै—तमिलका एक महाकाव्य। इसकी रचना सत्तानारनेकी जो मदुरामें अन्नका व्यापारी था। यह एक बौद्ध रचना है, जिसमें धार्मिक दृष्टिसे मणिमेखलैकी जीवनकथा वर्णित है। इसका रचनाकाल निश्चित नहीं है, परन्तु संभवतः यह पाँचवी शताब्दी ई०की रचना है।

मत्स्य—एक प्राचीन राज्य, जो आधुनिक राजपूतानाके पूर्वी भागमें स्थित था। उसकी राजधानी विराटनगर अथवा वैराट आधुनिक जयपुर राज्यमें स्थित थी। इसका उल्लेख वेदोंमें मिलता है और महाभारतमें वर्णित कौरवों और पांडवोंके युद्धकी कथामें इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऐतिहासिक कालमें यह राज्य मगध साम्राज्यका एक भाग था। इसकी राजधानी बैराटके निकट अशोक (दे०)का एक महत्त्वपूर्ण शिलालेख प्राप्त हुआ है।

मत्स्यपुराण—हिन्दुओंके प्राचीन अट्ठारह पुराणों (दे०)में से एक। इसका मूल भाग काफी पुराना है और चौथी शताब्दी ई०में वर्तमान था, उसका वर्तमान रूप बादका है। इसमें प्राचीन भारतीय राजाओंकी वंशावलियाँ दी गयी हैं। आधुनिक शोधोंसे प्रमाणित हुआ है कि ये वंशावलियाँ अधिकांशमें प्रामाणिक हैं।

मथुरा—उत्तर प्रदेशमें यमुनाके तटपर स्थित एक प्राचीन नगर। धर्मनिष्ठ हिन्दू लोग इसे अत्यन्त पवित्र मानते हैं, क्योंकि विष्णुके अवतार कृष्णकी उपासनासे इसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। विश्वास किया जाता है कि कृष्णावतार यहीं हुआ था। ईसवी सन्‌की प्रारम्भिक शताब्दियोंमें यह कला, वास्तुकला तथा मूर्तिकलाका महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया था। यह जैनों तथा बौद्धोंका भी केन्द्र था। चीनी यात्री फाहियान (दे०) ने, जो

पाँचवीं शताब्दी ई० में भारत आया था, मथुरा तथा उसके आस-पास बीस बौद्ध बिहार देखे थे। यह नगर अनेकानेक भव्य भवनोंसे शोभायमान और अत्यन्त सम्पन्न था।

मथुराकी सम्पन्नताकी कथाएं सुनकर सुलतान महमूद-के मुँहमें पानी भर आया। उसने १०२८ ई० में इस नगरको लूटा, यहांके मन्दिरोंको नष्ट कर दिया और बहुत-सी दौलत उठा ले गया। परन्तु हिन्दुओंने धर्म-भावनासे प्रेरित होकर इस नगरका पुनर्निर्माण कर डाला। बुंदेला राजा वीर सिंह (दे०)ने जहाँगीरके राज्यकालमें यहाँ एक बहुत ही भव्य मन्दिर बनवाया। यह इतना ऊँचा था कि मुगलों की राजधानीसे दिखाई पड़ता था और १६७० ई० में बादशाह औरंगजेबके हुक्मसे इसे नष्ट कर दिया गया। अठारहवीं शताब्दीमें जाट सरदार सूरजमलने मथुराको अपनी राजधानी बनाया। १७५७ ई०में अहमद शाह अब्दालीने इस नगरपर चढ़ाई की। परन्तु मथुरामें तैनात अब्दालीकी सेनामें हैजा फल जानेसे उसके सैनिक इतने भयभीत हो गये कि १७६१ ई० में पानीपतकी तीसरी लड़ाईके बाद जब अब्दालीने अपने सैनिकोंको इस नगरको लूटनेका आदेश दिया, उन्होंने इनकार कर दिया और अब्दाली इस नगरकी दौलतको लूटे बिना ही वापस लौट जानेके लिए विवश हो गया। तीसरे मराठा-युद्धके बाद इस नगरको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया।

मदनमोहन मालवीय—देखिये, मालवीय, मदनमोहन।

मदरसा, कलकत्ता—वारेन हेस्टिंग्स (दे०)ने १७८१ ई० में अरबी और फारसीकी शिक्षा देनेके लिए इसकी स्थापना की। सर डेनिसन रास जैसे कितने ही प्रमुख प्राच्यविद्या-विद् कलकत्ता मदरसामें शिक्षक रहे हैं।

मदीना—अरब देशका दूसरा प्रधान नगर। ६२२ ई० में मुहम्मद साहबने मक्कासे मदीनाकी हिजरत की और मुसलमानी हिजरी संवत् उसी वर्षसे आरम्भ हुआ।

मदुरा—दक्षिण भारतका एक बहुत प्राचीन नगर, जो ईसवी सन्की प्रथम शताब्दीमें पाँण्डव राज्यकी राजधानी था। कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें मदुराके सुन्दर सूती कपड़ों तथा मोतियोंका उल्लेख है। इस नगरकी सम्पन्नताका प्रमाण १३११ ई०में मिलता है, जब सुलतान अलाउद्दीन खिलजी (दे०) की मुसलमान सेनाने इसपर दखल किया और इसे लूटा। उसका विजयी सेनापति यहाँसे ५१२ हाथी, पाँच हजार घोड़े तथा पाँच सौ मन हीरे, मोती, पन्ना, माणिक आदि रत्न लूट ले गया। बादमें यह विजयनगर साम्राज्यका भाग बन गया। उसके पतनपर यह नायक (दे०) राजवंशकी राजधानी बना। इस नगरमें अनेक भव्य देव मन्दिर हैं जिनमें सुन्दरेश्वर तथा मीनाक्षीके मन्दिर सबसे प्रमुख हैं। मदुरामें सूती कपड़े अब भी विख्यात हैं।

मद्रास—इस नगरकी स्थापना अंग्रेजोंने की। १६४० ई०में ईस्ट इंडिया कम्पनीके फ्रासिस डे (दे०) ने हिन्दू राजासे पट्टेपर यहाँकी जमीन प्राप्त की। राजाने उसे इस जमीन-पर किला बनानेकी भी अनुमति दे दी। बादमें राजा चन्द्रगिरि तथा गोलकुण्डाके सुल्तानने भी उसके दानकी पुष्टि कर दी। उस स्थानपर किलेका निर्माण कर लिया गया और उसे फोर्ट सेण्ट जार्ज कहने लगे। १६४२ ई० में कारोमण्डल तटपर ईस्ट इंडिया कम्पनीकी मुख्य बस्ती मसुलीपट्टमके बजाय मद्रास हो गयी। १६५३ ई०में इसे स्वतन्त्र एजेंसी और बादमें प्रेसीडेंसीका दर्जा मिल गया। हैदराबादके निजाम तथा कर्नाटकके नवाब, दोनोंसे इसके अच्छे सम्बन्ध रहे और एक व्यापारिक केन्द्रके रूपमें इसकी उन्नति हुई। १६८८ ई० में मद्रासमें म्युनिसिपल प्रशासनकी स्थापना की गयी। १७२६ ई०में न्याय कार्य-के लिए एक मेयरकी अदालत स्थापित की गयी।

पहले अंग्रेज-फ्रांसीसी युद्धके समय १७४६ ई० में फ्रांसीसियोंने इस नगरपर कब्जा कर लिया, परन्तु एक्स-ला-शैमेलेकी सन्धिके अनुसार यह १७४८ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनीको लौटा दिया गया। नवाब सिराजुद्दौला (दे०) के कलकत्तापर अधिकार कर लेनेपर १७५६ ई०में क्लाइव और वाटसनके नेतृत्वमें कम्पनीकी कुछ फौजें मद्राससे भेजी गयीं और उन्होंने आसानीसे कलकत्तापर फिरसे कब्जा कर लिया। १७७३ ई०के रेग्युलेटिंग ऐक्टमें कम्पनीके मद्रास क्षेत्रको बंगाल सरकारके नियन्त्रणमें कर दिया गया। यह नियन्त्रण बहुत ढीला-ढाला था। पिट-के इंडिया ऐक्ट (दे०)में मद्रासको पूरी तौरसे बंगालके फोर्ट विलियमके गवर्नर-जनरलके अधीन कर दिया गया। दक्खिनमें ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्रका विस्तार होनेपर मद्रास प्रेसीडेंसीके क्षेत्रका भी विस्तार हुआ और अन्तमें उड़ीसा-की सीमासे लेकर केप कमोरिन तक भारतका सारा पूर्वी तट इसके अन्तर्गत आ गया।

१८५७ ई०में मद्रासमें एक विश्वविद्यालयकी स्थापना की गयी। स्वामी विवेकानन्दकी महत्ता सबसे पहले मद्रासमें स्वीकार की गयी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके इतिहासमें मद्रासका महत्त्वपूर्ण स्थान है। कांग्रेसका तीसरा अधिवेशन १८८७ ई०में मद्रासमें हुआ। बादके

वर्षोंमें कांग्रेसके कई अधिवेशन यहाँ हुए। भारतको पहला भारतीय गवर्नर-जनरल चक्रवर्ती राजगोपालाचारी मद्रासने प्रदान किया। हालमें मद्रास प्रेसीडेंसीको भाषा-वार आधारपर आंध्र और मद्रासके दो राज्योंमें विभाजित कर दिया गया है। इस तरह मद्रास प्रेसीडेंसीसे उसके तेलुगु-भाषी उत्तरी क्षेत्रको निकाल दिया गया है और अब उसमें उसका तमिल-भाषी दक्षिणी क्षेत्र है। (मद्रास राज्यको अब तमिलनाडु कहते हैं।–सं०)

मध्यप्रदेश–सम्प्रति उस प्रदेशका नाम जो ब्रिटिश शासन कालमें मध्य प्रांत तथा बरार कहलाता था। हिन्दू राज्य कालमें वह क्षेत्र जेजाकमुक्ति अथवा जुझौती (दे०) राज्यके अन्तर्गत था। खजुराहो, महोबा तथा कालंजरके प्राचीन नगर इसी प्रदेशमें हैं। इन नगरोंमें वास्तुकलाकी जो कृतियाँ मिलती हैं, उनसे चन्देल राजाओं (दे०)के उत्कर्षका प्रमाण मिलता है।

मध्य भारत–उत्तरमें चम्बल, दक्षिणमें नर्मदा, पश्चिममें गुजरात तथा पूर्वमें बुन्देलखण्डके बीचका क्षेत्र है। यहाँ अतीतकालमें अनेक प्रसिद्ध हिन्दू राज्य विकसित हुए। इसकी उज्जयिनी, धारा आदि नगरियां प्रसिद्ध थीं। पाँचवीं शताब्दी ई०में जब चीनी यात्री फाहियान (४०१–१० ई०) आया था यहाँ खूब समृद्धि थी। इसका बादका इतिहास गुर्जर-प्रतिहारों (दे०) के इतिहाससे जुड़ा मिलता है।

मध्यमिका–राजस्थानमें चित्तौड़के निकट एक प्राचीन नगरी। इसे अब 'नगरी' कहते हैं। एक 'पुरातमा वीर यवन'ने इस नगरीको घेर लिया था, जो सम्भवतः यवन राजा मिनाण्डर (दे०) था। तीसरी शताब्दी ई० पू०में यह महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता था। इसके खंडहरोंमें मौर्यकालीन भवनके कुछ चिह्न तथा शुङ्गकालके दो शिलालेख प्राप्त हुए हैं। इनमें अश्वमेध तथा वाजपेय यज्ञोंका उल्लेख है।

मनरो, सर टामस (१७६१–१८२७ ई०)–ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें नियुक्त एक पदाधिकारी, जो जिलाधीशके पदसे क्रमशः मद्रासका गवर्नर बना और १८२०से १८२७ ई० तक बड़ी ही योग्यतासे उक्त प्रेसीडेन्सीका शासन-भार सँभाले रहा। उसने मद्रास प्रदेशमें भूमिकर सम्बन्धी, रैयतवारी प्रथा प्रचलित की। उसने सहायक प्रथासे सम्बन्धित जो रिपोर्ट प्रस्तुत की, वह उसकी राजनीतिक सूक्ष्म दृष्टिकी परिचायक है।

मनरो, सर हेक्टर (१७२६–१८०५ ई०)–ईस्ट इंडिया कंपनीकी सेवामें भारतमें नियुक्त सेनापति, जिसने १७६४ ई० में बक्सरका प्रसिद्ध युद्ध जीत कर विशेष यश प्राप्त किया। किन्तु १७८० ई०में हैदर अलीके सम्मुख वह लज्जात्मक ढंगसे अपना तोपखाना कांजीवरम्के तालाबमें फेंक कर मद्रास भाग आया। १७८२ ई०में उसने अवकाश ग्रहण किया।

मनसबदार–मुगल शासनकालमें बादशाह अकबरके समयसे उसे कहते थे जिसे कोई मनसब अथवा ओहदा मिलता था। मनसबदार राज्यका वेतनभोगी पदाधिकारी होता था। उसे राज्यकी फौजी सेवाके लिए निश्चित संख्यामें फौज देनी पड़ती थी। मनसबदारी प्रथा मुगलकालकी सैनिक नौकरशाही प्रथाकी रीढ़ थी। अकबरने इसे व्यवस्थित रूप प्रदान दिया। सभी मुल्की तथा फौजी पदाधिकारियोंको तैंतीस मनसबोंमें बाँट दिया गया। सबसे छोटा मनसब १० सवारोंका और सबसे बड़ा १० हजार सवारोंका होता था। उन्हें अपने मनसबके अनुसार तनख्वाह दी जाती थी। ७,०००, ८००० तथा १०,००० के सबसे ऊंचे मनसब शाहजादोंके लिए सुरक्षित थे। बादशाह स्वयं मनसबदारकी नियुक्ति करता था, उसे तरक्की देता था, उसे निलम्बित या पदच्युत करता था। प्रत्येक मनसबदारका वेतन नियत था और उसे उस वेतनसे एक निश्चित संख्यामें घुड़सवार, हाथी तथा असबाब ढोनेवाले जानवर रखने पड़ते थे।

परंतु मनसबदार इन शर्तोंका शायद ही कभी पालन करते थे। मनसबदारोंकी बेईमानी रोकनेके लिए अकबरने उनके घोड़ोंको दागनेकी प्रथा आरम्भ की और अपने राज्यकालके ग्यारहवें वर्षमें जात और सवारका दोहरा वर्गीकरण शुरू किया। जात मनसबदारके ओहदेका सूचक होता था और सवारसे संकेत मिलता था कि उसे कितनी सेना रखनी होगी। मनसबदार वंशगत नहीं बनाये जाते थे। मनसबदार नियुक्त होनेके लिए किसी विशेष योग्यताकी आवश्यकता नहीं पड़ती थी। मनसबदारोंको काफी ऊंचा वेतन दिया जाता था। अनुमान लगाया जाता है कि ५०० के मनसबदारको अपने अधीन सेना रखनेका सब खर्च काट देनेके बाद १००० रु० मासिक निजी वेतन बच रहता था। १०,०००के मनसबदारका निजी वेतन १८००० रु० प्रतिमास बैठता था। अकबर मनसबदारोंको नकद वेतन देनेके पक्षमें था, परंतु बादमें मनसबदारोंके ओहदेके अनुरूप आयवाली जागीरें देनेकी प्रथा चल पड़ी। इसके फलस्वरूप मुगलशासन व्यवस्था निर्बल पड़ गयी।

मनु–एक ऋषि और हिन्दू धर्मशास्त्रके रचयिता। उनकी

मनुसंहितामें हिन्दुओंके सभी धार्मिक तथा लौकिक कर्तव्योंका निरूपण है।

मनुसंहिता–हिन्दू धर्मशास्त्रका सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ। इसमें सभी धार्मिक, सामाजिक, नैतिक कर्तव्योंका विवेचन है। अंगरेजीमें इसका अनुवाद सर विलियम जोंसने 'लाज आफ मनु' नामसे किया है। इसका रचनाकाल ईसवी प्रथम शताब्दीके आसपास माना जाता है। संभवत: यह काल इससे पूर्व था, बादमें नहीं।

मयूरशर्मा–मैसूरमें राज्य करनेवाले कादम्बवंश (दे०) का प्रवर्तक। वह जातिसे ब्राह्मण किंतु कर्मसे क्षत्रिय था। उसने काँचीके पल्लववंशके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और सम्भवत: चौथी शताब्दी ई० में कादम्बवंशका आरम्भ किया। उसने दक्षिण भारतमें विस्तृत क्षेत्रोंको जीता।

मराठा युद्ध–भारतमें अंग्रेजोंके साथ १७७५–८२ ई०, १८०३–०५ ई० तथा १८१७–१९ ई० में हुए। पहला मराठा युद्ध (१७७५-८२ ई०) पेशवा नारायण राव (दे०) के चाचा राघोबाके फलस्वरूप हुआ। राघोवा नारायणराव की मृत्युके बाद उत्पन्न उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी माधवराव नारायणको पेशवाकी गद्दीसे हटाना चाहता था। इसके लिए उसने ईस्टइंडिया कम्पनीको साष्टी तथा बसई देनेका वादा करके अंग्रेजोंका समर्थन प्राप्त करनेकी कोशिश की। कम्पनीने भी साम्राज्य-लिप्साके वशीभूत हो मराठोंके उत्तराधिकार युद्धसे लाभ उठानेकी चेष्टा की। पहला मराठा-युद्ध लम्बा चला और अंग्रेजोंके लिए अगौरवपूर्ण सिद्ध हुआ।

कर्नल कैमकके नेतृत्वमें ब्रिटिश सेनाने बड़गाँव (१७७९ ई०) में आत्मसमर्पण कर दिया और अंग्रेजोंने एक समझौता करके राघोवाको सौंप देनेका वचन दे दिया। परन्तु वारेन हेस्टिंग्स (दे०) ने, जो उस समय गवर्नर-जनरल था, इस समझौतेको नामंजूर कर दिया और युद्ध पुनः शुरू हो गया। यद्यपि लेस्ली तथा गोडर्डके नेतृत्वमें एक हिन्दुस्तानी एवं अंग्रेज सेना १७७९ ई० में बंगालसे मध्य भारत होकर सूरत तक पहुँचनेमें सफल हो गयी तथा १७८० ई० में मेजर पौफमने ग्वालियरपर अधिकार कर लिया, फिर भी अंग्रेज कोई निर्णयात्मक विजय नहीं प्राप्त कर सके और न मराठा सेना अंग्रेजोंको निर्णयात्मक रूपसे हरा सकी। ऐसी परिस्थितिमें अंग्रेजोंने महादजी शिन्देको मध्यस्थ बनाकर साल्वाईकी संधि (१७८२ ई०) (दे०) के द्वारा युद्ध समाप्त कर दिया। इसके द्वारा अंग्रेजोंने अपने कठपुतली राघोवाकी पेन्शन नियत करा दी और दोनों पक्षोंने एक दूसरेके जीते हुए इलाके लौटा दिये। मराठोंने साष्टी कम्पनीको सौंप दिया।

इस प्रकार मराठों और अंग्रेजों, दोनोंको अपनी-अपनी शक्ति और कमजोरीका पता चल गया और अगले बीस वर्षों तक उनके बीच शांति रही। मराठा सरदारोंमें आपसी ईर्ष्या-द्वेष और प्रतिद्वन्द्विता चलती रही और २५ अक्तूबर १८०२ ई० को तत्कालीन पेशवा बाजीराव द्वितीयको अपने चंगुलमें करनेके लिए शिन्दे और होल्करमें पूनाके बाहर युद्ध हुआ। बाजीराव द्वितीय कायर और षड्यंत्रकारी था और उसे राज्यके हितकी कोई चिंता नहीं थी। जिस समय पूनाका युद्ध चल ही रहा था, वह प्रतिद्वन्द्वी मराठा सरदारोंके चंगुल से अपनेको बचानेके लिए पूनासे भागकर वसई अंग्रेजोंकी शरणमें चला गया। वहाँ उसने ३१ दिसम्बर १८०२ ई० को बसईकी लज्जाजनक संधि (दे०) कर ली, जिसके द्वारा उसने पेशवा पद फिरसे प्राप्त करनेका मनोरथ बनाया था। इस प्रकार बाजीराव द्वितीयने मराठा राज्यकी स्वतंत्रता बेच दी और वह अंग्रेजोंके द्वारा पुनः पूनाकी गद्दीपर आसीन कर दिया गया। परंतु मराठा सरदारों, विशेषरूपसे शिन्दे, भोसले और होल्करने इस व्यवस्थाको स्वीकार नहीं किया और फलस्वरूप दूसरा मराठा-युद्ध (दे०) (१८०३–०५ ई०) छिड़ गया।

मराठा सरदारोंमें पुनः एकता नहीं स्थापित हो सकी। गायकवाड़ अंग्रेजोंसे मिल गया। यद्यपि शिन्दे और होल्कर संयुक्त हो गये, तथापि होल्करने उनका साथ नहीं दिया, यद्यपि वह भी बसईकी संधिका उतना ही विरोधी था जितना शिन्दे और भोंसले। परिणाम यह हुआ कि इस संकटकालमें भी मराठे अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे अंग्रेजोंका मुकाबला करनेमें असमर्थ रहे। फिर उनके पास कोई महान् सेनापति तथा रणविद्या-विशारद नहीं था। फलत: दक्खिनमें सर आर्थर वेलजली (भावी ड्यूक आफ वेलिंगटन) के नेतृत्वमें ब्रिटिश सेनाने सितम्बर १८०३ ई० में असईकी लड़ाईमें शिन्दे और भोंसलेकी संयुक्त सेनाको हरा दिया। इसके बाद नवम्बरमें उसने आरगाँवकी लड़ाईमें भोंसलेको इस प्रकार निर्णयात्मक रीतिसे परास्त कर दिया कि अगले महीने उसने अंग्रेजोंसे देवगाँवकी संधि कर ली। इस संधिके द्वारा उसने कटक अंग्रेजोंको दे दिया और एक प्रकारसे उनका आश्रित हो गया।

इस बीच उत्तरी भारतमें लार्ड लेकके नेतृत्वमें ब्रिटिश सेनाने अलीगढ़ और दिल्लीपर कब्जा कर लिया

और अंतमें लासवाड़ीकी लड़ाईमें शिन्देको इस प्रकार निर्णयात्मक रीतिसे पराजित किया कि वह ३० दिसम्बर १८०३ ई० को सुर्जी अर्जुनगाँवकी संधि करनेके लिए विवश हुआ। इससे पूर्व आरगाँवकी लड़ाईमें भी शिन्दे हारा था। सुर्जी अर्जुनगाँवकी संधिके द्वारा शिन्देने गंगा और यमुनाके बीचका सारा प्रदेश अंग्रेजोंको सौंप दिया, मुगल बादशाह, पेशवा तथा निजामके ऊपर नियंत्रण करनेका अपना सारा दावा त्याग दिया, अंग्रेजोंकी स्वीकृतिके बिना किसी फिरंगीको नौकर न रखनेके लिए राजी हो गया तथा एक प्रकारसे अंग्रेजोंका आश्रित बन गया।

होल्कर अभी तक युद्धसे अलग रहा था। जब उसके प्रतिद्वन्द्वी शिन्देकी शक्ति अंग्रेजोंने नष्ट कर दी, तब वह मूर्खतावश १८०४ ई० में अकेले अंग्रेजोंके विरुद्ध युद्धमें उतर पड़ा। प्रारम्भमें राजपूतानामें उसे अंग्रेजोंके विरुद्ध कुछ सफलता मिली, परंतु अक्तूबरमें वह दिल्लीको न ले सका और नवम्बर १८०४ ई० में दीगकी लड़ाईमें हार गया। भरतपुरका राजा होल्करकी ओरसे युद्ध कर रहा था। लार्ड लेकने ग्वालियरका किला छीननेकी कोशिश की, परंतु सफल न हो सका। उसकी इस विफलताके फलस्वरूप इंग्लैण्डमें युद्धको जारी रखनेके विरुद्ध भावना जोर पकड़ती गयी और १८०५ ई० में लार्ड वेल्जलीको वापस बुला लिया गया। उसके उत्तराधिकारीने होल्करसे जिन अनुकूल शर्तोंपर संधि कर ली, उनकी वह पहले आशा नहीं कर सकता था। होल्करने चम्बलके उत्तरमें सारे प्रदेशपर अपना दावा छोड़ दिया और अपने राज्यका अधिकांश भाग पुनः प्राप्त कर लिया (१८०६ ई०)।

दूसरे अंग्रेज-मराठा युद्धके परिणामसे न तो किसी मराठा सरदारको संतोष हुआ, न पेशवाको। उन सबको अपनी सत्ता और प्रतिष्ठा छिन जानेसे खेद हुआ। पेशवा बाजीराव द्वितीय षड्यंत्रकारी मनोवृत्तिका तो था ही, उसने अविचारपूर्ण रीतिसे अंग्रेजोंको जो सत्ता सौंप दी थी, उसे फिरसे प्राप्त करनेकी आशासे १८१७ ई० में अंग्रेजोंके विरुद्ध मराठा सरदारोंका संगठन बनानेमें नेतृत्व किया और इस प्रकार तीसरे मराठा-युद्ध (१८१७–१९ ई०) का सूत्रपात किया। परन्तु इस बार गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्सके नेतृत्वमें भारतकी ब्रिटिश सेनाएँ बहुत शक्तिशाली सिद्ध हुईं। युद्धके आरंभमें ही उन्होंने सामरिक कौशलका परिचय देते हुए शिन्देको इस तरह अलग कर दिया कि वह युद्धमें कोई भाग न ले सका। भोंसलेको १८१७ ई० में सीताबल्डी और नागपुरकी लड़ाइयोंमें और होल्करको उसी वर्ष महीदपुरकी लड़ाईमें पराजित किया गया। पेशवाको, जिसने युद्धका सूत्रपात किया था, पहले १८१७ ई० में खड़कीकी लड़ाईमें परास्त किया गया, इसके बाद जनवरी १८१८ ई० में कोरेगाँवकी लड़ाइयोंमें और एक महीनेके बाद आष्टीकी लड़ाईमें पुनः हराया गया। इस अंतिम हारके फलस्वरूप पेशवाने जून १८१८ ई० में अंग्रेजोंके आगे आत्मसमर्पण कर दिया। इस प्रकार तीसरे मराठा युद्धमें अंग्रेजोंकी पूर्ण विजय हुई। उन्होंने अब पेशवाका पद तोड़ दिया और बाजीराव द्वितीयको कानपुरके निकट बिठूरमें जाकर रहनेकी अनुमति दे दी। उन्होंने उसकी पेन्शन बाँध दी और उसका सारा साम्राज्य अब अंग्रेजोंके नियंत्रणमें आ गया। भोंसलेका नर्मदासे उत्तरका सारा इलाका अंग्रेजोंने ले लिया और शेष इलाका रघुजी भोंसले द्वितीय (दे०) के एक नाबालिग पौत्रके हवाले कर दिया गया और उसे आश्रित राजा बना लिया गया। इसी प्रकार होल्करने नर्मदाके दक्षिणके समस्त जिले अंग्रेजोंको सौंप दिये, राजपूत राज्योंपर अपना समस्त आधिपत्य त्याग दिया, अपने क्षेत्रमें एक आश्रित सेना रखना स्वीकार कर लिया और अंग्रेजोंकी कृपापर राज्य करने लगा। इस प्रकार पंजाब तथा सिंधको छोड़कर समस्त भारतमें अंग्रेजोंकी सार्वभौम सत्ता स्थापित हो गयी।

मराठा—देखिये, 'महाराष्ट्र'।

मराठा शासन तथा सैन्य व्यवस्था—हिन्दू तथा मुसलमान शासन एवं सैन्य व्यवस्थाका मिश्रित रूप। इसका सूत्रपात शिवाजी (दे०) ने किया, जिन्होंने स्वतंत्र मराठा राज्यकी स्थापना की। इसमें समस्त राज्यशक्ति राजाके हाथमें रहती थी। वह अष्टप्रधानोंकी सहायतासे शासन करता था, जिनकी नियुक्ति वह स्वयं करता था। अपनी इच्छानुसार वह जब चाहे उन्हें अपने पदसे हटा सकता था। अष्टप्रधानोंका नेता पेशवा कहलाता था। उसका पद प्रधानमंत्रीके समान था। अन्य सात वित्त, लेखागार, पत्राचार, वैदेशिक मामले, सेना, धार्मिक कृत्य एवं दान तथा न्याय विभागोंके प्रधान होते थे। धार्मिक तथा न्याय विभागोंके प्रधानोंको छोड़कर बाकी अष्टप्रधान सैन्य अधिकारी भी होते थे। जब वे सैन्य-सेवामें रहते थे, उनका प्रशासकीय कार्य उनके नायब करते थे।

अष्टप्रधानोंके नायबोंकी नियुक्ति भी राजा करता था। मालगुजारीकी वसूलीका कार्य पटेलोंके हाथमें था।

भूमिकी उपजका एक तिहाई भाग मालगुजारीके रूपमें वसूल किया जाता था। भूमिका विस्तृत सर्वेक्षण किया जाता था और उर्वरताके अनुसार उसका चार श्रेणियोंमें वर्गीकरण किया जाता था। विदेशी अथवा मुगल नियंत्रणमें जो भूमि होती थी, उसपर दो प्रकारके कर लिये जाते थे। एकको 'सरदेशमुखी' कहते थे। यह मालगुजारीके एक-दसवें भागके बराबर होता था। दूसरा 'चौथ' कहलाता था। यह मालगुजारीके एक-चौथाई भागके बराबर होता था। चौथ देनेवालेको लूटा नहीं जाता था, इसलिए महाराष्ट्रसे बाहरके लोगोंकी दृष्टिमें मराठा शासन व्यवस्था लूट-खसोटपर आधारित मानी जाती थी। मराठा साम्राज्यके विस्तारके साथ लूट-खसोटकी यह प्रवृत्ति बढ़ती गयी और स्वराज्यकी भावनाके आधारपर सारे देशपर मराठा शासन स्थापित होनेमें बाधक सिद्ध हुई।

शिवाजीने शासन-व्यवस्थाके साथ-साथ सेनाकी भी व्यवस्था की। सेनामें मुख्यरूपसे पैदल सैनिक तथा घुड़सवार होते थे। यह सेना छापामार युद्ध तथा पर्वतीय क्षेत्रोंमें लड़नेके लिए बहुत उपयुक्त थी। राजा स्वयं प्रत्येक सैनिकका चुनाव करता था। वेतन या तो नकद दिया जाता था या जिला प्रशासनको सुपुर्द कर दिया जाता था। शिवाजीने वेतनके लिए जागीरें देनेकी प्रथा नहीं चलायी। सेनामें कड़ा अनुशासन रखा जाता था और सैनिकोंको शिविरमें स्त्रियोंको साथ रखनेकी अनुमति नहीं थी। सैनिक लूटका सारा माल राज्यको सौंप देते थे। सेनाको भारी शस्त्रास्त्र अथवा शिविरोंके लिए भारी असबाब लेकर नहीं चलना पड़ता था। शिवाजीने घुड़सवारोंको दो श्रेणियोंमें बाँट रखा था। 'बरगीरियों' को घोड़े तथा शस्त्रास्त्र राज्यकी ओरसे मिलते थे। 'सिलहदारों' को घोड़ों और शस्त्रास्त्रोंकी व्यवस्था स्वयं करनी पड़ती थी। सेनाका नियंत्रण करनेके लिए क्रमिक रीतिसे नायकों, जुमलादारों, हजारियों और पंजहजारियोंकी नियुक्ति की जाती थी। इन सबके ऊपर और एक सरनौबत घुड़सवार सेनाके ऊपर होता था। समस्त सेनाके ऊपर सेनापति रहता था। महाराष्ट्रके पर्वतीय क्षेत्रमें किलोंका बहुत महत्त्व था और शिवाजीने अपने राज्यके सभी महत्त्वपूर्ण दर्रोंपर किले स्थापित कर दिये थे और उनमें सैनिकों तथा रसदकी उत्तम व्यवस्था की थी। मराठोंका सारा मुल्की तथा सैनिक प्रशासन राजाके प्रत्यक्ष नियंत्रणमें रहता था। फलस्वरूप राजाके ऊपर बहुत अधिक कर्त्तव्य-भार पड़ जाता था। बादके मराठा शासक अपने उत्तरदायित्वोंको सुचारु रीतिसे वहन नहीं कर पाये। फलस्वरूप मराठा शासन एवं सैन्य व्यवस्थामें शिथिलता आ गयी और जब उसको अंग्रेजोंकी आधुनिक सैन्य-व्यवस्थाका मुकाबला करना पड़ा, वह विफल सिद्ध हुई।

मराठा संघ—इसका सूत्रपात दूसरे पेशवा बाजीराव प्रथम (१७२०–४० ई०) के शासनकालमें हुआ। एक ओर सेनापति दाभाड़ेके नेतृत्वमें मराठा क्षत्रिय सरदारोंके विरोध तथा दूसरी ओर उत्तर तथा दक्षिणमें मराठा साम्राज्यका शीघ्रतासे विस्तार होनेके कारण पेशवा बाजीराव प्रथमको अपने उन स्वामीभक्त समर्थकोंपर अधिक निर्भर रहना पड़ा, जिनकी सैनिक योग्यता युद्धभूमिमें प्रमाणित हो चुकी थी। फलस्वरूप उसने अपने बड़े-बड़े क्षेत्र इन समर्थकोंके अधीन कर दिये। उसके समर्थकोंमें रघुजी भोंसले, रानोजी शिन्दे, मल्हारराव होल्कर तथा दाभाजी गायकवाड़ मुख्य थे। इन नेताओंने मिलकर मराठासंघका निर्माण किया। बाजीराव प्रथम (१७२०–४० ई०) तथा उसके पुत्र बालाजी बाजीराव (१७४०–६१ ई०) के शासनकालमें इस संघपर पेशवाका कड़ा नियंत्रण रहा। फलस्वरूप मराठा सेनाओंने दिल्ली तथा पंजाब तक विजय यात्राएँ कीं। परंतु १७६१ ई० में पानीपतकी तीसरी लड़ाईमें पेशवाकी सेनाकी जबर्दस्त हार तथा उसके बाद ही पेशवा-बालाजी बाजीरावकी मृत्यु हो जाने तथा उसके बाद पेशवाईके लिए होनेवाले उत्तराधिकार युद्धके कारण मराठासंघके महत्त्वाकांक्षी सरदारोंपर पेशवाका नियंत्रण ढीला पड़ गया। फलस्वरूप मराठासंघ मराठा राज्यके विघटनका एक प्रमुख कारण बन गया। मराठासंघके सरदारोंके आपसी ईर्ष्या-द्वेष तथा उनकी प्रतिद्वन्द्विताके कारण, विशेषरूपसे होल्कर तथा शिन्देकी प्रतिद्वन्द्विताके कारण, उनके लिए संयुक्त होकर कार्य करना असंभव हो गया। यह मराठा साम्राज्य, स्वतंत्रताके ह्रास तथा पतनका मुख्य कारण बना।

मरुद्वृधा—ऋग्वेदके नदीसूक्तमें जिन दस नदियोंके नाम आये हैं, उनमेंसे एक इसकी पहचान मरुवर्दवन नदीसे की जाती है जो कश्मीर-जम्मू राज्यकी मरुघाटीसे बहती है और चिनावमें मिल जाती है। अन्य नौ नदियोंके नाम हैं— गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री (सतलज), परुष्णी (रावी), असिक्नी (चिनाव), वितस्ता (झेलम), आर्जीकीया (कांशी) तथा सुषोमा (सोहन)। अंतिम दो नदियां रावलपिंडी जिलेमें हैं। मरुद्वृधा नदीके उल्लेखसे प्रकट

होता है कि ऋग्वेद-कालीन आर्य कश्मीर तथा जम्मूके अंतरंग भागोंसे परिचित थे।

मर्व–अफगानिस्तानकी उत्तर-पश्चिमी सीमासे लगभग १५० मील उत्तर एक नगर। १८८४ ई०में रूसने इसपर अधिकार कर लिया। इंग्लैंडमें कुछ लोग इसे झूठमूठ बड़े सामरिक महत्त्वका नगर बता रहे थे। मर्वके पतनसे अंग्रेजोंमें अफगानिस्तानपर, और परोक्ष अथवा अपरोक्ष रीतिसे भारतपर रूसी हमलेका भय छा गया। इसपर इंग्लैंड और रूसमें युद्ध छिड़ जानेका खतरा उत्पन्न हो गया। परंतु अमीर अब्दुर्रहमान (दे०)के धैर्य और अंग्रेज तथा रूसी राजनेताओंके कूटनीतिक कौशलसे यह युद्ध टल गया। (देखिये, 'पंजदेह की घटना')

मलय–आधुनिक मलय प्रायद्वीप, जिसका भारतसे दीर्घ-कालीन सम्बन्ध रहा है। इसके नामसे प्रतीत होता है कि इसका कोई सम्बन्ध प्रसिद्ध मालव गणसे रहा है, किंतु इस विषयमें कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। बौद्ध जातक कथाओं तथा टालेमीके भूगोलसे संकेत मिलता है कि भारतीयोंमें यह स्वर्णद्वीप अथवा स्वर्णभूमिके रूपमें विख्यात था और मलय भारतके बीच खूब व्यापार होता था। मलय प्रायद्वीप तथा कम्बोडियामें प्रारम्भिक पाँचवीं शताब्दी ई०के संस्कृत शिलालेख प्राप्त हुए हैं। दक्षिण-पूर्व एशियामें शैलेन्द्र वंश (दे०)के राजाओंने जिस विशाल साम्राज्यकी स्थापना की थी, उसमें मलय भी सम्मिलित था। इन राजाओंका बंगाल तथा भारतसे निकट सम्पर्क था। तेरहवीं शताब्दी ई०में, जब भारतमें मुसलमानी शासनकी स्थापान हुई, मलय और भारतके सांस्कृतिक सम्बन्ध टूट गये।

मलिक अम्बर–एक हब्शी गुलाम जो पदोन्नति करके अहमद नगरका वजीर बन गया। वहाँ का राज्य-प्रबंध अनेक वर्षों तक उसके हाथमें रहा। उसने पहली बार १६०१ ई०में नामवरी हासिल की, जब उसने दक्षिण-पूर्वी बरारमें मुगल सेनाको हरा दिया। मुगल सेना दौलताबादपर अधि-कार करना चाहती थी जो अहमदनगर सल्तनतकी राज-धानी थी। १६०१ ई०में राजधानी यहीं स्थानांतरित कर दी गयी थी। वह जितना योग्य सिपहसालार था, उतना ही योग्य राजनेता भी था। उसीके उद्योगसे अहमद नगर पर कब्जा करनेके जहाँगीरके सारे प्रयत्न विफल हो गये। उसने अहमद नगर राज्यकी उत्तम शासन-व्यवस्था की। इसके अलावा उसने राज्यमें मालगुजारीकी व्यवस्था भी बड़े सुन्दर ढंगसे की। सारी कृषि-योग्य भूमिको उर्वरताके आधारपर चार श्रेणियोंमें विभाजित कर दिया गया और लगान स्थायी रूपसे निश्चित कर दिया गया, जो नकद लिया जाता था। लगानकी वसूली राज्यके अधिकारी गाँवके पटेलसे करते थे। मलिक अम्बरकी मृत्यु १६२६ ई०में बुढापेमें हुई। उसकी मृत्युके बाद ही अहमद नगर सल्तनतको मुगल साम्राज्यमें सम्मिलित किया जा सका।

मलिक अयाज–गुजरातके सुल्तान महमूद बेगड़ा (दे०) (१४५९–१५११ ई०)के सामुद्रिक बेड़ेका अधिनायक। उसने १५०८ ई०में मिस्री सामुद्रिक बेड़ेके सहयोगसे, जिसका अधिनायकत्व अमीर हुसेन कर रहा था, चौलके निकट सामुद्रिक लड़ाईमें पुर्तगालियोंको हरा दिया। परन्तु अगले साल ड्यूके निकट एक सामुद्रिक लड़ाईमें पुर्तगालियोंने उसे हरा दिया और उसका बेड़ा नष्ट कर दिया।

मलिक अहमद–अहमद नगरके निजाम-शाही वंशका प्रवर्तक। वह कुछ वर्षोंतक बहमनी वंशके सुल्तान महमूद (दे०) के अधीन पूनाके निकट जुन्नारका हाकिम रहा। १४९० ई०में उसने बगावतका झंडा बुलंद कर दिया और एक स्वतंत्र राज्यका शासक बन बैठा। उसने अहमद निजाम शाहकी उपाधि धारण की और अहमद नगरको राज-धानी बनाया। उसने १४९९ ई०में देवगिरि अथवा दौलताबाद जीत लिया और अपने राज्यको सुदृढ बनाया। उसकी मृत्यु १५०८ ई०में हुई। उसके द्वारा स्थापित निजामशाही वंशके वंशज अहमद नगरपर १६३७ ई० तक शासन करते रहे। पश्चात् उसका राज्य मुगल साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया।

मलिक काफूर–देखिये, 'काफूर'।

मलिक गाजी शाहना–सुल्तान फीरोज तुगलक (१३५१–८८ ई०)का मुख्य वास्तु-शिल्पी। सुल्तान फीरोज तुगलकको इमारतें बनवानेका अधिक शौक था। उसीके निर्देशमें मलिक गाजी शाहनाने फीरोजाबाद और जौनपुरके नये नगरोंका, मुसलमान यात्रियोंके लिए १२० सरायोंका तथा अनेक नहरोंका निर्माण कराया। इन नहरोंमेंसे एक नहर–पुरानी जमना नहर अब तक काम कर रही है और मलिक गाजी शाहनाके निर्माण-कौशलका प्रमाण प्रस्तुत करती है।

मलिक मकबूल–सुल्तान मुहम्मद तुगलक (१३२५–५१ ई०) के राज्य कालमें वारंगलका सूबेदार। लगभग १३४० ई०में हरिहर और बुक्कने मलिक मकबूलको वारंगलसे निकाल दिया और बादमें विजय नगर राज्य (दे०)की स्थापना की।

मलिक मोहम्मद जायसी–बादशाह हुमायूँका (१५३०–५६

ई०)का सम-सामयिक अवधीका कवि। मुसलमान होते हुए भी उसने हिन्दी भाषामें रचना की।

मलिक शाहू लोदी—मुलतानका एक अफ़गान। सरदार सुल्तान मुहम्मद तुगलक (१३२५–३१ ई०)के राज्यकालके उत्तरार्धमें उसने बगावत कर दी, परन्तु उसे पराजित कर दिया गया और वह अफगानिस्तान भाग जानेके लिए विवश हुआ।

मलिक हसन—मूल रूपमें ब्राह्मण, जो मुसलमान बन गया और उसका नाम हसन रखा गया। बहमनी सुल्तान मुहम्मद तृतीय (१४६३–८२ ई०)के शासन-कालमें वह तेलंगानाका सूबेदार था। वह दक्खिनी मुसलमान अमीरोंके उस दलका प्रमुख सदस्य था जो विदेशी मुसलमान अमीरोंके दलके नेता महमूद गवाँ (दे०)का विरोधी था। उसने उस षड्यंत्रमें प्रमुख भाग लिया जिसके फलस्वरूप १४८१ ई०में महमूद गवाँका वध कर दिया गया।

मल्लगण—गौतम बुद्ध (दे०)के समय पावा तथा कुसीनारामें निवास करता था। बौद्ध किंवदंतियोंमें इस गणके लोगोंका प्रायः उल्लेख हुआ है।

मल्लिकार्जुन—विजयनगरके राजा देवराय द्वितीय (दे०)का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। उसने १४४७ से १४६५ ई० तक राज्य किया। मल्लिकार्जुन अपने सामंतोंको वशमें रखनेमें असफल रहा। उधर बहमनी सुल्तान अलाउद्दीन तथा उड़ीसाके राजा कपिलेश्वरने उसके राज्यपर आक्रमण कर दिया। फलस्वरूप उसकी राज्यशक्ति क्षीण होने लगी। कुछ समय बाद चन्द्रगिरिके नरसिंह सालुव (दे०)ने उसका सिंहासन छीन लिया। नरसिंह सालुव उसीका सामंत था।

मल्लू—बीजापुरका तीसरा सुल्तान। उसने १५३४ ई०में केवल छः महीने शासन किया। वह बड़ा पापी था, इसीलिए उसे अंधा बना कर गद्दीसे उतार दिया गया।

मल्हार राव होल्कर—इंदौरके होल्कर वंशका प्रवर्तक-प्रारंभमें वह पेशवा बाजीराव प्रथम (१७२०–४० ई०)की सेवामें रहा। उसकी स्वामि-भक्तिके फलस्वरूप मध्य भारतमें एक बड़ा क्षेत्र उसके शासनमें कर दिया गया। उसके उत्तराधिकारी इस क्षेत्रका शासन करते रहे। १९४८ ई०में उसके राज्यका भारतीय गणराज्यमें विलयन कर लिया गया।

मसुलीपट्टम्—भारतके पूर्वी समुद्रतटका एक नगर तथा बंदरगाह। ईस्ट इंडिया कम्पनीने १६११ ई०में यहाँ एक कोठी स्थापित की। फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कम्पनीने भी १६६९ ई०में यहाँ अपनी कोठी स्थापित की। पहले कर्नाटक-युद्ध (दे०) में फ्रांसीसियोंने इसपर अधिकार कर लिया, परंतु तीसरे कर्नाटक-युद्ध (दे०)में कर्नल फोर्ड (दे०)ने इसे छीन लिया। १७५९ ई०में यह अंग्रेजोंको सौंप दिया गया।

मसुली पट्टम्की संधि—१७६८ ई०में अंग्रेजों और हैदराबाद के निजामके बीच हुई। इसके द्वारा अंग्रेजोंने निजामको बालाघाटका शासक स्वीकार कर लिया। अंग्रेजोंने १७६९ ई०में मैसूरके साथकी गयी एक संधि तथा पुनः १७८४ ई०की मंगलूरकी संधिके द्वारा इस प्रदेशपर मैसूरका आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। यह इस बातका उदाहरण है कि ईस्ट इंडिया कम्पनी भारतमें किस प्रकार छल-कपटकी कूटनीति खेल रही थी। लार्ड कार्नवालिसने १७८८–८९ ई०में कम्पनीके द्वारा दिये गये वचनोंसे मुकर जानेकी कोशिश की। इसके फलस्वरूप तीसरा मैसूर-युद्ध (दे०) (१७९०–९२ ई०)में हुआ।

महमूद—बीदर (दे०)का सुल्तान जिसने कृष्णदेव राय (दे०) के सिंहासनपर बैठनेके बाद ही विजयनगरपर हमला कर दिया। कृष्णदेवरायने उसकी सेनाओंको पीछे खदेड़ दिया और युद्ध भूमिमें वह घायल भी हो गया।

महमूद खिलजी—मालवाके सुल्तान महमूद गोरी (१४३२–३६ ई०) (दे०)का वजीर उसने अपने मालिकको जहर देकर मार डाला और १४३६ ई०में उसकी गद्दी छीन ली। उसने १४३६ ई०से १४६९ ई०में अपनी मृत्यु तक शासन किया और मालवामें खिलजी वंश चलाया। उसका जीवन पड़ोसी राजाओं—गुजरातके सुल्तान, मेवाड़के राणा कुम्भा तथा निजाम शाह बहमनीसे युद्ध करनेमें बीता। उसने राज्यका काफी विस्तार किया तथा कई सुन्दर इमारतें बनवायीं, जिनमें राजधानी मांडूमें निर्मित एक सतखंडी मीनार भी थी।

महमूद खिलजी द्वितीय (१५१२–३१ ई०)—मालवाके खिलजी वंशका अंतिम सुल्तान। गुजरातके सुल्तान बहादुर शाह (१५२६–३७ ई०) (दे०)ने उसे हरा दिया और उसका राज्य अपने राज्यमें मिला लिया।

महमूद, गजनीका सुल्तान—अमीर सुबुक्तगीनका लड़का, जो उसके बाद ९९६–९७ ई०में गजनीकी गद्दीपर बैठा। उसने अपनी स्वतंत्र सत्ताकी सूचना देनेके लिए सुल्तानकी पदवी धारण की और १०३० ई०में अपनी मृत्यु तक राज्य किया। उसने अपने राज्यकालमें भारतपर कई चढ़ाइयाँ कीं (इनकी संख्या आम तौरसे सत्रह मानी जाती है)। उसका पहला हमला १००१ ई०में जयपाल (दे०) पर हुआ, जिसे उसने पेशावरके निकट हराया। सात साल

बाद उसने जयपालके उत्तराधिकारी अनंगपालको हराया। इन सफलताओंके फलस्वरूप पंजाब एक प्रकारसे उसके अधिकारमें आ गया। अगले वर्षोंमें उसने थानेश्वर, मथुरा तथा कन्नौजपर चढ़ाई की और ग्वालियर तथा कालंजरको अपने अधीन किया। १०२६ ई०में उसने काठियावाड़ (सौराष्ट्र)पर चढ़ाई की और सोमनाथके मंदिरका शिवलिंग तोड़ डाला और नगर एवं मंदिरकी सम्पत्ति लूट ली। उसने भारतपर अंतिम चढ़ाई १०२७ ई०में मुल्तानपर की। सुल्तान महमूद बहुत ही योग्य सिपहसालार था। वह विद्वानोंका आदर करता था और कला तथा वास्तुकलाका प्रेमी था। उसने अपनी राजधानी गज़नीमें कई खूबसूरत इमारतें बनवायीं तथा झीलों, पुस्तकालयों आदिका निर्माण कराया। उसने पंजाबको अपने राज्यमें मिला लिया और शेष भारतके राजवंशोंकी शक्ति क्षीण कर दी।

महमूद गवाँ, ख्वाजा–एक ईरानी सरदार, जिसे ग्यारहवें बहमनी सुल्तान हुमायूँ (१४५७–६१ ई०)ने नौकर रख लिया। उसने धीरे-धीरे उच्च पद प्राप्त कर लिया। हुमायूँके नाबालिग लड़के निजाम (१४६१–६३ ई०) के राज्यकालमें उसने और पदोन्नति की। निजामकी ओरसे उसकी मां शासन चला रही थी। शासन-कार्यके लिए उसने दो मुख्य सलाहकार नियुक्त किये, जिनमेंसे एक महमूद गवाँ था। १४१३ ई०में अचानक निजामकी मृत्यु हो गयी और उसका भाई मुहम्मद गद्दीका वारिस बना। मुहम्मद शाहने १४३६ से १४८२ ई० तक राज्य किया। उसके राज्यकालमें महमूद गवाँको बड़ा वजीर बना दिया गया। उसने सुयोग्य सिपहसालार और राजनेताके रूपमें बहमनी राज्यके विस्तारमें सबसे अधिक योगदान किया।

वह विद्वानोंका बहुत आदर करता था और कला तथा वास्तुकलाका प्रेमी था। उस समय बीदर बहमनी राज्यकी राजधानी थी। उसने वहाँ एक विद्यालय तथा पुस्तकालयकी स्थापना की। दक्खिनी मुसलमान अमीर उससे दुश्मनी रखते थे। अंतमें वे उसके खिलाफ षड्यंत्र रचनेमें सफल हो गये। उन्होंने उसके नामकी जाली चिट्ठियाँ बना कर सुल्तान मुहम्मद शाहको विश्वास दिला दिया कि वह विश्वासघात करके विजय नगरके राजासे मिल गया है। सुल्तानके हुक्मसे १४८१ ई०में उसका बध कर दिया गया। इस अन्यायपूर्ण कृत्यसे बहमनीके सुल्तानोंकी राज्य-सत्ताको भारी क्षति पहुँची और शीघ्र बहमनी राज्य कई टुकड़ोंमें बँट गया।

महमूद गोरी (१४३२–३६ ई०)–मालवाके गोरी वंशका तीसरा और अंतिम शासक। वह नितांत अयोग्य शासक था और बहुत अधिक शराब पीता था। १४३६ ई०में उसके वजीरने उसको जहर देकर मार डाला।

महमूद, जौनपुरका सुल्तान–शर्की वंशका तीसरा सुल्तान। उसने १४३६ से १४५८ ई० तक राज्य किया। वह सफल शासक था और उसने जौनपुरमें कुछ खूबसूरत मसजिदें बनवायीं।

महमूद तुगलक (१३९४–१४१३ ई०)–दिल्लीके तुगलक वंशका अंतिम सुल्तान। उसके राज्यकालमें अनवरत संघर्ष चलते रहे और दुरवस्था चरम सीमापर पहुँच गयी। उसके राज्यकालके पूर्वार्द्धमें लम्बा उत्तराधिकार-युद्ध १३९९ ई० तक चलता रहा, जब उसका प्रतिद्वन्द्वी सुल्तान नसरत शाह पराजित हुआ और मारा गया। उसके राज्यकालके उत्तरार्द्धमें दिल्ली सल्तनत टूटने लगी। जौनपुर, गुजरात, मालवा और खानदेश स्वतंत्र मुसलिम राज्य बन गये। दूसरी ओर ग्वालियरमें एक स्वतंत्र हिन्दू राज्यकी स्थापना हुई। दोआबके हिन्दुओंमें बराबर विद्रोह होता रहा। इन्हीं परिस्थितियोंमें १३९८ ई०में तैमूर (दे०)ने भारतपर चढ़ाई कर दी। सुल्तान महमूद तुगलकके राज्यमें इतनी अव्यवस्था थी कि आक्रमणकारी दिल्लीकी सीमाओं तक पहुँच गया और उसका कोई प्रतिरोध नहीं किया गया। तैमूरकी सेनाओंने मुल्तानकी सेनाको गहरी शिकस्त दी और महमूद गुजरात भाग गया। तैमूरकी विजयी सेना दिल्लीमें घुस आयी और पन्द्रह दिन निर्दयतापूर्वक लूट-पाट और राजधानीका विध्वंस करती रही। तैमूरके वापस लौट जानेके बाद भारत भीषण अकाल तथा महामारीसे ग्रस्त रहा। दिल्लीकी सल्तनतकी हालत अब एक सड़ती लाश जैसी थी। तैमूरकी सेनाके चले जानेके बाद सुल्तान महमूद तुगलक दिल्ली वापस लौट आया और वह सल्तनतको विनाशसे नहीं बचा सका। १४१३ ई०में उसकी मृत्यु होनेपर तुगलक वंशका अंत हो गया।

महमूद बेगड़ा (अथवा बिगढ़ा)–गुजरातका छठाँ सुल्तान। वह तेरह वर्षकी उम्रमें गद्दीपर बैठा और बावन वर्ष (१४५९–१५११ ई०) तक सफलतापूर्वक राज्य करता रहा। वह अपने वंशका सबसे प्रमुख सुल्तान था। उसने वड़ोदाके निकट चांपानेर तथा जूनागढ़ जीत लिया तथा अहमद नगरके सुल्तानको हराया। उसने भारतीय समुद्रोंमें पुर्तगालियोंसे भी युद्ध किया और १५०८ ई०में चौलकी लड़ाईमें एक पुर्तगाली जंगी बेड़ेको हरा दिया। अगले

वर्ष १५०६ ई०में पुर्तगालियोंने उसका बेड़ा डुबा दिया। फिर भी उसने अपने राज्यकालमें पुर्तगालियोंको दिवपर कब्जा करने नहीं दिया। उसने बड़ी शानदार मूँछें बढ़ा रखी थीं और इतना अधिक खाता था कि उसके बारेमें सारे देशमें तरह-तरहकी कपोल कथाएँ प्रचलित हो गयीं। एक इटालवी यात्री लुडोविको डी वारदेमा उसके राज्यमें आया था। उसने भी इन कथाओंका उल्लेख किया है।

महमूद शाह बहमनी (१४८२–१५१८ ई०)—बहमनी राज्यका अन्तिम शासक तथा सुल्तान मुहम्मद तृतीयका उत्तराधिकारी। गद्दीपर बैठनेकेसमय उसकी उम्र बारह साल की थी। उसने छब्बीस वर्षतक राज्य किया। वह सर्वथा शक्तिहीन था। उसके राज्यकालमें बीजापुर, गोलकुण्डा, बरार तथा अहमद नगर बहमनी सल्तनतसे अलग हो गये। १५१८ ई०में उसकी मृत्युके समय केवल बीदरका शासक उसकी नाममात्रकी अधीनता स्वीकार करता था।

महलवारी प्रथा—देखिये, 'भूमि व्यवस्था'।

महसूद—अफगानोंका एक कबीला। डूरैण्ड सीमारेखा (दे०) के अनुसार उसको भारतीय सीमाके अन्तर्गत रखा गया। इस कबीलेके लोग लड़ाकू और झगड़ालू होते हैं। उन्हें शान्त रखनेके लिए ब्रिटिश भारतीय सरकारको जब-तब दण्डात्मक काररवाई करनी पड़ती थी।

महाक्षत्रप—इनकी दो शाखाएँ थीं, यथा पश्चिमी क्षत्रप कुल, जिसका प्रवर्तन भूमकने महाराष्ट्रमें किया और उज्जयिनीका महाक्षत्रप कुल, जिसे चष्टन (चस्टन अथवा सष्टन) ने प्रचलित किया था। इन दोनों कुलोंके प्रवर्तक शक आक्रान्ताओंके सरदार थे। पश्चिमी क्षत्रप कुलके आरम्भकी तिथि निश्चित नहीं है। कदाचित् उसकी राजधानी नासिक थी और केवल दो शासकों, भूमक और नहपानके ही नाम ज्ञात हैं। दोनोंमें किसी की भी तिथि निश्चित नहीं है। विद्वानोंने भूमकका काल ईसाकी प्रथम शताब्दीका प्रारम्भिक वर्ष माना है और नहपानका काल दूसरी शताब्दीका प्रारम्भिक वर्ष। पश्चिमी भारतके शक क्षत्रपोंमें नहपान सबसे प्रतापी था। उसका उल्लेख कई अभिलेखोंमें किसी अनिश्चित संवत् की तिथियोंके साथ हुआ है। कुछ विद्वानोंने उक्त तिथियोंको शक संवत्की तिथियाँ स्वीकार किया है और उसका राज्यकाल ११६ ई०से १२४ ई० तक ठहराया है। उसने क्षत्रपके रूपमें शासन आरम्भ किया और उपरान्त महाक्षत्रप बना। नहपानने पश्चिमी भारतके एक विस्तृत भू-भागपर राज्य किया और प्रभूत दान दिया। किन्तु सातवाहन शासक गौतमी पुत्र श्री सातकर्णी (दे०) ने उसे परास्त करके पश्चिमी क्षत्रपोंके वंशका अन्त कर दिया।

उज्जयिनीके महाक्षत्रपोंने दीर्घकाल तक शासन किया। इस वंशका प्रवर्तक यशोभोतिकका पुत्र चस्तन अथवा चष्टन था। यशोभोतिकके नामसे ही स्पष्ट है कि वह शक था। उसका शासनकाल लगभग १३० ई०में आरम्भ हुआ और उसके वंशज ३८८ ई० तक राज्य करते रहे। इस वंशका सबसे महान् शासक चष्टनका पौत्र रुद्रदामा प्रथम (दे०) (१३०–१५० ई०) था। उसने पश्चिमी भारतके एक विस्तृत भू-भागपर राज्य किया और उसकी उपलब्धियाँ गिरनार नामक पर्वतपर उत्कीर्ण एक संस्कृत अभिलेखमें वर्णित हैं। अभिलेखके अनुसार उसने सुदर्शन तालके उस बाँधका पुनर्निर्माण कराया जो सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त मौर्य (दे०)के शासनकालमें निर्मित हुआ था। रुद्रदामाके उपरान्त उसका ज्येष्ठ पुत्र दामघसद प्रथम शासक हुआ और उपरान्त उसका पुत्र जीवनदामा तथा दामघसदका भाई रुद्रसिंह सिंहासनासीन हुए।

रुद्रसिंहके उपरान्त उसके तीन पुत्र रुद्रसेन प्रथम, संघदामा और दामसेन शासक हुए और दामसेनके उपरान्त उसके तीन पुत्र यशोदामा, विजयसेन और दामजदश्री क्रमशः सिंहासनासीन हुए। उपरान्त रुद्रसेन द्वितीय, विश्वमित्र, भर्तृदामा, रुद्रदामा द्वितीय और रुद्रसेन तृतीय (३४८–३७८ ई०)ने शासन किया। रुद्रसेन तृतीयके उत्तराधिकारी कदाचित् सिंहसेन, रुद्रसेन चतुर्थ और सत्यसिंह थे। सत्यसिंहका पुत्र और उत्तराधिकारी रुद्रसिंह तृतीय इस वंशका अन्तिम शासक था। उसे गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यने पराजित और अपदस्थ किया। उज्जयिनीके महाक्षत्रपोंका इतिहास इस दृष्टिसे रोचक है कि वह दर्शाता है कि उस कालका एक विदेशी शासक वंश कितनी शीघ्रतासे ही भारतीय एवं हिन्दू धर्मानुयायी बन गया तथा उसने संस्कृतको अपनी राजभाषा स्वीकार कर लिया।

महात्मा गांधी—देखिये, 'गांधी, मोहनदास करमचन्द'।

महानन्दी—शैशुनाग वंशका अन्तिम राजा। उसका राज्यकाल पाँचवीं शताब्दी ई० पू० अन्तिम भाग अथवा चौथी शताब्दी ई० पू०का था। उसके राज्यकालके बारेमें कुछ अधिक ज्ञात नहीं है।

महापद्म—मगधके नन्द वंशका आद्यपुरुष। पुराणोंके अनुसार वह शैशनाग वंशके अन्तिम राजा महानन्दीका शूद्र

दासीसे उत्पन्न पुत्र था। उसने महानन्दीकी हत्या करके मगधका सिंहासन छीन लिया। दासी-पुत्र होनेके बावजूद महापद्मने अपनेको एक शक्तिशाली शासक सिद्ध किया। उसने मगध राज्यका विस्तार पूर्वमें कलिंगसे लेकर पश्चिममें पंजाबकी व्यास नदी तक किया। प्रतीत होता है कि उसने इस विशाल साम्राज्यका शासन अत्यन्त योग्यताके साथ किया। उसके राज्याभिषेककी सही तिथि ज्ञात नहीं है। उसने कितने वर्ष राज्य किया, यह भी निश्चित नहीं है। परन्तु उसके साम्राज्यका विस्तार देखते हुए, अनुमान होता है कि उसने चौथी शताब्दी ई० पू०के पूर्वार्द्धमें लगभग तीस वर्षतक राज्य किया।

महाभारत—संस्कृतका दूसरा और सबसे बड़ा महाकाव्य, इसके रचयिता महर्षि वेदव्यास माने जाते हैं। यह बहुत विशाल ग्रंथ है और इसमें एक लाख श्लोक हैं। सम्पूर्ण महाभारतका पहला उल्लेख गुप्तकाल (चौथी-पांचवी शताब्दी ई०)के एक शिलालेखमें मिलता है, परन्तु इसका मूल अंश और प्राचीन रहा होगा, क्योंकि पाणिनिको उसकी सूचना थी। पाणिनि ईसवी सन् प्रचलित होनेसे पूर्व हुए। महाभारतकी मुख्य कथा कौरवों और पांडवोंके युद्धकी कथा है जो चचेरे भाई थे। कौरव हस्तिनापुर (मेरठ जिलेमें स्थित)के राजा धृतराष्ट्रके पुत्र थे और पांडव धृतराष्ट्रके छोटे भाई पांडुके पुत्र थे, और आधुनिक दिल्लीके निकट इन्द्रप्रस्थमें राज्य करते थे। पांडवोंका पांचालों तथा यादवोंसे विवाह-सम्बन्ध था। पांडवोंने अपनेको सार्वभौम राजा घोषित किया। कौरव पांडवोंके इस उत्कर्षको सहन नहीं कर सके। फलस्वरूप दोनोंके बीच युद्ध हुआ, जिसमें आर्यावर्त्तके प्रायः सभी राजाओंने कौरवों अथवा पांडवोंके पक्षधर बन कर भाग लिया। पानीपतके मैदानके निकट जहाँ ऐतिहासिक कालमें तीन बार भारतका भाग्य निर्णय हुआ, कुरुक्षेत्रमें अठारह दिन तक भीषण युद्ध हुआ। इसमें कौरव पराजित हुए और पांडव विजयी होकर भारतके सार्वभौम राजा बने। परन्तु इस महान् विजयके बाद ही उन्होंने संसारसे विरक्त होकर राज्य त्याग दिया। उनके बाद राजा परीक्षित उनका उत्तराधिकारी हुआ।

महाभारतमें कौरवों और पांडवोंकी मुख्य कथाके अतिरिक्त अनेक उदात्त राजाओं और उनकी रानियों तथा अनेक तपोधन ऋषियोंकी नैतिक शिक्षाओंसे भरी रोचक कहानियाँ हैं। भगवद्गीता भी इसीका एक अंश है। महाभारतको हिन्दू अपना राष्ट्रीय महाकाव्य मानते हैं और इसका सभी भारतीय भाषाओंमें अनुवाद हुआ है। हिन्दू अपनी इस कथाको जावा तथा कम्बोडिया जैसे सुदूर देशोंमें भी ले गये, जहाँ उन्होंने अपने उपनिवेश बसाये।

महारानी विक्टोरिया—देखिये, 'विक्टोरिया'।

महाराष्ट्र—पश्चिमी घाटके उस क्षेत्रका नाम, जो पूर्वमें वर्धासे लेकर पश्चिममें समुद्रतट तक विस्तृत है। इस क्षेत्रको तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। पहला कोंकण, जो पश्चिमी घाट और समुद्रतटके बीचमें स्थित है। दूसरा मावल, जो केवल २७ मील चौड़ा है और पश्चिमी घाटके पूर्वमें स्थित है। तीसरा देश, जो मावलके पूर्वमें स्थित है। इस क्षेत्रकी पहाड़ियोंपर पानी सुगमतासे मिल जाता है और किलेबंदीके लिए प्राकृतिक सुविधाएं प्राप्त हैं। महाराष्ट्रके लोग बड़े सीधे-सादे, कर्मठ तथा स्वावलम्बी हैं। उनमें राजपूतों जैसी शूरवीरता तो नहीं है, परन्तु वे उनसे अधिक कुशाग्र-बुद्धि रखते हैं। वे साधनोंकी अपेक्षा साध्यपर अधिक ध्यान देते हैं। ईसवी सन्की प्रारम्भिक शताब्दियोंमें इस क्षेत्रपर भूमक द्वारा स्थापित शक क्षत्रपोंका एक वंश राज्य करता था। पाँचवी शताब्दी ई०में चन्द्रगुप्त द्वितीय (दे०)ने शकोंका उच्छेद करके इस क्षेत्रको गुप्त साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया। सातवीं शताब्दी ई०में यह क्षेत्र चालुक्य राजा पुलकेशी द्वितीय (६०८-४२ ई०) (दे०)के राज्यका एक भाग था। चीनी यात्री ह्युएन-त्सांगने इस क्षेत्रकी यात्रा की थी। उसने अनुभव किया कि इस क्षेत्रमें यात्रा करना अत्यन्त दुष्कर है। इसके बाद इसपर राष्ट्रकूटों (दे०)और फिर देवगिरिके यादवोंका, पश्चात् दिल्लीके सुल्तानोंका राज्य रहा। बादमें यह बहमनी राज्यके अन्तर्गत आ गया। बहमनी राज्य समाप्त होनेपर यह क्षेत्र अहमदनगर और बीजापुरके सुल्तानोंके बीच बँट गया और इसका पृथक् अस्तित्व अथवा इतिहास एक प्रकारसे समाप्त हो गया।

परन्तु सत्रहवीं शताब्दीके मध्यमें एक महापुरुषका उदय होनेसे इस क्षेत्रने फिरसे प्रमुखता प्राप्त कर ली। यह महापुरुष शिवाजी थे, जिनका जन्म १६२७ ई०में हुआ। उन्होंने महाराष्ट्रके लोगोंमें राष्ट्रीय एकता तथा स्वतंत्रताकी भावना उत्पन्न की और १६८० ई०में अपनी मृत्युसे पूर्व एक स्वतंत्र हिन्दू राज्यकी स्थापना कर दी। मुगल साम्राज्य अपने सारे साधनोंके बावजूद इस राज्यका उच्छेद नहीं कर सका और यह लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रहा। शिवाजीके पौत्र साहूकी १७४९ ई० मृत्यु हो जाने पर उनकी वंश

परम्परा समाप्त हो गयी परन्तु उस समय तक मराठा राज्यका शासन पेशवाओं (दे०) के हाथमें आ गया था। पेशवाओंने पूनाको राजधानी बना कर १८१८ ई० तक महाराष्ट्रपर शासन किया। १८१८ ई०में अंतिम पेशवा बाजीराव द्वितीय अंग्रेजोंसे हार गया और गद्दीसे उतार दिया गया। परन्तु इसके बाद भी मराठा भारतीय राजनीतिमें एक मुख्य शक्ति बने रहे। मराठा शासक बड़ोदाके गायकवाड़, ग्वालियरके शिन्दे, इन्दौरके होल्कर तथा नागपुरके भोंसले ब्रिटिश भारतीय सरकारके प्रत्यक्ष तथा इंग्लैण्डके राजाके अप्रत्यक्ष आधिपत्यमें, आश्रित राजाकी हैसियतसे मध्य तथा दक्षिणी भारतके काफी बड़े भागपर राज्य करते रहे। १९४८-४९ ई०में इन सब देशी रियासतोंका भारतीय गणराज्यमें विलयन हो गया।

महावंश—श्रीलंका (सिंहल) का इतिहास ग्रन्थ। यह राजा महानामके राज्यकालमें लिखा गया जिसने ४५८ ई०से ४८० ई० तक राज्य किया। श्रीलंकाका प्राचीन इतिहास दर्शाते समय स्थान-स्थानपर भारत तथा उसके इतिहासका उल्लेख किया गया है। वास्तवमें अशोक तथा श्रीलंकामें बौद्ध धर्मके प्रचारके बारेमें विस्तृत सूचना महावंशसे ही प्राप्त की गयी है।

महावत खाँ—मुगल कालकी एक उपाधि। यह विविध समयोंमें विविध व्यक्तियोंको प्रदान की गयी जिसे प्राप्त करनेवाले एक व्यक्तिने सबसे अधिक ख्याति और प्रतिष्ठा पायी, वह जमानबेग नामक योग्य सैनिक था। बादशाह जहाँगीरने तख्तनशीन होनेके बाद ही १६०५ ई०में उसे यह उपाधि प्रदान की। प्रारम्भमें वह बहुत ही स्वामिभक्त और योग्य सिपहसालार सिद्ध हुआ। उसे राणा अमर सिंहसे युद्ध करनेके लिए मेवाड़ भेजा गया। उसने कई घमासान लड़ाइयोंमें उसे हराया। मेवाड़से लौटने पर उसे दक्खिन भेजा गया। उसे वहाँके बागी सूबेदार खानखानाको अपने साथ राजधानी लानेका काम सौंपा गया। यह कार्य उसने बड़े युक्तिकौशलके साथ सफलतापूर्वक सम्पन्न किया।

जैसे-जैसे जहाँगीरपर नूरजहाँका प्रभाव बढ़ता गया, वैसे-वैसे महावत खाँपर जहाँगीरकी कृपादृष्टि कम होती गयी। मलका नूरजहाँके पिता और भाई, दोनों महावत खाँके विरोधी थे। अगले बारह साल तक बादशाहने महावत खाँको कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं सौंपा। इससे वह हताश होने लगा। फिर भी शाहजादा खुर्रमने जब जहाँगीरके खिलाफ बगावत की, तो महावत खाँ उसे दबानेके लिए शाही फौज लेकर गया। उसने बागी शाहजादेको पहले दक्खिनमें बिलोचपुरके युद्धमें और फिर इलाहाबादके निकट डमडमकी लड़ाईमें हराया। इन विजयोंसे मलका नूरजहाँका उसके प्रति विरोध भाव और बढ़ गया और उसे काबुलकी सूबेदारीसे हटाकर बंगाल भेजा गया। इससे महावत खाँ इतना भड़क उठा कि उसने १६२६ ई०में दिल्लीका तख्त उलट देनेकी कोशिश की। जहाँगीर जिस समय काबुल जा रहा था, वह उसे अपनी हिरासतमें ले लेनेमें सफल हो गया। परन्तु नूरजहाँ महावत खाँसे कहीं अधिक चालाक थी। उसने शीघ्र बादशाहको हिरासतसे छुड़ा लिया और दरबारमें महावत खाँका प्रभाव समाप्त हो गया।

महाबत खाँ हताश होकर शाहजादा खुर्रमसे मिल गया, जिसने १६२६ ई०में बगावत कर दी। परन्तु उसके साथ जहाँगीरका कोई युद्ध नहीं हुआ। १६२७ ई०में जहाँगीरकी मृत्यु हो गयी। शाहजहाँके तख्तपर बैठनेपर महावत खाँको उच्च पदोंपर नियुक्त किया गया और उसे खानखानाकी पदवी दी गयी। महावत खाँने दिल्लीकी गद्दीके लिए होनेवाले उत्तराधिकार युद्धमें शाहजहाँका समर्थन किया, बुन्देलखंडमें एक बगावतको कुचला, दौलताबादपर घेरा डाला और उसपर दखल कर लिया। इस प्रकार उसने अहमदनगरको पूरी तौरसे मुगल साम्राज्यके अधीन बना दिया। यह महावत खाँकी अंतिम सफलता थी। वह मुगलोंका बहुत ही योग्य सिपहसालार था। उसने बीजापुरको भी जीतनेकी कोशिश की, परंतु विफल रहा। इसके लिए बादशाहने उसकी तंबीह की। इस अपमानसे वह बहुत दुःखी हुआ और १६३४ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी।

महावीर—अथवा वर्धमान महावीर, जो जैन धर्मके प्रवर्तक थे। उनका जन्म उच्च क्षत्रिय कुलमें हुआ था जो वैशाली तथा मगधके राजवंशसे सम्बन्धित था। उनका पहला नाम वर्धमान रखा गया। उनकी जन्मतिथि तथा निर्वाण तिथि निश्चित रूपसे ज्ञात नहीं है, परन्तु इतना निश्चित है कि जन्म बिम्बिसार (दे०) के राज्यकालमें हुआ और निर्वाण बिम्बिसारके पुत्र अजातशत्रु (दे०)के राज्यकालमें, गौतम बुद्धका निर्वाण होनेसे कुछ पहले हुआ। वे कुछ वर्ष गृहस्थ जीवनमें रहे। तीस वर्षकी अवस्थामें उन्होंने गृह त्याग किया और नग्न अनागार श्रमण बन गये। उन्होंने बारह वर्ष तक दुष्कर तप किया, जिसके फलस्वरूप उन्हें पूर्ण ज्ञानकी प्राप्ति हुई, जिसे 'केवलज्ञान' कहते हैं। इसके बाद वे केवली (केवल ज्ञानके धारक), निर्ग्रन्थ (ग्रन्थियोंसे रहित), जिन (इन्द्रियजेता) तथा

महावीर कहलाने लगे। अगले तीस वर्षों तक वे देशमें चारों ओर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए सद्धर्मका उपदेश देते रहे। उन्होंने जिस धर्मका उपदेश दिया, उसे आजकल जैनधर्म कहते हैं। उन्होंने राजा अजातशत्रुके राजकालमें ७२ वर्षकी अवस्थामें बिहारके पटना जिला स्थित पावापुरीमें निर्वाण प्राप्त किया। निर्वाणकी तिथि अनिश्चित है।

महिला जागरण—का सूत्रपात मुख्य रूपसे बीसवीं शताब्दी-में हुआ। यद्यपि प्राचीन कालमें भारतीय महिलाओंमें शिक्षाका व्यापक प्रचार था तथापि उन्नीसवीं शताब्दीमें पहुँचने तक उनमें अनेक सामाजिक कुरीतियाँ बद्धमूल हो चुकी थीं, यथा, सती प्रथा, जन्मते ही कन्याओंकी हत्या कर देना, बाल-विवाह, विधवाओंकी दयनीय दशा, पर्दा प्रथा तथा बहु-विवाह प्रथा। सती प्रथा तथा शिशु-हत्या उन्नीसवीं शताब्दीके द्वितीय चतुर्थांशमें कानून बनाकर बन्द कर दी गयी। पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागरकी प्रेरणासे कानून बनाकर सहवास की आयु बढ़ा दी गयी तथा हिन्दू विधवाओंके पुनर्विवाहको वैध करार दे दिया गया। महिलाओंके उत्थानके मार्गमें सबसे बड़ी बाधा उनके बीच फैली निरक्षरता थी। ईसाई मिशनरियों, ब्राह्म-समाज तथा आर्य-समाज जैसी समाज-सुधारक संस्थाओं तथा उदारमना भारतीयोंके प्रयाससे क्रमिक रीतिसे महिलाओंमें अशिक्षाका उन्मूलन किया गया। १८४९ ई० में लड़कियोंकी शिक्षाके लिए बेथ्यून कालेज-की स्थापना की गयी। इसके बाद इस प्रकारकी अनेक महिला शिक्षा-संस्थाएँ खोली गयीं। मानवशास्त्र, चिकित्सा, विज्ञानादिकी शिक्षा संस्थाओंमें सहशिक्षाकी व्यवस्था की गयी। प्रो० कर्वेने पूनामें एक महिला विश्व-विद्यालयकी स्थापना की।

देशकी राजनीतिमें उदारतावादी प्रवृत्तियोंका समा-वेश होनेके साथ विधान मण्डलोंके लिए जन-प्रतिनिधियों-को चुननेमें महिलाओंको भी मताधिकार प्राप्त होने लगा। इस समय प्रत्येक वयस्क पुरुषको ही नहीं, वरन प्रत्येक वयस्क महिलाको भी समान मताधिकार प्राप्त है। इस दिशामें स्वतन्त्र भारत इंग्लैण्ड तथा कई यूरोपीय देशोंसे आगे निकल गया है। एक प्रख्यात भारतीय महिला इंग्लैण्ड तथा सोवियत संघमें राजदूतके पदपर रह चुकी हैं, यही नहीं उन्होंने संयुक्त राष्ट्र-संघमें भी भारतका प्रतिनिधित्व किया है। एक अन्य विख्यात भार-तीय महिला इस समय भारतकी प्रधान-मन्त्री हैं। एक अन्य प्रख्यात महिला भारतके एक प्रमुख राज्यमें राज्य-पालके पदको सुशोभित कर रही हैं। स्वतन्त्र भारतमें कानून बनाकर हिन्दुओंमें बहु-विवाहपर रोक लगा दी गयी है तथा पिताकी सम्पत्तिमें पुत्रीको भी उत्तरा-धिकार प्रदान कर दिया गया है। मुसलमान स्त्रियोंको छोड़कर अन्य सभी भारतीय स्त्रियोंको अब उतनी ही स्वतन्त्रता प्राप्त है जितनी भारतीय पुरुषोंको। राष्ट्रको प्रगतिके पथपर अग्रसर करनेमें भारतीय महिलाएँ भी अब पुरुषोंके साथ कन्धेसे कंधा भिड़ाकर महत्त्वपूर्ण योग-दान कर रही हैं। (**कई राज्योंमें महिलाएँ मुख्य-मंत्रीके पदको सुशोभित कर चुकी हैं। भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा भारतीय पुलिस सेवामें भी अनेक महिलाएँ उच्च पदोंपर आसीन हैं।** —सं०)

महिला सिपाही—इनकी भरती अठारहवीं शताब्दीकी अन्तिम तिमाहीमें हैदराबादके निजामने की। कहा जाता है कि इन्होंने १७९५ ई० में मराठों और निजामके बीच कुर्दलाके युद्धमें भाग लिया था। बताया जाता है कि ये महिला सिपाही दिलेरीमें निजामी फौजके पुरुषवर्गसे कमजोर नहीं साबित हुईं।

महीपाल प्रथम (लगभग ९७८–१०३० ई०)—बंगालके पालवंशका नवाँ राजा। उसके राज्यकालमें पाल राज्य टूटने लगा था, क्योंकि दक्षिण-पश्चिमी बंगालपर सेन वंश तथा पूर्वी बंगालपर चन्द्र वंशका राज्य हो गया। अन्तमें १०२३ ई० में चोल राजा राजेन्द्रने बंगालपर चढ़ाई की और गंगा तट तकके प्रदेशोंको जीत लिया। कलचुरि राजा गांगेयदेवने भी उसके राज्यपर आक्रमण किया। इसके बावजूद वह देवपालके बाद पालवंशका सबसे बड़ा शासक हुआ। उसने बनारस, नालन्दा, उत्तरी तथा पश्चिमी बंगालमें अनेक जनोपयोगी निर्माण कार्य कराये।

महीपाल द्वितीय—पाल राजा महीपाल प्रथम (दे०) का प्रपौत्र। वह राजा विग्रहपालके तीन पुत्रोंमें सबसे बड़ा था, अतः पिताके बाद वही उत्तराधिकारी हुआ। परन्तु उसने बहुत थोड़े समय (लगभग १०७०–७५ ई०) तक राज्य किया। उसका शासन अत्यन्त निर्बल था और विद्रोही कैवर्त्त नेता दिव्यसे युद्धमें वह पराजित हुआ और मारा गया।

महेन्द्र पाल— (लगभग ८९०–९१० ई०)—गुर्जर-प्रतिहार राजा मिहिर भोज (दे०) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। उसने सौराष्ट्रसे लेकर अवध तक फैले अपने पिताके विशाल साम्राज्यको न केवल अखंडित रखा, बल्कि पाल राजाओंको मगधसे निकाल बाहर किया और पश्चिम

बंगालपर चढ़ाई की, जहाँ उसका एक शिलालेख मिलता है। वह विद्वानोंका बड़ा आदर करता था और उनका आश्रयदाता था। संस्कृतके प्रसिद्ध नाटक 'कर्पूरमंजरी'का रचयिता राजशेखर उसका गुरु और राजसभाका सम्मानित सदस्य था।

महेन्द्र, राजकुमार—सम्राट् अशोक (दे०) का पुत्र अथवा भाई। उसने अपनी बहिन संघमित्राके साथ लगभग २५१ ई० पू०में सिंहल (श्रीलंका) की यात्रा की और वहाँ बौद्ध धर्मका प्रचार किया। उसने राजा तिस्स, राज परिवारके सदस्यों तथा बहुतसे सामान्य नागरिकोंको बौद्धधर्ममें दीक्षित किया। अशोकके किसी शिलालेखमें उसके नामका उल्लेख नहीं है, परन्तु सिंहली इतिहास ग्रन्थों— दीपवंश, महावंश तथा श्रीलंका स्थित अनुराधापुरमें उसकी स्मृतिमें सिंहलियों द्वारा स्थापित महाविहारसे उसके अस्तित्व और महान् सफलताओंका पता चलता है। उसकी मृत्यु सिंहलमें ही २०४ ई० पू०में हुई।

महेन्द्रवर्मा प्रथम (लगभग ६००–२५ ई०)—काँचीके पल्लव राजा सिंहविष्णुका पुत्र तथा उत्तराधिकारी। उसने अनेक मन्दिरों तथा गुफाओंका निर्माण कराया, आर्काट और अर्कोनमके बीच महेन्द्रवाडीके नामसे नये नगरकी स्थापना की और उसके निकट एक विशाल जलाशयका निर्माण कराया। लगभग ६१० ई० में चालुक्य राजा पुलकेशी द्वितीय (दे०) ने उसे पराजित कर दिया और वेङ्गि उससे छीन लिया। वह प्रारम्भमें जैन धर्मानुयायी था, पर बादमें शैव हो गया।

महेन्द्रवर्मा द्वितीय—पल्लव राजा महेन्द्रवर्मा (दे०) का पौत्र तथा नरसिंहवर्मा प्रथम (दे०) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी। लगभग ६६८ ई० में वह सिंहासनपर बैठा और केवल छः साल राज्य किया। चालुक्य राजा विक्रमादित्यसे वह बुरी तरह पराजित हो गया।

महोबा—उत्तर प्रदेशके हमीरपुर जिलेका एक पुराना नगर। यह चंदेलवंश (दे०) के राजाओंकी राजधानी रहा। उन्होंने नवीं शताब्दीसे तेरहवीं शताब्दी ई० तक राज्य किया। उस समय यह क्षेत्र जेजाक भुक्ति अथवा जुझौती कहलाता था। चंदेल राजाओंने महोबामें कई सुन्दर मन्दिरोंका निर्माण कराया। इन मंदिरोंके ध्वंसावशेष उस कालकी श्रेष्ठ वास्तुकला तथा मूर्तिकलाका परिचय देते हैं।

मांटगोमरी, सर राबर्ट (१८०९–८७ ई०)—१८२८ ई० में कम्पनीकी सेवामें नियुक्त हुआ। वह पहले उत्तर पश्चिमी सीमाप्रांतमें और फिर पंजाबमें रहा। पंजाबपर दखल हो जानेके बाद वह उसके प्रशासकीय बोर्डका सदस्य हो गया। गदर छिड़नेपर उसने अपनी ओरसे भारी पहलकदमी की और लाहौर तथा मियाँमीरमें अपनी जिम्मेदारीपर कई हिन्दुस्तानी पलटनोंसे हथियार ले लिये। उसने मुलतान, फीरोजपुर तथा काँगड़ाको भी आनेवाले संकटकी चेतावनी दे दी। वह १८५९ ई० से १८६५ ई० तक पंजाबका लेफ्टिनेंट-गवर्नर रहा। उसने प्रांतमें शांति और व्यवस्थाकी स्थापना करनेमें बड़ी योग्यता प्रदर्शित की। भारतसे अवकाश ग्रहण करनेपर वह इंग्लैण्डमें इंडिया कौंसिल (भारत परिषद्) का सदस्य हो गया और १८८७ ई० में अपनी मृत्यु तक उसी पदपर रहा।

मांटेग्यू, एडविन सैमुएल (१८७९–१९२४ ई०)—लायड जार्जके मंत्रिमंडलमें १९१७ ई० से १९२२ ई० तक भारतमंत्री। २० अगस्त १९१७ ई० को उसने कामन्स सभामें घोषणा की कि भारतमें क्रमिक रीतिसे उत्तरदायी सरकारकी उपलब्धि ब्रिटिश सरकारकी नीति है। इस नीतिको क्रियान्वित करनेके लिए उसने १९१७–१८ ई० में भारतकी यात्रा की, वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्डके साथ सारे देशका दौरा किया और भारतके संवैधानिक सुधारोंकी रिपोर्ट तैयार करनेमें मुख्य भाग लिया। इसी रिपोर्टमें प्रतिपादित सिद्धांतोंके आधारपर १९१९ ई० का गवर्नमेन्ट आफ इंडिया ऐक्ट तैयार किया गया। उसकी निजी डायरी उसकी मृत्युके छः साल बाद १९३० ई० में प्रकाशित हुई। इस डायरीसे रिपोर्टकी राजनीतिक पृष्ठभूमिपर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

मांटेग्यू और प्रधानमंत्री लायड जार्जमें इस बातको लेकर मतभेद था कि भारतीय जनमतको ब्रिटिश सरकारकी तुर्की सम्बंधी नीतिको किस सीमा तक प्रभावित करनेकी अनुमति दी जानी चाहिए। १९२२ ई० में उसने मंत्रिमंडलकी अनुमतिके बिना ही संधिके विरुद्ध भारतको प्रतिवाद प्रकाशित करनेका अधिकार दे दिया। लायड जार्जने इसे परंपराका उल्लंघन माना और मांटेग्यूसे इस्तीफा मांग लिया। १९२२ ई० में आम चुनावमें अपनी सीट हार जानेपर उसके राजनीतिक जीवनका अंत हो गया। १९२४ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट—भारतमें संवैधानिक सुधारोंके विषयमें १९१८ ई० में तैयार की गयी।

इसी रिपोर्टके आधारपर १९१९ का गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्ट (दे०, 'भारतमें ब्रिटिश प्रशासन')

तैयार किया गया, जिसमें केन्द्रीय सरकार तथा प्रांतीय सरकारके कार्योंका स्पष्ट विभाजन किया गया, सभी विधानमंडलोंमें प्रत्यक्ष निर्वाचनके आधारपर चुने गये जन-प्रतिनिधियोंका बहुमत स्थापित कर दिया गया, वाइसरायकी एक्जीक्यूटिव कौंसिलका विस्तार करके उसमें और अधिक भारतीय सदस्योंकी नियुक्ति की गयी तथा प्रांतोंमें द्वैध शासन (दे०) का सूत्रपात किया गया।

मांडू—मालवा (दे०) का एक नगर। मालवाके गोरीवंशके सुल्तान हुशंगशाह (१४०५–३५ ई०) ने इसे अपनी राजधानी बनाया। यह पहाड़ीकी चोटीपर स्थित दुर्ग था, जिसका परकोटा लगभग २५ मील लम्बा था। इस दुर्ग-नगरमें अनेक सुन्दर मसजिदों तथा महलों—जैसे, जामी मसजिद, हिंडोला महल, जहाजमहल, बाज-बहादुर और रूपमतीके महलके ध्वंसावशेष मिलते हैं। बाजबहादुर और रूपमतीके महल बलुआ पत्थर और संगमरमरके बने हैं। बादशाह जहाँगीरको यह नगर बड़ा पसंद आया और वह १६१७ ई० में यहाँ ठहरा। उसने यहाँकी कुछ इमारतोंकी मरम्मत भी करायी थी।

माउण्टबेटेन, लुई, लार्ड—जन्म १६०० ई० में विण्डसरमें बैटेनबर्गके प्रिंस लुई तथा महारानी विक्टोरियाकी पौत्री, हेसकी राजकुमारी विक्टोरियाका पुत्र। १६१३ ई० में उसने ब्रिटिश नौसेनामें प्रवेश किया और योग्यता तथा चुस्तीके कारण द्वितीय विश्वयुद्धमें नौसेनाका उच्च कमांडर नियुक्त हुआ। १६४३ ई० में उसे दक्षिण-पूर्वी एशियामें मित्रराष्ट्रीय सेनाओंका सर्वोच्च कमांडर नियुक्त कर दिया गया। वह इस पदपर १६४६ ई० तक रहा। उसने जापानके विरुद्ध युद्धका सफलतापूर्वक संचालन किया, जिसके फलस्वरूप बर्मापर फिरसे अधिकार कर लिया गया।

वह १६४७ ई० में भारतका वाइसराय नियुक्त हुआ। उसने १५ अगस्त १६४७ ई० को भारतका भारत तथा पाकिस्तानके रूपमें विभाजन करके ब्रिटिश हाथोंसे भारतीय हाथोंमें सत्ता हस्तांतरणके कार्यमें भारी युक्तिकौशल, चुस्ती तथा राजनीतिक सूझ-बूझका परिचय दिया। वह भारतके नये राज्यका गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। इस हैसियतसे उसने देशी राजाओंको अपनी रियासतोंको भारत-संघ अथवा पाकिस्तानमें विलयन करनेके लिए प्रेरित करनेमें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। बादमें जब पाकिस्तानने सीमाप्रांतके कबीलेवालोंको कश्मीरपर हमला करनेमें मदद दी, उसने भारत सरकारको विवाद संयुक्त राष्ट्रसंघकी सुरक्षा परिषद्में पेश करनेकी सलाह दी और इस प्रकार भारत तथा पाकिस्तानके बीच कश्मीर-विवाद उत्पन्न करनेमें मदद की। १६४८ ई० में भारतके गवर्नर-जनरलके पदसे अवकाश ग्रहण करनेपर ब्रिटिश नौ-सेनाके उच्चपदोंपर रहा। १६५५ से १६६५ ई० तक वह ब्रिटेनका प्रधान नौ-सेनाध्यक्ष रहा।

माधवराव—पेशवा बालाजीरावका दूसरा लड़का, जो उसके मरनेपर १७६१ ई० में पेशवा बना। उस समय उसकी उम्र केवल १७ वर्ष थी। पानीपतकी तीसरी लड़ाईमें मराठोंकी जबर्दस्त हारके बाद ही वह पेशवा बना। प्रारम्भमें उसका चाचा रघुनाथराव उसकी ओरसे शासन करता रहा, परंतु शीघ्र ही उसने शासन-सूत्र अपने हाथमें ले लिया। धीरे-धीरे उसने पानीपतकी हारके फलस्वरूप पेशवाकी खोयी हुई सत्ता और प्रतिष्ठा फिरसे स्थापित कर दी। निजामको दो बार पराजयका मुँह देखना पड़ा और पेशवाकी शक्ति तोड़ देनेका उसका प्रयत्न विफल रहा। मैसूरका हैदरअली (दे०) भी, जिसने दक्षिणमें मराठोंके इलाकोंपर दखल करना शुरू कर दिया था, दो बार पराजित हुआ। बरारका भोंसले राजा भी, जो पेशवाके विरुद्ध निजाम और हैदरअलीसे गठबंधन किये हुए था, पराजित हुआ और उसने पेशवाकी अधीनता स्वीकार कर ली। पेशवा माधवरावको सबसे बड़ी सफलता उत्तरी भारतमें मिली, जहाँ १७७१–७२ ई० में उसकी सेनाने मालवा तथा बुंदेलखंडपर फिरसे अधिकार कर लिया, राजपूत राजाओंसे चौथ वसूल की, जाटों और रुहेलोंका दमन किया, दिल्लीपर फिरसे दखल कर लिया और भगोड़े मुगल बादशाह शाहआलम द्वितीय (१७६६–१८०६ ई०) को, जो इलाहाबादमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी पेन्शनपर रह रहा था, फिरसे दिल्लीके तख्तपर बैठाया। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि पानीपतकी तीसरी लड़ाई (दे०) के फलस्वरूप मराठोंकी शक्तिको जितनी क्षति पहुँची थी, उस सबकी भरपाई कर ली गयी है। इसी समय अचानक १७७२ ई० में महान् पेशवा माधवरावका देहान्त हो गया। जैसा कि ग्राण्ट डफने लिखा है 'मराठा साम्राज्यके लिए पानीपतका मैदान उतना घातक सिद्ध नहीं हुआ जितना इस श्रेष्ठ शासकका असामयिक देहावसान।'

माधवराव नारायण (जिसे माधव तृतीय भी कहते हैं)—पेशवा नारायणराव (दे०) के मरनेके बाद पैदा हुआ और १७७४ ई० में पिताका उत्तराधिकारी बना। उस

समय वह शिशु था, इसलिए शासनकार्य चलानेके लिए एक समिति नियुक्त कर दी गयी और नाना फड़नवीस उसका प्रधान नियुक्त हुआ। माधवरावका दादा (उसके पिता नारायणरावका चाचा) राघोबा ईस्ट इंडिया कम्पनीसे षड्यंत्र करके स्वयं पेशवा बननेका प्रयत्न करने लगा। इसके फलस्वरूप पहला मराठा-युद्ध (१७७५-८२ ई०) हुआ जिसका अंत सालबाईकी संधि (१७८२ ई०) से हुआ। इस संधिके फलस्वरूप पेशवाका राज्य अखंडित रहा। पेशवाके बालक होनेके कारण सत्तापर अधिकार प्राप्त करनेके लिए महादजी शिन्दे और नाना फड़नवीसमें गहरी प्रतिद्वन्द्विता चली, जिससे मराठोंकी शक्ति क्षीण हो गयी। १७९४ ई० में महादजी शिन्देकी मृत्यु होनेपर यह आपसी प्रतिद्वंद्विता समाप्त हुई। अगले साल (१७९५ ई० में) मराठोंने खर्डा (दे०) की लड़ाईमें निजामको पराजित किया। परंतु तरुण पेशवा माधवराव नारायण नाना फड़नवीसकी कड़ी निगरानीमें रहनेके कारण जिन्दगीसे ऊब गया था और १७९५ ई० में उसने आत्महत्या कर ली।

माधवराव शिन्दे—ग्वालियर (दे०) का १८८६ से १९२५ ई० तक शासक रहा। वह उदार शासक था और उसने रियासतके शासन-प्रबंधमें कुछ उपयोगी सुधार किये।

माधवाचार्य—सुप्रसिद्ध वेद-भाष्यकार सायणका भाई। वह प्रकांड विद्वान् और प्रसिद्ध धर्म-शास्त्रकार था। उसने अनेक ग्रंथोंकी रचना की। वह विजयनगर (दे०) के दूसरे राजा बुक्क (राज्यारोहण १३५४ ई०) का मंत्री भी था।

माधवाचार्य—हुगली जिलेके त्रिवेणी स्थानका निवासी एक बंगाली कवि। वह अकबरका समसामयिक और 'चंडी-मंगल' का रचयिता था। मालूम पड़ता है कि उसे मुगल बादशाहका कुछ सीमा तक आश्रय प्राप्त था।

मानवबलि—यह सामाजिक कुप्रथा उड़ीसाकी कुछ जन-जातियोंमें प्रचलित थी। लार्ड हार्डिंज प्रथम (१८४४-४८ ई०) के शासनकालमें इस सामाजिक कुरीतिको मिटानेकी दिशामें कदम उठाये गये और जान कैंपबेलके नेतृत्वमें १८४७ से लेकर १८५४ ई० के बीच इसे मिटा दिया गया।

मानसिंह—ग्वालियरके तोमरवंशी राजपूतोंमें सबसे प्रसिद्ध राजा। उसने १४८६ ई० से १५१७ ई० तक राज्य किया। वह महान् योद्धा तथा भवन-निर्माता था। जब तक वह जीवित रहा उसने दिल्लीके सुल्तानोंके साथ-साथ जौनपुर तथा मालवाके मुसलमान शासकोंको अपने राज्यसे दूर रखा और ग्वालियरकी स्वतंत्रता बनाये रखी। मृगनयनी उसकी प्रिय रानी थी। दोनोंने ग्वालियरको संगीत आदि कलाओंका एक महान् केन्द्र बना दिया। भारतके सर्वोत्तम गायकों और वादकोंका ग्वालियरमें जमघट लगा रहता था। मानसिंहने ग्वालियरका भव्य महल बनवाया। उसका विशाल पूर्वी द्वार उसके निर्माताके विशाल व्यक्तित्वका प्रतीक है।

मानसिंह, कुँवर एवं राजा—आमेरके राजा बिहारीमल (दे०) का गोद लिया हुआ पौत्र। १५६२ ई० में राजा बिहारीमलने बादशाह अकबरकी अधीनता स्वीकार कर ली और अपनी लड़की उसे ब्याह दी। उसी समय कुँवर मानसिंहने भी बादशाहकी सेवा स्वीकार कर ली। मानसिंहने १६१४ ई० में दक्खिनमें मृत्यु होने तक मुगल साम्राज्यकी बहुमूल्य सहायता की। वह महान् सेनापति था और उसने मुगलोंको अनेक युद्धोंमें चतुर्दिक् विजय दिलायी। उसे काबुल तथा बंगाल जैसे महत्त्वपूर्ण सूबोंकी सूबेदारी सौंपी गयी। उसने अफगानोंको पराजित कर उनसे मुगलोंकी अधीनता स्वीकार करायी। वह मुगल साम्राज्यका एक प्रमुख समर्थक हिन्दू था।

मानसेल, चार्ल्स जी०—पंजाबपर १८४९ ई०में अधिकार करनेके बाद उसका शासन-प्रबंध करनेके लिए लार्ड डलहौजीने जो बोर्ड नियुक्त किया था, उसका सदस्य। वह १८५१ ई०तक बोर्डका सदस्य रहा।

मान्यखेट—आधुनिक नाम मालखेड़, जो आंध्रप्रदेशका ऐतिहासिक नगर है। राजा अमोघ वर्ष (लगभग ८१५-७७ ई०) ने इसे राष्ट्रकूटोंकी राजधानी बनाया। इस नगरमें अनेक जैन मंदिर हैं।

मान्सन, कर्नल सर जार्ज (१७३०-३६ ई०)—कम्पनीकी सेवामें एक फौजी अफसर बनकर १७५८ ई०में भारत आया। १७६० ई०में जब पांडिचेरीका घेरा डाला गया, वह सहायक कमांडर था। १७७४ ई०में वह रेग्युलेटिंग ऐक्ट (दे०)के अंतर्गत गवर्नर-जनरलकी कौंसिलका सदस्य नियुक्त किया गया। वह आमतौरसे वारेन हेस्टिंग्सके विरुद्ध अपने दो सहयोगियों फ्रांसिस और क्लेवरिंगका साथ दिया करता था। वारेन हेस्टिंग्स उसे अपना खतरनाक विरोधी मानता था। किन्तु सितम्बर १७७६ ई०में उसने इस्तीफा दे दिया और इसके बाद ही बंगाल, हुगली (दे०)में उसकी मृत्यु हो गयी।

मामल्लपुरम्—नगरकी स्थापना पल्लव राजा नरसिंह वर्मा (लगभग ६२५-४५ ई०) ने की। इसे अब महाबलिपुरम् कहते हैं। नगरकी सबसे आश्चर्यजनक कृति सात

रथ हैं, जो चट्टानोंको तराश कर बनाये गये हैं। प्रत्येक रथपर शिल्पकलाके सुंदर नमूने देखनेको मिलते हैं। संभवतः दक्षिण-पूर्व एशियाके चम्पा (दे०), कम्बोडिया (दे०) आदि देशोंमें वास्तुकलाकी जो कृतियाँ मिलती हैं, उनकी प्रेरणा मामल्लपुरम्की कृतियोंसे ली गयी थी।

मामुलनार—एक प्राचीन तमिल कवि, जो मौर्यों (दे०)के चार शताब्दी बाद हुआ। उसने अपनी रचनाओंमें दक्षिण भारतमें विख्यात मौर्योंकी राजशक्तिका बार-बार उल्लेख किया है।

मारवाड़—देखिये, 'जोधपुर'।

मार्टिन, रेवरेंड हेनरी—भारतमें सबसे पहले जो अंग्रेज ईसाई पादरी पहुँचे, उनमेंसे एक। जिस समय वह आया, ईस्ट इंडिया कम्पनी ईसाई पादरियोंको अपने क्षेत्रमें रहनेकी अनुमति नहीं देती थी। कम्पनीको भय था कि उनके द्वारा ईसाई धर्मका प्रचार करनेसे भारतीय लोग कम्पनीके विरुद्ध भड़क उठेंगे। इसलिए हेनरी मार्टिन बंगालमें ईस्ट इंडिया कम्पनीका चैपलिन (गिरजाघरमें धार्मिक कृत्य सम्पादन करनेवाला) नियुक्त हो गया। वह उन्हीं धार्मिक कृत्योंको सम्पादित करता था जो उसके पदके अनुरूप थे। १८१३ ई०में ईसाई पादरियों द्वारा धर्म प्रचारपर लगी पाबंदी उठा ली गयी।

मार्तंड मंदिर—कश्मीरमें राजा ललितादित्य (दे०)ने बनवाया। उसने कश्मीरपर ७२४ ई०से ७६० ई० तक राज्य किया।

मार्ले, जान (१८३८–१९२८ ई०)—१९०५ से १९१० ई० तक भारत-मंत्री रहा। १९०७ ई०में उसने जहाँ एक ओर भारतमें आतंकवादियोंके विरुद्ध कड़ी कारखाई करनेका समर्थन किया, वहीं दूसरी ओर लंदनमें भारत-मंत्रीकी कौंसिलमें दो भारतीयों तथा वाइसरायकी एक्जीक्यूटिव कौंसिलमें एक भारतीयकी नियुक्ति करके शिक्षित भारतीयोंको संतुष्ट करनेका यत्न किया। उसने भारतमें संसदीय शासन-व्यवस्थाकी स्थापना करनेका कोई सरकारी इरादा होनेसे इनकार किया, किंतु १९०९ ई०का गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्ट पास करके भारतके संविधानमें काफी परिवर्तन कर दिया। यह मार्ले-मिण्टो सुधार कानूनके नामसे विख्यात है। इसके अंतर्गत भारतीय संविधानमें पहलेसे अधिक बड़ी संख्यामें निर्वाचित जन-प्रतिनिधियोंकी व्यवस्था की गयी, विधान-मंडलोंमें प्रश्न पूछने, बजटपर बहस करने तथा प्रस्ताव पेश करनेका अधिकार दे दिया गया। लार्ड मिण्टो द्वितीय (दे०)के साथ-साथ वह भी भारतीय विधान-मंडलोंमें साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी प्रणाली आरम्भ करनेके लिए जिम्मेदार था। दस वर्ष बाद, भारतमंत्रीके पदसे हट जानेके पश्चात् उसने मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों (दे०)को असामयिक बताया था। वह युद्ध-विरोधी था और १९१४ ई०में प्रथम विश्वयुद्ध छिड़नेपर उसने सार्वजनिक जीवनसे अवकाश ग्रहण कर लिया। वह प्रसिद्ध लेखक भी था और १९२३ ई०में मृत्युसे पहले उसकी गणना सबसे वयोवृद्ध अंग्रेजी साहित्यकारोंमें की जाने लगी थी। अंग्रेजी भाषामें उसकी मुख्य पुस्तकें 'ग्लैडस्टोनका जीवन' (१९०३ ई०), 'वाल्टेयर' (१८७२ ई०), 'रूसो' (१८७३ ई०), 'काबडेन' (१८८१ ई०), 'बर्क' (१८७९ ई०), 'वालपोल' (१८८९ ई०), 'क्रामवेल' (१९०० ई०) तथा १९१७ ई०में प्रकाशित उसके 'संस्मरण' (दो खंड) हैं।

मार्ले-मिन्टो सुधार—देखिये, 'भारतमें ब्रिटिश प्रशासन'।

मार्शमैन, जान—एक अंग्रेज ईसाई पादरी जो बैप्टिस्ट मिशनका सदस्य था। वह श्रीरामपुरमें बस गया जो उस समय डच लोगोंके कब्जेमें था। उसने 'फ्रेंड आफ इंडिया' नामक एक अंग्रेजी पत्र निकाला, जिसका उद्देश्य ईसाई धर्मका प्रचार तथा समाज-सुधार था। वह भारतमें शिक्षा-प्रचारपर बल देता था और कलकत्तामें एक विश्वविद्यालयकी स्थापनाके प्रस्तावका समर्थक था।

मालगुजारी—अथवा भूमिकर, अत्यन्त प्राचीन कालसे भारतमें सरकारकी आयका मुख्य स्रोत रहा है। राज्यको भूमिकी उपजका एक भाग करके रूपमें लेनेका अधिकार है, यह सिद्धान्त भारतमें सदासे सर्वमान्य रहा है। मौर्य, गुप्त आदि हिन्दू राजाओंके शासनकालमें भूमिकी उपजका एक छठाँ भाग करके रूपमें लिया जाता था। मुसलमानी शासन-कालमें भूमिकर बहुधा मनमाने ढंगसे बढ़ा दिया जाता था। अकबरने मालगुजारीकी दर भूमिकी उपजका एक तिहाई भाग निश्चित कर दी और समूचे मुगल शासन-कालमें यही दर वैध मानी जाती थी। परंतु व्यवहार रूपमें मालगुजारीकी दर तथा मालगुजारीकी वसूलीकी व्यवस्थामें अनगिनत उलट-फेर होते रहते थे।

ब्रिटिश शासन-कालमें मुगल कालकी व्यवस्था कुछ आवश्यक संशोधनोंके साथ स्वीकार कर ली गयी। सिद्धांत रूपमें मालगुजारीकी दर भूमिकी उपजका कमसे कम एक तिहाई भाग निर्धारित रखी गयी और उसे सरकारकी आयका मुख्य स्रोत माना गया। परन्तु अंग्रेजोंने मुगलोंकी अपेक्षा समय-समयपर भूमिकी पैमाइश करानेकी कहीं अधिक विशद् व्यवस्था की। भूमिकी पैमाइश सबसे

पहले सोलहवीं शताब्दीमें शेरशाह सूर (दे०) ने करायी थी। उसने भूमिकी समस्त पैदावार और नकदीमें उसका मूल्य निश्चित कर दिया और सरकारके भागका समस्त भूमि-कर सख्तीसे वसूल करनेकी व्यवस्था की। ब्रिटिश शासन कालमें भूमि-कर घटानेकी दिशामें कोई कदम नहीं उठाया गया। भारतीय गणराज्यकी वर्तमान सरकारने भूमिकरकी ब्रिटिश व्यवस्था कायम रखी है, यद्यपि सरकार और किसानोंके बीच जमींदार ताल्लुकेदार, जोतदार आदि मध्यवर्तियोंको हटाने और किसानको अपनी जोतका मालिक बनानेकी दिशामें तेज कदम उठाये गये हैं।

मालव–मालवगणका पश्चाद्वर्ती निवासस्थान। मालवगण प्राचीन कालमें भी विख्यात था। यूनानी इतिहासकारोंने संभवतः इसे ही भल्लोईकी संज्ञा दी है। सिकन्दरके आक्रमणके समय हाइड्राओटिस (इरावती अथवा आधुनिक रखी) नदीके दक्षिणी भागमें उसके दाहिने तटपर गणका वास था। जब सिकन्दरने इस गणके नगरोंपर हमला किया, उन्होने, सिकन्दरको जख्मी कर दिया। आक्रमणकारी यवन सेनाने इस गणको पराजित कर दिया और उसके हजारों निरपराध नर-नारियोंको मार डाला। किसी अनिश्चित कालमें यह गण अवन्तीमें आ बसा और उसके नामपर यह क्षेत्र मालव अथवा मालवा कहा जाने लगा। उज्जयिनी मालव की राजधानी बनी। प्रारम्भमें उज्जयिनीमें गणतंत्रात्मक शासन था, बादमें राजतंत्रात्मक शासनकी स्थापना हुई। ईसवी सन्‌की प्रारम्भिक शताब्दियोंमें यहाँ शक क्षत्रपोंका शासन स्थापित हुआ। चौथी शताब्दी ई०में उन्होंने समुद्र गुप्तकी सार्वभौम सत्ता स्वीकार कर ली। समुद्रगुप्तके पुत्र एवं उत्तराधिकारी चंद्रगुप्त द्वितीयने इसे गुप्त साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया। पाँचवी शताब्दीके प्रारम्भमें चीनी यात्री फाहियान (दे०) ने मालवाकी यात्रा की थी। उसने यहाँके लोगोंको सम्पन्न पाया। यहाँकी जलवायु उसे बहुत स्वास्थ्यप्रद लगी और यहाँके सुशासनसे वह बहुत प्रभावित हुआ। गुप्त साम्राज्यके पतनके बाद मालवापर हूणोंका आधिपत्य हो गया। लगभग ५२८ ई०में राजा यशोधर्माने हूणोंको परास्त किया और मालवगणकी प्रसिद्ध तथा प्राचीन नगरी उज्जयिनीको अपनी राजधानी बनाया।

उज्जयिनी हिन्दुओंकी न केवल एक पवित्र नगरी है, वरन् वह विद्याका केन्द्र भी रही है। इसका नाम परंपरागत रूपमें महान् राजा विक्रमादित्य (दे०) और इसके प्रसिद्ध राजकवि कालिदासके साथ जुड़ा हुआ है। मालवागणका यह क्षेत्र धीरे-धीरे मालवाके सुशासित राज्यमें विकसित हो गया। बादकी शताब्दियोंमें यह राज्य पहले चालुक्य राज्य और फिर गूर्जर-प्रतिहार साम्राज्यका एक भाग रहा। १३०१ ई०में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीने इसे दिल्लीकी सल्तनतमें सम्मिलित कर लिया। १४०१ ई०में यह स्वतंत्र मुसलिम राज्य बन गया। १५३१ ई०में इसे गुजरातके सुल्तानने अपने अधीन कर लिया, परन्तु इकतालीस वर्षों बाद अकबरने १५७२-७३ ई०में इसपर चढ़ाई करके इसे मुगल साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया। १७३८ ई०में यह मराठोंके अधिकारमें आ गया और इसपर शिन्दे (दे०) शासन करने लगा। तीसरे मराठा-युद्ध (दे०)में शिन्देके पराभवके बाद यह ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया।

मालविकाग्निमित्र–महाकवि कालिदासका प्रसिद्ध संस्कृत नाटक, जिसकी रचना संभवतः पाँचवी शताब्दी ई०में हुई। इस नाटककी कथावस्तु प्रथम शुंग राजा पुष्यमित्र (दे०) तथा उसके पुत्र अग्निमित्र तथा अग्निमित्र और मालविकाकी प्रेमकथापर आधारित है। इस नाटकसे ऐतिहासिक महत्त्वकी कुछ सामग्री प्राप्त होती है।

मालवीय, पंडित मदनमोहन (१८६१–१९४६ ई०)–प्रमुख राष्ट्रीय नेता, शिक्षाविद् तथा समाजसुधारक। उनका जन्म प्रयागमें हुआ। १८८५ ई०में वे एक स्कूलमें अध्यापक हो गये, परन्तु शीघ्र ही वकालतका पेशा अपना कर १८९३ ई०में इलाहाबाद हाईकोर्टमें वकीलके रूपमें अपना नाम दर्ज करा लिया। उन्होंने पत्रकारिताके क्षेत्रमें भी प्रवेश किया और १८८५ तथा १९०७ ई०के बीच तीन पत्रों—हिन्दुस्थान, इंडियन यूनियन तथा अभ्युदयका सम्पादन किया। जीवनकालके प्रारम्भसे ही वे राजनीतिमें रुचि लेने लगे और १८८६ ई०में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके दूसरे अधिवेशनमें सम्मिलित हुए। दो बार १९०९ तथा १९१८ ई०में कांग्रेसके अध्यक्ष हुए। १९०२ ई०में यू० पी० लेजिस्लेटिव कौंसिलके सदस्य और बादमें लेजिस्लेटिव असेम्बलीके सदस्य चुने गये। वे ब्रिटिश सरकारके निर्भीक आलोचक थे और उन्होंने पंजाबकी दमन नीतिकी तीव्र आलोचना की, जिसकी चरम परिणति जलियाँवालाबाग हत्याकांड (दे०) में हुई। वे कट्टर हिन्दू थे, परन्तु शुद्धि (हिन्दू धर्म छोड़कर दूसरा धर्म अपना लेनेवालोंको पुनः हिन्दू बना लेते) तथा अस्पृश्यता-निवारणमें विश्वास करते थे। वे तीन बार

हिन्दू महासभाके अध्यक्ष चुने गये। उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि १९१५ ई०में बनारसमें हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापना है। विश्वविद्यालयकी स्थापनाके लिए उन्होंने सारे देशका दौरा करके देशी राजाग्रों तथा जनतासे चंदाकी भारी राशि इकट्ठा की थी।

मावली–शिवाजी (दे०)के समयमें पश्चिमी घाटोंमें रहनेवाली एक पहाड़ी जाति, जो बहुत पिछड़ी हुई थी। मावली युवक अत्यन्त वीर, पश्चिमी तथा अपने नये नेताके स्वामिभक्त थे। वे अपने क्षेत्रके सभी पहाड़ी मार्गों तथा भूमिके एक-एक चप्पेसे परिचित थे। अपनी तरुणावस्थामें उन्हींके साथ रहनेके कारण शिवाजीने अपने देशकी भूमिका घनिष्ठ परिचय प्राप्त कर लिया।

मासिरे-आलमगीरी–यह रचना मुहम्मद साकीने की। यह एक प्रकारसे बादशाह औरंगजेब (१६५८–१७०७ ई०) के समय और जीवनपर प्रकाश डालनेवाला समसामयिक इतिहास-ग्रंथ है।

मासूद–गजनीके सुलतान महमूद (दे०)का लड़का। वह प्रसिद्ध विद्वान् तथा इतिहासकार अबू-रिहान मुहम्मदका, जो अल-बरूनी (दे०)के नामसे विख्यात है, संरक्षक था।

मास्की–ग्रांध्रप्रदेशके रायचूर जिलेमें एक छोटा-सा गाँव। सम्राट् अशोकके प्रथम लघु शिलालेखकी एक प्रति १९१६ ई०में मास्कीमें मिली थी। अशोकका मास्की शिलालेख इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि यह एक मात्र शिलालेख है जिसमें दूसरे शिलालेखोंकी भाँति उसका नाम देवानांप्रियके साथ-साथ अशोक भी दिया हुआ है। इस शिलालेखसे प्रमाणित हो जाता है कि राजा देवानांप्रिय प्रियदर्शी तीसरा मौर्य सम्राट् अशोक था। जार्ज टर्नोरने १८३७ ई०में केवल अनुमानसे देवनांप्रिय प्रियदर्शीकी पहचान अशोकसे की थी।

माहम अनगा–बादशाह अकबरके बचपनमें उसकी मुख्य अनका (दूधमाता) थी और अदहम खाँकी माँ थी। वह हरमके अन्दर उस दलमें सम्मिलित थी जो बैरम खाँ (दे०)के राज्यका सर्वेसर्वा बने रहनेका विरोधी था। उसने अकबरको बैरम खाँके हाथसे सल्तनतकी बागडोर छीननेके लिए प्रोत्साहित करनेमें महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। १५६० ई०में अकबर बैरम खाँको आगरामें छोड़कर दिल्ली अपनी बेवा माँके पास चला आया। अगले दो साल तक माहम अनकाका उसके ऊपर बहुत अधिक प्रभाव रहा। १५६१ ई०में उसने अकबरके कोपसे अपने बेटे अदहम खाँको बचाया। परन्तु अगले साल जब अदहम खाँने अतगा खाँ, वजीरकी हत्या कर डाली तो वह उसकी रक्षा नहीं कर सकी। अकबरके हुक्मसे उसे बाँध कर किलेके परकोटसे नीचे फेंक दिया गया, जिससे वह मर गया। अपने बेटेके शोकमें माहम अनगा (अनका)की भी शीघ्र मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्युसे अकबर हरमके प्रभाव से मुक्त हो गया।

मिंगन्ती–चीनके प्रारम्भिक हान वंशका एक सम्राट् (५८-७५ ई०)। उसने ६२ ई०में स्वप्नमें बुद्धका दर्शन किया और उनके धर्मके बारेमें जानकारी प्राप्त करनेके लिए राजदूत भारत भेजे। वे कुछ बौद्ध ग्रंथ, मूर्तियाँ तथा दो भारतीय बौद्ध भिक्षुओं––काश्यप भातंग (दे०) तथा गोवर्धन (दे०)को लेकर चीन वापस लौटे। दोनों भारतीय भिक्षु चीनमें बस गये, उन्होंने कुछ बौद्ध ग्रंथोंका चीनी भाषामें अनुवाद किया तथा कुछ चीनियोंको बौद्ध धर्ममें दीक्षित किया। इस प्रकार सम्राट् मिंगन्तीने सबसे पहले चीनमें बौद्ध धर्मका प्रवेश कराया।

मिण्टो, अर्ल, प्रथम (१७५१–१८१४ ई०)–भारतका १८०७ से १८१३ ई० तक गवर्नर-जनरल। वह अहस्तक्षेपकी नीतिका समर्थक था और उसके शासन-कालमें भारत किसी बड़े युद्धमें नहीं फँसा। परन्तु उसने कई राजनीतिक सफलताएँ प्राप्त कीं। उसने १८०९ ई०में शक्ति प्रदर्शनके द्वारा पिंडारी नेता अमीर खाँको बरारमें हस्तक्षेप करनेसे रोक दिया। उसकी सबसे बड़ी राजनीतिक सफलता पंजाबके महाराज रणजीत सिंहके साथ १८०९ ई०में की गयी अमृतसरकी संधि (दे०) थी, जिसके द्वारा सतलज पंजाबके सिख राज्य तथा ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यकी सीमा मान ली गयी। भारतपर फ्रांस और रूसके सम्मिलित हमलेको रोकनेके लिए लार्ड मिण्टोने १८०८ ई० में सर जान माल्कमको दूत बनाकर फारस भेजा और उसी साल माउण्ट स्टुअर्ट एलिफिन्स्टनको अफगानिस्तानके अमीर शाहशुजाके पास भेजा। फ्रांस और रूसके खतरेको दूर करनेके उपायोंके बारेमें दोनों राज्योंसे समझौता हो गया। १८१० ई०में फ्रांस और रूसकी दोस्ती टूट जाने से यह खतरा दूर हो गया। परन्तु फ्रांसके हमलेका भय बना रहा और लार्ड मिण्टो प्रथमने १८१० ई०में पश्चिममें बौर्बन तथा मारिशसके फ्रांसीसी द्वीपोंको तथा पूर्वमें डच लोगों द्वारा अधिकृत अम्बोमना तथा मसालेवाले द्वीपोंको तथा १८११ ई०में जावा द्वीपको जीत लिया। इस प्रकार लार्ड मिण्टो प्रथमने फ्रांस तथा पूर्वी द्वीप-समूहके उसके अधीनस्थ राज्योंके बढ़ावपर प्रभावशाली ढंगसे रोक लगा दी।

मिण्टो, अर्ल, द्वितीय (१८४५–१९१४ ई०)—लार्ड कर्जन (दे०)के बाद १९०५ से १९१० ई० तक भारतका वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल। वह लार्ड मिण्टो प्रथमका प्रपौत्र था। लार्ड कर्जनने भारतमें जो संकटपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर दी थी उसका सामना करनेमें तथा तत्कालीन भारत-मन्त्री लार्ड मार्लेके साथ मिल-जुलकर कार्य करनेमें उसने काफी युक्ति-कौशलका परिचय दिया। लार्ड कर्जन और प्रधान सेनापति लार्ड किचनर (दे०) एक दूसरेसे झगड़ा कर बैठे थे। उसने लार्ड किचनरसे झगड़ा रफा किया और अफगानिस्तानके अमीरके सम्बन्धोंमें काफी सुधार किया। अमीर उससे मिलनेके लिए कलकत्ता आया।

किन्तु लार्ड मिण्टो द्वितीयके सामने सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य राष्ट्रीयतावादी विचारधाराको संतुष्ट करना था। लार्ड कर्जनके बंग-भंगके अविवेकपूर्ण आदेशसे भारतमें राष्ट्रीय जागरण की जबर्दस्त हिलोर उठने लगी थी और आतंकवादी गतिविधियोंमें भी काफी वृद्धि हो गयी थी। लार्ड मिण्टो द्वितीयने आतंकवादी गतिविधियोंका दमन करने तथा समाचार पत्रोंका मुँह बन्द करके न्याय और व्यवस्थाको बनाये रखनेके लिए कड़े कदम उठाये। उसने रेग्यूलेशन ३ के अन्तर्गत राष्ट्रीयतावादी नेताओंका निष्कासन करके तथा बिना मुकदमा चलाये लोगोंको नजरबन्द करके उग्र राष्ट्रीय आन्दोलनका दमन करने की कोशिश की। इसके साथ ही उसने भारतमें नरम विचारधाराके नेताओंको संतुष्ट करनेके लिए कुछ कदम उठाये। उसने भारत-मन्त्रीकी कौन्सिलमें पहली बार दो भारतीयोंको नियुक्त करना तथा वाइसरायकी एक्जीक्यूटिव कौन्सिलमें पहली बार एक भारतीयकी नियुक्ति करना स्वीकार कर लिया। इसके साथ ही उसने गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्ट, १९०९ ई० (जिसे मार्ले-मिण्टो सुधार ऐक्ट भी कहते हैं) पास करवा कर महत्त्वपूर्ण शासन-सुधार भी किये। इस ऐक्टके द्वारा विधान-मंडलोंके प्रत्यक्ष निर्वाचनकी प्रथा शुरू करने तथा प्रान्तीय एवं केन्द्रीय विधान मण्डलोंमें निर्वाचित प्रतिनिधियोंकी संख्या बढ़ाकर भारतमें क्रमिक रीतिके स्वशासनका विस्तार करनेकी नीतिका सूत्रपात किया गया।

लार्ड मिण्टो द्वितीयने हिन्दुओंके बढ़ते राजनीतिक प्रभावको रोकनेके लिए जान-बूझकर मुसलमानोंको प्रोत्साहन देनेकी नीति अपनायी, विधान मण्डलोंमें मुसलमानोंको साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व देनेकी माँगको कानूनी मान्यता प्रदान की, १९०६ ई०में मुसलिम लीगकी प्रतिष्ठापनाको बल प्रदान किया और इस प्रकार भावी साम्प्रदायिक वैमनस्यका बीज बो दिया।

मिताक्षरा—संस्कृत भाषामें धर्मशास्त्रका (याज्ञवल्क्य स्मृतिका व्याख्यान-रूप) प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसका प्रणयन विज्ञानेश्वरने किया, जो चालुक्योंकी राजधानी कल्याणीमें विक्रमादित्य चालुक्य (दे०) (१०७६–११२६ ई०) के राज्यकालमें रहता था। बंगाल तथा आसामके अतिरिक्त शेष भारतमें हिन्दू कानूनके विषयमें मिताक्षराको प्रमाण माना जाता है। उत्तराधिकारके सम्बन्धमें इसमें यह आधारभूत सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है कि हिन्दू परिवारमें समस्त पैतृक सम्पत्तिमें पुत्र पिताका सहभागी होता है और उसे अपनी स्वीकृतिके अतिरिक्त अन्य किसी रीतिसे उत्तराधिकारसे वंचित नहीं किया जा सकता।

मिथ्रियातस प्रथम—पार्थियाका राजा (लगभग १७१ ई० पू०–१३६ ई० पू०)। उसने तक्षशिलाका राज्य, जो सिंधु तथा हाइडसपीस (झेलम) नदियोंके बीच स्थित था, अपने राज्यमें मिला लिया।

मिदनापुर—पश्चिम बंगालका एक नगर तथा जिला। इसका कुछ भाग बंगालकी खाड़ीके तटपर स्थित है। प्राचीन ताम्रलिप्ति जलपट्टन, जहाँसे चीनी यात्री फा-हियान (दे०) पोतपर सवार होकर चीन वापस गया, अब तामलुक नगर कहलाता है और मिदनापुर जिलेमें समुद्र तटसे ६० मीलकी दूरीपर स्थित है। १७६० ई०में नवाब मीरकासिम (१७६०–६३ ई०)ने बंगालका नवाब बनाये जानेपर मिदनापुर जिलेके साथ-साथ बर्दवान तथा चटगाँव जिला ईस्ट इंडिया कम्पनीको दे दिया था।

मिनहाजे-सिराज (पूरा नाम मिनहाजुद्दीन)—एक प्रसिद्ध इतिहासकार। वह सुल्तान नासिरुद्दीन (दे०) (१२४६–६६ ई०)के अधीन एक उच्च पदासीन था। उसने उसीके नामपर अपने ग्रंथका नाम तबकाते-नासिरी रखा। दिल्लीके प्रारम्भिक सुल्तानोंका वह लगभग समसामयिक रहा और उसका ग्रंथ काफी प्रामाणिक माना जाता है। 'तबकाते-नासिरी'का अंग्रेजी भाषामें अनुवाद रैवर्टीने किया।

मिनाण्डर—एक यूनानी नाटककार। विण्डिरचके सदृश कुछ यूरोपीय विद्वानोंका मत है कि मिनाण्डर तथा उसीकी भाँतिके अन्य यूनानी नाटककारोंने भारतीय संस्कृत नाटकोंको प्रभावित किया था, क्योंकि दोनोंमें सुस्पष्ट साम्य मिलता है। परन्तु यह प्रश्न विवादास्पद माना जाता है।

मिनाण्डर (मिलिन्द)–पंजाबपर लगभग १६० ई० पू०से १४० ई० पू० तक राज्य करनेवाले यवन राजाओंमें सबसे अधिक उल्लेखनीय। उसके विविध प्रकारके बहुत-से सिक्के उत्तर भारतके विस्तृत क्षेत्रोंमें, यहाँ तक कि यमुनाके दक्षिणमें भी मिलते हैं। सम्भव है कि गार्गी संहितामें जिस दुरात्मा वीर यवन राजा द्वारा प्रयागपर अधिकार करके कुसुमपुर (अर्थात् पाटलिपुत्र) में भय उत्पन्न करनेका उल्लेख है, वह मिनाण्डर हो। बौद्ध अनुश्रुतियोंके अनुसार उसने बौद्ध धर्मकी शरण ले ली। प्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ 'मिलिन्दपन्हो' (मिलिन्दके प्रश्न) में बौद्ध भिक्षु नागसेनके साथ उसके संवादात्मक प्रश्नोत्तर दिये हुए हैं।

मियानीकी लड़ाई–१८४३ ई० में सर चार्ल्स नेपियरके नेतृत्वमें ब्रिटिश भारतीय सेना और सिंधके अमीरोंके बीच हुई। अमीरोंकी जबर्दस्त हार हुई और सिंधको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया।

मिर्जा–अकबरके चचेरे बन्धुगण। १५७२ ई०में मिर्जाओंने गुजरातमें बादशाह अकबरके विरुद्ध विद्रोहका झंडा बुलन्द कर दिया। अगले साल बादशाहने स्वयं उनका दमन किया।

मिर्जा अबू तालिब खाँ–समुद्र-यात्रा करके इंग्लैण्ड जाने वाला पहला भारतीय मुसलमान, जो १७८५ ई०में इंग्लैंड पहुँचा।

मिर्जा गुलाम अहमद (१८३९–१९०८ ई०)–इसलामके अहमदिया सम्प्रदायका संस्थापक। उसका सदर मुकाम पंजाबमें कादियान नामक स्थान था। इस परम्पराके अनुयायी 'कादियानी' इसीलिए कहे जाते हैं।

मिर्जा गुलाम हुसेन–भारतके मुसलमान इतिहासकारोंमेंसे एक। वह अट्ठारहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें वर्तमान था और कई महत्त्वपूर्ण पदोंपर रहा। उसके ग्रंथ 'सय्यारुल-मुतअख्खिरीन' में मुगल साम्राज्यके अन्तिमकाल तथा भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यके उदयके प्रारम्भिक वर्षोंका सामयिक विवरण मिलता है।

मिर्जा नजफ़ खाँ–एक ईरानी सरदार जो दिल्ली आया और मुगलोंकी नौकरी करने लगा। वह पदोन्नति करते हुए १७७२ ई० में शाह आलमके दिल्ली वापस लौटने-पर उसका बड़ा वजीर नियुक्त हुआ और १७८२ ई० में मृत्यु होने तक इसी पदपर रहा। इस अवधिमें दिल्ली साम्राज्यकी हुकूमत उसीके हाथमें रही। उसने सिखोंका हमला विफल कर दिया, जाटोंका दमन किया, आगरा-पर फिरसे दखल कर लिया और मराठोंको दिल्लीसे दूर रखा। दिल्लीमें उच्च पद प्राप्त करनेवाला वह अंतिम विदेशी मुसलमान था।

मिर्जा मुहम्मद–देखिये, 'सिराजुद्दौला'।

मिर्जा (अथवा मीर) शाह–कश्मीरका पहला मुसलमान सुलतान। वह सूरतसे आया था और अपनी योग्यताके कारण कश्मीरके हिन्दू राजाका मंत्री हो गया। १३४६ ई० में उसने गद्दी छीन ली, शम्सुद्दीनका नाम धारण किया और एक राजवंश चलाया, जो १५४१ ई० तक कश्मीरपर राज्य करता रहा।

मिर्जा हैदर–कश्मीरका १५४० से १५५१ ई० तक शासक। वह बादशाह हुमायूँका मुगल रिश्तेदार था और उसीके नामपर कश्मीरका शासन करता था। किन्तु हुमायूँकी अधीनता वह नाममात्रके लिए मानता था। व्यवहार रूपमें वह स्वतंत्र था। १५५१ ई० में कश्मीरी अमीरोंने उसका तख्त छीन लिया। चार साल बाद कश्मीरका शासन-चक्र लोगोंके हाथमें पहुँच गया। १५८६ ई० में बादशाह अकबरने कश्मीरपर विजय प्राप्त कर ली।

मिलिन्द-पन्हो (मिलिन्दके प्रश्न)–एक प्रसिद्ध बौद्धग्रंथ, जिसमें यवन राजा मिलिन्द और बौद्ध भिक्षु नागसेन (दे०) के बीच प्रश्न और उत्तरके रूपमें बौद्ध दर्शन और धर्मकी विवेचना की गयी है। मिलिन्दकी पहचान भारतीय यवन (यूनानी) राजा मिनाण्डर (दे०) से की जाती है। विश्वास किया जाता है कि मिनाण्डरने बौद्धधर्म अंगीकार कर लिया था। इस ग्रंथका रचना-काल तीसरी शताब्दी ई० से पूर्व माना जाता है।

मिल्डेनहाल, जान–एक अंग्रेज व्यापारी, जो १५९९ ई० में स्थलमार्गसे भारत आया। वह पूर्वमें सात वर्ष रहा और बादशाह अकबरसे उसके राज्यकालके अंतिम दिनोंमें मिला। उसकी बादशाहसे आमने-सामने बातचीत हुई। परंतु वह अकबरसे या उसके पुत्र जहाँगीरसे अंग्रेजोंके लिए कोई व्यापारिक सुविधा प्राप्त करनेमें विफल रहा। १६१४ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। वह बेईमान तथा धूर्त था, परंतु व्यापारकी खोजमें भारत आनेवाले अंग्रेजों-का अगुआ था।

मिहिरगुल (अथवा मिहिरकुल)–हूण राजा तोरमाण (दे०) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी, जो पाँचवीं शता-ब्दी ई० के अंतिम दशकोंमें गुप्त साम्राज्यकी पश्चिमी सीमापर तथा मध्यवर्ती मालवापर राज्य करता था। मिहिरगुल लगभग ५०० ई० में गद्दीपर बैठा। उसका साम्राज्य भारतसे बाहर अफगानिस्तान तक विस्तृत था।

वह बड़ा अत्याचारी था और उसने बौद्धोंका क्रूरतापूर्वक दमन किया। उसकी राजधानी पंजाबमें साकल अथवा सियालकोट थी। लगभग ५२८ ई० में मगधके राजा बालादित्य और मंदसोरके राजा यशोधर्माने मिलकर उसे पराजित कर भगा दिया। मिहिरगुल हार कर कश्मीर भाग गया, जहाँ वह स्वयं राजा बन गया। परंतु वह बहुत थोड़े समय राज्य कर सका।

मीडोज, जनरल सर विलियम—तीसरे मैसूर-युद्ध (दे०) (१७९० ई०) में टीपू सुल्तानपर चढ़ाई करनेवाली ब्रिटिश सेनाका कमांडर। उसे टीपूके ढिण्डिगुल, कोयंबतूर, पालघाट आदि ठिकानोंको छीन लेनेमें सफलता मिली, परंतु उसकी विजय निर्णायात्मक नहीं कही जा सकती थी। अतएव १७९१ ई० में कार्नवालिसने स्वयं सेनाकी मुख्य कमान सँभाल ली और जनरल मीडोज उसके अधीन कार्य करता रहा।

मीर कासिम—अंग्रेजोंने १७६० ई० में इसके ससुर मीर जाफरको गद्दीसे उतार कर इसे बंगालका नवाब बनाया। मीर कासिमने नवाबी पानेके लिए कम्पनीको बर्दवान, मिदनापुर तथा चटगाँवके तीन जिले सौंप दिये, कलकत्ता कौंसिलको २० लाख रुपया नकद दिया तथा मीर जाफरका सारा कर्जा बेबाक कर देनेका वादा किया। मीर कासिम मीर जाफरसे अधिक योग्य तथा अधिक दृढ़ व्यक्ति था। उसने मालगुजारीकी वसूलीके नियम अधिक कठोर बना दिये और राज्यकी आय लगभग दूनी कर दी। उसने फौजका भी संगठन किया और कलकत्ताके अनुचित हस्तक्षेपसे अपनेको दूर रखनेके लिए राजधानी मुर्शिदाबादसे उठाकर मुंगेर ले गया।

कम्पनीके अधिकारी मीर जाफर (दे०) (१७५७–६० ई०) के समयसे बिना चुंगी दिये अवैध व्यापारके द्वारा बहुत बेजा फायदा उठा रहे थे। मीर जाफरने इस अवैध व्यापारको बंद करनेका निश्चय किया। उसने कलकत्ता कौंसिलके तत्कालीन अध्यक्ष वैन्सीटार्ट (दे०) से समझौता किया कि फिरंगी व्यापारियोंके निजी मालपर नवाबको दूसरोंसे ली जानेवाली ४० प्रतिशत चुंगीके स्थानपर ९ प्रतिशत चुंगी लेनेका अधिकार होगा। परंतु कलकत्ता कौंसिलने इस समझौतेको रद्द कर दिया और सिर्फ नमकपर २॥ प्रतिशत चुंगीके लिए राजी हुई। कलकत्ता कौंसिलके इस अनौचित्यपूर्ण निर्णयपर नवाब मीर कासिम इतना क्रुद्ध हुआ कि उसने भारतीय और फिरंगी सभी व्यापारियोंको बिना चुंगी दिये व्यापार करनेकी अनुमति दे दी।

इस तरह यह स्पष्ट हो गया कि कम्पनीके कर्मचारियों द्वारा अपने अवैध व्यापारको जारी रखनेके आग्रह और नवाब मीर कासिम द्वारा अपनेको खुदमुखतार बनानेके दृढ़ निश्चयके बीच कोई समझौता नहीं हो सकता था, फलतः नवाब तथा कम्पनीके बीच युद्ध अनिवार्य हो गया। युद्धकी दिशामें पहला कदम पटनामें कम्पनीके मुख्याधिकारी मि० एलिसने उठाया। उसने पटनापर दखल कर लेनेकी कोशिश की, जो विफल कर दी गयी और युद्ध छिड़ गया। किन्तु मीर कासिममें कोई सैनिक प्रतिभा नहीं थी। उसके पास योग्य सिपहसालार भी नहीं था। ऐसी परिस्थितिमें वह कटवा, घेरिया तथा उधुवानालाकी लड़ाइयोंमें कम्पनीकी फौजसे हार गया। अंग्रेजी फौज जब उसकी राजधानी मुंगेरके निकट पहुँची तो वह पटना भाग गया। वहाँ उसने समस्त अंग्रेज बंदियोंको मार डाला तथा जगत सेठ जैसे उसके जो भी पूर्व विरोधी हाथ पड़े, उन्हें भी मौतके घाट उतार दिया। इसके बाद वह अवध भाग गया और वहाँ उसने नवाब शुजाउद्दौला तथा भगोड़े बादशाह शाह आलम द्वितीयसे कम्पनीके विरुद्ध गठबंधन कर लिया। परंतु अंग्रेजोंने २२ अक्तूबर १७६४ ई० को बक्सरकी लड़ाईमें तीनोंको हरा दिया। शुजाउद्दौला जान बचा कर रुहेलखंड भागा, बादशाह शाह आलम द्वितीय अंग्रेजोंकी शरणमें आ गया और मीर कासिम दर-दरकी खाक छानता हुआ कई साल बाद भारी मुफलिसीमें दिल्लीमें मर गया।

मीर जाफर—बंगालका १७५७ से १७६० ई० तक और फिर १७६३ से १७६५ ई० तक नवाब। वह बंगालके नवाब अलीवर्दी खाँ (दे०)का बहनोई था और मुर्शिदाबादके दरबारमें बहुत अधिक प्रभाव रखता था। अलीवर्दीके पौत्र तथा उत्तराधिकारी नवाब सिराजुद्दौला (दे०) को उसकी स्वामिभक्तिमें सन्देह था और उसने उसे बख्शी (दे०) के पदसे हटा दिया। इससे मीरजाफर और फिरंट हो गया और उसने सुराजुद्दौलाको गद्दीसे हटाने तथा खुद नवाब बननेके लिए असंतुष्ट दरबारियोंके साथ षड्यंत्र रचा, जिसमें जगत सेठ (दे०) भी सम्मिलित था। षड्यंत्रकारियोंके नेताके रूपमें मीरजाफरने १० जून १७५७ ई०को कलकत्तामें अंग्रेजोंसे एक संधि की। इस संधिके द्वारा मीर जाफरने वचन दिया कि वह अंग्रेजोंकी सहायतासे बंगालका नवाब बन गया तो सिराजुद्दौलाने अलीनगरकी संधि (९ फरवरी १७५७ ई०)के द्वारा उन्हें जो सुविधाएँ रखी हैं, उनकी पुष्टि कर देगा, अंग्रेजोंसे

रक्षात्मक संधि करेगा, फ्रांसीसियोंको बंगालसे निकाल देगा, १७५६ ई०में कलकत्ता छीने जानेके बदले ईस्ट इंडिया कम्पनीको १० लाख पौंड हर्जाना देगा और इसका आधा रुपया कलकत्ताके अंग्रेज निवासियोंको देगा। मीर जाफरने गुप्त संधि करके अंग्रेजी सेना, नौसेना तथा कौंसिलके सदस्योंको भी काफी अधिक धन देनेका वादा किया।

इस संधिके अनुसार २३ जून १७५७ ई०को पलासीकी लड़ाईमें मीर जाफर तथा उसके सहयोगी षड्यंत्रकारियोंने कोई हिस्सा नहीं लिया और अंग्रेज बड़ी आसानीसे लड़ाई जीत गये। सिराजुद्दौला युद्ध-भूमिसे भाग गया, परन्तु उसे शीघ्र बंदी बना लिया गया और मीर जाफरके पुत्र मीरनने उसका बध कर दिया। इसके बाद मीर जाफर बंगालका नया नवाब बना दिया गया। गद्दीनशीन होनेपर उसने १० जून १७५७ ई०की संधिके द्वारा जितने भी वादे किये थे सब पूरे कर दिये। इसके अतिरिक्त उसने कम्पनीको चौबीस परगनेकी जमींदारी भी दे दी। उसने १५ जून १७५७ ई०को कम्पनीके साथ एक और संधि की, जिसके द्वारा उसने दो नयी धाराओंसे अपनेको बाँध लिया। इन धाराओंमें कहा गया था (१) "अंग्रेजोंके दुश्मन मेरे दुश्मन होंगे, चाहे भारतीय हों या यूरोपीय, (२) जब कभी मैं अंग्रेजोंसे सहायताकी माँग करूँगा, उसका खर्च दूँगा।"

मीर जाफरने इस तरह बंगालपर एक प्रकारसे अंग्रेजोंका राजनीतिक तथा सैनिक प्रभुत्व स्वीकार कर अपनी नवाबीका अगौरवपूर्ण अध्याय आरम्भ किया। उसने १७५६ ई०में कलकत्तापर दखल करनेसे अंग्रेजोंको जो क्षति उठानी पड़ी थी उसके लिए १,७७,००,००० रु० हर्जाना देकर, अंग्रेजी सेना, नौसेना तथा अधिकारियोंको १,१२,५०,००० रु० देकर (जिसमें २३,४०,००० रु० सिर्फ क्लाइवको दिये गये) तथा चौबीस परगनेकी सारी मालगुजारी कम्पनीको सौंप कर राज्यको दीवालिया बना दिया। वह अपनी फौजकी तनख्वाहें देनेमें भी असमर्थ हो गया। इस प्रकार मीर जाफर अंग्रेजोंपर अधिकाधिक निर्भर होता गया और शीघ्र ही अपनी स्थितिसे बेचैन हो उठा। अतएव उसने अंग्रेजोंके विरुद्ध डच लोगोंसे षड्यंत्र रचना शुरू कर दिया। परन्तु अंग्रेजोंने बिदर्रामें डच लोगोंको हरा दिया। १७६० ई०में मीर जाफरका संरक्षक क्लाइव इंग्लैंड चला गया और इसके बाद मीर जाफरका लड़का तथा भावी उत्तराधिकारी मीरन बिजली गिरनेसे मर गया। इसके फलस्वरूप मीर जाफरके उत्तराधिकारीका प्रश्न उठ खड़ा हुआ। क्लाइवके उत्तराधिकारियोंने क्लाइवका ही अनुकरण किया और १७६० ई०में क्लाइवके गुड्डे मीर जाफरको गद्दीसे हटा कर उसके दामाद मीर कासिम (दे०)को नया नवाब बना दिया।

मीर जाफरने बिना कोई प्रतिरोध किये १७६०ई०में नवाबी छोड़ दी, परन्तु १७६३ ई०में अंग्रेजों और नवाब मीर कासिममें युद्ध छिड़ जानेपर उसे फिर नवाब बना दिया गया। पुनः नवाबी प्राप्त करनेसे पूर्व मीर जाफरने अंग्रेजोंसे एक संधि की, जिसके द्वारा उसने अपनी फौजोंकी संख्या सीमित करना, राजधानी मुर्शिदाबादमें स्थायी ब्रिटिश रेजिडेंट रखना, अंग्रेजोंके नमकके व्यापारपर केवल २ प्रतिशत चुंगी लेना, कम्पनीको युद्धके खर्चके तौरपर ३५ लाख रुपया देना, अंग्रेजी सेना तथा नौसेनाके सदस्योंको भेंटके तौरपर ३७॥ लाख रुपया देना तथा मीर कासिमसे युद्धमें जिन लोगोंको व्यक्तिगत रूपसे क्षति उठानी पड़ी उन्हें हर्जाना देना स्वीकार कर लिया। अतएव पुनः नवाबी मिलनेपर मीरजाफरकी आर्थिक स्थिति पहलेसे भी अधिक शोचनीय हो गयी। उसका राजनीतिक भविष्य लगभग समाप्त हो गया। उसे अफीमकी लत थी और कुष्ठ रोगसे पीड़ित था। १७६५ ई०में उसकी कलंकपूर्ण मृत्यु हो गयी। बंगालमें मुसलमानी शासनके पतनके लिए जो भारतीय मुसलमान जिम्मेदार थे, उनमें मीरजाफर प्रमुख था।

मीर जुमला मीर मुहम्मद सईद—एक ईरानी व्यापारी, जो प्रारम्भमें गोलकुंडामें हीरेका व्यापार करता था। बादमें वह गोलकुंडाके सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह (१६२६–७२ ई०)की सेवामें जाकर क्रमशः उसका वजीर बन गया। वह राजनेताके साथ-साथ महान सिपहसालार भी था। उसकी संपत्ति, शक्ति तथा प्रतिष्ठाके कारण गोलकुंडाका सुल्तान उससे ईर्ष्या करने लगा और वह उसे दंडित करना चाहता था। मीर जुमलाने मुगलोंसे साजिश करके, शाहजादा औरंगजेबकी सहायतासे, जो उस समय गोलकुंडापर हमला करनेवाली मुगल सेनाका नेतृत्व कर रहा था, १६५६ ई०में दक्खिनमें बादशाह शाहजहाँकी सेवा स्वीकार कर ली। इसके बाद ही वह शाहजहाँका बड़ा वजीर नियुक्त हो गया।

शाहजहाँ (दे०) के लड़कोंमें उत्तराधिकार युद्ध छिड़नेपर, मीर जुमलाने औरंगजेबका पक्ष लिया और उसे धर्मकी लड़ाई (दे०) जीतनेमें भारी मदद दी। १६६० ई०में औरंगजेबने उसे बंगालका सूबेदार नियुक्त

किया, जहाँ पहुँच कर उसने शुजा (दे०)को प्रांतसे बाहर खदेड़ दिया। बादमें उसने आसामपर चढ़ाई की, अहोम राजाको अपनी राजधानी छोड़कर भागने तथा १६६२ ई०की संधि करनेके लिए विवश किया। इस संधिके द्वारा अहोम राजा हर्जानेके रूपमें एक बड़ी रकम देने तथा दक्षिणी आसामका बहुत-सा भाग मुगलोंको सौंप देनेके लिए राजी हो गया। आसामके जंगलोंसे वापस लौटते समय मुगल सेनाको भारी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं और मीर जुमला बीमार पड़ गया। वह जनवरी १६६३ ई०में ढाका वापस लौटते समय रास्तेमें ही मर गया।

मीर जुमला, शरीयतुल्ला खाँ—एक तूरानी जो बादशाह फर्रुखशियरके राज्यकाल (१७१३–१९ ई०)के पूर्वार्द्ध-में ढाका तथा पटनामें काजी रहा। वह षड्यंत्रकारी मनोवृत्तिका था और उसने फर्रुखशियरको सैयद बंधुओं (दे०)से लड़ाने की कोशिश की। बादमें वह सैयद बंधुओं से मिल गया और उनके नीचतापूर्ण कार्योंमें मदद करने लगा।

मीरन—नवाब मीर जाफर (दे०) (१७५७–६० ई०) का लड़का तथा भावी उत्तराधिकारी। नवाब सिराजुद्दौला (दे०) पलासीकी लड़ाईमें हारनेके बाद जब भागा तो उसने उसे गिरफ्तार कर लिया और मुर्शिदाबाद वापस लाकर १७५७ ई०में उसकी हत्या कर डाली। इसके बाद ही बिजली गिरनेसे मीरनकी मृत्यु हो गयी।

मीरनपुर कटराकी लड़ाई—अवधके नवाब शुजाउद्दौलाकी और रुहेलोंके बीच १७७४ ई०में हुई। एक अंग्रेजी पलटन भी शुजाउद्दौलाकी मददपर थी। शजाउद्दौलाने रुहेलोंको हरा दिया और उनका राज्य अवधमें मिला लिया।

मीरन बहादुर शाह—ताप्तीकी घाटीमें स्थित खानदेशका शासक। १५९० ई०में उसने अकबरकी अधीनता स्वी-कार कर ली, परन्तु बादमें अपने इस कार्यपर पश्चाताप करके उसने विद्रोह कर दिया। १५९९ ई०में अकबरने स्वयं सेना लेकर खानदेशपर चढ़ाई की और असीरगढ़पर कब्जा करके मीरन बहादुरशाहको अधीन बनाया। खानदेशको मुगल साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया।

मीरपुर परिवार—सिंधके अमीरोंके परिवारोंमेंसे एक। १८४३ ई०में मियानी (दे०)की लड़ाईमें सिंधके अमीरोंके अन्य परिवारोंके साथ यह परिवार भी हारा और निर्वासित कर दिया गया।

मीर फतह अली खाँ तालपुर—जिसने १७८३ ई०में सिंधके ऊपर अहमद शाह अब्दालीके उत्तराधिकारियोंका नियंत्रण समाप्त कर दिया और सिंधको एक प्रकारसे स्वतंत्र राज्य बना दिया। उसकी मृत्यु १८०२ ई०में हुई। उसके उत्तराधिकारी, जो मध्यवर्ती सिंधपर शासन करते थे, चार परिवारोंमें विभक्त हो गये। वे शहदादपुरमें रहते थे। मीरपुर तथा खैरपुरमें रहनेवाले अपने संबन्धियोंकी भाँति वे सब सिंधके अमीर कहलाते थे।

मुअज्जम, शाहजादा—देखिये, 'बहादुरशाह प्रथम'।

मुईनुद्दीन चिश्ती (ख्वाजा)—एक प्रसिद्ध मुसलमान (सूफी) संत। अकबर और जहाँगीर बहुधा उसके अजमेर-स्थित मजारकी जियारतके लिए जाया करते थे।

मुकर्रब खाँ—मूल नाम शेख हसन, जहाँगीरका विशेष विश्वासपात्र पदाधिकारी था। १६०७ ई०में वह शाही दूतके रूपमें गोआके पुर्तगालियोंके पास भेजा गया, किन्तु इस दौत्यकर्मका कोई परिणाम न निकला। उपरांत मुकर्रब खाँ की नियुक्ति सूरतके प्रान्तीय शासकके रूपमें हुई, जहाँ उसने अंग्रेजोंको पुर्तगालियोंसे युद्ध करनेके लिए उत्साहित किया। नाविक युद्धमें अंग्रेजोंने पुर्त-गालियोंपर विजय पायी किन्तु स्वयं मुकर्रब खाँ ने, जिसके पास कोई नौ-सेना न थी, जब पुर्तगालियोंसे सुलहका प्रस्ताव किया, तब उसे उस समय अत्यधिक अपमानकी घूंट पीनी पड़ी, जब उन्होंने उसका प्रस्ताव ठुकरा दिया।

मुकर्रब खाँ—मूल नाम शेख नियाम। औरंगजेबका एक उत्साही सैनिक पदाधिकारी था। उसे खान जमा की उपाधि दी गयी थी। १६८९ ई०में जब उसे सूचना मिली कि मराठा शासक शंभूजी अपने प्रधान-मंत्री कवि कलशके साथ संगमेश्वरकी यात्रा कर रहा है, वह कोल्हापुरमें था। उसने शीघ्रतासे कूच करके शम्भूजीके पड़ावको घेर लिया तथा मराठा शासकको उसके प्रधान मंत्री कवि कलश तथा सारे लाव-लश्करके साथ बन्दी बना लिया।

मुक्तापीड—देखिये, 'ललितादित्य मुक्तापीड'।

मुकुन्द राव—एक मराठा सरदार जो बीजापुरके सुल्तान यूसुफ़ आदिलशाह (दे०) (१४९०-१५१० ई०) के द्वारा पराजित हुआ। उपरान्त उसने सुलतानको अपनी बहिन व्याह कर सन्धि कर ली। व्याहके बाद उसकी बहनका नाम बूबूजी खानम पड़ा और वह दूसरे सुल्तान, इस्माइलकी माँ बनी।

मुखर्जी, आशुतोष (१८६४–१९२४)—बंगालके ख्याति-लब्ध बैरिस्टर और शिक्षाविद्। मध्यम वर्गके बंगाली ब्राह्मण परिवारमें जन्म हुआ और विद्यार्थी जीवनमें ही

नाम कमानेके उपरांत १८८८ ई०में कलकत्ता हाईकोर्टमें वकालत प्रारम्भ की। १६०४ ई०से हाईकोर्टके न्यायाधीश और १६२० ई०से स्थानापन्न मुख्य न्यायाधीश रहनेके बाद १६२३ ई०में उन्होंने अवकाश ले लिया। वे यद्यपि राजनीतिसे दूर रहे, फिर भी वे १८६६ ई०में बंगाल विधान परिषद्के सदस्य मनोनीत किये गये। उन्होंने शिक्षाके क्षेत्र में, जिसके लिए उन्होंने अपना समस्त जीवन अर्पित कर दिया था, उन्होंने बंगालकी जो महती सेवा की, उसके आधार पर उन्हें आधुनिक बंगालका निर्माता कहा जा सकता है। २५ वर्षकी अल्पआयुमें वे कलकत्ता विश्वविद्यालयके सिनेटके सदस्य हुए और उपरान्त चार सत्रावधि तक उसके उपकुलपति रहे।

उस विश्वविद्यालयसे उनका जीवनकी अंतिम घड़ी तक सम्बन्ध बना रहा। लार्ड कर्जनने भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम, भारतमें उच्च शिक्षाका प्रसार रोकनेके उद्देश्यसे बनाया था, किंतु आशुतोष मुखर्जीने उसीके माध्यमसे बंगालमें उच्चशिक्षाका प्रसार कर दिया और कलकत्ता विश्वविद्यालयको परीक्षा की व्यवस्था करनेवाली संस्था मात्रसे उठाकर उच्चतम स्नातकोत्तर शिक्षण देनेवाली संस्था बना दिया। उन्होंने केवल कला-संकायमें ही विभिन्न विषयोंमें एम० ए० की कक्षाएँ नहीं खोलीं, प्रयोगात्मक एवं प्रयुक्त विज्ञानों (Applied Sciences) के प्रशिक्षण हेतु भी स्नातको-त्तर शिक्षाका प्रबन्ध किया, जिसके लिए इसके पूर्व कोई प्राविधान न था। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालयके लिए महाराज दरभंगा, सर तारकनाथ पालित एवं रास बिहारी घोषसे प्रचुर दान प्राप्त किया और इस धनराशिसे उन्होंने विश्वविद्यालयमें पुस्तकालय और विज्ञान कालेजोंके विशाल भवनोंका निर्माण कराया जो प्रयोगशालाओंसे युक्त थे। इस प्रकार उन्होंने देशमें शिक्षाकी धाराको एक नया मोड़ दिया। उन्होंने बंगला तथा भारतीय भाषाओंको एम० ए० की उच्चतम डिग्रीके लिए अध्ययन-का विषय बनाया। उनकी वेशभूषा और आचार-व्यवहारमें भारतीयता झलकती थी। कदाचित् वह प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने रॉयल कमीशन (सैडलर समिति) के सदस्य की हैसियतसे सम्पूर्ण भारतमें धोती और कोट पहन कर भ्रमण किया। वह कभी इंग्लैण्ड नहीं गये और उन्होंने अपने जीवन तथा कार्य-कलापोंसे सिद्ध कर दिया कि किस प्रकार एक सच्चा भारतीय अपने विचारोंमें सनातनपंथी, कार्योंमें प्रगतिशील तथा विश्वविद्यालयके हेतु अध्यापकोंके चयनमें अन्तर्राष्ट्रीयतावादी हो सकता है। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालयमें भारतीय ही नहीं, अंग्रेज, जर्मन और अमरीकी प्रोफेसरको भी रखा और उसे पूर्व का अग्रगण्य विश्वविद्यालय बना दिया।

मुखर्जी, धनगोपाल—प्रसिद्ध बंगाली साहित्यकार जो अमेरिकामें जाकर बस गये। उन्होंने अंग्रेजी भाषामें कई पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'मेरे भाईका व्यक्तित्व' (Portrait of My Brother) नामक पुस्तकमें उन्होंने अपने भाई और बंगालके सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता जदु गोपालकी जीवनी दी है। उनकी रचनाओंने उन्हें साहित्यके क्षेत्रमें अच्छी ख्याति प्रदान की।

मुगल राजवंश—राज बाबरसे आरम्भ, जिसने १५२६ ई०में अन्तिम लोदी सुल्तान इब्राहीम लोदीको पानीपतके प्रथम युद्धमें पराजित किया। इस विजयसे बाबरका दिल्ली और आगरापर अधिकार हो गया। १५२७ ई०में बाबरने मेवाड़के शासक राणा साँगाको खनुआके युद्धमें पराजित कर राजपूतोंके प्रतिरोधका भी अन्त कर दिया। अंततः १५२८ ई०में उसने घाघराके युद्धमें अफगानोंको पराजित कर अपना शासन बिहार और बंगाल तक विस्तृत कर लिया। इन विजयोंने बाबरको उत्तरी भारतका सम्राट् बना दिया। उसके द्वारा प्रचलित मुगल राज्यवंशने भारतमें १५२६ से १८५८ ई० तक राज्य किया।

मुगल राज्यवंशमें उन्नीस शासक हुए, जिनमें प्रथम छः बाबर (१५२६-३०), हुमायूँ (१५३०-४० तथा १५५५-५६), अकबर (१५५६-१६०५), जहाँगीर (१६०५-२७), शाहजहाँ (१६२७-५८) तथा औरंगजेब (१६५८—१७०७) प्रायः महान् मुगल सम्राट् गिने जाते हैं। इनमेंसे अकबरने सम्पूर्ण उत्तरी भारत तथा दक्षिणके खानदेश और बरारको अपने अधिकार क्षेत्रमें ले लिया था। साम्राज्य-विस्तारकी यह प्रक्रिया उसके बादवाले तीन शासकोंके कालमें भी चलती रही। फलतः औरंगजेबके राज्यकालमें मुगल साम्राज्यका विस्तार हिमालयके निचले भूभागोंसे लेकर कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण भारतमें हो गया। किन्तु उसके समय घटित घटनाओंसे यह भी स्पष्ट हो गया कि उसने अजगरकी भाँति अपनी पाचनशक्तिसे अधिक निगलनेका प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त उसने जान-बूझकर धार्मिक उदारताकी उस नीतिके परित्यागका भी दुस्साहस किया, जिसपर अकबरका विशाल साम्राज्य आधारित था। इस प्रकार औरंगजेबने भारतवर्षको इस्लाम-प्रधान साम्राज्यका रूप देनेका प्रयास किया, जिसके फलस्वरूप

हिन्दुओंके विद्रोह हुए, जिनका सूत्रपात महाराष्ट्रमें शिवाजीने किया था और पंजाबमें सिखों, बुन्देलखण्ड और राजपूतानेके राजपूतों तथा जाटोंमें भी, जो अकबरके स्वामिभक्त समर्थक थे, विद्रोहकी अग्नि भड़क उठी।

दूसरी ओर पुर्तगाल, हालैण्ड, इंग्लैण्ड और फ्रांसके व्यापारियोंकी उपस्थितिने और भी कठिनाइयाँ उत्पन्न कीं, क्योंकि उनकी राजनीतिक अभिलाषाएँ, व्यापार सम्बन्धी गतिविधियोंके आवरणमें ढकी हुई थीं और उनकी सामरिक सामग्री एवं संगठन तथा जहाजीशक्ति मुगलोंकी अपेक्षा कहीं श्रेष्ठतर थी। अन्ततः उत्तराधिकारके युद्ध जहाँगीरके राज्यकालके अन्तिम वर्षोंसे मुगलवंशके शासनपर मर्मान्तिक विपत्तिके रूपमें बराबर घहराने लगे, जिनसे राजशक्तिमें विशेष दुर्बलता आ गयी। परिणामस्वरूप अन्तिम तेरह मुगलशासक, जो उत्तरकालीन मुगल समाट् कहे जाते हैं, अयोग्य शासक सिद्ध हुए। अठारहवीं शताब्दीसे क्रमशः उनकी राज्य-सीमाएँ क्षीण होती गयीं। नादिरशाह दुर्रानीके १७३९ ई० वाले तथा अहमदशाह अब्दालीके १७५१ से १७६१ ई० तक होनेवाले आक्रमणोंने इस क्रमको विशेष गति प्रदान की।

बहादुरशाह प्रथम अथवा शाह आलम (१७०७-१२), जहाँदार शाह (१७१२-१३), फर्रुखशियर (१७१३-१९), रफीदुदर्जत (१७१९), रफीउद्दौलत (१७१९), नेकुस्सियर (१७१९), इब्राहीम (१७१९), मुहम्मदशाह (१७१९-४८), अहमदशाह (१७४८-५४) आलमगीर द्वितीय (१७५४-५९), शाहआलम द्वितीय (१७५९-१८०६), अकबर द्वितीय (१८०६-३७) और बहादुर शाह द्वितीय (१८३७-५८) उत्तर-कालीन मुगल सम्राट् माने जाते हैं। जिस मुगल वंशकी प्रतिष्ठा बाबर द्वारा पानीपतके प्रथम युद्धके उपरान्त हुई तथा जिसकी परिपुष्टि अकबरने पानीपतके १५५६ ई० वाले युद्धमें की, उसे १७६१ ई०के तृतीय पानीपत युद्धसे भीषण आघात लगा, जिसमें अवधके नवाब शुजाउद्दौलाकी सहायतासे अहमदशाह अब्दालीने मुगल सम्राट् शाह आलम द्वितीय और उसके संरक्षक एवं सहायक मराठोंको पराजित किया। इतने पर भी उसका क्षीणप्राय अस्तित्व अपनी शक्ति एवं प्रभुताके कारण नहीं, अपितु उसके संभाव्य उत्तराधिकारियों, स्वतंत्र हो जानेवाले मुस्लिम सूबेदारों, विद्रोही हिन्दू राज्यों और चतुर अंग्रेज व्यापारियोंकी पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विताके कारण, किसी प्रकार बना रहा। अन्ततः अंग्रेजोंने अपने हिन्दू और मुसलमान प्रतिद्वन्द्वियोंके आपसी ईर्ष्या-द्वेष एवं संघर्षोंका अनुचित लाभ उठाकर मुगल वंशके स्थानपर अपना साम्राज्य स्थापित कर दिया। अन्तिम मुगल सम्राट् बहादुरशाह द्वितीय, जो प्रायः अपने राज्यकालके प्रारम्भसे ही अंग्रेजोंका एक प्रकारसे पेंशन-प्राप्त शासक बन गया था, १८५८ ई०के तथाकथित सिपाही-विद्रोहमें सहयोग देनेके कारण सिंहासनसे उतार कर रंगून भेज दिया गया और १८६२ ई०में वहीं उसकी मृत्यु हो गयी।

मुगल शासन-प्रणाली—मुगल राजवंशके तृतीय सम्राट् अकबर (१५५६–१६०५ ई०) ने इसका संगठन किया, क्योंकि उसके पिता हुमायूँ और पितामह बाबरको न इतना अवसर ही मिला और न उनमें इस कार्य हेतु पर्याप्त क्षमता ही थी। इस शासन-व्यवस्थाका केन्द्रबिन्दु सम्राट् होता था, जिसकी शक्ति असीमित थी और उसका आदेश ही कानून था। सम्राट् ही राज्यकी सर्वोच्च सत्ता, राज्यका प्रमुख, सेनाका सर्वोच्च संचालक, न्यायका स्रोत और मुख्य कानून-निर्माता था। इन समस्त शक्तियोंका सफलतापूर्वक संचालन करने हेतु सम्राट्के लिए यह आवश्यक था कि वह शारीरिक दृष्टिसे बलवान और मानसिक दृष्टिसे जागरूक हो। किन्तु मुगल शासन-व्यवस्थामें, जो वंशानुक्रमकी परंपरापर आधारित थी, इस प्रकारके शक्तिशाली शासकोंकी अटूट परंपरा असंभव प्रायः थी। अतः छः पीढ़ियों तक शक्तिशाली सम्राटोंकी शासन-अवधिके उपरान्त मुगल शासन-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी।

मुगल सम्राटोंके कई मंत्री होते थे, जिनमेंसे क्रमशः चार मुख्य थे। दीवान—माल और वित्त विभागका प्रधान—मीर बख्शी; सैनिक विभागका प्रधान—मीर सामान; कारखानों एवं भाण्डारोंका अध्यक्ष तथा सदरुल-सदर—धार्मिक और न्याय विभागोंका अध्यक्ष। इन चार मंत्रियोंके अतिरिक्त राज्यके कई अन्य मुख्य पदाधिकारी भी होते थे, जो व्यावहारिक रूपसे मंत्रियोंके पदोंके समकक्ष थे; किन्तु इन मंत्रियों द्वारा किसी मंत्रिमंडलकी संरचना नहीं होती थी तथा उनकी नियुक्ति एवं पदच्युति सम्राट्की इच्छापर निर्भर रहती थी। साथ ही मुगल शासन-प्रणालीमें ऐसी कोई सभा या समिति न थी, जो कानूनी तौरपर मुगल सम्राटों तक उसकी मुसलमान और हिन्दू प्रजाकी भावनाओंको पहुँचा सके। इस प्रकार मुगल शासन-व्यवस्थामें शासनके दोषोंको दूर करनेवाली किसी ऐसी सुधारक संस्थाका सर्वथा अभाव था, जैसी इंग्लैण्डके तत्कालीन ट्यूडर और स्टुअर्ट

राजाओंके कालमें पार्लियामेण्टके रूपमें वर्तमान थी। ऐसी सुधारक संस्थाके अभावमें मुगल शासन-व्यवस्था सम्राटोंकी स्वेच्छाचारितापर तब तक चलती रही जब तक वे मानसिक रूपसे अपने कर्तव्योंके प्रति जागरूक रहे। उपरान्त जब मुगल शासक दुर्बल हो गये, यह शासन-प्रणाली ऐसे महत्त्वाकांक्षी और अनैतिक मंत्रियोंके हाथोंका खिलौना बन गयी, जो अपनी स्वेच्छासे सम्राटोंको स्थानापन्न एवं पदच्युत करते थे।

मुगल शासन-प्रणाली नौकरशाही पद्धतिपर आधारित थी, जिसमें नागरिक और सैनिक विभागोंमें कोई भेद नहीं था। सभी उच्चाधिकारी मनसबदारोंकी तैंतीस कोटियोंमें श्रेणीबद्ध थे, जो दससे लेकर दस हजार तक सैनिकोंके नायक होते थे। इनमेंसे सभीको फौजदारी और दीवानीके अधिकार प्राप्त थे और प्रत्येकको नकद वेतन दिया जाता था। आगे चलकर उन्हें यह वेतन जागीर अथवा किसी भू-भागकी मालगुजारी वसूल करनेके अधिकारके रूपमें दिया जाने लगा। मनसबदारी प्रथा मुगल शासन-व्यवस्थाकी नींव थी और उसीके द्वारा कर्मचारियोंके ओहदे और उनका वेतन निश्चित होता था। यह प्रथा कुछ-कुछ ब्रिटिश शासनकालकी इंडियन सिविल तथा मिलटरी सर्विसके अनुरूप थी। मौलिक अंतर केवल इतना ही था कि १८५३ ई० के उपरान्त इंडियन सिविल सर्विसके सदस्योंके समान इसके सदस्योंका चयन किसी सार्वजनिक परीक्षाके द्वारा नहीं होता था, वरन् अकबर सदृश उदार शासकोंके कालमें भी, इसमें मुख्यतः मुसलमानों और वह भी विदेशी मुसलमानोंकी भर्ती की जाती थी। इस प्रकार मुगलोंकी केन्द्रीय शासन-व्यवस्था, जो मूलतः सैनिक प्रथापर आधारित और विदेशियों द्वारा संचालित थी, कभी जनताका समर्थन प्राप्त न कर सकी।

मुगलोंने एक ऐसी प्रान्तीय शासन-व्यवस्थाको विकसित किया, जो दिल्लीकी सल्तनत-कालीन व्यवस्थासे सुधरी हुई थी। अकबरने अपने साम्राज्यका विभाजन १५ सूबोंमें किया था, जिनकी संख्या साम्राज्य विस्तारके साथ, जहाँगीरके राज्यकालमें १७ और औरंगजेबके शासनकालमें २१ हो गयी। प्रत्येक सूबेका पुनः कई सरकारोंमें विभाजन होता था, जो ब्रिटिशकालीन जिलोंके समकक्ष थे। प्रत्येक सरकारका कई परगनोंमें उपविभाजन होता था, सरकारका कई परगनोंमें उपविभाजन होता था, जिन्हें ग्रामोंका समूह कहा जा सकता है। मुगलोंकी प्रांतीय शासन-व्यवस्था केन्द्रके ही अनुरूप थी। केवल एक महत्त्वपूर्ण अंतर था। प्रान्तीय शासन-व्यवस्थाका सर्वोच्च अधिकार, नाजिम या सिपहसालार अथवा सूबेदारमें, जो शासनका अधिशासी था, तथा दीवानमें जो प्रान्तके माल विभागका अधिष्ठाता था, विभाजित रहता था। इनमेंसे दोनोंकी ही नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती थी और दोनों उसीके प्रति उत्तरदायी थे। दोनों एक दूसरेकी गतिविधिपर भी ध्यान रखते थे। फलतः प्रान्तोंमें विद्रोह यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य था।

दीवानके अतिरिक्त सूबेदारको बख्शी नामक पदाधिकारीसे, जो सैनिकोंका वेतन-वितरक होता था तथा न्यायकर्त्ता काजी और सदरसे भी सहायता मिलती थी। प्रत्येक सरकारमें एक फौजदार नियुक्त था, जो अपने क्षेत्रमें शान्ति एवं सुव्यवस्था बनाये रखनेके अतिरिक्त फौजदारीके मुकदमोंमें न्याय करता था तथा पुलिस और स्थानीय सैनिक दस्तेका नायक भी होता था। प्रत्येक महत्त्वपूर्ण नगरमें कोतवाल नामक एक अधिशासी नियुक्त रहता था। प्रत्येक प्रान्तमें केन्द्रीय शासन द्वारा प्रत्यक्ष एवं गुप्त रूपसे वाकयानवीस (सूचना-वाहक) नियुक्त थे, जिनका कार्य केन्द्रीय सरकारको प्रान्तोंमें होनेवाली सभी घटनाओंकी सूचना देना था। केन्द्रमें इन सूचनाओंपर ध्यानपूर्वक विचार होता था और वे नियमित रूपसे सम्राट्के सम्मुख रखी जाती थीं। इस व्यवस्थासे प्रान्तीय शासकोंकी विद्रोही प्रवृत्तियोंपर अतिरिक्त नियंत्रण रहता था।

मुगल सम्राटोंकी आयका मूलस्रोत भूमिकर था। आयके अन्य साधन सीमाकर, टकसाल, युद्धोंमें विजित सम्पत्ति तथा हर्जानेकी राशि, भेंट-उपहार, एकाधिकार (मुगलराज्य सैनिक तथा अन्य उपभोग्य वस्तुओंका प्रमुख निर्माता था) और चुंगीके थे। पूरे उत्पादनका एक तिहाई भाग भूमिकरके रूपमें निर्धारित था और कर-संग्रह राज्य द्वारा नियुक्त वैतनिक अधिकारियों द्वारा प्रजासे सीधा वसूल किया जाता था।

भूमिका विभाजन उर्वराशक्तिके आधारपर चार श्रेणियोंमें किया गया था और प्रत्येक श्रेणीकी सही-सही उपजका पता लगानेके लिए विशेष व्यवस्था की गयी थी। भूमिकर यद्यपि नकदी और उपज दोनों ही रूपोंमें लिया जाता था, किन्तु नकदी प्रथाको प्रोत्साहन प्राप्त था। उपजका नकदी मूल्यांकन पिछले ३ या १० वर्षोंके प्रचलित मूल्योंके आधारपर सावधानीसे किया जाता था। इसपर भी सम्पूर्ण राज्यमें समान व्यवस्था प्रचलित न थी। सिन्धके निचले काँठे और कश्मीर सदृश भू-

भागोंमें राज्यका अंश खड़ी फ़सलके वास्तविक विभाजनके उपरान्त निर्धारित किया जाता था। मुलतानसे लेकर बिहार तकके विस्तृत भू-भागोंमें एक अन्य विशिष्ट प्रथा प्रचलित थी, जिसके अन्तर्गत भूमिके सर्वेक्षण और समान स्तरके मानदण्डसे पैमायश तथा उपजके अनुसार श्रेणी-निर्धारण एवं औसत उपज और उसके आधारपर एक तिहाई अंशके नकद मूल्यका निर्धारण होता था, किन्तु बंगालमें कानूनगो नामक राजस्व अधिकारियोंकी रिपोर्टके आधारपर राज्यका अंश निर्धारित होता था।

मुगल सेनाके मुख्य अंग अश्वारोही, पदाति, तोपखाना और जहाजी बेड़ा थे। इन चारों अंगोंमें अश्वारोही दल सबसे महत्त्वपूर्ण था। पैदल सेना, जिसमें नगरों एवं गाँवोंसे यथा अवसर भर्ती की जाती थी, प्रायः नगण्य थी। तोपखाना भारतमें बनी अथवा विदेशोंसे आयात की गयी तोपोंसे सुसज्जित था। यद्यपि मुगल तोपखाना तत्कालीन हिन्दू राज्योंके तोपखानोंसे श्रेष्ठ था, तथापि वह यूरोपीय शक्तियोंसे निम्न स्तरका था। उसकी तोपें न तो उतनी दूर तक मार कर सकती थीं और न उसके गोले निशानेपर उतने सही गिरते थे। मुगलोंकी जल-सेनामें बड़ी और छोटी नावें थी, जो नदियोंके यातायातका संरक्षण करती थीं। वे समुद्रोंकी यात्राओंके हेतु नितान्त अनुपयुक्त थीं। वस्तुतः अकबर और औरंगजेब सहित समस्त मुगलशासकोंने व्यापार तथा आक्रमणके विचारसे समुद्री मार्गके महत्त्वको कभी नहीं समझा और इसी कारण उन्होंने एक ऐसी विशाल जल-सेनाका निर्माण नहीं किया, जो यूरोपीय शक्तियोंसे समुद्रोंमें लोहा ले सके और उन्हें भारत भूमिपर उतरनेसे रोके।

मुगलशासक जल-सेनाके लिए एक यूरोपीय जातिके मुकाबलेमें दूसरी जातिकी सहायतापर निर्भर रहे और इस प्रकार अंततोगत्वा स्वयं उनके शिकार बन गये। इसी प्रकार मनसबदारी प्रथामें भी, जिसपर मुगल सैन्य-शक्ति संगठित थी, झूठे आँकड़े भरे जाने लगे और उनमें नियमित प्रशिक्षण एवं अनुशासनका अभाव हो गया। इसके अतिरिक्त युद्धके लिए प्रयाण करते समय तथा युद्ध-भूमिमें मुगल सेनाके साथ इतना अधिक लाव-लश्कर रहता था कि औरंगजेबके कालमें ही वह द्रुतगामी और हलके शस्त्रास्त्रसे सज्जित मराठा सेनाओंका मुकाबला नहीं कर पाती थी। १७३९ ई० में नादिरशाह दुर्रानी द्वारा और उपरान्त अहमदशाह अब्दाली द्वारा उसे बारम्बार पराजय उठानी पड़ी और अन्ततः उसका दुःखद पराभव हुआ।

अन्तमें यह बताना उचित है कि मुगल सैनिक-शक्ति और क्षमतामें इस कारण भी ह्रास हुआ कि उसने अपनी विजयोंसे मिलनेवाली शिक्षाओंकी पूर्ण अवहेलना की। शस्त्रास्त्रोंकी श्रेष्ठताने ही बाबरको पानीपत और खनुआमें तथा अकबरको हल्दीघाटीके युद्धोंमें विजय दिलायी थी, किन्तु १८ वीं शताब्दीमें यह सैनिक श्रेष्ठता अंग्रेजोंके हाथों चली गयी, जिनके हथियारों और सैन्य-संगठनकी शक्तिके समक्ष कोई भी भारतीय सेना नहीं ठहर पाती थी। इस प्रकार मुगल सैनिक-व्यवस्थाकी विफलता एक ऐसा दृष्टान्त प्रस्तुत करती है जिसकी अवहेलना भारतीय गणतंत्रकी सरकारको अपनी सुरक्षाकी दृष्टिसे कभी नहीं करनी चाहिए। राज्यका अस्तित्व तभी संभव है, जब वह अपने शस्त्रास्त्र और सैन्य सामग्रीका समयानुकूल आधुनिकीकरण करता रहे।

मुजफ्फर जंग—निजामुल-मुल्क चिन-किलिच खाँका दौहित्र (नवासा)। निजामकी मृत्युके उपरान्त १७४८ ई० में वह अपने मामा नासिर जंगके स्थानपर हैदराबादकी गद्दीका दावेदार बना। उसने डूप्लेके अधीन फ्रांसीसियोंका समर्थन प्राप्त किया तथा उसे चन्दा साहब सदृश मित्र भी मिला, जो अर्काटकी गद्दीका दावेदार था। प्रारम्भमें युद्धका परिणाम उसके विपरीत रहा, परन्तु १७५० ई० में नासिर जंगकी हत्या कर दी गयी और फ्रांसीसियोंकी सहायतासे मुजफ्फर जंगको निजामत मिल गयी, जिसके बदले उन्हें विशेष सुविधाएँ प्रदान की गयीं। किन्तु १७५१ ई०में हुई एक आकस्मिक मुठभेड़में मुजफ्फर जंग भी मारा गया और हैदराबादकी गद्दी उसके तीसरे मामा सलावत जंगके अधिकारमें आ गयी।

मुज्तहिद होनेकी घोषणा—(धार्मिक विषयोंमें भी विवेकपूर्ण निर्णयकर्ता होनेकी घोषणा) बादशाह अकबर द्वारा १५७९ ई०में की गयी। एक व्यवस्था-पत्रके द्वारा अल्लाहकी शान और इसलामके प्रचारके लिए बादशाहको इसलाम धर्मसे सम्बन्धित किसी भी विवादमें अन्तिम निर्णयकर्ता घोषित कर दिया गया। इस व्यवस्था-पत्रके द्वारा मुगल बादशाहको मुज्तहिद बना दिया गया और उसकी शक्ति बहुत अधिक बढ़ गयी।

मुजाहिद—बहमनी वंशका तृतीय सुल्तान। वह अत्यधिक मदिरा पान करता था, फलतः उसका चचेरा भाई दाऊद उसका वध करके सिंहासनपर बैठ गया। दाऊद भी

अपने सिंहासनारोहणसे एक वर्षके भीतर ही एक गुलाम द्वारा मार डाला गया।

मुडीमैन कमेटी–भारत सरकार द्वारा १९२४ ई०में नियुक्त की गयी। उसका सरकारी नाम सुधार जाँच कमेटी था किन्तु सामान्य रूपसे वह अपने अध्यक्ष सर अलेक्जेण्डर मुडीमैनके नामपर मुडीमैन कमेटी कही जाती थी। मुडीमैन उस कालमें भारत सरकारका गृह सदस्य था। कमेटीके सदस्योंमें सर तेज बहादुर सप्रू जैसे प्रमुख गैर-सरकारी व्यक्ति भी थे। उसका कार्य १९१९ के गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्टके अनुसार १९२१ ई० में जो संविधान सुधार प्रचलित किया गया था उसके दोषोंकी जाँच करना था। कमेटीने दिसम्बर १९२४ ई०में रिपोर्ट प्रस्तुत की। सदस्योंने दो प्रकारकी राय व्यक्त की थी। बहुमतसे ऐक्टमें केवल मामूली परिवर्तन करनेकी सिफारिश की गयी थी। परन्तु अल्पसंख्क गैर-सरकारी भारतीय सदस्योंने द्वैध शासन (दे०)की अपरोक्ष रीतिसे निन्दा करते हुए ऐक्टमें आधारभूत परिवर्तन करनेकी सिफारिश की थी। इन सिफारिशोंपर कोई काररवाई नहीं की गयी।

मुतब्बर खाँ–औरंगजेबके राज्यकालके अन्तिम वर्षोंमें उसकी सेनाका एक पदाधिकारी। उसने नासिक जिलेमें मराठोंके कई पहाड़ी दुर्गोंपर अधिकार करनेमें विशेष योग्यता दिखलायी और फिर कोंकणकी ओर बढ़कर कल्याण आदि कई स्थलोंपर अधिकार कर लिया। इस प्रकार वह पश्चिमी समुद्र-तटीय प्रदेशोंको मुगल शासनके अधीन करानेमें सफल हुआ। मुतब्बर खाँ कल्याणमें कई बर्षों तक रहा और उक्त नगरमें कई सुन्दर इमारतें बनवायीं।

मुदकीकी लड़ाई–१८४५ ई०में अंग्रेजों और सिखोंके बीच हुई। इसमें सिखोंकी हार हुई।

मुदगल–कृष्णा और तुंगभद्रा नदियोंके दोआबमें स्थित परकोटेसे घिरा एक नगर। इसके लिए बहमनी (दे०) और विजयनगर साम्राज्यों (दे०)के बीच बराबर लड़ाई होती रहती थी और वह किसी एक राज्यके अधीन हो जाता था और कभी दूसरे राज्यके अधीन। अन्तमें विजयनगरके राजा अच्युत राय (दे०) (१५२९–४२ ई०) से इसे बीजापुरके सुल्तान इस्माइल आदिलशाह (दे०) (१५१०-३४ ई०)ने अन्तिम रूपसे छीन लिया।

मुद्रा प्रणाली–भारतमें इसका इतिहास बहुत पुराना है। सबसे पुराने भारतीय सिक्के चाँदी या ताँबेके हुआ करते थे। इनका आकार सामान्यत: चौकोर या आयत होता था। ऐसे सिक्के ईसापूर्व कमसे कम चौथी शताब्दीके हैं जिनका प्रचलन कई शताब्दियों बाद तक बना रहा। ईसापूर्व दूसरी शतीसे भारतीय सिक्कोंपर यूनानी प्रभाव पड़ने लगा और उनमें तदनुरूप कुछ सुधार किया गया। भारतीय-बाख्त्री नरेशोंने अधिक सुन्दर सिक्के जारी किये जिनपर ग्रीक और प्राकृत भाषाओंमें लेख अंकित थे। ईसा बाद प्रथम शताब्दीसे कुषाण राजाओं (दे०) ने सोने और ताँबेके सिक्के जारी किये, जिनके एक पार्श्वपर बलि चढ़ाते हुए एक राजाकी छवि अंकित होती थी और दूसरे पार्श्वपर तत्कालीन सभी धर्मोंके देवी-देवताओंकी आकृति। इस प्रकारके सिक्के बादकी कई शताब्दियों तक उत्तरी भारतमें प्रचलित रहे। गुप्त सम्राटोंने चौथी ई० में सुधरी हुई किस्मके सिक्के भारी संख्यामें जारी किये, उनके ऊपर संस्कृत भाषाके लेखके साथ-साथ सिक्का चलानेवाले राजाका नाम और उसकी विभिन्न भाव मुद्राएँ अंकित होती थीं। उदाहरणके लिए समुद्रगुप्तके जो सोनेके सिक्के मिले हैं, उनमें उसे पर्यंकपर बैठकर वीणा बजाते हुए अथवा अश्वमेध करते हुए चित्रित किया गया है। पश्चिमी क्षत्रपोंने चाँदीके सिक्के चलाये, जिनपर नाम सहित उनकी आवक्ष प्रतिमा अंकित होती थी।

छठीं शताब्दीमें हूणोंके आक्रमणके परिणामस्वरूप सिक्कोंमें ह्रास हुआ। किन्तु दसवीं शताब्दीमें गांधारके शाही शासकोंने फिर शुद्ध चाँदीके सिक्का ढालने शुरू कर दिये। इन्हीं सिक्कोंकी नकल बादको भारतके तुर्क विजेताओंने की। दिल्लीके सुल्तानोंने अपने समयमें विभिन्न प्रकारके सिक्के जारी किये। इनमें १७८ ग्रेन वाले सोने और चाँदीके टंक (रुपये) मुख्य थे। ये आकारमें बड़े और मोटे थे जिनके एक तरफ 'कलमा' और दूसरी तरफ सिक्का प्रचलित करनेवाले बादशाह व सिक्का ढालनेवाली टंकसालका नाम और तिथि अंकित रहती थी। मुहम्मद तुगलकने वित्तीय संकटपर विजय पानेके उद्देश्यसे स्वर्ण मुद्राओंके स्थानपर ताँबेके सिक्के प्रचलित किये। यह प्रयोग विफल रहा और भारतमें किसी अन्य मुस्लिम शासकने इस प्रकारकी प्रतीक मुद्राका प्रचलन नहीं किया। किन्तु सिक्कोंका गुण-स्तर शेरशाहके समय तक गिरता गया। शेरशाहने सोने और चाँदीके टंक (अथवा रुपया) जारी करके मुद्रा प्रणालीको फिर स्थिरता प्रदान की। शेरशाहने चाँदीके रुपये और ताँबेके सिक्केके बीच १ : ६४ का अनुपात निर्धारित किया। चाँदीका यह सिक्का एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तनके साथ सम्पूर्ण मुगल शासनकालमें भारतीय मुद्राप्रणालीका मान-

दण्ड माना जाता रहा। औरंगजेब (दे०) ने 'कलमा'के स्थानपर टंकशालाका नाम और मुद्रा जारी करनेकी तिथि अंकित की। औरंगजेबके उत्तराधिकारियोंने भी इसी प्रथाका अनुगमन किया।

सिक्कोंके मामलेमें अंग्रेजोंने भी १८३५ ई० तक मुगलोंकी परम्पराका ही पालन किया। सिर्फ शाहआलम द्वितीयके शासनके उन्नीसवें वर्षमें ही उन्होंने एक नया सिक्का जारी किया। इस सिक्के पर पुराने लेखोंको हटा कर अंग्रेज सम्राट्का चित्र अंकित किया गया। आगे चलकर विभिन्न मूल्योंके चाँदी और ताँबेके सिक्के जारी किये गये और जालसाजी रोकनेके लिए पर्याप्त उपाय किये गये। प्रथम विश्वयुद्धके कालमें सोनेके सिक्कोंका प्रचलन बन्द करना पड़ा और दूसरे विश्वयुद्धमें चाँदीके रुपये तथा अन्य छोटे सिक्कोंमें चाँदीकी मात्रा कम कर दी गयी। चाँदीके रुपयेके स्थानपर एक रुपयेका प्रतीक रूप कागजी नोट चलाया गया जो वैध मुद्रा बन गया। भारत जबसे आजाद हुआ है, वह बराबर नये सिक्के जारी करता रहा है। ये सिक्के न तो सोने-चाँदीके हैं और न ताँबे के। एक रुपयेसे नीचे एक पैसे तक ये सिक्के मिश्रित धातुके हैं। दशमिक प्रणालीके अनुसार एक रुपया और एक पैसेका अनुपात १ : १०० निर्धारित किया गया। इन सिक्कोंपर स्वतन्त्र भारतके नये पदके अनुरूप नये राजचिह्न उत्कीर्ण किये गये। स्वतन्त्र भारत-ने एक रुपये और उससे ऊपरके विभिन्न मूल्योंके कागजी नोट छापनेकी परम्परा भी जारी रखी। **(ए० कनिंघम कृत क्वायंस आफ एंशियेंट इंडिया, क्वायंस आफ मेडीवल इंडिया; वी० ए० स्मिथ कृत कैटेलाग आफ इंडियन क्वायंस; जे० एलन कृत क्वायंस आफ दि गुप्ताज)**

मुद्राराक्षस–एक संस्कृत नाटक, जिसकी रचना विशाखदत्त ने की। विशाखदत्तका सही-सही काल ज्ञात नहीं है, किन्तु यह माना जाता है कि वह गुप्तकालके उत्तरार्धमें हुआ। इस नाटकमें चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा आर्य चाणक्य-की सहायतासे अन्तिम नन्द राजासे मगधका राजसिंहासन छीन लिये जानेकी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख है।

मुनीम खाँ–हुमायूँका वीर और साहसी पदाधिकारी, जो अकबरके प्रारंभिक शासन-कालमें काबुलमें ऊँचे पदपर आसीन था। बैरम ख़ांके पतनके उपरान्त उसे ख़ानख़ाना पदपर नियुक्त किया गया। मुनीम खाँने बंगालमें १५७३ ई० के मुगल सैनिक अभियानका संचालन किया और वहाँके अफ़गान शासक दाऊद (दे०)को १५७५ ई०में पराजित कर अपनी अधीनता स्वीकार करनेपर विवश किया। किन्तु कुछ ही समय उपरान्त बीमारीके कारण उसकी मृत्यु हो गयी।

मुनीम खाँ–सुलतान बेगका पुत्र और तत्कालीन अफ़गानिस्तान सूबेके प्रान्तीय शासक शाहजादा मुअज्जमका राजस्व-मंत्री। १७०७ ई०में अपने पिता औरंगजेबकी मृत्यु-के समय शाहजादा मुअज्जम जमरूदमें था। मुनीम खाँने बड़ी ही तत्परतासे शाहजादा मुअज्जमको यथेष्ट धनराशि दी और यातायातके साधनों तथा सैन्यबल संग्रहीत करनेमें सहायता पहुँचायी। इससे वह जमरूदसे शीघ्र ही आगरा आनेमें समर्थ हुआ और अपने आपको बहादुरशाहके नामसे सम्राट् घोषित कर दिया। उपरान्त मुनीम खाँने कामबख्श (दे०)को पराजित किया जो युद्ध-क्षेत्रमें ही मारा गया, १७१० ई०में बन्दा बहादुर तथा विद्रोही सिखोंको पराजित करनेमें बड़ा हाथ रहा। यद्यपि बहादुरशाह मुनीमखाँका विशेष रूपसे कृतज्ञ था, तथापि उसको प्रधान-मंत्रीका पद न मिला और उसे राजस्व-मंत्री-के पदसे ही संतोष करना पड़ा।

मुन्नी बेगम–बंगालके नवाब मीरजाफरकी विधवा। प्रारंभमें वह एक नर्तकी थी, जिससे मीर ज़ाफरने विवाह कर लिया। वारेन हेस्टिंग्सने उसे नवाबके हरमकी अधिष्ठाता नियुक्त किया और बादमें उसे अल्पवयस्क नवाब मुबारकुद्दौलाका अभिभावक बना दिया। १७७५ ई०में नंदकुमारने वारेन हेस्टिंग्सपर यह दोषारोपण किया कि उसने इन नियुक्तियोंके बदले लम्बी धनराशि घूसके रूपमें ली है। किन्तु इन अभियोगोंकी कोई जाँच न हुई और मुन्नी बेगम अपने पदपर यथापूर्व बनी रही।

मुबारक शाह–दिल्लीका निवासी एक आर्मीनियाई ईसाई। बादशाह जहाँगीर उससे परिचित था। बादशाहके कहनेसे उसने अपनी लड़कीका विवाह कैप्टेन हाकिन्स (दे०) से कर दिया था।

मुबारकशाह शर्की–जौनपुरका पहला सुल्तान। उसने केवल तीन वर्ष (१३९९–१४०२ ई०) तक शासन किया।

मुबारक शेख–देखिये, 'शेख मुबारक'।

मुबारुकुद्दौला–बंगालका एक नाबालिग नवाब। १७७५ ई० में नंदकुमार (दे०) ने आरोप लगाया कि वारेन हेस्टिंग्स-ने मुन्नी बेगमको नाबालिग नवाबका अभिभावक नियुक्त करनेके लिए उससे घूसके रूपमें बड़ी रकम ली है। इस आरोपकी कभी पूरी तरहसे जाँच नहीं की गयी।

मुमताज महल–नूरजहाँके भाई आसफ़ खाँकी पुत्री, जो जहाँगीरके शासनकालमें सबसे धनवान् और शक्तिशाली सरदार था। उसका प्रारम्भिक नाम बानू बेगम था

और १६१२ ई०में जहाँगीरके पुत्र खुर्रम (उपरांत सम्राट् शाहजहाँ) से विवाह हुआ और उसका नाम मुमताज महल (रनिवासका रत्न) रखा गया। यह विवाह सम्बंध अत्यन्त सुखद रहा। शाहजहाँ और मुमताजके १४ बच्चे हुए, जिनमें दारा, शुजा, औरंगजेब और मुराद—चार पुत्र थे। १६३१ ई० में मुमताज महलकी मृत्यु प्रसवकालमें बुरहानपुरमें हो गयी। उसका शव आगरा लाया गया, जहाँ शाहजहाँने उसकी कब्रपर ताजमहल (दे०) नामक विश्वविख्यात अद्वितीय स्मारक बनवाया।

मुराद बख्श—शाहजहाँ और मुमताज महलका सबसे छोटा पुत्र। जन्म १६२४ ई०में हुआ। युवावस्था प्राप्त होनेपर वह वीर साहसी एवं युद्ध-प्रिय युवक सिद्ध हुआ। उसने काँगड़ा घाटीमें एक विद्रोहको दबाया और बलख पर अधिकार कर लिया, यद्यपि बादमें उसे वहाँसे लौट-आना पड़ा। १६५७ ई०में जब शाहजहाँ अस्वस्थ हुआ, मुराद गुजरातका प्रान्तीय शासक था। वह दुस्साहसी और अधीर था। अपने सबसे बड़े भाई दाराको उत्तराधिकारसे वंचित रखनेके लिए दृढप्रतिज्ञ होकर उसने सूरतको लूटा और अपनेको सम्राट् घोषित कर दिया तथा अपने नामसे सिक्के भी ढलवाये। किन्तु शीघ्र ही बड़े भाई औरंगजेबके समझानेपर उसने इस आधारपर उसका साथ दिया कि साम्राज्यका विभाजन औरंगजेब और उसके मध्य होगा। फलतः उसने अपनी सेनाओंको औरंगजेबकी सेनाओंमें सम्मिलित कर दिया और धर्मट तथा सामूगढ़के युद्धोंमें प्राप्त होनेवाली विजयोंमें यशका भागीदार बना। अंतिम युद्धके उपरांत शीघ्र ही दोनों भाई आगराकी ओर बढ़े। वहाँ मुरादको औरंगजेबके वचनोंसे शंका उत्पन्न हुई जिससे वह औरंगजेबके विरुद्ध अपनी शक्ति-वृद्धिमें प्रयत्नशील हुआ। किन्तु धूर्त औरंगजेबने मुरादको अपने डेरेमें बुलाया और वहीं बन्दी बना लिया। वह ग्वालियरके दुर्गमें रखा गया, जहाँ गुजरातके भूतपूर्व दीवानकी हत्याके अभियोगमें अदालतके निर्णयानुसार उसे फाँसी दे दी गयी।

मुराद, शाहजादा—अकबरका सलीमा बेगमसे १५५७ ई०में उत्पन्न द्वितीय पुत्र। वह काबुल तथा दक्षिणमें कई महत्त्वपूर्ण पदोंपर आसीन हुआ तथा दक्षिणमें अहमदनगर सल्तनतसे बरार प्रान्तको प्राप्त करनेमें सफल रहा। मुराद अत्यधिक मदिरा पीता था, फलस्वरूप १५९९ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी।

मुरारि राव—दक्खिनकी ओर स्थित गूटीका एक मराठा सरदार। उसने चाँदा साहबके विरुद्ध पहले कर्नाटक-युद्ध (दे०)में अंग्रेजों तथा क्लाइवकी सहायता की। १७५२ ई० में त्रिचनापल्लीका घेरा खत्म करवानेमें तथा उसी वर्ष चाँदा साहबको हरानेमें वह क्लाइवका दाहिना हाथ बना रहा।

मुर्तजा अली—कर्नाटकका नवाब। १७४३ ई०में निजाम आसफ जाहने उसे गद्दीसे उतार कर अनवरुद्दीनको कर्नाटकके सिंहासनपर बैठा दिया।

मुर्तजा निजाम शाह, प्रथम—अहमदनगरके निजामशाही वंशका चौथा सुल्तान, जिसने १५६५ से १५८६ ई० तक राज्य किया। अपने राज्यकालके प्रथम ६ वर्षोंमें उसने सारा शासन-प्रबन्ध अपनी माताके हाथोंमें छोड़ रखा। बादमें उसने यथेष्ट सक्रियता दिखलायी और बरारको विजय कर लिया, किन्तु बीदरपर अधिकार करनेमें वह असफल रहा। उपरांत वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठा और उसके पुत्र हुसैनने, जो उसके बाद सिंहासनासीन हुआ, उसका वध कर दिया।

मुर्तजा निजाम शाह द्वितीय—अहमदनगरका दसवाँ सुल्तान। उसने १६०३ से १६३० ई० तक शासन किया। शासन-प्रबंधमें मलिक अम्बर (दे०) उसका प्रधान सहायक था। उसके राज्यका अधिकांश भू-भाग मुगलोंने छीन लिया, जिनके साथ उसका युद्ध बराबर चलता रहा। १६३० ई०में उसके मन्त्री फतेह खाँ (दे०)ने उसका वध कर दिया। फतेह खाँ अम्बरका पुत्र था और १६२६ ई०में अपने पिताके मरनेपर उसके पदपर आरूढ़ हुआ था।

मुर्शिद कुली खाँ—रुस्तमे जंगकी उपाधिसे विभूषित, मुर्शिद कुली जाफर खाँ (दे०)के दामाद एवं उत्तराधिकारी नवाब शुजाउद्दीनका उड़ीसामें नायब। १७४० ई०में जब अलीवर्दी खाँने मुर्शिद कुली जाफर खाँके वंशजोंको मार कर उनसे बंगालकी गद्दी छीन ली, तब भी वह उड़ीसामें पदासीन रहा। १७४१ ई०में अलीवर्दी खाँने उसे पराजित कर उड़ीसासे खदेड़ दिया।

मुर्शिद कुली जाफर खाँ—फारसका निवासी, जो मुगलोंकी सेवामें आनेपर दीवान बनाकर औरंगजेबके साथ दक्षिण भेजा गया। १६५६ ई०में उसकी पदोन्नति समस्त दक्षिणके दीवानके रूपमें हुई। इस पदपर रह कर उसने यथासंभव एक ही प्रकारके मापदंड द्वारा भूमिकी पैमाइश, अनुमानित उपजपर कर-निर्धारण एवं भूमिकरकी नकद या उपजके रूपमें वसूली आदि सिद्धांतोंके आधारपर दक्षिणमें राजस्व-संग्रह तथा भूमि-व्यवस्थाको सुनियोजित किया। राजस्व नकदीमें देना ही श्रेष्ठ माना गया।

दक्षिणमें उसे इतनी सफलता प्राप्त हुई कि १७०१ ई०में बंगालका दीवान नियुक्त किया गया। वहाँ भी

उसने प्रांतके वित्तीय विभागको इतने सुचारु रूपसे संचालित किया कि उसे सूबेदारकी अधीनतासे स्वतंत्र कर दिया गया और प्रांतीय राजधानी ढाकासे समस्त राजस्व संबंधी कार्यालयोंको यही स्थानपर ले जानेकी अनुमति दे दी गयी। यही स्थान आगे मुर्शिदाबाद कहलाया। औरंगजेबकी मृत्युके उपरांत वह बंगाल, बिहार और उड़ीसाका सूबेदार नियुक्त किया गया। इन भू-भागोंपर १७२६ ई० में मृत्युपर्यन्त वह सुचारु रूपसे शासन करता रहा।

मुर्शिदाबाद–बंगालमें भागीरथी नदीके तटपर स्थित नगर। इसकी नींव १७०४ ई०के प्रारंभमें मुर्शिद कुली जाफर खाँने डाली। प्रारंभमें यह नगर केवल दीवानका मुख्य कार्यालय था। किन्तु जब मुर्शिद कुली खाँ क्रमशः पदोन्नति करके दीवानसे बंगालका नवाब बन गया, तब मुर्शिदाबाद भी उन्नति करके बंगालकी राजधानी बन गया। यह नगर १७७३ ई०, तक बंगालकी राजधानी रहा, जब उसका यह गौरव कलकत्ताने छीन लिया। नगरमें नवाबका महल अत्यंत भव्य है। यह हजार दुआरीके नामसे विख्यात है। इसका निर्माण १८३७-४० ई०के मध्य हुआ। जहाँ पद्मा नदी मुर्शिदाबाद जिले और बंगला देशकी सीमाओंको विभक्त करती है, वहाँ भागीरथी नदीने इस जिलेको दो भागोंमें बाँट दिया है। पश्चिमी भाग राढ़ कहलाता है, जो कुछ ऊँचाईपर है और जहाँ हिन्दुओंकी जनसंख्या अधिक है। इसका पूर्वी भाग बगड़ी कहलाता है, जिसकी भूमि नीची है और जहाँ मुसलमानोंकी संख्या अधिक है। यहाँ कोई बड़े-बड़े उद्योग धंधे तो नहीं हैं, किन्तु यहाँके आमके बाग प्रसिद्ध हैं।

मूलतान–आधुनिक पाकिस्तानमें चिनाव नदीके तटपर स्थित पश्चिमी पंजाबका एक महत्त्वपूर्ण नगर। यह सिन्धसे पंजाब जानेवाले राजमार्गपर है। सैनिक दृष्टिसे इसकी स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सुल्तान महमूद (गजनी) (दे०) ने उसे जीत कर अपने राज्यमें मिला लिया था। उपरान्त उसे शहाबुद्दीन गोरी (दे०) ने गजनवियोंसे छीन लिया, जो शताब्दियों तक दिल्ली साम्राज्यका एक भाग रहा। अहमदशाह अब्दाली (दे०) ने उसे जीतकर अफगानिस्तानमें सम्मिलित कर लिया, परन्तु १८१८ ई० में महाराजा रणजीतसिंह (दे०)ने उसे अफगानोंसे छीन लिया। उस प्रदेशके सिख सूबेदार मूलराजने १८४८–४९ ई०में अंग्रेजोंके विरुद्ध विद्रोह कर दिया, जो अन्तमें द्वितीय सिख-युद्ध (दे०)में परिणत हो गया। इसमें अंग्रेजोंकी विजय हुई और मुलतान ब्रिटिश साम्राज्यमें मिला लिया गया।

मुस्लिम लीग–ढाकाके नवाब सलीमउल्लाके प्रयाससे १९०६ ई० में स्थापना हुई। इसकी योजना उस प्रोत्साहनके आधारपर हुई थी, जो लार्ड मिण्टो द्वितीयकी सरकार द्वारा मुसलमानोंको दिया गया था। प्रारम्भसे ही इस संस्थाका ध्येय भारतीय मुसलमानोंके राजनीतिक हितोंकी रक्षा, समर्थन और परिवर्द्धन था और यह ब्रिटिश सरकारके समर्थनपर सदैव आधारित रही; क्योंकि सरकार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका प्रतिकार करनेके लिए, जिसमें हिन्दुओंकी संख्या अधिक थी, इसे उपयोगी समझती थी। मुस्लिम लीगने केवल एक बार १९१६ ई०में लखनऊ समझौतेके आधार पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका समर्थन करनेके अतिरिक्त कभी भारतीयोंके राजनीतिक अधिकारोंकी माँग नहीं की। किन्तु दोनोंका यह सहयोग शीघ्र ही समाप्त हो गया और मुस्लिम लीग पुनः मुसलमानोंके हितोंकी रक्षाके लिए ब्रिटिश सरकारकी सहायता और समर्थनपर निर्भर करने लगी। इस संस्थाकी मुख्य दलील थी कि स्वतन्त्र भारतकी जनता द्वारा चुनी गयी जनतान्त्रिक व्यवस्थामें मुसलमान, हिन्दू बहुमत द्वारा शासित होंगे। अतएव देशके अतीत कालके इतिहासकी शिक्षाओंको भुलाकर तथा इस सत्यकी उपेक्षा कर कि भारतमें ब्रिटिश राज्य हिन्दुओंके मुसलमानी शासनके विरोधस्वरूप नहीं, अपितु मुसलमानोंकी सहायतासे स्थापित हुआ, मुस्लिम लीगने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके विरुद्ध अंग्रेजोंका साथ दिया, जब कि कांग्रेस सभी भारतीय हिन्दुओं और मुसलमानोंके राजनीतिक अधिकारोंका समर्थन करती थी।

समयकी गतिके साथ इस शताब्दीके तीसरे दशक तक, जब ब्रिटिश राज्यकी सत्तामें कुछ दुर्बलताके लक्षण प्रकट होने लगे थे, मुस्लिम लीगमें इतनी हिन्दू-विरोधी भावना भर गयी कि उसने नारा लगाना आरम्भ कर दिया कि देशको विभाजन करके मुस्लिम-बहुल भागमें पाकिस्तान और हिन्दू-बहुल भागमें हिन्दुस्तानकी स्थापना की जानी चाहिए। यह अल्पदृष्टि-युक्त एवं पूर्णतः साम्प्रदायिक माँग अंग्रेजोंके द्वारा स्वीकार कर ली गयी, और उन्होंने भारत छोड़ते समय देशका विभाजन करके सम्प्रदायवादी भारतीय मुसलमानोंको पाकिस्तान प्रदान कर दिया। देशके इस विभाजनसे हिन्दू और मुसलमान दोनोंको अत्यधिक कष्ट सहन करना पड़ा और भयंकर रक्तपात हुआ। इस प्रकार विभाजित और दुर्बल भारत देशवासियोंको मुस्लिम लीगकी देन है।

मुहम्मद अली–कर्नाटकके नवाब अनवरुद्दीन (दे०) का

पुत्र। १७४९ ई०में आम्बूरके युद्धमें चन्दा साहब, मुजफ्फर जंग और फ्रांसीसियोंकी सम्मिलित सेनाओंने जब उसके पिताको पराजित किया तो उसने भाग कर त्रिचनापल्लीके दुर्गमें शरण ली। वहाँसे अंग्रेजोंकी सहायताके बलपर उसने अपने शत्रुओंको पराजित किया और १७५२ ई० में वह कर्नाटकका वास्तविक शासक बन बैठा। उसकी सत्ता पूर्णतया मद्रासमें स्थित अंग्रेजी सेनाके समर्थनपर निर्भर थी और अपनी मृत्यु पर्यन्त वह कर्नाटकमें अंग्रेजोंके कठपुतली शासकके रूपमें राज्य करता रहा।

मुहम्मद अली, मौलाना—प्रसिद्ध मुसलमान विद्वान और नेता। उन्होंने कुरानका सबसे प्रामाणिक अनुवाद किया। अपने भाई शौकत अलीके साथ मिलकर मौलानाने प्रथम महायुद्धके समाप्त होनेके बाद भारतके राष्ट्रीय आन्दोलनमें महत्त्वपूर्ण हिस्सा लिया। वे खिलाफत आन्दोलनके नेता थे। यह आन्दोलन प्रथम महायुद्धके बाद अंग्रेजोंकी तुर्की साम्राज्यको भंग कर देनेकी नीतिके विरोधमें चलाया गया था। उन्होंने महात्मा गांधी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन (१९२०–२४ ई०) में भी हिस्सा लिया। १९२३ ई० में उनको भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका अध्यक्ष बनाया गया, लेकिन जब महात्मा गांधीने १९३० ई०में दुबारा असहयोग आन्दोलन शुरू किया तो वे उससे अलग हो गये। मृत्यु पर्यन्त वे राष्ट्रीयतादी मुसलमान नेता बने रहे।

मुहम्मद आदिलशाह (१६२६–५६)—बीजापुरके आदिलशाही वंशका सातवाँ सुल्तान। उसका दीर्घकालीन शासन, मराठों तथा मुगलोंके निरन्तर आक्रमणोंके लिए उल्लेखनीय है। उसे १६३६ ई० में शाहजहाँकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। उसका राज्य दक्षिण-भारतमें आसमुद्र विस्तृत था और अत्यन्त शक्तिशाली एवं वैभवपूर्ण था।

मुहम्मद आदिलशाह सूर—शेरशाह (दे०) का भतीजा और सूर वंशका तृतीय शासक। उसने दिल्लीमें केवल दो वर्षों तक (१५५४–५६ ई०) शासन किया और १५५६ ई० में मुंगेरके युद्धमें मारा गया। वह हेमू (दे०) का आश्रयदाता था और शासनका सारा भार उसके हाथोंमें सौंप दिया था।

मुहम्मद कुतुब—गोलकुण्डाके पाँचवें सुल्तान मुहम्मद कुलीका भतीजा और दामाद। १६२१ ई० में सुल्तानकी मृत्युके उपरान्त वह शासक हुआ और १६२६ ई० तक अपनी मृत्युपर्यन्त शासन करता रहा।

मुहम्मद कुली—गोलकुण्डाके कुतुबशाही वंशका पाँचवाँ शासक। १५८० ई० से १६१२ ई० तक वह राज्य करता रहा। उसकी अधिकांश शक्तिका अपव्यय कर्नाटक, उड़ीसा और बस्तरके भू-भागोंपर अधिकार करनेमें हुआ। उसने मुगल साम्राज्यका विस्तार रोकनेके लिए दक्षिणी राज्योंका संघ बनानेकी बात नहीं सोची। हयात बख्श बेगम नामक उसकी एक पुत्री थी, जिसका विवाह उसके भतीजे तथा उत्तराधिकारी मुहम्मद कुतुब (दे०) के साथ हुआ था।

मुहम्मद खिलजी—(बख्तियार खिलजीका पुत्र) देखिये, इख्तियारुद्दीन खिलजी।

मुहम्मद गोरी (उपनाम शहाबुद्दीन गोरी या मुईजुद्दीन गोरी)—भारतमें मुसलमानी राज्य और दिल्ली सल्तनतका संस्थापक। वह गोरके शासक गयासुद्दीनका भाई था, जिसने उसे ११३७ ई० में, विजित भारतीय प्रदेशोंका शासक नियुक्त किया। मुहम्मद गोरी महान् विजेता और कुशल सैन्य-संचालक था। ११७५ ई० में उसने मुलतान और अगले ही वर्ष उच्चपर विजय प्राप्त की। ११७८ ई० में गुजरातके चालुक्य शासक भीमदेव द्वितीय द्वारा खदेड़ दिये जानेपर उसने ११८६ ई० में खुसरो मलिक (दे०) को पराजित करके पंजाबपर अधिकार कर लिया। इस प्रकार उत्तरी भारतके मैदानी भू-भागोंमें बढ़नेके लिए उसका पथ प्रशस्त हो गया। किन्तु उसका प्रथम प्रयास विफल रहा, क्योंकि ११९१ ई० में तराइनके प्रथम युद्धमें उसे दिल्ली और अजमेरके चौहान शासक पृथ्वीराजके नेतृत्वमें संगठित राजपूत राजाओंसे परास्त होना पड़ा। मुहम्मद गोरीने युद्ध-क्षेत्रसे भाग कर अपने प्राण बचाये; किन्तु दूसरे ही वर्ष उसने पुनः चढ़ाई की और पृथ्वीराजसे तराइनके मैदानमें ही उसका द्वितीय युद्ध हुआ। इस बार गोरीने अपनी सेनामें १०,००० धनुर्धर अश्वारोहियोंको सम्मिलित करके पृथ्वीराजकी भारी-भरकम भारतीय सेनाके मुकाबलेमें अपनी शक्तिमें भारी वृद्धि कर ली थी। फलतः पृथ्वीराज पराजित हुआ और युद्धक्षेत्रमें ही मारा गया।

तराइनके द्वितीय युद्धकी विजयके फलस्वरूप दिल्लीके निकट तक उत्तरी भारतपर गोरीका अधिकार हो गया और ११९३ ई० में उसके गुलाम और सिपहसालार कुतुबुद्दीन ऐबक (दे०) ने दिल्लीको भी जीत लिया। दूसरे ही वर्ष गोरीने कन्नौजके शासक जयचन्द्रको चन्दावरके युद्धमें पराजित कर मार डाला। अगले कुछ वर्षों तक मुहम्मद गोरी भारतकी अपेक्षा गजनीके पर्वतीय क्षेत्रोंमें ही अधिक व्यस्त रहा और कुतुबुद्दीन

(दे०) तथा उसके अधीनस्थ सरदार मुहम्मद खिलजी गंगाकी घाटी, बिहार और बंगालमें उसका विजय-अभियान चलाते रहे। १२०३ ई० में सुलतान गयासुद्दीनकी मृत्युके उपरान्त मुहम्मद गोरी, गोर-गजनी और उत्तरी भारतका शासक बना। किन्तु वह अधिक दिनों तक शासन न कर सका, क्योंकि १२०६ ई० में लाहौरसे गजनी जाते समय विद्रोही खोकरोंने छुरा मार कर उसकी हत्या कर दी। मुहम्मद गोरीकी सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि उसने भारतमें मुसलमानी राज्यकी स्थापना की, जो अगले ६०० वर्षों तक यहाँ कायम रहा।

मुहम्मद बिन कासिम—एक नवयुवक अरब सेनापति, जिसे ईराकके प्रान्तपति अल हज्जाजने, जो उसका चाचा और श्वसुर भी था, सिन्धके शासक दाहिरको दण्ड देनेके लिए भेजा था। मुहम्मद बिन कासिमने देवलको ध्वस्त करके नेरुनपर अधिकार कर लिया और सिन्धु नदी पार करके दाहिरको ७१२ ई० में राओरके युद्धमें पराजित कर मार डाला। उपरान्त उसने राओरके दुर्गको ध्वस्त करके राजधानी आलोर तथा मुल्तानपर भी अधिकार कर लिया। पश्चात् उसने सिन्धघाटीके सम्पूर्ण निचले काँठेमें अरब शासन स्थापित कर दिया। शासकके रूपमें भी उसने यथेष्ट कुशलताका परिचय दिया और समस्त नव-विजित प्रदेशमें एक ऐसी शासन-व्यवस्था स्थापित की, जिससे राज्यमें शान्ति रहे। किन्तु खलीफा सुलेमानने असंतुष्ट होकर उसे शासक पदसे हटा दिया और विरोधियोंके हाथों उसका वध करा दिया।

मुहम्मद बिन तुगलक—१३२५ से १३५१ ई० तक तुगलक वंशका शासक। वह तुगलक वंशकी नींव डालनेवाले गयासुद्दीन तुगलकका पुत्र और उत्तराधिकारी था। कुछ विद्वानोंके अनुसार गयासुद्दीनकी आकस्मिक मृत्यु मुहम्मद तुगलकके षड्यंत्रसे हुई थी। मुहम्मद तुगलकका व्यक्तित्व अत्यंत जटिल था। अपनी सनक-भरी योजनाओं, क्रूरकृत्यों और दूसरोंके सुख-दुखके प्रति पूर्ण उपेक्षा भावके कारण उसे पागल और रक्त-पिपासु भी कहा जाता है। वह दिल्लीके सभी सुल्तानोंसे अधिक विद्वान् और सुसंस्कृत तथा योग्य सेनापति था और अधिकांश युद्धोंमें उसे विजय प्राप्त हुई। बहुत कम अवसरोंपर उसे पराजयका मुंह देखना पड़ा। उसमें ज्ञानार्जनकी अदम्य लालसा रहती थी। उसने मुसलमान होते हुए भी मुल्लाओंकी उपेक्षा करके राज्यका शासन-प्रबंध करनेका प्रयास किया और कुछ ऐसी मौलिक योजनाएँ प्रचलित कीं, जो साम्राज्यके हितमें थीं। इसीलिए कुछ विद्वानोंने उसे असाधारण प्रतिभाशाली शासक माना है जिसके विचार अपने युगसे काफी आगे बढ़े हुए थे, और इसीलिए वह प्रतिक्रियावादियोंका शिकार हुआ। कदाचित् सत्यता दोनों ही मतोंमें है। वास्तवमें मुहम्मद तुगलक न तो पागल था और न असाधारण प्रतिभाशाली शासक ही। वह अवश्य मौलिक योजनाएँ बनाता था परन्तु उसमें व्यावहारिकता और धैर्यकी कमी थी। इसलिए उसे असफलताएँ ही हाथ लगीं।

मुहम्मद तुगलकका शासनकाल महत्त्वपूर्ण उपलब्धियोंसे आरम्भ हुआ। १३२७ ई० में उसके चचेरे भाईने दक्षिणमें और १३२८ ई० में मुलतानके हाकिमने विद्रोह कर दिया, परंतु दोनों ही विद्रोह दबा दिये गये। उपरांत वारंगल, मअबर और द्वारसमुद्रको जीत कर दिल्ली सल्तनतकी सीमा मदुरा तक विस्तृत कर दी गयी। सभी प्रान्तोंके राजस्व-संबंधी कागज-पत्र दुरुस्त कराये गये, स्थान-स्थानपर अस्पताल और खैरातखाने खोले गये और इब्नबतूता (दे०) सहित अनेक विद्वानोंको राज्याश्रय प्रदान करके सब तरहसे सम्मानित किया गया। परन्तु जैसे-जैसे शासनकाल लम्बा होता गया वैसे-वैसे कठिनाइयोंमें वृद्धि होने लगी। १३२७ ई० में सुल्तानने आदेश दिया कि राजधानीका स्थानान्तरण दिल्लीसे देवगिरि किया जाय, जो साम्राज्यके केन्द्रमें पड़ता था। देवगिरिका नाम बदलकर दौलताबाद रखा गया। सुल्तानने दिल्लीसे दौलताबाद जानेवालोंको अनेक सुविधाएँ भी प्रदान कीं, किन्तु उसकी यह योजना इस हठधर्मीके कारण असफल रही कि उसने राजकर्मचारियोंके साथ दिल्लीके साधारण नागरिकोंको भी वहाँ जानेके लिए विवश किया। १३३० ई० में सुल्तानने प्रतीकात्मक मुद्राप्रणालीका प्रचलन किया, जैसी कि आजकल विश्वके समस्त देशोंमें प्रचलित है। उसने ताँबेके सिक्के चलाये, जिनका मूल्य सोने-चाँदीके सिक्कोंके बराबर ठहराया गया। उसकी यह योजना भी विफल रही, क्योंकि उसने जाली सिक्कोंकी रोकथामका समुचित प्रबंध नहीं किया।

१३३२ ई० में उसने फारसपर आक्रमण करनेके लिए विशाल सेनाका संग्रह किया, जिसपर अत्यधिक धन व्यय हुआ। इसके बाद यह योजना त्याग दी गयी। उपरांत उसने कूर्माचल अथवा कुमायूँ (न कि चीन जैसा फरिश्ता का कथन है) को जीतनेके लिए सेना भेजी, यद्यपि इस अभियानमें वह कुछ पर्वतीय राजाओंका दमन करने-

में अवश्य सफल हुआ परंतु इसमें धन-जनकी अत्यधिक हानि हुई। आर्थिक कठिनाइयोंके कारण सुलतानको करोंकी दरें, विशेषकर दोआवके भू-भागमें, अत्यधिक बढ़ा देनी पड़ी थीं। जब लोग कर अदा नहीं कर पाते थे तो उन्हें वन्य पशुओंकी भाँति खदेड़-खदेड़ कर मारा जाता था। साम्राज्यके कई भागोंमें दुर्भिक्ष फैल गया और सुलतानके अत्याचार और भी बढ़ गये। फलस्वरूप १३३४–३५ में मअबरमें विद्रोह हुआ जो बादमें दक्षिण-के अन्य भू-भागों, उत्तरी भारत, बंगाल, गुजरात और सिंधमें भी फैल गया। १३५१ ई० में जब सुलतान सिंधमें विद्रोहका दमन करनेमें व्यस्त था तभी विषमज्वर-के कारण उसकी मृत्यु हो गयी।

मुहम्मद रज़ा खाँ–१७६५ ई० में नवाब मीर जाफरकी मृत्युके उपरान्त ईस्टइंडिया कम्पनीकी कलकत्ता कौंसिल-के समर्थनसे बंगालका नायब नवाब नियुक्त किया गया। मीर जाफरके द्वितीय पुत्र नजमुद्दौलाके सिंहासनारोहण-के समय यह शर्त रखी गयी थी कि बंगालका शासन नये नवाब द्वारा न होकर मुहम्मद रजा खाँके द्वारा हो। इस प्रकार रजा खाँ नाममात्रको नये नवाब नजमुद्दौला के नामपर, परन्तु वास्तविक रूपसे ईस्ट इंडिया कम्पनी-की ओरसे नियुक्त शासक था। उसकी नियुक्तिसे बंगालमें मुसलमानी शासनका व्यावहारिक रूपसे अंत हो गया। उपरान्त कम्पनीने उसे उपदीवान नियुक्त किया, जिससे बंगाल सूबेके फौजदारी, शान्ति और सुरक्षा विभागोंके अतिरिक्त राजस्व विभागका नियंत्रण भी उसके हाथोंमें आ गया। इस प्रकार उसके माध्यमसे बंगालका सामान्य शासन कम्पनीके नियंत्रणमें हो गया। रजा खाँने यथेष्ट धनोपार्जन किया। बंगालके १७६९–७० ई० के भीषण अकालमें, जब प्रायः एक तिहाई आबादीका नाश हो गया, उसने अकालग्रस्त लोगोंकी दुर्दशापर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। १७७२ ई० में कम्पनीने उसे उपदीवानके पदसे हटाकर राजस्व विभाग स्वयं अपने हाथोंमें ले लिया। उसपर गबनके अभियोग-में मुकदमा भी चलाया गया, पर वह निर्दोष सिद्ध हुआ। वह सदर निजामत (अदालत) का प्रधान बना रहा, पर लार्ड कार्नवालिसके शासनकालमें उससे यह पद भी छीन लिया गया।

मुहम्मदशाह–मुगलवंशका २४ वाँ बादशाह, जिसने १७१९ से १७४८ ई० तक राज्य किया। सैयद बन्धुओं (दे०) ने उसे सिंहासनासीन किया था और उसने उनको फाँसी देकर उनसे अपना पिण्ड छुड़ाया। इस कृत्यसे उसे शासनपर पूर्ण नियंत्रण पा लेनेकी आशा थी किन्तु १७२४ ई० में दक्षिणके विद्रोह और उपरान्त बंगाल, अवध और रुहेलखण्डके विद्रोहोंके कारण वह मुगल साम्राज्यको छिन्न-भिन्न होनेसे न रोक सका। १७३७ ई० में उसे बाजीराव पेशवा प्रथमको मालवा प्रान्त भी दे देना पड़ा। इन क्षतियोंके कारण मुगल साम्राज्य इतना दुर्बल हो गया कि जब १७३९ ई० में नादिरशाह-ने भारतपर आक्रमण किया और दिल्लीको बुरी तरह लूटा, मुहम्मदशाह उसका कोई समुचित प्रतिकार न कर सका और उसका शासन साम्राज्यके एक छोटेसे भागपर ही सीमित रह गया। एक सफलता उसे अवश्य मिली। मृत्युके कुछ ही समय पूर्व १७४८ ई० में जब अहमद-शाह अब्दालीने भारतपर पहला आक्रमण किया, मुहम्मदशाहने उसे खदेड़ दिया।

मुहम्मदशाह प्रथम–बहमनी वंशका द्वितीय सुलतान, जिसने १३५८ से १३७३ ई० तक शासन किया। उसके शासन-का अधिकांश समय दक्षिणके विजयनगर और उत्तरमें वारंगलके काकतीय हिन्दू राजवंशोंसे युद्धोंमें ही बीता। वह कठोर शासक था और अपने सारे राज्यमें उसने चोरी-डकैती, लूटमारकी अराजकताको पूर्णतया दबा दिया। उसने नयी शासन-व्यवस्था चलायी जिसका संचालन केन्द्रके आठ मंत्रियों द्वारा होता था। उसने महलके रक्षकोंकी गारदका पुनर्गठन किया। उसने प्रांतों-के वार्षिक शाही दौरेकी प्रथा भी प्रचलित की, जिससे उनपर प्रभावशाली नियंत्रण बना रहे। उसकी मृत्यु अत्यधिक मद्यपानके कारण हुई।

मुहम्मदशाह द्वितीय–बहमनी वंशका पाँचवाँ सुलतान, जिसने १३७८ से १३९७ ई० तक राज्य किया। मुहम्मद-शाह शान्तिप्रिय और विद्या-प्रेमी था और उसने अन्य राज्योंसे कोई युद्ध नहीं किया। उसने कई मस्जिदें बनवायीं और अनाथोंके लिए निःशुल्क विद्यालयोंकी स्थापना की। वह विद्वानोंका आश्रयदाता था। बहमनी शासकोंसे भिन्न उसकी मृत्यु प्राकृतिक कारणोंसे हुई।

मुहम्मदशाह तृतीय–बहमनी राज्यका तेरहवाँ (१४६३–८२ ई०) सुलतान। सिंहासनासीन होनेके समय उसकी उम्र केवल ९ वर्षकी थी और राज्यका सारा प्रबंध बड़े ही व्यवस्थित रूपसे उसके मंत्री मुहम्मद गवाँ (दे०) द्वारा संचालित होता था, जिसने कोंकण और गोवाके हिन्दू शासकोंको पराजित किया था। मुहम्मदशाह (तृतीय) ने १४७८ ई० में उड़ीसाको ध्वस्त कर डाला और १४८१ ई० में सुदूर दक्षिणके काँची या कांजीवरम् नगर-

को भी लूटा। यद्यपि उसका शासनकाल सैनिक सफलताओंसे पूर्ण था, परन्तु उसका अन्त दुःखद हुआ। मुहम्मदशाह अत्यधिक मद्यपान करता था और जाली चिट्ठियोंके आधारपर मुहम्मद गवाँकी स्वामिभक्तिपर संदेह उत्पन्न कराकर १४८१ ई० में उसका बध करा दिया गया। इन जाली चिट्ठियोंका शीघ्र ही भंडाफोड़ हो गया किन्तु अगले ही वर्ष शोक और मदिरापानके कारण सुलतानकी मृत्यु हो गयी।

मुहम्मद, शाहज़ादा—सुल्तान गयासुद्दीन बलबनका पुत्र और उत्तराधिकारी। जब मंगोलोंने १२८५ ई० में पंजाबपर आक्रमण किया, वह मुलतानका प्रान्तीय शासक था। मंगोलोंसे युद्धमें उसकी मृत्यु हो गयी। मरणोपरान्त उसे 'शहीद' की उपाधि प्रदान की गयी।

मुहम्मद साहब (इस्लामके पैगम्बर)—जन्म ६ठीं शताब्दीके अन्तिम वर्षोंमें अरबके मक्का नामक नगरमें। उन्होंने अरब देशवासियोंमें एक नये धर्मका प्रचार किया, जिसका आधार-भूत सिद्धान्त मानव जातिमें बन्धुत्व भाव और एकेश्वरवाद था। इस धर्मके अनुयायी स्वयं मुहम्मद साहबको ईश्वरका दूत (पैगम्बर) मानते थे। प्रारम्भमें मक्काके निवासियोंने मुहम्मद साहबकी शिक्षाओंपर ध्यान न दिया और उनके इतने विरुद्ध हो गये कि ६२२ ई० में उन्हें जन्मभूमि छोड़कर निकटस्थ मदीनामें शरण लेनी पड़ी। यह घटना हिजरतके नामसे विख्यात है और मुसलमानी सन् अथवा हिजरी सन् इसी घटनापर आधारित है।

हजरत मुहम्मद केवल विलक्षण धर्म-प्रचारक ही नहीं, बल्कि अत्यंत व्यवहार-कुशल राजनीतिज्ञ भी थे। उन्होंने मक्काके अपने बन्धु-बान्धवोंसे सुलह करके काबाको अपने नये धर्मका भी पवित्र तीर्थस्थान मान लिया और इसके बाद मक्का लौट आये। मक्का और मदीनाके लोगोंके संयुक्त समर्थनसे उन्हें अपने नवीन धर्मके प्रचारमें द्रुत सफलता प्राप्त हुई और सभीने उन्हें पैगम्बर स्वीकार कर लिया। वे लौट कर मक्कामें १० वर्ष रहे। इन थोड़ेसे वर्षोंमें सम्पूर्ण अरबदेशने उनके धर्मको स्वीकार कर लिया और वे अरब-निवासियोंका एकछत्र धार्मिक और राजनीतिक नेतृत्व करने लगे। उन्होंने अरब-निवासियोंको इस प्रकार एकताके सूत्रमें बाँध दिया कि ६३२ ई० में उनकी मृत्युके उपरान्त केवल ८० वर्षोंमें ही उनके अनुयायियोंने अपना नूतन धर्म फारस, सीरिया, पश्चिमी तुर्किस्तान, मिस्र, दक्षिणी स्पेन, सिन्ध और भारतके भू-भागों तक फैला कर अपनी विजयपताका चतुर्दिक फहरायी। इस प्रकार अरबमें हजरत मुहम्मदके आविर्भावके फलस्वरूप भारतमें भी एक नवीन-धर्म और राजनीतिक शक्तिका उदय हुआ।

मुहम्मद सुल्तान, शाहज़ादा—औरंगजेबका ज्येष्ठ पुत्र। औरंगजेबने उसे शासनके कई महत्त्वपूर्ण पदोंपर नियुक्त किया था। मुहम्मद राजपूतोंमें भी सर्वप्रिय था। इस कारण उसे अपने शंकालु पिताका कोपभाजन बनना पड़ा। १६७६ ई० में पिताकी मृत्युके बहुत पहले ही उसकी मृत्यु हो गयी।

मुहम्मद हकीम, मिर्जा, शाहज़ादा—हुमायूँ (दे०) का द्वितीय पुत्र और अकबरका छोटा भाई। पिताकी मृत्युके समय उसकी अवस्था ११ वर्षकी थी और वह केवल नाममात्रको काबुल प्रदेशका शासक मान लिया गया था। बड़े होनेपर उसे अत्यधिक मदिरापानकी लत पड़ गयी तथापि वह कट्टर मुसलमान बना रहा। अकबरकी धार्मिक उदारताकी नीतियोंसे जब मुल्ला लोग उसके खिलाफ भड़क उठे तो उसने इस अवसरसे लाभ उठाना चाहा और १५८० ई०में पंजाबपर आक्रमण कर दिया। अकबरने स्वयं विशाल सेना लेकर उसका सामना किया। हकीम भाग खड़ा हुआ और उसे अकबरकी अधीनता फिरसे स्वीकार करनी पड़ी। उपरांत हकीम अपनी मृत्यु-पर्यन्त (१५८५ ई० तक) काबुल प्रदेशपर शासन करता रहा।

मूलराज—एक सिख सरदार, जो १८४७ ई०में मुलतानका प्रान्तीय शासक था। अपने जिलेकी राजस्वसे प्राप्त होनेवाली आयमें कमी हो जानेके कारण उसे आर्थिक कठिनाइयोंमें फँसना पड़ा। लाहौरके दरबारमें जब उसपर एक करोड़से भी अधिक अप्राप्त धनराशि भेजनेके लिए दबाव डाला गया, उसने त्यागपत्र दे दिया। जब उसका उत्तराधिकारी, दो नवयुवक अंग्रेज पदाधिकारियोंके साथ वहाँ पहुँचा तब कदाचित् मूलराजके उकसानेसे उन दोनों अंग्रेजोंकी हत्या कर दी गयी। उपरांत मूलराजने विद्रोह कर दिया। यह विद्रोह थोड़े ही दिनोंमें द्वितीय सिख-युद्धमें (दे०) के रूपमें परिणत हो गया। १८४९ ई०में अंग्रेजोंने मूलराजपर आक्रमण किया और वह बन्दी बना लिया गया। उसके अभियोगकी सुनवाई सैनिक न्यायालयमें हुई और उसे आजीवन कालेपानीका दण्ड दिया गया। उसकी मृत्यु देशसे बाहर हुई।

मूलराज—दसवीं शताब्दीके मध्य गुजरातमें अन्हिलवाड़ (अणहिल्लवाड़) के सोलंकी (चालुक्य) राज्यवंशका प्रवर्तक। उसका शासनकाल प्रायः ९४२ ई०से ९९७ ई०

तक रहा। कदाचित् वह कन्नौजके शासक महिपाल (९१०–९४० ई०)का पुत्र था। परन्तु उसने स्वतंत्र राज्यसत्ता स्थापित की। अन्तमें अजमेरके चौहान शासक विग्रहराज द्वितीय द्वारा वह युद्धमें मार डाला गया।

मृच्छकटिक—राजा शूद्रक द्वारा लिखित संस्कृत साहित्यका एक नाटक। शूद्रकके बारेमें हमें और कोई जानकारी प्राप्त नहीं है। मृच्छकटिक (मृत्-शकटिक या मिट्टीकी गाड़ी) में गुप्तकालिक उज्जयिनीका एक चित्र मिलता है। विश्वास किया जाता है कि इसकी रचना छठीं शताब्दी ई०में की गयी। संस्कृत साहित्यके नाटकोंमें इस नाटकको बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है और इसका वही सम्मान है जो अंग्रेजी साहित्यमें शेक्सपियरके नाटकोंका।

मेण्डोसा, डोम एण्ड्रियाज डी—१६०९ ई०में लगभग पाँच महीने तक भारत स्थित पुर्तगाली प्रतिनिधि रहा। बादशाह जहाँगीरने कैप्टेन विलियम हाकिन्सके कहनेसे अंग्रेजोंको ईस्ट इंडिया कम्पनीको जो सुविधाएँ प्रदान की थीं, उसने उनका विरोध करनेकी गुस्ताखी की। जहाँगीरने उन सुविधाओंको रद्द कर दिया, किन्तु पुर्तगालियों और मुगलोंके बीच लड़ाई छिड़ गयी, जो पुर्तगाली पादरी पिन्हेरोकी मध्यस्थतासे बन्द हुई। इसके फलस्वरूप मेण्डोसाको वापस बुला लिया गया।

मेगस—इसका उल्लेख अशोक (दे०)ने अपने शिलालेखमें मकके नामसे किया है। उसका राज्य एण्टियोकस (अन्तियोक)के राज्यके बाद था। मेगस साइरिनिका राजा था और उसने ३०० ई०पू०से २५० ई०पू० तक राज्य किया। उक्त शिलालेखमें बताया गया है कि अशोकने उसके राज्यमें धर्म विजय की अर्थात् बहुतसे लोगोंको बौद्धधर्मका अनुयायी बनाया।

मेगस्थनीज—यूनानी (यवन) राजदूत, जिसे सेलेउकस निकेटरने लगभग ३०२ ई० पू० पाटलिपुत्रमें चन्द्रगुप्त मौर्यकी राजसभामें भेजा था। उसने उत्तर-पश्चिमी सीमांतसे मगधके पाटलिपुत्र तक समस्त उत्तरी भारतकी यात्रा की और जो कुछ देखा और सुना, उसका वर्णन अपने 'इंडिका' नामक ग्रंथमें किया। मूल ग्रंथ अब अप्राप्य है, किन्तु एरियन, डिओडोरस आदि बादके यूनानी इतिहासकारोंने अपने ग्रंथोंमें उसके उद्धरण लिये हैं और आधुनिक कालमें मैक्रिन्डलने उनका सङ्कलन किया है। मौर्यकालीन भारतके बारेमें जानकारीके लिए मेगस्थनीजका वृत्तांत महत्त्वपूर्ण स्रोत-ग्रंथ है, क्योंकि इसमें पहली बार उस कालका तिथिवार विवरण मिलता है। इसमें अनेक त्रुटियाँ हैं, फिर भी यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

मेघदूत—संस्कृत भाषामें महाकवि कालिदास (दे०) लिखित खंडकाव्य। कुबेरके कोपसे रामगिरिपर निर्वासित एक यक्षको वर्षाऋतुके आगमनपर अपनी अलकापुर-वासिनी विरहिणी प्रियाका स्मरण हो आता है और वह मेघको दूत बनाकर प्राणवल्लभाके पास प्रेममय कुशल-सन्देश भेजता है। इस खंडकाव्यमें भारतके दक्षिणी छोरसे उत्तरी छोर तक मेघकी यात्रा और विरहिणी प्रियाका वियोग वर्णन सर्वथा अनूठा है। शब्दलाघव, रसमाधुर्य और संवेदनशीलताकी दृष्टिसे यह रचना महाकवि कालिदासकी कृतियोंमें सर्वोत्तम मानी जाती है।

मेघवर्ण—सिंहल (श्रीलंका)का राजा (लगभग ३५२–७९ ई०) और द्वितीय गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त (लगभग ३३०–८० ई०)का समसामयिक। राजा मेघवर्णने एक दूत-मंडल महाराजाधिराज समुद्रगुप्तके दरबारमें भेजा था और बोध गया (दे०)के उत्तरमें सिंहली यात्रियोंके ठहरनेके लिए एक भव्य बिहार बनवानेके लिए उसकी अनुमति प्राप्त की थी। समुद्रगुप्तके प्रयाग स्तम्भलेखमें उत्कीर्ण हुआ है कि उसे सैंहलकसे आदर-सूचक उपहार प्राप्त हुए थे।

मेटकाफ, सर चार्ल्स, बादमें लार्ड—(१७८५–१८४६ ई०) मार्च १८३५ से मार्च १८३६ ई० तक भारतका गवर्नर-जनरल। जन्म कलकत्तामें हुआ। यह मेजर थामसन मेटकाफका पुत्र था, जो भारतमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें एक फौजी अफसर था। शिक्षा ईटनमें हुई और वह १८०१ ई०में लिपिककी हैसियतसे कम्पनीकी सेवामें आया और १८०८ ई० तक विभिन्न राजनीतिक पदोंपर रहा। उस वर्ष उसे महाराज रणजीत सिंहके दरबारमें विशेष दूत बनाकर लाहौर भेजा गया। उसने १८०९ ई०में अमृतसरकी संधि (दे०) के द्वारा पहली महान् राजनीतिक सफलता प्राप्त की। इस संधिके पूर्वकी सभी सिख रियासतोंको ब्रिटिश संरक्षणमें दे दिया।

वह १८१० ई०में ग्वालियरमें, १८११ से १८१९ ई० तक दिल्लीमें तथा १८२० से १८२२ ई० तक हैदराबादमें रेजिडेंट रहा। १८२७ ई०से १८३४ ई० तक गवर्नर-जनरलकी कौंसिलका सदस्य रहा। १८३४ ई०में आगराका गवर्नर नियुक्त हुआ और १८३४ से १८३५ ई० तक भारतका कार्यवाहक गवर्नर-जनरल रहा। उसने भारतके समाचार पत्रोंपर लगी पाबंदिया हटा कर उन्हें स्वाधीनता प्रदान की। इससे कम्पनीके डाइरेक्टर उससे नाखुश हो गये और उन्होंने गवर्नर-जनरलके पदपर उसकी पुष्टि नहीं की। इसके बजाय

उसे पश्चिमोत्तर प्रांत (अब उत्तर प्रदेश)का लेफ्टिनेंट-गवर्नर बना दिया गया, जिस पदपर वह १८३६ से १८३८ ई० तक रहा। इसके बाद मद्रासका गवर्नर बनाये जानेपर उसे भारी निराशा हुई और त्यागपत्र दे दिया। अवकाश ग्रहण करके इंग्लैंड लौट जानेके बाद वह जमायका और कनाडाका गवर्नर नियुक्त हुआ। १८४५ ई०में उसे 'पिअर'की पदवी प्रदान की गयी। १८४६ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी। वह एक सफल राजनेता था और अनेक ऊँचे-ऊँचे पदोंपर रहा। इन सभी पदोंपर वह अत्यन्त सफल हुआ। समाचार पत्नोंको स्वाधीनता प्रदान करनेसे वह भारतीयों में बहुत लोकप्रिय हो गया और उन्होंने कलकत्तामें उसके सम्मानमें मेटकाफ हालका निर्माण कराया।

मेदिनीराय–मेवाड़के राणा संग्रामसिंह (दे०) का एक स्वामिभक्त सामन्त। बाबरने जब १५२८ ई०में चन्देरीके किलेपर हमला किया, किला उसीके अधीन था। युद्धमें मेदिनीराय मारा गया और मुगलोंने किला फतह कर लिया।

मेयो, लार्ड–१८६९ से १८७२ ई० तक भारतका वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल। वह बड़ा मिलनसार तथा राजनीतिज्ञ था। अमीर शेर अली (दे०) उससे १८६९ ई० में अम्बालामें मिला और उसका प्रशंसक बन गया। अमीर अली चाहता था कि ब्रिटिश सरकार उससे निश्चित संधि कर ले और उसके पुत्र अब्दुल्ला जानको उत्तराधिकारी स्वीकार कर ले। परंतु लार्ड मेयोने अफगानिस्तानके सम्बन्धमें अपने पूर्वाधिकारी लार्ड लारेन्सकी अहस्तक्षेपकी नीतिका अनुसरण किया।

लार्ड मेयोने जब प्रशासन भार सँभाला, भारतकी आर्थिक स्थिति बड़ी खराब थी। सरकारके बजटमें भारी घाटा रहता था और पूर्वानुमान विश्वसनीय नहीं होते थे। लार्ड मेयोने नमक करमें वृद्धि, सरकारी खर्चोंमें कटौती, केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारोंके बीच धनके बँटवारेकी नयी प्रणाली शुरू करके देशकी वित्तीय व्यवस्थामें काफी सुधार किया। फलस्वरूप घाटेका बजट बचतके बजटमें परिवर्तित हो गया। उसके शासनकालमें १८७० ई०में भारतमें पहली जनगणना हुई। उसने देशके सांख्यिकी सर्वेक्षणकी व्यवस्था की और वाणिज्य तथा कृषि विभागकी स्थापना की। १८७२ ई०में जब वह अंडमान द्वीपके पोर्ट ब्लेयरका दौरा कर रहा था, एक पठान कैदीने उसकी हत्या कर दी।

मेरठ–पश्चिमी उत्तर प्रदेशमें स्थित एक नगर। १८५७ ई०में यहाँ छावनी थी और १० मई १८५७ को गदरकी शुरूआत यहींसे हुई। विद्रोही सिपाही छावनीकी जेलोंमें घुस गये, अपने बंदी साथियोंको छुड़ा लिया, गोरे अफसरोंको मार डाला और दूसरे दिन दिल्लीकी ओर कूच कर दिया। इस प्रकार १८५७ ई०का सिपाही विद्रोह आरम्भ हो गया।

मेव–दिल्लीके दक्षिणमें बसनेवाली एक बलिष्ठ जाति। ये पहले हिन्दू थे, जिन्होंने दिल्लीमें नव-स्थापित मुस्लिम सल्तनतके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। फलस्वरूप १२६० ई०में बलबनने, जो अपने दामाद सुल्तान नासिरुद्दीन (दे०) की ओरसे शासन कर रहा था, मेवोंपर चढ़ाई कर दी, बहुतोंका संहार कर डाला और उनका देश लूट लिया। उनके ढाई सौ नेताओंको बंदी बनाकर दिल्ली ले जाया गया और हाथियोंके पैरोंके नीचे डाल कर मार डाला गया। बहुतोंकी खाल उधेड़वाकर भूसा भर दिया गया और दिल्लीके हर फाटकपर उन्हें लटका दिया गया। मेव वीर इन बर्बरताओंसे दमित नहीं हुए और मुसलमान आक्रमणकारियोंका विरोध जारी रखा। अतएव १२६० ई०के अंतमें बलबनने दूसरी बार उनपर चढ़ाई की। इस बार उसने उनपर अचानक धावा बोला, १२,००० मेव स्त्री, पुरुष एवं बालकोंको पकड़ लिया और उन सबको मार डाला। मेव लोग बड़े बहादुर थे और उन्हें मुसलिम बर्बरताका शिकार होना पड़ा।

मेवाड़–देखिये, 'उदयपुर'।

मेसोपोटामियाकी लड़ाई–प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४–१८ ई०)के फलस्वरूप, जिसमें तुर्कीने मध्य यूरोपकी शक्तियोंका साथ दिया। मेसोपोटामियापर उस समय तुर्कीका शासन था। इसलिए १९१५ ई०में मेसोपोटामियामें ब्रिटिश तथा भारतीय सेनाएं भेजी गयीं। इन सेनाओंका सीमित उद्देश्य (१) आंग्ल-ईरानी तेलकूपों की रक्षा करना, (२) बसरा तथा फारसकी खाड़ीके मोहानेपर उसके आसपासके क्षेत्रपर अधिकार करना तथा (३) उस क्षेत्रके अरबोंको विद्रोह करनेके लिए भड़काना था। यह सेना ब्रिटिश भारतीय सरकारने संगठित करके भेजी थी। प्रारम्भमें इसे भारी सफलता मिली। यह मेसोपोटामियाके अंदर घुस गयी और सितम्बर १९१५ ई० में इसने कूटपर कब्जा कर लिया। इसके बाद इसने बगदादपर चढाई करनेका फैसला किया, परंतु इसे सिटेशाहफनसे वापस कूट खदेड़ दिया गया और इसके बाद कूटको घेर लिया गया। कूटका घेरा ८ दिसम्बर १९१५ ई०से २४ अप्रैल १९१६ ई० तक चला जबकि उसका

पतन हो गया। जनरल टाउनशेंडके नेतृत्वमें ९,००० ब्रिटिश तथा भारतीय सेनाओंने आत्मसमर्पण कर दिया।

इस युद्धमें २४,००० सैनिक हताहत हुए। इस पराजयके बाद ही उसके कारणोंकी जाँचके लिए शाही कमीशन नियुक्त किया गया। उसकी सिफारिशोंके अनुसार अधिक बड़े पैमानेपर फौजी तैयारियाँ की गयीं, नये जनरलोंकी नियुक्ति की गयी, और दिसम्बर १९१६ ई० में नयी चढ़ाई शुरू हुई। २६ फरवरी १९१७ ई०को कूटपर दुबारा अधिकार कर लिया गया और ११ मार्च १९१७ ई०को बगदादपर भी अधिकार कर लिया गया। विजयी जनरल माड नवम्बर १९१७ ई०में हैजेसे मर गया, किंतु उसके उत्तराधिकारी जनरल सर विलियम मार्शलने युद्ध सरगर्मीसे जारी रखा, किर्कुकमें तुर्क सेनाओं-को पराजित किया और १९१८ ई०के युद्धविरामसे पहले मोसुलपर कब्जा कर लिया। इस प्रकार मेसो-पोटामियाकी लम्बी लड़ाईमें अंतमें ब्रिटिश तथा भारतीय सेनाओंकी विजय हुई।

मैकडोनाल्ड, जेम्स रैमजे (१८६६–१९३७ ई०)—दो बार इंग्लैंडका प्रधान-मंत्री हुआ, पहली बार १९२४ में, फिर १९२९ से १९३५ ई० तक। उसका पिता एक मजदूर था। जेम्स रैमजे मैकडोनाल्डने १८ वर्षकी अवस्थामें १२ शिलिंग ६ पेंसके साप्ताहिक वेतनपर क्लर्कीसे जीवन आरम्भ किया और क्रमिक रीतिसे उन्नति करके इंगलैंडका प्रधान-मंत्री बन गया। वह १८९४ ई०में मजदूर दलमें सम्मिलित हो गया और १९०६ ई०में पहली बार ब्रिटिश पार्लियामेण्टका सदस्य निर्वाचित हुआ। उसने एक प्रकारसे पार्लियामेण्टरी मजदूर पार्टीकी स्थापना की और १९११ ई०में उसका नेता चुना गया। उसने १९१४ ई०में ब्रिटेनकी युद्धनीति-का समर्थन करनेसे इनकार कर दिया, जिसके लिए सार्वजनिक रूपसे उसकी तीव्र निन्दा की गयी। १९१८ ई०में वह पार्लियामेण्टका चुनाव हार गया और १९२२ ई० तक पदविहीन रहा। १९२२ ई०में वह पुनः पार्लियामेण्टका सदस्य चुना गया और इंग्लैंडके मजदूर दलने रूसकी तरह हिंसाके मार्गसे नहीं, बल्कि संसदीय मार्गसे समाजवादकी स्थापनाके लिए प्रयत्न करना स्वीकार कर लिया। दूसरे शब्दोंमें वह संसदीय एवं लोकतांत्रिक समाजवादका समर्थक था। युद्धोत्तर काल में, उसने यूरोपमें शांति-स्थापनाका प्रयास किया और १९२४ ई०में हर्जानेके प्रश्नपर दीर्घकालीन विवाद तय करनेमें भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उसने पहला मंत्रिमंडल जनवरी १९२४ ई०में बनाया जो मुश्किलसे ग्यारह महीने चला। उसका दूसरा मंत्रिमंडल १९२९ से १९३१ ई० तक चला। १९३१ ई०में उसको राष्ट्रीय सरकारका रूप दे दिया गया।

वह भारतके मामलोंमें बराबर दिलचस्पी लेता रहा और दो बार भारतकी यात्रा की, पहली बार १९१० ई०में और दूसरी बार १९१३–१४ ई० में। उसने १९११ ई०में भारतके सम्बन्धमें अपनी पहली पुस्तक लिखी, जिसका शीर्षक था—'भारतका जागरण'। राष्ट्रीय विचारोंके भारतीयोंने यह पुस्तक बहुत पसन्द की। आठ साल बाद उसने भारतके विषयमें अपनी दूसरी पुस्तक लिखी, जिसका शीर्षक था—'गवर्नमेण्ट आफ इंडिया'। भारतके सांविधानिक विकासकी समस्या तय करनेके लिए इंग्लैंडमें जो गोलमेज सम्मेलन (दे०) हुआ, उसकी उसने अध्यक्षता की। इस समस्याके साथ साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी समस्या घनिष्ठ रूपसे सम्बन्धित थी। जब इस प्रश्नपर भारतके दो मुख्य सम्प्रदायोंमें समझौता नहीं हो सका, तीसरे गोलमेज सम्मेलनकी समाप्तिपर उसने अपना साम्प्रदायिक निर्णय दिया, जिसमें दलित जातियोंके हिन्दुओंके लिए पृथक् साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी सिफारिश की गयी थी। इसके विरोधमें गांधीजीने अनशन शुरू कर दिया और पूना समझौता (दे०) हुआ। रैमजे मैकडोनाल्डने पूना समझौतेके अनुसार अपने साम्प्रदायिक निर्णयमें संशोधन कर दिया। भारतके सम्बन्धमें उसका यह अन्तिम कार्य था।

मैकडोनेल, सर एन्थोनी—वाइसराय लार्ड कर्जनने १९०० ई०में जो अकाल कमीशन नियुक्त किया था उसका अध्यक्ष। (दे०, **'अकाल कमीशन'**)।

मैकनाघटेन, सर विलियम हे (१७९३–१८४१ ई०)—१८०९ ई०में कम्पनीकी फौजी सेवामें आया, कई प्राच्य भाषाएँ सीखीं और १८३३ ई०में राजनीतिक विभागका सेक्रटरी बना दिया गया। उसने जून १८३८ ई०में रणजीतसिंह तथा शाहशुजासे त्रिपक्षीय संधि की। फिर वह अफगानिस्तानके शाहशुजाके दरबारमें ब्रिटिश राज-दूत नियुक्त होकर कंदहार तथा गजनीके मार्गसे काबुल-को भेजी जानेवाली ब्रिटिश सेनाके साथ गया और उसके सामने शाहशुजाको फिरसे गद्दीपर बिठलाया गया। मैकनाघटेनको पुरस्कार-स्वरूप १८४० ई०में 'बैरन' बना दिया गया, परन्तु इसके बाद ही अफगानिस्तानमें फिर अशांति फैल गयी। अफगानोंने विद्रोह कर दिया और

२ नवम्बर १८४१ ई०को बर्न्स (दे०)को मार डाला। इसके बाद भी मैकनाघटेनने मूर्खताका प्रदर्शन करते हुए अफगानोंसे संधि कर ली और बंधकके रूपमें बंदी बनाये गये व्यक्तियोंको लौटा दिया। संतुष्टीकरणकी इस नीतिसे अफगान और उद्दंड हो गये। उन्होंने दोस्त मोहम्मदके लड़के अकबर खांके नेतृत्वमें अंग्रेजोंके विरुद्ध बगावत कर दी और २३ दिसम्बर १८४१ ई०को जब मैकनाघटेन अकबर खाँसे मिलनेके लिए गया, उसने उसकी हत्या कर दी। मैकनाघटेन अफगान-युद्ध (१९३९–४२ ई०)-की समूची नीतिके लिए अधिकांश रूपमें जिम्मेदार था और अंतमें अपनी इस गलत नीतिके कारण स्वयं अपनी जानसे हाथ धो बैठा।

मैकफर्सन, सर जान (१७४५–१८२१)—भारतका फरवरी १७८५ ई०से सितम्बर १७८६ ई०तक गवर्नर-जनरल। वह १७६७ ई०में एक जहाजका खजांची तथा भंडारी बनकर भारत आया और १७७० ई०में मद्रासमें ईस्ट इंडिया कम्पनीका लिपिक हो गया। १७७७ ई०में उसे नौकरीसे निकाल दिया गया, परन्तु कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सने उसकी नौकरी फिरसे बहाल कर दी और वह धीरे-धीरे उन्नति करके गवर्नर-जनरलके पद तक पहुँच गया, यद्यपि उस पदपर केवल बीस महीने रहा। उसके प्रशासन कालमें भ्रष्टाचारका बोलबाला हो गया था।

मैकमोहन, सर हेनरी—जन्म १८६२ ई० में। १८८५ ई०में भारतके फौजी स्टाफमें नियुक्त हुआ और १८९० ई०में राजनीतिक विभागमें स्थानांतरित कर दिया गया। १८९३ ई०में सर मार्टिमर डूरैण्डके साथ काबुल गया और बादमें बलूचिस्तान तथा अफगानिस्तानके बीच सीमा चिह्नांकित करायी। उसने १९०३ ई०में फारस और अफगानिस्तानके बीचकी सीमा तय करनेमें भी भाग लिया। उसका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य उत्तर-पूर्वमें भारत और तिब्बत तथा चीनके बीच सीमा निर्धारित करना था।

मैकमोहन सीमारेखा—उत्तर-पूर्वी सीमा एजेंसी तथा तिब्बत एवं चीनके बीचकी सीमा-रेखा। इसका निर्धारण सर हेनरी मैकमोहन (दे०)ने किया।

मैकार्टनी, लार्ड—१७८१ ई०में मद्रासका गवर्नर होकर आया। वह उद्यमी एवं ईमानदार व्यक्ति था। उसने मद्रासके आंतरिक प्रशासनमें काफी सुधार किया। वह शांति-स्थापनाके लिए अत्यधिक उत्सुक था और उसने १७८४ ई०में मंगलूरकी संधि करके दूसरा मैसूर-युद्ध समाप्त कर दिया। इस संधिके द्वारा दोनों पक्षोंने एक दूसरेके जीते हुए क्षेत्र और युद्धबंदी वापस लौटा दिये। उसने १७८५ ई०में कर्नाटकमें जिसे नवाबने कम्पनीको सौंप दिया था, मालगुजारी वसूल करनेके उपायके सम्बन्धमें मतभेद हो जानेपर, इस्तीफा दे दिया। १७८५ ई० में वारेन हेस्टिंग्सके इस्तीफा देनेपर गवर्नर-जनरलके पदके लिए उसके नामपर विचार नहीं किया गया और वह भारत वापस नहीं लौटा।

मैकाले, थामस बैबिंगटन, बैरन (१८००–५९)—प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि, निबन्धकार, इतिहासकार तथा राजनीतिज्ञ। १८२६ ई०में वह बैरिस्टर बना, परन्तु उसने बैरिस्टरी करनेकी अपेक्षा सार्वजनिक जीवन पसंद किया। वह १८३० ई०में ब्रिटिश पार्लियामेण्टका सदस्य चुना गया, और १८३४ ई०में गवर्नर-जनरलकी एक्जीक्यूटिव कौंसिलका पहला कानून-सदस्य नियुक्त होकर भारत आया। भारतका प्रशासन उस समय तक 'जातीय द्वेष तथा भेदभावपर आधारित तथा दमनकारी' था। उसने ठोस उदार सिद्धांतोंपर प्रशासन चलानेकी कोशिश की। उसने भारतमें समाचारपत्रोंकी स्वाधीनताका आन्दोलन किया, कानूनके समक्ष यूरोपीयों और भारतीयोंकी समानताका समर्थन किया, अंग्रेजीके माध्यमसे पश्चिमी ढंगकी उदार शिक्षा-पद्धति आरम्भ की और दंड विधानका मसविदा तैयार किया जो बादमें भारतीय दंड संहिताका आधार बना।

अवकाश ग्रहण करनेके बाद भी वह भारतके मामलोंमें दिलचस्पी लेता रहा और १८५५ ई०में इंडियन सिविल सर्विसमें प्रवेशके लिए प्रतियोगिता परीक्षा आरम्भ करनेके पक्षमें ब्रिटिश पार्लियामेण्टमें भाषण किया। वह आजीवन साहित्य सेवा करता रहा और १८५७ ई०में उसे 'पिअर' की पदवी प्रदान की गयी। दो साल बाद १८५९ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी। उसने अंग्रेजी भाषामें अनेक पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें 'अर्भाडा' (१८३३ ई०), 'प्राचीन रोमके गीतिकाव्य' (१८४२ ई०), 'निबन्ध' (१८२५–४३ ई०) तथा चार खंडोंमें 'इंग्लैंडका इतिहास' (१८४८-५८ ई०) सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। अंतिम पुस्तक बहुत अधिक बिकी और उससे २० हजार पौंडकी आय हुई। इसका यूरोपकी विविध भाषाओंमें अनुवाद हुआ है।

मैक्समूलर—(१८२३–१९०० ई०) अपने युगका सबसे महान् प्राच्यविद्याविद्। जर्मनीमें जर्मन माता-पितासे जन्म। मैक्समूलरने १८४१ ई० में लाइपजिग (विश्वविद्यालय) में संस्कृतका अध्ययन प्रारम्भ किया, फलतः तुलनात्मक

भाषाविज्ञान एवं तुलनात्मक धर्मके प्रति उसकी रुचि बढ़ती गयी। १८४५ ई०में उसने ऋग्वेदका अनुवाद एवं सम्पादन प्रारम्भ किया। इसी सन्दर्भमें वह इंग्लैण्ड जा कर बस गया और ब्रिटिश नागरिकता प्राप्त कर ली। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयने ऋग्वेदके मुद्रण एवं प्रकाशनका भार अपने ऊपर ले लिया। वह वहीं १८६२ ई०में तुलनात्मक भाषा-विज्ञानका अध्यापक भी नियुक्त हुआ, यद्यपि १८६० ई०में विदेशी होनेके कारण उसे संस्कृतके प्राध्यापक पदसे वंचित कर दिया गया था। ऋग्वेदके अतिरिक्त उसके अन्य निबन्ध 'चिप्स फ्राम ए जर्मन वर्कशाप' नामक ग्रंथमें संग्रहीत हैं। १८५६ ई०में संस्कृत-साहित्यका इतिहास लिखा और पूर्वकी धार्मिक पुस्तकों (Sacred Books of the East) को ५१ जिल्दोंमें सम्पादित किया। उसकी अन्य रचनाओंमें 'भाषाका विज्ञान' (Science of Language) तथा 'धर्मकी वैज्ञानिक भूमिका' (Introduction to the Science of Religion) मुख्य हैं। उसने तुलनात्मक भाषा-विज्ञानका अध्ययन प्रारम्भ किया और केल्टिक, संस्कृत एवं फारसी सदृश आर्यभाषाओंकी मूलभूत एकताका प्रतिपादन किया। यूरोपको प्राचीन भारतीयोंकी साहित्यिक तथा सांस्कृतिक उपलब्धियोंसे अवगत कराया।

मैत्रक वंश–एक राजपूत वंश। इस वंशके नायक सेनापति भटार्कने पाँचवीं शताब्दीके अंतमें पूर्वी सौराष्ट्रवर्ती वलभी (दे०)में एक राजवंशका आरम्भ किया। मैत्रक वंशकी एक शाखा छठीं शताब्दीके उत्तरार्धमें मो-ला-पो अर्थात् पश्चिमी मालवामें चली आयी और विंध्यक्षेत्रमें अपनी राज्यशक्तिका विस्तार किया। सातवीं शताब्दीमें मैत्रक राजा ध्रुवसेन द्वितीयने (जिसे ध्रुवभट भी कहते हैं) कन्नौजके महाराजाधिराजकी एक पुत्रीसे विवाह किया। उसके पुत्र धरसेन चतुर्थ (६४५–४९ ई०)ने 'परमभट्टारक परमेश्वर चक्रवर्ती'की पदवी धारण की। लगभग ७७० ई०में अरबोंने मैत्रक वंशका उच्छेदन कर दिया, जिन्होंने ७१२ ई०में सिंधपर अधिकार कर लिया था।

मैनरिक्वे, सेबस्तियान–एक स्पेनिश पादरी, जो सत्रहवीं शताब्दीके तीसरे दशकमें भारत आया। उसने १६३२ ई०में शाहजहाँकी फौजों द्वारा हुगली स्थित पुर्तगाली कोठीपर घेरा डाले जाने तथा उसपर अधिकार कर लिये जानेका पूरा विवरण लिखा है।

मैनुकी, निक्कोलो–वेनिसका एक यात्री, जो सत्रहवीं शताब्दीमें भारत आया। वह औरंगजेबके लगभग पूरे शासनकाल (१६५६–१७०७ ई०)में भारत रहा। उसने 'स्टोरिया डो मोगोर' नामक एक विशालकाय ग्रंथमें मुगल भारतका वृत्तांत लिखा है। यह ग्रंथ चार खंडोंमें है।

मैलकम, सर जान (१७६९–१८३३)–ईस्ट इंडिया कम्पनीका एक प्रमुख अधिकारी, जिसने १७८२ ई०में कम्पनीकी सेवा आरम्भ की और १७८३ ई०में भारत आया। वह १८३० ई०में अवकाश ग्रहण करने तक भारतमें रहा। वह १७९२ ई०में श्रीरंगपट्टम्‌के घेरेके समय तथा १७९९ ई०में उसपर अधिकार किये जानेके समय उपस्थित था। १८०३ ई०में दूसरा मराठा-युद्ध (दे०) शुरू होनेके समय तक वह उच्च राजनीतिक पदोंपर रहा। दूसरे मराठा-युद्धमें उसने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की और पराजित शिन्देके साथकी जाने वाली सुर्जी-अर्जुनगाँवकी संधिका प्रारूप बनाया। इसके बाद उसने होल्कर (दे०) के साथ चलनेवाले युद्धमें लार्ड लेकको अधीनतामें कार्य किया। उसने तीसरे मराठा-युद्ध (दे०) (१८१७–१८ ई०)में भी प्रमुख भाग लिया, महीदपुर (दे०)की लड़ाई जीती और पेशवा बाजीराव द्वितीयको गद्दी छोड़नेके लिए विवश किया। गद्दी त्याग देनेपर पेशवाको जीवन भरके लिए पेन्शन प्रदान कर दी गयी। इसके बाद उसे मध्य भारतके प्रशासनका भार सौंपा गया। मालवा भी इसीमें सम्मिलित था। १८२७ ई०में उसे बम्बई प्रांतका गवर्नर बनाया गया। इस पदसे उसने १८३० ई०में अवकाश ग्रहण किया। वह अच्छा लेखक भी था और उसने कई ऐतिहासिक पुस्तकें लिखी हैं। इनमें अंग्रेजीमें लिखी 'सिखोंका एक शब्दचित्र' तथा 'मध्य भारत' शीर्षक पुस्तकें उल्लेखनीय हैं।

मैलापुर–मद्रासके निकट स्थित है। प्राचीन ईसाई अनुश्रुतियोंके अनुसार संत थामसने मैलापुरमें शहादत पायी थी। किन्तु अनुश्रुतियोंकी पुष्टिमें कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता।

मैसन, चार्ल्स–उन्नीसवीं शताब्दीके दूसरे दशकमें पंजाबके महाराज रणजीत सिंहसे मिला। उसने रणजीत सिंहकी आकृति तथा आदतोंका रोचक वर्णन किया है। उसने कोई तारीख नहीं दी है, फिर भी जहाँ-तहाँ मनोरंजक विवरण लिखे हैं।

मैसूर–भारतीय-गणतंत्रमें सम्मिलित एक राज्य तथा नगर, जो मैसूर (अब कर्नाटक) राज्यकी राजधानी भी है। इस राज्यकी सीमा उत्तर-पश्चिममें बम्बई, पूर्वमें आन्ध्र-प्रदेश दक्षिण-पूर्वमें तमिलनाडु और दक्षिण-पश्चिममें केरल राज्योंसे घिरी हुई है। इसका इतिहास अत्यंत प्राचीन

है। इसके प्राचीनतम शासक कदम्ब वंशके थे, जिनका उल्लेख टॉलमीने किया है। कदम्बोंको, चेरों, पल्लवों और चालुक्योंसे युद्ध करना पड़ा। १२ वीं शताब्दीमें जाकर मैसूरका शासन कदम्बोंके हाथोंसे होयसलोंके हाथोंमें आया, जिन्होंने द्वारासमुद्र अथवा आधुनिक हलेविडको अपनी राजधानी बनाया था। होयसल राजा रायचन्द्रसे ही अलाउद्दीनने मैसूर जीत कर अपने राज्यमें सम्मिलित किया था। उपरांत मैसूर विजयनगर राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया और उसके विघटनके उपरांत १६१० ई०में वह पुनः स्थानीय हिन्दू राजाके अधिकारमें आ गया।

इस राजवंशके चौथे उत्तराधिकारी चिक्क देवराजने मसूरकी शक्ति और सत्तामें उल्लेखनीय वृद्धि की। किन्तु १८ वीं शताब्दीके मध्यमें उसका राजवंश हैदरअली द्वारा अपदस्थ कर दिया गया और उसके पुत्र टीपू सुल्तानने १७९९ ई० तक उसपर राज्य किया। टीपूकी पराजय और मृत्युके उपरांत विजयी अंग्रेजोंने मैसूरको संरक्षित राज्य बनाकर वहाँ एक पंच-वर्षीय बालक कृष्णराज वाडियरको सिंहासनपर बैठाया। कृष्णराज अत्यंत अयोग्य शासक सिद्ध हुआ, फलतः १८२१ ई०में ब्रिटिश सरकारने शासन-प्रबंध अपने हाथोंमें ले लिया, परंतु १८६७ ई०में कृष्णके उत्तराधिकारी चाम राजेन्द्रको पुनः शासन सौंप दिया। उस समयसे इस सुशासित राज्यका १९४७ ई०में भारतीय संघमें विलयन कर दिया गया। मैसूर अति सुन्दर परिष्कृत नगर है। वहाँ एक विश्वविद्यालय भी है, जिसकी स्थापना १९१६ ई०में हुई थी।

मैसूर-युद्ध—अंग्रेजों और हैदरअली तथा उसके पुत्र टीपू सुल्तानके बीच समय-समयपर हुए। ३२ वर्षों (१७६७से १७९९ ई०) के मध्य युद्ध छेड़े गये। **प्रथम मैसूर युद्ध** १७६७ से १७६९ ई०के बीच हुआ, जिसका कारण मद्रासमें अंग्रेजोंकी आक्रामक नीतियाँ थीं। १७६६ ई०में जब हैदर अली मराठोंसे एक युद्धमें उलझा था, मद्रासके अंग्रेज अधिकारियोंने निजामकी सेवामें एक ब्रिटिश सैनिक टुकड़ी भेज दी, जिसकी सहायतासे निजामने मैसूरके भूभागोंपर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजोंकी इस अकारण शत्रुतासे हैदर अलीको बड़ा क्रोध आया। उसने मराठोंसे संधि कर ली, अस्थिर बुद्धि निजामको अपनी ओर मिला लिया और निजामकी सहायतासे कर्नाटकपर, जो उस समय अंग्रेजोंके नियंत्रणमें था, आक्रमण कर दिया। इस प्रकार प्रथम मैसूर-युद्धका सूत्रपात हुआ। यह युद्ध दो वर्षों तक चलता रहा और १७६९ ई०में जब हैदर अली का अचानक धावा मद्रासके किलेकी दीवालों तक पहुँच गया, उसका अंत हुआ। मद्रास कौंसिलके सदस्य भयाकुल हो उठे और उन्होंने हैदर अली द्वारा रखी गयी सुलहकी शर्तें स्वीकार कर लीं। इसके अनुसार दोनों पक्षोंने जीते गये भू-भाग लौटा दिये और हैदर अली तथा अंग्रेजोंके बीच एक रक्षात्मक संधि हो गयी।

द्वितीय मैसूर-युद्ध—अंग्रेजोंने १७६९ ई०की संधिकी शर्तोंके अनुसार आचरण न किया और १७७० ई०में हैदर अलीको, समझौतेके अनुसार उस समय सहायता न दी जब मराठोंने उसपर आक्रमण किया। अंग्रेजोंके इस विश्वासघातसे हैदर अलीको अत्यधिक क्षोभ हुआ। उसका क्रोध उस समय और भी बढ़ गया, जब अंग्रेजोंने हैदर अलीकी राज्य सीमाओंके अंतर्गत माहीकी फ्रांसीसी बस्तीपर आक्रमण कर अधिकार कर लिया। उसने मराठा और निजामके साथ १७८० ई०में त्रिपक्षीय संधि कर ली जिससे द्वितीय मैसूर-युद्ध प्रारंभ हुआ।

अंग्रेजोंने निजामको अपनी ओर फोड़ लिया और १७८२ ई०में सालबाईकी संधि करके मराठोंसे युद्ध समाप्त कर दिया। फिर भी हैदर अली भग्नोत्साह न होकर युद्ध करता रहा और एक विशाल सेना लेकर कर्नाटकमें घुस गया, उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डाला तथा मद्रासके चारों ओरके इलाके उजाड़ डाले। उसने बेलीके अधिनायकत्व वाली अंग्रेजी फौजकी एक टुकड़ीको घेर लिया। परन्तु १७८१ ई०में वह सर आयरकूट द्वारा पोर्टोनोवो, पोलिलूर और शोलिंगलूरके तीन युद्धोंमें परास्त हुआ; क्योंकि उसे फ्रांसीसियोंसे प्रत्याशित सहायता न मिल सकी। फिर भी वह डटा रहा और १७८२ ई०में उसके पुत्र टीपूने कर्नल ब्रेथवेटके नायकत्ववाली ब्रिटिश सेनासे तंजोरमें आत्म-समर्पण करा लिया।

इस युद्धके बीच ही हैदर अलीकी मृत्यु हो गयी। किन्तु उत्तराधिकारी टीपू सुल्तानने युद्ध जारी रखा और बेदनूरपर अंग्रेजोंके आक्रमणको असफल करके मंगलोर जा घेरा। अब मद्रासकी सरकारने समझ लिया कि आगे युद्ध बढ़ाना उसकी सामर्थ्यके बाहर है। अतः उसने १७८४ ई०में संधि कर ली, जो मंगलोरकी संधि कहलाती है और जिसके आधारपर दोनों पक्षोंने एक दूसरेके भूभाग वापस कर दिये।

तृतीय मैसूर-युद्ध (१७९०–९२ ई०) इसका कारण भी अंग्रेजोंकी दोहरी नीति थी। १७६९ ई०में हैदर

अली और १७८४ ई० में टीपू सुल्तानके साथ की गयी संधिकी शर्तोंके विरुद्ध अंग्रेजोंने १७८८ ई०में निजामको इस आशयका पत्र लिखा कि हम लोग टीपू सुल्तानसे उन भूभागोंको छीन लेनेमें आपकी सहायता करेंगे जो निजामके राज्यके अंग रहे हैं। अंग्रेजोंकी इस विश्वासघाती नीतिको देखकर टीपूके मनमें उनके शत्रुतापूर्ण अभिप्रायके संबन्धमें कोई संशय न रहा। अतः उसने १७८९ ई०में अचानक ट्रावनकोर (त्रिवंकुर) पर आक्रमण कर दिया, और उस भू-भागको तहस-नहस कर डाला। अंग्रेजोंने इस आक्रमणको युद्धका कारण बना लिया और पेशवा तथा निजामसे इस शर्तपर गुटबन्दी कर ली कि वे दोनों विजित प्रदेशोंका बराबर भागोंमें बँटवारा कर लेंगे। इस प्रकार प्रारंभ हुआ तृतीय मैसूर-युद्ध १७९० से १७९२ ई० तक चलता रहा।

इस युद्धमें तीन संघर्ष हुए। १७९० ई०में तीन अंग्रेजी सेनाएँ मैसूरकी ओर बढ़ीं, उन्होंने डिंडीगल, कोयम्बतूर तथा पालघाटपर अधिकार कर लिया, फिर भी उनको टीपूके प्रबल प्रतिरोधके कारण कोई महत्त्वकी विजय प्राप्त न हो सकी। इस विफलताके कारण स्वयं लार्ड कार्नवालिसने, जो गवर्नर-जनरल भी था, दिसम्बर १७९० ई०में प्रारंभ हुए अभियानका नेतृत्व अपने हाथमें ले लिया। वेल्लोर और अम्बरकी ओरसे बढ़ते हुए कार्नवालिसने मार्च १७९१ में०में बंगलोरपर अधिकार कर लिया और टीपूकी राजधानी श्रीरंग-पट्टनम्की ओर बढ़ा। लेकिन टीपूकी नियोजित ध्वसंक भूनीतिके कारण अंग्रेजोंकी सेनाको अनाजका एक दाना न मिल सका और कार्नवालिसको अपनी तोपें कीलकर पीछे लौटना पड़ा। तीसरा अभियान, जो १७९१ ई०की गर्मियोंमें प्रारंभ हुआ, अधिक सफल रहा। अंग्रेजी सेनाओंका नेतृत्व करते हुए कार्नवालिसने पुनः टीपूकी कई पहाड़ी चौकियोंपर अधिकार कर लिया और १७९२ ई०में एक विशाल सेनाके साथ श्रीरंग-पट्टनम्पर घेरा डाल दिया। राजधानीकी बाह्य प्राचीरोंपर शत्रुओंका अधिकार हो जानेपर टीपूने आत्मसमर्पण कर दिया और मार्च १७९२ ई०में श्रीरंगपट्टनम्की संधिके द्वारा युद्ध समाप्त हुआ। इसके अनुसार टीपूने अपने दो पुत्रोंको बंधकके रूपमें अंग्रेजोंको सौंप दिया और तीन करोड़ रुपये युद्धके हरजानेके रूपमें दिये, जो तीनों मित्रों (अंग्रेज-निजाम-मराठा) में बराबर बाँट लिये गये। साथ ही टीपूने अपने राज्यका आधा भाग भी सौंप दिया, जिसमेंसे अंग्रेजोंने डिंडीगल, बारा महाल, कुर्ग और मलाबार अपने अधिकारमें रख कर टीपूके राज्यका समुद्रसे संबंध काट दिया और उन पहाड़ी दर्रोंको छीन लिया, जो दक्षिण भारतके पठारी भूभागके द्वार थे। मराठोंको वर्धा (वरदा) और कृष्णा नदियों तथा निजामको कृष्णा और पनार नदियोंके बीचके भू-खण्ड मिले।

चतुर्थ मैसूर युद्ध (मार्चसे मई १७९९ ई०)—अल्पकालिक, परन्तु भयानक सिद्ध हुआ। इसका कारण टीपू सुल्तान द्वारा अंग्रेजोंके आश्रित बन जानेके संधि प्रस्तावको अस्वीकार कर देना था, तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड वेलेजलीको टीपूकी ब्रिटिश-विरोधी गतिविधियोंका पूर्ण विश्वास हो गया था। उसे पता चला कि १७९२ ई०की पराजयके उपरांत टीपूने फ्रांस, कुस्तुनतुनियाँ और अफगानिस्तानके शासकोंके साथ इस अभिप्रायसे संधिका प्रयास किया था कि भारतसे अंग्रेजोंको निकाल दिया जाय। वेलेजलीने टीपू द्वारा आश्रित संधिके प्रस्तावको अस्वीकार करना युद्धका कारण बना लिया। उसने निजाम और पेशवाके साथ इस आधारपर एक गठबंधन किया कि युद्धमें जो लाभ होगा, उसका तीनोंमें बराबर बँटवारा हो जायगा। अंग्रेजोंकी तीन सेनाएँ क्रमशः जनरल हेरिस, जनरल स्टीवर्ट और गवर्नर-जनरलके भाई वेलेजली (जो आगे चलकर ड्यूक आफ वेलिंगटन हुआ) के नेतृत्वमें तीन दिशाओंसे टीपूके राज्यकी ओर बढ़ीं। दो घमासान युद्धोंमें टीपूकी पराजय हुई और उसे श्रीरंगपट्टनम्के दुर्गमें शरण लेनी पड़ी। दुर्ग १७ अप्रैलको घेर लिया गया और ४ मई १७९९ ई०को उसपर अधिकार हो गया। वीरतापूर्वक दुर्गकी रक्षा करते हुए टीपू युद्धमें मारा गया। उसके पुत्रने आत्मसमर्पण कर दिया। विजयी अंग्रेज टीपूके राज्यको बराबर-बराबर तीन भागोंमें अपने मित्रोंमें नहीं बांटना चाहते थे, अतः उन्होंने मैसूरके मुख्य और मध्यवर्ती भागपर कृष्णराजको सिंहासनासीन किया, जो मैसूरके उस पुराने राजाका वंशज था, जिसे हैदरअलीने अपदस्थ किया था। टीपूके राज्यके बचे हुए भू-भागोंमेंसे कनास (कन्नड़), कोयम्बतूर और श्रीरंगपट्टनम् कम्पनीके राज्यमें मिला लिये गये। मराठोंने, जिन्होंने इस युद्धमें कोई भी सक्रिय भाग न लिया था, हिस्सा लेना अस्वीकार कर दिया। निजामको टीपूके राज्यका उत्तर पूर्ववाला कुछ भू-भाग मिला, जिसे उसने १८०० ई०में कम्पनीको सौंप दिया। इस प्रकार चतुर्थ मैसूर-युद्धकी समाप्तिपर मैसूरका सम्पूर्ण राज्य अंग्रेजोंके नियंत्रणमें आ गया।

मोअस—एक शक अथवा पार्थियन राजा, जो लगभग ६० ई० पू०में आर्कोशिया तथा पंजाबपर राज्य करता था। उसका नाम केवल सिक्कोंसे ज्ञात होता है।

मोग्गलिपुत्त तिसन—अर्थात् मोग्गलि (मौद्गलायन) का पुत्र तिस्स (तिष्य) एक सिंहली भिक्षु। सिंहली ग्रंथ महावंशके अनुसार उसने अशोकको बौद्धधर्ममें दीक्षित किया। उत्तरी भारतमें प्रचलित बौद्ध अनुश्रुतियोंके अनुसार मौर्य सम्राट्को बौद्ध धर्ममें दीक्षित करनेका श्रेय बनारसके एक गंधी, गुप्तके पुत्र स्थविर उपगुप्तको प्राप्त था। कुछ लोगोंका मत है कि दोनों व्यक्ति एक ही हैं।

मोनसेरेत, पादरी अन्तोनियो—एक जेशूइट साधु, जो बादशाह अकबरके निमंत्रण पर गोआके पुर्तगाली अधिकारियों द्वारा १५८० ई०में मुगल दरबारमें भेजा गया। साधु मोनसेरेत और उसके सहयोगी अकविना दोनोंका अकबरने भारी स्वागत किया। उसने अपने दूसरे पुत्र मुरादको पुर्तगाली भाषा सीखनेके लिए साधु मोनसेरेतके सुपुर्द कर दिया। वह कई वर्ष तक अकबरके दरबारमें रहा और उसने लेटिन भाषामें जेशूइट मिशनका पूरा वृत्तांत लिखा, जिसका वह सदस्य था। यह विवरण अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और अकबरके राज्यकालके बारेमें एक समसामयिक स्रोत-ग्रंथ है।

मोपला—मलाबारमें बसनेवाले कट्टर मुसलमानोंका एक समुदाय। विश्वास किया जाता है कि नवीं शताब्दी ई० में जो अरब भारत आकर बस गये और यहीं शादी कर ली, वे उन्हींके वंशज है। वे अक्सर अपने हिन्दू पड़ोसियोंसे झगड़ा कर बैठते थे। १९२५ ई०में भी उन्होंने भारी विद्रोह कर दिया था।

मोहेन जोदरो—सिंध (अब पाकिस्तानमें) के लरकाना जिलेमें खोद निकाला गया प्राचीन ध्वंसावशेष। इस स्थानपर एक प्रागैतिहासिक सभ्यताके स्मृति-चिह्न मिले हैं, जो लगभग २५०० ई०पू० से १५०० ई०पू० में सिंधु नदीकी घाटीमें वर्तमान थी।

मौखरि वंश—ईशानवर्माने ५५४ ई०में अथवा उसके आसपास एक गुप्त राजाको परास्त कर इस वंशका आरम्भ किया तथा महाराजाधिराजकी पदवी धारण की। उसका राज्य उत्तर प्रदेशके पूर्वी भाग तथा मगधके गया क्षेत्रमें विस्तृत था। अगले पचीस वर्षोंतक उत्तरी गंगाके मैदानमें मौखरि वंशकी प्रधान सत्ता रही। ईशानवर्माके बाद सर्ववर्मा, अवन्तिवर्मा तथा ग्रहवर्मा उसके उत्तराधिकारी हुए। ग्रहवर्मा इस वंशका अंतिम राजा था। उसने थानेश्वरके प्रभाकरवर्धनकी पुत्री राज्यश्रीसे विवाह किया। उसकी राजधानी कन्नौज थी। ग्रहवर्माको मालवाके राजा देवगुप्त ने लगभग ६०६ ई०में परास्त कर मार डाला। वह निस्संतान था, अतएव उसके वंशका अंत हो गया और कन्नौज उसके साले हर्षवर्धन (६०६–४७ ई०) के अधिकारमें आ गया।

मौर्य वंश–३२२ ई०पू० में चंद्रगुप्त मौर्य (दे०) से इसका आरम्भ हुआ, जब मकदूनियाके राजा सिकन्दरकी ३२३ ई०पू० में मृत्यु हो चुकी थी। उसने तक्षशिलाके स्नातक आचार्य चाणक्यकी सहायतासे मगध शासक नंदवंशके अंतिम राजाका वध कर दिया। चन्द्रगुप्तकी राजधानी भी पाटलिपुत्र हुई और उसने २९८ ई०पू० तक राज्य किया। इस अवधिमें उसने पंजाब तथा तक्षशिलासे यवनों (यूनानियों) को मार भगाया और अपना साम्राज्य पूरे उत्तरी भारत तथा पश्चिममें सौराष्ट्रतक विस्तृत कर लिया। लगभग ३०५ ई०पू० में उसने सेलेउकसका आक्रमण विफल कर दिया, जिसे सिकन्दरके साम्राज्यका पूर्वी भाग प्राप्त हुआ था। सेल्यूकस चन्द्रगुप्त मौर्यसे पराजित होनेके बाद हिन्दूकुशके उस पारतकके अपने सभी पूर्वी प्रदेश देकर उससे संधि कर लेनेके लिए विवश हुआ। उसने अपनी कन्याका विवाह चन्द्रगुप्तसे कर दिया और अपना राजदूत मेगस्थनीज (दे०) उसकी राजसभामें भेजा। मेगस्थनीजने उस कालके भारतका रोचक वृत्तांत लिखा है।

चन्द्रगुप्तकी माताका नाम मुरा था। इस आधारपर उसका राजवंश 'मौर्य' कहलाता है। चन्द्रगुप्तके बाद उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी बिन्दुसार (दे०) ने २९८ ई०पू० से २७३ ई०पू० तक राज्य किया। उसने 'अमित्रघात' (शत्रुओंके घातक) की पदवी धारण की और सम्भवतः दक्षिण भारत भी विजय किया।

तीसरा मौर्य सम्राट् बिन्दुसारका पुत्र अशोक (दे०) था, जिसने लगभग २७३ ई०पू०से २३२ ई०पू० तक राज्य किया। संभवतः अशोकको मगधका सिंहासन प्राप्त करनेके लिए युद्ध करना पड़ा, क्योंकि राज्यभिषेक राज्यारोहणके चार वर्ष बाद हुआ। राज्याभिषेकके आठवें वर्षमें उसने भारी रक्तपातके बाद कलिंग विजय किया। इस युद्धमें होनेवाले नरसंहारने अशोककी मानसिक वृत्ति बदल दी और भारी खेदसे अभिभूत होकर उसने बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया और युद्धको तिलांजलि दे दी। बौद्ध होनेके बाद उसने शेष राज्यकाल विशाल साम्राज्यके समस्त साधनोंको केन्द्रीभूत करके

भारत और भारतसे बाहर बौद्ध धर्मका प्रचार करने तथा मनुष्यों और पशुओंके हितमें सड़कें बनवाने, कुएं खुदवाने, धर्मशालाएं बनवाने, प्याऊ बिठाने, चिकित्सालय खुलवाने आदिमें बिताया। उसने सारे भारतमें शिलाओं तथा स्तम्भोंपर अनेक लेख खुदवाये जिनमें प्रजाको दया, दान, सत्य, माता-पिताकी सेवा, गुरुओंका आदर, प्राणियोंकी अहिंसा तथा सब मतोंके प्रति सहिष्णुताका उपदेश दिया गया है। उसने बौद्ध भिक्षुओंको धर्म-प्रचारके लिए सिंहल (श्रीलंका) तथा पश्चिमके देशोंमें भेजा, जिसके फलस्वरूप बौद्ध धर्मका विश्वव्यापी प्रसार हुआ।

अशोकके उत्तराधिकारी योग्य नहीं सिद्ध हुए और उसकी मृत्युपर साम्राज्य संभवतः उसके एक पुत्र जालौक तथा पौत्र दशरथके बीच विभाजित हो गया। इनमेंसे किसीमें बौद्ध धर्मके प्रति अशोक जैसा अनुराग नहीं दिखाई पड़ा और ऐसा प्रतीत होता है कि अशोककी मृत्युके बाद ही बौद्ध धर्मको मिलनेवाला राज्याश्रय समाप्त हो गया। अशोकके उत्तराधिकारी राजा शक्तिहीन थे और उनमें से अंतिम राजा बृहद्रथकी लगभग १८५ ई०पू० में उसके ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्रने हत्या कर डाली, जिससे शुंगवंशका आरम्भ हुआ।

य

यंग-हस्बैण्ड, सर फ्रांसिस (१८६३–१९४२)—वाइसराय लार्ड कर्जन (दे०) की आज्ञा द्वारा १९०३–१९०४ ई०में यंग-हस्बैण्डके नेतृत्वमें एक ब्रिटिश भारतीय अभियानदल तिब्बत गया। यङ्ग-हस्बैण्ड जुलाई १९०३ ई०में तिब्बती क्षेत्रके अन्तर्गत सिक्किम सीमान्तसे १५ मील उत्तरकी ओर स्थित खम्बजेंग पहुँचा। किन्तु तिब्बतियोंने अंग्रेज अतिक्रमणकर्ताओंके साथ तबतक सन्धिवार्ता करनेसे इन्कार कर दिया जब तक वह उनके सीमान्तके उस पार न चला जाय। फलतः यंग-हस्बैण्ड भारत सरकारके अनुमोदनसे तिब्बतके अन्दर ग्यान्तसे तक बढ़ गया और तिब्बतकी सेनाको गुरु नामक स्थानपर परास्त कर दिया। चूंकि तिब्बती अब भी सन्धि-वार्ताके लिए तैयार न थे, अतः यंग-हस्बैण्ड तिब्बतमें और आगे बढ़ गया और दूसरी विशाल तिब्बती सेनाको करो-ला-दर्रेके निकट युद्धमें परास्त किया और अभियान-पूर्वक तिब्बतकी राजधानी ल्हासामें ३ अगस्त १९०४ ई०को प्रविष्ट हो गया। यंग-हस्बैण्डकी विजयोंके फलस्वरूप तिब्बतियोंको संधि-वार्ताके लिए बाध्य होना पड़ा, फलस्वरूप ७ सितम्बर १९०४ ई०को ल्हासाकी सन्धि (दे०) उनपर आरोपित की गयी और सोलह दिन बाद विजयोल्लासके साथ यंग-हस्बैण्ड वापस लौट आया। ल्हासाकी संधिके अन्तर्गत, जो बादमें संशोधित की गयी, तिब्बतको तीन वर्षमें पचीस लाख रुपये क्षतिपूर्ति रूपमें देने पड़े, तीन वर्ष तकके लिए चुम्बीघाटीको छोड़ना पड़ा और एक ब्रिटिश एजेण्टको ग्यान्तसेमें रहनेकी अनुमति देनी पड़ी। यंग-हस्बैण्डकी वापसीपर वाइसराय लार्ड कर्जनने उसकी बड़ी आवभगत की। (जी० एफ० सीवर—फ्रांसिस यंग-हस्बैण्ड)

यजुर्वेद—चार वेदोंमेंसे एक। यजुर्वेद संहिता (दे०) में यज्ञ क्रियाओंके मंत्र और विधियां संग्रहीत हैं। इसमें केवल ऋग्वेदसे लिये हुए मंत्र ही नहीं मिलते, किन्तु यज्ञानुष्ठानमें सम्पादित की जानेवाली समस्त क्रियाओंका विधान भी मिलता है। यजुर्वेद दो हैं, यथा—

(अ) कृष्ण यजुर्वेद
(आ) शुक्ल यजुर्वेद

तैत्तिरीय ब्राह्मण, मैत्रायणी ब्राह्मण और काठक ब्राह्मण (दे०) कृष्ण यजुर्वेदसे सम्बन्धित हैं और वाजसनेय ब्राह्मण तथा शतपथ ब्राह्मण शुक्ल यजुर्वेदसे सम्बद्ध हैं। निम्नलिखित उपनिषद् भी यजुर्वेदसे सम्बद्ध हैं— तैत्तिरीय, कठ, श्वेताश्वतर, बृहदारण्यक, ईश, प्रश्न, मुण्डक और माण्डूक्य। यजुर्वेदमें यज्ञों और कर्मकाण्डका प्राधान्य है।

यज्ञश्री, गौतमी पुत्र (१७०–२०० ई०)—उत्तरकालीन सातवाहन (दे०) राजाओंमें सबसे प्रतापी। उसने पश्चिमी अंचलवर्ती क्षत्रपोंसे सातवाहनोंकी भूमि पुनः छीन ली, जिसपर उन्होंने आधिपत्य जमा रखा था। उसने चाँदी, काँसे तथा सीसेके अनेक सिक्के प्रचलित किये, जिनमेंसे कुछ सिक्कोंपर पोतका चित्र बना हुआ था। इससे सूचित होता है, उसका राज्य समुद्र पारके देशों तक विस्तृत था।

यदु—गणका उल्लेख ऋग्वेदमें हुआ है। उत्तरकालीन साहित्यिक अनुश्रुतियोंके अनुसार यदु लोग पश्चिमी भारतमें प्रभासके निकट बस गये थे। कृष्ण, जिन्हें विष्णुका अवतार माना जाता है यदु गणके ही थे।

यन्दबूकी संधि—यह १८२६ ई०में सम्पन्न हुई। इससे प्रथम बर्मा-युद्ध (दे०) की समाप्ति हुई। इस संधिके द्वारा

बर्माने अंग्रेजोंको एक करोड़ रुपया हर्जाना देना स्वीकार किया; अराकान और तेनासरीमके प्रान्त उन्हें सौंप दिये; आसाम, कछार और जयन्तियामें किसी प्रकारका हस्तक्षेप न करनेका वायदा किया; (ये क्षेत्र अन्ततोगत्वा ब्रिटिश शासनके अन्तर्गत चले गये) और आवामें ब्रिटिश रेजीडेण्ट रखना भी स्वीकार कर लिया।

यम–एक वैदिक देवता, जिसके लोकमें पितरोंकी आत्माओंका निवास माना जाता है। वह जीवोंको उनके शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार पुरस्कार और दण्ड प्रदान करता है, इसीलिए वह 'धर्मराज' भी कहलाता है।

यवन–हिन्दू लेखकोंने मूलतः यह शब्द विदेशी यूनानियोंके लिए इस्तेमाल किया, किन्तु बादको यह शब्द मुसलमानोंके लिए भी प्रयुक्त होने लगा। व्युत्पत्तिकी दृष्टिसे यह 'योंन' शब्दसे बना है, जो आयोनियाका पर्याय है और मूलतः उसका तात्पर्य आयोनियाके निवासियोंसे है। (**सरकार०–पृ० ३२१–२७**)

यवन बाख्त्री राजवंश–इसका प्रवर्तन ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दीमें बैक्ट्रिया (बाख्त्री)के यूनानी (यवन) क्षत्रप डियोडोरसने किया, जो सीरिया (शाम) के यूनानी राजाकी अधीनताको त्याग कर स्वतन्त्र राजा बन बैठा। यह नया वंश ईसा-पूर्व १५५ में समाप्त हो गया। इस वंशमें कई राजा हुए। इनमें डेमेट्रियस (लगभग २००-१९० ई० पू०) ने उत्तर भारतका काफी बड़ा भाग अपने आधिपत्यमें कर लिया, जिसमें सम्भवतः काबुल, पंजाब और सिंध भी शामिल था, लेकिन डेमेट्रियसको शीघ्र ही युक्रेटीदसने पराजित कर दिया, बादमें युक्रेटीदसको उसके पुत्र अपोलोडोटसने मार डाला। अपोलोडोटसको उसके भाई हेलियोक्लोजने मारा। इस प्रकार यवन बाख्त्री राजवंशका अन्त हो गया। इस कालके लगभग ४० विभिन्न यवन राजाओंके नामके सिक्के पाये गये हैं। इससे सिद्ध होता है कि पश्चिमोत्तर भारतकी सीमापर बहुतसे छोटे-छोटे यवन राज्य रहे होंगे। इन यवन राजाओंमें मिनान्डरका नाम बहुत प्रसिद्ध है। उसने बौद्ध धर्म अपना लिया था। 'मिलिन्दपन्हो' नामक प्रसिद्ध बौद्ध धर्म ग्रन्थमें उल्लिखित मिलिन्द यही मिनान्डर है।

यवन बौद्ध मूर्तिकला–बहुधा मूर्तिकलाकी इस शैलीको 'गांधार शैली' कहते हैं। इस शैलीकी बौद्ध मूर्तियोंपर यूनानी कलाका प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इस शैलीकी बुद्धकी मूर्तियाँ यूनानी देवता अपोलोसे मिलती-जुलती हैं। इसी प्रकार यक्ष कुबेरकी मूर्ति यूनानी देवता जीयससे मिलती जुलती है। इन मूर्तियोंको जो परिधान पहनाया गया है, वह भी यूनानी ढंगका और आमतौरपर पारदर्शी है। सामान्यतः यूनानी देवी-देवताओंको भारतीय बौद्धोंकी पोशाक और आकृतिमें दिखाकर बौद्ध नामकरण कर दिया गया है। यवन बौद्ध मूर्तिकला (गांधार शैली) वस्तुतः यूनानी-रोमन कला है जो इसाकी आरम्भिक शताब्दियोंमें लघु एशिया तथा रोमन साम्राज्यमें प्रचलित थी। द्वितीय शताब्दीमें, जबकि पश्चिमोत्तर भारतमें कुषाण राजा कनिष्क तथा हुविष्कका शासन था, इस गांधार शैलीकी मूर्तिकलाका बहुत प्रचलन था।

यशोधरपुर––कम्बुज देश (कम्बोडिया) की प्राचीन राजधानी। नगरका आधुनिक नाम 'अंकोरथम' है। राजा यशोवर्मा (८८९–९०८ ई०) ने इसकी नींव डाली थी। आकारमें नगर चौकोर तथा प्रत्येक ओर दो मील लम्बा था। यह ३३० फुट चौड़ी परिखा से घिरा हुआ और ऊँचे प्राकारसे परिवेष्टित था। यह सुन्दर इमारतों और मन्दिरोंसे सुसज्जित था, जिनमें १५० फुट ऊँचा बयोन मन्दिर सर्वाधिक सुन्दर था। यशोधरपुर अपने समयमें संसारके सबसे सुन्दर नगरोंमें गिना जाता था।

यशोधरा–राजकुमार सिद्धार्थ गौतम बुद्ध (दे०) की पत्नी, जो उनके एकमात्र पुत्र राहुलकी माता बनीं। उनके नाम भद्द कच्चा, सुभद्रका, बिम्बा और गोपा भी मिलते हैं।

यशोधर्मा–मालवाका राजा। हूण नेता मिहिरकुल (दे०) को ५२८ ई०में परास्त कर उसने भारतीय इतिहासमें अपना ख्यातिपूर्ण स्थान बनाया। मिहिरकुलको हरानेमें नरसिंहगुप्त बालादित्य (दे०) ने सम्भवतः उसे सहायता पहुँचायी। उसके पूर्वजों और उत्तराधिकारियोंके विषयमें कुछ पता नहीं है। उसकी निश्चित शासन-अवधि भी ज्ञात नहीं है, किन्तु विश्वास किया जाता है कि उसने छठी शताब्दीके पूर्वार्धमें शासन किया था। मन्दसौरमें उसने दो कीर्ति-स्तम्भोंकी स्थापना की और उनपर अंकित अभिलेखोंके अनुसार वह ब्रह्मपुत्रसे पश्चिमी समुद्रतक और हिमालयसे त्रावनकोर प्रदेशके पश्चिमी घाटमें स्थित महेन्द्रगिरितक सम्पूर्ण भारतपर शासन करता था। यशोधर्माकी इन प्रशस्तियोंमें किये गये दावोंके अनुपोषणमें कोई ऐसा स्वतंत्र एवं पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है, जिसके द्वारा यह सिद्ध होता हो कि वह महान योद्धा और विजेता राजा था।

यशोमती–थानेश्वरके राजा प्रभाकरवर्धन (दे०) की रानी, जो प्रख्यात सम्राट् हर्षवर्धन (दे०) की माता थी।

यशोवर्मा–कम्बुज (कम्बोडिया) का राजा, जिसने ८८९ से ९०८ ई० तक शासन किया। वह बड़ा शक्तिशाली था। उसने यशोधरपुर (दे०) नामक प्रख्यात नगरकी नींव डाली। यशोवर्माके अभिलेख बहुत बड़ी संख्यामें प्राप्त हुए हैं। इनका मूल पाठ दो लिपियोंमें उपलब्ध है, एक तो कम्बुज देशकी लिपिमें, दूसरा उत्तरी भारतमें प्रचलित देवनागरी लिपिमें। दोनों पाठोंकी भाषा संस्कृत है।

यशोवर्मा–जेजाकभुक्ति (दे०) अर्थात् आधुनिक बुन्देलखण्डका एक चन्देल राजा। उसका शासनकाल लगभग दसवीं शताब्दी है। उसने प्रतिहार (दे०) से कालंजरका किला छीन लिया और प्रतिहार राजा देवपाल (दे०) को परास्त कर उससे विष्णुकी बहुमूल्य प्रतिमा ले आया, जिसकी स्थापना उसने खजुराहो (दे०) के स्वनिर्मित मन्दिरमें की थी। वह सम्भवतः ९५० ई०में स्वर्गवासी हुआ और धंग उसका उत्तराधिकारी बना।

यशोवर्मा–कन्नौजका एक राजा, जो आठवीं शताब्दीके प्रथम चतुर्थांशमें शासन करता था। ७३१ ई०में उसने एक दूतमण्डल चीन भेजा। १० वर्षके बाद कश्मीरके राजा ललितादित्य मुक्तापीड (दे०) ने उसका सिंहासन छीन लिया तथा उसका वध कर डाला। 'मालतीमाधव' नाटकके रचयिता प्रसिद्ध संस्कृत कवि भवभूति (दे०) और प्राकृत भाषाके प्रसिद्ध कवि वाक्पतिका वह आश्रयदाता था।

यशस्कर–कश्मीरका एक ब्राह्मण राजा। दसवीं शताब्दीमें ब्राह्मणोंकी एक सभामें उसे सिंहासनारूढ़ किया गया। उसका शासन अल्पकालिक रहा।

याकूत, जलालुद्दीन–एक हब्शी गुलाम जो रजिया सुलताना (दे०) का कृपापात्र बन गया। उसकी पदोन्नति करके उसे शाही घुड़सालका प्रधान अधिकारी बना दिया। रजियाने उसपर और कृपा-दृष्टि भी की। इससे दरबारके अमीर उससे ईर्ष्या करने लगे। असंतुष्ट अमीरोंने भटिण्डाके सूबेदार अल्तूनियाके नेतृत्वमें बेगमके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। युद्धमें याकूत परास्त हुआ तथा मारा गया और रजिया सुल्तानाको कैद कर लिया गया

याकूब–कश्मीरके सुल्तान यूसुफशाह (दे०) का पुत्र व वारिस। वह १५८६ ई०में पिताके साथ मुगलों द्वारा परास्त हुआ और इस प्रकार राज्यसे वंचित हो गया।

याकूब-इब्न-लैस—सिंधका प्रथम स्वतन्त्र मुसलमान शासक। ८७१ ई०में खलीफाने इस प्रान्तका स्वामित्व भेंटके स्वरूप उसे प्रदान कर दिया।

याकूब खां–अमीर शेर अली (दे०) का पुत्र और उत्तराधिकारी। १८७९ ई०में पिताकी मृत्यूपरांत अंग्रेजोंने उसे अफगानिस्तानका अमीर मान लिया। याकूब खाँने १८७९ ई०में अंग्रेजोंके साथ गंदमक (दे०) की संधि की, जिसके द्वारा उसने अपने वैदेशिक सम्बन्ध अंग्रेजोंके परामर्शसे संचालित करना स्वीकार कर लिया। अंग्रेजोंने इसके बदलेमें विदेशी आक्रमणकारियोंसे उसकी सुरक्षा करने और ६ लाख रुपया वार्षिक सहायता देनेका वचन दिया। उसके देशवासियोंको इस प्रकार अपने देशकी स्वतन्त्रता अंग्रेजोंके हाथ बेच देना पसन्द नहीं आया और इस सन्धिके दो मास बाद ही अफगानोंने अमीर और उसके अंग्रेज संरक्षक, काबुलके अंग्रेज रेजीडेण्ट कवाग्नरीके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और समस्त अंगरक्षकों सहित उसको मार डाला। इसके परिणामस्वरूप अफगानों और अंग्रेजोंके बीच नयी जंग छिड़ गयी। याकूब खाँको काबुलसे खदेड़ दिया गया और उसने भागकर अंग्रेजोंकी शरण ली। बादमें उसे राज-बन्दीके रूपमें देहरादून भेजा गया, जहाँ वह १९२३ ई०में मृत्युपर्यन्त रहा। (देखिये, दूसरा अफगान-युद्ध)

याज्ञवल्क्य–एक प्रसिद्ध ऋषि। प्राचीन जनश्रुतियोंके अनुसार वे मिथिलाके राजर्षि जनककी, जो अपने अध्यात्मज्ञानके लिए प्रसिद्ध थे, राजसभामें उपस्थित होकर उनसे ब्रह्मचर्चा किया करते थे। प्राचीन ब्रह्मवेत्ता ऋषियोंमें उनका स्थान बहुत ऊँचा माना जाता है और उपनिषदोंमें भी उनका उल्लेख मिलता है।

यादव राजवंश–का प्रवर्तन भिल्लम द्वारा ११९१ ई०में हुआ। उसने देवगिरि (दौलताबाद) को अपनी राजधानी बनाया। भिल्लमका पौत्र सिंघण इस वंशका सबसे प्रतापी राजा था। वह १२१० ई०में सिंहासनपर बैठा। उसने गुजरात और पासपड़ोसके अन्य राज्योंको जीता और कुछ समयके लिए यादव वंशका प्रताप चालुक्योंसे भी बढ़ गया। किन्तु उनका यह उत्कर्ष अधिक दिनों तक स्थिर न रह सका। १२९४ ई०में जब यादव राजा रामचंद्रदेव (दे०) शासन कर रहा था, सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (दे०) ने उसके राज्यपर आक्रमण कर दिया। उसने राजधानी देवगिरिको लूटा और राजासे छः सौ मन मोती, दो सौ मन हीरे, माणिक्य, मरकत मणियाँ, नीलम, बहुत-सा स्वर्ण और बहुतसे हाथी उपहारमें प्राप्त करके उसकी जान बख्श दी।

१३०९ ई०में अलाउद्दीनके सेनानायक मलिक काफूर (दे०) के नेतृत्वमें मुसलमानोंने फिर यादव राज्य-

पर आक्रमण किया। रामचंद्रदेवने (दे०), जो उस समय भी राज्य कर रहा था, सुल्तानकी अधीनता स्वीकार करके अपने प्राणोंकी रक्षा की। वह यादव वंशका अंतिम स्वतंत्र शासक था। उसकी मृत्युके बाद उसके जामाता और उत्तराधिकारी हरपालदेवने १३१९ में दिल्लीके सुल्तानके विरुद्ध विद्रोह कर दिया, परन्तु वह परास्त हुआ। उसे जीवित पकड़कर बंदी बना लिया गया। सुल्तानने जीते जी उसकी खाल खिंचवा ली और सिर काट दिया। उसकी मृत्युके साथ यादव वंशका अंत हो गया। यादव वंशके राजा हिन्दू धर्म, संस्कृत भाषा तथा साहित्यके संरक्षक थे। प्रसिद्ध धर्मशास्त्रकार हेमाद्रि रामचन्द्रदेवके कालमें ही हुआ।

यमुनाचार्य—दक्षिण भारतके तमिल (द्रविड़) देशमें उत्पन्न वैष्णव संप्रदायके प्रमुख विद्वान्, जो बारहवीं शताब्दीमें विद्यमान वैष्णवाचार्य रामानुज (दे०) के उपदेशकर्त्ता माने जाते हैं।

यास्क—निरुक्तके प्राचीन-कालिक ख्याति-प्राप्त रचयिता। निरुक्तकी गणना छः वेदांगों (दे०) में होती है। यास्कका काल अनिश्चित है, किन्तु वह यशस्वी वैयाकरण पाणिनि (दे०) का पूर्वकालिक माना जाता है।

याहिया-बिन-अहमद सरहिन्दी—दिल्ली सल्तनतका एक प्रारम्भिक मुसलमान इतिहासकार।

यिल्दिज, ताजुद्दीन—सुल्तान इल्तुतमिश (दे०) का प्रतिद्वन्द्वी। मूलतः वह तुर्क गुलाम था। कुतबुद्दीनका देहान्त होनेपर यिल्दिजने गजनीपर अधिकार कर लिया और अपनेको दिल्लीके तख्तका हकदार घोषित किया। १२१४ ई०में यिल्दिजने थानेश्वर तथा पंजाबको विजित कर लिया और इल्तुतमिशसे अपनी अधीनता स्वीकार करानेका प्रयत्न किया, परन्तु १२१६ ई०में तराइनके युद्धमें वह इल्तुतमिशसे परास्त हुआ। यिल्दिजको बन्दी बनाकर बदायूँ भेज दिया गया।

युक्रेटीदस—बैक्ट्रियाका एक यूनानी सेनापति, जो १७५ ई० पूर्वमें वहाँका शासक बन गया। उसने डेमेट्रियसको जो अपनेको भारतीयोंका राजा कहता था, १६० ई० पू०से १५६ ई० पू० तक चलनेवाले लम्बे युद्धमें पराजित किया और अपना राज्यक्षेत्र पश्चिमी भारतके कुछ भाग तक प्रसारित किया। जब वह १५६ ई० पू०में भारतसे बैक्ट्रिया वापस जा रहा था, सम्भवतः उसके पुत्र अपोलोडोटसने उसे रास्तेमें मार डाला। भारतमें युक्रेटीदसके राज्यविस्तारका यह फल हुआ कि उसके बाद पश्चिमोत्तर भारतमें अनेक छोटे-छोटे यवन राज्य स्थापित हो गये, जिनमेंसे एकका शासक मिनांडर (मिलिन्द) बहुत प्रसिद्ध हुआ।

युथिडिमास—बैक्ट्रियाका तृतीय राजा। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी डेमेट्रियसने सम्भवतः १७५ ई० पू०में भारतपर हमला किया, लेकिन शुङ्ग राजा पुष्यमित्र (लगभग १८५ ई० पू०)ने उसे परास्त कर दिया।

युधिष्ठिर—पांच पाण्डव राजकुमारोंमें सबसे ज्येष्ठ, जिसकी कौरवोंके साथ युद्धकी कथा ही महाभारतकी मुख्य कथा है। वह सत्यवादी और न्यायप्रिय था, इसीलिए उसे 'धर्मराज' कहा जाता था।

युहशि जाति—एक घुमक्कड़ जनजाति, जो मूलतः पश्चिमी चीनमें रहती थी। १७४ ई०पू० और १६० ई०पू० के बीच उन्हें उस क्षेत्रसे खदेड़ दिया गया और उन्होंने गोबी रेगिस्तानकी ओर प्रस्थान किया। जैक्सर्टीजकी घाटीमें पहुँचकर उन्होंने वहाँसे शकोंको मार भगाया, जो वहाँ अधिकार किये हुए थे। परन्तु वू सुनने यूहशियोंको वहाँसे भी मार भगाया और वे अन्ततः आक्ससकी घाटी तथा बैक्ट्रिया पहुँचे। कालान्तरमें यूहशियोंने अपनी घुमक्कड़ीवृत्ति त्याग दी और पाँच राज्योंमें विभक्त होकर बैक्ट्रियामें बस गये। एक शताब्दीके उपरान्त लगभग ४० ई०में युहशि जातिकी एक शाखा कुषाणोंने कुजुल कदाफिससके नेतृत्वमें युहशि जातिकी अन्य शाखाओंपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और उत्तरी पश्चिमी भारतपर अधिकार कर लिया। उनका नेता भारतीय इतिहासमें कथफिश प्रथमके नामसे विख्यात हुआ जो कुषाण राजवंशका था। (**मैकगवर्न०**)

यूदेमास—एक यूनानी सेनापति जिसे सिकन्दरने पश्चिमी पंजाबमें यूनानी सेनाका नेतृत्व करनेके लिए फिलिप्योजके स्थानपर नियुक्त किया और जो ३२४ ई० पू०में भारतीयों द्वारा मारा गया। यूदेमास सिंधुघाटीके दक्षिणी भागमें ३१७ ई० पू० तक रहा, जबकि चन्द्रगुप्त मौर्यने सिन्धुघाटीके उत्तरी भागसे ३२२ ई० पू०में ही यूनानियोंको मार भगाया था। यूदेमास स्वदेश वापस लौटनेपर सिकन्दरके सेनापतियोंके बीच चलनेवाले गृहयुद्धमें फँस गया और इसके बाद भारतसे उसका कोई सम्बन्ध न रहा।

यूनाइटेड ईस्ट इण्डिया कम्पनी आफ नीदरलैण्ड—हालैण्ड सरकारके सहयोगसे डचों द्वारा १६०२ ई०में संगठित। उसका प्रधान कार्यालय बटावियामें था। उसने मसालेवाले द्वीपोंके साथ मसालेके लाभदायक व्यापारपर अपना ध्यान केन्द्रित किया और अंग्रेजोंको 'जावा' और 'मलक्का'

द्वीपोंसे बाहर निकाल दिया। भारतमें भी १६०६ ई०में उसने अपनी कोठियाँ मद्रासके उत्तर, पुलीकटमें और बादमें मछलीपट्टम् और सूरतमें स्थापित कीं। मसालेके व्यापारपर एकाधिकार डच बनाया। बंगालमें चिन्सुरामें बस गये और पलासीके युद्धके पश्चात् बंगालमें अंग्रेजोंके बढ़ते हुए राजनीतिक प्रभावके कारण उनसे ईर्ष्या करने लगे। फलतः राबर्ट क्लाइवने उनपर नवम्बर १७५६ ई० में आक्रमण किया तथा विदारि (दे०) के युद्धमें उन्हें परास्त कर दिया। इसके पश्चात् डचोंने भारतमें राजनीतिक शक्ति प्राप्त करनेके लिए अंग्रेजोंसे कोई प्रतिद्वन्द्विता नहीं की और अपना ध्यान केवल व्यापारपर केन्द्रित रखा। इंग्लैण्ड और फ्रांसके बीच युद्ध प्रारम्भ होनेपर १७६१ ई०में इंग्लैण्ड और हालैण्डके बीच भी युद्ध घोषित कर दिया गया और भारतमें डचों द्वारा अधिकृत समस्त क्षेत्र अंग्रेजोंके अधिकारमें आ गया। अंग्रेजोंने १८१० ई०में जावापर भी अधिकार कर लिया। किन्तु १८१६ ई०में उसे डचोंको लौटा दिया।

यूनाइटेड कम्पनी—'ईस्ट इंडिया कम्पनी' को 'यूनाइटेड कम्पनी' नाम तब दिया गया, जब १७०८ ई०में उसकी प्रतिद्वन्द्वी 'द इंगलिश कम्पनी, ट्रेडिंग टु द ईस्ट इंडीज', से उसे मिला दिया गया। इसके बाद भी 'यूनाइटेड कम्पनी' 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' (दे०) के नामसे ही प्रसिद्ध रही।

यूनानी (यवन)—भारतीय इतिहासपर इनका बहुत अधिक प्रभाव है। इस बातका निश्चित प्रमाण है कि भारतपर सिकन्दरके आक्रमण (ईसा पूर्व ३२७-३२६) से शताब्दियों पहले भारत और यूनानके बीच सम्पर्क स्थापित था। सुप्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक पैथागोरसने, जो ईसापूर्व छठीं शताब्दीके अन्तमें वर्तमान था और पुनर्जन्मके सिद्धान्तका प्रतिपादन करता था, निश्चय ही भारतके सांख्य-दर्शनसे यह सिद्धान्त लिया था। ऐसा उल्लेख मिलता है कि एक भारतीय विद्वान् एथेंसमें यूनानी दार्शनिक सुकरात (ईसा पूर्व ४६६-३६६) से मिला था और उससे दर्शनपर बहस की थी। अफलातून अथवा प्लेटो (ईसा पूर्व ४२७-३४७) भारतीय दर्शनके कर्म-सिद्धान्तसे परिचित था। इसी प्रकार भारतीय दर्शन और इलीटिक्स तथा थैल्स द्वारा प्रतिपादित यूनानी दर्शनमें जो अद्भुत साम्य मिलता है उससे जाहिर है कि सिकन्दरके पहले भारतीय और यूनानी दार्शनिकोंके बीच निकट सम्पर्क हुए बिना वह नहीं घटित हो सकता। सिकन्दरने भारतपर अकारण आक्रमण करके यहाँ बहुत-सा रक्त बहाया, उसके साथ बहुतसे यूनानी भी भारत आये। यद्यपि सिकन्दरके मरनेके साथ भारतपर उसका प्रभुत्व समाप्त हो गया तथापि भारत और यूनानियोंका सम्पर्क जारी रहा। सेनापति सेल्यूकसने सिकन्दरके मरनेके बाद साम्राज्यके पूर्वी भागपर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया और ईसा पूर्व ३०५ में उसने भी भारतपर आक्रमण किया, लेकिन भारतीय सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य (दे०) (ईसापूर्व ३२२-२६८) ने उसे पराजित कर दिया और उसकी लड़कीसे विवाह कर लिया।

सेल्यूकसने चन्द्रगुप्तके दरबारमें मेगस्थनीज नामका दूत भेजा। चन्द्रगुप्तके बाद बिन्दुसारने सीरियाके यूनानी राजा एंटियोकससे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कायम किया और उसको पत्र लिखकर एक यूनानी दार्शनिक भारतमें भेजनेके लिए अनुरोध किया। बिन्दुसारके पुत्र अशोकने भी सीरिया, मिस्र, मकदूनिया और इपिरसके यूनानी राजाओंसे सम्पर्क कायम किया। इन सभी देशोंमें अशोकने बौद्ध भिक्षुओंको भेजा और वहाँ चिकित्सालय आदि खुलवाये और जड़ी-बूटियोंके पेड़ लगवाये। कहा जाता है, इन देशोंमें बहुतसे लोगोंने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। भारतमें भी बहुतसे यूनानी लोग अशोककी सेवामें नियुक्त थे। उसने तुशाष्प नामक यूनानीको सौराष्ट्रका क्षत्रप नियुक्त किया था। अफगानिस्तानमें, जो उन दिनों अशोकके साम्राज्यके अन्तर्गत था, बहुतसे यूनानी रहते थे। शायद इसलिए कन्दहारके निकट जो शिलालेख मिला है, उसे अशोकने दो भाषाओं—यूनानी और अरमइकमें लिखवाया था। अशोकके बाद पश्चिमोत्तर भारतमें बहुतसे छोटे-छोटे यवन राज्य स्थापित हो गये, जो प्रथम शताब्दी ईसवीमें कुषाण साम्राज्यकी स्थापना होनेतक वर्तमान रहे। इसी जमानेमें भारतीयों और यूनानियोंके बीच निकट सांस्कृतिक संबंध स्थापित हुआ और हजारों यूनानियोंने या तो बौद्ध धर्म या ब्राह्मण धर्म (हिन्दू धर्म) ग्रहण कर लिया।

यूनानी राजा मिनान्डर (मिलिन्द) ने बौद्ध धर्मकी दीक्षा ली और यूनानी राजदूत हेलियोडोरस (हलधर) ने वैष्णव धर्म अंगीकार किया और वासुदेवके सम्मानमें बेसनगरमें गरुड़स्तम्भकी स्थापना की। इसी कालमें मूर्तिकलाकी गांधार शैलीका विकास हुआ और बुद्धकी असंख्य कलात्मक मूर्तियोंका निर्माण हुआ, जिनपर यूनानी प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। वस्तुतः भारत और यूनान दोनोंने एक दूसरेको प्रभावित किया। यूनानने भारतसे दर्शन, धर्म, गणित और अन्य विज्ञान लिये।

बदलेमें भारतने यूनानसे वास्तु कला, मुद्रा-निर्माण कला, साहित्य तथा ज्योतिष विद्या ली।

यूरोपीय यात्री, आरम्भिक—उन यूनानी यात्रियोंसे भिन्न थे जो ३२७ ई०पू० में भारतपर सिकन्दरके आक्रमणके बाद भारत आये और जिन्होंने अपना यात्रा-विवरण भी प्रस्तुत किया। ये लोग अपनेको यूरोपीय नहीं कहते थे। यूरोपीय यात्रियोंमें प्रथम था वेनिस (इटली) निवासी मार्कोपोलो, जो १२८८ और १२९३ ई०में भारत आया था। इसके बाद १४२० ई०में इटालियन यात्री निकोलो कोन्टी विजयनगर आया था। ५० वर्ष बाद रूसी यात्री अफानासी निकितनने १४७० से १४७४ ई० तक बहमनी राज्यकी यात्रा की। १५२२ ई०में पुर्तगाली यात्री डोमिंगोज पायस विजयनगर आया। १३ वर्ष पश्चात् दूसरा पुर्तगाली यात्री फर्नाओ नूनिज भी विजयनगर आया। टामस स्टेफेन्स पहला अंग्रेज था जो भारत आया। वह गोवा स्थित जेशुइट कालेजका रेक्टर था। उसने अपने पिताको जो पत्र लिखे, उनसे इंग्लैण्ड़में भारतके प्रति बड़ी दिलचस्पी पैदा हुई।

तत्पश्चात् १५८३ ई०में अंग्रेज व्यापारी फिच अपने दो साथियोंके साथ भारत आया। वह सात वर्ष तक भारतमें रहा। १५९२ ई०में इंग्लैण्ड वापस जाकर उसने भारतका आँखों देखा हाल प्रकाशित किया। इससे इंग्लैण्डके निवासियोंमें भारतके प्रति दिलचस्पी और भी बढ़ गयी। १५९९ ई०में तीसरा अंग्रेज यात्री जान मिडनाल अथवा मिल्डेनहाल स्थल मार्गसे भारत आया और सात वर्ष तक यहाँ रहा। वह अकबरके दरबारमें आगरा भी गया। चूँकि उस समयतक उत्तमाशा अन्तरीप (द० अफ्रीका) होकर यूरोप और भारतके बीच समुद्री रास्तेकी जानकारी हो चुकी थी, अतएव इस रास्ते बहुतसे यूरोपीय यात्री भारत आने लगे। इन लोगोंमें कैप्टन विलियम हाकिन्स भी था। हाकिन्स भारतमें १६०८ से १६१४ ई० तक रहा। उसने भारतका रोचक विवरण प्रस्तुत किया है। सर टामस रो तथा पादरी एडवर्ड टेरी १६१५ से १६१९ ई० तक भारतमें रहे। फ्रैंक्वाय बर्नियर तथा जीन बैप्टिस्ट टैवर्नियर भारतमें शाहजहाँ (१७२७–६० ई०) के शासनकालमें आये और उस समयका दिलचस्प विवरण प्रस्तुत किया है।

यूले, जार्ज—उन बिरल गैर-सरकारी अंग्रेज व्यापारियोंमेंसे एक, जो भारतकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओंसे सहानुभूति रखते थे। वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका समर्थक था और १८८८ ई०में इलाहाबादमें सम्पन्न उसके चौथे अधिवेशनका सभापतित्व उसीने किया था।

यूसुफ आदिल खाँ (शाह)—बीजापुर (दे०)के आदिलशाही वंशका प्रवर्तक। वह तुर्कीके सुल्तान मुराद द्वितीयका पुत्र माना जाता है। उसे सुरक्षाकी दृष्टिसे गुप्त रूपसे फारस लाया गया, और वहाँ दासके रूपमें बहमनी सुल्तान मुहम्मद शाह तृतीय (दे०) के मंत्री मुहम्मद गवाँ (दे०) के हाथ बेच दिया गया। यूसुफ अपनी योग्यताके आधारपर अपना मार्ग प्रशस्त करके, उच्च पदपर पहुँच गया और बहमनी सुल्तानके द्वारा बीजापुरका हाकिम बना दिया गया, जहाँ वह १४८९–९० ई०में स्वतन्त्र शासक बन बैठा और मृत्युपर्यन्त वहाँका शासन किया। उसकी मृत्यु १५१० ई०में हुई। उससे बीजापुरके आदिलशाही वंशकी नींव पड़ी, जिसने १६८६ ई०तक शासन किया, अन्तिम सुल्तान सिकन्दरको सम्राट् औरंगजेबने परास्त करके बंदी बनाया और अपदस्थ कर दिया। यूसुफ आदिलशाह वीर एवं सहिष्णु शासक था। उसने हिन्दुओंको ऊँचे पदोंपर नियुक्त किया। वह शिया मतका था। उसने एक मराठा स्त्रीसे विवाह किया, जिसका नाम बूबूजी खानम रखा गया। वह उसके पुत्र और उत्तराधिकारी इस्माइल शाहकी माता बनी। वह गोवा बन्दरगाहके महत्त्वको भली प्रकार समझता था और वहाँ अक्सर निवास करता था। १५१० ई०में पुर्तगाली एडमिरल एल्बुकर्कने सुल्तानके स्थानीय अधिकारियोंकी लापरवाहीसे लाभ उठाकर बन्दरगाहपर कब्जा कर लिया, परन्तु यूसुफ आदिलशाहने छः मास बाद उसे पुनः हस्तगत कर लिया। वह विद्वानों और गुणीजनोंका संरक्षक था। ७४ वर्ष की अवस्थामें उसका देहावसान हुआ।

युसुफजई कबीला—एक लड़ाकू प्रकृतिका पठान कबीला। इस कबीलेके लोगोंने अकबरके विरुद्ध विद्रोह कर दिया जो दबा दिया गया। १६६७ ई०में वे फिर मुगल बादशाह औरंगजेबके विरुद्ध उठ खड़े हुए और मुगल सूबेदार अमीर खाँको १६७२ ई० में अली मस्जिद नामक स्थानपर मार डाला। बादशाहने स्वयं पेशावरमें उपस्थित होकर विद्रोहको कुचला, फिर भी वे क्षुब्ध बने रहे। ब्रिटिश शासनकालमें भी वे जब-तब विद्रोह कर बैठते थे।

यूसुफ शाह—कश्मीरका मुसलमान शासक। अकबरने १५८६ ई०में उसके राज्यपर आक्रमण करके उसे परास्त कर दिया, कश्मीरको मुगल साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया।

यूसुफ शाह–१४७४ से १४८१ ई०तक बंगालका शासक। उसने शम्सुद्दीन अबुल मुजफ्फर यूसुफ शाहकी उपाधि धारण की थी। वह अपने पिता बर्बक शाहका उत्तराधिकारी बना। वह सद्गुणी, धर्मपरायण, योग्य और विद्वान व्यक्ति था। उसने सिलहटको विजित कर अपने राज्यमें मिला लिया।

येन-काओ-चिग अथवा येन–युइशि राजा कथफिश द्वितीय (दे०) का मूल नाम।

योगदर्शन–भारतीय षड्दर्शनोंमेंसे एक, जिसके प्रचारक पतंजलि माने जाते हैं। योगदर्शन व्यावहारिक आचरणका दर्शन है। यह चित्तवृत्तियोंके निरोधका उपाय बतलाता है, जिससे मोक्षकी प्राप्ति होती है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये योगके आठ अंग हैं। योगदर्शन ईश्वरमें विश्वास करता है जो सर्वापेक्षया उत्तम अर्थात् निरतिशय परमगुरु, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता है। योगी अभ्यासके द्वारा समाधिस्थ होनेपर अनुभव करता है कि इस दृश्यमान जगत्से परे भी अनेक ब्रह्मांड हैं जो स्थूल इन्द्रियोंसे ग्राह्य नहीं हैं। इस प्रकार हम जिसे अलौकिक समझते हैं, वह योगीको सर्वथा स्वाभाविक अनुभूत होता है। योगी समाधिस्थ होकर परम सुख (ब्रह्मानन्द) में लीन हो जाता है। यही कारण है कि अति प्राचीन कालसे आजतक योगमार्ग मुमुक्षुओंको आकर्षित करता रहा है।

योगवासिष्ठ रामायण–संस्कृतका प्रसिद्ध अध्यात्म-ग्रंथ। शाहजादा दाराशिकोह (दे०) ने इसका फारसी भाषामें अनुवाद किया था।

योन–अशोकके अभिलेखोंमें उल्लिखित एक सीमावर्ती जनपद। इस जनपदके बहुतसे लोगोंको अशोकने बौद्ध धर्मानुयायी बनाया था। लोग मूलतः यूनानियोंके वंशज थे और अशोकके साम्राज्यांतर्गत होनेके कारण उसकी प्रजा बन गये थे। हालमें कंदहारमें अशोकका एक शिलालेख मिला है जो दो लिपियोंमें है। इससे भी इस बातकी पुष्टि होती है कि उसके साम्राज्यांतर्गत यवन (योन) लोग भी बसते थे।

यौधेय–गणके लोग, सम्भवतः क्षत्रिय थे। इनका उल्लेख समुद्रगुप्त (दे०) के प्रयाग स्तम्भलेखमें मालव, मद्रक आदि गणराज्योंके साथ हुआ है, जिन्हें समुद्रगुप्तने करदान तथा आज्ञापालनके लिए बाध्य किया था। पहले ये लोग सम्भवतः सतलज की घाटीमें रहते थे परन्तु बादमें शूरसेन क्षेत्रतक फैल गये। (बी० सी० ला––सम एन्शियेण्ट मिड-इण्डियन क्षत्रिय ट्राइब्स)।

यौवनश्री–पाल राजा विग्रहपाल तृतीय (दे०) की एक रानी। यह चेदि देशके राजवंशकी राजकुमारी थी।

र

रंग प्रथम–विजयनगर (दे०) के चतुर्थ आरविदु वंशके शासक तिरुमलका पुत्र और उत्तराधिकारी। तिरुमल रामराजका भ्राता था, जो १५६५ ई०के तालीकोट (दे०)के युद्धमें मारा गया। इस युद्धके परिणामस्वरूप विजयनगर राज्यकी सीमाएँ अत्यधिक संकुचित हो गयीं और इसी बचे-खुचे भागपर रंग प्रथमने प्रायः १५७३ ई० से १५८५ ई० तक राज्य किया।

रंग द्वितीय–विजयनगर (दे०)के चतुर्थ राजवंशका अन्तिम शासक। उसने १६४२ से १६४६ ई० तक शासन किया, पर उन दिनों विजयनगरके शासकोंकी स्थिति सामंतोंके समान हो गयी थी। यद्यपि उसके १६८४ ई० तकके अभिलेख प्राप्त हैं तथापि इनसे उसके शासनकालकी राजनीतिक घटनाओंकी कोई जानकारी नहीं मिलती।

रघुजी भोंसला–नागपुरके भोंसला शासकोंमें प्रथम। जन्म एक मराठा ब्राह्मण परिवारमें। वैवाहिक सम्बन्धसे वह राजा-शाहूका सम्बन्धी भी था। वह पेशवा बाजीराव प्रथम (दे०) के प्रतिद्वन्द्वी दलका नेता था। पेशवाने उसे बरार प्रान्तमें मराठा शक्ति संघटित करनेका पूर्ण अधिकार दे रखा था।

रघुजी महान् योद्धा और बाजीराव प्रथम द्वारा संगठित मराठा संघका महत्त्वपूर्ण सदस्य था। उसने भारतके पूर्वीय क्षेत्रवर्ती उड़ीसा और बंगाल तकके भू-भागोंको अपने आक्रमणोंसे आतंकित कर दिया और बंगालके नवाब अलीवर्दी खाँ (दे०)से उड़ीसापर मराठोंका अधिकार संधि द्वारा मनवा लिया। उसके वंशजोंने नागपुरको राजधानी बनाकर बरार प्रान्तपर १८५३ ई० तक राज्य किया और उसी वर्ष लार्ड डलहौजी (दे०) ने पुत्रहीन रघुजी तृतीयकी मृत्युके उपरान्त बरारको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया।

रघुजी द्वितीय-रघुजी भोंसला (प्रथम)का पौत्र, जिसने १७८८ ई०से १८१६ ई०तक राज्य किया। वह द्वितीय मराठा-युद्ध (दे०)में भी सम्मिलित था, किन्तु असई (अगस्त १८०३) और आर गाँव (नवम्बर १८०३)के युद्धोंमें पराजित होनेके कारण दिसम्बर १८०३ ई०में उसे

अंग्रेजोंसे अलग संधि करनी पड़ी, जो देवगाँवकी संधिके नामसे विख्यात है। संधिकी शर्तोंके अनुसार उसे भारतके पूर्वी समुद्रतटके कटक और बालासोर जिले तथा मध्य भारतमें वारधा नदीके पश्चिमका अपने राज्यका समस्त भू-भाग अंग्रेजोंको दे देना पड़ा। यद्यपि उन्होंने अंग्रेजोंके साथ विधिवत् सहायक संधि नहीं की, तथापि अपने तथा निजाम और पेशवाके बीच होनेवाले विवादोंमें अंग्रेजोंकी मध्यस्थता स्वीकार कर ली। साथ ही अंग्रेजोंकी पूर्व अनुमतिके बिना किसी यूरोपीयको अपने यहाँ नौकर न रखने और नागपुरमें अंग्रेज रेजीडेण्ट रखनेकी शर्तोंको भी स्वीकार कर लिया। आगे चलकर पेंढारियोंने उसके राज्यमें काफी लूटमार की और तबाही फैलायी। १८१६ ई०में तृतीय मराठा-युद्ध (दे०) प्रारंभ होनेके पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात् उसका अयोग्य पुत्र परसोजी भोंसला (दे०) नागपुरका शासक बना।

रघुजी भोंसला, तृतीय (१८१८–५३)–एक दुर्बल शासक, जिसे अंग्रेजोंने नागपुरके सिंहासनपर अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिए आसीन किया। उसकी कमजोरीका लाभ उठाकर अंग्रेजोंने, भोंसला राज्यके नर्मदा नदीके उत्तर-स्थित समस्त भू-भागपर अपना अधिकार कर लिया। १८५३ ई०में उसकी निस्संतान मृत्यु हुई और गोद प्रथाके अन्तकी नीतिके अनुसार लार्ड डलहौजीने उसके शेष राज्यको भी ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया।

रघुनन्दन (स्मार्त भट्टाचार्य)–प्रख्यात धर्मशास्त्रकार। जन्म सोलहवीं शताब्दीमें बंगालके नवद्वीप (नदिया) नामक स्थानपर। वे चैतन्यदेव (दे०) के समकालीन थे। पिताका नाम हरिहर भट्टाचार्य था। उन्होंने नव्य स्मृति और 'अष्टाविंशति तत्त्व' नामक प्रसिद्ध ग्रंथोंकी रचना की, जिनका बंगालके हिन्दुओंके सामाजिक तथा धार्मिक जीवनपर गंभीर प्रभाव पड़ा। अपने स्मृति-सम्बन्धी प्रगाढ ज्ञानके कारण वे स्मार्त भट्टाचार्यके नामसे भी विख्यात हैं।

रघुनाथराव (उपनाम राघोबा)–द्वितीय पेशवा बाजीराव प्रथम (दे०)का द्वितीय पुत्र, जो कुशल सेना-नायक था। अपने बड़े भाई बालाजी बाजीराव (दे०)के पेशवा कालमें उसने होलकरके सहयोगसे उत्तरी भारतमें बृहत् सैनिक अभियान चलाया। १७५८ ई०में उसने अहमदशाह अब्दाली (दे०)के पुत्र तैमूरशाह (दे०)को पराजित कर सरहिन्दपर अधिकार कर लिया तथा पंजाबपर अधिकार करके मराठों (हिन्दुओं)की सत्ता अटक तक संस्थापित कर दी, किन्तु राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टियोंसे उक्त उपलब्धियाँ लाभकर सिद्ध न हुईं। तैमूरशाहको पंजाबसे खदेड़नेके कारण उसके पिता अहमदशाह अब्दालीने १७५९ ई० में भारतपर आक्रमण करके पंजाबमें मराठा शक्तिका उन्मूलन कर दिया। उपरांत १७६१ ई० में पानीपतके तृतीय युद्ध (दे०) में मराठोंको गहरी पराजय दी। इस युद्धमें भीषण नरसंहार हुआ, पर रघुनाथ राव किसी प्रकार बच निकला।

रघुनाथ राव अत्यधिक महत्त्वाकांक्षी था। बड़े भाई बालाजी बाजीरावकी मृत्युके उपरान्त उसके पुत्र (और अपने भतीजे) माधव राव (दे०) के पेशवा बननेपर वह क्षुब्ध हो गया, किन्तु नवयुवक पेशवा (माधवराव) योग्य एवं चतुर निकला। उसने रघुनाथ रावकी समस्त चालोंको विफल कर दिया। किन्तु १७७२ ई०में माधवरावकी सहसा मृत्यु हो जानेके उपरान्त जब उसका छोटा भाई नारायण राव (दे०)-पेशवा हुआ तो रघुनाथ राव अपनी महत्त्वकांक्षाको अंकुशमें न रख सका। उसने १७७३ ई०में षड्यंत्र करके नवयुवक पेशवाको अपनी आँखोंके सामने ही मरवा डाला। मृत्युके समय नारायण रावका कोई पुत्र न था। अतएव रघुनाथ राव पेशवा पदका अकेला दावेदार रह गया और १७७३ ई०में उसे पेशवा घोषित भी कर दिया गया।

किन्तु नाना फडनवीसके नेतृत्वमें मराठोंके एक शक्तिशाली दलने पूनामें उसके पदासीन होनेका सबल विरोध किया। इस दलको नारायण रावके मरणोपरान्त १७७४ ई०में एक पुत्र उत्पन्न होनेसे और भी अधिक सहारा मिला। रघुनाथ रावके विरोधियोंने अविलम्ब नवजात शिशु माधवराव नारायणको पेशवा घोषित कर दिया। उन्होंने एक संरक्षक समिति बना ली तथा बालक पेशवाके नामपर समस्त मराठा राज्यका शासन सँभाल लिया। इस प्रकार रघुनाथ राव अब अकेला पड़ गया और उसे महाराष्ट्रसे निकाल दिया गया। अपनी महत्त्वाकांक्षाओंपर पानी फिर जानेसे रघुनाथ रावकी समस्त देशभक्ति कुण्ठित हो गयी और उसने बम्बई जाकर अंग्रेजोंसे सहायताकी याचना की तथा १७७५ ई०में उनसे संधि भी कर ली, जो सूरतकी संधिके नामसे विख्यात है। संधिके अन्तर्गत अंग्रेजोंने रघुनाथ रावकी सहायताके लिए २५०० सैनिक देनेका वचन दिया, परन्तु इनका समस्त व्यय-भार रघुनाथ रावको ही वहन करना था। इसके बदलेमें रघुनाथ रावने साष्टी और बसई तथा भड़ौच और सूरत जिलोंकी आयका कुछ भाग

अंग्रेजोंको देना स्वीकार किया। साथ ही उसने ईस्ट इंडिया कम्पनीके शत्रुओंसे किसी प्रकारकी संधि न करने तथा पूना सरकारसे संधि या समझौता करते समय अंग्रेजोंको भी भागी बनानेका वचन दिया।

सन्धिके फलस्वरूप बम्बईके अंग्रेजोंने रघुनाथ रावका पक्ष लिया और प्रथम मराठा-युद्ध प्रारंभ हो गया। यह युद्ध १७७५ ई०से १७८३ ई० तक चलता रहा और इसकी समाप्ति साल्बाईकी संधिसे हुई। अपनी देशद्रोहिता एवं घृणित स्वार्थपरताके परिणामस्वरूप रघुनाथ रावको केवल पेंशन ही प्राप्त हुई, जिसका उपभोग वह अपने एकांकी जीवनमें मृत्युपर्यन्त करता रहा।

रजिया, सुल्ताना—भारतीय इतिहासमें एकमात्र महिला है, जिसे दिल्लीके सिंहासनपर बैठनेका अवसर मिला। वह दिल्लीके सुल्तान इल्तुतमिशकी पुत्री थी। अपनी मृत्युके पूर्व ही इल्तुतमिशने रजियाको उत्तराधिकारी चुना था। किन्तु दिल्ली दरबारके सरदार और उमरा अपने ऊपर किसी स्त्रीका शासन करना उचित नहीं समझते थे, अतएव उन्होंने मई १२३६ ई०में सुल्तान की मृत्यु होते ही रजियाके बड़े भाई रुकनुद्दीनको शासक नियुक्त किया। किन्तु रुकनुद्दीन अयोग्य सिद्ध हुआ। फलत: सिंहासनासीन होनेके कुछ ही महीने उपरान्त उसे गद्दीसे उतार कर मार डाला गया और रजिया को सिंहासनासीन किया गया। उसने चार वर्षों तक (१२३६-४० ई०) राज्य किया। रजिया राज्यके कार्यों और युद्धोंमें सक्रिय भाग लेती थी। वह जनताके सम्मुख हाथीपर सवार होकर निकलती थी। उसने हिन्दू और मुसलमान विद्रोहियोंके विरुद्ध स्वयं सैन्य-संचालन किया और अपनी योग्यता एवं चतुरतासे सिन्धसे बंगाल तक विस्तृत दिल्ली सल्तनतको अक्षुण्ण रखा।

किन्तु उसके सरदारोंको स्त्रीके शासनमें रहना रुचिकर न लगा। उधर रजियाने याकूत नामक एक हब्शी गुलामको अपना अत्यधिक विश्वासपात्र बना लिया था। इसी बहाने सरदारोंने सिंधके सूबेदार अल्तूनियाके नेतृत्वमें रजियाके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। विद्रोहियोंने उसे गद्दीसे उतार दिया, किन्तु रजियाने चतुराईकी चाल चलकर अल्तूनियासे विवाह करके अपनी स्थिति सुधारने का प्रयास किया। विद्रोही सरदार इससे भी संतुष्ट न हुए। उन्होंने १२४० ई०में रजिया और उसके पति अल्तूनियाको युद्धमें परास्त कर मार डाला।

रणजीत सिंह, महाराज (१७८०–१८३९)—पंजाबके सिख राज्यका संस्थापक। उसका पिता महासिंह सुकर चकिया मिसलका मुखिया था। रणजीतसिंहकी केवल १२ वर्षकी उम्रमें ही उसके पिताका देहान्त हो गया और बाल्यावस्थामें ही वह सिख मिसलोंके एक छोटेसे समूहका सरदार बनाया गया। आरम्भमें उसका शासन केवल एक छोटेसे भू-खंडपर था और सैन्यबल भी सीमित था। १७९३ ई०से १७९८ ई०के बीच अफगान शासक जमानशाहके निरंतर आक्रमणोंके फलस्वरूप पंजाबमें इतनी अराजकता फैल गयी कि उन्नीस वर्षीय रणजीत सिंहने १७९९ ई०के जुलाई मासमें लाहौरपर अधिकार कर लिया और जमान शाहने परिस्थितिवश उसको वहाँका उपशासक स्वीकार करते हुए राजाकी उपाधि प्रदान की। इसके उपरांत रणजीत सिंहको बराबर सैनिक एवं सामरिक सफलताएँ मिलती गयीं और उसने अफगानोंकी नाममात्रकी अधीनता भी अस्वीकार कर दी तथा सतलज पारकी सभी सिख मिसलोंको अपने अधीन कर लिया। उसने अमृतसरपर अधिकार करके वहाँकी जमजमाँ नामक प्रसिद्ध तोपपर भी अधिकार कर लिया और जम्मूके शासकको अपनी अधीनता स्वीकार करनेको विवश किया।

१८०५ ई०में जब लार्ड लेक यशवन्तराव होल्करका पीछा कर रहे थे, होल्कर भागकर पंजाबमें घुस आया। किन्तु रणजीत सिंहने इस खतरेका निवारण बड़ी दूरदर्शिता और राजनीतिज्ञतासे किया। उसने अँग्रेजोंके साथ सन्धि कर ली, जिसके अनुसार पंजाब होल्करके प्रभाव-क्षेत्रसे मुक्त माना गया और अंग्रेजोंने सतलज नदीके उत्तर पंजाबके समस्त भू-भागपर रणजीत सिंहकी प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली। उन दिनों सतलजके इस पारकी छोटी-छोटी सिख रियासतोंमें परस्पर झगड़े होते रहते थे और उनमेंसे कुछने रणजीत सिंहसे सहायताकी याचना भी की। रणजीत सिंह भी इन समस्त सिख रियासतोंको अपने नेतृत्वमें संघबद्ध करना चाहता था। इस कारण उसने इन क्षेत्रोंमें कई सैनिक अभियान किये और १८०७ ई०में लुधियानापर अधिकार कर लिया। उसका इस रीतिसे सतलजके इस पारकी कुछ छोटी-छोटी सिख रियासतों पर सत्ताविस्तार अंग्रेजोंको रुचिकर न हुआ। उस समय तक अंग्रेजोंका राज्य-विस्तार दिल्ली तक हो चुका था। उन्होंने सर चार्ल्स मेटकाफके नेतृत्वमें एक दूत-मंडल और उसके पीछे-पीछे डेविड आक्टरलोनीके नेतृत्वमें अंग्रेजी सेना रणजीत सिंहके राज्यमें भेजी। इस बार भी रणजीत सिंहने राजनीतिक

सूझ-बूझका परिचय दिया और अंग्रेजों से १८०६ ई० में चिरस्थायी मैत्री संधि कर ली, जो अमृतसरकी संधिके नामसे विख्यात है। इसके अनुसार उसने लुधियानापर-से अधिकार हटा लिया और अपने राज्यक्षेत्रको सतलज नदीके उत्तर और पश्चिम तक ही सीमित रखना स्वीकार किया। साथ ही उसने सतलज की दक्षिणवर्ती रियासतोंके झगड़ोंमें हस्तक्षेप न करनेका वचन दिया। परिणामस्वरूप ये सभी रियासतें अंग्रेजोंके संरक्षणमें आ गयीं।

रणजीत सिंहने अब दूसरी दिशामें विजय यात्राएँ आरम्भ करते हुए १८११ ई० में काँगड़ा तथा १८१३ ई०-में अटकपर अधिकार कर लिया और अफगानिस्तानके भगोड़े शासक शाहशुजाको शरण दी। शाहशुजासे ही १८१४ ई० में उसने प्रसिद्ध कोहेनूर हीरा प्राप्त किया था। उपरान्त १८१८ ई० में उसने मुल्तान और १८१९ ई०में काश्मीरको जीतकर १८२३ ई०में पेशावरको अपनी अधीनता स्वीकार करनेपर बाध्य किया और १८३४ ई० में पेशावरके किलेपर भी अधिकार कर लिया। उसकी दृष्टि सिन्धपर भी लगी थी परन्तु इस दिशामें अंग्रेज पहलेसे घात लगाये हुए थे, क्योंकि वे रणजीत सिंह की विस्तारवादी नीतिसे सशंकित थे।

रणजीत सिंह यथार्थवादी राजनीतिज्ञ था, जिसे संभव और असंभव की भली परख थी। इसी कारण उसने १८३१ ई० में अंग्रेजोंसे पुनः संधि की, जिसमें चिरस्थायी मैत्रीसंधिकी शर्तोंको दुहराया गया। इस प्रकार रणजीत सिंहने न तो अंग्रेजोंसे कभी कोई युद्ध किया और न उनकी सेनाओंको किसी भी बहानेसे अपने राज्यके अन्दर घुसने दिया। ५९ वर्षकी उम्रमें १८३९ ई० में अपनी मृत्युके समय तक उसने एक ऐसे सुगठित सिख राज्यका निर्माण कर दिया था, जो पेशावरसे सतलज तक और कश्मीरसे सिन्ध तक विस्तृत था। किन्तु इस विस्तृत साम्राज्यमें वह कोई मजबूत शासन-व्यवस्था प्रचलित न कर सका और न सिखोंमें वैसी राष्ट्रीय भावनाका संचार कर सका, जैसी शिवाजीने महाराष्ट्रमें उत्पन्न कर दी थी। फलतः उसकी मृत्युके केवल १० वर्ष उपरान्त ही यह साम्राज्य नष्ट हो गया। फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि अफगानों, अंग्रेजों तथा अपने कुछ सहधर्मी सिख सरदारोंके विरोधके बावजूद रणजीत सिंहने जो महान सफलताएँ प्राप्त कीं, उनके आधारपर उसकी गणना उन्नीसवीं शताब्दीके भारतीय इतिहासकी महान विभूतियोंमें की जानी चाहिए।

रफ़ी उद्दाराजात–सातवें मुगल सम्राट् बहादुरशाह (दे०) (शाह आलम प्रथम) का पौत्र तथा शाहजादा रफीउश्शान का पुत्र, जो मुगल वंशका दसवाँ बादशाह था। १७१९ ई० में सैयद बन्धुओंने (दे०) ने फर्रुखशियर (दे०) की हत्या करके रफी उद्दाराजातको बादशाह बनाया किन्तु कुछ ही महीनोंके उपरान्त सैयद बन्धुओंने उसे भी गद्दीसे उतार कर उसकी हत्या कर दी।

रफ़ीउद्दौला–सैयद बन्धुओंने इसके छोटे भाई रफी उद्दाराजातके उपरान्त १७१९ ई०में इसे दिल्लीके सिंहासनपर आसीन किया। यह ग्यारहवाँ मुगल बादशाह था। अपने भाईकी भाँति यह भी सैयद बंधुओंके हाथोंकी कठपुतली था और सिंहासनासीन होनेके थोड़े ही दिनोंके उपरान्त उन्होंने इसे गद्दीसे उतार दिया।

रमण, सर चन्द्रशेखर व्यंकट–अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त वैज्ञानिक। इनकी गणना भौतिकी शास्त्रके मूर्धन्य विद्वानों-में की जाती है। आधुनिक युगमें डॉ० रमणने समस्त विश्वमें भारतीय विद्वानों तथा अन्वेषकोंकी प्रतिष्ठामें वृद्धि की है। १८८८ ई०में दक्षिण भारतमें जन्म लेकर उन्होंने १९०७ ई०से १९१७ ई० तक भारतीय वित्त विभागमें कार्य किया। उनकी प्रतिभा छिपी न रह सकी। सर आशुतोष मुखर्जी महोदयका ध्यान इनकी ओर गया और वे इन्हें १९१७ ई०में विद्याके क्षेत्रमें खींच लाये। मुखर्जी महोदयने उनको कलकत्ता विश्व-विद्यालयके भौतिकी विभागमें 'पालित प्राध्यापक'के पद-पर प्रतिष्ठित किया और वहीं कार्य करते हुए १९२८ ई०में उन्होंने प्रकाश-किरणोंकी सूक्ष्म रचनाके सम्बन्धमें महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक अनुसंधान किया, जिसे उन्हींके नाम पर 'रमन्स इम्पेक्ट' की संज्ञा दी गयी।

१९३० ई०में उन्हें रायल एशियाटिक सोसाइटीका सदस्य मनोनीत होनेका गौरव प्राप्त हुआ और उसी वर्ष उन्हें भौतिकीमें नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ। वर्षों तक वे कलकत्ता स्थित वैज्ञानिक प्रगति संस्थानके अध्यक्ष रहे और कलकत्ता विश्वविद्यालयसे अवकाश ग्रहण कर लेनेके उपरान्त बंगलोरमें स्थित 'विज्ञान संस्थान' (इंस्टीट्यूट आफ साइंस)के निदेशक रहे।

बंगलोरमें ही उन्होंने रमण अनुसंधान केन्द्र स्थापित किया। यूरोप और अमेरिकाके कई विश्वविद्यालयोंमें विशिष्ट रूपमें आमंत्रित व्याख्यानदाता भी होते रहे। १९३० ई०में रायल सोसाइटीने उन्हें 'मेटेन्काइ पदक' प्रदान किया और १९४१ ई०में अमेरिकाके फ्रैंकलिन इन्स्टीट्यूट द्वारा 'फ्रैंकलिन पदक' प्रदान किया

गया। १९५८ ई०में उन्हें सोवियत रूस द्वारा 'लेनिन पुरस्कार' प्राप्त हुआ। अंग्रेजोंके शासन-कालमें जब भारतीयोंको अनुसंधानके क्षेत्रमें पर्याप्त साधन उपलब्ध न थे, श्रीरमणने अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियोंसे देशका गौरव बढ़ाया और सिद्ध किया कि भारतीय भी विश्वके वैज्ञानिक क्षेत्रमें अपना महत्त्वपूर्ण योग दे सकते हैं।

रमेशचन्द्र दत्त—जन्म १८४८ ई०, कलकत्ता, रामबागानके दत्त परिवारमें। इन्होंने इंडियन सिविल सर्विसके भारतीयकरणका एवं समाज-सुधार तथा राष्ट्रवादके विकासमें महत्त्वपूर्ण योगदान किया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा बिहारीलाल गुप्तके साथ लंदन में उन्होंने भारतीय सिविल सर्विसकी परीक्षा १८६९ ई० में पास की। इसके दो वर्ष पश्चात् वे सिविल सर्विसमें आये। भारतीय होनेके नाते उन्हें बहुत दिन तक तरक्की नहीं दी गयी। अन्तमें १८९४ ई० में उन्हें उड़ीसाके एक डिवीजनका कमिश्नर नियुक्त किया गया। तीन वर्ष पश्चात अवकाश ग्रहण कर वे गायकवाड़ बड़ोदाके दीवान नियुक्त हो गये। उन्होंने रियासतके प्रशासनको उदार बनाने तथा उसके आधुनिकीकरणके लिए अनेक महत्त्वपूर्ण कदम उठाये। उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलनमें भी भाग लिया और लखनऊमें १८९९ ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी अध्यक्षता की।

वे उच्च कोटिके विद्वान् और लेखक थे। उन्होंने 'प्राचीन भारतीय सभ्यता' नामक पुस्तक अंग्रेजीमें लिखी जो अपने ढंगकी पहली रचना थी। इन्होंने 'ब्रिटिश भारतका आर्थिक इतिहास'' (१७५७–१९०० ई०) दो खण्डोंमें लिखा, जिसमें बताया गया है कि अंग्रेजोंने १५० वर्षोंमें भारतका किस प्रकार शोषण किया। इन्होंने रामायण और महाभारतका भी अनुवाद अंग्रेजीमें किया, ऋग्वेदका अनुवाद बंगला भाषामें किया। इसके अलावा देशमें राष्ट्रवादी भावनाका प्रसार करनेके लिए बंगला भाषामें अनेक उपन्यास लिखे, जिनमें 'जीवन प्रभात' 'राजपूत जीवन संध्या', 'वंग विजेता', माधवी कंकण' और 'संसार' प्रमुख है। ((ए० दत्त कृत लाइफ आफ रमेशचन्द्र दत्त)।

रहमतअली चौधरी—एक सुशिक्षित भारतीय मुसलमान, जिसने सर्वप्रथम १९३३ ई०में कैम्ब्रिजमें 'पाकिस्तान' शब्दकी रचना की। पाकिस्तानका विचार कवि इकबालकी उस विचारधाराका परिवर्द्धित रूप था, जिसमें उन्होंने मुसलिम-बहुल प्रान्तोंके एक संघकी कल्पना की थी। इन प्रान्तोंमें उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश, बलूचिस्तान, सिन्ध, पंजाब और कश्मीर आते थे। आगे चलकर मुहम्मद अली जिन्नाने इसी विचारधाराको अपनाया और १९४७ ई०में पाकिस्तानके स्वप्नको चरितार्थ कर दिया।

राक्षस—विशाखदत्तके 'मुद्राराक्षस' (दे०) नामक संस्कृत नाटकके अनुसार नन्दवंशके अन्तिम शासकका मंत्री और जातिका ब्राह्मण। नन्दोंका नाश करके चन्द्रगुप्त मौर्य (दे०) ने मौर्य वंशकी नींव डाली और नाटकके अनुसार चन्द्रगुप्त के सहायक चाणक्य (कौटिल्य) ने राक्षसको उसका मंत्री बननेपर विवश किया।

राक्षस—इस जातिका उल्लेख संस्कृत साहित्यमें अनेकशः आया है। रामायणके अनुसार वे लंकाके निवासी थे और रावण (दे०) उनका राजा था। उनकी सभ्यता विशेष विकसित थी, जैसा कि रामायणमें उनकी राजधानी लंकाके वर्णनसे स्पष्ट है।

राघोबा—देखिये, 'रघुनाथ राव'।

राजगोपालाचारी, चक्रवर्ती—इस ख्यातिलब्ध भारतीय राजनीतिज्ञका जन्म दक्षिण भारतमें १८७९ ई०में हुआ। १९०० ई०में इन्होंने वकालत प्रारम्भ की परन्तु शीघ्र ही छोड़ दी। महात्मा गांधीके सम्पर्कमें आकर राजगोपालाचारी उनके अनुयायी बन गये और उपरान्त उनकी पुत्रीका विवाह महात्मा गांधीके पुत्र देवदाससे होनेके कारण दोनों परिवारोंमें वैवाहिक सम्बन्ध भी हो गया। वे असहयोग आन्दोलनमें भाग लेकर कई बार जेल-यात्री हुए तथा १९२१–२२ ई०में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके महामंत्री और कार्यकारिणी समितिके सदस्य बने। उन्होंने सुभाषचन्द्र बोसके लगातार दूसरी बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष चुने जानेका विरोध किया। १९३७ ई०से १९३९ ई० और पुनः १९५२ ई० से १९५४ ई०तक वे मद्रास प्रान्तके मुख्य मंत्री रहे। अंग्रेजोंसे देशकी स्वतन्त्रता प्राप्तिके लिए उन्होंने पाकिस्तानके निर्माणका समर्थन किया।

१९४६–४७ ई०की अन्तरिम सरकारमें वे केन्द्रीय मंत्री और १९४७–४८ ई०में पश्चिम बंगालके प्रथम भारतीय राज्यपाल हुए। १९४८ से १९५० ई०तक भारतवर्षके प्रथम भारतीय गवर्नर-जनरल होनेका श्रेय भी उन्हें प्राप्त हुआ। भारतीय गणतंत्रके नये संविधानके लागू होनेपर १९५०–५१ ई०में वे गृहमंत्री भी रहे। उपरांत वे नेहरू मंत्रिमंडलके सदस्य नहीं रहे तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेससे भी दूर होते गये। १९५९ ई० में स्वतंत्र पार्टीकी स्थापनामें उनका प्रमुख हाथ रहा। राजगोपालाचारी केवल चतुर राजनीतिज्ञ और कुशल

वक्ता ही नहीं, अपितु अच्छे लेखक भी थे। १९७२ ई० में उनकी मृत्यु हो गयी।

राजगृह—बिहारमें पटना जिलेके अन्तर्गत आधुनिक राजगीर नामक छोटेसे नगरका प्राचीन नाम। इसका निर्माण राजा बिम्बिसार (ई०पू० छठीं शताब्दी) (दे०) तथा उसके पुत्र अजातशत्रु (दे०) ने कराया था। बुद्धके महानिर्वाणके कुछ ही महीनों उपरान्त यहींपर प्रथम बौद्ध संगीति (दे०) हुई थी। आजकल यह स्थान गरम-जलके स्रोतोंके कारण अधिक प्रसिद्ध है। इस नगरके समीप ही पौराणिक शासक जरासन्धकी राजधानीके ध्वंसावशेष उपलब्ध हुए हैं।

राजतरंगिणी—इस सुप्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथकी रचना कश्मीरके विख्यात विद्वान् कल्हण (दे०) ने की, जो बारहवीं शताब्दीमें हुआ था। इस ग्रंथमें अति प्राचीनकालसे चले आ रहे कश्मीरके राजाओंका पद्यबद्ध इतिहास है। यद्यपि राजतरंगिणीमें वर्णित इतिहास भागमें परम्परागत जनश्रुतियों तथा अलौकिक घटनाओंका बाहुल्य है, पर जैसे-जैसे कल्हण अपने युगके निकट आते गये, वैसे ही वैसे उनका वर्णन विश्वसनीय होता गया है। बारहवीं शताब्दीकी स्थानीय घटनाओंके वर्णनकी ऐतिहासिक यथार्थता तो अब सभी विद्वानोंको मान्य है। समस्त संस्कृत साहित्यमें राजतरंगिणी सदृश ऐतिहासिक दृष्टिसे रचा गया अन्य ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

राजन्य—प्राचीन कालमें इस शब्दका प्रयोग क्षत्रियों और राजपुत्रोंके लिए होता था। सम्राट् अशोकके अभिलेखोंमें भी राजन्य शब्दका प्रयोग हुआ है।

राजपूत—सातवीं शताब्दीमें सम्राट् हर्षवर्धनकी मृत्युसे लेकर १२वीं शताब्दीके अन्तमें मुसलमानोंकी भारत-विजयतकके लगभग ५०० वर्षोंके कालमें भारतवर्षके इतिहासमें राजपूतोंने सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। यह शब्द राजपुत्रका अपभ्रंश है। पश्चात्कालीन ग्रंथोंमें राजपूतोंकी ३६ शाखाओंका उल्लेख मिलता है, जिनमेंसे गुर्जर-प्रतीहार (परिहार), चौहान (चाहमान), सोलंकी (चालुक्य), परमार, चन्देल, तोमर, कलचुरि, गहड़वाल (गाहडवाल, गहरवार या राठौर), राष्ट्रकूट और गुहिलोल (सिसोदिया) सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं। वीरता, उदारता, स्वातंत्र्य-प्रेम, देशभक्ति जैसे सद्गुणोंके साथ उनमें मिथ्या कुलाभिमान तथा एकताबद्ध होकर कार्य करनेकी क्षमताके अभावके दुर्गुण भी थे। मुसलमानोंके आक्रमणके समय राजपूत हिन्दू धर्म, संस्कृति और परम्पराओंके रक्षक बनकर सामने आते रहे।

राजपूतोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें किंचित् विवाद है और यह इस कारण और भी जटिल हो गया है कि प्रारम्भमें राजन्य वर्ग और युद्धोपजीवी लोगोंको क्षत्रिय कहा जाता था और राजपूत (राजपुत्र) शब्दका प्रयोग सातवीं शताब्दीके उपरान्त ही प्रचलित हुआ। जन-श्रुतियोंके अनुसार राजपूत उन सूर्यवंशी एवं चन्द्रवंशी (सोमवंशी) क्षत्रियोंके वंशज हैं, जिनकी यशोगाथा रामायण और महाभारतमें वर्णित हैं किन्तु अभिलेखोंसे ज्ञात होता है कि गुहिलोत या सिसोदिया शाखा, जिसमें मेवाड़के स्वनामधन्य राणा हुए और जो अपनेको राम-चन्द्रजीका वंशज मानती हैं, वस्तुतः एक ब्राह्मण द्वारा प्रवर्तित हुई थी। इसी प्रकार गुर्जर-प्रतीहार शाखा भी, जो अपनेको रामचन्द्रजीके लघु भ्राता लक्ष्मणका वंशज मानती है, कुछ अभिलेखोंके अनुसार गुर्जरोंसे आरम्भ हुई थी, जिन्हें विदेशी माना जाता है और जो हूणोंके साथ अथवा उनके कुछ ही बाद भारतमें आकर गुजरात-में बस गये थे। आभिलेखिक प्रमाणोंसे शकों और भारतीय राज्यवंशोंमें वैवाहिक सम्बन्ध सिद्ध होते हैं।

शकोंके उपरान्त जितनी भी विदेशी जातियाँ पाचवीं और छठीं शताब्दीमें भारत आयीं, उनको हिन्दुओंने नष्ट न करके शकों और कुषाणोंकी भाँति क्रमशः अपनेमें आत्मसात् कर लिया। तत्कालीन हिन्दू समाजमें उनकी स्थिति उनके पेशेके अनुसार निर्धारित हुई और उनमेंसे शस्त्रोपजीवी तथा शासक वर्ग क्षत्रिय माना जाकर राजपूत कहलाने लगा। इसी प्रकार भारतकी मूल-निवासी जातियोंमेंसे गोंड, भर, कोल आदिके कुछ परिवारोंने अपने बाहुबलसे छोटे-छोटे राज्य स्थापित कर लिये। इनकी शक्ति और सत्तामें वृद्धि होने तथा क्षत्रियोचित शासनकर्मी होनेके फलस्वरूप इनकी भी गणना क्षत्रियोंमें होने लगी और वे भी राजपूत कहलाये। चंदेलोंके गोंड राजपरिवारोंसे, गहड़वालोंके भरोंसे और राठौरोंके गहड़वालोंसे घनिष्ठ वैवाहिक सम्बन्ध थे। सत्य तो यह है कि हिन्दू समाजमें शताब्दियों तक जाति-का निर्धारण जन्म और पेशे दोनोंसे होता रहा है। इस सिद्धान्तके अनुसार क्षत्रियों अथवा राजपूतोंका वर्ग वस्तुतः देशका शस्त्रोपजीवी तथा शासक वर्ग था जो हिन्दू धर्म और कर्मकाण्डमें आस्था रखता था। इसी कारण राजपूतोंके अन्तर्गत विभिन्न नसलोंके लोग मिलते हैं।

राजपूतोंने मुसलमान आक्रमणकारियोंसे शताब्दियों तक वीरतापूर्वक युद्ध किया। यद्यपि उनमें परस्पर एकता

के अभावके कारण भारतपर अंततः मुसलमानोंका राज्य हो गया, तथापि उनके तीव्र विरोधके फलस्वरूप इस कार्यमें मुसलमानोंको बहुत समय लगा। दीर्घकालतक मुसलमानोंका विरोध और उनसे युद्ध करते रहनेके कारण राजपूत शिथिल हो गये और उनकी देशभक्ति, वीरता तथा आत्म-बलिदानकी भावनाएँ कुंठित हो गयीं। यही कारण है कि भारतमें अंग्रेजी राज्यकी स्थापनाके विरुद्ध किसी भी महत्त्वपूर्ण राजपूत राज्य अथवा शासकने कोई युद्ध नहीं किया। इसके विपरीत १८१७ और १८२० ई०के बीच सभी राजपूत राजाओंने स्वेच्छासे अंग्रेजोंकी सर्वोपरि सत्ता स्वीकार करके अपनी तथा अपने राज्यकी सुरक्षाका भार उनपर छोड़ दिया। (**विन्सेण्ट स्मिथ कृत अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया; गौरीशंकर हीरानन्द ओझा कृत राजपूतानेका इतिहास तथा ए० सी० बनर्जी कृत दि राजपूत स्टेट्स एण्ड दि ईस्ट इंडिया कम्पनी**)

राजपूताना—इस प्रदेशका आधुनिक नाम राजस्थान है, जो उत्तर भारतके पश्चिमी भागमें अरावलीकी पहाड़ियों-के दोनों ओर फैला हुआ है। इसका अधिकांश भाग मरुस्थल है। यहाँ वर्षा अत्यल्प और वह भी विभिन्न क्षेत्रोंमें असमान रूपसे होती है। राजपूतोंकी राजनीतिक सत्ता रहनेके कारण इस प्रदेशका नाम राजपूताना पड़ा। भारतमें मुसलमानोंका राज्य स्थापित होनेके पूर्व राज-स्थानमें कई शक्तिशाली राजपूत जातियोंके वंश शासन कर रहे थे और उनमें सबसे प्राचीन चालुक्य और राष्ट्र-कूट थे। उपरान्त कन्नौजके राठौरों (राष्ट्रकूट), अजमेर-के चौहानों, अन्हिल वाड़के सोलंकियों, मेवाड़के गुहिलोतों या सिसोदियों और जयपुरके कछवाहोंने इस प्रदेशके भिन्न-भिन्न भागोंमें अपने राज्य स्थापित कर लिये। राजपूत जातियोंमें फूट और परस्पर युद्धोंके फलस्वरूप वे शक्तिहीन हो गये। यद्यपि इनमेंसे अधिकांशने बारहवीं शताब्दीके अंतिम चरणमें मुसलमान आक्रमण-कारियोंका वीरतापूर्वक सामना किया तथापि प्रायः सम्पूर्ण राजपूतानेके राजवंशोंको दिल्ली सल्तनतकी सर्वोपरि सत्ता स्वीकार करनी पड़ी।

फिर भी मुसलमानोंकी यह प्रभुसत्ता राजपूत शासकोंको सदैव खटकती रही और जब कभी दिल्ली सल्तनतमें दुर्बलताके लक्षण अनुभूत होते, वे अधीनतासे मुक्त होनेको प्रयत्नशील हो उठते। १५२० ई० में बाबर-के नेतृत्वमें मुगलोंके आक्रमणके समय राजपूताना दिल्ली-के सुल्तानोंके प्रभावसे मुक्त हो चला था और मेवाड़के राणा संग्राम सिंह (राणा साँगा) ने बाबरके दिल्लीपर अधिकारका विरोध किया। १५२६ ई० में खानुआके युद्धमें राणाकी पराजय हुई और मुगलोंने दिल्लीके सुल्तानोंका राजपूतानेपर नाममात्रको बचा प्रभुत्व फिरसे स्थापित कर लिया। किन्तु राजपूतोंका विरोध शान्त न हुआ। अकबरकी राजनीतिक सूझ-बूझ और दूरदर्शिता-का प्रभाव इनपर अवश्य पड़ा और मेवाड़के अतिरिक्त अन्य सभी राजपूत शासक मुगलोंके समर्थक और भक्त बन गये। अंतमें जहाँगीरके शासनकालमें मेवाड़ने भी मुगलोंकी अधीनता स्वीकार कर ली। औरंगजेबके सिंहासनारूढ़ होने तक राजपूतानेके शासक मुगलोंके स्वामिभक्त बने रहे। परन्तु औरंगजेबकी धार्मिक असहिष्णुताकी नीतिके कारण दोनों पक्षोंमें युद्ध हुआ। बादमें एक समझौतेके फलस्वरूप राजपूतानेमें शान्ति स्थापित हुई।

प्रतापी मुगलोंके पतनसे भी राजपूतानेके राजपूत शासकोंका कोई लाभ न हुआ, क्योंकि १७५६ ई० के लगभग राजपूतानेमें मराठोंका शक्ति-विस्तार आरंभ हो गया। १८ वीं शताब्दीके अंतिम दशकोंमें भारतकी अव्यवस्थित राजनीतिक दशामें उलझने तथा मराठों एवं पिण्डारियोंकी लूटमारसे त्रस्त होनेके कारण राजपूतानेके शासकोंका इतना मनोबल गिर गया कि उन्होंने अपनी सुरक्षा हेतु अंग्रेजोंकी शरण ली। भारतीय गणतंत्रकी स्थापनाके उपरान्त कुछ राजपूत रियासतें मार्च १९४८ ई० में और कुछ एक वर्ष बाद भारतीय संघमें सम्मिलित हो गयीं। इस प्रदेशका आधुनिक नाम राजस्थान और इसकी राजधानी जयपुर है। राजप्रमुख (अब राज्यपाल) का निवास तथा विधानसभाकी बैठकें भी जयपुरमें ही होती हैं ('राजपूत' भी देखिये)।

राजराज प्रथम—चोल सम्राट् जिसने ९८५ से १०१८ ई० तक राज्य किया। इतिहासमें वह राजराज महान्‌के नामसे विख्यात है। सर्वप्रथम उसने चेर राज्य (केरल) पर अधिकार किया और उपरान्त कई युद्धोंमें विजय प्राप्त करके दक्षिण भारतका सर्वशक्तिमान सम्राट् हो गया। उसके विशाल साम्राज्यमें केवल मद्रास (तमिल-नाडु) और मैसूर ही नहीं सम्मिलित थे वरन् उसने लम्बे सैनिक अभियानोंके उपरान्त १००५ ई० में श्रीलंका-पर भी अधिकार कर लिया। उसके पास विशाल और सुव्यवस्थित नौ सेना भी थी जिसकी सहायतासे उसने कलिंग और पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्रोंके अनेक द्वीप-समूहोंपर भी अपने राज्यकालके २९ वें वर्षमें अधिकार कर लिया।

राजराज द्वितीय–उत्तरकालीन चोलवंशका शासक और कुलोत्तुंग चोल (दे०) द्वितीयका पुत्र तथा उत्तराधिकारी। उसने ११४६ ई० से ११७३ ई० तक राज्य किया। उसके शासनकालके पूर्व ही चोलोंका पतन आरंभ हो गया था और सीधी वंश-परंपरामें वह उस वंशका अंतिम सम्राट् था।

राजवल्लभ सेन (१६९८–१७६३)–पलासीके युद्धके समय यह बंगालके प्रभावशाली व्यक्तियोंमें गिना जाता था। जन्म बंगालके फरीदपुर जिलेके एक वैद्य परिवारमें। अपनी योग्यताके बलपर वह बंगालके नवाब सिराजुद्दौला (दे०) की चाची घसीटी बेगम (दे०) का दीवान हो गया। नवाब अलीवर्दी खाँने उसको राजाकी उपाधि दी, परन्तु इन उपकारोंको भुला करके वह अलीवर्दी खाँके पौत्र एवं उत्तराधिकारी सिराजुद्दौलाका विरोधी बन गया और मीरजाफर तथा कुछ असंतुष्ट पदाधिकारियों सहित नवाबके खिलाफ अंग्रेजोंके षड्यंत्रमें सम्मिलित हो गया। उसका पुत्र कृष्णदास बंगालके नवाबकी सेवामें नियुक्त था। उसने ढाकामें सरकारी धनकी लम्बी राशिका गबन किया और भागकर कलकत्तामें अंग्रेजोंकी शरण ली। सिराजुद्दौला द्वारा १७५५ ई०में कलकत्तापर आक्रमण और अधिकार कर लेनेका एक कारण नवाबके न्याय दंडसे भागे हुए कृष्णदासका अंग्रेजोंकी शरण लेना भी था।

इस प्रकार पिता और पुत्र दोनों ही नवाबके कोपभाजन बने, परंतु उनकी षड्यंत्रकारी योजना सफल रही। पलासीके युद्धमें सिराजुद्दौलाकी पराजय हुई और विजयी अंग्रेजोंने मीर जाफरको बंगालका नवाब बनाया। राजवल्लभकी नियुक्ति नवाब मीरजाफरके परामर्शदाताओंमें हुई। आगे चलकर उसे मुंगेरका सूबेदार नियुक्त किया गया। किन्तु मीरजाफरका शीघ्र ही पतन हो गया और मीर कासिम (दे०) बंगालका नवाब हुआ। मीर कासिम भी सिराजुद्दौलाकी भाँति अंग्रेजोंके विरुद्ध था। उसे राजवल्लभके ऊपर अंग्रेजोंके पक्षपाती होनेका सन्देह हुआ। फलतः उसे गंगामें डुबा कर मरवा दिया गया।

राजशेखर–संस्कृत भाषाका प्रसिद्ध कवि और नाटककार। जन्म दक्षिण भारतमें। कन्नौजके गुर्जर प्रतिहार-शासकोंका राजाश्रय प्राप्त था। वह प्रतिहार शासक महेन्द्रपाल (लगभग ८९०-९१० ई०) का गुरु था। यद्यपि उसने कई ग्रंथोंकी रचना की, तथापि चार नाटक–बालरामायण, विद्धशाल भंजिका, बाल भारत (उपनाम प्रचण्ड पाण्डव) तथा कर्पूरमंजरी ही उपलब्ध हैं। 'कर्पूरमंजरी' प्राकृत भाषामें है। काव्य-शास्त्रीय प्रसिद्ध ग्रंथ 'काव्यमीमांसा' राजशेखरकी उत्तम कृति है। इनके अतिरिक्त 'भुवनकोष' की भी उसने रचना की, परन्तु यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं। उसके 'हर-विलास' नामक एक अन्य ग्रंथका भी उल्लेख मिलता है, पर वह भी अप्राप्य है। उसका विवाह चाहमान वंशकी राजकुमारी अवन्ति सुन्दरीसे हुआ था, जो स्वयं विदुषी महिला थी।

राजसिंह–आठवीं शताब्दीमें प्रचलित पल्लववंशका शासक और महान वास्तु-निर्माता। उसने अपनी राजधानी काँची और महाबलिपुरम्में अनेक मंदिरों और रथोंका निर्माण कराया था।

राजसिंह–मेवाड़का एक राणा, जिसने मुगलोंकी सेवामें रत मारवाड़ नरेश जसवंत सिंहके अबोध पुत्र अजीतसिंह और उसकी विधवा पत्नीको शरण दी। इस कारण वह औरंगजेबका कोपभाजन बन गया। औरंगजेब द्वारा हिन्दुओंपर पुनः जजिया कर लगाये जानेका उसने विरोध किया और उससे युद्ध ठान लिया। यह युद्ध १६७९ से १६८१ ई० तक चला और राणाने इसका संचालन इतनी सफलतासे किया कि औरंगजेबको उससे संधि करनी पड़ी। संधिके अनुसार राणाके पुत्र और उत्तराधिकारी जयसिंहने अपने राज्यके कुछ भाग मुगलोंको दे दिये और औरंगजेबने उससे जजिया वसूल करनेका विचार त्याग दिया।

राजाधिराज, प्रथम–चोलवंशज प्रतापी सम्राट् राजेन्द्र प्रथम (दे०) का पुत्र और उत्तराधिकारी। १०१८ से १०४४ ई० तक वह युवराजके पदपर रहा और १०४४ से १०५४ ई० तक राज्य किया। अपने पिताकी भाँति वह भी सीमावर्ती राज्यों, विशेषतः कल्याणीके चालुक्योंसे संघर्ष करता रहा। कोप्पमके युद्ध (१०५४ ई०)में वह चालुक्य सम्राट् सोमेश्वर प्रथम आहवमल्लके हाथों मारा गया।

राजाधिराज द्वितीय–उत्तरकालीन चोलशासक, जिसने ११६३ ई० से ११७९ ई० तक राज्य किया।

राजाराम–छत्रपति शिवाजीका द्वितीय पुत्र। जब इसका बड़ाभाई शम्भुजी मुगलों द्वारा बन्दी बना कर मार डाला गया और उसका पुत्र शाहूजी भी १६८९ ई० में औरंगजेबका बंदी हो गया, तब राजाराम कर्नाटकमें जिंजी नामक किलेमें चला गया और वहींसे उसने औरंगजेबके विरुद्ध मराठोंके स्वातंत्र्य-युद्धका नेतृत्व किया। इस प्रकार १६८९ ई० में वह मराठोंका वास्तविक शासक

बनकर मुगलोंका वीरतापूर्वक सामना करने लगा। उसने ८ वर्षों तक उनके आक्रमणोंसे जिंजीकी रक्षा की। तदुपरान्त जब १६९८ ई० में मुगलोंका उसपर अधिकार हो गया तब वह सतारा भाग आया और मृत्युपर्यन्त (१७०० ई० में मृत्यु) मुगलोंके विरुद्ध मराठोंके स्वतन्त्रता-युद्धका नेतृत्व करते हुए, उनका शासक बना रहा।

राजाराम–जाटोंका पराक्रमी नेता। १६८५ ई० में उसने औरंगजेबके विरुद्ध विद्रोह किया तथा १६८८ ई० में सिकन्दरामें बादशाह अकबरके मकबरेको लूटा। किन्तु १६९२ ई० में वह मुगलों द्वारा पराजित हुआ और मार डाला गया।

राजा विक्रम (विक्रमादित्य)–भारतीय जनश्रुतियों तथा दंतकथाओंमें राजाविक्रम (विक्रमादित्य) का मुख्य स्थान है। इसके संबंधमें 'बैतालपचीसी' (संस्कृत-वेताल-पंचविंशतिका) में अनेक कहानियाँ हैं, किन्तु इसकी ऐतिहासिकता अभी निश्चित रूपसे स्थापित नहीं हो पायी है। विश्वास किया जाता है कि गुप्तवंशके तृतीय सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यकी उपलब्धियाँ ही इन दंतकथाओंमें अतिरंजित होकर वर्णित हैं।

राजेन्द्र प्रथम–चोलसम्राट् राजराज महान्‌का पुत्र और उत्तराधिकारी। उसने १०१२ से १०४४ ई० तक राज्य किया। अपने पिताकी भाँति राजेन्द्र प्रथमने भी कई महत्त्वपूर्ण युद्धोंमें विजय प्राप्त की। अपनी सबल एवं व्यवस्थित नौसेनाके सहयोगसे उसने बर्माके निचले भू-भागों तथा अण्डमान और निकोबार द्वीप-समूहोंपर १०२५-२७ ई० में अधिकार कर लिया। १०२३ ई० में उसने बंगालपर आक्रमण कर वहाँके तत्कालीन शासक महीपालको पराजित किया और गंगाके तटों तक अपनी विजयपताका फहरायी। किसी भी दक्षिण भारतीय राजाके लिए यह अभूतपूर्व विजय थी। इसके उपलक्ष्यमें उसने 'गंगैकोण्ड'की उपाधि धारण की। साथ ही उसने नयी राजधानीका निर्माण भी कराया, जिसका नाम गंगैकोण्डचोलपुरम् रखा गया। राजेन्द्रने वहाँ एक विशाल राजप्रासाद, सुन्दर मंदिर तथा विस्तृत सरोवरका निर्माण कराया, जिसमें गंगानदीसे पवित्र जल लाकर भरा गया था। राजेन्द्रका कल्याणीके चालुक्योंसे सदैव संघर्ष चलता रहा और कई युद्धोंमें उसने चालुक्य सम्राट् जयसिंहको परास्त किया।

राजेन्द्र द्वितीय–चोलसम्राट् राजेन्द्र प्रथमका द्वितीय पुत्र, जिसने १०५२ से १०६४ ई० तक राज्य किया। १०५४ ई०के कोप्पमके प्रसिद्ध युद्धमें जब उसका बड़ा भाई राजाधिराज (दे०) कल्याणीका शासक सोमेश्वर आहवमल्ल द्वारा मारा गया, तब वहीं, युद्धक्षेत्रमें ही राजेन्द्र द्वितीयने अपना 'वीराभिषेक' करके चोलोंकी पराजयको विजयमें परिणत कर दिया। राजेन्द्रने चोलोंकी सत्ता और उनके विस्तृत साम्राज्यको पूर्ववत् बनाये रखा।

राजेन्द्र तृतीय (कुलोत्तुंग चोल प्रथम)–इसका वास्तविक नाम कुलोत्तुंग था। उसकी माता चोलसम्राट् राजेन्द्र प्रथमकी पुत्री अम्मंगा देवी थी, जिसका विवाह पूर्वी चालुक्य वंशके राजकुमार राजराज प्रथमसे हुआ था। विजयालय वंशके अन्तिम सम्राट् अधिराजेन्द्र (दे०) की १०७० ई० में मृत्यु हो जानेपर कुलोत्तुंग राजेन्द्र तृतीयके नामसे चोलसिंहासनपर बैठा और १०७० से ११२२ ई० तक शासक रहा। परवर्ती चोलचालुक्य शासकोंमें उसका स्थान सर्वोपरि है। उसके वंशजोंने ११७३ ई० तक राज्य किया, तदुपरान्त चोलवंशका पतन हो गया।

राजेन्द्र प्रसाद–भारतीय गणराज्यके प्रथम राष्ट्रपति। जन्म १८८४ ई०में जीरादेई, जि० छपरा, बिहारमें हुआ, तथा कलकत्ता विश्वविद्यालयमें शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने अपना जीवन वकीलके रूपमें आरम्भ किया और शीघ्र ही पटना हाईकोर्टके बड़े वकीलोंमें उनकी गणना होने लगी। १९१७ ई०में चम्पारन आन्दोलनकी जाँचके सिलसिलेमें गांधीजीसे उनकी प्रथम भेंट हुई। अंतमें उन्होंने १९२० ई०में अपनी चलती हुई वकालतपर लात मार दी और असहयोग आन्दोलनमें सम्मिलित हो गये। वे अनेक वर्षोंतक बिहार कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष रहे। १९२२ ई०में कांग्रेसके महामंत्री नियुक्त हुए, तथा १९३४, १९३९ तथा १९४७ ई०में कांग्रेस अध्यक्ष चुने गये। वे महात्मा गांधीके पक्के अनुयायी थे और अनेक वर्षोंतक कांग्रेस वर्किंग कमेटीके सदस्य रहे। १९४७ ई० में वे नेहरू मंत्रिमण्डलमें सम्मिलित हुए, १९४६ से १९४९ ई०तक भारतीय संविधान सभाके अध्यक्ष रहे और भारतका संविधान बनानेमें महत्त्वपूर्ण योगदान किया। अपनी सज्जनता, धैर्यशीलता, खरी ईमानदारीके कारण वे १९५० ई०में भारतीय गणराज्यके प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। उन्हें १९५२ तथा तत्पश्चात् १९५७ ई०में पुनः इस पदपर चुना गया। उन्होंने १९६२ ई०में अपने पदसे अवकाश ग्रहण किया और इसके शीघ्र बाद पटनामें उनकी मृत्यु हो गयी।

राज्यपाल–कन्नौजका उत्तरकालीन प्रतिहार शासक। मातृभूमिकी रक्षा हेतु उसने गजनीके शासक अमीर सुबुक्तगीनके आक्रमणके समय भटिण्डाके शाही शासक जयपाल

(दे०) का साथ दिया, परन्तु दोनोंकी सम्मिलित सेनाएँ परास्त हुई। १०१९ ई०में सुल्तान महमूद गजनवीने उसके राज्यपर आक्रमण किया और राज्यपालने महमूदकी अधीनता स्वीकार कर ली। समीपवर्ती हिन्दू राजाओंको उसका यह आचरण कायरतापूर्ण लगा और शीघ्र ही उन्होंने चन्देल शासक विद्याधरके नेतृत्वमें उसके राज्यपर आक्रमण कर दिया। युद्धमें राज्यपाल मारा गया।

राज्यमती—शालस्तंभ वंशके शासक हर्षदेवकी पुत्री। हर्षदेव आठवीं शताब्दीमें कामरूपका शासक था। राज्यमतीका विवाह नेपालके महाराज जयदेवसे हुआ था।

राज्यश्री—थानेश्वरके शासक प्रभाकरवर्धन (दे०) की पुत्री और सम्राट् हर्षवर्धनकी भगिनी। उसका विवाह कन्नौजके मौखरि वंशज शासक ग्रहवर्मासे हुआ था। पिताकी मृत्युके उपरान्त ही मालवाके शासकने आक्रमण कर ग्रहवर्माको मार डाला और राज्यश्रीको बन्दी बना कर कन्नौजके कारागारमें डाल दिया। इसकी सूचना मिलते ही उसके ज्येष्ठ अग्रज राज्यवर्धनने उसे कारागारसे मुक्त करानेके लिए कन्नौजकी ओर प्रस्थान किया। यद्यपि उसने मालव शासक देवगुहाको पराजित करके मार डाला पर वह स्वयं देवगुहाके सहायक और बंगालके शासक शशांक (दे०) द्वारा मारा गया। इसी उथल-पुथलमें राज्यश्री कारागारसे निकल भागी और विंध्याचलके जंगलोंमें शरण ली। इस बीच उसका कनिष्ठ अग्रज हर्षवर्धन राज्यवर्धनका उत्तराधिकारी बन चुका था। उसने राज्यश्रीको विन्ध्यके जंगलोंसे उस समय ढूंढ़ निकाला, जब वह निराश होकर चितामें प्रवेश करने ही वाली थी। हर्ष उसे कन्नौज लौटा लाया और आजीवन उसको सम्मान दिया। उसने कन्नौजसे ही अपने विशाल साम्राज्यका शासन-कार्य किया, चीनी यात्री ह्वेनत्सांगके अनुसार वह प्रायः राज्यश्रीसे राज्यकार्यमें परामर्श लेता था।

राढीय ब्राह्मण—जनश्रुतियोंके अनुसार उन पाँच ब्राह्मणोंकी सन्तान हैं, जिन्हें राजा आदि शूर (दे०) ने कन्नौजसे ले जाकर राढ अर्थात् पश्चिम बंगालके उस भू-भागमें बसाया था, जो आजकल बर्दवान, हुगली और बीरभूम जिलोंके अन्तर्गत है।

राधाकृष्णन्, डा०, सर्वपल्ली—भारतके भूतपूर्व राष्ट्रपति। उनका जन्म दक्षिण भारतमें १८८८ ई०में हुआ और शिक्षक जीवन मद्रासके प्रेसीडेन्सी कालेजके दर्शन शास्त्रके प्राचार्यके रूपमें प्रारम्भ हुआ। शीघ्र ही उन्होंने पाश्चात्य विद्वानोंके सम्मुख हिन्दू जीवन-दर्शन प्रस्तुत करके अन्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली। १९२१ से १९३६ ई०तक कलकत्ता विश्वविद्यालयमें दर्शनशास्त्रके 'किंग जार्ज पंचम प्रोफेसर'के पदपर आसीन होकर भारतीय दर्शनशास्त्रियोंमें अग्रगण्य हुए और उपरान्त आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयमें पूर्वी देशोंके धर्म और दर्शनके 'स्पालिंडग प्रोफेसर'के गौरवपूर्ण पदपर उनकी नियुक्ति हुई। इस पदपर वे १९३६ से १९३९ ई०तक रहे। उपरान्त काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके उपकुलपति नियुक्त हुए और १९३९ से १९४८ ई० तक इस पदपर कार्य करते रहे। इस प्रकार राजनीति एवं सार्वजनिक कार्योंमें सक्रिय भाग लेनेके पूर्व उन्होंने शिक्षाजगत्के कई महत्त्वपूर्ण पदोंपर कार्य किया।

उन्हें १९४९ ई०में भारतीय राजदूत बनाकर सोवियत रूस भेजा गया, जहाँ १९५२ ई०तक कार्य करते रहे। रूस भेजे जानेवाले वे दूसरे राजदूत थे। परिचय पत्र देनेपर मास्कोमें मार्शल स्तालिनने उनका विशेष आदर तथा सम्मान किया और इस प्रकार भारत तथा सोवियत रूसमें परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्धोंका सूत्रपात किया। रूससे लौटनेपर श्री राधाकृष्णन् भारतीय गणतन्त्रके उपराष्ट्रपति चुने गये और उक्त पदका कार्यभार उन्होंने इतनी कार्यपटुता एवं योग्यतासे संभाला कि १९६२ ई० में वही भारतके राष्ट्रपति चुने गये। उन्होंने चीन और अमेरिका सहित विश्वके अनेक देशोंका भ्रमण किया और अपनी प्रकाण्ड विद्वता, सरल स्वभाव तथा प्रभावशाली वक्तृत्वकलासे समस्त देशोंमें भारतको गौरवान्वित किया। उनकी अन्तिम रूस यात्राके फलस्वरूप सोवियत रूसने भारतको और भी अधिक सामरिक सहायता देनेकी घोषणा की। उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'भारतीय दर्शनशास्त्रका इतिहास' सबसे प्रसिद्ध है। **(१६, अप्रैल १९७५ को इनका देहान्त हुआ)।**

राधाकान्त देव, राजा, सर (१७९४–१८६७ ई०)—उन्नीसवीं शताब्दीमें बंगालके सनातनी हिन्दुओंके ख्यातिलब्ध नेता। वे पूर्वी और पाश्चात्य विद्याओंके उदारचेता पोषक थे। उन्होंने यथेष्ट धन व्यय करके 'शब्द कल्पद्रुम' नामक संस्कृतका प्रसिद्ध कोश संकलित किया, जिससे उनकी व्यक्तिगत प्रतिभा एवं विद्वत्ताका परिचय मिलता है। साथ ही उन्होंने डेविड हेयर साहबको कलकत्तेमें हिन्दू स्कूलकी स्थापनामें पूर्ण सहयोग प्रदान किया, जिसमें भारतीय विद्यार्थियोंको पाश्चात्य विद्याओं, विशेषतः अंग्रेजीकी शिक्षा दी जाती थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने स्कूल बुक सोसायटीकी स्थापनामें भी प्रमुख भाग लिया,

जिससे विद्यार्थियोंको ऐसी सस्ती पाठ्य पुस्तकें उपलब्ध हो सकें, जो जनसाधारणमें शिक्षाके प्रसार हेतु उपयोगी सिद्ध हों। वे सामाजिक सुधार, ब्राह्म-समाज और सती प्रथापर प्रतिबन्ध लगानेके विरोधी थे और इस हेतु उन्होंने इंग्लैण्डकी पार्लियामेन्टको जनताके हस्ताक्षरोंसे युक्त एक याचिका भेजनेकी भी व्यवस्था की थी। वे उन कट्टर हिन्दुओंके प्रतीक थे, जिन्हें पाश्चात्य सभ्यताके उपयोगी तत्त्व स्वीकार होते हुए भी अपनी प्राचीन सामाजिक रीतियोंमें घोर आस्था थी।

रानाडे, महादेव गोविन्द (१८४२–१९०४)–विख्यात जनसेवी, समाज-सुधारक एवं विद्वान्। जन्म महाराष्ट्रके ब्राह्मण परिवारमें। उन्होंने अपने विद्यार्थी जीवनसे ही अपनी मेधाका परिचय देना आरम्भ कर दिया। शिक्षा समाप्तिके उपरान्त उन्होंने वकालत प्रारम्भ की। शीघ्र ही बम्बई हाईकोर्टके जज हो गये। तत्कालीन बम्बई प्रेसीडेन्सीके अधिकांश समाज सुधारक आन्दोलनोंमें उन्होंने प्रमुख भाग लिया। उनकी गणना पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृतिके सम्पर्कमें आये हुए नयी पीढ़ीके भारतीयोंमें की जाती है। वे बम्बईके प्रार्थना-समाजके सक्रिय एवं निष्ठावान् सदस्य थे और उसके लक्ष्यों एवं उद्देश्योंकी पूर्तिमें सतत प्रयत्नशील रहे। विधवा पुनर्विवाह समिति एवं डेक्कन एजूकेशन सोसाइटीके संस्थापकोंमें प्रमुख थे।

रानाडेने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (दे०) की स्थापनाका भी समर्थन किया तथा १८८५ ई०के बम्बई-में आयोजित उसके प्रथम अधिवेशनमें भाग लिया। उन्होंने कांग्रेसके वार्षिक अधिवेशनोंके साथ ही सामाजिक सम्मेलनके आयोजनकी प्रथा चलायी। उनके विचारसे मानव जातिकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक प्रगति परस्पर एक दूसरेपर आधारित है, इसीलिए उन्होंने एक ऐसे व्यापक सुधार आन्दोलनपर बल दिया, जो मनुष्यकी सर्वांगीण उन्नतिमें सहायक हो सके। उनका विचार था कि सामाजिक सुधारोंकी सफलता केवल पुरानी रूढ़ियोंके विनाशसे नहीं बल्कि रचनात्मक कार्यसे ही संभव है। उन्होंने भारतमें समाज सुधार आन्दोलनको नयी दिशा दी। रानाडे प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनकी रचनाओंमें विधवा पुनर्विवाह, मालगुजारी कानून, राजा राम मोहनरायकी जीवनी, मराठोंका उत्कर्ष, धार्मिक एवं सामाजिक सुधार मुख्य हैं।

राबर्ट्स, लार्ड फेडरिक स्ले (१८३२–१९१४)–१८५२ ई० में बंगालके रिसालेमें नियुक्त। १८५७ ई०के सिपाही-विद्रोह (दे०)में असाधारण वीरता दिखाने पर उसको 'विक्टोरिया क्रास' नामक सर्वोच्च सैनिक पदक प्रदान किया गया। १८७८ ई०के द्वितीय अफगान-युद्ध (दे०) कालमें वह कुर्रम क्षेत्रमें नियुक्त था और १८७९ ई०में सेनाका नेतृत्व करते हुए काबुल तक पहुँच गया। वहाँ उसने याकूब खाँ (दे०) को आत्मसमर्पण करनेपर विवश कर भारत भेज दिया। किन्तु १८८० ई०के जुलाई मासमें मैवन्दके प्रसिद्ध युद्धमें अंग्रेजोंकी पराजयके उपरान्त वह अपनी सेनाओं सहित काबुलसे कन्दहार तकका ३१३ मीलका कठिन मार्ग केवल बाईस दिनोंमें तय कर कन्दहार पहुँचा और अयूब खाँको सितम्बर १८८० ई०में पराजित कर अंग्रेजोंकी सामरिक प्रतिष्ठा पुनः स्थापित की। १८८१ ई०में उसने दक्षिण अफ्रीकाके युद्धोंमें भाग लिया और वहाँसे लौटकर मद्रासका और बादमें भारतका सेनाध्यक्ष नियुक्त हुआ। इस पदपर उसने १८८५ से १८९३ ई० तक कार्य किया और इंग्लैंडकी सरकारने उसे लार्डकी उपाधिसे विभूषित किया। लार्ड राबर्ट्स बोअर युद्धमें भी सेनाध्यक्ष रहा और १९०० ई०में उसमें विजय प्राप्त की। प्रथम महायुद्धमें जब भारतीय सैनिक फ्रांसमें लड़नेके लिए भेजे गये थे, तब उनके निरीक्षणार्थ वह फ्रांस गया और वहीं न्यूमोनियाके प्रकोपसे उसकी मृत्यु हो गयी।

राम—रामायण महाकाव्यके मुख्य नायक और कोशलके महाराज दशरथ और रानी कौशल्याके पुत्र। रामका आदर्श जीवनचरित हिन्दू धर्म और संस्कृतिका प्राण है। समस्त हिन्दू समाज उन्हें भगवान् (विष्णु)का अवतार मानता और उनकी पूजा करता है।

रामका पुल—अंग्रेज़ोंके शासन कालमें 'सेतुबंध रामेश्वर' शब्दका अंग्रेजी रूपान्तर 'रामका पुल' हो गया था। भारतके अन्तिम छोरपर स्थित रामेश्वरम्से लंका तकके समुद्रमें जो पत्थरोंके बड़े-बड़े खण्ड डूबे पड़े हैं, उन्हें ही सेतुबंध कहा जाता है। परंपरागत कथाओं और रामायणके अनुसार इस पत्थरके पुलका निर्माण रामकी बानर सेनाने किया था। इसी पुलके द्वारा रामने अपनी वानर सेना सहित लंकामें प्रवेश कर राक्षसराज रावणका वध तथा सीताका उद्धार किया था।

रामकृष्ण परमहंस (१८३४–८६)—उच्च श्रेणीके सन्त एवं आधुनिक युगमें हिन्दुओंके महान् अध्यात्मवादी पथ-प्रदर्शक। इसीलिए अनेक व्यक्ति उन्हें ईश्वरका अवतार मानते हैं। उनका जन्म पश्चिमी बंगालके हुगली जिलेके एक दूरस्थ ग्राममें एक निर्धन पुरोहित परिवारमें हुआ।

उन्हें किसी प्रकारकी भी विधिवत् शिक्षा न मिली और अल्पायुमें वे कलकत्ताके निकट दक्षिणेश्वर स्थित काली माताके मन्दिरमें पुजारीके रूपमें रहने लगे। वर्षोंकी लम्बी साधनाके फलस्वरूप उनमें दैवी गुणोंका समावेश हो गया। बुद्धि अलौकिक हो गयी और गहन दार्शनिक सिद्धान्तोंको सरल भाषामें व्यक्त करनेकी क्षमता उत्पन्न हुई। सभी धर्मोंके मूलभूत तत्त्वोंमें उनकी गहरी निष्ठा थी और उनकी धार्मिक सहिष्णुता तथा आध्यात्मिकता-से प्रभावित होकर ब्राह्म-समाजके गण्यमान नेता केशव चन्द्र सेन तथा अनेक जिज्ञासु नवयुवक उनके प्रति आकर्षित हुए। इन नवयुवकोंमें नरेन्द्रनाथ दत्त प्रमुख थे, जो आगे चलकर स्वामी विवेकानन्दके नामसे विख्यात हुए।

स्वामी रामकृष्णका कथन था कि जिस प्रकार एक ही तत्त्व जैसे जल, विभिन्न भाषाओंमें आप, आब, ऐय आदि भिन्न-भिन्न शब्दोंसे व्यक्त होता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न लोग उसी सर्वशक्तिमान् ईश्वरको अल्ला, हरि, यीशु, कृष्ण आदि भिन्न-भिन्न नामोंसे आराधना करते हैं। वह एकमें अनेक है, जो सगुण भी है और जिसकी कल्पना हम चाहे विराट् विश्वदेवके रूपमें करें अथवा विभिन्न प्रतीकों द्वारा। इसके अतिरिक्त उनका विचार था कि मनुष्य चाहे कितनी भी उच्च श्रेणीका अथवा श्री-सम्पन्न हो, यदि दया करनेके विचारसे किसी दूसरे व्यक्तिकी सहायता करता है तो वह तुच्छ है। उनके विचारसे करुणा और दया तो मनुष्य मात्रमें दैवी देन हैं। उसके बीच उपकारकी भावना लाना हीनता है। अतएव व्यक्तिको सविनय मनुष्यमात्रकी सेवा करना अपना धर्म मानना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक मनुष्यमें परमात्माका अंश विद्यमान है और इस विचारधारासे मनुष्यकी सेवा ही परमात्माकी सेवा है। उनके विचारसे ब्रह्मज्ञान मनुष्य मात्रकी निःस्वार्थ सेवासे ही संभव है और यही हिन्दू धर्मका सार है। उनकी मृत्युके उपरान्त उनके प्रिय शिष्य स्वामी विवेकानन्दने उनकी शिक्षाओं और उपदेशोंको सम्पूर्ण भारत वर्ष, अमेरिका और इंग्लैंड आदि देशों तक पहुँचाया। उपर्युक्त विचार ही रामकृष्ण मिशन (दे०)के आधारभूत सिद्धान्त हैं और अब यह एक अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संगठित संस्था बन गयी है।

रामकृष्ण मिशन—की स्थापना स्वामी विवेकानन्दने १ मई १८९७ ई०में की। उनका उद्देश्य ऐसे साधुओं और संन्यासियोंको संगठित करनेका था, जो रामकृष्ण परमहंस-की शिक्षाओंमें गहरी आस्था रखें, उनके उपदेशोंको जनसाधारण तक पहुँचा सकें और संतप्त, दुःखी एवं पीड़ित मानव जातिकी निःस्वार्थ सेवा कर सकें। इस प्रकारके संगठन द्वारा वे वेदान्त दर्शन (दे०)के 'तत् त्वमसि' सिद्धान्तको व्यावहारिक रूप देना चाहते थे। रामकृष्ण मिशन विकासोन्मुख संस्था है और इसके सिद्धान्तोंमें वैज्ञानिक प्रगति तथा चिन्तनके साथ प्राचीन भारतीय अध्यात्मवादका समन्वय इस दृष्टिसे किया गया है कि यह संस्था भी पाश्चात्य देशोंकी भाँति जनकल्याण करनेमें समर्थ हो। इसके द्वारा स्कूल, कालेज और अस्पताल चलाये जाते हैं और कृषि, कला एवं शिल्पके प्रशिक्षणके साथ-साथ पुस्तकें एवं पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती हैं। इसकी शाखाएँ समस्त भारत तथा विदेशोंमें हैं। इस संस्थाने भारतके वेदान्तदर्शनका संदेश पाश्चात्य देशों तक प्रसारित करनेके साथ ही भारतीयोंकी दशा सुधारनेकी दिशामें भी प्रशंसनीय कार्य किया है।

रामगुप्त—गुप्तवंशके प्रतापी सम्राट् समुद्र गुप्तका पुत्र और उत्तराधिकारी। प्रारम्भमें इसकी ऐतिहासिकतापर विद्वानोंमें मतभेद था, किन्तु आभिलेखिक प्रमाणोंकी प्राप्तिसे उसका समुद्रगुप्तका उत्तराधिकारी होना सिद्ध हो गया है! विशाखदत्त कृत 'देवीचन्द्रगुप्तम्' नामक नाटकके अनुसार रामगुप्त दुर्बल शासक था और प्राण-रक्षा हेतु उसने अपनी पत्नी ध्रुवदेवीको एक शकजातीय आक्रमणकारीको सौंप देना स्वीकार कर लिया था, किन्तु उसके छोटे भाई चन्द्रगुप्त (उपरान्त चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य)ने स्त्रीवेशमें जाकर शकराजको मार डाला और रानीकी रक्षा कर ली। तत्पश्चात् चन्द्रगुप्तने अपने बड़े भाई (रामगुप्त)को मार कर ध्रुवदेवीसे विवाह कर लिया और स्वयं सिंहासनारूढ़ हो गया। रामगुप्तकी ऐतिहासिकता अब सभी विद्वानोंको मान्य है।

रामचन्द्र—विजयनगरके देवराय द्वितीय (दे०)का पुत्र और उत्तराधिकारी। १४२२ ई०में उसने केवल कुछ ही महीनों तक राज्य किया।

रामचन्द्र देव—देवगिरिका यादव वंशीय शासक और कृष्णका पुत्र। पिता की मृत्युके समय वह अल्पायु था, अतएव उसका चाचा महादेव शासक बना। महादेवकी मृत्युके उपरान्त जब उसका पुत्र अम्मण सिंहासनासीन हुआ, तब रामचन्द्रने १२७१ ई०में उसका बध कर स्वयं पैतृक राज्य ग्रहण कर लिया। उसका राज्यकाल १२७१ से १३०९ ई०तक रहा। १२९२ ई०में, दिल्लीमें सिंहासनासीन होनेसे ४ वर्ष पूर्व अलाउद्दीन खिलजीने, रामचन्द्रके राज्यपर आक्रमण किया। इसमें रामचन्द्रकी पराजय

हुई और उसे अत्यधिक धनराशि देकर सन्धि करनी पड़ी। साथ ही उसे एलिचपुरकी वार्षिक आय भी कर रूपमें देनेको बाध्य होना पड़ा।

बादमें रामचन्द्रने उक्त वार्षिक धनराशि देना बंद कर दिया, तब सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (१२९५-१३१६ ई०) ने १३०७ ई० में अपने सेनानायक मालिक काफूरके नेतृत्वमें उसके राज्यपर आक्रमण हेतु विशाल मुस्लिम सेना भेजी। रामचन्द्र की पुनः पराजय हुई और उसने संधिकी प्रार्थना की। उसे दिल्ली ले जाया गया और वहाँ सुल्तान अलाउद्दीनने उसके साथ सहृदयतापूर्ण व्यवहार किया और उसका राज्य वापस लौटा दिया। अगले दो वर्षों तक रामचन्द्र देवने दिल्ली सल्तनतके अधीनस्थ शासकके रूपमें राज्य किया और नियमित रूपसे निश्चित वार्षिक कर दिल्ली भेजता रहा। १३०७ ई०में सुल्तान द्वारा वारंगल (दे०) पर किये गये आक्रमणमें रामचन्द्रने उसकी सहायता की थी।

रामचरित–सन्ध्याकर नन्दी द्वारा संस्कृत भाषामें रचित गीति काव्य। इसकी रचना उसने राजा मदनपाल (दे०) (११४०-५५ ई०)के राज्यकालमें की। मदनपालका पिता बंगाल और बिहारके पालवंशीय शासक रामपालका महासन्धिविग्रहिक था, जिसने १०७७ से ११२० ई०-तक राज्य किया। रामचरित विलक्षण कृति है, यह द्वयर्थक रचना है। विलोम पाठ द्वारा गूढ़ार्थ करनेपर प्रकट रूपमें इसमें रामायणकी कथा है, किन्तु इससे पालशासक रामपाल देवके राज्यकालका इतिहास विदित होता है। इस विलक्षण ग्रंथकी हस्तलिखित प्रति महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्रीको नेपालमें १८९७ ई०में प्राप्त हुई। (**हरप्रसाद शास्त्री–मेमायर्स आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, जिल्द ३, संख्या १; रमेशचन्द्र मजूमदार : बंगालका इतिहास, अंगरेजी, जिल्द १**)।

रामचरित मानस–महाकवि गोस्वामी तुलसीदास (१५३२-१६२३ ई०)का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ। इस ग्रंथमें रामचन्द्रजीके जीवनका, जनसुलभ हिन्दी भाषामें वर्णन किया गया है। 'रामचरित मानस' भारतमें हिन्दी भाषा-भाषियोंका पूज्य धर्मग्रन्थ हो गया है और इसे वही स्थान प्राप्त है, जो ईसाई धर्ममें बाइबिल को।

रामदास, समर्थ गुरु–शिवाजी महाराज (१६२७-८० ई०)के गुरु। शिवाजीके चरित्र निर्माण और उनकी जीवनधारापर समर्थ गुरु रामदासका गंभीर प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपने योग्य शिष्यके मस्तिष्कमें मराठों को एकताके सूत्रमें आबद्ध करनेका विचार भलीभाँति बैठा दिया, जिससे हिन्दुओंपर मुसलमानों द्वारा किये जानेवाले अत्याचारों, गो-ब्राह्मण, देवी मूर्तियों और मंदिरों को नष्ट होनेसे बचाया जा सके तथा हिन्दू धर्मकी रक्षा हो। समर्थ गुरु रामदासकी प्रेरणासे ही शिवाजीने अपने द्वारा संस्थापित मराठा राज्य को धार्मिक आधार दिया। इनकी उपदेश-वाणी 'दासबोध' नामसे प्रसिद्ध है।

रामनगरका युद्ध–द्वितीय सिख-युद्धके दौरान १८४८ ई०-में अंग्रेजों और सिखोंके बीच हुआ। इसमें दोनों पक्षों की अत्यधिक हानि हुई और युद्ध अनिर्णीत रहा।

रामनारायण–अठारहवीं शताब्दीके मध्यकालमें विद्यमान्, बंगालका प्रमुख व्यक्ति। प्लासी युद्धके उपरान्त राबर्ट-क्लाइवकी दृष्टि उसपर पड़ी, और वह उसका कृपापात्र हो गया। मीर जाफर (दे०)के शासनकालमें उसे बिहारका प्रबन्ध सौंपा गया और उसका मुख्य कार्यालय पटना हुआ। पटनापर जब शाहजादा अली गौहर (उपरान्त शाह आलम द्वितीय) (दे०)ने आक्रमण किया, रामनारायणने नगरकी रक्षा करनेमें विशेष योग्यता दिखायी। किन्तु मीर जाफरके उपरान्त जब मीर कासिम नवाब हुआ, उसे रामनारायणकी स्वामिभक्तिपर संदेह हो गया। मीर कासिमने उसे सेवामुक्त करके १७६३ ई०में अंग्रेजोंका पक्षपाती एवं देशद्रोही होनेके कारण मरवा दिया।

रामनारायण तर्करत्न (१८२२–८६)–आधुनिक बंगला भाषाका प्रथम नाटककार। वह संस्कृतका भी अच्छा विद्वान् था और २७ वर्षों तक (१८५५–८२)कलकत्ताके संस्कृत कालेजमें प्राचार्य रहा। उसने बंगला और संस्कृतमें कई नाटक लिखे। उसका १८५४ ई०में प्रकाशित 'कुलीनकुल सर्वस्व' बँगला भाषाका सर्वप्रथम नाटक माना जाता है। वह समाज-सुधारक भी था। अन्य रचनाएँ वेणी संहार, रत्नावली, अभिज्ञान शाकुन्तल तथा नवनाटक बँगलामें और 'आर्यशतकम्' तथा 'दक्षयज्ञम्' संस्कृतमें है।

रामपाल–बंगाल तथा बिहारका १४वाँ पालवंशीय शासक, जिसने लगभग ४२ वर्षों (१०७७–११२० ई०) तक राज्य किया। रामपालसे पूर्व उसका ज्येष्ठ भ्राता महीपाल द्वितीय शासक था, किन्तु कैवर्तोंके मुखिया दिव्य (दे०)अथवा दिव्योकके नेतृत्वमें जनता द्वारा विद्रोह करनेपर उसे सिंहासन और जीवनसे भी हाथ धोना पड़ा। कुछ समय उपरान्त दिव्यका उत्तराधिकारी भीम सिंहासनासीन हुआ, किन्तु रामपालने उसे अपदस्थ करके

परिवारके सभी सदस्यों सहित उसका वध करा डाला। तदुपरान्त रामपालने राज्यमें फैली अव्यवस्थाको दूर करके सर्वत्र शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित की। उसने आसाम और उड़ीसापर विजय प्राप्त की और कन्नौजके गड़हवाल शासकको बिहारकी ओर साम्राज्य-विस्तार करनेसे सफलतापूर्वक रोका। सन्ध्याकर नन्दीने अपने विलक्षण काव्य-ग्रन्थ 'रामचरित' में रामपालकी उपलब्धियोंका वर्णन किया है।

राममोहन राय, राजा—देखिये राय, राजा राममोहन।

रामराजा—शिवाजी तृतीयका पुत्र और राजाराम (दे०) का पौत्र। राजाराम छत्रपति शिवाजी (प्रथम) का द्वितीय पुत्र था। रामराजाको शाहूजी (दे०) ने गोद ले लिया और उसकी मृत्युके उपरान्त रामराजा ही सताराका शासक हुआ। रामराजा दुर्बल शासक सिद्ध हुआ और मराठा राजनीतिमें उसका प्रभाव नगण्य-प्राय था।

राम राय (राम राजा)—विजयनगर राज्यके शासक सदाशिव राव (१५४२–६५ ई०) के शासनकालमें रामराय ही वास्तविक रूपसे राज्यका सारा कार्य करता था। वह कुशल एवं योग्य राजनीतिज्ञ था। उसने विजयनगर साम्राज्यके खोये हुए गौरवको पुनः स्थापित करनेका दृढ़ निश्चय किया। विजयनगरका प्रतिद्वन्द्वी बहमनी राज्य पाँच भागोंमें बँट चुका था और रामरायने उन पाँचों सल्तनतोंके आन्तरिक झगड़ोंमें हस्तक्षेप करनेकी नीति अपनायी। १५५८ ई० में उसने बीजापुर और गोलकुण्डाके सुलतानोंकी सहायतासे अहमदनगरपर आक्रमण कर दिया और उसे ध्वस्त कर दिया। उसके दुर्व्यवहारसे क्रुद्ध होकर बरारके अतिरिक्त अन्य बहमनी सुल्तानोंने विजयनगरके विरुद्ध एक संघकी स्थापना की और उसपर आक्रमण कर दिया। तालीकोटके प्रसिद्ध युद्धमें बहमनी सुल्तानोंने रामरायको पराजित करके मार डाला और विजयनगरको ध्वस्त कर दिया।

रामसिंह—आमेरके राजा जयसिंह (दे०)का पुत्र, जिसने शिवाजी प्रथमको बादशाह औरंगजेबके कारागारसे निकल भागनेमें मदद दी। जयसिंहसे व्यक्तिगत सुरक्षाका आश्वासन प्राप्त होनेपर ही शिवाजीने बादशाहके दरबार-में जाना स्वीकार किया था, परंतु वहाँ पहुँचनेपर उन्हें छल-बलसे कारागारमें डाल दिया गया। तब रामसिंहने उन्हें कारागारसे निकल भागनेमें मदद दी।

रामसिंहने अपनी राजपूत सेना सहित दाराका पक्ष लेकर सामूगढ़ (दे०) के युद्धमें असाधारण वीरता दिखायी थी, किंतु उसे पराजित होना पड़ा। १६८८ ई० में उसने आसामके अहोम शासक गदाधर सिंह (दे०) के विरुद्ध मुगल सेनाका नेतृत्व किया, किंतु गोहाटीके निकट नौका-युद्धमें पराजित होकर वापस लौट आया।

रामानन्द—भक्तिमार्गके उत्तरकालीन प्रचारकोंमें इनका स्थान महत्त्वपूर्ण है। वे चौदहवीं शताब्दीमें हुए थे। उनका जन्म प्रयागमें हुआ और उन्होंने उत्तरी भारतके समस्त तीर्थस्थलोंकी यात्रा करके जीवनके अंतिम वर्ष दक्षिण भारतमें व्यतीत किये। वे श्रीरामके अनन्य भक्त थे और उन्होंने वर्ण, जाति आदिके भेदभावसे दूर रहकर जन सामान्यकी बोलचालकी भाषा हिन्दीमें भक्तिमार्गका उपदेश दिया। उनके बारह प्रमुख शिष्यों-में कबीरके अतिरिक्त पद्मावती नामक महिला भी थी।

रामानुजाचार्य—इनकी गणना प्रख्यात दार्शनिकों और दक्षिण भारतीय वैष्णव सम्प्रदायके महान् आचार्योंमें होती है। वे बारहवीं शताब्दीमें हुए। उनकी शिक्षा-दीक्षा दक्षिणके प्रसिद्ध विद्या-केन्द्र काँचीमें हुई थी और तिरुचिरापल्ली (त्रिचनापल्ली) के निकट श्रीरंगम् उनका निवास-स्थल था। तिरुचिरापल्ली उन दिनों चोल शासक अधिराजेन्द्र (दे०) के राज्यमें था, जो कट्टर शैव था। चोल सम्राट्के उत्पीड़नके कारण रामानुज स्वामी होयसल वंशके जैन धर्मावलम्बी शासक-बिट्टिगके राज्यमें मैसूर चले आये और वहाँ उन्होंने बिट्टिगको वैष्णव धर्मावलम्बी बना लिया। बिट्टिगने अपना नाम परिवर्तित करके विष्णुवर्धन (दे०) रखा और अपने शासनकाल (१११११–११४१ ई०में) बेल्लूर तथा हलेबिडके भव्य मन्दिरोंका निर्माण कराकर उनमें विष्णुकी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित कीं। कुछ समयके उपरान्त रामानुज स्वामी पुनः श्रीरंगम् वापस लौटे और वहीं उनका देहावसान हुआ। रामानुज शंकराचार्यके अद्वैतवाद-के प्रमुख आलोचक थे और उनका मत विशिष्टाद्वैत मत-के नामसे विख्यात है।

रामायण—संस्कृत साहित्यमें दो अतिप्रसिद्ध महाकाव्य हैं-रामायण और महाभारत। रामायणकी प्राचीनता निर्विवाद है। इसकी रचना वाल्मीकिने की थी। संस्कृत साहित्यमें इसे आदि-काव्य माना जाता है। कुछ विद्वानों-का अनुमान है कि रामायणकी रचना मूल महाभारत (जय या भारत) के उपरान्त हुई और इसका रचना-काल संभवतः ईसवी सन्की प्रारम्भिक शताब्दी है। किन्तु जिस रूपमें महाभारत आज दिन उपलब्ध है उससे निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि रामायणकी

रचना उसके पूर्व ही हुई होगी। रामायणमें रामचन्द्रजीकी कथा है जो अयोध्याके राजा दशरथके ज्येष्ठ पुत्र थे। कैकेयीके प्रति प्रतिज्ञावद्ध पिताके वचनोंकी पूर्ति हेतु राम अपनी पत्नी सीता और भ्रातृभक्त लक्ष्मणके साथ अवधका राज्य तथा सिंहासनका अधिकार छोड़कर १४ वर्षोंके लिए वनको चले गये। सीताका रावण द्वारा हरण, हनुमानकी सहायतासे सीताकी खोज, रावणका वध और सीताकी अग्नि-परीक्षा आदिके अनेक प्रसंग इस महाकाव्यमें वर्णित हैं। रामके अनुकरणीय चरित्र और हिन्दुओंके मान्य आदर्शोंका रामायणमें विशद् वर्णन है।

रायगढ़–महाराष्ट्रका प्रसिद्ध दुर्ग, जिसका निर्माण छत्रपति शिवाजीने कराया था। १६७४ ई०में शिवाजीका स्वतंत्र शासक (छत्रपति) के रूपमें इसी दुर्गमें विधिवत् राज्याभिषेक हुआ था। उपरान्त १६८९–९० ई०में औरंगजेबने इसपर अधिकार कर लिया।

रायचूर–अति प्राचीन कालसे ही कृष्णा और तुंगभद्रा नदियोंके बीचका उपजाऊ भू-भाग रायचूर दोआबके नाम से प्रसिद्ध रहा है और रायचूरका नगर इन्हीं दोनों नदियोंके बीच एक दुर्ग द्वारा सुरक्षित है। सामरिक महत्ताके कारण यह नगर शताब्दियोंतक बहमनी और विजयनगरके राज्योंके बीच संघर्षका कारण रहा। अधिकांशतया इसपर बहमनी वंशका ही अधिकार रहा, पर १५२० ई०में विजयनगरके प्रसिद्ध शासक कृष्णदेव राय (दे०) ने बीजापुरके शासक इस्माइल आदिलशाहको परास्त करके रायचूरपर अधिकार कर लिया। तबसे लेकर १५६५ ई०में निजयनगर राज्यके नष्ट होनेतक उसपर विजयनगरका अधिकार रहा।

राय दुर्लभ (दुर्लभ राय)–बंगालके नवाब सिराजुद्दौलाकी सेवामें निरत एक सेनानायक। मीरजाफर नामक एक दूसरे सेनानायकसे मिलकर इसने नवाब सिराजुद्दौलाके विरुद्ध इस विचारसे एक षड्यंत्र रचा कि अंग्रेजोंकी सहायतासे नवाबको पदच्युत करके मीर जाफरको बंगालकी गद्दीपर बैठाया जाय। इसी षड्यंत्रके फलस्वरूप पलासीका युद्ध (दे०) हुआ, जिसमें राय दुर्लभ और मीरजाफरने नवाबके साथ विश्वासघात किया और युद्धमें निश्चेष्ट रहे। फलतः अंग्रेजोंको युद्धमें सफलता मिली और मीर जाफर बंगालका नवाब तथा राय दुर्लभ उसका दीवान नियुक्त हुआ। किन्तु शीघ्र ही उससे मीर जाफर अप्रसन्न हो गया और राबर्ट क्लाइव (दे०) के हस्तक्षेपसे ही उसके प्राण बचे। राय दुर्लभकी जिस समय मृत्यु हुई, लोग उसको विस्मृत कर चुके थे।

राय पिथौरा–देखिये 'पृथ्वीराज'।

राय, महाराज कृष्णचन्द्र (१७२८–८२)–जन्म बंगालमें नदियाके एक संभ्रान्त जमींदार परिवारमें। वे हिन्दू धर्म और संस्कृत साहित्यके महान् पोषक थे। उन्होंने अनेक पण्डितों, मन्दिरों तथा धर्मार्थ पुण्यशालाओंको प्रभूत दान दिया। उन्होंने नवाब सिराजुद्दौलाके विरुद्ध षड्यंत्रकारियोंको अंग्रेजोंसे सहायता लेनेका परामर्श दिया था, किन्तु पलासीके युद्धमें उन्होंने स्वयं कोई सक्रिय भाग नहीं लिया। उनके वंशजोंमें सातवीं पीढ़ीके महाराज क्षौणीशचन्द्र हुए जो बंगालके गवर्नरकी कार्यकारिणी परिषद्के १९२४ से १९२८ ई०तक सदस्य थे।

राय, राजा राममोहन (१७७२–१८३३)–भारतवर्षमें आधुनिक युगके जन्मदाता। जन्म पश्चिमी बंगालके हुगली जिलेके राधानगर स्थलपर ब्राह्मण परिवारमें। शिक्षा-दीक्षा घरपर ही हुई। संस्कृत, अरबी और फारसीका समुचित ज्ञान प्राप्त कर लेनेके उपरान्त २२ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने अंग्रेजी पढ़ना प्रारम्भ किया। वे कई भाषाओंके ज्ञाता थे। हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाई धर्मग्रंथोंके अध्ययनका उनके धार्मिक विचारोंपर गम्भीर प्रभाव पड़ा। १८०४ ई०से १८१४ ई०तक ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें रहे और अन्तिम पाँच वर्षों (१८०९–१४) में उन्होंने रंगपुर (अब बंगला देशमें) में तत्कालीन जिलाधीश डिग्बी महोदयके सरिश्तेदारके रूपमें कार्य किया। १८१४ ई०में उन्होंने कम्पनीकी सेवासे अवकाश ले लिया और १८१५ ई०में कलकत्ता आकर वहीं स्थायी रूपसे रहने लगे।

१८०३ ई०में राम मोहनरायने फारसी भाषामें एक इश्तिहार प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने सभी धर्मोंमें प्रचलित अंधविश्वासों और मूर्तिपूजा आदिका विरोध किया। रंगपुरके प्रवासकालमें उनके धार्मिक विचार जनसाधारणके सम्मुख प्रकट होने लगे थे, किन्तु १८१५ ई०में स्थायी रूपसे जब वे कलकत्तामें रहने लगे, तभीसे उन्होंने अपने धार्मिक विचारोंका नियमित रूपसे पूर्ण निष्ठापूर्वक प्रचार प्रारम्भ किया, जिन्होंने १८२८ ई०में ब्रह्मवादका रूप धारण किया। उन्होंने एकेश्वरवादका प्रचार किया, हिन्दुओंके बहुदेववादका, विविध कर्मकांडों तथा मूर्तिपूजाका खंडन किया। उनके विचारानुसार उपनिषदों और वेदान्तशास्त्रोंमें ही हिन्दू धर्मका सच्चा स्वरूप उपलब्ध है और केवल निर्गुण ब्रह्मकी उपासना ही अभीष्ट है। उनका यह सिद्धान्त हिन्दू धर्मशास्त्रोंपर ही आधारित था, फिर भी स्वाभाविक था कि तत्कालीन

कट्टरपंथी हिन्दू समाज उनका घोर विरोध करता। फलतः राममोहन रायको सामाजिक बहिष्कार तथा विभिन्न उत्पीड़नोंको सहना पड़ा। उनका धर्म निर्गुण एकात्मवाद अर्थात् ब्रह्मवाद था। उसमें पैगम्बरों तथा मूर्तिपूजाका कोई स्थान न था। अतएव उन्हें केवल हिन्दुओं-का ही नहीं वरन् मुसलमानों और कट्टर ईसाइयोंके भी तीव्र विरोधका सामना करना पड़ा। उन्हें धमकियाँ और प्रलोभन दिये गये; किन्तु उन्होंने धीरता और साहससे काम लिया। वे अपने धार्मिक विश्वास तथा सिद्धान्तों पर अटल रहे। उन्होंने यह कभी अस्वीकार नहीं किया कि मैं हिन्दू हूँ। उनका ध्येय हिन्दू धर्मानुयायी रहकर ही उसमें सुधार करना था।

राजा राम मोहनराय मुख्यतः चिन्तनशील व्यक्ति थे। उनका उद्देश्य समस्त सामाजिक कुरीतियोंको मिटाना था। इसी कारण उन्होंने जाति प्रथा, बहु विवाह, सतीप्रथा, स्त्रीसमाजमें अज्ञान और विधवाओंके पुर्नविवाहपर प्रतिबन्ध तथा सामान्य जनसमुदायके हेतु वैज्ञानिक शिक्षा-प्रणालीके अभाव आदिका घोर विरोध किया। वे इन समस्त बुराइयोंको हटानेके पक्षमें थे और उनको अपने प्रयासोंमें प्रायः सभी दिशाओं, विशेषतः शिक्षाके क्षेत्रमें, यथेष्ट सफलता मिली। स्वयं संस्कृतके विद्वान् होते हुए भी वे अपने समस्त समकालीन विद्वानों-की अपेक्षा पाश्चात्य भाषाओं, विज्ञान एवं दर्शनके ज्ञान-पर विशेष बल देते थे, जिससे पूर्व एवं पश्चिमके सम-न्वित ज्ञानसे लाभ उठाकर भारतीयोंकी नयी पीढ़ीका विकास हो सके।

राजनीतिके क्षेत्रमें भी समस्त भारतीयोंमें राममोहन राय अग्रणी थे। स्वाधीनताके प्रति अटूट प्रेम और देश-वासियोंमें अपना शासन स्वयं कर लेनेकी क्षमता लाना उनके राजनीतिक दृष्टिकोणके मुख्य सिद्धान्त थे। उन्होंने संवैधानिक रीतिसे राजनीतिक आन्दोलनोंको चलानेका मार्ग बताया और इस दृष्टिसे उन्हे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके बीज-वपनका श्रेय दिया जा सकता है। उन्होंने तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्स द्वारा प्रचलित किये गये प्रेस सम्बन्धी निर्देशों और १८२७ ई०के जूरी ऐक्ट (अधिनियम) के विरुद्ध याचिकाएँ प्रस्तुत करके उनका विरोध किया। जूरी अधिनियमकी विडंबना यह थी कि हिन्दुओं और मुसलमानोंको केवल ईसाइयों (चाहे वे भारतीय हों अथवा यूरोपीय) के ही नहीं बल्कि अपने धर्मानुयायियोंके मुकदमोंमें भी जूरीके रूपमें अभि-योगोंकी सुनवाई करनेका अधिकार न था और ईसाइयों-को हिन्दुओं और मुसलमानोंके वादोंकी सुनवाईमें जूरी बननेका अधिकार था। उन्होंने कर-मुक्त जमीनोंपर कर लगानेके सरकारी प्रस्ताव, ईस्ट इण्डिया कम्पनीके एका-धिकार तथा विशेषाधिकारोंकी अवधि बढ़ानेका भी विरोध किया। उनकी प्रबल इच्छा थी कि भूमिकर कम किया जाये, ताकि कृषकोंकी दशामें सुधार हो। वे चाहते थे कि देशका औद्योगिक विकास हो तथा अंग्रेजों-की राजनीतिक प्रभुता और औद्योगिक उन्नतिके कारण भारतकी सम्पदाका प्रतिवर्ष इंग्लैण्ड निर्गमन बन्द हो।

राममोहन राय मानव स्वतंत्रताके प्रेमी थे और उसे जाति, धर्म अथवा क्षेत्रके आधारपर प्रतिबंधित करनेके विरुद्ध थे। १८२१ ई०में नेपुल्सकी क्रान्तिकी असफलता का उन्हें उतनी ही मात्रामें दुःख हुआ जितनी मात्रामें १८२३ ई०की स्पेनिश अमेरिकन राज्य-क्रान्ति और १८३० ई०की फ्रांसकी राज्य-क्रान्तिकी सफलतासे प्रसन्नता हुई। १८३० ई०से इंग्लैण्डमें होनेवाले सुधार आन्दोलनकी प्रगतिमें वे विशेष रुचि लेते रहे और १८३२ ई०में प्रथम सुधार अधिनियम पारित होनेपर उन्हें विशेष प्रसन्नता हुई। उस समय वे इंग्लैण्डमें ही थे। १८३० ई०में वे तत्कालीन मुगल सम्राट् अकबर द्वितीय (१८०६–३७) (दे०) की याचिका इंग्लैण्डके शासक और वहाँकी संसद (पार्लियामेण्ट) के सम्मुख प्रस्तुत करने गये थे। मुगल सम्राट्ने उन्हें राजाकी उपाधि दी थी। इंग्लैण्डमें अपने तीन वर्षोंके प्रवासकाल-में (१८३०–३३ ई०) उन्होंने मुगल सम्राट्का ही प्रतिनिधित्व नहीं किया, वरन् पाश्चात्य जगतमें नवीन भारतका भी प्रतिनिधित्व किया। उन्होंने अपने लेखों और भाषणों द्वारा इंग्लैण्डको भारतीय आत्माका परि-चय दिया। उन्होंने इंग्लैण्ड तथा फ्रांसमें जहाँ वे १८३२ ई०में गये थे, अनेक गण्यमान विद्वानोंके सम्मुख योग्यतापूर्वक भारतीय दृष्टिकोणको प्रस्तुत किया और उनके विचारोंका सभी लोगोंने समुचित आदर भी किया। किन्तु इतना कठिन परिश्रम उनके स्वास्थ्यके हेतु अत्यन्त अहितकर सिद्ध हुआ और २७ सितम्बर १८३३ ई०को ब्रिस्टलमें उनकी मृत्यु हो गयी।

राममोहन राय कुशल लेखक भी थे। उन्होंने फारसी, अंग्रेजी और बंगलामें कई पुस्तकें लिखीं। बँगला साहित्यमें तो उनकी सशक्त लेखनीका योगदान इतना महत्त्वपूर्ण है कि उन्हें आधुनिक बंगला गद्य साहित्यका जन्मदाता कहा जाता है। उन्होंने फारसीमें 'तुहफ़ातुल मुबाहिदीन' और 'मनाज़रतुल आदियान' नामक दो

पुस्तकें, अंग्रेजीमें संक्षिप्त वेदान्त, यीशुके सिद्धान्त, ईसाई जनतासे अपील तथा आप ब्रह्मके उपासनागृहमें क्यों जाते हैं ? तथा बंगलामें वेदान्त सूत्र, ईश, केन, मुण्डक तथा माण्डूक्य उपनिषदें आदि ग्रन्थ रचे। (विशेष विवरण हेतु देखिये: **एस० डी० कालेट–लाइफ ऐण्ड लेटर्स आफ राममोहन राय तथा रामानन्द चटर्जी कृत राममोहन राय एण्ड माडर्न इंडिया**)

रालिन्सन, लार्ड हेनरी सेमूर–१९२० से १९२५ ई० तक भारतका सेनाध्यक्ष। उसीके सेवाकालमें भारतीयोंको ब्रिटिश भारतीय सेनामें उच्च पद दिया जाना प्रारंभ हुआ। मार्च १९२५ ई०में दिल्लीमें उसकी मृत्यु हो गयी।

रालिन्सन, सर हेनरी क्रेसविक (१८१०–९५)–ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सैनिक सेवा हेतु १८२७ ई०में भारत आया। किन्तु भारत आकर वह विख्यात प्राच्य-विद्याविद् बन गया और बहिस्तानी अभिलेखकी लिपिको सर्वप्रथम पढ़नेका श्रेय उसीको है। बेबीलोनिया और असीरियाके प्राचीन इतिहासपर उसने कई उच्च कोटिके ग्रंथ लिखे हैं।

राल्फ फ़िंच–एक अंग्रेज व्यापारी, जो १५८३ ई०में भारत आया। उसने उत्तरी भारत, बंगाल, बर्मा, मलक्का और श्रीलंकाकी यात्रा की और १५९१ ई०में सकुशल इंग्लैंड वापस लौट गया। उसने अपनी यात्राका जो विवरण तैयार किया वह उन अभिलेखोंमेंसे एक है, जिनके आधारपर ईस्ट इंडिया कम्पनीने अपने प्रारम्भिक व्यापार-की योजनाएँ बनायीं।

रावण–रामायण महाकाव्यमें रावण लंकाके राक्षसोंका राजा और खलनायकके रूपमें चित्रित है। उसने रामकी पत्नी सीताका छलपूर्वक हरण किया और अपने कुकृत्यों-के कारण परिवार सहित रामके हाथों उसकी मृत्यु हुई।

राष्ट्रकूट वंश–इसका आरम्भ दन्तिदुर्गसे लगभग ७३६ ई०-में हुआ। उसने नासिक (दे०) को अपनी राजधानी बनाया। उपरान्त इन शासकोंने मान्यखेत (आधुनिक मालखंड) को अपनी राजधानी बनाया। राष्ट्रकूटोंने ७३६ ई० से ९७३ ई० तक राज्य किया और इस वंशमें १४ शासक हुए, जो तिथिक्रमानुसार क्रमशः दन्तिदुर्ग (७३६–७५६ ई०), कृष्ण प्रथम (७५६–७२ ई०), गोविन्द द्वितीय (७७३–८०), ध्रुव धारावर्ष (७८०–९३), गोविन्द तृतीय (७९३–८१४), शर्व अमोघवर्ष प्रथम (८१४–७८), कृष्ण द्वितीय (८७८–९१४), इन्द्र तृतीय (९१४–२७), अमोघवर्ष द्वितीय (९२८–२९), गोविन्द चतुर्थ (९३०–३६), अमोघवर्ष तृतीय (९३६–३९), कृष्ण तृतीय (९३९–६७), खोट्टिग (९६७–७२) और कर्क्क द्वितीय (९७२–७३) थे।

दन्तिदुर्ग वातापीके चालुक्योंके अधीन सामन्त था। उसने अंतिम चालुक्य शासक कीर्तिवर्मा द्वितीयको पराजित करके दक्षिणमें चालुक्योंकी सत्ता समाप्त-प्राय कर दी। तत्पश्चात् कृष्ण प्रथमने चालुक्योंकी रही सही शक्ति भी नष्ट कर दी और एलोराके सुप्रसिद्ध कैलाशनाथ मन्दिरका निर्माण कराया जिसके फलस्वरूप भारतीय इतिहासमें उनका नाम अमर हो गया है। चौथे शासक ध्रुवने गुर्जर प्रतिहार शासक वत्सराजको पराजित किया और पाँचवे शासक गोविन्द तृतीयने उत्तरी भारत-पर आक्रमण करके गुर्जर प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीय और पालशासक धर्मपालको पराजित किया। उसने राष्ट्र-कूटोंके साम्राज्यको मालवप्रदेशसे दक्षिणमें कांचीतक विस्तृत कर दिया। छठा शासक अमोघवर्ष धर्मभीरु और शान्तिप्रिय था, जिसने लगभग ६४ वर्षोंतक राज्य किया। उसीने मान्यखेट (मालखेड) को राष्ट्रकूटोंकी राजधानी बनाया। उसकी शक्ति और वैभवसे अरबयात्री सुलेमान इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने अमोघवर्षकी गणना विश्वके तत्कालीन चार महान् शासकोंमें की। सातवें और आठवें शासक, कृष्ण द्वितीय तथा इन्द्र तृतीय-ने भी उत्तरी भारतपर आक्रमण किया था। इन्द्र तृतीयने कन्नौजके तत्कालीन शासक महीपालको पराजित करके भागनेको विवश किया। बारहवें शासक कृष्ण तृतीयके शासनकालमें दक्षिणके चोलशासकोंसे एक दीर्घकालीन संघर्ष आरंभ हुआ, जो राष्ट्रकूटोंके उत्तराधिकारी चालुक्योंके राज्यकालमें भी चलता रहा।

राष्ट्रकूटोंका पराभव कल्याणीके चालुक्यों द्वारा हुआ। चालुक्य शासक तैलप उपनाम तैलने ९७३ ई०में इस वंशके अन्तिम शासक कर्क्क द्वितीयको पराजित करके मान्यखेटपर अधिकार कर लिया। राष्ट्रकूट शासक प्राचीन हिन्दूधर्मके प्रबल समर्थक थे। उन्होंने कई भव्य मन्दिरोंका निर्माण कराया। वे संस्कृत तथा कन्नड़ साहित्यके पोषक थे। उनका धार्मिक दृष्टिकोण उदार था। सिंधके मुसलमान अरब शासकोंसे उनके मैत्रीपूर्ण संबन्ध थे। अरबोंने इस वंशके शासकोंको बल्हरा (बल्लराज) सम्बोधित किया है।

राष्ट्रीय कांग्रेस–देखिये, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस।

रासबिहारी घोष–कलकत्ता हाईकोर्टके एक प्रमुख वकील,

जो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके सूरत अधिवेशन (१९०७) के अध्यक्ष चुने गये थे। इस अधिवेशनमें नरमदल और गरमदल वालोंके बीच तीव्र संघर्ष हुआ और अधिवेशन भंग हो गया। इसके बाद कांग्रेसका अगला अधिवेशन मद्रासमें हुआ। उसकी अध्यक्षता भी रासबिहारी घोषने की। वे बहुत बड़े दानी भी थे। उन्हींके दानसे कलकत्ता विश्वविद्यालयमें स्नातकोत्तर शिक्षाकी व्यवस्था संभव हो सकी थी।

राहुल—गौतमबुद्धका पुत्र। बाल्यावस्थामें ही उसके पिता (गौतमबुद्ध) ने उसे प्रवज्या देकर बौद्ध भिक्षु बना लिया था।

रिपन, लार्ड जार्ज फ़ेडरिक सैमुअल राबिन्सन (१८२७–१९०९ ई०)—१८८० से १८८४ ई० तक भारतका गवर्नर-जनरल तथा वाइसराय। ग्लैडस्टोनकी भाँति रिपनका भी राजनीतिक दृष्टिकोण उदार था, जिसके कारण वह लोकप्रिय शासक सिद्ध हुआ। भारतमें आते ही सर्वप्रथम उसने द्वितीय अफगान-युद्ध (दे०) समाप्त करा दिया और अब्दुर्रहमानको अफगानिस्तानका अमीर मानकर वहाँसे समस्त ब्रिटिश सेनाएँ वापस बुला लीं। भारतके आन्तरिक शासनमें सुधार करनेके विचारसे उसने उदार दृष्टिकोण अपनाया। फलस्वरूप शराब, स्पिरिट, शस्त्र और गोलाबारूद सदृश कुछ थोड़ीसी वस्तुओंको छोड़कर उसने मुक्त व्यापार प्रणालीको प्रचलित किया तथा नमकपर लगे करमें भी कमी कर दी। उसने ब्रिटिश सरकारको इस बातपर राजी करनेका असफल प्रयास किया कि जिन जिलोंका सर्वेक्षण हो चुका हो वहाँ वस्तुओं की मूल्यवृद्धिको छोड़कर अन्य किसी दशामें करवृद्धि न की जाय।

उसने प्रत्येक तहसीलमें ऐसी स्थानीय परिषदोंका निर्माण कराया, जिनमें जनता द्वारा चुने प्रतिनिधि सरकारी अनुदानमें प्राप्त धनराशिको स्थानीय सड़कों आदि की मरम्मत, पहरेकी व्यवस्था तथा अन्य सार्वजनिक आवश्यकताओंकी पूर्तिमें लगा सकें। उसने जिलाबोर्डोंकी स्थापना करके उन्हें शिक्षा, सार्वजनिक निर्माण तथा अन्य सार्वजनिक कार्योंका प्रबन्ध-भार सौंप दिया। जिन नगरोंमें नगरपालिकाओंका गठन हो चुका था वहाँ उसने गैर-सरकारी अध्यक्ष चुने जानेकी प्रथा चलायी। लार्ड लिटन (दे०) द्वारा १८७८ ई० में पारित वर्नाक्यूलर प्रेस-ऐक्ट रद्द कर दिया, जिससे देशी भाषाओंमें प्रकाशित होनेवाले समाचार-पत्रोंको भी अंग्रेजी पत्रोंकी भाँति स्वतंत्रता प्राप्त हुई। उसने शिक्षाक्षेत्रमें हण्टर कमीशनके सुझावोंके आधारपर प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयोंमें सुधार संबन्धी नीतिको स्वीकृति दे दी। १८८१ ई०में रिपनने मैसूरके बँटवारेको मान्यता दी और राज्यका शासन वहाँके राजाको इस शर्तपर सौंप दिया कि शासन-कार्य सुचारु एवं उत्तम रीतिसे चलाया जाय।

१८८१ ई०में ही भारतीय कारखानोंके श्रमिकोंकी स्थिति सुधारनेके लिए एक कानून बना, जिसके द्वारा नाबालिग बालकों की सुरक्षा हेतु अनेक कार्यके घंटोंके निर्धारण एवं खतरनाक मशीनोंके चारोंओर बचाव हेतु समुचित रक्षा-व्यवस्था तथा निरीक्षकोंकी नियुक्तिका प्रावधान किया गया। किन्तु सुधारोंकी दृष्टिसे उसका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य १८८३ ई०का इल्बर्टबिल (दे०) था, जिसके द्वारा न्यायके क्षेत्रमें रंगभेदको दूर करनेका प्रयास किया गया था। इस बिलके द्वारा भारतीय न्यायाधीशोंको भी यूरोपीय न्यायाधीशोंकी भाँति यूरोपियनोंके फौजदारी वादोंकी सुनवाईका अधिकार दिये जानेका सुझाव था। किन्तु इस बिल (प्रस्ताव) का यूरोपियन तथा एंग्लोइंडियन समुदाय द्वारा इतना अधिक विरोध हुआ कि बिलकी धाराओंमें विशेष परिवर्तन करके ही उसे पारित किया गया और रंगभेद बना रहा। फिरभी ऐसा प्रस्ताव रखने मात्रसे भारतीय जनतामें लार्ड रिपन की लोकप्रियता काफी बढ़ गयी। १८८४ ई०में त्यागपत्र देकर प्रस्थान करते समय भारतीयोंने उसे सैकड़ों अभिनन्दन-पत्र देकर सम्मानित किया और शिमलासे बम्बई तककी यात्राके दौरान स्थान-स्थानपर उसे भावभीनी विदाई दी गयी।

रीडिंग, लार्ड रुफ़स डेनियल आइजक्स (१८६०–१९३५)—१९२१ से १९२५ ई०तक भारतका वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल। उसने तत्कालीन भारतीय राजनीतिक परिस्थितियोंमें हिन्दू-मुस्लिम मतभेदोंका यथेष्ट लाभ उठाया और महात्मा गांधीको कारागार भेजकर असहयोग आन्दोलनको दबानेमें सफलता प्राप्त की। भारतीय वैधानिक समस्याओंके समाधानमें उसका कोई ठोस योगदान नहीं था।

रीमाकोस या डायमेचस—एक यूनानी राजदूत, जिसे सीरियाके सम्राट्ने द्वितीय मौर्य सम्राट् बिन्दुसार (दे०) (३०० से २७३ ई०पू०) के दरबारमें भेजा था।

रुक्नुद्दीन—दिल्लीके सुल्तान इल्तुतमिशका पुत्र। इल्तुतमिश द्वारा अपनी पुत्री रजियाको उत्तराधिकारी चुननेके बावजूद दरबारके अमीरोंने १५३६ ई०में रुक्नुद्दीनको ही शासक बनाया। किन्तु वह अयोग्य शाशक निकला।

कुछ ही महीनोंके शासनके उपरान्त सिंहासनसे उतार कर उसका वध कर दिया गया ।

रुक्नुद्दीन इब्राहीम–दिल्लीके खिलजी वंशीय सुल्तान जलालुद्दीन खिलजीका उसकी बेगम मलकाजहाँसे उत्पन्न छोटा पुत्र । जलालुद्दीन खिलजीकी हत्या उसके भतीजे और दामाद अलाउद्दीन खिलजी द्वारा करा दिये जानेके उपरान्त मलकाजहाँके प्रभावसे रुक्नुद्दीन ही जुलाई १२९६ ई०में सुल्तान घोषित हुआ । तत्पश्चात् अलाउद्दीनने उसे सिंहासनसे च्युत कर बन्दी बना लिया और उसकी आँखें भी निकलवा लीं । इस तरह नवम्बर, १२९६ ई०में अलाउद्दीन खिलजी दिल्लीका सुल्तान बना ।

रुक्नुद्दीन बरबक–बंगालका शासक, जिसने १४६० से १४७४ ई०तक राज्य किया । उसने अपने यहाँ बहुतसे हब्शियों (अबीसीनियाँसे लाये गये गुलामों) को सेवा कार्यमें लगा रखा था । इनमेंसे कुछ गुलाम शासनके उच्चपदोंपर भी नियुक्त थे । उसकी गणना चतुर और न्यायप्रिय शासकोंमें होती है ।

रुद्रदामा प्रथम–सौराष्ट्रके शकक्षत्रप जयदामाका पुत्र और इस शाखाके प्रवर्तक चष्टनका पौत्र । उसकी राजधानी उज्जयिनी (उज्जैन) थी । रुद्रदामा प्रथमने प्रायः १२८ से १५० ई०तक राज्य किया । वह इस वंशका सबसे प्रतापी शासक था । उसने अपने सम्बन्धी वासिष्ठी पुत्र पुलुमावि द्वितीयको पराजित करके पूरे सौराष्ट्रके अतिरिक्त मालवा, कच्छ, सिन्ध, कोंकण तथा अन्य भू-भागोंपर भी अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया । १५० ई०के लगभग उसने गिरनारके निकट सुदर्शन झीलका जीर्णोद्धार कराया । प्रारम्भमें इस झीलका निर्माण सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्यने कराया था और उसके पौत्र अशोकने इसमेंसे कई नहरें निकलवायी थीं ।

रुद्रदामा द्वितीय–परवर्ती पश्चिमी क्षत्रपोंका एक शासक । मूल क्षत्रप शाखासे उसका सम्बन्ध स्थापित करना कठिन है । उसने सम्भवतः ३०१ से ३०५ ई०तक राज्य किया तो भी केवल नामके अतिरिक्त उसका कोई विशेष ऐतिहासिक विवरण उपलब्ध नहीं है ।

रुद्रदेव–उत्तरी भारतका एक शासक, जिसका उल्लेख प्रयोग स्तम्भ-लेखमें हुआ है । समुद्रगुप्त (दे०) ने अपने राज्यकालके प्रारम्भमें ही उसको पराजित करके उसका राज्य अपने साम्राज्यमें मिला लिया था । रुद्रदेव और उसकी राज्य सीमाओंका ठीक निर्धारण नहीं हो सका है ।

रुद्रम्मा देवी (रुद्रम्बा देवी अथवा रुद्रम् देवी)–वारंगलके काकतीय वंशज शासक गणपति (दे०) की पुत्री । उसने प्रायः १२५९ से १२९५ ई० तक राज्य किया । उसे कदाचित् अपने पिताके जीवनकालमें ही शासक नियुक्त कर दिया गया था । मार्कोपोलो (दे०) नामक प्रसिद्ध यात्रीने उसीके शासनकालके मध्य १२ वीं शताब्दीके अन्तिम दशकमें उसके राज्यमें भ्रमण किया तथा वह उसकी सुव्यवस्थित शासन-प्रणालीसे अत्यधिक प्रभावित हुआ था ।

रुद्रसिंह–चौथी शताब्दीमें पश्चिमी क्षत्रप वंशके रुद्रसिंह द्वितीय तथा रुद्रसिंह तृतीय, दो शासक हुए । रुद्रसिंह द्वितीयने प्रायः ३०४ ई०से राज्य किया था । उपरांत इस क्षत्रप (शक) वंशका अन्तिम शासक रुद्रसिंह तृतीय हुआ, जिसे चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यने पराजित कर शकोंका नाश कर दिया । सिक्कोंपर प्राप्त तिथिकी गणनाके अनुसार उसका ३८८ ई०तक राज्य करना सिद्ध होता है ।

रुद्रसेन प्रथम–वाकाटक वंशीय सम्राट् प्रवरसेनका पौत्र तथा उत्तराधिकारी । उसने प्रायः ३३५ से ३४० ई० तक राज्य किया ।

रुद्रसेन द्वितीय–वाकाटक शासक पृथ्वीशेण प्रथमका पुत्र और उत्तराधिकारी तथा रुद्रसेन प्रथमका पौत्र । इसके समय वाकाटकोंकी शक्ति बढ़ी हुई थी । अतएव गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीयने अपनी पुत्री प्रभावती गुप्ताका विवाह उसके साथ कर दिया, किन्तु दुर्भाग्यवश केवल ३८५ से ३९० ई० तक सफलतापूर्वक राज्य करनेके उपरान्त रुद्रसेनकी मृत्यु हो गयी ।

रुम्मिनदेई (लुम्बिनी)–नेपालकी तराईमें एक छोटा-सा गाँव । यह नेपालके बिथरी जिले और उत्तर प्रदेशके बस्ती जिलेकी सीमाके निकट है । अनुश्रुतियोंके अनुसार बुद्धका जन्म लुम्बिनी ग्राममें हुआ था । यहाँपर सम्राट् अशोकका एक स्तम्भ पाया गया है । स्तम्भ-लेखके अनुसार सम्राट् अशोकने अपने राज्याभिषेकके बीसवें वर्षमें लुम्बनी ग्रामकी यात्रा की और वहाँ भगवान् बुद्धके जन्म-स्थानपर उक्त स्तम्भकी स्थापना करायी ।

रुहेलखण्ड–अवधके उत्तर पश्चिम, गंगानदीके उत्तर और कुमायूँकी पहाड़ियोंके दक्षिणमें स्थित भू-भाग । १७४० ई०में अफगानोंकी रोहिल्ला नामक जाति द्वारा अधिकार कर लेनेके कारण इसका नाम रुहेलखण्ड पड़ा । यद्यपि इस भू-भागमें हिन्दू बहुसंख्यक थे, तथापि शासन रुहेलोंका था । पानीपतके तृतीय युद्ध (दे०) (१७६१ ई०) में रुहेलोंने अहमदशाह अब्दालीका साथ दिया और १०

वर्षोंके बाद जब मराठोंका पुनरुत्कर्ष हुआ उन्हें, मराठोंसे भय होने लगा। इस कारण उन्होंने अवधके तत्कालीन नवाब शुजाउद्दौलासे १७७२ ई०में सुरक्षात्मक संधि की जिसके अनुसार मराठोंके आक्रमणके समय नवाब द्वारा सैनिक सहायता किये जाने और बदलेमें रुहेलोंकी ओरसे नवाबको ४० लाख रुपयोंकी धनराशि देना स्वीकार किया गया।

१७७३ ई०में मराठोंने रुहेलखण्डपर आक्रमण करना चाहा, पर रुहेलोंके सहायतार्थ अंग्रेजोंके एक सैनिक दस्ते सहित नवाबकी सेनाओंको आते देख वे पीछे हट गये। बादमें नवाबने १७७२ ई०की संधिके अनुसार रुहेलोंसे ४० लाख रुपयोंकी धनराशि माँगी। किन्तु रुहेलोंने इस बहानेसे उक्त धनराशि देना अस्वीकार कर दिया कि मराठे स्वयं लौट गये और नवाबकी सेनाको कोई युद्ध नहीं करना पड़ा। इसपर रुष्ट होकर नवाबने १७७३ ई०में अंग्रेजोंसे एक सन्धि की जो बनारसकी संधिके नामसे विख्यात है। इसके अनुसार अंग्रेजोंने नवाबको एक सैनिक टुकड़ीकी सहायता देना स्वीकार किया, जिसके बलपर वह रुहेलोंसे उक्त धनराशि प्राप्त करनेमें समर्थ हो। इस प्रकार अंग्रेजी सेनाके बलपर नवाबने १७७४ ई०में आक्रमण करके रुहेला शासक हाफिज रहमत खाँको मीरनपुर कटराके युद्धमें मार डाला और केवल रामपुरके छोटे भू-भागको छोड़कर समस्त रुहेलखंडपर अधिकार कर लिया।

अवधके नवाब और रुहेलोंके युद्धमें अंग्रेजी सेनाके इस प्रकारके अनुचित हस्तक्षेप की इंग्लैंड (पार्लियामेन्ट)-में तीव्र आलोचना हुई। तत्कालीन गवर्नर-जनरल वारेन-हेस्टिंग्सके विरुद्ध लगाये गये आरोपोंमें एक आरोप इस अनौचित्यका भी था। यद्यपि वारेन हेस्टिंग्स इन आरोपोंसे मुक्त कर दिया गया तथापि उसकी अत्यधिक भर्त्सना हुई। नवाब भी अधिक दिनों तक रुहेलखंडपर अपना अधिकार न रख सका और जब लार्ड वेलेजली गवर्नर-जनरल बनकर आया तब १८०१ ई०में रुहेलखण्ड अंग्रेजोंको दे दिया गया।

रूप गोस्वामी—प्रारम्भमें बंगालके शासक हुसैन शाह (दे०) (१४९२ से १५१८ ई०) का मंत्री। रूप गोस्वामी अपनी सन्त प्रकृति और विद्वताके कारण अधिक विख्यात हैं। उन्होंने व्रजभूमिमें निवास करते हुए लगभग २५ ग्रन्थोंकी रचना की, जिनमें 'विदग्धमाधव' तथा 'ललित-माधव' अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। (**यदुनाथ सरकार कृत हिस्ट्री आफ बंगाल, द्वितीय भाग**)।

रूपमती—मालवाके शासक बाजबहादुरकी विख्यात प्रेमिका। दोनोंकी प्रेम कथा हिन्दुओं और मुसलमानों की परंपरागत गाथाओंमें विशेषरूपसे वर्णित है। मांडूमें स्थित दो सुन्दर इमारतें रूपमती और बाजबहादुरके महलोंके नामसे विख्यात हैं।

रेग्यूलेटिंग ऐक्ट—१७७३ ई०में इंग्लैण्डकी पार्लियामेन्ट द्वारा पारित विधेयक। इसका मुख्य ध्येय उन भारतीय भू-भागोंकी शासन-व्यवस्थामें सुधार करना था, जो ईस्ट इंडिया कम्पनीके अधिकारमें आ चुके थे। ऐक्टके अनुसार कम्पनीका नया संविधान बनाया गया, जिसकी मुख्य धाराएँ थीं कि कम्पनीके निर्देशक ४ वर्षोंके लिए चुने जाँय, उनमेंसे एक चौथाई प्रतिवर्ष अवकाश लें, तथा वे कमसे कम एक वर्ष निदेशकके पदसे पृथक् रहें। कम्पनीके निदेशक प्रतिवर्ष इंग्लैण्डके सर्वोच्च राजकोषाधिकारी (चांसलर आफ एक्सचेकर) के सम्मुख ऐसे समस्त पत्र व्यवहार प्रस्तुत करें, जो भारतसे होनेवाली आयसे संबंधित हों। इसके साथही वे इंग्लैण्डके एक मंत्री को भारतकी सैनिक एवं शासन-व्यवस्थाके विवरणसे अवगत करायें। इसके अन्तर्गत बंगालमें गवर्नर-जनरलकी नियुक्ति की गयी, जिसकी सहायताके लिए चार सदस्योंकी कौंसिलका गठन हुआ और उसके बहुमतको ही मान्यता देनेका प्रावधान रखा गया। समितिमें बहुमत न होनेपर गवर्नर-जनरल को निर्णायक मत देनेका अधिकार दिया गया। साथही यह अधिकार भी दिया गया कि वे बम्बई और मद्रास प्रेसीडेन्सीकी सरकारोंकी गतिविधियों और देशी राज्योंसे उनके संबंधोंपर नियंत्रण रखें।

इसके अनुसार वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर-जनरल तथा सर जॉन क्लैवरिंग, मानसन, फिलिप फ्रांसिस और रिचर्ड बारवेल कौंसिलके सदस्य बनाये गये। इनका कार्यकाल पाँच वर्षोंका नियत किया गया और भविष्यमें इनकी नियुक्ति होना कम्पनी द्वारा निश्चित हुआ। गवर्नर-जनरलका २५,००० पौण्ड और परामर्शदाती समितिके सदस्योंका १०,००० पौण्ड वार्षिक वेतन भी स्वीकृत हुआ। कलकत्तामें एक सर्वोच्च न्यायालयका गठन किया गया, जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश तथा तीन सहायक न्यायाधीश नियुक्त हुए। सर एलिजा इम्पी मुख्य न्यायाधीश बने और उन्हें ८,००० पौण्ड वार्षिक वेतन देना स्वीकृत हुआ। यद्यपि रेग्यूलेटिंग ऐक्टका मुख्य ध्येय शासनके समस्त कार्योंमें एकही व्यक्तिके आधिपत्य एवं तानाशाहीको रोकना था, तथापि इसमें कई दोष थे।

सर्व प्रथम दोष यह था कि कम्पनी द्वारा बंगालके वास्तविक शासनको अपने हाथोंमें लेनेके पश्चात् भी बंगालके नवाबकी सत्ता बनी ही रही, जिससे विधि-विधान संबन्धी प्रभुता कम्पनीके हाथोंमें न रहकर बंगालके नबाबके हाथोंमें ही रही। ऐक्टका दूसरा दोष यह था कि कौंसिलका बहुमत यदि गवर्नर-जनरलके विरुद्ध रहा तो शासन-संचालनमें गतिरोध उत्पन्न हो सकता था। गवर्नर-जनरल और कौंसिलका मद्रास और बम्बईकी प्रेसीडेन्सियोंपर नियंत्रण भी सीमित था। फलतः दोनोंही प्रेसीडेन्सियां गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौंसिलकी पूर्व अनुमति लिये बिना ही, देशी राज्योंसे युद्धमें फंस गयीं। सर्वोच्च न्यायालयकी अधिकार-सीमाकी भी कोई स्पष्ट व्याख्या ऐक्टमें न थी, जिसका परिणाम भविष्यमें अत्यधिक अहितकर सिद्ध हुआ।

रेमाँ—एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी सेनानायक। हैदराबादके निजामने १७९५ ई०में अपनी सेनाका पुनर्गठन करनेके लिए उसकी नियुक्ति की। कुछ अन्य फ्रांसीसी पदाधिकारियोंकी सहायतासे उसने यह कार्य बड़ी कुशलतासे सम्पन्न किया, किन्तु १७९८ ई०में निजामने गवर्नर-जनरल लार्ड वेलेजलीके दवाब डालनेपर उसे पद मुक्त कर दिया। निजाम शत्रुओंसे अपनी रक्षाके लिए अंग्रेजोंसे सहायतासंधि करना चाहता था। लार्ड वेलेजलीने यह शर्त रखी कि निजाम पहले अपनी सेवामें नियुक्त सभी फ्रांसीसियोंको निकाल दे।

रेलें, भारतमें—लार्ड हार्डिंज (१८४४–४८ ई०) के शासन-कालमें इसकी प्रारम्भिक योजना तैयार हुई, किन्तु रेल पटरी बिछानेका कार्य डलहौजी (१८४८–५६ ई०) के शासन-कालमें बड़ी कठिनतासे इंग्लैण्डकी सरकारकी अनुमति मिलनेपर १८५३ ई०में प्रारंभ हुआ। पहले इस कार्यकी प्रगति धीमी थी। तथाकथित सिपाही-विद्रोहके समय बंगालमें कलकत्तेसे रानीगंज तक और बम्बई प्रेसीडेन्सीमें बम्बईसे थाणा तक, कुल २०० मील ही रेल-लाइन बिछायी जा सकी। ये दोनों लाइनें छोटी होते हुए भी इतनी उपयोगी सिद्ध हुईं कि १८५९ ई०में देशभरमें ५००० मील लम्बी रेल लाइनें बिछानेकी स्वीकृति दे दी गयी। प्राइवेट ब्रिटिश कम्पनियोंने इस कार्यमें आवश्यक पूँजी लगाना स्वीकार किया। सरकारने उन्हें कमसे कम पाँच प्रतिशत वार्षिक लाभकी गारन्टी प्रदान की। इसके साथही इससे अधिक लाभको सरकार तथा कम्पनियोंके बीच बाँट लेनेका निश्चय हुआ। सरकारकी ओरसे इस कार्यमें कम्पनियोंकी हानिको पूरा करनेका वचन भी दिया गया। इसके बदलेमें भारत सरकारने इन कम्पनियोंका नियंत्रण, कार्यविधि एवं व्यय आदिकी जाँचका अधिकार अपने हाथोंमें सुरक्षित रखा। साथही यह शर्त भी रखी गयी कि २५ वर्षोंके उपरांत सरकार चाहे तो उन कम्पनियोंको खरीद सकती है।

सैनिकोंको कम रेल भाड़ेकी सुविधा और डाककी निःशुल्क सेवा भी इसी अनुबन्धके अन्तर्गत थी। फिर भी इस व्यवस्थामें कई दोष थे, जिनके कारण ऐसी आर्थिक हानियोंका भार भी सरकारपर आ पड़ा, जिन्हें वह अनुबन्धकी शर्तोंके अधीन रोकनेमें असमर्थ थी। इस व्यवस्थासे लाभ यह हुआ कि भारतवर्षमें यंत्रचालित यातायात व्यवस्थाका प्रारंभ हुआ और इसीके द्वारा सम्पूर्ण देशमें सरकारी रेलोंका जाल बिछा देनेका पथ प्रशस्त हुआ। डलहौजीने सम्पूर्ण भारतवर्षमें एकही प्रकारकी रेल लाइन बिछानेका विचार किया था परन्तु योजनाके कार्यान्वित होनेपर तीन प्रकारकी लाइनें बिछीं–बड़ी लाइन, छोटी लाइन और तीसरी सरकारी लाइन। १८७० ई०से प्रारंभ होनेवाले दशकमें भारत सरकारने स्वयं रेल बिछाने और चलानेका कार्य प्रारंभ किया।

बीसवीं शताब्दीके प्रारंभतक भारतीय रेलोंकी व्यवस्था तीन प्रकारकी थी। कुछ रेलें कम्पनियोंके व्यक्तिगत प्रबन्धमें चलती थीं, कुछ सरकारी प्रबन्धमें तथा कुछ सरकारी रेलें होनेपर भी उनका प्रबन्ध कम्पनियोंके हाथमें था। इसके बाद नयी कम्पनियोंको रेल लाइनें बिछानेका कार्य देना प्रायः बन्द कर दिया गया और पुरानी कम्पनियोंके पट्टे समाप्त होनेपर सरकार उन कम्पनियोंकी रेलें खरीदती गयी। सभी रेलोंपर समान नियंत्रण-व्यवस्थाकी आवश्यकता दिन-प्रति-दिन अनुभव की जाने लगी थी, अतः १९०५ ई०में रेलवे बोर्डकी स्थापना की गयी। प्रथम महायुद्धके उपरान्त रेलवे बोर्डका पुनर्गठन हुआ और रेलको राज्य-प्रबन्धमें लानेमें शीघ्रता की गयी। १९२५–२६ ई०से रेलवेका अलग बजट बनाया जाने लगा। समस्त रेलोंको सरकारी स्वामित्व और प्रबन्ध-व्यवस्थामें लानेके कार्यकी गति क्रमिक रीतिसे तेज कर दी गयी तथा नयी रेलवे-लाइन बिछानेका कार्य भी तेजीसे आगे बढ़ाया गया। फलतः स्वतन्त्रता-प्राप्तिके समय सम्पूर्ण देशमें ४३००० मील लम्बी रेलकी लाइनें हो गयीं, किन्तु विभाजनके बाद भारतीय गणतंत्रमें ३५३९५ मील लम्बी रेल लाइनें बची हैं।

वर्तमान रेलें प्रायः प्रतिदिन ४० लाख यात्री और ३ लाख ७० हजार टन माल देशभरमें ढोती हैं। इस

कार्यमें १२०० करोड़ रुपयोंकी पूंजी लगायी गयी है और ११ लाख व्यक्ति सेवारत हैं। भारतीय रेलोंसे सरकारकी साधारण आयमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही है। १९५५–५६ ई०में ३६ करोड़, १९६०–६१ में ५६ करोड़, १९६१–६२ में ७६ करोड़, और १९६२–६३ में ८२ करोड़ रुपयोंका लाभ हुआ। रेलोंका भारतीय अर्थ-व्यवस्थापर भी विशेष प्रभाव पड़ा है। इनसे दुर्भिक्ष या अकालके समय स्थिति सँभालने और उद्योग केन्द्रोंतक कोयला पहुँचानेका कार्य सरल हो गया है। रेल व्यवस्थासे कपास, जूट और चीनी उद्योगोंको विशेष सहायता मिली है। देशके दूरस्थ भागोंसे कृषि-जन्य वस्तुओंको बाजारमें उचित मूल्यपर बेचना सुगम हो गया है। रेलोंके द्वारा भारतमें उद्योगीकरणकी प्रक्रिया द्रुतगतिसे आगे बढ़ रही है। रेलोंका राजनीतिक महत्त्व भी कम नहीं। इनके द्वारा लोग देशके एक भागसे दूसरे भागतक सरलता, कम खर्च तथा शीघ्रतासे आ-जा सकते हैं और उससे देशकी एकताकी चेतना बलवती होती है।

रेवेल, जेम्स–१७६४ ई०में नियुक्त बंगालका भू-सर्वेक्षण अधिकारी, जिसने १७७९ ई०में बंगालका मानचित्र प्रस्तुत किया। वह भारतीय भूगोल शास्त्रका जन्मदाता माना जाता है। उसने १७८३ ई०में अंग्रेजीमें संस्मरण तथा 'भारतका मानचित्र' और 'भारतीय उप महाद्वीपमें ब्रिटिश सेनाकी गतिविधियाँ' नामक पुस्तकें लिखीं।

रैफल्स, सर टामस स्टैम्फोर्ड (१७८१-१८२६)–प्रसिद्ध अंग्रेज प्रशासक, जिसने पूर्वी एशियामें यथेष्ट नाम कमाया। सिंगापुरकी नींव उसीने डाली थी। प्रारंभमें वह ईस्ट इण्डिया कम्पनीमें लिपिक मात्र था। १८०५ ई०में उसे सहायक सचिव नियुक्त करके पेनांग भेजा गया और वहींपर उसने १८०७ ई०में सचिव पद प्राप्त किया। १८०८ ई०में उसने मलक्काका महत्त्व बताते हुए यहाँपर कम्पनीका अधिकार बनाये रखनेका प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। पहले कम्पनीने उक्त स्थल छोड़ देनेका निश्चय कर लिया था। उसके प्रतिवेदनके आधारपर कम्पनीने अपना पहला आदेश वापस ले लिया। १८१० ई०में उसने भारतके तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड मिण्टो प्रथमको जावा द्वीपकी व्यापारिक महत्ता स्पष्ट करते हुए उसपर अधिकार कर लेनेकी सलाह दी।

जावा उन दिनों फ्रांसीसियोंके अधिकारमें था। अतः यहाँपर अधिकार स्थापित कर लेनेकी योजना बनानेके लिए उसे मलक्का भेजा गया। उसने यह कार्य योग्यतापूर्वक सम्पन्न किया और १८११ ई०में जावाको जीतनेके उपरान्त उसे ही वहाँका लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर नियुक्त किया गया। रैफल्सने १८११ ई०से १८१६ ई० तक सुचारु रूपसे उसका शासन किया और स्थानीय करोंमें कमी करनेके पश्चात् भी वहाँसे कम्पनीको होनेवाली आयमें आठ गुना वृद्धि कर दी। १८१८ ई०से १८२३ ई० तक वह सुमात्राका शासक रहा और वहाँ भी उसे पूर्ववत् सफलता मिली।

इसी बीच २९ जनवरी १८१९ ई०को उसने आधुनिक सिंगापुर तथा आसपासके भू-भागोंपर भारतीय अंग्रेजी सरकारकी अनुमतिसे अधिकार करके उक्त नगरकी नींव डाली और वहाँके बन्दरगाहकी सुरक्षाका समुचित प्रबंध किया। सामरिक एवं व्यापारिक दृष्टिसे अत्यंत महत्त्वपूर्ण इस नगरके विकासका श्रेय उसीको है, क्योंकि इसके द्वारा ही हिन्द महासागरसे प्रशान्त महासागर तकके जलमार्गपर अंग्रेजोंका नियंत्रण स्थापित हो सका। रैफल्स विद्वान् भी था और उसने १८१७ ई०में 'जावाका इतिहास' नामक पुस्तककी रचना की। उसे जीव-वैज्ञानिक अध्ययनमें भी विशेष रुचि थी। उसने १८२५-२६ ई०में लन्दन स्थित 'प्राणिविज्ञान समिति' (जुओलाजिकल सोसाइटी) की संस्थापनामें विशेष सहायता दी। उसे एफ० आर० एस० तथा एल० एल० डी० की उपाधियाँ भी प्रदान की गयी थीं।

रैयत–'रैयत' और 'रियाया' शब्दोंका प्रयोग ऐसे कृषकोंके लिए होता था, जो किसी जमींदारके असामी थे अथवा उसकी भूमिपर कृषि करके उसे निश्चित लगान देते थे।

रैयतवारी प्रथा–देखिये, 'भूमि व्यवस्था'।

रोज, सर ह्यू–प्रसिद्ध ब्रिटिश सेनानायक, जिसे तथाकथित सिपाही-विद्रोह (दे०)का दमन करनेके लिए भारत भेजा गया। १८५४ ई०के अन्तमें वह भारत आया और मऊकी सैनिक छाँवनीको अपना मुख्य कार्यालय बनाकर मध्य भारतमें सफल सैनिक अभियान चलाया। १८५८ ई०के प्रारंभमें उसने अलीगढ़पर अधिकार कर लिया, सागरको मुक्त किया तथा तात्या टोपे (दे०)को बेतवाके युद्धमें परास्त कर झाँसीके किलेपर भी अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् कोंचके युद्धमें विद्रोही सिपाहियोंके एक दलको परास्त किया। उसकी इन सफलताओंसे ऐसा जान पड़ा कि केवल छह महीनोंमें ही मध्य भारतमें विद्रोहको कुँचल दिया जायगा, किन्तु इसी बीच झाँसीकी रानी (दे०) और तात्या टोपेने, जिनका पीछा अंग्रेजी सेना कर रही थी, ग्वालियरपर अधिकार कर लिया और वहाँकी तोपें हस्तगत करके नाना साहबको पेशवा

घोषित कर दिया। इससे विद्रोहियोंमें नव-स्फूर्ति आ गयी और विद्रोहकी अग्नि दक्षिणकी ओर बढ़नेकी सम्भावना दिखने लगी। सर ह्यू रोजने अपने सैनिकोंका मनोबल बढ़ाते हुए ग्वालियरपर आक्रमण कर दिया और विद्रोहियोंको लगातार दो युद्धोंमें परास्त किया। इनमेंसे एक युद्धमें झाँसीकी रानी पुरुष वेशमें युद्ध करती हुई वीर-गतिको प्राप्त हुई। जून १८५८ ई०में रोजने ग्वालियरपर पुनः अधिकार कर लिया और मध्य भारतके विद्रोहको शान्त करके अपनी सैन्य-संचालन-क्षमताका परिचय दिया।

रोनाल्डशे, अर्ल–(१९१७ ई०से १९२२ ई०)–तक बंगालका गवर्नर। देखिये, **जेट लैण्ड, लार्ड**।

रोशन आरा, बेगम–शाहजहाँ बादशाह और मुमताज महलकी दूसरी पुत्री। उत्तराधिकारके युद्धमें उसने चारों भाइयोंमेंसे औरंगजेबका पक्ष लिया और राजधानीमें होनेवाली समस्त गतिविधियोंकी सूचना गुप्त रूपसे औरंगजेबको भेजकर उसे सिंहासन प्राप्त करनेमें सहायता दी। वह दाराकी कट्टर शत्रु थी और उसे काफिर करार करके उसका बध कर देनेके पक्षमें थी।

रो, सर टामस–इंग्लैंडके शासक जेम्स प्रथम द्वारा राजदूत नियुक्त होकर १६१५ ई०में बादशाह जहाँगीरके दरबारमें भेजा गया। वह सूरतके बन्दरगाहपर उतरा और अजमेरमें जहाँगीरके दरबारमें उपस्थित हुआ। रो सुशिक्षित तथा दूतकार्यमें निपुण व्यक्ति था। भारतके सम्राट्की ओरसे अंग्रेजोंको व्यापारिक सुविधा एवं सुरक्षा दिलानेके हेतु संधि करनेके लिए उसको यहाँ भेजा गया था। रो शीघ्र ही जहाँगीरका कृपापात्र बन गया। वह अजमेर, मांडू तथा अहमदाबादके दरबारोंमें ३० वर्षों तक रहा। यद्यपि पूर्वोक्त आशयकी संधि करानेमें उसे सफलता नहीं मिल सकी, तथापि उसके ही प्रयाससे ही अंग्रेजी कम्पनीको मुगल साम्राज्यके कई नगरोंमें व्यापारिक कोठियाँ स्थापित करनेकी अनुमति अवश्य मिल गयी। इसके साथ ही मुगल प्रशासकोंकी दृष्टिमें अंग्रेजोंकी प्रतिष्ठा भी बढ़ गयी।

रो, हालैण्ड और पुर्तगाल निवासियोंकी सैन्यबलपर आधारित व्यापार-नीतिके विरुद्ध था। फलतः उसने इंग्लैण्डकी कम्पनीको यही परामर्श दिया कि वह अपनी गतिविधियोंको केवल वाणिज्य एवं व्यवसाय तक ही सीमित रखे। उसने कम्पनीकी बड़े मनोयोगसे सेवा की और १६१९ ई०में भारतसे स्वदेश लौट गया।

रौलेट ऐक्ट–१९१९ ई०में ब्रिटिश भारतकी केन्द्रीय विधान परिषद्के सभी गैर सरकारी भारतीय सदस्यों द्वारा विरोध करनेपर भी दो अधिनियम पारित किये गये, जो 'रौलट ऐक्ट' कहलाये। रौलट कमेटी द्वारा १९१७ ई०में प्रस्तुत प्रतिवेदनमें दिये गये सुझावोंको कार्यान्वित करनेके उद्देश्यसे ये दोनों अधिनियम पारित किये गये थे। कमेटीने कानूनोंमें कठोरता लानेकी संस्तुति इस तर्कके साथ की थी कि उसे देशमें व्यापक रूपसे विध्वंसक कार्यवाहियोंके प्रमाण मिले हैं। दोनों अधिनियमोंमेंसे एकके द्वारा प्रेसपर व्यापक एवं कठोर नियंत्रण लगानेकी व्यवस्था थी और दूसरे अधिनियम द्वारा राजनीतिक बन्दियोंके सम्बन्धमें बिना जूरीके केवल जज द्वारा ही निर्णयकी व्यवस्था थी। इसके साथ ही प्रान्तीय सरकारों द्वारा ऐसे व्यक्तियोंको नजरबन्द रखना न्याय-संगत माना गया, जिनपर विध्वंसक कार्योंमें भाग लेनेका संदेह हो।

रौलेट ऐक्ट (अधिनियम) बननेसे समस्त देशमें तीव्र असंतोष फैल गया और हड़तालें हुईं। कुछ स्थलोंपर दंगे भी हुए। अन्तमें जालियावाला बाग (दे०) का पाशविक हत्याकाण्ड हुआ, जिसके फलस्वरूप १९२० ई०में असहयोग आन्दोलन आरम्भ हुआ। ये समस्त उपद्रव अधिकारियोंकी अदूरदर्शिताके प्रतिफल थे, क्योंकि ऐसी कोई आशंका न थी, जिसके लिए इतने कड़े अधिनियमोंको पारित करनेकी आवश्यकता होती, जैसा कि इस तथ्यसे सिद्ध है कि सरकारको दोनों अधिनियमों द्वारा जो व्यापक अधिकार प्राप्त हुए थे, उनको प्रयोगमें लानेकी कभी आवश्यकता नहीं पड़ी।

ल

लक्ष्मण–रामायणके नायक रामके छोटे भाई। चौदह वर्षके वनवास कालमें वे बड़े भाईके साथ रहे और आजीवन अपने बड़े भाईका अनुगमन किया। प्रतिहार (दे०) राजा अपनेको उन्हींका वंशज कहते थे।

लक्ष्मण सेन–बंगालके राजा बल्लालसेनका पुत्र तथा उत्तराधिकारी। वह या तो ११८४–८५ ई०में या कुछ वर्ष पहले ११७८-७९ ई०में गद्दीपर बैठा। उसने अपने राज्यकालके प्रारम्भिक वर्षोंमें कामरूप (आसाम) को अपने अधीन किया और बनारसके गाहड्वाल राजाको हराया। वह विद्वानोंका आश्रयदाता था। गीतगोविन्दके

रचयिता जयदेव तथा पवनदूतके रचयिता धोई उसके राजकवि थे। प्रसिद्ध हिन्दू धर्मशास्त्रकार हलायुधका भी वह आश्रयदाता था।

परंतु बादके जीवनमें वह पुरुषार्थहीन हो गया था। अपनी राजधानी नदियामें वह जिस समय दोपहरको भोजन कर रहा था, मलिक इख्तियारुद्दीन मुहम्मद खिलजीने या तो ११९९ ई०में या १२०२ ई०में अचानक हमला कर दिया। मुसलमान इतिहासकारोंके अनुसार खिलजी सरदार अपने साथ केवल अठारह घुड़सवार ले गया था। उसने अचानक नदियापर हमला बोल दिया। लक्ष्मण सेन (जिसका नाम मुसलमान इतिहासकारोंने राय लक्ष्मनिया लिखा है) अपने महलके चोर दरवाजेसे भाग गया और पूर्वी बंगाल चला गया, जहाँ उसके वंशजोंने अगले पचास वर्षोंतक अपना स्वतंत्र राज्य कायम रखा।

लक्ष्मणावती–देखिये, 'गौड़'।

लक्ष्मनिया राय–देखिये, 'लक्ष्मण सेन'।

लक्ष्मी कर्ण–चेदि (बुन्देलखंड) के कलचुरि राजा गांगेय देव (दे०) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी, जिसने लगभग १०४०–१०७० ई०तक राज्य किया। लक्ष्मीकर्णने समूचे दक्षिणी दोआबको जीता, बंगालके पाल राजासे संधि कर कलिंगतक राज्यका विस्तार कर लिया। परन्तु गुजरात, मालवा तथा दक्षिणके राजाओंने मिलकर उसे युद्धमें परास्त कर दिया और मार डाला।

लक्ष्मीबाई–झाँसीकी रानी, (दे०) जो इस बातसे बहुत कुपित थी कि १८५३ ई०में उसके पतिके मरनेपर लार्ड डलहौजीने जब्तीका सिद्धांत लागू करके उसका राज्य हड़प लिया। अतएव सिपाही-विद्रोह शुरू होनेपर वह विद्रोहियोंसे मिल गयी और सर ह्यू रोजके नेतृत्वमें अंग्रेजी फौजका डटकर वीरतापूर्वक मुकाबिला किया। जब अंग्रेजी फौज किलेमें घुस गयी, लक्ष्मीबाई किला छोड़कर कालपी चली गयी और वहाँसे युद्ध जारी रखा। जब कालपी छिन गयी तो रानी लक्ष्मीबाईने तांत्या टोपे (दे०) के सहयोगसे शिन्देकी राजधानी ग्वालियरपर हमला बोला, जो अपनी फौजके साथ कम्पनीका वफादार बना हुआ था। लक्ष्मीबाईके हमला करनेपर वह अपने प्राणोंकी रक्षाके लिए आगरा भागा और वहाँ अंग्रेजोंकी शरण ली। लक्ष्मीबाईकी वीरता देखकर शिन्देकी फौज विद्रोहियोंसे मिल गयी। रानी लक्ष्मीबाई तथा उसके सहयोगियोंने नाना साहब (दे०) को पेशवा घोषित किया और महाराष्ट्रकी ओर धावा मारनेका मनसूबा बाँधा, ताकि मराठोंमें भी विद्रोहाग्नि फैल जाय। इस संकटपूर्ण घड़ीमें सर ह्यू रोज तथा उसकी फौजने रानी लक्ष्मीबाईको और अधिक सफलताएँ प्राप्त करनेसे रोकनेके लिए जीतोड़ कोशिश की। उसने ग्वालियर फिरसे ले लिया और मुरार तथा कोटाकी दो लड़ाइयोंमें रानीकी सेनाको पराजित किया। १७ जून १८५८ ई० की लड़ाईमें रानी, जो एक घुड़सवारकी पोशाकमें थी, मारी गयी। विद्रोही सिपाहियोंके सैनिक नेताओंमें रानी सबसे श्रेष्ठ और बहादुर थी और उसकी मृत्युसे मध्य भारतमें विद्रोहकी रीढ़ टूट गयी।

लखनऊ–उत्तर प्रदेशमें गोमतीके तटपर स्थित एक प्रमुख नगर। यह अवधके नवाबोंकी राजधानी रहा है। उन्होंने यहाँ कई सुन्दर महल तथा मसजिदें बनवायीं। गदर (दे०) के समय लखनऊने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। कुछ समयतक इसपर विप्लवियोंका अधिकार रहा। नवम्बर १८५७ ई०में सर कालिन कैम्पबेलके नेतृत्वमें एक ब्रिटिश सेनाने इसपर फिर अधिकार कर लिया। यहाँ एक विश्वविद्यालय भी स्थित है और अब यह उत्तर प्रदेशकी राजधानी है।

लखनऊ समझौता–१९१६ ई०में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुसलिम लीगके बीच हुआ। इसके द्वारा मुसलिम लीगने पृथक् निर्वाचन क्षेत्र तथा दोनों सम्प्रदायोंके बीच सीटोंके न्यायोचित बँटवारेके आधारपर भारतको स्वराज्य दिलानेके लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसको सहयोग देना स्वीकार कर लिया।

लखनौती–देखिये, 'गौड़'।

लगमान (अथवा लमगान)–अफगानिस्तानमें जलालाबाद और काबुल नदीके उत्तरी तटपर स्थित स्थानीय नगर। उसने पास ही पुले दुरन्तामें आरामाई भाषामें अशोकका एक शिलालेख मिला है। इससे प्रमाणित होता है कि लगमान अशोकके साम्राज्यके अंतर्गत था। उसके लगभग एक हजार वर्ष बाद यह जयपाल (दे०) के राज्यमें सम्मिलित था। लगभग ९९० ई०में अमीर सुबुक्तगीनने इसे जयपालसे छीन लिया। इसके बाद से यह अफगानिस्तानके राज्यका एक भाग है।

ललितादित्य–कश्मीरके कर्कोट वंश (दे०) का राजा। जिसने ७२४ से ७६० ई०तक राज्य किया। उसने अनेक युद्धोंमें विजय प्राप्त की, कन्नौजके यशोवर्मा (दे०) को पराजित किया और तिब्बतियों तथा सिन्धु नदीके तटपर तुर्कोंपर भी विजय प्राप्त की। उसने बंगालके एक राजाको भी हराया। उसने अनेक विहारों, मन्दिरों तथा

भवनोंका निर्माण कराया, जिनमें मार्तण्ड-मंदिर सबसे विख्यात है।

लवणसेन—बंगालके राजा देवपाल (लगभग ८१०—८५० ई०) का सेनापति। कहा जाता है कि उसने आसाम और कलिंगको जीता।

लाखा—१३८२ से १४१८ ई०तक मेवाड़का राणा।

ला, जीन—एक फ्रेंच सैनिक जो अठारहवीं शताब्दीके मध्यमें भारत आया। उसका परिचय शाहजादासे हो गया जो बादमें बादशाह शाह आलम द्वितीय (१७५९—१८०६ ई०) हुआ। उसने संस्मरणोंमें शाहजादेके बारेमें अपने विचार व्यक्त किये हैं।

लाड मलिका—चुनारके हाकिम ताज खाँकी पत्नी। १५२८ ई०में उसके सौतेले पुत्रने उसके पतिकी हत्या कर दी। विधवा होनेके बाद उसने शेरखाँ (बादमें शेरशाह) से शादी कर ली और न केवल चुनारके किलेपर, बल्कि उसके खजानेपर भी उसका कब्जा करवा दिया। इस प्रकार उसने शेरशाहको उसके विजय पथपर अग्रसर किया, जिसके फलस्वरूप १५४० ई०में वह दिल्लीका बादशाह बन गया।

ला बोर्दने—भारतमें पहला आंग्ल-फ्रांसीसी युद्ध (दे०) छिड़नेके समय मारीशसका फ्रांसीसी गवर्नर। उसमें नेतृत्वकी सहज क्षमता थी। भारतीय समुद्रोंमें कोई फ्रांसीसी जंगी बेड़ा न होनेपर उसने फ्रांसीसी व्यापारिक जहाजों और देशी नौकाओंका एक बेड़ा तैयार किया और कारोमंडलके तटपर पहुँचा। उसने पेयटन (दे०) के नेतृत्ववाले ब्रिटिश जंगी बेड़ेको बंगालकी खाड़ीकी ओर भगा दिया और सितम्बर १७४५ ई०में मद्रासपर अधिकार कर लिया। फ्रांसीसियोंकी यह एक उल्लेखनीय सफलता थी, परंतु ला बोर्दने इसके बाद ही डूप्लेसे झगड़ा कर बैठा। एक तूफानने उसके बेड़ेको तितर-बितर कर दिया। फिर भी १७४८ ई०में एक्स-ला शैपेलेकी संधि होनेतक मद्रास फ्रांसीसी कब्जेमें रहा। १७४८ ई०की संधिके अनुसार मद्रास अंग्रेजोंको वापस मिल गया, १७५९ ई०में अवकाश ग्रहण करनेपर ला बोर्दनेने अपने संस्मरण प्रकाशित कराये।

लायडजार्ज, डेविड (१८६३—१९४५ ई०)—ब्रिटेनका एक राजनेता, जिसने प्रथम विश्वयुद्धमें अपने देशको विजयी बनाया। वह छः साल (१९१६—२२ ई०) तक ब्रिटेनका प्रधान-मंत्री रहा। १९४४ ई०में उसे 'पिअर'की पदवी प्रदान की गयी। वह लिबरल विचारधाराका नेता था और कोषागार-मंत्रीकी हैसियतसे उसने ब्रिटेनमें कल्याणकारी राज्यकी स्थापनाके लिए भूमिका तैयार की। उसने प्रधान-मंत्रीकी हैसियतसे १९१८ ई०में इंग्लैंडको विजयी बनाया। वह सोलह वर्ष (१९०६—२२ ई०) तक ब्रिटिश राजनीतिपर हावी रहा और बीसवीं शताब्दीके प्रथम चतुर्थांशमें शांति तथा युद्धकालमें ब्रिटेनका भाग्य-निर्णय यदि किसी एक व्यक्तिके हाथमें रहा तो वह व्यक्ति लायड जार्ज था। उसने भारतके संवैधानिक विकासमें भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया। अगस्त १९१७ की प्रसिद्ध घोषणा उसीके प्रधान मंत्रित्वकालमें हुई, जिसमें कहा गया था कि क्रमिक रीतिसे स्वशासन की प्राप्ति भारतमें ब्रिटिश शासनका लक्ष्य है। इस घोषणाके बाद ही उसने १९१९ ई०का गवर्नमेंन्ट आफ इंडिया ऐक्ट पास कराया और इस प्रकार भारतको संसदीय लोकतंत्रके मार्गपर आगे बढ़ाया।

लारेंस, कर्नल स्ट्रिन्जर (१६९७-१७७५ ई०)—एक प्रसिद्ध अंग्रेज जनरल, जिसने १७४८ ई० में भारतमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी फौजमें नौकरी की। उसने कुडलूरपर फ्रांसीसी हमला विफल कर दिया, परन्तु बादमें फ्रांसीसियोंने उसे बंदी बना लिया और एक्स-ला-शैपेले (दे०) की संधिके बाद वह रिहा हुआ। १७४९ ई० में देवीकोट छीननेके समय राबर्ट क्लाइव उसका अधीनस्थ अफसर था, उसी समयसे दोनों जीवन भरके मित्र बन गये। स्ट्रिन्जर लारेंसने राबर्ट क्लाइवकी जीवन-दिशाको मोड़ देनेमें भारी सहायता की। १७५२ ई० में जब लारेंसके नेतृत्वमें एक कुमुक त्रिचनापल्ली भेजी गयी, क्लाइव अधीनस्थ अफसरके रूपमें उसके साथ था।

उसने क्लाइवको हर प्रकारसे प्रोत्साहन प्रदान किया और युद्धके अन्तमें उसको आवश्यकतासे अधिक श्रेय प्रदान किया। क्लाइवको जबकि बंगाल भेज दिया गया, वह दक्षिणमें बना रहा। विन्दवाश (दे०)की लड़ाईमें अंग्रेजोंकी विजयमें उसका भी हाथ था। पांडिचेरीके फ्रांसीसी गवर्नर काउण्ट डी लाली (दे०)ने १७५८—५९ ई०में जब फोर्ट सेंट जार्जपर घेरा डाला, वह वहाँकी सेनाओंका कमाण्डर था। उसने लालीकी फौजोंको खदेड़ दिया। उसने १७६६ ई०में अवकाश ग्रहण किया। वह वीर और पराक्रमी अफसर था और कर्नाटकके युद्धों (दे०)में अंग्रेजोंकी विजयमें उसका भारी योगदान रहा।

लारेंस, लार्ड जान (१८११-७९ ई०)—भारतका १८६४—१८६९ ई० तक वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल। वह सर हेनरी लारेंस (दे०)का छोटा भाई था और कम्पनीकी नौकरीके लिए १८३० ई० में कलकत्ता आया था।

वह सबसे पहले दिल्लीका असिस्टेंट कलक्टर नियुक्त हुआ और फिर उन्नीस वर्ष (१८३०–४९ई०) तक वहांका मजिस्ट्रेट तथा कलक्टर रहा। इस अवधिमें उसने मालगुजारी व्यवस्थापर विशेष ध्यान दिया। वह स्थायी बन्दोबस्तके पक्षमें था, रैयतपर ताल्लुकेदारोंके अत्याचारोंका विरोधी था और रैयतकी स्थिति सुधारना (दे०) चाहता था। प्रथम सिक्ख-युद्ध (दे०)में पंजाबमें लड़नेवाली भारतीय-ब्रिटिश सेनाको दिल्ली क्षेत्रसे रसद भिजवानेमें इसने विशेष तत्परता दिखायी। इसके पुरस्कार-स्वरूप उसे ३५ वर्षकी अवस्थामें ही जलंधर-दोआबका कमिश्नर बना दिया गया। १८५३ ई०में वह पंजाबका चीफ़ कमिश्नर नियुक्त हुआ। उसने पंजाबके प्रशासनको ३२ जिलों तथा ३६ अधीनस्थ रियासतोंमें बाँटा, पुलिस दल संगठित किया, एक जिलेको दूसरे जिलेसे मिलानेवाली सड़कों तथा नहरोंका निर्माण कराया, न्यायकी व्यवस्था की और अपराध-संख्या कम की। गदर छिड़नेपर उसने पंजाबी सेनाकी सहायतासे हिन्दुस्तानी सिपाहियोंके हथियार ले लिये। उसने पंजाब सेनाकी संख्या १२,००० से बढ़ाकर ५९००० कर दी, पंजाबको अंग्रेजोंका वफ़ादार बनाये रखा और दिल्लीकी मददके लिए सिक्ख पलटन भेजी। २० सितम्बर १८५८ को दिल्लीपर अधिकार कर लिया गया।

गदरके समय उसकी सेवाओंके उपलक्ष्यमें उसे बैरन बना दिया गया और आजीवन पेन्शन प्रदान की गयी। बादमें इसके पुरस्कार-स्वरूप उसे १८६४ ई०में भारतका वायसराय तथा गवर्नर-जनरल नियुक्त किया गया। उसने अगले पाँच वर्षतक भारतका प्रशासन बड़ी योग्यताके साथ चलाया। उसने सामान्यजनोंकी अवस्था सुधारनेका प्रयास किया और भारतीयोंमें शिक्षा-प्रसारकी योजनाओंमें रुचि ली। वह उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांतमें अग्रसर नीतिके विरुद्ध था। उसने १८६३ई०में अफगानिस्तानके अमीर दोस्त मुहम्मद (दे०)की मृत्यु होनेपर उसकी गद्दीके लिए छिड़जानेवाले गृह-युद्धमें अहस्तक्षेपकी नीति बरती और इस प्रकार सरकारको अफगानिस्तानके आन्तरिक मामलोंमें उलझनेसे बचाया। बादमें उसकी यह नीति त्याग दिये जानेके फलस्वरूप दूसरा अफगान-युद्ध (दे०) हुआ। इस युद्धमें धन-जनकी भारी क्षति हुई और यह प्रमाणित हो गया कि उसकी अहस्तक्षेपकी नीति उचित थी।

लारेंस, सर हेनरी मांटगोमरी (१८०६–५७ई०)—एक प्रसिद्ध ब्रिटिश सैनिक तथा राजनेता। उसने ब्रिटिश शासनको विशेष रीतिसे पंजाबमें मजबूत बनानेमें योगदान किया। वह श्रीलंकामें पैदा हुआ था, १८२३ ई०में बंगाल आर्टिलरी (तोपची पलटन)में भर्ती हुआ और प्रथम बर्मी-युद्ध (दे०)प्रथम अफगान-युद्ध (दे०) तथा प्रथम सिक्ख-युद्ध (दे०)में भाग लिया। वह पंजाबको ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें सम्मिलित करनेके विरुद्ध और इसके पुनर्निर्माणकी नीतिके पक्षमें था। वह लाहौरमें ब्रिटिश रेजीडेंट तथा महाराज दिलीपसिंहके बालिग होनेतक शासन कार्य चलानेके लिए गठित परिषद्का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। १८४९ ई०में दूसरे सिक्ख-युद्ध (दे०)के बाद, जिसके फलस्वरूप पंजाब ब्रिटिश भारतमें मिला लिया गया, वह नये प्रान्तके प्रशासन बोर्डका अध्यक्ष नियुक्त किया गया। उसके जिम्मे राजनीतिक मामले रखे गये तथा उसके भाई जान लारेंसको, जो उससे छः साल छोटा था, प्रांतके वित्तीय प्रशासनका भार सौंपा गया। हेनरीका मत था कि सिक्ख सरदारोंको आजीवन पेन्शन तथा जागीरें देकर उनके साथ उदारतापूर्ण व्यवहार करना चाहिये, परंतु जानका मत था कि प्रांतके राजस्वको घटाकर तथा जमींदारोंके अधिकारोंको नियन्त्रित करके सामान्य लोगोंकी अवस्था सुधारनी चाहिए। तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजीने जानकी नीति ठीक समझी और हेनरीका तबादला ब्रिटिश रेजीडेंटके रूपमें राजपूताना कर दिया गया। राजपूतानामें कार्य करते समय उसने भारतकी सेनामें सुधार करनेकी आवश्यकतापर बल दिया और गदरकी सम्भावनाके विरुद्ध चेतावनी दी, परन्तु, उसकी बातोंपर ध्यान नहीं दिया गया। मार्च १८५७ ई० में वह लखनऊ भेजा गया और दो महीने बाद मई १८५७ ई० में गदर शुरू हो गया। लखनऊ विप्लवियोंका केन्द्र बन गया और २९ जूनको लखनऊ रेजीडेन्सीपर घेरा डाल दिया गया। उसने रेजीडेन्सीकी रक्षाकी व्यवस्था की। २ जुलाईको एक गोला उसके ऊपर आकर गिरा, जिससे वह घायल हो गया। दो दिन बाद उनकी मृत्यु हो गयी।

लालकुर्ती आन्दोलन—इसका प्रारम्भ, उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेशमें अब्दुल गफ्फ़ार खांने १९३० ई०में किया। यह आन्दोलन अंग्रेजोंके विरुद्ध था और इसमें भारतीय राष्ट्रवाद तथा इस्लामके विश्व-बंधुत्वके सिद्धान्तोंका सम्मिश्रण था। यद्यपि यह आन्दोलन अहिंसात्मक था, पर सीमान्तके पठानोंके स्वभावमें हिंसा और प्रतिशोधकी भावनाओंके प्रबल होनेके कारण उसका अहिंसात्मक स्वरूप सरकारकी दृष्टिमें सदैव संदिग्ध बना रहा। फिर भी सीमान्त

प्रदेशके निवासियोंपर इस आन्दोलनका कुछ काल तक विशेष प्रभाव रहा और इसीसे कांग्रेस दलको प्रान्तीय विधान सभाके चुनावमें सफलता मिली। १६४७ ई०में स्वतंत्रता-प्राप्ति एवं देशके विभाजनके समय वहाँ कांग्रेस दल सत्तारूढ़ था। सीमान्त प्रदेशके पाकिस्तानका भाग बन जानेके उपरांत लालकुर्ती आन्दोलनने नया रूप धारण किया और पख्तूनिस्तानकी स्थापनाकी मांग रखी, जिसमें सीमान्तके कबीलाई इलाकोंका एक स्वतंत्र राज्य बनानेका सुझाव था। किन्तु पाकिस्तानकी नयी सरकारने इस आन्दोलनको गैर-कानूनी घोषित कर दिया।

लालमोहन घोष (१८४९-१९०९)—एक बैरिस्टर, जो कलकत्ता हाईकोर्टमें वकालत करते थे। जब १८७७ ई०में ब्रिटिश सरकारने आई० सी० एस०की परीक्षामें बैठनेकी वयसीमा २१ से घटाकर १६ करनेका विचार किया, जिससे कि भारतीयोंका उसमें प्रवेश कठिन हो जाय तो इंडियन एसोसिएशन, कलकत्ताने भारतीयोंकी ओरसे एक स्मृतिपत्र तैयार किया और १८७६-८० ई०में एक प्रतिनिधि मंडल लालमोहन घोषके नेतृत्वमें ब्रिटेन भेजा। घोषने भारतीयोंका पक्ष प्रभावशाली ढंगसे प्रस्तुत किया जिसका प्रभाव ब्रिटिश जनतापर पड़ा। उन्हींके आग्रहपर ब्रिटिश सरकारने विधिविहित सिविल सर्विसका निर्माण किया। इस सफलतासे उत्साहित होकर वे पुनः ब्रिटेन गये और ब्रिटिश आम चुनावमें उदार दलके प्रत्याशीके रूपमें खड़े हुए। वे चुनाव तो नहीं जीत सके लेकिन उनके प्रयत्नोंसे भारतीय राष्ट्रीय आंदोलनको बल मिला। वे पक्के संविधानवादी थे और ब्रिटिश संरक्षणमें औपनिवेशिक स्वराज्यके पक्षमें थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसको उनसे बहुत बल प्राप्त हुआ।

लालसिंह—एक सिक्ख सरदार, जो १८४३ ई०में पंजाबके महाराज दिलीप सिंहकी राजमाता रानी जिन्दा कौरका वजीर नियुक्त हुआ। दो साल बाद प्रथम सिक्ख-युद्ध शुरू होनेपर उसने सिक्ख सेनाका नेतृत्व सँभाल लिया, परंतु उसके अहदीपनके कारण मुदकी (१८४५ ई०) तथा फीरोज शाह (इस गाँवका वास्तविक नाम फीरूशहर था, जिसे अंग्रेजीमें फीरोजशाह लिख दिया गया। —सं०) की लड़ाइयोंमें तथा अंतमें सुबराहानकी लड़ाई (१८४६ ई०)में सिक्खोंकी हार हुई, जिसके फलस्वरूप प्रथम सिक्ख-युद्ध समाप्त हो गया। लाहौरकी संधि (१८४६ ई०) के द्वारा लाल सिंह वजीर बना रहा। परन्तु यह संदेह किया गया कि ब्रिटिश कठपुतली, कश्मीरके राजा गुलाब सिंह (दे०) के ऊपर किये गये हमलेके पीछे उसका हाथ था, इसलिए उसे पदच्युत कर दिया गया।

लालसोंट की लड़ाई—महादजी शिन्दे और मुगल सेनाके बीच १७८७ ई०में छेड़ी गयी, जिसमें शिन्दे पराजित हुआ। इसके फलस्वरूप कुछ समयके लिए शिन्देका उत्कर्ष रुक गया।

लाला लाजपत राय (१८५६-१९२८ ई०)—पंजाबमें जन्म, पेशेसे वकील और धर्मसे आर्य-समाजी थे। उन्होंने कांग्रेसके उत्कर्षमें मुख्य सहयोग दिया और लोकमान्य तिलक (दे०) तथा विपिन चंद्र पाल (दे०)के साथ उसे नरम दलके पथसे हटा कर गरम दलके पथपर चलाया। इसलिए ब्रिटिश सरकार उनपर कुपित हो गयी और १९०७ ई०में उन्हें रेग्यूलेशन ३ के अंतर्गत बर्मा निर्वासित कर दिया। वे १९१९ ई०में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके कलकत्ता अधिवेशनके अध्यक्ष बने तथा असहयोग आंदोलनमें सम्मिलित हो गये और १९२८ ई०में साइमन कमीशनके बहिष्कार आंदोलनमें प्रमुख भाग लिया। ३० अक्तूबरको पुलिसने बेंतोंसे उनकी पिटाई की, जिससे २७ नवम्बरको उनकी मृत्यु हो गयी। उन्होंने अंग्रेजीमें कई पुस्तकें लिखीं, जिनमेंसे 'दु:खी भारत' में इस देशके ब्रिटिश प्रशासनकी कड़ी निन्दा की गयी थी। वे देशके प्रमुख राजनीतिक नेताओंमें गिने जाते थे और करोड़ों देशवासी उनके प्रति असीम प्रेम और श्रद्धाका भाव रखते थे। नयी दिल्लीमें उनके नामपर लाजपत नगरकी स्थापना की गयी है।

लाली कावंट डी—एक फ्रांसीसी जनरल, जिसका पिता आयरिश था। फ्रांसकी सरकारने उसे डूप्ले (दे०) के स्थानपर गवर्नर बना कर भेजा। वह १७५८ ई०में पांडिचेरी पहुँचा और आते ही फोर्ट सेंट डेविड अंग्रेजोंसे छीन लिया। परंतु इसके अलावा उसे भारतमें और कोई सफलता नहीं मिली। वह वीर, ईमानदार तथा कुशल सेनापति था, परंतु जल्द उत्तेजित हो जानेवाला तथा दूसरोंकी सलाह न माननेवाला था। उसने तंजौरके राजाको पुराना कर्ज चुकानेको विवश करनेके लिए उसके राज्यपर आक्रमण कर दिया, परंतु आक्रमण विफल रहा। इससे भारतमें फ्रांसीसियोंकी प्रतिष्ठाको भारी धक्का लगा। इसके बाद उसने मद्रासपर घेरा डालकर उसपर दखल करनेकी कोशिश की। उसने हैदराबादसे निजामके दरबारसे बुसी (दे०)को वापस बुला लिया। मद्रासपर घेरा डालना सफल नहीं हुआ। बुसीके चले आनेसे निजामके दरबारमें फ्रांसीसियोंका प्रभाव समाप्त हो

गया। अंग्रेजोंने उत्तरी सरकारपर अधिकार कर लिया, जो अब तक फ्रांसीसियोंके कब्जेमें थी। अंतमें अंग्रेजोंने १७६० ई०में विन्दवासकी लड़ाईमें लालीको हरा दिया और १७६१ ई०में पांडिचेरी उससे छीन लिया। अंग्रेजोंने युद्धमें बन्दी बनाकर उसे इंग्लैण्ड भेज दिया। इस बीच फ्रांसमें लालीके विरुद्ध गम्भीर आरोप लगाये गये और लाली पेरोलपर छूट कर फ्रांस पहुँचा। वहाँ उसे अपराधी करार देकर मृत्यु दण्ड दिया गया और १७६३ ई० में उसे फांसी दे दी गयी।

लासवाड़ीकी लड़ाई—दूसरे मराठा-युद्ध (दे०) के दौरान १८०३ ई०में हुई। इस लड़ाईमें लार्ड लेकके नेतृत्वमें ब्रिटिश सेनाने शिन्देकी मराठा सेनाको बुरी तरह पराजित कर दिया।

लाहौर—रावीके दाहिने तटपर बसा, पुराने पंजाबकी राजधानी। यह प्राचीन नगर है और हिन्दू अनुश्रुतियोंके अनुसार इसे रामायणके नायक रामके पुत्र लवने बसाया था। इस नगरको संभवतः ईसवी सन्‌की प्रारम्भिक शताब्दियोंमें बसाया गया था और सातवीं शताब्दी ई० में यह इतना महत्त्वपूर्ण था कि उसका उल्लेख चीनी यात्री ह्युएन-त्सांगने किया है। इसपर पहले गजनी और फिर गोरके शासकोंने और फिर दिल्लीके सुल्तानोंने अधिकार कर लिया। मुगल कालमें महत्त्वपूर्ण नगर हो गया और शाही निवासस्थान बन गया। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ, सभीको इस नगरमें रहना अच्छा लगता था, इससे यह सुन्दर नगर बन गया था, जहाँ किला, अनेक खूबसूरत बाग थे। इसका शाहदरा बाग जहाँगीरने और शालीमार बाग शाहजहाँने लगवाया। १७०७ से १७६९ ई०के बीच इस नगरपर बार-बार हमले हुए। पहले नादिर शाह (दे०) ने और फिर अहमद शाह अब्दाली (दे०) ने हमला कर इसपर दखल कर लिया। १७६८ ई०में इसपर सिक्खोंका अधिकार हो गया और १७९९ ई० में यह रणजीत सिंहके अधिकारमें आ गया। रणजीत सिंहने इसे अपनी राजधानी बनाया। १८४९ ई० में दूसरे सिक्ख-युद्ध (दे०)की समाप्तिपर इसे ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया और १९४७ ई० तक पंजाबकी राजधानी रहा। देशका विभाजन होनेपर यह पश्चिमी पाकिस्तानकी राजधानी बना। अब पाकिस्तानकी राजधानी रावलपिण्डी है।

लिंगायत (अथवा वीर शैव) सम्प्रदाय—स्थापना बारहवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें बासवने की, जो विज्जल कलचूर्य (दे०)का मंत्री था। इस सम्प्रदायके लोग शिव लिंगकी पूजा करते हैं, इसलिए वे लिंगायत कहलाते हैं। वे वेदोंको प्रमाण नहीं मानते, पुनर्जन्मके सिद्धांतमें विश्वास नहीं करते, बाल-विवाहके विरोधी तथा विधवा विवाहके समर्थक हैं। वे ब्राह्मणोंकी श्रेष्ठताको स्वीकार नहीं करते। लिंगायत सम्प्रदाय अब भी कन्नड़ देशमें बहुत शक्तिशाली है।

लिच्छवि गण—बिहारमें गंगाके उत्तर मुजफ्फरपुर जिलेमें स्थित एक जनवर्ग, जिसकी राजधानी वैशाली (आधुनिक बसाढ़के निकट) एक विशाल नगरी थी, जिसकी परिधि दस अथवा बारह मील थी। नगरी गगनचुम्बी अट्टालिकाओंसे शोभायमान थी। लिच्छवियोंका एक कुलीन गणतंत्रात्मक राज्य था, जिसमें सभी उच्च कुलोंके मुखियों (राजाओं) को बराबरके अधिकार प्राप्त थे। गौतम बुद्धके समकालीन समाजमें उनको अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। विश्वास किया जाता है कि बुद्धने अपने भिक्षु संघका संगठन लिच्छवियोंके गणराज्यके आदर्शोंके अनुसार ही किया था। ब्राह्मण ग्रंथोंमें लिच्छवियोंको हीन जातिका क्षत्रिय बताया गया है।

वास्तवमें लिच्छवि संभवतः किसी पहाड़ी कबीले अथवा कुलके थे, जिनको क्रमिक रीतिसे आर्योंके सामाजिक संगठनमें सम्मिलित कर लिया गया। छठीं शताब्दी ई० पू० से चौथी शताब्दी ई० तक लिच्छवियोंको अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं प्रतिष्ठापूर्ण स्थान प्राप्त रहा। चौथी शताब्दी ई०में लिच्छवि कुमारी कुमार देवीके साथ विवाह होनेके कारण मगधके चन्द्रगुप्त प्रथमको गुप्त साम्राज्यकी स्थापना करनेमें सहायता मिली, द्वितीय गुप्त सम्राट समुद्र गुप्त अपनेको लिच्छवि-दौहित्र घोषित करनेमें गर्वका अनुभव करता था। चौथी शताब्दीमें गुप्त साम्राज्यके उत्कर्षके बाद लिच्छवियोंका नाम मिट गया।

लिटन, लार्ड, प्रथम—भारतका (१८७६ से १८८० ई० तक) वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल। वह विद्वान् शासक था और उसका व्यक्तित्व बाहरसे देखते ही विशिष्ट प्रतीत होता था। परंतु उसका प्रशासन-काल उज्ज्वल नहीं कहा जा सकता। जिस समय उसने शासन-भार सँभाला, देशमें भयंकर अकाल फैला था। सारा दक्षिण भारत दो वर्ष, १८७६ से १८७८ ई० तक भयंकर रूपसे पीड़ित रहा। दूसरे वर्ष अकाल मध्य-भारत तथा पंजाबमें भी फैल गया। इसने लगभग पचास लाख व्यक्तियोंको अपने अंकमें समेट लिया। सरकारने अकालके मुँहसे लोगोंकी जानें बचानेके लिए जो उपाय किये वे अपर्याप्त थे।

अकालके ही समय वाइसरायने १८७७ई०में दिल्ली-में एक अत्यन्त शानदार दरबार किया जिसमें महारानी विक्टोरियाको भारतकी सम्राज्ञी घोषित किया गया। बादमें उसने जनरल रिचर्ड स्ट्रैचीकी अध्यक्षतामें अकालके कारणों तथा सहायताके प्रश्नपर विचार करनेके लिए अकाल कमीशन नियुक्त किया। इसकी रिपोर्टके आधार पर एक अकाल कोडका निर्माण किया गया जिसमें भविष्यमें अकालका सामना करनेके लिए कुछ ठोस सिद्धान्त निर्धारित किये गये।

लार्ड लिटनके शासन-कालमें सारे ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतोंमें एक समान नमक-कर निर्धारित किया गया। इससे नमककी तस्करी बंद हो गयी और सिंधु नदीपर स्थित अटकसे लेकर दक्षिणमें महानदी तक २५०० मीलकी दूरीमें नागफनीकी कँटीली झाड़ी चुंगीके बाड़के रूपमें खड़ीकी गयी थी, उसे हटाना संभव हो गया। वस्तुतः लंकाशायरकी सूती कपड़ा मिलोंके हितमें परंतु प्रकट रूपमें मुक्त व्यापारके नाम लार्ड लिटनने अपनी एक्जीक्यूटिव कौंसिलकी अवहेलना करके, सूती कपड़ोंके आयातपर लगाया गया ५ प्रतिशत कर हटा दिया और इस प्रकार भारतके सूती वस्त्र उद्योगका विस्तार रोक दिया। १८७८ ई०में उसने भारतीयों द्वारा अपने देशी भाषाके पत्रोंमें सरकारके कार्योंकी प्रतिकूल आलोचनाओं-को रोकनेके लिए वर्नाकुलर प्रेस ऐक्ट (दे०) पास किया। यह प्रतिक्रियावादी कानून था जिसे चार वर्ष बाद उसके उत्तराधिकारी लार्ड रिपनने रद्द कर दिया।

लार्ड लिटनका सबसे दुर्भाग्यपूर्ण और अनुचित कार्य था १८७८ ई०में अफ़गानिस्तानके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर देना। दूसरा अफ़गान-युद्ध (१८७८–८८ ई०) (दे०) साम्राज्यवादी उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए छेड़ा गया था और इसमें धन और जनकी भारी हानि हुई। इस युद्धका भारी खर्चा अधिकांशमें भारतीय कर-दाताको उठाना पड़ा जो लार्ड लिटनके प्रशासनपर एक काला धब्बा छोड़ गया।

लिटन, लार्ड, द्वितीय–१९२२ ई०में बंगालका गवर्नर होकर भारत आया और १० अप्रैलसे ७ अगस्त १९२५ तक कार्यवाहक वाइसरायके रूपमें कार्य किया। इस प्रकार जिस पदको कई वर्षों पूर्व उसके पिताने सुशोभित किया था, उसे उसने भी सुशोभित किया। उसने पुनः बंगाल-के गवर्नरका पद सँभाल लिया और १९२७ ई०में अवकाश ग्रहण किया। उसके प्रशासन-कालमें कलकत्ता विश्वविद्यालयके ऊपर सरकारी नियंत्रणके प्रश्नपर सर आशुतोष मुखर्जीसे एक विवाद हुआ, जिससे उसके प्रशासनकी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ी।

लिनलिथगो, लार्ड–भारतका (१९३६ से १९४३ ई० तक) वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल। उसने १९३६ के गवर्नमेन्ट आफ इंडिया ऐक्ट (दे०)के पास होनेके बाद पद-ग्रहण किया, जिसमें ब्रिटिश भारतकी स्वशासन-युक्त प्रांतीय सरकारों तथा देशी रियासतोंकी एक संघ सरकार बनानेकी व्यवस्था की गयी थी। अभी तक देशी रियासतोंका सीधा संबन्ध ब्रिटिश सम्राट्से था। लार्ड लिनलिथगोने केन्द्रमें प्रस्तावित संघ सरकार तथा प्रांतोंमें उत्तरदायी स्वशासन-युक्त सरकारोंकी स्थापना करके समूचे ऐक्टको क्रियान्वित करनेका प्रयास किया। प्रांतीय चुनाव १९३७ ई०में सम्पन्न हुए, जिनमें ग्यारहमेंसे पाँच प्रांतोंमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसको स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ तथा दो अन्य प्रांतोंमें भी वह सरकार बना सकनेकी स्थितिमें थी। इन परिस्थियोंमें नये संविधानके प्रांतोंसे सम्बधित भागको क्रियान्वित कर दिया गया। किन्तु प्रस्तावित संघ सरकारमें देशी रियासतोंको सम्मिलित करनेके प्रश्नपर वार्ता चलानेमें काफी समय लग गया। इस बीच १९३९ ई०में द्वितीय विश्व-युद्ध शुरू हो गया और संविधानके संघ सरकारसे सम्बन्धित भागका क्रिया-न्वयन स्थगित कर दिया गया।

द्वितीय विश्व-युद्ध छिड़ जानेपर लार्ड लिनलिथगो पर दोहरा कार्यभार आ पड़ा। एक ओर तो उसे भारतमें जनमतको अपने पक्षमें बनानेका प्रयास करना पड़ा जो अत्यंत विक्षुब्ध हो गया था; दूसरी ओर उसे भारतमें ब्रिटेनके पक्षमें युद्ध-प्रयत्नोंको संगठित करना पड़ा। युद्धमें इंग्लैण्डके विरुद्ध जापानके कूद पड़नेसे उसकी कठिनायाँ और बढ़ गयीं। १९४१ ई०में जापानने मलयेशियापर आक्रमण कर सिंगापुरपर अधिकार कर लिया। इन प्रतिकूल परिस्थितियोंके बावजूद लार्ड लिनलिथगोने भारतको न केवल आवश्यक युद्ध-सामग्री भेजनेका केवल अड्डा बना दिया बल्कि ब्रिटिश भारतीय सेनाकी शक्ति १,७५,००० से बढ़ा कर बीस लाखसे अधिक कर दी और इन सेनाओंको दक्षिण पूर्व एशिया तथा पश्चिम एशियाके युद्ध क्षेत्रोंमें भेज दिया, जिसकी वजहसे ब्रिटिश पराजय धीरे-धीरे ब्रिटिश विजयमें परवर्तित हो गयी। परंतु युद्ध-प्रयत्नोंके फलस्वरूप जहाँ एक ओर खर्चमें उत्तरोत्तर भारी वृद्धि होती गयी, वहीं दूसरी ओर बंगालमें सर्वक्षार नीतिका अनुसरण करनेके कारण १९४३ ई०में भयंकर अकाल पड़ गया। लार्ड लिनलिथगोकी सरकार

इस अकालका सामना करनेमें असफल रही और शीघ्र ही लार्ड लिनलिथगोका स्थान लार्ड वेवेल (दे०) ने ग्रहण कर लिया जिसने अपने फौजी अनुभव और चुस्तीसे काम कर स्थितिका सामना किया।

लार्ड लिनलिथगोने क्षुब्ध भारतीय जनमतको कौशल-पूर्ण ढंगसे शांत रख कर भारतमें आंतरिक शांति बनाये रखनेका जो प्रयत्न किया, उसमें उसे आंशिक सफलता मिली। अक्तूबर १९३९ ई०में उसने घोषणा की कि भारतके संवैधानिक विकासका लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्यकी स्थापना है। उसने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा मुसलिम लीगकी माँगोंकी परस्पर विरोधी बातोंपर जोर देकर तथा भारतको क्रिप्स-प्रस्ताव स्वीकार कर लेनेके लिए राजी करनेके उद्देश्यसे १९४२ ई०में सर स्ट्रेफर्ड क्रिप्स (दे०) को भारत आमंत्रित करके देशके अंदर कोई खुली बगावत नहीं होने दी। फिर भी ब्रिटिश सरकारने भारतको स्वाधीनता प्रदान करनेकी कोई निश्चित तिथिकी घोषणा करनेसे बार-बार इनकार करके महात्मा गांधीको 'भारत छोड़ो आंदोलन' शुरू करनेके लिए विवश कर दिया। महात्मा गांधीने मांग की कि ब्रिटेनको तुरंत भारतपर अपनी प्रभुसत्ताका परित्याग करके यहाँसे चले जाना चाहिए। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने भी इस माँग-का समर्थन किया। जवाबमें लार्ड लिनलिथगोने महात्मा गांधीको कैद कर लिया और समूची कांग्रेस वर्किंग कमेटी-को नज़रबंद कर दिया। लार्ड लिनलिथगोने १९४३में भारतसे अवकाश ग्रहण किया और चार वर्ष बाद भारतको स्वाधीन कर दिया गया। इससे प्रकट होता है कि उसने बल-प्रयोगके द्वारा भारतमें ब्रिटेनकी प्रभुसत्ताको बनाये रखनेका जो प्रयत्न किया, वह कितना व्यर्थ था।

लियाकत अली खां–मुसलिम लीगका एक नेता तथा मि० जिन्ना (दे०)का दाहिना हाथ। वह १९४६ ई०में गठित अंतरिम सरकारमें अर्थ-सदस्य नियुक्त किया गया। जब १९४७ ई०में भारतका विभाजन करके पाकिस्तानकी स्थापना की गयी, वह उसका पहला प्रधान-मंत्री बनाया गया। उसने भारत और पाकिस्तानमें अल्पसंख्यकोंके साथ किये जाने वाले व्यवहारके सम्बन्धमें पंडित नेहरूसे एक समझौता किया। पाकिस्तानकी स्थापनाके बाद ही एक सार्वजनिक सभामें भाषण करते समय उसकी हत्या कर दी गयी। हत्यारेकी भी घटना-स्थलपर ही हत्या कर दी गयी। इसके फलस्वरूप हत्याके कारणका पता नहीं चल सका और न हत्यारेकी निश्चित रीतिसे शिनाख्त ही हो सकी।

लियाकत हुसेन–एक सच्चा राष्ट्रीयतावादी मुसलमान, जिसने बंग-भंग (१९०६–१९१२ ई०) (दे०)के विरुद्ध आंदोलनमें प्रमुख भाग लिया।

ली कमीशन–इसकी नियुक्ति भारत-मंत्री द्वारा १९२९ ई० में की गयी। इसका उद्देश्य उच्च सिविल सर्विसके वेतन एवं भत्तेके प्रश्नकी तथा साथ-साथ उसके भारतीयकरण-के प्रश्नकी पड़ताल करना था। इसकी अध्यक्षता लार्ड लीने की। इसके सदस्योंमें तीन भारतीय भी थे। कमीशनने अपनी रिपोर्ट मार्च १९२४ ई०में प्रस्तुत की। कमीशनने इंडियन सिविल सर्विसके बुनियादी वेतनमें कोई बड़ा परिवर्तन नहीं प्रस्तावित किया। उसने उसके समुद्र पारके वेतनमें भारी वृद्धि, फर्लो छुट्टीकी अधिक सुविधाएँ तथा इंग्लैण्ड आने-जानेका पहले दर्जेका किराया देनेकी सिफारिश की। कमीशनकी सिफारिशोंके आधार-पर इंडियन सिविल सर्विसके सदस्योंके वेतनमें बारह प्रतिशत वृद्धि होती थी।

भारतीय-करणके प्रश्नपर ली कमीशनने सिफारिश की कि अगले पन्द्रह वर्षोंमें सर्विसके सदस्योंमें ३० प्रतिशत यूरोपीय तथा ५० प्रतिशत भारतीयका लक्ष्य होना चाहिए। इसके लिए २० प्रतिशत उच्च पदोंपर नियु-क्तियाँ प्रांतीय सिविल सर्विसोंसे पदोन्नति कर की जानी चाहिए तथा सीधी भर्तीमें लिये जानेवाले सदस्योंमें आधे भारतीय तथा आधे यूरोपीय होने चाहिए। ली कमीशनकी रिपोर्टका इम्पीरियल (केन्द्रीय) लेजिस्लेटिव असेम्बलीमें तीव्र विरोध किया गया, फिर भी सरकारने उसे स्वीकार कर लिया। इसके फलस्वरूप उच्च सिविल सर्विसोंके सदस्योंके वेतन और भत्तेमें काफी वृद्धि हो गयी, प्रगति बहुत धीमी रही।

लीड्स–एक अंग्रेज जौहरी, फिच (दे०)के साथ १५८३ ई०में भारत आया था और मुगल सरकारकी ताबेदारी कर ली थी।

लीन्वायर–१७२० ई०से कई वर्षोंतक पांडेचेरीका फ्रांसीसी गवर्नर। उसने पांडेचेरीको व्यापारिक केन्द्रके रूपमें विकसित करनेमें भारी योगदान किया। वह राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं अथवा विजय अभिलाषासे प्रेरित नहीं था।

लीलावती–भास्कराचार्यके बृहद ग्रंथ 'सिद्धान्तशिरोमणि'-का एक भाग, जिसकी रचना ११५० ई०में हुई। इसमें गणित तथा बीजगणितके सिद्धान्तोंका विवेचन है। लीलावतीका फारसी अनुवाद (दे०) अकबरके दरबारी फैजीने किया था।

लुम्बिनीग्राम–कपिलवस्तु (दे०)के निकट स्थित, जहाँ लगभग ५६६ ई० पू० गौतमबुद्ध (दे०)का जन्म हुआ था। अशोकने अपने राज्यभिषेकके बीसवें वर्षमें इस स्थानकी यात्रा की थी और बुद्धके जन्मस्थानपर एक शिला-स्तम्भ स्थापित किया था। इस स्थानको अब सम्मिनदेई कहते हैं औ यह नेपालकी तराईमें हैं। अशोकका शिला-स्तम्भ वहाँ अब भी वर्तमान है। इस स्थानकी पवित्रता-को ध्यानमें रख कर अशोकने इसे सभी प्रकारकी बलि (कर)से मुक्त कर दिया था और भूमिकर भूमिकी-उपजके छठें भागके बजाय आठवाँ भाग निर्धारित किया था।

लुत्फुन्निसा–बंगालके नबाब सिराजुद्दौला (दे०) (१७५६–५७ ई०)की बेगम। पलासीकी लड़ाई (१७५७ ई०) के बाद नबाबके मुर्शियाबादसे भागनेके समय उसके साथ थी। नबाबकी हत्या कर दिये जानेके बाद वह शोकपूर्ण-जीवन बिताने लगी।

लेक, लार्ड गेरार्ड (१७४४-१८०८ ई०)–एक प्रसिद्ध ब्रिटिश जनरल, जिसने दूसरे मराठा-युद्ध (दे०)का नेतृत्व किया। फ्रांस तथा आयरलैंडकी ब्रिटिश सेनामें कई वर्ष तक योग्यताके साथ सेवा करनेके बाद वह १८०० ई०-में भारतकी ईस्टइंडिया कम्पनीकी सेवामें प्रधान सेनापति नियुक्त हुआ। वह १८०२ ई०में कलकत्ता पहुँचा। उसे कम्पनीकी सेनामें सुधार करनेका बहुत थोड़ा समय मिला। इसी बीच दूसरा मराठा-युद्ध शुरू हो गया। उसने उत्तरी भारतमें ब्रिटिश सेनाकी कमान संभाल ली। यहाँपर उसका मुख्य शत्रु शिन्दे था जिसको उसने कोयल-की लड़ाईमें हरा दिया। उसने अलीगढ़पर चढ़ाई की, दिल्ली तथा आगरापर कब्जा कर लिया तथा लासवाड़ी (दे०) (१८०३ ई०)की लड़ाईमें निर्णयात्मक विजय प्राप्त की, इसके फलस्वरूप शिन्दे अंग्रेजोंसे संधि करनेके लिए विवश हो गया।

लेकने इसके बाद होल्कर (दे०) से युद्ध किया और १८०४ ई०में उसे फर्रुखाबादमें हराया। परंतु वह १८०५ ई० में भरतपुरका किला नहीं ले सका और उसे वहाँके राजासे संधि कर लेनी पड़ी। तदनुसार भरतपुर-का किला और उसके आस-पासके क्षेत्रपर राजाका ही अधिकार बना रहा। इसके बाद लेकने होल्करका पंजाब तक पीछा करते हुए उसे संधि करनेके लिए विवश किया। युद्धकी इन शानदार सफलताओंके उपलक्ष्यमें लेकको 'पिअर' की पदवी प्रदान की गयी, परन्तु इसके कुछ समय बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी।

लेजिस्लेटिव असेम्बली–अथवा केन्द्रीय असेम्बलीकी स्था-पना १९१९ ई० के गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया ऐक्टके द्वारा केन्द्रीय भारत सरकारके लिए की गयी। इस ऐक्टके द्वारा केन्द्रीय विधान मंडलके दो सदन कर दिये गये। उच्च सदनको कौंसिल आफ स्टेट (राज्य परिषद्) कहते थे। केन्द्रीय असेम्बलीमें १०६ निर्वाचित तथा ४० मनोनीत सदस्य होते थे, जिनमें २५ सरकारी होते थे। उसका मताधिकार क्षेत्र कौंसिल आफ स्टेटसे अधिक विस्तृत तथा कार्यकाल तीन वर्ष था। केन्द्रीय असेम्बली-को वित्त तथा कानूनोंपर सामान्य नियंत्रण प्राप्त था। परंतु गवर्नर-जनरल अपने विवेकसे, यदि वह किसी व्यय अथवा कानूनको ब्रिटिश भारतकी सुरक्षा अथवा शांतिके लिए आवश्यक समझे तो इसे केन्द्रीय असेम्बलीके विरोध-के बावजूद अधिकृत अथवा पास कर सकता था।

लेजिस्लेटिव कौंसिल–१८६१ ई०के इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट-के द्वारा स्थापित केन्द्रीय सरकार तथा प्रांतीय सरकारोंके विधान मण्डलका नाम। यह नामकरण १९१९ ई०तक प्रचलित रहा। १९१९ ई०के गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया ऐक्टके द्वारा गवर्नर-जनरलकी लेजिस्लेटिव कौंसिलके दो सदन बना दिये गये। उच्च सदनको कौंसिल आफ स्टेट (राज्य परिषद्) कहते थे। निम्न सदनको लेजि-स्लेटिव असेम्बली अथवा केन्द्रीय असेम्बली कहते थे। इस ऐक्टके पास होनेके बाद सिर्फ प्रांतीय विधान मंडलों-को लेजिस्लेटिव कौंसिल कहा जाने लगा। भारतीय गणराज्यके संविधानके अन्तर्गत प्रांतीय विधान मण्डलके उच्च सदनको विधान परिषद् तथा निम्न सदनको विधान सभा कहते हैं। (दे० **ब्रिटिश प्रशासनके अन्तर्गत**)

लेफ्टिनेंट गवर्नरका पद–बंगालमें लार्ड डलहौजीने १८५४ ई०में स्थापित किया। जबतक बंगालका प्रशासन सीधे गवनर-जनरलके अधीन रहा, उसकी बहुधा उपेक्षा होती रहती थी, क्योंकि भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यके विस्तारके साथ गवर्नर-जनरलका कार्य-भार बहुत बढ़ गया था। १९१२ ई०में बंग-भंग रद्द कर दिये जानेके बाद बंगालके लेफ्टिनेण्ट-गवर्नरका पद तोड़ दिया गया। तबसे प्रांतका प्रशासन गवर्नरके अधीन हो गया।

लस्पिने, बेलैंगर डी–एक फ्रेंच सैनिक, जो फ्रांसीसी सामु-द्रिक बेड़ेके साथ १६७२ ई०में भारत आया। उसने फ्रांकोइस मार्टिन (दे०) के साथ वलिकोंडापुरम्के मुसलमान हाकिमसे १६७३ ई०में पांडिच्चेरीका स्थान प्राप्त किया। इस प्रकार पांडिचेरी नगर की स्थापना-में उसका भी हाथ था।

लेस्ली, कर्नल ब्रेडफोर्ड–बंगालमें नियुक्त एक अंग्रेज सिविल इंजीनियर। उसने १८७४ ई०में कलकत्ता और हुगलीके बीच हुगली पुलका तथा १८८१ ई०में नैहाटीमें हुगली नदीके ऊपर जुबिली पुलका निर्माण किया।

लैंग, सैमुएल (१८१०-९७ ई०)–अर्थशास्त्र विषयकी पुस्तकोंका एक अंग्रेज लेखक और रेल प्रशासनका विशेषज्ञ। वह १८६० से १८६२ ई०तक वाइसरायकी एक्जीक्यूटिव कौंसिलका अर्थ-सदस्य रहा। अपने पूर्वाधिकारी जेम्स विलसनके कार्योंको आगे बढ़ाते हुए उसने गदरके फलस्वरूप असंतुलित हो गयी भारतीय अर्थव्यवस्थाको संतुलित बनाया। उसने खर्चोंमें भारी कमी की, नमककर बढ़ा दिया, १० प्रतिशतकी सामान्य दरसे सीमाशुल्क लगा दिया तथा कृषिसे इतर सभी आमदनियोंपर आय-कर लगा दिया।

लैम्बर्ट, कमोडोर–इसे लार्ड डलहौजीने जंगी जहाजका कमांडर बनाकर बर्माके राजा पगानके पास भेजा और माँग की कि बर्मा सरकारकी वजहसे अंग्रेज व्यापारियोंको जो हानि उठानी पड़ी है उसका वह हर्जाना दे। लैम्बर्टका 'स्वभाव 'जल्दी भभक उठने' का था। वह इस बातसे एकदम आग बबूला हो गया कि रंगूनके बर्मी गवर्नरने उसके कुछ नौसैनिक प्रतिनिधियोंसे मिलनेसे इन्कार कर दिया। उसने रंगूनकी नाकेबन्दीकी घोषणा कर दी और बर्माके राजाका एक जहाज पकड़ लिया। इसपर बर्मियोंने लैम्बर्टके जहाजपर गोलाबारी शुरू कर दी। लैम्बर्टके आदेशसे जहाजपरसे भी जवाबी गोलाबारी की गयी। लार्ड डलहौजीने इस घटनाको बर्मी सरकारसे हर्जानेके तौरपर एक बड़ी रकम माँगनेका बहाना बनाया। बर्मी सरकारके इन्कार कर देनेप्रर दूसरा बर्मा-युद्ध (दे०) छिड़ गया।

लैंसडौन, मार्क्विस आफ–भारतका (१८८८ से १८९४ ई०तक) वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल। उसके प्रशासनकालमें भारतमें शांति रही। सिर्फ स्वतन्त्र मणिपुर राज्यमें थोड़े समयके लिए बगावत हुई, जिसके लिए राज्यके प्रधान सेनापति टिकेन्द्रजीतको जिम्मेदार ठहराया गया। बगावतको कुचल दिया गया और टिकेन्द्रजीतको फाँसी दे दी गयी। कुछ समयसे चाँदीका भाव गिरता जा रहा था और लार्ड लैंसडौनके प्रशासनकालमें इतनी मंदी आ गयी कि १८९३ ई०में टकसालोंमें चांदी और सोनेके सिक्कोंका निर्बाध रीतिसे ढालना बन्द कर दिया गया और सोना और चाँदीको रुपयेसे बदलनेके लिए भाव प्रति गिन्नी दस रुपयेके बजाय पन्द्रह रुपया कर दिया गया। इसके फलस्वरूप रुपयेकी विनिमय दर १ शिलिंग ४ पेंस निर्धारित की गयी, जिससे भारतको भारी हानि हुई।

लार्ड लैंसडौनने भारतके उत्तर-पूर्वी तथा उत्तर-पश्चिमी सीमांतोंपर 'अग्रसर नीति' कुछ सीमातक जारी रखी। बर्मापर की गयी ब्रिटिश विजयको चीनने मान्यता प्रदान कर दी। सिक्किमका स्वतन्त्र राज्य १८८८ ई० में ब्रिटिश संरक्षणमें ले लिया गया और तिब्बतके साथ उसकी सीमाका निर्धारण कर दिया गया। चटगाँवके उत्तर-पूर्वके पर्वतीय क्षेत्रमें रहनेवाले लुशाइयों, उससे और पूर्वके चिन लोगों तथा इरावदी नदीके उसपार स्थित शान राज्योंको ब्रिटिश प्रभाव-क्षेत्रमें सम्मिलित कर लिया गया। उत्तर-पश्चिममें क्वेटासे बोलन दर्रेतक सामरिक महत्त्वकी रेलवे लाइनका निर्माण किया गया, जिससे कंदहार तक बढ़ना सुगम हो गया। अफगान सीमापर गिलगिटके निकट हुंजा और नगरके दो छोटे-छोटे राज्योंको १८९२ ई०में ले लिया गया। उसी वर्ष चित्रालकी घाटीके मार्गपर स्थित कलात राज्यको ब्रिटिश संरक्षणमें ले लिया गया।

उत्तर-पश्चिममें ब्रिटिश शासनके इस विस्तारसे अफगानिस्तानका अमीर अब्दुर्रहमान चिंतित हो उठा और उसे अंग्रेजोंकी नीयतमें सन्देह होने लगा। अंतमें १८९२ ई०में लार्ड लैंसडौनके कहनेसे अमीर अब्दुर्रहमान सर मार्टिमर डूरैण्डको अफगानिस्तानमें ब्रिटिश राजदूतके रूपमें रखनेके लिए राजी हो गया। डूरैण्ड बिना किसी रक्षक दलको साथ लिये अफगानिस्तान गया और अमीर अब्दुर्रहमानसे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करनेमें सफल हुआ। उसने कुछ विवादास्पद क्षेत्रोंके सम्बन्धमें अमीरसे समझौता कर लिया और अन्तमें अफगानिस्तान और भारतके बीच जिन क्षेत्रोंमें सीमांकन करना सम्भव था, वहाँ सीमांकन करनेमें सफल हो गया। यह सीमा-रेखा उसके नामपर 'डूरैण्ड सीमा-रेखा' कहलाती है।

लोदी वंश–इसकी स्थापना दिल्लीमें बहलोल लोदीने १४५१ ई०में की, जिसने दिल्लीकी सल्तनतपर १४५१ से १५२६ ई०तक शासन किया। इस वंशमें तीन सुल्तान बहलोल लोदी (१४५१–१४८९ ई०), सिकन्दर लोदी १४८९–१५१७ ई०) तथा इब्राहीम लोदी (१५१७–२६ ई०) हुए। इस वंशको बाबरने समाप्त कर दिया। उसने १५२६ ई०में पानीपतकी पहली लड़ाईमें इब्राहीम लोदीको पराजित कर मार डाला।

लोहर वंश–इसकी स्थापना कश्मीरमें १००३ ई०में संग्राम-

राजने की। उसे अपनी चाची रानी दिद्दा (दे०) से कश्मीरका सिंहासन प्राप्त हुआ था। उस समयतक कश्मीरका राज्य अंतःपुरके षड्यंत्रोंसे इतना निर्बल हो गया था कि उत्तरी भारतपर मुसलमानोंको अधिकार करनेसे रोकनेके लिए वह कुछ नहीं कर सका। अंतमें १३३९ ई०में एक मुसलमान सरदार शाह मिर्जा (दे०) ने, जो १३१५ ई०में कश्मीरके अंतिम लोहर राजाकी नौकरी करने लगा था, लोहर वंशका उन्मूलन कर दिया।

लोहानी–एक अफगान कबीला, जो दरिया खाँ लोहानीके नेतृत्वमें बिहारमें बस गया। सुल्तान इब्राहीम लोदी (१५१७–२६ ई०) (दे०) के राज्यकालमें उसके साथ इतना निष्ठुरतापूर्ण व्यवहार किया गया कि उसने दिल्लीके खिलाफ बगावत कर दी और बिहारमें अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। बादमें बाबर (१५२६–३० ई०) ने उसे १५२९ ई०में बाबराकी लड़ाईमें हरा कर अपने अधीन किया।

ल्हासा–तिब्बतकी राजधानी, जिसकी स्थापना ६३९ ई०में राजा स्रोंग-त्सान गम्पो (६२९–६९८ ई०) ने एक झील में पत्थर भरवा कर की। यह नगर चीनसे भारत आनेके मार्गपर स्थित है। तिब्बती लोगोंके अनुरोध करनेपर अनेक बौद्ध भिक्षु भारतसे यहाँ आये, जिनमें अतिशा (दे०) सबसे प्रसिद्ध था। बादमें तिब्बती लोग इस बातको नापसन्द करने लगे कि अंग्रेज लोग ल्हासा आयें। परंतु १९०४ ई०में सर फ्रांसिस यंगहस्बैण्ड (दे०) के नेतृत्वमें एक ब्रिटिश सेना तिब्बतमें जबर्दस्ती घुस गयी और यूरोपीय लोगोंके लिए ल्हासा नगरका द्वार खोल दिया।

ल्हासाकी संधि–१९०४ ई०में सर फ्रांसिस यंगहस्बैण्ड द्वारा तिब्बतपर थोपी गयी, जो एक ब्रिटिश सेना लेकर तिब्बतमें घुस गया था। इस सन्धिमें निम्न शर्तें थीं; (१) भारत और तिब्बतके बीच व्यापारको बढ़ाने तथा प्रोत्साहन देनेके लिए यातुङ्ग, ग्यान्त्से तथा गरतोकमें व्यापारिक केन्द्रोंकी स्थापना की जायगी; (२) ग्यान्त्सेमें एक ब्रिटिश व्यापारिक दूत नियुक्त किया जायगा जिसे ल्हासा तक जानेका अधिकार होगा; (३) तिब्बत ७५ वर्ष तक प्रति वर्ष एक लाख रुपया हर्जाना देगा; (४) जब तक सारा हर्जाना चुकता नहीं कर दिया जायगा चुम्बी घाटीपर ब्रिटिश फौजोंका अधिकार रहेगा; (५) तिब्बती क्षेत्रका कोई भाग किसी विदेशी ताकतको हस्तांतरित नहीं किया जायगा; (६) किसी विदेशी ताकत या प्रजाको रेलवे लाइन बिछाने, सड़क बनाने, तारके खम्भे खड़े करने अथवा खानोंसे उत्खनन करनेकी कोई सुविधा तब तक नहीं प्रदान की जायगी जब तक अंग्रेजोंको वही सुविधा नहीं दी जायगी। सन्धिकी शर्तें बहुत कठोर थीं; अतएव उनका तीव्र विरोध हुआ। परिणामस्वरूप हर्जानेकी रकम ७५ लाखसे घटाकर २५ लाख कर दी गयी, चुम्बी घाटीपर अधिकार रखनेकी अवधि घटाकर तीन वर्ष कर दी गयी तथा ब्रिटिश व्यापारिक दूतके इच्छानुसार ल्हासा तक जानेके अधिकारकी बात निकाल दी गयी। १९०६ ई०में चीनने इस सन्धिका अनुमोदन कर दिया। चीन और इंग्लैण्ड दोनो तिब्बतकी अखण्डताका सम्मान करनेपर सहमत हो गये।

व

वजीर अली–अवधके नवाब आसफुद्दौला (१७७५–९७ ई०) का अवैध पुत्र। १७९७ ई०में पिताकी मृत्युके बाद उसे अवधका नवाब बनाया गया, परन्तु दूसरे ही वर्ष ब्रिटिश सरकारने उसे पदच्युत कर दिया और उसके स्थानपर उसके चाचा सादत अली (१७९८–१८१४ ई०) को नवाब बनाया। बादमें वजीर अलीने ब्रिटिश रेजिडेंट मि० चेरीकी हत्या करा दी और विद्रोहका प्रयास किया, किन्तु उसे दबा दिया गया।

वजीर खाँ–सरहिन्दका मुगल फौजदार, जो गुरु गोविन्दसिंह (दे०) के विरुद्ध लड़ा और जिसने उनके दो नाबालिग पुत्रोंकी हत्या कर दी। १७०८ ई०में गुरु गोविन्द सिंहके मरणोपरान्त वीरबंदाने सरहिन्दपर आक्रमण किया और वजीर खां को परास्त कर मार डाला।

वजीरी–अविभाजित भारतके उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांतका एक कबीला, जो ब्रिटिश शासन-कालमें भारत-अफगान सीमाको विभाजित करनेवाली डूरंड रेखाके इस पार रहता था। वजीरी लोग स्वतन्त्रता-प्रिय और लड़ाकू प्रकृतिके होते हैं और उनको अपने अधीन रखनेके लिए भारतकी अंग्रेज सरकारको अनेक बार उनके विरुद्ध फौजी काररवाई करनी पड़ी।

वझिष्क–सम्भवतः कुषाण सम्राट् कनिष्क (दे०) का पिता था।

वनपाल, राणा–सन्तूर नामक छोटेसे राज्यका शासक, जिसने सुल्तान नासिरुद्दीन (१२४६–६६) के विद्रोही

और बयाना पूर्वी राजस्थानके शासक कुतलग खाँ को शरण दी थी। लेकिन कुतलग खाँ सुल्तानके प्रतिनिधि बलबनसे वहाँ भी हार गया और उसे भागना पड़ा।

वनबासी (जिसे जयन्ती अथवा वैजयन्ती भी कहते हैं)—बम्बई राज्यके दक्षिणी भागमें तुङ्गभद्राके उत्तरी तटपर स्थित प्रसिद्ध नगर। ई० तीसरी शताब्दीके मध्यमें सातवाहनोंकी शक्ति क्षीण होनेके बाद इस नगरका उत्कर्ष हुआ और कदम्ब राजवंश (दे०) की राजधानीके रूपमें सुविख्यात हुआ, जिन्होंने इस क्षेत्रमें तीसरी शताब्दीसे लेकर छठीं शताब्दी तक शासन किया। यह नगर जयन्ती अथवा वैजयन्तीके नामसे भी जाना जाता है। कदम्ब वंशके पतनके बाद इसकी भी अवनति हो गयी।

वराहमिहिर—प्रसिद्ध हिन्दू खगोलवेत्ता, जो ५०७ से ५८७ ई०के मध्य हुआ। अनुश्रुति है कि वह उज्जैन (दे०) के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्यके दरबारमें था। उसके ग्रंथोंमें बहुतसे यूनानी नाम मिलते हैं, जिससे पता चलता है कि वह यूनानी ज्योतिष सिद्धान्तोंसे परिचित था।

वरुण—एक वैदिक देवता। आकाश अथवा द्यौः के देवताओंमें उनका मुख्य स्थान था। ऋग्वेद तथा अथर्ववेदमें वरुणकी कई स्तुतियाँ मिलती हैं।

वर्थेमा लुडोविको डि—एक इतालवी यात्री सुल्तान महमूद बेगड़ाके राज्यकाल (१४५९—१५११ ई०)में उसने गुजरातका भ्रमण किया। उसने अपने यात्रा-विवरणमें सुल्तान की आदतोंके विषयमें अनेक विचित्र एवं अनोखी बातें लिखी हैं।

वर्धमान महावीर—देखिये, 'महावीर'।

वर्नाक्यूलयर प्रेस ऐक्ट—वाइसराय लिटन (दे०) द्वारा १८७८ ई०में पास हुआ। इस ऐक्टने भारतीय भाषाओंमें प्रकाशित समाचार पत्रोंपर नियन्त्रण लगा दिया। किन्तु यह अंग्रेजीमें प्रकाशित समाचार पत्रोंपर लागू नहीं हुआ। फलस्वरूप भारतीयोंने बड़ा विद्रोह किया। यह १८८२ ई० में लार्ड रिपन (दे०) द्वारा निरस्त कर दिया गया।

वलजाह नबाब—देखिये, 'मुहम्मद अली'।

वली उल्लाह शाह—(१७०३—६२) दिल्ली का एक प्रसिद्ध मुसलमान धर्माचार्य। उसनें कुरानका फारसीमें अनुवाद किया और इस्लाममें सुधारका आन्दोलन चलाया। उसके शिष्य बरेलीके सैय्यद अहमदने अन्ततः वहाबी आन्दोलन (दे०) में भाग लिया।

वल्लभी—(वल्लभी) नगर एवं राज्यका नाम। लगभग पाँचवी शताब्दीमें इसकी नींव मैत्रकों (दे०) ने डाली थी। इस राज्यके अन्तर्गत मूलतः पूर्वी काठियावाड़ आता था। वल्लभी नगर अब बालाघाट गाँव बन गया है। इसका प्रथम राजा द्रोण सिंह था, जिसने महाराज की पदवी धारण करके छठीं शताब्दीके प्रारम्भमें शासन किया। इस राजवंशकी एक शाखा मोला-पो अर्थात् पश्चिमी मालवामें स्थापित हुई। राजा शीलादित्य, धर्मादित्य इसी शाखाका था, जिसने सातवीं शताब्दीके प्रथम दशकमें शासन किया। शीलादित्यके भतीजे ध्रुवसेन (जो ध्रुवभट भी कहलाता था) के शासनकालमें दोनों शाखाएँ संयुक्त हो गयीं। ध्रुवसेनका विवाह हर्षवर्धनकी पुत्रीसे हुआ था।

हर्षवर्धनकी मृत्युके उपरान्त वल्लभी राज्य उत्तरोत्तर शक्तिशाली होता गया, किन्तु ७७० ई० में अरबोंने उसे ध्वस्त कर डाला। वल्लभी नगर धन-धान्यसे सुसम्पन्न था और वहाँ अनेक ख्यातिप्राप्त बौद्ध आचार्य रहते थे। यह विद्याका महान् केन्द्र था और सातवीं शताब्दीमें नालन्दाके समान प्रसिद्ध था। दूर-दूरसे विद्यार्थी विद्याध्ययनके लिए यहाँ आते थे। चीनी यात्री ह्वएनसाँग भी यहाँ आया था।

वल्लाल सेन—बंगालके सेन वंश (दे०) का दूसरा राजा (लगभग ११५८-७९ ई०)। वह अपने पिता विजयसेनका उत्तराधिकारी बना। उसने सम्भवतः मगधराज गोविन्दपालको परास्त किया और मिथिलापर भी चढ़ाई की। उसके राज्यके अन्तर्गत वंग, वारेन्द्र, राढ़, बाग्डी और मिथिला आते थे। उसने अनेक सामाजिक सुधार किये और बंगालमें वर्णाश्रम धर्मकी पुनः प्रतिष्ठा करनेके लिए कुलीन-प्रथाका प्रचार किया। वह उद्भट विद्वान् तथा प्रसिद्ध लेखक था। उसने दो ग्रंथोंकी रचना की—दानसागर और अद्भुत सागर। दानसागरमें विभिन्न प्रकारके दानोंका उल्लेख है और अद्भुतसागरमें शकुनों-अपशकुनों और पूर्वलक्षणोंका वर्णन है।

वसिष्क—कुषाण सम्राट् कनिष्क (दे०) का ज्येष्ठ पुत्र। उसकी मृत्यु पिताके जीवनकालमें ही हो जानेसे कनिष्क-के बाद उसका कनिष्ठ पुत्र हुविष्क (दे०) उसका उत्तराधिकारी बना।

वसुमित्र—प्रख्यात बौद्ध दार्शनिक तथा लेखक, कनिष्क (दे०) का समकालिक। उसने चौथी बौद्ध संगीति (दे०) का सभापतित्व किया था, जो कनिष्कके राज्यकालमें कश्मीरमें सम्पन्न हुई। महाविभाषा उसकी प्रमुख रचना है।

वहाबी आन्दोलन--पाश्चात्य संस्कृति और शासनके विरुद्ध भारतीय मुसलमानोंका एक आन्दोलन। उन्नीसवीं-शताब्दीके पूर्वार्धमें इसका प्रारम्भ हुआ और इसका प्रमुख केन्द्र उत्तरी पेशावरमें स्थित सितना नामक स्थान था। नवीन अनुयायियोंकी भर्तीके लिए इसके केन्द्र पटना और बंगालके कुछ स्थानोंमें स्थापित किये गये और गुप्त रीतिसे इसका प्रसार समग्र भारतमें कर दिया गया। ब्रिटिश सैनिकोंने १८५८ ई० में वहाबियोंको सितनासे खदेड़ दिया, अतः वे मल्कामें जम गये और १८६३ ई० में सारे पंजाबमें उनका आंदोलन फैल जानेका खतरा उत्पन्न हो गया। सर नेवाइल चैम्बरलेनके नेतृत्वमें ब्रिटिश सेनाने दिसम्बर १८६३ ई० मल्कापर अधिकार करके उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डाला और वहाबी आन्दोलनको कुचल दिया।

वांगह्यु एनत्से--एक चीनी राजदूत जिसने ६४३ ई०, ६४६-४७ ई० और ६५७ ई० में तीन बार भारत-भ्रमण किया। उसकी पहली यात्राके समय सम्राट् हर्षवर्धन जीवित था, किन्तु जब वह दूसरी बार आया, उसके राजधानी पहुँचनेके पहले ही सम्राट्का निधन हो चुका था। हर्षकी मृत्युपरांत उसके मंत्री अर्जुनने सिंहासनपर अधिकार कर लिया। उसने चीनी दूतमंडलपर भी आक्रमण कर दिया और अंगरक्षकोंकी हत्या कर उसकी सम्पत्तिको लूट लिया। किन्तु वांग ह्यएनत्से तिब्बत भाग जानेमें सफल हुआ, जहांके राजा स्रोङ्गचन्-साम् पो (दे०) ने उसे शरण दी और अपनी सेना उसके साथ कर दी। इस सेनाकी सहायतासे वांगह्यएनत्सेने तिरहुतपर आक्रमण किया और अर्जुनको परास्त करके बंदी बना लिया। इसके बाद वह विजयी बनकर चीन वापस लौट गया। ह्यवांग एनत्से ६५७ ई० में तीसरी और अंतिम बार तीर्थाटनके लिए भारत आया। उसने वैशाली एवं बोध गया सरीखें बौद्ध तीर्थस्थलोंपर वस्त्र-दान किया और अफगानिस्तान होकर पामीरके मार्गसे स्वदेश लौट गया।

वाइसराय--१८५८ ई०में इंग्लैण्डकी सम्राज्ञी द्वारा भारतका शासन-प्रबन्ध अपने हाथमें लेनेके बाद भारतके गवर्नर-जनरलकी सरकारी पद संज्ञा 'वाइसराय' (राज-प्रतिनिध) कर दी गयी। लार्ड कैनिंग, जो उस समय गवर्नर-जनरल था, १ नवम्बर १८५८ ई० को प्रथम वाइसराय बना। गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया ऐक्ट १९३५ द्वारा इस पदका नया नामकरण 'सम्राटका प्रतिनिधि' कर दिया गया। लार्ड लिनलिथिगो अन्तिम वाइसराय था।

वाकाटक राजवंश--चौथी शताब्दीके प्रारम्भमें बुन्देलखण्ड और पेनगंगाके बीच विंध्यशक्तिके पुत्र प्रवरसेन प्रथम द्वारा प्रवर्तित। प्रवरसेन शक्तिशाली राजा था जिसने बरारपर अधिकार कर लिया। उसकी मृत्युके बाद उसका राज्य सम्भवतः बँट गया। दक्षिणी भाग उसके पुत्र शिवसेन और उत्तरी भाग उसके पौत्र रुद्रसेन प्रथमके अधिकारमें चला गया। रुद्रसेन प्रथमका पुत्र और उत्तराधिकारी पृथ्वीसेन प्रथम, समुद्रगुप्त (दे०) का समकालिक था। कारण जो भी रहा हो, समुद्रगुप्तने पृथ्वीसेनको तनिक भी क्षति नहीं पहुँचायी।

पृथ्वीसेनके पुत्र और उत्तराधिकारी रुद्रसेन द्वितीयका विवाह तृतीय गुप्त सम्राट चंद्रगुप्त द्वितीयकी पुत्री प्रभावती गुप्तके साथ हुआ और वह सम्भवतः गुप्तोंका मांडलिक राजा था। प्रभावती गुप्ताके तीन पुत्र थे, यथा दिवाकर सेन, दामोदर सेन और प्रवर सेन द्वितीय, जो सम्भवतः एक-दूसरेके बाद सिंहासनपर बैठे। अंतिम राजाके विषयमें जो लगभग ४१० ई० में सिंहासनपर आसीन हुआ, अनुमान किया जाता है कि धीरे-धीरे उसने गुप्त सम्राट्के आधिपत्यसे अपनेको स्वतंत्र कर लिया। बादमें पाँचवी शताब्दीके उत्तरार्धमें वाकाटक नरेशोंका अस्थायी रूपसे मालवापर आधिपत्य स्थापित हो गया और अन्तिम राजा हरिसेनने दक्षिणापथ तक राज्य विस्तार कर लिया। परन्तु सातवीं शताब्दीके प्रारम्भमें वाकाटक वंशका अंत हो गया। अजन्ताकी कुछ गुफाएँ उनके उत्कर्षकालमें निर्मित हुईं। (रायचौधरी० पृ० ५४१)

वाजिद अली शाह--अवधका अन्तिम नवाब (१८४७-५६ ई०)। कुशासनके आरोपमें वह १८५६ ई० में लार्ड डलहौजी (दे०) द्वारा पदच्युत कर दिया गया और उसे निर्वासित कर कलकत्ता भेज दिया गया, जहाँ वह मृत्युपर्यन्त रहा। इस कालमें उसको पेंशनके रूपमें बारह लाख रुपये मिलते रहे।

वाटसन, एडमिरल--ईस्ट इण्डिया कम्पनीके अधीन एक नौ-सेना अधिकारी, जो १७५४ ई० में भारत आया और १७५६ ई० तक मद्रासके समुद्र क्षेत्रमें तैनात रहा। फिर उसे पाँच युद्धपोतों तथा पाँच रसदके जलपोतोंके साथ कलकत्ता (दे०) पर पुनः अधिकार करनेमें क्लाइव की सहायताके लिए बंगाल भेज दिया गया। नवाब सिराजुद्दौला (दे०) ने कलकत्तासे अंग्रेजोंको निकाल बाहर कर दिया था। वाटसनने बिना विरोधके, जनवरी १७५७ ई० में कलकत्तापर पुनः अधिकार कर

लिया और कुछ दिन बाद हुगलीपर भी अधिकार कर लिया। इसके उपरान्त मार्च १७५७ ई० में उसने गंगासे अपना बेड़ा चंद्रनगर (दे०) तक ले जाकर फ्रांसीसी दुर्गपर गोलाबारी की, जिसे अन्ततः आत्मसमर्पणके लिए बाध्य होना पड़ा। इसके बाद नवाब सिराजुद्दौलाको अपदस्थ करनेके लिए क्लाइवने जो षड्यंत्र रचा उसमें वह भी सम्मिलित हो गया। परन्तु उसने अमीचन्द (दे०) को दिखानेके लिए नकली संधि-पत्रपर हस्ताक्षर करनेसे इन्कार कर दिया, अतः राबर्ट क्लाइवने उसके जाली हस्ताक्षर बना दिये।

वातापी (अथवा बादामी)—चालुक्य वंशकी राजधानी पुलकेशी प्रथमने छठीं शताब्दीमें डाली। यह आधुनिक बम्बई राज्यके बीजापुर जिलेमें स्थित था।

वायुपुराण—अठारह पुराणों (दे०)में से प्राचीनतम पुराण। संभवतः चतुर्थ शताब्दी ईसवीमें इसे वर्तमान रूप प्राप्त हुआ। इसमें दी गयी प्राचीन राजवंशावलियाँ अन्य पौराणिक वंशावलियों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय तथा पूर्ण मानी जाती हैं।

वारंगल—एक नगर और राज्यका भी नाम, जिसकी यह राजधानी था। यह काकतीय वंश (दे०) के राजाओंके शासनाधीन था और १३१० ई०में अलाउद्दीन खिलजीने इसपर चढ़ाई की और अन्ततः इसे दिल्ली सल्तनतमें मिला लिया।

वाराणसी—आधुनिक बनारस, जो गंगाके उत्तरी तटपर उसकी दो सहायक नदियों, वरुणा और अस्सीके बीचमें स्थित है। यह गंगाके अर्धचन्द्राकार मोड़के किनारे फैला हुआ है। इसका उल्लेख सर्वप्रथम अथर्ववेदमें काशी राज्य की राजधानीके रूपमें हुआ है। सनातनी हिन्दू सामान्यतः इसे काशीके ही नाम से पुकारते हैं। अति प्राचीनकालसे हिन्दुओंकी सात पवित्र नगरियोंमेंसे एकके नामसे इसकी प्रसिद्धि रही है। काशीका राज्य कालांतरमें कोशलके बड़े राज्यमें विलीन हो गया किन्तु काशी अथवा वाराणसी नगर भारतीय इतिहासमें, पवित्र नगरी तथा प्रमुख विद्या-केन्द्रके रूपमें सदा ही फलता-फूलता रहा। गौतमबुद्धके समयमें वाराणसी धर्म, संस्कृति और ज्ञानका इतना महत्त्वपूर्ण केन्द्र था कि बुद्धने अपना प्रसिद्ध प्रथम धर्मोपदेश धर्मचक्र-प्रवर्तन यहाँ ही किया था। जैन भी इसे विद्याका महत्त्वपूर्ण केन्द्र मानते हैं और यह दावा करते हैं कि उनके धर्मप्रवर्तक स्वामी पार्श्वनाथ वाराणसीके ही एक राजकुमार थे। मध्यकालके प्रारम्भमें वाराणसी कन्नौजके गहड़वाल राजाओंकी अधीनतामें था और मुसलमानों द्वारा कन्नौज जीत लेनेपर यह भी उनके नियंत्रणमें चला गया और दिल्लीकी सल्तनतका एक हिस्सा बन गया। बादमें १७७५ ई० तक अवधके नवाबके राज्यका अंग बना रहा, जब स्थानीय हिन्दू राजा चेतसिंह (दे०) ने ईस्ट इंडिया कम्पनीसे संधि कर अपने ऊपर उसका सार्वभौम प्रभुत्व स्वीकार कर लिया। १७८१ ई०में राजा चेतसिंह को गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्सने अपदस्थ कर दिया और वाराणसी तबसे ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यका अभिन्न अंग बन गया।

तीर्थ-केन्द्रके रूपमें वाराणसीका मुख्य आकर्षण विश्वनाथ (शिव) मन्दिर है। यह ज्ञात नहीं है कि सर्व-प्रथम इस देव मंदिरकी स्थापना किसने की और मूल मन्दिर कैसा था। संभवतः प्राचीन देवस्थान विश्वेश्वर मन्दिरके पिछवाड़े था। बादमें स्थापित मुख्य मन्दिरको १६६९ ई०में औरंगजेबने ढहा दिया और उसके स्थानपर नष्ट हुए मन्दिरके मलवेसे एक मस्जिद बनवायी। आधुनिक मन्दिरका निर्माण अहल्याबाई होल्करके प्रयाससे बादमें हुआ। वाराणसी न केवल विद्या-केन्द्र वरन् औद्योगिक केन्द्र भी है। इसके सूती वस्त्र अपनी उत्कृष्टताके लिए कौटिलीय अर्थशास्त्रके कालमें भी (तीसरी शताब्दी ई० पू०) प्रसिद्ध थे। वाराणसी आज भी रेशमी, जरी, धातुके काम तथा सूती वस्त्रोंके लिए प्रसिद्ध है। वाराणसीको, जिसकी प्राचीन भारतीय संस्कृति और धार्मिक जीवनके केन्द्रके रूपमें दीर्घकालसे प्रसिद्धि रही है, आजभी भारतके शैक्षिक मानचित्रमें प्रमुख स्थान प्राप्त है। यहाँ अनेक आधुनिक शिक्षा संस्थाएँ हैं जिसमें बनारस हिन्दू विश्व-विद्यालय सर्वाधिक प्रसिद्ध है। हालके वर्षोंमें राजनीतिक क्षेत्रमें वाराणसीका अधिक महत्त्व नहीं रहा है किन्तु इसी नगरमें गोपालकृष्ण गोखलेकी अध्यक्षतामें कांग्रेसका इक्कीसवाँ अधिवेशन हुआ था, जिसमें देशके लिए पूर्ण स्वाधीनताकी माँग करनेवाले गरमदलका आविर्भाव हुआ था।

वाल्मीकि—प्रचेताके वंशज एक ऋषि। पारंपरिक रूपसे यह विश्वास किया जाता है कि वे संस्कृतके प्रसिद्ध महाकाव्य रामायण (दे०) के रचयिता थे। उन्हें संस्कृत भाषाका आदि-कवि माना जाता है।

वासव—कल्याणीके कलचुरि वंशी राजा विज्जलका मंत्री। राजा विज्जलने ११६७ ई०में सिंहासन त्याग दिया, वासव लिंगायत अथवा वीरशैव सम्प्रदायका प्रवर्तक था।

वासिष्ठी-पुत्र श्री पुलमावि—एक सातवाहन राजा, जिसने

१३० ई० के बाद सिंहासन ग्रहण किया। गोदावरीपर स्थित पैठान अथवा प्रतिष्ठान उसकी राजधानी थी। उसने एक विशाल राज्यपर, जो कृष्णा-गोदावरी क्षेत्र और महाराष्ट्र तक विस्तृत था, शासन किया।

वासिष्ठी-पुत्र सातकर्णि–एक सातवाहनराजा। वंशानुक्रममें उसकी ठीक स्थितिका निर्धारण नहीं हो सका है। सम्भवतः यह वही सातवाहन राजा था जिसने प्रभावशाली महाक्षत्रप रुद्रामा (दे०) की पुत्रीसे व्याह किया था। वह अपने श्वसुर द्वारा दोबारा परास्त हुआ, किन्तु निकट सम्बन्धी होनेके कारण रुद्रदामाने उसका सर्वनाश नहीं किया।

वासुदेव–एक देवता, जिसकी उपासना ईसापूर्व चतुर्थ शताब्दीमें पाणिनिके कालमें प्रचलित होनेके प्रमाण मिलते हैं। वासुदेव विष्णुके अवतार माने जाते हैं।

वासुदेव–पाटलिपुत्रके कण्ववंशका प्रवर्तक। कण्ववंशी राजा शुंगों (दे०) के उत्तराधिकारी थे। वासुदेव ब्राह्मण था, जो अन्तिम शुंग सम्राट् देवभूति अथवा देवभूमिका मंत्री रहा। देवभूति (दे०) की हत्या के बाद वह ७३ ई०पू० में सिंहासनारूढ़ हुआ। उसके द्वारा प्रवर्तित राजवंशमें चार राजा हुए, यथा वासुदेव, जिसने नौ वर्ष शासन किया, उसके बाद उसका पुत्र भूमिमित्र, फिर उसका पुत्र नारायण और अंतमें नारायणका पुत्र सुशर्मा। २८ ई०पू०में सातवाहन वंशके प्रवर्तक सिमुक (दे०) ने सुशर्माको पदच्युत कर दिया।

वासुदेव प्रथम–कुषाण वंश (दे०) का अन्तिम महान शासक। सम्भवतः इसने १५५ से १७७ ई०तक शासन किया। सिंध, पंजाब तथा उत्तर प्रदेशमें उसके बहुसंख्यक सिक्के मिले हैं। किंतु उसका कोई अभिलेख मथुराके बाहर नहीं मिला, जिससे इंगित होता है कि उसका राज्यक्षेत्र अत्यन्त सीमित था। उसके नामसे प्रकट है, वह बौद्ध धर्मका अनुयायी न होकर ब्राह्मण धर्मका अनुयायी था। वह सम्भवतः शिवभक्त था, जिसकी प्रतिमा उसके अनेक सिक्कोंपर मिलती है। वासुदेव प्रथमके उपरान्त कुषाण साम्राज्यका शीघ्रतासे पतन हो गया। वासुदेव प्रथमकी मृत्युके बाद अन्तिम कुषाण राजाओंके विषयमें कुछ पता नहीं चलता, केवल कुषाण राजाओंके नामोंका पता चलता है, यथा वासुदेव द्वितीय और वासुदेव तृतीय।

वास्कोडिगामा–पहला पुर्तगाली, बल्कि पहला यूरोपीय नाविक, जो उत्तमाशा अन्तरीपको पार कर मई १४९८ ई०में कालीकट पहुंचा। तत्कालीन हिन्दू राजा जमोरिनने उसका अच्छा सत्कार और स्वागत किया, यद्यपि तुर्की और अरब व्यापारियोंने उसका यथाशक्ति विरोध किया। इसके बावजूद वास्कोडिगामा कोचीन और कन्नौरकी यात्रा करनेमें सफल हुआ। अगस्त १४९९ ई०में वह समुद्रके रास्ते सकुशल लिस्बन वापस पहुँच गया। इस प्रकार उसने यूरोप और भारतके बीच सीधे समुद्री मार्गका आविष्कार किया।

विक्टोरिया, साम्राज्ञी (१८१९–१९०१)–१८३७ ई०में ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्डकी महारानीके रूपमें सिंहासनपर आरूढ़ हुई। १८७७ ई०में वह भारतकी सम्राज्ञी घोषित की गयी। भारतका शासन-प्रबन्ध १८५८ ई०में ईस्ट इण्डिया कम्पनीके हाथसे निकलकर ब्रिटिश राजसत्ताको सौंप दिया गया। इसकी जो उद्‌घोषणा, महारानीके नामसे की गयी, उससे वह भारतीयोंमें जनप्रिय हो गयीं, क्योंकि ऐसा विश्वास किया जाता था कि उद्‌घोषणामें जो उदार विचार व्यक्त किये गये थे वे उनके निजी उदार विचारोंके प्रतिबिम्ब (दे०) स्वरूप थे। महारानी विक्टोरियाने कभी भारत-भ्रमण नहीं किया और भारतीय प्रशासनका संचालन संवैधानिक शासककी हैसियतसे करते हुए उन्हीं नीतियोंका अनुमोदन किया जिसकी सिफारिश उनके उत्तरदायी मंत्रियोंने की। फिर भी उन्होंने भारतीयोंके बीच बड़ी लोकप्रियता अर्जित की और १९०१ ई०में जब उनकी मृत्यु हुई, तो सारे भारतमें शोक मनाया गया।

विक्टोरिया मेमोरियल (कलकत्तामें)–यह लार्ड कर्जन (दे०) द्वारा अभिकल्पित होकर साकार रूपमें प्रतिष्ठित हुआ। उसने भारतमें ब्रिटिश शासनकी नींवको मजबूत करनेके खयालसे एक विशाल स्मारक बनानेका विचार किया। यह संगमरमरकी भव्य इमारत है, जो कलकत्ताके मैदानमें निर्मित की गयी है। परन्तु इसमें ताज (दे०) की सुन्दरता और भव्यता नहीं है। संभवतः कर्जन इसका निर्माण करके ताजमहलको मात देना चाहता था।

विक्रमशिला–प्रसिद्ध बौद्ध विद्यापीठ। यह बिहारमें भागलपुर जिलेके पठारघाट नामक स्थानमें स्थित था। पाल राजा देवपाल (दे०) ने विक्रमशिलामें पहले महाविहारकी स्थापना की जो क्रमशः विद्याका प्रमुख केन्द्र बन गया। यहींसे प्रख्यात बौद्ध भिक्षु (दे०) अतिश (दीपंकर श्रीज्ञान) १०३८ ई०में तिब्बत गया था।

विक्रम संवत्–ईसा पूर्व ५८ और ५७ के मध्यसे प्रचलित एक वर्षगणना। ऐसा माना जाता है कि इसकी स्थापना

विक्रमादित्य (दे०) नामक राजाने की थी। (देखिये, संवत्, प्राचीन भारतीय)

विक्रमांक या विक्रमादित्य–कल्याणीका एक चालुक्य राजा (१०७६–११२६), जो पराक्रमी योद्धा तथा साहित्यका संरक्षक था। उसके दरबारी कवि बिल्हणने 'विक्रमांक-चरित'के नामसे उसकी जीवनी लिखी है। प्रसिद्ध धर्म शास्त्रकार 'मिताक्षरा'के रचयिता विज्ञानेश्वरको भी उसका संरक्षण प्राप्त था। उसने 'विक्रमादित्य'की उपाधि धारण की थी।

विक्रमादित्य–एक उपाधि, जिसे अनेक प्राचीन भारतीय राजाओंने धारण किया। देवकथाओंके अनुसार विक्रमादित्य उज्जयिनीका राजा था, जिसके दरबारमें नवरत्न रहते थे। इनमें कालिदास (दे०) भी थे। कहा जाता है, वह बड़ा पराक्रमी था और उसने शकोंको परास्त किया था। ईसा पूर्व ५८–५७ में प्रारम्भ विक्रम संवत् राजा विक्रमादित्यका चलाया हुआ माना जाता है। परन्तु इतिहासमें ईसा पूर्व प्रथम शताब्दीके उत्तरार्द्ध-में पश्चिमी भारतमें शासन करनेवाले ऐसे किसी पराक्रमी राजाका उल्लेख नहीं प्राप्त होता जिसने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की हो।

इतिहाससे प्रमाणित होता है कि विक्रमादित्य उपाधि अनेक शक्तिशाली सम्राटोंने धारण की, यथा चंद्रगुप्त द्वितीय (३८०–४१४ ई०), उसके पुत्र स्कन्दगुप्त (४५५–६७ ई०), और अनेक चालुक्य राजाओंने; यथा विक्रमादित्य प्रथम (६५५–८० ई०), विक्रमादित्य द्वितीय (७३३–४६ ई०), त्रिभुवनमल्ल (१००९–१६ ई०) तथा विक्रमादित्य अथवा विक्रमांक (१०७६–११२५ ई०)। इन राजाओंमें तृतीय गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय, जिसने शक क्षत्रपोंको परास्त किया, उज्जैन जिसकी राजधानी थी और जिसका शासनकाल बौद्धिक उपलब्धियों तथा चतुर्दिक समृद्धिके कारण प्रसिद्ध है, और जिसके कालमें सम्भवतः कालिदास भी हुआ था, उसीको मूल राजा विक्रमादित्य मानना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। बादमें विक्रमादित्यको लेकर अनेक दंतकथाएँ प्रचलित हो गयीं। (भण्डारकर–हिस्ट्री आफ द डेकन)

विग्रहराज–अजमेरके चौहान वंशके चार राजाओंने यह नाम धारण किया। इन चारमेंसे विग्रहराज द्वितीयने दसवीं शताब्दीके तृतीय चतुर्थांशमें शासन किया और विग्रहराज चतुर्थने बारहवीं शताब्दीके मध्यमें। उसने अपने पैतृक राज्यको पर्याप्त रूपसे विस्तृत किया। वह संस्कृत साहित्यका संरक्षक और स्वयं नाटककार था, जिसने 'हरकेलि नाटक'की रचना की। वह पृथ्वीराज या रायपिथौरा (दे०) का चाचा और पूर्ववर्ती था।

विजगापट्टम्–कारोमण्डल तटका एक बन्दरगाह। अठारहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें अंग्रेजोंने वहाँ एक व्यापारिक कोठी स्थापित की। बादको यह भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यका एक भाग बन गया। १९४२ ई०में जापानियोंने इसपर बम वर्षा की, किन्तु उससे अधिक क्षति नहीं पहुँची। अब इस बन्दरगाहको काफी विकसित कर दिया गया है, और यहाँ जहाज-निर्माणका कार्य भी होता है।

विजय नगर–एक नगर, साथ ही एक राज्यका भी नाम, जिसकी नींव दक्षिणी भारतमें तुंगभद्रा नदीके पार लगभग १३३६ ई०में संगमके पुत्र हरिहर और बुक्कने रखी। नगरका निर्माण १३४३ ई०में पूरा हुआ और दस वर्षमें ही राज्यका विस्तार दक्षिण भारतके पूर्वी समुद्रसे पश्चिमी समुद्र तक हो गया। हरिहर प्रथमने अपनी मृत्यु पर्यन्त १३५४–५५ ई० तक शासन किया। इसके बाद उसके भाई बुक्क प्रथमने बाइस वर्ष (१३५५–७७ ई०) तक शासन-संचालन किया। इन शासकोंमेंसे किसीने भी राजपदवी धारण नहीं की। बुक्क प्रथमके पुत्र और उत्तराधिकारी हरिहर द्वितीयने १३७७ ई०से महाराजाधिराज-की पदवीके साथ १४०४ ई० तक शासन किया।

विजय नगरके राजा 'राय' कहलाते थे, जिन्होंने कई क्षेत्रोंमें सफलता और गौरवके साथ १५६५ ई० तक शासन किया। विजयनगरमें तीन राजवंशोंके राजा हुए, यथा, संगम राजवंशके अन्तर्गत हरिहर द्वितीय (१३७७–१४०४ ई०), उसका पुत्र बुक्क द्वितीय (१४०४–१४०६ ई०), रामचन्द्र (१४२२ ई०), वीर विजय (१४२२–२५ ई०), देवराज द्वितीय (१४२५–४७ ई०), मल्लिकार्जुन (१४४७–६५ ई०), विरूपाक्ष (१४६५–८५ ई०) और प्रौढ़देव राय (१४८५ ई०) राजाओंने राज्य किया। सालुव राजवंशकी स्थापना सालुव नरसिंह द्वारा संगम वंशके विध्वंसके बाद की गयी। यह संगम राजवंशके अन्तिम राजाओंका मंत्री था। नरसिंहने १४८६–१४९२ ई० तक शासन किया और उसका पुत्र इम्मादी नरसिंह (१४९२ से १५०३ ई०) उत्तराधिकारी बना, जो सालुव या द्वितीय राजवंशका दूसरा और अन्तिम राजा था। इसको तत्कालीन मंत्री नरसिंह नायकने पदच्युत कर एक नये राजवंशकी स्थापना की, जो तुलुव राजवंश कहा जाता है। इसके अन्तर्गत छः राजा हुए, यथा नरेश नायक (१५०३ ई०), उसका पुत्र वीर नरसिंह (१५०३–१५०९ ई०), कृष्ण देव राय (१५०९–२९ ई०), अच्युत

(१५२६–४२ ई०), व्यंकट (१५४२ ई०) और सदाशिव (१५४२–६५ ई०)। तालीकोटके युद्धके उपरान्त इस वंशका भी उच्छेद हो गया। इस वंशके विनाशके साथ ही विजय नगर राजधानी भी विनष्ट हो गयी और सदाशिव वेनुगोंडा भाग गया, जहाँ १५७० ई०में तिरुमल्ल द्वारा वह पदच्युत कर दिया गया।

तिरुमल्लसे चौथा राजवंशका आरंभ हुआ। इसने १५७० से १६४२ ई० तक शासन किया। पहले इन लोगोंकी राजधानी पेनुगोण्डा थी, उसके बाद चंद्रगिरि हो गयी।

व्यावहारिक रूपसे 'विजयनगर' राज्यका इतिहास विजय नगरके विनाशके साथ ही साथ समाप्त हो जाता हैं। राज्यके पतनका कारण, सीमाके मुसलमान बहमनी राज्यसे निरन्तर युद्ध था। धार्मिक विरोधके कारण उत्पन्न द्वेषभावके अतिरिक्त रायचूर दोआब भी दोनों राज्योंके बीच संघर्षका कारण बना रहा और साधारण-तया बहमनी सुल्तान ही इसका लाभ उठाते रहे। केवल कृष्णदेव राय (दे०)के शासनकाल (१५०९–२९ ई०) में, जो सबसे प्रतापी राजा था, विजयनगर राज्य लाभमें रहा। उसने मुसलमान पड़ोसियोंसे रायचूर छीन कर बीदर तथा बीजापुरके सुल्तानोंको भी परास्त किया। उसने अपने प्रभुत्वका विस्तार मद्रास राज्य तक ही नहीं, अपितु मैसूर तक कर लिया; किन्तु ये उपलब्धियाँ स्थायी न रह सकीं। बीजापुर, गोलकुण्डा, अहमद नगर और बीदरके सुल्तानोंके संयुक्त प्रयाससे विजयनगर १५६५ ई० में तालीकोटके युद्धके पश्चात् विनष्ट हो गया। सदाशिव-को दूरस्थ राज्य पेनूगोण्डा भाग कर अपने प्राण बचाने पड़े।

अपने उत्कर्ष-कालमें विजय नगर अत्यन्त समृद्ध और धन-धान्य संपूर्ण नगर था। उसकी किलेबंदी अत्यंत मजबूत थी। निकोलो काण्टी (१४२० ई०), अब्दुरज्जाक (१४४३ ई०), पैस (१५२२ ई०) और नूनिज जैसे विदेशी यात्रियोंने उसका भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अब्दुर रज्जाकने यहाँ तक लिखा है कि "यह नगर ऐसा है, जिसके समान धरतीपर दूसरा नगर न तो आँखोंसे देखा गया है और न कानोंसे सुना गया है। यह एक दूसरेके भीतर सात परकोटोंसे घिरा था।" नगरकी आबादी अत्यंत धनी थी और यह सब प्रकारके धन-धान्यसे पूर्ण था। फिर भी यह दुर्दैव ही कहा जायगा कि जब मुसलमान आक्रमणकारियोंने तालीकोटकी विजयके बाद नगरको ध्वस्त करना शुरू किया, तब यहाँके नागरिकोंने न तो किसी प्रकारका प्रतिरोध किया और न संगठित होकर उसका सामना ही किया। इससे संकेत मिलता है कि राज्यके धन-वैभव संपन्न होनेके बावजूद जनतामें शासक वर्गके प्रति किसी प्रकारका प्रेम या अपनत्व नहीं था।

विजय नगरके राजा संस्कृत साहित्य और विद्याके पोषक थे। वेदोंके सुप्रसिद्ध भाष्यकार सायण (दे०) और उनके भाई माधवाचार्य विजयनगरके राजाओंके मंत्री थे। विजयनगरके शासक ललित कलाओंके भी महान पोषक थे और उन्होंने अनेक भव्य मन्दिरों तथा भवनोंका निर्माण कराया। उनके राज्यकालमें विजयनगरमें वास्तु-कला, चित्रकला तथा तक्षण कलाकी विशिष्ट शैलीका विकास हुआ। (आर०, ए सेवेल कृत फारगाटन इम्पायर तथा बी० ए० सालेटोर कृत सोशल एण्ड पोलिटिकल लाइफ इन विजयनगर इम्पायर)

विजय प्रथम (वीर विजय)–विजयनगर (दे०) के प्रथम राजवंशका शासक। उसने कुछ समय तक अपने पुत्र देवराय द्वितीय (दे०)के साथ मिलकर शासन किया, जिसका प्रारम्भ १४२५ ई० में हुआ। किन्तु शीघ्र ही देवरायने शासनकी सारी बागडोर सँभाल ली।

विजय द्वितीय–केवल एक वर्षके लिए विजयनगरका राजा रहा (१४४६–४७ ई०)।

विज्जल कालचूर्य–दक्षिणमें कल्याणीके चालुक्य वंशका अपने पुत्रोंकी सहायतासे उच्छेद करके ११५६ से ११६७ ई०के बीच स्वयं सिंहासनारूढ हो जानेवाला एक शासक। ११६७ ई० में उसने स्वयं सिंहासन त्याग दिया। विज्जल-ने कलचूरि वंशका सूत्रपात किया। वह जैन धर्मानुयायी था। उसके ब्राह्मण मंत्री वासवने लिंगायत अथवा वीर शैव सम्प्रदायकी स्थापना की।

विज्ञानेश्वर–एक यशस्वी धर्म शास्त्रकार। ये विक्रमादित्य चालुक्यके शासन काल (१०७६–११२६ ई०) में चालुक्योंकी राजधानी कल्याणीमें रहते थे। उनकी रचना 'मिताक्षरा' बंगाल और आसामको छोड़ कर सारे भारतवर्षमें हिन्दू उत्तराधिकार नियमका सर्वा-धिक प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता हैं जो याज्ञवल्क्य स्मृतिका भाष्य है। बंगाल और आसाममें रघुनन्दन (दे०) का 'दायभाग' प्रचलित है।

वितस्ताकी लड़ाई–यह पुरु (दे०) और मकदूनिया (यूनान) के राजा सिकन्दर (अलक्सान्दर)के बीच हुई। पुरुका राज्य हाईडस्पीस (झेलम अथवा वितस्ता) और असिक्नी (चनाब) नदियोंके बीच था। संभवत: जुलाई ३२५ ई० पू० में सिकन्दरने अकारण उसके राज्यपर हमला कर

दिया। पुरु आरम्भिक लड़ाईमें हार गया, क्योंकि यूनानी सेनाओंने चुपचाप बिना किसी युद्धके नदी पार कर ली। पुरु मुख्य रूपसे हाथियोंकी सेनापर निर्भर था। उसने हाथियोंके पीछे ३०,००० पैदल सैनिक, ४०० अश्वारोही सैनिक तथा ३०० रथ लगा रखे थे। सिकन्दरको मुख्य रूपसे अपनी घुड़सवार सेना और घोड़ेपर सवार तीरन्दाजोंका भरोसा था। पुरु बड़ी वीरतासे लड़ा, पर यूनानी सेनाके अधिक फुर्तीली होनेके कारण सिकन्दरकी विजय हुई। पुरु युद्धमें घायल हुआ और बन्दी बना लिया गया। विजयी यवन राजा सिकन्दरने उसके साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार किया और उसका राज्य लौटा दिया। बादमें पुरुने सिकन्दरको पंजाबके दूसरे राज्योंको जीतनेमें मदद दी।

बिदर्भ–आधुनिक बरार (दे०) का प्राचीन नाम।

बिदिशा–एक प्राचीन नगर, जो अब भिलसाके नामसे विख्यात है और आधुनिक मध्यप्रदेशमें साँचीके निकट स्थित है।

विद्यासागर, पंडित ईश्वरचन्द्र–एक प्रख्यात शिक्षाविद् और समाज-सुधारक (१८२०-९१), जो बंगाल, मिदनापुर जिलेके एक निर्धन ब्राह्मण परिवारमें उत्पन्न हुए। गवर्नमेंट संस्कृत कालेज कलकत्तामें शिक्षा प्राप्त कर वे बादको १८५१ ई०में उसीमें प्रोफेसर हो गये और वहींसे १८५८ ई०में उन्होंने प्राचार्यके रूपमें अवकाश प्राप्त किया। मूलतः वे संस्कृतके विद्वान् थे, किन्तु बादमें अंग्रेजी सीखी, जिसके वे आचार्य हो गये। १८४८ ई० में उन्होंने सर्वप्रथम 'वैताल पंचविंशति' नामक प्रथम बंगला गद्य रचना प्रकाशित की। इसके उपरान्त अन्य बंगला गद्य रचनाएँ प्रकाशित करायीं जिसके परिणाम-स्वरूप उन्हें बंगला गद्य साहित्यका पिता कहा जाता है। वे परम्परानिष्ठ हिन्दू थे, अतः ऐसे राजकीय समारोहोंमें भाग नहीं लेते थे, जिनमें धोती, चद्दर और चप्पल पहन कर जाना वर्जित था। सामाजिक जीवन सम्बन्धी उनके विचार उदार और प्रगतिशील थे। उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि ब्रिटिश शासनपर जोर डाल कर हिन्दू विधवा पुनर्विवाह कानून पास करवाना था। वे बड़े दानशील और परोपकारी और स्वाभिमानी थे। उन्होंने अनेक स्कूलोंके साथ-साथ 'मेट्रोपोलिटन कालेज' की भी नींव डाली जो अब 'विद्यासागर कालेज' कलकत्ताके नामसे प्रसिद्ध है और जहाँ हिन्दू विद्यार्थी नाम मात्रके शुल्कपर उसी प्रकार शिक्षा ग्रहण करते थे जिस प्रकार गवर्नमेन्ट कालेजोंमें मुसलमान विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। वे संस्कृति निष्ठ ब्राह्मण होते हुए भी पाश्चात्य शिक्षाके प्रबल समर्थक थे और गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज, कलकत्ताको केवल संस्कृत पढ़ाई तक ही सीमित रखनेके विरोधी थे। उन्होंने पाश्चात्य दर्शन तथा व्यावहारिक विज्ञानके अध्ययनको विद्यालय पाठ्यक्रममें सम्मिलित करनेपर बल दिया, जिससे देशवासी भौतिक ज्ञानके क्षेत्रमें पीछे न रहें। वे बंगलाके उन सपूतोंमें थे, जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दीमें बंगलाके पुनर्जागरणमें प्रमुख योगदान किया।

बिन, चार्ल्स डब्लू० डब्लू०–ऻोर्ड आफ कंट्रोलका अध्यक्ष, १८२७ ई०में जूरी ऐक्ट पास किया, जिसके द्वारा भारतकी न्याय-व्यवस्थामें धार्मिक भेदभाव प्रचलित किया गया। इस ऐक्टमें व्यवस्था थी कि यूरोपीय तथा भारतीय ईसाई जूरी बन कर ईसाइयों तथा गैर-ईसाइयोंके मुकदमोंकी सुनवाई कर सकते हैं, परंतु गैर-ईसाइयोंके, जैसे हिन्दू या मुसलमान जूरी बन कर ईसाइयोंके मुकदमेकी सुनवाई नहीं कर सकते। राजा राममोहन रायने कानूनकी इस धाराके विरुद्ध याचिका प्रस्तुत की और अंततः यह धारा निरस्त कर दी गयी।

विनय पिटक–'त्रिपिटक'के नामसे प्रसिद्ध बौद्ध आगम ग्रंथोंमेंसे एक। विनय पिटकके अतिरिक्त अन्य पिटक ग्रंथ सुत्तपिटक और अभिधम्म पिटक हैं। विनय पिटकमें बौद्ध भिक्षुओंके आचार-नियमों (विनय)का वर्णन है। यह तीन भागोंमें विभक्त है—सुत्तविभंग, परिवार और खन्धक। सुत्तविभंगमें पातिमोक्ख (प्रातिमोक्ष) सम्मिलित है जिसमें उन अपराधोंका वर्णन है जिनके करनेसे भिक्षु व भिक्षुणी पतित हो जाते हैं और उनके प्रायश्चित का विधान है। खन्धक भी दो भागोंमें विभक्त है—महावग्ग और चुल्लवग्ग।

विनियम ३ (१८१८ ई० का)–भारतीयोंका मुँह बन्द करनेके लिए अंग्रेज सरकार द्वारा १८१८ ई०में प्रचलित। इस कानूनके अन्तर्गत सरकार ऐसे किसी भी व्यक्तिको अनिश्चित कालके लिए कारागारमें डाल सकती थी; जिसपर उसे सन्देह हो कि उस व्यक्तिके कार्योंसे भारतमें अंग्रेज सरकारकी सुरक्षा और उसके हितोंको हानि पहुँचेगी। प्रारम्भमें इसका उद्देश्य सशस्त्र विद्रोहोंको दबाना था, परन्तु बीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके आन्दोलनको दबानेमें इसका विशेष प्रयोग किया गया। लाला लाजपतराय, कृष्णकुमार मित्र, सुभाषचन्द्र बोस आदि कितने ही देशभक्त इस कानूनके अन्तर्गत बन्दी बनाये गये और उन्हें बर्मा निर्वासित किया गया।

विन्दवासका युद्ध—सर आरकूट (दे०)के नेतृत्वमें अंग्रेजी सेना और काउण्ट डिलाली (दे०)के नेतृत्वमें फ्रांसीसी सेनाके बीच १७६० ई०में हुआ। इस युद्धमें फ्रांसीसी निर्णायक रूपसे परास्त हो गये। बुसी (दे०) बन्दी बन गया और लाली पाण्डिचेरी भाग गया, जहाँ उसे जनवरी १७६१ ई०में आत्म-समर्पण करनेके लिए विवश किया गया। इस प्रकार विन्दवासके युद्धमें अंग्रेजोंकी विजयने लम्बे समयसे चले आनेवाले आंग्ल-फ्रांसीसी युद्धका पटाक्षेप कर दिया। इससे भारतमें फ्रांसकी सत्ता सदाके लिए समाप्त हो गयी।

विम—कथसिस द्वितीयका नाम था।

विरूपाक्ष प्रथम—विजय नगरके शासक हरिहर द्वितीय (दे०) का पुत्र। १४०४ ई०में पिताकी मृत्युके बाद उसने सिंहासनपर अधिकार कर लिया, परन्तु शीघ्र ही अपने भाई बुक्क द्वितीय (दे०) द्वारा अपदस्थ कर दिया गया।

विरूपाक्ष द्वितीय—विजय नगरके प्रथम राजवंशका उपान्तिम राजा। दुराचारी होनेके कारण उसके सबसे बड़े पुत्रने उसका वध कर दिया, जो स्वयं बादमें अपने छोटे भाई प्रौढ़ देवराय द्वारा मार डाला गया। प्रौढ़ देवराय संगम राजवंशका अन्तिम शासक था।

विलकिन्स, विलियम—वारेन हेस्टिंग्सके शासन-कालमें बंगालमें ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें नियुक्त एक अंग्रेज अधिकारी, जो संस्कृत और फारसीका अच्छा विद्वान् था, जिसे गवर्नर-जनरलने प्राच्यविद्याओंके अध्ययनके लिए उत्साहित किया। उसने भगवद् गीताका अंग्रेजीमें अनुवाद किया था।

विलसन, जेम्स—वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्का प्रथम वित्तीय सदस्य। वह १८५९ ई०में इस परिषद्का सदस्य बना किन्तु नौ महीने काम करनेके बाद अचानक उसकी मृत्यु हो गयी। वह सुयोग्य लेखाविद् और वित्त व्यवस्थापक था। अतः उसने भारतमें वित्तीय शासन-पद्धतिका पुनर्गठन किया, अर्थ-व्यवस्थाको सुनिश्चित रूप-रेखा प्रदान की, पाँच वर्षके लिए आयकर लागू किया तथा वार्षिक बजट व लेखा विवरण तैयार करनेकी प्रथा चलायी।

विलसन, सर आर्कडेल—एक अंग्रेज सेना नायक, जिसने भारतमें अंग्रेजी राजकी सराहनीय सेवा की। सिपाही-विद्रोह भड़क उठनेके तुरन्त बाद उसके दो ज्येष्ठ सैन्य-अधिकारियोंकी हैजेसे मृत्यु हो जाने तथा तीसरे अधिकारीके अस्वस्थ हो जानेपर उसे ब्रिटिश सेनाका कमाण्डर बन जाना पड़ा। दिल्लीकी पहाड़ी उस समय भी ब्रिटिश सेनाके कब्जेमें थी, किन्तु उसकी संख्या कम होनेके कारण वह विद्रोहियोंको दिल्लीपर अधिकार करनेसे रोकनेमें समर्थ नहीं हुई और स्वयं विप्लवियोंके घेरेमें फँस गयी, किन्तु विलसन तब तक निर्भीकतासे मोर्चेपर डटा रहा, जब तक निकोलसन (दे०) दल बल सहित वहाँ सहायतार्थ पहुँच नहीं गया। छः दिन तक आमने-सामनेके भीषण युद्धके बाद सितम्बर १८५८ ई०को निकोलसनकी सहायतासे उसने दिल्लीको पुनः हस्तगत कर लिया।

विलसन, होरेस हेमैन—एक अंग्रेज इतिहासकार और प्राच्य संस्कृति-प्रेमी तथा संस्कृत भाषाविद्। १८१६ ई०से १८३२ ई०तक वह कलकत्ताकी टकसालमें काम करता रहा और बाईस वर्ष (१८११–१८३३) बंगालमें रॉयल एशियाटिक सोसाइटीके सचिव पदपर रहा। वह इस नीतिके विरुद्ध था कि जनताके धनको केवल पाश्चात्य शिक्षा दीक्षाके प्रसारमें व्यय किया जाय, जिसे मैकालेका वरदहस्त प्राप्त था। उसके रचे हुए अनेक ग्रन्थ हैं, यथा ऐंग्लो संस्कृत डिक्शनरी, 'थेटर आफ दि हिन्दूज़' और प्रसिद्ध संस्कृत नाटकोंका अंग्रेजीमें अनुवाद, यथा मृच्छकटिक, मालतीमाधव, उत्तररामचरित, विक्रमोर्वशीय, रत्नावलि तथा मुद्राराक्षस। भारतीयोंके मध्य शिक्षा-प्रसारमें उसकी बड़ी रुचि थी, अतः अनेक वर्षोंतक वह 'कमेटी आफ पब्लिक' एजुकेशन कलकत्ताका सदस्य रहा।

विलिंग्डन, लार्ड—लार्ड इरविन (दे०)के उत्तराधिकारीके रूपमें १९३१ से १९३५ ई०तक भारतका वाइसराय और गवर्नर-जनरल। १९१३ से १९१९ ई०तक बम्बईका गवर्नर रहा और १९२४ ई०में भारत-सरकारके प्रतिनिधिके रूपमें राष्ट्रसंघमें भाग लिया। उसे भारतके राष्ट्रीय आन्दोलनके साथ तनिक भी सहानुभूति न थी। उसने भारतीय राजनीतिमें लुई १४वें की भाँति उदारवादी निरंकुश शासकके रूपमें कार्य किया। उसने समझौता करनेकी उस नीतिको त्याग दिया, जिसका अनुसरण उसका पूर्ववर्ती लार्ड इरविन कर रहा था। जैसे ही गांधीजी गोलमेज कांग्रेसके दूसरे सत्रमें भाग लेकर लन्दनसे वापस आये, १९३२ ई०में उन्हें जेलमें बन्द कर दिया गया और सविनय-अवज्ञा आन्दोलनको बड़ी कठोरताके साथ दबा दिया गया। उसने भारतीय नेताओंके विरोधके बावजूद भारतपर १९३५ ई०का शासन विधान लादनेका प्रयास किया, किन्तु वह इस कार्यमें सफल नहीं हो सका।

विवेकानन्द, स्वामी (१८६३–१९०२)—प्रसिद्ध हिन्दू-संन्यासी और उपदेशक। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त व्यक्ति थे। वे कलकत्ताके मध्यम वर्गीय बंगाली परिवारमें उत्पन्न हुए थे और उनका मूल नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। जब वे कलकत्ता विश्वविद्यालयसे बी० ए०की उपाधि प्राप्त कर कानूनका अध्ययन कर रहे थे उसी बीच रामकृष्ण परमहंस (दे०)के शिष्य बनकर संसार-त्यागी संन्यासी हो गये, और हिमालयसे कन्या कुमारी तक समग्र भारतका भ्रमण किया। राजाओं और जनसाधारण द्वारा उनका सर्वत्र हार्दिक स्वागत हुआ।

१८९३ ई०में वे शिकागो, संयुक्त राज्य अमेरिकामें हो रहे विश्वधर्म सम्मेलनमें भाग लेनेके लिए गये। उसमें अपने प्रथम भाषणसे ही उन्होंने सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया और फिर अमेरिकामें अनेक स्थानों-पर उन्होंने भाषण किये, जिसके फलस्वरूप उनकी कीर्ति फैलने लगी और अनेक लोग उनके प्रशंसक बन गये। अनेक अमरीकी नर-नारी उनके शिष्य हो गये और रामकृष्ण परमहंसकी शिक्षाका अध्ययन करनेके लिए अमेरिकामें अनेक केन्द्र स्थापित हुए। १८९६ ई०में वे अमेरिकासे इंग्लैण्ड गये जहाँ उनका बहुसंख्यक अंग्रेज स्त्री पुरुषोंने, जिनमें मार्गरेट नोबुल (सिस्टर निवेदिता) (दे०) भी शामिल थीं, सोत्साह भावभीना स्वागत किया। सिस्टर निवेदिता उनकी शिष्या बन गयीं। १८९६ ई०में भारत लौटनेपर उनका भव्य स्वागत किया गया।

उन्होंने अपने देशवासियोंके धार्मिक एवं सामाजिक विचारोंपर गहरा प्रभाव डाला। उन्होंने श्रीरामकृष्ण परमहंसकी सार्वभौम धार्मिक शिक्षाओंके साथ-साथ सामाजिक सेवा, तथा दीन-दुखियोंकी सेवापर बल दिया तथा देशवासियोंमें फैला अज्ञान दूर करके उनकी आर्थिक उन्नति करने, नैतिक चरित्र ऊँचा उठाने तथा आत्म-त्यागकी भावना पैदा करनेका प्रयास किया। इस कार्यके लिए उन्होंने रामकृष्ण मिशनका संगठन किया, जिसका स्थायी केन्द्र बेलूरमें 'बेलूर मठ'के नामसे स्थापित किया गया। सम्पूर्ण भारतका पुनः भ्रमण करनेके बाद वे १८९९ ई०में दुबारा अमेरिका गये और सैन-फ्रैंसिस्कोमें वेदान्त अध्ययन केन्द्र तथा रामकृष्ण मिशनकी शाखा खोली।

अमेरिकासे वापस आते समय उन्होंने यूरोपके अनेक देशोंका भ्रमण किया और स्वदेश आकर बनारसमें एक स्कूल और अस्पताल सहित रामकृष्ण मिशनकी शाखा स्थापित की। अथक परिश्रम, संन्यासीके कष्ट-साध्य जीवन और रामकृष्ण मिशन संगठनके भविष्यकी चिन्ताओंके कारण उनका स्वास्थ्य जर्जर हो गया, फलतः उन्तालिस वर्षकी अल्पायुमें १९०२ ई०में वे ब्रह्मलीन हो गये। उनके भाषणों एवं रचनाओंको एकत्र करके रामकृष्ण मिशनने आठ जिल्दोंमें प्रकाशित किया है। प्रत्येक जिल्दमें मुद्रित सामग्रीके ६०० पृष्ठ हैं। उनकी रचनाओंमें ज्ञानयोग, राजयोग और भक्तियोग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं, जो अंग्रेजी भाषामें लिखे गये हैं। उन्होंने 'प्राच्य और पाश्चात्य' नामसे एक पुस्तक बंगला भाषामें भी लिखी। यह कृति उनके गहन चिंतन तथा धार्मिक एवं सामाजिक आदर्शोंका परिचय देती है। वे कुशल पत्र-लेखक भी थे और उनके सैकड़ों पत्र प्रकाशित हुए हैं। उनकी डायरी दुर्भाग्यवश अभी तक प्रकाशित नहीं हो सकी है।

विवेकानन्दका गौरव इस बातमें है कि उन्नीसवीं शताब्दीमें जब भारतको पिछड़ा हुआ देश माना जाता था और यह समझा जाता था कि उसे यूरोपसे बहुत कुछ सीखना है तब उन्होंने यूरोपवासियोंके हृदयमें यह बात उतारी कि भारतकी संस्कृति उज्ज्वल और उसका धर्म उदार है, जिससे यूरोपको, और संसारको बहुत कुछ सीखना है। इस प्रकार उन्होंने भारत-वासियोंमें नव-स्फूर्ति तथा आत्मसम्मानकी नवीन भावना भर दी। चक्रवर्ती राजगोपालाचार्यने ठीक ही कहा है—"स्वामी विवेकानन्दने हिन्दुत्वकी रक्षा कर भारतकी रक्षा कर ली। यदि रामकृष्ण परमहंस न होते तो हमने अपने धर्मको भुला दिया होता और स्वतंत्रताकी प्राप्ति न कर पाते। सारा देश स्वामी विवेकानन्दका ऋणी है।" (**वर्क्स आफ स्वामी विवेकानन्द**, आठ जिल्दोंमें; **लाइफ आफ स्वामी विवेकानन्द**, उनके भारतीय और यूरोपीय शिष्यों द्वारा, रमेशचन्द्र मजुमदार द्वारा सम्पादित **स्वामी विवेकानन्द सेन्टनरी वाल्यूम**)।

विश्वयुद्ध और भारत—१९१४ ई०में प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ होनेके समय भारतीयोंका अपने देशके शासनपर कोई नियंत्रण नहीं था। भारतके ब्रिटिश शासकोंने इंग्लैण्डको सौ करोड़ रुपयोंका अनुदान दिया और बहुत बड़ी संख्या-में भारतीय सैनिकों तथा मजदूरोंको विविध युद्ध मोर्चों-पर भेजा। उन्होंने अपने कर्तव्योंका पालन इतनी निष्ठा-से किया और ब्रिटेनकी अंतिम विजयमें इतना महत्त्वपूर्ण योगदान किया कि अंग्रेजोंको स्वीकार करना पड़ा कि "भारतकी सहायताके बिना युद्ध बहुत लम्बा चलता। विजयश्रीका बहुत कुछ श्रेय भारतको प्राप्त है।" ब्रिटिश

राजनेताओंने बार-बार घोषणा की थी कि छोटे राज्यों-की सुरक्षाके लिए युद्ध किया जा रहा है और ब्रिटेनके मित्रराष्ट्र, संयुक्त राज्य अमेरिकाके राष्ट्रपति विलसन-ने भी घोषणा की थी कि युद्धका उद्देश्य छोटे राष्ट्रोंको आत्मनिर्णयका अधिकार प्रदान करना है। इस प्रकारकी घोषणाओंसे भारतीयोंकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाका उद्दीप्त होना स्वाभाविक था।

प्रथम विश्वयुद्धकी समाप्ति मित्रराष्ट्रोंकी विजयके साथ हुई। युद्धके बाद ही यह बात स्पष्ट हो गयी कि ब्रिटेन अपनी उदार घोषणाओंको पूर्णतः क्रियान्वित करनेका कोई इरादा नहीं रखता। ब्रिटेनने भारतको जो कुछ प्रदान किया वह १९१९ ई०का भारतीय शासन-विधान था। इसकी प्रस्तावनामें घोषित किया गया था कि भारतमें ब्रिटिश शासनका उद्देश्य स्वशासित संस्थाओंकी क्रमिक रीतिसे प्रतिष्ठापना करना है ताकि वहाँ अंततः उत्तरदायी सरकारकी स्थापना हो सके। किन्तु इसके बावजूद १९१९ ई०के शासन-विधानमें केवल प्रांतोंमें द्वैध शासन और केन्द्रीय तथा प्रांतीय विधान मंडलोंमें भारतीयोंको अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। इन सीमित संवैधानिक सुधारोंसे भारतीयोंकी आशाओं और आकांक्षाओंको तुष्ट नहीं किया जा सका और भारतमें राष्ट्रीय आंदोलन अबाध गतिसे चलता रहा। १९२० ई०में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने असहयोग आंदोलन आरम्भ कर दिया और प्रत्युत्तरमें अंग्रेजोंने भारतमें दमन-नीतिका अनुसरण किया। आर्थिक क्षेत्रमें प्रथम विश्व-युद्धने ब्रिटेनको अनुभव करा दिया कि यह उसके स्वयंके हितमें है कि भारतमें उद्योगोंका विकास किया जाय। फलतः उसने क्रमिक रीतिसे भारतीय उद्योगोंको संरक्षण देनेकी नीति अपनायी, जिससे इस्पात, सूती वस्त्र तथा चीनी उद्योग लाभान्वित हुए।

सितम्बर १९३९ ई०में जब द्वितीय विश्व-युद्ध छिड़ा तब १९१४ ई०की अपेक्षा भारतमें राजनीतिक चेतना कहीं अधिक जाग्रत हो चुकी थी। भारतीय राष्ट्रवादियोंका एक वर्ग इस पक्षमें था कि ब्रिटेनकी कठिनाइयोंसे लाभ उठाकर भारतके राजनीतिक हितोंको अग्रसर किया जाय। कुछ लोग तो जर्मनी और जापानके साथ, जो अंग्रेजोंके प्रधान शत्रु थे, गठबंधन करने और उनकी सैनिक सहायतासे भारतमें अंग्रेजी राज्यका अंत करनेके पक्षमें भी थे। परन्तु महात्मा गांधीके आदर्शवादी नेतृत्वमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसको इस प्रकारकी अव-सरवादी नीति स्वीकार नहीं हुई। गांधीजीके मार्गदर्शन-में कांग्रेसने युद्ध-प्रयत्नोंमें भाग न लेनेका निश्चय किया। किंतु भारतके ब्रिटिश शासकोंने ब्रिटेनके सहायतार्थ विपुल धन भेजा और भारतीय सेनाएं विविध युद्ध-मोर्चों-पर लड़नेके लिए भेजी गयीं। भारतीय सेनाएँ विशेष रूपसे दक्षिण-पूर्व एशिया भेजी गयीं, जहाँ जापानी तेजीसे आगे बढ़ रहे थे। जापानी सेनाओंने न केवल मलय प्रायद्वीपपर, वरन बर्मापर भी अधिकार कर लिया और उत्तर-पूर्वी सीमांत राज्य मणिपुर तक आ धमकीं जिससे आसामके लिए खतरा पैदा हो गया। अंग्रेज बर्मा-से हटते समय वहाँ बहुत बड़ी भारतीय सेना छोड़ आये थे, जिसे विजेता जापानियोंने बंदी बना लिया।

नेताजी सुभाषचंद्र बोस युद्धमें ब्रिटेनकी सहायता करनेके प्रश्नपर कांग्रेसी नीतिके विषयमें महात्मा गांधी-से खुला मतभेद रखते थे। वे चाहते थे कि ब्रिटेनकी कठिनाइयोंसे पूरा-पूरा लाभ उठाया जाय और अंग्रेजोंकी जेलसे बचनेके लिए वे जर्मनी भाग गये। वहाँसे जापान होते हुए वे बर्मा पहुँचे जहाँ उन्होंने उन भारतीय सैनिकोंकी सहायतासे, जिन्हें अंग्रेज छोड़ आये थे, 'आजाद हिन्द फौज'का गठन किया तथा बर्मामें आजाद हिन्द सरकारकी स्थापना करके अपनेको उसका अंतरिम अध्यक्ष घोषित किया। उन्होंने जापानियोंसे गठबंधन करके आजाद हिन्द फौजको लेकर दिल्लीपर धावा मारने और वहाँ लाल किलेपर राष्ट्रीय ध्वज फहरानेकी योजना बनायी। किंतु उनकी आजाद हिन्द फौज, जिसके पास पर्याप्त हथियार और रसद नहीं थी और जो वायु सेनासे भी लैस नहीं थी, केवल मणिपुरके निकट कोहिमा तक पहुँच सकी और भारतीय ब्रिटिश सेनाने, जो उसके मुकाबलेमें संख्यामें कहीं अधिक थी और बेहतर हथि-यारोंसे लैस थी और जिसके पास रसदकी कोई कमी नहीं थी, उसे पीछे खदेड़ दिया। इसके बाद ही हिरो-शिमापर अमरीका द्वारा एटमबम गिराये जानेके बाद जापानको भी आत्मसमर्पण कर देना पड़ा और नेताजीका विदेशी सहायतासे बाहरसे आक्रमण करके भारतको आजाद करानेका प्रयास विफल हो गया।

ब्रिटेन और उसके मित्रराष्ट्रोंको युद्धमें पूर्ण विजय प्राप्त हुई, किंतु गांधीजीके नेतृत्वमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसको तुष्ट नहीं किया जा सका था। ब्रिटेनने भारत-की राजनीतिक आकांक्षाओंको तुष्ट करनेके लिए घोषणा की कि उसे समय आनेपर औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान किया जायगा। इसके साथ ही भारतीयोंमें फूट डाल कर उन्हें कमजोर बनानेकी नीयतसे उसने मुसलमानोंकी

साम्प्रदायिक महत्त्वाकांक्षाओंको भी प्रोत्साहित किया। कांग्रेस न केवल अपनी पूर्ण स्वाधीनताकी मांगपर डटी रही, वरन् उसे पूरा करानेके लिए उसने 'भारत छोड़ो' आंदोलन भी आरम्भ कर दिया। इस आंदोलनको व्यापक जन-समर्थन मिला। अंग्रेज-विरोधी भावना न केवल भारतीय शासनतंत्रकी सभी शाखाओंमें, वरन् भारतीय नौसेना तकमें व्याप्त हो गयी। युद्धमें ब्रिटेन विजयी अवश्य हुआ था, किंतु धन-जनकी अपार क्षतिके फलस्वरूप वह अत्यन्त जर्जर हो गया था। अतः उसने अगस्त १९४७ ई०में भारतको स्वाधीनता प्रदान करके यहाँसे हट जानेका निश्चय किया।

विश्वविद्यालय अधिनियम—लार्ड कर्जन (दे०) के शासनकालमें १९०४ ई०में पारित। इसके अन्तर्गत एक आयोग गठित हुआ जिसकी अध्यक्षता वाइसरायकी कार्यकारिणी समितिके कानून-सदस्य थामस रेलेने की। इस अधिनियममें सभासदों (सीनेटके सदस्यों) और विशिष्ट सदस्योंकी संख्या सीमित तथा सीनेटके मनोनीत सदस्योंको बहुमतमें करके भारतीय विश्वविद्यालयोंपर सरकारी नियंत्रण और कठोर बना दिया गया। अतः इस अधिनियमके विरोधमें व्यापक आन्दोलन हुआ। लेकिन इस अधिनियममें एक गुण था। इसका उद्देश्य भारतीय विश्वविद्यालयोंको, जो तब तक केवल परीक्षा लेनेवाले संस्थान थे, शिक्षण संस्थाओंमें बदल देना था, विशेषकर उनमें स्नातकोत्तर शिक्षणकी व्यवस्था करना था। उसमें विश्वविद्यालयोंमें प्रोफेसरों और प्राध्यापकोंकी नियुक्ति और प्रयोगशालाओं तथा संग्रहालयोंकी व्यवस्थाका प्राविधान किया गया। सर आशुतोष मुखर्जी १९०६ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालयके उपकुलपति बने। उनके निर्देशनमें कलकत्ता विश्वविद्यालयने इस अधिनियमसे लाभ उठाया और जनताके अर्थदानसे शिक्षण विभाग खोला जिससे केवल बंगालमें ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण भारतमें उच्च शिक्षाके प्रसारमें बहुत सहायता मिली। १८५७ ई०में कलकत्तामें प्रथम भारतीय विश्वविद्यालयकी स्थापना हुई। तदनन्तर बम्बई और मद्रासमें भी विश्वविद्यालयोंकी स्थापना शीघ्र ही हुई।

विश्वविद्यालय, भारतीय—लंदन विश्वविद्यालयको आदर्श बनाकर १८५७ ई०में सर्वप्रथम कलकत्ता, मद्रास और बम्बईमें विश्वविद्यालय स्थापित किये गये। प्रारम्भमें ये विश्वविद्यालय केवल परीक्षा-केन्द्रके रूपमें थे, लेकिन १९१३ ई०में सर हरकोर्ट बटलरने, जो वाइसरायकी कार्यकारिणी समितिका प्रथम शिक्षा-सदस्य था, एक प्रस्ताव पारित किया, जिसमें शिक्षण और आवासीय विश्वविद्यालय स्थापित करनेकी व्यवस्था की गयी थी। प्रांतोंमें नयी जागृतिके साथ-साथ साम्प्रदायिक चेतनाके प्रसारके फलस्वरूप बीसवीं शताब्दीके द्वितीय चतुर्थांशमें पटना, लखनऊ, अलीगढ़, बनारस, आगरा, दिल्ली, नागपुर, वाल्टेयर, ढाका, मैसूर, हैदराबाद, चिदम्बरम्, त्रिवेन्द्रम्, गौहाटी और पूनामें विश्वविद्यालय स्थापित हुए। इनमेंसे कुछ आवासीय और अधिकांश शिक्षण विश्वविद्यालय हैं।

वर्तमान समयमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा १९२१ ई०में स्थापित 'विश्वभारती'को मिलाकर साठसे अधिक विश्वविद्यालय भारतमें हैं। इनकी संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। एक स्वायत्तशासी निकाय जिसको 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' कहा जाता है, गठित किया गया है और यह भारतमें उच्च विश्वविद्यालयिक शिक्षाके लिए भारत सरकार जो धन देती है, उसको भारतीय विश्वविद्यालयोंमें वितरित करता है।

विश्व सिंह—१५१५ ई०के लगभग कोच राज्यका संस्थापक, जिसकी राजधानी आधुनिक कूचबिहार थी। उसके द्वारा संचालित राजवंशके राजालोग कूचबिहारमें आधुनिक कालतक शासन करते रहे हैं। **(गेट, हिस्ट्री आफ आसाम, अध्याय चार)**

विश्वास राव—पेशवा बालाजी बाजीरावका सबके बड़ा पुत्र और उत्तराधिकारी। सत्रह वर्षकी अवस्थामें वह मराठा सेनाका प्रधान सेनापति नियुक्त हुआ और हमद शाह अब्दालीका आक्रमण रोकनेके लिए उत्तरी भारत भेजा गया। किन्तु सेनाका वास्तविक नियंत्रण उसके चाचा सदाशिव राव भाऊके हाथोंमें था। इस अभियानका अंत १३ जनवरी १७६१ ई०को पानीपतके तृतीय युद्धमें हुआ, जिसमें विश्वास राव मारा गया और मराठोंकी भारी पराजय हुई।

विष्णु—हिन्दुओंका एक प्रधान देवता, जिनकी वैष्णव उपासना करते हैं। ब्रह्मा और महेश्वर (शिव) के साथ इनकी गणना हिन्दुओंके त्रिदेवमें होती है।

विष्णु गुप्त—देखिये, 'कौटिल्य'।

विष्णुपुराण—हिन्दुओंके अठारह पुराणोंमेंसे एक, जो अन्य सब पुराणोंसे प्राचीन माना जाता है। यह पुराणके पाँचों लक्षणोंसे युक्त है और इसमें सृष्टि, मनुष्यों, देवों, विविध मन्वंतरों और प्राचीन राजवंशोंका इतिहास मिलता है। इसमें विशेष रूपसे विष्णुकी महिमाका वर्णन है।

विष्णुवर्धन (बिहि देव या विहिग)—द्वारसमुद्रका होयसल राजा (१११०—४१ ई०)। इसने अनेक युद्ध किये और अपने राज्यका विस्तार किया। वह नाममात्रके लिए चालुक्योंका अधीनस्थ बना रहा। तत्कालीन धार्मिक इतिहासमें उसने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। प्रारम्भमें वह जैन मतावलम्बी था किन्तु प्रख्यात वैष्णव आचार्य रामानुजके प्रभावसे वह वैष्णव मतावलम्बी हो गया। मत-परिवर्तनके बाद उसने अपना पहलेका नाम विहिदेव या विहिग त्याग कर विष्णुवर्धन नाम धारण किया। उसने वैष्णव धर्मके प्रचारके लिए अनेक भव्य मन्दिरोंका निर्माण कराया। इनमेंसे कुछ आज भी बेलूर और हलेविडमें विद्यमान हैं। इनमें सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हलेविडके होयसलेश्वर मंदिरका है, जिसमें ग्यारह सज्जा पट्टियाँ हैं। प्रत्येक पट्टी सात सौ फुट या अधिक लम्बी है और हाथी, सिंह, अश्वारोही, वृक्षलता, पशु-पक्षी आदि विविध अलंकरणोंसे युक्त है। कुछ आलोचकोंका विचार है कि यह मंदिर मानव श्रम और कौशलका सर्वाधिक अनूठा उदाहरण है।

वीर नरसिंह—विजयनगरका एक राजा (१५०५—१५०९ ई०), जिसने विजयनगरके सालुव या द्वितीय वंशके अन्तिम राजा इमादी नरसिंहको मारकर सिंहासनपर अधिकार कर लिया। उसका सौतेला भाई कृष्णदेवराय (दे०) उसका उत्तराधिकारी बना, जो विजयनगर राज्यका सबसे महान शासक था।

वीरनारायण—गोंडवानाका राजा। उसकी नाबालिगी अवस्थामें राज्यपर अकबरका आक्रमण हुआ और आक्रमणकारियोंका मुकाबला पहले उसकी साहसी माँ रानी दुर्गावतीने किया। युद्धमें उसकी मृत्यु हो जानेके बाद वीर नारायणने अल्पवयस्क होते हुए भी मुगलोंके विरुद्ध तबतक युद्ध जारी रखा जबतक लड़ाईमें वह शहीद नहीं हो गया।

वीर बल्लाल—द्वारसमुद्रका एक होयसल राजा, जो प्रसिद्ध वैष्णव शासक विष्णुवर्द्धन (दे०) का पौत्र था। उसका राज्य मैसूरके उत्तरतक विस्तृत था। उसने देवगिरिके यादवोंको परास्त कर होयसलोंको दक्षिण भारतकी एक प्रमुख शक्ति बना दिया।

वीर शैव (संप्रदाय)—देखिये 'लिंगायत मत।

वीरसिंह बुन्देला—बुन्देलोंका सरदार, शाहजाद। सलीमके उकसानेपर उसने १६०२ ई०में अकबरके विश्वसनीय मित्र और परामर्शदाता अबुल फजलकी हत्या कर दी। सम अबुल फलीजलसे घृणा करता था और उससे डरता भी था। बादमें, जहाँगीरके नामसे सलीमके सिंहासनारूढ़ होनेपर वीरसिंहको पुरस्कार-स्वरूप तीन हजार घुड़सवारोंकी मनसबदारी मिली।

वीरसिंहने ही मथुरामें ३३ लाख रुपयेकी लागतसे कृष्णजन्म-भूमिके खँडहरोंमें केशवदेवका एक भव्य मन्दिर निर्मित कराया। उसका पुत्र जुझार सिंह उसके बाद जागीरका उत्तराधिकारी हुआ। उसका मथुरा स्थित मन्दिर इतना ऊँचा था कि उसका शिखर आगराके शाही किलेसे देखा जा सकता था। इससे औरंगजेबका विद्वेष जाग्रत हो उठा। उसके आदेशसे १६७० ई०में मन्दिरको धूलमें मिला दिया गया और उसके स्थानपर मस्जिद खड़ी की गयी।

वीसलदेव—अजमेरका चौहान राजा। पंजाबके राजा आनन्दपाल (दे०) के अनुरोधपर उसने १००८ ई०में सुल्तान महमूदके आक्रमणका प्रतिरोध करनेके लिए एकत्र भारतीय राजाओंकी सेनाका नेतृत्व किया। किन्तु युद्धमें उसे परास्त होना पड़ा।

वुड, सर चार्ल्स—१८५४ से १८५८ ई०तक बोर्ड ऑफ कण्ट्रोलका अध्यक्ष। इसी हैसियतसे उसने १८५४ ई०का प्रसिद्ध खरीता भेजा, जिसमें शिक्षाके क्षेत्रमें भारत सरकारकी नीतिका निर्धारण किया गया। इस नीतिके अन्तर्गत विद्यालयोंको सहायक अनुदान देनेकी व्यवस्थाका सूत्रपात किया गया और कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रासमें विश्वविद्यालयोंकी स्थापनाकी अनुमति प्रदान की गयी। इस खरीतेमें इस बातपर बल दिया गया कि शिक्षा भारतीय भाषाओंके माध्यम द्वारा दी जानी चाहिये, राजकीय शिक्षण संस्थाओंमें दी जानेवाली शिक्षा धर्मनिरपेक्ष होनी चाहिये। सर चार्ल्सवुडके खरीतेके फलस्वरूप सम्पूर्ण भारतमें शैक्षणिक संस्थाओं—प्राथमिक स्कूलोंसे लेकर उच्च माध्यमिक स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयोंकी स्थापनाकी व्यवस्था की गयी।

वृजि—एक प्राचीन गण, जो लिच्छवियोंके नामसे अधिक प्रख्यात था। उनके नामके आधारपर उस प्रदेशका नाम भी वृजि पड़ा जो आजकल बिहारका मुजफ्फरपुर जिला कहलाता है। वृजियों की राजधानी वैशाली (दे०) थी। उन्होंने एक कुलीन गणतंत्रकी स्थापना की, इस गणतंत्रका शासन कुछ कुलोंके हाथमें था। प्रत्येक कुलको शासनका समान अधिकार प्राप्त था। उनकी शासन-व्यवस्था इतनी प्रभावशाली थी कि गौतमबुद्धने वृजिसंघके अनुरूप ही अपने भिक्षुसंघका संगठन किया। ई० पू०

पाँचवीं शतीमें अजातशत्रुने वृज्जियोंको पराजित किया, किन्तु इसके बाद भी ईसवी चौथी शताब्दीके प्रारम्भ तक भारतीय इतिहासमें उनका सम्मानपूर्ण स्थान बना रहा। चन्द्रगुप्त प्रथम (दे०) ने लिच्छिवि राजकुमारी 'कुमारदेवी'से विवाह करके ही मगध राज्यका प्रताप बढ़ाया और शक्तिशाली गुप्त राजवंशकी नींव डाली।

वेंकट—विजयनगरके अरविन्दु अथवा चौथे वंशका तीसरा राजा, जो १५६५ ई०में नष्ट हो गया। उसने पेनूगोंण्डासे हटाकर चंद्रगिरिमें राजधानी बनायी। उसके शासनका श्रीगणेश १५८५ ई० में हुआ और उसके अन्त होनेकी तिथि अनिश्चित है। वह तेलुगु कवि और वैष्णव लेखकोंका उदार संरक्षक था।

वेंकट प्रथम—विजयनगरके तुलुव वंशका एक राजा। वह १५४२ ई०में अपने पिता अच्युतका उत्तराधिकारी बना, किन्तु सिंहासनारूढ़ होनेके बाद ही वह मार डाला गया।

वेंकटाद्रि—राम राजाका एक भाई। सदाशिव (१५४२–६५)-के शासनकालमें विजयनगरका व्यावहारिक राजा वेंकटाद्रि ही था। कुशल सेनानायक होते हुए भी वह १५६५ ई०में तालीकोटा (दे०) के युद्धमें पराजित हो गया।

वेङ्गिका राज्य—गोदावरी और कृष्णा नदियोंके बीच स्थित, जिसे चौथी शताब्दी ई०में समुद्रगुप्त (दे०) ने जीता था। उस समय सम्भवतः एक पल्लव राजा इसका शासक था। ६११ ई०में यह चालुक्य राजा पुलकेशी द्वारा विजित हुआ, जिसने अपने भाई कुब्ज विष्णुवर्धनको यहाँका उपशासक नियुक्त किया। उसकी राजधानी गोदावरी जिसमें स्थित पिष्ठपुर (आधुनिक पीठापुरम्) थी। चार वर्ष बाद कुब्जावर्द्धनने वेङ्गिको स्वतन्त्र राज्य बनाकर पूर्वी चालुक्य (दे०) वंशकी नींव डाली, जो १०७० ई० तक सत्तारूढ रहा। इसके बाद यह राज्य चोल राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया।

वेडरबर्न, सर विलियम—एक प्रसिद्ध आई० सी० एस० अफसर। इंडियन सिविल सर्विससे अवकाश ग्रहण करनेके बाद उसने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी स्थापनामें उत्साहके साथ योगदान किया और दिसम्बर १८८५ ई०में बम्बईमें सम्पन्न कांग्रेसके प्रथम अधिवेशनमें भाग लिया। इसके उपरान्त १८८९ तथा १९१० ई० में सम्पन्न कांग्रेसके दो अधिवेशनोंका सभापतित्व भी उसने किया और मृत्युपर्यन्त भारतीयोंकी राष्ट्रीय आकांक्षाओंका समर्थन किया।

वेद—हिन्दुओंके सबसे प्राचीन धर्मग्रंथ और संभवतः विश्वकी प्राचीनतम पुस्तक। सनातनी हिन्दू वेदोंको नित्य, शाश्वत और अपौरुषेय मानते हैं। वैदिक मंत्रोंके साथ जिन ऋषियोंके नाम मिलते हैं, वे उनके रचयिता नहीं, द्रष्टा थे। वेदोंकी गणना 'श्रुति' (जो सुना गया हो) में की जाती है, क्योंकि उन्हें गुरु-शिष्य परंपरासे सुनकर कंठस्थ किया जाता था। वेद चार हैं। यथा, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। वेद हिन्दू धर्मके मूलाधार हैं। वर्तमान हिन्दू धर्म मूल वैदिक धर्मसे काफी परिवर्तित हो चुका है, फिर भी वेदोंको अब भी प्रमाण माना जाता है। प्रत्येक वेद चार भागोंमें विभक्त है। यथा, संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्। संहिता-भागमें मंत्रोंका संग्रह मिलता है और वह सूक्तोंमें विभाजित है। उदाहरणार्थ, ऋग्वेद संहितामें १०२८ सूक्त हैं जो १० मंडलोंमें विभक्त हैं। ब्राह्मण भागमें यज्ञानुष्ठानका विस्तृत विवरण मिलता है और वह प्रायः गद्यमें होता है। मुख्य ब्राह्मण-ग्रंथोंमें ऋग्वेदसे सम्बन्धित ऐतरेय और कौषीतकि, सामवेदसे सम्बन्धित ताण्ड्य और जैमिनीय, यजुर्वेदसे सम्बन्धित तैत्तिरीय और शतपथ और अथर्ववेदसे सम्बन्धित गोपथ ब्राह्मण हैं।

आरण्यक-ग्रंथ अरण्य (वन) में रहनेवाले वानप्रस्थ लोगोंके द्वारा पढ़े जानेके योग्य हैं। इनमें कर्मकांडकी अपेक्षा आध्यात्मिक रहस्योंका विवेचन अधिक मिलता है। आरण्यक-ग्रंथ ब्राह्मण-ग्रंथोंके ही भाग हैं, इसीलिए प्रत्येक ब्राह्मण-ग्रंथके साथ उसका आरण्यक भी उसी नामसे मिलता है।

उपनिषद् ग्रंथोंमें ब्रह्मविद्याका प्रतिपादन किया गया है। वे प्रायः गद्यमें हैं। उनके उपदेशोंको कर्मकांड-प्रधान धर्मकी प्रतिक्रिया माना जाता है। उनमें परम तत्त्वका विवेचन है, जिसका ज्ञान मोक्ष-प्राप्तिके लिए आवश्यक माना जाता था।

चारो वेदोंमें ऋग्वेद सबसे प्राचीन माना जाता है, उसका निर्माण-काल अभी तक ठीक-ठीक निर्धारित नहीं हो सका है। कुछ विद्वान् उसका निर्माण-काल ईसवी सन्‌से ४००० वर्ष पूर्व मानते हैं। अन्य विद्वानोंका मत है कि उसका निर्माण-काल बिहिस्तान अभिलेख (दे०) अथवा जरथुस्त्रको अपना पैगम्बर माननेवाले ईरानियोंके धर्मग्रंथ अवेस्तासे ५०० वर्षसे अधिक प्राचीन नहीं हो सकता। जो भी हो, इतना मानना होगा कि ऋग्वेद हिन्दुओंका प्राचीनतम ग्रंथ है और उससे हमें प्राचीन भारतीय आर्योंके धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक जीवनके बारेमें प्राचीनतम जानकारी मिलती है। (**बाल गंगाधर तिलक कृत ओरियन**; ए० बी० कीथ कृत रिलीजन एण्ड फिलासफी आफ दि वेदाज; **आर० सी० मजूमदार कृत**

दि वेदिक एज, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, खंड १; आर० सी० दत्त कृत ऋग्वेद संहिता))

वेदांग—वेदोंके पूरक या सहायक अंग। ये ग्रंथ सूत्र-शैलीमें लिखे गये हैं और छः विषयोंका निरूपण करते हैं, यथा—शिक्षा (ध्वनि शास्त्र), कल्प (धार्मिक आचार), व्याकरण, छन्द, निरुक्त (व्युत्पत्ति शास्त्र) तथा ज्योतिष।

वेदान्त—उपनिषदोंमें प्रतिपादित दर्शन। वेदका अंतिम भाग होनेसे उपनिषद-ग्रंथोंको वेदान्त भी कहा गया है और इसीलिए उसमें प्रतिपादित दर्शन सामान्यरूपसे वेदान्त-दर्शन कहा जाता है। इसका प्रतिपादन मुख्य रूपसे बादरायणने अपने ब्रह्मसूत्रमें किया है और उसके सबसे प्रसिद्ध व्याख्याकार शंकराचार्य (दे०) हैं। उन्होंने अपने अद्वैतवादी वेदान्त-दर्शनका सार निम्न श्लोकार्द्धमें दे दिया है—

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।

(ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है, यह जगत मिथ्या है। जीव और ब्रह्ममें कोई भेद नहीं है।)

उनके कथनानुसार ईश्वरकी उपासना करने अथवा उसका ध्यान करनेसे स्वर्ग-सुखकी प्राप्ति हो सकती है, किंतु, मोक्ष की प्राप्ति उसीको होती है जो ब्रह्म विद्याको जानता है, जो जानता है कि जीवात्मा और ब्रह्म एक है।

भिन्न-भिन्न आचार्योंने वेदान्तसूत्रों की व्याख्या भिन्न-भिन्न रीतिसे की है। उदाहरणके लिए रामानुजाचार्य (दे०) ने शंकराचार्यके अद्वैतवादके स्थानपर विशिष्टाद्वैत-वादका प्रतिपादन किया है। उनके मतानुसार विष्णु अथवा नारायण ही परब्रह्म है जो जगतके प्रत्येक पदार्थमें तथा सभी जीवात्माओंमें परिव्याप्त हैं। उनकी भक्ति तथा सत्कर्म करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। मुक्तिका अर्थ है ईश्वरका सामीप्य-लाभ करके उसके बैकुंठलोकमें नित्य वास करना। उनका यह मत विशिष्टाद्वैत कहलाता है। वेदांत दर्शनके यही दो मुख्य सम्प्रदाय हैं, शंकरका अद्वैत-वाद तथा रामानुजका विशिष्टाद्वैतवाद। इनके अलावा निम्बार्काचार्य तथा मध्वाचार्य आदिने भी उसकी भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ की हैं:

वेन्तुरा, जनरल—एक इटालियन सेनानायक, जो महाराज रणजीत सिंह (दे०) की सेवामें नियुक्त था। उसने सिक्ख पैदल सेनाका पुनर्गठन किया। रणजीत सिंहने उसके साथ बड़ी उदारताका व्यवहार किया और उसे सूबेदार बना दिया तथा जागीर भी प्रदान की। किन्तु १८३९ ई०में रणजीत सिंहकी मृत्यु हो जानेपर वह पंजाब छोड़कर चला गया। (एन० के० सिन्हा कृत रणजीत सिंह)।

वेरेलेस्ट, हेनरी—बंगालका गवर्नर (१७६७-६९ ई०)। सामान्य योग्यताका व्यक्ति होते हुए भी वह पदोन्नति प्राप्त करनेके गुर जानता था। वह कम्पनीकी सेवामें लिपिकके रूपमें बंगाल आया, किन्तु गवर्नर राबर्ट क्लाइव (दे०) के दूसरे कार्यकालमें उसकी चार सलाह-कारोंकी प्रवर समितिका सदस्य बन गया। १७६७ ई० में क्लाइवके अवकाश ग्रहण करनेपर वह उसका उत्तरा-धिकारी बना। निजी व्यापार चलानेके अतिरिक्त वह गवर्नरके रूपमें प्रतिवर्ष २७०९३ पौण्डका वेतन भी लेता था। उसके प्रशासन-कालमें प्रजाको दोनों हाथसे लूटा गया। फलतः १७६९-७० ई० में बंगालमें भयंकर दुर्भिक्ष (दे०) फैला जिसके परिणाम-स्वरूप एक तिहाई जनसंख्या नष्ट हो गयी।

वेलेजली, आर्थर (बादमें ड्यूक आफ वेलिंगटन) (१७६९-१८५२)—भारतके गवर्नर-जनरल लार्ड वेलेजली (दे०) का छोटा भाई। वह १७९७ ई० में अर्थात् अपने भाईके आगमनसे एक वर्ष पहले फौजी अधिकारीके रूपमें भारत आया और १८०५ ई० तक कम्पनीकी सैन्य सेवामें रहा। उसने तत्कालीन युद्धोंमें, विशेष रूपसे दूसरे मराठा-युद्ध (दे०) में भाग लिया, जिसमें उसने १८०३ ई० में असई (दे०) तथा आरगाँव (दे०) के युद्धोंमें मराठोंको पराजित करके विशेष नामवरी पायी। उसने भोंसलाके साथ देवगाँव (दे०) की संधि तथा शिन्देके साथ सुर्जी-अर्जुनगाँव (दे०) की संधि करनेमें विशेष कूटनीतिक चातुर्यका परिचय दिया। भारतसे वापस लौटनेपर उसने स्पेनके प्रायद्वीपके युद्धमें विजय प्राप्त करके तथा वाटरलूके युद्धमें नैपोलियनको पराजित करके विशेष ख्याति प्राप्त की। १८२८ ई० में वह कुछ समयके लिए इंग्लैण्डका प्रधानमंत्री बन गया। मृत्युपर्यन्त सैनिक मामलोंमें तथा भारतके मामलोंमें उससे बराबर परामर्श लिया जाता रहा। उसकी मृत्यु १८५२ ई० में हुई।

वेलेजली, मारक्विस रिचर्ड कोली—१७९८ ई० से १८०५ ई० तक भारतका गवर्नर-जनरल। वह भारतके ब्रिटिश शासकोंमें सबसे महान् माना जाता है। उसने युद्धोंके द्वारा तथा शांति रीतिसे राज्योंका अधिग्रहण करके भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यका अभूतपूर्व विस्तार किया। उसने अहस्तक्षेप (दे०) की नीति त्याग कर भारतीय राजाओंको अंग्रेजोंका आश्रित बना देनेके उद्देश्यसे

आक्रामक नीति अपनायी। उसने भारतीय राजाओंको अंग्रेजोंसे आश्रित संधि (इसे सहायक संधि भी कहते हैं) करनेके लिए विवश किया। जो भारतीय राजे इस संधिको स्वीकार कर लेते थे उन्हें कम्पनी सरकार आश्वासन देती थी कि वह उनकी सभी भीतरी तथा बाहरी शत्रुओंसे रक्षा करेगी। इसके बदलेमें उन्हें अपने राज्यमें अंग्रेजी सेना तथा अपने दरबारमें अंग्रेज रेजिडेंट रखनेके लिए राजी होना पड़ता था। इसके साथ ही उन्हें प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वे अंग्रेजोंके सिवाय अन्य किसी विदेशी ताकतसे कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे और ब्रिटिश सरकारकी पूर्ण अनुमतिके बिना किसी विदेशीको नौकर नहीं रखेंगे।

निजामने इस आश्रित संधिको स्वीकार कर लिया और इस प्रकार वह शांतिपूर्ण रीतिसे अंग्रेजोंका पूर्णतया आश्रित बन गया। मैसूरके टीपू सुल्तान (दे०) ने इस प्रकारकी संधि करनेसे इन्कार कर दिया। फलतः वेलेजलीने चौथा मैसूर-युद्ध (दे०) छेड़ दिया, जिसमें टीपू परास्त होकर वीरगतिको प्राप्त हुआ। उसकी मृत्युके उपरांत मैसूर तथा उसके आसपासके इलाकोंको छोड़कर उसका समस्त राज्य ब्रिटिश साम्राज्यमें मिला लिया गया। मैसूरकी गद्दीपर एक हिन्दू राजाको बिठा दिया गया और उसे भी आश्रित संधि करनेके लिए विवश किया गया।

पेशवा बाजीराव द्वितीयने वसई (दे०) की संधिके द्वारा अंग्रेजोंका आश्रित बनना स्वीकार कर लिया, परंतु अन्य मराठा सरदारोंने आश्रित संधि स्वीकार नहीं की। फलतः वेलेजलीने दूसरा मराठा-युद्ध (दे०) छेड़ दिया, जिसके परिणाम-स्वरूप भोंसला, शिन्दे तथा होल्करके राज्योंका अधिकांश भाग ब्रिटिश साम्राज्यमें मिला लिया गया। इस प्रकार मध्य भारत, मालवा, गुजरात तथा दिल्ली ब्रिटिश शासनके अंतर्गत आ गये। वेलेजलीने कुशासनका आरोप लगाकर कर्नाटक, तंजौर तथा अवधके एक बड़े भू-भागको भी ब्रिटिश साम्राज्यमें मिला लिया।

वेलेजलीकी अनवरत युद्धों तथा राज्यविस्तारकी नीतिसे नाराज होकर कोर्ट आफ डाइरेक्टर्सने १८०५ ई० में उसे वापस बुला लिया। परंतु इसमें संदेह नहीं कि वेलेजलीने अपने कार्यकालकी समाप्तिपर भारतमें अंग्रेजोंका सार्वभौम प्रभुत्व स्थापित कर दिया था और पंजाब तथा सिंधको छोड़कर सारा भारत ब्रिटिश साम्राज्यके अंतर्गत आ गया था।

वेल्लोरमें भारतीय सैनिकोंका विद्रोह–भारतीय सेनाके प्रारम्भिक निष्फल विद्रोहोंमेंसे एक। १८०६ ई० में वेल्लोरमें तैनात भारतीय सैनिकोंने कुछ नये नियमोंके विरुद्ध वेल्लोरमें विद्रोह कर दिया। यह नये नियम उनके धार्मिक विश्वासोंका अतिक्रमण करते थे। इस विद्रोहको अल्पकालमें ही बलपूर्वक दबा दिया गया, परन्तु इससे मिलनेवाली शिक्षाकी अवहेलना की गयी, जिसका आगे चलकर भयानक परिणाम निकला।

वेवेल, लार्ड (पहले सर आर्कीबाल्ड) (१८८३–१९५० ई०)–लार्ड लिनलिथगो (दे०) के उत्तराधिकारीके रूपमें १९४३ ई० से १९४७ई०तक भारतमें गवर्नर-जनरल रहा। १९४१ से १९४३ ई०तक वह भारतीय सेनाका प्रधान सेनापति भी रहा और जापानियोंपर विजय प्राप्त कर उन्हें बर्मा और भारतसे निकाला। उसका पहला प्रयास था युद्ध-स्तरपर बंगालके अकालका सामना करना और खाद्य-स्थितिको सम्हालना। युद्धकी समाप्तिपर उसने कोशिश की कि १९३५ के भारतीय शासन विधानके अनुसार भारतकी शासन सत्ता शांतिपूर्ण ढंगसे भारतीयोंको हस्तांतरित कर दी जाय; किन्तु अंग्रेजोंकी नीयतके बारेमें भारतीयोंके मनमें घुसे हुए संदेहोंने उसकी कार्य कठिन बना दिया। इसके साथ ही कांग्रेस और मुसलिम लीगके परस्पर अविश्वासके कारण भी उसके मार्गमें कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गयीं।

वेवेलने कांग्रेस और लीगके नेताओंकी अनेक बैठकें आयोजित कीं, फरवरी १९४६ ई०में बम्बईके नाविक-विद्रोहका दमन किया, कैबिनेट मिशन (दे०) का स्वागत किया और उसकी योजनाके विफल होनेपर कांग्रेसकी सहायतासे जवाहरलाल नेहरू (दे०) के नेतृत्वमें अन्तरिम सरकार (दे०) का गठन किया।

मुस्लिम लीगने इसका विरोध किया और १६ अगस्त १९४६ ई०को 'प्रत्यक्ष काररवाई दिवस' मनाया, जिसके फलस्वरूप भारतमें भीषण साम्प्रदायिक दंगे हुए और वेवेल उन्हें शीघ्रतासे दबानेमें असफल रहा। फलतः १९४७ ई०में लार्ड वेवेलको वापस बुला लिया गया और उसकी जगह लार्ड माउंटबेटन (दे०) को भेजा गया। १९५० ई०में इंग्लैण्डमें वेवेलका देहान्त हो गया।

वैशाली–गौतमबुद्ध (दे०) के कालका एक प्रसिद्ध नगर, जो लिच्छिवि (दे०) गणकी राजधानी था। इसके भग्नावशेष गंगाके उत्तरी किनारेपर हाजीपुरके निकट बसाढ़गाँवमें तथा उसके आसपास पाये जाते हैं। अपने उत्कर्षकालमें यह समृद्ध नगर था और दस-बारह मीलके

घेरेमें फैला था। गौतम बुद्ध अनेक बार इस नगरमें पधारे थे। मगधके राजा अजातशत्रु (दे०) द्वारा विजित होनेपर यह उसके अधिकारमें आ गया। पाँचवीं शताब्दी तक इस नगरका महत्त्व बना रहा। उस कालमें गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (दे०) के राज्यपालका कार्यालय इसी नगरमें था।

वैश्य–हिन्दुओंकी वर्ण-व्यवस्थामें इनका तीसरा स्थान है। इस वर्णके लोग मुख्यतया वाणिज्य-व्यवसाय और कृषि करते थे। (एन० के० दत्त कृत कास्ट्स इन इण्डिया)

वैष्णव मत–का प्रचार चार महान आचार्यों–निम्बार्काचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य तथा वल्लभाचार्यने किया। उनकी उपासना-पद्धति भले ही भिन्न-भिन्न हो, परंतु वे सभी एक ईश्वरमें विश्वास करते हैं, जिसकी उपासना वे राम, कृष्ण अथवा वासुदेवके नामसे करनेका उपदेश देते हैं। वे यज्ञादिके स्थानपर अपने उपास्यदेवकी भक्तिके द्वारा मुक्ति प्राप्त करनेपर बल देते हैं। वे ईश्वर, जीव तथा प्रकृतिमें भेद करते हैं। जीव माया (प्रकृति) में लिप्त रहता है तथा ईश्वरके अनुग्रहसे मुक्ति प्राप्त कर लेता है। निम्बार्काचार्यके शिष्य उत्तरी भारतमें, विशेष रूपसे मथुरामें बड़ी संख्यामें मिलते हैं जो कृष्ण और राधाके उपासक हैं। रामानुजाचार्य (दे०) के शिष्य दक्षिण भारतमें बड़ी संख्यामें हैं जहाँ आलवार संतोंने भक्ति मार्गका प्रचार पहले ही कर दिया था। रामानुजाचार्य नारायणको परब्रह्म मानते हैं। उनकी शिक्षाएँ अधिकांशतया भगवद्गीतापर आधारित है। वे ईश्वरको सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान तथा दयाका सागर मानते हैं। वे ईश्वरके सामीप्य-लाभको ही मुक्ति मानते हैं और उनका कथन है कि ईश्वरको माननेसे ही मुक्तिकी प्राप्ति होती है। माधवाचार्यका सम्प्रदाय विशेष रूपसे दक्षिण कन्नड़में प्रचलित है। वे ईश्वरको पिता-स्वरूप और जीवात्माओंको पुत्र-पुत्री स्वरूप मानते हैं। उनका उपासनाका मार्ग अत्यन्त सात्त्विक है। वल्लभाचार्यके शिष्य गुजरात तथा ब्रजक्षेत्रमें बड़ी संख्यामें मिलते हैं। वे निवृत्ति मार्गके बजाय प्रवृत्ति मार्गका उपदेश देते हैं। उनका मार्ग ईश्वरके अनुग्रह (अथवा पुष्टि) पर आधारित होनेके कारण पुष्टि-मार्ग कहलाता है।

उत्तर भारतमें वैष्णव धर्मके सबसे बड़े प्रचारक रामानन्द (दे०) थे जो १४वीं शताब्दीमें हुए। उन्होंने अपने मतका प्रचार करनेके लिए 'भाषा'का सहारा लिया, जातिगत भेद-भावोंकी उपेक्षा की और सभीको ईश्वरकी भक्ति करनेका समान रूपसे अधिकारी माना। वह नारायण या कृष्णके स्थानपर रामको ही परब्रह्म मानते थे। रामानन्दने सभी जातियोंमें अपने शिष्य बनाये। उनके १२ मुख्य शिष्योंमें कबीर (दे०) मुसलमान जुलाहे थे तथा रैदास चमार थे। बंगाल तथा उड़ीसामें चैतन्य महाप्रभु (दे०) तथा आसाममें शंकरदेव (दे०) ने वैष्णव मतका प्रचार किया। दोनोंके उपासनामार्गमें एक आधारभूत भेद है। चैतन्यने जबकि कृष्ण और राधाकी प्रेमलीलाको भक्तके आदर्शके रूपमें प्रस्तुत किया, शंकरदेवने कृष्णके बाल-गोपाल रूपकी उपासनापर बल दिया।

वैष्णव धर्मके प्रचारने देशी भाषाओंमें साहित्यके विकासमें विशेष रूपसे सहायता पहुँचायी, जैसाकि जयदेव (दे०), विद्यापति, चण्डीदास (दे०), मीराबाई तुलसीदास (दे०), कृत्तिवास तथा शंकरदेव (दे०) की रचनाओंसे प्रकट है।

व्यंकाजी (वेंकाजी)–छत्रपति शिवाजी (दे०) का सौतेला छोटा भाई। वह बीजापुर राज्यकी एक जागीरका स्वामी था, जो सुल्तानकी ओरसे उसके पिता शाहजीको दी गयी थी। उसकी माताका नाम तुकाबाई था। महाराष्ट्रमें स्वराज्यकी स्थापनाके लिए अपने अग्रज शिवाजीकी उसने तनिक भी सहायता नहीं की।

व्याघ्रराज–दक्षिणापथके महाकान्तार नामक राज्यका स्वामी, जिसका उल्लेख समुद्रगुप्त (दे०)के प्रयाग-स्तम्भ लेखमें हुआ है। वह दक्षिण भारतके उन राजाओंमेंसे एक था जिनको गुप्त सम्राट्ने बन्दी बनानेके बाद कृपापूर्वक उन्मुक्त कर दिया था।

व्यास (वेदव्यास)–एक प्रसिद्ध ऋषि। उन्हें महाभारत, अठारह पुराणों तथा वेदान्त सूत्रका रचयिता माना जाता है। उनका अस्तित्व केवल साहित्यिक अनुश्रुतियोंसे प्रमाणित होता है, जो इतनी प्राचीन हैं कि उनकी अवहेलना नहीं की जा सकती। यह सम्भव है कि महर्षि व्यासकी प्रसिद्धिके कारण बादके बहुतसे लेखकोंने अपनी रचनाएँ उनके नामसे प्रचलित कर दीं।

व्यास–सिन्धुकी एक सहायक नदी, जिसे वैदिक कालमें विपाशा पुकारते थे। यूनानी लेखकोंने इसे हिपासिस सम्बोधित किया है। यह लाहौरके निकट सतलज अथवा शतद्रु नदीमें मिलती है। सिकन्दरकी सेनाएँ पूर्वमें इस नदीके तट तक आयी थीं।

ह्वीलर, कर्नल–बंगालमें कम्पनीकी सेवामें नियुक्त एक सैन्य अधिकारी। मोनसोनकी मृत्युके बाद वह १७७६ ई०में

वारेन हेस्टिंग्स (दे०)की कौंसिलका सदस्य नियुक्त हुआ। ह्वीलरने पहले फ्रांसिसका समर्थन किया, किन्तु बादमें वारेन हेस्टिंग्सको पूरा सहयोग एवं समर्थन दिया।

ह्वीलर, मेजर-जनरल–कम्पनीकी सेवामें नियुक्त एक सैन्य अधिकारी। सिपाही-विद्रोहके समय वह कानपुरकी छावनीका कमाण्डर था। उसकी अवस्था ७५ वर्षकी थी। जब विद्रोहियोंने कानपुरपर आक्रमण किया, तो वह जून १७५७ ई०में तीन सप्ताहतक मोर्चा लेता रहा। बादको उसने इस आश्वासनपर आत्म-समर्पण कर दिया कि अंग्रेज सैनिकोंको सुरक्षित रूपसे इलाहाबाद चले जाने दिया जायगा। किन्तु अंग्रेज सैनिक जब नावोंपर सवार होकर रवाना होने लगे तो विद्रोहियोंने उनपर हमला कर दिया और जनरल ह्वीलरके सहित उन सबको मौतके घाट उतार दिया।

श

शंकरदेव–देवगिरिके यादव शासक रामचन्द्र देवका उत्तराधिकारी। दिल्लीके सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीको नियमित रूपसे कर न दे सकनेके कारण सुल्तानकी सेनाओंने १३१२ ई०में उसके राज्यपर आक्रमण कर दिया। शंकरदेव पराजित हुआ और मारा गया। तदुपरान्त उसका राज्य दिल्ली सल्तनतमें सम्मिलित कर लिया गया।

शंकरदेव–आसामके विख्यात वैष्णव धर्म-सुधारक। जन्म लगभग १४४६ ई० में और मृत्यु १५७६ ई०में हुई। उन्होंने जन-साधारणमें वैष्णव धर्मके उदात्त रूपका प्रचार किया तथा तत्कालीन आसाममें अत्यधिक प्रचलित हिंसात्मक यज्ञों एवं बलि प्रथाके स्थानपर भक्तिकी धारा बहायी। उन्हें कूच बिहारके शासक नर-नारायण (दे०) का संरक्षण प्राप्त था। फलतः उन्होंने बड़पेटाको ही अपना केन्द्र बनाया। आसाम प्रदेशमें उनके द्वारा प्रचारित भक्ति मार्गने बड़ी लोकप्रियता प्राप्त की। शंकरदेव उच्चकोटिके कवि और नाटककार भी थे। उनके गीत और नाटक आज भी आसाममें अत्यधिक लोकप्रिय हैं।

शंकराचार्य–उत्तर गुप्त कालके सबसे महान् दार्शनिक हैं। जन्म दक्षिण भारतके कालटी नामक ग्रामके एक ब्राह्मण परिवारमें ८वीं शताब्दीमें। वे उपनिषदों, भगवद्गीता तथा बादरायणके ब्रह्म-सूत्रोंपर रचे गये अपने भाष्यके लिए प्रसिद्ध हैं। उन्होंने बादरायणके ब्रह्मसूत्रके ही आधारपर अपने अद्वैत सिद्धान्तका प्रतिपादन किया। अपने सिद्धान्तोंके प्रतिपादनार्थ उन्होंने सम्पूर्ण भारतका भ्रमण किया। वे महान् संगठनकर्ता भी थे। उन्होंने मैसूरमें शृंगगिरि, काठियावाड़में द्वारका, उड़ीसामें जगन्नाथपुरी और हिमालयमें बद्रीनाथके प्रसिद्ध पीठोंकी स्थापना की। ये चारों पीठ अब भी विद्यमान हैं तथा लाखों हिन्दुओंको धार्मिक प्रेरणा देते हैं। अल्पायुमें ही उनका देहान्त हो गया, परन्तु आज भी हिन्दू समाज उनका स्मरण बड़ी श्रद्धा और भक्तिके साथ करता है।

शम्भुजी, राजा–शिवाजी प्रथमका पुत्र और उत्तराधिकारी, जिसने १६८० से १६८९ ई० तक राज्य किया। उसमें अपने पिताकी कर्मठता और दृढ़ संकल्पका अभाव था। वह विलास-प्रिय था किन्तु उसमें शौर्यकी कमी न थी। लगभग ९ वर्षोंतक वह निरन्तर औरंगजेबकी विशाल सेनाओंका सफलतापूर्वक सामना करता रहा। अपनी गलतीसे रत्नगिरिके निकट संगमेश्वर नामक स्थलपर वह अपने मंत्री कुलश सहित ११ फरवरी १६८९ ई०को मुगलों द्वारा बन्दी बना लिया गया। लगभग एक मास उपरान्त औरंगजेबने निर्दयतापूर्वक उसका बध करवा डाला।

शम्भुजी काबजी–शिवाजी प्रथमका विश्वास-पात्र अनुचर। जब शिवाजी अफजल खाँसे भेंट करने गये थे तब वह उनके साथ था। भेंटके समय जब शिवाजीने अफ़जलको बघनखसे सांघातिक रूपसे घायल कर दिया, तभी शम्भुजी काबजीने उसका सिर काट लिया।

शक–मध्य एशियाके निवासी यायावर जातिके लोग। दूसरी शताब्दी ई० पू० में युइशि कबीलेके लोगों द्वारा मध्य एशियासे निष्कासित होनेपर दक्षिणकी ओर भागनेके लिए विवश हुए। उन्होंने कई झुण्डोंमें भारतमें प्रवेश किया और प्रथम शताब्दी ई० पू०के अंत तक वे गंधार, पंजाब, मथुरा, कठियावाड़ और दक्षिणमें महाराष्ट्र तकके भू-भागोंमें फैल गये। शक शासकोंने 'क्षत्रप' और 'महाक्षत्रप' (दे०) की उपाधियाँ धारण कीं और प्रारंभमें वे पार्थियन शासकों तथा उपरांत कुषाणों (दे०) की सार्वभौम सत्ता स्वीकार करते रहे। भारतीय ग्रंथकारोंने प्रारंभमें उनकी गणना विदेशियों तथा यवनोंमें की, किन्तु उपरांत शक लोग स्थानीय हिन्दू समाजमें पूर्णतया घुलमिल कर भारतीय हो गये। पश्चिमी भारतमें शकोंने शताब्दियों तक राज्य किया। काठियावाड़ तथा उज्जैनके आसपासके क्षेत्र उनके अधिकारमें रहे। अंतिम शक क्षत्रप

रुद्रसिंह तृतीयको गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यने लगभग ३८८ ई०में परास्त कर शक सत्ताका अन्त कर दिया।

शक संवत्–इसका प्रारंभ ७८ ई० माना जाता है। साधारणतया कुषाण शासक कनिष्ठ प्रथमको ही इस संवत्को चलानेका श्रेय प्राप्त है, पर कुछ विद्वानोंने इस मतकी आलोचना की है और उसे किसी अन्य शासक द्वारा चलाया गया माना है। फिर भी समस्त व्यवहृत भारतीय संवतों (दे०) में शक संवत् अत्यधिक प्रचलित रहा है और भारतीय गणतंत्रने इसे ही राष्ट्रीय संवत्के रूपमें स्वीकार किया है।

शकुंतला नाटक (मूल नाम–अभिज्ञान शाकुन्तल)–महाकवि कालिदास (दे०) द्वारा रचित ख्यातिलब्ध नाटक। महाकवि गेटे तथा अन्य पाश्चात्य विद्वानोंने इस नाटककी भूरि-भूरि प्रशंसा की है और इसे विश्वकी सर्वश्रेष्ठ रचनाओंमेंसे एक माना है।

शत्रुंजय–गुजरातका एक प्रसिद्ध नगर। यहाँ दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दीमें चालुक्य वंशके शासकों द्वारा निर्मित अनेक भव्य जैन मंदिर हैं।

शम्सुद्दीन (कश्मीरका सुलतान)–सूरतका निवासी एक साहसी व्यक्ति। उसका प्रारंभिक नाम शाह मिर्जा या शाहमीर था। उसने कश्मीर जाकर वहाँके हिन्दू शासकके यहाँ नौकरी कर ली। बादमें वह पदोन्नति करके मंत्री बन गया और लगभग १३४६ ई०में वहाँके हिन्दू शासकको सिंहासनसे उतार कर कश्मीरका शासक बन बैठा। उसने १३४९ ई० में अपनी मृत्यु-पर्यन्त बड़ी कुशलतासे शासन किया और उसीसे कश्मीरमें मुसलमान सुल्तानोंके उस वंशकी शुरुआत हुई, जिसने १५८६ ई०में अकबर द्वारा कश्मीर जीत लेने तक वहाँ राज्य किया।

शम्सुद्दीन अतगा खाँ–इसको बादशाह अकबरने १५६१ ई० में प्रधान-मंत्री नियुक्त किया। किन्तु अकबरकी दूध-माँ महम अनका और उसके पुत्र अदहम खाँको यह नियुक्ति नागवार हुई। एक दिन अदहम खाँ आगा खाँके कार्यालयमें घुस गया और कटारसे वार करके उसकी हत्या कर दी, पश्चात् उस दुष्टने स्वयं अकबरके ऊपर भी आक्रमण किया। किन्तु अकबरने उसे एक ही मुक्केके प्रहारसे धराशायी कर दिया। तदुपरान्त किलेकी दीवारसे नीचे फेंक कर उसे मार डाला गया।

शम्सुद्दीन बहमनी–बहमनी वंशका सातवाँ सुलतान। अपने भाई गयासुद्दीनके उपरान्त १३९७ ई०में वह सिंहासनासीन हुआ, किन्तु कुछ काल उपरान्त ही उसे गद्दीसे उतार और अन्धा करके कारागारमें डाल दिया गया।

शम्सुद्दीन मुजफ्फ़र शाह–अबीसीनियाका निवासी, जिसका मूल नाम सीदी बदर था। बंगालमें इलियासवंशके अन्तिम शासक नासिरुद्दीन महमूद द्वितीयके राज्यकालमें वह उच्च पदाधिकारी बना। १४९० ई०में अपने स्वामी नासिरुद्दीन द्वितीयकी हत्या करके स्वयं गद्दीपर बैठा और उसने शम्सुद्दीन मुजफ्फर शाहकी उपाधि धारण की। वह अत्याचारी शासक सिद्ध हुआ और समूचे राज्यमें अराजकता फैल गयी। स्थिति असह्य हो जानेपर बंगालके सरदारोंने उसके मंत्री अलाउद्दीन हुसैनके नेतृत्वमें शम्सुद्दीनको १४९३ ई० में लगभग चार महीने तक राजधानी गौड़में घेरे रखा परन्तु इसी बीच उसकी मृत्यु हो गयी।

शम्से-सिराज, अफ़ीफ–फारसीमें 'तारीखे फीरोजशाही' नामक ग्रंथका रचयिता, जिसमें सुल्तान फीरोजशाह तुगलक (दे०) के राज्यकालकी ऐतिहासिक घटनाओंका समसामयिक वर्णन है। शम्सेसिराज फीरोजशाहकी सेवामें उच्च पदाधिकारी था। उसका विवरण सुल्तानके राज्यकालका आधिकारिक इतिहास माना जा सकता है।

शरत्चन्द्र दास (१८४९–१९१७)–बंगालके एक निर्धन परिवारमें जन्म और सामान्य स्कूल-अध्यापककी भाँति जीवनारंभ। उन्हें दुस्साहसिक कार्य करना और ज्ञान अर्जित करना बहुत प्रिय था। इसीका फल था कि उन्होंने १८७९ ई०में तिब्बतकी यात्रा की। यह उस समय की बात है जब किसी भी गैर-तिब्बतीका तिब्बतमें प्रवेश निषिद्ध था। सर फ्रांसिस यंगहसबैण्ड जब तिब्बत गये, उससे २५ वर्ष पहलेकी यह घटना है। इस प्रकार शरत्चन्द्रको ही यह सौभाग्य प्राप्त है कि उन्होंने आधुनिक युगमें लोगोंको तिब्बत और उसकी राजधानी ल्हासाके बारेमें जानकारी दी। वे १८८१ ई०में पुनः तिब्बत गये। इसके बाद १८८४ में सिक्किम तथा १८८५ में पेकिंग भी गये। उन्होंने तिब्बती भाषा सीखी और सुम्पा काहन लिखित 'पाग साम फोन जाग' पुस्तकका अनुवाद अंग्रेजीमें किया। उन्होंने अंग्रेजीमें सुप्रसिद्ध पुस्तक 'इंडियन पंडित्स इन लैण्ड आफ स्नो' (हिमाच्छादित देशमें भारतीय पंडित) लिखी। इसी पुस्तकसे दुनियाको मालूम हुआ कि मध्ययुगमें किस प्रकार भारतीय बौद्ध भिक्षु तिब्बत गये और किस प्रकार वहाँ उन्होंने भारतीय धर्म एवं संस्कृतिका प्रसार किया। शरत् चंद्रने तिब्बती-अंग्रेजी कोश (१९०२) की भी रचना की जो एक मानक ग्रंथ माना जाता है।

शरियतुल्ला, हाजी–बंगला देशके फरीदपुर जिलेका मुसलमान नेता, जिसने १९ वीं शताब्दीके प्रारंभमें पूर्वी बंगालमें इस्लाम धर्ममें सुधार करनेके लिए आन्दोलन किया। उनका यह आन्दोलन फरायजी आन्दोलनके नामसे विख्यात हुआ। तदुपरांत इसने कृषक आन्दोलन का रूप धारण कर लिया, किन्तु साधारणतया यह शान्तिमय रहा। उनकी गणना पूर्वी बंगालके मुसलमानोंमें सुधार वादी आन्दोलनके अग्रणी व्यक्तियोंमें की जाती है।

शशांक–बंगालका यशस्वी शासक, जिसने उस प्रदेशकी सीमाओंके बाहर अपना राज्य विस्तार किया। उसका वंश अज्ञात है और गुप्तवंशके साथ उसको सम्बन्धित करना केवल अनुमान मात्र है। उसकी उत्पत्ति चाहे जिस वंशमें भी हुई हो, इतना निश्चय है कि ६०६ ई० के पूर्व ही वह गौड़ अथवा बंगालका शासक बन चुका था और उसकी राजधानी कर्णसुवर्ण थी, जिसकी पहचान मुर्शिदाबाद जिलेके अंतर्गत रांगामाटी नामक कसबेसे की गयी है। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि दक्षिणी और पूर्वी बंगाल उसके राज्यके अंतर्गत थे अथवा नहीं, पर पश्चिममें उसका राज्य मगध तक और दक्षिणमें उड़ीसाकी चिलका झील तक अवश्य था। पश्चिमकी ओर साम्राज्य-विस्तार करनेके प्रयासमें शशांकको मौखरि शासकोंसे संघर्ष करना आवश्यक हो गया और उसने मौखरियोंके शत्रु और मालवाके शासक देवगुप्तसे संधि कर ली।

देवगुप्तने अपने मौखरि प्रतिद्वन्द्वी ग्रहवर्माको पराजित करके मार डाला और अपने मित्रके सहायतार्थ आगे बढ़कर शशांकने कन्नौजपर अधिकार कर लिया। इसपर राजवर्धन (दे०)ने, जो उन्हीं दिनों थानेश्वरका शासक हुआ था और जिसकी बहन राज्यश्री ग्रहवर्माके मारे जानेके फलस्वरूप विधवा हो गयी थी, शशांकपर आक्रमण कर दिया। घटनाओंका क्रम क्या रहा, निश्चय करना कठिन है, पर राज्यवर्धनको शशांक अथवा उसके अनुचरोंने मार डाला। राज्यवर्धनके इस प्रकार मारे जानेपर उसके भ्राता और उत्तराधिकारी हर्षवर्धनने कामरूपके शासक भास्कर वर्मासे सन्धि कर ली, जो शशांककी शक्तिसे भयभीत तथा और उसके विरुद्ध हर्षवर्धनकी सहायताका आकांक्षी था। इस प्रकार दोनों ओरसे आक्रमणकी आशंकासे शशांकको पीछे हटकर अपनी राजधानी वापस जाना पड़ा और दोनों शत्रुओंने उसके विजित राज्यको विशेष क्षति पहुँचायी।

हर्ष और भास्कर वर्माको भी शीघ्र ही अपने-अपने राज्योंकी स्थिति सँभालनेके लिए वापस जाना पड़ा और शशांकका गौड़, मगध और चिलका झील तक उत्कल (उड़ीसा)पर अधिकार मृत्यु पर्यन्त बना रहा। उसकी मृत्यु ६१९ ई०के उपरान्त किन्तु ६३७ ई०के पूर्व कभी हुई होगी। उसके सिक्कोंसे स्पष्ट है कि वह शिवका उपासक था किन्तु चीनी यात्री ह्युएनत्सांग द्वारा वर्णित उसके बौद्ध धर्मसे विद्वेष और बौद्धोंपर अत्याचारकी कहानियोंमें कितनी सत्यता है, यह निश्चय कर पाना कठिन है। (**र० च० मजूमदार कृत हिस्ट्री आफ बंगाल, प्रथम भाग**)

शहरयार–सम्राट् जहाँगीरका सबसे छोटा पुत्र। उसने नूरजहाँकी, उसके प्रथम पति शेर अफगनसे उत्पन्न पुत्रीसे विवाह किया था। इसी कारण नूरजहाँने १६२७ ई०में जहाँगीरकी मृत्युके उपरान्त उसे ही दिल्लीके सिंहासनपर बैठाना चाहा। यद्यपि जहाँगीरकी मृत्युके उपरान्त उसे लाहौरमें बादशाह घोषित कर दिया गया तथापि शहरयारमें व्यक्तिगत प्रतिभा एवं योग्यताका अभाव था। शाहजहाँके श्वसुर आसफ खांने शहरयारको शीघ्र ही पराजित करके बन्दी बना लिया और शाहजहाँके मार्गका काँटा सदाके लिए दूर कर देनेके विचारसे अंधा कर दिया।

शहाबुद्दीन–देखिये, 'मुहम्मद गोरी'।

शहाबुद्दीन–अकबरकी दूध-माँ, महम अनकाका सम्बन्धी। अकबरके सिंहासनारोहणके समय वह दिल्लीका हाकिम था। वह उन दरबारियोंमेंसे एक था, जिन्होंने अकबरको बैरम खाँके विरुद्ध भड़काया था, जिसके फलस्वरूप बैरम खाँको १५६० ई०में पदच्युत कर दिया गया।

शहाबुद्दीन गोरी–१४०१ से १४०५ ई० तक मालवाका सुल्तान। वह दिल्लीके प्रथम मुसलमान सुल्तान शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीका वंशज था। १३९८ ई०में तैमूरके आक्रमणके फलस्वरूप दिल्लीकी सल्तनतमें अव्यवस्था फैली, जिसका लाभ उठाकर शहाबुद्दीनने, जो उन दिनों मालवाका शासक था, अपनेको मालवाका स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया और धारको राजधानी बनाया। उसके वंशजोंने १४३२ ई०तक मालवामें शासन किया।

शाक्य–गण छठीं शताब्दी ई०पू०में नेपालकी तराई और भारत-नेपालकी सीमाके **भू-भागोंमें** निवास करता था। इनकी राजधानी कपिलवस्तु (दे०)थी। शाक्योंमें प्रमुख गौतमबुद्ध (दे०)के पिता शुद्धोदन थे। शाक्य लोग अपनेको सूर्यवंशी तथा इक्ष्वाकुके वंशज मानते थे।

शाक्य मुनि–का शाब्दिक अर्थ है शाक्य जातिमें उत्पन्न

मुनि अथवा तपस्वी, किन्तु इसका प्रयोग मुख्यतः गौतम बुद्धके लिए होता है।

शायस्ता खाँ—औरंगजेबका मामा। १६६० ई०में औरंगजेब-ने उसे विशेष रूपसे शिवाजीका दमन करनेके लिए दक्षिणका सूबेदार नियुक्त किया। प्रारंभमें शायस्ता खाँको कुछ सफलता मिली, किन्तु वर्षाकालमें जब वह पूना लौट गया तब शिवाजीने रात्रिमें अचानक उसपर आक्र-मण कर दिया। बड़ी कठिनतासे शायस्ता खाँने अपने प्राणोंकी रक्षा की; किन्तु उसे अपनी तीन अंगुलियोंसे हाथ धोना पड़ा तथा उसका पुत्र भी मारा गया। उप-रान्त उसका तबादला बंगालको कर दिया गया, जहाँ उसने ३० वर्षों तक विशेष सफलतापूर्वक शासन किया। उसने बंगालके समुद्रतटवर्ती भू-भागोंमें लूटमार करनेवाले पुर्तगाली समुद्री डाकुओंका दमन किया और अराकानके राजासे चिरगांव जिला भी छीन लिया। १६९४ ई०में ९० वर्षसे भी अधिक आयुमें वह आगरेमें मर गया।

शारदा-कानून—राय साहब हरविलास शारदा द्वारा प्रस्तुत एक विधेयक। १९२९ ई०में यह भारतीय विधान मंडल द्वारा पारित किया गया। इस कानूनका उद्देश्य विवाह-की उम्र बढ़ा करके बाल-विवाह रोकना था।

शालिवाहन—इसका उल्लेख परंपरागत भारतीय लोक-कथाओंमें विशेषरूपसे मिलता है, किन्तु मुद्राओं तथा अभिलेखीय प्रमाणोंके अभावमें उसकी ऐतिहासिकता सिद्ध नहीं होती। दक्षिणके अनेक सातवाहन राजाओंकी कृतियाँ उसके साथ सम्बद्ध हो गयी हैं और देशके कुछ भू-भागोंमें शक संवत् भी उन्हींके द्वारा चलाया हुआ माना जाता है।

शालिशुक—परवर्ती मौर्य शासकोंमेंसे एक, जो सम्राट् अशोकके पौत्र सम्प्रति (दे०)के उपरान्त सिंहासनारूढ़ हुआ। उसे अनाचारी और अत्याचारी शासक कहा गया है।

शास्त्री, लालबहादुर (१९०४–१९६६ ई०)—मई, १९६४ से ११ जनवरी १९६६ ई०को मृत्युपर्यन्त भारतके प्रधान-मंत्री। जन्म उत्तर प्रदेशके वाराणसी जिलेमें एक निर्धन परिवारमें। वे स्वावलम्बी व्यक्ति थे और अपनी योग्यता, गुण तथा चरित्रबलके आधारपर अध्यापकके निम्नपदसे उठकर पण्डित जवाहरलाल नेहरूके उपरान्त भारतके प्रधान-मंत्री पदपर आसीन हुए। मात्र १९ महीनोंके कार्यकालमें उनकी उपलब्धियाँ कुछ कम न थीं, जिनके प्रमाणस्वरूप उन्हें मरणोपरान्त 'भारतरत्न'की सर्वोच्च, उपाधि ससम्मान प्रदान की गयी। सीधे-सादे, शान्त प्रकृति एवं पक्के गांधीवादी देशभक्त थे। यद्यपि वे कद-में छोटे थे, परन्तु उनका कृतित्व महान् था। उन्होंने भारतकी खाद्य-समस्या एवं विषम आर्थिक स्थितिको ही सुलझानेका प्रयास नहीं किया, अपितु चीनके साथ चल रही युद्ध जैसी स्थितिमें भी यथासंभव सुधार किया। उन्हें पाकिस्तानके साथ दो युद्ध करने पड़े। पहली बार पाकिस्तानने कच्छपर तथा दूसरी बार जम्मू और कश्मीरपर अधिकार करनेकी चेष्टा की।

जम्मू तथा कश्मीरपर पाकिस्तानी आक्रमणोंके फल-स्वरूप उन्होंने बड़ी वीरता और दृढ़तापूर्वक भारतका नेतृत्व किया और इस युद्धमें पाकिस्तानको मुँहकी खानी पड़ी। इसके साथ ही उन्होंने चीनी सेनाओंको भी युद्धमें भाग लेनेसे रोक रखा। उन्होंने कच्छ-विवादको अन्तर्रा-ष्ट्रीय पंचनिर्णयसे सुलझाना स्वीकार कर लिया तथा कश्मीरके मोर्चेपर भी संयुक्त राष्ट्रसंघका युद्ध-विरामका अनुरोध स्वीकार कर लिया, हालांकि भारतका पलड़ा भारी था। तदुपरान्त रूसके आमंत्रणपर पाकिस्तानके साथ शान्तिपूर्ण समझौतेकी सम्भावनाओंपर विचार करनेके लिए ताशकन्द गये। वहाँ रूसकी मध्यस्थतासे पाकिस्तानके राष्ट्रपति अयूब खाँके साथ एक समझौता सम्पन्न हुआ जो 'ताशकन्द घोषणापत्र'के नामसे विख्यात है। अत्यधिक परिश्रम और मानसिक तनावके कारण ताशकन्दमें घोषणापत्रपर हस्ताक्षर करनेके कुछ ही घण्टों-के उपरान्त ११ जनवरी १९६६ ई०को उनका देहान्त हो गया। भारत और पाकिस्तानके बीच स्थायी शांति स्थापित करनेके प्रयासमें लालबहादुर शास्त्रीने अपने प्राणोंकी बलि चढ़ा दी।

शास्त्री, श्रीनिवास (१८६९–१९४९)—इस शताब्दीके दूसरे दशकमें उदार (लिबरल) दलके प्रमुख नेता और प्रगलभ वक्ता। उन्होंने अपना जीवन शिक्षक रूपमें प्रारंभ किया और १९०७ ई०में वे 'सर्वेन्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी'के सदस्य बन गये। १९१३ ई०में उन्होंने भारतके राजनीतिक क्षेत्रमें प्रवेश किया और मद्रासकी विधान परिषद्के सदस्य हुए। अपनी प्रभावशालिनी वक्तृत्वशक्तिके कारण वे शीघ्र ही कांग्रेसी सदस्योंमें अग्रगण्य हो गये और उन्होंने रौलट ऐक्ट (दे०) का घोर विरोध किया। १९२० ई०में वे तत्कालीन राज्य परिषद्के सदस्य बने और इम्पीरियल कान्फ्रेंस तथा लीग आफ नेशन्सकी बैठकोंमें भारतके प्रतिनिधि रहे। उन्होंने अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोंकी समस्याओंको सुलझानेका गहन प्रयास किया और कुछ दिनोंतक वे

भारतीय सरकार द्वारा वहाँ एजेन्ट जनरलके रूपमें भी नियुक्त रहे। १९३५ से १९४० ई०तक वे अन्नामलाइ विश्वविद्यालयके उपकुलपति रहे। शास्त्री जी महान् लेखक थे और उनके अंग्रेजीमें रचित 'हिन्दू बालिकाओंके यौवनोपरान्त विवाह' (Post-Puberty Marriage of Hindu girls) नामक ग्रंथसे उनके समाज सुधार संबंधी विचारोंपर प्रकाश पड़ता है।

शाहजहाँ—दिल्लीके मुगल वंशका पाँचवाँ बादशाह (१६२८–५८), जिसका मूल नाम शाहजादा खुर्रम था। वह अपने पिता जहाँगीरके राज्यकालके प्रारम्भिक वर्षोंमें उसका विशेष कृपापात्र था, क्योंकि उसके (शाहजहाँ) बड़े भाई खुसरोसे जहाँगीर इस कारण अप्रसन्न था कि अकबरकी मृत्युके समय खुसरो दिल्लीकी गद्दीपर बैठनेके लिए उसका (जहाँगीरका) प्रतिद्वन्द्वी हो गया था। १६१२ ई०में शाहजादा खुर्रमने नूरजहाँ (दे०) के भाई आसफ खाँकी, जो मुगल दरबारका सबसे धनी और शक्तिशाली सरदार था, पुत्री अर्जमन्द बानू बेगम (दे०) से विवाह कर लिया। किन्तु जब उसके सबसे छोटे भाई शहरयारका विवाह, नूरजहाँकी पहले पतिसे उत्पन्न पुत्रीसे हो गया तब शाहजहाँ (खुर्रम) सम्राज्ञीका कृपापात्र न रहा, क्योंकि नूरजहाँ शहरयारको जहाँगीरका उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी। अब शाहजादा खुर्रम और जहाँगीरमें मनमुटाव हो गया। जब अक्तूबर १६२७ ई०में जहाँगीरकी मृत्यु हुई तब खुर्रम दक्षिण भारतमें और प्रायः विद्रोहकी स्थितिमें था। किन्तु उसके राजधानी आनेतक उसके श्वसुर आसफ खाँने उसके हितोंकी रक्षा की। फरवरी १६२८ ई०को शाहजहाँकी उपाधि धारण करके वह गद्दीपर बैठा। उसने १६५८ ई० (जिस वर्ष उसके विद्रोही पुत्र औरंगजेबने उसे सिंहासनसे च्युत कर दिया) तक राज्य किया। १६६६ ई०में बन्दीकी स्थितिमें उसकी मृत्यु हुई।

शाहजहाँ समस्त मुगल सम्राटोंमें सबसे अधिक वैभवशाली था। सिंहासनासीन होनेके शीघ्र ही बाद उसने १ करोड़ रुपयेकी लागतसे मयूर सिंहासन (दे०) बनवाया। उपरान्त उसने आगरेमें, जो १६४८ ई०तक उसकी राजधानी थी, जुम्मा मस्जिद और मोती मस्जिद, लाल किला, दीवाने आम, दीवाने खास तथा ताजमहलका निर्माण कराया। ताजमहलके निर्माणमें २२ वर्ष लगे। अपने ३० वर्षोंके शासन-कालमें उसने दक्षिण भारतमें मुगल साम्राज्यका विस्तार किया। अहमदनगर पूर्ण रूपमें साम्राज्यमें मिला लिया गया और बीजापुर तथा गोलकुण्डाको अधीनता स्वीकार करनेपर विवश होना पड़ा। साथ ही उसने १६३८ ई०में कंदहारपर पुनः अधिकार कर लिया, किन्तु १६४९ ई०में फारसने उसको पुनः अपने आधिपत्यमें कर लिया। यद्यपि शाहजहाँने तीन बार क्रमशः १६४९, १६५२ तथा १६५३ ई०में उसे पुनः जीतनेका प्रयास किया, पर वह असफल रहा।

१६४८ ई०में शाहजहाँने आगराके बदले दिल्लीको अपनी राजधानी बनाया और वहाँ भी दीवाने आम और दीवाने खास सहित एक भव्य महलका निर्माण कराया। दीवाने खास बेलबूटों आदिसे इतने सुन्दर रूपमें चित्रित है कि उसपर अंकित उक्ति "यदि पृथ्वीपर कहीं स्वर्ग है तो वह यही है, यही है, यही है।" पूर्ण रूपसे चरितार्थ होती है। किन्तु शाहजहाँके अन्तिम दिन बड़े ही दुःखमय थे। १६५७ ई०में वह गंभीर रूपसे अस्वस्थ हुआ और ऐसा जान पड़ा कि अन्त निकट है। शीघ्र ही उसके चार पुत्रों—दारा, शुजा, औरंगजेब और मुरादमें उत्तराधिकारका युद्ध प्रारम्भ हो गया। दाराको शाहजहाँका साहाय्य प्राप्त था और उधर औरंगजेब तथा मुराद इस समझौतेपर परस्पर एक हो गये कि साम्राज्यका दोनोंमें बँटवारा हो जायगा। शुजा ही अकेला लड़ता रहा। पहले उसे शाही सेनाओंने फरवरी १६५८ ई०में बहादुरपुरके युद्धमें परास्त किया, तदुपरान्त औरंगजेबसे जनवरी १६५९ ई०में खजुआके युद्धमें पराजित होकर वह इधर-उधर फिरा और १६६० ई० में अराकान (बर्मा) में उसकी मृत्यु हो गयी। जो शाही सेना औरंगजेब और मुरादके विरुद्ध भेजी गयी थी, उसे इन राजकुमारोंने अप्रैल १६५८ ई०में धरमटके युद्धमें पराजित किया। तदुपरान्त दारा स्वयं सामूगढ़के युद्धमें मई १६५८ ई०में औरंगजेब तथा मुरादकी सम्मिलित सेनाओं द्वारा परास्त होकर भागनेपर विवश हुआ। इसके बाद औरंगजेबने मुरादको बन्दी बना लिया, आगे बढ़कर सरलतासे आगरापर अधिकार कर लिया और जून १६५८ ई०में शाहजहाँको भी प्रायः बन्दी बना लिया। दूसरे ही महीने अनियमित रूपसे वह भारतका सम्राट् घोषित हुआ। अंततः दारा भी अप्रैल १६५९ ई०में देवराईके युद्धमें औरंगजेब द्वारा पराजित हुआ। उसे धोखेसे बन्दी बनाया गया और १६५९ ई०में ही उसे काफिर होनेके अभियोगमें मार डाला गया। तदुपरान्त जून १६५९ ई०में औरंगजेब विधिवत् आलमगीर की उपाधि धारण कर दिल्लीके सम्राट् रूपमें सिंहासनासीन हुआ।

दुर्भाग्यग्रस्त शाहजहाँ अपने पुत्रका बन्दी होकर किसी प्रकार अपना शेष कष्टमय जीवन व्यतीत करता रहा। १६६६ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी।

शाहजी–मराठोंकी स्वतंत्रताके संस्थापक सुप्रसिद्ध शिवाजीका पिता। वह चतुर तथा नीति-कुशल व्यक्ति था। उसने अहमदनगरके सुल्तानकी सेनामें सैनिकके रूपमें अपना जीवन प्रारम्भ किया, योग्यताके बलपर धीरे-धीरे उच्चपद प्राप्त किया तथा निजामशाही शासनके अन्तिम वर्षोंमें राज-निर्माताकी भूमिका निभायी। शाहजहां द्वारा अहमदनगरपर अधिकार कर लेनेके उपरान्त उसने १६३६ ई०में बीजापुरमें नौकरी कर ली तथा वहाँ भी यथेष्ट यश उपार्जित किया। कर्नाटकमें उसको एक विशाल जागीर प्राप्त हुई। जब उसके पुत्र शिवाजीने बीजापुरके राज्यमें धावा मारना प्रारम्भ किया, शाहजीपर अपने पुत्रको उकसानेका संदेह किया गया। वह ४ वर्षोंतक नजरबंद रखा गया और मुगल सम्राट् शाहजहाँके हस्तक्षेप करनेपर मुक्त हुआ। तदुपरान्त १६५९ ई०में उसने बीजापुरके सुल्तान और शिवाजीमें एक अस्थायी समझौता करा दिया, जिसके फलस्वरूप शिवाजीको निश्चिन्त होकर मुगल साम्राज्यके भू-भागोंपर आक्रमण करनेका अवसर प्राप्त हो गया। अपने पुत्रके उत्कर्षमें वह केवल इतना ही योगदान कर सका, जिसका नाम इतिहासमें अमर है।

शाहू–छत्रपति शिवाजीका पौत्र तथा शंभूजीका (दे०) पुत्र और उत्तराधिकारी। १६८९ ई०में औरंगजेबने शंभूजीको बंदी बनाकर उसका बध करा दिया। उस समय शाहू बालक था और वह बन्दी बनाकर मुगल दरबारमें लाया गया। उसका भी वास्तविक नाम शिवाजी था। औरंगजेबकी दृष्टिमें शिवाजी प्रथम कपटी थे। अतएव दोनोंमें भेद करनेके लिए उसने शाहूको साधु कहना प्रारंभ किया और यही 'साधु' शब्द अपभ्रंश रूपमें शाहू हो गया। १७०७ ई०में औरंगजेबकी मृत्युके उपरान्त सम्राट् बहादुरशाहने उसे मुक्त कर दिया। अधिक समय तक मुगल दरबारमें रहनेके कारण शाहूका दृष्टिकोण मराठों-सा न होकर मुगलों जैसा हो गया था। उसके महाराष्ट्र लौटते ही मराठे दो दलोंमें विभक्त हो गये। एक दल इसका स्वयंका था तथा दूसरा दल इसके चाचा राजाराम (दे०) के पुत्र शिवाजी तृतीयका समर्थक था।

शाहूने एक अत्यन्त सुयोग्य व्यक्ति बालाजी विश्वनाथको पेशवाके पदपर आसीन किया। उसकी सहायतासे शाहूने शिवाजी तृतीयको अपनी अधीनता स्वीकार करनेपर विवश किया जिससे वह मराठोंका एकछत्र शासक बन गया। बाजीराव प्रथम तथा बालाजी बाजीरावने, जो क्रमशः द्वितीय तथा तृतीय पेशवा हुए, शाहूजी की शक्ति एवं सत्ताका उत्तरी और दक्षिणी भारतमें विशेष विस्तार किया। वस्तुतः शाहूने पेशवाका पद बालाजी विश्वनाथके वंशजोंको पैतृक रूपमें दे दिया और स्वयं राज्यकार्यमें विशेष रुचि न लेकर शासनका समस्त भार पेशवाओंपर छोड़ दिया। इस नीतिके फलस्वरूप राजा नहीं अपितु पेशवा ही मराठा राज्यके सर्वेसर्वा बन गये। १७४९ ई०में शाहूकी मृत्युके बाद पेशवा ही मूल रूपसे मराठा साम्राज्यके शासक हो गये। शाहूने राजाराम और ताराबाईके पौत्रको अपना दत्तक पुत्र बनाकर उसका नाम राम राजा रखा था। परम्पराके अनुकूल राम राजाने सतारामें अपना दरबार स्थापित किया, किन्तु वह पेशवाके हाथोंकी कठपुतली ही सिद्ध हुआ।

शाह नवाज खाँ–एक तेजस्वी मुगल सरदार। उसकी पुत्री दिलराज बानू बेगमका १६३७ ई०में शाहजादा औरंगजेब (उपरान्त बादशाह) से विवाह हुआ था।

शाहनामा–फारसी भाषामें रचित एक महाकाव्य। इसकी रचना फ़िरदौसीने की थी, जिसको सुल्तान महमूद (दे०) का संरक्षण प्राप्त था।

शाहशुजा–अफगानिस्तानका शासक। उसने १८०३ से १८०९ ई० तक राज्य किया, किन्तु १८०९ ई०में ही पराजित होकर वह गद्दीसे हाथ धो बैठा। उसे बन्दी बनाकर कश्मीरमें रखा गया। रणजीत सिंह (दे०) ने उसे कारागारसे मुक्त किया। तदुपरान्त १८१३ से १८१५ ई० अर्थात् दो वर्षोंतक वह उसके दरबारमें रहा। रणजीत सिंहकी सक्रिय सहायता प्राप्त करनेके लिए शाहशुजाने कोहेनूर नामक प्रसिद्ध हीरा भी उसको भेंट किया। किन्तु अफगानिस्तानके सिंहासनको पुनः प्राप्त करानेमें रणजीत सिंहकी सहायता उपलब्ध होते न देखकर वह लाहौरसे भागकर लुधियाना पहुँचा और १८१६ ई०में वहाँ उसने अपनेको अंग्रेजोंके संरक्षणमें सौंप दिया। अंग्रेजों द्वारा उसे पेंशन भी मिली। १८३३ ई०में रणजीत सिंहकी सहायतासे उसने पुनः अपना सिंहासन प्राप्त करनेका असफल प्रयत्न किया, इस क्रममें महाराज रणजीत सिंहने पेशावरपर अधिकार कर लिया।

चार वर्षोंके उपरान्त १८३७ ई० में तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड आकलैण्डने उसी माध्यमसे अफगानिस्तानपर ब्रिटिश नियंत्रण स्थापित करनेका प्रयत्न

किया। उसके प्रोत्साहनसे शाहशुजाने १८३८ ई०में ब्रिटिश सरकार और रणजीत सिंहसे एक त्रिपक्षीय संधि की, जिसकी शर्तोंके अनुसार सिख और अंग्रेजोंने अफगानिस्तानके तत्कालीन शासक दोस्त मुहम्मदको हटाने तथा शाहशुजाको वहाँका सिंहासन प्राप्त करनेमें सहायता देनेका वचन दिया। इस प्रकार प्रथम अफगान-युद्ध (दे०) का सूत्रपात हुआ। तदनुसार अगस्त १८३९ ई० में भारतीयों और अंग्रेजोंकी सम्मिलित सेनाओंने बोलन दर्रेके मार्गसे शाहशुजाको अफगानिस्तानकी राजधानी काबुल पहुँचाया। किन्तु वहाँ अफगानोंने शाहशुजाको अपना शासक मानना अस्वीकार कर दिया। उन्होंने शाहशुजाके अंग्रेज संरक्षकोंके विरुद्ध १८४२ ई०में विद्रोह कर दिया और एक देशभक्त अफगानने शाहशुजाकी हत्या कर दी।

शिन्दे, दौलतराव—महादजी शिन्देका पौत्र, जो १७९४ ई० में उसका उत्तराधिकारी हुआ। नवयुवक दौलतराव महत्त्वाकांक्षी था और पेशवा बाजीरावको अपने नियंत्रणमें रखनेकी उसकी उत्कट अभिलाषा थी। इस प्रयासमें जसवन्तराव होल्कर उसका प्रतिद्वन्द्वी था। यद्यपि पेशवाको उसकी महत्त्वाकांक्षा रुचिकर न थी, फिर भी २५ अक्तूबर १८०२ ई० को होल्करके विरुद्ध पूनाके युद्धमें उसने शिन्देका साथ दिया। इसमें शिन्देकी पराजय हुई और इसके फलस्वरूप बाजीराव द्वितीयको भागकर बसई जाना पड़ा, जहाँ उसने अंग्रेजीके साथ एक सन्धि कर ली, जो बसईकी सन्धिके नामसे विख्यात है। इसके अनुसार पेशवाने अंग्रेजोंका आश्रित होना इस शर्तपर स्वीकार कर लिया कि वे उसको पुन: सिंहासनासीन करा देंगे। इस प्रकार पेशवाने केवल अपनी ही नहीं, बल्कि समस्त मराठोंकी स्वतंत्रता खो दी।

पेशवा बाजीराव द्वितीयकी इस संधिसे शिन्दे, भोंसला और होल्करका क्रुद्ध होना स्वाभाविक था और और शिन्देने भोंसलाके साथ मिलकर इसको अस्वीकार कर दिया। इसका परिणाम १८०३ ई० का द्वितीय मराठा-युद्ध (दे०) हुआ, जिसमें नवयुवक दौलतरावको दक्षिणमें आर्थर वेलेजली और उत्तरी भारतमें लार्ड लेकके हाथों थोड़े ही समयमें दिल्ली, असई, लासवाड़ी और आर गाँवके युद्धोंमें पराजित होना पड़ा। विवश होकर शिन्देको अंग्रेजोंसे ३० दिसम्बर १८२० ई० को संधि करनी पड़ी, जो सुर्जी अर्जुन गाँवकी संधिके नामसे प्रसिद्ध है। इसके अनुसार सिन्धियाको अंग्रेजोंका आश्रित होना स्वीकार करके ग्वालियर समेत बहुतसे भू-भाग देने पड़े और साथ ही उसे रापूतानेमें हस्तक्षेप करनेके अधिकारसे भी वंचित होना पड़ा। उपरांत दौलतराव शिन्देको ग्वालियर पुन: दे दिया गया और राजपूतानेकी राजनीतिमें हस्तक्षेप करनेका प्रतिबंध भी उठा लिया गया।

शिन्देने पुन: राजपूतानेके छोटे राज्योंको सताना प्रारंभ कर दिया, जिसमें स्वयं उसकी क्षति हुई। वह पेंढारियोंका संरक्षक बन गया, पेंढारी-युद्ध (दे०) के प्रारंभमें ही, जिसने आगे चल कर तृतीय मराठा-युद्ध (दे०) का रूप धारण कर लिया, शिन्देको पूर्णतया अशक्त बना दिया गया। फलस्वरूप वह इस युद्धमें किसी प्रकारसे न भाग ले सका, जिससे युद्धके अन्तमें अपने राज्यके अधिकांश भू-भागोंको अपने अधिकारमें बनाये रखनेमें समर्थ हुआ। उसने अपनी राजधानी ग्वालियर बनायी और अंग्रेजोंके आश्रितके रूपमें मृत्युपर्यन्त उन भूभागोंपर राज्य करता रहा।

शिन्दे, महादजी—रणोजी सिंधिया (दे०)का अवैध पुत्र और उत्तराधिकारी। पेशवा बाजीराव प्रथमके शासन कालमें वह छोटे पदसे पदोन्नति करते हुए उच्चपद तक पहुँच गया। १७६१ ई०के तृतीय युद्धमें उसने भाग लिया और घाव लगनेके कारण सदैवके लिए लँगड़ा हो गया। महाराष्ट्र वापस लौटकर उसने अपने दायित्वका निर्वाह इतनी कुशलतासे किया कि सरदारोंमें वही सबसे प्रमुख गिना जाने लगा। उसका मुख्य उद्देश्य पूना स्थित पेशवाको नाना फडनवीस (दे०)के संरक्षणसे हटाकर अपने संरक्षणमें लेना था। इस लक्ष्यमें तो वह सफल न हो सका, पर शीघ्र ही उत्तर भारतमें उसने अपनी प्रतिष्ठामें इतनी वृद्धि कर ली कि १७७१ ई० में शाह आलम द्वितीय (दे०) को दिल्लीके सिंहासनपर पुन: आसीन कर स्वयं उसका रक्षक बन गया।

तदुपरांत महादजी अंग्रेजों और मराठोंके बीच होनेवाले प्रथम मराठा-युद्ध (१७७५–८२)में मध्यस्थ बना रहा और सालबाईकी संधि (दे०)के द्वारा दोनों पक्षोंमें पुन: शान्ति स्थापित करा दी। इससे अंग्रेजोंमें भी उसकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी। अंग्रेजोंके सैनिक संगठनकी श्रेष्ठताको भली-भाँति परखकर उसने अपनी सेनाको भी काउन्ट दब्वांग सरीखे यूरोपीय पदाधिकारियोंकी सहायतासे पुनर्गठित किया और उसमें एक शक्तिशाली तोपखानेकी व्यवस्था करके उसे नियमित स्थायी सेनाका रूप दिया। इसके बलपर उसने राजपूत और मुसलमान शासकोंपर अपनी धाक जमा ली। १७९० ई० में पाटन नामक

स्थानपर राजपूतानेके इस्माइल बेगको, १७६१ ई० में मिर्थाके युद्धमें राजपूत शासकोंके सम्मिलित दलको और १७६२ ई०में लखेड़ीके युद्धमें होल्करको परास्त किया।

इसके पूर्व ही उसने नाम मात्रके सम्राट् शाह आलम द्वितीयसे पेशवाको 'वकीले मुतलक' अथवा साम्राज्यके उपप्रधानका खिताब दिलाया। १७६३ ई०में महादजी-के संयोजनसे ही पूनामें एक विशेष समारोहमें विधिवत यह उपाधि पेशवाको दी गयी। यद्यपि इससे पेशवाका केवल प्रतीकात्मक लाभ हुआ, तथापि महादजीके जीवन-में यह समारोह उसकी सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि थी। १७६४ ई० में महादजीकी मृत्यु हो गयी। (**ग्राण्ट डफ कृत मराठोंका इतिहास, जिल्द ३, (अंग्रेजी)।**

शिन्दे, रणोजी (१७२६–५०)–ग्वालियरके शिन्दे (सिन्धिया) वंशका प्रवर्तक। उसका जन्म साधारण मराठा परिवार-में हुआ, किन्तु पेशवा बाजीराव प्रथमके समयमें उसने इतनी योग्यता दिखायी कि मालवा प्रदेशको मराठा राज्यमें मिला लेनेके उपरांत, उसका एक भाग पेशवाने उसको प्रदान कर दिया। शिन्देने इसके बाद ग्वालियर-को ही अपना मुख्य केन्द्र बनाया।

शिताबराय–बिहारका एक प्रतिष्ठित व्यक्ति, जिसे राजाकी उपाधि मिली थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनीको दीवानी मिलनेके उपरान्त राजा शिताबराय दो उपनायबोंमेंसे एकके पदपर नियुक्त हुआ और उसे बिहारमें भूमिकर एकत्र करनेका कार्य-भार सौंपा गया। कम्पनीके निर्दे-शकोंकी आज्ञासे वारेन हेस्टिंग्सने १७७२ ई०में उसे पद मुक्त कर दिया। उसे बन्दी बनाकर उसपर गबनके आरोपमें अभियोग भी चलाया गया, परन्तु निर्दोष सिद्ध होनेपर उसे छोड़ दिया गया।

शिमला–एक पर्वतीय मनोरम स्थल तथा ब्रिटिश शासन कालमें भारत सरकारकी ग्रीष्म-कालीन राजधानी। १८१५–१६ ई०के गोरखा-युद्ध उपरांत यह स्थान आस-पासके भू-भागों सहित अंग्रेजोंके अधिकारमें आ गया। लार्ड एमहर्स्ट पहला गवर्नर-जनरल था, जिसने १८२७ ई० में शिमलामें गर्मियां बितायीं। स्वतंत्रता-प्राप्तिके उपरांत अब यह हिमाचल प्रदेशकी राजधानी है और भारत सरकारकी ग्रीष्म-कालीन राजधानी नहीं रहा है।

शिया सम्प्रदाय–मुसलमानोंका एक सम्प्रदाय है। शियाओं-की मान्यता है कि हजरतकी मृत्युके उपरांत उनके दामाद अली को, जिन्होंने हजरतकी एकमात्र पुत्री फ़ातिमासे विवाह किया था, खलीफा होना चाहिए था। अतएव शिया लोग प्रथम दो खलीफाओंको अनुचित उत्तराधि-कारी मानते तथा अपनी प्रार्थनाओंमें उनके नाम नहीं लेते हैं। उनका यह भी विश्वास है कि अलीके दो पुत्र इस्लामके हितमें शहीद हो गये। इसीलिए मुहर्रमके महीने-में उनकी शहादतपर शोक प्रकट करते हैं। इस सम्प्रदाय-का उद्भव फ़ारसमें हुआ, जहाँ अब भी शिया लोगोंकी अत्यधिक प्रधानता है। भारतमें अधिकांश मुसलमान सुन्नीमत (दे०) के ही अनुयायी हैं। दिल्लीके सभी शासकोंको छोड़कर बीजापुर और गोलकुण्डाके सुल्तान शिया थे और इसी कारण सुन्नी सम्राट् औरंगजेबने धर्मान्धताके वशीभूत होकर इन दोनों राज्योंको अपने साम्राज्यमें मिलाया। अवध और मुर्शिदाबादके नवाब भी शिया थे, यद्यपि अवध और बंगालकी अधिकांश मुसलमान जन-संख्या सुन्नी है।

शिव–त्रिदेवों में से एक। उनकी उपासना कई नामों तथा रूपोंमें की जाती है जिनमें शिवलिंगका पूजन सर्वाधिक प्रचलित है। शिवोपासना कितनी प्राचीन है यह निश्चय-पूर्वक कहना कठिन है, क्योंकि लिंगपूजनके प्रमाण मोहेन-जोदड़ो (दे०)के प्रागैतिहासिक सभ्यताके अवशेषोंमें प्राप्त हुए हैं। ऋग्वेदमें उनका उल्लेख रुद्रके नामसे हुआ है और रुद्रकी आकृति कतिपय कुषाण वंशी शासकों (दे०) के सिक्कोंपर पायी जाती है। गुप्तकालमें शैव मत निश्चय ही अत्यधिक प्रचलित था। मगधके पाल वंशके पाँचवें शासक नारायण पालने एक सहस्र शैव मंदिरोंका निर्माण कराया था।

शिवाजी–स्वतंत्र मराठा राज्यके संस्थापक। जन्म १६२७ ई० में पूनामें। वे शाहजी (दे०) तथा उनकी प्रथम पत्नी जीजाबाईके पुत्र थे। शाहजी बीजापुर राज्य-में पदाधिकारी थे। उन्होंने शिवाजीके जन्मके उपरान्त ही अपनी पत्नीको प्रायः त्याग दिया था। बालक शिवाजीका लालन-पालन उनके स्थानीय संरक्षक दादाजी कोणदेव तथा जीजाबाईके गुरु समर्थ स्वामी रामदासकी देखरेखमें हुआ। माता जीजाबाई तथा गुरु रामदासने कोरे पुस्तकीय ज्ञानके प्रशिक्षणपर अधिक बल न देकर शिवाजीके मस्तिष्कमें यह भावना भर दी कि देश, समाज, गौ तथा ब्राह्मणोंको मुसलमानोंके उत्पीड़नसे मुक्त करना उनका परम कर्तव्य है। शिवाजी स्थानीय मवाली लोगोंके बीच रहकर शीघ्र ही उनमें अत्यधिक सर्वप्रिय हो गये। उनके साथ आस-पासके क्षेत्रोंमें भ्रमण करनेसे उनको स्थानीय दुर्गों और दर्रोंकी भली प्रकार व्यक्तिगत जानकारी प्राप्त हो गयी। कुछ स्वामिभक्त मवाली लोगोंका एक दल बनाकर उन्होंने उन्नीस वर्ष

की आयुमें पूनाके निकट तोरणके दुर्गपर अधिकार करके अपना जीवन-क्रम आरम्भ किया।

बीजापुरके सुल्तानकी राज्य सीमाओंके अंतर्गत रायगढ़ (१६४६ ई०) चाकन, सिंहगढ़ और पुरन्दर सरीखे दुर्ग भी शीघ्र उनके अधिकारमें आ गये। १६५५ ई० तक शिवाजीने कोंकणमें कल्याण और जावलीके दुर्गपर भी अधिकार कर लिया। उन्होंने जावली-के राजा चंद्रदेवका बलपूर्वक वध करवा दिया। शिवाजी-की राज्यविस्तारकी नीतिसे क्रुद्ध होकर बीजपुरके सुल्तानने १६५६ ई० में अफजल खाँ नामक अपने एक वरिष्ठ सेनानायकको विशाल सैन्यबल सहित शिवाजी-का दमन करनेके लिए भेजा। दोनों पक्षोंको अपनी विजयका पूर्ण विश्वास नहीं था, अतः उन्होंने संधिवार्ता प्रारंभ कर दी। दोनोंकी भेंटके अवसरपर अफजल खाँ-ने शिवाजीको दबोच कर मार डालनेका प्रयत्न किया। किन्तु वे इसके प्रति पहलेसे ही सजग थे। उन्होंने अपने गुप्त शस्त्र बघनखाका प्रयोग करके मुसलमान सेनानीका पेट फाड़ डाला, जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गयी। तदुपरान्त शिवाजीने एक विकट युद्धमें बीजापुरकी सेनाओंको परास्त कर दिया। इसके बाद बीजापुरके सुल्तानने शिवाजीका सामना करनेका साहस नहीं किया।

अब उन्हें एक और प्रबल शत्रु मुगल सम्राट् औरंग-जेबका सामना करना पड़ा। १६६० ई० में औरंगजेबने अपने मामा शायस्ता खाँ नामक सेनाध्यक्षको शिवाजीके विरुद्ध भेजा। शायस्ता खाँने शिवाजीके कुछ दुर्गोंपर अधिकार करके उनके केन्द्र-स्थल पूनापर भी अधिकार कर लिया। किन्तु शीघ्र ही शिवाजीने अचानक रात्रिमें शायस्ता खाँपर आक्रमण कर दिया, जिससे उसको अपना एक पुत्र और अपने हाथकी तीन अँगुलियाँ गँवाकर अपने प्राण बचाने पड़े। शायस्ता खाँ वापस बुला लिया गया। फिर भी औरंगजेबने शिवाजीके विरुद्ध नये सेनाध्यक्षोंकी संरक्षामें नवीन सैन्यदल भेजकर युद्ध जारी रखा। शिवाजीने १६६४ ई० में मुगलोंके अधीनस्थ सूरतको लूट लिया, किंतु मुगल सेना-ध्यक्ष मिर्जा राजा जयसिंहने उनके अधिकांश दुर्गोंपर अधिकार कर लिया, जिससे शिवाजीको १६६५ ई० में पुरन्दरकी संधि करनी पड़ी। उसके अनुसार उन्होंने केवल १२ दुर्ग अपने अधिकारमें रखकर २३ दुर्ग मुगलों-को दे दिये और राजा जयसिंह द्वारा अपनी सुरक्षाके प्रति आश्वस्त होकर आगरामें मुगल दरबारमें उपस्थित होनेके लिए प्रस्थान किया।

मई १६६६ ई० में शाही दरबारमें उपस्थित होनेपर उनके साथ तृतीय श्रेणीके मनसबदारों सदृश व्यवहार किया गया और उन्हें नजरबन्द कर लिया गया। किन्तु शिवाजी चालाकीसे अपने अल्पवयस्क पुत्र शम्भुजी और अपने विश्वस्त अनुचरों सहित नजरबन्दीसे भाग निकले। संन्यासीके वेशमें द्रुतगामी अश्वोंकी सहायतासे वे दिसम्बर १६६६ ई०में अपने प्रदेशमें पहुँच गये। अगले वर्ष औरंगजेबने निरुपाय होकर शिवाजीको राजाकी उपाधि प्रदान की, और इसके बाद दो वर्षों तक शिवाजी और मुगलोंके बीच शान्ति रही। शिवाजीने इन वर्षोंमें अपनी शासन-व्यवस्था संगठित की। १६७० ई० में उन्होंने मुगलोंसे पुनः संघर्ष प्रारंभ किया और खानदेश-के कुछ भू-भागोंके स्थानीय मुगल पदाधिकारियोंको सुरक्षाका वचन देकर उनसे चौथ वसूल करनेका लिखित इकरारनामा ले लिया और दूसरी बार सूरतको लूटा। १६७४ ई० में रायगढ़के दुर्गमें महाराष्ट्रके स्वा-धीन शासकके रूपमें उनका राज्याभिषेक हुआ।

इस प्रकार मुगलों, बीजापुरके सुल्तान, गोआके पुर्तगालियों और जंजीरा स्थित अबीसीनियाके समुद्री डाकुओंके प्रबल प्रतिरोधके बावजूद उन्होंने दक्षिणमें एक स्वतंत्र हिन्दू राज्यकी स्थापना की। ६ वर्षोंके उप-रान्त १६८० ई० में जब उनकी मृत्यु हुई, उनका राज्य बेलगांवसे लेकर तुंगभद्रा नदीके तटतक समस्त पश्चिमी कर्नाटकमें विस्तृत था। इस प्रकार शिवाजी एक साधा-रण जागीरदारके उपेक्षित पुत्रकी स्थितिसे अपने पुरुषार्थ द्वारा ऐसे स्वाधीन राज्यके शासक बने, जिसका निर्माण स्वयं उन्होंने ही किया था। उन्होंने उसे एक सुगठित शासन-प्रणाली एवं सैन्य-संगठन द्वारा सुदृढ़ करके जन साधारणका भी विश्वास प्राप्त किया। जिस स्वतन्त्रता-की भावनासे वे स्वयं प्रेरित हुए थे, उसे उन्होंने अपने देशवासियोंके हृदयमें भी इस प्रकार प्रज्वलित कर दिया कि उनके मरणोपरान्त औरंगजेब द्वारा उनके पुत्रका वध कर देने, पौत्रको कारागारमें डाल देने तथा समस्त देश-को अपनी सैन्य-शक्ति द्वारा रौंद डालनेपर भी वे अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखनेमें समर्थ हो सके। उसीसे भविष्य-में विशाल मराठा साम्राज्यकी स्थापना हुई। शिवाजी यथार्थमें एक व्यावहारिक आदर्शवादी थे। वे शेरशाह और रणजीत सिंहसे भी महान थे तथा ओलिवर क्रामवेल एवं नेपोलियनसे भी उनकी महानताकी तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि वे दोनों क्षुद्र अहं भावनासे प्रेरित थे। (यदुनाथ सरकार द्वारा

लिखित शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स तथा एस० एन० सेन कृत छत्रपति शिवाजी)

शिवि–एक प्राचीनगण, जो झग जिलेके रेचना दोआबमें निवास करता था। ग्रीक इतिहासकारोंके अनुसार चमड़ेके वस्त्र पहनते थे तथा गदासे युद्ध करते थे। जब मकदूनियाके राजा सिकन्दरने उनके देशपर आक्रमण किया, तो उन्होंने यूनानियोंकी अधीनता स्वीकार कर ली।

शिशुनाग–पुराणोंके अनुसार मगधके उस राजवंशका प्रवर्तक, जिसमें गौतम बुद्ध और वर्धमान महावीरका समकालीन बिम्बिसार (दे०)नामक शासक हुआ। शिशुनागका काल सातवीं शताब्दी ई० पू० निर्धारित किया जाता है और इस राजवंशमें नौ शासक हुए। उनके नाम काकवर्ण, क्षेमधर्म, क्षेमजित्, बिम्बिसार अथवा श्रेणिक, अजातशत्रु, दर्शक, उदयी, अथवा उदयन, नंदिवर्द्धन और महानंदी थे, जिनमेंसे अंतिमको प्राय: ४७० ई० पू०में नंदवंशके संस्थापक महापद्म नंदने गद्दीसे उतारकर मार डाला। किन्तु श्री सिंहली अनुश्रुतियोंके अनुसार शिशुनागके वंशजोंने हर्यंक वंशके शासक बिम्बिसार और उसके उत्तराधिकारियोंके उपरांत शासन किया। (स्मिथ० तथा रायचौधरी०)

शिशु हत्याका उन्मूलन–ब्रिटिश भारतमें १७९५ ई०के बंगाल रेग्युलेशन द्वारा किया गया। इस आदेशके द्वारा कन्याओंको जन्मते ही मार डालना, ताकि बादमें उनके विवाहकी झंझट न पैदा हो, दंडनीय अपराध घोषित कर दिया गया। इसी रीतिसे १८०२ ई०के रेग्युलेशन ६ के द्वारा किसी बांझ स्त्रीके दीर्घकालके वैवाहिक जीवनके बाद एकसे अधिक संतानें उत्पन्न होनेपर पहली संतानको गंगा मैयाकी भेंट चढ़ा देनेकी प्रथा बंद कर दी गयी और इस कृत्यको दंडनीय अपराध घोषित कर दिया गया। ये सामाजिक कुरीतियाँ, विशेष रूपसे कन्याओंको जन्मते ही मार डालनेकी कुप्रथा देशी रियासतोंमें इसके बाद भी प्रचलित रही और उसका अंतिम रीतिसे उन्मूलन लार्ड हार्डिंज प्रथम (१८४४–४८ ई०)के शासनकालमें हुआ।

शुंग वंश–इसका आरम्भ लगभग १८५ ई० पू० में पुष्यमित्र (अथवा पुष्यमित्र) (दे०)से हुआ, जो अंतिम मौर्य राजा बृहद्रथका प्रधान सेनापति था। उसने उसे मार कर सिंहासनपर अधिकार कर लिया। उसने १८५ ई० पू० से १५१ ई० पू० तक राज्य किया तथा उत्तरी भारतके मगध साम्राज्यको लगभग अखंडित रखा। परन्तु उसे कई आक्रमणोंका सामना करना पड़ा। यदि यह मत स्वीकार न किया जाय कि कलिंगका राजा खारवेल उसका समसामयिक था और उसने उसे परास्त किया, तो भी यह निस्संदिग्ध है कि एक भारतीय यवन राजा, संभवत: मिनाण्डर (दे०)ने उसके राज्यपर आक्रमण किया, किन्तु उसने उस आक्रमणको विफल कर दिया। उसने कई युद्धोंमें विजय प्राप्त की और अपने राज्यकालमें दो बार अश्वमेध यज्ञ किया। इस प्रकार तीसरे मौर्य सम्राट् अशोक (दे०)के द्वारा बौद्ध धर्मके प्रचार-प्रसारके फलस्वरूप ह्रासको प्राप्त हुए हिन्दू धर्मको उसने पुनरुज्जीवित किया। विश्वास किया जाता है कि सुप्रसिद्ध संस्कृत वैयाकरण पतंजलि अश्वमेध यज्ञमें उसके पुरोहित थे।

पुष्यमित्रके बाद शुंगवंशमें नौ राजा हुए, जिनके नाम थे—अग्निमित्र, ज्येष्ठमित्र, वसुमित्र, भद्रक (जिसकी पहचान बेसनगरमें हेलियोडोरस (दे०)के द्वारा स्थापित गरुड़स्तम्भपर उल्लिखित काशीपुत्र भागभद्रसे की जाती है), तीन अज्ञातनामा राजा, फिर भागवत, जिसने बत्तीस वर्ष तक राज्य किया और अन्तमें देवभूति, जिसे उसके अमात्य वासुदेवने लगभग ७३ ई० पू०में सिंहासनसे उतार दिया और मार डाला। इस प्रकार शुंगवंशने १२० वर्ष तक राज्य किया।

शुजाउद्दौला (१७५४–७५)–अवधका तृतीय स्वतंत्र नवाब और वहांके द्वितीय नवाब सफदर जंगका पुत्र तथा उत्तराधिकारी। शुजाउद्दौलाको आलमगीर द्वितीय (१७५४-५९ ई०) (दे०) तथा शाह आलम द्वितीय (१७५९-१८०६ ई०) (दे०) नामक मुगल सम्राटोंसे वजीरका ओहदा मिला। किन्तु उसने अहमद शाह अब्दालीके आक्रमणके समय सम्राट्की कोई सहायता नहीं की, जब अब्दालीने १७५६ ई०में दिल्लीको लूटा, १७५९ ई०में पंजाबपर पूर्ण अधिकार कर लिया और मुगल सम्राट् तथा उसके सहायक मराठोंको १७६१ ई०में पानीपतके तृतीय युद्धमें परास्त किया। शुजाउद्दौलाने सदैव केवल अपने वंशके ही हितोंपर ध्यान दिया। १७६४ ई०में उसने बंगालसे भागकर सहायतार्थ आनेवाले वहांके नवाब मीर कासिम तथा शाह आलम द्वितीयसे कम्पनीके विरुद्ध एक संधि की, पर बक्सरके युद्धमें वह पराजित हुआ।

१७६५ ई०में उसने कड़ा और इलाहाबादके जिलों सहित ५० लाख रुपयोंकी धनराशि हरजानेके रूपमें देकर अंग्रेजोंसे संधि कर ली। साथ ही उसने अंग्रेजोंसे एक सुरक्षात्मक संधि भी की, जिसके अनुसार उसके राज्यकी सीमाओंके रक्षार्थ कम्पनीने उसे इस करारके

अनुसार सहायता देना स्वीकार किया कि सेनाका सम्पूर्ण व्यय भार उसे वहन करना होगा। १७७२ ई०में उसने रुहेलोंसे इस आशयकी संधि की कि यदि मराठोंने उनपर आक्रमण किया तो वह मराठोंको इधर न बढ़ने देगा और इसके बदलेमें रुहेले ४० लाख रुपयोंकी धन-राशि देंगे।

१७७३ ई०में मराठोंने रुहेलखण्डपर आक्रमण किया किन्तु वे बिना किसी युद्धके ही वापस लौट गये। अब शुजाउद्दौलाने रुहेलोंसे ४० लाख रुपयोंकी निर्धारित धनराशिकी मांग की और रुहेले उसे देनेमें आना-कानी करने लगे। अतएव शुजाउद्दौलाने कम्पनीके साथ बनारसकी प्रसिद्ध संधि कर ली, जिसकी शर्तोंके अनुसार ५० लाख रुपयोंके बदले उन्हें कड़ा और इलाहाबादके जिले पुनः प्राप्त हो गये तथा लखनऊमें कम्पनीकी एक पलटन रखनेके बदले उन्हें निश्चित धनराशि भी प्राप्त हुई। बनारसमें ही उसे बंगालके गवर्नर वारेन हेस्टिंग्स द्वारा यह आश्वासन मिला कि कम्पनी रुहेलोंसे ४० लाख रुपये प्राप्त करनेमें शुजाउद्दौलाकी सहायता अंग्रेज पलटन द्वारा करेगी, क्योंकि शुजाउद्दौलाकी दृष्टिमें रुहेलोंसे वह धनराशि उसको मिलनी थी। अतः १७७४ ई०में नवाबने अंग्रेज पलटनकी सहायतासे रुहेलखण्डपर आक्रमण किया, वहांके शासक हाफ़िज अहमद खांको मीरनपुर कटराके युद्धमें पराजित किया और रुहेलखण्डको अपने राज्यमें सम्मिलित कर लिया। दूसरे ही वर्ष शुजाउद्दौलाकी मृत्यु हो गयी।

शुजात खाँ—औरंगजेबका एक सेनापति, जिसकी नियुक्ति उत्तर-पश्चिमी सीमान्तपर हुई। १६७४ ई०में विद्रोही अफ्रीदियोंने कर्पा दर्रेके पास सेनाओं सहित उसका नाश कर दिया। इस दुर्घटनाके उपरांत सम्राट् औरंगजेबने पेशावरके निकट अपनी स्थितिपर विशेष ध्यान दिया और ऐसी व्यवस्था की, जिसके फलस्वरूप सीमाओंपर दीर्घकाल तक शांति स्थापित रही।

शुजा शाहजादा—शाहजहाँका द्वितीय पुत्र। वह विलासी प्रकृतिका था किन्तु अपने अन्य तीन भाइयोंकी भाँति ही उसमें भी महत्त्वाकांक्षा थी। १६५७ ई०में शाहजहाँके गंभीर रूपमें अस्वस्थ होनेपर शुजाने, जो उस समय बंगालका सूबेदार था, पिताका सिंहासन पानेके लिए सब भाइयोंके बीच अपना अधिकार घोषित किया। तदनुसार बंगालकी तत्कालीन राजधानी राजमहलमें अपनेको सम्राट् घोषित-कर सेना सहित वह दिल्लीकी ओर चल पड़ा, पर फरवरी १६५८ ई०में शाही सेना द्वारा बहादुरपुरके युद्धमें परास्त हो जानेपर वह पुनः बंगाल लौट आया। तदुपरांत धर्मट और सामूगढ़के युद्धोंमें दाराकी पराजयसे उसका साहस बढ़ा और उसने पुनः युद्धकी ठानी। किन्तु औरंगजेबके सेनापति, मीर जुमलाने उसे पराजित किया और वह अराकानकी ओर भाग गया, जहाँ वह सपरिवार काल-कवलित हुआ।

शूद्र—हिन्दुओंके चार वर्णोंमें से अन्तिम वर्ण। (दे०, जाति व्यवस्था)

शेर अफ़गन—फारसका एक निवासी, जिसका प्रारंभिक नाम अलीकुलीबेग इस्तझी था। वह अपने भाग्य के परीक्षार्थ मुगल दरबारमें आया। उसने सत्रह वर्षीय मेहरुन्निसासे विवाह किया। जहाँगीरके राज्यकालके प्रारंभिक दिनोंमें उसे बर्दवानकी जागीर तथा शेरअफगनकी उपाधि प्राप्त हुई। १६०७ ई०में उसपर बंगालके विद्रोही अफगानोंका गुप्त रीतिसे साथ देनेका सन्देह हुआ। अतएव जहाँगीरने बंगालके तत्कालीन सूबेदार कुतुबुद्दीन कोकाको शेर अफगनको बन्दी बनाकर दिल्ली भेजनेका आदेश दिया। किन्तु शेरअफगनने बन्दी बनाये जानेका प्रतिरोध किया। इस संघर्षमें कुतुबुद्दीन और शेरअफगन दोनों ही मारे गये। शेर अफगनकी विधवा पत्नी मेहरुन्निसा और उसकी एकमात्र पुत्रीको मुगल दरबारमें भेज दिया गया। चार वर्षोंके उपरान्त उसने जहाँगीरसे विवाह कर लिया तथा शेरअफगनसे उत्पन्न अपनी पुत्रीका विवाह जहाँगीर के सबसे छोटे पुत्र शहरमीरसे कर दिया।

शेरअली—दोस्त मुहम्मद (दे०) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी, जो १८६३ ई०में अफगानिस्तानका अमीर बना, किन्तु १८६६ ई० में काबुल और १८६७ ई०में कन्दहारसे खदेड़े जानेपर उसने हेरातमें शरण लीं। इसी बीच रूसने अपने साम्राज्यकी सीमाएँ कैस्पियन सागरके निकटके खानोंकी राज्यसीमाओं तक बढ़ाकर १८६५ ई० में ताशकन्द और १८६८ ई०में समरकन्दपर अधिकार कर लिया। अफगानिस्तानकी ओर साम्राज्य विस्तारसे शेरअलीको रूसके भावी मनसूबोंपर संदेह हुआ, फलतः १८६९ ई०में उसने भारत सरकारके तत्कालीन वाइसराय लार्ड मेयोसे अम्बालामें भेंट की। उसने वाइसरायके सम्मुख कुछ ऐसे प्रस्ताव रखे जिनसे अफगानिस्तान में स्वयं अंग्रेजोंकी स्थिति सुदृढ़ हो जाती और वे भविष्यमें अफगानिस्तान-की सीमाओंकी ओर रूसी विस्तार रोकनेमें समर्थ होते। किन्तु लन्दनके आदेशपर उसने इस प्रकारकी कोई सन्धि करना स्वीकार न किया।

लगभग १८७० ई० से तुर्किस्तानमें नियुक्त रूसी गवर्नर-जनरल काउफमैनने शेरअलीसे पत्र व्यवहार प्रारंभ कर दिया। रूसियों द्वारा १८७३ ई०में खीव (कीव) पर अधिकार कर लेनेपर शेरअलीने भारत सरकारसे पुनः एक निश्चित संधि करनेकी प्रार्थना की, किन्तु उसे पुनः अस्वीकार कर दिया गया। लेकिन १८७६ ई०में जब लार्ड लिटन (१८७६–८०) भारतका वाइसराय हुआ, तब भारत सरकारने अपनी अफगान नीतिमें अचानक परिवर्तन कर दिया और शेरअलीसे एक निश्चत सन्धि करनेका प्रस्ताव रखा, जिसमें प्रतिबन्ध यह था कि अमीर हेरातमें अंग्रेज रेजीडेण्ट रखना स्वीकार कर ले। शेरअली अफगानोंकी मनोवृत्तिसे भली-भाँति परिचित था। उसे पूरा विश्वास था कि अपने राज्यमें अंग्रेज रेजीडेण्ट रखनेका सुझाव मान लेनेसे अफगान प्रजा पूर्णतः असंतुष्ट हो जायगी और उसकी अपनी गद्दी भी संकटमें पड़ जायगी। अतः उसने अंग्रेजोंका उक्त प्रस्ताव ठुकरा दिया।

इसी बीच १८७८ ई०में बर्लिन कांग्रेसमें अंग्रेजोंकी नीतिसे चिढ़कर रूसने जनरल स्टोलिटॉफ (स्तोलियताफ)-के नेतृत्वमें एक दूतमण्डल अफगानिस्तान भेजा। शेरअलीको विवश होकर उसका स्वागत करना पड़ा। अब लार्ड लिटन (प्रथम) की सरकारको एक और कारण मिल गया कि वह अंग्रेजोंके दूतमण्डलको भी अपने यहाँ बुलावे। किन्तु शेरअली द्वारा इसे अस्वीकार करनेपर नवम्बर १८७८ ई०में ब्रिटिश सरकारने उसके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। शेरअली अंग्रेजोंकी विशाल सेनाको रोकनेमें असमर्थ रहा और वह रूसी तुर्किस्तानकी ओर भागा, जहाँ फरवरी १८७९ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार शेरअली अपने दो प्रबल पड़ोसियों रूस और इंग्लैण्डकी निर्दय महत्त्वाकांक्षा एवं स्वार्थपूर्ण नीतियोंका शिकार बन गया।

शेर अली खाँ—अफगानिस्तानका एक सरदार। १८७९ ई०-में भारतकी अंग्रेज सरकारने उसको पश्चिमी अफगानिस्तानका स्वतंत्र शासक नियुक्त कर दिया। उसका मुख्यालय कन्दहार बना। वह १८८१ ई० तक वहाँका शासक रहा। उसी वर्ष भारत सरकारके दबावपूर्ण अनुरोधके कारण उसने गद्दी छोड़ दी और भारतमें आकर रहने लगा।

शेर खाँ सूर (१४७२–१५४५)—भारतीय इतिहासमें शेरशाह नामसे विख्यात। वह १५३९ से १५४५ ई० तक भारतका बादशाह रहा। उसने सूरवंशकी नींव डाली तथा १५५६ ई० तक उत्तर भारतपर राज्य किया। उसका प्रारंभिक नाम फरीद खाँ था। वह बिहार प्रान्तमें सहसराम (सासाराम) के एक साधारण अफगान जागीरदारका पुत्र था। पिताकी जागीरमें ही उसे शासन-प्रबन्धका प्रशिक्षण मिला, किन्तु पिताके उदासीन व्यवहारके कारण शेर खाँ घर छोड़कर अपने भाग्यकी परीक्षाके लिए चल पड़ा। १५२२ ई०में उसने बहार खाँ लोहानीके यहाँ नौकरी कर ली और अकेले ही एक शेरको मार देनेके फलस्वरूप बहार खाँसे शेरखाँकी उपाधि प्राप्त की। इसके उपरान्त उसने बाबरके यहाँ सेवाकार्य प्रारंभ किया। बाबरने उसे उसकी पैतृक सहसराम (सासाराम) की जागीरदारी देकर पुरस्कृत किया।

बिहार लौट कर शेर खाँ ने वहाँके तत्कालीन शासक जलाल खाँ के यहाँ नौकरी कर ली तथा चुनारके शासक ताज खाँकी विधवासे विवाह करके चुनारका महत्त्वपूर्ण दुर्ग भी प्राप्त कर लिया। १५३१ ई०में जब हुमायूँने चुनारपर आक्रमण किया, शेर खाँ ने चतुरतासे अपनी रक्षा की और दुर्गका स्वामित्व भी सुरक्षित रखा। दो वर्षोंके बाद उसने बंगालके शासक महमूद शाहको सूरजगढ़के युद्धमें पराजित किया और इस प्रकार उसका बिहारपर एक-छत्र अधिकार हो गया। उपरान्त शेरखाँने बंगालपर दो और आक्रमण किये। इसके फलस्वरूप १५३७ ई०में हुमायूँने उसपर आक्रमण कर दिया। शेर खाँने चतुराईसे हुमायूँको बंगाल तक अपना पीछा करने दिया और भारी रणकुशलताका परिचय देते हुए १५३९ ई०में बक्सरके निकट चौसा नामक स्थलपर हुमायूँको बुरी तरह परास्त किया।

हुमायूँने बड़ी कठिनतासे अपने प्राणोंकी रक्षा की और शेर खाँ कन्नौजसे लेकर आसाम तक पूर्वी भारतका वास्तविक शासक बन गया। अब उसने शेरशाहकी उपाधि धारण करके अपनी स्वतंत्र सत्ताकी घोषणा कर दी। अगले वर्ष शेरशाहने हुमायूँको कन्नौजके निकट बिलग्राम नामक स्थलपर पुनः पराजित किया और दिल्लीकी ओर बढ़कर पंजाबपर भी अधिकार कर लिया। १५४२ ई०में मालवा और १५४३ ई०में रायसीनपर अधिकार करके उसने शीघ्र ही सिन्ध, मुल्तान और १५४४ ई०में मारवाड़पर भी आधिपत्य जमाया, किन्तु कालिंजरके दुर्गपर अधिकार करते समय बारूदमें विस्फोट हो जानेके फलस्वरूप उसकी मृत्यु हो गयी। यद्यपि दुर्गपर उसका अधिकार हो गया, इस प्रकार इतने थोड़े दिनोंमें ही शेरशाहने मुगलोंको दिल्लीसे खदेड़ बाहर किया और भारतका सम्राट् बन बैठा।

शेरशाह केवल वीर योद्धा ही नहीं, कुशल प्रशासक भी था। अपने केवल ५ वर्षोंके अल्प शासनकालमें उसने कई विवेकपूर्ण प्रशासकीय सुधार किये। उसने अपने समस्त साम्राज्यको ४७ सरकारों अथवा जिलोंमें बाँटा और इन सरकारोंका परगनोंमें उपविभाजन किया। उसने भूमि-सर्वेक्षणके उपरान्त करव्यवस्थामें सुधार किया और कृषकोंसे सीधे भूमि-कर वसूलनेकी व्यवस्था की। साथही कृषकोंसे सीधे भू-स्वामित्व सम्बन्धी सनदें (कबूलियात) दीं, जिनमें उनके अधिकारों और भूमि-कर संबंधी और दायित्योंका विवरण रहता था।

उसने मुद्रा सम्बन्धी सुधार भी किये और टंक अथवा रुपयेका अनुपात ताँबेके ६४ पैसोंमें निर्धारित किया। चुँगी-व्यवस्थामें सुधार कर तथा अनेक अनुचित करोंको हटाकर उसने वाणिज्य एवं व्यवसायको प्रोत्साहन दिया तथा मुख्य सड़कोंके निर्माणसे यातायातकी सुविधाओंमें वृद्धि करके घोड़ोंद्वारा डाक पहुँचानेकी व्यवस्था चलायी। उसने देशसे शांति और सुव्यवस्था सुदृढ़ करनेके लिए स्थानीय अपराधोंकी छानबीन करके अपराधियोंको दंडित करनेका भार गाँवोंपर छोड़ दिया। उसका न्याय पक्षपात-रहित होता था तथा हिन्दुओंके प्रति उसकी नीति उदार थी। ब्रह्मजीत गौड़ नामक एक हिन्दू उसका सेनाध्यक्ष भी था। अंततः सैन्य संगठनमें भी उसने कई महत्त्वपूर्ण सुधार किये, जिससे सैनिकोंकी सीधी भरती होने लगी और उन्हें नगदी वेतन दिया जाने लगा। फलतः सेनाका संगठन अयोग्य और निष्क्रिय जागीरदारोंपर आधारित न होकर सीधे सम्राट्के नियंत्रणमें आ गया। शेरशाह द्वारा किये गये अनेक प्रशासकीय सुधारोंको मुगल सम्राट् अकबरने भी अपनाया।

शेर सिंह–पंजाबके महाराज रणजीत सिंहका पुत्र। रणजीत सिंहके उपरान्त उसका ज्येष्ठ पुत्र खड़क सिंह और उसके बाद दूसरा पुत्र नौनिहाल सिंह शासक हुआ, जिसकी एक दुर्घटनामें मृत्यु हो जानेसे १८४० ई०में शेरसिंह सिंहासनासीन हुआ। उसने तीन वर्षोंतक राज्य किया। १८४३ ई०में उसकी हत्या कर दी गयी।

शेरसिंह–छत्तरसिंह नामक एक सिख सरदारका पुत्र। प्रथम सिख-युद्ध (दे०) में जब अंग्रेजोंने सिखोंको पराजित किया, वह अंग्रेजोंका विश्वासपात्र बन गया। मुलतानके शासक मूलराज द्वारा विद्रोह कर देनेपर १८४८ ई०में वह उसका दमन करनेके लिए भेजा गया, परन्तु मुलतान पहुँचकर वह विद्रोही सिखोंसे मिल गया। इस प्रकारके दलबदलसे कई सिख सरदार उसके पक्षमें हो गये और मूलराजका विद्रोह द्वितीय सिख-युद्ध (दे०) का कारण बना। १६ नवम्बर १८४८ ई०को शेरसिंह और अंग्रेजोंके मध्य रामनगर नामक स्थानपर अनिर्णीत युद्ध हुआ। जनवरी १८४९ ई०के चिलियानवालाके प्रसिद्ध युद्धमें भी शेरसिंहने भाग लिया, किन्तु वह सिख सेनाका सफल नेतृत्व न कर सका। परिणाम यह हुआ कि वह अनिर्णीत युद्ध अंग्रेजोंकी विजयमें परिणत हो गया। २१ फरवरी १८४९ ई०को गुजरातके युद्धमें सिखोंकी अंतिम बार पराजय होनेके उपरान्त शेरसिंहने अंग्रेजोंके सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया और उसके शेष दिन एक प्रकारसे अज्ञातवासमें कटे।

शैलेन्द्र वंश–इस वंशका आरम्भ दक्षिण-पूर्व एशियामें आठवीं शताब्दीमें हुआ और इस वंशके शासक तेरहवीं शताब्दी तक वहाँ राज्य करते रहे। इस वंशके शासक जो भारतीयोंकी संतान थे न केवल समस्त मलय प्रायद्वीपपर, वरन् सुमात्रा, जावा, बाली और बोर्नियो सहित समस्त मलय द्वीपसमूहपर राज्य करते थे। अरब यात्रियोंने उनकी शक्ति, सम्पत्ति और ऐश्वर्यका वर्णन करते हुए लिखा है कि उन्हें महाराज पुकारा जाता था। शैलेन्द्र शासक बौद्ध धर्मके महायान सम्प्रदायके अनुयायी थे। उनके द्वारा निर्मित स्तूपों और विहारोंमें जावामें स्थित बोरोबुदुरका महाचैत्य विशेष उल्लेखनीय है।

शैशुनाग वंश–पुराणोंके अनुसार शैशुनाग वंशका प्रवर्तक शिशुनाग था, जो सातवीं शताब्दी ई०पू० मगधमें राज्य करता था। आधुनिक विद्वानोंके अनुसार इस वंशमें दस राजा हुए जो क्रमशः शिशुनाग, काकवर्णी, क्षेमधर्मा, क्षेमजित्, बिम्बिसार अथवा श्रेणिक, अजातशत्रु अथवा कूणिक, दर्शक, उदयी अथवा उदयन, नन्दिवर्धन और महानन्दी नामसे विख्यात हुए। इनमेंसे प्रथम चार राजाओंका शासन काल प्रायः ६५० ई०पू०से ५२२ ई०तक था, किन्तु उनके शासन-कालकी किसी विशेष उल्लेखनीय घटनाका विवरण उपलब्ध नहीं है। पुराणोंकी सूचीके अनुसार पाँचवें शासक बिम्बिसार (५२२ ई० पू० से ४९४ ई० पू०) ने शैशुनाग वंशकी शक्ति एवं सत्तामें विशेष वृद्धि की। बिम्बिसार और उसके पुत्र अजातशत्रुके शासनकालमें मगध उत्तरी भारतका सबसे महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली राज्य बन गया। आठवें शासक उदयी अथवा उदयन (४४३ ई०पू०से ४१० ई०पू०) ने कुसुमपुर नामक नगरकी स्थापना की, जो आगे चलकर सुप्रसिद्ध पाटलिपुत्र नामसे विख्यात हुआ। दसवें शासक महानन्दीका लगभग ३६२ ई०पू० में महापद्मने बध कर

दिया तथा मगधमें नंद वंशकी नींव डाली।

किन्तु पुराणोंका उपर्युक्त विवरण बौद्ध तथा जैन धर्मग्रंथोंके विवरणोंके सर्वथा विपरीत है। उनके अनुसार शैशुनाग वंशकी स्थापना हर्यंक वंशके उपरान्त हुई और इसमें केवल शिशुनाग, कालाशोक तथा कालाशोकके दस पुत्र ही शासक हुए। कुछ बौद्ध ग्रंथोंमें शिशुनाग, कालाशोक, काकवर्ण, क्षेमधर्मा और क्षेमजित् नामक चार शासकोंका उल्लेख बिम्बिसारके उपरान्त आया है। इस मतके अनुसार शिशुनागके वंशमें छः शासक हुए, यथा शिशुनाग (४१३–३९५ ई०पू०), काकवर्ण अथवा कालाशोक और कालाशोकके पुत्र (३९५–३४५ ई०पू०)। कालाशोकके राज्यकालमें ही महापद्मनन्दने उसकी हत्या करके शिशुनाग वंशकी समाप्ति कर दी और नन्दवंशकी स्थापना की। (शिशुनाग वंशकी स्थापना आधुनिक शोधोंके अनुसार हर्यंक वंशके उपरान्त ही हुई और इस संबंधमें जैन तथा बौद्ध ग्रंथ अधिक प्रामाणिक जान पड़ते हैं।) —सं०

शोर, सर जान—१७९३ से १७९८ ई० तक भारतका गवर्नर-जनरल। उसने सर्वप्रथम बंगालमें कम्पनीकी सेवामें निम्न पदाधिकारीके रूपमें जीवन प्रारम्भ किया और जब लार्ड कार्नवालिस गवर्नर-जनरल था, तभी वह पदोन्नति करके कलकत्ता कौंसिलका सदस्य बन गया। उसने शासन-सुधारमें कार्नवालिसकी विशेष सहायता की और गवर्नर-जनरल बननेपर उसने कार्नवालिसके प्रशासकीय सुधारोंको कार्यान्वित किया। उसने साधारणतया देशी राज्योंके आंतरिक मामलोंमें हस्तक्षेप न करनेकी नीति अपनायी। निजाम और मराठोंके युद्धमें भी वह तटस्थ रहा, जिसके फलस्वरूप १७९५ ई०के कर्दलाके युद्ध (दे०) में निजामकी पराजय हुई। अवधके मामलोंमें उसने हस्तक्षेप करके, वहाँके नवाबको नयी संधि करनेपर विवश किया, जिसके फलस्वरूप कम्पनीका इलाहाबादपर अधिकार हो गया।

शौकत अली, मौलाना—भारतीय मुसलमानोंके नेता और प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ। जन्म-वाराणसीके निकट रामपुरमें १८७३ ई०में। उन्होंने अपना जीवन-क्रम भारतीय अंग्रेज सरकारके आबकारी विभागसे प्रारम्भ किया। १५ वर्षोंकी नौकरीके उपरान्त वे राजनीतिक क्षेत्रमें उतर आये और प्रथम महायुद्धमें सरकारने उन्हें नजरबन्द रखा। छूटनेपर अपने भाई मुहम्मद अलीके साथ उन्होंने १९१९–२० ई०में खिलाफत आन्दोलनका नेतृत्व किया। वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके भी सदस्य हुए और असहयोग आन्दोलनमें भाग लिया। उपरान्त उन्होंने कांग्रेससे त्यागपत्र दे दिया और मुस्लिम लीगके सदस्य बनकर उसीके प्रतिनिधिके रूपमें गोलमेज सम्मेलन (दे०) में भाग लिया। १९३४ ई०में भारतीय केन्द्रीय असेम्बलीके सदस्य चुने गये, किन्तु इसके बाद ही मुहम्मद अली जिन्ना (दे०) मुस्लिम राजनीतिक क्षितिज पर छा गये।

शौकतजंग—बंगालके नवाब अलीवर्दी खाँका दौहित्र और अलीवर्दी खाँ (दे०) के उत्तराधिकारी सिराजुद्दौला (दे०) का चचेरा भाई। अप्रैल १७५६ ई०में नवाब अलीवर्दी खाँकी मृत्युके समय वह पूर्णिया (पूर्निया) का सूबेदार (राज्यपाल) था। उसने बंगालकी सूबेदारीपर सिराजुद्दौलाके हकको चुनौती देते हुए कुछ असंतुष्ट सरदारोंके समर्थनसे तत्कालीन मुगल सम्राट्से सूबेदारीकी सनद अपने नाम प्राप्त कर ली। किन्तु स्वत्व जमानेके पूर्व ही सिराजुद्दौलाने आक्रमण कर उसे परास्त किया और १७५६ ई०में मार डाला।

श्रवण बेलगोला—मैसूरमें स्थित एक धार्मिक स्थल। जैन अनुश्रुतियोंके अनुसार सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य (दे०) सिंहासन त्याग कर यहाँ चला आया और यहीं उसने सल्लेखना व्रत करके (जैन समाधिमरणकी विधिसे) प्राण त्याग दिये।

श्रावस्ती—प्राचीन कोशल राज्य (दे०) की राजधानी। गौतम बुद्ध यहाँ कई बार पधारे थे और नवीं शताब्दी तक यह स्थान एक प्रसिद्ध नगर रहा। यह राप्ती नदीके तटपर स्थित था और आजकल इसकी पहचान उत्तर प्रदेशके आधुनिक सहेट-महेट ग्रामोंसे की जाती है।

श्रीनगर—गढ़वालके भूतपूर्व राजाकी राजधानी। यहाँके राजाने १६५८ ई०में दाराके सबसे बड़े पुत्र शाहजादा सुलेमान (दे०)को शरण दी थी।

श्रीनगर—कश्मीर राज्यकी राजधानी।

श्रीरंगम्—त्रिचनापल्लीके निकट स्थित। प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य रामानुज (दे०) बीचमें कुछ समयको छोड़कर मृत्युपर्यंत यहीं रहे।

श्रीराम वाजपेयी—गोपालकृष्ण गोखले (दे०) द्वारा स्थापित सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाइटीके सदस्य। उन्होंने १९१४ ई०में 'सेवा समिति ब्वाय स्काउट एसोसियेशन' की स्थापना लार्ड बेडेन पावेल द्वारा इंग्लैण्डमें संगठित ब्वाय स्काउट एसोसियेशनके आधारपर की। सेवा समितिका उद्देश्य ब्वाय स्काउट एसोसियेशनका पूरा भारतीयकरण करना था और उन्हें इस उद्देश्यको पूरा करनेमें सफलता मिली थी।

श्रीलंका–भूगर्भशास्त्रीय दृष्टिसे भारतीय प्रायद्वीपका दक्षिणी भाग, जो बादमें उससे अलग हो गया। भारतसे इसके घनिष्ठ सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे हैं, किन्तु राजनीतिक अस्तित्व अलग रहा है। भारतीय साहित्यके विभिन्न कालोंमें इसका वर्णन विभिन्न नामोंसे हुआ है। पालि ग्रंथों और अशोकके अभिलेखोंमें इसका उल्लेख 'ताम्र-पर्णी'के नामसे हुआ है। प्राचीन लेखकोंने इसे 'तपोवन' कहकर पुकारा है। रामायणमें इसे लंका कहा गया है, जिसका शासक राक्षसराज रावण था और आधुनिक यूरोप-वासियोंने इसे 'सीलोन'की संज्ञा दी, जो श्रीलंका शब्दका अपभ्रंश है। संस्कृतमें इसका एक नाम सिंहल है और बंगालमें प्रचलित अनुश्रुतिके अनुसार यह नाम विजयसिंह नामक एक निर्वासित बंगाली राजकुमारके आधारपर रखा गया है, जिसने इस द्वीपपर विजय प्राप्त की थी। इतिहासमें इस घटनाका कोई प्रमाण नहीं मिलता है।

श्रीलंका और भारतके बीच सदैव घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध रहे हैं। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दीमें इन दोनों देशोंमें उस समय सांस्कृतिक सम्बन्ध भी प्रगाढ़ हो गये जब मगध सम्राट् अशोकके पुत्र या भाई महेन्द्रने श्रीलंका-के नरेश देवानाम् प्रिय तिस्स (तिष्य)को सपरिवार बौद्ध धर्मकी दीक्षा दी। इसके बादसे श्रीलंका बौद्ध धर्मका प्रमुख केन्द्र बन गया। यहींपर ८० ई० पू०में नरेश वत्तगमणिके शासनकालमें बौद्धोंके धर्म-ग्रंथ 'त्रिपिटिक'-को पहली बार लिपिबद्ध किया गया। अनुरुद्धपुर (अनुराधापुर)से बौद्ध धर्मका प्रचार और प्रसार न केवल सम्पूर्ण श्रीलंकामें वरन्- दक्षिण-पूर्व एशियाके विशाल भू-भागमें हुआ। यहाँ तक कि भारतके बौद्ध विद्वान् भी अपना अध्ययन पूरा करनेके लिए श्रीलंका जाया करते थे। राजनीतिक परिवर्तनोंके साथ स्थिति बदलती रही; ईसवी सन्‌की चौथी शताब्दीमें श्रीलंकाके नरेश मेघवर्माके भारतके समकालीन यशस्वी सम्राट् समुद्रगुप्त (गुप्तकाल)के साथ सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध थे। उसने बोध गयामें श्रीलंकाके तीर्थयात्रियोंके निवासार्थ एक बिहार बनानेके लिए समुद्रगुप्तसे अनुमति प्राप्त की थी। छठीं शताब्दीके आरम्भमें पल्लव नरेश सिंह विष्णु और उसके पौत्र नरसिंह वर्माने श्रीलंकापर शासन किया। इसके बाद फिर दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दियोंमें चोलवंशके नरेश राजराज और राजेन्द्र प्रथमने श्रीलंका-पर शासन किया, लेकिन श्रीलंका शीघ्र ही पुन: स्वतंत्र हो गया। कुछ समय बाद श्रीविजय (दे०)के शैलेन्द्र राजाओंने इसपर हमला कर दिया, लेकिन श्रीलंकाने हमलेको विफल कर दिया।

श्रीलंकापर मुस्लिम शासकोंका आधिपत्य कभी नहीं रहा। ऐसा प्रतीत होता है पन्द्रहवीं शताब्दीके आरम्भमें उसपर विजयनगर नरेश देवराय द्वितीय (१४२५-४७ ई०) का शासन स्थापित हो गया था, किन्तु उसने शीघ्र ही फिर स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। किन्तु सोलहवीं शताब्दी-के मध्यमें श्रीलंकाके अधिकांश समुद्र तटवर्ती भू-भागपर पुर्तगालियोंका आधिपत्य हो गया, जो १५१० ई०में गोआमें अपने पैर जमा चुके थे। १६५८ ई०में पुर्त-गालियोंको खदेड़ कर डच लोग श्रीलंकामें आ डटे। नेपोलियनसे युद्धके दौरान अंग्रेजोंने डचोंको वहाँसे भगा दिया। वियना-संधि (१८१५)के अन्तर्गत श्रीलंका ब्रिटिश साम्राज्यका अंग हो गया। उसका शासन भारत-के अधीन रखा गया। १९४७ ई०में भारतके स्वाधीन हो जानेपर भी श्रीलंका ब्रिटिश साम्राज्यका अंग बना रहा। बादमें उसे भी स्वाधीनता प्रदान कर दी गयी।

श्रीविजय–मलय द्वीपपुंजमें भारतीयोंने जो राज्य स्थापित किया था, उसका भी नाम और उसके एक नगरका भी नाम। इसकी पहचान अब सुमात्राके पलेमबांग नगरसे की जाती है। (**देखिये, 'प्रवासी भारतीय'**)।

श्रेणिक–मगधके सम्राट् बिम्बिसार (दे०)का दूसरा नाम।

श्वेत विद्रोह–भारतमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके गोरे सैनिकों-के विद्रोहको इस नामसे पुकारा जाता है। राबर्ट क्लाइव जब दूसरी बार बंगालका गवर्नर बनकर आया तो उसने कम्पनीके डाइरेक्टरोंके आदेशसे भारतमें कम्पनीकी सेवा-में नियुक्त अंग्रेज सैनिकोंका भत्ता घटा दिया। इसपर उन्होंने विद्रोह कर दिया। क्लाइवने बड़ी तत्परता और दृढ़तासे इस विद्रोहका दमन कर दिया।

श्वेत हूण–हूणोंकी एक शाखा, जो ५ वीं शताब्दीके मध्यमें वंक्षु (आक्सस) नदीकी घाटीमें आ बसी थी। इन लोगोंने ४५५ ई०में भारतके गुप्त साम्राज्यपर आक्रमण किया, लेकिन तत्कालीन सम्राट् स्कन्दगुप्त (४५५–६७ ई०) ने उन्हें खदेड़ दिया। ४८४ ई०में वे फारसको रौंदनेमें सफल हो गये और अगले वर्षोंमें उन्होंने काबुल और कंधारपर अधिकार कर लिया। इतना ही नहीं, वे तोरमाणके नेतृत्वमें आर्यावर्त तक घुस आये। उसके पुत्र मिहिरगुल (दे०)ने छठीं शताब्दी ई०के आरम्भमें गुप्त साम्राज्यको उखाड़ फेंका और पंजाब स्थित शाकल (सियालकोट)को राज-धानी बनाकर उत्तरी भारतके एक भागपर शासन करने लगा। हूणोंका शासन अत्यंत नृशंस और बर्बर था।

५२८ ई०में मालवाके राजा यशोधर्मा (दे०) तथा गुप्त वंशके सम्राट् बालादित्यके नेतृत्वमें कई राजाओंने मिलकर मिहिरगुलको पराजित कर भारतमें हूण-शासन-का अंत कर दिया। भारतीय राज्य हाथसे निकल जाने-पर श्वेत हूणोंकी शक्ति बहुत क्षीण हो गयी। अन्तमें फारसके शाह खुसरो नौशेरवाँने ५६३ ई० और ५६७ ई०के बीच हूणोंकी रही-सही शक्तिको भी नष्ट कर दिया।

भारतमें हूणोंकी शक्ति समाप्त हो जानेके बाद वे हिन्दुओंमें घुल-मिल गये। विश्वास किया जाता है कि आठवीं शताब्दीमें तथा उसके बाद जिन राजपूत वंशोंका उत्कर्ष हुआ, उनके रक्तमें हूणोंका रक्त मिश्रित था। (मैकगवर्न० पृ० १०९ नोट)

श्वेताम्बर जैन–जैनों (दे०)का एक सम्प्रदाय। वर्धमान महावीर (दे०)की शिक्षाओंके बावजूद इस सम्प्रदायके साधु श्वेत वस्त्र धारण करते हैं।

ष

षड्दर्शन–हिन्दू दर्शनके छः दार्शनिक सिद्धान्त, जो न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तर मीमांसा अथवा वेदान्त कहलाते हैं। इन्हींको सम्मिलित रूपसे षड्दर्शन कहते हैं। इन दार्शनिक सिद्धान्तोंके प्रतिपादक क्रमशः गौतम, कणाद, कपिल, पतंजलि, जैमिनि और बादरायण थे। (देखिये, स० राधाकृष्णन द्वारा अंग्रेजीमें रचित 'भारतीय दर्शनका इतिहास)।

स

संगम–हरिहर और बुक्क (राय) का पिता। इन दोनों भाइयोंने ही १३३६ई०में विजयनगर राज्यकी स्थापना की थी। (दे० विजयनगर)

संग्राम सिंह (राणा साँगा)–रायमल्लका पुत्र और उत्तराधिकारी। इतिहासमें वह मेवाड़का राजा साँगाके नामसे प्रसिद्ध था, जिसने १५०८ से १५२८ ई० तक शासन किया। संग्राम सिंह महान् योद्धा था और तत्कालीन भारतके समस्त राज्योंमें ऐसा कोई भी उल्लेखनीय शासक न था जो उससे लोहा ले सके। बाबरके भारत आक्रमण के समय राणा साँगा को आशा थी कि वह भी तैमूरकी भाँति दिल्लीके लूट-पाट करनेके उपरान्त स्वदेश लौट जायेगा। किन्तु जब उसने देखा कि १५२६ ई० में इब्राहीम लोदीको पानीपतके युद्धमें परास्त कर बाबर दिल्लीमें शासन करने लगा है तो वह अपने १२० सहायक सामन्तों, ८० हजार अश्वरोहियों और ५०० हाथियोंकी विशाल सेना लेकर युद्धके लिए चल पड़ा। १६ मार्च १५२७ ई०को खनुआ नामक स्थान-पर बाबरसे उसका घमासान युद्ध हुआ। यद्यपि इस युद्ध-में राजपूतोंने अत्यधिक वीरता दिखायी, तथापि वे बाबर द्वारा पराजित हुए। इस युद्ध में राणा साँगा जीवित तो बच गये, किन्तु पराजयके आघातसे दो वर्ष उपरांत ही उनकी मृत्यु हो गयी और भारतवर्षमें हिन्दू राज्य स्थापित करनेका उसका स्वप्न भंग हो गया।

संघ–इस शब्दका प्रयोग बहुधा बौद्ध भिक्षु संघ के लिए होता है। भिक्षु संघकी गणना बौद्ध-धर्मके त्रिरत्नों (यथा बुद्ध, धर्म तथा संघ) में होती है। गौतम बुद्धने भिक्षु संघका संगठन प्रजातान्त्रिक आदर्शों पर किया था।

संघमित्रा–राजकुमार महेन्द्र (दे०) की भगिनी। उत्तर भारतकी बुद्ध अनुश्रुतियोंके आधारपर महेन्द्रको मौर्य सम्राट् अशोकका भाई माना गया है, यद्यपि सिंहली ग्रंथों और अनुश्रुतियोंमें संघमित्रा और महेन्द्र भाई-बहिन तथा अशोककी शाक्य रानी विदिशा देवीसे उत्पन्न कहे गये हैं। सिंहली ग्रंथोंके अनुसार महेन्द्र बौद्ध भिक्षुओंके एक दलका नेतृत्व करता हुआ श्रीलंका गया और वहाँके सभी निवासियोंको बौद्ध धर्ममें दीक्षित किया। संघमित्रा भी महेन्द्रके साथ बौद्धधर्मके प्रचार कार्यमें सहयोग देनेके लिए श्रीलंका गयी थी। उसने भी वहाँके राजा तिष्यसे समस्त परिवारके साथ ही अन्य स्त्रियोंको बौद्ध धर्मकी दीक्षा दी। आज भी लंका में उसका नाम आदरके साथ लिया जाता है।

संप्रति–कुणालका पुत्र और सम्राट् अशोकका पौत्र। यद्यपि अभिलेखोंमें उसका कहीं उल्लेख नहीं है परन्तु प्राचीन अनुश्रुतियोंके अनुसार अपने पितामह अशोकके उपरान्त कुणालके अंधे होनेके कारण वही सिंहासनासीन हुआ। वह जैनमतानुयायी था। कदाचित उसने सम्राट् अशोक-के साम्राज्यके पश्चिमी भू-भागोंपर ही राज्य किया। इस प्रदेशमें उसे अनेक जैन मन्दिरोंका निर्माण करानेका श्रेय दिया जाता है।

संवत्, प्राचीन भारतीय–अनेक हैं, जिनमेंसे कोई भी किसी भी कालमें सम्पूर्ण भारतमें प्रचलित नहीं रहा। बहुत-

से राजाओंने अपने राज्याभिषेकके उपलक्ष्यमें अपने नामसे नये संवत् प्रचलित किये। फलस्वरूप यह समझना कठिन है कि कौन संवत् ठीक-ठीक किस समय चला और किसने चलाया। फलतः किसी भी भारतीय संवत्की वास्तविक गणना तब हो पाती है जब उसमें उल्लिखित किसी घटनाके सम्बन्धमें ईसवी सन्का भी कहीं उल्लेख मिल जाता है। प्राचीन मुख्य संवत् ये थे :

(१) कलियुग अथवा युधिष्ठिर संवत्, जो ईसापूर्व ३१०२ से प्रारम्भ माना जाता है। यह संवत् प्रागैतिहासिक है और इसका प्रयोग केवल प्राचीन साहित्यमें मिलता है। (२) विक्रम संवत् जिसे सानन्द विक्रम संवत् अथवा संवत् विक्रम अथवा श्रीनृप विक्रम संवत् अथवा मालव संवत् भी कहा गया है और इसका प्रारंभ ५० ईसापूर्वसे माना जाता है। इसका कौन प्रवर्तक था और किस घटनाकी स्मृतिमें चलाया गया, इस सम्बन्धमें निश्चित रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता। (३) आनन्द विक्रम संवत् ३३ ई० में किसी अज्ञात शासक द्वारा चलाया गया। (४) शक संवत् अथवा शकाब्द संभवतः कुषाण वंशके राजा कनिष्क प्रथम द्वारा ७८ ई० में चलाया गया। (५) लिच्छवि संवत् १११ ई० में आरंभ किया गया। इसके प्रवर्तकका नाम भी अज्ञात है। (६) चेदि अथवा त्रकूटक कलचुरि संवत् २४८ ई० में शुरू किया गया। (७) गुप्त संवत्को गुप्त वंशके संस्थापक चन्द्रगुप्त प्रथमने अपने राज्याभिषेककी स्मृति में ३१९–२० ई० में प्रचारित किया। (८) हूण संवत् तोरमाणने सन् ४४८ ई० में प्रारम्भ किया और अपने सिक्कोंमें प्रयुक्त किया। (९) हर्ष संवत्को महाराज हर्षवर्धनने अपने राज्याभिषेककी स्मृतिमें ६०६ ई० में प्रचारित किया। (१०) कालम् अथवा मलाबार संवत्का आरम्भ ८२४ ई० से माना जाता है, जिसका प्रयोग चेर अथवा केरल के राजा करते थे। (११) नेपाली संवत् का आरम्भ ८७९ ई० से माना जाता है। (१२) विक्रमांक चालुक्य संवत्को चालुक्य नरेश विक्रमांक (द्वि०) ने अपने राज्याभिषेक की स्मृतिमें सन् १०७६ ई० में चलाया था। (१३) लक्ष्मण संवत्को बंगालके राजा लक्ष्मण सेनने ११९० ई० में प्रचलित किया था। **(कनिंघम रचित बुक आफ इण्डियन एराज; ज० रा० ए० सो० १९१३, पृष्ठ ६२७; कीलहार्नका लेख, इं० ए०, खंड २०, (१८९१) तथा बनर्जी० पृष्ठ ४६५–७२)।**

संविधान सभा–दे०, 'भारतीय संविधान सभा'।

संसदीय घोषणाएं–भारतके संवैधानिक विकासके विभिन्न चरणोंकी सूचक, जिनकी अन्तिम परिणति स्वाधीनताके रूप में हुई। प्रथम संसदीय घोषणा २० अगस्त १९१७ ई० को तत्कालीन भारत-मंत्री एडविन माण्टेगू द्वारा हुई, जिसमें कहा गया था कि ब्रिटिश सरकारकी नीति, जिससे भारत सरकार पूर्णतः सहमत है, यह है कि ब्रिटिश साम्राज्यके अखंड भागके रूपमें भारतमें उत्तरदायी शासनकी क्रमिक स्थापनाके उद्देश्यसे प्रशासनकी प्रत्येक शाखामें भारतीयोंको अधिकाधिक स्थान दिया जाय और स्वशासी संस्थाओंका क्रमिक विकास किया जाय। इस घोषणाके बाद १९१७-१८ ई० में माण्टेगूने भारतका दौरा किया और १९१९ ई० में ब्रिटिश सरकारने नया भारतीय शासन विधान पास कर दिया। इस संविधानके अन्तर्गत प्रान्तोंमें द्वैध शासन (आंशिक उत्तरदायी सरकार तथा निर्वाचित विधानसभाएँ) और केन्द्रमें आंशिक निर्वाचित केन्द्रीय विधान सभाकी स्थापना की गयी। इस प्रकार भारतमें संसदीय शासन-प्रणाली की शुरुआत हुई।

दूसरी महत्त्वपूर्ण घोषणा अक्तूबर १९२९ ई० में हुई, जिसमें कहा गया कि भारत की संवैधानिक प्रगतिका स्वाभाविक लक्ष्य देशमें औपनिवेशिक स्वराज्यकी स्थापना है। इस घोषणाके परिणामस्वरूप भारतीय शासन विधान, १९३५ ई० स्वीकृत किया गया, जिसमें केन्द्रमें संघीय उत्तरदायी शासन तथा प्रांतों में पूर्ण उत्तरदायी शासनकी स्थापनाकी व्यवस्था की गयी।

तृतीय एवं अंतिम घोषणा ३ जून १९४७ ई० को तत्कालीन ब्रिटिश प्रधान-मंत्री क्लीमेंट एटलीने हाउस आफ कामन्समें की, जिसमें कहा गया था कि ब्रिटिश सरकारने भारतीय जनताको यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र सत्ता सौंप देने का निश्चय किया है। इस घोषणाके फलस्वरूप भारतीय स्वाधीनता अधिनियम (१९४७ ई०) बना जो १५ अगस्त १९४७ ई० से लागू हुआ और भारतीय स्वाधीनताका कानूनी आधार बना।

संस्कृत–हिन्दुओं की प्राचीन भाषा। इसका अपना विशाल साहित्य-भंडार है, जिसमें ज्ञानकी समस्त शाखाओंपर रचना हुई है। इसका व्याकरण वैज्ञानिक आधारपर निर्मित है। संस्कृत प्राचीन भारतकी राजभाषा भी थी। यद्यपि अशोकने अपने अभिलेखोंमें इसका प्रयोग नहीं किया, किन्तु बादके युगोंमें संस्कृतकी प्रधानता पुनः स्थापित हो गयी और भारतके कई विदेशी शासकोंने भी अपनी उपलब्धियोंको उत्कीर्ण करानेमें इसी भाषाका प्रयोग किया। प्राचीन कालमें देशकी एकता बनाये

रखनेकी इस भाषामें महान् शक्ति थी। आज दिन भी सम्पूर्ण देशके हिन्दुओंमें पूजा, उपासना और कर्म-कांडोंके मंत्रोंमें इसी देव-भाषाका प्रयोग होता है। साधारणतया इसे देव-नागरी लिपिमें लिखा जाता है, किन्तु इसे भारतकी अन्य क्षेत्रीय लिपियोंमें भी लिखा और पढ़ा जाता है। भारतसे बाहर मलयद्वीप समूह, कम्बोडिया तथा अनाम आदि देशोंमें उपनिवेश स्थापित करनेवाले भारतीयोंने इसे समुद्रके पार भी प्रतिष्ठित किया, जहाँ स्थानीय शासकोंकी यशोगाथाओंको अंकित करनेके हेतु अभिलेखोंमें इसका प्रयोग हुआ है।

संस्कृत कालेज—ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा सर्वप्रथम १७९४ ई० में वाराणसीमें संस्कृत कालेजकी स्थापना हुई। इसके बाद १८२० ई० में दूसरा संस्कृत कालेज कलकत्तामें स्थापित हुआ।

सआदत अली—नवाब आसफउद्दौला (१७७५–१७९७ ई०)-का भाई। आसफउद्दौलाकी मृत्युके १ वर्ष बाद अंग्रेजोंने उसे अवधमें सिंहासनासीन किया और वह १७९८ से १८१४ ई० तक अवधका नवाब रहा। तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड वेलेजलीने उसे नवाब बनानेके बाद ही जमान शाह (दे०) के आक्रमणका झूठा भय दिखाकर अपने राज्यमें अंग्रेज पलटनोंकी संख्या बढ़ानेके लिए मजबूर किया। उसने उसका आधा राज्य यानी गंगा और यमुनाका दोआब तथा रुहेलखंड हड़प लिया। अपने आधे राज्यसे ही उसे संतोष करना पड़ा। उसकी मृत्यु १८१४ ई०में हुई। उसका पुत्र तथा उत्तराधिकारी गाजीउद्दीन हैदर था जिसने १८१४ से १८२७ ई० तक राज्य किया। गाजीउद्दीन हैदरको तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्सके अनुमोदनसे १८१९ ई० में बादशाहका खिताब दिया गया, परन्तु इससे उसकी सत्ता अथवा शक्तिमें किसी प्रकारकी वृद्धि नहीं हुई।

सआदत खाँ—प्रारंभमें अवधमें मुगल सम्राट्का प्रान्तीय शासक अथवा सूबेदार था, किन्तु केन्द्रकी दुर्बलताका लाभ उठाकर उसने १७२४ ई०में अपनेको स्वतंत्र घोषित कर दिया। उसने अपनी मृत्यु (१७३९ ई०) तक अवधपर स्वतंत्र रूपसे शासन किया।

सचिव—प्राचीनकालमें इसका प्रयोग मंत्री अथवा परामर्श-दाताके लिए होता था। शिवाजी प्रथम (दे०) की शासन-व्यवस्थामें जो अष्ट प्रधान अथवा आठ मंत्री थे उनमें सचिवका स्थान चौथा था। उसका कार्य राजाके समस्त पत्र-व्यवहार और राज्यके प्रत्येक महाल और परगनेसे होनेवाली आयके लेखे-जोखेकी देखभाल करना था।

सतलजके इस पारके राज्य—या सिक्ख राज्य सतलज और यमुना नदियोंके बीचमें स्थित थे, जिनमें लगातार आपसी युद्ध होते रहते थे। उसकी फूट और कमजोरीका फायदा उठाकर १७८५ ई० के बाद महादजी शिन्देके नेतृत्वमें मराठोंने उनपर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। बादमें अंग्रेजोंने मराठोंको यहाँसे खदेड़ दिया और सतलजके इस पारके सिक्ख राज्योंको अनौपचारिक रूपसे अपने संरक्षणमें ले लिया। महाराज रणजीतसिंह-की शक्ति उस समय तेजीसे बढ़ रही थी। वह समस्त पंजाबको अपने शासनके अन्तर्गत संगठित करना चाहता था। उसने कुछ सिक्ख सरदारोंके अनुरोधपर १८०६ और १८०७ ई०में सतलज क्षेत्रपर धावा बोल दिया और लुधियानापर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। रणजीतसिंहकी शक्ति और सत्ताके इस विस्तारका कुछ सिक्ख राज्योंने विरोध किया तथा अंग्रेजोंने भी इसे चिन्ताकी दृष्टिसे देखा।

१८०९ ई०में अंग्रेजोंने डेविड आक्टरलोनीके नेतृत्व-में इन राज्योंमें अपनी फौजें भेज दीं। रणजीतसिंह अंग्रेजोंके साथ सशस्त्र संघर्षमें उलझना नहीं चाहता था, अतः उसने १८०९ ई०में अंग्रेजोंके साथ अमृतसरमें शान्ति-संधि कर ली और वे सतलजके इसपारसे हट गये। इसके बाद ये राज्य निश्चित रूपसे भारतकी ब्रिटिश सरकारके संरक्षणमें आ गये। ब्रिटिश सरकारने शीघ्र ही लुधियानामें अपनी फौजें तैनात कर दीं। इस प्रकार सिक्खोंका कुछ क्षेत्र रणजीतसिंह और कुछ अंग्रेजोंकी अधीनता में आ गया।

सतारा—बम्बई प्रेसीडेन्सी (वर्तमान महाराष्ट्र) का एक नगर, पहले यह एक राज्य (रियासत) भी था। सतारा शाहूजीके वंशजोंकी राजधानी रहा, यद्यपि मराठा राज्य-की सत्ता पेशवाओंके हाथोंमें जानेके फलस्वरूप यह उनके अधीन था। १८१८ ई०में पेशवा बाजीराव द्वितीयकी पराजयके उपरान्त अंग्रेजोंने इसे पुनः आश्रित राज्य बना दिया। १८४८ ई०में गोदप्रथाकी समाप्तिका सिद्धान्त लागू किये जानेके फलस्वरूप इसे अंग्रेजोंके भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया।

सतियपुत्र (सत्य पुत्र)—सम्राट् अशोकके द्वितीय शिलालेखमें उसके साम्राज्यकी दक्षिणी सीमाओंपर सतियपुत्रोंके राज्यका उल्लेख हुआ है। इसकी निश्चित पहचान नहीं हो पायी है, किन्तु यह निश्चय ही केरल अथवा चेर (दे०) राज्यके सन्निकट था।

सती प्रथा—इसके अनुसार विधवा स्त्री अपने मृत पतिके

साथ चितापर जलकर भस्म हो जाती थी। यह प्रथा वैदिक युगमें अज्ञात थी, किन्तु उपरान्त इसका प्रचलन हुआ। महाभारतके अनुसार इसका प्रचलन प्राचीन राजपरिवारोंमें था।

सिकन्दरके साथ आये हुए यूनानी लेखकोंने भी इसका उल्लेख किया है। सम्भवतः यह प्रथा राज-परिवारोंसे सामान्य वर्गोंमें फैली और मुसलमानोंके आक्रमणोंके कारण इसका प्रचलन व्यापक रूपसे हो गया। मुगल सम्राट् अकबरने इसे रोकनेका प्रयास किया किन्तु वह असफल रहा। १८२९ ई०में भारतके तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड विलयम वेन्टिंगने अंग्रेजों द्वारा अधिकृत भारतीय क्षेत्र में इस प्रथापर रोक लगा दी, किन्तु पंजाबमें इसका प्रचलन रहा। वहाँ यह तभी समाप्त हो सकी जब १८४८ ई०में पंजाबपर अग्रेजोंका अधिकार हो गया।

सत्याग्रह आन्दोलन—इसका सूत्रपात सर्व प्रथम महात्मा-गांधी (दे०) ने १८९४ ई०में दक्षिण अफ्रीकामें किया। इसका अभिप्राय सामाजिक एवं राजनीतिक अन्यायोंको दूर करनेके लिए सत्य और अहिंसापर आधारित आत्मिक बलका प्रयोग था। यह एक प्रकारका निष्क्रिय प्रतिरोध था, जो व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूपसे कष्ट-सहन द्वारा विरोधीका हृदय परिवर्तन करनेमें सक्षम हो। दक्षिण अफ्रीकामें इस आन्दोलनको अत्यधिक सफलता मिली। जनरल स्मट्सको प्रवासी भारतीयोंके आंदोलनका औचित्य स्वीकार करना पड़ा और भारतके वाइसराय लार्ड-हार्डिग्जने भी उनके प्रति सहानुभूति प्रकट की, अन्ततः इस आन्दोलनसे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी अनेक शिकायतें दूर हुईं।

१९२० ई० के राष्ट्रीय आन्दोलनमें इसका प्रयोग भारतमें अंग्रेजी शासनके विरुद्ध अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलनके रूपमें हुआ। तत्पश्चात् इसका स्वरूप सविनय अवज्ञा आन्दोलनमें परिवर्तित हो गया। निश्चय ही इस आन्दोलनने भारतीयोंको अंग्रेजी शासनका अन्त करनेके लिए कृतसंकल्प किया। इस प्रकार भारतकी स्वतंत्रता प्राप्तिमें इसका ठोस योगदान रहा है।

सदर- मुगलकालीन शासन व्यवस्थाके अन्तर्गत एक पद। इस पदपर नियुक्त कर्मचारी परगनेमें समस्त धार्मिक अनुदानोंका प्रबंध करता था।

सदर दीवानी अदालत—इसकी स्थापना १७७२ ई० में वारेन हेस्टिंग्सने कलकत्तामें की। इसका कार्य नीचेकी सभी दीवानी अदालतों द्वारा किये गये मुकदमोंके निर्णयोंकी अपीलपर विचार करना था। इसकी अध्यक्षता बंगाल कौंसिलका अध्यक्ष करता था और इसमें कौंसिलके दो अन्य सदस्य भी होते थे। १७७३ ई०में रेग्यूलेटिंग ऐक्टके अनुसार जब कलकत्तामें उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) की भी स्थापना हो गयी, तब सदर दीवानी अदालत और उच्चतम न्यायालयके बीच अधिकार-क्षेत्र सम्बन्धी विवादोंको दूर करनेके लिए गवर्नर-जनरलने उच्चतम न्यायालयके मुख्य न्यायाधीश सर एलिजा इम्पीको ही सदरदीवानी अदालतका अध्यक्ष नियुक्त किया। हेस्टिंग्सके इस प्रबन्धकी तीव्र आलोचना हुई, फलतः उसे अपने इस निर्णयको निरस्त करना पड़ा।

दूसरी सदर दीवानी अदालतकी स्थापना उत्तरी भारतमें ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा अधिकृत भू-भागोंमें उत्तरोत्तर वृद्धि होनेसे १८३१ ई०में इलाहाबादमें हुई। १८६१ ई०में कलकत्ता, बम्बई और मद्रासमें उच्च-न्यायालयों (हाईकोर्ट) की स्थापना हुई, तब सदर-दीवानी अदालत और उच्चतम न्यायालयको भी कलकत्ताके उच्च न्यायालयमें सम्मिलित कर दिया गया।

सदर निजामत अदालत—इसकी स्थापना १७७२ ई०में वारेन हेस्टिंग्स द्वारा कलकत्तामें की गयी। इस न्यायालयका कार्य फौजदारीकी ऐसी अपीलोंपर पुनर्विचार करना था, जिनपर नीचेकी अदालतें और निम्न अधिकारीगण अपना निर्णय दे चुके हों। इस अदालतमें भारतीय न्यायाधीश ही थे किन्तु उनपर कौंसिलके अध्यक्ष और सदस्योंका नियंत्रण रहता था। १७७५ ई०में सदर-निजामत अदालतका स्थानान्तरण कलकत्तासे मुर्शिदाबाद करके उसे नायबके अधीन रख दिया गया। १७९० ई०में इसे पुनः कलकत्ता ले जाकर गवर्नर-जनरलकी कौंसिलके ही अधीन कर दिया गया। १८३१ ई०में कलकत्ताकी सदर निजामत अदालतको भी सदर दीवानी अदालतकी भाँति वहाँके उच्चन्यायालयमें सम्मिलित कर दिया गया।

सदरुस्सदर—समस्त मुगल साम्राज्यके धार्मिक अनुदानोंका मुख्य अधिकारी। उसका कार्यालय राजधानीमें स्थित था और अन्य स्थानोंपर नियुक्त सदर उसके अधीन थे।

सदाशिव—विजयनगरके तृतीय राजवंशका अंतिम शासक। उसने १५४२ से १५७० ई० तक राज्य किया। वह कृष्णदेवरायका छोटा पुत्र था। उसके अल्पवयस्क होनेके कारण राज्यकी समस्त सत्ता रामराजाके (दे०) हाथोंमें रही। रामराजाकी परस्पर भेद नीतिके फलस्वरूप पाँचों बहमनी सल्तनतें एक हो गयीं और उनके सम्मिलित आक्रमणके फलस्वरूप १५६५ ई०में तालीकोटका प्रसिद्ध युद्ध हुआ। रामराजा पराजित हुआ और मारा गया।

सदाशिव विजयनगर छोड़ कर रामराजाके भाई तिरुमलके संरक्षणमें पेनुगोण्डा भाग गया, परन्तु १५७० ई० के लगभग तिरुमलने उसकी हत्या कर दी और स्वयं सिंहासनासीन हुआ।

सदाशिव (राव) भाऊ—पेशवा बालाजी बाजीराव (दे०) (१७४०-६१ ई०) का चचेरा भाई। वह शासन-प्रबंधमें पटु था और मराठा साम्राज्यका समस्त शासन भार पेशवाने उसीपर छोड़ दिया था। उसने मराठोंकी विशाल सेनाको यूरोपियन सेनाके ढंगपर व्यवस्थित किया। उसके पास इब्राहीम खाँ गर्दी नामक मुसलमान सेनानायकके अधीन विशाल तोपखाना भी था। इसी सैन्यबलके आधारपर सदाशिव भाऊने हैदराबादके निजाम सलावतजंग (दे०) को उदरगीर (दे०) के युद्धमें हरा कर भारी सफलता प्राप्त की। इस विजयसे उसकी प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गयी कि उसे शीघ्र ही पंजाब प्रान्तमें अहमदशाह अब्दाली (दे०) की बढ़ती हुई शक्तिको नष्ट कर मराठोंकी सत्ता स्थापित करनेके लिए भेजा गया। किन्तु सदाशिव कूटनीति एवं युद्ध-क्षेत्र दोनोंमें विफल रहा। उसके दम्भी स्वभावके फलस्वरूप जाट लोग विमुख हो गये तथा राजपूतोंने भी सक्रिय सहयोग नहीं दिया। वह नवाब शुजाउद्दौला (दे०) को भी अपने पक्षमें नहीं कर सका, हालांकि मुगल बादशाहने उसे अपना प्रतिनिधि बना रखा था। वह रणनीतिमें भी अब्दालीसे मात खा गया। उसने आगे बढ़कर अब्दालीकी फौजोंपर हमला करनेके बजाय स्वयं उसके हमलेका इंतजार किया। इस प्रकार उसकी विशाल सेनाको पानीपतके मैदानमें, जहाँ उसने अपनी मोर्चेबंदी कर रखी थी, अब्दालीकी फौजोंने घेर लिया था। १५ जनवरी १७६१ ई०को सदाशिवने असाधारण वीरता दिखायी, किन्तु वह मारा गया। इस युद्धमें पराजयसे मराठा शक्तिको गहरा धक्का लगा और इसी आघातसे पेशवाकी भी मृत्यु हो गयी।

सप्रू, सर तेजबहादुर—बीसवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें उदार दल (लिबरल पार्टी) के ख्यातिलब्ध नेता। वे प्रयाग-निवासी प्रतिष्ठित वकील थे और वाइसरायकी कार्यकारिणी समितिमें भी एक सत्र तक सदस्य रहे।

सफ़दर अली—कर्नाटकके नवाब दोस्त अलीका पुत्र एवं उत्तराधिकारी। दोस्त अलीको मराठोंने १७४१ ई०में मार डाला। सफदर अली भी थोड़े ही दिन नवाब रह सका, क्योंकि १७४२ ई०में चचेरे भाई मुर्तजा अलीने उसका वध कर दिया। सफदर अलीके बहनोई चन्दा-साहब (दे०) की नवाबीमें द्वितीय कर्नाटक-युद्ध (दे०) छिड़ा।

सफ़दर जंग—अवधके प्रथम नवाब सआदत खांकी बहिनका पुत्र। यह अपने मामाकी मृत्युके उपरान्त अवधका नवाब बना। तत्पश्चात् मुगल सम्राट्ने उसे वजीर नियुक्त किया किन्तु मराठोंका सहायतासे गाजीउद्दीनने उसे अपदस्थ कर दिया। सफदरजंग पुनः अवध लौट आया फिर भी गाजीउद्दीनकी शत्रुताने उसका पीछा न छोड़ा। १७५३ ई०में गाजीउद्दीनने उसे पुनः परास्त किया और अगले ही वर्ष सफदर जंगकी मृत्यु हो गयी।

सबातजंग—फारसी भाषाकी एक उपाधि, जिसका अर्थ 'युद्धमें अनुभव-प्राप्त' अथवा 'युद्ध-निपुण' होता है। नवाब मीरजाफरने तत्कालीन मुगल सम्राट्से राबर्ट क्लाइवको १७५७-६० ई०के मध्य उक्त उपाधि प्रदान करायी थी।

समतट—प्रतापी गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त (दे०) के प्रयाग स्तम्भ लेखमें डवाकके साथ सीमावर्ती राज्यके रूपमें उल्लिखित। वहांके तत्कालीन शासकको समुद्रगुप्तने कर-दान, आज्ञा-पालन और राजधानीमें आकर प्रणाम करनेके लिए बाध्य किया। साधारणतया समतट प्रदेशका निर्धारण पूर्वी बंगाल अथवा बांगला देशके समुद्रतटीय भू-भागोंसे किया गया है। इसकी राजधानी कदाचित् कोमिल्लाके निकट बड़काभता नामक स्थानपर थी, जो अब बांगला देशमें है।

समुद्रगुप्त—सम्राट् चन्द्रगुप्त प्रथमका पुत्र, उत्तराधिकारी तथा गुप्त वंशका द्वितीय सम्राट्। उसके राज्यकालका निश्चयपूर्वक निर्धारण करना कठिन है। संभवतः उसने ३३० से ३८० ई० तक राज्य किया। समुद्रगुप्त महान योद्धा और विजेता था। अशोक द्वारा स्थापित प्रयागके शिला-स्तम्भपर उसकी विजयगाथा उत्कीर्ण है। सर्वप्रथम उसने उत्तरी भारतमें आर्यावर्तके कई राजाओंका उन्मूलन किया। उसने समतट (पूर्वी बंगाल), डवाक (नौगांव, आसाम), कामरूप, नेपाल, कर्तृपुर (गढ़वाल और जालन्धर); पूर्वी और मध्य पंजाब, मालवा तथा पश्चिमी भारतके गणराज्यों तथा कुषाणों और शकोंको अपनी प्रभुसत्ता स्वीकार करनेपर विवश किया। इसके उपरान्त एक विशाल सैन्यबल लेकर उसने दिग्विजयके लिए दक्षिणकी ओर प्रस्थान किया।

दक्षिणापथके जिन बारह राजाओंको उसने परास्त किया, उनके नाम क्रमशः निम्न प्रकार थे—कोशल अथवा दक्षिण कोशलका महेन्द्र महाकान्तार अथवा

विन्ध्याका व्याघ्रराज, कोशल (पहचान नहीं हो सकी) का मन्टराज, पिष्टपुर (पीठापुरम्) का महेन्द्रगिरि, कोट्टूर (कोठूर, मद्रास) का स्वामिदत्त, एरण्डपल्ल (संभवतः मद्रास प्रांतमें) का दमन, कांचीका विष्णुगोप, अवभुक्तका नीलराज, वेंगी (पेडु वेंगी) का हस्तिवर्मा, पालक्क (नेल्लोर) का उग्रसेन, देवराष्ट्र (विजगापट्टम जिला) का कुबेर और कुस्थलपुर (संभवतः उत्तरी अर्काट) का धनंजय। समुद्रगुप्तने इन राजाओंको परास्त करके उनकी श्री अथवा कोष-धन लेकर उन्हें पुनः उनके राज्यपदपर आसीन किया।

इन विजयोंके फलस्वरूप उसका साम्राज्य हिमालय-के पादभागसे लेकर दक्षिणमें नर्मदा नदीतक और पूर्वमें ब्रह्मपुत्रसे लेकर पश्चिममें यमुना और चम्बल नदियों तक विस्तृत हो गया। इतने विशाल साम्राज्यकी स्थापना उसकी महान् उपलब्धि थी। इसके उपलक्ष्यमें उसने अश्वमेध यज्ञ किया था। शीघ्र ही उसकी कीर्ति विदेशों तक फैल गयी। श्रीलंकाके तत्कालीन शासक मेघवर्माने उसकी सेवामें दूतोंके द्वारा उपहार भेजे तथा श्री लंकासे भारत आनेवाले बौद्ध भिक्षुओंके सुविधार्थ बोधगयामें एक बिहार बनवानेकी अनुमति माँगी। समुद्रगुप्तने श्रीलंकाधिपतिका अनुरोध सहर्ष स्वीकार किया।

समुद्रगुप्त केवल महान् योद्धा और विजेता ही नहीं था बल्कि बहुमुखी प्रतिभाशाली व्यक्ति था। वह पराजित राजाओंके प्रति दयालु, विद्वानोंका आश्रयदाता, सभी धर्मोंका संरक्षक, विद्वान, विद्यानुसंगी, शास्त्रमर्मज्ञ, संगीतज्ञ एवं महान कवि था। उसको भारतीय नेपोलियन-की उपाधि दी गयी है, किन्तु उसका व्यक्तित्व नेपो-लियनसे कहीं उच्च एवं महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि पराक्रम-के साथ-साथ उसमें सुसंस्कृत व्यक्तिके सभी उच्च गुणोंका समावेश था।

सम्राज्ञी (भारतकी)–एक उपाधि, जो १८७६ ई०में इंगलैण्डकी महारानी विक्टोरियाको ब्रिटिश संसद (पार्लियामेण्ट) द्वारा प्रदान की गयी। १८५८ ई०में ब्रिटिश सरकारने जब कम्पनीसे शासन-सत्ता ग्रहण की, तब भारतीय जनता और भारतीय राजाओंको ब्रिटिश सिंहासनके प्रति राजभक्त बनानेके उद्देश्यसे इंगलैण्डकी महारानीको यह पदवी प्रदान की गयी।

सयाजी राव प्रथम–१७७१ से १७७८ ई० तक बड़ौदा रियासतका शासक। बड़ौदाकी गद्दीके लिए उनके भाइयोंने विरोध खड़ा किया और इस पारस्परिक संघर्षके फलस्व-रूप वहाँके शासन प्रबन्धमें अत्यधिक कुव्यवस्था फैल गयी।

सयाजी राव द्वितीय (गायकवाड)–१८१९ ई०से १८४७ ई० तक बड़ोदाका शासक।

सयाजी राव तृतीय (गायकवाड़)–१८७५ से १९३९ ई० तक बड़ौदाका शासक रहा। जब वह नितान्त बालक था, तभी १८७५ ई०में अंग्रेजी सरकारने मल्हार राव गायकवाड़को गद्दीसे हटाकर उसको सिंहासनासीन किया। उसके शैशवकालमें सर टी० माधव रावने राज्यका शासन-भार संभाला। वयस्क होनेपर सयाजीरावने राज्यका सारा प्रबंध अपने हाथोंमें ले लिया। प्रशासकीय कुशलताके कारण उसकी गणना सबसे प्रतिभाशाली भारतीय नरेशके रूपमें की जाती है। उसके कुशल निर्देशनमें बड़ोदा समस्त देशी रियासतोंमें सबसे अधिक प्रगतिशील राज्य बन गया। उसने कई विख्यात भार-तीयोंको राज्यके सेवार्थ नियुक्त किया, जिनमें रमेशचन्द्र दत्त, जो कुछ वर्षों तक दीवान भी रहे, अरविन्द घोष, जो बड़ोदा कालेजके प्रधानाध्यापक थे, तथा सर कृष्णा-माचारी जैसोंके नाम उल्लेखनीय हैं। १९३९ ई०में सयाजी राव तृतीयकी मृत्यु हुई।

सरकार–शेरशाहके शासनकालकी सबसे छोटी प्रशासकीय इकाई। शेरशाहने अपने समस्त साम्राज्यको परगनोंमें विभक्त किया। अनेक परगनोंको मिलाकर सरकार (जिला) बनती थी, जहाँ सेना रहती थी। सम्राट अकबरने भी इस शासकीय इकाईको कायम रखा, किन्तु ऐसी कई इकाइयों अर्थात सरकारोंको मिलाकर उसने सूबोंका गठन किया। अंग्रेजोंकी शासकीय व्यवस्थामें इन्हीं सरकारोंको जिलोंकी संज्ञा दी गयी।

सरकार उत्तरी–कर्नाटक प्रदेशके एक जिलेका नाम। निजाम सलावतजंगने इसे फ्रांसीसियोंके नियंत्रणमें रख दिया था, पर १७५८ ई०में अंग्रेजोंने इसपर अधिकार लिया।

सरकार, सर जदुनाथ (१८७०–१९६१ ई०)–सुप्रसिद्ध इतिहासकार। वे बंगालमें पैदा हुए और उनकी शिक्षा कलकत्ताके प्रेसीडेन्सी कालेजमें हुई थी। उन्होंने अध्यापन-को ही अपने जीवनका मार्ग चुना और अपने जीवनका अधिकांश भाग पटनामें इतिहासके प्राध्यापक पदपर आसीन रहकर व्यतीत किया। १९२६ ई०से एक सत्र तक वे कलकत्ता विश्वविद्यालयके उपकुलपति भी रहे। उनकी कृतियोंमें शिवाजी, औरंगजेबका जीवनचरित और मुगल साम्राज्यका पतन (सभी अंग्रेजीमें) विद्वत्समाजमें प्रामाणिक ग्रंथ माने जाते हैं। उनकी विद्वत्ता और पाण्डित्य-से प्रभावित होकर अंग्रेज सरकारने उन्हें 'सर'की उपाधि

प्रदान की थी। उनकी मृत्यु कलकत्तेमें १९६१ ई० में हुई।

सरगौली (सगौली) की संधि—द्वारा १८१६ ई० में गोरखा अथवा नेपाल युद्ध (दे०) की समाप्ति हुई। इस संधिके अनुसार गोरखा दरबारने काठमाण्डूमें एक अंग्रेज रेजीडेन्ट रखना स्वीकार कर लिया और उन्हें कुमायूँ तथा गढ़वाल-के जिले अंग्रेजोंको देना पड़े।

सरदार बल्लभ भाई पटेल—देखिये, 'बल्लभ भाई'।

सर दिनकर राव—१९ वीं शताब्दीमें हुए गवालियरके महाराज सिन्धियाका दीवान। सिपाही-विद्रोहके समय दिनकर रावने सिन्धिया और उसकी सेनाको अंग्रेजोंका भक्त बनाये रखा। इससे अंग्रेजोंको बहुत सुविधा प्राप्त हुई।

सर पियरे कवागनरी—ब्रिटिश भारतीय सरकारका राजदूत, जिसे दूसरे अफगान-युद्ध (१८७८–८० ई०) का पहला चरण समाप्त होनेपर कुर्रम संधि (१८७९ ई०) के बाद काबुलमें नियुक्त किया गया। वह जुलाई १८७९ ई०में अपना पद सँभालने काबुल पहुँचा, लेकिन छः सप्ताह बादही अमीरकी विद्रोही अफगान फौजोंने उसकी हत्या कर दी। इस कृत्यसे शत्रुता फिर भड़क उठी और दूसरा अफगान-युद्ध एक वर्ष तक और चलता रहा।

सरफराज खाँ—नवाब मुर्शिदकुली खाँ (दे०) का दौहित्र, जो १७३९–४० ई०में बंगालका नवाब रहा। १७४०ई०में वह अपने अधीनस्थ नायब अलीवर्दी खां द्वारा पराजित होकर मारा गया और अलीवर्दी खाँ (दे०) बंगालका नवाब बना।

सरमैन, जान—ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें नियुक्त एक नवयुवक लिपिक। वह जुलाई १७१५ ई०में बादशाह फर्रुखशियर (दे०)के दरबारमें दूतमंडलको साथ लेकर गया, जिसमें एक आर्मीनियाई ख्वाजा सरहिंद तथा एक अंग्रेज एडवर्ड स्टीफेन्सन सम्मिलित था। हृघबार्कर मंडलका सचिव था। ३० दिसम्बर १७१६ ई० को मुगल बादशाहने दूतमंडलको तीन फरमान प्रदान किये, जो बंगाल, हैदराबाद तथा अहमदाबादके मुगल सूबेदारोंको सम्बोधित थे। इनके द्वारा कम्पनीको केवल तीन हजार रु० के वार्षिक खिराजपर निःशुल्क व्यापार करनेका अधिकार दे दिया गया। इसके अतिरिक्त अन्य कई व्यापारिक सुविधाएँ भी प्रदान की गयीं। सरमैनने बादशाह फर्रुखशियरसे जो फरमान प्राप्त किया, वह इतना महत्त्वपूर्ण था कि उसे भारतमें ब्रिटिश व्यापारका मैग्ना चार्टा (अधिकार पत्र) कहा जाता है।

सर विलियम जोन्स—(१७४६–९४)—एक प्रसिद्ध ब्रिटिश प्राच्यविद्याविद् तथा न्याय-मूर्ति। जन्म इंगलैंडमें। उन्होंने आक्सफोर्डमें शिक्षा पायी तथा विविध यूरोपीय भाषाओं-के अतिरिक्त अरबी, फारसी, यहूदी तथा चीनी भाषाएँ भी सीखीं। १७७० ई०में ही फारसीमें लिखित नादिर-शाहकी जीवनीका अनुवाद फ्रेंच भाषामें किया। १७७४ ई०में बैरिस्टरी पास की और इंग्लैंडके कानूनके कुछ पहलुओंपर किताबें लिखीं, जिनकी काफी चर्चा हुई। १७८३ ई०में वे कलकत्तामें सुप्रीमकोर्टके जज नियुक्त हुए और 'सर' की उपाधिसे विभूषित किये गये।

बंगाल पहुँचते ही उन्होंने जनवरी १७८४ ई०में बंगाल एशियाटिक सोसाइटीकी स्थापना की और कलकत्तामें १७९४ ई०, जीवनान्ततक उसके अध्यक्ष रहे। सुप्रीमकोर्टके जजकी हैसियतसे वे शीघ्र इस बातकी आवश्यकता अनुभव करने लगे कि हिन्दुओंके मामलोंका निर्णय करनेके लिए हिन्दू कानूनोंके ग्रंथ देखने चाहिए। इसके लिए उन्होंने संस्कृत सीखना शुरू किया और शीघ्र ही उस भाषापर इतना अधिकार कर लिया कि वे १७८९ ई०में कालिदासके 'शकुंतला' नाटकका अंग्रेजी अनुवाद करनेमें सफल हो गये और उन्होंने मनु-संहिताका (स्मृति) का भी अंग्रेजीमें अनुवाद किया, जो १७९४ ई०में प्रकाशित हुआ। हितोपदेश (दे०) तथा गीतगोविन्द (दे०) का भी अंग्रेजी अनुवाद किया। साथही उन्होंने अंग्रेजीमें फारसी भाषाका व्याकरण (१७७१ ई०), मुसलिम उत्तराधिकार कानून तथा मुसलिम दायाधिकार कानून (१७८२)ई० नामक ग्रन्थोंकी भी रचना की।

भारतमें फारसी भाषाके विद्वान् तो बहुतसे अंग्रेज हुए, परन्तु सर विलियम जोन्स पहले व्यक्ति थे जिन्होंने बड़ी निष्ठाके साथ संस्कृत भाषा सीखी और हिन्दुओंकी इस प्राचीन भाषा तथा साहित्यसे यूरोपीय विद्वानोंको परिचित कराया। उन्होंने इस कार्य द्वारा एक प्रकारसे तुलनात्मक भाषा-विज्ञानकी नींव डाली।

सरहिन्द—सिक्खोंके इतिहासमें ख्याति-प्राप्त पंजाबका एक नगर।

सर्वसेन—वाकाटक सम्राट् प्रवरसेन प्रथमका द्वितीय पुत्र। सम्राट्ने वत्सगुल्म अथवा वाशिय (आधुनिक बरार) का अधीनस्थ शासक नियुक्त किया और उसीके द्वारा वाकाटक राजवंशकी वाशिय-शाखाकी नींव पड़ी।

सर्वेन्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी—का संगठन गोपाल कृष्ण गोखलेने १९०५ ई०में किया। इसका उद्देश्य देश-सेवार्थ कर्मठ समाज-सेवियोंको प्रशिक्षण देना तथा भारतीय जनसमुदायके यथार्थ हितोंकी वैधानिक विधियोंसे उन्नति

करना था। संस्थाके सदस्योंको किसी न किसी प्रकारकी निःस्वार्थ देशसेवा करनेका प्रशिक्षण देकर उन्हें उसके योग्य बनाया जाता था। इसके प्रथम अध्यक्ष गोखले और उनके उत्तराधिकारी श्रीनिवास शास्त्रीने पूरे मनोयोगसे अपने आपको भारतकी राजनीतिक प्रगतिको तीव्रतर करनेमें लगा दिया। इस संस्थाके तीसरे विशिष्ट सदस्य नारायण मल्हार जोशीने जनजीवनके सुधार एवं शिक्षा प्रसारार्थ १९१२ ई०में बम्बईमें सामाजिक सेवा संघकी स्थापना की।

जोशीने ही १९२० ई०में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेसकी नींव डाली, किन्तु इसका झुकाव धीरे-धीरे साम्यवादकी ओर होनेके कारण जोशीको सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाइटीसे अलग होना पड़ा।

सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाइटीके चौथे उल्लेखनीय सदस्य पंडित हृदयनाथ कुंजरू थे। उन्होंने प्रयागमें सेवासमितिकी स्थापना की। एक अन्य पाँचवें सदस्य श्रीराम बाजपेयीने १९१४ ई०में सेवासमिति बालचर संघका संगठन किया, जिसका उद्देश्य भारतमें बालचर आन्दोलनका श्रीगणेश करना था। सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाइटीके इन पाँचों उल्लेखनीय सदस्योंके कार्यकलापोंसे स्पष्ट है कि भारतमें राष्ट्रीय जीवनको विशिष्ट स्वरूप देनेमें इस संस्थाने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

सर्वोच्च न्यायालय–१९४९ ई०के भारतीय संविधान अधिनियमके अन्तर्गत इसकी स्थापना की गयी तथा २६ जनवरी १९५० ई०को इसका कार्य प्रारम्भ हुआ। भारतका प्रधान न्यायाधीश (सर हरिलाल कानिया भारतका पहला प्रधान न्यायाधीश था) इसका अध्यक्ष होता है। इसकी सहायताके लिए कई अन्य न्यायाधीशोंकी नियुक्ति की जाती है जो ६५ वर्षकी अवस्थातक पदासीन रहते हैं। इस न्यायालयमें सीधे मुकदमे भी दायर होते हैं और अपीलें भी की जाती हैं। यह भारतकी सबसे बड़ी अपील अदालत है और इसके निर्णयोंपर कोई अपील नहीं की जा सकती। यह न्यायालय भारतीय संविधानमें निरूपित किसी मूलभूत अधिकारका परिपालन करानेके लिए भी आदेश जारी कर सकता है।

सलावतजंग–हैदराबादके शासक आसफ़जाह निजामुल मुल्कका तृतीय पुत्र। फ्रांसीसियोंकी सहायतासे १७५१ ई०में वह निजाम बना तथा दस वर्षोंतक शासन करता रहा। प्रारम्भमें उसकी सत्ता फ्रांसीसी सैनिकोंके बलपर टिकी रही और फ्रांसीसी सेना-नायक बुसी उसके दरबारमें रहने लगा। सलावतजंगने फ्रांसीसी सैनिकोंपर होनेवाले व्ययके बदले उत्तरी-सरकारका जिला बुसीको दे रखा था। किन्तु १७५८ ई०में जब बुसीको हैदराबादसे वापस बुला लिया गया और फोर्डके नेतृत्वमें अंग्रेजी सेनाने पूर्वी तटके मार्गसे आकर मसुलीपट्टमपर अधिकार कर लिया तब सलावतगंज अंग्रेजोंसे मिल गया और उनकी सहायताके आश्वासनपर उत्तरी सरकारका जिला उनको सैनिक व्ययके लिए दे दिया। फिर भी १७६० ई०में मराठोंने उद्‌गीरके युद्धमें सलावतजंगको बुरी तरह परास्त किया और उसे अपने राज्यके कई महत्त्वपूर्ण भू-भाग मराठोंको दे देने पड़े। इस घटनाके उपरान्त ही १७६१ में उसके भाई निजाम अलीने उसकी हत्या कर दी।

सलीम चिश्ती, शेख–प्रसिद्ध मुसलमान सूफी संत, जो आगराके निकट सीकरीकी सूखी चट्टानोंपर निवास करता था। बादशाह अकबर पुत्रकी लालसासे उसके चरणोंपर जा गिरा। शेखने उसको तीन पुत्रोंका आशीर्वाद दिया। यह भविष्य-वाणी सत्य सिद्ध हुई और अकबरने अपने ज्येष्ठ पुत्रका नाम शेखके नामपर सलीम रखा। अकबरको विश्वास हो गया कि शेखके चरणोंके निकटका स्थल उसके लिए भाग्यशाली सिद्ध होगा और इसी कारण उसने सीकरीमें एक भव्य मस्जिद तथा नये नगरका निर्माण कराया। उसने इस स्थलका नाम फतेहपुर सीकरी रखा और उसे ही अपनी राजधानी बनाया।

सलीम, शाहजादा–अकबरके ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारीका प्रारम्भिक नाम। सिंहासनपर बैठनेके उपरान्त उसने जहाँगीर (दे०)की उपाधि ग्रहण की तथा इसी नामसे विख्यात भी हुआ।

सलीमा बेगम–बाबरकी पुत्री और अकबरकी फूफी। १५५७–५८ ई०में उसका विवाह पहले बैरम खांके साथ हुआ था, किन्तु बैरम खांके पतन और उसकी मृत्युके उपरान्त अकबरने स्वयं उससे विवाह कर लिया। वह अकबरकी मृत्युके बाद भी जीवित रही और उसका देहान्त १६१२ ई०में हुआ। वह सुसंस्कृत महिला थी तथा अकबरके हरममें उसका विशिष्ट स्थान था। अकबर और शाहजादा सलीमके प्रारम्भिक सम्बन्ध अच्छे न थे परन्तु उसके प्रयाससे दोनोंमें १६०३ ई०में मेल हो गया।

सलीवान, लारेंस–ईस्ट इण्डिया कम्पनीका एक डाइरेक्टर तथा राबर्ट क्लाइव (दे०)का विरोधी।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन–ब्रिटिश साम्राज्यवादके विरुद्ध भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा चलाये गये जन-आंदोलन

मेंसे एक। १९२९ ई०तक भारतको ब्रिटेनके इरादेपर शक होने लगा कि वह औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान करनेकी अपनी घोषणापर अमल करेगा कि नहीं। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने लाहौर अधिवेशन (१९२९)में घोषणा कर दी कि उसका लक्ष्य भारतके लिए पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना है। महात्मा गांधीने अपनी इस मांगपर जोर देनेके लिए ६ अप्रैल १९३० ई०को सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़ा, जिसका उद्देश्य कुछ विशिष्ट प्रकारके गैरकानूनी कार्य सामूहिक रूपसे करके ब्रिटिश सरकारको झुका देना था।

कानूनोंको जानबूझ कर तोड़नेकी इस नीतिका कार्यान्वयन औपचारिक रूपसे उस समय हुआ जब महात्मा गांधीने अपने कुछ चुने हुए अनुयायियोंके साथ 'साबरमती आश्रम' से समुद्र तटपर स्थित डांडी नामक स्थान तक कूच किया और वहाँपर लागू नमक कानूनको तोड़ा।

लिबरलों और मुसलमानोंके बहुत बड़े वर्गने इस आन्दोलनमें भाग नहीं लिया, किन्तु देशका सामान्य जन इस आंदोलनमें कूद पड़ा। हजारों नर-नारी और आबाल-वृद्ध कानूनोंको तोड़नेके लिए सड़कोंपर आ गये। संपूर्ण देश गंभीर रूपसे आंदोलित हो उठा। ब्रिटिश सरकारने आंदोलनको दबानेके लिए सख्त कदम उठाये और गांधीजी सहित अनेक कांग्रेसी नेताओं व उनके समर्थकोंको जेलमें डाल दिया। आन्दोलनकारियों और सरकारी सिपाहियोंके बीच जगह-जगह जबरदस्त संघर्ष हुए। शोलापुर जैसे स्थानोंपर औद्योगिक उपद्रव और कानपुर जैसे नगरोंमें साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे। हिंसाके इस विस्फोटसे गांधी जी चिन्तित हो गये। वे इस आन्दोलनको बिलकुल अहिंसक ढंगसे चलाना चाहते थे। सरकारने भी गांधी जी व अन्य कांग्रेसी नेताओंको रिहा कर दिया और वाइसराय लार्ड इरविन और गांधी जीके बीच सीधी बातचीतका आयोजन करके समझौतेकी अभिलाषा प्रकट की। गांधी जी और लार्ड इरविनमें समझौता हुआ, जिसके अन्तर्गत सविनय अवज्ञा आन्दोलन वापस ले लिया गया। हिंसाके दोषी लोगोंको छोड़कर आंदोलनमें भाग लेनेवाले सभी बंदियोंको रिहा कर दिया गया और कांग्रेस गोलमेज सम्मेलनके दूसरे अधिवेशन (१९३१) में भाग लेनेको सहमत हो गयी।

परन्तु गोलमेज सम्मेलनका यह अधिवेशन भारतीयोंके लिए निराशाके साथ समाप्त हुआ। इंग्लैण्डसे लौटनेके बाद तीन हफ्तोंके अन्दर ही गांधीजीको गिरफ्तार कर जेलमें ठूंस दिया गया और कांग्रेसपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इस काररवाईसे १९३२ ई० में सविनय अवज्ञा आन्दोलन फिर भड़क उठा। आंदोलनमें भाग लेनेके लिए हजारों लोग फिर निकल पड़े, किंतु ब्रिटिश सरकारने सविनय अवज्ञा आन्दोलनोंके इस दूसरे चरणको बर्बरतापूर्वक कुचल दिया। आंदोलन तो कुचल दिया गया, लेकिन उसके पीछे छिपी विद्रोहकी भावना जीवित रही, जो १९४२ ई०में तीसरी बार फिर भड़क उठी।

इस बार गांधीजीने ब्रिटिश सरकारके विरुद्ध 'भारत छोड़ो'-आन्दोलन छेड़ा। सरकारने फिर ताकतका इस्तेमाल किया और गांधीजी सहित कांग्रेस कार्यसमितिके सभी सदस्योंको कैद कर लिया। इसके विरोध में देश भरमें तोड़फोड़ और हिंसक आन्दोलन भड़क उठा। सरकारने गोलियाँ बरसायीं, सैकड़ों व्यक्ति मारे गये और करोड़ों रुपयेकी सम्पत्ति नष्ट हुई। यह आन्दोलन फिर दबा दिया गया, लेकिन इस बार यह निष्फल नहीं रहा। इसने ब्रिटिश सरकारको यह दिखा दिया कि भारतकी जनता अब उसकी सत्ताको ठुकराने और उसकी अवज्ञाके लिए कमर कस चुकी है और उसपर काबू पाना अब मुश्किल है। सन् ४२ में 'अंग्रेजों, भारत छोड़ो'-का जो नारा गांधीजीने दिया था, उसके ठीक पांच वर्षों बाद अगस्त १९४७ में ब्रिटेनको भारत छोड़नेके लिए मजबूर होना पड़ा।

सहकारिता आन्दोलन—मद्रासके एक सिविलियन (असैनिक अधिकारी) फ्रेडरिक निकल्सनके प्रस्तावपर अपने देशमें इसका आरम्भ हुआ। निकल्सनकी सिफारिशपर सहकारिता प्रणालीकी संभावनाओं और उपयोगिताका पता लगानेके लिए १९०१ ई०में एक समिति नियुक्त की गयी। १९०४ ई०में एक कानून पास हुआ, जिसका उद्देश्य सूदखोर महाजनोंके फंदेसे बचाकर लोगोंको उचित दरोंपर रुपया उधार दिलानेके वास्ते शहर और गाँवोंमें ऋण-समितियाँ गठित करना था। यहींसे भारतमें सहकारिता आंदोलनका श्रीगणेश माना जाता है। शीघ्र ही इस आन्दोलनने हर प्रांतमें उल्लेखनीय प्रगति की। १९१२ ई०में आन्दोलनका विस्तार करनेके विचारसे सहकारिता कानूनमें संशोधन करके ऋण न देनेवाली सहकारी समितियों, केन्द्रीय वित्तीय समितियों और संघोंको भी मान्यता दे दी गयी।

१९१९ ई०के शासन विधानके अन्तर्गत सहकारिता-

को प्रांतीय विषय बनाकर उसे भारतीय मंत्रियोंके जिम्मे कर दिया गया। शनैः-शनैः सहकारिता आंदोलनकी जड़ें जमने लगीं और कृषि ऋण समितियों, केन्द्रीय वित्तीय एजेन्सियों और प्रांतीय बैंकोंका गठन किया गया। कुछ प्रांतोंमें भूमि-बंधक बैंकोंकी स्थापना हुई, जिनका उद्देश्य किसानोंको पुराने कर्ज चुकानेके लिए उनकी भूमि बंधक बनाकर दीर्घकालिक ऋण देना है। १९२५ ई०के बाद अनाजों तथा अन्य फसलोंके मूल्योंमें भारी गिरावट आ जानेसे सहकारिता आन्दोलनको गहरा धक्का लगा। दूसरे विश्वयुद्धके बाद यद्यपि कीमतें ऊपर चढ़ीं, लेकिन फिर भी यह आन्दोलन आशानुरूप प्रगति नहीं कर सका। यदि उपभोक्ता बाण्डों, खासकर कृषि-उत्पादनोंकी खरीद-फरोख्त करने और मध्यमवर्गीय लोगोंको मकान बनानेकी सुविधाएँ प्रदान करनेकी दिशामें सहकारिता आंदोलनको अग्रसर किया जाय तो इसका काफी विस्तार हो सकता है। (**जे० पी० नियोगी कृत हिस्ट्री आफ दि कोआपरेटिव मूवमेंट इन इंडिया**)

साइमन कमीशन–इसकी नियुक्ति नवम्बर १९२७ ई०में हुई और अध्यक्ष सर जॉन (उपरांत वाई काउंट) साइमनके नामपर उसका यह नाम पड़ा। इस कमीशनका उद्देश्य १९१९ ई०के भारतीय शासन-विधान की कार्य-प्रणालीकी जाँच करके उसपर एक रिपोर्ट देना था। इसके सभी सदस्य अंग्रेज होने तथा इसमें भारतीयोंको न सम्मिलित किये जानेका तीव्र विरोध हुआ। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने इसके बहिष्कारका निश्चय किया, फलतः जहाँ कहीं भी कमीशन गया वहाँ लोगोंने हड़ताल की। तत्कालीन अंग्रेज सरकारने इस अहिंसक आंदोलनको तोड़नेके लिए हिंसाका सहारा लिया, जिससे जन-रोष उबल पड़ा। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने १९२९ ई० के लाहौर अधिवेशनमें अपना लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता घोषित किया।

साइमन कमीशनकी रिपोर्ट मई १९३० ई०में प्रकाशित हुई। इससे अत्यधिक निराशा फैली, क्योंकि उसमें केवल प्रान्तोंमें ही पूर्ण उत्तरदायी सरकार बनानेकी संस्तुति की गयी थी तथा केन्द्रमें उस समयतक यथावत् अंग्रेज सरकारके नियंत्रणमें शासन-व्यवस्था चालू रखनेकी सिफारिश की गयी थी, जब तक ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतोंका एक संघ नहीं बन जाता और जिसकी निकट भविष्यमें कोई आशा नहीं थी। राष्ट्रवादी भारतीयोंने कमीशनकी संस्तुतियोंको अस्वीकार कर दिया। इसका कुछ प्रभाव १९३५ ई०के भारतीय शासन-विधानपर पड़ा, जिनमें ब्रिटिश भारत और देशी रियासतोंके एक संघका प्राविधान किया गया। संघीय संविधानकी यह परिकल्पना १९४७ ई०में देशके स्वतंत्र होनेपर भारतीय गणतन्त्रके संविधानमें साकार हुई।

साइरस (कुरुष अथवा कुरु)–फारसका बादशाह (५५८ से ५३० ईसापूर्व) कहा जाता है कि उसने गदरोशिया या बलूचिस्तानके रास्ते भारतपर चढ़ाई की, किन्तु असफल रहा। बताया जाता है उसने प्राचीन नगर कपिशाको ध्वस्त किया था जो आधुनिक अफगानिस्तानमें स्थित है। यह भी कहा जाता है कि उस समय काबुल नदीकी घाटीमें बसे कुछ भारतीय गणराजाओंसे उसने कर वसूल किया।

सातकर्णि प्रथम–सातवाहन वंशका तीसरा शासक तथा कृष्णका पुत्र। कुछ विद्वान् उसे सिन्धुक अथवा सिमुकका पुत्र भी मानते हैं। उसने सम्पूर्ण दक्षिण तथा पूर्वी मालवाके भू-भागोंपर राज्य किया। यद्यपि उसकी शक्ति एवं सत्ताको एक बार खारवेल (दे०) ने चुनौती दी थी, फिर भी उसने अश्वमेध यज्ञ किया। इस वंशका वह इतना प्रतापशाली शासक सिद्ध हुआ कि उसके उपरान्तके कई उत्तराधिकारी शासकोंने उसीके नाम (सातकर्णि) का विरुद धारण किया।

सातवाहन वंश–आंध्र (गोदावरी और कृष्णा नदियोंकी घाटी) में सिमुक अथवा सिन्धुक नामक व्यक्तिने लगभग ६० ई०पू०में प्रचलित किया। सिमुकका आदि निवास-स्थान मद्रास प्रान्तमें स्थित बेलारीके निकट था, जहाँ सातवाहनोंकी एक बस्ती थी। अतः यह राजवंश आंध्र वंश और सातवाहन वंशके दो नामोंसे विख्यात है। इसके प्रारम्भ होनेका संवत्, राजाओंकी संख्या तथा उनका कुल राज्यकाल आदि प्रश्न अत्यंत विवादग्रस्त हैं। साधारणतया मान्य पौराणिक आख्यानोंके अनुसार सातवाहन वंशका आरम्भ सिमुकने शुंग काण्वों (दे०) की सत्ता नष्ट करनेके पश्चात् किया। उसके वंशमें प्रायः ३० शासक हुए, जिन्होंने लगभग ४०० वर्षोंतक राज्य किया।

सिमुकका राज्यकाल लगभग ६० ई०पू०से ३७ ई०पू० तक माना जाता है। इसके उपरान्त उसका भाई कृष्ण और कृष्णके उपरान्त उसका पुत्र सातकर्णि प्रथम शासक हुए। तीसरा शासक (सातकर्णि प्रथम) ही सातवाहन वंशकी शक्ति एवं सत्ताका मूल संस्थापक था। वह खारवेलका समकालीन था, जिसने सातकर्णिकी

शक्तिकी उपेक्षा की। किन्तु यह आघात अल्पकालिक सिद्ध हुआ होगा क्योंकि सातकर्णि (प्रथम) ने अश्वमेध यज्ञ किया और इसके द्वारा समस्त दक्षिण भारतपर अपनी सार्वभौम सत्ता स्थापित की। उसकी राजधानी गोदावरी नदीके तटपर प्रतिष्ठान (आधुनिक पैठन) नामक नगरी थी। उसकी महत्ता इसीसे स्पष्ट है कि उसके वंशजोंने सातकर्णिका विरुद धारण किया।

सातकर्णि प्रथमकी मृत्युके कुछ समय उपरान्त शकोंके आक्रमणोंके फलस्वरूप सातवाहनोंकी शक्तिमें ह्रास होने लगा और महाराष्ट्रमें शक क्षत्रप वंशका शासन शुरू हुआ, जो साधारणतया पश्चिमी क्षत्रप वंश कहा जाता है। किन्तु सातवाहन वंशके तेईसवें शासक राजा गौतमी पुत्र श्रीसातकर्णि (दे०) ने पश्चिमी क्षत्रपों-की शक्तिको नष्ट करके पुनः अपने वंशकी शक्ति, समृद्धि और सत्ता दक्षिण भारतमें स्थापित की। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी राजा वासिष्ठी पुत्र पुलुमाविने उज्जैनके शक महाक्षत्रप रुद्रदामा प्रथमकी पुत्रीसे विवाह किया, किन्तु उसके श्वसुर रुद्रदामाने उससे वह समस्त भू-भाग छीन लिया जिसे उसने पश्चिमी क्षत्रपोंको पराजित करके जीता था। सातवाहन वंशके सत्ताइसवें शासक यज्ञ श्री (सातकर्णि) ने उज्जयिनीके क्षत्रपोंसे उन भू-भागोंमेंसे कुछको पुनः अपने अधिकारमें करके अपनी वंशकीर्ति पुनः स्थापित की।

यज्ञश्रीने कई प्रकारकी मुद्राएँ (सिक्के) चलायीं, जिनमेंसे कुछपर जलपोत भी अंकित है। इससे प्रतीत होता है कि उसका साम्राज्य समुद्रोंतक विस्तृत था। सातवाहन वंशका वह अंतिम महान् शासक था। अंतिम तीन शासक क्रमशः विजय, चन्दश्री और पुलुमावि थे।

सातवाहन वंशके पतनके कारण निश्चयपूर्वक ज्ञात नहीं हैं। इस वंशके सभी शासक हिन्दू धर्मके कट्टर अनुयायी थे। उन्होंने वैदिक यज्ञों और समाजमें वर्णाश्रम व्यवस्थाको प्रतिष्ठित किया तथा विदेशी आक्रमक यवनों और शकोंसे संघर्ष करते रहे। फिर भी उनका धार्मिक दृष्टिकोण उदार था और उन्होंने बौद्ध तथा जैन विहारों तथा उपाश्रयोंको प्रभूत अनुदान दिये। उनके शासनकालमें वाणिज्य तथा व्यापार, कृषि एवं अन्य उद्योगोंको विशेष प्रोत्साहन मिला तथा सोने, चाँदी और ताँबेकी मुद्राओंका उनके शासन-कालमें विशेष प्रचलन हुआ।

सादुल्ला खाँ—मुगल सम्राट् शाहजहाँ (दे०) का वजीर। शाहजादा औरंगजेब (दे०) के साथ उसने कन्दहार दुर्ग के पहले और दूसरे घेरेमें भाग लिया, पर दुर्गपर अधिकार करनेमें सफलता न मिली। १६५४ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी।

सामवेद—चार वेदोंमेंसे एक। ऋग्वेदके उपरान्त इसीकी रचना हुई मानी जाती है। इस वेदमें कुल १५४९ ऋचाएँ हैं, जिनमेंसे ७५ को छोड़कर सभी ऋग्वेद संहितासे उद्धृत हैं। सामवेदकी ऋचाओंका गान विविध वैदिक यज्ञोंके अवसरपर होता था। सामवेदसे संबंधित पंचविंश ब्राह्मण तथा जैमिनीय ब्राह्मण हैं। सामवेदकी उपनिषद् छान्दोग्य अति प्राचीन मानी जाती है और केन उपनिषद् जैमिनीय ब्राह्मणका एक भाग है।

सामूगढ़का युद्ध—आगरासे लगभग ८ मीलकी दूरीपर रोगग्रस्त सम्राट् शाहजहाँके पुत्र दाराशिकोह और उसके दो छोटे भाइयों, औरंगजेब तथा मुरादकी समर्थक सेनाओंमें २९ मई १६५८ ई०को सिंहासनके लिए हुआ। इस भाग्यनिर्णायक युद्धमें दाराकी पूर्णतः पराजय हुई और विजयी औरंगजेब तथा मुरादने युद्धक्षेत्रसे प्रयाण कर आगराके किलेपर अधिकार कर लिया। इस प्रकार दाराकी अपने पिताके सिंहासनको प्राप्त करनेकी समस्त आशाएँ धूलमें मिल गयीं।

साम्प्रदायिक निर्णय (कम्यूनल एवार्ड)—४ अगस्त १९३२ ई० को ब्रिटिश प्रधानमन्त्री रेमजे मेकडोनाल्ड द्वारा दिया गया। इसी निर्णयके आधारपर नया भारतीय शासन-विधान बननेवाला था, जिसपर उस समय लंदनमें गोलमेज सम्मेलनमें विचार-विमर्श चल रहा था और जो बादको १९३५ई०में पास हुआ। साम्प्रदायिक निर्णय १९०९ई०के भारतीय शासन-विधानमें निहित साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वके सिद्धान्तपर आधारित था। १९०६ ई०में जब यह स्पष्ट हो गया कि देशके प्रशासनमें भारतीयोंको अधिक प्रतिनिधित्व देनेके लिए प्रचलित शासनविधानमें शीघ्र संशोधन किया जायगा, तब भारत स्थित कुछ अंग्रेज अधिकारियोंने वाइसराय लार्ड मिण्टो द्वितीयकी साठ-गाँठसे मुसलमानोंको प्रेरित किया कि वे हिज हाईनेस सर आगा खाँके नेतृत्वमें एक प्रतिनिधि-मण्डल वाइसरायके पास ले जायें।

इस प्रतिनिधिमण्डलने वाइसरायसे अनुरोध किया कि मुसलमानोंके हितोंकी रक्षा और उनके समुचित प्रतिनिधित्वके लिए उनके वास्ते खासतौरसे अलग निर्वाचनक्षेत्र बनाये जायँ। इन लोगोंने अपनी मांगका कारण यह बताया कि भारतमें अधिकतर मुसलमान बहुत ज्यादा गरीब हैं, जिसकी वजहसे वे सम्पत्ति

सम्बन्धी ग्रर्हताग्रोंके आधारपर तैयार की गयी मतदाता सूचीमें पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं पा सकेंगे। वाइसराय मिण्टो भारतमें, खासकर बंगालमें बढ़ती हुई राष्ट्रीयताकी लहर-को दबानेके लिए कोई न कोई उपाय खोज रहा था। उसने सोचा हिन्दू ग्रौर मुसलमानोंमें फूट पैदा कर देना सरकारके लिए लाभदायक होगा। इसी नियतसे लार्ड मिण्टो द्वितीयकी सरकारने मुसलमानोंकी माँग फौरन मान ली ग्रौर १६०६ ई० के भारतीय शासन-विधानमें इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलके निर्वाचनके लिए छह विशेष मुस्लिम जमींदार निर्वाचन क्षेत्रोंको व्यवस्था की। प्रांतोंके लिए भी इसी तरह ग्रलग निर्वाचन क्षेत्र बनाये गये।

ग्रंग्रेजोंका यह कदम षड्यंत्रसे भरा हुग्रा था ग्रौर इसे ठीक ही 'पाकिस्तानका बीजारोपण' कहा गया है। ग्रंग्रेजोंका गुप्त समर्थन पाकर मुसलमानों की पृथक् साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी माँग ग्रानेवाले वर्षोंमें जोर पकड़ती गयी ग्रौर इसे स्वीकार कर लिया गया। तीसरे दशकमें भारतीय शासनविधानमें जब संशोधन किये जाने-वाले थे साम्प्रदायिकताके ग्राधारपर विशेष प्रतिनिधित्व देनेकी माँग न केवल मुसलमानों वरन् सिख, ईसाई, जैन, पारसी ग्रौर जनजातियोंकी तरफसे भी उठायी गयी। भारतीयोंकी एकताको नष्ट करनेवाली यह फूट उस समय सामने ग्रा गयी। भारतीय ग्रापसमें कोई समझौता न कर सके।

लंदनमें इस प्रश्नपर विचार करनेके लिए लगातार तीन गोलमेज़ सम्मेलन हुए, जिनका कोई नतीजा नहीं निकला। ऐसी स्थितिमें ब्रिटेनके प्रधानमन्त्री रैमजे-मैकडोनाल्डको 'फूट डालो ग्रौर शासन करो'के सिद्धांत-को कार्यरूपमें परिणत करनेका उत्तम ग्रवसर मिल गया। उसने ४ ग्रगस्त १६३२ ई० को "साम्प्रदायिक निर्णय" घोषित किया। यह पंच-फैसला नहीं, भारतीय जनतापर थोपा गया ग्रादेश था, क्योंकि कांग्रेसने इसके लिए कभी माँग नहीं की थी। इस निर्णयमें भारतीयों-में न केवल धर्म, वरन् जातिके ग्राधारपर भी विभाजन-को मान्यता दी गयी ग्रौर हिन्दुग्रोंके दलित वर्गोंको भी पृथक् प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। यह व्यवस्था ग्रत्यन्त शरारतपूर्ण थी, क्योंकि इसका उद्देश्य हिन्दुग्रोंको हमेशाके लिए दो टुकड़ों में बाँट देना था।

महात्मा गांधीने इस निर्णयके विरुद्ध जब ग्रामरण ग्रनशन किया तब २४ सितम्बर १६३२ ई० को पूना पैक्ट (समझौता) के द्वारा उसमें संशोधन किया गया। इसके ग्रनुसार दलित वर्गोंको हिन्दुग्रोंका ग्रभिन्न ग्रंग माना गया, लेकिन फिर भी देशके विधानमण्डलोंमें उन्हें सामान्य तथा विशिष्ट दोनों प्रकारका प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। साम्प्रदायिक निर्णयने जहाँ विभिन्न राज्य विधानमण्डलोंमें दलित वर्गोंके लिए ७३ सीटें ग्रावंटित कीं, वहाँ पूना पैक्टने उन्हें केन्द्रीय विधानमण्डलमें १४८ विशिष्ट सीटें ग्रौर १८ प्रतिशत सामान्य सीटें ग्रावंटित कीं। मुसलमानोंकी सीटें ग्रपरिवर्तित रहीं। इस प्रकार भारतीय निश्चित रूपसे दो समुदायोंमें बँट गये ग्रौर उसका परिणाम ग्रंततः यह निकला कि १६४७ ई० में भारतका विभाजन करना पड़ा। **(जे०मोर्ले कृत 'रिफले-क्शन्स', एम० एन० दास कृत "इंडिया अंडर मोर्ले एण्ड मिण्टो"–पांचवां अध्याय)**

सायण–चारों वेदोंका सर्वाधिक प्रसिद्ध मध्यकालीन भाष्य-कार। वह महान् राजनीतिज्ञ भी था ग्रौर विजयनगरके शासक हरिहर द्वितीयका मन्त्री भी रहा। उसकी मृत्यु १३८७ ई० में हुई।

सारनाथ–वाराणसीके निकट स्थित बौद्धोंका पवित्र तीर्थ-स्थान। गौतम बुद्धने ग्रपना धर्मचक्र प्रवर्तन सारनाथमें ही किया था। उपरान्त सम्राट् ग्रशोकने उसी स्थलपर स्मारक रूपमें उस भव्य प्रस्तरस्तम्भकी स्थापना की जिसका प्रसिद्ध सिंह शीर्ष ग्रशोक-कालीन कलाका ग्रद्वि-तीय उदाहरण है ग्रौर भारत सरकारने उसे ही ग्रपने राजचिह्नके रूपमें ग्रपनाया है। सारनाथमें ग्रनेक बौद्ध बिहारों तथा स्तूपोंके ध्वंसावशेष, विभिन्न देशोंके ग्रौर धर्मोंके मन्दिर हैं ग्रौर ग्रनेक कलाकृतियाँ वहाँके संग्रहा-लयमें संगृहीत हैं।

सार्वजनिक निर्माण विभाग–इसकी स्थापना गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजी (१८४८–५६ई०)ने की। उसने ब्रिटिश भारतीय साम्राज्यके ग्रन्दर सभी निर्माण कार्य ग्रौर सड़कोंकी मरम्मतका कार्य इसके जिम्मे कर दिया।

सालबाईकी संधि–मई १७८२ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी ग्रौर मोहादजी शिन्देके बीच हुई। फरवरी १७८३ ई०में पेशवाकी सरकारने इसकी पुष्टि कर दी। इसके फल-स्वरूप १७७५ ई० से चला ग्रा रहा प्रथम मराठा-युद्ध समाप्त हो गया। सन्धिकी शर्तोंके ग्रनुसार साष्टी टापू ग्रंग्रेजोंके ग्रधिकारमें ही रहा, परन्तु उन्होंने राघोबा (दे०)का पक्ष लेना छोड़ दिया ग्रौर मराठा सरकारने इसे पेंशन देना स्वीकार कर लिया। ग्रंग्रेजोंने माधवराव-नारायणको पेशवा मान लिया ग्रौर यमुना नदीके पश्चिम-का समस्त भू-भाग शिन्देको लौटा दिया। ग्रंग्रेजों ग्रौर

मराठोंमें यह सन्धि २० वर्षों तक शान्तिपूर्वक चलती रही, पर इससे अंग्रेजोंको ही विशेष लाभ हुआ; क्योंकि अब उन्हें टीपू सुल्तान सदृश अन्य शत्रुओंसे निश्चिन्तता-पूर्वक निपटने तथा अपनी शक्ति एवं स्थिति सुदृढ़ करनेका अवसर मिल गया।

सालारजंग, सर (१८२९–८३)–१८५७ ई० के सिपाही-विद्रोहके दिनोंमें हैदराबादके निजामका प्रधानमन्त्री, जो विद्रोहके कालमें अंग्रेज सरकारका पूर्ण भक्त रहा। इसीके फलस्वरूप उसे सरकार द्वारा 'सर'की उपाधि प्रदान हुई। सालारजंग कुशल प्रशासक भी था और उसने निजामकी शासन-व्यवस्थामें अनेक सुधार किये। हैदराबादमें 'सालारगंज संग्रहालय' दर्शनीय है जिसमें विविध प्रकारकी प्राचीन वस्तुएँ संगृहीत हैं।

सालुव तिम्म–विजयनगरके शासक कृष्णदेव राय (१५०३-३०)का मंत्री और सेनापति। कृष्णदेव रायकी सफलतामें सालुव तिम्मकी नीति-कुशलता और रणचातुरीका बड़ा हाथ था। वह रामराजा (रामराय) (दे०)का पिता था जो १५६५ ई०में तालीकोटके युद्धमें मारा गया था। सालुव तिम्म विद्वान् और लेखक भी था। उसने बाल भारत (दे०) नामक महाकाव्यपर 'मनोहर' (दे०) नामक टीकाकी रचना की थी।

सालुव नरसिंह–विजयनगरके सालुव अथवा द्वितीय राजवंशका संस्थापक तथा प्रथम शासक। नरसिंह विजयनगरके अधीनस्थ चन्द्रगिरिका अधिनायक था। वह संगम अथवा प्रथम राजवंशके अंतिम शासक प्रौढ़देवके कालमें उच्च पदाधिकारी था। बहमनी वंशके सुल्तान और उड़ीसाके शासककी सेनाओंसे विजयनगर राज्यकी रक्षा करनेमें प्रौढ़देवको असमर्थ देखकर नरसिंहने उसको अपदस्थ कर दिया और स्वयं सिंहासनासीन हो गया। उसने उड़ीसाके राजा और बहमनी सुल्तान द्वारा विजयनगरके अधिकृत भू-भागोंमेंसे अधिकांशको पुनः जीत लिया। सालुव नरसिंह दो पुत्रोंको अपने विश्वासपात्र सेनापति नरेश नायकके संरक्षणमें छोड़कर १४९०–९१ ई०में परलोकगामी हुआ।

सालुव वंश–विजयनगरका द्वितीय राजवंश। इसका शासन-काल अनुमानतः १४८६ से १५०३ ई० तक रहा। इसका प्रारम्भ लगभग १४८६ ई०में चन्द्रगिरिके नायक सालुव नरसिंहने तत्कालीन अयोग्य शासक प्रौढ़देवको सिंहासनच्युत करके किया था। प्रौढ़देवके साथ ही विजयनगरके प्रथम अथवा संगम राजवंशका अन्त हो गया। सालुव नरसिंहके अतिरिक्त इस वंशमें इम्मादी नरसिंह नामक केवल एक और शासक हुआ, जिसे लगभग १५०५ ई०में तुलुवके नरसा नरेश नायकके पुत्र वीर नरसिंहने अपदस्थ कर दिया।

सावरकर, विनायक दामोदर (१८८३–१९६६)–अंग्रेजी सत्ताके विरुद्ध भारतकी स्वतंत्रताके लिए संघर्ष करनेवाले विनायक दामोदर सावरकर साधारणतया वीर सावरकरके नामसे विख्यात थे। १९४० ई०में उन्होंने पूनामें 'अभिनव भारती' नामक एक ऐसे क्रांतिकारी संगठनकी स्थापना की, जिसका उद्देश्य आवश्यकता पड़नेपर बल-प्रयोग द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करना था। जब वे विलायतमें कानूनकी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, तभी १९१० ई०में एक हत्याकांडमें सहयोग देनेके अभियोगमें वन्दी बना लिये गये और विचाराधीन कैदीके रूपमें एक जहाज द्वारा भारत रवाना कर दिये गये। परन्तु फ्रांसके मार्सेलीज़ बन्दरगाहके समीप जहाजसे वे समुद्रमें कूदकर भाग निकले, किन्तु पुनः पकड़े गये और भारत लाये गये। यहाँ एक विशेष न्यायालय द्वारा उनके अभियोगकी सुनवाई हुई और उन्हें आजीवन कालेपानीकी दुहरी सजा मिली। १९३७ ई०में उन्हें मुक्त कर दिया गया, परन्तु भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसको उनका समर्थन न प्राप्त हो सका और १९४८ ई०में महात्मा गांधीकी हत्यामें उनका हाथ होनेका संदेह किया गया। बादमें वे निर्दोष सिद्ध हुए और उन्होंने राजनीतिसे संन्यास ले लिया। उन्होंने अनेक ग्रंथोंकी रचना की, जिनमें 'भारतीय स्वातंत्र्य युद्ध', 'मेरा आजीवन कारावास' और 'अण्डमानकी प्रतिध्वनियाँ' (सभी अंग्रेजीमें) अधिक प्रसिद्ध हैं।

साष्टी–बम्बईके उत्तर एक द्वीप, जिसका क्षेत्रफल २४१ वर्गमील है। अब यह द्वीप बम्बई नगरसे पुल तथा सड़कों द्वारा पूर्ण रूपसे जुड़ गया है। साष्टीके प्राचीन गुहा-मन्दिर और भग्नावशेष दर्शनीय हैं। प्रथम मराठा-युद्ध प्रारम्भ होनेपर अंग्रेजोंने १७७५ ई०में साष्टी (दे०) पर अधिकार कर लिया और १७८३ ई०की सालबाईकी संधिके अनुसार यह द्वीप अंग्रेजोंको दे दिया गया।

सि–कुषाण सम्राट् कथफिश द्वितीय (दे०)का राज प्रतिनिधि। उसने पामीर पार करके चीनपर आक्रमण किया, किन्तु पराजित हो गया।

सिंघण–देवगिरिके यादव वंशका सबसे शक्तिशाली शासक। १३ वीं शताब्दीके प्रारंभमें अपने पिता जैतुगी (जैत्रपाल) के उपरांत वह शासक हुआ तथा १२४६ ई० मृत्युपर्यन्त राज्य किया। उसने चारों दिशाओंमें विजय यात्राएँ कीं। उसके राज्यमें मध्य तथा पश्चिमी दक्षिणापथके

समस्त भू-भाग थे। वह साहित्य तथा कलाका भी महान् पोषक था। उसके आश्रित विद्वान् शार्ङ्गधरने संगीतपर 'संगीत रत्नाकर' नामक ग्रंथ लिखा, जिसपर स्वयं सिंघणने एक टीका लिखी। उसने भास्कराचार्य द्वारा रचित 'सिद्धान्तशिरोमणि' तथा ज्योतिष संबंधी अन्य ग्रंथोंके अध्ययनके लिए एक विद्यालयकी स्थापना की।

सिंह विष्णु, पल्लव—कांचीके पल्लव वंशका प्रारंभिक शासक। उसने छठीं शताब्दी ई०के अंतिम चरणमें राज्य किया। अभिलेखोंके अनुसार उसने केवल पांड्य, चेर और चोल राजाओंको ही नहीं, बल्कि श्रीलंकाके शासकको भी पराजित किया।

सिकन्दर महान—मैसिडोनिया (मकदूनिया) का राजा (३५६–३२३ ई० पू०)। उसने अपने दिग्विजय अभियानमें फरवरी-मार्च ३२६ ई० पू० ओहिन्दके निकट नावोंके पुलसे सिन्धु नदी पारकर भारतपर आक्रमण किया। उस समय पंजाब और सिन्धमें अनेकानेक छोटे-छोटे राज्य थे जो आपसमें लड़ा करते थे। उनमें कुछ में राजतंत्र था और कुछ गण या नगर राज्य थे। उनमें केवल एकताका ही अभाव न था, वरन वे परस्पर शत्रुता और प्रतिस्पर्द्धा भी रखते थे। उनमेंसे कुछ राज्य विस्तार अथवा अपने पड़ोसी राज्यसे बदला लेनेकी आकांक्षासे विदेशी आक्रमणकारीसे भी मिल जानेमें संकोच नहीं करते थे। तक्षशिलाका राजा आम्भि भी इन्हींमेंसे एक था जो सिकन्दरसे मिल गया था। इससे सिकन्दरकी सेनाको एक तो विश्राम मिल गया, जिसकी उसे बड़ी आवश्यकता थी; इसके अलावा उसे हाथियोंके युद्धकी कला सीखनेका अवसर भी मिल गया, जिनसे यवन सैनिक बहुत डरते थे और जिसपर भारतीय सेनाकी रक्षा-व्यवस्था मुख्यतया निर्भर थी।

तक्षशिलाके राजा आम्भिने भारतके द्वार-रक्षकके रूपमें अपना कर्तव्य न निभाकर सिकन्दरको झेलमके तट तक पहुँचनेमें भारी मदद दी और इसीके फलस्वरूप उसने राजा पुरु (पोरस) को युद्धमें हरा दिया, जिसका राज्य झेलम और चनाब नदियोंके बीच था। इस लड़ाईमें सिकन्दरकी जीतका मुख्य कारण यह था कि उसकी सेना अधिक गतिशील थी। उसके घुड़सवार और अश्वारोही तीरन्दाज सैनिकोंने कम गतिशील हाथी, पदाति और पैदल तीरन्दाज सैनिकोंको हरा दिया। इसके बाद सिकन्दर पूर्वकी ओर आगे बढ़ा और चनाब और रावी नदियोंको पारकर व्यास (हाइफैसिस) नदीके किनारे पहुँचा, जिसके बाद प्रेसिआई (प्राच्य) अर्थात् मगधके नन्द राजाका राज्य शुरू हो जाता था। इसके पहले सिकन्दरने पंजाबके उन राज्यों और गणोंको पराजित कर दिया था जो सिन्धु और व्यास नदीके बीचमें बसे थे। यद्यपि इन राज्यों और गणोंने सिकन्दरके हमलेका मुकाबला संयुक्त होकर नहीं किया, तथापि इनमेंसे हर एक बड़ी वीरतासे लड़ा था।

पोरसके शरीरमें नौ घाव लगे थे, फिर भी वह लड़ाईके मैदानसे भागा नहीं और सिकन्दरने उसके साथ उदारताका व्यवहार किया। अस्सकेन लोगोंने अपने गढ़ मसगमें बड़ी वीरतासे सिकन्दरका सामना किया था। सिकन्दरको उनका मसग्ग दुर्ग जीतनेमें लोहेके चने चबाने पड़े थे। वह दगाबाजी करके ही उनका दुर्ग जीत सका। उसने वादा किया था कि वह मसग्ग दुर्ग छोड़नेपर सात हजार भारतीय सैनिकोंको सकुशल चला जाने देगा, लेकिन दुर्गसे उसने निकलनेपर उन सब सैनिकोंको मौतके घाट उतार दिया। दियोदोरसके अनुसार मसगमें औरतों तकने हथियार उठा लिये और पुरुषोंके साथ कंधेसे कंधा भिड़ाकर सिकन्दरकी सेनाका मुकाबला किया।

हिन्दुस्तानियोंकी वीरताके इस अनुभव और इस सूचनासे कि मगधका राजा बड़ा बलवान है, सिकन्दरके सैनिकोंमें आतंक फैल गया। प्लूटार्कने लिखा है कि सिकन्दरके सैनिकोंने आगे बढ़नेसे इन्कार कर दिया। इसीलिए सिकन्दर व्यासके तटपर रुक गया और वहाँसे झेलम तक लौटकर, नदी मार्गसे विशाल बेड़ेके द्वारा सिन्धु नदीके मुहाने तक पहुँचा। रास्तेमें अनेक राज्यों और दक्षिणी पंजाब और सिन्धके लोगोंसे उसका घोर युद्ध हुआ। इन लोगोंने सिकन्दरका कड़ा मुकाबला किया लेकिन वे विदेशी शत्रुके विरुद्ध, संयुक्त मोर्चा नहीं बना सके। सिकन्दरने मालव, क्षुद्रक, मूसिकनोई तथा ब्राह्मणक गणोंको पराजित किया। मालव (यूनानियोंके अनुसार मल्लोइ) लोग मूल्तानसे ८० मील पूर्वोत्तर दिशामें रहते थे। उन लोगोंने सिकन्दरको गम्भीर रूपसे घायल कर दिया।

सिकन्दरने प्रतिशोधमें उस गणके सभी लोगोंका संहार करा दिया, यहाँ तक कि औरतों और बच्चों तकको जीवित नहीं छोड़ा। सिन्धु नदीके मुहानेपर पहुँचकर सिकन्दरने अपनी सेनाको तीन हिस्सोंमें बाँटा। नौसेनाको एडमिरल नियार्कसके नेतृत्वमें फारसकी खाड़ीमें फरात नदीके मुहाने तक जानेका आदेश दिया गया। सेनाके दूसरे हिस्सेको क्रेटिरोसके नेतृत्वमें समुद्रके

किनारे-किनारे और तीसरे भागको सिकन्दरकी कमानमें गदरोसिया (मकरान) होकर फारस वापस लौटनेका आदेश दिया गया। सितम्बर ३२५ ई० पू०में सिकन्दर महान हिन्दुस्तानमें १९ महीनेके अभियानके बाद वापस लौटा। उसका भारतमें प्रवेश मार्च ३२६ ई० पू० में हुआ था। उसकी नौसेना और सेनाके दोनों हिस्से मई ३२४ ई० पू०में फारसके सूसानगर पहुँच गये। इसके एक वर्ष बाद जून ३२३ ई० पू०में सिकन्दरकी मृत्यु बेबीलोन नगरमें हो गयी।

भारतपर सिकन्दरके आक्रमणको कभी-कभी अतिरंजित महत्त्व दिया जाता है। सैनिक दृष्टिसे यह निःसंदेह एक बड़ी सफलता थी और समूचे पंजाब और सिन्धको सिकन्दरने १९ महीनेके अभियानमें जीत लिया। लेकिन इस बातको भी याद रखना चाहिए कि यह विजय इसलिए सम्भव हुई कि सिकन्दरके विरोधमें खड़े होनेवाले भारतीयोंमें एकता नहीं थी। इसके बाद भी उसकी विजय अस्थायी सिद्ध हुई। जब सिकन्दरकी सेना करमानिया होकर (३२४ ई० पू०) वापस लौट रही थी, उसी समय उत्तरी सिन्धमें उसके क्षत्रप फिलिप्पोसकी हत्या कर दी गयी। इसके कुछ समय बाद ही भारतीय क्षेत्रोंपर आधिपत्य करनेवाली यवन सेना पराजित कर दी गयी और ३२३ ई० पू०में अपनी मृत्यु होनेसे पूर्व स्वयं सिकन्दर उन क्षेत्रोंपर दुबारा अधिकार नहीं कर सका। उसकी मृत्युके बाद भारतमें उसके विजित क्षेत्र उसके उत्तराधिकारियोंके हाथसे निकल गये। उसने जहाँ-जहाँ यवन बस्तियाँ स्थापित की थीं, वे भी समाप्त हो गयीं। जैसा कि वी० ए० स्मिथने लिखा है—"सिकन्दरका अभियान एक सफल फौजी हमला मात्र था, जिसका भारतपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। केवल युद्धकी बर्बरताकी एक याद बाकी रह गयी। भारतमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ और उसपर यवनोंकी कोई छाप नहीं पड़ी।" भारतके हिन्दू, बौद्ध, जैन सभी लेखकोंने सिकन्दरकी उपेक्षा की, क्योंकि भारतकी दृष्टिसे वह एक बर्बर लुटेरा मात्र था, जिसने दिग्विजयकी आकांक्षामें बहुतसे निर्दोष मर्द, औरतों और बच्चोंकी हत्या कर डाली। पर उसके आक्रमणसे भारत और यूनानके बीचका रास्ता खुल गया और जो यवन बस्तियाँ भारतके पश्चिमोत्तर सीमा-क्षेत्रमें स्थापित की गयीं वे भारतीय और यवन संस्कृतिके बीच आदान-प्रदानका माध्यम बन गयीं।

सिकन्दर शाह (१४८९–१५२७)–लोदी वंशके प्रवर्तक बहलोल लोदी (दे०) का पुत्र और उत्तराधिकारी। वह कुशल और कर्मठ शासक था। उसने चारों ओर फैली हुई अव्यवस्थाको दूर करके विद्रोही प्रान्तीय शासकों, सरदारों तथा जमींदारोंका दमन किया और इस प्रकार सुल्तान पदकी मर्यादा और शक्तिको पुनः स्थापित किया। प्रमुख अफगान जागीरदारोंके लेखे-जोखेकी जाँच करके राज्यके राजस्वमें वृद्धि की। बंगालकी सीमाओंतक अपनी सत्ताका विस्तार किया और वहाँके तत्कालीन शासक अलाउद्दीन हुसेन खाँसे इस आशयकी संधि की कि दोनों एक दूसरेके राज्यके भू-भागोंपर अधिकार करनेकी चेष्टा न करेंगे। धौलपुर और चन्देरीके शासकोंको अपनी अधीनता स्वीकार करनेपर विवश किया तथा १५०४ ई०में जहाँ आधुनिक आगरा स्थित है, वहीं एक नगरकी नींव डाली, जिससे निकटवर्ती शासकोंपर नियंत्रण रखा जा सके। मृत्युपर्यन्त वह अपने राज्यकी अव्यवस्था दूर करनेका असफल प्रयास करता रहा। १५१७ ई०में आगरामें उसकी मृत्यु हुई।

सिकन्दर शाह–शेरशाहका भतीजा और उसके द्वारा संस्थापित सूरवंशका पाँचवाँ तथा अन्तिम शासक। १५५५ ई०में जब वह पंजाबका सूबेदार था तब अफगानोंने उसे बादशाह घोषित कर दिया, किन्तु शीघ्र ही हुमायूँने उसे सरहिन्दके निकट एक युद्धमें परास्त कर दिया। पराजित होकर वह शिवालिककी पहाड़ियोंकी ओर चला गया, पर वहाँसे भी अकबरने १५५७ ई०में उसे भगा दिया। तब वह भागकर बंगालकी ओर गया, जहाँ १५५८–५९ ई०के बीच उसकी मृत्यु हो गयी।

सिक्ख–गुरु नानक (दे०) (१४६९–१५३८ ई०) के अनुयायी। मुख्यतया पंजाब ही उनका निवास-स्थान है। प्रारम्भमें वे शान्तिप्रिय थे और उनमें परस्पर जाति-पाँतिका कोई भेद-भाव न था, हालांकि उनमेंसे अधिकांश हिन्दूसे सिक्ख बने थे। वे सभी धर्मोंमें निहित आधारभूत सत्यमें विश्वास करते हैं और उनका दृष्टिकोण धार्मिक अथवा सम्प्रदायिक पक्षपातसे रहित और उदार है। १५३८ ई०में गुरु नानककी मृत्युके उपरांत सिक्खोंका मुखिया गुरु कहलाने लगा। उनके नौ गुरु क्रमशः अंगद (१५३८–१५५२ ई०), अमरदास (१५५२–१५७४ ई०), रामदास (१५७४–१५८१), अर्जुन (१५८१–१६०६ ई०), हरगोविन्द (१६०६–४५ ई०) हरराय (१६४५–६१ ई०), हरकिशन (१६६१–६४ ई०), तेज बहादुर (१६६४–७५ ई०) और गोविन्द सिंह (१६७५–१७०८ ई०) हुए।

चौथे गुरु रामदास अत्यन्त साधु प्रकृतिके व्यक्ति थे, इसलिए बादशाह अकबर भी उनका आदर करता था। उसने अमृतसरमें एक जलाशयसे युक्त भू-भाग उन्हें दान दिया, जिसपर आगे चलकर सिक्ख-स्वर्णमंदिरका निर्माण हुआ। पाँचवें गुरु अर्जुनने सिक्खोंके 'आदि ग्रंथ' नामक धर्म ग्रंथका संकलन किया, जिसमें उनके पूर्वके चारों गुरुओं तथा कुछ हिन्दू और मुसलमान संतोंकी वाणी संकलित है। उन्होंने खालसा पंथकी आर्थिक स्थितिको दृढ़ता प्रदान करनेके लिए प्रत्येक सिक्खसे धार्मिक चंदा वसूल करनेकी प्रथा चलायी। बादशाह जहाँगीरके आदेशपर गुरु अर्जुनका इस कारण वध कर दिया गया कि उन्होंने दयाके वशीभूत होकर बादशाहके विद्रोही पुत्र शाहजादा खुसरो (दे०) को शरण दी थी।

गुरु अर्जुनके पुत्र गुरु हरगोविन्दने सिक्खोंका सैनिक संगठन किया, एक छोटी-सी सिक्खोंकी सेना एकत्र की। उन्होंने शाहजहाँके विरुद्ध विद्रोह करके एक युद्धमें शाही सेनाको परास्त भी कर दिया। किन्तु अंतमें उन्हें भागकर कश्मीरके पर्वतीय प्रदेशमें शरण लेनी पड़ी। वहीं उनकी मृत्यु हुई। अगले दोनों गुरु हरराय और हरकिशनके कालमें कोई उल्लेखनीय घटना नहीं घटी। उन्होंने गुरु अर्जुन द्वारा प्रचलित धार्मिक चन्देकी प्रथा एवं उनके पुत्र हरगोविन्दकी सैनिक-संगठनकी नीतिका अनुसरण करके खालसा पंथको और शक्तिशाली बनाया। नवें गुरु तेग बहादुरको औरंगजेबका कोप-भाजन बनना पड़ा। उसने गुरुको बन्दी बनाकर उनके सम्मुख प्रस्ताव रखा कि या तो इस्लाम धर्म स्वीकार करो अथवा प्राण देनेके लिए तैयार हो जाओ। बादमें उनका सिर उतार लिया गया। उनकी शहादतका समस्त सिक्ख सम्प्रदाय, उनके पुत्र तथा अगले गुरु गोविन्दसिंह (दे०) पर गंभीर प्रभाव पड़ा।

गुरु गोविन्द सिंहने भली-भाँति विचार करके शांतिप्रिय सिक्ख सम्प्रदायको सैनिक संगठनका रूप दिया, जो दृढ़तापूर्वक मुसलमानोंके अतिक्रमण तथा अत्याचारोंका सामना कर सके। साथ ही उन्होंने सिक्खोंमें ऐसी अनुशासनकी भावना भरी कि वे लड़ाकू शक्ति बन गये। उन्होंने अपने पंथका नाम खालसा (पवित्र) रखा। साथ ही समस्त सिक्ख समुदायको एकता-सूत्रमें आबद्ध करनेके विचारसे सिक्खोंको केश, कच्छ, कड़ा, कृपाण और कंघा—पाँच वस्तुओंको आवश्यक रूपमें धारण करनेका आदेश दिया। उन्होंने स्थानीय मुगल हाकिमोंसे कई युद्ध किये, जिनमें उनके दो बालक पुत्र मारे गये, किन्तु वे हतोत्साहित न हुए। मृत्यु पर्यन्त वे सिक्खोंका संगठन करते रहे। १७०८ ई०में एक अफगानने उनकी हत्या कर दी।

आगे चलकर गुरु गोविन्द सिंहकी रचनाएं भी संकलित हुईं और यह संकलन 'गुरु ग्रंथ साहब'का परिशिष्ट बना। समस्त सिक्ख समुदाय उनका इतना आदर करता था कि उनकी मृत्युके उपरांत गुरु पद ही समाप्त कर दिया गया, यद्यपि उनके उपरांत ही बन्दा वीर (दे०) ने सिक्खोंका नेतृत्व-भार सँभाल लिया। वीर बन्दाके नेतृत्वमें १७०८ ई०से लेकर १७१६ ई० तक सिक्ख निरन्तर मुगलोंसे लोहा लेते रहे, पर १७१६ ई०में बन्दा बन्दी बनाया गया और बादशाह फर्रुखशियर (दे०) (१७१३–१९ ई०) की आज्ञासे हाथियोंसे रौंदवाकर उसका निर्मम हत्या कर दी गयी। सैंकड़ों सिक्खोंको घोर यातनाएँ दी गयीं, फिर भी इन अत्याचारोंसे खालसा पंथकी सैनिक शक्तिको दबाया न जा सका। गुरुके अभावमें, व्यक्तिगत नेतृत्वके स्थानपर, संगठनका भार कई व्यक्तियोंके एक समूहपर आ पड़ा, जिन्होंने अपनी क्षमता और योग्यताके अनुसार अपने सहधर्मियोंका संगठन किया।

फैजुल्लापुरके कपूर सिंहने खालसा दल अथवा सिक्ख राज्यकी नींव डाली। अन्य सिक्ख सरदारोंने नादिरशाहके आक्रमणके उपरान्त पंजाबमें फैली हुई अव्यवस्थाका लाभ उठाकर सिक्खोंका संगठन किया और रावीके तटपर डालीवालमें एक दुर्गका निर्माण कराया तथा लाहौर तक धावे मारने शुरू कर दिये। अहमदशाह अब्दालीके बार-बारके आक्रमणों और विशेषकर १७६८ ई०के पानीपतके तृतीय युद्धने पंजाबमें सिक्खोंकी शक्ति बढ़ानेमें विशेष योग दिया, क्योंकि उनके प्रयाससे पंजाबमें मुगल शासन समाप्त-प्राय हो गया था तथा सिक्खोंमें नवीन आशा एवं साहसका संचार हो रहा था। वे अब्दालीका पीछा करते रहे और छापामार युद्धकी नीति अपनाकर पंजाबमें उसकी स्थितिको विषम बना दिया। अंततः १७६७ ई०में उसके भारतसे अफगानिस्तान लौट जानेपर सिक्खोंने अपनी वीरता तथा अध्यवसायसे पंजाबके समस्त मैदानी भागको अपने नियन्त्रणमें ले लिया।

१७७३ ई० तक उनका अधिकारक्षेत्र पूर्वमें सहारनपुरसे पश्चिममें अटक तक तथा उत्तरमें पहाड़ी भागसे लेकर दक्षिणमें मुलतान तक विस्तृत हो गया। इस प्रकार सिक्ख अपने लिए एक स्वतंत्र राज्यकी स्थापना

करनेमें सफल हुए, किन्तु उनमें एक शासकीय ईकाईका अभाव था। वे बारह मिसलों (टुकड़ियों) में विभक्त थे, जिनके नाम क्रमशः अहलू वालिया, भाँगी, डलवालिया, फैज्जुलापुरिया, कन्हैया, करोड़ा सिंहिया, नकाई, निहंग, निशानवाला, फुलकिया, रामगढ़िया और सुकरचकिया थे। अहमदशाह अब्दाली और मुगलोंकी सत्ताके पतनके उपरान्त सिक्ख किसी भी बाह्य शक्तिके भयसे रहित होकर परस्पर संघर्षरत हो गये। फलतः उपर्युक्त बारह मिसलोंके छिन्न-भिन्न होनेकी स्थिति उत्पन्न हो गयी, किन्तु सुकरचकिया मिसलके नायक रणजीत सिंहने अपनी योग्यता और बुद्धिमत्तासे इस आशंकाको दूर कर दिया।

रणजीत सिंह (दे०) का जन्म १७८० ई०में हुआ और १७९९ ई०में उसने अफगानिस्तानके शासक जमानशाहसे लाहौरके प्रान्तीय शासकका पद प्राप्त कर लिया, जिससे पंजाबके मुसलमानोंको उसके आगे झुकना पड़ा। अगले छः वर्षोंमें उसने सतलज पार कर सभी मिसलोंपर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। सतलजके इस पार अथवा पूर्वी क्षेत्रकी मिसलोंपर अधिकार जमानेमें वह इस कारण असफल रहा कि भारतमें स्थित अंग्रेज सरकार इन मिसलोंके सरदारोंको उसका विरोध करनेके लिए सहायता दे रही थी। फिर भी रणजीत सिंहने १८३९ ई०में अपनी मृत्युके पूर्व सिक्खोंको संगठित शक्तिमें परिवर्तित कर दिया, जिनके स्वतन्त्र राज्यकी सीमाएँ सतलजसे पेशावर तक और कश्मीरसे मुलतान तक विस्तृत थीं। इसकी रक्षाके लिए यूरोपीय ढंगसे प्रशिक्षित तथा शक्तिशाली तोपखानेसे सज्जित विपुल सैन्यबल भी था। किन्तु दुर्भाग्यवश रणजीत सिंहका कोई सुयोग्य तथा वयस्क पुत्र न था, जो सिक्खोंका नेतृत्व कर उनके कार्यको आगे बढ़ा सकता। फलतः उनके उत्तराधिकारीके रूपमें कई निर्बल और कठपुतली शासक हुए और कुचक्री राजनीतिज्ञों तथा महत्त्वाकांक्षी सेनापतियोंके षड्यन्त्रोंके फलस्वरूप १८४५ से ४९ ई० के चार वर्षोंके अल्पकालमें ही सिक्खोंको प्रथम तथा द्वितीय युद्धोंमें फँसना पड़ा जिससे उस स्वतन्त्र सिक्ख राज्यका नाश हो गया, जिसका निर्माण दीर्घकालीन बलिदानोंके आधारपर हुआ था।

सिक्ख युद्ध—क्रमशः १८४५–४६ ई० और १८४८–४९ ई०में हुए। प्रथम सिक्ख युद्ध, जो १८३९ ई०में रणजीत सिंहकी मृत्युके छः वर्षों बाद प्रारम्भ हुआ, उसका एक कारण १८४३ ई०में अंग्रेजों द्वारा सिंधपर अधिकार करना था, जिससे उनकी आक्रामक नीति स्पष्ट हो गयी थी। दूसरा कारण सिक्ख सेनाका नियन्त्रणके बाहर हो जाना था, जिसने अल्पवयस्क सिक्ख राजा दलीप सिंहकी माता तथा संरक्षिका रानी जिन्दा कौर और उसके परामर्शदाताओंको इस बातके लिए विवश किया कि वे दिसम्बर १८४५ ई०में सतलज पार करके अंग्रेजोंके राज्यपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दें। प्रथम युद्ध अल्पकालिक तथा तीव्र हुआ और केवल तीन महीनोंमें ही चार मुठभेड़ें क्रमशः मुदकी (१८ दिसम्बर), फिरोजशाह (२१-२२ दिसम्बर), अलीवाल (२८ जनवरी १८४६ ई०) और सुबराहान (१० फरवरी १८४६ ई०) में हुईं और इन सभीमें सिक्ख पराजित हुए।

अन्तिम झड़पमें सिक्खोंकी पराजय होनेके फलस्वरूप लाहौरका मार्ग खुल गया और तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड हार्डिंजके नेतृत्वमें अंग्रेजोंने उसपर अधिकार भी कर लिया। हार्डिंजने ही पराजित सिक्खोंके सम्मुख संधिकी शर्तें रखीं। लाहौरकी इस संधिके अनुसार सिक्खोंने अंग्रेजोंको सतलज नदीके उस पारका समस्त भू-भाग तथा सतलज और ब्यास नदियोंके बीचका जालंधरका दोआब दे दिया और ५० लाख रुपयोंकी नकद धनराशि हर्जानेके रूपमें दी। साथ ही एक करोड़ रुपयोंके बदलेमें जम्मू-कश्मीरका इलाका भी अंग्रेजोंको दे दिया, क्योंकि सिक्ख सरकार उक्त धनराशि नकद देनेमें असमर्थ थी। अंग्रेज सरकारने जम्मूके तत्कालीन सूबेदार गुलाब सिंहको वह इलाका एक करोड़ रुपयेमें बेच दिया। सिक्ख सेनाकी शक्ति घटाकर २० हजार पैदल और १२ हजार अश्वारोही तक सीमित कर दी गयी। एक अंग्रेज रेजीडेण्ट (सर हेनरी लारेन्स) की भी लाहौरमें नियुक्ति की गयी, जिसपर १८४६ ई०के अन्त तक अधिकार रखनेके लिए अंग्रेजोंकी एक सेना तैनात थी। किन्तु वर्षका अंत होनेके पूर्व ही लाहौरकी संधिमें संशोधन करके अंग्रेज सेनाओंका नगरपर ८ वर्षों तक अथवा महाराज दलीप सिंहके वयस्क होनेतक अधिकार बना रहनेकी व्यवस्था कर दी गयी।

तत्कालीन रेजीडेन्ट सर हेनरी लारेन्स, महाराज दलीप सिंहकी संरक्षक परिषद्का अध्यक्ष नियुक्त हुआ। संरक्षक परिषद्में अन्य व्यक्तियोंके साथ राजमाता जिंदा कौरको भी सम्मिलित किया गया। शीघ्र ही कई सिक्ख सरदारोंमें संधिकी शर्तों तथा अंग्रेजोंके निर्देशनमें प्रान्तका शासन चलाये जानेपर तीव्र असंतोष उत्पन्न हो गया। विशेषकर राजमाताको यह संधि बहुत अखरी,

उसने अंग्रेजोंके विरुद्ध षड्यंत्र प्रारम्भ कर दिया, फलतः इसे राज्यसे निष्कासित कर अन्यत्र भेज दिया गया। सेवामुक्त सिक्ख सैनिक भी राज्यमें गड़बड़ी उत्पन्न करते रहते थे। अंग्रेजोंके विरुद्ध असंतोष उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। यह असंतोष उस समय चरम सीमापर पहुँच गया, जब मुलतानके शासक मूलराजने आय-व्यय-का लेखा प्रस्तुत करनेमें असमर्थता प्रकट कर त्याग-पत्र दे दिया। शीघ्र ही मूलराजके स्थानपर एक सिक्ख उत्तराधिकारीकी नियुक्ति हुई और उसे दो अंग्रेज अधिकारियोंके संरक्षणमें मुलतान भेजा गया। पर मार्ग-में ही अचानक आक्रमण करके अप्रैल १८४८ ई०में दोनों अंग्रेजोंको मार डाला गया।

इस घटनाको अनुकूल अवसर मानकर मूलराजने मुलतान और उसके दुर्गपर अधिकार कर लिया। अंग्रेजोंने स्थानीय सेना खड़ी करके दुर्गको घेर लिया। शेरसिंहकी अधीनतामें लाहौरसे एक सिक्ख सेना भेजी गयी, किन्तु वह मूलराजसे मिल गयी। इस प्रकार एक स्थानीय विद्रोहने बृहत रूप ले लिया और द्वितीय सिक्ख-युद्ध प्रारम्भ हो गया।

प्रथम युद्धकी भाँति द्वितीय सिक्ख-युद्ध भी कुछ ही महीनों तक चला। १३ जनवरी १८४९ ई०को चिलियाँ वाला नामक स्थानपर अंग्रेजों और सिक्खोंमें एक कठिन किन्तु अनिर्णीत युद्ध हुआ। ९ दिनोंके उपरान्त मुलतानने आत्मसमर्पण कर दिया तथा २१ फरवरी १८४९ ई०को गुजरातके युद्धमें सिक्खोंकी मुख्य सेना पूर्णरूपसे परास्त हुई। इस प्रकार सम्पूर्ण पंजाब अंग्रेजोंके सम्मुख नतमस्तक हो गया और तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजीने शीघ्र ही पंजाबको अंग्रेजोंके भारतीय साम्राज्यमें मिला लेनेका आदेश दे दिया। अल्पवयस्क महाराज दलीप सिंहको ५० हजार पौण्डकी वार्षिक पेंशन स्वीकृत करके प्रशिक्षणार्थ इंग्लैंड भेज दिया गया और खालसाको भंग करके सिक्खोंको एक कृपाणके अतिरिक्त अन्य कोई हथियार रखनेपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इस प्रकार भारतसे अंग्रेजोंका साम्राज्य अफगानिस्तानकी सीमातक विस्तृत हो गया। [गफ तथा इन्स कृत 'सिक्ख तथा सिक्ख युद्ध' (अंग्रेजीमें)]

सिनहा, सत्येन्द्र प्रसन्न, रायपुरका प्रथम लार्ड (१८६३–१९३०)–प्रथम भारतीय, जिनको ब्रिटिश सरकारने एक प्रान्तका गवर्नर नियुक्त किया। जन्म बंगालके वीरभूमि जिलेके एक मध्यम वर्गके परिवारमें। वकालतके पेशेमें उन्हें विशेष सफलता प्राप्त हुई। प्रौढ़ावस्थामें उन्होंने राजनीतिमें प्रवेश किया और १९१५ ई०में बम्बईमें होनेवाली भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष हुए। वे पहले भारतीय थे, जो १९०९ ई०में वाइसरायकी कार्य-कारिणी परिषद्के सदस्य नियुक्त हुए तथा १९२० से १९२४ ई० तक बिहार और उड़ीसा प्रान्तके गवर्नर बनाये गये और उनको लार्डकी सम्मानित उपाधि प्राप्त हुई। भारतीय राजनीतिज्ञोंमें वे नरम दलके सदस्य थे। उन्होंने अपनी योग्यतासे सिद्ध कर दिया कि भारतीय सर्वोच्च पदोंपर नियुक्तिके अधिकारी हैं।

सिन्ध–सिन्धु नदीकी वह घाटी जो झेलम नदीके संगमसे दक्षिणमें पड़ती है। इस प्रदेशमें लगभग ३००० ई० पू० उस प्रागैतिहासिक सभ्यता (दे०) का जन्म और विनाश हुआ, जिसके अवशेष लरकाना जिलेके मोहन जोदड़ों नामक स्थलपर प्राप्त हुए हैं। सिकन्दर महान्के आक्रमण-के समय यहाँ मुचिकर्ण अथवा मुषिक, साम्ब अथवा सबर तथा ब्राह्मण आदि गण निवास करते थे। यूनानी विजेतासे इन सभीको अपनी अधीनता स्वीकार करनेपर विवश किया और उसकी जल-सेना सिंध नदीसे होकर तथा स्थल सेना नदीके किनारे-किनारे कूच करके पाटल (पातानप्रस्थ) पहुँची, जो सिन्ध नदीके मुहानेपर स्थित था। वहाँसे सिकन्दरने अपनी स्थल-सेनाओं सहित बलू-चिस्तानके मार्गसे स्वदेशकी ओर प्रस्थान किया और उसकी जलसेना बेबीलोनकी ओर चल पड़ी।

सिन्ध, मौर्य साम्राज्यका एक भाग था और पाँचवीं शताब्दी ई० में यह चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यके साम्राज्यमें भी सम्मिलित था। तदुपरान्त इस प्रदेशमें एक ब्राह्मण राजवंशका शासन रहा, जिसका अन्तिम राजा दाहिर था। ७११ ई०में मोहम्मद बिन कासिमके नेतृत्व-में अरब मुसलमानोंने सिन्धपर आक्रमण किया। उसने दाहिरको हराकर मौतके घाट उतार दिया और सिन्धकी राजधानी अलोरके दुर्गपर अधिकार करके सिन्धको अरब साम्राज्यमें मिला लिया। अरबोंका सिंधपर ११७६ ई० तक अधिकार रहा और उसी वर्ष शहाबुद्दीन गोरी (दे०) ने अरबोंसे इसे छीन लिया। इस प्रकार सिन्ध दिल्ली सल्तनतका एक अंग बन गया। सुल्तान मोहम्मद तुगलकके राज्यकालमें सिन्ध दिल्ली सल्तनतसे अलग हो गया, यद्यपि मुहम्मद तुगलक पुनः विजय प्राप्ति-की इच्छासे होनेवाले इस युद्धमें मारा गया। यद्यपि फिरोजशाह तुगलकने १३६१–६२ ई० में सिन्धको पुनः जीतनेके दो प्रयास किये, परन्तु यह स्वतन्त्र-प्राय रहा

सिन्धका ऊपरी अथवा उत्तरी भाग बाबरकी मुलतान-विजयसे उसके अधिकारमें आ गया। यही अमरकोट नामक स्थानपर १५४२ ई० में अकबरका जन्म हुआ। सिन्धके निचले भाग अथवा दक्षिणी सिन्धको, जिसकी राजधानी ठट्टा थी, अकबरने १५९१ ई० में जीत लिया और इस प्रकार सम्पूर्ण सिन्ध पुनः दिल्ली साम्राज्यका एक भाग बन गया। १८ वीं शताब्दीके अन्तिम वर्षोंमें मुगलोंकी शक्तिमें ह्रास होनेके कारण सिन्धपर वहाँके अमीरोंका नियंत्रण हो गया। किन्तु १९ वीं शताब्दीमें अंग्रेजी साम्राज्यके विस्तारके साथ-साथ सिन्ध और सिन्धु नदीकी महत्ताके कारण अंग्रेज सरकारकी ललचायी दृष्टि उसपर पड़ी। १८३२ ई० में अंग्रेजोंने सिंधके अमीरों (दे०) के साथ एक संधि कर ली, जिसके अनुसार सिन्धु नदीसे अंग्रेजोंका जहाजी व्यापार मार्ग सुलभ हो गया। दस वर्षोंके उपरान्त तत्कालीन गवर्नर-जनरल एलेनबरो द्वारा प्रेरित किये जानेपर सर चार्ल्स नेपियर (दे०) ने अमीरोंसे युद्धका एक बहाना ढूँढ़ लिया। अमीरोंकी मियानी और डब्बोके युद्धमें पराजय हुई और सिन्ध अंग्रेजोंके भारतीय साम्राज्यमें मिला लिया गया।

अप्रैल १९३६ ई० तक सिन्ध बम्बई प्रेसीडेन्सीका ही भाग बना रहा, पर उसी वर्ष सिन्धका अलग प्रान्त बना दिया गया। १९४७ ई० में, भारतके विभाजनके उपरान्त सिन्ध पाकिस्तानका एक प्रान्त बन गया और उसकी राजधानी कराँची ही पाकिस्तानकी राजधानी हुई, यद्यपि बादमें राजधानीका स्थानान्तरण रावलपिंडी हो गया।

सिन्धके अमीर—बलूचिस्तानके तालपुरा कबीलेके सरदार, जो ईसवी १८ वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें सिन्धके शासक बन बैठे थे। शीघ्र ही उसकी तीन मुख्य शाखाएँ हो गयीं—हैदराबाद, खैरपुर और मीरपुर। कानूनी तौरसे वे लोग अफगानिस्तानके शाहके अधीन थे। १९वीं शताब्दी ईसवीके शुरू होनेपर उन लोगोंने अफगानिस्तानी शाहोंके स्वामित्वकी अवहेलना शुरू कर दी, लेकिन उस समय उनको पंजाबके राजा रणजीत सिंह तथा अंग्रेजोंका सामना करना पड़ा, जो सिंधपर अपना प्रभुत्व जमाना चाहते थे। सिन्धके अमीर दोनोंको सिन्धसे बाहर रखना चाहते थे, लेकिन क्रमिक रीतिसे अंग्रेजोंने अपनी कूटनीतिसे उनको अपने अधीन कर लिया।

१८३१ ई० में सिन्धु नदीका सबसे पहला सर्वेक्षण अंग्रेजी दस्तेने एलेक्जेन्डर बर्न्सके नेतृत्वमें किया। भारतकी ब्रिटिश सरकारने सिन्ध और सिन्धु नदीके जलमार्गका महत्व केवल व्यापारके लिए ही नहीं बरन् साम्राज्य प्रसारके लिए भी अनुभव किया। १८३२ ई० में सिन्धके अमीरोंको अंग्रेज सरकारसे सन्धि करनेके लिए राजी कर लिया गया, जिसके द्वारा उन्होंने सिन्धकी नदियों और सड़कोंको हिन्दुस्तानके व्यापारियोंके लिए खोल दिया, लेकिन किसी प्रकारके फौजी सामान अथवा जंगी जहाजोंको वहाँ ले जानेपर पाबंदी लगा दी। इस सन्धिमें सिन्धके अमीरों और अंग्रेजों दोनोंको एक दूसरेकी भूमिपर लुब्ध दृष्टि डालनेसे रोक दिया गया। संधिका १८३४ ई० में अभिनवीकरण किया गया और १८३८ ई० में भारतकी ब्रिटिश सरकारने रणजीत सिंह द्वारा सिन्धपर कब्जा करनेके प्रयासको विफल कर दिया। अंग्रेजोंने सिन्धके अमीरोंको संरक्षण देनेके लिए उनसे काफी धन वसूला और सिन्धमें अंग्रेज रेजीडेण्ट रखनेका अधिकार प्राप्त कर लिया। प्रथम आंग्ल-अफगान युद्ध (१८३८–४२ ई०) शुरू होनेपर अंग्रेजोंने सिन्धके अमीरोंसे १८३२ ई० की सन्धिकी शर्तोंको तोड़कर अपनी सेना सिन्धके मार्गसे भेजी और अमीरोंसे अफगानिस्तानको दिये जानेवाली खिराजकी बकाया रकम वसूल की, १८३९ ई० में उन्होंने सन्धिके अमीरोंको नयी सन्धि करनेपर मजबूर किया, जिसमें १८३२ ई० की सन्धिकी अवहेलना की गयी।

नयी सन्धिके अमीरोंको तीन लाख रुपये वार्षिक नजराना देनेके द्वारा लिए बाध्य किया गया और सिन्धको बाजाब्ता अंग्रेजोंका संरक्षित राज्य बना दिया गया। सिन्धके अमीरोंको यह सन्धि नापसन्द थी लेकिन इसके बावजूद उन्होंने प्रथम आंग्ल-अफगान युद्धके संकट कालमें इसका ईमानदारीसे पालन किया और अंग्रेज सरकारने सिन्धका प्रयोग अपने फौजी अड्डेके रूपमें निर्बाध रीतिसे किया। लड़ाईके बाद लार्ड एलिनबरोके कार्यकालमें भारतकी ब्रिटिश सरकारने सिन्धके अमीरोंपर अंग्रेजोंके प्रति अमैत्री और शत्रुताका भाव रखनेका आरोप लगाया और सर चार्ल्स नेपियरको सिन्धका रेजीडेन्ट बनाकर भेजा, जो अपने इसी स्वभावके लिए बदनाम था। १८४२ई० में सर चार्ल्स नेपियरने सिन्धके अमीरोंको एक नयी सन्धि करनेपर मजबूर किया जिसके द्वारा उनके कुछ क्षेत्रोंको तीन लाख रुपया सालाना नजरानेके बदलेमें अंग्रेजोंने अपने अधिकारमें ले लिया। सिन्धु नदीमें अंग्रेजोंकी नावों और जहाजोंके आवागमनके लिए ईंधनका प्रबन्ध करनेका भार अमीरोंपर डाल

दिया गया। सिन्धके अमीरोंसे अपने सिक्कोंकी टकसाल चलानेका अधिकार छीन लिया गया।

नयी सन्धिका व्यावहारिक निष्कर्ष यह निकला कि अमीरोंकी आजादी खत्म हो गयी। सर चार्ल्सने सन्धिकी शर्तोंका इतनी कड़ाईसे पालन कराया कि अमीरोंकी लड़ाकू बलूची जनताने हैदराबाद स्थित अंग्रेजोंकी रेजीडेन्सीपर हमला कर दिया। एलिनबरोकी हुकूमतको इससे सुनहरा मौका मिला और उसने फरवरी १८४३ ई० में अमीरोंके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी। यह युद्ध थोड़े दिन चला। सिन्धके अमीर मियानी और डबोकी लड़ाइयों (फरवरी-मार्च १८४३ ई०) में पराजित कर दिये गये और उनको सिन्धसे निष्कासित कर दिया गया। जून १८४३ ई० तक युद्ध समाप्त हो गया और पूरे सिन्ध क्षेत्रको भारतके ब्रिटिश साम्राज्यमें मिला लिया गया।

सिन्ध नदी–सिन्ध अथवा काली सिन्ध नदी टोंक जिलेसे निकलकर मध्यप्रदेश और बुन्देलखण्डसे बहती हुई यमुना नदीमें मिलती है। पिण्डारी युद्धमें अंग्रेजोंकी रणनीति बहुत कुछ अंशों तक इसी नदीपर आधारित थी।

सिन्धु घाटी-सभ्यता–इसका उद्‌घाटन सिंधु घाटीके विविध स्थानोंमें, विशेष रूपसे सिंधके लरकाना जिलेमें मोहन जोदड़ो तथा पंजाबके मांटगोमरी जिलेमें हड़प्पामें हालमें की गयी खुदाइयोंसे हुआ। विश्वास किया जाता है कि यह सभ्यता २५०० ई० पू०से १५०० ई० पू०के बीच वर्तमान थी। हो सकता है कि यह इससे भी प्राचीन रही हो। यह सुसभ्य नागरिक सभ्यता थी और उस कालके लोग अनेक विकसित सुख-सुविधाओंका उपभोग करते थे, जैसे चौड़ी सड़कें, नालियोंकी उत्तम व्यवस्था और सार्वजनिक स्नानागार। नगरोंमें सभागार और पूजा-स्थान भी होते थे। मकान पक्की ईंटोंसे बनाये जाते थे और उनमेंसे कुछ दो खण्डे भी होते थे। उनमें पानी तथा नालियोंकी व्यवस्था रहती थी। उस कालके लोग मूर्तियोंकी पूजा करते थे। शिवलिंगसे मिलते-जुलते प्रस्तर भी मिले हैं। वे लोग तांबा, कांसा, चाँदी, जस्ता और सोनेका उपयोग करना जानते थे। सोनेके आभूषण बनाये जाते थे। वे लोग सूती और ऊनी कपड़ा बुनना जानते थे, मिट्टीके अच्छे बरतन बनाते थे जिनपर बहुधा अलंकरण भी किया जाता था तथा खाने-पीनेमें दूध, गेहूँ, जौ, फल तथा मांसका प्रयोग करते थे।

वे लेखन कला भी जानते थे, परंतु उनकी लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है। यह लिपि उस कालकी मिली बहुत-सी मुद्राओंपर अंकित है। लिपिके पढ़े न जानेसे यह अनुमान लगाना कठिन है कि उनकी भाषा किस वर्गकी थी। वे मृतकोंको गाड़ते थे और उनका दाह संस्कार भी करते थे। विश्वास किया जाता है कि उनकी सभ्यता फरात (ईराक) घाटीकी सभ्यतासे मिलती-जुलती थी और वैदिक सभ्यताकी पूर्ववर्ती थी। प्रतीत होता है कि सिंधु घाटी सभ्यताके पतनके बाद आर्योंने भारतमें प्रवेश किया। सिंधु घाटी सभ्यताके ह्रास और पतनका कारण ज्ञात नहीं है।

सिन्धु नदी–आधुनिक पाकिस्तानमें बहनेवाली नदी जो हिमालयके क्षेत्रमें तिब्बतसे निकलती है। काश्मीर और पंजाबकी सोहन, झेलम, चिनाव, रावी, ब्यास और सतलज नदियोंका जल इसमें मिल जाता है और महानदके रूपमें यह समुद्रमें मिल जाती है। उपर्युक्त प्रदेशोंकी, जिनके बीचसे यह १८००० मीलकी लम्बाईमें बहती है, आर्थिक दशा सँवारनेमें इसका बहुत बड़ा योगदान है। एक मतके अनुसार सिन्धु शब्दसे ही 'हिन्दू' शब्दकी उत्पत्ति हुई है। इसकी घाटीमें २५०० ई०पू०से १५०० ई० पू० एक उन्नत सभ्यता वर्तमान थी।

सिपहिर शिकोह, शाहजादा–दाराशिकोहका सबसे छोटा पुत्र और शाहजहांका पौत्र। शिशु होनेके कारण औरंगजेबने उसके प्राण न लिये और बादमें अपनी तीसरी पुत्रीका उससे विवाह भी कर दिया।

सिपाही विद्रोह–यद्यपि इसका प्रारंभ मेरठसे १० मई, १८५७ ई०को हुआ, परन्तु इसके पूर्व ही बरहामपुर और बैरकपुरकी छावनियोंके सैनिकोंमें असंतोषके लक्षण प्रकट हो चुके थे। २८ मार्च १८५७ ई०को मंगल पांडे नामक सैनिकने दिन-दहाड़े एक अंग्रेज पदाधिकारीको मार डाला था, परन्तु यह विद्रोह दबा दिया गया। फिर भी विद्रोहाग्नि भीतर ही भीतर धधकती रही और ग्रीष्म ऋतुके मध्यमें इसकी ज्वाला भड़क उठी। इसके राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सैनिक कई कारण थे। डलहौजी द्वारा गोद प्रथाका अन्त तथा देशी राज्योंको कुशासनके बहाने हड़पनेकी नीतिसे भारतीय राज्योंके शासकोंको अपना सिंहासन बचानेकी चिन्ता पीड़ित करने लगी। दूसरी ओर गद्दीसे हटाये गये शासक तथा उनके आश्रित बेकारी तथा अर्थाभावसे पीड़ित होकर अंग्रेजोंसे द्वेष करने लगे। ऐसे अपदस्थ शासकोंमेंसे पेशवा बाजीराव द्वितीयके दत्तक पुत्र नाना साहब (दे०) और झाँसीकी रानी लक्ष्मीबाई (दे०)ने विद्रोहको संगठित

करनेमें प्रमुख एवं सक्रिय भाग लिया। झाँसीकी रानीने मृत्यु पर्यन्त अंग्रेजोंसे वीरता-पूर्वक युद्ध किया।

राज्यापहरणकी नीति तथा अपहृत राज्यों, विशेषकर अवधमें नयी भूमि-व्यवस्थासे जमीदारों और साधारण जनतामें अत्यन्त असंतोष व्याप्त हुआ; इनमेंसे अधिकांश वे लोग थे, जो सैन्य सेवासे मुक्त होनेके कारण बेकार हो गये थे। शिक्षित भारतीयोंको उनकी योग्यताके अनुरूप नौकरियाँ, मैकाले सदृश पढ़े-लिखे अंग्रेजों द्वारा हिन्दुओंकी खुली भर्त्सना, हिन्दूधर्मकी ईसाई मिशनरियों द्वारा खुली आलोचना, सतीप्रथा और शिशु बलिका निषेध, हिन्दू विधवाओंके पुनर्विवाहको वैधानिक रूप देना, किसी हिन्दू द्वारा ईसाई धर्म स्वीकार कर लेनेपर उत्तराधिकारसे वंचित होनेपर रोक तथा रेल, तार-डाक आदिका प्रसार इन सबके सम्मिलित प्रभावने हिन्दुओंके मस्तिष्कमें यह भावना भर दी कि उनका धर्म संकटमें है और अंग्रेजों द्वारा ऐसे कुत्सित प्रयास किये जा रहे हैं जिनसे विवश होकर उन्हें ईसाई धर्म स्वीकार करना पड़ेगा। अंततः जिस भारतीय सैन्यबलका ब्रिटिश साम्राज्यकी स्थापना एवं निर्माणमें महत्त्वपूर्ण योगदान था, उसमें भी गहरा असंतोष व्याप्त हो गया।

भारतीय सैनिकका वेतन तथा भत्ता भारतीय सेनामें नियुक्त अंग्रेज सैनिककी अपेक्षा बहुत ही कम था तथा उसकी पदोन्नतिके मार्गमें अनेक कठिनाइयाँ थीं। भारतीय सैनिकको बर्मा तथा अफगानिस्तान सदृश दूरस्थ देशोंके युद्ध-क्षेत्रों तक अपना सामान आदि ले जानेका व्यय स्वयं वहन करना पड़ता था और ऐसे देश, धर्म तथा जाति-पाँतिके नियमों और बन्धनोंके कारण, हिन्दुओंके लिए वर्जित थे, क्योंकि इससे उनके जातिच्युत होनेका भय था। एक ज्येष्ठतम सर्वोच्च भारतीय सैनिकको भी बहुधा कनिष्ठ अंग्रेज पदाधिकारीके अधीन कार्य करना पड़ता था। इन समस्त कारणोंसे भारतीय पदाति सेनामें अत्यधिक असंतोष था, जबकि समस्त भारतीय सैन्यशक्तिमें अंग्रेज सैनिकोंकी संख्या केवल पाँचवाँ भाग थी अर्थात् २३३,००० मेंसे केवल ४५,३२२ अंग्रेज सैनिक थे। इससे स्पष्ट है कि भारतीय सिपाहियोंको भारतमें अंग्रेजी साम्राज्य बनाये रखने और अपनी शक्ति एवं महत्ताका गर्व था। किन्तु भारतीय सेनामें सेवारत अंग्रेजोंकी तुलनामें उनके प्रति जो हेय व्यवहार किया जाता था, उसने उनमें अंग्रेजोंके प्रति तीव्र असंतोष उत्पन्न किया।

भारतीय पदाति सेनाका यह असंतोष उस समय हताशामें परिवर्तित हुआ, जब उनपर चर्बी लगे कारतूसोंके साथ एन्फील्ड रायफिलें (बन्दूकें) लादी गयीं, जिनसे हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मोंके सिपाहियोंको धर्मभ्रष्ट होनेका भय हुआ। इस प्रकार कुछ दिन पूर्वसे ही सुलगती हुई असंतोषकी अग्निमें चर्बी लगे कारतूसोंने आहुतिका कार्य किया और फलतः विद्रोहकी ज्वाला भड़क उठी।

प्रारंभमें विद्रोहियोंको विशेष सफलता मिली। १० मई, १८५७ ई०को मेरठसे चलकर दूसरे ही दिन उन्होंने दिल्लीपर अधिकार कर लिया और बहादुर शाह द्वितीयको, जो केवल एक कठपुतली शासक मात्र था, दिल्लीका सम्राट् घोषित कर दिया गया। दिल्लीपर अधिकार कर लेनेसे विद्रोहियोंकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी और अगले दो महीनोंमें यह विद्रोह अवध और रुहेलखण्डमें फैल गया। राजपूतानेमें स्थित नसीराबाद, ग्वालियर राज्यमें नीमच, वर्तमान उत्तर प्रदेशमें बरेली, लखनऊ, वाराणसी और कानपुरकी छावनियोंके सिपाहियोंने अंग्रेजोंके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उधर बुन्देलखण्डमें विद्रोहका नेतृत्व करती हुई झाँसीकी रानीने उन सभी यूरोपियनोंको, जो उसके हाथोंमें पड़ते गये, मार डाला। विद्रोह प्रारंभ होनेपर सभी ओरसे विद्रोही दिल्लीकी ओर चल पड़े, केवल कानपुरमें स्थित अंग्रेजी सैनिक छावनी और लखनऊमें रेजीडेन्सीका घेरा डाल दिया गया। कानपुरके निकट बिठूरमें नाना साहबको पेशवा घोषित किये जानेसे स्पष्ट हो गया कि विद्रोहियोंमें किसी सुनिश्चित लक्ष्यका अभाव है। उनका लक्ष्य क्या था—मुगल-सम्राट् को पुनः सिंहासनासीन करके भारतमें मुसलमानी राज्यकी पुनः स्थापना, अथवा ब्राह्मण पेशवाके अधीन हिन्दू राज्यकी स्थापना? समस्त विद्रोह-कालमें उद्देश्योंमें यह अस्पष्टता बनी रही, जिससे उसकी शक्ति शिथिल होती गयी। प्रारम्भमें यह लक्ष्यहीनता स्पष्ट न थी और भारतमें अंग्रेजी शासनके लिए वास्तविक भय उत्पन्न हो गया था। दिल्ली, कानपुर, लखनऊ और बुन्देलखंड इस विद्रोहके मुख्य केन्द्र बन गये थे। अंग्रेजी सत्ता, जो प्रारम्भिक प्रहारोंसे डाँवाडोल हो रही थी, धीरे-धीरे सिक्खों, गोरखों और दक्षिण भारतकी सैनिक छावनियोंसे लाये गये सैनिकों द्वारा पुनः स्थापित हो गयी। १४ सितम्बर १८५७ ई० को दिल्लीपर उनका पुनः अधिकार हो गया और कानपुरपर २७ जून १८५७ को। २५ सितम्बरको लखनऊका घेरा भी तोड़ दिया गया, किन्तु

शहर पूना विद्रोहियोंके हाथोंमें पड़ जानेके कारण ५ नवम्बरको उसपर अधिकार हो सका। इसी बीच सर कालिन कैम्पबेल, सेनाध्यक्ष और सर ह्यू रोज सदृश दो विशेष अनुभवी अफसरोंके नेतृत्वमें अंग्रेजोंकी नयी सेना भी आ गयी।

कैम्पबेलने अवध और रुहेलखण्डमें विद्रोहका दमन किया और सर ह्यूरोजने बुन्देलखण्डमें। उसने झाँसीकी रानीको लगातार कई युद्धोंमें परास्त किया, परन्तु रानी वीरतापूर्वक लड़ती हुई वीरगतिको प्राप्त हुई। तात्या-टोपेको, जो नाना साहबका सेनापति था, बन्दी बनाकर फाँसी दे दी गयी। १४ सितम्बरको जब दिल्लीपर अंग्रेजोंका पुनः अधिकार हुआ, बहादुरशाह द्वितीयको बन्दी बनाकर रंगून भेज दिया गया, जहाँ उसकी मृत्यु हो गयी। उसके दो पुत्रों और पौत्रोंको कर्नल हाड्सनने बिना किसी न्यायिक जाँचके गोलीसे उड़ा दिया। नाना साहब नेपालकी तराईके जंगलोंकी ओर भाग गया और फिर उसका पता न लगा। ८ जुलाई १८५८ ई० को तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड कैनिंगने विद्रोहकी समाप्ति और शांति-स्थापनाकी घोषणा की।

विद्रोह कालमें दोनों ही पक्षोंकी ओरसे अत्यन्त अमानुषिक अत्याचार हुए। उस कालकी कटु स्मृतियोंने यूरोपियनों और भारतीयोंके बीच ऐसी खाई पैदा कर दी, जो दीर्घकाल तक पट नहीं सकी। इस विद्रोहके फलस्वरूप भारतमें कम्पनीका राज्य समाप्त हो गया और भारतका प्रशासन कम्पनीसे इंग्लैण्डकी महारानीके हाथोंमें आ गया। महारानी विक्टोरियाने इस परिवर्तनकी घोषणा की और सभीको क्षमा करने तथा धार्मिक स्वतंत्रता, देशी राजाओंके अधिकारोंकी रक्षा एवं गोद प्रथाके अन्तकी नीतिको त्याग देनेका वचन दिया।

अंग्रेजोंकी सफलता और विद्रोहियोंकी विफलताके कई कारण थे। सर्वप्रथम, विद्रोह कुछ वर्गों तक सीमित था। इस विद्रोहका क्षेत्र पश्चिममें पंजाब, पूर्वमें बंगाल, उत्तरमें अवध और दक्षिणमें नर्मदा नदी तक ही सीमित था। यह विद्रोह केवल सैनिकों तक ही सीमित था, देशी नरेश और भारतकी साधारण जनता इससे अलग रही। दूसरे, विद्रोहियोंका कोई एक मूल उद्देश्य न था और न उन्हें किसी केन्द्रीभूत तथा कुशल नेतृत्वके संचालनका सुयोग प्राप्त था। तीसरे, वे भली प्रकार संगठित भी न थे। प्रत्येक दलका अपना नेता होता था, जो अपने ही बलपर युद्ध करता था। चौथे, सिक्खोंने अपनी थोड़े दिन पूर्व हुई पराजयके लिए विद्रोही सिपाहियोंको कारण मानकर स्वामिभक्तिकी भावनासे अंग्रेजोंका पूरा साथ दिया। वस्तुतः यह उन्हींकी सहायताका परिणाम था कि दिल्लीपर अंग्रेजोंका पुनः अधिकार हुआ और विद्रोहकी रीढ़ टूट गयी। पाँचवें, यद्यपि विद्रोही अत्यधिक वीरतासे लड़े, पर उन्होंने अपनेमें से कोई सुयोग्य सेनानायक न चुना। इसके विपरीत अंग्रेजोंमें अनुशासन तथा एक व्यक्तिके निर्देशनमें कार्य करनेके गुण थे। उन्हें हैवलाक, निकोलसन, ओट्रम तथा लारेन्स सदृश अनेक प्रतिभाशाली पदाधिकारियों और सेनानायकोंका निर्देशन प्राप्त था। अन्तमें एक कारण यह भी दिया जा सकता है कि विद्रोही लोग भारतीय समाजके एक अल्पांश मात्र थे। अंग्रेजोंकी विजय भारतीय जनताके बहुत भारी अंशकी सक्रिय एवं निष्क्रिय सहायताके फलस्वरूप हुई, क्योंकि उन्हें विद्रोही सिपाहियोंके कार्यों एवं गतिविधियोंमें कोई ऐसी विशेषता नहीं दिखलाई दी, जिससे प्रेरित होकर सभी उनका साथ देते। (**सिपाही विद्रोहपर अंग्रेजीमें अनेक ग्रंथ रचे गये हैं। होम्स, मैलीसन, सेन, मजूमदार और वीर सावरकरके ग्रंथ उल्लेखनीय हैं।**)

सिमुक (शिशुक)–सातवाहन वंशका प्रवर्तक। पुराणोंके अनुसार वह शुंग वंशके अंतिम शासकका समकालीन था, किन्तु उसकी तिथि अनिश्चित है। संभवतः वह दूसरी शताब्दी ई० पू०के प्रारंभमें हुआ होगा। उसका राज्य मद्रास (तामिलनाडु) के बेलारी जिलेमें था और उसमें पश्चिमी दक्षिणापंथके कुछ भू-भाग भी सम्मिलित थे। उसके उपरांत उसका भाई कृष्ण सिंहासनासीन हुआ।

सिराजुद्दौला–अप्रैल १७५६ ई० से जून १७५७ ई० तक बंगालका नवाब। वह अलीवर्दी खाँ (दे०) का प्रिय दोहता तथा उत्तराधिकारी था, किन्तु नानाकी गद्दीपर उसके दावेका उसके मौसेरे भाई शौकतगंजने जो उन दिनों पूर्णियाका सूबेदार था, विरोध किया। सिंहासनासीन होनेके समय सिराजुद्दौलाकी उम्र केवल २० वर्षकी थी। उसकी बुद्धि अपरिपक्व थी, चरित्र भी निष्कलंक न था तथा उसे स्वार्थी, महात्वाकांक्षी और षड्यन्त्रकारी दरबारी घेरे रहते थे। तो भी अंग्रेजों द्वारा उसे जैसा क्रूर तथा दुश्चरित्र चित्रित किया गया है, वैसा वह कदापि न था। वह बंगालकी स्वाधीनताको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिए मर मिटनेवाले देशभक्तोंमें न था, जैसाकि कुछ राष्ट्रवादी इतिहासकारोंने सिद्ध करनेका प्रयास किया है।

सिराजुद्दौलाका उद्यम अपने व्यक्तिगत हितोंके रक्षा

होता था, किन्तु चारित्रिक दृढ़ताके अभावमें उसे लक्ष्य-प्राप्तिमें असफलता मिली। वास्तवमें वह न तो कायर था और न युद्धोंसे घबराता ही था। अपने मौसेरे भाई शौकतजंगसे युद्धमें उसे निर्णायक सफलता मिली और इसी युद्धमें शौकतजंग मारा गया। उसके अंग्रेजोंसे अप्रसन्न रहनेके यथेष्ट कारण थे, क्योंकि अंग्रेजोंने उसकी आज्ञाके बिना कलकत्ताके दुर्गकी किलेबन्दी कर ली थी और उसके न्याय दंडके भयसे भागे हुए राजा राजवल्लभके पुत्र कृष्णदासको शरण दे रखी थी। कलकत्तापर उसका आक्रमण पूर्णतः नियोजित रूपमें हुआ। फलतः केवल चार दिनोंके घेरे (१६ जूनसे २० जून १७२६ ई०) के उपरांत ही कलकत्तापर उसका अधिकार हो गया। कलकत्ता स्थित अधिकांश अंग्रेज जहाजों द्वारा नदीके मार्गसे इसके पूर्व ही भाग चुके थे और जो थोड़ेसे भागनेमें असफल रहे, बन्दी बना लिये गये। उन्हें किलेके भीतर ही एक कोठरीमें रखा गया, जो कालकोठरीके नामसे विख्यात है और जिसके विषयमें नवाब पूर्णतया अनभिज्ञ था।

काल कोठरी (दे०) से जिन्दा निकले अंग्रेज बंदियोंको सिराजुद्दौलाने मुक्त कर दिया। किन्तु कलकत्तापर अधिकार करनेके बादसे उसकी सफलताओंका अन्त हो गया। वह फाल्टाकी ओर भागनेवाले अंग्रेजोंका पीछा करने और उनका वहीं नाश कर देनेके महत्त्वको न समझ सका, साथ ही उसने कलकत्ताकी रक्षाके लिए उपयुक्त प्रबन्ध न किया, ताकि अंग्रेज उसपर दुबारा अधिकार न कर सकें। परिणाम यह हुआ कि क्लाइव और वाटसनने नबाबकी फौजकी ओरसे बिना किसी विरोधके कलकत्तापर जनवरी १७५७ ई०में पुनः अधिकार कर लिया। सिराजुद्दौलाने अंग्रेजोंसे समझौतेकी वार्त्ता प्रारम्भ की, पर अंग्रेजोंने मार्च १७५७ ई०में पुनः उसकी सार्वभौम सत्ताकी उपेक्षा की, और चन्द्रनगरपर, जहाँ फ्रांसीसियोंका अधिकार था, आक्रमण करके अपना अधिकार कर लिया। सिराजुद्दौलाने अंग्रेजोंके इस कुकृत्यपर कोई ध्यान नहीं दिया। उसने अंग्रेजोंके साथ अलीनगरकी संधि भी कर ली, किन्तु अंग्रेजोंने इस संधिकी पूर्ण अवहेलना करके नवाबके विरुद्ध उसके असंतुष्ट दरबारियोंसे मिलकर षड्यंत्र रचना प्रारंभ किया और १२ जूनको क्लाइवके नेतृत्वमें एक सेना भेजी।

सिराजुद्दौलाने भी सेना एकत्र करके अंग्रेजोंका मार्ग रोकनेका प्रयास किया, किन्तु २३ जून १७५७ ई०को पलासीके युद्धमें अपने मुसलमान और हिन्दू सेनानायकोंके विश्वासघातके फलस्वरूप वह पराजित हुआ। पलासीसे वह राजधानी मुर्शिदाबादको भागा और वहाँ भी किसीने उसके रक्षार्थ शस्त्र न उठाया। वह पुनः भागनेपर विवश हुआ, पर शीघ्र ही पकड़ा गया और उसका बध कर दिया गया। सिराजुद्दौलाका पतन अवश्य हुआ किन्तु उसने क्लाइव, वाटसन, मीरजाफर और ईस्ट इंडिया कम्पनीकी भाँति, जो उसके पतनके षड्यंत्रमें सम्मिलित थे, न तो अपने किसी मित्रको ही कभी धोखा दिया और न शत्रु को।

सिविल सर्विस—देखिये, 'इंडियन सिविल सर्विस'।

सीता—रामायणके कथा-नायक रामकी पत्नी। उन्होंने हिन्दू स्त्रियोंके सामने पतिव्रत धर्मका आदर्श प्रस्तुत किया।

सीताबल्डीका युद्ध—तृतीय मराठा-युद्ध (दे०) के दौरान नवम्बर १८१७ ई०में भोंसला शासक अप्पा साहब (दे०) तथा अंग्रेजोंके बीच हुआ। इस युद्धमें भोंसलाके नेतृत्वमें मराठोंकी सेना पूर्णतया पराजित हुई और अप्पा साहबने आत्मसमर्पण कर दिया।

सीथियन—मध्य एशियामें स्थित सीथियाके निवासी साधारणतया सीथियन कहे जाते हैं। किन्तु भारतीय ऐतिहासिक शब्दावलीमें सीथियन शब्दका प्रयोग शक एवं कुषाण सरीखी उन विदेशी जातियोंके लिए हुआ है, जो दूसरी शताब्दी ई० पू०से दूसरी शताब्दी ई० तक भारतमें आती रहीं।

सीदी—ये लोग भारतके पश्चिमी समुद्र पटपर स्थित जंजीर नामक स्थलपर अबीसीनियाके समुद्री डाकुओंके सरदार थे। फलतः शिवाजी (दे०) को उनका दमन करना पड़ा।

सुदास—एक वेदकालीन राजा, जिसका उल्लेख भारत और जनमेजयके साथ ऋग्वेदमें मिलता है।

सुन्नी—इस्लाम धर्मका एक सम्प्रदाय। भारतके अधिकांश मुसलमान सुन्नी हैं। शियाओं (दे०) के विपरीत सुन्नी पहलेके तीन खलीफाओंको भी जायज तौरसे चुने गये पैगम्बरके उत्तराधिकारी मानते हैं, और जुमेके खुतबेमें उनका भी नाम लेते हैं। सुन्नी कट्टर मुसलमान होते हैं। दिल्लीके सभी सुल्तान तथा मुगल बादशाह सुन्नी थे और अक्सर शियाओंके खिलाफ जंग करते रहते थे, क्योंकि वे उन्हें सच्चा मुसलमान नहीं मानते थे।

सुप्रीम कोर्ट—इसकी स्थापना कलकत्तामें १७७४ ई०के रेग्यूलेटिंग ऐक्ट (दे०) के द्वारा की गयी। ऐक्टमें सुप्रीम कोर्टके चीफ जस्टिस और अन्य तीन छोटे जजोंके नाम और उनका वेतन भी निर्धारित कर दिया गया था। इस प्रकार ऐक्टका उद्देश्य भारतमें न्यायपालिकाको

कार्यपालिकासे बिलकुल स्वतंत्र रखना था। ऐक्टमें निर्धारित कर दिया गया था कि समस्त ब्रिटिश प्रजा, जिसमें उच्चतम अधिकारी भी सम्मिलित थे तथा कलकत्ताके सभी निवासी, सुप्रीमकोर्टके न्याय क्षेत्रमें माने जायेंगे। ऐक्टमें यह उल्लेख नहीं किया गया था कि कोर्टमें जो फैसले दिये जायेंगे वे किस कानूनपर आधारित होंगे। अतएव चीफ जस्टिस सर एलिजा इम्पी (दे०) और अन्य तीन जजोंने निर्णय किया कि वे इंग्लैंडके कानूनोंके अनुसार फैसले करेंगे। सुप्रीम कोर्टके जज अपने अधिकारोंका दृढ़तासे प्रयोग करते थे और सभी व्यक्तियोंको अपने न्याय-क्षेत्रके अन्तर्गत मानते थे। वे कम्पनीकी अदालतोंकी पूर्ण अवहेलना करते थे। उनके आदेश बड़े क्लेशदायी और दम्भपूर्ण प्रतीत होते थे।

उन्होंने जब जालसालीके आरोपमें नन्दकुमार (दे०) को फाँसीकी सजा दी, तो भारतीय लोग स्तम्भित रह गये, यद्यपि गवर्नर-जनरल और उसके मित्रोंको खुशी हुई। किन्तु १७७९—८० ई०में काशी जोड़ाके कोर्टने गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौंसिलपर अदालतके अवमानके अभियोगमें मुकदमा चलानेकी धमकी दी तो वे लोग भी स्तम्भित रह गये। वारेन हेस्टिंग्सने सुप्रीम कोर्टके चीफ जस्टिस सर एलिजा इम्पीको ऊंचे वेतनपर सदर दीवानी अदालतका अध्यक्ष नियुक्त करके बड़ी युक्तिपूर्वक गवर्नर-जनरलकी कौंसिल और कोर्टके बीच खुला संघर्ष टाल दिया। इस व्यवस्थाके फलस्वरूप सदर दीवानी अदालतकी कार्य-प्रणालीमें भी सुधार हो गया। किंतु इसमें एक दोष था। इसके फलस्वरूप न्यायपालिकाको कार्यपालिकाके अधीन बना दिया गया। १७९७ ई० में जजोंकी संख्या घटा कर तीन कर दी गयी तथा १७८१ ई०में उसके न्याय-क्षेत्रका स्पष्ट रीतिसे निर्धारण कर दिया।

१८०१ ई०में मद्रासमें तथा १८२३ ई०में बम्बईमें भी एक-एक सुप्रीम कोर्टकी स्थापना कर दी गयी। १८३३ ई०में तीनों सुप्रीम कोर्टोंका न्यायक्षेत्र स्पष्ट रीतिसे (१) समस्त ब्रिटिश प्रजा, (२) तीनों नगरोंमें रहनेवाले निवासियों तथा (३) कम्पनीकी परोक्ष अथवा अपरोक्ष रीतिसे नौकरी करनेवाले समस्त व्यक्तियों तक सीमित कर दिया गया। अंतमें, १८६१ ई०के इंडियन हाईकोर्ट ऐक्टके द्वारा सुप्रीमकोर्टको सदर दीवानी अदालतमें मिला दिया गया और दोनोंको मिला कर कलकत्ता हाईकोर्टकी स्थापना कर दी गयी, जिसके प्राथमिक न्याय-क्षेत्रमें समस्त कलकत्ता नगरको रख दिया गया तथा बंगाल, बिहार तथा उड़ीसाकी समस्त अपीलें सुननेका उसे अधिकार प्रदान किया गया। इसी प्रकार मद्रास तथा बम्बई प्रेसीडेंसीके सुप्रीम कोर्टोंको भी अपने-अपने प्रांतका हाईकोर्ट बना दिया गया।

सुबराहानका युद्ध—प्रथम सिक्ख-युद्धके क्रममें सिक्खों तथा अंग्रेजोंकी सेनामें १० फरवरी १८४६ ई०को हुआ। इस युद्धमें अंग्रेज विजयी हुए और उनके लिए लाहौरका रास्ता खुल गया। अंग्रेजोंने शीघ्र ही लाहौर ले लिया और सिक्खोंको एक सन्धि करनेपर विवश किया, जो लाहौरकी संधिके नामसे विख्यात है।

सुभागसेन—एक भारतीय राजा, जो काबुलकी घाटीमें राज्य करता था। लगभग २०८ ई० पू०में एन्टियोकसने उसके राज्यपर आक्रमण किया। सुभागसेनने हर्जानेके तौरपर उसे बहुत-सा धन और बहुत-से हाथी भेंट करके उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।

सुर्जी अर्जुन गांवकी संधि—१८०३ ई०में अंग्रेजों और दौलतराव शिन्देके बीच हुई, जिसके फलस्वरूप दोनोंके बीच चलनेवाला युद्ध समाप्त हो गया। संधिके अनुसार शिन्देने अपने दरबारमें ब्रिटिश रेजीडेंट रखना मंजूर कर लिया, बसईकी संधि (दे०) स्वीकार कर ली, निजामके ऊपर अपने सारे दावे त्याग दिये और अंग्रेजोंकी सहमतिके बिना अपनी नौकरीमें किसी भी विदेशीको न रखनेका वचन दिया। इसके अलावा उसने गंगा और यमुनाके बीचका सारा दोआब, जिसमें दिल्ली और आगरा भी सम्मिलित था, अंग्रेजोंको सौंप दिया। इस प्रकार उत्तरी भारत, दक्षिण तथा गुजरातमें शिन्देके समस्त राज्यपर अंग्रेजोंका प्रभुत्व स्थापित हो गया। शिन्देने राजपूतानाके अधिकांश राज्योंकी राजनीतिमें भी कोई हस्तक्षेप न करनेका वचन दिया। इस प्रकार अर्जुन गाँवकी संधिके द्वारा शिन्देकी स्वतंत्रता समाप्त हो गयी तथा उत्तरी भारतके अधिकांश भागमें ब्रिटिश साम्राज्यकी स्थापना साकार हुई।

सुलेमान—एक अरब व्यापारी (सौदागर)। वह राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष (दे०) (लगभग ८१५—७७ ई०) की राजसभामें आया और राजाके बल एवं ऐश्वर्यसे बहुत प्रभावित हुआ। उसने नवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें भारतकी दशाका रोचक वर्णन किया है।

सुलेमान कर्रानी—अकबर (दे०) के राज्यके प्रारम्भिक कालमें वर्तमानमें बंगालका पठान शासक। उसने अकबरकी नाममात्रकी अधीनता स्वीकार कर ली और अपनी स्वतंत्रता कायम रखी। उसके पुत्र दाऊद (दे०) ने

अकबरके खिलाफ खुली बगावत की। उसे १५७५ ई० में और पुनः १५७६ ई०में पराजित किया गया और युद्ध-भूमिमें मार डाला गया।

सुलेमान शिकोह, शाहजादा—दारा शिकोहका पुत्र। १६५७–५८ ई०में शाहजहांके पुत्रोंमें उत्तराधिकार युद्ध छिड़ जानेपर सुलेमानको पहले अपने चाचा शाहजादा शुजाके खिलाफ भेजा गया, जिसे उसने फरवरी १८५८ ई०में बनारसके निकट बहादुरपुरकी लड़ाईमें हरा दिया। परन्तु वह अपने पितासे इतना दूर था कि उसे न तो धर्मट (दे०) और न सामूगढ़ (दे०) की लड़ाईमें कोई सहायता पहुंचा सका। अन्तमें उसे गढ़वालके पहाड़ोंमें भाग जाना पड़ा। परन्तु शीघ्र उसे पकड़वा दिया गया। औरंगजेबने उसे १६६२ ई०में खानेमें जहर देकर मरवा डाला।

सूजा, मैनुअल डी—१५३९ ई०में दिव नामक बन्दरगाहका पुर्त्तगाली कप्तान। गुजरातका सुल्तान बहादुर शाह (दे०), पुर्त्तगाली गवर्नर नूनो द कुन्हासे मिलने वहाँ गया। दोनोंकी भेंट बन्दरगाहमें खड़े एक पुर्तगाली जलपोतपर हुई। वहाँ पुर्त्तगाली नाविकोंने छलपूर्वक बहादुरशाहपर आक्रमण कर दिया और मार-धाड़में बहादुरशाह और डी सूजा दोनों ही मारे गये।

सूत्र—ग्रंथों (कल्पशास्त्र) में वैदिक कर्मकाण्ड तथा विविध लौकिक कर्त्तव्यों एवं नियमोंका निरूपण मिलता है। वे अत्यन्त संक्षिप्त एवं सारवान् शैलीमें लिखे गये हैं और टीकाओं तथा भाष्योंके बिना उनका अर्थ समझना कठिन हो जाता है। सूत्र तीन प्रकारके होते हैं—(१) श्रौत-सूत्रोंमें यज्ञादि विषयक, विधान और विवरण मिलता है। (२) गृह्यसूत्रोंमें गृहस्थके कर्तव्यों तथा अनुष्ठानोंका वर्णन मिलता है तथा (३) धर्मसूत्रोंमें विविध सामाजिक कर्तव्यों तथा विधि-नियमों (कानूनों) का विवरण पाया जाता है।

सूफीमत—इस्लाम धर्मकी एक शाखा। इस मतमें दार्शनिक विचारोंकी प्रधानता है, अतएव यह दूसरे धर्मोंके प्रति इस्लामकी अपेक्षा अधिक सहिष्णु रहा है।

सूफ्रां, डी एडमिरल—एक फ्रांसीसी नौसेनापति, जो १७८१ ई०में भारत आया। ह्युजके नेतृत्ववाली ब्रिटिश नौसेनासे उसकी पाँच समुद्री लड़ाइयाँ हुईं। कुछ समयके लिए दक्षिण भारतके समुद्रोंपर उसका प्रभुत्व स्थापित हो गया। उसने श्रीलंकामें त्रिकोमलैपर अधिकार कर लिया। परन्तु आंग्ल-फ्रांसीसी युद्धपर उसका कोई निर्णयात्मक प्रभाव पड़नेसे पूर्व ही १७८३ ई०में इंग्लैंड और फ्रांसके बीच वर्सेलीजकी संधि हो गयी।

सूरजमल—१७६१ ई० वाली पानीपतकी तीसरी लड़ाई (दे०) के समय विद्यमान भरतपुरका जाट राजा। वह बड़ा चतुर राजनीतिज्ञ था और उसके पास बहुत अधिक दौलत थी। मराठा तथा अहमदशाह अब्दाली (दे०) दोनों ही उसकी सहायता चाहते थे। पहले वह मराठोंकी सहायता करनेके लिए राजी हो गया, परन्तु बादमें मराठोंके दम्भपूर्ण व्यवहारके कारण उसने अपनेको लड़ाईसे अलग कर लिया और भारतकी उस भाग्य-निर्णायक लड़ाईमें कोई हिस्सा नहीं लिया। वह अपने ढंगका एक बहुत ही सफल शासक था। वह जाट सरदार बदन सिंहका गोद लिया हुआ लड़का तथा उत्तराधिकारी था। उसने १७५६ ई०से १७६३ ई०में मृत्यु होनेतक जाटोंका नेतृत्व और भरतपुर राज्यका विस्तार किया, जिसमें आगरा, धौलपुर, मैनपुरी, हाथरस, अलीगढ़, इटावा, मेरठ, रोहतक, फर्रुखनगर, रेवाड़ी, गुड़गाँव तथा मथुरा जिला सम्मिलित थे। मुगलोंकी राजधानी दिल्लीके पड़ोसमें इतने बड़े हिन्दू राज्यकी स्थापनासे प्रकट होता है कि वह कितना कुशाग्र-बुद्धि, विवेकशील, दूरदर्शी तथा योग्य शासक था।

सूर वंश—इसका उद्भव शेरशाह सूरसे हुआ। उसने १५४० ई०में दूसरे मुगल बादशाह हुमायूँकी पराजयसे लेकर १५५५ ई०में हुमायूँ द्वारा दुबारा गद्दी प्राप्त किये जाने तक दिल्लीकी सल्तनतपर हुकूमत की। पन्द्रह साल की इस छोटी-सी अवधिमें इस वंशके तीन बादशाहोंने हुकूमत की—शेरशाह (दे०) (१५४०–४५ ई०), उसका लड़का इस्लाम अथवा सलीमशाह (१५४५–५४ ई०) तथा उसका चचेरा भाई आदिलशाह (१५५४–५६ ई०), जिसके सेनापति हेमू (दे०) अथवा हेमचन्द्रको अकबरने १५५६ ई०में पानीपतकी दूसरी लड़ाईमें हरा दिया तथा मार डाला। इस प्रकार सूर वंशका अंत हो गया।

सूर वंश—इसका सम्बन्ध परम्परागत रीतिसे बंगालसे, विशेष कर दक्षिण-पश्चिम बंगालसे जोड़ा जाता है। अनुश्रुतियोंके अनुसार इस वंशका प्रवर्तक आदिसूर (दे०) था। कहा जाता है, उसने कन्नौजसे पाँच ब्राह्मणोंको लाकर राढ़ (पश्चिमी बंगाल) तथा वरेन्द्र (उत्तरी बंगाल) में बसाया। परन्तु उसके अस्तित्वको सिद्ध करनेवाला कोई पुरालेख या सिक्का उपलब्ध नहीं है। उसका काल अत्यंत अनिश्चित है और आठवीं शताब्दीसे लेकर ग्यारहवीं शताब्दी तक माना जाता है। आदसूरके ऐतिहासिक व्यक्ति होनेके सम्बन्धमें चाहे जो कुछ

कहा जाय, यह सत्य है कि बंगालमें सूरवंश ग्यारहवीं शताब्दी तक शक्तिशाली राजवंश रहा। उस समय इस वंशका राजा विजयसेन (दे०) राज्य करता था (लगभग १०६५–११५८ ई०)। उसके अभिलेखसे प्रकट होता है कि उसने सूरवंशकी राजकुमारी विलासदेवीसे विवाह किया था। सम्भवतः रणसूर भी इसी वंशका पूर्ववर्ती राजा था। राजेन्द्र चोल (दे०) के आक्रमणके समय वह दक्षिण राढ़ देशपर राज्य कर रहा था। सेन वंश (दे०) का उदय होनेपर सूर वंशका पतन हो गया।

सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इण्डिया (भारत-मंत्री)—१८५२ ई० के गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया ऐक्टके अनुसार, कम्पनीके बोर्ड आफ कन्ट्रोलके सभापतिके स्थानपर भारत संबंधी मामलोंके विचारार्थ एक विशेष मंत्रीकी नियुक्ति हुई। उक्त मंत्री ब्रिटिश मंत्रिमंडलका सदस्य होता था। जब १८५८ ई०में ईस्ट इण्डिया कम्पनीसे भारतका प्रशासन सम्राट्के हाथोंमें आ गया, तबसे भारत-मंत्री ब्रिटिश पार्लियामेण्टमें भारतीय प्रशासनका उत्तरदायी बना। इसके सहायतार्थ १५ सदस्योंकी एक परामर्शदात्री समिति थी, जिसके कुछ सदस्य भारतकी स्थानीय जानकारी रखते थे। प्रारंभमें तो इस व्यवस्थासे इंग्लैण्ड तथा भारत दोनों ही लाभान्वित हुए, परन्तु कुछ वर्षोंके उपरान्त जब समितिके सदस्योंका दृष्टिकोण प्रतिक्रियावादी सिद्ध हुआ, तब भारतीय राजनीतिज्ञोंने भारत-मंत्रीकी इस समितिको अनावश्यक करार दिया।

भारतीय शासन-व्यवस्थाके संचालन और निर्देशनके संबंधमें भारत-मंत्रीके अत्यंत व्यापक अधिकार थे। वह समितिके मतकी अवहेलना भी कर सकता था। अतएव लार्ड मार्ले तथा एडविन मान्टेग्यू सदृश सबल मंत्री निरंकुश शासकोंकी भाँति व्यवहार करते थे। १९३५ ई०के भारतीय संविधान (दे०) [गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया एक्ट १९३५] की धाराओंके अनुसार भारत-मंत्रीकी समितिके स्थानपर कतिपय परामर्शदाताओंकी नियुक्ति हुई। संविधानमें केन्द्रीय शासनका दायित्व जिस सीमा तक क्रमशः भारतीयोंको सौंपनेका विचार किया गया, उस सीमा तक भारत-मंत्रीके अधिकार और सीमित हो गये। १९४७ ई०में भारतकी स्वतंत्रता घोषित होनेके साथ ही इस पद की समाप्ति कर दी गयी।

सेठ (अथवा जगत सेठ)—मुर्शिदाबादके एक प्रसिद्ध धनाढ्य परिवारकी उपाधि, जो महाजनीका कार्य करता था। अट्ठारहवीं शताब्दीके मध्यसे बंगालकी अर्थव्यवस्थापर उनका नियंत्रण था। (देखिये, 'जगत सेठ')।

सेनवंश—इसने बंगालमें लगभग १०९५ ई० से १२४५ ई० तक राज्य किया। इस वंशके शासक अपनेको सामन्तसेन-का वंशज मानते थे, जो पहले कर्नाटक (मैसूर) का निवासी था, फिर बंगाल आकर बस गया। सामन्तसेनके पुत्र हेमन्तसेनसे इस वंशकी शक्तिमें विशेष वृद्धि हुई और उसके पुत्र विजयसेनने सर्वप्रथम राजकीय उपाधि धारण की। उसने १०९५ से ११५८ ई० तक राज्य करते हुए पश्चिमी तथा उत्तरी बंगालपर अपना अधिकार स्थापित किया। उसका पुत्र और उत्तराधिकारी बल्लाल-सेन (दे०) ११५९ से ११७९ ई० तक राज्यासीन रहा और उपरान्त उसका पुत्र लक्ष्मणसेन सिंहासनासीन हुआ। लक्ष्मणसेनका राज समूचे बंगालपर था और कुछ काल तक तो उसकी राज्य-सीमा दक्षिण पूर्वमें उड़ीसा और पश्चिममें वाराणसी तक विस्तृत थी।

लगभग १२०२ ई०में जब बख्तियार खिलजीके पुत्र इख्तियारुद्दीन खिलजीके नेतृत्वमें मुसलमानी सेनाने उसकी राजधानी नदिया (नवदीप) पर आक्रमण किया, लक्ष्मण-सेन पूर्वी बंगालकी ओर भाग गया, जहाँ उसकी मृत्यु हो गयी। उसके पुत्र विश्वरूपसेन तथा केशवसेन पूर्वी बंगालपर १२४५ ई० तक राज्य करते रहे। उपरान्त पूर्वी बंगालपर भी मुसलमानोंका राज्य स्थापित हो गया।

सेनवंशका इतिहास कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है। इस वंशके शासकोंने बंगाल को एकताके सूत्रमें बाँधकर उसे एक शक्तिशाली राज्यका स्वरूप दिया, संस्कृत भाषा तथा साहित्यको प्रोत्साहन दिया और जयदेव सदृश कवि एवं हलायुध सरीखे धर्मशास्त्रकारोंको राजाश्रय प्रदान किया। (**र० च० मजूमदार—बंगालका इतिहास, प्रथम भाग, अंग्रेजीमें**)।

सेन्ट टामस—ईसा मसीहका शिष्य और ईसाई धर्मप्रचारक। धार्मिक अनुश्रुतियोंके अनुसार वह भारतके उत्तर पश्चिमी सीमा प्रदेशके शासक गुदनाफरके शासनकालमें दक्षिण भारत आया और मद्रासके निकट मैलापुर नामक स्थलपर शहीद हो गया। किन्तु कुछ विद्वानोंने इस परंपराकी सत्यतापर संदेह प्रकट किया है।

सेन्ट फ्रांसिस जेवियर—इस सन्तकी गणना ईसाई धर्मके जेसुइट भिक्षु संप्रदायके संस्थापकोंमें की जाती है। परंपरानुसार वह १६ वीं शताब्दीमें भारत आया। भारतकी अनेक शिक्षा-संस्थाएँ उसके नामसे संबंधित हैं और उनमें कलकत्ताका सेन्ट जेवियर्स कालेज उल्लेख-नीय है।

सेल, जनरल सर राबर्ट—एक सुप्रसिद्ध अंग्रेज सेनानायक,

जिसने प्रथम अफगान-युद्ध (दे०) में भाग लिया। जब वह गण्डमकमें भारतीय और अंग्रेज सेनाका नायकत्व कर रहा था, नवम्बर १८४१ ई०में उसे काबुलकी ओर प्रस्थान करनेका आदेश मिला, किन्तु वह इसका पालन न कर सका। उसे पीछे हटकर जलालाबादमें शरण लेनी पड़ी, जहाँ शीघ्र ही अफगानोंने घेर लिया। किन्तु उसने जलालाबादकी सफलतापूर्वक रक्षा की और अफगानोंको पीछे हटनेपर विवश किया। सेलने प्रथम सिक्ख-युद्ध (दे०) में भी भाग लिया। यद्यपि इस युद्धमें अंग्रेजोंकी विजय हुई, पर १८ दिसम्बर १८४५ ई०को मुदकीके युद्धमें वह मारा गया।

सेल्यूकस, नाइकेटर (निकेटर)—मकदूनियाके शासक सिकन्दर महान्‌का सेनापति। सिकन्दरकी मृत्युके उपरान्त उसके विशाल साम्राज्यके पूर्वी भागोंका वह स्वामी बना और ३०६ ई० पू० में उसने राजाकी उपाधि धारण की। इसी बीच चन्द्रगुप्त मौर्य (दे०) ने सिकन्दर द्वारा विजित समस्त भारतीय प्रदेशोंको यूनानी आधिपत्यसे मुक्त कर लिया। इन प्रदेशोंपर पुनः अधिकारके लिए सेल्यूकसने ३०२ ई०के पूर्व भारतपर आक्रमण करना चाहा पर चन्द्रगुप्तने उसके प्रयासको विफल कर दिया और विवश होकर सेल्यूकसको सन्धि करनी पड़ी। इसके अनुसार सेल्यूकसने हिन्दूकुश पर्वतके पूर्वका समस्त भू-भाग, काबुल और आधुनिक बलूचिस्तानके प्रदेश चन्द्रगुप्तको दे दिये और चन्द्रगुप्तने सेल्यूकसको ५०० हाथी प्रदान किये। सेल्यूकसने अपनी पुत्रीका विवाह चन्द्रगुप्तसे कर दिया। उसने मेगस्थनीज (दे०) नामक अपना राजदूत चन्द्रगुप्तकी राजधानी पाटलिपुत्र भेजा। चन्द्रगुप्त मौर्यकी इस विजयसे भारत कुछ समयके लिए यवनों (ग्रीकों) के आक्रमणसे बचा रहा।

सैयद अहमद खाँ, सर—भारतीय मुसलमानोंके प्रमुख नेता। जन्म दिल्लीमें। उन्होंने १८३७ ई० में भारतमें स्थित अंग्रेजोंके अधीन सेवाकार्य प्रारम्भ किया और क्रमशः सहायक न्यायाधीशके पद तक पहुँच गये। १८७६ ई० में उन्होंने सरकारी सेवासे अवकाश ग्रहण कर लिया और जीवनके शेष २२ वर्ष मुसलमानोंकी सेवा और उन्नतिके प्रयासोंमें व्यतीत किये। सिपाही-विद्रोहके दिनोंमें वे अंग्रेजोंके स्वामिभक्त बने रहे। पाश्चात्य संस्कृतिके महत्त्वको वे भली-भाँति समझते तथा उसके प्रति आदरशील थे। इस कारण उन्होंने अपने आपको पूर्ण मनोयोगसे भारतीय मुसलमानोंके मध्य अंग्रेजी शिक्षाके प्रचार-कार्यमें लगा दिया। १८७५ ई०में इन्होंने अलीगढ़में मुहम्मडन ऐंग्लो-ओरियन्टल कालेज (एम० ए० ओ० कालेज) की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य इस्लामी और यूरोपीय विद्या तथा ज्ञानोपार्जनमें समन्वय स्थापित करना था। १९२० में भारत सरकारने उक्त कालेजको विश्वविद्यालयके रूपमें मान्यता दी और उसका नाम अलीगढ़ मुस्लिम यूनीवर्सिटी पड़ा। इस विश्वविद्यालयसे कई योग्य एवं विद्वान् नवयुवक मुसलमान निकले।

वास्तवमें सर सैयद मुसलमान पहले थे और भारतीय बादमें। उनका विचार था कि भारतीय मुसलमानोंका हिन्दुओंसे सर्वथा भिन्न और एक विशेष वर्ग है और उनका हिन्दुओंसे कदापि मेलजोल न होना चाहिए। इसी कारण उन्होंने देशके मुसलमानोंको भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेससे अलग रहनेकी राय दी थी, क्योंकि उसमें हिन्दू बहुसंख्यक थे। यद्यपि सर सैयद अहमदने भारतीय मुसलमानोंकी स्थिति सुधारनेका अत्यधिक प्रयास किया, पर सम्पूर्ण देशके हितमें उनका योगदान महत्त्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

सैयद बन्धु—भारतीय इतिहासमें हुसैन अली और उसका भाई अब्दुल्ला सैयद बन्धुओंके नामसे प्रसिद्ध हैं। वे अवधके एक उच्च परिवारमें उत्पन्न हुए और सम्राट् बहादुर शाह प्रथमके राज्यकालके अन्तिम वर्षोंमें उच्च पदाधिकारी हो गये। वे दोनों बादशाह बनानेवालेके रूपमें प्रसिद्ध थे, क्योंकि १७२३ और १७२९ ई० के बीच उन्होंने कई व्यक्तियोंको दिल्लीका बादशाह बनाया तथा अपदस्थ भी किया। सर्वप्रथम उन्होंने १७१३ ई०में फर्रुखशियर (दे०) को सिंहासन प्राप्त करनेमें सहायता की, तथा अब्दुल्ला उसका वजीर और हुसैन अली सेनापति बना। इस प्रकार दोनों भाई साम्राज्यकी शासन सत्तापर नियन्त्रण रखनेकी स्थितिमें रहे। जब फर्रुखशियरने उनके विरुद्ध षड्यंत्र रचा, उन्होंने उसे सिंहासनसे उतार कर १७१९ ई० में उसका वध कर दिया। उपरान्त उन्होंने सिंहासनपर अपने हाथोंकी कठपुतली शासकोंको आसीन करके स्वतः राज्य करनेका निश्चय किया। केवल १७१९ ई० में ही उन्होंने रफीउद्दाराजात, रफीउद्दौलत, नेकसियर और मुहम्मद इब्राहीमको दिल्लीके सिंहासनपर बैठा कर उतार दिया तथा उनका वध कर दिया। उनका बनाया छठा शासक मुहम्मद शाह था। वह इन अत्यन्त महात्त्वाकांक्षी बंधुओंसे भी चतुर निकला। उसने सैयद बन्धुओंके सभी शत्रुओंको अपने पक्षमें मिला लिया, जिनमें मीर कमरुद्दीन, जो निजामुल मुल्क आसफजाहके नामसे विख्यात हुआ, प्रमुख था। उसकी सहायतासे

हुसैन अलीका वध उस समय करवा दिया गया, जब वह निजामको दण्ड देने मालवा जा रहा था। अब्दुल्लाको भी १७२० ई० में एक कठिन युद्धमें पराजित करके बंदी बनाया गया और १७२२ ई० में विष देकर मार डाला गया।

सैयद वंश—इसका आरम्भ तुगलक वंशके अन्तिम शासक सुल्तान महमूद (दे०) की मृत्युके उपरान्त खिज्र खांसे १४१४ ई०में हुआ। इस वंशमें क्रमशः खिज्र खां (१४१४–१४२१ ई०), उनका पुत्र मुबारक शाह (१४२१–१४३४ ई०), उसका भतीजा मुहम्मद शाह (१४३४–१४४५ई०) और आलम शाह (१४४५ से १४५१ ई०) नामक चार सुल्तान हुए। अंतिम सुल्तान इतना अशक्त और अहदी था कि उसने १४५१ ई०में बहलोल लोदीको सिंहासन समर्पित कर दिया। ३७ वर्षोंके शासन कालमें सैयद वंशके शासकोंने कोई भी उल्लेखनीय कार्य नहीं किया।

सोटर मेगस—इसका शाब्दिक अर्थ महान् त्राता होता है। यह उपाधि कुछ ऐसे सिक्कोंपर पायी जाती है जिन्हें किसी अज्ञातनामा शासकने चलाया था और जिसका राज्यकाल सम्भवतः कुषाण शासक कथफिश द्वितीय तथा कनिष्क (दे०) के बीचमें रहा होगा।

सोपारा—प्राचीन कालमें भारतके पश्चिमीतट पर स्थित एक प्रसिद्ध बन्दरगाह। इसके समुद्र मार्गसे अत्यधिक व्यापार होता था। इस शब्दका शुद्ध रूप शूर्पारक है।

सोमनाथका मन्दिर—हिन्दुओंका सम्मान्य तीर्थ। यह सुप्रसिद्ध शिव मन्दिर, काठियावाड़के प्रभास पट्टन नामक समुद्र तटीय स्थलपर गुजरातके चालुक्यों द्वारा निर्मित कराया गया था। इस मन्दिरमें अपार धनसम्पत्ति थी, क्योंकि दस सहस्त्र ग्रामोंकी आय इस मन्दिरको प्राप्त होती थी। मन्दिरके उपास्य देवकी पूजाके लिए उत्तरी भारतसे प्रतिदिन गंगाजल वहाँ ले जाया जाता था। इस मन्दिरमें दैनिक पूजन कृत्य सम्पादनार्थ एक सहस्त्र ब्राह्मण पुजारी नियुक्त थे और ३५० गायकों एवं नर्तकियोंकी सेवा मन्दिरको समर्पित थी। प्रतिदिन वहाँ इतने भक्त एवं निष्ठावान् हिन्दू दर्शनार्थी आते थे कि तीन सौ नाई उनके क्षौर-कर्मके लिए नियुक्त थे।

इस प्रभूत धन-वैभव-सम्पन्न मन्दिरपर १०२४ ई० में सुल्तान महमूद गजनवी (दे०) ने आक्रमण किया और उसे ध्वस्त कर डाला। कहा जाता है कि इस मन्दिरकी रक्षा करते हुए ५० सहस्त्र हिन्दू युद्धमें मारे गये। महमूदने मन्दिरपर अधिकार कर लिया और उसके विशाल शिवलिंगके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। मन्दिरकी अपार सम्पत्ति लूट करके महमूद स्वदेश लौट गया। उपरान्त मन्दिरका पुनर्निर्माण हुआ। (वहाँ पुनर्निर्मित मन्दिर भी कई बार नष्ट किये गये और भारतके स्वतंत्र होनेपर सरदार पटेलके प्रोत्साहनसे उसी स्थलपर पुनः एक मन्दिरका निर्माण हुआ है।)

सोमेश्वर प्रथम—उपनाम आहवमल्ल, कल्याणीके चालुक्य वंशका पाँचवाँ शासक, जिसने १०४१ से १०७२ ई० तक राज्य किया। उसने कल्याणीकी नींव डाली और उसे ही अपनी राजधानी बनाया। उसे चोल सम्राट् राजेन्द्र प्रथम (दे०) से संघर्ष करना पड़ा, जिसने उसे कोप्पल युद्ध (दे०) में पराजित किया। राजेन्द्र प्रथमके उत्तराधिकारी वीर राजेन्द्रने भी उसे कूडल संगमके युद्धमें हराया। इन पराजयोंके बावजूद उसने चालुक्य वंशकी शक्तिको सुरक्षित रखा।

सोमेश्वर द्वितीय—कल्याणीके चालुक्य सम्राट् सोमेश्वर प्रथमका पुत्र और उत्तराधिकारी। उसने केवल चार वर्ष (१०७२–७६ ई०) राज्य किया और तदुपरान्त उसके भाई विक्रमादित्य षष्ठ (दे०) ने उसको अपदस्थ कर दिया।

सोमेश्वर तृतीय—कल्याणीके चालुक्य वंशका आठवाँ शासक और सातवें शासक विक्रमादित्य षष्ठका पुत्र तथा उत्तराधिकारी। उसने ११२६ से ११३८ ई० तक राज्य किया और उसका शासनकाल शान्तिपूर्ण रहा। वह राजशास्त्र, न्याय व्यवस्था, वैद्यक, ज्योतिष, शस्त्रास्त्र, रसायन तथा पिंगल सदृश विषयोंपर अनेक ग्रन्थोंका रचयिता बताया जाता है। किन्तु उसकी बहुमुखी प्रतिभा एवं विद्वत्ता उसकी सैन्य संगठन शक्तिमें सहायक न हो सकी। उसीके शासनकालमें अधीनस्थ सामन्तोंने चालुक्योंकी प्रभुता त्यागकर स्वतन्त्र शासन करना प्रारम्भ कर दिया, फलस्वरूप चालुक्य शक्तिका ह्रास होने लगा।

सोलंकी—राजपूतोंकी एक शाखा, जिन्हें चालुक्य भी कहा जाता है। (दे० 'चालुक्य')।

सोलिंगरका युद्ध—यह द्वितीय मैसूर-युद्ध (दे०) (१७८०–८४ ई०) के दौरान १७८१ ई०में मैसूरके शासक हैदरअली तथा अंग्रेजोंके बीच हुआ था। इस युद्धमें अंग्रेजोंकी विजय हुई।

सौराष्ट्र (सुराष्ट्र)—देखिये, 'काठियावाड़'।

स्कन्द गुप्त—गुप्तवंशका अन्तिम महान् सम्राट्। ४५५ ई० में वह अपने पिता कुमार गुप्तका उत्तराधिकारी हुआ।

जब वह राजकुमार था, तभी उसने पुष्यमित्रोंके आक्रमणको विफल कर दिया और तदुपरान्त सिंहासनासीन होनेपर उसने हूण आक्रामकोंको भी मार भगाया। अपने १३ वर्षोंके शासन काल (४५५–६८ ई०) में वह निरन्तर युद्धोंमें व्यस्त रहा, क्योंकि हूणोंने बार-बार आक्रमण किये, जिन्हें विफल करनेमें राज्यकी आर्थिक स्थितिको भारी आघात पहुँचा।

अपने राज्य-कालके आरम्भिक दिनोंमें उसने कुमारगुप्त प्रथमके शासनकालके अन्तिम वर्षोंमें प्रचलित कम तौलके सिक्के गलवा करके प्रामाणिक भारके शुद्ध सोने, चाँदी तथा ताँबेके सिक्के प्रचलित किये। किन्तु हूणोंसे निरन्तर युद्ध करनेके कारण उसे भी राज्यकालके अन्तिम वर्षोंमें मुद्राओंमें भारी मात्रामें मिलावट करनी पड़ी। फिर भी उसने काठियावाड़की सुदर्शन झीलके विशाल बाँधको पुनः निर्मित करानेके लिए धन उपलब्ध किया। इस झीलका निर्माण सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त मौर्य (दे०) ने कराया था, उसके पौत्र अशोक (दे०) ने उस झीलसे सिंचाईके लिए नालियाँ बनवायीं। तदुपरान्त शक महाक्षत्रप रुद्रदामन (दे०) ने इसका जीर्णोद्धार कराया। स्कन्द गुप्तके राज्यकालमें काठियावाड़में उसके प्रान्तीय शासक पर्णदत्तने ४५६ ई० में उक्त बाँधका जीर्णोद्धार कराकर उसे दृढ़तर किया और दो वर्षोंके उपरान्त पर्णदत्तके पुत्र चक्रपालितने इस बाँधपर एक विष्णु मन्दिरका निर्माण कराया। महान् गुप्त सम्राटोंमें स्कन्दगुप्त अन्तिम प्रतापी राजा था।

स्काटमान्क्रीफ कमीशन—इस आयोगकी स्थापना १९०० ई० में तत्कालीन वाइसराय लार्ड कर्जनने की। इसका उद्देश्य सम्पूर्ण भारतवर्षमें सिंचाईकी सुविधाके लिए योजना बनाना था। लार्ड कर्जनने आयोगके इस प्रस्तावपर स्वीकृति दे दी कि ३,००,००,००० पौण्ड (तीन करोड़ पौण्ड) के अनुमानित व्ययसे ६५ लाख एकड़ भूमिकी सिंचाई-व्यवस्था की जाय।

स्काटिश चर्च कालेज—कलकत्ता स्थित यह विद्यालय भारतीय शिक्षामें रेवरेन्ड डॉ० अलेक्जेन्डर डफ (दे०) नामक पादरीके प्रयासोंका स्मारक है। प्रारम्भमें इसका नाम डफ कालेज था और इसकी स्थापना १८३० ई० में हुई। बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें इसका नाम स्काटिश चर्च कालेज पड़ा। भारतमें पाश्चात्य शिक्षाके प्रसारार्थ ईसाई मिशनों और मिशनरियोंके महत्त्वपूर्ण योगदानके ज्वलन्त उदाहरणोंमें यह विद्यालय भी है।

स्कूल बुक सोसाइटी—इस समितिकी स्थापना १८१८ ई०में डेविड हेयर नामक अंग्रेजके प्रयाससे कलकत्तामें हुई। इस समितिका मुख्य उद्देश्य अंग्रेजी पुस्तकोंका भारतमें ही मुद्रण, प्रकाशन तथा अल्प मूल्यमें विक्रय करना था।

स्टीन, सर आरेल—एक विख्यात प्राचीन वस्तुओंका संग्रहकर्ता, पुरातत्त्वविद् तथा अन्वेषक। उसने मध्य एशियामें विस्तृत अन्वेषक कार्य किया और बहुतसे बौद्ध स्तूपों और मठोंके ध्वंसावशेष, बुद्ध और हिन्दू देवताओंकी मूर्त्तियाँ तथा भारतीय भाषाओं और भारतीय लिपियोंमें लिखी हस्तलिखित पोथियाँ ढूँढ़ निकालीं। वह संस्कृत भाषाका प्रकांड विद्वान् था और उसने कल्हण (दे०) की राजतरंगिणीका अंग्रेजी भाषामें अनुवाद किया है।

स्टीवर्ट, जनरल—दूसरे अफगान-युद्ध (१८७९–८० ई०) के समय अफगानिस्तान स्थित ब्रिटिश सेनाका कमाण्डर। काबुलमें ब्रिटिश दूत काकावरी (दे०) की २४ जुलाई १८७९ ई० को हत्या कर दिये जानेके बाद, जनरल स्टीवर्टने शीघ्रतासे कन्दहारपर अधिकार कर लिया, जो १८७९ ई० की गन्दमककी संधि (दे०) के द्वारा अमीरको लौटा दिया गया था। इस प्रकार बादमें ब्रिटिश सेनाने अफगानोंसे जो प्रतिशोध लिया, उसका पथ इस सफलताने प्रशस्त कर दिया।

स्टुअर्ट, चार्ल्स—एक वाणिज्य विशेषज्ञ। लार्ड कार्नवालिस (दे०) ने उसीकी सलाहपर भारतमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके वाणिज्य-व्यापारका निर्देशन करनेवाले नियम बनाये।

स्टुअर्ट, जनरल—दूसरे मैसूर-युद्धके दौरान इसने १७६१ ई०में पोर्टो नोवोकी लड़ाईमें प्रशंसनीय योगदान दिया। बादमें सर आयरकूटके स्थानपर उसे ब्रिटिश सेनाका कमाण्डर बना दिया गया। किन्तु, १७८२ ई०में हैदर अलीकी मृत्युसे जो अवसर प्राप्त हुआ था, उसका लाभ उसने नहीं उठाया। बादमें मद्रासके गवर्नर लार्ड मैकार्टनीसे उसका झगड़ा हो गया। इस झगड़ेसे अंग्रेजोंके युद्ध संचालनमें भारी बाधा पड़ी।

स्टोलटाफ, जनरल—१८७८ ई० में काबुल पहुँचनेवाले रूसी दूत-मण्डलका नेता। अमीर शेख अली (दे०) को पड़ोसीके नाते स्वाभाविक रीतिसे उसका स्वागत समारोह आयोजित करना पड़ा। वाइसराय लार्ड लिटन प्रथमने अनुचित रीतिसे इसी घटनाको बहाना बनाकर दूसरा अफगान-युद्ध (दे०) छेड़ दिया जो १८७८ से १८८० तक चला।

स्ट्राची, सर जान—इंडियन सिविल सर्विसका एक ख्यातिप्राप्त सदस्य। उसने तथा उसके भाई सर रिचर्डने वाइसराय लार्ड लैंसडौन (दे०), लार्ड मेयो (दे०) तथा लार्ड लिटन प्रथमके शासनकालमें उच्च पदोंपर कार्य किया।

सर जानने भारतमें केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारोंके सम्बन्धोंको निर्देशित करनेवाले नियमोंका निर्धारण किया। सर रिचर्ड अकाल कमीशनका अध्यक्ष था, जिसने अकाल कोड (दे०) का निर्माण किया।

स्ट्राबो—एक यूनानी इतिहासकार। उसने सिकन्दरके आक्रमणके समयकी भारतकी दशाका वर्णन किया है और मेगस्थनीज (दे०) की 'इंडिका'से अनेक उद्धरण दिये हैं।

स्थानकवासी—श्वेताम्बर जैनोंका एक सम्प्रदाय। इसकी उत्पत्ति आधुनिक कालमें हुई है। मूर्ति-पूजामें इसका विश्वास नहीं है।

स्थानीय स्वशासन—भारतमें किसी न किसी रूपमें सभी युगोंमें वर्तमान था। प्राचीन कालमें गाँवोंमें तथा नगरोंमें, जो छोटे-छोटे राज्योंके रूपमें थे, सफाई, संचार, न्याय तथा शांति-व्यवस्था पंचायती संस्थाओंके हाथमें थी। चोल राज्यमें इस व्यवस्थाकी सफलताके प्रमाण विशेष रूपसे पाये गये हैं। अठारहवीं शताब्दीमें देशमें जो अव्यवस्था व्याप्त रही उसमें अधिकांश पंचायत व्यवस्था नष्ट हो गयी तथा सारी सत्ता तथा कर्त्तव्य सरकारके हाथमें केन्द्रित हो गये। प्रारम्भमें सरकारने गाँवोंके प्रशासनकी कोई सुनिश्चित व्यवस्था नहीं की। घाट-उतराई तथा सड़कों एवं पुलोंके निर्माणके लिए जो धन एकत्र किया जाता था, उसका प्रबन्ध जिला मजिस्ट्रेट स्थानीय कमेटियोंकी सहायतासे करते थे।

स्थानीय स्वशासनकी दिशामें पहला प्रयत्न बम्बईमें हुआ। वहाँ १८६९ ई०में एक ऐक्ट पास किया गया, जिसके द्वारा मालगुजारीपर उपकर लगाने तथा उसका खर्च एक अलग कमेटी द्वारा करनेका प्राविधान किया गया। यह कमेटी सारे जिलेके लिए भी होती थी और उसके सब-डिवीजनोंके लिए भी। बम्बईमें इस व्यवस्थाकी सफलतासे प्रोत्साहित होकर १८७० ई०में अन्य प्रांतोंके जिलोंमें भी इसी प्रकारकी कमेटियाँ गठित कर दी गयीं। इन कमेटियोंने स्थानीय सुख-सुविधाओंमें काफी सुधार किया, परन्तु इन कमेटियोंपर अधिकारियोंका पूर्ण प्रभुत्व रहता था। फिर इनके अधीन पूरा जिला होता था, जो इतना बड़ा होता था कि उसकी सुचारु रीतिसे देखभाल संभव नहीं थी।

लार्ड रिपन (दे०) चाहता था कि स्थानीय संस्थाओंको लोगोंको स्वशासनकी शिक्षा देनेका केन्द्र बनाया जाय। १८८२ ई०में उसने आदेश दिया कि जिलेके प्रत्येक सब-डिवीजनमें स्थानीय संस्थाका गठन किया जाय, उनमें निर्वाचित गैर-सरकारी सदस्योंका बहुमत रहे और उनकी अध्यक्षता एक गैर-सरकारी चेयरमैन करे। इस प्रकार स्थानीय स्वशासनकी दिशामें ठोस कदम उठाया गया, यद्यपि लार्ड रिपनने जो उदार सिद्धांत निरूपित किये थे, उनको नौकरशाहीके विरोधके कारण अनेक वर्षों तक क्रियान्वित नहीं किया जा सका। १९२१ ई०के बाद जब स्थानीय स्वशासन हस्तांतरित विषय बना दिया गया और एक उत्तरदायी मंत्रीके अधीन कर दिया गया, तभी जिला बोर्डों तथा स्थानीय बोर्डोंपर निर्वाचित गैर-सरकारी जन-प्रतिनिधियोंका पूर्ण नियंत्रण स्थापित हुआ।

लार्ड रिपनके ही प्रयाससे कस्बों तथा शहरोंका म्युनिसिपल प्रशासन, जो जिला मजिस्ट्रेटोंके अधीन था, म्युनिसपलटियोंको सौंपा गया, जिनमें नागरिकोंके द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि होते थे। इन प्रतिनिधियोंको म्युनिसिपल कौंसिलर कहते थे। उन्हें अपना अध्यक्ष चुननेका अधिकार था, जो गैरसरकारी व्यक्ति भी हो सकता था। म्युनिसपलटियोंके जिम्मे सफाई, रोशनी, पेय जल, सड़कोंका निर्माण तथा शिक्षा आदि अन्य नागरिक सुविधाओंकी व्यवस्थाका भार सौंपा गया। नौकरशाहीके विरोधके कारण इस व्यवस्थाको १९२१ ई०से पूर्व तक पूर्ण रीतिसे क्रियान्वित नहीं किया जा सका।

कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रासके तीन प्रेसीडेंसी नगरोंका म्युनिसिपल प्रशासन अलग ढंगसे विकसित हुआ और ग्रामीण क्षेत्रोंका म्युनिसिपल प्रशासन अलग ढंगसे। उन्नीसवीं शताब्दीके मध्य तक इन तीन नगरोंका म्युनिसिपल प्रशासन गवर्नर-जनरल द्वारा जस्टिस आफ पीसकी उपाधिसे सम्मानित विशिष्ट नागरिकोंकी कमेटियोंके हाथमें रहता था। उनके जिम्मे सफाई तथा पुलिस-व्यवस्था थी। उन्हें नगरके भीतर मकानोंके मालिकों तथा निवासियोंसे शुल्क लेकर धन संग्रह करनेका भी अधिकार था। १८५६ ई०में इन तीन नगरोंमें सफाईकी व्यवस्था बनाये रखने तथा सुधारके लिए तीन कमिश्नरोंकी नियुक्ति की गयी।

कलकत्तामें गैसकी रोशनी करने तथा नालोंका निर्माण करनेके लिए विशेष प्रबंध किये गये। यह व्यवस्था अप्रभावशाली सिद्ध होनेपर १८७६ ई०में कलकत्ता कारपोरेशनका पुनर्गठन किया गया। उसके ७२ सदस्योंमेंसे ४२ को करदाताओंके निर्वाचित प्रतिनिधि बना दिया गया, किन्तु चेयरमैन सरकार द्वारा मनोनीत किया जाता था। १८८२ ई०में निर्वाचित सदस्योंकी संख्या बढ़ाकर ५० कर दी गयी, परन्तु

१८९९ ई०में उनकी संख्या घटाकर कारपोरेशनकी कुल सदस्य-संख्याकी आधी कर दी गयी और चेयरमैनको, जो सरकार द्वारा मनोनीत किया जाता था, विस्तृत अधिकार प्रदान कर दिये गये। निर्वाचित सदस्योंकी संख्या घटाये जानेका कलकत्ताकी जनता द्वारा तीव्र विरोध किया गया और विरोध-स्वरूप कलकत्ता कारपोरेशनके अट्ठाईस सदस्योंने सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके नेतृत्वमें इस्तीफा दे दिया। चौबीस साल बाद उन्हीं सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके नेतृत्वमें, जो उस समय बंगालके स्थानीय स्व-शासन मंत्री थे, १८९९ ई० का प्रतिक्रियावादी कानून रद्द कर दिया गया और एक नया कानून बना, जिसके द्वारा कलकत्ता कारपोरेशनको नया रूप दिया गया। अब उसके लगभग सभी सदस्य करदाताओं द्वारा निर्वाचित किये जाते थे। इन सदस्योंको अपना मेयर (महापौर) चुनने तथा कारपोरेशनके एक्जीक्यूटिव अफसरोंको नियुक्त करनेका अधिकार होता था।

बम्बईमें १८७२ ई०में कारपोरेशनका नया संविधान बनाया गया, जिसके द्वारा उसका रूप बदल गया। अब उसमें सरकारी सदस्योंके बजाय, निर्वाचित सदस्योंकी बहुलता रहने लगी। उसके चौसठ सदस्योंमें केवल एक-चौथाई सदस्य सरकारके द्वारा मनोनीत किये जाते थे। उसका चेयरमैन सरकारके द्वारा नियुक्त किया जाता था और उसे कमिश्नर कहते थे। उसका यह संविधान कुछ आवश्यक संशोधनोंके साथ, जिसके द्वारा निर्वाचित सदस्योंकी संख्या और बढ़ा दी गयी, तबसे आज तक कायम है। इसी प्रकार मद्रास कारपोरेशनमें १८८४ ई० में निर्वाचनका सिद्धान्त लागू किया गया। उसका चेयरमैन भी एक वैतनिक सरकारी अधिकारी होता है, जिसे सरकार नियुक्त करती है।

स्थायी बंदोबस्त—लार्ड कार्नवालिस (दे०) ने १७९३ ई०में बंगाल, बिहार तथा उड़ीसामें प्रचलित किया। यह भूमि-व्यवस्था तथा मालगुजारी वसूली (दे०) की एक प्रणाली थी। इसके अन्तर्गत जमींदारको इस शर्तपर जमीनका मालिक स्वीकार कर लिया गया कि वह वर्ष-की एक नियत तिथिपर सरकारी खजानेमें वार्षिक माल-गुजारी जमा कर दे। यह जमींदारको रैयतसे मिलने-वाले लगानका ९० प्रतिशत होती थी। इस प्रणालीके अन्तर्गत रैयतको जमींदार जब चाहे तब जमीनसे बेदखल कर सकता था।

इस प्रणालीके सम्बन्धमें परस्पर विरोधी मत प्रकट किये गये हैं। कुछ लोगोंके विचारमें यह व्यवस्था साहस-पूर्ण तथा बुद्धिमत्तापूर्ण थी, जिससे सरकार, जमींदार तथा जनता, तीनोंको लाभ हुआ। अन्य लोगोंके विचार-में यह एक भारी गलती थी जिससे काश्तकारोंको कोई लाभ नहीं हुआ। यह स्वीकार करना होगा कि स्थायी बन्दोबस्तके अन्तर्गत काश्तकारोंको पूरी तरहसे जमीं-दारोंकी कृपापर छोड़ दिया गया और इसके फलस्वरूप सरकारको मालगुजारीमें भविष्यमें होनेवाली वृद्धिको तिलांजलि दे देनी पड़ी। किंतु, इसके साथ ही यह भी सत्य है कि इस व्यवस्थासे ब्रिटिश सरकारको उस समय स्थायित्व प्राप्त हो गया, जब उसे इसकी सबसे अधिक आवश्यकता थी। किन्तु, इस व्यवस्थाके अन्तर्गत जमीं-दारोंको अनुचित रीतिसे जो लाभ प्रदान किये गये थे तथा काश्तकारोंको जो कठिनाइयां होती थीं, उनको ध्यानमें रखते हुए हालमें जमींदारोंको मुआवजा देकर यह व्यवस्था समाप्त कर दी गयी है।

स्रोङ् गृम्पम्-स्गम्-पो—तिब्बत (भोट देश) का सबसे प्रसिद्ध राजा, जिसने ६२९ ई० से ६५० ई० तक राज्य किया। इस प्रकार वह आंशिक रूपमें हर्षवर्धन (दे०) का सम-सामयिक था। उसने ६४६-४७ ई०में हर्षवर्धनकी मृत्यु-के बाद उसकी गद्दीपर अधिकार कर लेनेवाले अर्जुन-पर अधिकार कर लिया। उसने बौद्ध-धर्म ग्रहण कर लिया और तिब्बतमें उसका प्रचार किया। उसने ल्हासा नगरकी स्थापना की और भारतीय लिपिके आधारपर भोट लिपि निर्मित करायी, जो आज भी तिब्बतमें प्रचलित है।

स्लिम, सर विलियम—एक अंग्रेज सेनानायक, जो द्वितीय महायुद्धमें १४ वीं सेनाका कमाण्डर था। उक्त सेना दक्षिण-पूर्व एशिया तथा भारतमें जापानी आक्रमणको रोकनेमें लगी हुई थी। उसकी सेनाकी सातवीं टुकड़ीने १९४४ ई० में मणिपुरके निकट कोहिमा नामक स्थलपर जापानियोंको आगे बढ़नेसे रोका। इस प्रकार उसने भारतमें जापानियोंके बढ़ावको रोकनेमें पर्याप्त सफलता प्राप्त की।

स्लीमैन, सर विलियम—ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें नियुक्त एक पदाधिकारी। लार्ड विलियम बेंटिकके प्रशासन-कालमें उसने ठगोंके दमनमें प्रमुख भाग लिया। उपरान्त वह अवधमें रेजीडेन्टके पदपर नियुक्त हुआ और इस पदपर १८४८ से १८५४ ई० तक रहा। अवधमें फैली हुई प्रशासकीय दुर्व्यवस्थाके सम्बन्धमें उसके द्वारा भेजी गयी रिपोर्टोंके आधारपर १८५६ ई० में अवध अंग्रेजोंके राज्यमें मिला लिया गया।

स्वेज नहर—१८६९ ई० में तैयार की गयी, जिससे भूमध्य-सागर लालसागरसे मिल गया। इसके फलस्वरूप भारत और यूरोपके बीच समुद्री मार्ग काफी छोटा हो गया। इससे पूर्व और पश्चिमके बीच व्यापारको ही नहीं, भारतमें यूरोपीय विचारोंके प्रचार-प्रसारको भी प्रोत्साहन मिला। यह नहर लेसेप्स नामक फ्रांसीसी इंजीनियरने बनायी है।

स्वेन, क्लारा—पहली महिला डाक्टरके रूपमें १८७४ ई०में भारत आयी। वह जन्मसे अमेरीकी थी। छः वर्ष बाद दूसरी महिला डाक्टरका आगमन हुआ। वह अंग्रेज थी और उसका नाम फैनी बटलर था। पहली भारतीय महिला डाक्टर, एक बंगाली महिला, श्रीमती कादम्बिनी गांगुली थी।

ह

हंटर शिक्षा कमीशन—लार्ड रिपन (१८८०–८४ ई०) के प्रशासनकालमें १८८२ ई०में नियुक्त किया गया। कमीशनने भारतकी शिक्षा सम्बन्धी प्रगतिका सिंहावलोकन किया और १८५४ ई०में निर्धारित पश्चिमी शिक्षाका प्रसार करनेकी नीतिका पूरी तरहसे अनुमोदन किया। कमीशनकी सिफारिश थी कि जनतामें प्राथमिक शिक्षाका विस्तार तथा सुधार करनेके लिए विशेष उपाय किये जायँ। शिक्षा विभागमें अधिक अच्छे व्यक्तियोंको आकर्षित करनेके उद्देश्यसे उसका पुनःसंगठन किया जाय। उसने शिक्षण संस्थाओंको अनुदान देनेकी प्रणालीका अनुमोदन किया और सिफारिश की कि सभी स्तरोंकी शिक्षा अधिकाधिक निजी संस्थाओंके हाथमें छोड़ देनी चाहिए और सरकारको अनुदान द्वारा उनकी सहायता करनी चाहिए। सरकारने रिपोर्ट स्वीकार कर ली और उसके फलस्वरूप देशमें शिक्षण संस्थाओंकी संख्यामें स्थिर गतिसे वृद्धि होने लगी।

हंटर, सर विलियम विलसन—(१८४०–१९०० ई०)—एक परिष्कृत शिक्षाविद, ग्रन्थकार, सांख्यिकीविज्ञ अधिकारी, जिसने ग्लासगो, पेरिस तथा बानमें शिक्षा प्राप्त कर १८६२ ई०में इंडियन सिविल सर्विसमें प्रवेश किया और बंगालमें नियुक्त हुआ। उसमें धारा-प्रवाह लिखनेकी शक्ति थी। १८६८ ई०में उसने 'ग्रामीण बंगालका क्रमानुसार इतिहास' लिखकर राजनेताके रूपमें अच्छा नाम कमाया। चार साल बाद 'भारतकी अनार्य भाषाओंका तुलनात्मक कोश' प्रकाशित करके अपने पांडित्यका भी परिचय दिया। भारतके सांख्यिकीय सर्वेक्षणका प्रबंध किया और १८७५–७७ ई०में 'बंगालका सांख्यिकीय विवरण' २० खंडोंमें प्रकाशित किया। इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया भी २३ खण्डोंमें तैयार किया, जिससे उसकी विद्वत्ता तथा परिश्रमशीलताका प्रमाण मिलता है। १८८२–८३में शिक्षा कमीशन (दे०) की अध्यक्षता की। कमीशनकी रिपोर्टने देशकी शिक्षा-नीतिपर बहुत हद तक प्रभाव डाला। १८८७ ई०में अवकाश ग्रहण करनेपर 'रूलर्स आफ इंडिया' (भारतके शासक) पुस्तकमालाका संपादन किया और स्वयं 'डलहौजी' और 'मेयो'-पर पुस्तकें लिखीं। उसकी लेखन-शैली अत्यंत सुन्दर थी और उसकी पुस्तकें रोचक होनेके साथ-साथ अत्यंत ज्ञान-वर्द्धक थीं। उसकी पुस्तकोंने अंग्रेजी भाषा-भाषी संसारको भारतसे परिचित करानेमें काफी योगदान किया।

हकीम दवाई—फारसीका एक विद्वान् तथा शाहजादा खुर्रम (बादमें बादशाह शाहजहाँ) का उस्ताद।

हकीम, शाहजादा मुहम्मद—बादशाह हुमायूँ (१५३०–३६ ई०) का दूसरा लड़का और अकबरका भाई। अकबरने उसे अफगानिस्तानका हाकिम बना दिया और वह काबुलमें रहने लगा। १५८१ ई०में उसने अकबरके खिलाफ बगावत कर दी; परंतु वह कुचल दी गयी। अकबरने उसे क्षमा कर दिया और वह अफगानिस्तानका हाकिम बना रहा। शाहजादा हकीम जबर्दस्त पियक्कड़ था। शराबखोरीकी वजहसे १५८४ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी।

हड़प्पा—सिंधु घाटी-सभ्यता (दे०) का एक प्राचीन केन्द्र, जो अब पश्चिमी पाकिस्तानके अन्तर्गत पंजाबके मांटगोमरी जिलेमें है। यह लगभग तीन मील परिधिका विशाल नगर था। पुरातत्व विभाग द्वारा की गयी खुदाईके फलस्वरूप यहाँ सुनियोजित ढंगसे बने नगरके ध्वंसावशेष मिले हैं। नगरमें अनाजके गोदाम, श्रमिकोंके निवासस्थान, परिखा-प्राकार और द्वारोंसे युक्त दुर्ग तथा श्मशान भूमिके अवशेष मिले हैं। बहुत-सी मोहरें भी मिली हैं जिनपर अंकित लिपिको अभी पढ़ा नहीं जा सका है। खुदाईमें मिले अवशेषोंसे प्रकट होता है कि यहाँपर उन्नत सभ्यता वर्तमान थी।

हबीबुल्ला खाँ अमीर—सन् १९०१ ई०में अपने पिता अमीर अब्दुर्रहमानके मरनेपर अफगानिस्तानकी गद्दीपर बैठा। सन् १९१९ में उसकी हत्या कर दी गयी। उसने

ब्रिटिश सरकारसे हिज मैजेस्टीकी उपाधि प्राप्त कर अफगानिस्तानकी स्वाधीनतापर व्यावहारिक स्वीकृति प्राप्त की। जब सन् १९०७ में ब्रिटेन तथा रूसने अफगानिस्तानके संबन्धमें अमीरसे परामर्श किये बिना एक करारपर हस्ताक्षर किये, तो अमीरने उसपर अपनी स्वीकृति देनेसे इनकार कर दिया। अमीरकी नीति यह थी कि ब्रिटेन अथवा रूसकी अधीनता स्वीकार किये बिना स्वतंत्रता कायम रखी जाय। प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४–१८) में अमीरने तटस्थ रहकर ब्रिटिश सरकारकी बड़ी सेवा की। अमीरकी हत्या हो जानेपर उसका बेटा अमानुल्ला खाँ गद्दीपर बैठा।

हमजा शाह, सैफुद्दीन–बंगालका एक नबाब, जो इलियास शाही वंश (दे०) का था। उसने केवल एक वर्ष और कुछ महीने (१४१०–१२ ई०) शासन किया और उसकी गद्दी राजा गणेश (दे०) ने छीन ली।

हमीद खाँ–सैयद वंश (दे०) के अंतिम सुल्तान आलमशाह (१४४५–५३ ई०) का दीवान। उसने बहलोललोदीको दिल्लीकी गद्दीपर कब्जा करनेमें मदद दी थी, परन्तु बहलोलने गद्दीपर बैठनेके बाद उसको जेलमें डाल दिया, ताकि वह नये सुल्तानके मार्गका काँटा न बन सके।

हमीदा बानू बेगम–बादशाह हुमायूँकी बेगम तथा उसके लड़के अकबरकी माता। अकबरके राज्यकालके प्रारम्भिक वर्षोंमें प्रशासनपर उसका काफी प्रभाव था।

हम्मीर–मेवाड़का एक वीर राजपूत, जो राजवंशसे सम्बन्धित था। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीके शासनके अंतिम दिनोंमें, १३१६ ई० के आसपास उसने दिल्लीके सुल्तानसे चित्तौड़ वापस छीन लिया। उसका शासनकाल लम्बा और गौरवपूर्ण था। उसने १३६४ ई० तक अपनी मृत्युसे पूर्व पूर्वजोंका सारा राज्य फिरसे जीत लिया था।

हम्मीर देव–रणथंभौरका चौहान राजा, जिसने १२८२ से १३०१ ई० तक अपनी मृत्यु पर्यन्त राज्य किया। हम्मीरने बड़ी आनबानके साथ अपना शासन आरम्भ किया। उसने मालवाका एक भाग तथा गढ़मंडल जीत लिया, अपने राज्यकी सीमा मालवामें उज्जैन तक तथा राजपूतानामें आबू पर्वत तक बढ़ा ली। वह इतना शक्तिशाली था कि सुल्तान जलालुद्दीन खिलजीने १२९१ ई० में रणथंभोरका किला सर करनेका प्रयत्न त्याग दिया। बादमें उसने सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीकी सेनाके बगावत करनेवाले सरदारोंको शरण देकर उसकी खुली अवहेलना की। उसने सुल्तानकी फौजके दो हमलोंको विफल कर दिया। परंतु अंतमें १३०१ ई०में सुल्तानने स्वयं किला घेर लिया और उसे फतह कर लिया।

हरकिशन–सिक्खोंके आठवें गुरु (१६६१–६४ ई०)। वे सातवें गुरु हररामके पुत्र और उत्तराधिकारी थे। उन्होंने भी अपने पितामह गुरु हरगोविन्द सिंहकी भाँति सिक्खोंको शस्त्र धारण करनेके लिए प्रोत्साहित किया।

हरगोविन्द–सिक्खोंके छठें गुरु (१६०६–४५ ई०)। बादशाह जहाँगीरके आदेशसे पाँचवें गुरु अर्जुनको फाँसी दे दी जानेपर वे गद्दीपर बैठे। वे केवल धर्मोपदेशक ही नहीं, कुशल संगठनकर्ता भी थे और उन्होंने अपने अनुयायियोंको शस्त्र धारण करनेके लिए प्रेरित किया तथा छोटीसी सेना इकट्ठा कर ली। इससे कुपित होकर बादशाह जहाँगीरने उनको बारह वर्ष तक कैदमें डाले रखा। रिहा होनेपर उन्होंने शाहजहाँके खिलाफ बगावत कर दी, और १६२८ ई०में अमृतसरके निकट संग्राममें शाही फौजको हरा दिया। अन्तमें उन्हें कश्मीरके पहाड़ोंमें शरण लेनी पड़ी, जहाँ १६४५ ई० में उनकी मृत्यु हो गयी।

हरदत्त–बुलंदशहर अथवा बूरनका राजा, जिसपर सुल्तान महमूदने १०१८ ई० में हमला किया। उसने सुल्तानकी अधीनता स्वीकार करके सुलह कर ली और इस्लाम धर्म कबूल कर लिया।

हरदयाल–एक सुशिक्षित भारतीय क्रांतिकारी, जो दिल्लीके निवासी थे। पंजाब विश्वविद्यालयसे ससम्मान बी० ए० पदवी प्राप्त करनेके बाद वे आक्सफोर्ड जाकर पढ़ने लगे। वहाँ उनमें ब्रिटिश शासन-विरोधी तीव्र भावना उत्पन्न हो गयी। भारत लौटनेपर उन्होंने अपने क्रांतिकारी विचारोंका प्रचार आरम्भ कर दिया। भारत सरकारने जब उनके मार्गमें रुकावट खड़ी कर दी, तब १९०८ ई० में वे देशसे बाहर चले गये तथा यूरोपका विस्तृत भ्रमण करते हुए अंतमें अमरीकामें जाकर बस गये। वहाँ उन्होंने गदर पार्टीका संगठन किया एवं भारत और जर्मनीके सहयोगकी जोरदार वकालत करने लगे। इस कारण उन्हें अमरीकासे निर्वासित कर दिया गया।

अन्तमें वे यूरोप चले गये और बर्लिनको अपना मुख्यालय बना लिया। वहाँसे उन्होंने अफगानिस्तानमें अंग्रेजोंके खिलाफ बगावत करानेकी कोशिश की, परन्तु उनकी कोशिशें नाकाम रहीं। जर्मनीकी हारके बाद वे स्टाकहोममें बस गये और वहाँ भारतीय भाषाओंके प्रोफेसर बना दिये गये। उनकी मृत्यु मध्य अमरीकामें

हुई, जहाँ वे व्याख्यान देने गये थे। वे भारतमें ब्रिटिश शासनके विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह संगठित करनेके समर्थक तथा उग्र समाजवादी थे।

हरद्वार—उत्तर प्रदेशमें हिन्दुओंका सबसे पवित्र तीर्थस्थान। यहाँपर गंगा पहली बार पहाड़से मैदानमें उतरती हैं। यहाँपर गंगा-स्नान अत्यंत पुण्यकारी माना जाता है। इसके निकट काँगड़ीमें गुरुकुल विश्वविद्यालयकी स्थापना की गयी है।

हरपाल देव—देवगिरिका यादव राजा था। वह राजा रामचन्द्र देवका दामाद और उत्तराधिकारी था जिसे अलाउद्दीन खिलजीने १२९४ ई० में हराया था और खिराज देनेके लिए विवश किया था। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीका देहान्त हो जानेपर हरपाल देवने खिराज देना बन्द कर दिया, और अपनेको लगभग स्वतन्त्र कर लिया। परन्तु १३१७ ई०में सुल्तान मुवारक (दे०) ने उसे हरा दिया और कैद करनेके बाद फाँसी दे दी।

हर राय—सिक्खोंके सातवें गुरु (१६४६–६१ ई०) थे। उन्होंने अपने पितामह गुरु गोविन्द सिंहकी वित्तीय नीति जारी रखी।

हरविजय—कश्मीरी कवि द्वारा लिखित काव्य जिसमें पचास सर्ग हैं। रत्नकरनका समय नौवीं शताब्दीका मध्य भाग माना जाता है। वह कश्मीरके राजा अवंतीवर्मन (दे०) का समसामयिक था।

हरिनाथ—एक प्रसिद्ध हिन्दी लेखक था, जिसे बादशाह अकबर (१५६६–१६०५ ई०) का आश्रय प्राप्त था।

हरिपंत फड़के—एक मराठा सेनापति, जिसने नाना फड़नवीसके आदेशसे दिसम्बर १७८५ ई० में मैसूरके टीपू सुल्तानके विरुद्ध मराठा सेनाका सेनापतित्व किया और टीपूको सुलहकी बातचीत शुरू करनेके लिए विवश किया। फलस्वरूप १७८७ ई० में संधि हुई, जिसके द्वारा टीपूने मराठोंको ४५ लाख रुपया और मराठों द्वारा अधिकृत इलाकोंके बदलेमें बदामी, किठूर और नारगुड जिले देना मंजूर कर लिया।

हरि विजय सूरि—एक प्रमुख जैन मुनि थे, जो बादशाह अकबर (१५६६–१६०५ ई०) के समयमें हुए। बादशाह अकबरने फतेहपुर सीकरीके इबादतखानेमें धार्मिक विषयोंपर विचार-विनिमयके लिए जिन विद्वानोंको आमंत्रित किया था, उनमें हरि विजय सूरि भी थे।

हरिषेण—वाकाटक वंश (दे०) का अंतिम राजा था, जिसने चौथीसे छठीं शताब्दीतक मध्य प्रदेशपर शासन किया।

हरिषेण—गुप्तवंशके द्वितीय सम्राट समुद्रगुप्त (लगभग ३३०–८० ई०) का एक सेनापति तथा दरबारी कवि था, जिसने इलाहाबादके स्तम्भपर उत्कीर्ण समुद्रगुप्तकी विजययात्राओंका वर्णन करनेवाली प्रशस्तिकी रचना की।

हरिसिंह—तिरहुतका राजा। उसने १३२१ ई० में नेपालपर हमला किया और वहाँके राजा जयसमुद्र मल्लको परास्त करके तराईके सारे इलाकेपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। उसने भात गाँवको अपनी राजधानी बनाया और चीनसे दौत्य सम्बन्ध स्थापित किया। उसने स्थानीय राजाओंको अधिकारारूढ़ बनाये रखा। उसके उत्तराधिकारियोंने १४१८ ई० तक नेपालपर शासन किया।

हरिसिंह नवला (नलवा)—पंजाबके महाराजा रणजीत सिंहका सिक्ख सेनापति, जिसने मई १८३४ ई० में पेशावरका किला फतह कर लिया और वह महाराज रणजीत सिंहके कब्जेमें आ गया। उसके पराक्रमका बड़ा दबदबा था।

हरिहर प्रथम—संगमका पुत्र था। उसने अपने चार भाइयोंकी सहायतासे, जिनमें बुक्काराय प्रथम सबसे मुख्य था, १३३६ ई० में तुंगभद्राके दक्षिणी तटपर विजयनगरकी स्थापना की और इस प्रकार उस क्षेत्रमें विजयनगर साम्राज्य की नींव डाली। इस कार्यमें उसे दो ब्राह्मण आचार्यों, माधव विद्याराय और उनके ख्यातनामा भाई, वेदोंके भाष्यकार सायणसे भी सहायता मिली। पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्र तटके बीचके सारे भू-भागपर अपना साम्राज्य स्थापित करनेके बाद हरिहर प्रथमकी १३५४–५५ ई०में मृत्यु हो गयी।

हरिहर द्वितीय—बुक्क प्रथमका पुत्र तथा उत्तराधिकारी, जो विजयनगर साम्राज्यका दूसरा राजा हुआ। उसने १३७७ से १४०४ ई० तक राज्य किया। उसने विजयनगर साम्राज्यकी सीमा दक्षिणमें त्रिचनापल्लीतक फैला दी।

हर्शेल कमेटी—ब्रिटिश भारतमें मुद्रा-सुधारपर विचार करनेके लिए १८९२ ई०में यह नियुक्त की गयी। उसकी सिफारिशोंके आधारपर भारत सरकारने टकसालोंमें सोना और चाँदी ले जाकर जनता द्वारा मनचाही मात्रामें सिक्के ढलवाना बंद कर दिया। फिर भी टकसालोंमें १ शिलिंग ४ पेंसकी विनिमय दरपर चाँदीके रुपयोंके बदलेमें सोना ले लिया जाता था। सार्वजनिक ऋणोंकी अदायगीके रूपमें गिन्नियाँ स्वीकार कर ली जाती थीं। एक गिन्नी १५ रुपयेके बराबर मानी जाती थी। इन

सुधारोंके फलस्वरूप सोना विनिमय मूल्यका आधार बन गया, फिर भी तब तक उसे कानूनी मान्यता नहीं मिली थी।

हर्ष—कामरूपका सालसतम्व-वंशी राजा। वह आठवीं शताब्दीके मध्य भागमें राज्य करता था। उसने अपनी पुत्री राज्यमतीका विवाह नेपालके राजा जयदेवसे किया था।

हर्ष—कश्मीरका एक राजा, जिसने १०८९ से ११०१ ई० तक राज्य किया। वह बड़ा अत्याचारी था। क्रूरतामें उसकी तुलना रोमके सम्राट् नीरोसे की जाती है।

हर्ष चरित—हर्षवर्धनके राजकवि बाणकी रचना है। इसमें हर्षका प्रारम्भिक जीवन वृतान्त मिलता है जो विंध्या-चलके जंगलोंमें उसकी बहिन राज्यश्रीसे भेंट होनेके साथ समाप्त हो जाता है। इसमें हर्षकी राज सभा, सेना और उस कालके समाजिक जीवनका विशद् चित्र मिलता है।

हर्षवर्धन—कन्नौज और थानेश्वरका राजा (६०६–४७ई०)। वह थानेश्वरके राजा प्रभाकरवर्धनका दूसरा पुत्र था। बड़े भाई राज्यवर्धनकी ६०६ ई० में मृत्यु हो जानेपर उसने राज्यका शासन-भार सँभाला। जिस समय हर्ष सिंहासनपर बैठा, स्थिति अत्यन्त संकटपूर्ण थी। गौड़ (बंगाल) के राजा शशांकने उसके बड़े भाईका वध कर डाला था और उसकी छोटी बहिन राज्यश्री अपने प्राणों-की रक्षाके लिए किसी अज्ञात स्थानमें भाग गयी थी। इसके पति, कन्नौजके राजा ग्रहवर्माको मालवाके राजाने युद्धमें हरानेके बाद मार डाला था।

हर्षवर्धनने शीघ्र ही अपनी बहिनको ढूँढ़ निकाला और कामरूपके राजा भास्कर वर्मासे संधि करनेके बाद गौड़के शशांकके विरुद्ध एक बड़ी सेना भेज दी। वह शायद शशांकको गद्दीसे उतार नहीं पाया, क्योंकि शशांक ६१९ ई० तक तो निश्चित रूपसे राज्य करता रहा और उसके बाद भी शायद कई वर्ष तक जीवित रहा। फिर भी उसने एक बड़ी सेना एकत्र कर ली और सिंहासनपर बैठनेके बाद वह लगातार छह वर्ष तक युद्ध करता रहा, जैसाकि उसके समसामयिक चीनी यात्री ह्युएनसांग अथवा युवान च्वांगने लिखा है, उसने 'पंच-हिन्दू'को जीत लिया। 'पंचहिन्दू'से युवान च्वाङ्गका आशय भारतके किन-किन भागोंसे है, यह स्पष्ट नहीं है। फिर भी प्राचीन लेखोंसे सिद्ध होता है कि हर्षवर्धनने वल्लभी, मगध, कश्मीर, गुजरात तथा सिंधको जीत लिया।

दक्षिणमें इसकी सेनाओंको लगभग ६२० ई० में चालुक्य राजा पुलकेशीय द्वितीयने नर्मदाके तटसे पीछे खदेड़ दिया, परन्तु वस्तुतः वह अपने लम्बे राज्यकालमें बराबर युद्ध करता रहा और उसके द्वारा अंतिम लड़ाई ६४३ ई० में गंजाममें छेड़नेका उल्लेख मिलता है। इस प्रकार उसने विशाल साम्राज्यकी स्थापना की, जिसकी सीमाएँ उत्तरमें हिमाच्छादित पर्वतों तक, दक्षिणमें नर्मदा नदीके तट तक, पूर्वमें गंजाम तथा पश्चिममें वल्लभी तक विस्तृत थीं। कन्नौज इस विशाल साम्राज्य-की राजधानी थी।

हर्ष बड़ा योग्य शासक था और उसने महाराजा-धिराजकी पदवी धारण कर ली थी। उसने चीनी सम्राटसे दौत्य सम्बन्ध स्थापित कर रखा था। वह सभी धर्मोंका आदर करता था, शिव और सूर्यके साथ-साथ बुद्धकी भी उपासना करता था। बादमें उसका झुकाव महायान बौद्ध धर्मकी ओर अधिक हो गया। सम्राट् अशोककी भाँति उसने भी अपने साम्राज्यमें यात्रियों, दीन-दुखियों तथा रोगियोंकी सेवा-सुविधाके लिए स्थान-स्थानपर धर्मशाला, कुआँ, चिकित्सालय आदिका प्रबन्ध कर रखा था। वह प्रचुर मात्रामें दान देता था और पाँच वर्षोंमें राज्यकोष-में जो धन एकत्र होता था, उसे प्रयागमें गंगा और यमुना-के संगमपर एक महोत्सव करके दान कर डालता था। चीनी यात्री ह्यएन-त्सांग अथवा युवान च्वाङ्ग ६४३ ई० में इस प्रकारके छठे महोत्सवमें सम्मिलित हुआ था। उसने महोत्सवका जो वर्णन किया है, उससे हर्षवर्धनके ऐश्वर्य और उसकी दानशीलताका स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

हर्षवर्धन उच्च कोटिका कवि भी था। उसने संस्कृतमें नागानंद, रत्नावली तथा प्रियदर्शिका नामसे तीन नाटकोंकी रचना की है। वह कवियों और विद्वानोंका आश्रयदाता था, कादम्बरी और हर्ष चरितके लेखक बाण, सुभाषितावलीके रचयिता मयूर और विद्वान चीनी यात्री ह्युएन-त्सांग (दे०) को उसने आश्रय प्रदान किया था।

हर्ष-संवत्—थानेश्वर और कन्नौजके महाराजाधिराज हर्ष-वर्धनके सिंहासनारूढ़ होनेपर ६०६ ई० में यह प्रचलित हुआ।

हलेबिड—होयसल नरेश द्वार समुद्रकी राजधानी, जहाँका होयसलेश्वर मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। यह मंदिर वास्तु-कलाकी अत्यन्त उल्लेखनीय कृति है और सारे एशियामें मानवीय उद्यमका इससे उत्तम उदाहरण दूसरा नहीं मिलता है।

हल्दीघाटकी लड़ाई–देखिये 'गोघूंदाकी लड़ाई'।

हसन अली अब्दुल्ला–सैयद बन्धुओं (दे०)में बड़ा भाई। छोटा भाई हुसेन अली (दे०) था।

हसन अली खाँ–बादशाह औरंगजेब (१६५८–१७०७ई०) का एक सेनापति। मथुराके फौजदारकी हैसियतसे उसने १६६९ ई० गोकुला (दे०) के नेतृत्वमें जाटोंका बलवा दबाया था।

हसन-ए-देहलवी–शेख निजामुद्दीन हसनका नाम। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (१२९६–१३२६ ई०) के शासन-कालमें फारसीके एक कविके रूपमें उसकी ख्याति भारत-से बाहर तक फैल गयी थी।

हसन खाँ–बादशाह शेरशाह (१५४०–४५ ई०) का पिता। वह अपने पिता इब्राहीमके साथ पेशावरसे आया और पंजाबके एक जागीरदारकी सेवामें रहने लगा। वहीं उसका लड़का फरीद पैदा हुआ जो बादमें शेरशाहके नामसे मशहूर हुआ। बादमें हसनको जौनपुरके सूबेदार-से बिहारके सासाराममें एक जागीर मिल गयी। वह अपनी पत्नीके प्रभावमें आकर जो शेरशाहकी विमाता थी, अपने लड़केके साथ अच्छा बर्ताव नहीं करता था। इसके फलस्वरूप शेरशाह अपने पितासे अलग हो गया। आगे चलकर उसने जो प्रसिद्धि प्राप्त की, उसमें उसके पिताका कोई हाथ नहीं था।

हसन खाँ मेवाती–एक अफगान सरदार, जिसने दिल्लीकी सल्तनतपर लोदी वंशका अधिकार बनाये रखनेकी कोशिश की। बाबरको हरानेके लिए वह मेवाड़के राणा सांगासे जा मिला और १५२७ ई०में खानवाके युद्धमें राणा सांगा-के साथ वह भी प्रथम मुगल बादशाह बाबर (१५२६–३० ई०) से पराजित हुआ।

हसन जफर खाँ–ब्रहमनी राज्य तथा वंशका संस्थापक। (देखिये, अलाउद्दीन हसन बहमन शाह)।

हसनुन-निजामी–एक मुस्लिम इतिहासकार। उसने ताजुल-मासिरकी रचना की, जिसमें दिल्लीकी पहली सल्तनत (दे०) का प्रामाणिक विवरण मिलता है।

हस्तिवर्मा–वेङ्गीका राजा। द्वितीय सम्राट् समुद्र गुप्त (लगभग ३३०–३८० ई०) ने दक्षिण भारतके जिन राजाओंको हरानेके बाद उनका राज्य लौटा दिया था, उनमें हस्ति-वर्मा भी था। विश्वास किया जाता है कि वह सालंकायन वंशका था जो उस समय कृष्णा और गोदावरी नदियोंके बीच एल्लोरके सात मील उत्तरमें स्थित वेङ्गी अथवा पेद्दा-वेङ्गीमें राज्य करता था।

हाई कोर्ट–भारतमें हाईकोर्टोंकी स्थापना १८६१ ई०के इंडियन हाईकोर्टस् ऐक्टके अंतर्गत की गयी। इससे पहले कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास में दो-दो उच्च न्यायालय थे। एक तो सुप्रीम कोर्ट, जिसकी स्थापना ब्रिटिश सरकारने की थी, दूसरे सदर दीवानी अदालत तथा सदर निजामत अदालत, जिसकी स्थापना ईस्ट इंडिया कम्पनीने की थी। यह दोहरी न्याय व्यवस्था न्यायमें बाधक सिद्ध हो रही थी। इसलिए १८६१ ई० में तीनों नगरोंमें उनके स्थानपर एक-एक उच्च न्यायालयकी स्थापना की गयी। बादमें एक उच्च न्यायालयकी स्थापना इलाहाबादमें तथा १८६६ ई० में एक चीफ कोर्टकी स्थापना पंजाबमें की गयी। इन न्यायालयोंमें एक ही जाब्ता दीवानी, जाब्ता फौजदारी तथा भारतीय दंड विधानके अनुसार न्याय किया जाता था। इन सब कानूनोंका निर्माण १८५९ से १८६१ ई० के बीच किया गया। अब भारतके सभी मुख्य राज्योंमें एक-एक उच्च न्यायालय है।

हाकिन्स, कैप्टेन विलियम–'हेक्टर' नामक जहाजपर पूर्व-की ओर ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी तीसरी यात्राका संचालक। बादशाह जहाँगीरके नाम इंग्लैंडके राजा जेम्स प्रथमका पत्र लेकर वह १६०८ ई०में सूरत पहुंचा। हाकिन्स स्थल मार्गसे मुगल दरबारमें गया और जहाँगीर-से भेंट की। वह मुगल दरबामें १६११ ई० तक रहा। जहाँगीर उससे अक्सर मिलता था और उसे ४०० सवारोंका मनसबदार बना दिया। बादशाहके कहनेसे उसने एक आरमेनियाई ईसाई लड़कीसे विवाह कर लिया। उसने अंग्रेजोंको व्यापार सम्बन्धी कुछ सुविधाएँ देनेके लिए बादशाहको अनुकूल कर लिया, परंतु पुर्त-गालियोंके विरोधके कारण इनपर अमल नहीं हो सका। हाकिन्स १६११ ई० में मुगल दरबारसे चला गया और १६१२ ई० में इंग्लैण्ड वापस हुआ। उसने भारतकी अपनी यात्राका वर्णन लिखा है।

हाग, सर स्टुअर्ट साण्डर्स–बीस वर्षकी अवस्थामें १८५३ ई० में इंडियन सिविल सर्विसमें प्रवेश। वह पुराने पश्चिमोत्तर प्रांतके राजनीतिक विभागमें नियुक्त हुआ और गदरके समय पंजाबमें अच्छा कार्य किया। बादमें उसका तबादला बंगाल कर दिया गया, जहाँ वह कल-कत्ताका पुलिस कमिश्नर तथा १८६३ से १८७७ ई० तक म्युनिसपल बोर्डका चेयरमैन रहा। उसने कलकत्ता नगरके प्रबन्धमें सुधारकी नीति चालू की और उसकी स्मृतिमें कलकत्तामें चौरंगीके निकट हाग मार्केट स्थापित किया गया।

हाजसन, ब्रायन हगटन (१८००–९४ ई०)–रेलीवरी

कालेजमें शिक्षा प्राप्त की और १८१८ ई० में इंडियन सिविल सर्विसमें प्रवेश किया। उसका अधिकांश समय नेपालमें बीता जहाँ वह १८२० से १८३३ ई० तक असिस्टेण्ट रेजीडेण्ट रहा और उसके बाद मुख्य रेजीडेण्ट बना दिया गया। इस पदपर वह १८४४ ई० तक रहा। उसने नेपालके धर्म, साहित्य तथा भाषाका अध्ययन किया एवं नेपालकी विविध जातियों, वहाँके वन्य जीवों तथा भूगोलका भी अध्ययन किया। उसने नेपालमें उत्तरी भारतके बौद्ध ग्रंथोंका अनुसंधान किया और उनके अध्ययनमें इतना महत्त्वपूर्ण योग दिया कि महान् फ्रेंच प्राच्यविद्याविद् बरनाफने उसे "बौद्ध धर्मके वास्तविक अध्ययनका सूत्रपात करनेवाला" बताया है।

हाजी अहमद–बंगालके नवाब अलीवर्दी खाँ (१७४०–५६ ई०) (दे०) का भाई। १७४० ई०में गिरियाके युद्धमें सरफराज खाँ (दे०) को पराजित करनेमें अहमदने अपने भाई अलीवर्दीकी बड़ी मदद की और उसे बंगालका नवाब बनाया। अहमदकी सबसे छोटी लड़की ही नवाब सिराजुद्दौला (१७५६–५७) (दे०) की माँ थी।

हाजी इब्राहीम सरहिन्दी–एक बहुत बड़ा विद्वान् तथा संस्कृतका मर्मज्ञ। उसने सम्राट् अकबरकी छत्रछायामें अपना जीवन व्यतीत किया। उसने अथर्ववेदका अनुवाद फारसीमें किया।

हाजी इलियास–लगभग १३४५–५७ ई० में बंगालका सुल्तान। उसने शम्सुद्दीन इलियास शाहकी उपाधि ग्रहण की और पूर्वी बंगालपर अधिकार करके उड़ीसा एवं तिरहुतसे कर वसूल किया। फिर वह बनारस तक बढ़ आया। फलतः दिल्लीका सुल्तान फीरोजशाह तुगलक (१३५७ ई०) उसका मुकाबला करनेके लिए आगे बढ़ा। लेकिन इलियासने प्रतिरक्षाकी ऐसी सुन्दर व्यवस्था की थी कि फीरोजशाह उसे पराजित किये बिना ही दिल्ली लौट गया। इलियास १३५७ ई० में पाण्डुआमें मृत्युको प्राप्त हुआ। उसके वंशजोंने पश्चिमी बंगालपर १४९० ई० तक शासन किया।

हाजी मौला–सुल्तान अलाउद्दीन (१२९६–१३१६ ई०) का एक असंतुष्ट राज्याधिकारी। कोतवालके चुनावमें अपनी उपेक्षा किये जानेसे वह आक्रोशसे भर गया। जिस समय अलाउद्दीन रणथम्भोरकी लड़ाईमें लगा हुआ था, उसने दिल्लीमें बगावत कर दी, कोतवालको मार डाला, लाल महलपर कब्जा कर लिया, खजानेमें घुस गया और वहाँकी दौलत लूटकर अपने समर्थकोंमें बाँट दी। उसने सुल्तान इल्तुतमिशके एक वंशजको दिल्लीका सुल्तान घोषित कर दिया। परन्तु बगावतका यह झंडा केवल चार दिन तक बुलंद रह सका। सुल्तान अलाउद्दीनके समर्थकोंने लाल महलपर फिरसे कब्जा कर लिया और हाजी मौला और उसके द्वारा बैठाये गये शहजादेको मार डाला। इस बगावतके फलस्वरूप अलाउद्दीनका ध्यान अपने प्रशासनकी त्रुटियोंकी ओर गया और उसने ऐसी व्यवस्था कर दी कि भविष्यमें इस प्रकारकी बगावतें न होने पायें। (देखिये, 'अलाउद्दीन खिलजी')

हाडसन, मेजर विलियम स्टीफेन रेकेस (१८२१–५८ ई०)–कैम्ब्रिजका स्नातक, जो १८४५ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी सेवामें आया। उसने प्रथम सिक्ख-युद्ध (१८४५ ई०) में भाग लिया और १८४९ ई० में पंजाब दखल कर लिये जानेपर असिस्टेंट कमिश्नर नियुक्त हुआ। किन्तु वह शीघ्र बेईमानीके आरोपमें नौकरीसे हटा दिया गया, बादमें उसे आरोपोंसे मुक्त कर दिया गया और नौकरीमें फिर ले लिया गया। गदर शुरू होनेके समय वह फौजमें अफसर नियुक्त हुआ। उसने घुड़सवारोंकी एक पलटन तैयार की, जो हाडसनकी घुड़सवार पलटन कहलाती थी। दिल्लीपर घेरा डाले जानेके समय वह भी अपनी पलटनके साथ मौजूद था। दिल्लीपर अधिकार होनेके बाद वह हुमायूँके मकबरे पहुँचा और वहाँ बूढ़े मुगल बादशाह बहादुर शाहको गिरफ्तार कर लिया। उसने शाहजादाको भी गिरफ्तार किया और वहीं मार डाला। फिर उसने कानपुरके निकट होनेवाली लड़ाईमें भाग लिया। लखनऊपर फिरसे दखल करनेके लिए जो लड़ाई हुई, उसमें वह १२ मार्च १८५८ ई० को मारा गया। गदरके दौरान भारतीयोंके प्रति अपने प्रतिहिंसापूर्ण व्यवहारके लिए वह कुख्यात है।

हाथीगुम्फा लेख–देखिये, 'खारवेल'।

हाफिज रहमत खाँ–१८वीं शताब्दीके ७वें दशकके प्रारंभमें रुहेलखण्डपर शासन करनेवाले रुहेला सरदारोंका मुखिया। वह सरदार अली मुहम्मदके मरनेपर उसके बेटोंका संरक्षक बना, लेकिन बादमें स्वयं राज्यका मालिक बन बैठा। १७७२ ई० में रुहेलखंडपर मराठोंके हमलेकी आशंका हुई। रहमत खाँने अवधके नवाब शुजाउद्दौलासे समझौता किया कि वह मराठोंको भगानेकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले, इसके बदलेमें रहमत खाँ ४० लाख रुपया नवाबको देगा। यह समझौता ब्रिटिश सेनापति सर राबर्ट बार्करकी मध्यस्थतामें हुआ था। उस

समय तो मराठे रुहेलखण्डकी सीमासे दूर चले गये, लेकिन १७७३ ई०में वे फिर आ धमके और गंगा पार करके रुहेलखण्डमें रामघाट तक आ पहुँचे। अवधका नवाब अंग्रेजी फौजकी सहायता लेकर, जिसका नेतृत्व सर राबर्ट बार्कर कर रहा था, आगे बढ़ा। मराठे लड़नेके पहले ही भाग खड़े हुए। नवाबने रहमत खाँसे समझौतेके अनुसार ४० लाख रुपयोंकी माँग की। रहमत खाँने रुपये नहीं दिये और यह बहाना किया कि नवाबने कोई लड़ाई नहीं लड़ी। नतीजा यह हुआ कि १७७४ ई०में नवाबकी सेनाओंने अंग्रेजी सेनाको साथ लेकर रुहेलखण्डपर धावा बोल दिया। मीरनपुर कटराके युद्धमें रहमत खाँ बहादुरीसे लड़ा, लेकिन मारा गया। वह योग्य, बहादुर और सुसंस्कृत शासक था, जो अपनी हिन्दू प्रजाका बहुत ध्यान रखता था। उसके शासन कालमें रुहेलखण्डने बहुत उन्नति की।

हारमाओस—भारतके उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रमें राज्य करनेवाला अंतिम यवन राजा। वह ईसवी सन्‌की प्रथम शताब्दीमें राज्य करता था। भारतमें कुषाण साम्राज्यके संस्थापक कदफिसस प्रथमने उसका राज्य छीन लिया।

हारीतिपुत्र—अर्थात् हारीति ऋषिके वंशज। सातकर्णि (दे०) और चालुक्य राजा अपनेको हारीतिपुत्र कहते थे।

हार्डिंज, चार्ल्स, पेन्सहर्स्टका बैरन—१९१० से १९१६ ई० तक भारतका वाइसराय। वह लार्ड हार्डिंजका पौत्र था जो १८४४ से १८४८ ई० तक भारतका गवर्नर-जनरल रहा। उसके प्रशासन कालमें १९११ ई० में जार्ज पंचम सम्राज्ञीके साथ भारत आया और दिल्लीमें एक शानदार दरबारमें उसकी ताजपोशी हुई। उसी समय भारतकी राजधानी कलकत्तासे दिल्ली स्थानांतरित किये जानेकी घोषणा की गयी। इसके साथ ही पूर्वी बंगालको फिरसे पश्चिमी बंगालमें मिलाने और उसका शासन सपरिषद् गवर्नर द्वारा किये जाने, बिहारको उड़ीसामें मिलाकर लेफ्टिनेण्ट-गवर्नरके अधीन एक नया प्रान्त बनाये जाने तथा चीफ कमिश्नरके अधीन आसामको पुनः अलग प्रांत बनानेकी भी घोषणा की गयी।

१९१२ ई०में जब लार्ड हार्डिंज औपचारिक रीतिसे नयी राजधानी (नयी दिल्ली) में प्रवेश कर रहा था, उसपर बम फेंका गया, जिससे वह गम्भीर रूपसे घायल हो गया। इस काण्डके बाद भी उसने अपनेको शान्त रखा और प्रतिशोधकी वैसी कोई नीति नहीं चलायी जैसी १९१९ ई० के उपद्रवोंके बाद लार्ड चेम्सफोर्डने चलायी थी। १९१३ ई० में लार्ड हार्डिजने मद्रासमें एक सार्वजनिक सभामें भाषण करते हुए दक्षिण अफ्रीकाकी सरकार द्वारा पास किये गये भारतीय-विरोधी इमिग्रेशन ऐक्ट (भारतीय प्रवास कानून) की तीव्र आलोचना की और उसे द्वेषपूर्ण एवं अनुचित बताया। साथ ही गांधी जीने इस सम्बन्धमें जो सत्याग्रह-आन्दोलन चला रखा था उससे सहानुभूति व्यक्त की और एक ऐसी जाँच कमेटीकी नियुक्तिकी माँग की जिसमें भारतीयोंको भी सम्मिलित होनेकी अनुमति दी जाय। अन्तमें दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारको झुकना पड़ा और उसने एक कमीशनकी नियुक्ति कर दी, जिसकी रिपोर्टके आधारपर भारतीय प्रवास कानूनमें इस प्रकारके संशोधन कर दिये गये कि गांधीने उसे दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंकी स्वाधीनताका मैग्ना चार्टा (घोषणापत्र) बताया।

लार्ड हार्डिजके प्रशासन-कालकी सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी अगस्त १९१४ ई० में प्रथम विश्व-युद्धका छिड़ जाना तथा उसमें भारतको भी शामिल कर दिया जाना। लार्ड हार्डिजने बड़े साहसका परिचय दिया और भारतमें जितने भी ब्रिटिश सैनिक उपलब्ध थे उन्हें तथा बड़ी संख्यामें भारतीय सैनिकोंके दस्तोंको लड़नेके लिए भेज दिया। लार्ड हार्डिजकी लोकप्रियता तथा ब्रिटेनके प्रति भारतकी निष्ठाका परिचय इस बातसे मिलता है कि इसके प्रशासनके प्रारम्भिक वर्षोंमें राजनीतिक आन्दोलनों तथा आतंकवादी गतिविधियोंका प्राबल्य होनेके बावजूद भारत पूर्ण रूपसे राजभक्त बना रहा और उसने १९१९ ई० की ब्रिटिश विजयमें यथेष्ट योग दिया।

हार्डिज, हेनरी, वाइकाउण्ट—१८४४ से १८४८ ई० तक भारतका गवर्नर-जनरल। नियुक्तिके समय उसकी उम्र ५९ साल थी और उसने यूरोपके दक्षिण-पश्चिममें स्थित आइबेरियन प्रायद्वीपमें नेपोलियनकी फौजोंसे होनेवाली लड़ाइयोंमें हिस्सा लिया। उसने अपने प्रशासनके शुरूके डेढ़ वर्षोंमें भारतमें रेल पथ बनानेकी दिशामें प्रारम्भिक कदम उठाये, गंगा नहरकी योजनाको आगे बढ़ाया, सती-प्रथा (दे०), उड़ीसाके पर्वतीय क्षेत्रोंमें प्रचलित शिशुहत्या तथा मानव-बलिकी सामाजिक कुरीतियोंको मिटानेके लिए प्रभावशाली काररवाइयाँ कीं।

उसके प्रशासन कालकी सबसे मुख्य घटना पहला सिक्ख-युद्ध (दे०) (१८४५–४६ ई०) था, जिसमें मुबराहानकी लड़ाईमें अंग्रेजोंकी विजय हुई और लाहौर-

की संधिके द्वारा सतलजके उस पारकी सारी भूमि तथा सतलज-ब्यासके बीचका जलंधरका सारा दोआबा अंग्रेजोंको सौंप दिया गया। इसके साथ ही सिक्खोंने अंग्रेजोंको १५ लाख पौंड (डेढ़ करोड़ रुपया) हर्जाना अथवा कश्मीरका इलाका और पांच लाख पौंड नकद हर्जाना देना मंजूर कर लिया। सिक्खोंने कश्मीरका इलाका सौंप देना पसंद किया और वह १० लाख पौंडमें जम्मूके राजा गुलाब सिंहके हाथ बेच दिया गया। पहले सिक्ख-युद्धकी विजयके उपलक्ष्यमें गवर्नर-जनरलको वाइकाउण्टका पदक दिया गया। १८४८ ई०में भारतके गवर्नर-जनरलके पदसे अवकाश ग्रहण करनेपर लार्ड हार्डिज ब्रिटेनमें ऊँचे पदोंपर रहा। वह पहले ब्रिटिश सेनामें तोपखानेका प्रधान और फिर प्रधान सेनापति हुआ। उसने ब्रिटिश सेनामें कई सुधार किये। उसकी मृत्यु १८५६ ई० में हुई।

हाल—सातवाहन वंश (दे०) का सत्रहवाँ राजा। उसके राजकीय जीवनके बारेमें कुछ पता नहीं है, परन्तु उसका नाम महाराष्ट्री प्राकृतमें लिखी शृंगार रसकी कविताओं-के संग्रह 'गाथा सप्तशती'के साथ जुड़ा हुआ है।

हालवेल, जान जेफानिया—(१७११–९८ ई०)—यह एक सर्जनका सहायक बनकर ईस्ट इण्डिया कम्पनीके जहाज-से १७३२ ई०में कलकत्ता आया और कम्पनीके जहाजों-में सर्जन नियुक्त हो गया। वह पटना, ढाका और कलकत्तामें रहा। कलकत्तामें वह प्रधान सर्जन बना दिया गया। बंगालके नवाब सिराजुद्दौलाने जब १८ जून १७५६ ई०में कलकत्तापर हमला किया, वह कौंसिलका सातवाँ सदस्य था। गवर्नर ड्रेक और कौंसिलके सभी ज्येष्ठ सदस्य कलकत्तासे भाग गये और गंगाके मुहानेपर स्थित फुल्टामें शरण ली। किलेकी रक्षाका भार हाल-वेलपर आ पड़ा। वह केवल एक दिन डटा रह सका।

२० जून, १७५६ ई०को नवाबकी फौजोंने किलेपर कब्जा कर लिया। हालवेलके वर्णनके अनुसार १४६ अंग्रेज स्त्री और पुरुष, जिनमें वह भी सम्मिलित था, किलेके अन्दर एक तंग अंधेरी कोठरीमें, जिसमें हवा और पानीका कोई इंतजाम नहीं था, कैद कर दिये गये। दूसरे दिन सुबह उसमें केवल २३ कैदी, जिसमें वह भी था, जिंदा बचे। बाकी दम घुटने और प्याससे मर गये। हालवेल कैदीके रूपमें मुर्शिदाबाद भेज दिया गया और १७ जुलाई, १७५६ ई० को छोड़ा गया। अगले वर्ष फरवरीमें वह छुट्टीपर इंग्लैंड चला गया और थोड़े समय बाद बंगाल कौंसिलका सदस्य बनकर वापस लौटा। २८ जनवरीसे २७ जुलाई, १७६० ई० तक उसने गवर्नरकी हैसियतसे भी कार्य किया और वैन्सी-टार्ट उसका उत्तराधिकारी बना। इसके बाद उसने कम्पनीकी नौकरीसे अवकाश ले लिया। १७६१ ई० में वैन्सीटार्टके गवर्नर नियुक्त होनेपर कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स-को एक विरोध-पत्र भेजा गया जिसपर उसने भी हस्ता-क्षर किया था। इसीपर उसे कम्पनीकी नौकरीसे निकाल दिया गया। हालवेलमें लेखन प्रतिभा थी, परन्तु उसने 'अंधेरी कोठरी'की दुःखद कहानीका जो विवरण दिया है, उसकी सत्यतापर बहुत अधिक संदेह किया जाता है। (देखिये, 'अंधेरी कोठरीकी दुखद घटना')

हाल्हेडका हिन्दू कानून—यह गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्स-के संरक्षणमें तैयार किया गया। दस पंडितोंके द्वारा स्मृतियोंके आधारपर हिन्दू व्यवहार (कानून) पर एक ग्रंथ तैयार किया गया था और यह ग्रंथ उसीके फारसी रूपान्तरका अंग्रेजीमें अनुवाद था।

हिकी, जेम्स आगस्टस—भारतके प्रथम अंग्रेजी समाचार-पत्र, बंगाल गजटका सम्पादक। यह पत्र १७८० ई० में प्रकाशित हुआ, परन्तु वारेन हेस्टिंग्सने १७८२ ई० में उसे बन्द कर दिया, क्योंकि उसमें सरकार और उसके अधिकारियोंपर बराबर तीव्र आक्षेप किये जाते थे।

हिकी, थामस—एक चित्रकार, जो भारत चला आया। १७८८ ई० में उसने कलकत्तासे अंग्रेजीमें 'चित्रकला और मूर्तिकलाका इतिहास : प्राचीन वर्णनोंके आधार-पर' शीर्षक ग्रंथ प्रकाशित कराया। उसने १७९९ ई० में श्री रंगपट्टमके ऐतिहासिक चित्र भी छापे। १८२२ ई० तक उसने बहुतसे कलमी चित्र बनाये जो कलकत्ता-के राजभवनमें टँगे हैं।

हिजरी सन्—मुसलमानी संवत्सर, जिसका प्रारम्भ ६२२ ई० में मुहम्मद साहबकी हिज्रतसे हुआ, जब वे मक्का छोड़कर मदीना जा बसे थे। यह चान्द्र वर्षपर आधा-रित है जो ३५४ दिनका होता है और इसमें सौर वर्षसे ११ दिन कम होते हैं।

हिण्डाल, मिर्जा—मुगल बादशाह हुमायूँ (१५३०–३५ ई०) के तीन छोटे भाइयोंमेंसे एक। हुमायूँ उसके साथ उदारताका व्यवहार करता था, परन्तु वह अक्सर एहसान-फरामोश बन जाता था। जब हुमायूँ बंगालमें युद्ध कर रहा था, उसपर संचार मार्ग खुले रखनेका भार डाला गया। परन्तु हिंडालने अपना दायित्व पूरा नहीं किया। इस प्रकार १५३९ ई० में चौसाकी लड़ाई-में हुमायूँकी हारमें उसका भी योगदान था। इसके बाद

भी हुमायूंने उसे क्षमा कर दिया, परन्तु वह जब विपत्तिमें पड़ा तो हिण्डालने उसकी मदद नहीं की। वह अपने बड़े भाई कामरानसे मिल गया और हुमायूं-की सहायता करनेसे इनकार कर दिया। शीघ्र ही कामरानसे भी वह झगड़ा कर बैठा और फिर हुमायूंसे आ मिला। हुमायूं द्वारा दिल्लीकी सल्तनत फिरसे प्राप्त करनेसे पूर्व ही एक अफगानने रातमें हमला करके उसे मार डाला।

हिन्दी—भारतीय गणराज्यके संविधानमें राष्ट्रभाषा घोषित और सर्वाधिक प्रचलित भारतीय भाषा। यह संस्कृतसे निकली है और संस्कृतकी तरह देवनागरी लिपिमें लिखी जाती है, परन्तु व्यवहार रूपमें विभिन्न हिन्दी-भाषी क्षेत्रोंमें इसका अलग-अलग रूप प्रचलित है। यह बंगाल और आसामको छोड़कर सारे उत्तरी भारतकी बोलचाल-की भाषा है। दक्षिण भारतमें यह लोक-प्रचलित भाषा नहीं है, परन्तु वहां भी इसका शीघ्रतासे प्रसार हो रहा है। इसका विशाल साहित्य है और हिन्दीका सबसे लोकप्रिय ग्रंथ तुलसीदास रचित 'रामचरितमानस' है। तुलसीदास सोलहवीं शताब्दीमें हुए थे और बादशाह अकबर (१५५६–१६०५ ई०) के समकालीन थे।

हिन्दी लेखकोंमें प्रेमचंद (१८८०–१९३६) ने सबसे अधिक कथा-साहित्य लिखा है। हिन्दीके दो रूप हैं—एक पूर्वी हिन्दी, जो अवध तथा बघेलखंडमें बोली जाती है; दूसरी पश्चिमी हिन्दी, जो गंगाके दोआबके मध्यवर्ती तथा उत्तरी भागमें बोली जाती है। भारतीय भाषा-भाषियोंमें हिन्दी-भाषियोंकी संख्या सबसे अधिक है।

हिन्दुस्तान—इसका अर्थ है हिन्दुओंका स्थान। इस शब्दका व्यवहार पेशावरसे लेकर आसामतक समस्त उत्तरी भारतके लिए किया जाता है। उत्तरी भारतपर मुसलमानोंकी विजयके बाद इसका प्रचलन हुआ। कभी-कभी इस शब्दका व्यवहार व्यापक अर्थमें सारे भारतके लिए भी किया जाता है।

हिन्दू—इसका अर्थ है हिन्दू धर्मको जाननेवाला। उसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह किसी विशेष मत-मतान्तरका माननेवाला हो। सामाजिक जीवनमें हिन्दू-की बाहरी पहचान सिर्फ इस बातसे होती है कि वह जाति-व्यवस्थाको मानता है। परन्तु जाति-व्यवस्थाकी कड़ियां भी शीघ्रतासे कमजोर पड़ती जा रही हैं।

हिन्दू कालेज—१८१६ ई० में कलकत्तामें राजा राममोहन राय और डेविड हेयर सदृश लोगोंके प्रयत्नसे इसकी स्थापना हुई। इसका उद्देश्य देशके लोगोंमें अंग्रेजी शिक्षाका प्रसार करना था। यद्यपि लार्ड हेस्टिंग्सने, जो उस समय गवर्नर-जनरल था, इस कालेजका संरक्षक होना स्वीकार कर लिया था, तथापि शुरूसे इसकी स्थापना स्वदेशके लोगोंके प्रयत्नसे हुई थी। बादमें इसे सरकारने ले लिया और आगे चलकर यही प्रेसीडेंसी कालेज, बन गया।

हिन्दूकुश—हिमालयके पश्चिममें एक लम्बी और ऊँची पर्वतमाला। इसके उस पार मध्य एशियाका मैदान स्थित है। इसलिए इसे बहुधा भारतकी प्राकृतिक सीमा माना जाता है, परन्तु ईसा पूर्व चौथी-तीसरी शताब्दीके थोड़ेसे कालको छोड़कर यह कभी भारतीय साम्राज्यके अंतर्गत नहीं रहा।

हिन्दू धर्म—एक अनुपम धर्म। यह 'अपौरुषेय' कहा जाता है, अर्थात् किसी पुरुष विशेषने इसकी स्थापना नहीं की। यह सनातन कालसे चला आ रहा है। इसके मानने-वालोंके लिए किसी विशेष मतमें विश्वास करना आव-श्यक नहीं है। मूलतः यह एक ब्रह्ममें विश्वास करता है जो सारे ब्रह्मांडमें व्याप्त है। परन्तु यह अपने अंकमें उन लोगोंको भी समेटे हुए है जो अनेक देवी-देवताओंमें विश्वास करते हैं और उन लोगोंको भी जो नास्तिक हैं। यह ईश्वरको निराकार मानता है, फिर भी मूर्ति-पूजाको स्वीकार करता है। यह आत्मामें विश्वास करता है और मानता है कि कर्मके अनुसार उसका पुनर्जन्म होता रहता है। यह मोक्ष अथवा पुनर्जन्मसे मुक्ति पा जानेमें विश्वास करता है। यह मानता है कि ज्ञान तथा सत्कर्मसे सभी दुःखोंका अंत तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है। मोक्षका अर्थ है आत्माका परमात्मासे मिल जाना। यह मानता है कि यज्ञसे देवताओंको प्रसन्न करके उनका अनुग्रह प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु यह यज्ञसे ज्ञान तथा भक्तिको श्रेष्ठ मानता है। यह सोऽहं (जो वह है, मैं हूं) की घोषणा करता है, परन्तु इसके साथ ही मनुष्य और ईश्वरके द्वैत भावको भी स्वीकार करता है। हिन्दू धर्मकी निष्ठाका बाह्य लक्षण जाति-व्यवस्थाको स्वीकार करना तथा वेदोंको अपौरुषेय मानना है। यद्यपि आधु-निक हिन्दू धर्म और प्राचीन वैदिक धर्ममें बहुत अधिक अंतर है।

यह प्रचलित धारणा ऐतिहासिक दृष्टिसे गलत है कि हिन्दू धर्म दूसरे धर्मावलम्बियोंको अपनेमें अंगीकृत नहीं करता। प्राचीन पुरातत्त्व-परक और साहित्यिक सामग्रीसे प्रकट होता है कि प्राचीन कालमें भारतपर

आक्रमण करनेवाले और यहां बस जानेवाले बहुतसे यवनों, शकों, गुर्जरों तथा हूणोंको हिन्दू धर्ममें दीक्षित कर लिया गया। इधर हालमें अहोम लोगोंको, जो तेरहवीं शताब्दीके आरम्भमें भारत आये और आसाममें बस गये, सोलहवीं शताब्दीमें सामूहिक रूपसे हिन्दू धर्ममें अंगीकृत कर लिया गया। ऐतिहासिक दृष्टिसे यह कहना भी गलत है कि हिन्दू धर्म सदैव भारतवर्षके भीतर सीमित रहा। अकाट्य प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि इस्लामके आगमनसे पूर्व हिन्दू धर्म पश्चिममें मैडागास्कर तक तथा पूर्वमें मलय प्रायद्वीप, जावा, सुमात्रा, चम्पा (अनाम) तथा कम्बोडिया तक फैल गया था। इन देशोंमें हिन्दू प्रवासियोंने जाकर अपना राज्य स्थापित किया, और वहाँ अपने धर्म, अपने दर्शन, अपनी पवित्र संस्कृत भाषा और अपनी कलाका प्रसार किया। जावासे लेकर कम्बोडिया तक भारतीय वास्तुकलाके सुन्दर नमूने मिलते हैं।

हिन्दू धर्म अपने अंकमें कई मतोंको समेटे हुए है, जिनमें शैव, शाक्त और वैष्णव मुख्य हैं। ये सभी मतावलम्बी वेदोंको प्रमाण मानते हैं। हिन्दू दर्शनका आधार उपनिषद् (दे०) हैं। भगवद्गीतामें सभी दर्शनोंका सार मिल जाता है और षड्दर्शनों (दे०) में उसका विस्तार मिलता है। रामायण तथा महाभारत, इन दो महाकाव्योंमें हिन्दू धर्मके धार्मिक और सामाजिक विचारों तथा आदर्शोंका वर्णन मिलता है और प्रत्येक हिन्दू इन ग्रंथोंका बड़ा आदर करता है।

हिन्दू धर्मकी सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता उसकी सहिष्णुता है। वह हर धर्मके प्रति सहिष्णुताका भाव रखता है और ईसाई धर्मके अंतगत रोमन कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेण्ट लोगों तथा इस्लाम धर्म और दूसरे धर्मके अनुयायियोंके बीच जिस प्रकारकी खूनी लड़ाइयाँ हुईं, वह हिन्दू धर्मकी भावनाके विपरीत है। हिन्दू देवी-देवताओंकी उपासनाके लिए सारे भारतवर्षमें अनेकानेक मंदिर निर्मित किये गये हैं, परन्तु हिन्दू धर्ममें उपासनाके लिए मंदिरकी खास आवश्यकता नहीं है। हिन्दू धर्ममें उपासनाका आधार वैयक्तिक है, यद्यपि सामूहिक उपासना भी प्रचलित है। वस्तुतः हिन्दू धर्म अपने अनुयायियोंको इस बातकी बहुत अधिक छूट देता है कि चाहे जिस रूपमें और चाहे जिस स्थानपर उपासना और प्रार्थना की जाय।

हिन्दू पद पादशाही—दूसरे पेशवा बाजीराव प्रथम (१७२०–४० ई०) का लक्ष्य इसकी स्थापना करना था। इसका अर्थ था भारतपर मुसलमानी शासन समाप्त करनेके लिए सभी हिन्दू राजाओंका एक हो जाना। इस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए आवश्यक था कि मराठे, जो उस समय धीरे-धीरे प्रमुखता प्राप्त करते जा रहे थे, अन्य सभी हिन्दू राजाओंके साथ मैत्रीपूर्ण, उदारतापूर्ण तथा बराबरीका व्यवहार करते ताकि स्वराज्यकी स्थापनामें सभी हिन्दू भागीदार बन सकते। परन्तु तीसरे पेशवा बालाजी बाजीराव (१७४०–६१ ई०) ने इस नीतिको जान-बूझ कर त्याग दिया और उसने केवल मराठोंकी प्रमुखता स्थापित करनेका प्रयास किया। उसने हिन्दू राजाओं और उनकी हिन्दू प्रजाको भी उसी प्रकार लूटना और उनके साथ निर्दयताका व्यवहार करना शुरू कर दिया, जिस प्रकार मुसलमान शासकोंके साथ बर्ताव किया जाता था। फल यह हुआ कि हिन्दू पद-पादशाहीकी स्थापनाका विचार समाप्त हो गया।

हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस—पंडित मदन मोहन मालवीयके प्रयत्नोंसे इसकी स्थापना १९१५ ई० में हुई। उन्होंने कुछ समय पूर्व एनी बेसेन्ट द्वारा स्थापित सेण्ट्रल हिन्दू कालेजको ही विश्वविद्यालयका रूप दे दिया। मालवीयजीने विश्वविद्यालयके निर्माणार्थ रुपया इकठ्ठा करनेके लिए सारे भारतका भ्रमण किया और देशी नरेशोंसे भी काफी आर्थिक सहायता प्राप्त की। यह भारतमें गैर-सरकारी प्रयत्नोंसे स्थापित पहला विश्वविद्यालय था जिसका नाम एक सम्प्रदायसे जुड़ा था। अब इसे केन्द्रीय सरकारने अपने हाथमें ले लिया है।

हिमालय—भारत और तिब्बतके बीचकी पर्वत्-श्रृंखलाओंका नाम है। इसके पश्चिमी बाजूपर सिंधु नद और पूर्वी बाजूपर ब्रह्मपुत्र नद है। इन पर्वत्-श्रृंखलाओंकी लम्बाई १५०० मील और चौड़ाई १०० से १५० मील है। सबसे ऊँचा इसका शिखर एवरेस्ट (या सागरमाथा) है। इसका कुछ भाग वर्षके बारहों महीने हिमाच्छादित रहता है। हिमालय कई नदियोंका उद्गम-स्थल है, जिनमें सिन्धु, सतलज, गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, कोसी, गंडक तथा सुवर्णश्री मुख्य हैं। हिमालय प्रदेशमें अत्यधिक गर्म-जलवायुसे लेकर अत्यधिक ठंडी जलवायु मिलती है। यहाँपर अनेक प्रकारके पशु और अनेक प्रकारकी वनस्पतियाँ मिलती हैं। हिमालयने भारतीय राजनीति, भारतीय दर्शन तथा भारतीय धर्मको सर्वाधिक प्रभावित किया है। उत्तरमें इसने एक प्रकारसे भारतकी दुर्लंघ्य रक्षापंक्तिका निर्माण कर दिया है। इसकी धूसरता, गरिमा तथा विशालताके कारण हिन्दू लोग इसको देवताओंका वास-

स्थान मानने लगे और इसने हिन्दू दर्शन और धर्मको विशिष्ट दिशा प्रदान की। इसने सभी युगोंके हिन्दू साहित्यको प्रभावित किया है।

हिम्मत बहादुर—शस्त्रधारी दशनामी गोसांइयोंके एक सम्प्रदायका नेता, जिसने महादजी शिन्देकी सहायता की।

हिसलप, सर थामस—मद्रासी सेनाका प्रधान सेनापति (१८१४–२० ई०) होकर भारत आया और पेंढारियों-के युद्ध (१८१७–१८ ई०) में दक्षिणमें अंग्रेजी सेनाका सेनापतित्व किया। इस युद्धमें पेंढारियोंको कुचल दिया गया। उसने महीदपुरकी लड़ाई (१८१७ ई०) में होल्कर को भी हराया। वह चाहता था कि युद्धमें जो लूट-पाटकी गयी थी, उसका सारा हिस्सा दक्खिनी सेना-को मिले। इसके फलस्वरूप मुकदमेबाजी हुई और उसे लूट-पाट की सामग्रीमें उत्तरी भारतकी सेनाको भी हिस्सा देना पड़ा।

हीनयान—बौद्ध धर्मके पश्चात्यकालीन महायान सम्प्रदायसे अन्तर दिखानेके लिए उसके प्रारम्भिक रूपको हीनयान कहते हैं। हीनयानके अनुसार बौद्धधर्मके संस्थापक गौतम बुद्ध महामानव थे, जो हमारे आदर और सम्मान-के पात्र हैं। परन्तु महायानकी तरह वह उन्हें अलौकिक व अमानव रूप नहीं प्रदान करता। हीनयानमें भिक्षुका चरम लक्ष्य निर्वाणकी प्राप्ति माना जाता है और अष्टांगिक मार्गपर आरूढ़ होकर चार आर्य सत्योंमें विश्वास करते हुए उसकी प्राप्तिका प्रयत्न करना होता है। ('बौद्ध धर्म' के अंतर्गत भी देखिये)

हुगली—कलकत्तासे कुछ मील उत्तर, हुगली नदीके तटपर स्थित एक कसबा। इसके उत्तरमें सतगाँव (सप्तग्राम) स्थित था जो सोलहवीं शताब्दीमें बंगालकी एक मंडी थी। पुर्तगाली लोग १५५९ ई० के आसपास हुगलीमें आकर बस गये। १६३२ ई० में मुगलोंने हुगलीकी पुर्तगाली बस्तीको घेर कर उसपर कब्जा कर लिया। इसके बाद हुगली नगरकी अवनति होने लगी। इसीके पासमें बादमें डेनमार्कवालोंने श्रीरामपुर, डच लोगोंने चिनसुरा तथा फ्रेंच लोगोंने चन्द्रनगरकी बस्तियाँ बनायीं।

हुगली—गंगाको बंगालकी खाड़ीसे जोड़नेवाली नदी। इसे भागीरथी भी कहते हैं। इसके तटपर कलकत्ता, हुगली, चिनसुरा जैसे महत्त्वपूर्ण नगर स्थित हैं। इस नदीके दोनों तटोंपर अब बहुतसे कारखाने, विशेष रूप-से जूट मिलें स्थापित हो गयी हैं।

हुमायूँ, बहमनी—बहमनी वंश (दे०)का ग्यारहवाँ सुलतान। उसने १४५७ से १४६१ ई० के बीच राज्य किया। वह इतना अत्याचारी था कि उसका उपनाम ही 'जालिम' पड़ गया।

हुमायूँ, बादशाह—मुगल वंशके प्रवर्तक बाबरका लड़का और उत्तराधिकारी। हुमायूँने १५३० ई० से १५४० ई० तक और फिर १५५५ से १५५६ ई० तक शासन किया। वह इतना बली और दृढ़-संकल्प नहीं था कि उसके पिताने भारतमें जो साम्राज्य जीता था, उसपर वह अपना अधिकार मजबूत बना सकता। उसने अपना शासन अच्छे ढंगसे प्रारम्भ किया और १५३५ ई० में मालवा और गुजरातपर स्वयं चढ़ाई करके उसे जीत लिया। परन्तु उसने मेवाड़के राजपूतोंका सुलहका प्रस्ताव नामंजूर करके बुद्धिमानीका कार्य नहीं किया। इतना ही नहीं, नये जीते हुए राज्योंपर अपना आधिपत्य मजबूतीसे स्थापित करनेसे पूर्व ही वह आगरा जाकर रंगरेलियोंमें डूब गया। इसका फल यह हुआ कि मालवा और गुजरात अगले ही साल उसके हाथसे निकल गये।

इस बीच बिहार और बंगालमें एक अफगान सरदार, शेर खाँ (दे०) प्रबल हो गया और १५३७ ई०में हुमायूँ-ने उसपर हमला बोल दिया। परन्तु रणचातुरी तथा युद्धकी पैंतरेबाजीमें उसने पूरी तरह मात खायी और शेर खाँने १५३९ ई०में गंगाके तटपर चौसाकी लड़ाईमें हुमायूँको हरा दिया। फलस्वरूप बंगाल और बिहार हुमायूँके हाथसे निकल गये। १५४० ई०में हुमायूँने शेर खाँकी ताकतको कुचलनेका दूसरा प्रयत्न किया, परन्तु कन्नौजकी लड़ाईमें फिर उसकी हार हुई। हुमायूँ-को अपनी राजधानी और गद्दी दोनोंसे हाथ धोकर भागना पड़ा। विजयी शेर खाँकी फौजें उसका पीछा करती रहीं। उसने अब उसने शेरशाहके नामसे अपनेको दिल्लीका बादशाह घोषित कर दिया।

हुमायूँ खानाबदोशोंकी तरह पहले सिंधकी तरफ भागा और वहाँ समर्थन प्राप्त करनेका प्रयास किया, फिर मेवाड़की तरफ भागा और जब वहाँ भी समर्थन न मिला तो दुबारा सिंधकी तरफ भागा। विपत्तिके इन्हीं दिनोंमें उसने हमीदा बानू बेगमसे शादी की, और उसीके गर्भसे १५४२ ई०में उसका प्रसिद्ध पुत्र अकबर पैदा हुआ।

हुमायूँ बड़ी कठिनाईसे १५४४ ई०में फारस पहुँचा और वहाँके शाह ताहमस्पने उसको शरण दी। हुमायूँने अपनेको शिया (दे०) घोषित कर दिया और शाह ताहमस्पने उसे फौजी सहायता प्रदान की। इस मददसे हुमायूँने १५४५ ई०में अपने बेवफा भाई कामरानसे

कन्दहार और काबुल छीन लिया। इस प्रकार अफगानिस्तान फिरसे उसके आधिपत्यमें आ गया। वह वहाँ उपयुक्त समयकी प्रतीक्षा करता रहा। १५५५ ई०में, जब शेरशाहके उत्तराधिकारी आपसमें लड़ रहे थे, उसने भारतपर चढ़ाई कर दी और फरवरीमें लाहौरपर कब्जा कर लिया। इसके बाद सरहिन्दकी लड़ाईमें पंजाबके बागी सूबेदार सिकन्दर सूरको हरानेके बाद उसने उसी साल जुलाईमें दिल्ली और आगरा ले लिया। परन्तु दिल्लीमें अपने कुतुबखाने (पुस्तकालय)की सीढ़ियोंसे अकस्मात् गिर पड़नेसे जनवरी १५५६ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी।

हुलागू—एक मंगोल सरदार, जिसका सुल्तान मुहम्मद तुगलक (१३२५–५१ ई०)ने पहले स्वागत किया और पंजाबमें लाहौरमें उसे एक जागीर प्रदान की। १३३५ ई०में जब सुल्तान दिल्लीसे बाहर था, उसने बगावत कर दी और अपनेको स्वतंत्र घोषित कर दिया। परन्तु शीघ्र ही सुल्तानकी फौजने, जिसका नेतृत्व उसका वजीर ख्वाजा जहाँ कर रहा था, उसे हरा दिया। हुलागू देशसे बाहर भाग गया और उसके समर्थक निर्दयतापूर्वक मार डाले गये। यह बगावत मुहम्मद तुगलककी सल्तनतके टूटनेकी पहली निशानी थी।

हुविष्क—कुषाण राजा कनिष्क (लगभग १२०–६२ ई०)का लड़का और उत्तराधिकारी। उसने लगभग १६२–१८० ई० तक राज्य किया। उसके सिक्के बहुत अधिक संख्यामें और विविध प्रकारके मिलते हैं। इससे मालूम पड़ता है, वह कनिष्क द्वारा जीते गये विस्तृत साम्राज्यपर राज्य करता था। उसके सिक्कोंपर यूनानी, ईरानी तथा भारतीय देवताओंके चित्र मिलते हैं। इससे संकेत मिलता है कि वह सभी धर्मोंके प्रति आदरभाव रखता था। उसके राज्यकालकी घटनाओंका कोई विवरण प्राप्त नहीं है।

हुशंग शाह—मालवाका सुल्तान (१४०६–३५ ई०)। उसका मूल नाम अल्पशाह (दे०) था। उसने अपनी राजधानी मांडूमें कई सुन्दर भवन बनवाये।

हुसेन, अमीर—मिस्रके उस बेड़ेका कमांडर जो पुर्तगालियोंसे लोहा लेनेमें गुजरातके सुल्तान महमूद बेगड़ा (१४५९-१५११ ई०)की मदद करनेके लिए आया। उसने सुल्तानके बेड़ेके साथ मिलकर १५०८ ई०में चौलकी लड़ाईमें पुर्तगाली बेड़ेको हरा दिया। परन्तु अगले साल उसे पराजयका मुंह देखना पड़ा और ड्यूके निकट समुद्री लड़ाईमें पुर्तगालियोंने उसका बेड़ा नष्ट कर दिया।

हुसेन अली—सैयद बंधुओंमें छोटे भाईका नाम हुसेन अली और बड़े भाईका नाम हसन अली अब्दुल्ला था। उसने अपने चाचा जहाँदार शाहको हराकर उसके स्थानपर बादशाह फर्रुखशियर (१७१२–१३ ई०)को गद्दीपर बैठानेमें मदद दी। दिल्लीकी बादशाहतपर दोनों भाइयोंका भारी प्रभाव था। हुसेन अली मीर बख्शी बना दिया गया। उसने मारवाड़के विद्रोहका दमन किया और दक्खिनका सूबेदार नियुक्त हुआ। १७१८ ई०में यह सुनकर कि बादशाह उसे तथा उसके भाईको मरवा डालनेकी साजिश कर रहा है, वह दिल्ली लौट आया। सैयद बंधुओंने फर्रुखशियरकी आँखें फोड़ दीं और उसे गद्दीसे हटा दिया (१७१९)। अगले सात महीनोंमें सैयद बंधुने एकके बाद एक, चार कठपुतली शासकोंको दिल्लीकी गद्दीपर बैठाया और थोड़े समय बाद उन्हें गद्दीसे उतार दिया और मार डाला। इस तरह दिल्लीके बादशाह बनाना या बिगाड़ना वस्तुतः उनके हाथमें था। अन्तमें जैसेको तैसा मिला। १७१९ ई०में हुसेन अलीने मुहम्मदशाहको बादशाह बनाया और उसने १७२० ई०में उसे मरवा डाला।

हुसेन निजाम शाह—अहमद नगरके निजाम शाही वंश (दे०)का तीसरा सुल्तान। उसने १५५३ से १५६५ ई० तक राज्य किया तथा विजय नगर साम्राज्यके विरुद्ध गोलकोंडा और बीजापुरके सुल्तानोंसे सुलह कर ली और १५६५ ई०में तालीकोट की लड़ाईमें हिस्सा लिया। इस लड़ाईमें मुसलमानी सेनाकी विजय हुई। परंतु हुसेन निजाम शाहकी उसी साल मृत्यु हो गयी और वह इस विजयसे कोई लाभ न उठा सका।

हुसेन शाह—अहमद नगरका एक शाहजादा, जिसे विश्वासघाती वजीर फतह खाँने १६३० ई० में अहमद नगरकी गद्दी पर बैठाया। परन्तु १६३१ ई०में मुगलोंने अहमद नगर पर कब्जा कर लिया और उसे मुगल साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिया। शाहजादा हुसेन शाह ग्वालियरके किलेमें कैद कर दिया गया और उसके पतनके बाद अहमद नगरके स्वतंत्र राज्यका अंत हो गया।

हुसेन शाह—बंगालका सुल्तान, जिसने १४९३से१५१९ई०तक शासन किया। वह पहले बंगालके सुल्तान शम्सुद्दीन (दे०)का बड़ा वजीर था। शम्सुद्दीन बड़ा जालिम था, इसलिए सरदारोंने उसे मार डाला और हुसेन शाहको बंगालकी गद्दीपर बैठाया। उसने अपना नाम सुल्तान अलाउद्दीन हुसेन शाह रखा तथा हुसेन शाह वंशका आरंभ किया, जो १४९३से १५३९ ई० तक बंगालपर शासन करता रहा।

हुसेन शाह—जौनपुरके शर्की वंशका अंतिम सुलतान (१४५७–७६ ई०)। उसने गद्दीपर बैठनेके बाद ही दिल्लीके सुल्तान बहलोल लोदी (दे०) से सुलह कर ली। इसके बाद उसने तिरहुतके जमींदारोंका दमन किया, उड़ीसामें घुस कर लूटमार की और ग्वालियरके राजा मान सिंहपर चढ़ाई कर दी और उससे भारी हर्जाना वसूल किया। परंतु १४७६ ई०में सुल्तान बहलोल लोदीने उसे हरा दिया और जौनपुरसे खदेड़ दिया। उसने बंगालके सुल्तान हुसेन शाहकी शरण ली और अपने अंतिम दिन बिहारमें भागलपुरके निकट कोलगांगमें बिताये। उसकी मृत्यु १५०० ई०में हुई।

हूगेल, बैरन कार्ल वान—एक जर्मन यात्री, जो १८३५ ई०में पंजाबके महाराज रणजीत सिंह (दे०) के दरबारमें आया। वह रणजीत सिंहको एक शक्तिशाली राजा मानता था, क्योंकि अपने राज्यपर उसका पूरा नियंत्रण था और उसने आपसी लड़ाई-झगड़ोंको समाप्त कर दिया था।

हूण—मध्य एशियाके यायावर (खानाबदोश), जिन्होंने पाँचवीं शताब्दी ईसवीमें भारतपर आक्रमण आरंभ किये। हूणोंका पहला बड़ा आक्रमण पांचवीं शताब्दीके मध्यमें हुआ। स्कन्द गुप्त (४५५–६७ ई०) ने ४५५ ई० में उन्हें पीछे ढकेल दिया। परंतु बादके वर्षोंमें उन्होंने और बड़ी संख्यामें आक्रमण किया और गुप्त सम्राट्को इतने संकटमें डाल दिया कि उसे अपने सिक्कोंमें मिलावट करनी पड़ी। हूणोंके आक्रमणने दुर्धर्ष रूप ले लिया और उनका नेता तोरमाण ५०० ई० के आसपास मालवाका स्वतंत्र शासक बन गया। उसका लड़का तथा उत्तराधिकारी एक पापाचारी कराल सेनापति था। उसने पंजाबमें साकल अथवा स्यालकोट को अपनी राजधानी बनाया। उसने चारों ओर आतंक फैला दिया और सभी लोग उसे घृणाकी दृष्टिसे देखने लगे। अंतमें मालवाके राजा यशोधर्मा और बालादित्य (जिसकी पहचान मगधके गुप्त राजा नरसिंहसे की जाती है) के संयुक्त प्रयत्नसे ५२८ ई० के आसपास उसे परास्त कर दिया गया। पराजित हूण भारतमें बस गये और भारतीय बन कर हिन्दू धर्ममें दीक्षित हो गये। आठवीं शताब्दी और उसके बाद जिन बहुत-सी राजपूत जातियोंने प्रमुखता प्राप्त की, उनके बारेमें विश्वास किया जाता है कि उनकी उत्पत्ति हूणोंसे हुई थी।

हेमंत सेन—बंगालके सेन वंशका दूसरा राजा। वह ग्यारहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें राज्य करता था। उसने 'महाराजाधिराज'की उपाधि धारण कर रखी थी, परंतु वह उतना शक्तिशाली नहीं था जितना इस उपाधिसे सूचित होता है। उसकी गतिविधियोंके बारेमें हमें बहुत थोड़ी जानकारी प्राप्त है।

हेमचन्द्र—एक विशिष्ट विद्वान् और जैन आचार्य (१०८८–११७२ ई०), जिसके ग्रंथ 'त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र' में तिरसठ महापुरुषोंकी जीवनी दी गयी है। इसके परिशिष्ट भागका नाम 'परिशिष्ट पर्व' है। इसमें जिन स्थविरोंके नाम आये हैं, उन्हें कुछ हद तक ऐतिहासिक व्यक्ति माना जाता है।

हेमाद्रि—प्रसिद्ध धर्मशास्त्रकार, जो दक्षिण भारतमें हुआ। उसे वारंगलके यादव राजाओंका आश्रय प्राप्त था। १२६० और १३०९ ई० के बीच किसी समय उसने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'चतुर्वर्गचितामणि' लिखा जिसमें व्रत, दान, तीर्थयात्रा, मोक्ष-प्राप्ति, श्राद्ध आदिके विशद नियम वर्णित हैं।

हेमू—बादमें राजा विक्रमाजीत—मेवातके रेवाड़ी नामक स्थानमें एक वैश्य परिवारमें उत्पन्न हुआ। अपनी योग्यताके कारण वह शेर शाह द्वारा स्थापित सूर वंशके तीसरे राजा आदिल शाह (१५५४–५६ ई०) का दीवान बन गया गया। हुमायूँने जब १५५५ ई०में दिल्लीपर फिरसे दखल कर लिया, आदिलशाह चुनारमें था और उसने उत्तरी भारतका सारा भार हेमूपर छोड़ रखा था। १५५५ ई०में हुमायूँकी मृत्यु हो जानेपर हेमूने ग्वालियरसे आगे बढ़ कर आगरा और दिल्लीपर कब्जा कर लिया। इससे उसकी महत्त्वाकांक्षा जाग्रत हो उठी और उसने राजा विक्रमाजीतके नामसे अपनेको स्वतंत्र राजा घोषित कर दिया। इस प्रकार वह अकबरका सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वी बन गया।

५ नवम्बर १५५६ ई० को पानीपतका दूसरा-युद्ध हुआ। हेमू बड़ी बहादुरीसे लड़ा और उसने अपनी सेनाका नायकत्व बड़ी कुशलतासे किया। परंतु एक घटनाके कारण अकबर विजयी हो गया। एक तीर हेमूकी आँखमें घुस गया और वह अचेत हो गया। उसके गिरते ही उसकी सेनामें, जिसमें अफ़गान, पठान, और हिन्दू सैनिक थे और जिनको उसने अपने कुशल नेतृत्व तथा धनके बलपर संयुक्त कर रखा था, भगदड़ मच गयी और हेमू बंदी बना लिया गया। उसे किशोर अकबरके सम्मुख ले जाया गया, जिसने अपने संरक्षक बैराम खांके कहनेसे तलवारसे उसका सिर धड़से उड़ा कर उसे मार डाला।

हेयर, डेविड (१७७५–१८४२ ई०)—भारतमें रहनेवाले जिन मुट्ठी भर अंग्रेजोंने भारतीयोंकी भलाईमें अपना

समय और शक्ति लगायी, उनमेंसे एक था। उसने भारतमें पश्चिमी शिक्षाका प्रसार करनेके लिए विशेष उद्योग किया। वह स्काटलैंडका निवासी घड़ीसाज था, जो १८०० ई० में कलकत्ता आया और घड़ियोंकी मरम्मतके काममें दक्षता प्राप्त कर ली। १८१६ ई० में उसने अपना कारोबार एक सम्बन्धीको सौंप दिया और स्वयं अपना सारा समय कलकत्तामें रहनेवाले भारतीयोंके बीच परोपकारमें बिताने लगा। उसने एक अंग्रेजी स्कूलकी स्थापनाके लिए विशेष उद्यम किया और मुख्य रूपसे उसीके प्रयत्नोंसे २० जनवरी १८१७ ई०को हिन्दू कालेजकी स्थापना हुई। अगले साल उसने अंग्रेजी तथा बंगला पुस्तकोंके मुद्रण तथा प्रकाशनके लिए 'स्कूल बुक सोसाइटी'-की स्थापना की।

उसने समाचारपत्रोंकी स्वाधीनताके विरुद्ध बनाये गये नियमोंको रद्द करानेके लिए भारी दौड़धूप की और १८३५ ई०में सर चार्ल्स मेटकाफके प्रशासन-कालमें उसे इस कार्यमें सफलता मिली। उसने सुप्रीम कोर्टमें जूरियोंकी सहायतासे मुकदमेकी सुनवाईकी प्रथा चलानेके लिए भी भारी प्रयत्न किया और उसका यह प्रयत्न भी बादमें सफल हुआ। १८४२ ई० में कलकत्तामें हैजेसे उसकी मृत्यु हुई। उसकी परोपकारिता, दयालुता और उदारताने कलकत्ताके लोगोंको इस सीमा तक प्रभावित किया कि उन्होंने चंदा करके उसकी संगमरमरकी एक मूर्ति बनवायी, जो कलकत्ताके एक केन्द्रीय स्थानमें स्थापित है। उसकी स्मृतिमें उसके नामसे एक स्कूलकी भी स्थापना की गयी है।

हेरात—अफगानिस्तानका एक प्रान्तीय नगर। यह जिस प्रान्तकी राजधानी था, उसे ग्रीक लोग एरिया कहते थे। यह प्रदेश हिन्दूकुशके ठीक पूर्वमें है और सामरिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उत्तर-पश्चिममें इसे भारतवर्षकी प्राकृतिक सीमा माना जाता है। ईसवी पूर्व छठीं शताब्दीमें यह फारसके साम्राज्यके अन्तर्गत था। ईसवी पूर्व चौथी शताब्दीमें सेलेउकसने यह प्रदेश चन्द्रगुप्त मौर्यको दे दिया और मौर्य साम्राज्यके अन्ततक उसके अधीन रहा। इसके बाद ईसवी सन्‌की प्रारम्भिक शताब्दियोंमें इस उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रपर यवन और पार्थियन राजाओंका राज्य हो गया। इसके बाद हेरात कभी भारतीय साम्राज्यके अन्तर्गत नहीं रहा। फारस और अफगानिस्तानके बीच इस प्रदेशके लिए बराबर लड़ाइयाँ होती रहीं। अन्तमें १८६३ ई०में दोस्त मुहम्मदने इसे अपने राज्यमें मिला लिया। अंग्रेज राजनीतिज्ञों और युद्ध-विशारदोंका अग्रसर नीतिका पोषक दल शुरूसे इस पक्षमें रहा कि इस भू-भागको अपने अधिकारमें कर लेना चाहिए। इसी उद्देश्यसे पहला और दूसरा अफगान-युद्ध (दे०) हुआ, परन्तु इस नीतिमें सफलता न मिल सकी। उत्तर-पश्चिममें प्राकृतिक सीमाकी नीतिके पोषकोंका मनोरथ कभी पूरा नहीं हो सका।

हेलिओक्लीज—बैक्ट्रियाका अन्तिम यवन राजा। उसका काल लगभग १४०–१३० ई० पू० माना जाता है।

हेलियोडोरस—दिया (दियोन)का पुत्र और तक्षशिलाका निवासी। पाँचवें शुङ्ग राजा काशीपुत भागभद्रके राज्य-कालके चौदहवें वर्षमें तक्षशिलाके यवन राजा एण्टिआल्कीडस (लगभग १४०–१३० ई०पू०)का दूत बनकर वह विदिशा आया। हेलियोडोरस यवन होते हुए भी भागवत धर्मका अनुयायी हो गया था। उसने देवाधिदेव वासुदेव (विष्णु)का एक गरुड़-स्तम्भ बनवाया। यह सारी सूचना उक्त स्तम्भ पर अंकित है, जिससे प्रकट होता है कि हेलियोडोरसको महाभारतका परिचय था। यह स्तम्भ-लेख महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इससे प्रकट होता है कि ईसा पूर्व दूसरी शताब्दीमें यवनोंने हिन्दू धर्म अंगीकार कर लिया था। इससे वैष्णव धर्मके क्रमिक विकासपर भी प्रकाश पड़ता है।

हेविट, जनरल—मई १८५७ ई०में जब गदर शुरू हुआ, मेरठकी छावनीमें भारतीय और ब्रिटिश सेनाओंका कमाण्डर। यद्यपि उसके अधीन २,२०० यूरोपीय सैनिक थे, फिर भी उसने विप्लवियोंका दमन करनेका कोई प्रयत्न नहीं किया। विप्लवी पलटनोंने दिल्लीकी ओर कूचकर उसपर कब्जा कर लिया।

हेस्टिंग्स—फ्रांसिस रावडन, अर्ल आफ मोयरा, मार्क्विस आफ हेस्टिंग्स, जो लार्ड हेस्टिंग्सके नामसे विख्यात है। लार्ड मिण्टो प्रथमके बाद १८१३ से १८२३ ई०तक वह भारतका गवर्नर-जनरल रहा। ५९ वर्षकी उम्रमें उसने यह पद ग्रहण किया। वारेन हेस्टिंग्स (१७७४–१७८५ ई०) के बाद उसने सबसे दीर्घ कालतक शासन किया। उसके प्रशासन-कालमें भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यका विस्तार दक्षिणमें केप कमोरिनसे लेकर उत्तर-पश्चिममें सतलज नदी तक हो गया, अर्थात् पूर्वमें आसाम तथा पश्चिममें सिंध तथा पंजाबको छोड़कर सारे भारतमें वह विस्तृत हो गया। यह साम्राज्य-विस्तार तीन बड़ी लड़ाइयों—नेपाल-युद्ध (१८१४–१६ ई०), पिंडारी-युद्ध (१८१७–१९ ई०) तथा तीसरे मराठा-युद्ध (१८१७–१९ ई०) की सफलताके फलस्वरूप हुआ। वह गवर्नर-जनरल होनेके साथ-साथ भारतकी ब्रिटिश सेनाका प्रधान सेनापति

भी था। उसने तीनों लड़ाइयोंका संचालन बड़ी कुशलता-से किया, जिससे उनमें भारी सफलता मिली।

नेपाल-युद्ध (दे०) का अन्त सगौलीकी सन्धिसे हुआ, जिसके फलस्वरूप शिमला तथा उसके आस-पासका क्षेत्र ब्रिटिश साम्राज्यका अंग बन गया। इस सन्धिके बाद नेपालके साथ जिन मैत्रीपूर्ण सम्बन्धोंकी स्थापना हुई, वे भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यके अंत तक बने रहे। पेंढारी-युद्ध (दे०) के फलस्वरूप तीसरा मराठा-युद्ध (दे०) हुआ, जिसमें शिन्देकी सेनाओंको दूसरी मराठा सेनाओंसे मिलनेसे रोककर शक्तिहीन बना दिया गया। पेशवा बाजीरावको १८१७ ई०में खड़की और १८१८ ई०में आष्टीकी लड़ाइयोंमें, भोंसले राजा अप्पा साहबको १८१७ ई०में सीताबल्डी और नागपुरकी लड़ाइयोंमें तथा शिन्देको १८१७ ई०में महीदपुरकी लड़ाइयोंमें हरा दिया गया तथा १८१८ ई०में असीरगढ़ सर कर लिया गया। इस युद्धके फलस्वरूप पेंढारियोंकी शक्ति समाप्त हो गयी, पेशवाशाहीका अन्त हो गया, शिवाजीके एक वंशजको साताराका राजा तथा अंग्रेजों द्वारा मनोनीत एक बालकको भोंसलेकी गद्दीपर बिठा दिया गया, होल्कर तथा शिन्देके राज्योंका बहुत-सा हिस्सा उनके आधिपत्यसे ले लिया गया, उन्हें आदेश दिया गया कि वे राजपूत राज्योंमें कोई हस्तक्षेप न करें और उन सभी राज्योंको अंग्रेजोंसे आश्रित संधियाँ करनेपर विवश किया गया। इन घटनाओंके फलस्वरूप सतलज तथा सिन्धके पूर्वमें अंग्रेजोंका पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो गया। भारतमें अंग्रेजोंको जो नया रुतबा हासिल हो गया था, उसका पता इस बातसे लगता है कि लार्ड हेस्टिंग्सने दिल्लीके नाममात्रके मुगल सम्राटको नजर पेश करनेकी प्रथा बन्द कर दी। लार्ड हेस्टिंग्ससे पहलेके सभी गवर्नर-जनरल दिल्लीके मुगल सम्राटको नजर पेश करते थे। लार्ड हेस्टिंग्सने समुद्री डाकुओंका भी दमन किया, जो भारतके पश्चिमी समुद्र तटपर तथा फारसकी खाड़ी तथा लाल सागरमें लूट-पाट किया करते थे। अन्तमें १८१९ ई०में लार्ड हेस्टिंग्सने मलय प्रायद्वीपके छोरपर स्थित सिंगापुर द्वीपपर कब्जा कर लिया, जिससे पूर्वी एशियाका सामरिक दृष्टिसे एक महत्त्वपूर्ण प्रवेश-द्वार ब्रिटिश साम्राज्यके अधीन हो गया।

लार्ड हेस्टिंग्सने कलकत्तामें अनेक सुधार किये, दिल्लीमें पानीकी उत्तम व्यवस्था की, सड़कों और पुलोंको दुरुस्त कराया, भारतीयोंको शिक्षाके लिए प्रोत्साहित किया, लार्ड कार्नवालिस (दे०) ने मालगुजारी वसूलीको न्याय कार्यसे अलग करनेके लिए कलक्टर और न्यायाधीशके पदोंको जो अलग-अलग कर दिया था उसे समाप्त कर दिया, न्यायालयोंकी संख्या बढ़ा दी, मद्रासमें मालगुजारीकी वसूलीके लिए रैयतवारी प्रथा चलायी, बंगालमें जहाँ स्थायी बन्दोबस्तके फलस्वरूप किसान पूरी तरहसे जमींदारोंकी दयापर आश्रित थे, उन्हें कुछ सीमा तक सुरक्षा प्रदान की तथा १७९९ ई०में समाचार-पत्रोंपर लागूकी गयी सेंसर प्रथा समाप्त कर दी। लार्ड हेस्टिंग्सका प्रशासन-काल बड़ा गौरवपूर्ण रहा, परन्तु अन्तमें उसपर कलंकका एक धब्बा लग गया। लार्ड हेस्टिंग्सकी साहूकारीका काम करनेवाली पामर एण्ड कम्पनीपर बड़ी कृपादृष्टि रहती थी। उसके एक साझीदारकी शादी जिस रमणीसे हुई थी, गवर्नर-जनरल उसका अभिभावक था। यद्यपि कम्पनीके संचालकोंने निर्णय दिया कि लार्ड हेस्टिंग्सने भ्रष्टाचारकी नीयतसे कोई कार्य नहीं किया तथापि उन्होंने उसके कार्योंकी निन्दा अवश्य की। लार्ड हेस्टिंग्सने इस्तीफा दे दिया और वह १८२३ ई०में इंग्लैंड वापस लौट गया। १८२६ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी।

हेस्टिंग्स, वारेन (१७३२–१८१८ ई०)—बंगालका पहला गवर्नर-जनरल था। उसका जन्म एक साधारण घरानेमें हुआ था। अपने चाचाकी सहायतासे उसने शिक्षा प्राप्त की। १८ सालकी उम्रमें एक लिपिककी हैसियतसे ईस्ट इंडिया कम्पनीकी नौकरी कर ली और १७५० ई०में कलकत्ता पहुँचा। कम्पनीकी एक फैक्टरीमें तीन वर्षतक प्रशिक्षण प्राप्त करनेके बाद उसकी नियुक्ति कासिम बाजार (दे०) में कर दी गयी। १७५६ ई०में जब नवाब सिराजुद्दौला (दे०) ने कासिम बाजारपर कब्जा किया तो उसे भी बन्दी बना लिया। बादमें उसे छोड़ दिया गया और दूसरे अंग्रेज भगोड़ोंके साथ वह भी फुल्टा चला गया। १७५७ ई०में क्लाइव और वाटसनने कलकत्तापर फिरसे कब्जा करनेके लिए जो हमला किया, उसमें वह भी शामिल था। क्लाइवने उसे मुर्शिदाबादके दरबारमें रेजिडेंट नियुक्त कर दिया। १७६१ ई०में वह वैन्सीटार्टकी अध्यक्षतामें बंगाल कौंसिलका सदस्य नियुक्त किया गया। हेस्टिंग्स कम्पनीके नौकरोंको खानगी व्यापारकी छूट देनेकी नीतिके विरुद्ध था। उसने उस नीतिका भी विरोध किया जिसके फलस्वरूप नवाब मीरकासिम (दे०) से कम्पनीकी लड़ाई हुई। १७६४ ई०में बक्सरकी लड़ाईके बाद उसने इस्तीफा दे दिया और बंगालमें उसने दलालोंके मार्फत लकड़ीका व्यापार

करके जो दौलत इकट्ठी की थी, उसे लेकर इंग्लैंड वापस चला गया। १७६९ ई०में वह मद्रास कौंसिलका दूसरा प्रधान सदस्य बनकर पुनः भारत लौट आया। हेस्टिंग्स जिस जहाजसे भारत आ रहा था उसमें बैरन इमहोफकी पत्नी मेरिया भी सवार थी। दोनोंका परिचय हो गया। हेस्टिंग्स विधुर हो चुका था। बादमें उसने मेरियासे शादी कर ली। मद्रासमें हेस्टिंग्सने बड़ी योग्यताके साथ कार्य किया और १७७२ ई०में वह बंगाल कौंसिलका प्रेसीडेंट नियुक्त कर दिया गया। इस तरह ४० वर्षकी अवस्थामें वारेन हेस्टिंग्स बंगालका गवर्नर बन गया। १७७३ ई०का रेग्यूलेटिंग ऐक्ट पास होनेपर वह बंगालमें फोर्ट विलियमका गवर्नर-जनरल अर्थात् भारतमें ब्रिटिश राज्यका पहला गवर्नर-जनरल बन गया।

१७७२ ई०में बंगालका गवर्नर बनाते समय कम्पनीके संचालकोंने वारेन हेस्टिंग्सको पहला काम यह सौंपा था कि वह उस दोहरी शासन व्यवस्था (दे०)को समाप्त कर दे जिसकी स्थापना क्लाइवने की थी और कम्पनीको प्रत्यक्ष रीतिसे दीवान बना दे अर्थात् कम्पनी मालगुजारीकी वसूलीके लिए सीधे अपने आदमियोंकी नियुक्ति करे। अभी तक नायब दीवानकी हैसियतसे मालगुजारीकी वसूली मुहम्मद रजा खाँ और राजा शिताब रायके हाथमें थी। उन्हें उनके पदसे अलग करके उनपर मुकदमा चलाया गया, परंतु अंतमें उन्हें बरी कर दिया गया। कलकत्तामें बोर्ड आफ रेवेन्यू (दे०)की स्थापना की गयी, जिसे मालगुजारीकी वसूलीका सारा कार्य सौंप दिया गया। खजाना मुर्शिदाबादसे कलकत्ता ले आया गया। इस रीतिसे कलकत्ता एक प्रकारसे ब्रिटिश भारतकी राजधानी बन गया। नवाब मीर जाफर (दे०)के एक पोतेको बंगालका नया नवाब बनाया गया था। वह अभी बालक था। उसका भत्ता घटाकर आधा (१६ लाख रुपया) कर दिया गया और मुन्नी बेगमको उसका अभिभावक नियुक्त कर दिया गया। १७७१ ई०के बाद सम्राट् शाह आलम पूरी तरह मराठोंका आश्रित हो गया था। क्लाइवने उसे २६ लाख रुपया वार्षिक नजराना देना स्वीकार किया था। वारेन हेस्टिंग्सने उसे भी बंद कर दिया। क्लाइवने उसके खर्चके लिए कोड़ा और इलाहाबादके जो जिले दिये थे वे भी वापस ले लिये गये और पचास लाख रुपयेमें अवधके नवाबके हाथ बेच दिये गये। हेस्टिंग्सने अवधके नवाबके साथ दोस्तीकी जो नीति बरती, उसके फलस्वरूप १७७४ ई०में उसे रुहेला-युद्ध (दे०) में उतरना पड़ा। रुहेलोंको हरानेमें कोई कठिनाई नहीं हुई, परन्तु जिस नीतिके फलस्वरूप रुहेला युद्ध हुआ और अंग्रेजी सेनाने रुहेलखंडमें जो अत्याचार किये उसकी बादमें तीव्र आलोचना हुई और ब्रिटिश पार्लियामेंटमें हेस्टिंग्सपर तीव्र आक्षेप किये गये।

हेस्टिंग्सने बंगालमें मालगुजारीका बंदोबस्त शुरूमें पांच सालके ठेकेपर किया, बादमें वार्षिक ठेका दिया जाने लगा। उसने बंगालमें पुलिस और फौजकी नयी व्यवस्था की। उसने जिलोंका प्रबंध करने तथा दीवानी मुकदमे सुननेके लिए अंग्रेज कलक्टर नियुक्त किये और उनके सहायकके रूपमें भारतीयोंकी नियुक्ति की। उसने कलकत्तामें दो अपील अदालतें स्थापित कीं। एक सदर दीवानी अदालत कहलाती थी, जिसका काम दीवानी मुकदमोंको सुनना था। इसकी अध्यक्षता गवर्नर-जनरल करता था और उसकी कौंसिलके चारों सदस्य उसके साथ बैठते थे। दूसरी सदर निजामत अदालत कहलाती थी, जिसकी अध्यक्षता नायब नाजिम करता था और वह फौजदारीके मामलोंकी अपील सुनती थी। इस प्रकार वारेन हेस्टिंग्सने नागरिक प्रशासनकी एक सुदृढ़ नींव रखी। बादमें लार्ड कार्नवालिस (दे०) ने उस नींवपर नागरिक प्रशासनकी एक बुलन्द इमारत तैयार की।

रुहेला-युद्धके बाद ही रेग्यूलेटिंग ऐक्ट (दे०) लागू हो गया और वारेन हेस्टिंग्स पहला गवर्नर-जनरल बन गया। उसकी कौंसिलमें चार सदस्य थे, जिनमें तीन सदस्य—जनरल जान क्लेवरिंग, जार्ज मोनसन तथा सर फिलिप फ्रांसिस शुरूसे उसके विरोधी थे। कौंसिलका चौथा सदस्य रिचर्ड बारवेल ही उसका एकमात्र समर्थक था। चूंकि कौंसिलके निर्णय बहुमतसे लिये जाते थे, इसलिए वारेन हेस्टिंग्सको कौंसिलसे बराबर संघर्ष करना पड़ता था। यह संघर्ष छह साल तक चलता रहा। इससे उसके लिए प्रशासन चलाना बड़ा कठिन हो गया था। यदि हेस्टिंग्सको छोड़ कर दूसरा आदमी होता तो वह अपना पद छोड़ कर भाग जाता। परन्तु हेस्टिंग्स असाधारण रूपसे कर्मठ तथा धैर्यवान व्यक्ति था। अक्सर कौंसिलका बहुमत उसके विरुद्ध रहता था और उसे उन निर्णयोंको स्वीकार करना पड़ता था जिन्हें वह उचित नहीं समझता था। फिर भी हेस्टिंग्सने हार नहीं मानी। अंतमें उसके दो विरोधियों—मोनसन और क्लेवरिंगको मौतने हरा दिया और तीसरे विरोधी फ्रांसिसको उसने एक द्वन्द्व-युद्धमें घायल कर दिया और वह १७८० ई०में भारतसे चला गया। इसके बाद प्रशासनपर पूर्ण रूपसे हेस्टिंग्सका नियंत्रण स्थापित हो

गया। हेस्टिंग्सको दीर्घकाल तक कौंसिलके सदस्योंसे जो संघर्ष करना पड़ा, उसके फलस्वरूप उसके चरित्रकी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ दोनों उभड़ कर सामने आयीं। महाराजा नन्दकुमार, बनारसके राजा चेतसिंह, अवधकी बेगमों सदृश्य जिन-जिन लोगोंने उसके विरोधी सदस्योंका समर्थन प्राप्त करनेका प्रयत्न किया, उन सबका वह घोर शत्रु हो गया और उन्हें उसकी प्रतिहिंसाका शिकार बनना पड़ा। नंदकुमार (दे०)को फांसी दे दी गयी; राजा चेतसिहको पहले गैरकानूनी तथा अनुचित रीतिसे दंडित करके उससे विपुल धन और फौजोंकी मांग की गयी और अंतमें उससे उसका राज्य छीन लिया गया; अवधकी बेगमें (दे०) अपमानित की गयीं और बर्बादीसे बचनेके लिए उन्हें अनुचित रीतिसे अपनी निजी जायदादसे बहुत-सा धन देनेके लिए विवश किया गया। इन सभी घटनाओंको बादमें हेस्टिंग्सके विरुद्ध महाभियोगमें लगाये गये आरोपोंका आधार बनाया गया। यद्यपि वह सभी आरोपोंसे बरी कर दिया गया और उसके विरुद्ध महाभियोगकी कार्रवाई सफल नहीं हो सकी, तथापि ब्रिटिश सरकारने उसे 'पिअर' की पदवी नहीं प्रदान की, जिसके लिए वह अत्यन्त लालायित था। इससे मालूम पड़ता है कि ब्रिटिश जनमत उक्त घटनाओंके सम्बन्धमें वारेन हेस्टिंग्सका आचरण औचित्यपूर्ण नहीं मानता था।

यदि वारेन हेस्टिंग्सके चरित्रमें धनलोलुपता और प्रतिहिंसात्मकताके रूपमें दो बड़ी बुराइयाँ थीं तो उसमें दो बड़ी अच्छाइयाँ भी थीं। उसमें अदम्य मानसिक दृढ़ता थी। इसके साथ ही उसमें कार्यसाधक उपाय ढूंढ निकालनेकी गजबकी सूझबूझ थी। उसके इन्हीं दोनों गुणोंके कारण भारतमें नवस्थापित ब्रिटिश साम्राज्यके अस्तित्वके लिए १७७५ से १७८२ ई०के बीच जो भयंकर खतरा उपस्थित हो गया था, वह टल गया। १७७५ ई०में मराठोंसे युद्ध शुरू हो गया; अगले वर्ष अमरीकाका स्वाधीनता-संग्राम आरम्भ हो गया और उसके बाद ही फ्रांस, स्पेन तथा हालैण्डसे संघर्ष छिड़ गया। तीन साल बाद १७७९ ई०में निजामने मैसूरके हैदर अली तथा मराठोंके साथ मिलकर अंग्रेजोंको निकाल बाहर करनेके लिए एक शक्तिशाली संघ बना लिया। १७७९ ई०में मराठोंने कर्नल कैमककी फौजोंको इस तरह दबोच लिया कि उसे बड़गांवका समझौता (दे०) करना पड़ा। अगले साल हैदर अलीने कर्नाटकपर हमला बोल दिया, बेलीके नेतृत्वमें एक ब्रिटिश सैनिक टुकड़ी काट डाली, कर्नाटकमें जबर्दस्त लूटपाट की और आर्काटपर कब्जा कर लिया। हैदर अलीकी फौजको १७८१ ई०में पोर्टो नोवोमें हार खानी पड़ी, परन्तु इसके बदलेमें हैदर अलीके लड़के टीपू सुल्तानने १७८२ ई०में तंजौरमें ब्रेथवेटके नेतृत्वमें एक अंग्रेजी फौजका सफाया कर दिया। उसी समय एडमिरल डी सूफ्रांके नेतृत्वमें एक फ्रेंच जंगी बेड़ा भारतीय तटपर आ धमका। इन सब घटनाओंके कारण भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यका अस्तित्व खतरेमें पड़ गया था, परन्तु हेस्टिंग्स तनिक भी विचलित नहीं हुआ। उसने अदम्य पुरुषार्थका परिचय दिया। उसने गोडार्ड (दे०)के नेतृत्वमें एक फौज भेजी, जिसने १७८० ई०में मध्य भारतको पार करके बसईपर कब्जा कर लिया उसने एक दूसरी फौज पौफमके नेतृत्वमें भेजी, जिसने ग्वालियरका किला सर कर लिया। इससे अंग्रेजोंको खोयी हुई प्रतिष्ठा फिरसे मिल गयी। हेस्टिंग्सने चतुरतापूर्ण कूटनीतिके द्वारा भोंसले और शिंदेको अंग्रेजोंके विरुद्ध संगठित मराठा संघसे फोड़ लिया और शिन्देकी मध्यस्थतासे मराठोंके साथ साल्बाईकी संधि कर ली। इस प्रकार पहला मराठा-युद्ध समाप्त हो गया और उसके फलस्वरूप साष्टी अंग्रेजोंके कब्जेमें आ गया।

हेस्टिंग्सने दक्षिण भारतमें भी इसी प्रकारका पुरुषार्थ दिखाया। उसने मद्रासके गवर्नरको निलम्बित कर दिया और सारे अपयशको धो डालनेके लिए सर आयर कूटके नेतृत्वमें एक कुमुक बंगालसे भेजी। उसने पियर्सके नेतृत्वमें एक दूसरी फौज स्थल-मार्गसे बंगालसे मद्रास भेजी। उसने १७८० ई०में निजामको गुन्टूरका इलाका देकर फोड़ लिया था। १७८२ ई० में मराठोंके साथ साल्बाईकी संधि करके उसने अंग्रेजोंको निकाल बाहर करनेके लिए निजाम द्वारा १७७९ ई० में बनाये गये संघको एक प्रकारसे समाप्त कर दिया। इस प्रकार अंग्रेजी फौजोंको अकेले मैसूरकी फौजोंसे लोहा लेना पड़ा। १७८२ ई० में हैदर अलीकी मृत्यु हो गयी और उसके उत्तराधिकारी टीपू सुल्तानने १७८४ ई० तक अंग्रेजोंसे लड़ाई जारी रखी। १७८४ ई०में उसके साथ मंगलूरकी संधि हो गयी, जिसके द्वारा दोनों पक्षोंने एक दूसरेके जीते हुए इलाके लौटा दिये। मंगलूरकी संधिमें हेस्टिंग्सका हाथ नहीं था और उसकी शर्तें उसे मंजूर नहीं थीं। यह संधि मद्रास सरकारके प्रयाससे हुई थी, जो शांति-स्थापनाके लिए अत्यधिक उत्सुक थी। इसलिए हेस्टिंग्सने संधिका विरोध नहीं किया। सब मिला कर हेस्टिंग्सने युद्धकालमें जो कूटनीतिक तथा सैनिक

सफलताएँ प्राप्त कीं, उनपर कोई भी प्रशासक उचित रीतिसे गर्व कर सकता था और इसीके आधारपर उसकी गणना भारतके सबसे महान गवर्नर-जनरलोंमें की जाती है।

हेस्टिंग्सको पिटका इण्डिया ऐक्ट (१७८४ ई०) पसंद नहीं था, इसलिए उसके पास होनेके बाद उसने १७८५ ई० में गवर्नर-जनरलके पदसे इस्तीफा दे दिया और इंग्लैण्ड वापस लौट गया। तीन साल बाद वारेन हेस्टिंग्सपर बीस आरोपोंके आधारपर महाभियोग चलाया गया। इनमेंसे मुख्य आरोप बनारसके राजा चेतसिंह तथा अवधकी बेगमोंके साथ उसका दुर्व्यवहार तथा उपहार तथा घूस लेना था। महाभियोगकी काररवाई सात वर्ष तक चली और अन्तमें वारेन हेस्टिंग्सको सभी आरोपोंसे बरी कर दिया गया। उसकी मृत्यु १८१८ ई० में ८६ वर्षकी आयुमें इंग्लैण्डमें हुई।

हैदर अली खाँ–१८ वीं शताब्दीके मध्यका एक वीर योद्धा, जो अपनी योग्यताके बलपर मैसूरका शासक बन गया। वह मैसूरके शक्तिहीन हिन्दू राजाके प्रधानमन्त्री (दलबाई) नानराजकी सेवामें नियुक्त था। बादमें हैदरअलीने दलबाईसे शासनसत्ता अपने हाथमें ले ली। कुछ समय बाद उसने राजाको भी अपदस्थ कर दिया और १७६१ ई० में स्वयं मैसूरकी गद्दीपर बैठ गया। उसने बहुत जल्दी ही बदनौर, कनारा तथा दक्षिण भारतकी छोटी-छोटी रियासतोंको जीत कर अपने राज्यमें मिला लिया। यद्यपि वह अनपढ़ था, तथापि बहुत कुशल शासक और योग्य सेनापति सिद्ध हुआ। वह राज्यके सारे काम अपने सामने बहुत द्रुत गतिसे निबटाता था। सभी लोग बड़ी आसानीसे उससे भेंट कर सकते थे। उस जमानेके मुस्लिम शासकोंमें हैदरअली सबसे सहिष्णु शासक माना जाता था।

उसे बड़ी कठिन स्थितिका सामना करना पड़ा। हैदराबादका निजाम, मराठे और अंग्रेज सभी उसके शत्रु हो गये। इन तीनोंने १७६६ ई० में इसके विरुद्ध संधि कर ली। किन्तु हैदरअली कठिनाइयोंसे घबड़ाता न था। उसने जल्द ही मराठोंको अपनी ओर मिला लिया और फिर अंग्रेजों और निजामसे जम कर लोहा लिया। उसने मंगलौरपर पुनः कब्जा कर लिया, बम्बई स्थित अंग्रेजी सेनाको पराजित किया, १७६८ ई० में मद्रासके पाँच मील निकट पहुँच गया तथा अंग्रेजोंको अपने अनुकूल संधि करनेपर बाध्य कर दिया। इस संधिके अनुसार अंग्रेजोंने हैदरअलीके विजित प्रदेशोंपर उसके आधिपत्यको मान लिया और यह वायदा किया कि जब कभी मैसूरपर हमला होगा, अंग्रेज हैदरअलीकी मदद करेंगे। इस प्रकार अंग्रेजोंपर पहली विजय प्राप्त करनेसे हैदरअलीकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी। १७७१ ई० में मराठोंने मैसूर राज्यपर हमला बोल दिया। अंग्रेजोंने अपना वायदा पूरा नहीं किया और हैदरअलीकी कोई सहायता नहीं की। हैदरअली और मराठोंमें संधि हो गयी। बादमें उसने मराठों और निजामसे समझौता किया कि ये तीनों मिलकर अंग्रेजोंको मार भगायें। इस बीच अंग्रेजोंने फांसीसी बस्ती माहीपर भी कब्जा कर लिया था, जो हैदरअलीके राज्यके अन्तर्गत था।

हैदरअली तूफानकी भाँति कर्नाटकपर चढ़ बैठा, कर्नल बेलीकी सेनाको चीर दिया और अर्काटपर कब्जा कर लिया। लेकिन मराठों और निजामने हैदरअलीको धोखा दिया और अंग्रेजोंके लालचमें आ गये। फलतः हैदरअली अकेला पड़ गया और १७८१ ई० में पोर्टो नोवोके युद्धमें अंग्रेज जनरल सर आयरकूटसे पराजित हुआ। लेकिन इसके बाद भी हैदरअलीने कर्नल बैथवेटकी सेनाको पराजित किया। हैदरअली कैंसर रोगसे पीड़ित था। जब युद्ध चल रहा था, तभी ७ दिसम्बर १७८२ ई० को उसका देहान्त हो गया। उसके लड़के टीपू सुल्तानने युद्ध जारी रखा और द्वितीय मैसूर-युद्धमें भी अंग्रेजोंपर विजय प्राप्त की। हैदरअलीको उसके देशवासियोंने सहायता नहीं दी, फिर भी उसने अकेले ही अंग्रेजोंसे डटकर लोहा लिया। (**बाउरिंग लिखित हैदर-अली और टीपू सुल्तान; एम० विलक्स लिखित दक्षिण भारतके ऐतिहासिक रेखाचित्र, अंग्रेजीमें**)

हैदरशाह–कश्मीरके शासक जैनुल आब्दीनका द्वितीय पुत्र, जिसने १४७० से १४७२ ई०तक शासन किया। उसने कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया। वह अपने ही महलमें शराबके नशेमें गिरकर मर गया।

हैदराबाद–संप्रति आंध्र प्रदेशकी राजधानी। यह पहले निजामके राज्यकी राजधानी था, जो भारतकी सबसे बड़ी मुसलमानी रियासत थी। इस नगरकी स्थापना १५८९ ई० में कुतुबशाही सुल्तानोंमें पाँचवे सुल्तान मुहम्मद कुलीने की। यह नगर कृष्णा नदीकी एक शाखा मूसीके दाहिने तटपर स्थित है। नगर रमणीक स्थानपर बसा हुआ है। नगरमें बहुत सी शानदार इमारतें हैं, जिनमें निजामकी कोठी, रेजीडेंसी और मक्का मसजिद उल्लेखनीय हैं। उस्मानिया विश्वविद्यालय, जिसकी स्थापना

१९१८ ई० में हुई, यहीं स्थित है। यह पहला विश्वविद्यालय है, जिसमें किसी भारतीय भाषा अर्थात् उर्दूको शिक्षाका माध्यम बनाया गया। यहाँपर अंग्रेजी द्वितीय भाषाके रूपमें पढ़ाई जाती है।

निजामके राज्यकी स्थापना १७१३ ई० में आसफजाहने की। वह दक्खिनका सूबेदार होकर हैदराबाद आया और १७४७ ई० के आसपास स्वतंत्र शासक बन बैठा। १७४८ ई० में उसकी मृत्यु हो जानेपर इस रियासतको विपत्तियोंके दौरसे गुजरना पड़ा। अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंने इस स्थितिसे लाभ उठानेकी चेष्टा की। निजामको दक्षिणमें हैदर अली तथा पश्चिम एवं उत्तरमें मराठोंकी शक्तिका सामना करना पड़ रहा था। राज्यकी अधिकांश प्रजा हिन्दू थी। ऐसी स्थितिमें उसका शासन काफी डांवाडोल था। निजाम भारतीय राजाओंमें पहला शासक था, जिसने लार्ड वेलजली (१७९८-१८०५ई०) के प्रशासन-कालमें आश्रित सेना रखना स्वीकार कर लिया और इस प्रकार अपनी स्वतंत्रताका अंत कर दिया।

भारतके स्वाधीन होनेपर निजामने कुछ समय तक अपनेको स्वतन्त्र शासक बनाये रखनेकी कोशिश की, परन्तु इसमें उसे सफलता न मिली। १९४८ ई० में रियासतका भारतीय गणराज्यमें विलयन कर लिया गया और १९५२ ई० में वहाँ लोकप्रिय सरकारकी स्थापना हो गयी। निजामको राजप्रमुख बना दिया गया और भत्तेके रूपमें एक लम्बी रकम मिलने लगी।

हैदराबाद–सिंधका एक नगर तथा छावनी, जो अब पश्चिमी पाकिस्तानमें है। इस नगरकी स्थापना १७६८ ई० में हुई और १८४३ ई० तक और फिर १९४८ से १९५५ ई० तक यह सिंधकी राजधानी रहा। यह अब हैदराबाद कमिश्नरीका मुख्यालय है। उद्योग-धंधोंका महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। यहाँ पुराना किला और एक आधुनिक विश्वविद्यालय स्थित हैं।

हैमिल्टन, विलियम–कलकत्तामें ईस्ट इण्डिया कम्पनीका मातहत एक डाक्टर। १७१५ ई० में जान सरमैन जब मुगल राजदरबारमें दूत नियुक्त हुआ, वह उसके साथ दिल्ली आया। उसने बादशाह फर्रूखशियरको एक दुखदायी बीमारीसे छुटकारा दिलाया। इसपर बादशाहने कृतज्ञतावश उसकी प्रार्थनापर १७१६ ई० में एक फरमान जारी करके उसकी मालिक ईस्ट इण्डिया कम्पनीको वाणिज्य-व्यापारकी महत्त्वपूर्ण सुविधाएँ प्रदान कर दीं।

हैरिस, लार्ड जार्ज–ईस्ट इंडिया कम्पनीकी सेवामें लग्न एक सेनापति। चौथे मैसूर-युद्ध (१७९७ ई०) में उसने टीपू सुल्तानको मलवल्लीकी लड़ाईमें मार्च १७९९ ई० में पराजित कर श्रीरंगपट्टमकी ओर खदेड़ दिया। ४ मई १७९९ ई० को उसने श्रीरंगपट्टमको भी जीत लिया। युद्धमें विजय पानेके उपलक्ष्यमें उसे १८१५ ई०में 'पीअर' का पद प्रदान किया गया।

हैलीडे, सर एफ० जे०–बंगाल, बिहार, उड़ीसा और आसामका पहला लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर। इन प्रान्तोंका प्रशासन पहले सीधे सपरिषद् गवर्नर-जनरलके अधीन था। १८५३ ई० के चार्टर ऐक्टमें उसे एक लेफ्टिनेण्ट-गवर्नरके अधीन कर दिया गया।

हैलीफैक्स, लार्ड–देखिये, 'लार्ड इरविन'।

हैलीबरी कालेज– इंग्लैण्डमें १८०५ में स्थापित। इसमें इंडियन सिविल सर्विसमें भर्ती किये गये छात्र शिक्षा पाते थे। इसमें विधि शास्त्र, अर्थशास्त्र, प्रशासन तथा एक भारतीय भाषा सीखना अनिवार्य होता था। आरम्भमें ईस्ट इंडिया कम्पनीके डाइरेक्टरों द्वारा मनोनीत अभ्यर्थी ही भर्ती किये जाते थे, अतएव इसमें प्रतिभाशाली लोगोंका अभाव था। १८५५ ई० में यह कालेज बंद कर दिया गया। उसी समयसे आई० सी० एस०के लिए प्रतियोगिता परीक्षा होने लगी। हैलीबरी कालेजके शिक्षितोंमें जान लारेंस जान कालविन, जेम्स टाम्सन और रिचर्ड सेम्पिल आदिके नाम प्रमुख हैं। (एन० सी० राय लिखित 'सिविल सर्विस इन इंडिया')।

हैवलक, जनरल सर हेनरी (१७९५–१८५७ ई०)–१८१६ ई०में सेनामें भर्ती हुआ और १८२३ ई०में कलकत्ता आया। उसने १८२४ ई०में बर्मा-युद्धमें भाग लिया और १८२८ ई० में आवाकी लड़ाइयोंपर अपनी पुस्तक प्रकाशित की। १८३८ से १८४२ ई० तक वह अफगानिस्तानमें रहा और सर ह्यग गफ़के नेतृत्वमें प्रथम सिक्ख-युद्ध (१८४५–४६ ई०)में भाग लिया। १८५६–५७ ई० में वह फारसमें युद्ध कर रहा था। जून १८५७ ई०में उसे वहींसे इलाहाबादमें विप्लवी सैनिकोंका मुकाबला करनेके लिए भेज दिया गया। उसने कई लड़ाइयोंका नायकत्व किया, नाना साहबको पराजित करके जुलाई १८५७ ई०में कानपुर ले लिया। इसके बाद वह लखनऊमें घिरी हुई ब्रिटिश फौजोंकी सहायताके लिए रवाना हुआ। तीन विफल प्रयत्नोंके बाद सितम्बर १८५७ ई०में वह घेरा तोड़नेमें सफल हुआ। दो महीने बाद बीमारीके कारण युद्ध-भूमिमें ही उसकी मृत्यु हो गयी। ब्रिटिश सरकारने उसे मरणोपरांत बैरनकी पदवी प्रदान की और उसकी पेंशन बाँध दी।

होम रूल लीग—इसकी स्थापना बाल गंगाधर तिलक (दे०)ने अप्रैल १९१६ ई०में पूनामें की। अगले सितम्बर-में इसी नामसे एक दूसरी संस्था एनी बेसेंट (दे०)ने कलकत्तामें स्थापित की। भारतीयोंको लीग-कांग्रेस योजना (दे०)के आधारपर, जो १९१६ ई०में लखनऊमें तैयार की गयी थी, होमरूल (स्वराज्य) दिलानेके लिए दोनों लीगोंने संयुक्त रीतिसे आंदोलन किया। होमरूल लीग बहुत थोड़े दिन चली, क्योंकि उसके नेतागण भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके समर्थक थे और कांग्रेसने जब तत्काल स्वराज्यकी स्थापना को अपना ध्येय बना लिया, दोनों लीगोंका कांग्रेसमें विलयन हो गया।

होयसल वंश—१११९ ई०के आसपास मैसूरके प्रदेशमें बिट्टिग अथवा बिट्टिदेवसे इसका प्रारम्भ हुआ। उसने अपना नाम विष्णुवर्धन (दे०) रख लिया और ११४१ ई० तक राज्य किया। उसने द्वार समुद्र (आधुनिक हलेबिड) को अपनी राजधानी बनाया। वह पहले जैन धर्मानुयायी था, बादमें वैष्णव मतावलम्बी हो गया। उसने बहुतसे राजाओंको जीता और हलेबिडमें सुन्दर विशाल मन्दिरोंका निर्माण कराया। उसके पौत्र वीर बल्लाल (११७३–१२२० ई०)-ने देवगिरिके यादवोंको परास्त किया और होयसलोंको दक्षिण भारतका सबसे शक्तिशाली राजा बना दिया, जो १३१० ई० तक शक्तिशाली बने रहे। १३१० ई०में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (दे०)के सेनापति मलिक काफूरके नेतृत्वमें मुसलमानोंने उनके राज्यपर हमला किया, राजधानीपर कब्जा कर लिया और राजाको बंदी बना लिया। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजीने अंतमें १३२६ ई०में इस वंशका अंत कर दिया।

होल्कर वंश तथा राज्य—इसकी स्थापना मल्हार रावने की, जिसने दूसरे पेशवा बाजीराव प्रथम (१७२०–४० ई०)के सेनापतिकी हैसियतसे अनेक लड़ाइयाँ जीतीं। मालवाका दक्षिण-पश्चिमी भाग उसके कब्जेमें आ गया और उसने इन्दौरको अपनी राजधानी बनाया। उसकी मृत्यु १७६४ ई०में हुई। उसका एकमात्र पुत्र खांडेराव दस साल पहले मर चुका था, इसलिए उसका पौत्र मल्लेराव (१७६४–६६ ई०) उत्तराधिकारी हुआ। परन्तु वह बहुत अयोग्य शासक सिद्ध हुआ और प्रशासन-का भार खांडे रावकी विधवा महारानी अहिल्या बाई (दे०)ने सँभाल लिया।

अहिल्या बाईने १७६५ से १७९५ ई० तक राज्य-का शासन बड़ी सफलताके साथ चलाया। १७९५ ई०में उसकी मृत्यु होनेपर, एक दूरके सम्बन्धी तुकोजी होल्कर-को, जिसे अहिल्याबाईने १७६७ ई०में सेनापति नियुक्त किया था, राज्य प्राप्त हुआ। तुकोजीने केवल दो साल राज्य किया और उसकी मृत्युके बाद उसका तीसरा लड़का जसवन्तराव प्रथम गद्दीपर बैठा, जिसने १७९८ से १८११ ई० तक राज्य किया। दौलत राव शिन्देसे प्रतिद्वन्द्विताके कारण, जसवंतराव होल्कर पहले तो दूसरे मराठा-युद्धसे अलग रहा, फिर अप्रैल १८०४ ई०में, जब पेशवा और शिन्दे हार चुके थे, उसने अबुद्धिमत्तापूर्वक अंग्रेजोंके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। शुरूमें उसने कर्नल मौन्सनके नेतृत्ववाली अंग्रेजी सेनापर विजय पायी, परन्तु वह दिल्लीपर कब्जा करनेमें विफल रहा। उसकी सेना दीगकी लड़ाईमें हार गयी और चार दिन बाद वह भी परास्त हुआ। परन्तु अंग्रेज सेना भरतपुरका किला सर न कर सकी। उधर लार्ड वेलेजलीको भारतसे वापस बुला लिया गया। इससे जसवंतराव अंग्रेजोंके साथ अत्यंत अनुकूल शर्तोंपर संधि कर लेनेमें सफल हो गया। उसे अपने राज्यका कोई हिस्सा गँवाना नहीं पड़ा और उसकी स्वतंत्रता बनी रही। परंतु, इसके बाद ही जसवंतराव पागल हो गया और १८११ ई०में उसकी मृत्यु हो गयी।

उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी मल्हार राव होल्कर द्वितीय (१८११–३३ ई०) तीसरे मराठा-युद्ध (१८१७-ई०) में सम्मिलित हुआ और दिसम्बर १८१७ ई० में महीदपुरकी लड़ाईमें अंग्रेजोंसे हार गया। उसे विवश होकर मंदसोरकी संधि (जनवरी १८१८ ई०) करनी पड़ी, जिसके द्वारा उसने अपने राज्यमें आश्रित सेना तथा राजधानी इंदौरमें स्थायी रूपसे ब्रिटिश रेजीडेंट रखना मंजूर कर लिया, राजपूतानेके राज्यपर अपना सारा आधिपत्य छोड़ दिया तथा नर्मदाके दक्षिणका सारा प्रदेश अंग्रेजोंको सौंप दिया। इस प्रकार होल्कर सारी स्वतन्त्रता खोकर एक रक्षित राजा बन गया। बादमें इंदौरकी गद्दीपर जो होल्कर वंशज जा बैठे, वे सिर्फ अपने राग-रंगमें डूबे रहते थे और उन्हें अपनी प्रजाकी भलाईकी कोई चिन्ता नहीं थी। उनमेंसे एक राजा कुख्यात हत्याकांड-सम्बन्धित हो गया और उसे अपनी गद्दी छोड़नी पड़ी। होल्कर वंशके राजा लोग १९४८ ई० तक शासन अथवा कुशासन करते रहे, जब उनके राज्यका भारतीय गणराज्यमें विलयन हो गया।

ह्युएनत्सांग अथवा युवानच्वाङ (६००–६४ ई०)—एक चीनी बौद्ध भिक्षु और विद्वान्, जो बौद्ध धर्मके ग्रंथोंकी खोजमें ६३० ई० में भारत आया। वह चीनसे गोबी रेगिस्तानके उत्तरसे होकर आनेवाले ३००० मील लम्बे

अत्यन्त दुर्गम मार्गको पार कर काबुल पहुंचा जो भारतका प्रवेश-द्वार है। उसने अपनी वापसी की यात्रा दक्षिणी मार्गसे की, जो पामीरको पार करके काशगर, यारकंद, खोतान तथा लोप-नोर जाता है। उसने यात्रामें जिस प्रकारके खतरे उठाये, उनसे उसके साहस, धैर्य और दृढ़-संकल्पका परिचय मिलता है।

वह भारतमें ६३० से ६४३ ई० तक रहा। उसने सारे भारतका भ्रमण किया और यहांके लगभग सभी राज्योंको देखा। वह हर्षवर्धन (दे०) के राज्यमें आठ साल (६३५–४३ ई०) रहा। हर्षवर्धनका साम्राज्य उस समय सारे उत्तरी भारतमें विस्तृत था। हर्षने उसका खुले हृदयसे स्वागत किया और उसके प्रति अत्यधिक आदर भाव प्रकट किया। वह हर्षसे राजमहलके निकट मिला और उसके साथ कन्नौज और फिर प्रयाग गया। दोनों स्थानोंपर उसने विराट धार्मिक महोत्सवोंमें भाग लिया। प्रयागमें महाराजाधिराज हर्षवर्धन हर पाँचवें वर्ष एक महोत्सव करता था। युवान च्वाङने प्रयागके जिस महोत्सवमें भाग लिया, वह इस प्रकारका छठा महोत्सव था।

ह्युएन त्सांग बौद्धधर्मके महायान सम्प्रदायका अनुयायी था। उसका बौद्ध-धर्मका ज्ञान अत्यंत विशद था। उसने अपनी यात्राका वृत्तांत लिखा है जो बारह खंडोंमें है। भारतकी लम्बी यात्राके दौरान उसने जो कुछ देखा उसका अत्यन्त विशद वर्णन किया है। उसकी पुस्तकसे हमें सातवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें विद्यमान भारतकी राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक अवस्थाके बारेमें बहुमूल्य सूचनाएं मिलती हैं। ह्युएन-त्सांग कई साल तक नालंदा विश्वविद्यालयका विद्यार्थी रहा और उसने विश्वविद्यालयके जीवनका अत्यंत रोचक वर्णन किया है। हर्षवर्धनने ह्युएन-त्सांगको स्वदेश वापस लौटनेके लिए विपुल धन दिया और सैनिकोंकी एक टुकड़ी साथ कर दी। ह्युएन-त्सांग भगवान् बुद्धके शरीरकी १५० धातुएँ, उनकी सोने, चाँदी तथा चंदनकी बहुत-सी मूर्त्तियाँ और ६५७ हस्तलिखित ग्रंथ लेकर, जिनको ढोनेके लिए बीस खच्चरोंकी आवश्यकता पड़ी थी, ६४५ ई० में चीन वापस लौटा। चीनमें उसका शेष जीवन इन बौद्ध ग्रंथोंका चीनी भाषामें अनुवाद करनेमें बीता। वह ६६४ ई० के आसपास अपनी मृत्युसे पूर्व इनमें से ७४ ग्रंथोंका अनुवाद पूरा कर चुका था।

ह्यूजेस, एडमिरल सर एडवर्ड (१७२०–९४ ई०)–ब्रिटिश नौसेनाका एक अफसर। वह भारतके पूर्वी तटपर १७७३ से १७७७ ई० तक और पुनः १७७९ से १७८३ ई० तक ब्रिटिश नौसेनाका कमाण्डर रहा। उसने १७८० ई० में मंगलूरमें हैदर अलीकी नौसेना नष्ट कर दी। १७८१ ई० में उसने डच लोगोंसे नागपट्टम् छीन लेनेमें मदद दी, १७८२ ई० में उसने डच लोगोंसे त्रिकोमली छीन लिया। परन्तु फ्रेंच लोगोंके खिलाफ उसे कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। १७८२से८३ ई० में उसने मद्रास और त्रिकोमलीके बीच एडमिरल डी सूफ्रांके नेतृत्ववाले फ्रेंच बेड़ेसे पांच बार युद्ध किया, परन्तु उसका कोई निर्णयात्मक फल नहीं निकला। इसके बाद वह भारतमें इकट्ठी की गयी बहुत बड़ी दौलत लेकर इंग्लैण्ड वापस लौट गया। उसने फिर किसी नौसैनिक बेड़ेका नायकत्व नहीं किया।

ह्यूम, एलन आक्टेवियन (१८२९–१९१२ ई०)–हेलीबरीमें शिक्षा प्राप्त की और १८४९ ई० में बंगालमें इंडियन सिविल सर्विसमें प्रवेश किया। पदोन्नति करते हुए पश्चिमोत्तर प्रांतमें वह रेवेन्यू बोर्डका सदस्य नियुक्त हुआ। गदरके समय इटावामें मजिस्ट्रेट था। १८८२ ई० में इंडियन सिविल सर्विससे अवकाश ग्रहण किया, किन्तु भारतीय मामलोंमें दिलचस्पी लेता रहा। उसने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके संगठनका प्रयास किया। बम्बईमें १८८५ ई० होनेवाले कांग्रेसके प्रथम अधिवेशनका वह संयोजक था तथा ज़ीवन भर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके कार्योंमें दिलचस्पी लेता रहा। उसकी गणना कांग्रेसके संस्थापकोंमें की जाती है। पहले बीस वर्षों तक (१८८५–१९०६ ई०) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका वह प्रधान-मन्त्री रहा। उसको तेईसवें अधिवेशनमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका पिता और संस्थापक घोषित किया गया। पक्षी-विज्ञानका वह बहुत अच्छा जानकार था। इस विषयपर उसने कई पुस्तकें लिखी हैं।

संकेताक्षरोंकी सूची

1. A. H. D.–डुबरनिल
2. A. M. A. I.–हावेल
3. C. H. I.–कैम्ब्रि०
4. D. H. I.–राय०
5. C. T. I.–फर्गुसन व बर्गेस
6. E. D. B. O. E.–नौलीस०
7. E. E. C. A.–मैकगवर्न०
8. E. H. I.–स्मिथ०
9. E. I.– इ० इ०
10. E. R. E.–इन०
11. F. M. R. I.–हबीबुल्लाह०
12. H. B.–हि० ब०
13. H. I. E. A.–फर्गुसन
14. H. U.–हि० ओ०
15. H. I. I. A.–कुमारस्वामी
16. H. S. S. I.–विल्कीन
17. I. C. D.– इ० का० डा०
18. Ind. Ant.– इ० एं०
19. I. S. B.–भट्टसाली
20. J. B. O. R. S.–ज. बि. उ. रि. सो.
21. J. R. A. S.–ज० रा० ए० सो०
22. P. A. & H. I.–बनर्जी०
23. P. H. A. I.–राय चौधरी०
24. R. A. S. W. I.–बर्गेस
25. R. S. A. E. I. C.–राज० ईस्ट०
26. S. A. E.–भट्टाचार्यजी०
27. S. O. S.–सरकार०

परिशिष्ट

महत्त्वपूर्ण तिथियाँ

ईसा पूर्व लगभग ३१०२—कलियुग संवत्का प्रारम्भ; कुरुओं और पाण्डवोंके बीच महाभारत युद्ध।
,, ,, २७०० किशमें प्राप्त सिंधु घाटीकी मुहरोंकी तिथि।
,, ,, ८१७ पार्श्वनाथकी परम्परागत जन्म-तिथि।
,, ,, ५४४ सिंहली परंपराके अनुसार बुद्धकी निर्वाण तिथि।
,, ,, ५२७ महावीरके निर्वाणकी परम्परागत तिथि।
,, ,, ५१९ डेरियस प्रथमका बहिश्तून अभिलेख।
,, ,, ४८६ चीनी परंपराके अनुसार बुद्धकी निर्वाण तिथि।
,, ३२७—३२६ सिकन्दर द्वारा भारतपर आक्रमण।
,, ३२५ भारतसे सिकन्दरका प्रस्थान।
,, ३२३ बेबीलोनियामें सिकन्दरकी मृत्यु।
,, लगभग ३२२ चन्द्रगुप्त मौर्यका सिंहासनारोहण।
,, ,, ३०५ सेल्यूकस निकेटरका भारतीय अभियान।
,, ,, २९८ बिन्दुसारका सिंहासनारोहण।
,, २७३-२३२ अशोकका शासन काल।
,, ,, १८७ मौर्यों वंशका उच्छेदन तथा शुंग वंशका प्रवर्तन होना।
,, ,, ७३ शुंग वंशका पतन और कण्व वंशका उदय।
,, ,, ५८ विक्रम संवत्का प्रारम्भ।
,, ,, ५० खारवेल-कलिंगका राजा।
,, ,, ५० सातवाहन वंशका प्रारम्भ।
,, ,, २० कण्व वंशका पतन।
,, ,, २ बैक्ट्रिया (बाख्त्री) के दरबारसे चीनी सम्राट्के पास जानेके लिए बौद्ध भिक्षुओंका प्रस्थान।

लगभग ४७ ईसवी—गोंडोफारस (गुदफर) का ऐतिहासिक प्रलेख।
६४ ,, चीनी सम्राट् मिंग-ती द्वारा भारतसे बौद्ध धर्मग्रंथोंको लानेके लिए अपने दूत भेजना।
,, ६६ ,, भारतीय बौद्ध भिक्षु काश्यप मातंग और गोभरणका चीन पहुँचना।
७७ ,, प्लिनीकी 'नेचुरल हिस्ट्री'।
७८ ,, शक संवत्का प्रारम्भ। पंजाबमें कुषाण वंशका प्रारम्भ।
,, ७८—११० ,, कथाफिश द्वितीयका शासनकाल।
,, ११०—१२० ,, नाम-रहित राजाका काल।
,, ११९—१२४ ,, नहपान।
,, १२०—१६२ ,, कनिष्कका शासनकाल।
,, १६२—१८२ ,, हुविष्कका शासनकाल।
,, १८२—२२० ,, वासुदेवका शासनकाल।
२२६ ,, फारसमें सासानी वंशका प्रारम्भ।
३२० ,, गुप्त युगका प्रारम्भ।
,, ३६० ,, समुद्रगुप्तके पास सिंहली दूत मंडलका आगमन।
४०५—४११ ,, फाहियानका भारत भ्रमण।
,, ४१५—४५५ ,, कुमारगुप्त प्रथमका शासनकाल।
४५५—४६७ ,, स्कन्दगुप्तका शासनकाल।
,, ४७६ ,, खगोलवेत्ता आर्यभट्टका जन्म।
,, ५३३ ,, यशोधर्माने मिहिरकुलको पराजित किया।
५४७ ,, कोस्मस इण्डीकोपल्यूसटस।
,, ५६६ ,, चालुक्य राजा कीर्तिवर्मा प्रथमका सिंहासनारोहण।
६०६ ,, हर्षवर्धनका सिंहासनारोहण।
६०९ ,, पुलकेशी द्वितीयका राज्याभिषेक।
६१९—६२० ,, पूर्वी भारतमें शशांक।
६२२ ,, हिजरी सन्का प्रारम्भ।
६२९ ,, ह्युएन सांगकी भारत-यात्रा प्रारंभ।

६३४ईसवी—ऐहोल अभिलेखमें कालिदास और भारविका उल्लेख।
६३७ ,, अरबोंका सिंधमें थानापर आक्रमण।
६३९ ,, स्रोङ्ग ग्चन्-स्गम्-पो द्वारा ल्हासा नगरकी स्थापना।
लगभग ६४२ ,, पुलकेशी द्वितीयकी मृत्यु।
,, ६४२–६६८ ,, पल्लव नरेश नरसिंहवर्मा का शासनकाल।
६४३ ,, हर्षकी ह्युएन सांगसे भेंट-प्रयागमें हर्षका छठाँ पंचवर्षीय सम्मेलन—ह्युएन सांगका प्रस्थान।
६४५ ,, ह्युएन सांगका चीन वापस पहुँचना।
लगभग ६४६–६४७ ,, हर्षवर्धनकी मृत्यु।
,, ६४७–६४८ ,, कामरूपके राजा भास्करवर्मा द्वारा वांग ह्युएन-त्सेकी सहायता।
६६४ ,, चीनमें ह्युएन सांगकी मृत्यु।
६७४ ,, विक्रमादित्य प्रथम चालुक्य और परमेश्वरवर्मा प्रथम पल्लव।
६७५–६८५ ,, नालन्दामें इत्सिग।
७१०–७११ ,, मुहम्मद बिन कासिम द्वारा सिंध पर आक्रमण।
७१२ ,, अरब द्वारा विजय—निरुन और अलोरकी विजय-सिंधके राजा दाहिरकी पराजय और मृत्यु।
७१३ ,, मुसलमानों द्वारा मुलतानपर अधिकार।
७४३–७८९ ,, तिब्बतमें शांतरक्षित और पद्म सम्भव।
७५३ ,, राष्ट्रकूट वंशका प्रारम्भ।
७८३ ,, वत्सराज द्वारा प्रतिहार वंशका प्रवर्तन।
८१५–८७७ ,, अमोघवर्षका शासनकाल।
८२९ ,, हर्जरका कामरूपका राजा होना।
८७१–९०७ ,, आदित्य प्रथम चोल।
९०७ ,, चोल राज परान्तक प्रथमका सिंहासनारोहण।
लगभग ९६२ ,, गजनी साम्राज्यका संस्थापन।
९७३ ,, कल्याणीके चालुक्य वंशका प्रारंभ।
९७७ ,, सुबुक्तगीनका सिंहासनारोहण।
९८५ ,, चोल राजराज महानका सिंहासनारोहण।

९८६–९८७ ईसवी—सुबुक्तगीनका प्रथम आक्रमण।
९९७ ,, सुबुक्तगीनकी मृत्यु।
९९८ ,, सुल्तान महमूदका सिंहासनारोहण।
१००१ ,, जयपालकी पराजय एवं बलिदान।
१०१२–४४ ,, राजेन्द्र चोल प्रथमका राज्यकाल।
१०१८ ,, सुल्तान महमूद द्वारा कन्नौजपर आक्रमण।
१०२६ ,, सुल्तान महमूद द्वारा सोमनाथ मन्दिरकी लूटमार।
लगभग १०७६-११४१ ,, उड़ीसाका राजा, अनन्तवर्मा चोडगंग—पुरीमें जगन्नाथके मन्दिरका निर्माण।
,, ११०६-११४१ ,, विष्णुवर्धन होयसलका राज्यकाल रामानुजका धर्म-प्रचार।
११७५ शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीका पंजाबपर आक्रमण और अधिकार।
११७८ गुजरातके राजा भीमके हाथों शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीकी पराजय।
लगभग ११८५–१२०५ ,, बंगालमें लक्ष्मणसेनका शासन।
११९१ ,, पृथ्वीराजके हाथों तराइनके प्रथम युद्धमें शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीकी पराजय।
११९२ ,, तराइनका द्वितीय युद्ध—शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी द्वारा पृथ्वीराजकी पराजय और प्राणदण्ड।
११९२– ९३ ,, कुतुबुद्दीन द्वारा दिल्लीपर आधिपत्य।
११९४ ,, चन्दावरके युद्धमें मुसलमानों द्वारा कन्नौजके गहड़वाल राजा जयचन्द्रकी पराजय।
लगभग १२०० ई० इख्तियारुद्दीन (बख्तियार खिलजी के नामसे प्रसिद्ध) के नेतृत्वमें मुसलमानों द्वारा बंगाल और बिहारकी विजय।
१२०६ ,, शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीकी मृत्यु और दिल्लीके सुल्तानके रूपमें कुतुबुद्दीनका सिंहासनारोहण—दिल्ली सल्तनतका आरम्भ।
१२१० ,, कुतुबुद्दीनकी मृत्यु।
१२१०–११ ,, इल्तुतमिशका सिंहासनारोहण।
१२२१ ,, चंगेज खांका आक्रमण।

१२२८ ईसवीं प्रथम अहोम राजा सुखप द्वारा कामरूपकी विजय।
१२३१ ,, कुतुब मीनारकी स्थापना।
१२३६ ,, इल्तुतमिशकी मृत्यु—फीरोजका सिंहासनारोहण और सिंहासन-च्युति—रज़ियाका सिंहासनारोहण।
१२४० ,, रज़ियाकी सिंहासन-च्युति और हत्या ?
१२४६–६६ ,, सुल्तान नासिरुद्दीनका राज्यकाल।
१२६६–८७ ,, गयासुद्दीन बल्बनका राज्यकाल।
१२८८ ,, कायालमें मार्को पोलो।
१२९० ,, गुलाम वंशका पतन—जलालुद्दीन खिलजीका सिंहासनारोहण।
१२९२ ,, अलाउद्दीन खिलजीका भेलसापर अधिकार—मंगोल आक्रमण।
१२९४ ,, अलाउद्दीन खिलजी द्वारा देवगिरिकी लूटमार।
१२९६-१३१६,, अलाउद्दीन खिलजीका राज्यकाल।
१२९७ ,, गुजरातकी विजय।
१३०१ ,, अलाउद्दीन खिलजी द्वारा रणथम्भौरपर अधिकार।
१३०२–०३ ,, अलाउद्दीन द्वारा चित्तौड़पर अधिकार—मंगोल आक्रमण।
१३०५ ,, अलाउद्दीनकी मालवा, उज्जैन, मन्डेर, चन्देरी और धार-विजय।
१३०६–०७ ,, मलिक काफूरका देवगिरिपर अभियान।
१३०८ ,, अलाउद्दीनकी सेना द्वारा बारंगलपर चढ़ाई।
१३१० ,, दक्षिण भारतमें मलिक काफूरका अभियान।
१३१६ ,, अलाउद्दीनकी मृत्यु—मलिक काफूरकी मृत्यु।
१३१७–१८ ,, यादव वंशका उच्छेद।
१३२० ,, गयासुद्दीन तुगलकका सिंहासनारोहण।
१३२५ ,, गयासुद्दीनकी मृत्यु—मुहम्मद तुगलकका सिंहासनारोहण।
लगभग १३२७ ईसवी दिल्लीसे दौलताबादको राजधानी ले जाना।
१३२९ ,, सोनेके स्थानपर तांबेके सिक्कोंका प्रचलन।
१३३४ ,, मदुराका विद्रोह।
१३३६ ,, विजयनगर राज्यकी स्थापना।
लगभग १३३७–३८ ,, काराजाल अभियान।
१३३८–३९ ,, बंगालमें स्वतन्त्र सल्तनतकी स्थापना।
१३३९ ,, शाहमीरकी अधीनतामें काश्मीरका स्वतन्त्र होना।
१३४२ ,, इब्नबतूताका चीनकी ओर प्रयाण।
१३४३ ,, बंगालमें शम्शुद्दीन इलियासका सिंहासनारोहण।
१३४७ ,, बहमनी राज्यकी स्थापना।
१३५१ ,, मुहम्मद तुगलककी मृत्यु।
१३५१–८८ ,, फीरोज शाह तुगलकका राज्यकाल।
१३९३ ,, जौनपुरकी स्वतन्त्र सल्तनतकी स्थापना।
१३९८ ,, तैमूरकी चढ़ाई।
१४१४ ,, बंगालका राजा गणेश।
१४२० ,, निकोलो कोण्टीका विजयनगर भ्रमण।
१४२९ ,, बहमनी राजधानीका गुल्बर्गसे बीदरको स्थानान्तरण।
लगभग १४३०–६९ ,, मेवाड़में राणा कुम्भका राज्यकाल।
१४३४–३५ ,, उड़ीसाका राजा कपिलेन्द्र।
१४४३ ,, अब्दुर्रज्जाककी भारत यात्रा।
१४५१ ,, तुगलक वंशका पतन—बहलोल लोदीका सिंहासनारोहण।
१४६९ ,, गुरु नानकका जन्म।
१४७२ ,, शेरशाहका जन्म।
१४८१ ,, मुहम्मद गवाँकी हत्या।
१४८४ ,, बहमनी सल्तनतसे बरारका पृथक् होना।
१४८९ ,, सिकन्दर लोदीका सिंहासनारोहण—बीजापुरकी स्वतन्त्र सल्तनतकी स्थापना।
१४९० ,, अहमदनगरकी स्वतन्त्र सल्तनतकी स्थापना।

१४९३ ईसवी—हुसेन शाहका बंगालका बादशाह होना।
१४९४ ,, बाबरका फरगानाके सिंहासनपर आरूढ़ होना।
१४९७–९८ ,, वास्कोडीगामाकी प्रथम समुद्र-यात्रा।
१५०९ ,, कृष्णदेवरायका सिंहासनारोहण-भारतमें पुर्तगाली गवर्नर, अल्बुकर्क।
लगभग १५०९–२७ ,, मेवाड़में राणा साँगाका राज्यकाल।
१५१० ,, पुर्तगालियों द्वारा गोवापर अधिकार।
१५१२–१८ ,, गोलकुण्डामें स्वतन्त्र सलतनतकी स्थापना।
१५२६ ,, पानीपतका प्रथम युद्ध—बाबरका दिल्लीमें सिंहासनारोहण—भारतमें मुगल साम्राज्यका प्रारम्भ।
१५२७ ,, खनुआका युद्ध और राणा साँगाकी पराजय।
१५२९ ,, गोगराका युद्ध और अफगानोंकी पराजय।
१५३० ,, कृष्णदेव रायकी मृत्यु-बाबरकी मृत्यु—हुमायूँका सिंहासनारोहण।
१५३३ ,, गुजरातके बहादुर शाह द्वारा चित्तौड़पर अधिकार।
१५३४ ,, हुमायूँका मालवाको प्रस्थान।
१५३५ ,, हुमायूँसे पराजित होकर बहादुर शाहका भागना।
१५३८ ,, शेर खाँका बंगालके मुहम्मद शाहको परास्त करना—हुमायूँका बंगालपर आक्रमण—गुरुनानककी मृत्यु।
१५३९ ,, शेर खाँका चौसामें हुमायूँको परास्त कर सत्ता ग्रहण करना।
१५४० ,, हुमायूँका कन्नौजमें परास्त होना और शरणार्थी बनना।
१५४२ ,, उमरकोटमें अकबरका जन्म।
१५४४ ,, फारसमें हुमायूँ।
१५४५ ,, शेरशाहकी मृत्यु—इस्लाम शाहका सिंहासनारोहण।
१५५५ ,, हुमायूँ द्वारा दिल्लीके सिंहासनपर अधिकार।
१५५६ ईसवी—हुमायूँकी मृत्यु-अकबरका सिंहासनारोहण—पानीपतका द्वितीय युद्ध।
१५५८ ,, सूरवंशका अन्त।
१५६० ,, बैरम खाँका पतन।
१५६१ ,, अकबरकी मालवा-विजय।
१५६२ ,, अकबरका आमेरकी राजकुमारीसे विवाह—बेगमोंके प्रभावसे मुक्ति।
१५६४ ,, अकबर द्वारा जजिया उठा लेना, रानी दुर्गावतीको परास्त कर उसका राज्य अपने राज्यमें मिला लेना।
१५६५ ,, तालीकोटका युद्ध और विजयनगरका विध्वंस।
१५६८ ,, अकबरका चित्तौड़पर अधिकार।
१५६९ ,, रणथम्भौर और कालंजरपर अकबरका अधिकार—उसके पुत्र सलीमका जन्म।
१५७१ ,, फतेहपुर सीकरीकी स्थापना।
१५७२ ,, अकबर द्वारा गुजरातपर आधिपत्य।
१५७३ ,, अकबरके सामने सूरत द्वारा आत्मसमर्पण।
१५७५ ,, ठुकरोईका युद्ध—अकबर द्वारा दाऊद खाँकी पराजय।
१५७६ ,, अकबरका बंगालको पराभूत करना—दाऊद खाँकी मृत्यु—हल्दीघाट अथवा गोगुण्डाका युद्ध।
१५७७ ,, अकबर द्वारा खानदेशपर आक्रमण।
१५७९ ,, अकबरको मुज्तहिद बनानेकी घोषणा।
१५८० ,, बंगाल और बिहारमें विद्रोह।
१५८१ ,, अकबरका अपने भाई हकीमके विरुद्ध अभियान और उसके साथ समझौता करना।
१५८२ ,, अकबर द्वारा "दीन इलाही" की घोषणा।
१५८६ ,, अकबर द्वारा कश्मीरपर आधिपत्य।
१५८९ ,, टोडरमल और भगवानदासकी मृत्यु।

१५९१ ईसवी—अकबर द्वारा सिंधकी विजय।
१५९२ ,, अकबरके साम्राज्यमें उड़ीसाका शामिल होना।
१५९५ ,, मुगलों द्वारा अहमदनगरका घेरा—अकबर द्वारा कन्धार-विजय—मुगल साम्राज्यमें बलूचिस्तानका सम्मिलन—फैजीकी मृत्यु।
१५९७ ,, राणा प्रतापकी मृत्यु।
१६०० ,, लन्दनमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीको अधिकार-पत्र—मुगलों द्वारा अहमदनगरपर आक्रमण।
१६०१ ,, अकबर द्वारा असीरगढ़पर अधिकार।
१६०२ ,, अबुलफजलकी मृत्यु—हालैंडकी यूनाइटेड ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी स्थापना।
१६०५ ,, अकबरकी मृत्यु—जहाँगीरका सिंहासनारोहण।
१६०६ ,, शाहजादा खुसरोका विद्रोह—ईरानियों द्वारा कन्धारका घेरा—जहाँगीरके आदेशसे पाँचवें सिक्ख गुरु अर्जुन सिंहको प्राण-दण्ड।
१६०७ ,, मुगलों द्वारा कन्धारको मुक्त करना—शेर अफगनकी मृत्यु—विधवा नूरजहाँका मुगल हरममें लाया जाना।
१६०८ ,, मलिक अम्बर द्वारा अहमदनगरकी पुनः प्राप्ति।
१६०९ ,, आगरामें हाकिन्सका आगमन—पुलीकैटमें डच कोठीकी स्थापना।
१६११ ,, जहाँगीरका नूरजहाँसे विवाह—हाकिंसका आगरासे प्रस्थान—मसुलीपत्तममें अंग्रेजी कोठी।
१६१२ ,, शाहजादा खुर्रमका मुमताजमहलसे विवाह—सूरतमें अंग्रेजी कोठी—कच्छ हाजोका मुगलसाम्राज्यमें शामिल किया जाना।
१६१३ ,, जहाँगीर द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनीको फरमान।
१६१५ ,, जहाँगीरका मेवाड़पर अधिकार—भारतमें थामस रोका आगमन।
१६१६ ईसवी—जहाँगीरका रोसे भेंट करना—सूरतमें डच कोठी।
१६१८ ,, मुगल दरबारसे रोका प्रस्थान।
१६१९ ,, भारतसे रोका प्रस्थान।
१६२० ,, मुगलोंका काँगड़ापर अधिकार, नूरजहाँकी पुत्रीके साथ शहरयारकी सगाई—मलिक अम्बरका विद्रोह।
१६२२ ,, शाहजादा खुसरोकी मृत्यु—कन्धारपर फारसका अधिकार—शाहजहाँका विद्रोह।
१६२४ ,, शाहजहाँके विद्रोहका दमन।
१६२५ ,, चिनसुरामें डच कोठी।
१६२६ ,, मलिक अम्बरकी मृत्यु—महाबतखाँका विद्रोह।
१६२७ ,, जहाँगीरकी मृत्यु—शिवाजीका जन्म (?)
१६२८ ,, शाहजहाँका बादशाह बनना।
१६३० ,, शिवाजीका जन्म (?)
१६३१ ,, मुमताज महलकी मृत्यु।
१६३२ ,, बीजापुरपर मुगलोंका आक्रमण—हुगलीकी लूट-मार।
१६३३ ,, अहमदनगरके निजामशाही वंशका अंत।
१६३४ ,, अंग्रेजोंको बंगालमें व्यापार करनेका फरमान।
१६३६ ,, बीजापुर और गोलकुण्डासे मुगलोंकी संधि—दक्षिणमें औरंगजेबकी सूबेदारके रूपमें नियुक्ति।
१६३८ ,, मुगलों द्वारा कन्धारपर पुनः अधिकार।
१६३९ ,, मद्रासमें अंग्रेजों द्वारा सैंट जार्ज किलेकी स्थापना।
१६४६ ,, शिवाजीका तोर्णापर अधिकार।
१६४९ ,, कन्धारका मुगलोंके हाथसे निकलना और फारस द्वारा उसे पुनः हस्तगत करना।
१६५१ ,, हुगलीमें अंग्रेजोंकी कोठी।
१६५३ ,, चिनसुरामें डच कोठी।
१६५६ ,, शिवाजी द्वारा जावलीपर आधिपत्य।
१६५७ ,, शाहजहाँकी अस्वस्थता—उत्तराधिकार युद्धका प्रारम्भ।

१६५८ ईसवी—धर्मट (अप्रैल) और सामूगढ़ (मई) के युद्ध—औरंगजेबका राज्याभिषेक ।

१६५९ ,, खजवा और देवराईके युद्ध—दाराको प्राणदण्ड—मुराद और शाहजहाँको वंदी बनाना—औरंगजेबका द्वितीय राज्याभिषेक—शिवाजीके हाथों अफजल खाँकी मृत्यु ।

१६६० ,, शाहजादा शुजाका बंगालसे अराकानको भागना—बंगालका सूबेदार मीर जुमला ।

१६६१ ,, अंग्रेजोंको बम्बई उपहारमें मिलना—मुरादको प्राणदण्ड—मुगलों द्वारा कूचविहारपर अधिकार करके आसामपर आक्रमण ।

१६६२ ,, मीर जुमलाकी आसामपर चढ़ाई और अहोम लोगोंको सुलहके लिए बाध्य करना ।

१६६३ ,, मीर जुमलाकी मृत्यु—बंगालके सूबेदारके पदपर शायस्ता खाँकी नियुक्ति ।

१६६४ ,, शिवाजी द्वारा सूरतका आक्रमण—फ्रांसीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी स्थापना—शिवाजीका राज्याभिषेक ।

१६६६ ,, शाहजहाँकी मृत्यु—शिवाजीका आगरा आगमन और नजर-बन्दीसे मुक्ति ।

१६६८ ,, औरंगजेब द्वारा हिंदुओंके विरुद्ध नये धार्मिक समादेश (फरमान) निकालना—ईस्ट इण्डिया कम्पनीके नाम बम्बईका पट्टा—सूरतमें प्रथम फ्रांसीसी कोठी ।

१६६९ ,, जाट सरदार गोकुलका विद्रोह ।

१६७० ,, शिवाजी द्वारा सूरतपर दूसरी बार आक्रमण ।

१६७१ ,, छत्रसाल बुन्देलाका विद्रोह ।

१६७२ ,, सतनामी विद्रोह—अफ्रीदियोंका विद्रोह ।

१६७४ ,, पांडिचेरीकी स्थापना—शिवाजी द्वारा छत्रपतिका विरुद धारण करना ।

१६७५ ईसवी—सिक्ख गुरु तेगबहादुरको प्राणदंड ।

१६७७ ,, कर्नाटकमें शिवाजीकी विजय ।

१६७८ ,, जसवन्त सिंहकी मृत्यु—औरंगजेबकी आज्ञासे मारवाड़पर मुगलोंका अधिकार ।

१६७९ ,, औरंगजेब द्वारा जजिया फिरसे लगाना-औरंगजेब द्वारा मारवाड़पर आक्रमण करनेकी आज्ञा ।

१६८० ,, शिवाजीकी मृत्यु—शाहजादा अकबरका विद्रोह ।

१६८१ ,, आसामका पुनः स्वतंत्र होना—औरंगजेब का दक्षिण अभियान ।

१६८६ ,, औरंगजेब द्वारा बीजापुरकी विजय और उसे अपने राज्यमें मिलाना ।

१६८७ ,, औरंगजेब द्वारा गोलकुण्डाकी विजय और उसे अपने राज्यमें मिलाना ।

१६८९ ,, शम्भूजीको प्राणदण्ड—राजारामका सिंहासनारोहण और जिन्जीमें डेरा डालना ।

१६९० ,, जाब चारनाक द्वारा कलकत्ताकी स्थापना ।

१६९१ ,, मुगलों द्वारा जाटोंको परास्त करके उन्हें अपने अधीन करना—औरंगजेबकी शक्ति चरम सीमापर ।

१६९२ ,, मराठों द्वारा मुगल साम्राज्यपर हमले पुनः आरम्भ ।

१६९८ ,, ईस्ट इण्डीजके लिए नयी अंग्रेजी व्यापारिक कम्पनीकी स्थापना—सूतानटी, कालीकोठा और गोविन्द नगरकी जमींदारी ईस्ट इण्डिया कम्पनीको प्राप्त ।

१६९९ ,, मालवापर प्रथम मराठा आक्रमण ।

१७०० ,, राजारामकी मृत्यु—ताराबाईका अभिभावक नियुक्त होना ।

१७०२ ,, दोनों ईस्ट इण्डिया कम्पनियोंका एकीकरण ।

१७०३ ,, मराठों द्वारा बरारपर आक्रमण ।

१७०६ ,, मराठों द्वारा गुजरातपर आक्रमण-

बड़ोदाको ध्वंस करना।

१७०७ ईसवी–औरंगजेबकी मृत्यु–जाजउका युद्ध–बहादुर शाह प्रथमका सिंहासनारोहण।

१७०८ ,, शाहूका दिल्लीसे पुना लौटकर मराठोंका शासक बनना–गुरु गोविन्द सिंहकी मृत्यु।

१७१२ ,, बहादुर शाह प्रथमकी मृत्यु–जहाँदार शाहका सिंहासनारोहण।

१७१३ ,, फर्रुखशियरका सिंहासनारोहण–जहाँदार शाहकी हत्या।

१७१४ ,, बालाजी विश्वनाथ पेशवा–दक्षिणका सूबेदार हुसैन अली–हुसैन अली और मराठोंके बीच संधि।

१७१६ ,, बंदा वीरको प्राणदण्ड–मुगल दरबारमें सुरमैनके नेतृत्वमें दूत-मंडलका आगमन।

१७१७ ,, ईस्ट इंडिया कम्पनीको बादशाह फर्रुखशियरका फरमान।

१७१९ ,, फर्रुखशियरकी हत्या–कठपुतली शासकोंका सिंहासनारोहण और पदच्युति–महमूद शाहका सिंहासनारोहण।

१७२० ,, बाजीराव प्रथमका पेशवा होना–सैयद बन्धुओंका पतन।

१७२४ ,, सआदतखाँकी अवधके सूबेदारके पदपर नियुक्ति–दक्षिणमें निजामका स्वतन्त्र होना—कमरुद्दीनकी वजीरके पदपर नियुक्ति।

१७२५ ,, शुजाउद्दीनकी बंगालके सूबेदारके रूपमें नियुक्ति।

१७३५ ,, मुगल बादशाह द्वारा पेशवा बाजीराव प्रथमकी मालवाके शासकके रूपमें स्वीकृति।

१७३९ ,, नादिरशाहका दिल्लीपर आक्रमण और उसे लूटना—शुजाउद्दीनकी मृत्यु और उसके पुत्र सरफराजकी बंगालके सूबेदारके रूपमें नियुक्ति—वसई और साष्टीपर मराठोंका अधिकार।

१७४० ईसवी–अलीवर्दी खाँ द्वारा सरफराज खाँको परास्त कर मार डालना और स्वयं बंगालका नवाब बन जाना–बालाजी बाजीरावका पेशवा बनना—मराठों द्वारा आरकाँट पर आक्रमण और उसके नवाब दोस्त अलीकी पराजय एवं मृत्यु।

१७४२ ,, मराठोंका बंगालपर आक्रमण—पाण्डिचेरीके गवर्नरके रूपमें डूप्लेकी नियुक्ति।

१७४४-४८ ,, प्रथम कर्नाटक (आंग्ल-फ्रांसीसी) युद्ध।

१७४५ ,, रुहिल्लोंके अधिकारमें रुहेलखण्ड।

१७४६ ,, ला बूरदोने द्वारा मद्रासपर अधिकार।

१७४७ ,, अहमदशाह अब्दाली द्वारा आक्रमण।

१७४८ ,, निजाम चिनक्लिन खानकी मृत्यु–बादशाह मुहम्मद शाहकी मृत्यु–अहमदशाहका सिंहासनारोहण।

१७४९ ,, शाहूकी मृत्यु—मद्रासपर अंग्रेजोंका पुनः अधिकार।

१७५०-५४ ,, द्वितीय कर्नाटक युद्ध।

१७५० ,, निजाम नासिर जंगकी पराजय और मृत्यु—मुजफ्फर जंगका निजाम बनना।

१७५१ ,, राबर्ट क्लाइव द्वारा आरकाँटपर अधिकार और उसकी सुरक्षा–मुजफ्फर जंगकी मृत्यु–सलावत जंगका निजाम बनना–कटकको सौंपकर नवाब अलीवर्दी खाँका मराठोंके साथ सन्धि कर लेना।

१७५४ ,, डूप्लेकी वापसी–गोदेहूकी गवर्नरके रूपमें नियुक्ति और अंग्रेजोंके साथ उसकी सन्धि–आलमगीर द्वितीयका सिंहासनारोहण।

१७५६ ,, अलीवर्दी खाँकी मृत्यु (२१ अप्रैल)–सिराजुद्दौलाका सिंहासनारोहण, उसके द्वारा कलकत्तापर अधिकार (२० जून)–सप्त-

वर्षीय युद्ध (१७५६–६३)–तृतीय कर्नाटक युद्ध।

१७५७ ईसवी–अंग्रेजों द्वारा कलकत्तापर पुनः अधिकार (२ जनवरी)–अहमद शाह अब्दाली द्वारा मथुरा और दिल्लीको विध्वंस करना (जनवरी)–सिराज और अंग्रेजोंके बीचमें अलीनगरकी संधि (६ फरवरी)–अंग्रेजों द्वारा चन्द्रनगरपर अधिकार (मार्च)–पलासीका युद्ध (२३ जून)–मीरजाफर का नवाब बनाया जाना (२८ जून)–सिराजुद्दौलाका बन्दी बनना और प्राणदण्ड (२ जुलाई)।

१७५८ ,, भारतमें लालीका आगमन–मराठों द्वारा पंजाबपर अधिकार–फोर्ड द्वारा मुसलीपट्टम्‌पर अधिकार।

१७५९ ,, बीदरका युद्ध–शाहजादा अली गौहर द्वारा बिहारपर विफल आक्रमण–गाजीउद्दीन द्वारा आलमगीर द्वितीयकी हत्या।

१७६० ,, विन्दवासका युद्ध–उदगीरका युद्ध–नवाबकी गद्दीपर मीर कासिमका बैठना–वासिटार्टकी बंगालमें गवर्नरके पदपर नियुक्ति।

१७६१ ,, पानीपतका तृतीय युद्ध (१४ जनवरी)–पाण्डिचेरीका अंग्रेजोंके आगे आत्म-समर्पण–शाहआलम द्वितीयके नामसे अलीगौहरका सिंहासनारोहण–वजीरके रूपमें शुजाउद्दौलाकी नियुक्ति–पेशवा बालाजी बाजीरावकी मृत्यु (२३ जून)–माधवरावका सिंहासनारोहण–मैसूरका नवाब हैदर अली।

१७६३ ,, पैरिसकी सन्धि–मीर कासिमका बंगाल और बिहारसे खदेड़ दिया जाना।

१७६४ ,, बक्सरका युद्ध।

१७६५ ,, मीर जाफरकी मृत्यु–बंगालमें क्लाइवकी गवर्नरीका दूसरा कार्यकाल–इलाहाबादकी संधि–शाह आलम द्वारा कम्पनीको बंगाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानी सौंपा जाना।

१७६६ ईसवी–कम्पनी द्वारा उत्तरी सरकारको हस्तगत करना।

१७६७ ,, क्लाइवका प्रस्थान—वेरेलेस्ट बंगालका गवर्नर–प्रथम मैसूर युद्ध (१७६७–६९)

१७७० ,, बंगालका भीषण दुर्भिक्ष।

१७७२ ,, वारेन हेस्टिंग्स बंगालका गवर्नर नियुक्त–माधवराव पेशवाकी मृत्यु–पेशवा नारायणरावका सिंहासनारोहण और मृत्यु।

१७७३ ,, रेगुलेटिंग ऐक्टका पास होना–रघुनाथराव अथवा राघोबाका पेशवा बनना।

१७७४ ,, पेशवाकी गद्दीपर नारायणरावका बैठना–रुहिल्ला युद्ध–गवर्नर-जनरलके रूपमें वारेन हेस्टिंग्स द्वारा पदग्रहण—कलकत्तामें सर्वोच्च न्यायालयकी स्थापना।

१७७५ ,, नन्दकुमारका मुकदमा और फाँसी—प्रथम मराठा युद्धका प्रारम्भ जो १७८२ ईसवी तक चलता रहा।

१७७६ ,, पुरन्दरकी संधि।

१७७९ ,, बडगाँवका समझौता।

१७८० ,, सेनापति पोफम द्वारा ग्वालियरपर अधिकार–द्वितीय मैसूर युद्ध (१७८०–८४)

१७८१ ,, चेतसिंहका सिंहासनसे उतार दिया जाना–रेगुलेटिंग ऐक्टमें संशोधन।

१७८२ ,, अवधकी बेगमोंका मामला–सालबाईकी संधि–हैदर अलीकी मृत्यु।

१७८३ ,, फाक्सका इण्डिया बिल।

१७८४ ,, मंगलोरकी संधि द्वारा द्वितीय मैसूर युद्धकी समाप्ति–पिटका इण्डिया ऐक्ट।

१७८५ ईसवी—वारेन हेस्टिंग्सका गवर्नर-जनरल-के पदसे त्यागपत्र ।

१७८६ ,, गवर्नर-जनरलके पदपर लार्ड कार्नवालिसकी नियुक्ति ।

१७९० ,, तृतीय मैसूर युद्धका प्रारम्भ (१७९०—९२) ।

१७९२ ,, श्रीरंगपट्टनकी संधि द्वारा तृतीय मैसूर युद्धकी समाप्ति—रणजीत सिंहका सिक्ख मिसलका मुखिया बनना ।

१७९३ ,, बंगालमें भू-राजस्वका स्थायी बन्दोबस्त—कम्पनीके चार्टरका नवीनीकरण—लार्ड कार्नवालिस-की अवकाश-प्राप्ति—गवर्नर-जनरल सर जॉन शोर ।

१७९४ ,, महादजी शिन्देकी मृत्यु ।

१७९५ ,, खरदा अथवा खरद्रलाका युद्ध—अहल्याबाईकी मृत्यु ।

१७९६ ,, पेशवा माधवराव नारायणकी मृत्यु—बाजीराव द्वितीय पेशवा ।

१७९७ ,, पंजाबमें जमान शाह—अवधके नवाब आसफुद्दौलाकी मृत्यु ।

१७९८ ,, गवर्नर-जनरल लार्ड वेलेजली—निजाम द्वारा आश्रित संधिपर हस्ताक्षर ।

१७९९ ,, चतुर्थ मैसूर युद्ध—टीपूकी मृत्यु—श्रीरंगपट्टनका पतन—मैसूरका विभाजन—मैसूरकी गद्दीपर हिन्दू राजाका अधिष्ठापन—जमान शाह द्वारा रणजीत सिंह-की लाहौरके सूबेदारके पदपर नियुक्ति—माल्कमके नेतृत्वमें अंग्रेज दूत-मण्डलका फारस पहुँचना—विलियम कैरे द्वारा श्रीरामपुरमें बेप्टिस्ट मिशनकी स्थापना ।

१८०० ,, नाना फड़नवीसकी मृत्यु ।

१८०१ ,, कर्नाटकका ब्रिटिश साम्राज्यमें मिलाया जाना ।

१८०२ ,, पूनाका युद्ध—वसईकी संधि ।

१८०३ ,, द्वितीय मराठा युद्ध (१८०३—१८०५)—अलीगढ़पर अधिकार—दिल्ली, असई, लासवाड़ी और-गाँवके युद्ध—देवगाँवकी संधि तथा कटकका समर्पण—सुर्जी-अर्जुन गाँवकी संधि ।

१८०४ ईसवी—होल्करके साथ युद्ध—मोन्सनकी पराजय—डीगका युद्ध ।

१८०५ ,, भरतपुरकी घेराबन्दीमें अंग्रेजोंकी असफलता—लार्ड वेलेज़लीका वापस बुलाया जाना—गवर्नर-जनरलके रूपमें लार्ड कार्नवालिस-का दूसरा कार्यकाल—गवर्नर-जनरल सर जार्ज बारलो—होल्कर-के साथ सन्धि ।

१८०६ ,, वेल्लोरमें विप्लव तथा उसका दमन ।

१८०७ ,, लार्ड मिण्टो प्रथम गवर्नर-जनरल नियुक्त (१८०७—१३ ई०) ।

१८०८ ,, माल्कमके नेतृत्वमें फारस और एलिफिन्सटनके नेतृत्वमें काबुल-को अंग्रेज दूतमण्डलोंका जाना ।

१८०९ ,, अंग्रेजों और रणजीत सिंहके बीच अमृतसरकी संधि ।

१८११ ,, जावाकी विजय ।

१८१२ ,, मिर्जापुरपर पेंढारियोंका हमला—पाँचवी रिपोर्ट ।

१८१३ ,, कम्पनीके चार्टरका नवीनीकरण—लार्ड मिण्टो प्रथमका अवकाश-ग्रहण—गवर्नर-जनरलके रूपमें लार्ड हेस्टिंग्सकी नियुक्ति (१८१३—२३ ई०)

१८१४ ,, नेपालके साथ युद्धारम्भ (१८१४-१६ ई०) ।

१८१६ ,, सगौलीकी संधिके द्वारा नेपाल युद्धकी समाप्ति ।

१८१७—१८ ,, पेंढारी तथा तृतीय मराठा युद्ध-खड़की और सीताबल्डीके युद्ध-अप्पा साहब भोंसलाकी पद-च्युति—महीदपुरका युद्ध—होल्कर-के साथ संधि ।

१८१८ ,, आस्टीका युद्ध—कोरेगाँवकी रक्षा

—पेशवा बाजीराव द्वितीयका समर्पण।

१८१९ ईसवी—असीरगढ़का आत्म-समर्पण—पेशवापदकी समाप्ति, ब्रिटिश वृत्तिभोगीकी हैसियतसे पेशवा बाजीराव द्वितीयका बिठूरमें अवकाश-ग्रहण—राजपूताना के राज्योंके साथ सुरक्षात्मक संधि—भूकम्प—सिंगापुरपर आधिपत्य।

१८२० ,, प्रथम बंगला समाचार-पत्र 'समाचार दर्पण'का प्रकाशन—मद्रासके गवर्नरके रूपमें सर थामस मुनरोकी नियुक्ति (१८२०—२७ ई०)

१८२३ ,, लार्ड हेस्टिंग्सका प्रस्थान—कार्यवाहक गवर्नर-जनरल एडम्स-पत्रकार बकिंघमका देश-निर्वासन—लार्ड अमहर्स्ट गवर्नर-जनरल।

१८२४ ,, प्रथम बर्मा-युद्ध (१८२४—२६ ई०)—बैरकपुरका विद्रोह।

१८२६ ,, भरतपुरका पतन—यन्दबूकी संधि—आसाम, अराकान और तेनासरीमका ब्रिटिश साम्राज्यमें सम्मिलित किया जाना।

१८२७ ,, मद्रासमें भाप द्वारा चालित युद्धपोत 'इण्टरप्राइज'।

१८२८ ,, लार्ड विलियम बेंटिक गवर्नर-जनरल नियुक्त (१८२८—३६ ई०)।

१८२९ ,, सती प्रथाका उन्मूलन।

१८२९-३७ ,, ठगोंका दमन।

१८३० ,, कछारपर अधिपत्य— राजा राम मोहन रायका इंग्लैण्ड-भ्रमण।

१८३१ ,, मैसूरके राजाकी पद-च्चुति और उसके शासनका भार अंग्रेजों द्वारा सम्भालना—बर्न्स द्वारा सिंधुकी यात्रा—रणजीत सिंह और लार्ड विलियम बेंटिककी रूपड़में भेंट।

१८३२ ,, जयन्तियापर आधिपत्य।

१८३३ ,, कम्पनीके चार्टरका नवीनीकरण—विभिन्न सुधार।

१८३४ ,, कुर्गपर आधिपत्य—सुप्रीम कौंसिलमें कानून-सदस्यकी नियुक्ति—लार्ड मेकाले प्रथम कानून-सदस्य।

१८३५ ईसवी—कलकत्ता मेडिकल कालेजकी स्थापना—शिक्षा-सम्बन्धी प्रस्ताव-लार्ड विलियम बेंटिकका अवकाश-ग्रहण—सर चार्ल्स मेटकाफ कार्यकारी गवर्नर-जनरल—समाचार पत्रोंपर प्रतिबन्धोंकी समाप्ति।

१८३६ ,, गवर्नर-जनरलके पदपर लार्ड आकलैंडकी नियुक्ति (१८३६-४२ ई०)।

१८३७—३८ ,, उत्तरी भारतमें दुर्भिक्ष।

१८३८ ,, अंग्रेजोंके साथ शाह शुजा और रणजीत सिंहकी त्रिपक्षीय संधि।

१८३९ ,, नयी संधिके लिए सिंधके अमीरोंका बाध्य किया जाना—रणजीत सिंहकी मृत्यु—प्रथम अफगान युद्ध (१८३९—४२ ई०)—गजनीपर अधिकार और काबुलपर स्वामित्व।

१८४० ,, अफगान कबीलोंका विद्रोह—दोस्त मुहम्मदकी पदच्युति।

१८४१ ,, अफगानों द्वारा बर्न्स और मैकनाटनकी हत्या।

१८४२ ,, अफगानिस्तानमें अंग्रेजी फौजोंका संहार—डा० ब्राइडनका अकेले जलालाबाद पहुँचना—लार्ड एलिनबरोका गवर्नर-जनरल होना (१८४२—४४ ई०)—जलालाबादको सहायता—काबुलपर पुनः आधिपत्य—दोस्त मुहम्मदका पुनः अमीर बनाया जाना—अफगानिस्तानसे अंग्रेज फौजोंका हटना।

१८४३ ,, सिंधके अमीरोंके साथ युद्ध—मियानी और द्राबोके युद्ध—सिन्धपर आधिपत्य — महाराजपुरका युद्ध—दास प्रथाकी समाप्ति।

१८४४ ,, लार्ड एलिनबरोका वापस बुलाया जाना—लार्ड हार्डिंज गवर्नर-

जनरल (१८४४–४८ ई०)।

१८४५ ईसवी—प्रथम सिक्ख युद्ध (१८४५–४६)—मुद्की और फीरोजशाहके युद्ध।

१८४६ ,, अलीवाल और सुबराहानका युद्ध—लाहौरकी संधियाँ।

१८४८ ,, लार्ड डलहौजीका गवर्नर-जनरल होना (१८४८–५६ ई०)—मूलराजका विद्रोह—द्वितीय सिक्ख युद्ध (१८४८–४६)—गोद प्रथाकी समाप्ति और इस घोषणाके अनुसार सताराका ब्रिटिश साम्राज्यमें मिला लिया जाना।

१८४९ ,, चिलियाँवाला और गुजराजके युद्ध—पंजाबका ब्रिटिश साम्राज्यमें मिलाया जाना—कलकत्तामें लड़कियोंके लिए बेथून स्कूलका खुलना—जैतपुरा और सम्बलपुरका ब्रिटिश साम्राज्यमें मिलाया जाना।

१८५० ,, सिक्किमके एक भागका दण्डस्वरूप ब्रिटिश साम्राज्यमें मिलाया जाना।

१८५२ ,, द्वितीय बर्मा युद्ध—पेगूपर आधिपत्य—भूतपूर्व पेशवा बाजीराव द्वितीयकी मृत्यु और उसकी पेंशनका समाप्त किया जाना।

१८५३ ,, भारतमें बम्बईसे थाना तक प्रथम रेलवे लाइनका उद्घाटन—कलकत्तासे आगरा तक तारकी लाइनका बिछाया जाना—झाँसी और नागपुरका ब्रिटिश साम्राज्यमें मिलाना—निजाम द्वारा बरारका समर्पण—कम्पनीके चार्टरका नवीनीकरण—आई० सी० एस०के लिए प्रवेश-परीक्षाका श्रीगणेश।

१८५४ ,, सर चार्ल्स वुडका शिक्षा सम्बन्धी खरीता।

१८५५ ,, संथालोंका विद्रोह।

१८५६ ,, अवधका ब्रिटिश साम्राज्यमें मिलाया जाना—भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम—हिंदू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम—लार्ड डलहौजीका प्रस्थान और गवर्नर-जनरलके रूपमें लार्ड केनिंगकी नियुक्ति—क्रीमियाके युद्धका अन्त—फारसका युद्ध—चीनमें युद्ध (१८५६–६० ई०)—इन्फील्ड रायफलों और चर्बी-युक्त कारतूसोंका प्रचलन।

१८५७ ईसवी—बंगालमें बैरकपुर और बरहामपुरमें विद्रोह (जनवरी–अप्रैल)—१० मई १८५७ को मेरठमें सिपाही-विद्रोहका-सूत्रपात—विद्रोही सिपाहियों द्वारा दिल्लीपर अधिकार और दिल्लीके मुगल बादशाह बहादुर शाह द्वारा स्वतंत्रताकी घोषणा (मई)—लखनऊ और बरेलीमें विद्रोह (मई)—अंग्रेज फौजोंका दिल्लीकी पहाड़ीपर अधिकार (जून)—कानपुरमें कत्ले आम (जुलाई)—दिल्लीपर पुनः अधिकार और शाहजादाकी हत्या (सितम्बर)—लखनऊ रेजिडेंसीमें घिरी अंग्रेज फौजोंकी मुक्ति और कानपुरमें विण्ढमकी पराजय (नवम्बर)-कानपुरपर पुनः आधिपत्य (दिसम्बर)—कलकत्ता, बम्बई और मद्रास विश्वविद्यालयोंकी स्थापना।

१८५८ ,, बादशाह बहादुर शाहका मुकदमा (जनवरी-मार्च)—लखनऊपर पुनः आधिपत्य (मार्च)-झांसीपर पुनः आधिपत्य—बरेली और कालपीपर पुनः आधिपत्य—झाँसीकी रानी और तात्या टोपे द्वारा ग्वालियरपर अधिकार और नाना साहबका पेशवा घोषित किया जाना (मई)—झाँसीकी रानीकी पराजय और मृत्यु (जून)—ग्वालियर और झांसीपर पुनः अधिकार—लार्ड कैनिंग द्वारा क्षमादानकी घोषणा (जुलाई)—भारतके लिए नया

१९१७ ईसवी—अंग्रेजोंका कुट-एल आमारापर पुनः अधिकार—रूसमें क्रान्तिके फलस्वरूप जारशाहीका पतन—अमेरिका द्वारा जर्मनीके विरुद्ध युद्धकी घोषणा—ब्रिटिश कामन्स सभामें भारत-मंत्री मांटेगूकी घोषणा कि ब्रिटिश सरकारका लक्ष्य भारतमें स्वायत्तशासी संस्थाओंका क्रमिक विकास करना है ताकि वहाँ क्रमिक रीतिसे उत्तरदायी सरकारकी स्थापना हो सके (२७ अगस्त)—मांटेगूकी भारत-यात्रा।

१९१८ ,, भारतीय सेनामें अफसरोंके पद-पर नियुक्तिके लिए भारतीयोंको योग्य घोषित किया जाना—इण्डियन नेशनल लिबरल फेड-रेशन—रूसकी पराजय—मेसोपोटा-मियामें अंग्रेज फौजोंका बढ़ाव और फ्रांसमें जर्मन फौजोंका पीछे हटना—माण्टेगू-चेम्सफोर्ड रिपोर्टका प्रकाशन और उसपर पार्लियामेण्टमें वाद-विवाद—प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४—१८ ई०) की समाप्ति।

१९१९ ,, गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, १९१९—पंजाबमें उपद्रव—शाही घोषणा—खलीफा पदकी समाप्ति।

१९२० ,, खिलाफत आन्दोलन—बाल गंगा-धर तिलककी मृत्यु—महात्मा गांधीके नेतृत्वमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा असहयोग आंदोलन-का श्रीगणेश—लार्ड सिन्हा बिहार और उड़ीसाके गवर्नर नियुक्त।

१९२१ ,, असहयोग आंदोलन जारी (१९२०—२४ ई०)—देशी नरेशोंके नरेन्द्र मण्डलका गठन—मोपला विद्रोह—प्रिंस ऑफ वेल्स, एडवर्ड की यात्रा—जनगणना—वाइसराय लार्ड रीडिंग (१९२१—२६ ई०)।

१९२२ ,, माण्टेगूका त्यागपत्र।

१९२३ ईसवी—स्वराज्य पार्टीकी स्थापना—वाइ-सराय द्वारा अपने विशेषाधिकारसे नमक-कर कानूनको पास करना—भारतीय सेनाकी कुछ पलटनों-की कमानका भारतीयकरण।

१९२४ ,, असहयोग आन्दोलनका शिथिल पड़ना।

१९२५ ,, चित्तरंजनदासकी मृत्यु—अन्त-विश्वविद्यालय बोर्डका गठन—लार्ड लिटन द्वितीय स्थानापन्न वाइसराय।

१९२६ ,, वाइसराय लार्ड इर्विन (१९२६—३१ ई०)—रुपयेका अवमूल्यन।

१९२७ ,, साइमन कमीशनकी नियुक्ति—भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके मद्रास अधिवेशनमें स्वतन्त्रताके लक्ष्यकी घोषणा।

१९२८ ,, अफगानिस्तानके अमीर अमा-नुल्लाका अपदस्थ किया जाना—सर्वदलीय सम्मेलन—नेहरू रिपोर्ट—कांग्रेसके अन्दर इण्डिपेण्डेंस लीगकी स्थापना, जिसने इस शर्त-पर औपनिवेशिक राज्य स्वीकार कर लिया कि उसकी घोषणा १९२९ ई० के वर्षका अन्त होनेसे पूर्व कर दी जाय—नादिरशाह अफ-गानिस्तानका अमीर (१९२८—३४ ई०)।

१९२९ ,, लार्ड इर्विनकी घोषणा (३१ अक्तूबर) कि भारतकी संवै-धानिक प्रगतिका अन्तिम लक्ष्य औपनिवेशिक राज्यकी स्थापना है—भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके लाहौर अधिवेशनमें पूर्ण स्वाधी-नताके प्रस्तावको पारित किया जाना (दिसम्बर)।

१९३० ,, ६ अप्रैलको सविनय अवज्ञा आन्दोलनका श्रीगणेश—साइमन कमीशनकी रिपोर्ट—बर्मामें विद्रोह—गोल मेज सम्मेलनका प्रथम अधिवेशन (नवम्बर-जनवरी)।

१९३१ ,, इर्विन-गांधी समझौता (५ मार्च)

—भारतमें जनगणना—गोल मेज सम्मेलनका दूसरा अधिवेशन, जिसमें गांधीजीने भी भाग लिया (सितम्बर-दिसम्बर)—वाइसराय लार्ड विलिंगडन (१९३१—३६ ई०)।

१९३२ ईसवी—गांधीजीको कारावास (जनवरी)—कांग्रेस गैरकानूनी घोषित—कठोर दमनचक्र—साम्प्रदायिक पंच निर्णय—गांधीजीका अनशन—पूना समझौता—देहरादूनमें भारतीय मिलिटरी अकादमीकी स्थापना।

१९३३ ,, प्रस्तावित शासन सुधारोंपर श्वेतपत्र प्रकाशित—संयुक्त प्रवर समिति।

१९३४ ,, सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित—बिहार भूकम्प—फैक्टरी अधिनियम—भारतीय नौसेनाका गठन—अफगानिस्तानके अमीर नादिर शाहकी हत्या और जहीर शाहका सिंहासनारोहण।

१९३५ ,, गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया अधिनियम १९३५।

१९३६ ,, सम्राट् जार्ज पंचमकी मृत्यु—एडवर्ड अष्टमका सिंहासनारोहण और सिंहासन-त्याग—लार्ड लिनलिथगो वाइसराय (१९३६)।

१९३७ ,, प्रान्तीय स्वशासनका उद्घाटन (१ अप्रैल)—अन्तरिम मंत्रिमंडल—वाइसरायका वक्तव्य (जून)—छः प्रान्तोंमें कांग्रेस मंत्रिमंडलका गठन—संघीय न्यायालयका निर्माण—लार्ड लिनलिथगो वाइसराय और गवर्नर-जनरल (१९३७—४२)।

१९३९ ,, द्वितीय विश्वयुद्ध (३ सितम्बर)—वाइसरायकी भारतीय नेताओंसे मंत्रणा—कांग्रेस द्वारा युद्धके उद्देश्योंके तुरन्त स्पष्टीकरणकी माँग—वाइसरायकी घोषणा (१७ अक्तूबर) कि युद्धोपरान्त संवैधानिक विकासका लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्यकी स्थापना है—प्रान्तीय कांग्रेस मंत्रिमण्डलोंका त्यागपत्र।

१९४० ईसवी—मुस्लिमलीग द्वारा पाकिस्तानकी माँग—फ्रांसका पतन।

१९४१ ,, जापान द्वारा युद्धकी घोषणा—सुभाषबोस नजरबंदीसे भागकर स्थल मार्गसे जर्मनी पहुँचे।

१९४२ ,, बर्मामें अंग्रेजोंका आत्म-समर्पण और अपने पीछे ९०,००० भारतीय सैनिकोंको छोड़कर वहाँसे भाग आना—जापान द्वारा विजगापट्टमपर बम वर्षा (अप्रैल)—क्रिप्स मिशन—'भारत छोड़ो' आन्दोलनका प्रारम्भ—सविनय अवज्ञा आन्दोलन—देश-व्यापी उपद्रव और दमन चक्र—बंगालका दुर्भिक्ष—कांग्रेसी नेताओंकी गिरफ्तारी।

१९४३ ,, बंगालका दुर्भिक्ष—गवर्नर-जनरल लार्ड वावेल (१९४३—४७)।

१९४४ ,, आसामपर जापानी आक्रमण—आजाद हिन्द फौज—मणिपुरमें कोहिमाके निकट जापानी फौजों और आजाद हिन्द फौजोंका पीछे खदेड़ा जाना।

१९४५ ,, जापानका आत्मसमर्पण—भारतमें आम चुनाव—उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रांतको छोड़कर सभी प्रांतोंमें अधिकांश मुस्लिम सीटोंपर मुस्लिमलीगका अधिकार, जबकि कांग्रेसका सभी प्रान्तों और केन्द्रमें अधिकांश जनरल सीटोंपर अधिकार।

१९४६ ,, भारतीय नौसेनाका विद्रोह (१८ फरवरी)—कैबिनेट मिशन भारतमें—मुस्लिमलीग द्वारा प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस मनाया गया (१६ अगस्त)—कलकत्तामें भयानक साम्प्रदायिक दंगे—ढाकामें साम्प्र-

दायिक दंगे (२० अगस्त)—अन्तरिम सरकारका गठन (२सितम्बर)-नोआखाली और टिपरामें साम्प्रदायिक दंगे (१४ अक्तूबर)—बिहारमें साम्प्रदायिक दंगे (२५ अक्तूबर)—मुस्लिमलीगका अन्तरिम सरकारमें शामिल होना (२६ अक्तूबर)—संविधान सभाका प्रथम अधिवेशन (६ सितम्बर)।

१६४७ ईसवी—लार्ड माउण्टबैटन गवर्नर-जनरल—पंजाबमें साम्प्रदायिक दंगे—माउण्टबैटन द्वारा भारत और पाकिस्तानके रूपमें देशके विभाजनके आधारपर स्वतंत्रताकी घोषणा (३ जून)—भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम (१५ अगस्त)—पाकिस्तानका जन्म—पाकिस्तानका कश्मीरपर आक्रमण—कश्मीरका भारतीय संघमें सम्मिलित होना (अक्तूबर)—भारतीय हस्तक्षेप।

१६४८ ,, महात्मा गांधीकी हत्या (३० जनवरी)—राजगोपालाचारी भारतके प्रथम गवर्नर-जनरल (२१ जून)—भारत द्वारा कश्मीर विवाद संयुक्त राष्ट्रसंघमें प्रस्तुत (जुलाई)-जिन्नाकी मृत्यु (११ सितम्बर)—हैद्राबादमें पुलिस कारवाई—हैदराबादका भारतीय गणतंत्रमें विलयन।

१६४६ ,, भारतीय संविधान अधिनियम पारित।

१६५० ,, भारतमें लोकतांत्रिक गणराज्यकी घोषणा (२६ जनवरी)—डॉ० राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपति निर्वाचित और पण्डित जवाहरलाल नेहरू प्रधान-मंत्री नियुक्त—चीनके साथ कूटनीतिक सम्बन्धोंकी स्थापना—भारत संयुक्तराष्ट्र सुरक्षा परिषद्का दो वर्षके लिए सदस्य निर्वाचित—देशी रियासतोंके विलयनका कार्य पूर्ण।

१६५१ ईसवी—चन्द्रनगरके समर्पणकी संधि—२०६६ करोड़ रु० की प्रथम पंचवर्षीय योजना—जनगणना।

१६५२ ,, वयस्क मताधिकारके आधारपर प्रथम आम चुनाव।

१६५३ ,, भाषाई आधारपर आंध्र राज्यका गठन—पुर्तगालमें भारतीय दूतावासका बन्द होना।

१६५४ ,, पंचशील समझौतेपर हस्ताक्षर—चाऊ-इन-लाईकी भारत-यात्रा (जून)—पं० जवाहरलाल नेहरूकी चीन-यात्रा (अक्तूबर)।

१६५५ ,, बांडुंग सम्मेलन—नेहरूकी रूस-यात्रा (जून)—खुश्चेव और बुल्गानिनकी भारत-यात्रा (नवम्बर)।

१६५६ ,, ४८००० करोड़ रुपयेकी द्वितीय पंचवर्षीय योजना—राज्य पुनर्गठन अधिनियम—मिस्रसे विदेशी सेनाओंको हटानेकी माँग करनेमें भारत भी बर्मा, श्रीलंका और इण्डोनेशियाके साथ सम्मिलित—फ्रांस द्वारा पांडिचेरी, करिकल, माहे और युन्नानके समर्पणके लिए संधिपर हस्ताक्षर।

१६५७ ,, दूसरा आम चुनाव—केरलको छोड़कर सभी राज्योंमें कांग्रेसका बहुमत—दशमलव प्रणालीके सिक्कोंका प्रचलन (१ अप्रैल)—केरलमें कम्युनिस्टोंके नेतृत्वमें मंत्रिमंडल।

१६५८ ,, कश्मीरपर ग्राहमकी रिपोर्ट—आयल इण्डिया लिमिटेड और इंडियन रिफायनरीज लिमिटेडका गठन—भारतमें प्रथम आणविक रिएक्टर चालू।

१६५६ ,, चीनी आक्रमणके फलस्वरूप दलाई लामा और १४००० तिब्बती शरणार्थियोंका भारतमें आगमन—चीनियों द्वारा लांगजू और

लद्दाखमें तैनात १३ भारतीय सैनिकोंकी हत्या—केरलका कम्युनिस्ट मंत्रिमण्डल बर्खास्त।

१९६० ईसवी—पं० नेहरूकी पाकिस्तान यात्रा—सिन्धु-जल संधिपर हस्ताक्षर—भारत और सोवियत रूसके राष्ट्राध्यक्षों द्वारा एक दूसरेके देशकी यात्रा—बम्बई राज्यका महाराष्ट्र और गुजरातमें विभाजन—केन्द्रीय शासनके चार लाख कर्मचारियोंकी निष्फल हड़ताल।

१९६१ ,, जनगणना जिसमें जम्मू और कश्मीरको भी सर्वप्रथम सम्मिलित किया गया—भारतकी जनसंख्या ४३.६ करोड़—तृतीय पंचवर्षीय योजना—दहेज निवारक अधिनियम—भारतीय सेना द्वारा १७ दिसम्बरकी अर्धरात्रिको गोवाको मुक्ति प्रदान करना।

१९६२ ,, तृतीय आम चुनाव—केन्द्रमें और प्रत्येक राज्यमें कांग्रेसका बहुमत—नागालैंडको आसामसे पृथक् कर पृथक् राज्य निर्मित—गोवा केन्द्र-शासित प्रदेश—बाट, माप, और तौलमें दाशमिक प्रणालीका प्रचलन—नूनमाटी (आसाम) तेलशोधक कारखानेका उद्घाटन—चीन द्वारा भारतकी उत्तरी और उत्तर-पूर्वी सीमापर आक्रमण, जिसका अन्त चीन द्वारा आरोपित एकपक्षीय युद्ध-विरामसे हुआ।

१९६३ ईसवी—हवाई जहाजोंके निर्माणके लिए ऐरोनाटिक्स इण्डिया लिमिटेडकी स्थापना—कोलम्बो प्रस्ताव भारत द्वारा स्वीकृत, किन्तु चीन द्वारा अस्वीकृत—कामराज योजना और केन्द्रीय मंत्रिमण्डलका पुनर्गठन—संसद द्वारा १९६५ के बाद भी अंग्रेजीको राजभाषाके रूपमें प्रयोगका अनुमोदन।

१९६४ ,, पूर्वी पाकिस्तानमें साम्प्रदायिक दंगोंके फलस्वरूप कलकत्ता, जमशेदपुर और राउरकेलामें साम्प्रदायिक दंगे—गृह-मंत्री गुलजारीलाल नन्दाका भ्रष्टाचार-विरोधी अभियान—शेख अब्दुल्लाकी रिहाई—महालनबीस समितिकी रिपोर्टमें आर्थिक शक्तिके केन्द्रीयकरणके विरुद्ध चेतावनी—२७ मईको पं० जवाहरलाल नेहरूका स्वर्गवास—लालबहादुर शास्त्री प्रधान-मंत्री नियुक्त।